ओ३म्

ऋग्वेद

हिन्दी भाष्य

६,१० मण्डल

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद

(भाषा-भाष्य)

(नवम, दशम मण्डल)

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य प्रकाशन
S-524 A, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092

प्रकाशक :

आर्य प्रकाशन
S-524 A, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर,
दिल्ली-110092 (भारत)
चलभाष:- 9868244958
e-mail- aryaprakashan@gmail.com

संस्करण : 2023
मूल्य : ₹ 800.00

मुद्रक : राधा प्रेस
38/2/16. साइट-4. साहिबाबाद. गाजियाबाद

प्रकाशकीय

आर्य प्रकाशन की स्थापना सन् 1975 में हुई थी। अपनी स्थापना से लेकर आजतक उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा लिखित वैदिक पुस्तकें छाप रहे हैं, जिसका लाभ आर्यजन उठा रहे हैं। हम चारों वेद संहिता सहित सैकड़ों पुस्तकों का प्रकाशन कर चुके हैं।

हमारा संकल्प वेद भाष्य छापने का था। प्रभु की कृपा से हमारा संकल्प पूरा हो रहा है। हमने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा भाष्य किये गये "ऋग्वेद भाष्य" छाप दिया है। महर्षि दयानन्द द्वारा किया गया वेद भाष्य हर व्यक्ति की समझ में आ जाता है।

"ऋग्वेद भाष्य" का पाचवाँ भाग आपके हाथों में है, इस खण्ड के नवम मण्डल का भाष्य गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के वरिष्ठ स्नातक पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार ने किया है तथा दशम मण्डल का भाष्य आर्य जगत् के स्वनामधन्य विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम.ए. ने किया। आप पढ़कर इसकी विशेषता को जान सकते हैं। हमने संकल्प लिया था कि चारों वेदों का भाष्य आप लोगों की सेवा में पहुँचायेंगे। आप सभी आर्यजनों के सहयोग व स्नेह से यह संकल्प पूर्ण हो गया।

हमने प्रयास किया है कि बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, सुन्दर आवरण तथा कपड़े की सुन्दर जिल्द सभी प्रकार की बढ़िया साज-सज्जा के साथ इसका मूल्य भी कम रखा जा सके।

आशा है कि आप जैसा प्यार, स्नेह, सहयोग प्रकाशन में रखते हैं, वैसा ही प्रभु की कृपा से आगे भी रखेंगे।

ओं स्तु॒ता मया॑ वर॒दा वैदमा॒ता

प्रचौदयन्तां पावमा॒नी द्वि॒जाना॑म्। आयु॑ः

प्रा॒णं प्र॒जां प॒शुं की॒र्तिं द्रविणं

ब्रह्मवर्च॒सम्। मह्य॑ं द॒त्त्वा व्र॑जत

ब्रह्मलो॒कम्॥ (अथर्ववेद १९/७१/१)

* * *

स्तुति करते हम वेद की,
जो माता है प्रेरक-पालक।
पावन करती मनुज मात्र को,
आयु, बल, सन्तति, पशु, कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान॥

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

दक्षिण अफ्रीका का दौरा करके लौटते ही आर्य समाज स्थापना शताब्दी की तैयारी में लगना पड़ा। परिस्थितिवश शताब्दी का उत्सव बम्बई से हटाकर दिल्ली ले जाया गया। अतः उसकी तैयारी और विशेषतः वेद सम्मेलन की तैयारी के लिए आर्य समाज स्थापना शताब्दी के आग्रह पर मुझे दिल्ली जाना पड़ा और कार्य-सम्पादन के लिए एक मास पूर्व जाना पड़ा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री लाला राम गोपाल जी शालवाले और मन्त्री श्री ओ३म् प्रकाश जी पुरुषार्थी एवम् उपमन्त्री श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री ने अनुरोध किया कि सभा द्वारा हाथ में लिए गए वेद भाष्य के कार्य की पूर्त्यर्थ मैं दशम मण्डल का भाषा भाष्य कर दूं क्योंकि और कोई उत्तम भाष्य छापने योग्य उपलब्ध नहीं था जो सभा की आकांक्षा को पूरा कर सके। सभा के यशस्वी मन्त्री पुरुषार्थी जी पांच-छः मास पूर्व से ही यह आग्रह लगातार कर रहे थे। निश्चय आपस में बैठकर सभा में किया गया कि भाष्य होता जावे और छपता भी जावे।

मैं इस अनुरोध को टाल न सका और भाष्य करना स्वीकार कर लिया। इसका कारण एक तो यह था जो सभा-पक्ष में प्रबल था कि इस वेद भाष्य का प्रारम्भ मुझसे ही हुआ था, अतः समापन जो एक कठिन कार्य था वह भी मेरे द्वारा ही पूरा किया जावे। दूसरा कारण यह था कि दशम मण्डल पर पाश्चात्यों और उनके अनुयायी एतद्देशीय विद्वानों की आपत्तियां भी हैं और यह कठिन भी है। अतः इस पर ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि वह एक मानदण्ड की एक दिशा बने। मैंने भाष्य का कार्य प्रारम्भ करने और सभा को शीघ्र देने का विचार कर लिया।

परन्तु इस भाष्य के कार्य को प्रारम्भ न कर सका। इसका कारण एक दुर्घटना थी जिसमें प्राण बच गए--यही भगवान् की बड़ी कृपा है। २६ दिसम्बर ७५ को वेद सम्मेलन बड़ी शान के साथ सम्पन्न हुआ। इसका संयोजक मैं ही था और कार्य को बड़ी तत्परता से पूरा किया। सम्मेलन समाप्त होने पर जब मैं मंच से उतरने लगा तो मंच का एक पट्टा टूट गया और मैं शिर के बल गिर गया। बहुत बड़ा घाव शिर में हो गया। आठ टांके अस्पताल में लगे और आठ दिन अस्पताल और १५-२० दिन सभा-भवन में ही रहना पड़ा क्योंकि डाक्टरी इलाज चल रहा था।

इर्विन हास्पीटल और आल इण्डिया रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ मैडिकल साईंसेज के शल्य चिकित्सा विशेषज्ञों की सलाह होने पर मैं १७ जनवरी को बड़ौदा घर पर वापस आया और घर पर फरवरी मास तक चिकित्सा होती रही। परेश कृपया सब ठीक हुआ। मैंने भाष्य का कार्य प्रारम्भ किया और इसे आज पूरा कर दिया। भाष्य के पूरा करने पर प्रसन्नता का होना स्वाभाविक है। सभा-मन्त्री श्री पुरुषार्थी बम्बई में मिले और भाष्य की पूर्ति का समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् की अति कृपा से यह कठिन कार्य पूर्ण हुआ।

भाष्य को महर्षि दयानन्द की प्रक्रिया से सर्वोत्तम बनाने का यत्न किया गया है। जहां मन्त्रों से वैज्ञानिक विचार झलकते थे वहां पर उनका भाष्य वैसा ही किया गया है। इस सूक्त में दार्शनिक विचारधारा के भी मन्त्र हैं उनका भली प्रकार उद्घाटन किया गया है। जिन मन्त्रों को लोग दुरूह और विना अर्थ वाला समझते थे उनका भी अर्थ करके दिखाया गया है। बहुत स्थलों पर टिप्पणी देकर समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इस भाष्य को पूरा करने में जहां मुझे पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा वहां मेरी विदुषी पत्नी श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री और योग्या सुपुत्री कुमारी शर्मिष्टा शास्त्री एम० ए० एडवोकेट ने हस्तलेख को ठीक तैयार करने आदि अनेक कार्यों में पर्याप्त सहयोग दिया। इनका यह कार्य प्रशंसनीय है। महर्षि दयानन्द का वेद सम्बन्धी कार्य फले-फूले बढ़े और सर्वत्र फैले, यही मेरी इच्छा है।

—वैद्यनाथ शास्त्री

बड़ौदा,
दि०—१५-६-१९७६

---

* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम् ॥

अथ नवमं मण्डलम् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

अथ दशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, २, ६ गायत्री । ३, ७-१० निचृद् गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब इस मण्डल में सौम्यस्वभाव परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (स्वादिष्ठया) आनन्द के बढ़ाने वाले (मदिष्ठया धारया) आह्लाद के वर्द्धक स्वभाव से आप हमें (पवस्व) पवित्र करें जो स्वभाव, आप का (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के (पातवे) बढ़ाने के लिए (सुतः) प्रसिद्ध है ॥१॥

भावार्थः—यों तो परमात्मा के अपहतपाप्मादि अनन्त गुण हैं, पर शान्त स्वभाव परमात्मा के शान्ति के देने वाले सौम्य स्वभावादि ही हैं, परमात्मा के सौम्यस्वभाव के धारण करने से पुरुष शान्तिसम्पन्न हो जाता है। फिर उसको अपने स्वरूप में एक प्रकार का आनन्द प्रतीत होने लगता है। जिससे एक प्रकार का हर्ष उत्पन्न होता है। मद यहां हर्ष का नाम है किसी मादक द्रव्य का नहीं। कई एक टीकाकारों ने इस मण्डल को मदकारक सोम द्रव्य में लगाया है वह भूल की है क्योंकि इस मण्डल में परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभावों का वर्णन है किसी द्रव्यविशेष का नहीं ॥१॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ।।२।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप **(रक्षोहा)** राक्षसों के हनन करने वाले हो, **(विश्वचर्षणिः)** सम्पूर्ण विश्व के द्रष्टा हो, **(अभियोनिम्)** सबके उत्पत्तिस्थान हो, **(अयोऽहतम्)** किसी अस्त्र-शस्त्र से छेदन नहीं किये जाते, **(द्रुणा)** गतिशील और **(सधस्थं)** मध्यस्थरूप से **(आसदत्)** सर्वत्र स्थिर हो ।।२।।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सर्वत्र परिपूर्ण और विश्व के द्रष्टा हो तथा पापकारी हिंसक राक्षसों के हन्ता हो; आप हमारे हृदय में आकर विराजमान हों ।।२।।

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ।।३।।

पदार्थः—**(वरिवोधातमः)** हे परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण धनों के देने वाले **(भव)** हो [वरिव इति धननामसु पठितम्, नि २।१०] । **(मंहिष्ठः)** सर्वोपरिदाता हो; **(वृत्रहन्तमः)** सब प्रकार के अज्ञानों के नाशक हो **(मघोनाम्)** सब प्रकार के ऐश्वर्यों के पूर्ण करने वाले हो; **(राधः)** धनों को **(पर्षि)** हमको दें ।।३।।

भावार्थः—परमात्मा से सब ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति होती है, और परमात्मा ही अज्ञान से बचाकर मनुष्य को सन्मार्ग में ले जाता है; इसलिए सर्वोपरि देव परमात्मा से ऐश्वर्य्य की प्रार्थना करनी चाहिये ।।३।।

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ।।४।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप **(महानां)** बड़े **(देवानाम्)** विद्वानों के **(वीतिम्)** पदवी को प्राप्त कराने वाले हैं और **(अन्धसा)** धनादि ऐश्वर्य से **(अभि, वाजं)** सब प्रकार के बल को **(अभ्यर्ष)** प्राप्त करायें **(उत)** और **(श्रवः)** अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करायें ।।४।।

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से मनुष्य देवपदवी को प्राप्त होता है, और परमात्मा की कृपा से सब प्रकार का बल मिलता है, इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह एकमात्र परमात्मा की शरण को प्राप्त हो ।।४।।

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ।।५।।

पदार्थः—**(इन्दो)** हे परमात्मन् ! **(त्वां)** तुमको **(अच्छ)** भली-भाँति **(चरामसि)** हम लोग प्राप्त हों और **(दिवेदिवे)** प्रतिदिन हे परमात्मन् ! **(तव, त्वे अर्थं)** आपके लिये **(इत्)** ही **(नः)** हमारा जीवन हो यही **(आशसः)** प्रार्थना है ।।५।।

भावार्थः—जो पुरुष प्रतिदिन निष्काम कर्म्म करते हुए अपने जीवन को व्यतीत करते हैं, और ईश्वर से भिन्न किसी अन्य देव की उपासना नहीं करते वे परमात्मस्वरूपको प्राप्त होते हैं ।।५।।

अब रूपकालङ्कार से श्रद्धा को सूर्य्य की पुत्रीरूप से वर्णन करते हैं ।।

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ।।६।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! **(ते)** तुम्हारे **(परिस्रुतं)** जिसका सर्वत्र प्रभाव फैल रहा है ऐसे **(सोमं)** सौम्यस्वभाव को **(सूर्य्यस्य, दुहिता)** सूर्य की पुत्री **(पुनाति)** पवित्र करती है, और **(वारेण)** बाल्यपन से **(शश्वता)** निरन्तर **(तना)** शरीर से पवित्र करती है ।।६।।

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा द्वारा ईश्वर को प्राप्त होता है वह मानो प्रकाश की पुत्री द्वारा अपने सौम्यस्वभाव को बनाता है । जिस प्रकार सूर्य्य की पुत्री उषा मनुष्यों के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करती है इसी प्रकार जिन मनुष्यों के हृदय में श्रद्धा देवी का निवास है वे लोग उषा देवी के समान सब के आह्लादजनक सौम्यस्वभाव को उत्पन्न करते हैं ।।६।।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।
स्वसारः पार्ये दिवि ।।७।।

पदार्थः—**(तं)** उस पुरुष को **(समर्ये)** ज्ञानयज्ञ में **(आ)** भली प्रकार **(गृभ्णन्ति)** ग्रहण करती हैं **(दश)** दश संख्यावाली **(स्वसारः)** स्वयंगतिशील **(योषणः)** वृत्तियाँ जो **(अण्वीः)** अति सूक्ष्म हैं **(पार्ये, दिवि)** प्रकाशरूप ज्ञान के भाव में दश धर्म्म के स्वरूप उसे आकर प्राप्त होते हैं ।।७।।

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा के भावों से युक्त होता है उसे धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध, ये धर्म्म के दश रूप आकर प्राप्त होते हैं । तात्पर्य्य यह है कि वेद, शास्त्र और ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाले पुरुष को ही धार्मिक भाव आकर प्राप्त होते हैं, अन्य को नहीं ।।७।।

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् ।
त्रिधातु वारणं मधु ।।८।।

पदार्थः—**(तं)** उस पुरुष को **(अग्रुवः)** उग्रगतिया **(हिन्वन्ति)** प्रेरणा करती हैं और **(बाकुरं)** भासमान **(दृतिं)** शरीर को **(धमन्ति)** वह पुरुष प्राप्त होता है

जिसमें (**त्रिधातु**) तीन प्रकार से (**वारणं**) दूसरों का वारण करने वाला (**मधु**) मधुमय शरीर मिलता है ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा के भाव रखने वाले होते हैं, उनके सूक्ष्म, स्थूल और कारण तीनों प्रकार के शरीर दृढ़ और शत्रुओं के वारण करने वाले होते हैं। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक तीनों प्रकार के बल उन पुरुषों को आकर प्राप्त होते हैं जो श्रद्धा का भाव रखते हैं ॥८॥

अ॒भी॒१॒॑मम॒घ्न्या॑ उ॒त श्री॒णन्ति॑ धे॒नवः॒ शिशु॑म् ।
सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥९॥

पदार्थः—(**इमं**) उस (**सोमं**) सौम्यस्वभाव वाले श्रद्धालु पुरुष को (**शिशुं**) कुमारावस्था में ही (**अभि**) सब प्रकार से (**अघ्न्याः**) अहिंसनीय (**धेनवः**) गौवें (**श्रीणन्ति**) तृप्त करती हैं (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य की (**पातवे**) वृद्धि के लिए (**उत**) अथवा उक्त श्रद्धालु पुरुष को अहिंसनीय वाणियां ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए संस्कृत करती हैं ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष श्रद्धा के भाव वाले हैं उनको गौ आदि ऐश्वर्य्य प्राप्त होते हैं और सदुपदेशरूपी पवित्र वाणियाँ उनकी रक्षा के लिए सदा उद्यत रहती हैं। इस मन्त्र में गौ को (अघ्न्या) = अहिंसनीय माना गया है; इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गोमेध आदि यज्ञों के अर्थ किसी हिंसाप्रधान यज्ञ के नहीं; [किन्तु गावः इन्द्रियाणि, मेध्यन्ते यस्मिन् स गोमेधः, जिसमें ज्ञानयज्ञद्वारा इन्द्रियां पवित्र की जायँ उसका नाम गोमेध है।] इसी प्रकार अश्वमेघ, नरमेध आदि यज्ञ भी ज्ञानप्रधान यज्ञों के ही बोधक हैं, हिंसारूप यज्ञों के बोधक नहीं ॥९॥

अ॒स्येदिन्द्रो॒ मदे॒ष्वा विश्वा॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते ।
शूरो॑ म॒घा च॑ मं॑हते ॥१०॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) विज्ञानी पुरुष (**अस्येत्**) इसी भाव से (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**वृत्राणि**) अज्ञानों को (**आ जिघ्नते**) नाश करता है (**च**) और इसी श्रद्धा के भाव से (**शूरः**) शूरवीर (**मदेषु**) अपनी वीरता के मदमें मस्त होकर (**मघा**) ऐश्वर्यों को (**महते**) प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थः—श्रद्धा के भाव से ही विज्ञानी पुरुष अज्ञानरूपी शत्रुओं का नाश करता है और श्रद्धा के भाव से ही वीर पुरुष युद्ध में शत्रुओं को जीतता है, श्रद्धा के भाव से ही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥१०॥

नवम मण्डल में पहला सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य १–१० मेधातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ४, ६ निचृद्गायत्री । २, ३, ५, ७–९ गायत्री । १० विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

पव॑स्व देव॒वीरति॑ प॒वित्रं॑ सोम॒ रंह्या॑ ।
इन्द्र॑मिन्दो॒ वृषा वि॑श ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव ! और (**देववीः**) दिव्यगुणयुक्त परमात्मन्! आप (**पवस्व**) हमें पवित्र करें और (**इन्दो**) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! आप (**इन्द्रं**) ऐश्वर्य प्राप्त करायें तथा (**वृषा**) हे आनन्द वर्षक ! आप (**रंह्या**) शीघ्र ही (**विश**) हमारे हृदय में प्रवेश करें और (**पवित्रं**) पवित्र करें तथा (**अति**) अवश्य रक्षा करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही पवित्रता प्राप्त होती है, और परमात्मा की कृपा से ही पुरुष सब प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है। जिस पुरुष के मन में परमात्मदेव का आविर्भाव होता है वह सौम्यस्वभावयुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होता है ॥१॥

आ व॑च्यस्व॒ महि॒ प्सरो॒ वृषे॑न्दो द्यु॒म्नव॑त्तमः ।
आ योनिं॑ धर्ण॒सिः स॑दः ॥२॥

पदार्थः—(**वृषेन्दो**) हे सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (**द्युम्नवत्तमः**) यशस्वी (**महि**) महान् परमात्मन् ! आप हमें (**आ**) सर्वव्यापी (**प्सरः**) ज्ञान का (**वच्यस्व**) उपदेश करें क्योंकि आप (**सदः**) सद्विज्ञान को और (**योनिं**) संसार के कारणभूत प्रकृति को (**आ**) सब ओर से (**धर्णसिः**) धारण किये हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का आधार है; उसी के शासन में द्युलोक, भूलोक, स्वर्लोक इत्यादि लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं, वही इस चराचर ब्रह्माण्ड का आधार है। मनुष्य को उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥२॥

अधु॑क्षत प्रि॒यं मधु॒ धारा॑ सु॒तस्य॑ वे॒धसः॑ ।
अ॒पो व॑सिष्ट सु॒क्रतुः॑ ॥३॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**अपः**) अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से (**वसिष्ठ**) सब को अपने वशीभूत कर रहा है वह (**सुक्रतुः**) सत्कर्म्मों वाला है (**सुतस्य, वेधसः**)

अभिलषित पदार्थों का देने वाला है और (**मधु, धारा**) अमृत की वृष्टियों से और (**प्रियं**) प्रिय वस्तुओं से (**अधुक्षत**) परिपूर्ण करने वाला है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभाव ऐसे हैं कि जिससे एकमात्र परमात्मा ही सुकर्म्मा कहा जा सकता है, अर्थात् परमात्मा के ज्ञानादि गुण और सृष्टि के रचनादि कर्म्म तथा अचल, नित्य, ध्रुवादि स्वभाव सदा एकरस हैं; इसी अभिप्राय से उपनिषदों में यह कथन किया है कि "न तस्य कार्य्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥" (श्वे० ६।८।) न उस से मिट्टी के घट के समान कोई कार्य्य उत्पन्न होता है और न वह मिट्टी के समान अन्य किसी पदार्थ का कारण है, किन्तु वह अपनी स्वाभाविक शक्तियों से इस संसार की रचना करता हुआ सर्वकर्ता और सर्वनियन्ता कहलाता है ॥३॥

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**महान्तं**) सबसे बड़े (**त्वा**) तुमको (**महीः**) पृथिवी और (**आपः**) जल तथा (**सिन्धवः**) स्यन्दनशील सब पदार्थ (**अर्षन्ति**) आश्रय किये हुए हैं, (**यत्**) क्योंकि तुम (**गोभिः**) अपनी शक्तियों से सब का (**वासयिष्यसे**) नियमन करते हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्ति में पृथिवी, जल, वायु इत्यादि सम्पूर्ण तत्त्व तथा लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं । उसी महतोभूत के आश्रित होकर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ठहरा हुआ है । इसका वर्णन, "एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः" "एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" इत्यादि प्रमाणों द्वारा जिसका ब्राह्मण और उपनिषदों में वर्णन किया गया है, उसी पूर्ण पुरुष का वर्णन इस मन्त्र में है । मालूम होता है कि पूर्वोक्त प्रमाण जो परमात्मा को सर्वाधार वर्णन करते हैं, वे इसी मन्त्र के आधार पर हैं ॥४॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**समुद्रः**) समुद्ररूप हैं [सम्यग् द्रवन्ति आपो यस्मात् स समुद्रः=जिसकी शक्ति से जलादि सब पदार्थ सूक्ष्मभाव को प्राप्त हो

जाते हैं उनका नाम समुद्र है, इस प्रकार परमात्मा का नाम समुद्र है] और (**अप्सु**) सूक्ष्म पदार्थों में (**ममृजे**) जो अपनी शुद्ध सत्ता से विराजमान है तथा जो सब का (**विष्टम्भः**) थाम्भने वाला, (**दिवः**) द्युलोक का (**धरुणः**) धारण करने वाला, (**सोमः**) सौम्यस्वभाव और (**अस्मयुः**) सर्वप्रिय है वही परमात्मा (**पवित्रे**) सम्पूर्ण शुभ काम में पूजनीय है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सबको प्यार करता है, वह सर्वाधिकरण, सर्वाश्रय तथा सर्वनियन्ता है ॥५॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण रोचते ॥६॥

पदार्थः—(**हरिः**) दुष्टों के दलन करने वाला और सबका (**मित्रः न**) मित्र के समान (**दर्शतः**) सन्मार्ग दिखलाने वाला और (**सं**) भली प्रकार (**सूर्य्येण**) अपने विज्ञान से (**रोचते**) प्रकाशमान हो रहा है; (**वृषा**) सर्वकामप्रद वह परमात्मा (**अचिक्रदत्**) सब को अपनी ओर बुला रहा है ॥६॥

भावार्थः—वह परमात्मा जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तापरूपी शत्रुओं का नाश करने वाला, मित्र की तरह सब प्राणियों का सन्मार्गप्रदर्शक तथा आत्मज्ञानद्वारा सबके हृदय में प्रकाशित है, उसी के ज्ञानरूप वेदवाणियां हैं और वही परमात्मा सब कामनाओं का पूर्ण करने वाला है; इस लिए उसी एकमात्र परमात्मा की शरण में सबको जाना उचित है ॥६॥

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यप्रद परमात्मन् ! (**ते**) आप के (**ओजसा**) प्रताप से (**अपस्युवः**) कर्म्मबोधक (**गिरः**) वाणियां (**मर्मृज्यंते**) लोगों को शुद्ध करती हैं (**याभिः**) जिन के द्वारा आप (**मदाय**) आनन्द प्रदान के लिये (**शुम्भसे**) विराजमान हैं ॥७॥

भावार्थः परमात्मा अपने कर्म्मबोधक वेदवाक्यों से सदैव पुरुषों को सत्कर्म्मों में उद्बोधन करता है, जिससे वे ब्रह्मानन्दोपभोग के भागी बनें जैसा कि अन्यत्र भी वेदवाक्यों में वणन किया है "क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ स्मर यजु० ४० । १५ ।" "कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ँसमाः"

यजु० ४० । २ ।" इत्यादि बाक्यों में कर्म्मयोग का वर्णन भली भांति पाया जाता है; उसी कर्म्मयोग का वर्णन इस मन्त्र में है ॥७॥

तं त्वा॒ मदा॑य घृ॒ष्वय॑ उ लोककृ॒त्नुमी॑महे ।
तव॒ प्रश॑स्तयो म॒हीः ॥८॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! **(तं)** उस **(त्वा)** तुझको **(ईमहे)** हम प्राप्त हों जो तू **(लोककृत्नुं)** सम्पूर्ण संसार का रचने वाला है। वह तू **(मदाय)** आनन्द की प्राप्ति **(उ)** और **(घृष्वये)** दुःखों की निवृत्ति के लिए प्राप्त हो **(तव)** तुम्हारी **(प्रशस्तयः)** स्तुतियां **(महीः)** पृथिवी भर में पाई जाती हैं ॥८॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप का स्तवन प्रत्येक वस्तु कर रही है, और आप सम्पूर्ण संसार के उत्पत्ति, स्थिति, तथा संहार करने वाले हैं। आपकी प्राप्ति से सम्पूर्ण अज्ञानों की निवृत्ति होती है इस लिये हम आप को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अ॒स्मभ्यं॑मिन्दविन्द्र॒युर्मध्वः॑ पवस्व॒ धार॑या ।
प॒र्जन्यो॑ वृ॒ष्टिमाँ इव ॥९॥

पदार्थः— **(इन्दो)** हे परमैश्वर्ययुक्त और **(इन्द्रयुः)** सर्वव्यापक परमात्मन् ! **(मध्वः)** आनन्द की **(धारया)** वृष्टि से **(वृष्टिमान्)** वर्षा करने वाले **(पर्जन्यः)** मेघ के **(इव)** समान आप **(अस्मभ्यं)** हमको **(पवस्व)** पवित्र करें ॥९॥

भावार्थः—जिस प्रकार मेघ अपनी वृष्टि से भूमि का सिञ्चन कर देता है, इसी प्रकार हे परमात्मन् ! आप अपनी आनन्दरूप वृष्टि से हमको पवित्र तथा सिक्त करें ॥९॥

गो॒षा इ॑न्दो नृ॒षा अ॑स्यश्व॒सा वा॑ज॒सा उ॒त ।
आ॒त्मा य॒ज्ञस्य॑ पू॒र्व्यः ॥१०॥

पदार्थः—**(इन्दो)** हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! आप **(यज्ञस्य)** सम्पूर्ण यज्ञों के **(पूर्व्यः)** आदि कारण हैं। आप हमको **(गोषाः)** गायें **(अश्वसाः)** घोड़े **(वाजसाः)** अन्न **(नृषाः)** मनुष्य **(उत)** और **(आत्मा)** आत्मिक बल--इन सब वस्तुओं के देने वाले **(असि)** हो ॥१०॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों फलों की प्राप्ति होती है। जिन पर आप कृपालु होते हैं, उनको हृष्ट-पुष्ट गौ और बलीवर्द तथा उत्तमोत्तम घोड़े एवं नाना प्रकार की सेनायें इत्यादि अभ्युदय के सब साधन देते हैं। और जिन पर आपकी कृपा होती है उन्हीं को आत्मिक बल देकर यम नियमों द्वारा संयमी बनाकर निःश्रेयस प्रदान करते हैं ॥१०॥

नवम मण्डल में दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य १–१० शुनःशेप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १० गायत्री । ४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब पूर्वोक्त परमात्मदेव के गुणों का कथन करते हैं ॥

ए॒ष दे॒वो अम॑र्त्यः पर्णवी॒रिव॑ दीयति । अ॒भि द्रोणा॑न्या॒सद॑म् ॥१॥

पदार्थः—**(एषः देवः)** जिस परमात्मदेव का पूर्व वर्णन किया गया वह **(अमर्त्यः)** अविनाशी है **(आसदम्)** सर्वत्र व्याप्त होने के लिए वह परमात्मा **(अभि, द्रोणानि)** प्रत्येक ब्रह्माण्ड को **(पर्णवीः)** विद्युत् शक्ति के **(इव)** समान **(दीयति)** प्राप्त है ॥१॥

भावार्थः—[दीव्यतीति देवः=जो सबको प्रकाश करे उसको देव कहते हैं] सर्वप्रकाशक देव अनादिसिद्ध और अविनाशी है, उसकी गति प्रत्येक ब्रह्माण्ड में है। वही परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का करने वाला है, उसी की उपासना सबको करनी चाहिये ॥१॥

ए॒ष दे॒वो वि॒पा कृ॒तोऽति॒ ह्वरां॑सि धावति । पव॑मानो॒ अदा॑भ्यः ॥२॥

पदार्थः—**(एषः देवः)** यह पूर्वोक्त देव **(विपा)** मेधावी विद्वानों ने **(अति)** विस्तार से **(कृतः)** वर्णन किया है [विप इति मेधाविनामसु पठितम् [नि० ३।१५] **(अदाभ्यः)** उपासना किया हुआ **(पवमानः)** यह पवित्र देव **(ह्वरांसि)** उपासकों के हृदय में **(धावति)** प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा का विद्वान् लोग वर्णन करते हैं वह उपासना करने से उपासकों के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होता है ॥२॥

ए॒ष दे॒वो वि॑प॒न्युभिः॒ पव॑मान ऋता॒युभिः॑ । हरि॒र्वाजा॑य मृज्यते ॥३॥

पदार्थः—**(एष देवः)** यह पूर्वोक्त देव **(विपन्युभिः, ऋतायुभिः)** सत्यवक्ता विद्वानों द्वारा **(पवमानः)** पवित्र वर्णन किया गया है; **(हरिः)** इस सब दुःखों को दूर

करने वाले परमात्मदेव की (**वाजाय**) ज्ञानयज्ञ के लिए (**मृज्यते**) उपासना की जाती है ।।३।।

भावार्थः—जिस पूर्णपुरुष को विद्वान् लोग इन्द्रियागोचर कथन करते हैं, वही पूर्ण पुरुष ज्ञानयज्ञद्वारा ज्ञानियों को ज्ञानगम्य होकर उपास्यभाव को प्राप्त होता है ।।३।।

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ।।४।।

पदार्थः—(**एषः**) यह पूर्वोक्त देव (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वार्या**) धनों का (**सिषासति**) विभाग करता है । (**इव**) जिस प्रकार (**शूरः**) शूरवीर (**सत्वभिः**) अपने पराक्रमों से (**यन्**) आक्रमण करता हुआ सच-झूठ का निपटारा कर देता है ।।४।।

भावार्थः—परमात्मदेव अपने ऐश्वर्यों का विभाग पात्र-अपात्र समझ कर करता है । जिसको वह अपने ऐश्वर्य का पात्र समझता है उसको ऐश्वर्य देता है और जिसको अपात्र समझता है उससे ऐश्वर्य हर लेता है । जिस प्रकार पात्र अपनी बनावट और अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से उपादेय वस्तु का पात्र बनता है उसी प्रकार पुरुष भी अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से पात्रता को प्राप्त होता है, वा यों कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्म्मों से वह उपादेय वस्तु को प्राप्त होने योग्य बनता है ।।४।।

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ।।५।।

पदार्थः—(**एष, देवः**) यह परमात्मदेव (**पवमानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**रथर्यति**) सदा सबका शुभ चाहता है और (**दशस्यति**) मनोवाञ्छित फलों की प्राप्ति कराता है तथा (**वग्वनुं**) सत्य को (**आविष्कृणोति**) प्रकट करता है ।।५।।

भावार्थः—वही परमात्मा सबके लिए पवित्रता का धाम है । सब लोग आत्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक पवित्रताएँ उसी से प्राप्त करते हैं, इस लिये वही परमदेव एकमात्र उपासनीय है ।।५।।

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देव वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ।।६।।

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**विप्रैः**) मेधावी लोगों के द्वारा (**अभिष्टुतः**) वर्णन किया गया है [विप्र इति मेधावि नामसु पठितम् (निरु० ३।१९।१५)] (**अपो, देवः**) कर्मों का अध्यक्ष है (**विगाहते**) सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाला है (**दाशुषे**) यजमानों को (**रत्नानि**) नाना प्रकार के धन (**दधत्**) देवे ।।६।।

भावार्थः—विद्वान् लोग जिस परमात्मा का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं वही इन्द्रियागोचर और एकमात्रज्ञानगम्य परमात्मा सर्वाधार, सर्वकर्त्ता, अजर, अमर और कूटस्थनित्य है इसी की उपासना सब को करनी चाहिये ।।६।।

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ।।७।।

पदार्थः—(**एषः**) उक्त परमात्मा (**दिवं**) द्युलोक को (**वि**) नाना प्रकार मे (**रजांसि**) परमाणुपुञ्ज के (**धारया**) प्रबल वेगों से (**तिरो, वि, धावति**) ढक देता है (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**कनिक्रदत्**) अपनी प्रबलगति से सर्वत्र गर्ज रहा है ।।७।।

भावार्थः—परमात्मा नाना प्रकार के परमाणुओं से द्युलोकादि लोक-लोकान्तरों को आच्छादन करता है और अपनी सत्तासे सर्वत्र विराजमान हुआ सब को शुभ मार्ग की ओर बुला रहा है ।।७।।

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ।।८।।

पदार्थः—(**एषः**) वही परमात्मा (**दिवं**) द्युलोक को (**व्यासरत्**) प्राप्त है; (**रजांसि**) परमाणुओं में लोकलोकान्तरों को (**तिरः**) आच्छादन करके(**अस्पृतः**) अविनाशी भाव से (**पवमानः**) पवित्र और (**स्वध्वरः**) अहिंसकरूप से विराजमान है ।।८।।

भावार्थः —वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमात्मा सर्वत्र विराजमान है, और उसी की सत्ता से सब लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं ।।८।।

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ।।९।।

पदार्थः—(**एषः, देवः**) यह परमात्मा (**प्रत्नेन**) अनादि काल से [प्रत्नमिति पुराणनामसु पठितम् (निरु० ३।२०।२७)] (**जन्मना**) आविर्भाव से (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**सुतः**) सुप्रसिद्ध (**हरिः**) सब दुःखों का हरने वाला (**पवित्रे**) मनुष्य के पवित्र हृदय में (**अर्षति**) प्रकट होता है ।।९।।

भावार्थः—जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र करते हैं और परमात्मा के निष्पापादि भावों को धारण करते हैं उनके हृदय में परमात्मा आकर प्रकट होता है ।।९।।

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ।।१०।।

पदार्थः—(**स्यः**) वह पूर्वोक्त परमात्मा (**पुरुव्रतः**) अनन्तकर्मा है (**जज्ञानः**) सर्वत्र प्रसिद्ध (**इषः**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ

(सुतः) स्वसत्ता से विराजमान (एषः) यही (धारया) अपनी सुधामयी वृष्टि की धाराओं से (पवते) सबको पवित्र करता है ॥१०॥

भावार्थः—जो परमात्मा अनन्तकर्म्मा है वही अपनी शक्ति से सब लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न करता है और वही अपनी पवित्रता से सबको पवित्र करता है ।

अनन्तकर्म्मा, यहाँ परमात्मा को उसकी अनन्त शक्तियों के अभिप्राय से वर्णन किया है, किसी शारीरिक कर्म के अभिप्राय से नहीं ॥१०॥

नवम मण्डल में तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य १–१० हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ३, ४, १० गायत्री । २, ५, ८, ९, निचृद् गायत्री । ६, ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा से अभ्युदय के लिए विजय, और आत्मसुख के लिए निःश्रेयस की प्रार्थना का वर्णन करते हैं ॥

सना॑ च सो॒म जेषि॑ च॒ पव॑मान॒ महि॒ श्रवः॑ ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (महिश्रवः) सर्वोपरिदाता (च) और (पवमान) पवित्र आप (जेषि) पापियों का नाश करो (च) किन्तु सदा के लिए (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) कल्याण दें, (सन) और हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों के दाता हैं । जिन लोगों को अधिकारी समझते हैं उनको अभ्युदय, नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, और जिसको मोक्ष का अधिकारी समझते हैं उसको मोक्ष-सुख प्रदान करते हैं ॥१॥

सना॒ ज्योतिः॒ सना॒ स्व१॒॑र्विश्वा॑ च सोम॒ सौभ॑गा ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (सन, ज्योतिः) सदा ज्योतिः-स्वरूप हो (च) और (सन, स्वः) सदा सुखस्वरूप हो (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) सौभाग्यदायक वस्तुएँ आप हमको दें (अथ) और (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) मुक्ति-सुख दें ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है उसी की कृपा से नाना विधि के सौभाग्य मिलते हैं और मोक्षसुख मिलता है ॥२॥

सना॒ दक्ष॑मु॒त क्रतु॒मप॑ सोम॒मृधो॑ जहि ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (क्रतुम) हमारे शुभ कर्म्मों की आप (सन) रक्षा करें (अथ) और (मृधः) पाप कर्म्मों को (अप, जहि) हमसे दूर करें (उत) और (दक्षम) सुनीति और (वस्यसः) मुक्ति (कृधि) सदा करो ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष शुद्ध भाव से परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके पापकर्म्मों को हरलेता है, और नाना प्रकार के चातुर्य्य उनको प्रदान करता है ॥३॥

पवी॑तारः पुनी॒तन॒ सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥४॥

पदार्थः—(पवीतारः) हे विद्वान् लोगो ! तुम (इन्द्राय, पातवे) ऐश्वर्य्याधिकारी पुरुष के लिए (सोमं) सौम्यस्वभाव वाले परमात्मा का (पुनीतन) वर्णन करो (अथ) और यह प्रार्थना करो कि (नः) हमको वह परमात्मा (वस्यसस्कृधि) मोक्ष-सुख का भागी बनायें ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जब किसी पुरुष को दीक्षित करें तो शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मा का सब से प्रथम उपदेश करें । तदनन्तर अभ्युदय और निःश्रेयस का विस्तृत उपदेश करके इस सांसारिक यात्रा में दक्ष बनायें ॥४॥

त्वं सू॑र्ये न॒ आ भ॑ज॒ तव॒ क्रत्वा॒ तवो॒तिभिः॑ ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (नः) हमको (सूर्य्ये) ज्ञानप्रदान के लिए (आभज) आकर प्राप्त हो । (क्रत्वा) यज्ञों द्वारा (अथ तव, ऊतिभिः) और अपनी रक्षा द्वारा (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) सुखी बनाएँ ॥५॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप ज्ञान और कर्मद्वारा हमारी सर्वदा रक्षा करें और ऐहिक तथा पारलौकिक सुख से हमको सदैव सम्पन्न करें ॥५॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! हम **(तव, क्रत्वा)** आपके कर्मयोग **(तवोतिभिः)** और ज्ञानयोग द्वारा सदैव **(सूर्य्यं)** आपके प्रकाशस्वरूप को **(ज्योक्)** निरन्तर **(पश्येम)** अनुभव करें **(अथ)** और **(नः)** हमारे **(वस्यसः)** कल्याण को **(कृधि)** करिये ॥६॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुष अपने आत्मभूत सामर्थ्य से परमात्मा के स्वरूप का अनुभव करके सदैव आनन्द का लाभ करते हैं ॥६॥

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

पदार्थः—**(सोम)** [सूते चराचरं जगदिति सोमः परमात्मा = जो चराचर जगत् को उत्पन्न करे उसका नाम यहां सोम है] हे जगदुत्पादक परमात्मन् ! आप हमको **(रयिं)** ऐश्वर्य **(अभ्यर्ष)** प्रदान करें जो ऐश्वर्य **(द्विबर्हसं)** द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में सर्वोपरि है **(स्वायुध)** आप सब प्रकार से अज्ञान के दूर करने वाले हैं, इस लिए **(नः)** हमारे अज्ञान का नाश करके हमको **(वस्यसस्कृधि)** आनन्द प्रदान करें ॥७॥

भावार्थः—स्वप्रकाश परमात्मा अज्ञान को निवृत्त करके सदैव सुखका प्रकाश करता है ॥७॥

अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

पदार्थः—**(अनपच्युतः)** वह कूटस्थ नित्य परमात्मा **(रयिम्, अभ्यर्ष)** अपने भक्तों को ऐश्वर्य्य प्रदान करता है **(अथ)** और **(समत्सु)** संग्रामों में **(सासहिः)** अन्यायकारी शत्रुओं को पराजित करके अपने भक्तों को **(वस्यसस्कृधि)** सुख प्रदान करता है ॥८॥

भावार्थः—जो लोग न्यायशील हैं उनको परमात्मा विजयी बनाता है और अन्यायकारी दुरात्माओं का सदैव दमन करता है ॥८॥

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

पदार्थः—**(पवमान्)** हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! **(त्वां)** आप को **(यज्ञैः)** उपासनादि यज्ञों द्वारा **(अवीवृधन्)** उपास्य बनाते हैं **(विधर्मणि)** पापीय विषयों से आप हमारी रक्षा करें **(अथ)** और **(वस्यसस्कृधि)** आनन्द के भागी बनायें ॥९॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सब को पवित्र करने वाले हैं । हम आप की उपासना करते हैं । आप पापों से हमारी रक्षा करके आनन्द के भागी बनायें ॥९॥

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥

पदार्थः—**(इन्दो)** हे सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! **(नः)** हमको **(चित्रम्)** नाना प्रकार के **(अश्विनम्)** सर्वत्र व्याप्त होने वाले ऐश्वर्यों से सम्पन्न करें **(अथ)** और **(विश्वम्, आयुम्)** सब प्रकार की आयु को **(रयिम्)** धन से भरपूर करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिन पुरुषों को ऐश्वर्य के पात्र समझता है उनको प्रत्येक आयु में ऐश्वर्यों से और ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण करता है ॥१०॥

नवम मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ एकादशर्चस्य पञ्चमसूक्तस्य १–११ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः–१, २, ४-६ गायत्री । ३, ७ निचृद् गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् । ९, १० । अनुष्टुप् । ११ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः १–७ षड्जः । ८–११ गान्धारः ॥

अब परमात्मा की स्वतःप्रकाशता का वर्णन करते हैं ॥

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो विराजति ।
प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थः—**(समिद्धः)** जो सर्वत्र प्रकाशमान है, **(विश्वतस्पतिः)** सब प्रकार से जो स्वामी है, **(पवमानः)** पवित्र करने वाला परमात्मा **(विराजति)** सर्वत्र विराजमान हो रहा है **(प्रीणन्)** वह सब को आनन्द देता हुआ **(वृषा)** सब कामनाओं का पूरक **(कनिक्रदत्)** अपने विचित्र भावों से उपदेश करता हुआ हम को पवित्र करे ॥१॥

भावार्थः—इस संसार में परमात्मा ही केवल ऐसा पदार्थ है जो स्वसत्ता से विराजमान है अर्थात् जो परसत्ता की सहायता नहीं चाहता । अन्य

हैं। इसी अभिप्राय से प्रकृति तथा जीव परमात्मसत्ता के अधीन होकर रहते हैं। इसी अभिप्राय से परमात्मा को यहाँ समिद्ध कहा गया है; अर्थात् स्वप्रकाशरूपता से वर्णन किया गया है ॥१॥

तनू॒नपा॒त्पव॑मानः॒ शृङ्गे॒ शिशा॑नो अर्षति ।
अ॒न्तरि॑क्षेण॒ रार॑जत् ॥२॥

पदार्थः—(**तनूनपात्**) [तनूं न पातयतीति तनूनपात् अर्थात् जो सब शरीरों को अधिकरण रूप से धारण करे उसका नाम यहाँ तनूनपात् है] वह परमात्मा (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाला है (**शृङ्गे, शिशानः**) जो कूटस्थनित्य है और (**अर्षति**) सर्वत्र व्याप्त है और (**अन्तरिक्षेण, रारंजत्**) जो द्युलोक और पृथिवीलोक के अधिकरण रूप से विराजमान हो रहा है वह परमात्मा हमको पवित्र करे ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा को क्षेत्रज्ञरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य पदार्थों में परमात्मा कूटस्थ रूपता से विराजमान है। इस भाव को उपनिषदों में यों वर्णन किया है कि "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्" बृ. ३।७।१ जो परमात्मा पृथिवी में रहता है और पृथिवी जिसको नहीं जानती तथा पृथिवी उसका शरीर और वह शरीरी रूप से वर्तमान है ॥२॥

ई॒ळेन्यः॒ पव॑मानो र॒यिर्वि रा॑जति द्यु॒मान् ।
मधो॒र्धारा॑भि॒रोज॑सा ॥३॥

पदार्थः—(**ईळेन्यः**) उपासनीय परमात्मा (**पवमानः**) जो शुद्धस्वरूप है (**रयिः**) "राति सुखमिति रयिः"=जो सब प्रकार के सुखों को देने वाला है, वह (**मधोर्धाराभिः**) आनन्द की वृष्टि से तथा (**ओजसा**) प्रभावशाली प्रताप से (**विराजति**) विराजमान है और वह परमात्मा (**द्युमान्**) प्रकाशस्वरूप है ॥३॥

भावार्थः—उपासक को चाहिये कि वह उपास्यदेव की उपासना करे। जो स्वप्रकाश और सबको पवित्र करने वाला तथा आनन्द की वृष्टि से सब को आनन्दित करता है वही धारणाध्यानादि योगज वृत्तियों से साक्षात् करने योग्य है ॥३॥

ब॒र्हिः प्रा॒चीन॒मोज॑सा॒ पव॑मानः स्तृ॒णन्हरिः॑ ।
दे॒वेषु॑ दे॒व ई॑यते ॥४॥

पदार्थः—(**बर्हिः**) [बृंहतीति बर्हिः]=सब से बड़ा परमात्मा जो (**ओजसा**) अपने प्रकाश से सबको (**पवमानः**) पवित्र करता है और (**प्राचीनम्**) प्रवाह रूप से अनादि संसार को (**स्तृणन्**) कार्य्यरूप करता हुआ (**हरिः**) अन्त में [हरतीति हरिः] अपने में लय कर लेता है (**देवेषु**) सब दिव्य वस्तुओं में (**देवः**) [दीव्यतीति देवः]=जो सर्वोपरि दीप्तिमान् है वह ध्यान द्वारा (**ईयते**) साक्षात्कार किया जाता है ॥४॥

भावार्थः—वह देव जो सब दिव्य वस्तुओं में दिव्य स्वरूप है वही एक मात्र उपासनीय है, अन्य नहीं ॥४॥

उदा॒तैर्जि॑हते बृ॒हद्द्वारो॑ दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययीः॑ ।
पव॑माने॒न सुष्टु॑ताः ॥५॥

पदार्थः—(**देवीः, हिरण्ययीः**) प्रकृति की दिव्य शक्तियां जो धनादि ऐश्वर्यों के देने वाली हैं वे (**पवमानेन**) पूज्य परमात्मा के साथ (**सुष्टुताः**) वर्णन की हुई (**बृहद्द्वारः**) ऐश्वर्य का मूल होती हैं और (**आतैः**) उनके विज्ञान से विज्ञानी लोग दिशाओं द्वारा (उद् जिहते) सर्वत्र फैल जाते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो लोग प्रकृति-पुरुष की विद्या को जानते हैं कि परमात्मा निमित्त कारण और प्रकृति संसार का उपादान कारण है अर्थात् प्रकृति में ही नाना प्रकार की विद्याओं के बीज भरे पड़े हैं उसके तत्त्वज्ञान से वे लोग सब दिशाओं में फैल सकते हैं। तात्पर्य यह है कि अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों के विज्ञान से होते हैं एक के विज्ञान से नहीं ॥५॥

अब पूर्वोक्त परमात्मा की उपासनार्थ उषःकाल का महत्त्व कथन करते हैं ॥

सु॒शि॒ल्पे बृ॑ह॒ती म॒ही पव॑मानो वृषण्यति ।
नक्तो॒षासा॒ न द॑र्श॒ते ॥६॥

पदार्थः—(**नक्तोषासा**) रात्रि और उषःकाल (**दर्शते**) परमात्मा की उपासना करने योग्य हैं (**सुशिल्पे**) और सुन्दर-सुन्दर कलाकौशलादि विद्याओं के अनुसन्धान करने योग्य हैं (**बृहती**) बड़े और (**मही**) पूज्य अर्थात् सफल करने योग्य हैं। इन कालों में (**पवमानः**) उपास्यमान परमात्मा (**वृषण्यति**) सब कामनाओं को देता है और जो इस प्रकार के उपासक नहीं उनकी कामनाओं को (**न**) नहीं पूर्ण करता ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि उषःकाल अपने स्वाभाविक धर्म से ऐसा उत्तम है कि ऐसा अन्य कोई काल नहीं, इसमें मनुष्य की ईश्वरो-

पासना की ओर स्वाभाविक रुचि होती है इस लिए इस ब्रह्ममुहूर्त का वर्णन वेदों में बहुधा आता है । इसी भाव को लेकर मनु आदि ग्रन्थों में "ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धयेत" इत्यादि कहा है कि ब्राह्ममुहूर्त में उठे और परमात्मा का चिन्तन करे ॥६॥

उ॒भा दे॒वा नृ॒चक्ष॑सा॒ होता॑रा॒ दैव्या॑ हुवे ।
पव॑मान॒ इन्द्रो॒ वृषा॑ ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) "इरामन्नाद्यैश्वर्यं ददातीतीन्द्रः" परमात्मा जो इरा=अन्नादि ऐश्वर्यों को दे उसका नाम इन्द्र है और (**वृषा**) वह इन्द्ररूप परमात्मा, "वर्षतीति वृषा" जो सब कामनाओं को देने वाला है, (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाला है, उस परमात्मा को (**उभा**) दोनों (**देवा**) दिव्य शक्तियों वाले जो कर्मयोग और ज्ञानयोग हैं (**नृचक्षसा**) और ईश्वर के साक्षात् कराने वाले (**होतारा**) अपूर्व सामर्थ्य देने वाले ज्ञान तथा कर्म द्वारा (**दैव्या**) जो दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं उनसे मैं (**हुवे**) परमात्मा का साक्षात्कार करता हूं ॥७॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष जैसा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है इस प्रकार अन्य कोई भी नहीं कर सकता । क्योंकि कर्म द्वारा मनुष्य शक्ति बढ़ा कर ईश्वर की दया का पात्र बनता है और ज्ञान द्वारा उसका साक्षात्कार करता है । इसी अभिप्राय से "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" कठ. २।२३ ॥ अर्थात् बहुत पढ़ने-पढ़ाने से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता, किन्तु जब पुरुष सत्कर्मी बनकर अपने आप को ईश्वर के ज्ञान का पात्र बनाता है तो वह उसको लाभ करता है । पात्र से तात्पर्य यहां अधिकारी का है और वह अधिकारी ज्ञान तथा कर्म दोनों से उत्पन्न होता है केवल ज्ञान से नहीं, इसका नाम समसमुच्चय है अर्थात् ज्ञानयोग तथा कर्मयोग दोनों साधनों से सम्पन्न होने पर जिज्ञासु परमात्मा को लाभ करता है अन्यथा नहीं ॥७॥

भार॑ती॒ पव॑मानस्य॒ सर॑स्वती॒ळा॑ म॒ही ।
इ॒मं नो॑ य॒ज्ञमाग॑मन्ति॒स्रो दे॒वीः सु॒पेश॑सः ॥८॥

पदार्थः—(**भारती**) "बिभर्त्तीति भरतस्तस्येयं भारती"=ईश्वरविषयिणी बुद्धि (**सरस्वती**) "सरो विद्यतेऽस्या इति सरस्वती"=विविधज्ञानविषयिणी बुद्धि और (**इळा, मही**) सर्वपूज्या बुद्धि (**तिस्रः,**) ये तीनों **प्रकार की** (**सुपेशसः, देवीः**)

सुन्दर बुद्धियां (**पवमानस्य**) सब को पवित्र करने वाले परमात्मा के (**इमं, यज्ञम्**) इस ज्ञानरूपी यज्ञ में (**नः**) हमको (**आगमन्**) प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ज्ञानयज्ञ में विद्याप्राप्ति के लिए प्रार्थना करो । इसी अभिप्राय से उक्त मन्त्र में विद्याविधायक भारती, सरस्वती और इला के नाम आये हैं । भारती, सरस्वती और विद्या ये एकार्थवाची शब्द हैं । इस प्रकार परमात्मा ने विद्यावृद्धि के लिए जीवों की प्रार्थना द्वारा उपदेश किया है । जैसा कि "धियो यो नः प्रचोदयात्" इस वेदमन्त्र में विद्यावृद्धि का उपदेश है ऐसा ही उक्त मन्त्र में विद्यावृद्धि के लिए उपदेश है ॥८॥

त्वष्टा॑रग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑न॒मा हु॑वे ।
इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒ः पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः ॥९॥

पदार्थः—(**त्वष्टारम्**) "त्वक्षतीति त्वष्टा"=जो इस सृष्टि को प्रलय काल में परमाणुरूप कर देता है उसका नाम त्वष्टा है (**अग्रजाम्**) अग्रे जाता अग्रजा"=जो सबसे प्रथम हो अर्थात् सबका आदिमूल कारण हो उसका नाम अग्रजा है (**गोपाम्**) "गोपायतीति गोपाः"=जो सर्वरक्षक हो उसका नाम यहां गोपा है (**पुरोयावानम्**) जो सर्वाग्रणी है उस देव को (**आहुवे**) हम उपास्य समझें । वही देव (**इन्दुः**) सबको प्रेमभाव से आर्द्र करने वाला (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यवाला (**वृषा**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाला (**हरिः**) और सब दुःखों को हर लेने वाला (**पवमानः**) पवित्रात्मा **और** (**प्रजापतिः**) सब प्रजा का पालन करने वाला है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता पुरुष-विशेष का इस ज्ञान-यज्ञ में उपास्य रूप से निर्देश किया है और त्वष्टादि द्वितीयान्त इस लिए हैं कि उपासनात्मक क्रिया के ये सब कर्म हैं अर्थात् इनकी उपासना उक्त यज्ञ में की जाती है ॥९॥

अब उक्त यज्ञ में उपासनीय परमात्मा के गुण कथन करते हैं ॥

वन॒स्पतिं॑ पवमान॒मध्वा॒ सम॑ङ्ग्धि॒ धार॑या ।
स॒हस्र॑वल्शं ह॒रितं॒ भ्राज॑मानं हिर॒ण्यय॑म् ॥१०॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (**मध्वा, धारया**) सुवृष्टि से (**वनस्पतिम्**) इस वनस्पति को (**समङ्ग्धि**) सींचें, जो वनस्पति (**सहस्रवल्शं**) अनन्त प्रकार की है, (**हरितं**) हरे रंगवाली है, (**भ्राजमानं**) नाना प्रकार से देदीप्यमान है और (**हिरण्ययं**) सुन्दर ज्योति वाली है ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा से प्रार्थना है कि वह चराचर ब्रह्माण्डगत वनस्पति का सिञ्चन करे। इस स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा परमात्मा के वृष्टिकर्तृत्व भावका निरूपण किया है। इसी प्रकार अन्यत्र भी वेदमन्त्रों में "कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः" अथ० ३।६।२७।५। इत्यादि स्थलों में वनस्पति को परमात्मा का ग्रीवास्थानी वर्णन किया है। इसी प्रकार वनस्पति को विराट्स्वरूप की शोभा वर्णन करते हुए ईश्वर से स्वभावसिद्ध प्रार्थना है ॥१०॥

विश्वे देवाः स्वाहांकृतिं पवमानस्या गंत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥११॥

पदार्थः—(**पवमानस्य**) सर्वपूज्य परमात्मा की (**स्वाहाकृति**) सुन्दरवाणी को (**वायुः**) सर्व विद्याओं में गति वाला (**बृहस्पतिः**) सुन्दर वक्ता (**सूर्य्यः**) दार्शनिक तत्वों का प्रकाशक (**अग्निः**) प्रतिमा शाली (**इन्द्रः**) विद्यारूपी ऐश्वर्यवाला (**विश्वे, देवाः**) ये सब विद्वान् (**सजोषसः**) परस्पर प्रेमभाव रखने वाले (**आगत**) इस ज्ञान रूपी यज्ञ में आकर उपस्थित हों ॥११॥

भावार्थः—इस सूक्त के उपसंहार में विद्वानों की संगति कथन की है कि उक्तगुणसम्पन्न विद्वान् लोग ज्ञानयज्ञ में आकर विविधप्रकार के ज्ञानों को उपलब्ध करें। तात्पर्य यह है कि इस मन्त्र में ज्ञानयज्ञ को सर्वोपरि वर्णन किया है। वस्तुतः ज्ञानयज्ञ सर्वोपरि है। इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप!" हे शत्रुतापक अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञों से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है ॥११॥

नवम मण्डल में ५वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षष्ठसूक्तस्य १–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३–६, ९ गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा से बल और आह्लाद की प्रार्थना की जाती है ॥

मन्द्रयां सोम धारंया वृषां पवस्व देवयुः । अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मन्! आप (**मन्द्रया**) आह्लाद करने वाली (**धारया**) वृष्टि से (**पवस्व**) हमको पवित्र करें, क्योंकि आप (**वृषा**) सब कामनाओं के देने वाले हैं। (**देवयुः**) देवताओं के प्रिय हैं और (**वारेषु, अव्यः**) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों में व्यापक हैं। आप (**अस्मयुः**) हमको प्राप्त होकर आनन्दित करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विराजमान है। दैवी सम्पत्तिवाले लोग उसको पा सकते हैं। इस अभिप्राय से परमात्मा को इस मन्त्र में देवप्रिय कथन किया गया है। वस्तुतः परमात्मा न किसी का प्रिय और न किसी का द्वेषी है ॥१॥

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इतिं क्षर । अभि वाजिनो अर्वतः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रेममय (**इन्द्र**) परमात्मन्! आप (**त्यं, मदं, मद्यम्**) उस आह्लादजनक अपने प्रेममय मद की (**अभि क्षर**) वृष्टि करें, जो (**अभि, वाजिनः**) सब बलकारक वस्तुओं में से हमारे योग्य है (**अर्वतः**) और जो ऐश्वर्य द्वारा सर्वत्र व्याप्त कराने वाला है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वोपरि हर्षजनक परमात्मा के प्रेम की प्रार्थना की गयी है ॥२॥

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ । अभि वाजमुत श्रवः ॥३॥

पदार्थः—(**पवित्र**) हे सबको पावन करने वाले परमात्मन्! आप (**त्यं, पूर्व्यं, मदं**) उस नित्यानन्द को (**सुवानः**) प्रदान करने वाले हैं जिससे मनुष्य सदैव के लिए आनन्दलाभ करता है इसलिए आप (**अभि, वाजं**) सब प्रकार का बल (**उत**) और (**श्रवः**) ऐश्वर्य हमको (**अर्ष**) प्रदान करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में आनन्दस्वरूप परमात्मा से सब प्रकार के बल और ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥३॥

अनुं द्रप्सास इन्दंव आपो न प्रवतांसरन् । पुनाना इन्द्रमाशत ॥४॥

पदार्थः—(**द्रप्सासः**) गतिशील परमात्मा (**इन्दवः**) ऐश्वर्यसम्पन्न (**अनु**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (**प्रवता, आपः, न**) बहते हुए जलों के समान (**असरन्**) गति करता है। उक्त परमात्मा (**पुनानाः**) पवित्र करता हुआ (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य को (**आशत**) देता है ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार सर्वत्र बहते हुए जल इस पृथिवी को नाना प्रकार के लतागुल्मादिकों से सुशोभित करते हैं इसी प्रकार परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक प्राणों में आह्लाद उत्पन्न करता है ॥४॥

यमत्यंमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश । वने क्रीळंन्तमत्यंविम् ॥५ ।

पदार्थः—(**यं**) जिस (**अत्यं**) सर्वव्यापक परमात्मा को (**योषणः, दश**) दश प्रकार की प्रकृतियां (**वाजिनम्, इव**) जीवात्मा के समान (**मृजन्ति**) शोभायुक्त करती हैं वह जीवात्मा जो (**वने**) शरीर रूपी वन में (**क्रीळन्तम्**) क्रीड़ा कर रहा है और (**अत्यविम्**) इन्द्रियसंघात से परे है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ये दशों मिल कर जीवात्मा की महिमा को बढ़ाते हैं इसी प्रकार पांच सूक्ष्म भूत और स्थूलभूत ये दोनों प्रकृतियां मिल कर परमात्मा के महत्त्व को वर्णन करते हैं। कई एक लोगों ने दश के अर्थ यहां दश अंगुलियां दी हैं; उनके मत में सोम रस दश अंगुलियों से लपेट कर खाया जाता है। इस लिए दश से उन्होंने दश अंगुलियां ली हैं। पहले तो यह बात अन्यथा है कि सोमरस अंगुलियों से खाया जाता है क्योंकि सोमरस पीने की चीज है खाने की नहीं। अन्य युक्ति यह है कि इस मण्डल के प्रथम सूक्त मं० ७ में "गृभ्णन्ति योषणा दश" यह पाठ आया है, जिससे दश इन्द्रियों का ग्रहण किया गया है, अंगुलियों का नहीं ॥५॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥६॥

पदार्थः—(**तम्**) उक्त परमात्मा को (**वृषणम्**) जो कामनाओं का देने वाला है, (**मदाय**) आह्लाद के लिए (**रसम्**) रसरूप है, (**देववीतये**) ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिए (**भराय**) धारण करने के लिए (**सुतम्**) स्वतःसिद्ध उस परमात्मा को (**संसृज**) ध्यान का विषय बनाओ ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव ! तू सर्वोपरि ब्रह्मानन्द के देने वाले ब्रह्म को एकमात्र लक्ष्य बनाकर उसके साथ अपनी चित्तवृत्तियों का योग कर। इसका नाम आध्यात्मिक योग है। रसके अर्थ यहां ब्रह्म के हैं किसी रसविशेष के नहीं क्योंकि "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" (तै० २।७।) अर्थात् वह ब्रह्म आनन्दस्वरूप है और उसके आनन्द को लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ॥७।

पदार्थः—(**देवः**) "दीव्यतीति देवः"=प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**देवाय**) दिव्यशक्तिधारी (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य वाले जिज्ञासु के लिए (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पवते**) पवित्र करता है वह (**सुतः**) आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है (**यत्**) क्योंकि (**अस्य**) इस पूर्वोक्त जिज्ञासु को (**पयः**) पानार्ह आनन्द को (**पीपयत्**) पिलाता है इसलिए वह आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ही सब आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है। वह जिन पुरुषों को ब्रह्मानन्द का पात्र समझता है उनको आनन्द प्रदान करता है। यहां देव शब्द के अर्थ परमात्मा और दूसरे देव शब्द के अर्थ जिज्ञासु के—"स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" (ब्र० सू० २।३।५।) इस सूत्र से ब्रह्मशब्द के समान हैं अर्थात् "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति" तै० ३।२। इस वाक्य में पहले ब्रह्म शब्द के अर्थ ईश्वर के हैं, दूसरे ब्रह्मशब्द के अर्थ तप के हैं, जिस प्रकार इसमें एक ही स्थान में दो अर्थ हो जाते हैं उसी प्रकार उक्त मन्त्र में देव शब्द के दो अर्थ करने में कोई दोष नहीं ॥७॥

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः ।
प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥८॥

पदार्थः—पूर्वोक्त परमात्मा (**यज्ञस्य, आत्मा**) यज्ञ का आत्मा है (**सुष्वाणः**) सर्वप्रेरक और (**सुतः**) आनन्द का आविर्भावक (**रंह्या**) सर्वत्र गति रूप से (**पवते**) पवित्र करता है वही परमात्मा (**प्रत्नं, काव्यम्**) प्राचीन काव्य की (**निपाति**) रक्षा करता है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा सब यज्ञों का आत्मा है अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि कोई भी यज्ञ उसकी सत्ता के विना नहीं हो सकता। इसी अभिप्राय से ब्रह्मज्ञान की कई एक पुस्तकों में परमात्मा को अधियज्ञ रूप से वर्णन किया है। इस मन्त्र में जो काव्य शब्द आया है वह 'कवते इति कविः' इस व्युत्पत्ति से ज्ञानी का अभिधायक है और 'कवेः कर्म काव्यम्' इस प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा की रचना रूप वेद का नाम यहां काव्य है, किसी आधुनिक काव्य का नहीं। तात्पर्य यह है कि वह अपने ज्ञानरूपी, वेद-काव्य द्वारा उपदेश करके सृष्टि की रक्षा करता है ॥८॥

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये ।
गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**गुहा**) आपने अपनी ज्ञानरूपी गुहा में (**गिरः**) वेदरूपी वाणियों को (**दधिषे**) धारण किया है (**चित्**) क्योंकि (**इन्द्रयुः**) आप ऐश्वर्य के चाहने वाले हैं इसलिए (**वीतये**) ऐश्वर्य के लिए (**मदं, मदिष्ठ**) उनके द्वारा हमारे आनन्द को बढ़ाइये ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान में वेद सदैव रहते हैं; आदिसृष्टि में परमात्मा लोकोपकार के लिए उनका आविर्भाव करता है। इसी अभिप्राय

से यहां काव्य अर्थात् वेद को प्रत्न अर्थात् सनातन विशेषण दिया है । वेदों के नित्य मानने का भी यही प्रकार है अर्थात् प्रत्येक सर्ग के आदि में परमात्मा अपने ज्ञानरूप वेदों का आविर्भाव करता है और प्रलय काल में परमात्मा के ज्ञानरूप से वेद विराजमान रहते हैं ॥६॥

नवम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य १--९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५--९ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ विराड्‌गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा को अनेक धर्मों का आधार कथन करते हैं ॥

असृ॒ग्रमिन्द॑वः प॒था धर्म॑न्नृ॒तस्य॑ सु॒श्रियः॑ ।
वि॒दा॒ना अ॑स्य॒ योज॑नम् ॥१॥

पदार्थः—(**इन्दवः**) विज्ञानी पुरुष (**अस्य**) इस परमात्मा के (**योजनम्**) सम्बन्ध को (**विदाना**) जानते हुए (**सुश्रियः**) अनन्त प्रकार की शोभाओं को धारण करते हैं (**ऋतस्य**) और इस सत्यरूप परमात्मा के (**धर्मन्**) धर्म में रहते हुए (**असृग्रम्**) अच्छे गुणों का लाभ करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध को जानते हैं और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को जानकर उसके धर्मपथ पर चलते हैं वे संसार में ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१॥

प्र धारा॒ मध्वो॑ अग्रि॒यो म॒हीर॒पो वि गा॑हते ।
ह॒विर्ह॒विष्षु॒ वन्द्यः॑ ॥२॥

पदार्थः—(**हविष्षु**) 'हूयते गृह्यत इति हविः' सम्पूर्ण ग्रहणयोग्य पदार्थों में से जो (**हविः**) सर्वोपरि ग्राह्य है और (**वन्द्यः**) सम्पूर्ण विश्व से वन्दनीय है वह (**अग्रियः**) अग्रणी परमात्मा (**मध्वः, धाराः**) मीठी धाराओं से (**महीः**) पृथिवीलोक तथा (**अपः**) द्युलोक को (**विगाहते**) अवगाहन करता है ॥२॥

भावार्थः—सर्वजनवन्दनीय परमात्मा लोकलोकान्तरों में सर्वत्र ही अपने आनन्द की वृष्टि करता है ॥२॥

प्र यु॒जो वा॒चो अ॑ग्रि॒यो वृषाव॑चक्रद॒द्वने॑ ।
स॒द्माभि स॒त्यो अ॑ध्व॒रः ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अध्वरः**) "न ध्वरतीत्यध्वरः अध्वानं राति वा अध्वरः" हिंसावर्जित हैं और सत्य का रास्ता दिखलाने वाले हैं, (**सत्यः**) सत्यस्वरूप हैं, (**वृषा**) कामनाप्रद तथा (**अग्रियः**) सबसे अग्रणी और (**प्रयुजः, वाचः**) उपयुक्त वाणी के बोलने वाले हैं (**वने, सद्म, अभि**) याज्ञिक उपासनाओं में (**अव, चक्रदत्**) उपास्य ठहराये जाते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सत्यस्वरूप अर्थात् त्रिकालाबाध्य है, ऐसे सत्यादि पदों से उपनिषदों में "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ये लक्षण किये गए हैं ॥३॥

परि॒ यत्काव्या॑ क॒विर्नृम्णा॑ वसा॑नो॒ अर्ष॑ति ।
स्व॑र्वा॒जी सि॑षासति ॥४॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**कविः**) सर्वज्ञ है [कवते जानाति सर्वमिति कविः" जो सबको जाने उसका नाम कवि है] और (**नृम्णा**) ऐश्वर्यों को (**वसानः**) धारण करने वाला (**पर्यर्षति**) सर्वत्र प्राप्त है (**स्वर्वाजी**) आनन्दरूप बलवाला है तथा (**काव्या, सिषासति**) कवित्वरूप कर्मों के प्रचार की इच्छा करता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वज्ञ, सबको धारण करने वाला और सर्वव्यापक है, उसीकी उपासना करनी चाहिये ॥४॥

पव॑मानो अ॒भि स्पृधो॒ विशो॒ राजे॑व सीदति ।
यदी॑मृ॒ण्वन्ति॑ वे॒धसः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**पवमानः**) [पवते, इति पवमानः] सबको पवित्र करने वाला (**अभिस्पृधः**) सबको मर्दन करके विराजमान है (**विशः राजा, इव सीदति**) प्रजाओं को राजा के समान अनुशासन करता है, (**यद्, ईम्**) भली भांति (**ऋण्वन्ति**) सत्कर्मों में प्रेरणा करता है और (**वेधसः**) सर्वोपरि बुद्धिमान् है ॥५॥

भावार्थः—राजा की उपमा यहां इस लिए दी गई है कि राजा का शासन लोकप्रसिद्ध है । इस अभिप्राय से यहां राजा का दृष्टान्त है, ईश्वर के समान बलसूचना के अभिप्राय से नहीं और जो मन्त्र में बहुवचन है वह व्यत्यय से है ॥५॥

अव्यो॒ वारे॒ परि॑ प्रि॒यो हरि॒र्वने॑षु सीदति ।
रे॒भो व॑नुष्यते म॒ती ॥६॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**अव्यः, वारे**) [अव्यते प्रकाशते इति अविर्म्वादिलोकः] प्रकाश वाले लोकों में (**परि, सीदति**) रहता है, (**प्रियः**) सर्वप्रिय है, (**हरिः**) सब

के दुःखों को हरण करने वाला है, (वनेषु) उपासनादि भक्तियों में उसी की उपासना से (मती, वनुष्यते) बुद्धि निर्मल होती है (रेभः) वेदादि शब्दों का प्रकाशक है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों में व्यापक है और भक्तों की बुद्धि में विराजमान है अर्थात् जिसकी बुद्धि उपासनादि सत्कर्मों से निर्मल हो जाती है उसी की बुद्धि में परमात्मा का आभास पड़ता है ॥६॥

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
रणा यो अस्य धर्मभिः ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो पुरुष (**अस्य, धर्मभिः**) इस परमात्मा के धर्मों को धारण करता हुआ (**रणा**) रमण करता है (**सः**) वह (**वायुम्**) ज्ञानी यज्ञकर्मा पुरुष के और (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यवाले पुरुष के (**अश्विना**) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष के (**साकम्**) साथ (**मदेन**) अभिमान से (**गच्छति**) चल सकता है ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों को धारण करता है वह ज्ञानी विज्ञानी आदिकों की सब पदवियों को प्राप्त होता है अर्थात् अभिमान के साथ वह ज्ञानी विज्ञानी विद्वानों के मद को मर्दन कर सकता है ॥७॥

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

पदार्थः—जिन विद्वानों की (**मध्वः, ऊर्मयः**) मीठी वृत्तियां (**भगम्**) ईश्वर के ऐश्वर्य की ओर लगती हैं तथा (**मित्रावरुणा**) ईश्वर के प्रेम और आकर्षणरूप शक्ति की ओर लगती हैं वे (**विदाना**) विज्ञानी (**अस्य, शक्मभिः**) इस परमात्मा के आनन्द से (**आ, पवन्ते**) सम्पूर्ण संसार को पवित्र करते हैं ॥८॥

भावार्थः—ईश्वरपरायण लोग केवल अपने आप का ही उद्धार नहीं करते किन्तु अपने भावों से सम्पूर्ण संसार का उद्धार करते हैं ॥८॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक के मध्य में (**मध्वः वाजस्य**) बड़े बल की (**सातये**) प्राप्ति के लिये (**रयिम्**) धन (**श्रवः**) ऐश्वर्य (**वसूनि**) रत्न (**सञ्जितम्**) हमको आप दें ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा जब प्रसन्न होता है तो नाना प्रकार की विभूतियाँ प्रदान करता है क्योंकि जो विभूतियाँ हैं वह सब परमात्मा का ऐश्वर्य है । जैसा कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम्" (गीता) । अर्थात् जो कुछ विभूति वाली या शोभा वाली वा बल वाली वस्तु है वह सब परमात्मा के ऐश्वर्य की सूचक है ॥९॥

नवम मण्डल में यह ७वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य अष्टमसूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ८ निचृद्गायत्री । ३, ४, ७ गायत्री । ६ पाद निचृद्गायत्री । ९ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त सोमस्वभाव परमात्मा से कामनाओं की सिद्धि कथन करते हैं ॥

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा की (**अभिप्रियम्, कामम्**) अभीष्ट-कामनाओं को (**अक्षरन्**) देता हुआ (**वीर्यम्**) उसके बल को (**एते, सोमाः**) उक्त परमात्मा (**वर्धन्तः**) बढ़ाता है ॥१॥

भावार्थः—"बलमसि बलं मे देहि वीर्यमसि वीर्यं मे देहि" अथ० २।३।१७। जिस प्रकार इस मन्त्र में परमात्मा से बल वीर्यादिकों की प्रार्थना है उसी प्रकार इस मन्त्र में भी परमात्मा से बल वीर्यादिकों की प्रार्थना है ॥१॥

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥२॥

पदार्थः—(**पुनानासः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**चमूषदः**) जो प्रत्येक सैनिक बल में रहता है (**अश्विना**) प्रत्येक कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को तथा (**वायुम्**) गतिशील विद्वान् को (**गच्छन्तः**) जो प्राप्त है (**ते**) वह परमात्मा (**नः**) हमको (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल (**धान्तु**) धारण कराये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी परमात्मा से बल की प्रार्थना की गई है ॥२॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थः—(**ऋतस्य, योनिम्**) हे परमात्मन् ! आप सत्यरूपी यज्ञ के कारण हो; (**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**आसदम्**) प्रत्येक सत्यवादी के हृदय में स्थिर हो; (**इन्द्रस्य**) इस जीवात्मा की (**हार्दि**) अभिलषित कामनाओं की सिद्धि के लिये (**पुनानः**) आप सब (**राधसे**) ऐश्वर्य के लिए (**चोदय**) आप प्रेरणा करें क्योंकि (**पुनानः**) आप सब को पवित्र करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—सत्य का स्थान एकमात्र परमात्मा ही है । इसी अभिप्राय से "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसः" इस मन्त्र में यह लिखा है कि दीप्तिमान परमात्मा से ऋत और सत्य अर्थात् ऋत शास्त्रीयसत्य, और सत्य वस्तुगत-सत्य ये दोनों प्रकार के सत्य परमात्मा के आधार पर ही स्थिर रहते हैं । इस अभिप्राय से यहां परमात्मा को ऋत की योनि कहा गया है । योनि के अर्थ यहां कारण के हैं ॥३॥

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**त्वा, दश, क्षिपः**) तुम को पांच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूलभूत (**मृजन्ति**) ऐश्वर्यसम्पन्न करते हैं और (**सप्त, धीतयः**) महदादि सात प्रकृतियां तुम्हें (**हिन्वन्ति**) गति रूप से वर्णन करती हैं (**अनु**) इस के पश्चात् (**विप्राः**) मेधावी लोग आप को उपलब्ध करके (**अमादिषु**) हर्षित होते हैं ॥४॥

भावार्थः—पाँच सूक्ष्म और पाँच स्थूलभूत उसकी शुद्धि व ऐश्वर्य का कारण इस अभिप्राय से वर्णन किये गए हैं कि उन्हीं भूतों के कार्यरूप इन्द्रिय-कर्म और ज्ञान द्वारा उसको उपलब्ध् करते हैं और उस उपलब्धि को पाकर विद्वान् लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥४॥

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सङ्गोभिर्वासयामसि ॥५॥

पदार्थः—(**मेष्यः**) अज्ञान की वृत्तियां (**सृजानम्**) संसार के रचने वाले तुमको (**अति**) अतिक्रमण कर जाती हैं (**देवेभ्यः, त्वा**) दिव्य वृत्तियों वाले देवताओं के लिए तुम्हारा (**कम्**) आनन्द (**मदाय**) आह्लाद के लिए हो ताकि हम आपको (**सम्**) भली प्रकार (**गोभिः**) इन्द्रियों द्वारा (**वासयामसि**) निवास दें ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष अज्ञानी हैं उनकी बुद्धि का विषय ईश्वर नहीं होता । इस लिए कहा गया है कि उनकी बुद्धि को अतिक्रमण कर जाता है और जो लोग शुद्ध इन्द्रियों वाले हैं वह लोग उसको बुद्धि का विषय बना कर आनन्द को उपलब्ध करते हैं ॥५॥

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**वस्त्राणि, अरुषः**) विद्युत् के समान तेजमय वस्त्रों को धारण करता हुआ (**आ**) प्रत्येक वस्तु को अपने भीतर रख कर (**कलशेषु**) प्रत्येक ब्रह्माण्ड में आप व्यापक होकर (**पुनानः**) सबको पवित्र कर रहा है और (**हरिः**) सबके दुःखों को हरने वाला (**गव्यानि, पर्यव्यत**) प्रत्येक पृथिव्यादि ब्रह्माण्डों को आच्छादन कर रहा है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है इसी लिये उसको हरि रूप से कथन किया है । वह परमात्मा विद्युत् के समान गतिशील होकर सब को चमत्कृत करता है, उसी की ज्योति को ज्ञानवृत्ति द्वारा उपलब्ध करके योगी आनन्दित होते हैं ॥६॥

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥७॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन् ! आप (**मघोनः**) हमको ऐश्वर्यसम्पन्न करें (**आ, पवस्व**) और सब प्रकार से पवित्र करें (**विश्वा,**) सब (**अपद्विषः**) दुष्टों का नाश करें और (**सखायम्, आविश**) सज्जनों को सर्वत्र फैलायें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! इस प्रकार के प्रार्थनारूप भाव को हृदय में उत्पन्न करो कि तुम्हारे सत्कर्मी सज्जनों की रक्षा हो और दुष्टों का नाश हो ॥७॥

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**दिवः**) द्युलोक से (**वृष्टिं, परि, स्रव**) वृष्टि द्वारा (**द्युम्नम्**) अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिए और (**पृथिव्याः, अधि**) सर्वत्र पृथिवी पर (**नः**) हमको (**सहः**) बल देकर (**पृत्सु, धाः**) युद्धों में विजयी करिये ॥८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मविश्वासी होते हैं परमात्मा उनको युद्धों में विजयी और धनादि ऐश्वर्यों से नानाविध ऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥८॥

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥९॥

पदार्थः हे परमात्मन् ! (**इन्द्रपीतम्**,) विद्वानों के द्वारा गृहीत किये गए (**नृचक्षसम्**) सर्वद्रष्टा [नॄन् चष्टे पश्यति यः स नृचक्षास्तम्] (**स्वर्विदम्**) सर्वज्ञ (**त्वाम्**) आपकी कृपा से (**प्रजाम्, इषम्**) संसार के ऐश्वर्य को (**भक्षीमहि**) भोगें ॥९॥

भावार्थः—जो लोग विद्वानों के सदुपदेश से सर्वज्ञत्वादि गुणयुक्त परमात्मा की उपासना करते हैं वे संसार के आनन्द को भोगते हैं ॥९॥

नवम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य नवमसूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३–५, ८ गायत्री । २, ६, ७, ९ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सौम्यस्वभाव परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ॥

परि॑ प्रि॒या दि॒वः क॒विर्वयां॑सि न॒प्त्यो॑र्हि॒तः ।
सु॒वा॒नो या॑ति क॒विक्र॑तुः ॥१॥

पदार्थः—(**कविक्रतुः**) सर्वज्ञ (**सुवानः**) सब को उत्पन्न करने वाला (**नप्त्योः, हितः**) जीवात्मा और प्रकृति का हित करने वाला (**कविः**) मेधावी (**वयांसि**) व्याप्तिशील (**दिवः प्रिया**) द्युलोक का प्रिय (**परि, याति**) सर्वत्र व्याप्त रहता है ॥१॥

भावार्थः—"न पततीति नप्ती" जिसके स्वरूप का नाश न हो उसका नाम यहां नप्ती है । इस प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का नाम यहां नप्ती हुआ । इन दोनों का परमात्मा हित करने वाला है अर्थात् प्रकृति को ब्रह्माण्ड की रचना में लगा कर हित करता है और जीव को कर्मफल-भोग में लगा कर हित करता है । "वियन्ति व्याप्नुवन्ति इति वयांसि" जो सर्वत्र व्याप्त हो उसको वयस् कहते हैं और बहुवचन यहां ईश्वर के सामर्थ्य के अनन्तत्वबोधन के लिये आया है । तात्पर्य यह निकला कि जो प्रकृति पुरुष का अधिष्ठाता और संसार का निर्माता तथा विधाता है उस को यहां कविक्रतु आदि नामों से वर्णन किया है ॥१॥

प्रप्र॒ क्षया॑य॒ पन्य॑से॒ जना॑य॒ जुष्टो॑ अ॒द्रुहे॑ ।
वी॒त्य॑र्ष॒ चनि॑ष्ठया ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**पन्यसे**) जो पुरुष कर्मयोगी है तथा (**अद्रुहे**) जो किसी के साथ द्वेष नहीं करता (**जनाय**) ऐसे मनुष्य के हृदय में आप (**प्र, प्र क्षयाय**)

अत्यन्त विराजमान होते हैं (**च**) और (**वीती**) उसकी तृप्ति के लिए (**विष्ठया, जुष्टः**) ऐश्वर्य की धारा से संयुक्त होकर (**अर्ष**) ऐश्वर्य दें ॥२॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक हैं तथापि ऐश्वर्य के प्रदाता होकर उन्हीं पुरुषों के हृदय में विराजमान हो रहे हैं जो पुरुष कर्मयोगी और रागद्वेष से रहित हैं, इस लिये पुरुष को चाहिये कि वह रागद्वेष के भाव से रहित होकर निष्काम भाव से सदैव कर्मयोग में लगा रहे ॥२॥

स सू॒नुर्मा॒तरा॒ शुचि॑र्जा॒तो जा॒ते अ॑रोचयत् ।
म॒हान्म॒ही ऋ॑ता॒वृधा॑ ॥३॥

पदार्थः—(**सः**) वह कर्मयोगी पुरुष (**शुचिः**) पवित्र है; (**महान्**) विशालात्मा है (**ऋता, वृधा**) यज्ञ के बढ़ाने वाले (**मही**) महान् (**जाते**) विश्व के उत्पन्न करने वाले (**मातरा**) जो माता पिता रूप द्युलोक और पृथिवी लोक हैं उनका (**जातः, सूनुः**) वह सच्चा पुत्र है (**अरोचयत्**) और वह कर्मयोग से उनको ऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थः—द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में कर्मयोगी ही एक ऐसा पुरुष है जो अपने कर्मों द्वारा संसार को प्रकाशित करता है । इसी अभिप्राय से उसको द्युलोक और पृथिवीलोक का सच्चा पुत्र कहा गया है ॥३॥

स स॒प्त धी॒तिभि॑र्हि॒तो न॒द्यो॑ अजिन्वद॒द्रुहः॑ ।
या एक॒मक्षि॑ वावृधुः ॥४॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**सप्त, नद्यः**) इडा, पिंगलादि सात नाड़ियों को "नदन्तीति नद्यः" (**धीतिभिः**) 'धीयते सर्वकर्मसु इति धीतिर्बुद्धिः' जब बुद्धि की वृत्तियों से (**हितः**) धारण किया जाता है तो (**अजिन्वत्**) योग द्वारा तृप्त करता है (**याः, अद्रुहः**) जो नाडियां स्वकर्तव्य पालन करती हुई (**एकम्, अक्षि**) उस एक अविनाशी परमात्मा को (**वावृधुः**) प्रकाशित करती हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है । भाव यह है कि जब पुरुष अपने प्राणायाम द्वारा इडा पिंगलादि नाड़ियों को तृप्त कर देता है तो वह उस अभ्यास से एकाग्रचित्त होकर अविनाशी परमात्मा के भाव को अनुभव करता है ॥४॥

ता अ॒भि सन्त॒मस्तृ॑तं म॒हे युवा॑न॒मा द॑धुः ।
इन्दु॑मिन्द्र॒ तव॑ व्र॒ते ॥५॥

पदार्थ-—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यशालिन् ! परमात्मन् ! (**तव, व्रते**) तुम्हारे व्रत की पूर्ति के लिए (**इन्दुं**) जीवात्मा को (**युवानम्**) जो नित्य नूतन है (**सन्तम्**) सत्कर्मी (**अस्तृतम्**) जो अच्छेद्य है उसको (**ताः**) वे (**अभि**) भलीभाँति योगजबुद्धिवृत्तियाँ (**महे**) महत्त्व की प्राप्ति के लिए (**आवधुः**) धारण करती हैं ।।५।।

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष अपने निष्काम कर्म द्वारा उस तत्त्व को प्राप्त होता है जिसको योग में एकतत्त्वाभ्यास लिखा है अर्थात् उस तत्त्व की प्राप्ति के लिए कर्मयोगी होना आवश्यक है ।।५।।

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः ।
क्रिविर्देवीरतर्पयत् ।।६।।

पदार्थः—जो (**अमर्त्यः**) मृत्युरहित है (**वह्निः**) प्रकाशमान है (**वावहिः**) जो सबका प्रेरक है (**सप्त, देवीः**) भूम्यादि सात प्रकृतियाँ (**अतर्पयत्**) जिसको वर्णन करती हैं। (**क्रिविः**) जो सद्गुणों से भरा हुआ है वह (**पश्यति**) सबको अपनी ज्ञानदृष्टि से देखता है ।।६।।

भावार्थः—जो परमात्मा महत्त्वादि सात प्रकार की प्रकृतियों से अलंकृत किया हुआ है और जिसको धारणा ध्यानादि बुद्धि की सात वृत्तियाँ विषय करती हैं वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, एकमात्र उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ।।६।।

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्यां ।
तानि पुनान जङ्घनः ।।७।।

पदार्थः—हे (**सोम**) सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! आप (**तमांसि**) अज्ञानों को और जो (**योध्या**) युद्ध करने योग्य हैं (**तानि**) उनको (**जङ्घनः**) हनन करो (**पुनान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**पुमन्,**) हे पूर्ण पुरुष (**नः**) हमारी (**कल्पेषु**) सब अवस्थाओं में (**अव**) रक्षा करें ।।७।।

भावार्थः—मनुष्य का परम शत्रु एकमात्र अज्ञान ही है, जो पुरुष अज्ञानरूपी शत्रु को नहीं जीतता वह शूरवीर व विजयी कदापि नहीं कहला सकता। बहुत क्या, पुरुष में पुरुषत्व यही है कि वह अज्ञानरूपी शत्रु को जीत कर अभ्युदय और निःश्रेयस रूपी फलों को लाभ करे। इस अभिप्राय के लिए उक्त मन्त्र में अज्ञान के जीतने की परमात्मा से प्रार्थना की गई, और अज्ञानरूपी शत्रु की शत्रुता का वर्णन :"पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।" गीता के इस श्लोक में सुप्रसिद्ध है कि हे जीव ! तू ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले परम शत्रु अज्ञान का सब ९. पहले नाश कर ।।७।।

नु नव्यंसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः ।
प्रत्नवद्रोचया रुचः ।।८।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**नव्यसे**) नूतन जीवन बनाने के लिए (**नु**) निश्चय करके (**नवीयसे, सूक्ताय**) नयी वाणियों के लिए (**साधया, पथः**) हमारे लिए रास्ता खोलो और (**प्रत्नवत्**) पहले के समान (**रुचः**) अपनी दीप्तियाँ (**रोचया**) प्रकाशित करो ।।८।।

भावार्थः—जो पुरुष अपने जीवन को नित्य नूतन बनाना चाहे उसका कर्तव्य है कि वह परमात्मा की ज्योति से देदीप्यमान होकर अपने आप को प्रकाशित करे, और नित्य नूतन वेदवाणियों से अपने रास्तों को साफ करे अर्थात् वेदोक्त धर्मों पर स्वयं चले और लोगों को चलाये ।।८।।

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ।।९।।

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**महि, श्रवः**) हमको सर्वोपरि आनन्द प्रदान करो और (**गाम्, अश्वम्**) गो अश्वादि नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन (**रासि**) आप हमको दें। और (**वीरवत्**) वीरता धर्म वाले मनुष्य (**सना**) दें (**मेधाम्**) बुद्धि और (**स्वः**) स्वर्ग (**सना**) दें ।।९।।

भावार्थः—जिस जाति वा धर्म पर परमात्मा की अत्यन्त कृपा होती है उसको परमात्मा नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन प्रदान करता है और शुद्ध बुद्धि तथा सर्वोपरि आनन्द प्रदान करता है ।।९।।

नवम मण्डल में नवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ नवर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ।। पवमानःसोमो देवता ।। छन्दः–१, २, ६, ८ निचृद्गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

अब उक्त परमात्मा को यज्ञरूप से वर्णन करते हैं ।।

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ।।१।।

पदार्थः—(**सोमासः**) चराचर संसार का उत्पादक उक्त परमात्मा (**राये**) ऐश्वर्य के लिए (**अक्रमुः**) सदा उद्यत है (**रथाः, इव**) अति शीघ्र गति करने वाले

विद्युदादि के समान (**प्र, स्वानासः**) जो प्रसिद्ध है और जो (**अर्वन्तः, नः**) गतिशील राजाओं के समान (**अवस्यवः**) ऐश्वर्य देने को सदा उद्यत है ।।१।।

भावार्थः—जिस प्रकार बिजली की जागृतिशील ध्वनि से सब पुरुष जागृत हो जाते हैं इस प्रकार परमात्मा के शब्द से सब लोग उद्बुद्ध हो जाते हैं, अर्थात् परमात्मा नाना प्रकार के शब्दों से पुरुषों को उद्बोधन करता है, और जिस प्रकार न्यायशील राजा अपनी प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करता है इसी प्रकार वह सत्कर्मी पुरुषों को सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता है ।।१।।

हि॒न्वा॒नासो॒ रथा॑ इव दधन्वि॒रे गभ॑स्त्योः ।
भरा॑सः का॒रिणा॑मिव ।।२।।

पदार्थः—(**रथा इव**) विद्युत् के समान (**गभस्त्योः, दधन्विरे**) अपनी चमत्कृत रश्मियों को धारण किये हुए हैं । (**हिन्वानासः**) सदैव गतिशील हैं और (**कारिणाम्, इव**) कर्मयोगियों के समान सदैव सत्कर्म के (**भरासः**) भार उठाने को समर्थ हैं ।।२।।

भावार्थः—जिस प्रकार कर्मयोगी सत्कर्म को करने में सदैव तत्पर रहता है इसी प्रकार संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कर्मों में परमात्मा सदैव तत्पर रहता है अर्थात् उक्त कर्म उस में स्वतःसिद्ध और अनायास होते रहते हैं । इसी अभिप्राय से ब्राह्मणग्रन्थों में उसे "सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः" ऐसा प्रतिपादन किया है कि सर्व प्रकार के कर्म और सब प्रकार के गन्ध तथा रस उसी से अपनी-अपनी सत्ता को लाभ करते हैं ।।२।।

राजा॑नो॒ न प्रश॑स्तिभिः॒ सोमा॑सो॒ गोभि॑रञ्जते ।
य॒ज्ञो न स॒प्त धा॒तृभिः॑ ।।३।।

पदार्थः—(**राजानः, न**) राजाओं के समान (**सोमासः**) साम्यस्वभाव वाला परमात्मा (**गोभिः**) अपनी प्रकाशमय ज्योतियों से (**अञ्जते**) प्रकाशित होता है (**यज्ञः न**) जिस प्रकार यज्ञ (**सप्त, धातृभिः**) ऋत्विगादि सात प्रकार के होताओं से सुशोभित है इसी प्रकार परमात्मा प्रकृति की विकृति महदादि सात प्रकृतियों से संसारावस्था में सुशोभित होता है ।।३।।

भावार्थः—संसार भी एक यज्ञ है और इस यज्ञ के कार्यकारी ऋत्विगादि होता प्रकृति की शक्तियाँ हैं । जब परमात्मा इस बृहत् यज्ञ को करता है तो प्रकृति की शक्तियाँ उसमें ऋत्विगादि का काम करती हैं । कि इसी अभिप्राय से यह कथन किया है "तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः" "तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये" (यजुः ३१।९) कि उस पुरुषमेध्यज्ञ को करते हुए ऋषि लोग सर्वद्रष्टा परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते हैं । इस प्रकार परमात्मा का इस मन्त्र में यज्ञ रूप से वर्णन किया है । इसी अभिप्राय से "यज्ञो वै विष्णुः" (शत०) इत्यादि वाक्यों में परमात्मा को यज्ञ कथन किया है ।।३।।

परि॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वो॒ मदा॑य ब॒र्हणा॑ गि॒रा ।
सु॒ता अ॑र्षन्ति॒ धार॑या ।।४।।

पदार्थः—(**परि, सुवानासः**) संसार को उत्पन्न करता हुआ (**इन्दवः**) सर्वप्रकाशक परमात्मा (**बर्हणा, गिरा**) अभ्युदय देने वाली वेदवाणी द्वारा (**सुताः**) वर्णन किया हुआ (**धारया**) अमृत की वृष्टि से (**मदाय, अर्षति**) आनन्द को देता है ।।४।।

भावार्थः—द्युभ्वादि अनेक लोकों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा अपनी पवित्र वेदवाणी द्वारा हमको नानाविध आनन्द प्रदान करता है ।।४।।

आ॒पा॒नासो॑ वि॒वस्व॑तो॒ जन॑न्त उ॒षसो॒ भग॑म् ।
सू॒रा अण्वं॒ वि त॑न्वते ।।५।।

पदार्थः—(**आपानासः**) सब दुःखों का नाश करने वाला (**विवस्वतः**) सूर्य से (**उषसः, भगम्**) उषारूप ऐश्वर्य को (**जनन्तः**) उत्पन्न करता हुआ (**सूराः**) गतिशील (**अण्वम्**) सूक्ष्मप्रकृति का (**वितन्वते**) विस्तार करता है ।।५।।

भावार्थः—परमात्मा प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से अथवा यों कहो कि परमाणुओं से सृष्टि को उत्पन्न करता है और सूर्यादि प्रकाशमय ज्योतियों से उषारूप ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ संसार के दुःखों का नाश करता है ।।५।।

अप॒ द्वारा॑ मती॒नां प्र॒त्ना ऋ॑ण्वन्ति का॒रवः॑ ।
वृष्णो॒ हर॑स आ॒यवः॑ ।।६।।

पदार्थः—(**वृष्णः**) सब कामनाओं के दाता परमात्मा की (**हरसे**) पाप की निवृत्ति के लिए उपासना करने वाले (**आयवः**) मनुष्य (**कारवः**) जो कर्मयोगी हैं (**प्रत्नाः**) जो अभ्यास में परिपक्व हैं वह (**मतीनाम्**) बुद्धि के (**अप, द्वारा**) जो कुत्सित मार्ग हैं उनको (**ऋण्वन्ति**) मार्जन कर देते हैं ।।६।।

भावार्थः—जो कर्मयोगी लोग कर्मयोग में तत्पर हैं और ईश्वर की उपासना में प्रतिदिन रहते हैं वह अपनी बुद्धि को कुमार्ग की ओर कदापि

नहीं जाने देते । तात्पर्य यह है कि कर्मयोगियों में अभ्यास की दृढ़ता के प्रभाव से ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है कि उनकी बुद्धि सदैव सन्मार्ग की ओर ही जाती है, अन्यत्र नहीं ॥६॥

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः ।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥७॥

पदार्थः—(सप्त, जामयः) यज्ञकर्म में संगति रखने वाले सात (होतारः) होता लोग (समीचीनासः) यज्ञकर्म में जो निपुण हैं वे (एकस्य, पदम्) एक परमात्मा के पद को जब (आसते) ग्रहण करते हैं तो वे (पिप्रतः) यज्ञ को सम्पूर्ण करते है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग एक परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं के सब कामों की पूर्ति होती है । तात्पर्य यह है कि ईश्वरपरायण लोगों के कार्यों में कदापि विघ्न नहीं होता ॥७॥

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा ।
कवेरपत्यमा दुहे ॥८॥

पदार्थः—(कवेः) उस सर्वज्ञ क्रान्तकर्मा परमात्मा के (अपत्यम्) ऐश्वर्य को (आ, दुहे) मैं प्राप्त करूँ और (नाभिम्) [नह्यति बध्नाति चराचरं जगदिति नाभिः] जो चराचर जगत् को नियम में रखता है उसको (नाभा, नः) अपने हृदय में (आददे) ध्यानरूप से स्थित करूं, जो (सूर्ये, चित्) सूर्य में भी (चक्षुः सचा) चक्षुरूप से संगत है ॥८॥

भावार्थः—उक्त कामधेनु रूप परमात्मा के ऐश्वर्य को वह लोग दुह सकते हैं जो लोग उस परमात्मा को अपने हृदयरूपी कमल में साक्षी रूप से स्थिर समझ कर सत्कर्मी बनते हैं और वह परमात्मा अपनी प्रकाश रूप शक्ति से सूर्य का भी प्रकाशक है । इस मन्त्र में परमात्मा इस भाव को बोधन करते हैं कि हे जिज्ञासु पुरुषो ! तुम उस प्रकाश से अपने हृदय को प्रकाशित करके संसार के पदार्थों को देखो जो सर्वप्रकाशक है और जिससे यह भूतवर्ग अपनी उत्पत्ति और स्थिति को लाभ करता है जैसा कि 'नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्' "चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत" (यजु० १ । १२) इत्यादि मन्त्रों में वर्णन किया है कि उसी के नाभिरूप सामर्थ्य से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ और उसी के चक्षुरूप सामर्थ्य से सूर्य उत्पन्न हुआ । चक्षु के अर्थ यहाँ 'चष्टे पश्यत्यनेनेति चक्षुः' अर्थात् अपने सात्विक सामर्थ्य से सूर्य को उत्पन्न किया जैसा कि अन्यत्र भी कहा है कि "सत्वात्संजायते ज्ञानम्"

बहुत क्या 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ।" अर्थात् उसी से यह सब संसार वर्ग आविर्भाव को प्राप्त होता है और उससे सत्ता लाभ करके स्थिर रहता है और अन्त में परमाणु रूप होकर उसी में लय हो जाता है; उसी के जानने की इच्छा करनी चाहिये वही सर्वोपरि ब्रह्म है; "बृंहते वर्धते इति ब्रह्म" जो सदैव वृद्धि को प्राप्त है अर्थात् जिससे कोई बड़ा नहीं, उसका नाम यहाँ ब्रह्म है ॥८॥

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥९॥

पदार्थः—(सूरः) विद्वान् [सरति ज्ञानद्वारेण सर्वत्र प्राप्नोतीति सूरो विद्वान्] (अभि, प्रिया) जो सबका प्यारा है वह (अध्वर्युभिः) अध्वर्यु आदि ऋत्विजों से जो (गुहा, हितम्) यज्ञरूपी गुहा में निहित है और (दिवस्पदम्) जो द्युलोक का भी अधिकरणरूपी पद है उसको (चक्षसा) ज्ञानदृष्टि से (पश्यति) देखता है ॥९॥

भावार्थः—जो इस संसार रूपी गुहा में स्थिर सूक्ष्म से अति सूक्ष्म परमात्मा है और जो भ्वादिलोकों का एकमात्र अधिकरण है उसको आत्मज्ञानी विद्वान् ही जान सकते हैं अन्य नहीं ॥९॥

नवम मण्डल में यह दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य एकादशस्य सूक्तस्य १–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–४, ९ निचृद्गायत्री । ५–८ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा के उपासन का प्रकार कथन करते हैं ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

पदार्थः—(नरः) हे यज्ञ के नेता लोगो ! तुम (पवमानाय) सबको पवित्र करने वाला (इन्दवे) "इन्दतीतीन्दुः" और जो परम ऐश्वर्यवाला है (उपास्मै) उसकी प्राप्ति के लिये (गायत) गायन करो, जो (अभि, देवाँ, इयक्षते) यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति को चाहता है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति करो और मिलकर अपने उपास्यदेव का गायन करो ॥१॥

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) तुमको (**अथर्वाणः**) "न थर्वंति स्वाधिकारं मुञ्चतीत्यथर्वा" जो अपने अधिकार को न छोड़े उसका नाम अथर्वा है, ऐसे दृढ़-विश्वासी विद्वान् (**अशिश्रयुः**) आश्रयण करते हैं जो तुम (**देवाय**) दिव्य शक्तियों के देने के लिये (**देवम्**) एकमात्र देव हो,और (**देवयु**)"देवमिच्छतीति देवयु" दिव्य शक्ति की इच्छा करने वाला पुरुष (**पयः**) आपके रस को (**मधुना**) मधुरता के साथ (**अभि**) भलीभांति ग्रहण करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे दृढ़ विश्वासी विद्वानो ! आप लोग उस रस का पान करो जिससे बढ़कर संसार में अन्य कोई रस नहीं और उपास्यत्वेन उस देव का आश्रयण करो जिससे बढ़कर और कोई उपास्य नहीं, वास्तव में बात भी यही है कि परमात्मा के आनन्द के बराबर और कोई आनन्द नहीं । इसी अभिप्राय से कहा है कि "रसो ह्येव सः रसं हि लब्ध्वा एष आनन्दी भवति" (तै० २।७।) परमात्मा रस अर्थात् आनन्द-रूप है उसके आनन्द को लाभ करके पुरुष आनन्दित होता है । इसी अभिप्राय से गीता में कहा हैं कि "यल्लब्ध्वा नापरो लाभः" उसको प्राप्त करने के अनन्तर फिर कोई प्राप्तव्य वस्तु नहीं रहती ॥२॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

पदार्थः—हे (राजन्, सः) पूर्वोक्त दीप्तिमन् परमात्मन् ! आप (**नः**) हमारी (**गवे**) इन्द्रियों के लिये (**शं, पवस्व**) कल्याणकारी हों (**शम्, अर्वते, जनाय**) कर्मकाण्डी मनुष्यों के लिये कल्याणकारी हों (**शम्, ओषधीभ्यः**) और हमारी ओषधियों के लिये कल्याणकारी हों ॥३॥

भावार्थः—यहाँ ओषधि आदिक केवल उपलक्षण हैं वस्तुतः प्रत्येक संसार वर्ग के लिये, इस मन्त्र में कल्याण की प्रार्थना की गई है ॥३॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (**बभ्रवे**) "बिभर्तीति बभ्रुः" जो विश्वम्भर परमात्मा है और जो (**स्वतवसे**) बलस्वरूप है और (**दिविस्पृशे**) जो द्युलोक तक फैला हुआ है (**सोमाय**) चराचर संसार का उत्पन्न करने वाला है (**अरुणाय**) "ऋच्छतीत्यरुणः" जो सर्वव्यापक है उसकी (**नु**) शीघ्र ही (**गाथम्**) स्तुति (**अर्चत**) करो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ऐसे पुरुष की स्तुति करो जो पूर्ण पुरुष अर्थात् द्युभ्वादि सब लोकों में पूर्ण हो रहा है

और तेजस्वी और सर्वव्यापक है । इस भाव को वेद के अन्यत्र भी कई एक स्थलों में वर्णन किया है जैसा कि "यस्य भूमिः प्रमामन्तरिक्षमुतोदरम् दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः" (अ० १०।४।७) कि जिसकी भूमि ज्ञान का साधन है, अन्तरिक्ष जिसका उदर स्थानीय है, जिसमें द्युलोक मस्तक के सदृश कहा जा सकता है, उस सर्वोपरि ब्रह्म को हमारा नमस्कार है । जैसा इस मन्त्र में रूपकालंकार से द्युलोक को मूर्धास्थानीय कल्पना किया है इसी प्रकार 'दिवस्पृशम्' इस शब्द में द्युलोक के साथ स्पर्श करने वाला भी रूपकालंकार से वर्णन किया है, मुख्य नहीं ॥४॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**हस्तच्युतेभिः, अद्रिभिः**) वाणीरूप वज्र से (**सुतं**) कूट-कूट कर (**सोमं**) मेरे स्वभाव को (**पुनीतन**) पवित्र करें ताकि (**मधौ**) आप के मधुर स्वरूप में (**मधु**) मीठा बनकर (**आधावत**) लगे ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा का वाग्रूपी वज्र जिस पुरुष की अविद्या-लता को काटता है वह पुरुष सरल प्रकृति बनकर परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप में निमग्न होता है ॥५॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**नमसा, इत्**) हमारी नम्रवाणियों से (**उपसीदत**) हमारे हृदय में निवास करो (**दध्ना इत्**) "धीयतेऽनेनेति दधि" हमारी धारणा से (**उप, श्रीणीतन**) हमारे ध्यान का विषय बनो (**इन्दुम्, इन्द्रे**) हमारे मन को अपने प्रकाशित स्वरूप में (**दधातन**) लगाओ ॥६॥

भावार्थः—जो लोग प्रार्थना से अपने हृदय को नम्र बनाते हैं उनका मन परमात्मा के स्वरूप में अवश्यमेव स्थिर होता है ॥६॥

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**अमित्रहा**) आप प्रेमरहित नास्तिक लोगों के हनन करने वाले हैं और (**देवेभ्यो, अनुकामकृत्**) और दैवीसम्पत्ति के गुण रखने वाले लोगों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं क्योंकि (**विचर्षणिः**) आप न्यायदृष्टि से देखने वाले हैं आप (**गवे**) हमारी वृत्तियों का (**शं, पवस्व**) कल्याण करें और पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—संसार में असुर और देव दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं । असुर उनको कहते हैं जो धर्म को त्याग करके केवल प्राणयात्रा में लग

जाते हैं। अर्थ इसके इस प्रकार हैं "अस्यति धर्ममित्यसुरः" यद्वा "असुषु रमते-इत्यसुरः" जो धर्म को छोड़ दे या प्राणों में ही रमण करे वह असुर है। और 'दीव्यतीति देवः' जो सदसद्विवेचिनी बुद्धि रखने वाले ज्ञानी पुरुष हैं उनको देव कहते हैं। जो असुर लोग हैं उन्हीं को इस मन्त्र में अमित्र माना गया है अर्थात् दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों को परमात्मा बढ़ाता है और आसुरी सम्पत्ति वाले पुरुषों का संहार करता है ।।७।।

इन्द्रा॑य सोम॒ पात॑वे॒ मदा॑य॒ परि॑ षिच्यसे । म॒न॒श्चिन्मन॑स॒स्पतिः॑ ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! (**मनश्चित्**) आप ज्ञानस्वरूप हैं "मनुते-इति मनः" और (**मनसस्पतिः**) सबके मनों के प्रेरक हैं (**इन्द्राय**) जीवात्मा की (**पातवे**) तृप्ति के लिये (**मदाय**) आह्लाद के लिये (**परिषिच्यसे**) उपासना किये जाते हैं ।।८।।

भावार्थः—जो लोग उपासना द्वारा अपने हृदय में ईश्वर को विराजमान करते हैं वे उसके मधुर आनन्द का पान करते हैं ।।८।।

पव॑मान सु॒वीर्यं॑ र॒यिं सो॑म रिरीहि नः । इन्द॑वि॒न्द्रेण॑ नो यु॒जा ॥९॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल को (रश्मिम्) और धन को (**नः, रिरीहि**) हमको दें। (**इन्दो**) हे सर्व प्रकाशक (**इन्द्रेण**) परमैश्वर्य के साथ (**नः, युजा**) हमको युक्त करें (**सोम**) आप सौम्य स्वभाव वाले हैं ।।९।।

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मी बनकर ईश्वरपरायण होते हैं, परमात्मा सर्वोपरि ऐश्वर्य का उन्हीं को दान देता है ।।९।।

नवम मण्डल में यह ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ नवर्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१, २, ६—८ गायत्री । ३—५, ९ निचृद्गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

अब उक्त परमात्मा को यज्ञादि कर्मों का कर्त्तारूप से वर्णन करते हैं ।।

सोमा॑ असृग्र॒मिन्द॑वः सु॒ता ऋ॒तस्य॒ साद॑ने ।
इन्द्रा॑य॒ मधु॑मत्तमाः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिये (**मधुमत्तमाः**) जो अत्यन्त आनन्दमय परमात्मा है (**ऋतस्य**) यज्ञ की (**सादने**) स्थिति में जो (**सुताः**) उपास्य समझा गया है वह (**इन्दवः**) प्रकाशस्वरूप (**सोमाः**) सौम्य स्वभाव वाला है (**असृग्रम्**) उसी के द्वारा यह संसार रचा गया है ।।१।।

भावार्थः—जो सब प्रकार की सच्चाइयों का एकमात्र अधिकरण है जिससे वसन्तादि यज्ञरूप ऋतुओं का परिवर्तन होता है वही परमात्मा इस निखिल ब्रह्माण्ड का अधिपति है ।।१।।

अ॒भि विप्रा॑ अनूषत॒ गावो॑ व॒त्सं न मा॒तरः॑ ।
इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥२॥

पदार्थः—उस परमात्मा को पाने के लिये (**गावः**) इन्द्रियें (**मातरः, वत्सम्, न**) जैसे माता को बछड़ा आश्रयण करता है इसी प्रकार आश्रयण करती हैं उसी प्रकार (**विप्राः**) विज्ञानी लोग (**सोमस्य पीतये**) सौम्य स्वभाव के बनाने के लिये (**इन्द्रम्**) परमात्मा को (**अभि अनूषत**) विभूषित करते हैं ।।२।।

भावार्थः—जब तक पुरुष सौम्यस्वभाव परमात्मा को आश्रयण नहीं करता तब तक उसके स्वभाव में सौम्य भाव नहीं आ सकते और उसका आश्रयण करना साधारण रीति से हो तो कोई अपूर्वता उत्पन्न नहीं कर सकता। जब पुरुष परमात्मा में इस प्रकार अनुरक्त होता है जैसे कि वत्स अपनी माता में अनुरक्त होता है अथवा इन्द्रियाँ अपने शब्दादि विषयों में अनुरक्त होती हैं इस प्रकार की अनुरक्ति के विना परमात्मा के भावों को पुरुष कदापि ग्रहण नहीं कर सकता ।।२।।

म॒द॒च्युत्क्षे॑ति॒ साद॑ने॒ सिन्धो॑रू॒र्मा वि॑प॒श्चित् ।
सोमो॑ गौ॒री अधि॑ श्रि॒तः ॥३॥

पदार्थः—जिस प्रकार (**ऊर्मा**) तरंगें (**सिन्धोः**) नदी का आश्रयण करती हैं और (**विपश्चित्**) विद्वान् (**गौरी, अधि, श्रितः**) वेदवाणी में अधिष्ठित होता है इसी प्रकार (**सोमः मदच्युत्**) आनन्द का देने वाला सौम्य स्वभाव परमात्मा (**सादने, क्षेति**) यज्ञस्थल को प्रिय समझता है ।।३।।

भावार्थः—कर्म यज्ञ, योगयज्ञ, जप यज्ञ, इस प्रकार यज्ञ नाना प्रकार के हैं परन्तु 'यजनं यज्ञः' जिसमें ईश्वर का उपासना रूप अथवा विद्वानों की संगति रूप अथवा दानात्मक कर्म किये जायें उसका नाम यहां यज्ञ है और

वह यज्ञ ईश्वर की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है। इसी अभिप्राय से 'यज्ञो वै विष्णुः (श० १।३७।) परमात्मा का नाम भी यज्ञ है। इसी भाव को वर्णन करते हुए गीता में यह कहा है कि 'एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे' इस प्रकार के कई एक यज्ञ वेद में वर्णन किये गये हैं ॥३॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।

सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (दिवः, नाभा) द्युलोक का नाभि है (विचक्षणः) सर्वज्ञ है (अव्यः) सबका भजनीय है (वारे महीयते) जो सब श्रेष्ठों में श्रेष्ठतम है (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला है (सुक्रतुः) सत्कर्मी है और (कविः) क्रान्तकर्मा है ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० २।१) सत्य ज्ञान और अनन्तादि गुणों वाला ब्रह्म है, यह वाक्य सिद्धवस्तु को बोधन करता है इसी प्रकार उक्त मन्त्र भी सिद्ध वस्तु का बोधक है—और जो इसमें 'महीयते' कहा गया है यह भी सिद्धवस्तु का बोधक है, परन्तु इससे यह शंका कदापि नहीं होनी चाहिये कि इसमें कर्तव्य का उपदेश नहीं, क्योंकि जब 'महीयते' कह दिया तो अर्थ यह निकले कि वह पूजा जाता है। पूजा एक प्रकार का कर्म है उसी को कर्त्तव्य कहते हैं। तात्पर्य यह निकला कि परमात्मा ने इस मन्त्र में उपदेश किया है कि तुम लोग उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का पूजन करो अर्थात् सन्ध्यावन्दनादि कर्मों से उसे वन्दनीय समझो ॥४॥

यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः ।

तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (कलशेषु) [कलं शवातीति कलशो वैदिकशब्दः] वैदिक शब्दों में (आ) वर्णन किया गया है (पवित्रे, अन्तः) और सब पवित्र वस्तुओं में (आहितः) स्थिर है और (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला है (तम्, इन्दुः) उसको विद्वान् लोग (परिषस्वजे) लाभ करते हैं ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा की अभिव्यक्ति अर्थात् आविर्भाव को सब पवित्र वस्तुओं में उपलब्ध करते हैं, तात्पर्य यह है कि जो जो विभूति वाली वस्तु है उसमें वे परमात्मा के तेज को अनुभव करते हैं। मालूम होता है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्" अर्थात् जो जो विभूतिवाली वस्तु अथवा शोभा वाली वा यों कहो कि बलवाली है वह सब परमात्मा के तेज से ही उत्पन्न हुई है। मालूम होता है कि गीता का यह भाव भी पूर्वोक्त मन्त्रों से ही लिया गया है ॥५॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।

जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

पदार्थः— (समुद्रस्य, अधि, विष्टपि) [समुद्रयन्ति यस्मादापः स समुद्रः] जो परमात्मा अन्तरिक्ष लोक के मध्य में (मधुश्चुतम्, कोशम्) सब प्रकार की मधुरताओं के सिञ्चन करने वाले कोश को (जिन्वन्) बढ़ाता है (इन्दुः) वही परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (वाचम्, प्र, इष्यति) वेदवाणी की प्रेरणा करता है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के नियम से समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष में जलों का संचय रहता है क्योंकि समुद्र के अर्थ ये हैं जिसमें जलों का भलीभांति संचार हो अर्थात् इतस्ततः गमन हो उसको समुद्र कहते हैं। अन्तरिक्ष लोक में मेघों का इतस्ततः गमन होता है इसलिये मुख्य नाम समुद्र इन्हीं का है। तात्पर्य यह है कि जिस परमात्मा ने इन विशाल नियमों को बनाया है उसी परमात्मा ने वेदरूपी वाणी को प्रकट किया है ॥६॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः ।

हिन्वानो मानुषा युगा ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (नित्यस्तोत्रः) नित्यस्तुति करने योग्य है (वनस्पतिः) सब ब्रह्माण्डों का स्वामी है (धीनाम्, अन्तः). बुद्धियों का अन्त है (सबः दुघः) अमृत से परिपूर्ण करने वाला है (मानुषा, युगा) और स्त्री पुरुष के जोड़े को उत्पन्न करने वाला है (हिन्वानः) सबका तृप्तिकारक है ॥७॥

भावार्थः—बुद्धियों का अन्त उसको इस अभिप्राय से कथन किया गया है कि मनुष्य की बुद्धि उसके पारावार को नहीं पा सकती इसलिये उसने मनुष्यों पर अत्यन्त करुणा करके अपने वेदरूपी ज्ञान का प्रकाश किया है ॥७॥

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति ।

विप्रस्य धारया कविः ॥८॥

पदार्थः—(कविः) क्रान्तकर्मा (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (दिवस्पदा) द्युलोक का व्यापक रूप से अधिकरण है (विप्रस्य) ज्ञान की (धारया) धारा से (प्रिया, अभि, अर्षति) हमको आनन्दित करता है ॥८॥

भावार्थः—द्युलोक आदि जिराके आश्रित हैं, वह सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा ज्ञान की वर्षा से हमें आनन्दित करता है ॥८॥

आ प॑वमान धारय र॒यिं स॒हस्र॑वर्चसम् ।
अ॒स्मे इ॑न्दो स्वा॒भुव॑म् ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्! (अस्मे) आप हमारे लिये (रयिम्) धन को तथा (सहस्रवर्चसं, स्वाभुवम्) अत्यन्त दीप्ति वाले गृहों को (आ, धारय) धारण कराइये अर्थात् दीजिये ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पुरुषों के कर्मों द्वारा प्रसन्न होता है उनको अनन्त प्रकार की दीप्तियों वाले गृहों को देता है और नानाविध ऐश्वर्य से उनको सम्पन्न करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य १–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ८ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री । ७ पाद निचृद्गायत्री ९ यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की यज्ञादि कर्मप्रियता और दानप्रियता को कहते हैं ॥

सोमः॑ पुना॒नो अ॑र्षति स॒हस्र॑धारो॒ अत्य॑विः ।
वा॒योरिन्द्र॑स्य निष्कृ॒तम् ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) सब चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाला वह परमात्मा [सूते चराचरं जगदिति सोमः] (पुनानः, अर्षति) सबको पवित्र करता हुआ सब जगह व्याप्त हो रहा है और (सहस्रधारः) सहस्रों वस्तुओं को धारण करने वाला है, (अत्यविः) अत्यन्त रक्षक है और (वायोः) कर्मशील तथा (इन्द्रस्य) ज्ञानशील विद्वानों का (निष्कृतं) उद्धार करने वाला है ॥१॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वरक्षक है वह किसी को द्वेषदृष्टि व प्रिय दृष्टि से नहीं देखता तथापि वह सत्कर्मी पुरुषों को शुभ फल देता है और असत्कर्मियों को अशुभ, इसी अभिप्राय से उसको कर्मशील पुरुषों का प्यारा वर्णन किया है ॥१॥

पव॑मानमवस्यवो॒ विप्र॑म॒भि प्र गा॑यत ।
सु॒ष्वा॒णन्दे॒ववी॑तये ॥२॥

पदार्थः—(अवस्यवः) हे उपदेश द्वारा प्रजा की रक्षा चाहने वाले विद्वानो! आप (देववीतये) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुष्वाणम्, पवमानम्, विप्रम्) सबके प्रेरक, सबकोपवित्र करने वाले पूर्ण परमात्मा का (अभि. प्र, गायत) गान करो ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो! तुम उस पुरुष की उपासना करो जो सर्वप्रेरक है और सबको पवित्र करने वाला है और व्यापक रूप से सर्वत्र स्थिर है ॥२॥

पव॑न्ते॒ वाज॑सातये॒ सोमाः॑ स॒हस्र॑पाजसः ।
गृ॒णा॒ना दे॒ववी॑तये ॥३॥

पदार्थः—उक्त विद्वान् (देववीतये) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (गृणानाः) स्तुति करते हुए (सहस्रपाजसः) अनन्त प्रकार के बलों वाले (सोमाः) सौम्य स्वभाव वाले (वाजसातये) धर्मयुद्धों में (पवन्ते) हमको पवित्र करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग ईश्वर पर विश्वास रख कर अनन्त प्रकार के कला-कौशलादि बलों से सम्पन्न होते हैं वे ही सब प्रजा को पवित्र करते हैं अर्थात् अपने ज्ञान से प्रजा की रक्षा करते हैं ॥३॥

उ॒त नो॒ वाज॑सातये॒ पव॑स्व बृह॒तीरिषः॑ ।
द्यु॒मदि॑न्दो सु॒वीर्य॑म् ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यवाले परमात्मन्! आप (द्युमत्) दीप्तिवाला (सुवीर्यम्) बल (पवस्व) हमको दें (उत) और (वाजसातये) युद्धों में (नः, बृहतीः, इषः) हमको बड़ी शक्ति प्रदान करें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमात्मा से बल और युद्धों में विजय प्राप्त करने की शक्ति की प्रार्थना की गई है ॥४॥

ते नः॑ सह॒स्रिणं॑ र॒यिं पव॑न्ता॒मा सु॒वीर्य॑म् ।
सु॒वा॒ना दे॒वास॒ इन्द॑वः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दवः) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा (देवासः) दिव्य शक्तिवाला (सुवानाः) सबको उत्पन्न करने वाला (सुवीर्यम्) सुन्दर बल को (आ, पवन्ताम्) भली भांति हमको दे और (ते) वह (सहस्रिणम्) अनन्त प्रकार के (रयिम्) ऐश्वर्य को (नः) हमको दे ॥५॥

भावार्थः—यहाँ 'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से एकवचन के स्थान में बहुवचन हुआ है इसलिये ईश्वर का ही ग्रहण समझना चाहिये, किसी अन्य का नहीं ॥५॥

अत्यां हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
विवारमव्यंमाशवः ॥६॥

पदार्थः—(**अत्याः**) सर्वत्र परिपूर्ण ["अतति सर्वमित्यत्य:" जो सर्वत्र परिपूर्ण हो उसका नाम अत्य है] (**हियानाः**) प्रार्थना किया गया (**हेतृभिः**) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियों के (**न**) समान (**वाजसातये**) धर्मयुद्धों में (**असृग्रम्**) हमारी रक्षा करे। (**विवारम्, आशवः**) जो शीघ्र ही अज्ञान को नाश करके ज्ञान का प्रकाश करने वाला और (**अव्यम्**) सबका रक्षक है उसकी हम उपासना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानस्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं और एकमात्र उसी का भरोसा रखते हैं, वे धर्मयुद्धों में सदैव विजयी होते हैं ॥६॥

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥

पदार्थः—(**धेनवः**) इन्द्रियाँ (**न**) जिस प्रकार (**वत्सं**) अपने प्रिय अर्थ की ओर जाती हैं उसी प्रकार (**वाश्राः**) जो वेदादि सब शास्त्रों की योनि है (**इन्दवः**) वह परमात्मा (**अभ्यर्षन्ति**) अपने उपासक की ओर जाता है (**गभस्त्योः, दधन्विरे**) और सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाता है ॥७॥

भावार्थः—उपासक पुरुष जब शुद्ध हृदय से ईश्वर की उपासना करता है तो ईश्वर का प्रकाश उसको आकर प्रकाशित करता है 'उपास्यतेऽनेनेत्युपासनम्' जिससे ईश्वर की समीपता लाभ की जाय उस कर्म का नाम उपासन कर्म है। समीपता के अर्थ यहां ज्ञान द्वारा समीप होने के हैं किसी देश द्वारा समीप होने के नहीं। इस लिए जब परमात्मा ज्ञान द्वारा समीप होता है तो उसका प्रकाश उपासक के हृदय को अवश्यमेव प्रकाशित करता है ॥७॥

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्राय**) जो धर्मप्रिय विद्वानों का (**जुष्टः**) संगी है, (**मत्सरः**) जो न्यायरूपी मद से मत्त है वह (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाला (**कनिक्रदत्**) सब को सदुपदेश दाता (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**अप, द्विषः, जहि**) जो हमारे राग द्वेषादि हैं उनको नाश करे ॥८॥

भावार्थः—जो लोग ईश्वरपरायण हो कर अपनी जीवनयात्रा करते हैं परमात्मा उन के रागद्वेषादि भावों को निवृत्त करता है ॥८॥

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥९॥

पदार्थः—(**अराव्णः**) दुष्टों को (**अपघ्नन्तः**) दारुण दण्ड देने वाला (**पवमानाः**) सत्कर्मियों को पवित्र करने वाला (**स्वर्दृशः**) सर्वद्रष्टा परमात्मा (**ऋतस्य**) सत्कर्म रूपी यज्ञ की (**योनौ**) वेदी में (**सीदत**) आकर विराजमान हो ॥९॥

भावार्थः—कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के यज्ञों में परमात्मा अपने सद्भावों से आकर सदैव विराजमान होता है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा के भाव सत्कर्मों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं इसी लिये आकर विराजना कथन किया गया है। वस्तुतः परमात्मा सदैव कूटस्थनित्य है, कहीं जाता-आता नहीं। इसी अभिप्राय से कहा है कि "तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके" (यजु: ४०।५।) वह अज्ञानियों की दृष्टि में चलता है और वास्तव में नहीं चलता, अज्ञानियों की दृष्टि में दूर है वास्तव में समीप; इस प्रकार वेद उसको सर्वत्र गतिरहित वर्णन करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह १३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य चतुर्दशसूक्तस्य १–८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१–३, ५, ७ गायत्री । ४, ८ निचृद्गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१॥

पदार्थः—(**सिन्धोः ऊर्मौ**) जिसने समुद्र की लहरों को (**अधिश्रितः**) निर्माण किया (**कारम्, बिभ्रत्, पुरुस्पृहम्**) जिसने सर्वजनों के मनोरथरूप इस कार्य ब्रह्माण्ड को बनाया (**कविः**) वही परमात्मा (**परि, प्रासिष्यदत्**) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥१॥

भावार्थः—उस परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की रचनाओं को बनाया है। कहीं महासागरों में अनन्त प्रकार की लहरें उठती हैं, कहीं हिमालय के उच्च शिखर नभोमण्डलवर्ती वायुओं से संघर्षण कर रहे हैं, एवं नाना प्रकार की रचनाओं का रचयिता वही परमात्मा है ॥१॥

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥२॥

पदार्थः—(**पञ्च, व्राताः**) पाँच ज्ञानेन्द्रियां (**सबन्धवः**) कर्मेन्द्रियों के साथ (**यदि, अपस्यवः**) जब ईश्वरपरायण हो जाती हैं तो (**गिरा**) परमात्मा की स्तुति से (**धर्णसिम्**) इस पृथिवी को (**परिष्कृण्वन्ति**) भूषित कर देती हैं ॥२॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी पुरुष जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों विषयों को हटा कर अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ईश्वर की ओर लगा देता है तो इस सम्पूर्ण संसार को अलंकृत करता है। तात्पर्य यह है कि स्वभावतः बहिर्मुख इन्द्रियों को जिनको "पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूः" (कठ. ४। १।) स्वयंभू विधाता ने स्वभावतः बाहर की ओर बहने वाली बनाया है, कोई एक धीर वीर पुरुष ही उनके वेग को बाहर से हटा कर उनको अन्तमुंखी बनाता है अन्य नहीं ॥२॥

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।
यदी गोभिर्वसायते ॥३॥

पदार्थः—(**यदि**) अगर (**विश्वेदेवाः**) सम्पूर्ण विद्वान् (**अस्य**) पूर्वोक्त (**शुष्मिणः**) बलसम्पन्न परमात्मा को (**गोभिः, वसायते**) इन्द्रियगोचर कर सकें (**आत्**) तदनन्तर वे सब देव (**अमत्सत**) उस को ध्यान का विषय बनाकर आनन्दित होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम्हारे इन्द्रिय तुमको स्वभाव से बहिर्मुख बनाते हैं; तुम यदि संयमी बन कर उनका संयम करो तो इन्द्रिय परमात्मा के स्वरूप को विषय करके तुम्हें आनन्दित करेंगे, इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है कि "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्" (क० ४।१।) कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख सकता है, यहां देखने के अर्थ व इन्द्रियगोचर करने के अर्थ मूर्त्तिमान् पदार्थ के समान देखने के नहीं, किन्तु जिस प्रकार निराकार और निरूप होने पर भी सुख-दुःखादिकों का अनुभव होता है इसी प्रकार अनुभव का विषय बनाने का नाम यहां देखना व इन्द्रियगोचर करना है। इसी अभिप्राय से "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" अर्थात् वह सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा देखा जा सकता है। सूक्ष्म बुद्धि से तात्पर्य यहाँ योगज सामर्थ्य का है अर्थात् चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा परमात्मा का अनुभव हो सकता है। इसी अभिप्राय से कहा है

कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" उस समय द्रष्टा के स्वरूप में स्थिति हो जाती है। इसी अभिप्राय से यहाँ कहा है कि "यदि गोभिर्वसायते" ॥३॥

निरिणानो विधावति जहच्छर्याणि तान्वा ।
अत्रा सञ्जिघ्नते युजा ॥४॥

पदार्थः—उक्त परमात्मा (**निरिणानः**) ज्ञानका विषय होता हुआ (**तान्वा**) अपने प्रकाश से (**द्वाराणि**) अपनी प्रकाशरश्मियों को छोड़ता हुआ (**विधावति**) जिज्ञासु के बुद्धिगत होता है (**अत्र, युजा**) उस परमात्मा में युक्त होकर (**सं, जिघ्नते**) उपासक लोग अज्ञानों का नाश करते हैं ॥४॥

भावार्थः—ध्यान का विषय हुआ वह परमात्मा जिज्ञासुओं के अन्तःकरणों को निर्मल करता है और जिज्ञासुजन उस की उपासना करते हुए अज्ञान को नाश करके परम गति को प्राप्त होते हैं ॥४॥

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**विवस्वतः**) विज्ञान वाले जिज्ञासु की (**नप्तीभिः**) चित्तवृत्तियों द्वारा (**शुभ्रः**) प्रकाशित होकर (**युवा**) समीपस्थ वस्तु के (**न**) समान (**मामृजे**) साक्षात्कार को प्राप्त होता है और वह साक्षात्कार (**गाः कृण्वानः**) इन्द्रियों को प्रसन्न करते हुए (**निर्णिजं न**) रूप के समान होता है ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने मन को शुद्ध करते हैं वे उस पुरुष का साक्षात्कार करते हैं। उन पुरुषों की चित्तवृत्तियाँ उसको हस्तामलकवत् साक्षाद्रूप से अनुभव करती हैं, अर्थात् शुद्ध मन द्वारा साक्षात् किये हुए परमात्मध्यान में फिर किसी प्रकार का भी संशय व विपर्यय ज्ञान नहीं होता ॥५॥

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या ।
वग्नुमियर्ति यं विदे ॥६॥

पदार्थः—(**अति, श्रिती**) [श्रितिमतिक्रान्तः अतिश्रिती" जो किसी अन्य वस्तु के आश्रित न हो उसका नाम अतिश्रिती] सबका आश्रय परमात्मा (**अण्व्या**) सूक्ष्म (**तिरश्चता**) तीक्ष्ण (**गव्या**) इन्द्रियों की वृत्तियों से (**जिगाति**) प्रकाश को प्राप्त होता है, (**यं**) जिसको (**वग्नुम्**) शब्दप्रमाण (**विदे**) जिज्ञासु के लिये (**इयर्ति**) प्रकट करता है ॥६॥

भावार्थ—जब धारणा ध्यानादि योगांगों से चित्त की वृत्तियाँ निर्मल होती हैं तो उक्त परमात्मा को विषय करती हैं । जो पुरुष शब्द प्रमाण पर विश्वास करते हैं वे साधनसम्पन्न वृत्तियों के द्वारा उनका अनुभव करते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

अ॒भि क्षि॒पः सम॑ग्मत म॒र्जय॑न्तीरि॒षस्पति॑म् ।
पृ॒ष्ठा गृ॑भ्णत वा॒जिनः॑ ॥७॥

पदार्थः—(क्षिपः) चित्तवृत्तियां (**अभि**) सब ओर से (**इषस्पतिम्**) जो सब ऐश्वर्यों का पति है उसको (**मर्जयन्तीः**) प्रकाशित करती हुई (**समग्मत**) समाधि अवस्था को प्राप्त होती हैं, और वहां (**वाजिनः**) सब बलों के (**पृष्ठा**) अधिकरण को (**गृभ्णत**) ग्रहण करती हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा सब पदार्थों का अधिकरण है अर्थात् उसी की सत्ता से सब पदार्थ स्थिर हो रहे हैं, उस बलस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार समाधि अवस्था के विना कदापि नहीं हो सकता ॥७॥

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑श॒द्विश्वा॑नि सोम॒ पार्थि॑वा ।
वसू॑नि याह्यस्म॒युः ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**दिव्यानि**) दिव्य (**पार्थिवानि**) पृथिवीलोक के (**विश्वानि, वसूनि**) सम्पूर्ण धनों के (**मर्मृशत्**) सहित (**अस्मयुः**) हमारे उद्धार की इच्छा करते हुए (परि, याहि) हमको प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थः—पार्थिवानि यह कथन यहाँ उपलक्षण मात्र है अर्थात् पृथिवी लोक अथवा द्युलोक के जितने ऐश्वर्य हैं उनको परमात्मा हमें प्रदान करे। इस सूक्त में परमात्मा के सर्वाश्रयत्व और सर्वदातृत्वादि अनेक प्रकार के गुणों का वर्णन किया है ॥८॥

नवम मण्डल में यह चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथाष्टर्चस्य पञ्चदशसूक्तस्य १—८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५, ८ निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब अन्य गुणों से परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं ॥

ए॒ष धि॒या या॒त्यण्व्या॒ शूरो॒ रथे॑भिरा॒शुभिः॑ ।
गच्छ॒न्निन्द्र॑स्य निष्कृ॒तम् ॥१॥

पदार्थ—(**एषः**) यह परमात्मा (**धिया, अण्व्या**) अपनी सूक्ष्म धारणाशक्ति से (**याति**) सर्वत्र प्राप्त हो रहा है (**रथेभिः, आशुभिः**) अपनी शीघ्रगामिनी शक्तियों से, (**इन्द्रस्य, निष्कृतं**) जीवात्मा के उद्धार के लिए (**शूरः**) ["शृणाति हन्तीति शूरः"] अविद्यादि दोषों को हनन करने वाला (**गच्छन्**) जगद्रचनारूप कर्म करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा जीवों को कर्मों का फल भुगाने के लिए इस संसाररूपी रचना को रचता है और वह अपनी विविध शक्तियों के द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है अर्थात् जिस-जिस स्थान में परमात्मा की व्यापकता है उस-उस स्थान में परमात्मा अनन्त शक्तियों के साथ विराजमान है ॥१॥

ए॒ष पु॒रू धि॑यायते बृह॒ते दे॒वता॑तये ।
यत्रा॒मृता॑स॒ आस॑ते ॥२॥

पदार्थः—(**एषः**) यह पूर्वोक्त परमात्मा (**पुरु, धियायते**) अनन्त विज्ञानों का दाता है (**बृहते, देवतातये**) सदैव संसार में देवत्व फैलाने का अभिलाषी है (**यत्र**) जिस ब्रह्म को प्राप्त होकर (**अमृतासः, आसते**) अमृतभाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्तकर्मा है, उसकी शक्तियों के पारावार को कोई पा नहीं सकता, इसी अभिप्राय से कहा है "तस्मिन्दृष्टे परावरे" उस परावर ब्रह्म के जानने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है और इसी अभिप्राय से "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इत्यादि वाक्यों में उपनिषत्कार ऋषियों ने भी कहा है कि उसकी शक्तियां असंख्यात हैं; उसी को जान कर मनुष्य अमृत पद को लाभ कर सकता हे अन्यथा नहीं ॥२॥

ए॒ष हि॒तो वि नी॑यते॒ऽन्तः शु॒भ्राव॑ता प॒था ।
यदी॑ तु॒ञ्जन्ति॒ भूर्ण॑यः ॥३॥

पदार्थः—(**यदि, भूर्णयः**) यदि उपासक लोग (**तुञ्जन्ति**) उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तो (**शुभ्रावता**) शुभ (**पथा**) मार्गद्वारा (**एषः, हितः**) उस हितकारक परमात्मा को (**अन्तः, विनीयते**) अन्तःकरण में स्थिर करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग यम-नियमों का पालन करते हैं वे अपने अन्तःकरण में परमात्मसत्ता का साक्षात्कार करते हैं और परम पद का लाभ करते हैं ॥३॥

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥४॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (शृङ्गाणि) सब ब्रह्माण्डों को (**दोधुवत्**) गतिशील करता है,(शिशीते) सर्वव्यापक है, (यूथ्यः) सबका पति है,(**वृषा**) कामनाओं को वृष्टि करने वाला है और (**ओजसा**) अपने पराक्रम से (**नृम्णा**) सब ऐश्वर्यों को (**दधानः**) धारण कर रहा है ॥४॥

भावार्थः—वही परमात्मा कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का चलाने वाला है, और उसी ने इन ब्रह्माण्डों में विद्युत् आदि शक्तियों को उत्पन्न करके अनेक प्रकार के आकर्षण-विकर्षण आदि गुणोंको उत्पन्न किया है । एकमात्र उसी की उपासना करने से मनुष्य सद्गति को लाभ कर सकता है ॥४॥

एष रुश्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥

पदार्थः—(**एषः, वाजी**) अनन्तबलवाला यह पूर्वोक्त परमात्मा (**रश्मिभिः**) दीप्तिमती (**शुभ्रेभिः**) निर्मल (**अंशुभिः**) प्रकाशरूप शक्तियों से (**ईयते**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है,(**सिन्धूनाम्**) स्यन्दनशील सब प्रकृतियों का (**पतिः, भवन्**) वह पति है ॥५॥

भावार्थः—प्रकृति परिणामिनी नित्य है, परमात्मा की कृति अर्थात् यत्न से प्रकृति परिणामभाव को धारण करती है उससे महत्तत्व और महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से पञ्चतन्मात्र; इस प्रकार सृष्टि की रचना होती है, इस अभिप्राय से उसको स्यन्दनशील अर्थात् बहने वाली प्रकृतियों का अधिपति कथन किया है । उक्त प्रकार से गुणों वाला परमात्मा उस पुरुष के हृदय में अपनी अनन्त शक्तियों का आविर्भाव करता है जो पुरुष अपनी अनन्य भक्ति से उसकी उपासना करता है ॥५॥

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥६॥

पदार्थः—(**एषः**) यह पूर्वोक्त परमात्मा (**वसूनि**) ऐश्वर्यों को (**पिब्दना**) छीनने वाले (**परुषा**) कठोर राक्षसों को (**अति, ययिवान्**) अतिक्रमण करके (**शादेषु**) युद्धों में भक्तों की (**अवगच्छति**) अनेक प्रकार से ज्ञानादिकों को देकर रक्षा करता है ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने पवित्र भावों से परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अवश्यमेव रक्षा करता है ॥६॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
प्रचक्राणं महीरिषः ॥७॥

पदार्थः—(**आयवः**) मनुष्य (**मर्ज्यं, एतम्**) ध्यान करने योग्य इस परमात्मा को (**द्रोणेषु**) अन्तःकरणों में रख कर (**उप, मृजन्ति**) उपासना करते हैं, (**प्रचक्राणं**) जो परमात्मा (**महीः, इषः**) बड़े भारी अन्नाद्यैश्वर्यों का दाता है ॥७॥

भावार्थः—उपासकों को चाहिए कि वे उपासनासमय में परमात्मा के विराट्स्वरूप का ध्यान करते हुए उसके गुणों द्वारा उसका उपासन करें अर्थात् उसकी शक्तियों का अनुसन्धान करते हुए उसके विराट्स्वरूप को भी अपनी बुद्धि में स्थिर करें ॥७॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

पदार्थः—(**एतं, त्यम, उ**) उस सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा को (**दश, क्षिपः**) दश इन्द्रियां और (**सप्त, धीतयः**) सात धारणादिवृत्तियाँ (**मृजन्ति**) प्रकट करती हैं (**स्वायुधं**) जो स्वतन्त्रसत्तावाला है और (**मदिन्तमम्**) सब को आनन्द देने वाला है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी स्वतन्त्र सत्ता से विराजमान है जब वह श्रेष्ठों का उद्धार और दुष्टों का दमन करता है तब उसे किसी शस्त्रादि साधन की आवश्यकता नहीं होती किन्तु उसका स्वरूप ही आयुध का काम करता है । इस प्रकार के स्वतन्त्रसत्तासम्पन्न परमात्मा को हृदय में धारण करने वाले अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥

नवम मण्डल में यह पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य षोडशसूक्तस्य १—८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पव- मानः सोमो देवता ॥ छन्दः--१ विराड् गायत्री । २, ८ निचृद्गायत्री ३---७ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सात्विकभाव को उत्पन्न करने वाले रसों का वर्णन करते हैं ॥

प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये ।
सर्गो न तक्त्येतशः ॥१॥

पदार्थः—(प्रसोतारः) हे जिज्ञासु लोगो ! (ते) तुम्हारे (मदाय) आनन्द के लिए और (घृष्वये) शत्रुओं के नाश के लिए (ओण्योः) द्यावा-पृथिवी के मध्य में (रसम्) सौम्य स्वभाव का देने वाला रस (सर्गः) बनाया है जो (एतशः न तक्ति) विद्युत् के समान तीक्ष्णता देने वाला है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम ऐसे रस का पान करो जिससे तुम में बल उत्पन्न हो और शत्रुओं पर विजयी होने के लिए तुम सिंह के समान आक्रमण कर सको। यहां इस रस के अर्थ किसी रसविशेष के नहीं किन्तु आह्लादजनक रसमात्र के हैं ॥१॥

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा ।
गोषामण्वेषु सश्चिम ॥२॥

पदार्थः—(दक्षस्य) चतुराई का देने वाला, (रथ्यम्) स्फूर्ति का देने वाला (अन्धसा, वसानम्) अन्नों से जिस की उत्पत्ति है, (गोषाम्) इन्द्रियों को (अण्वेषु) सूक्ष्मशक्तियों में बल उत्पन्न करने वाला वह रस (क्रत्वा, सश्चिम) कर्मों के द्वारा हम प्राप्त करें ॥२॥

भावार्थः— जीवों की प्रार्थना द्वारा ईश्वर उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम ऐसे रस की प्राप्ति की प्रार्थना करो जिस से तुम्हारी चतुराई बढ़े, तुम्हारी स्फूर्ति बढ़े और तुम्हारी इन्द्रियों की शक्तियाँ बढ़ें और तुम ऐश्वर्यसम्पन्न होओ ॥२॥

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३॥

पदार्थः – हे परमात्मन् ! आप (पवित्रे) श्रेष्ठ लोगों के लिए (सोमं) सोम रस को उत्पन्न करो जो (अनप्तम्) क्रूर स्वभाव वालों के लिए अप्राप्य है और (अप्सु) जिसका संस्कार दूध में किया जाता है और जो (दुष्टरम्) आसुरी सम्पत्ति वालों के लिए दुस्तर है (इन्द्राय) कर्मयोगी के (पातवे) पीने के लिए, ऐसे रस को तुम पवित्र बनाओ ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम दैवी सम्पत्ति के देने वाले अर्थात् सौम्य स्वभाव के बनाने वाले सोम रस की प्रार्थना करो ताकि तुम कर्मयोगियों को कर्मों में तत्पर करने के लिए पर्याप्त हो ।

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष अन्नादि ओषधियों के रसों को पान करके अपने कामों में तत्पर होते हैं वे पूरे-पूरे कर्मयोगी बन सकते हैं और जो लोग मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं वे अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को नष्ट भ्रष्ट करके स्वयं भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥३॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४॥

पदार्थः—(चेतसा, प्र, पुनानस्य) चित्त को पवित्र करने वाले द्रव्य का जो (सोमः) सोमरस है वह (पवित्रे, अर्षति) पवित्र लोगों में ज्ञान को उत्पन्न करता है फिर वह मनुष्य (क्रत्वा) शुभकर्मों को करके (सधस्थम्) सद्गति को (आसदत्) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—सोमरस, जो कि पवित्र और सुन्दर द्रव्यों से निकाला गया है अर्थात् जो स्वभाव को सौम्य बनाते हैं उन द्रव्यों का रस मनुष्य में शुभ बुद्धि को उत्पन्न करता है ॥४॥

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।
महे भराय कारिणः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे शूरवीर ! मैंने (त्वा) तुम्हारे लिये (नमोभिः) अन्नादि द्वारा (इन्दवः, सोमाः) परमैश्वर्य के देने वाले और सौम्यस्वभाव बनाने वाले सुन्दर रस (प्रासृक्षत) उत्पन्न किये हैं जो कि (कारिणः) कर्मयोगी पुरुष के लिए (महे, भराय) अत्यन्त पुष्टि करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर लोगो ! मैंने तुम्हारे लिए अनन्त प्रकार के रसों को उत्पन्न किया है जिनका उपभोग करके तुम आह्लादित होकर अन्यायकारी शत्रुओं के विजय के लिए शक्ति-सम्पन्न हो सकते हो ॥५॥

अब इस बात को कथन करते हैं कि किस प्रकार का शूरवीर युद्ध
में उपयुक्त हो सकता है ॥

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६॥

पदार्थः—(**अव्यये, रूपे**) निराकार परमात्मा के स्वरूप के विज्ञान से (**पुनानः**) जिसने अपने आप को पवित्र किया है (**विश्वाः, श्रियः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को (**अभ्यर्षन्**) धारण करता हुआ भी (**न, गोषु, तिष्ठति**) जो इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होता वही (**शूरः**) वीर कहला सकता है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो ! तुम सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को भोगते हुए भी इन्द्रियों के वशीभूत मत होओ, क्योंकि इन्द्रियों के वशवर्ती लोग शूरवीरता के धर्म को कदापि धारण नहीं कर सकते इस लिए शूरवीरों के लिए संयमी बनना अत्यावश्यक है ॥६॥

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।
वृथा पवित्रे अर्षति ॥७॥

पदार्थः—(**पवित्रे**) उस पात्र में (**पिप्युषी**) तृप्ति करने वाली (**वेधसः सुतस्य, धारा**) माता के दूध की या सोमादि रस की धारा (**वृथा, अर्षति**) वृथा ही गिरती है जो इन्द्रिय-संयमी नहीं है, जिस तरह (**दिवः, न, सानु**) अन्तरिक्ष से उन्नत शिखर पर मेघ की धारा गिर कर व्यर्थ ही हो जाती है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो ! तुम संयमी बनो, इन्द्रियारामी मत बनो । इन्द्रियारामी पुरुषों में जो सोमादि रसों की धारायें पड़ती हैं वे मानो इस प्रकार पड़ती हैं जिस प्रकार चोटी के ऊपर पड़ता हुआ जल इधर-उधर बह जाता है और उस में कोई विचित्र भाव उत्पन्न नहीं करता इसी प्रकार असंयमियों का दुग्धादि रसों का उपभोग करना है । यहां चोटी पर जल गिरने के दृष्टान्त से परमात्मा ने स्पष्टरीति से बोधन कर दिया कि जो पुरुष वीर्य ही का संयम नहीं करते न वे धीर वीर बन सकते हैं न वे ज्ञानी, विज्ञानी व ध्यानी बन सकते हैं । उक्त सब प्रकार की पदवियों के लिए मनुष्य का संयमी बनना अत्यन्त आवश्यक है । इसी अभिप्राय से योगसूत्र में कहा है कि 'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः' (यो० साध० ३८) ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठा अर्थात् इन्द्रियसंयमी बनने से पुरुष को वीर्य का लाभ होता है ॥७॥

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।
अव्यो वारं वि धावसि ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**त्वम्**) आप (**आयुषु**) मनुष्यों में (**विपश्चितं, तना**) विद्वान् को भली भांति (**पुनानः**) पवित्र करते हुए (**अव्यः**) रक्षा के लिए (**वारम्**) उस वरणशील को (**विधावसि**) प्राप्त होते हो ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा को वरण करता है अर्थात् एकमात्र उसी पर विश्वास रख कर उसी को उपास्य देव ठहराता है उस की परमात्मा अवश्यमेव रक्षा करता है । वार शब्द का अर्थ यहां यह है कि 'वृणुते इति वारः' जो वरण करे वह वार है; इसी प्रकार 'सूते चराचरं जगदिति सोमः' इस मन्त्र में सोम के अर्थ परमात्मा के हैं । तात्पर्य यह है कि उक्त परमात्मा की उपासना करने वाला पुरुष सदैव कृतकार्य होता है इस लिए उपासना के लिए परमात्मपरायण होना आवश्यक है ॥८॥

नवम मण्डल में यह सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य १--८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३---८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उपासक के हृदय में परमात्मा का प्रकाश कथन करते हैं ॥

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रमाशवः ॥१॥

पदार्थः—(**सोमाः**) उक्त सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (**वृत्राणि, घ्नन्तः**) अज्ञानों का नाश करता हुआ ["वृणोत्याच्छादयत्यात्मानमिति वृत्रमज्ञानम्"] (**भूर्णयः**) शीघ्रगतिशील (**आशवः**) सर्वव्यापक [अश्नुते व्याप्नोति सर्वमित्याशुः] (**सिन्धवः, प्रनिम्नेन, इव,**) नदियाँ जैसे शीघ्रगतिशील नीचे की ओर जाती हैं उसी प्रकार वह (**असृग्रम्**) भक्तों के हृदय में प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थः—जो लोग शुद्धहृदय से उसकी उपासना करते हैं और यम-नियमों द्वारा अपने आत्मा को संस्कृत करते हैं उनके हृदय में अतिशीघ्र परमात्मा का प्रकाश उत्पन्न होता है ॥१॥

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।
इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥२॥

पदार्थः—(इन्दवः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (सोमासः) परमात्मा (अभि, सुवानासः) भक्तों से सेवन किया गया (इन्द्रम्) सेवक को ऐश्वर्यसम्पन्न करके (अक्षरन्) दया-वृष्टि से आर्द्र करता है जिस प्रकार (वृष्टयः पृथिवीम्, इव) वृष्टियां पृथिवी को आर्द्र करती हैं, इस प्रकार सबको आर्द्र करता है ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार वर्षाकाल की वृष्टियां धरातल को सिंक्त कर के नाना प्रकार के अंकुर उत्पन्न करती हैं इसी प्रकार परमात्मा की कृपा-दृष्टियां उपासकों के हृदय में नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञानादिभावों को उत्पन्न करती हैं ॥२॥

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३॥

पदार्थः—(अत्यूर्मिः) विघ्न पैदा करने वाली सम्पूर्ण संसार की बाधाओं को अतिक्रमण करने वाला (मत्सरः) प्रभुता के अभिमान वाला (मदः) हर्षप्रद (सोमः) उक्त परमात्मा (रक्षांसि, विघ्नन्) दुराचारियों को नष्ट करता हुआ और (देवयुः) सत्कर्म्मियों को चाहता हुआ (पवित्रे, अर्षति) जो कि उपासना द्वारा पात्रता को प्राप्त है, उसमें विराजमान होता है ॥३॥

भावार्थः—जिस पुरुष ने ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा अपने आत्मा को संस्कृत किया है वह ईश्वर के ज्ञान का पात्र कहलाता है, उक्त पात्र के हृदय में परमात्मा अपने ज्ञान को अवश्यमेव प्रकट करता है जैसा कि “यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्” (क०, ३।२३।) जिसको यह पात्र समझता है उसको अपना आत्मा समझकर स्वीकार करता है ॥३॥

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।
उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

पदार्थः—वह पूर्वोक्त परमात्मा (कलशेषु, आ, धावति) [कलं शवति इति कलशः] वेदादिवाक्यों में भली भांति वाच्यरूप से विराजमान है और (पवित्रे, परिषिच्यते) पात्र में अभिषेक को प्राप्त होता है और (उक्थैः, यज्ञेषु, वर्धते) स्तुति द्वारा यज्ञों में प्रकाशित किया जाता है ॥४॥

भावार्थः—जब वेदवेत्ता लोग मधुर ध्वनि से यज्ञों में उक्त परमात्मा का स्तवन करते हैं तो मानो उसका साक्षात् रूप भान होने लगता है ॥४॥

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् ।
इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्री, रोचना, अति) आप तीनों लोकों को अतिक्रमण करके (रोहन्, न) सर्वोपरि विराजमान होकर (दिवं, भ्राजसे) द्युलोक को प्रकाशित करते हैं (न) और (इष्णन्) सर्वत्र गतिशील होकर (सूर्यम्, चोदयः) सूर्य की भी प्रेरणा करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की सत्ता से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनों लोक स्थिर हैं और उसी की सत्ता में सूर्य, चन्द्रमा आदि तेजस्वी पदार्थ सब स्थिर हैं। अर्थात् उसी के नियम में विराजमान हैं ‘भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः’ (क० २।६) ॥५॥

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः ।
दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥६॥

पदार्थः—(कारवः) कर्मकाण्डी और (चक्षसि, प्रियं, दधानाः) उस सर्वद्रष्टा परमेश्वर में प्रेम को धारण करते हुए (विप्राः) विद्वान् लोग (यज्ञस्य, मूर्धनि) यज्ञ के प्रारम्भ में (अभ्यनूषत) उस परमात्मा की भली-भांति स्तुति करते हैं ॥६॥

भावार्थः—यज्ञ के प्रारम्भ में उद्गाता आदि लोग पहले परमात्मा के महत्त्व का गायन करके फिर यज्ञ के अन्य कर्मों का आरम्भ करते हैं ॥६॥

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
मृजन्ति देवतातये ।७॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले (विप्राः नरः) विद्वान् लोग (देवतातये) यज्ञ के लिए (तम्, उ) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट (वाजिनम्) अन्नादि ऐश्वर्य के देने वाले (त्वा) आपको (धीभिः) अपनी बुद्धियों से (मृजन्ति) बुद्धि की वृत्ति का विषय करते हैं ॥७॥

भावार्थः—याज्ञिक लोग जब ‘यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्’ इत्यादि मंत्रों का पाठ करते हैं, केवल पाठ ही नहीं किन्तु उसके वाच्यार्थ पर दृष्टि देकर

तत्त्व का अनुशीलन करते हैं तब परमात्मा का साक्षात्कार होता है । इसी अभिप्राय से कहा है कि 'धीभिः त्वा मृजन्ति' अर्थात् बुद्धिमान् तुम्हारा परिशीलन करते हैं ॥७॥

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप हमारे इस यज्ञ में (**मधोः, धाराम्, अनुक्षर**) प्रेम की धारा बहाइये, (**तीव्रः**) आप गतिशील हैं और (**चारुः**) सुन्दर हैं (**ऋताय, पीतये**) सत्य की प्राप्ति के लिये (**सधस्थम्, आसदः**) यज्ञ में स्थित हुए हमको स्वीकार करिये ॥८॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मों में स्थिर हैं और सत्कर्मों के प्रचार के लिए यज्ञादि कर्म करते हैं उनके उत्साह को परमात्मा अवश्यमेव बढ़ाता है ॥८॥

नवम मण्डल में यह सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य अष्टादशस्य सूक्तस्य १—७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ४ निचृद्गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ३, ५, ६ गायत्री । ७ तिराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब विभूतिवाली वस्तुओं में परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं ॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

पदार्थः—वह आप (**परि सुवानः**) [परि सर्वं सूत इति परि सुवानः] सर्वोत्पादक हैं (**गिरिष्ठा**) [गृणाति शब्दं करोतीति गिरिः] आप विद्युदादि पदार्थों में स्थित हैं (**पवित्रे**) पवित्र पदार्थों में स्थित हैं (**सोमः**) सौम्य स्वभाव वाले हैं (**अक्षाः**) [अक्षति व्याप्नोति सर्वमित्यक्षः] और सर्वव्यापक हैं, और (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (**असि**) हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा विद्युदादि सब शक्तियों में विराजमान है, क्योंकि वह सर्वव्यापक है और जो-जो विभूति वाली वस्तु हैं उन में सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाला परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यापकरूप से परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि विभूति वाली वस्तुओं में उसकी अभिव्यक्ति विशेषरूप से पाई जाती है ॥१॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**त्वं, विप्रः**) [विप्राति क्षिप्नोतीति विप्रः] आप सब के प्रेरक हैं और (**त्वं, कविः**) [कवते जानाति सर्वमिति कविः] आप सर्वज्ञ हैं (**मधु, प्रजातम्, अन्धसः**) और अन्नादिकों में रस आप ही ने उत्पन्न किया है और (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा धारण कराने वाले (**असि**) आप ही हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्माने अपनी विचित्र शक्तियों से नानाविध रस उत्पन्न किये हैं, और नानाप्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न किये हैं । वस्तुतः परमात्मा ही सब ऐश्वर्यों का अधिष्ठान और सब रसों की खान है ॥२॥

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**तव, पीतिम्**) आपकी तृप्ति को (**सजोषसः**) परस्पर प्रेम करने वाले (**विश्वे, देवासः**) सब विज्ञानी लोग (**आशत**) पाते हैं, (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (**असि**) आप हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के आनन्द को विज्ञानी लोग ही वस्तुतः पा सकते हैं अन्य नहीं, कारण यह कि विविध प्रकार के ज्ञान के विना उसका आनन्द मिलना अति कठिन है ॥३॥

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे ।
मदेषु सर्वधा असि ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**विश्वानि**) सब (**वार्या**) [वरीतुं योग्यानि वार्याणि] प्रार्थनीय (**वसूनि**) धन रत्नादिकों को (**हस्तयोः, आदधे**) विज्ञानी लोगों के हस्तगत कर देता है वही (**मदेषु**) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) है ॥४॥

भावार्थः—जो सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने हस्तगत करना चाहते हो तो ईश्वर के उपासक बनो ॥४॥

य इ॒मे रोद॑सी म॒ही सं मा॒तरे॑व॒ दोह॑ते ।
मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमेश्वर (**मातरा, इव**) जीवों की माता के समान (**इमे, महो, रोदसी**) इस महान् आकाश और पृथिवी लोक से (**सं, दोहते**) दूध के समान नाना प्रकार के धन रत्नादिकों को दुहता है (**मदेषु**) वही परमात्मा हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) है ॥५॥

भावार्थः—माता शब्द यहां उपलक्षणमात्र है। वास्तव में भाव यह है कि जीवों की माता-पिता के समान जो पृथिवीलोक और द्युलोक हैं इन से नानाविध भोग पैदा करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥५॥

परि॒ यो रोद॑सी उ॒भे स॒द्यो वाजे॑भि॒रर्ष॑ति ।
मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**उभे, रोदसी**) पृथिवी और आकाश इन दोनों लोकों में (**वाजेभिः पर्यर्षति**) ऐश्वर्यों के सहित व्याप्त है वही (**मदेषु**) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा के ऐश्वर्य से कोई स्थान भी खाली नहीं तथापि प्राकृत ऐश्वर्यों का स्थान जैसा द्युलोक और पृथिवी लोक है, ऐसा अन्य नहीं। इसी भाव से इन दोनों का वर्णन विशेषरीति से किया है ॥६॥

स शु॒ष्मी क॒लशे॒ष्वा पु॑ना॒नो अ॑चिक्रदत् ।
मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥७॥

पदार्थः—(**शुष्मी**) ओजस्वी और (**पुनानः**) सब को पवित्र करने वाला (**सः**) वह परमात्मा (**कलशेषु**) [कलं शवन्ति इति कलशा वैदिकशब्दाः] वैदिक शब्दों में (**अचिक्रदत्**) बोलता है और (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) वही है ॥७॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमात्मा के अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक मूर्धस्थानी रूपकालंकार से माने गये हैं इसी प्रकार उसके शब्दों की भी रूपकालंकार से कल्पना की गयी है। वास्तव में वह परमात्मा 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' कि वह शब्दस्पर्शादिगुणों से रहित है और अव्यय = अविनाशी है, इत्यादि वाक्यों द्वारा शब्दादि गुणों से सर्वथा रहित वर्णन किया गया है। उपनिषदों का यह भाव भी 'कि वह निराकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है 'सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' (यजु०, ४०।८) इत्यादि वेदमन्त्रों से लिया गया है ॥७॥

नवम मण्डल में यह अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशतितमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४ गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं ॥

यत्सो॑म चि॒त्रमु॒क्थ्यं॑ दि॒व्यं पार्थि॑वं॒ वसु॑ ।
तन्नः॑ पुना॒न आ भ॑र ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**यत्**) जो (**चित्रम्**) अद्भुत (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय (**दिव्यम्**) द्युलोकसम्बन्धी तथा (**पार्थिवं**) पृथिवीसम्बन्धी (**वसु**) धनरत्नादि ऐश्वर्य है (**तत्**) उससे (**नः**) हमको (**पुनानः**) पवित्र करते हुए (**आभर**) परिपूर्ण होने की शिक्षा दीजिये ॥१॥

भावार्थः—इसमें परमात्मा से विविध धनादि ऐश्वर्य पाने के लिये शिक्षा की प्रार्थना है ॥१॥

युवं हि स्थः॒ स्व॑र्पती॒ इन्द्र॑श्च सोम॒ गोप॑ती ।
ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! आप (**च**) और (**इन्द्रः**) अध्यापक (**युवम्, हि**) ये दोनों (**स्वर्पती**) सुख के पति (**स्थः**) हैं और (**गोपती**) वाणियों के पति हैं और (**ईशाना**) शिक्षा देने में समर्थ हैं (**धियः, पिप्यतं**) आप दोनों हमारी बुद्धि को उपदेश द्वारा बढ़ाइये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों को प्रार्थना द्वारा यह शिक्षा दी है कि तुम अपने अध्यापकों से और ईश्वर से सदैव शुभ शिक्षा की प्रार्थना किया करो ॥२॥

वृषा॑ पुना॒न आ॒युषु॑ स्त॒नय॒न्नधि॑ ब॒र्हिषि॑ ।
हरिः॒ सन्योनि॒मास॑दत् ॥३॥

पदार्थः—(**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला (**आयुषु, पुनानः**) सब मनुष्यों को पवित्र करता हुआ (**अधि, बर्हिषि, स्तनयन्**) प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कारणों को उत्पन्न करता हुआ वह परमेश्वर (**हरिः, सन्**) अज्ञानादिकों का नाश करता हुआ (**योनिम्, आसदत्**) प्रकृतिरूप योनि को प्राप्त होता है ।।३।।

भावार्थः—परमात्मा जब प्रकृति के साथ मिलता है अर्थात् अपनी कृति से प्रकृति में नाना प्रकार की चेष्टाएँ उत्पन्न करता है तो प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कार्य उत्पन्न होते हैं अर्थात् सूक्ष्म भूतों के कारण उत्पन्न होते हैं, इस कार्यावस्था में प्रकृतिरूप योनि अर्थात् उपादान कारण का परमात्मा आश्रयण करता है, जैसा कि 'योनिश्चेह गीयते' (वे० १।४।२७।) इस व्याससूत्र में भी योनिनाम प्रकृति का स्पष्ट है ।।।३।।

अवा॑वशन्त धी॒तयो॑ वृष॒भस्याधि॒ रेत॑सि ।
सु॒नोर्व॒त्सस्य॑ मा॒तरः॑ ।।४।।

पदार्थः—(**धीतयः**) सात प्रकृतियाँ (**वृषभस्य**) सब कामप्रद परमात्मा के (**अधिरेतसि**) कार्य में (**अवावशन्त**) संगत होती हैं (**सूनोः, वत्सस्य**) जैसे वत्स के लिए (**मातरः**) गाय संगत होती हैं ।।४।।

भावार्थः—गौ अपने बच्चे को दुग्ध पिला कर जिस प्रकार परिपुष्ट करती है इसी प्रकार प्रकृति अपने इस कार्यरूप ब्रह्माण्ड को अपने परमाण्वादि दुग्धों द्वारा परिपुष्ट करती है । तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है, परमात्मा निमित्त कारण है और यह संसार वत्ससमान प्रकृति और वृषभरूपी पुरुष का कार्य है ।।४।।

कु॒विद्वृ॑षण्यन्ती॑भ्यः पुना॒नो गर्भ॑मा॒दध॑त् ।
याः शु॒क्रं दु॑ह॒ते पयः॑ ।।५।।

पदार्थः—(**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा ने (**वृषण्यन्तीभ्यः**) प्रकृतियों से (**कुविद्, गर्भम्**) बहुत से गर्भ को (**आदधत्**) धारण किया (**याः**) जो प्रकृतियाँ (**शुक्रं, पयः**) सूक्ष्म भूतों से कार्यरूप ब्रह्माण्ड को (**दुहते**) दुहती हैं ।।५।।

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि जलादि सूक्ष्म भूतों से यह ब्रह्माण्ड स्थूलावस्था में आता है । पञ्चतन्मात्रा के कार्य जो पांच सूक्ष्म भूत उन्हीं का कार्य यह सब संसार है, जैसा कि 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी (तै० २।१।) इत्यादि वाक्यों में निरूपण किया है कि परमात्मारूपी निमित्त कारण से प्रथम आकाशरूप तत्त्व का आविर्भाव हुआ जो एक अतिसूक्ष्मतत्त्व है, और जिसका शब्द गुण है, फिर उस से वायु और वायु के संघर्षग से अग्नि और अग्नि से फिर जल आविर्भाव में अर्थात् स्थूलावस्था में आया । उसके अनन्तर पृथिवी ने स्थूल रूप को धारण किया, यह कार्यक्रम है जिसको उक्त मन्त्र ने वर्णन किया है ।।५।।

उप॑ शिक्षापत॒स्थुषो॑ भि॒यस॒मा धे॑हि॒ शत्रु॑षु ।
पव॑मान वि॒दा र॒यिम् ।।६।।

पदार्थः—(**पवमान**) 'पवत इति पवमानः संबुद्धौ तु पवमान' हे सब को पवित्र कराने वाले भगवन् ! आप (**अपतस्थुषः, उपशिक्ष**) जो आप के समीप में रहने वाले हैं उनको शिक्षा दीजिये और (**शत्रुषु भियसम्, आधेहि**) शत्रुओं में भय उत्पन्न करिये और (**विदा, रयिम्**) उनके धन को अपहरण कर लीजिये ।।६।।

भावार्थः—मिदत्रल से तात्पर्य यहां उस दल का है जो न्यायकारी और दीनों पर दया और प्रेम करने वाला हो, शत्रुदल से तात्पर्य उस दल का है जो "शातयतीति शत्रुः" शुभगुणों का नाश करने वाला हो । इस लिए उक्त मन्त्रार्थ में अन्याय का दोष नहीं, क्योंकि न्याय यही चाहता है कि दैवी सम्पत्ति के गुण रखने वाले वृद्धि को प्राप्त हों और आसुरी सम्पत्ति के रखने वाले नाश को प्राप्त हों ।।६।।

नि शत्रोः॑ सोम॒ वृष्ण्यं॒ नि शुष्मं॒ नि वय॑स्तिर ।
दू॒रे वा॑ स॒तो अन्ति॑ वा ।।७।।

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**शत्रोः**) उस शत्रु के (**वृष्ण्यं**) बल को (**नि तिर**) नाश करिये और (**नि, शुष्मन्**) तेज को तथा (**वयः नि**) अन्नादि ऐश्वर्य को नाश करिये जो शत्रु (**दूरे सतः**) दूर में विद्यमान है (**वा, अन्ति**) वा समीप में ।।७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों के भावद्वारा अन्यायकारी शत्रुओं के नाश करने का उपदेश किया है । जिस देश में अन्यायकारियों के नाश करने का भाव नहीं रहता, वह देश कदापि उन्नतिशील नहीं हो सकता ।।७।।

नवम मण्डल में यह उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ सप्तर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ४–७ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

इस सूक्त में वेदवेत्ताओं में बलप्रदान का कथन करते हैं ॥

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**कविः**) मेधावी है और (**अव्यः**) सबका रक्षक है (**देववीतये**) विद्वानों की तृप्ति के लिये (**अर्षति**) ज्ञान को देता है, (**साह्वान्**) सहनशील है और (**विश्वाः, स्पृधः**) सम्पूर्ण दुष्टों को संग्रामों में (**अभि**) तिरस्कृत करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा विद्वानों को ज्ञानप्रदान से और न्यायकारी सैनिकों को बलप्रदान से तृप्त करता है ॥१॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥२॥

पदार्थः—(**सः, हि, ष्म**) वही (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**जरितृभ्यः**) अपने बलहीन उपासकों को (**आ**) भली प्रकार (**सहस्रिणम्**) हजारों प्रकार के (**गोमन्तम्**) बुद्धि के सहित (**वाजिनम्**) बलों को (**इन्वति**) देता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा परमात्मपरायण पुरुषों को अनन्त प्रकार का बल और बुद्धि प्रदान करता है ॥२॥

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**चेतसा**) हमारे मन के अनुकूल (**विश्वानि**) आप सब प्रकार के धनों को (**परिमृशसे**) देते हो (**मती, पवसे**) हमारी बुद्धियों को स्तुतियों से पवित्र करते हो (**सः, नः**) सो आप हमारे लिए (**श्रवः, विदः**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को दीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मपरायण पुरुषों की परमात्मा सब प्रकार की रक्षा करता है और उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥३॥

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**मघवद्भ्यः**) जो आप के उपासक धनादि ऐश्वर्यसम्पन्न हैं उनके (**रयिं, ध्रुवम्**) धन को अचल सुरक्षित कीजिये और (**बृहद्, यशः**) अत्यन्त यश को (**अभ्यर्ष**) दीजिये और (**इषं, स्तोतृभ्यः, आभर**) जो आप के स्तोता हैं उनके लिए धनादि ऐश्वर्य दीजिये ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सदाचारी और संयमी पुरुषों के धनादि ऐश्वर्य और यश को दृढ़ करता है ॥४॥

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**त्वं, राजा इव**) आप राजा की तरह (**सुव्रतः**) सुकर्मा हैं और (**गिरः, आविवेशिथ**) वेदवाणियों में प्रविष्ट हैं (**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाले हैं और (**वह्ने**) हे सबके प्रेरक ! आप (**अद्भुत**) नित्य नूतन हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सब नियमों का नियन्ता है, नियम पालने की शक्ति मनुष्यों में उसी की कृपा से आती है ॥५॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

पदार्थः—(**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**अप्सु**) लोक-लोकान्तर में विद्यमान है और (**वह्निः**) सब का प्रेरक है और (**दुष्टरः**) दुराधर्ष है (**गभस्त्योः**) अपने प्रकाश से (**मृज्यमानः**) स्वयं प्रकाशित है (**चमूषु, सीदति**) न्यायकारियों की सेना में स्वयं विराजमान होता है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा के भाव सर्वत्र भावित हैं तथापि जैसे न्यायकारी सम्राटों की सेनाओं में उनके रौद्र, वीर, भयानकादि भाव प्रस्फुटित होते हैं ऐसे अन्यत्र नहीं ॥६॥

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (क्रीळुः) आप क्रीडनशील हैं (**मखः, न, मंहयुः**) यज्ञ के समान दानी हो (**पवित्रं, गच्छसि**) पवित्र सत्कर्मी मनुष्य को प्राप्त होते हो (**स्तोत्रे, सुवीर्यं, दधत्**) वेदादि सच्छास्त्रों में अपना बल प्रदान करते हो ॥७॥

भावार्थः—संसार की यह विविध प्रकार की रचना जिस के पारावार को मनुष्य मन से भी नहीं पा सकता वह परमात्मा के आगे एक लीला-मात्र है ॥७॥

नवम मण्डल में यह बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकविंशस्य सूक्तस्य १—७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ विराड् गायत्री । २, ७ गायत्री । ४–६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब विराट् को परमात्मा के रथरूप से वर्णन करते हैं ॥

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः ।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थः—(**एते, सोमाः**) हे परमात्मन् ! आप (**धावन्ति**) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, (**इन्दवः**) स्वप्रकाश से प्रकाशित हैं, (**इन्द्राय, घृष्वयः**) विद्वानों द्वारा स्तुत्य हैं, (**मत्सरासः**) प्रभुता के अभिमान से युक्त हैं और (**स्वर्विदः**) सुख के देने वाले हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा स्वयंप्रकाश और अपने प्रभुत्वभाव से सर्वत्रैव विराजमान है ॥१॥

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः ।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥२॥

पदार्थः—(**प्रवृण्वन्तः**) जो लोगों से भजन किया जाता, (**अभियुजः**) जो दूसरों का प्रेरक,(**सुष्वये**) सेवक के लिए (**वरिवोविदः**) धन देने वाला,(**स्वयं**) स्वसत्ता से विराजमान (**स्तोत्रे वयस्कृतः**) और स्तोता के लिए अन्नादिकों को देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—जिन लोगों को परमात्मा की विविध प्रकार की रचना पर विश्वास है, और परमात्मा की अनन्यभक्ति करते हैं; उनको परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥३॥

पदार्थः—उक्त परमात्मा में विविध प्रकार के सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह(**सिन्धोः, ऊर्मा**) जिस तरह सिन्धु में से लहरें उठती हैं इस प्रकार इसी से पैदा होकर इसी में समा जाते हैं । वे ग्रह उपग्रह कैसे हैं (**वृथा क्रीळन्तः**) जो अनायास से भ्रमण करते हैं (**इन्दवः**) जिस तरह प्रकाशरूप अग्नियां (**सधस्थम्**) यज्ञकुण्ड में आके प्राप्त होती हैं इस प्रकार (**अभि एकमित्**) वह एक ही परमात्मा में प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में जितने ग्रह, उपग्रह हैं वे सब परमात्मा को ही आश्रित करते हैं ॥३॥

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत ।
हिता न सप्तयो रथे ॥४॥

पदार्थः—जिस प्रकार (**सप्तयः**) सात सूर्य की किरणें (**रथे**) इस विराट्रूपी रथ में (**हिताः**) निहित हैं (**न**) इसी प्रकार (**एते, पवमानासः**) सब को पवित्र करते हुए ये (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वार्या**) ब्रह्माण्ड (**आशत**) परमात्मा में निवास करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार उपग्रह सूर्य आदि ग्रहों के इतस्ततः भ्रमण करते हैं इसी प्रकार सब लोक-लोकान्तर इस विराट् के इतस्ततः परिभ्रमण करते हैं ॥४॥

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे ।
यो अस्मभ्यमरावा ॥५॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) इस विराट् में (**पिशङ्गम्**) अनेक वर्णों को (**दधाता**) धारण करते हुए (**इन्दवः**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (**वेनम्, आदिशे**) उस परमात्मा का आश्रय लेते हैं (**यः**) जो परमात्मा (**अस्मभ्यम्, अरावा**) हमारे लिए सब कामनाओं का देने वाला हैं ॥५॥

भावार्थः—उक्त कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसी निराकार परमात्मा के आधार पर स्थित है ॥५॥

ऋभुर्न रथ्यं नवन्दधाता केतमादिशे ।
शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥६॥

पदार्थः—(**शुक्राः**) हे पवित्रकारक परमात्मन् ! आप (**रथ्यम्, नवम्**) नये घोड़े को (**दधाता**) वश में रखते हुए (**ऋभुर्न**) सारथी की तरह (**केतम्, आदिशे**) आप सबको वश में करके ज्ञानादि ऐश्वर्य देते हैं । (**अर्णसा**) आप हमको धनाद्यैश्वर्य देकर (**पवध्वं**) पवित्र करिये ॥६॥

भावार्थः—जीव करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र है । ईश्वर कर्मों के भुगाने में उसे ऐसे नियमों में निगड़ित रखता है जिसका वह अतिक्रमण कदापि नहीं कर सकता । बड़े-बड़े सम्राटों को भी कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है । इसी अभिप्राय से यह कहा है कि जिस प्रकार घोड़े को सारथी अपने अधीन रखता है इसी प्रकार परमात्मा जीवों को अपने अधीन रखता है ॥६॥

एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत ।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥७॥

पदार्थः—(**वाजिनः**) सब प्रकार के ऐश्वर्य वाला (**त्ये, एते, उ**) वही पूर्वोक्त परमात्मा(**अववीशन्**) सबको वश में रखता हुआ (**सतः,मतिम्**) सत्कर्मियों की बुद्धि को (**असाविषुः**) शुभ मार्ग की ओर लगाता हुआ (**पराम्, काष्ठाम्, अक्रत**) परम काष्ठा को प्राप्त कराता है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की ओर झुकते हैं अर्थात् यमनियमादिसाधनसम्पन्न होकर संयमी बनते हैं वे ब्रह्मविद्या की पराकाष्ठा को प्राप्त होते हैं इसी अभिप्राय से उपनिषदों में यह कहा है कि 'सा काष्ठा सा परागतिः' ॥७॥

नवम मण्डल में यह इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य द्वाविंशस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ४–७ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की सृष्टिरचना का वर्णन करते हैं ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः ।
सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥१॥

पदार्थः—(**एते, सोमासः**) यह परमात्मा (**रथा, इव**) विद्युत् के समान (**आशवः**) शीघ्रगामी है और (**प्र, वाजिनः**) अत्यन्त बल वाला है (**सर्गाः, सृष्टाः, अहेषत**) उसने सृष्टियों को शब्दायमान रचा है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा में अनन्त शक्तियां पाई जाती हैं, उसकी शक्तियां विद्युत् के समान क्रियाप्रधान हैं; उसने कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों को रचा है, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच तन्मात्रों के कार्य हैं । और इनकी ऐसी अचिन्त्य रचना है जिसका अनुशीलन मनुष्य मन से भी भली भांति नहीं कर सकता ॥१॥

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥

पदार्थः—(**एते**) सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (**उरवः, वाताः, इव**) बहुतसी वायु की तरह (**पर्जन्यस्य, वृष्टयः, इव**) और मेघ की वृष्टि के समान,(**अग्नेः, भ्रमाः, इव**) अग्नि के प्रज्वलन की तरह (**वृथा**) अनायास गमन कर रहे हैं ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार अग्नि की ज्वलनशक्ति स्वाभाविक है इसी प्रकार वे ब्रह्माण्ड भी स्वाभाविक गतिशील बनाये गये हैं । स्वाभाविक से तात्पर्य यहां आकस्मिक नहीं है किन्तु नियमपूर्वक भ्रमण का है जैसे कि सूर्य, चन्द्र आदि ईश्वरदत्त नियम से सदैव परिभ्रमण करते हैं इसी प्रकार ये सब ब्रह्माण्ड ईश्वरदत्त नियम से परिभ्रमण करते हैं । इसी अभिप्राय से कहा है कि 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः' (क० २।६।) उस के भय से अग्नि तपती है और उसी के भय से सूर्य तपता है, जिस प्रकार इस में ईश्वराधीनता अग्न्यादि तत्वों की वर्णन की गयी है इसी प्रकार सब कार्यजात ईश्वराधीन हैं ॥२॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥३॥

पदार्थः—(**पूताः**) पवित्र (**एते, सोमासः**) ये सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (**दध्याशिरः**) सब के धारक आश्रयभूत (**विपा**) ज्ञानद्वारा (**विपश्चितः**) विद्वानों की (**धियः**) बुद्धि का (**व्यानशुः**) विषय होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की रचना में जो कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड हैं वे सब ज्ञानी-विज्ञानियों की ही समझ में आ सकते हैं, अन्यों की नहीं ॥३॥

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥४॥

पदार्थः—(**मृष्टाः**) भास्वररूप (**अमर्त्याः**) नक्षत्रगण (**पथः, रजः**) रजोगुण से मार्ग को (**इयक्षन्तः**) प्राप्त होने वाले (**ससृवांसः**) चलते हुए (**न, शश्रमुः**) विश्राम को नहीं पाते ॥४॥

भावार्थः—यों तो संसार में दिव्यादिव्य अनेक प्रकार के नक्षत्र हैं पर जो दिव्य नक्षत्र हैं उनकी ज्योति प्रतिपल सहस्रों मील चलती हुई भी अभी तक इस भूगोल के साथ स्पर्श नहीं करने पायी। तात्पर्य यह है कि इस दिव्यरचनारूप ब्रह्माण्डों की इयत्ता को पाना परमात्मा का काम ही है, खद्योतकल्प क्षुद्र जीव केवल इनकी रचना को कुछ-कुछ अनुभव करता है सब नहीं। हां; योगिजन, जो परमात्मा के योग में रत हैं वे लोग साधारण लोगों से परमात्मा की रचना को अधिक अनुभव करते हैं। इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी यह कहा है कि 'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत कुतो विजाता कुत इयं विसृष्टिः' (१०।११।१३०) कौन जान सकता है और कौन कह सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि परमात्मा ने कहां से और किस शक्ति से, किस समय उत्पन्न की? इस से आगे यह निरूपण किया है कि इसका पूर्णरूप से ज्ञाता वह परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं। इसी अभिप्राय से 'परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम्' (सा० १।७६।) इत्यादि सूत्रों में सांख्य शास्त्र में प्रकृति को विभु माना है, पर वहाँ यह व्यवस्था समझनी चाहिये कि प्रकृति सापेक्ष विभु है अर्थात् अन्य कार्यों की अपेक्षा विभु है। वास्तव में इयत्तारहित विभु एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य वस्तु नहीं ॥४॥

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः ।
उतेदमुत्तमं रजः ॥५॥

पदार्थः—(**एते**) ये सब नक्षत्रादि (**रोदसोः, पृष्ठानि**) पृथिवी और द्युलोक के मध्य में (**विप्रयन्तः**) चलते हुए (**इदं, उत्तमम्, रजः**) इस उत्तम रजोगुण को (**उत, व्यानशुः**) व्याप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—उक्त ब्रह्माण्डों की विविध रचना में परमात्मा ने इस प्रकार का आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न किया है कि जिस में एक-दूसरे के

आश्रित होकर वे प्रतिक्षण गतिशील बन रहे हैं। वा यों कहो कि सत्व, रज, और तम प्रकृति के ये तीनों गुण अर्थात् प्रकृति की ये तीनों अवस्थायें जिस प्रकार एक-दूसरे का आश्रयण करती हैं, इस प्रकार एक-दूसरे को आश्रयण करता हुआ प्रत्येक ब्रह्माण्ड इस नभोमण्डल में वायुवेग के उत्तेजित तृण के समान प्रतिक्षण चल रहा है, कोई स्थिर नहीं है ॥५॥

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ।
उतेदमुत्तमाय्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**प्रवतः**) गतिशील ब्रह्माण्ड (**उत्तमं, तन्तुम्, तन्वानम्**) उत्तम परमाणुप्रबन्ध को बढ़ाते हुए (**इदम्**) इतने (**उत्तमाय्यम्**) उत्तम कार्यों से (**उत, अन्वाशत**) व्याप्त हो रहे हैं ॥६॥

भावार्थः—प्रत्येक ब्रह्माण्ड मानो तन्तुरूप से अर्थात् रचनारूप यज्ञ से परमात्मा की संसृति को बढ़ा रहा है ॥६॥

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः ।
ततं तन्तुमचिक्रदः ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**पणिभ्यः**) दुष्टों से (**वसु, गव्यानि**) सम्पूर्ण पृथिवी सम्वन्धी रत्नों का (**आ, धारयः**) अच्छी प्रकार ग्रहण करते हो और (**ततं, तन्तुम्**) बढ़े हुए कर्मात्मकयज्ञ का (**अचिक्रदः**) प्रचार करते हो ॥७॥

भावार्थः—इस सूक्त की समाप्ति करते हुए अर्थात् इस अगाध रचयिता की रचना का वर्णन करते हुए परमात्मा के रुद्ररूप का वर्णन करके इस सूक्त का उपसंहार करते हैं। 'रोदयति राक्षसानिति रुद्रः' जो अन्यायकारी राक्षसों को रुला दे उसका नाम यहां रुद्र है। वह रुद्ररूप परमात्मा अन्यायकारी दुष्ट दस्युओं से धन, जन और राज्यश्री का अपहरण कर लेता है और लेकर न्यायकारी दान्त शान्त देवताओं को प्रदान कर देता है, इसी का नाम देवासुर-संग्राम है और इसी का नाम दवी और आसुरी सम्पत्ति है। यह व्यवहार परमात्मा की विविध रचना में घटीयंत्र के समान सदैव होता रहता है। जिस तरह घटीयंत्र अर्थात् रहट के पात्र जो कभी भरे हुए होते हैं वे ही ऊंचे चढ़ कर गर्व करते हुए सर्वदा रीते हो जाते हैं, और जो

रीते हो जाते हैं वे ही विनय और नम्रता करते हुए भर अर्थात् परिपूर्ण हो जाते हैं । इसलिए सदैव परमात्मा की विनयभाव से पूर्ण होने की अभिलाषा प्रत्येक अभ्युदयाभिलाषी को करनी चाहिये ॥७॥

नवम मण्डल में यह बाईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–४, ६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्जःस्वरः ॥

अब उक्त रचना को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया ।
अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थः—(सोमाः) [सूयन्ते=उत्पाद्यन्त इति सोमाः ब्रह्माण्डानि] अनन्त प्रकार के कार्यरूप ब्रह्माण्ड (मधोः, मदस्य) प्रकृति के हर्षजनक भावों की (धारया) सूक्ष्म अवस्था से (आशवः) शीघ्र गति वाले (असृग्रम्) बनाए गये हैं और (अभि, विश्वानि, काव्या) तदनन्तर सब प्रकार के वेदादि शास्त्रों की रचना हुई ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को उत्पन्न किया और तदनन्तर उसने विधिनिषेधात्मक सब विद्याभण्डार वेदों को रचा । जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि वेदमन्त्र और "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादि सूत्रों से प्रतिपादन कर आये हैं ॥१॥

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥२॥

पदार्थः—उनमें से (आयवः) शीघ्रगामी प्रकृतिपरमाणु (प्रत्नासः) जो स्वरूप से अनादि हैं वे (अनु, नवीयः, पदम्, अक्रमुः) नवीन पद को धारण करते हैं (रुचे) दीप्ति के लिये परमात्मा ने उन्हीं परमाणुओं में से (सूर्यम्, जनन्त) सूर्य को पैदा किया ॥२॥

भावार्थः—प्रकृति की विविध प्रकार की शक्तियों से परमात्मा सम्पूर्ण कार्यों को उत्पन्न करता है । इन सब कार्यों का उपादान कारण प्रकृति अनादि अनन्त है । इसी भाव को मन्त्रों में 'प्रत्नासः' पद से वर्णन किया है ॥२॥

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् ।
कृधि प्रजावतीरिषः ॥३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (नः) हम को (अर्यः) जो भाव असुरों को (अदाशुषः) नहीं दिये वह (गयम्) भाव ((आ, भर) दें और (प्रजावतीः, इषः) धनपुत्रादि ऐश्वर्यों को (कृधि) दें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (अर्यः) परमात्मा का नाम है [ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोति इत्यर्य्यः परमात्मा] जो सर्वत्र व्यापक हो उसका नाम अर्य है, उस अर्य परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हे परमात्मन्! आप हमको दैवी सम्पत्ति के गुण दें अर्थात् हमको ऐसे पवित्र भाव दें जिससे हम में आसुरभाव कदापि न आवें । जो पुरुष सदैव देवताओं के गुणों से सम्पन्न होने की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हें सदैव दिव्य गुणों का दान देता है ॥३॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

पदार्थः—(सोमासः) ये कार्य्य ब्रह्माण्ड जो (आयवः) गतिशील हैं (मद्यं, मदम्) अनन्त प्रकार के आह्लादकारक और मदकारक वस्तुओं को (अभि) सब ओर से उत्पन्न करते हैं और (मधुश्चुतम्) नानाप्रकार के रसों को देने वाले (कोशम्) खजाने को (अभि) सब ओर से उत्पन्न करते हैं ॥४॥

भावार्थः—सब विभूतियों की खानरूप ब्रह्माण्डों का वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि इस संसार में नाना प्रकार की वस्तुएं जिन ब्रह्माण्डों में उत्पन्न होती हैं उनको सोम नाम से कथन किया गया है ॥४॥

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् ।
सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५॥

पदार्थः—(सोमः) सब पदार्थों का उत्पत्तिस्थान यह ब्रह्माण्ड (अर्षति) गति कर रहा है (धर्णसिः) सबके धारण करने वाला है और (इन्द्रियं, रसम्) इन्द्रियों के शब्दस्पर्शादि रसों को (दधानः) धारण करता हुआ विराजमान है और उसका (सुवीरः) सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा (अभि, शस्तिपाः) सब ओर से रक्षक है ॥५॥

भावार्थः—जो ब्राह्मण्ड कोटि-कोटि नक्षत्रों को धारण किये हुए हैं और जिनमें नानाप्रकार के रस उत्पन्न होते हैं उनका जन्मदाता एकमात्र परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। इस मन्त्र में ब्रह्माण्डाधिपति परमात्मा का वर्णन किया गया है और उसी की सत्ता से धारण किये हुए ब्रह्माण्डों का वर्णन है ॥५॥

इन्द्रा॑य सोम पवसे दे॒वेभ्य॑ः स॒धमाद्य॑ः ।
इ॒न्दो वाजं॑ सिषाससि ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये तुम (पवसे) पवित्रता देते हो और (देवेभ्यः) विद्वान् लोगों के लिये तुम (सधमाद्यः) यज्ञ में सेवनीय हो और (इन्दो) परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (वाजं, सिषाससि) सबको अन्न दान देते हो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही कर्मयोगी को कर्म्मों में लगने का बल देता है और परमात्मा ही सत्कर्मी पुरुषों को यज्ञ करने का सामर्थ्य प्रदान करता है। बहुत क्या, परमात्मा ही अन्न धनादि सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करता है ॥६॥

अस्य पी॒त्वा मदा॑ना॒मिन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ति ।
ज॒घानं॑ ज॒घनं॑च्च॒ नु ॥७॥

पदार्थः—(अस्य) इस परमात्मा के आनन्द को (पीत्वा) पीकर जो (मदानाम्) सब प्रकार के मदों को तिरस्कार करके विराजमान है, (इन्द्रः) कर्मयोगी पुरुष ने (वृत्राणि) अज्ञानों को (अप्रति) प्रतिपक्षी बनकर (जघान) नाश किया और (जघनच्च) नाश करता है, (नु) निश्चय करके तुम उसी परमात्मा के आनन्द को पान करो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! सब आनन्दों से बढ़कर ब्रह्मानन्द है। इस आनन्द के आगे सब प्रकार के मादक द्रव्य भी निरानन्द प्रतीत होते हैं। वास्तव में मदकारक वस्तु मनुष्य की बुद्धि को नाश करके आनन्ददायक प्रतीत होती है और ब्रह्मानन्द का भान किसी प्रकार के मद को उत्पन्न नहीं करता, किन्तु आह्लाद को उत्पन्न करता है। इसी लिये सब प्रकार के मद उसके सामने तुच्छ हो जाते हैं। जिस प्रकार राजमद, धनमद, यौवनमद, रूपमद इत्यादि सब मद विद्यानन्द के आगे तुच्छ प्रतीत होते हैं; इसी प्रकार विद्यानन्द योगानन्द इत्यादि सब आनन्द ब्रह्मानन्द के आगे फीके हो जाते हैं। इसी अभिप्राय से मन्त्र में कहा है कि "मदानाम्" सब मदों में से सच्चा मद एकमात्र परमात्मा का आनन्द है। इसी अभिप्राय से कहा है कि "रसो ह्येव हि सः रसं ह्येव लब्ध्वा आनन्दी भवति" परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उस आनन्दस्वरूप को लाभ करके पुरुष आनन्दित होता है ॥७॥

नवम मण्डल में यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५, ७ निचृद्गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

प्र सोमा॑सो अधन्वि॒षुः पवं॑माना॒स इन्द॑वः ।
श्री॒णा॒ना अ॒प्सु मृ॑ञ्जत ॥१॥

पदार्थः—(सोमासः) सौम्य स्वभाव को उत्पन्न करने वाले परमात्मा के आह्लादादि गुण (पवमानासः) जो मनुष्य को पवित्र कर देने वाले हैं (इन्दवः) जो दीप्ति वाले हैं जो कर्मयोगियों में (प्र) प्रकर्षता से आनन्द (अधन्विषुः) उत्पन्न करने वाले हैं (श्रीणानाः) वे सेवन किये हुए (अप्सु) शरीर, मन और वाणी तीनों प्रकार के यत्नों में (मृञ्जत) शुद्धि को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम परमात्मा के गुणों का चिन्तन करके अपने मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि करो। जिस प्रकार जल शरीर की शुद्धि करता है और परमात्मोपासन मन की शुद्धि करता है और स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन वाणी की शुद्धि करता है, इसी प्रकार परमात्मा के ब्रह्मचर्य्यादि गुण शरीर, मन और वाणी की शुद्धि करते हैं। 'ब्रह्म' नाम यहाँ वेद का है। वेद के निमित्त जो व्रत किया जाता है उस का नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। इस व्रत में इन्द्रियों का संयम भी करना अत्यावश्यक होता है। इस लिये ब्रह्मचर्य्य के अर्थ जितेन्द्रियता भी हैं। इसके मुख्य अर्थ वेदाध्ययन व्रत के ही हैं। वेदाध्ययन व्रत इन्द्रियसंयम द्वारा शरीर की शुद्धि करता है, ज्ञानद्वारा मन की शुद्धि करता है, और अध्ययनद्वारा वाणी की शुद्धि करता है। इसी प्रकार परमात्मा के सत्य, ज्ञान और अनन्तादि गुण आह्लाद उत्पन्न करके मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि के कारण होते हैं। इसी अभिप्राय से उपनिषदों ने "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तै० २ । १ ।) इत्यादि वाक्यों में परमात्मा के सत्यादि गुणों का वर्णन किया है ॥१॥

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।

पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥

पदार्थः—(गावः) इन्द्रियां (**अभि, अधन्विषुः**) कर्मयोगियों में (**आपः, न**) जल के समान (**प्रवता**) वेग वाली होती हैं और (यतीः) वशीभूत होती हैं (**पुनानाः**) वे वशीकृत इन्द्रियाँ मनुष्य को पवित्र करती हुई (**इन्द्रम् आशत**) परमात्मा को विषय करती हैं ॥२॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुषों की इन्द्रियाँ परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं। यहां साक्षात्कार से तात्पर्य्य यह है कि वे परमात्मा को विषय करती हैं जैसा कि "दृश्यते त्वग्र्या बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" (कठ० ३।१२।) इस वाक्य में निराकार परमात्मा बुद्धि का विषय माना गया है। इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष की इन्द्रियाँ परमात्मा के साक्षात्कार के सामर्थ्य को लाभ करती हैं ॥२॥

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे ।

नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

पदार्थः—(**प्र पवमान**) हे परमात्मन् ! (**धन्वसि**) तुम सर्वत्र गतिशील हो और (**सोम, इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पातवे**) तृप्ति के लिये तुम ही एकमात्र उपास्य-देव हो (**यतः**) जिस लिये (**नृभिः**) ऋत्विगादि लोगों के (**विनीयसे**) विनीत भाव से आप उन्हें प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष कर्मयोगी व ज्ञानयोगी हैं उनकी तृप्ति का कारण एकमात्र परमात्मा ही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार परमात्मा में ज्ञान, बल, क्रिया इत्यादि धर्म स्वाभाविक पाये जाते हैं इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुष भी साधनसम्पन्न होकर उन धर्मों को धारण करते हैं ॥३॥

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे ।

सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**त्वं**) तुम (**नृमादनः**) मनुष्यों को आनन्द देने वाले हो, (**चर्षणीसहे**) जो आप से विमुख मनुष्य हैं उन पर भी कृपा करने वाले हो, (**सस्निः**) शुद्ध स्वरूप हो, (**अनुमाद्यः**) सर्वथा स्तुति करने योग्य हो। (**यः**) जो इस प्रकार के गुणों का आधार सर्वोपरि देव आप हैं (**पवस्व**) वह आप हम पर कृपा करें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा किसी से राग द्वेष नहीं करते, सब को स्वकर्मानुकूल फल देते हैं। अर्थात् एकमात्र परमात्मा ही पक्षपात से शून्य होकर न्याय करते हैं। इसी लिये परमात्मा को यहां "चर्षणीसह" अर्थात् सब पर दया करने वाला कहा गया है ॥४॥

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि ।

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**यत्**) जब तुम (**पवित्रम्**) पवित्र अन्तः-करणों में (**परिधावसि**) निवास करते हो तब (**अद्रिभिः, सुतः**) अन्तःकरण की वृत्ति-द्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (**इन्द्रस्य, धाम्ने**) कर्मयोगी पुरुष के अन्तःकरण-रूपी धाम को (**अरम्**) अलङ्कृत करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी व्यापकता से कर्मयोगी पुरुषों के अन्तःकरणों को अलङ्कृत करता है।

यद्यपि परमात्मा प्रत्येक पुरुष के अन्तःकरण को विभूषित करता है तथापि कर्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा जिन पुरुषों ने अपने अन्तःकरणों को निर्मल बनाया है उनके अन्तःकरण में परमात्मा का प्रकाश विशेषरूप से प्रतीत होता है। इसीलिये योगियों के अन्तःकरणों का विशेषरूप से प्रकाशित होना कथन किया गया है ॥५॥

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः ।

शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

पदार्थः—(**वृत्रहन्तम**) हे अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मन् ! आप (**उक्थेभिः**) यज्ञों द्वारा (**अनुमाद्यः**) मनुष्यों को आनन्द देते हैं (**शुचिः**) शुद्धस्वरूप हैं (**पावकः**) सबको पवित्र करने वाले हैं तथा (**अद्भुतः**) आश्चर्यरूप हैं, आप कृपा कर (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही इस संसार में आश्चर्यमय है। अर्थात् अन्य सब वस्तुओं का पारावार मिल जाता है, एकमात्र परमात्मा ही ऐसा पदार्थ है जिसका पारावार नहीं। यद्यपि जिज्ञासु पुरुष उस पूर्ण को पूर्णरूप से नहीं जान सकता तथापि उसके ज्ञानमात्र में अर्थात् "अस्ति इत्येवोपलब्धव्यः" उसकी सत्ता ही के साक्षात्कार से पुरुष आनन्द का अनुभव करता है। केवल एकमात्र परमात्मा ही आनन्दमय है, अन्य सब उसी के आनन्द को लाभ करके आनन्द पाते हैं, अन्यथा नहीं ॥६॥

शुचि॑ः पाव॒क उ॑च्यते॒ सोम॑ः सु॒तस्य॒ मध्व॑ः ।
दे॒वा॒वीर॑घशंस॒हा ।।७।।

पदार्थः—वह परमात्मा **(शुचिः)** शुद्धस्वरूप है, **(पावकः, उच्यते)** सबको पवित्र करने वाला कहा जाता है, **(सोमः)** "सूते चराचरं यः स सोमः" जो सबका उत्पादक है उसका नाम यहां सोम है **(सुतस्य)** इस कार्यमात्र ब्राह्मण का **(मध्वः)** अधिकरण है, **(देवावीः)** देवताओं का रक्षक है, **(अघशंसहा)** पापों की स्तुति करने वाले पापमय जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों का हनन करने वाला है ।।७।।

भावार्थः—जो लोग पापमय जीवन व्यतीत करते हैं परमात्मा उनकी वृद्धि कदापि नहीं करता । यद्यपि पापी पुरुष भी कहीं-कहीं फलते-फूलते हुए देखे जाते हैं तथापि उनका परिणाम अच्छा कदापि नहीं होता । अन्त में 'यतो धर्मस्ततो जयः' का सिद्धान्त ही ठीक रहता है कि जिस ओर धर्म होता है उसी पक्ष की जय होती है । इस तात्पर्य से मन्त्र में यह कथन किया है कि परमात्मा पापी पुरुष और उनका अनुमोदन करने वाले दोनों का नाश करता है ।।७।।

नवम मण्डल में यह चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ षड्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य १–६ दृळ्हच्युत आगस्त्य ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१,३,५,६ गायत्री । २,४ निचृद्गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

मुक्ति का धाम एकमात्र परमात्मा है अब इस बात का वर्णन करते हैं ।।

पव॑स्व द॒क्षसाध॑नो दे॒वेभ्य॑ः पी॒तये॑ हरे ।
म॒रुद्भ्यो॑ वा॒यवे॒ मद॑ः ।।१।।

पदार्थः—(हरे) हे परमात्मन् ! सब दुःखों के हरने वाले जगदीश्वर ! आप **(वायवे)** कर्मयोगी पुरुष के लिये **(मदः)** आनन्दस्वरूप हैं और **(मरुद्भ्यः)** ज्ञानयोगियों के लिये भी आनन्दस्वरूप हैं, आप **(देवेभ्यः)** उक्त विद्वानों की **(पीतये)** तृप्ति के लिये **(दक्षसाधनः)** पर्याप्त साधनों वाले हैं ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा के आनन्द का अनुभव केवल ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष ही कर सकते हैं अन्य नहीं । जो पुरुष अयोगी है अर्थात् जिस पुरुष का किसी तत्त्व के साथ योग नहीं, वह कर्मयोगी व ज्ञानयोगी नहीं बन सकता ।।१।।

पव॑मान धि॒या हि॒तो॒३॑ऽभि योनि॒ कनि॑क्रदत् ।
धर्म॑णा वा॒युमा वि॑श ।।२।।

पदार्थः—**(पवमान)** हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! **(धिया, हितः)** बुद्धि से धारण किये हुए आप **(अभि,योनिम्)** हृदयरूपी स्थान में **(कनिक्रदत्)** सदुपदेश करते हुए **(आविश)** प्रवेश कीजिये और **(धर्मणा)** अपने अपहतपाप्मादि धर्मों द्वारा **(वायुम्)** कर्मयोगी विद्वान् के हृदय में आकर प्रवेश करें ।।२।।

भावार्थः परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग शुद्ध बुद्धि द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं उनके हृदय को परमात्मा सदैव शुद्ध करता है । तात्पर्य यह है कि अपहतपाप्मादि परमात्मा के गुणों को वही पुरुष धारण कर सकता है जो पुरुष योगसाधनादि द्वारा संस्कृत की हुई बुद्धि के साथ परमात्मा का ध्यान करता है । इसी अभिप्राय से कहा है कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' (कठ० ३।१२।) तथा "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" (मु० ३,१,३) जब जिज्ञासु पुरुष उस स्वतः-प्रकाश ब्रह्म को अपने योगजसामर्थ्य से देखता है तो पुण्य-पाप से छूटता है अर्थात् जिस प्रकार वह परम पुरुष निष्पाप है उसी प्रकार वह भी निष्पाप होकर उसके सत्यादि गुणों को धारण करता है । इसी का नाम वैदिक मत में मुक्ति है अर्थात् पापरूपी मल से छूटकर ब्रह्म के अमृत भावादि धर्मों को धारण करने का नाम मुक्ति है ।।२।।

सं दे॒वैः शो॑भते॒ वृषा॑ क॒विर्योना॒वधि॑ प्रि॒यः ।
वृ॒त्र॒हा दे॑व॒वीत॑मः ।।३।।

पदार्थः—सर्व जगत् का उत्पादक वह परमात्मा **(देवैः)** दिव्य-शक्तियों के द्वारा **(सं, शोभते)** शोभा को प्राप्त हो रहा है, **(वृषा)** सब कामनाओं का देने वाला है, **(कविः)** सर्वज्ञ **(योनौ, अधि)** प्रकृति-रूप योनि में अधिष्ठित अर्थात् अधिष्ठानरूप से जो विराजमान है **(प्रियः)** वह सर्वप्रिय और **(वृत्रहा)** अज्ञान का नाश करने वाला **(देववीतमः)** विद्वानों के हृदय में प्रकाशरूप से विराजमान है ।।३।।

भावार्थः यद्यपि परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि उसको साक्षात् करने वाले विद्वानों के हृदय में विशेषरूप से विराजमान है । इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" माया के सम्बन्ध के कारण परमात्मा सबको अपने-अपने हृदय में प्रतीत नहीं होता, वरन् सबके हृदय में आकाशवत् परिपूर्णरूप से विराजमान है ।।३।।

अब इस बात का कथन करते हैं कि मुक्त पुरुष उस ब्रह्म के स्वरूप में निवास करते हैं ।।

विश्वा॑ रू॒पाण्या॑वि॒शन्पु॑ना॒नो या॑ति हर्य॒तः ।
यत्रा॒मृता॑स॒ आस॑ते ।।४।।

पदार्थः—(**पुनानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**विश्वा, रूपाणि**) सब रूपों में (**आविशन्**) प्रवेश करता हुआ (**हर्यतः**) अपनी कमनीयता से (**याति**) सर्वत्र प्राप्त है (**यत्र**) जिस ब्रह्मरूप में (**अमृतासः**) मुक्ति पद को भोगते हुए (**आसते**) मुक्त पुरुष निवास करते हैं वह ब्रह्म सबको पवित्र करने वाला है ।।४।।

भावार्थः—परमात्मा प्रत्येक वस्तु के भीतर व्यापक है अर्थात् वह प्रत्येक रूप में प्रविष्ट है, इसी तात्पर्य से उपनिषद् में कथन किया है ‘‘रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव’’ प्रत्येक रूप में परमात्मा तद्रूप हो रहा है अर्थात् उसी की सत्ता से उस रूप की मनोहरता है । इस प्रकार का जो सर्वाधिकरण परमात्मा है उसी में मुक्त पुरुष जाकर निवास करते हैं ।।४।।

अ॒रु॒षो ज॒नय॒न्गिरः॒ सोमः॑ पवत आयु॒षक् ।
इन्द्रं॒ गच्छ॒न्क॒विक्र॑तुः ।।५।।

पदार्थः—(**अरुषः**) प्रकाशमान परमात्मा (**गिरः**) वेदरूप वाणियों को (**जनयन्**) उत्पन्न करने वाला (**सोमः**) संसार को उत्पन्न करने वाला (**इन्द्रं**) जीवात्मा को (**आयुषक्**) जो कि कर्मयोग में लगा हुआ है (**गच्छन्**) प्राप्त होकर (**पवते**) पवित्र करता है (**कविक्रतुः**) वह परमात्मा सर्वज्ञ है ।।५।।

भावार्थः—शुभाशुभ कर्मों के द्वारा परमात्मा प्रत्येक जीव को प्राप्त है । अर्थात् उनको शुभाशुभ कर्मों के फल देता है । और वही परमात्मा वेदरूप वाणियों का प्रकाश करके पुरुषों को शुभाशुभ मार्ग दर्शा कर शुभ कर्मों की ओर प्रेरणा करता है ।।५।।

आ प॑वस्व मदिन्तम प॒वित्रं॒ धार॑या कवे ।
अ॒र्कस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म् ।।६।।

पदार्थः—(**अर्कस्य**) ज्ञानरूप प्रकाश के (**योनिं**) स्थान की (**आसदम्**) प्राप्ति के लिये (**मदिन्तम**) हे आनन्दस्वरूप भगवन् ! आप (**धारयः**) आनन्द की वृष्टि द्वारा (**पवित्रं**) हमको पवित्र करें (**कवे**) हे सर्वद्रष्टः ! (**आ पवस्व**) सब ओर से आप हमको पवित्र करें ।।६।।

भावार्थः—जो लोग शुद्ध हृदय से परमात्मा की उपासना करते हैं उन के हृदय में ज्ञान का प्रकाश अवश्यमेव होता है, वे लोग सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हैं ।।६।।

नवम मण्डल में यह पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ षडृचस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य १–६ इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१,३–५ निचृद्गायत्री । २,६ गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

ईश्वर किस प्रकार बुद्धि का विषय होता है अब इस बात का उपदेश करते हैं ।।

तम॑मृक्षन्त वा॒जिन॑मु॒पस्थे॒ अदि॑ते॒रधि॑ ।
विप्रा॑सो॒ अण्व्या॑ धि॒या ।।१।।

पदार्थः—(**विप्रासः**) धारणाध्यानादि साधनों से शुद्ध की हुई बुद्धि वाले लोग (**अण्व्या**) सूक्ष्म (**धिया**) बुद्धि द्वारा (**अदितेरधि**) सत्यादिक ज्योतियों के अधिकरण स्वरूप (**तं, वाजिनं**) उस बलस्वरूप परमात्मा को (**उपस्थे**) अपने अन्तःकरण में (**अमृक्षन्त**) शुद्ध ज्ञान का विषय करते हैं ।।१।।

भावार्थः—जिन लोगों ने निर्विकल्प-सविकल्प समाधियों द्वारा अपनी चित्तवृत्ति को स्थिर करके बुद्धि को परमात्मविषयिणी बनाया है, वे लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं । अर्थात् उसको आत्मसुख के समान अनुभव का विषय बना लेते हैं । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अपने आनन्दादि गुण प्रतीत होते हैं इसी प्रकार योगी पुरुषों को परमात्मा के आनन्दादि गुणों की प्रतीति होती है ।।१।।

अब उक्त स्वरूप के साक्षात्कार का अन्य प्रकार कथन करते हैं ।।

तं गावो॑ अ॒भ्य॑नूषत स॒हस्र॑धार॒मक्षि॑तम् ।
इन्दुं॑ ध॒र्तार॒मा दि॒वः ।।२।।

पदार्थः—(**गावः**) [गच्छन्ति विषयानिति गाव इन्द्रियाणि] इन्द्रियाँ (**तम्**) उस परमात्मा को (**अभ्यनूषत**) अपना विषय बनाती हैं, जो परमात्मा (**सहस्रधारम्**) अनेक वस्तुओं का धारण करने वाला, (**अक्षितम्**) अच्युत, (**इन्दुम्**) परमैश्वर्य-सम्पन्न (**दिवः, आधर्त्तारम्**) तथा द्युलोकपर्यन्त लोकों का धारण करनेवाला है ।।२।।

भावार्थः—जो परमात्मा द्युभ्वादि लोकों का आधार है और जिसमें अनन्त प्रकार की वस्तुएं निवास करती हैं यह शुद्ध इन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है ॥२॥

तं वे॒धां मे॒धया॑ह्य॒न्पव॑मान॒मधि॒ द्यवि॑ ।
ध॒र्ण॒सि भूरि॑धायसम् ॥३॥

पदार्थः—(तम्, वेधां) उस सृष्टिकर्त्ता परमात्मा को (मेधया, अह्यन्) विद्वान् लोग अपनी बुद्धि का विषय बनाते हैं जो (पवमानम्) सबको पवित्र करने वाला है और (अधि, द्यवि) जो द्युलोक में अधिष्ठातारूप से स्थित है, (धर्णसिम्) सबको धारण करने वाला तथा (भूरिधायसम्) अनेक वस्तुओं का रचयिता है ॥२॥

भावार्थः—उक्त परमात्मा को, जो सब लोक-लोकान्तरों का आधार है, योगादि साधनों द्वारा संस्कृत बुद्धि से योगिजन विषय करते हैं। इस मन्त्र में जो परमात्मा को वेधा अर्थात् "विधति लोकान् विदधातीति वा वेधाः" विधाता रूप से वर्णन किया है इसका तात्पर्य यह हैं कि परमात्मा सब वस्तुओं का निर्माणकर्त्ता है। इसी अभिप्राय से "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" (ऋ. सू. १९) में यह कथन किया है कि सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिर्मय पदार्थों का निर्माण एकमात्र परमात्मा ने ही किया है। सूर्य चन्द्रमा यहाँ उपलक्षण हैं, वस्तुतः सब ब्रह्माण्डों का निर्माता एक परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥३॥

तम॑ह्यन्भु॒रिजो॑र्धि॒या सं॒वसा॑नं वि॒वस्व॑तः ।
पतिं॑ वा॒चो अदा॑भ्यम् ॥४॥

पदार्थः—(वाचः, पतिम्) जो ऋग्वेदादि वाणियों का पति परमात्मा है और (अदाभ्यम्) जो निष्कपट सेवन करने योग्य है,(संवसानम्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में व्यापक है (तम्) उस परमात्मा को तथा (विवस्वतः) उस प्रकाशस्वरूप की (भुरिजोः) शक्तियों को विद्वान् लोग (धिया) अपनी बुद्धि से (अह्यन्) साक्षात् करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकाशस्वरूप परमात्मा से ऋगादि चारों वेद उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ऋगादि वेद जिसकी वाणीरूप हैं, वह परमात्मा योगिजनों के ध्यानगोचर होकर उनको आनन्द का प्रदान करता है ॥४॥

तं सान॒वधि॑ जा॒मयो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः ।
ह॒र्य॒तं भूरि॑चक्षसम् ॥५॥

पदार्थः—(जामयः) इन्द्रियवृत्तियाँ (तं) उस परमात्मा को (सानौ, अधि) उच्च से उच्च प्रदेश में (अद्रिभिः) अपनी शक्तियों से (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं जो कि (हरिम्) भक्तों के दुःखों को हरने वाला और (हर्यतम्) प्रलयादि परिणामों में हेतुभूत तथा (भूरिचक्षसम्) सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थः—उक्त परमात्मा ही जगत् के जन्मादिकों का हेतु है, अर्थात् उसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होते हैं। वह परमात्मा हिमालय के उच्च से उच्च प्रदेशों में और सागर के गम्भीर से गम्भीर स्थानों में विराजमान है। उस सर्वज्ञ का साक्षात्कार चित्तवृत्तिनिरोधरूपी योगद्वारा ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। ॥५॥

तं त्वा॑ हिन्वन्ति वे॒धसः॒ पव॑मान गिरा॒वृध॑म् ।
इन्द॒विन्द्रा॑य मत्स॒रम् ॥६॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (तम्, गिरावृधम्) उस पूर्वोक्तगुणसम्पन्न और वेदवाणियों से प्रकाशमान (त्वा) आपको (वेधसः) विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) साक्षात् करते हैं। (इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न भगवन् ! आप (इन्द्राय, मत्सरम्) अज्ञानी जीव के लिये अत्यन्त गूढ़ हो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के साक्षात् करने के लिये मनुष्य को संयमी होना आवश्यक है। जो पुरुष संयमी नहीं होता उसको परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नहीं होता। संयम मन, वाणी तथा शरीर तीनों का कहलाता है। मन के संयम का नाम शम, और वाणी के संयम का नाम वाक्संयम, और इन्द्रियों के संयम का नाम दम है। इस प्रकार जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है और अपने मन को संयम में रखता है तथा व्यर्थ बोलता नहीं किन्तु वाणी को संयम में रखता है, वह पुरुष संयमी तथा दमी कहलाता है। इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में विस्तारपूर्वक है। वहां यह लिखा है कि देव और असुर में यही भेद है कि देव दमी अर्थात् इन्द्रियों को दमन करने वाले मनुष्यवर्ग का नाम है, और इन्द्रियारामी विषयपरायण लोगों का नाम असुर है। उक्त मन्त्र में परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रियारामी और अज्ञानी मत बनो, किन्तु तुम विद्वान् बनकर संयमी बनो, यही मनुष्यजन्म का फल है ॥६॥

नवम मण्डल में यह छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य १–६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद्गायत्री । ३-५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा की नाना शक्तियों का वर्णन करते हैं ॥

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१॥

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**कविः**) सर्वज्ञ है (**अभिष्टुतः**) सबको स्तुति के योग्य है (**पवित्रे, अधि**) अन्तःकरण के मध्य में (**तोशते**) प्राप्त होता है (**स्रिधः**) दुराचारी शत्रुओं को (**अप, घ्नन्**) नाश करता हुआ (**पुनानः**) सत्कर्मियों को पवित्र करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा दुष्टों का दमन करके सदाचारियों को उन्नतिशील बनाता है । उसके पाने के लिये अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना चाहिये । जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र नहीं बनाते वे उसको कदापि उपलब्ध नहीं कर सकते ॥१॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

पदार्थः—(**एषः**) वह उक्त परमात्मा (**वायवे, इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये सुलभ होता है (**स्वर्जित्, परिषिच्यते**) जिन लोगों ने सुख को जीत लिया है उन लोगों से सत्कृत होता है और (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में (**दक्षसाधनः**) सुनीति का देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखते हैं उनको परमात्मा सुनीति का दान देता है और वह परमात्मा, जिन लोगों ने विषयजन्य सुख को जीत लिया है, उन्हीं की चित्तवृत्तियों का विषय होता है । वा यों कहो कि कर्मयोगी लोग अपने उग्र कर्मों द्वारा उसको उपलब्ध करके उसके भावों को प्राप्त होते हैं । जो लोग आलसी बनकर अपने जन्म को व्यर्थ व्यतीत करते हैं उनका उद्धार कदापि नहीं होता ॥२॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

पदार्थ—(**एषः**) यह परमात्मा (**वनेषु, सोमः**) प्रार्थनाओं में सौम्यस्वभाव

वाला है (**दिवः, मूर्धा**) और द्युलोक का मूर्धारूप है, (**वृषा**) सब कामनाओं को देने वाला है (**सुतः**) स्वयंसिद्ध है,(**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है एवंभूत परमात्मा (**नृभिः, विनीयते**) मनुष्यों का उपास्य देव है ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा को पालन करने वाले नम्र पुरुषों के लिये परमात्मा सौम्यस्वभाव है और जो उद्दण्ड अनाज्ञाकारी हैं उनके लिये परमात्मा उग्ररूप है । उक्त परमात्मा से सदैव अपने कल्याण की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

पदार्थः—(**अस्तृतः, एषः**) यह उक्त अविनाशी परमात्मा (**सत्राजित्**) सब प्रकार के शत्रुओं को जीत कर सदाचारियों को (**हिरण्ययुः**) धन देता है और (**पवमानः**) पवित्र करता हुआ (**अचिक्रदत्**) निर्भयता का उपदेश करता है और वही परमात्मा (**गव्युः**) भूम्यादि धनों का दाता है, (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा जिन लोगों पर प्रसन्न होता है उनको भूम्यादि धनों का स्वामी बनाता है और उनको हिरण्यादि ऐश्वर्यों का स्वामी बना कर उनसे शत्रुओं को परास्त कराता है ॥४॥

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**सूर्येण, हासते**) सूर्य को भी अपने तेज से तिरस्कृत करता है (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला है (**अधि, द्यवि**) और द्युलोकादि सम्पूर्ण लोकों में विराजमान है । (**पवित्रे, मत्सरः, मदः**) पवित्र अन्तःकरण वाले पुरुषों को अपने आनन्द से आनन्दित करता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की सत्ता से ही सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं और वही परमात्मा लोक-लोकान्तरों का अधिष्ठाता है; उसी में चित्तवृत्ति लगाने से पुरुष आनन्दित होता है अन्यथा नहीं ॥५॥

एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥६॥

पदार्थः—(**एषः**) यह (**शुष्मी**) बलवान् परमात्मा (**अन्तरिक्षे, असिष्यदत्**) अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला और

(हरिः) दुःख को हरने वाला; (पुनानः) सब को पवित्र करने वाला; (इन्दुः) सर्वत्र प्रकाशमान (इन्द्रम्, आ) कर्मयोगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म जो सर्व व्यापक और सब कामनाओं का देने वाला है वह अपने निवास का स्थान एकमात्र कर्मयोगी पुरुषों को समझता है। यद्यपि ब्रह्म सर्वव्यापक है तथापि विशेषाभिव्यक्ति उसकी कर्मयोगियों के हृदय में ही होती है अन्यत्र नहीं। तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी पुरुष अपने कर्मों द्वारा उसकी आज्ञाओं को पालन करके दिखला देता है, अन्य लोग आलस्य में पड़े-पड़े ही समय को बिता देते हैं। इस लिये इस मन्त्र में कर्मयोगी पुरुष को ज्ञान का मुख्यपात्र निरूपण किया गया है ॥६॥

नवम मण्डल में यह सताईवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्याष्टाविंशस्य सूक्तस्य १–६ प्रियमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर का अज्ञाननिवर्त्तकत्वस्वरूप से वर्णन करते हैं ॥

एषः वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
अव्यो वारं वि धावति ॥१ ।

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (**वाजी**) बल वाला है और (**नृभिः, हितः**) जिज्ञासुओं करके अन्तःकरण में धारण किया गया है, (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है, (**मनसः पतिः**) मन का स्वामी है, (**अव्यः**) अविनाशी है और (**वारं, विधावति**) अपमे भक्त के हृदय में निवास करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को मनसस्पति इस लिये कहा गया है कि मन उसके सात्विक रूप सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है, इसलिये मन से ज्ञान उत्पन्न होता है। वा यों कहो कि मन का निरोध केवल उसी की कृपा से हो सकता है इसलिये मनसस्पति कहा है। तात्पर्य यह है कि आत्मिक बल बढ़ाने वाले पुरुषों को चाहिये कि सब ओर से अपने मन का निरोध करके अपने मन को उसी परमात्मा में लगायें ॥१॥

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुत ।
विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (**सोमः**) सौम्य स्वभाव वाला (**देवेभ्यः, सुतः**) दैवी सम्पत्ति वालों के लिये प्रकाशमान है (**विश्वा, धामानि, आविशन्**) सम्पूर्ण स्थानों में व्याप्त है, एवंभूत परमात्मा (**पवित्रे, अक्षरत्**) जिज्ञासुओं के पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥२॥

भावार्थः—“यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः” (यजु०) विज्ञानी पुरुष के लिये सब भूत उसका निवासस्थान हैं। और इसी प्रकार ‘य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्” (बृ०) अन्तर्यामि ब्रा० इत्यादि वाक्यों में यह प्रतिपादन किया है कि जीवात्मा उसका शरीरस्थानी है अर्थात् जिस प्रकार जीवात्मा अपने शरीर का प्रेरक है उसी प्रकार वह जीवात्मा का प्रेरक है इसलिये मन्त्र में ‘धामान्याविशन्’ कथन किया है अर्थात् शरीररूपी धाम में वह विराजमान है ॥२॥

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थः—(**एषः, देवः**) यह परमात्मा (**अधि, योनौ**) प्रकृति में (**अमर्त्यः**) अविनाशी होकर (**शुभायते**) प्रकाशित हो रहा है और वह (**वृत्रहा**) अज्ञान का नाशक है तथा (**देववीतमः**) सत्कर्मियों को अत्यन्त चाहने वाला है ॥३॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि योनि नाम यहां कारण का है वह कारण प्रकृतिरूपी कारण है अर्थात् प्रकृति परिणामी नित्य है और ब्रह्म कूटस्थ नित्य है। परिणामी नित्य उसको कहते हैं कि जो वस्तु अपने स्वरूप को बदले और नाश को न प्राप्त हो; और कूटस्थनित्य उसको कहते हैं कि जो स्वरूप से नित्य हो अर्थात् जिसके स्वरूप में किसी प्रकार का विकार न आये। उक्त प्रकार से यहां परमात्मा को कूटस्थरूप से वर्णन किया है ॥३॥

एषा वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

पदार्थः—(**एषः, वृषा**) यह सर्वकामप्रद परमात्मा (**कनिक्रदत्**) शब्दायमान और (**दशभिः, जामिभिः, यतः**) दश स्थूल भूत और सूक्ष्म भूतों द्वारा स्थिर है (**अभि, द्रोणानि, धावति**) कार्यमात्र में प्राप्त है ॥४॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि परमात्मा दश सूक्ष्म भूत और दश स्थूल भूतों को व्याप्त करके स्थिर है इसी लिये ‘स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्’ यह कथन किया है कि वह कार्यमात्र को अपने में व्याप्त करके दश प्रकार के भूतों को भी अतिक्रमण करके विराजमान है ॥४॥

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः ।
विश्वा धामानि विश्वविद् ॥५॥

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (**सूर्यम्, अरोचयत्**) सूर्य को भी प्रकाशित करता है (**विचर्षणिः**) सर्वद्रष्टा है, (**विश्वा, धामानि**) सब स्थानों में विराजमान है, (**विश्वविद्**) सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सूर्य का भी प्रकाशक कथन किया है। तात्पर्य यह है कि यह जड़ सूर्य उसकी सत्ता से प्रकाशित होता है। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रों में इस जड़ सूर्य को उपास्य बतलाया करते हैं उनको 'सूर्यमरोचयत्' इस वाक्य से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि वेद का तात्पर्य जड़ सूर्य को उपास्य देव कथन करने का होता तो इस जड़ सूर्य को उससे प्रकाश पाकर प्रकाशित होना न कथन किया जाता और न "सूर्याचन्द्रमसौ धाता" इत्यादि वाक्यों से इस जड़ सूर्यादि का निर्माता कथन किया जाता ॥५॥

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥६॥

पदार्थः—(**एषः**) यह (**शुष्मी**) बलवाला परमात्मा (**अदाभ्यः**) दम्भ से अप्राप्य है, (**सोमः**) सौम्यस्वभाव वाला (**पुनानः**) पवित्रताकारक (**अर्षति**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (**देवावीः**) देवताओं का रक्षक तथा (**अघशंसहा**) अघशंसियों का नाश करने वाला है ॥६॥

भावार्थः—जो लोग स्वयं पापी अथवा पापियों की प्रशंसा करते हैं उनको परमात्मा कदापि प्राप्त नहीं होता। परमात्मप्राप्ति के लिये सदैव सरल प्रकृति होनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि परमात्मप्राप्ति विना दैवी सम्पत्ति के नहीं होती। दैवी सम्पत्ति के गुण ये हैं—तेज, तेजस्वी होना, धृति-दृढ़ता, क्षमा, शौच, अद्रोह, अहिंसा, सत्य, अक्रोध इत्यादि अनेक प्रकार के दैवी सम्पत्ति के गुण हैं। और जो लोग आसुरी सम्पत्ति वाले हैं उनमें निम्नलिखित अवगुण होते हैं दम्भ, दर्प=गर्व, अभिमान, क्रोध, पारुष्य इत्यादि। इस मन्त्र में परमात्मा 'अदाभ्यः' पद से इस बात का उपदेश करता है कि दम्भ-दर्पादि छोड़ कर तुम लोग सन्मार्ग का ग्रहण करो ॥६॥

नवम मण्डल में यह अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ विराड् गायत्री । २-४,६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा अभ्युदयप्राप्ति के साधनों का वर्णन करते हैं ॥

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थः—(**प्रभूषतः**) प्रभुत्व अर्थात् अभ्युदय को चाहने वाले पुरुष का कर्त्तव्य यह है कि वह (**देवान्, अनु**) विद्वानों का अनुयायी बने और (**सुतस्य, ओजसा**) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त परमात्मा के तेज से अपने आप को तेजस्वी बनावे, (**वृष्णः, अस्य, धाराः**) जो सर्वकामप्रद परमात्मा है उसकी धारा से (**अक्षरन्**) अपने को अभिषिक्त करे ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम विद्वानों की संगति के विना कदापि अभ्युदय को नहीं प्राप्त हो सकते। जिस देश के लोग नाना प्रकार की विद्याओं के वेत्ता विद्वानों के अनुयायी बनते हैं उस देश का ऐश्वर्य देश-देशान्तरों में फैल जाता है। इसलिये हे अभ्युदयाभिलाषी जनो ! तुम भी विद्वानों के अनुयायी बनो ॥१॥

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थः—(**वेधसः**) कर्मयोगी लोग जो (**गृणन्तः**) परमात्मपरायण हैं (**कारवः**) वे कर्मकाण्डी लोग (**गिरा, जज्ञानम्**) वेदरूपी वाणी द्वारा उत्पन्न हुई (**सप्तिम्**) शक्ति को (**मृजन्ति**) बढ़ाते हैं। (**ज्योतिः**) वह ज्योतिर्मयशक्ति (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वानो ! तुम अपनी शक्तियों को वेदरूपी वाणी द्वारा बढ़ाओ, जो लोग अपनी शक्तियों को ईश्वराज्ञा से बढ़ाते हैं उनका ऐश्वर्य विश्वव्यापी हो जाता है ॥२॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव वाले परमात्मन् ! (**प्रभूवसो**) धन रत्नादिकों के स्वामिन् ! (**उक्थ्यम्, समुद्रम्, वर्ध**)

बढ़ाइये और (**तानि, सुषहा, ते, पुनानाय**) यह सबको प्रशंसनीय यश को मेरे लिये बढ़ाइये और (**तानि, सुषहा, ते, पुनानाय**) यह सबको पवित्र करने वाले आपका बढ़ा हुआ यश हमारे लिये सुख से भोग करने योग्य हो ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग अपनी कीर्ति को नभोमण्डलव्यापिनी बनाना चाहें उनका कर्त्तव्य है कि वे परमात्मपरायण होकर कर्मयोगी बनें, कर्मयोगी पुरुष से अतिरिक्त किसी पुरुष का ऐश्वर्य बढ़ नहीं सकता ॥३॥

विश्वा॒ वसू॑नि स॒ञ्जय॒न्पव॑स्व सोम॒ धार॑या ।
इ॒नु द्वेषां॑सि स॒ध्र्य॑क् ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**विश्वा, वसूनि, संजयन्**) आप मेरे लिये सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्य को बढ़ाकर (**धारया, पवस्व**) आनन्द की वृष्टि से हम को पवित्र करिये और (**इनु, द्वेषांसि, सध्र्यक्**) सब प्रकार के द्वेषों को भी साथ ही दूर करिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया है कि जो पुरुष अपना अभ्युदय चाहे वह रागद्वेषरूपी समुद्र की लहरों में कदापि न पड़े। क्योंकि जो लोग रागद्वेष के प्रवाह में पड़कर बह जाते हैं वे आत्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक तीनों प्रकार की उन्नतियों को नहीं कर सकते, इस लिये पुरुष को चाहिये कि वह राग-द्वेष के भावों से सर्वथा दूर रहे ॥४॥

रक्षा॒ सु नो॒ अर॑रुषः स्व॒नात्स॒मस्य॒ कस्य॑ चित् ।
नि॒दो यत्र॑ मुमु॒च्महे॑ ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**नः**) हमारी (**समस्य, कस्यचित, अररुषः**) सम्पूर्ण अदाता लोगों के (**स्वनात्, रक्ष**) निन्दारूप शब्द से रक्षा करिये (**निदः**) और निन्दक लोगों से भी बचाइये (**यत्र, मुमुच्महे**)जिस रक्षा से हम निन्दादिकों से मुक्त रहें ॥५॥

भावार्थः—अभ्युदयशाली मनुष्य का कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि वह कदर्य कदापि न बने; जो पुरुष कदर्य होता है वह सर्वदैव संसार में निन्दनीय रहता है। इसलिये हे पुरुषो ! तुम कदर्यता, कायरता और प्रमत्तता इत्यादि भावों को छोड़ कर उदारता, वीरता और अप्रमत्तता इत्यादि भावों को धारण करो ॥५॥

एन्दो॒ पार्थि॑वं र॒यिं दि॒व्यं प॑वस्व॒ धार॑या ।
द्यु॒मन्तं॒ शुष्म॒मा भ॑र ॥६॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशालिपरमात्मन् ! (**दिव्यम्, पार्थिवम्, रयिम्**) आप हमको द्युलोक सम्बन्धी तथा पृथिवी सम्बन्धी ऐश्वर्य की (**धारया, आपवस्व**) धारा से पवित्र करिये और(**द्युमन्तम्, शुष्मम्**) दिव्य बल को (**आभर**) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष उक्त प्रकार के अवगुणों से रहित होते हैं उनको परमात्मा द्युलोक, पृथिवी लोक के ऐश्वर्यों से भरपूर करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ बिन्दुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २, ६ गायत्री । ३–५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा बलप्राप्ति के उपाय का उपदेश करते हैं ॥

प्र धारा॑ अस्य शु॒ष्मिणो॒ वृथा॑ प॒वित्रे॑ अक्षरन् ।
पु॒ना॒नो वाच॑मिष्यति ॥१॥

पदार्थः—(**प्र पुनानः**) अपने आपको पवित्र करता हुआ जो पुरुष (**वाचम्, इष्यति**) वाग्रूप सरस्वती की इच्छा करता है (**अस्य, शुष्मिणः**) उस बलिष्ठ के लिये (**पवित्रे**) पात्र में (**वृथा**) व्यर्थ ही इस सोमरस की (**धाराः**) धारायें (**अक्षरन्**) गिरती हैं ॥१॥

भावार्थः—जितने प्रकार के संसार में बल पाये जाते हैं उन सब में से वाणी का बल सबसे बड़ा है, इस अभिप्राय से परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! यदि तुम सर्वोपरि बल को उपलब्ध करना चाहते हो तो वाणीरूप बल की इच्छा करो; जो पुरुष वाणीरूप बल को उपलब्ध करते हैं उनके लिये सोमादि रसों से बल लेने की आवश्यकता नहीं ॥१॥

इन्दु॑र्हिया॒नः सो॒तृभि॑र्मृ॒ज्यमा॑नः॒ कनि॑क्रदत् ।
इय॑र्ति व॒ग्नुमि॑न्द्रि॒यम् ॥२॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) दीप्ति वाला शब्द जो, (**सोतृभिः, मृज्यमानः, हियानः**) वेदवेत्ता पुरुषों से शुद्ध करके प्रेरित किया गया है वह (**वग्नुम्, इन्द्रियम्**) श्रोत्रेन्द्रिय को जब (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**इयर्त्ति**) प्राप्त होता है तो अनेक प्रकार के बल उत्पन्न करता है ॥२॥

भावार्थः—सदुपदेशकों द्वारा जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है वे शब्द बलप्रद होते हैं, इसलिये हे श्रोता लोगो! तुमको चाहिये कि तुम सदैव सदुपदेशकों से उपदेश सुनकर अपने आपको तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाओ ॥२॥

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।
पवस्व सोम धारया ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! (**नः**) हमको आप (**शुष्मम्**) जो बल (**नृषाह्यम्**) शत्रु को नाश करने वाला (**वीरवन्तम्**) वीरता वाला (**पुरुस्पृहम्**) सर्वोपरि है उसकी (**धारया**) सुवृष्टि से (**आ, पवस्व**) भली प्रकार पवित्र करें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष सर्वोपरि बल की कामना करते हुए अपने आपको उस बल के योग्य बनाते हैं उनको संसार में न्याय नियम फैलाने के लिये सर्वोपरि बल अवश्यमेव मिलता है ॥३॥

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥४॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**धारया**) अपनी कृपा की दृष्टिरूप धाराओं से (**पवमानः**) पवित्र करता हुआ ज्ञान के प्रभाव से (**अभि, द्रोणानि, आसदम्**) उन अन्तःकरणों को प्राप्त होता है जो अन्तःकरण सत्कर्मों द्वारा (**प्र, असिष्यदत्**) शुद्ध किये हुए होते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! यदि तुम अपने आपको सत्कर्मी बनाओगे तो ज्ञान का प्रवाह तुम्हारे अभ्युदयरूपी अंकुरों को अवश्यमेव अभ्युदयशाली बनायेगा ॥४॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्याभिलाषी जीव! (**अप्सु**) सब रसों में (**मधुमत्तमम्**) मीठा जो एक प्रकार का रस है ऐसे (**त्वा**) तुमको (**हरिम्**) जो तुम अज्ञान के हरने वाले हो (**अद्रिभिः**) वाणीरूप वज्र से (**हिन्वन्ति**) वेदवेत्ता पुरुष तुम्हें प्रेरित करते हैं ताकि तुम (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पीतये**) ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये समर्थ बनो ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष धार्मिक बन के सदुपदेश करते हैं वे मानो सब रसों में से अपने आपको माधुर्य्यसम्पन्न सिद्ध करते हैं और वे ही लोग उपदेष्टा बन कर संसार में लोगों को कर्मयोग का उपदेश करते हैं ॥५॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्राय, वजिणे**) वज्र वाले कर्मयोगी के लिये (**सोमं, सुनोत**) सोमरस उत्पन्न करो, जो रस (**चारुम्**) सुन्दर है (**शर्धाय, मत्सरम्**) बल के लिये जो हर्ष उत्पन्न करने वाला है (**मधुमत्तमम्**) जो अत्यन्त मीठा है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वान् पुरुषो! तुम उत्तमोत्तम ओषधियों से सौम्य स्वभाव बनाने वाले रसों को उत्पन्न करो, जिन रसों को पान करके कर्मयोगी पुरुष अपने कर्त्तव्यों में दृढ़ रहें और जिन रसों में हर्ष को प्राप्त होकर संसार में सर्वोपरि बल को उत्पन्न करें ॥६॥

नवम मण्डल में यह तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २ यवमध्या गायत्री । ३,५ गायत्री । ४,६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब शूरवीरों के गुणों का वर्णन किया जाता है ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः ।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥१॥

पदार्थः—(**सोमासः**) शूरवीर लोग (**स्वाध्यः**) उच्चोद्देश्य वाले (**पवमानासः**) वीरता धर्म से संसार को पवित्र करते हुए (**प्राक्रमुः**) अन्यायकारी शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं और उक्त प्रकार के आक्रमण से (**रयिं**) अपने ऐश्वर्य्य को (**चेतनम्**) जीता जागता (**कृण्वन्ति**) बनाते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग उच्चोद्देश्य से अर्थात् देश की रक्षा के लिये शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं वे लोग अपने ऐश्वर्य को पुनरुज्जीवित करके अपने यश को विमल करके दशों दिशाओं में फैलाते हैं ॥१॥

उक्त वीर परमात्मा से इस प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः ।
भवा वाजानां पतिः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (**वाजानाम्**) सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों के (**पतिः**) स्वामी हैं (**दिवस्पृथिव्याः, अधि**) द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच में (**द्युम्नवर्धनः**) ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले (**भव**) हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा इस प्रकार उपदेश करता है कि हे शूरवीरो! तुम लोग अपने परिश्रम के अनन्तर उस परा शक्ति से इस प्रकार की प्रार्थना करो कि हमारा ऐश्वर्य्य सर्वत्र फैले, और हम द्युलोक और पृथिवीलोक के तीच में शान्ति को फैलायें ।

तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य कैसा ही ऐश्वर्य्यशाली हो, अथवा तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी हो पर फिर भी उसे उस परा शक्ति की सहायता लेनी पड़ती है, जिसने इस संसार को अपने नियमों में बाँध रखा है ॥२॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**तुभ्यम्**) तुमको (**वाताः**) शूरवीर [वान्ति वीरधर्मेण सर्वत्र गच्छन्ति इति वाताः शूरवीराः—जो वीर धर्म से सर्वत्र फैल जायें उनका नाम यहाँ 'वाताः' है] (**अभिप्रियः**) प्यारे हैं और (**तुभ्यम्**) तुम्हारे नियम से (**सिन्धवः**) सिन्धु नदियां (**अर्षन्ति**) बहती हैं (ते) तुम्हारे (**महः**) यश को (**वर्धन्ति**) बढ़ाती है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के नियम से शूरवीर उत्पन्न होकर उसके यश को बढ़ाते हैं, और परमात्मा के नियम से ही सिन्धु आदि महानद स्यन्दमान होकर सम्पूर्ण धरातल को सिञ्चित करते हैं ॥३॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सम्पूर्ण संसार के उत्पादक परमात्मन् ! (**ते, वृष्ण्यं**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाला तुम्हारा ऐश्वर्य्य (**विश्वतः**) सब ओर से (**समेतु**) हमको प्राप्त हो, और आप (**आप्यायस्व**) सब प्रकार से हमारी वृद्धि करें तथा (**वाजस्य, संगथे**) ऐश्वर्य्यनिमित्तिक संग्रामों में आप (**भव**) हमारे संगी बनें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग एकमात्र परमात्मा को अपना आधार बनाते हैं वे सब प्रकार से ऐश्वर्य्यशाली होते हैं और संग्रामजनित विपत्तियों में परमात्मा उनकी सहायता करता है ॥४॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।
वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

पदार्थः—(**बभ्रो**) [बिभर्त्तीति बभ्रुः तत्संबुद्धौ बभ्रो] हे सबके धारण करने वाले परमात्मन् ! (**वर्षिष्ठे, अधि, सानवि**) विभूति वाली प्रत्येक वस्तु में आप शक्तिरूप से विराजमान हैं और (**तुभ्यम्, गावः**) तुम्हारे लिये ही पृथिव्यादि लोक-लोकान्तर (**घृतम्, पयः**) घृत दुग्धादि अनन्त प्रकार के रसों को जो (**अक्षितम्**) निरन्तर स्यन्दमान हो रहे हैं, उनको (**दुदुह्रे**) दुहते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मरचित इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के घृत-दुग्धादि रस दिनरात प्रवाह रूप से स्यन्दमान हो रहे हैं । बहुत क्या, जो-जो विभूति वाली वस्तु है उसमें परमात्मा का ऐश्वर्य्य सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है । इसी अभिप्राय से कहा है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्" अर्थात् जो-जो विभूति वाली वस्तु अथवा ऐश्वर्य्य और शोभावाली है वह सब परमात्मा के प्रकृतिरूप अंश से उत्पन्न हुई है ॥५॥

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥६॥

पदार्थः—(**भुवनस्य, पते**) हे सम्पूर्ण भुवनों के पति परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारी (**स्वायुधस्य, सतः**) जीवित-जागृत शक्ति से (**इन्दो**) हे परमैश्वर्य्यस्वरूप ! हम लोग तुम्हारे (**सखित्वम्**) मैत्रीभाव को (**उश्मसि**) चाहते हैं ॥६॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के नियन्ता और निखिल ज्ञानों के अवगन्ता परमात्मा से जो लोग मैत्री डालते हैं, वे लोग इस संसार में परमानन्द का लाभ करते हैं ॥६॥

नवम मण्डल में यह इकतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्गायत्री । ३–६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की उपलब्धि का कथन करते हैं ॥

प्र सोमा॑सो मद॒च्युत॒ः श्रव॑से नो म॒घोन॑ः ।
सु॒ता वि॒दथे॑ अक्रमुः ॥१॥

पदार्थः—(**मदच्युतः**) आनन्द का स्रोत (**सुताः**) स्वयम्भू (**सोमासः**) परमात्मा (**विदथे**) यज्ञ में (**मघोनः, नः,**) मुझ जिज्ञासु के (**श्रवसे**) ऐश्वर्य के लिये (**प्राक्रमुः**) आकर प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष शुद्धभाव से यज्ञ करते हैं उनको परमात्मा अपने आनन्द-स्रोत से सदैव अभिषिक्त करता है । यज्ञ के अर्थ यहाँ शुद्धान्तःकरण से (१) ईश्वरोपासना, (२) ब्रह्मविद्यादि उत्तमोत्तम पदार्थों का दान, और (३) कला कौशलादि द्वारा विद्युदादि पदार्थों को उपयोग में लाना—ये तीन हैं । जो पुरुष उक्त पदार्थों की संगति करने वाले यज्ञों को करता है वह अवश्यमेव ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥१॥

आदीं॑ त्रि॒तस्य॒ योष॑णो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः ।
इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥२॥

पदार्थः—(**त्रितस्य**) जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों **अवस्थाओं में अप्रतिहत** प्रभाव वाले भक्त पुरुष की (**योषणः**) शक्तियाँ (**इन्द्राय, पीतये**) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (**आत्, ईम्**) इस पूर्वोक्त (**इन्दुम्**) परमैश्वर्य वाले (**हरिम्**) सब दुःखों के हरने वाले परमात्मा को (**अद्रिभिः**) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा (**हिन्वन्ति**) प्रेरित करती हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की भक्ति में रत हैं उनकी इन्द्रियाँ परमात्मज्ञान की उपलब्धि के लिये सदैव तत्पर रहती हैं ॥२॥

आदीं॑ ह॒ंसो यथा॑ ग॒णं विश्वं॑स्यावीवश॒न्मतिम् ।
अत्यो॒ न गोभि॑रज्यते ॥३॥

पदार्थः—(**विश्वस्य, मतिम्, अवीवशत्**) सबकी मति को वश में रखने वाला (**अत्यो, न**) विद्युत् के समान दुर्ग्राह्य (**आदीम्**) ऐसे परमात्मा को (**हंसः, यथा, गणम्**) जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में जाकर मिलता है, उसी प्रकार (**गोभिः, अज्यते**) जीव इन्द्रियों द्वारा साक्षात् करता है ॥३॥

भावार्थः—जीवात्मा जब तक अपनी सजातीय वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं लगाता, तब तक उसे आनन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता; इस भाव का इस मन्त्र में उपदेश किया है कि जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में मिल कर आनन्दित होता है इस प्रकार जीवात्मा भी उस चिद्घन ब्रह्म में मिल जाता है । जीवात्मा को हंस की उपमा इस वास्ते दी है कि "हन्त्यविद्यामिति हंसः" यह जीव अविद्या का हनन करता है । यहाँ विज्ञानी जीव का वर्णन है । और ब्रह्म प्राप्ति से जीव अविद्या का हनन करता है जैसे कि 'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति (छा०) ॥३॥

उ॒भे सो॑माव॒चाक॑शन्मृ॒गो न त॒क्तो अ॑र्षसि ।
सीद॑न्नृ॒तस्य॒ योनि॒मा ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**उभे, अवचाकशत्**) आप द्युलोक और पृथिवी लोक के साक्षी हैं, (**मृगः, न, तक्तः**) और सिंह के समान प्रकृतिरूप वन में विराजमान हो रहे हैं (**ऋतस्य, योनिम्, आसीदन्**) अखिल कार्य का कारण जो प्रकृति उसमें स्थित होकर (**अर्षसि**) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा इस प्रकृति के कार्य चराचर ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत हो रहा है अर्थात् प्रकृति एक प्रकार से गहन वन है और परमात्मा सिंह के समान इस वन का स्वामी है । इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता और शौर्य क्रौर्यादि गुणों के भाव से परमात्मा की रौद्ररूपता वर्णन की है ॥४॥

अ॒भि गावो॑ अनूषत॒ योषा॑ जा॒रमि॑व प्रि॒यम् ।
अग॑न्ना॒जिं यथा॑ हि॒तम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**योषाजारमिव, प्रियम्**) [योषयति आत्मनि प्रीतिमुत्पादयतीति योषा रात्रिः तस्या जारो जारयिता चन्द्रस्तम्] चन्द्रमा के समान सर्वप्रिय (**आजिम्**) प्राप्त करने योग्य (**हितम्**) सबका हित करने वाले आप (**यथा, अगन्**) जिस प्रकार प्राप्त हो जायें उसी प्रकार (**गावः**) इन्द्रिय वृत्तियाँ (**अभ्यनूषत**) आपको विषय करती हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगा और ज्ञानयोगियों की ओर से परमात्मा की प्रार्थना कथन की गयी है, और परमात्मनिष्ठप्रियता की तुलना चन्द्रमा के साथ की; अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होने से सर्वप्रिय है, इसी प्रकार परमात्मा भी आह्लादक होने से सर्वप्रिय है । कई एक टीकाकार "योषाजारम्" के अर्थ स्त्री के जार के करते हैं अर्थात् जैसे स्त्री को अपना यार प्यारा होता है उसी प्रकार मुझ उपासक को तुम प्यारे हो । पहले तो

यह दृष्टान्त विषम है, क्योंकि स्त्री को सर्वदा यार प्यारा नहीं लगता, किन्तु जब तक मोहमयी युवावस्था रहती है तभी तक प्यारा लगता है। और दूसरे जार शब्द के अर्थ सर्वत्र वेदमन्त्रों में तमोनिवर्तक आह्लादक गुण के हैं जैसा कि "स्वसारं जारोऽभ्येति पश्चात्" इस मन्त्र में जार के अर्थ आह्लादक गुण के ही सब प्रकार भाष्यकारों ने किये हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि 'योषाजार' यहाँ चन्द्रमा का नाम है, किसी लम्पट कामी पुरुष का नहीं ॥५॥

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अस्मे**) मेरे लिये (**द्युमत्, यशः, धेहि**) दीप्ति वाले यश को दीजिये (**मघवद्भ्यः, च**) कर्मयोगियों के लिये और (**मह्यं, च**) मेरे लिये (**सनिम्**) धन को, (**मेधाम्**) बुद्धि को तथा (**उत, श्रवः**) सुन्दर कीर्ति को दीजिये ॥६॥

भावार्थः—कर्मयोग और ज्ञानयोग के द्वारा परमात्मा धन, बुद्धि, सुकीर्ति इत्यादि गुणों का प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्र्यस्त्रिंशतमस्य सूक्तस्य १-६ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५, गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वरप्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म, उपासना विषयक तीन वाणियाँ कही जाती हैं ॥

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥१॥

पदार्थः—(**अपाम्, ऊर्मयः, न**) जैसे समुद्र की लहरें स्वभाव ही से चन्द्रमा की ओर उछलती हैं, और (**वनानि, महिषा, इव**) जैसे महात्मा लोग स्वभाव ही से भजन की ओर जाते हैं, इसी प्रकार (**सोमासः, विपश्चितः प्रयन्ति**) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् ज्ञान, कर्म, उपासना बोधक वेदवाणी की ओर लगते हैं ॥१॥

भावार्थः—वेदरूपी वाणी में इस प्रकार की आकर्षण शक्ति है जैसी कि पूर्णिमा के चन्द्रमा में। अर्थात् पूर्णिमा के चन्द्रमा के आह्लादक धर्म की ओर सब लोग प्रवाहित होते हैं। इसी प्रकार ओजस्विनी वेदवाक् अपनी ओर विमल दृष्टि वाले लोगों को खींचती है ॥१॥

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

पदार्थः—(**बभ्रवः**) ज्ञान, कर्म और उपासना को धारण करने वाले, (**शुक्राः**) पवित्र अन्तःकरण वाले विद्वान् ! (**ऋतस्य, धारया**) सच्चाई की धारा से (**अभि, द्रोणानि**) सत्पात्रों के प्रति उपदेश देकर (**वाजम्, गोमन्तम्**) उनके अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को (**अक्षरन्**) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग वेदविद्या का सदुपदेश देते हैं, उनके सदुपदेश से सब प्रकार के अन्नादिक ऐश्वर्य बढ़ते हैं ॥२॥

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥३॥

पदार्थः—(**मरुद्भ्यः, सुताः सोमाः**) विद्वानों द्वारा कर्मोपासना से सिद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् ! (**विष्णवे, अर्षन्ति**) सर्वव्यापक परमात्मा के पद को प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (**इन्द्राय**) [इन्दति परमैश्वर्यं प्राप्नोतीतीन्द्रः] परमैश्वर्य सम्पन्न है, तथा (**वायवे**) [वाति गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीति वायुः] सर्वव्यापक है, (**वरुणाय**) [व्रियते सं भज्यते जनैरिति वरुणः] सबको भजनीय है, उसको प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—जिन लोगों ने माता-पिता और आचार्य से सिद्धि को प्राप्त किया है, वे ज्ञान कर्म उपासना द्वारा ईश्वर को उपलब्ध करते हैं ॥३॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमंति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥४॥

पदार्थः—(**धेनवः, गावः**) इन्द्रियवृत्तियाँ (**तिस्रः, वाचः उदीरते, मिमन्ति**) तीनों वाणियों को उच्चारण करती हुई परमात्मा का साक्षात्कार कराती हैं (**हरिः**) और वह परमात्मा (**कनिक्रदत्, एति**) गर्जता हुआ उनके ज्ञान का विषय होता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोग वैदिक सूक्तों द्वारा वर्णित परमात्मा के स्वरूप को अपने ध्यान में लाना चाहते हैं, वे भली भांति परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। तात्पर्य यह है कि परमात्मा शब्दगम्य है, तर्कों से उसका साक्षात्कार नहीं होता; क्योंकि तर्क की कोई आस्था नहीं। प्रथम के तर्क को, द्वितीय,

जिसकी अधिक बुद्धि है, काट देता है। द्वितीय के तर्क को तृतीय, तृतीय के तर्क को चतुर्थ। और वेद पूर्णपुरुष का ज्ञान है, इस लिये उसमें यह दोष नहीं ॥४॥

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीरृतस्य मातरः ।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥५॥

पदार्थः—(**ऋतस्य, मातरः**) सत्य को उत्पन्न करने वाली (**यह्वीः, ब्रह्मीः**) अतिविस्तृत परमात्मसम्बन्धी वेदवाणियां (**अभि, अनूषत**) अपने वक्ता को विभूषित कर देती हैं (**मर्मृज्यन्ते, दिवः शिशुम्**) और ब्रह्मचारी को पवित्र कर देती हैं ॥५॥

भावार्थः—वेदवाणियाँ परमात्मा के साथ वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध से रहती हैं। इसी लिये इनको ब्रह्मी कहा गया है। जैसा कि गीता में कहा है कि—"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति" जिस प्रकार पुरुष ब्राह्मी स्थिति को पाकर मोह को नहीं प्राप्त होता, इसी प्रकार वेदवाणियाँ पुरुष के अज्ञान को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर देती हैं ॥५॥

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**सहस्रिणः, रायः**) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य वाले (**चतुरः समुद्रान्**) शब्द रूपी जल के चारों वेदरूपी समुद्रों को (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**विश्वतः**) भली प्रकार (**आ, पवस्व**) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के पास नाना प्रकार के रत्नों के भरे हुए अनन्त समुद्र हैं, परन्तु शब्दार्णवरूप समुद्रों से सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं। इससे परमात्मा से शब्दार्णवरूप समुद्र की प्रार्थना करनी चाहिये ॥६॥

नवम मण्डल में यह तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १---६ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, निचृद्गायत्री ॥ ३, ५, ६ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की अद्भुत सत्ता वर्णन की जाती है।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति ।
रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥१॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) वह परमैश्वर्यवाला परमात्मा (**ओजसा**) अपने पराक्रम से (**दृळहा, विरुजत्**) अज्ञानों को नाश करता हुआ (**धारया, प्रसुवानः**) अपनी अधिकरणरूप सत्ता से सबको उत्पन्न करता हुआ (**हिन्वानः**) सबको प्रेरित करता हुआ (**तना, अर्षति**) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा की ऐसी अद्भुत सत्ता है कि निरवयव होकर भी सम्पूर्ण सावयव पदार्थों का अधिष्ठान है, उसी के आधार पर यह चराचर जगत् स्थिर है, और वह सर्वप्रेरक होकर कर्मरूपी चक्र द्वारा सबकी प्रेरणा करता है ॥१॥

सुत इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥२॥

पदार्थः—(**सुतः, सोमः**) स्वयम्भू परमात्मा (**इन्द्राय**) ज्ञानयोगी के लिये, (**वायवे**) कर्मयोगी के लिये, (**वरुणाय**) उपदेशक के लिये, (**मरुद्भ्यः**) विद्वद्गणों के लिये, (**विष्णवे**) अनेक शास्त्रों में प्रविष्ट विद्वान् के लिये, (**अर्षति**) आकर उनके अन्तःकरण में प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान है, तथापि उसकी अभिव्यक्ति कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा अन्य साधनों द्वारा जिन लोगों ने अपने अन्तःकरण को निर्मल किया है उनके हृदय में विशेष रूप से होती है ॥२॥

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
दुहन्ति शक्मना पयः ॥३॥

पदार्थः—विद्वान् लोग (**वृषाणम्**) सब कामनाओं के देने वाले (**सोमम्**) परमात्मा को (**यतम्**) ज्ञान का विषय बना कर (**वृषभिः, अद्रिभिः**) अखिल कामनाओं की साधक इन्द्रियवृत्तियों द्वारा (**शक्मना**) ज्ञानयोग और कर्मयोग द्वारा (**सुन्वन्ति**) प्रेरणा करते हुए (**पयः**) ब्रह्मानन्द को (**दुहन्ति**) दुहते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी बनकर अभ्यास करते हैं वे ही लोग ब्रह्मामृतरूप दुग्ध को परमात्मरूपकामधेनु से दोहन करते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
सं रूपैरज्यते हरिः ॥४॥

पदार्थः—परमात्मा (**त्रितस्य**) श्रवण, मनन, निदिध्यासन—इन तीनों साधनों से (**मर्ज्यः, भुवत्**) उपासनीय है, और (**इन्द्राय, मत्सरः, भुवत्**) विज्ञानियों के लिये आह्लादकारक है तथा (**हरिः रूपैः संभज्यते**) पापनाशक परमात्मा अपने ब्रह्माण्डरूप कार्यों से अभिव्यक्त होता है ।।४।।

भावार्थः—परमात्मा की रचना से उसकी सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है; अर्थात् जो नियम इस ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं उनका नियन्ता वही अवश्य मानना पड़ता है । उस नियन्ता का साक्षात्कार यम नियमादि-साधनों द्वारा होता है, अन्यथा नहीं ।।४।।

अभीमृतस्यं विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
चारुं प्रियतंमं हविः ।।५।।

पदार्थः—(**पृश्निमातरः**) कर्मयोगी विद्वान् (**ऋतस्य, विष्टपं, ईम्**) सत्य के स्थान परमात्मा से (**चारु**) सुन्दर (**प्रियतमम्**) अतिप्रिय (**हविः**) शुभकर्म की (**अभिदुहते**) भली प्रकार प्रार्थना करते हैं ।।५।।

भावार्थः—कर्म्मयोगी पुरुष अपने कर्म्मों से उसका साक्षात्कार अर्थात् उपासना कर्म्म द्वारा उसकी सत्ता को लाभ करते हैं ।।५।।

समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।
धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ।।६।।

पदार्थः—(**सस्रुतः**) आकाश में फैलती हुई (**अह्रुताः**) निष्कपटभाव से की हुई (**इमाः, गिरः**) कर्मयोगियों द्वारा की हुई स्तुतियाँ (**एनम्, समर्षन्ति**) इस परमात्मा को प्राप्त होती हैं, (**वाश्रः**) और वह वेदोत्पादक परमात्मा (**धेनूः, अवीवशत्**) उन कर्मयोगियों के लिये अभीष्ट कामनाओं के देने को उद्यत रहता है ।।६।।

भावार्थः—शुभ संकल्पों के मन में उत्पन्न हो जाने से परमात्मा उनका फल अवश्यमेव देता है । तात्पर्य्य यह है कि उपासना, प्रार्थना भी एक प्रकार के कर्म्म हैं, उनका फल उनको अवश्य मिलता है । इसलिये प्रार्थना केवल मांगना ही नहीं, किन्तु एक प्रकार का कर्म्म है, वह निष्फल कदापि नहीं हो सकता ।।६।।

नवम मण्डल में यह चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ षड्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ प्रभूवसुर्ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१, २, ४–६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

अथ परमात्मा का धर्मादिदातृत्वेन वर्णन करते हैं ।।

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।
यया ज्योतिर्विदासि नः ।।१।।

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (**नः, धारया, आ पवस्व**) हमको आप आनन्द की धारा से भली प्रकार पवित्र करिये, (**रयिम्, पृथुम्**) और बड़े भारी ऐश्वर्य को दीजिये, (**यया, नः, ज्योतिः, विदासि**) उसी आनन्द की धारा से आप ज्ञानप्रद हैं ।।१।।

भावार्थः—जो पुरुष अपने आप को परमात्मज्ञान का पात्र बनाते हैं परमात्मा उन्हें आनन्द की वृष्टि से सिञ्चित करते हैं ।।१।।

इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय ।
रायो धर्ता न ओजसा ।।२।।

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यशाली परमात्मन् ! (**समुद्रमीङ्खय**) हे अन्तरिक्षादि लोकों में व्याप्त ! (**विश्वमेजय, ओजसा**) हे अपने प्रताप से संसार को चकित करनेवाले ! (**रायः, धर्ता**) आप सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्यों को धारण करनेवाले हैं (**नः, पवस्व**) आप हमको धनादि ऐश्वर्य का दान करके पवित्र करिये ।।२।।

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही धनादि सब ऐश्वर्य पुरुष को प्राप्त होते हैं, इसलिये पुरुष को सदैव परमात्मपरायण होने का यत्न करना चाहिये ।।२।।

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः ।
क्षरा णो अभि वार्यम् ।।३।।

पदार्थः—(**वीरवः**) हे वीरों के अधिपति परमात्मन् ! (**वीरेण, त्वया**) सर्वोपरि पराक्रमवाले आप के द्वारा हम (**पृतन्यतः, अभिष्याम**) संग्राम की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को पराजित करें । (**नः, वार्यम्, अभिक्षर**) आप हमको अभिलषित पदार्थों को दीजिये ।।३।।

भावार्थः—जो लोग अन्यायकारी शत्रुओं का विजय करने का संकल्प रखते हैं, परमात्मा उन्हें अन्यायकारियों के दमन का बल प्रदान

करता है, ताकि अन्यायकारियों को मर्दन करके वे संसार में न्याय का प्रचार करें ॥३॥

प्र वा॒जमिन्दु॑रिष्यति॒ सिषा॑सन्वाज॒सा ऋषि॑ः ।
व्र॒ता वि॑दा॒न आयु॑धा ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) सर्वैश्वर्यवाला (**सिषासन्**) अपने भक्तों को चाहनेवाला (**वाजसाः**) अखिल ऐश्वर्यों से युक्त (**ऋषिः**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का साक्षी (**व्रता, आयुधा, विदानः**) सम्पूर्ण कर्मों तथा आयुधों से सम्पन्न परमात्मा (**वाजम्, प्रेष्यति**) अपने भक्तों को सब प्रकार के ऐश्वर्य देता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सन्मार्गगामी पुरुषों को सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य प्रदान करता है। जो लोग परमात्मा की आज्ञा मान कर उसका अनुष्ठान करते हैं, वही परमात्मा के भक्त व सदाचारी कहलाते हैं, अन्य नहीं ॥४॥

तं गी॒र्भिर्वा॑चमीङ्ख॒यं पु॑ना॒नं वा॑सयामसि ।
सोमं॑ जन॑स्य॒ गोप॑तिम् ॥५॥

पदार्थः–(**वाचमीङ्खयम्**) वेदवाणी में निवास करने वाले (**पुनानम्**) सबको पवित्र करने वाले (**जनस्य, गोपतिम्**) मनुष्यों की इन्द्रिय वृत्तियों को प्रेरणा करने वाले (**तं, सोमम्**) उस परमात्मा को (**गीर्भिः**) स्तुतियों द्वारा (**वासयामसि**) अपने अन्तःकरण में वसाते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा के स्व अन्तःकरण में धारण करने का उपाय यह है कि पुरुष उसके सद्गुणों का चिन्तन करके उसके स्वरूप में मग्न हो जाय, इसी का नाम परमात्मप्राप्ति वा परमात्मयोग है ॥५॥

विश्वो॒ यस्य॑ व्र॒ते जनो॑ दा॒धार॒ धर्म॑ण॒स्पतेः॑ ।
पु॒ना॒नस्य॑ प्र॒भूव॑सोः ॥६॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस (**धर्मणस्पतेः**) धर्म को पालन करने वाले (**पुनानस्य**) संसार को पवित्र करने वाले (**प्रभूवसोः**) अनन्त ऐश्वर्य वाले परमात्मा की (**व्रते**) भक्ति में (**विश्वः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्याभिलाषियों का गण (**मनः, दाधार**) अपने-अपने मन को धारण करता है, उस परमात्मा को हम अपने हृदय में वसाते हैं ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के नियम में ही सब सूर्य्यादि पदार्थ अपने-अपने धर्म्मों को धारण करते हैं; अर्थात् उसके नियमों का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उस परमात्मा के महत्त्व को स्वहृदय में धारण करना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है ॥६॥

नवम मण्डल में यह पंतीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ३ ५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा को रयि और प्राण रूप शक्ति का आधार
रूप से वर्णन करते हैं ॥

अस॑र्जि॒ रथ्यो॑ यथा प॒वित्रे॑ च॒म्वोः॑ सु॒तः ।
कार्ष्म॑न्वा॒जी न्य॑क्रमीत् ॥१॥

पदार्थः—(**रथ्यः**) सब गतिशील पदार्थों को गति देनेवाला वह परमात्मा (**चम्वोः, सुतः**) रयि और प्राणरूप दोनों शक्तियों में प्रसिद्ध है। और उसने (**यथा, असर्जि**) पूर्ववत् सब संसार को पैदा किया, और (**वाजी**) श्रेष्ठबल वाला वह परमात्मा (**पवित्रे, कार्ष्मन्, न्यक्रमीत्**) भजन द्वारा उसको आकर्षण करनेवाले भक्तों के पवित्र हृदय में आकर विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक पुरुष के हृदय में विद्यमान है, तथापि जो पुरुष अपने अन्तःकरण को निर्म्मल रखते हैं, उनके हृदय में उसकी स्फुट प्रतीति होती है। इसी अभिप्राय से कथन किया है कि वह भक्तों के हृदय में विराजमान है ॥१॥

स वह्नि॑ः सो॒म जागृ॑वि॒ः पव॑स्व दे॒ववी॒रति॑ ।
अ॒भि कोशं॑ मधु॒श्चुत॑म् ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे भगवन्! (**सः**) वह पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आप (**वह्निः**) सब के प्रेरक हैं और (**जागृविः**) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूप हैं। (**देववीः, अति**) सद्गुणसम्पन्न विद्वानों को अति चाहने वाले हैं (**मधुश्चुतम्, कोशम्, अभिपवस्व**) आप आनन्द के स्रोत को बहाइये ॥२॥

भावार्थः—सम्पूर्ण वस्तुओं में से परमात्मा ही एकमात्र आनन्दमय है। उसी के आनन्द को उपलब्ध करके जीव आनन्दित होते हैं। इसलिये उसी आनन्दरूप सागर से सुख की प्रार्थना करनी चाहिये ॥२॥

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३॥

पदार्थः—(पूर्व्य, पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले अनादि परमात्मन्! (नः, ज्योतींषि) आप हमारे ज्ञान को (**विरोचय**) प्रकाशित कीजिये और (नः) हमको (**क्रत्वे, दक्षाय, हिनु**) बलप्रद यज्ञ के लिये उद्यत कीजिये ॥३॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मज्योति का ध्यान करते हैं, वे पवित्र होकर सदैव शुभ कामों में प्रवृत्त रहते हैं ॥३॥

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।

पवते वारे अव्यये ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! आप (**ऋतायुभिः**) सत्य को चाहने वाले विद्वानों से (**गभस्त्योः**) अपनी शक्तियों द्वारा स्थित होते हुए (**मृज्यमानः**) उपास्य हो। (**शुंभमानः**) सर्वोपरि शोभा को प्राप्त होते हुए (**अव्यये, वारे, पवते**) अपने उपासकों के लिये अव्यय मुक्ति पद को प्रदान करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष शुभ काम करते हुए श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनों से युक्त रहते हैं वे मुक्तिपद के अधिकारी होते हैं ॥४॥

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।

पवतामान्तरिक्ष्या ॥५॥

पदार्थः—(सः, सोमः) वह सौम्यस्वभाव वाले आप (**दाशुषे**) अपने उपासक के लिये (**दिव्यानि**) दिव्य (**अन्तरिक्ष्या**) अन्तरिक्ष में होने वाले तथा (**पार्थिवानि**) पृथिवीलोक में होने वाले (**विश्वा, वसु**) सम्पूर्ण रत्नादि ऐश्वर्यों को (**आ पवताम्**) दीजिये ॥५॥

भावार्थः जो लोग अपने स्वभाव को सौम्य बनाते हैं, अर्थात् ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को लक्ष्य में रख कर अपने गुण कर्म स्वभाव को भी उसी प्रकार का पवित्र बनाते हैं, वे सब ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं ॥५॥

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि ।

वीरयुः शवसस्पते ॥६॥

पदार्थः—(सोम, शवसस्पते) हे अन्नादि ऐश्वर्यों के स्वामिन् परमात्मन्! आप अपने उपासक के लिये (**वीरयुः**) वीरों की इच्छा करने वाले तथा (**अश्वयुः, गव्ययुः**) अश्व, गौ आदिकों की इच्छा करने वाले हैं (**दिवः, पृष्ठम्, आरोहसि**) और द्युलोक के भी पृष्ठ पर आप विराजमान हैं ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर सदाचारी और न्यायकारी लोगों के लिये धीरत्व, वीरत्वादि धर्मों को धारण करता है। और गौ, अश्वादि सब प्रकार के धनों से उन्हें सम्पन्न करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह छत्तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–३ गायत्री । ४–६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा दुराचारियों से रक्षा का कथन करते हैं ॥

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥

पदार्थः—(**सुतः**) स्वयम्भू (**वृषा**) सर्व कामप्रद (**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**रक्षांसि, विघ्नन्**) राक्षसों का हनन करता हुआ और (**देवयुः**) देवताओं को चाहता हुआ (**पीतये**) विद्वानों की तृप्ति के लिये (**पवित्रे, अर्षति**) उनके अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों के हृदय में आकर विराजमान होता है। और उनके सब विघ्नों को दूर करके उनको कृतकार्य बनाता है। यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है, तथापि वह देवभाव को धारण करने वाले मनुष्य को ज्ञान द्वारा प्रतीत होता है, अन्यों को नहीं। इस अभिप्राय से यहाँ देवताओं के हृदय में उसका निवास कथन किया गया है, अन्यों के नहीं ॥१॥

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।

अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

पदार्थः—(**अभियोनिम्**) प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त होकर (**कनिक्रदत्**) शब्दायमान (**सः**) वह परमात्मा (**पवित्रे, अर्षति**) पवित्र हृदयों में निवास करता है और (**विचक्षणः**) सर्वद्रष्टा है (**हरिः**) पापों का हरने वाला तथा (**धर्णसिः**) सबको धारण करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ही इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का अधिष्ठाता तथा विधाता है ॥२॥

स वा॒जी रो॑च॒ना दि॒वः पव॑मानो॒ वि धा॑वति ।
र॒क्षो॒हा वार॑म॒व्यय॑म् ॥३॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**वाजी**) अत्यन्त बलवाला (**दिवः, रोचना**) सब तथा अन्तरिक्ष का प्रकाशक है,(**रक्षोहा**) असत्कर्मियों का हनन करनेवाला, (**वारं**) सबका भजनीय और (**अव्ययम्**) अविनाशी है । (**पवमानः**) एवम्भूत परमात्मा सबको पवित्र करता हुआ (**विधावति**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥३॥

भावार्थ:—सूर्य चन्द्रमादि सब लोक-लोकान्तर उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । स्वयंप्रकाश एकमात्र वही परमात्मा है । अन्य कोई वस्तु स्वतःप्रकाश नहीं ॥३॥

स त्रि॒तस्याधि॒ सान॑वि॒ पव॑मानो अरोचयत् ।
जा॒मिभि॒ः सूर्यं॑ स॒ह ॥४॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**त्रितस्य, अधिसानवि**) नीतिशास्त्रों में सर्वोपरि नेता है,(**पवमानः**) लोकों को शुद्ध करने वाले उसी परमात्मा ने (**जामिभिः, सह**) तेजों के सहित (**सूर्यम्, अरोचयत्**) सूर्य को देदीप्यमान किया है ॥४॥

भावार्थः—सब प्रकार की विद्याएँ उसी परमात्मा से मिलती हैं । और वही परमात्मा राजनीति से राजधर्मों का निर्माता तथा विधाता है ॥४॥

स वृ॑त्र॒हा वृषा॑ सु॒तो व॑रिवो॒विददा॑भ्यः ।
सोमो॒ वाज॑मिवासरत् ॥५॥

पदार्थः—(**वृत्रहा**) अज्ञानों का नाशक (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला (**सुतः**) स्वयंसिद्ध (**वरिवोवित्**) ऐश्वर्यों का देने वाला (**अदाभ्यः**) अदम्भनीय (**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**वाजम्, इव असरत्**) शक्ति की नाईं व्याप्त हो रहा है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य (वृत्र) मेघों को छिन्न-भिन्न करके धरातल को जल से सुसिंचित कर देता है, इसी प्रकार परमात्मा सब प्रकार के आवरणों को छिन्न-भिन्न करके अपने ज्ञान का प्रकाश कर देता है ॥५॥

स दे॒वः क॒विने॑षि॒तो॒३॒॑भि द्रोणा॑नि धावति ।
इन्दु॒रिन्द्रा॑य मं॒हना॑ ॥६॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**देवः**) दिव्यगुण सम्पन्न है (**कविना, इषितः**) विद्वानों द्वारा प्रार्थित होता है । (**इन्दुः**) परम ऐश्वर्यसम्पन्न है (**मंहना**) महान् है और (**इन्द्राय, अभि, द्रोणानि**) विद्वानों के अन्तःकरणों में (**धावति**) विराजमान होता है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथापि विद्याप्रदीप से जो लोग अपने अन्तःकरणों को देदीप्यमान करते हैं उनके हृदय में उसकी अभिव्यक्ति होती है । इस अभिप्राय से यहाँ परमात्मा का विद्वानों के हृदय में निवास करना कथन किया गया है ॥६॥

नवम मण्डल में यह सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य अष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, निचृद्गायत्री । ३ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से ईश्वर के गुण वर्णन करते हैं ॥

ए॒ष उ॒ स्य वृषा॒ रथोऽव्यो॒ वारे॑भिरर्षति ।
गच्छ॒न्वाजं॑ सह॒स्रिण॑म् ॥१॥

पदार्थः—(**एषः, स्यः,**) यह परमात्मा (**रथः**) गतिशील और (**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला (**अव्यः**) तथा सबका रक्षक है (**सहस्रिणम्, वाजम्**) अनन्तशक्तिसम्पन्न (**गच्छन्**) होता हुआ (**वारेभिः, अर्षति**) वरणीय विद्वानों द्वारा प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा का ज्ञान विद्वानों द्वारा इस संसार में प्रचार पाता है, इस अभिप्राय से परमात्मा ने उक्त मन्त्र में विद्वानों की मुख्यता निरूपित की है ॥१॥

ए॒तं त्रि॒तस्य॒ योष॑णो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः ।
इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥२॥

पदार्थः—(**त्रितस्य, योषणः, हरिम्**) [हरति प्रापयति स्ववशमानयतीति हरिः स्वामी] तीनों गुणवाली माया के अधिपति (**एतम्, इन्दुम्**) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा को (**इन्द्राय पीतये**) जीव की तृप्ति के लिये (**अद्रिभिः**) इन्द्रियवृत्ति द्वारा (**हिन्वन्ति**) विद्वान् लोग ध्यानविषय करते हैं ।।२।।

भावार्थः—सत्व, रज, और तम—इन तीनों गुणों वाली माया जो प्रकृति है, उसका एकमात्र अधिपति परमात्मा ही है; कोई अन्य नहीं। जो-जो पदार्थ इन्द्रियगोचर होते हैं, वे सब मायिक हैं अर्थात् मायारूपी उपादान-कारण से बने हुए हैं। परमात्मा मायारहित होने से अदृश्य है। उसका साक्षात्कार केवल बुद्धिवृत्ति से होता है। बाह्य-चक्षुरादि इन्द्रियों से नहीं। इसी अभिप्राय से यहाँ परमात्मा को बुद्धिवृत्ति का विषय कहा गया है ।।२।।

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भते ।।३।।

पदार्थः—(**हरितः, दश, अपस्युवः**) परमात्मस्तुति द्वारा पापों को हरण करने वाली दश इन्द्रियां (**एतम्, त्यम्**) इस परमात्मा को (**मर्मृज्यन्ते**) ज्ञान का विषय बनाती हैं, (**याभिः**) जिन इन्द्रियों से (**मदाय**) आनन्द देने के लिये (**शुंभते**) परमात्मा प्रकाशित होता है ।।३।।

भावार्थः—जो लोग योगादि साधनों द्वारा अपने मन का संयम करते हैं, अथवा यों कहिये कि, जिन्होंने पापवासनाओं को अपने मन की पवित्रता से नाश कर दिया है, परमात्मा उन्हीं के ज्ञान का विषय होता है, मलिनात्माओं का कदापि नहीं ।।३।।

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छञ्जारो न योषितम् ।।४।।

पदार्थः—(**एषः, स्यः**) यह परमात्मा (**श्येनः, न**) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियों के समान (**जारः योषितं, गच्छन्, न**) जैसे चन्द्रमा रात्रि को प्रकाशित करता हुआ प्राप्त होता है, उसी प्रकार (**मानुषीषु, विक्षु, सीदति**) मानुषी प्रजाओं में प्राप्त होता है ।।४।।

भावार्थः—जिस प्रकार चन्द्रमा अपने शीतस्पर्श और आह्लादको देता हुआ प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार परमात्मा अपने शान्त्यादि और आनन्दादिगुणों से सब प्रजाओं को प्रसन्न करता है ।।४।।

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ।।५।।

पदार्थः—(**मद्यः**) आह्लादजनक (**रसः**) आनन्दरूप (**दिवः, शिशुः**) द्युलोक का शासक (**एषः, स्यः**) यह परमात्मा (**अवचष्टे**) सबको देखता है (**यः, इन्दुः**) जो परमैश्वर्यवाली परमात्मा (**वारम्, आविशत्**) स्तोता विद्वान् के अन्तःकरण में प्रविष्ट होता है ।।५।।

भावार्थः—इस संसार में सर्वद्रष्टा एकमात्र परमात्मा ही है। उससे भिन्न सब जीव अल्पज्ञ हैं। योगी पुरुष भी अन्यों की अपेक्षा सर्वज्ञ कहे जाते हैं, वास्तव में वे सर्वज्ञ नहीं ।।५।।

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ।।६।।

पदार्थः—(**एषः, स्यः**) यह परमात्मा (**सुतः**) स्वयम्भू (**धर्णसिः**) धारण करने वाला (**क्रन्दन्**) शब्दमय वेद को आविर्भाव करता हुआ (**पीतये**) संसार की तृप्ति के लिये (**योनिम्, प्रियम्**) प्रिय प्रकृति में (**अभ्यर्षति**) व्याप्त हो रहा है ।।६।।

भावार्थः—इस प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्ड के रोम-रोम में व्याप्त और वेदादि विद्याओं का आविर्भावकर्ता एकमात्र परमात्मा ही है ।।६।।

नवम मण्डल में यह अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ षड्ऋचस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ बृहन्मतिर्ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः-१, ४, ६, निचृद् गायत्री ।। २, ३, ५, गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

अब यज्ञ में ज्ञान रूप से परमात्मा का आवाहन कथन करते हैं।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्र देवा इति ब्रुवन् ।।१।।

पदार्थः—(**बृहन्मते**) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (**आशुः**) आप शीघ्र गतिशील हैं (**यत्र देवाः, इति, ब्रवन्**) जहाँ दिव्यगुण सम्पन्न ऋत्विगादि आपका आवाहन करते हैं, उस यज्ञ स्थल में आप (**प्रियेण, धाम्ना, पर्यर्ष**) अपने सर्वहितकारक तेजःस्वरूप से विराजमान हों ।।१।।

भावार्थः—यज्ञादि शुभ कर्मों में परमात्मा के भाव वर्णन किये जाते हैं, इसलिये परमात्मा की अभिव्यक्ति यज्ञादि स्थलों में मानी गई है। वास्तव में परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है ॥१॥

परि॒ष्कृ॒ण्वन्ननि॑ष्कृतं॒ जना॑य या॒तय॒न्निषः॑ ।
वृ॒ष्टिं दि॒वः परि॑ स्रव ॥२॥

पदार्थः—(अनिष्कृतम्, परिष्कृण्वन्) हे परमात्मन् ! आप अपने अज्ञानी उपासकों को ज्ञान देते हुए (जनाय, इषः, यातयन्) और अपने भक्तों को ऐश्वर्य प्राप्त कराते हुए (दिवः, वृष्टिम्, परिस्रव) द्युलोक से वृष्टि को उत्पन्न कीजिये ॥२॥

भावार्थः—परमात्माके, संसार में अद्भुत कर्म ये हैं कि उसने द्युलोक को वर्षणशील बनाया है, और सूर्यादिलोकों को तेजोमय तथा पृथिवीलोक को दृढ़ इत्यादि । इन विचित्र भावों का कर्त्ता एकमात्र परमात्मा ही है ॥२॥

सु॒त ए॑ति प॒वित्र॒ आ त्विषिं॒ दधा॑न॒ ओज॑सा ।
वि॒चक्षा॑णो वि॒रोच॑यन् ॥३॥

पदार्थः—(विरोचयन्) सब प्रकाशित वस्तुओं को प्रकाशमान करता हुआ (विचक्षाणः) और अखिल ब्रह्माण्ड का द्रष्टा (सुतः) वह स्वयम्भू परमात्मा (ओजसा, त्विषिं, दधानः) अपने प्रताप से ज्ञान को धारण कराता हुआ (पवित्रे, एति) विद्वानों के पवित्र अन्तःकरण में प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक है, तथापि उसका स्थान विद्वानों के हृदय को इसलिए वर्णन किया गया है, कि विद्वान् लोग अपने हृदय को उसके ज्ञान का पात्र बनाते हैं ॥३॥

अ॒यं स यो दि॒वस्परि॑ रघु॒यामा॑ प॒वित्र॒ आ ।
सिन्धो॑रू॒र्मा व्यक्ष॑रत् ॥४॥

पदार्थः—(अयम्, सः) यह वह परमात्मा है (यः) जोकि (दिवस्परि) अन्तरिक्ष के भी ऊर्ध्वभाग में वर्तमान है और (रघुयामा) शीघ्रगतिवाला है (पवित्रे, आ) और ज्ञानयोगियों के पवित्र अन्तःकरण में निवास करता है, तथा (सिन्धोः ऊर्मा, व्यक्षरत्) जो स्यन्दनशक्ति उत्पन्न करता है ॥४॥

भावार्थः—उसी परमात्मा की अद्भुत शक्ति तथा सत्ता से सूर्य चन्द्रमादिकों का परिभ्रमण और नदियों का प्रवहन इत्यादि सम्पूर्ण गतियाँ उसी की सत्ता से उत्पन्न होती है ॥४॥

आ॒वि॒वास॑न्परा॒वतो॒ अथो॑ अर्वा॒वतः॑ सु॒तः ।
इन्द्रा॑य सिच्यते॒ मधु॑ ॥५॥

पदार्थः—(सुतः) वह स्वयम्भू परमात्मा (परावतः) दूरस्थ (अथो, अर्वावतः) और समीपस्थ वस्तुओं को (आविवासन्) भली प्रकार प्रकाशित करता हुआ (इन्द्राय, सिच्यते, मधु) जीवात्मा के लिये आनन्द की वृष्टि करता है ॥५॥

भावार्थः—जीवात्मा के लिये आनन्द का स्रोत, एकमात्र वही परमात्मा है ॥५॥

स॒मी॒ची॒ना अ॑नूषत॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः ।
योना॑वृ॒तस्य॑ सीदत ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (हरिम्) पापों को नाश करने वाले आपकी (समीचीनाः) सत्कर्मा ऋत्विगादि लोग (अनूषत) स्तुति करते हैं । तथा (अद्रिभिः, हिन्वन्ति) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा ज्ञान का विषय बनाते हैं, (ऋतस्य, योनौ, सीदत) हे परमात्मन् ! आप सत्य की योनि यज्ञ में स्थित हों ॥६॥

भावार्थः—याज्ञिक पुरुष अपने अन्तःकरण को यज्ञवेदिस्थानी बनाकर परमात्मज्ञान को अवनेय बनाकर इस ज्ञानमय यज्ञ से प्रजा को सुगन्धित करते हैं । तात्पर्य यह है कि अध्यात्मयज्ञ ही एकमात्र परमात्मप्राप्ति का मुख्य साधन है, अन्य जलस्थलादि कोई वस्तु भी परमात्मप्राप्ति का मुख्य साधन नहीं ॥६॥

नवम मण्डल में यह उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर से शीलता की प्रार्थना की जाती है ॥

पु॒ना॒नो अ॑क्रमीद॒भि विश्वा॒ मृधो॒ विच॑र्षणिः ।
शु॒म्भन्ति॒ विप्रं॑ धी॒तिभिः॑ ॥१॥

पदार्थः—(**विचषणिः**) सर्वद्रष्टा परमात्मा (**पुनानः**) सत्कर्मियों को पवित्र करता हुआ (**विश्वा, मृधः, अभ्यक्रमीत्**) अखिल दुराचारियों का नाश करता है (**विप्रं, धीतिभिः**) उस परमात्मा को विद्वान् लोग वेदवाणियों से (**शुम्भन्ति**) स्तुति करके विभूषित करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मी पुरुषों को शुभ स्वभाव प्रदान करता है। तात्पर्य यह है कि सत्कर्मियों को उनके शुभ कर्म्मानुसार शुभ फल देता है, और दुष्कर्मियों को दुष्कर्मानुसार अशुभ फल देता है ॥१॥

आ योनि॑मरु॒णो रु॑ह॒द्गम॒दिन्द्रं॒ वृषा॑ सु॒तः ।
ध्रु॒वे सद॑सि सीदति ॥२॥

पदार्थः—(**अरुणः**) सर्वव्यापी (**सुतः**) स्वयंसिद्ध वह परमात्मा (**आ योनिम् रुहत्**) सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त हो रहा है और (**वृषा**) सर्वकामनाओं का देनेवाला वह परमात्मा (**सदसि**) यज्ञस्थल में (**इन्द्रम्, गमत्**) ज्ञानयोगी को प्राप्त होकर (**ध्रुवे, सीदति**) उसके दृढ़विश्वासी अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥२॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुषों को परमात्मा सदैव उत्साह देकर सत्कर्मों में प्रवृत्त करता है ॥२॥

नू नो॑ र॒यिं म॒हामि॑न्दो॒ऽस्मभ्यं॑ सोम वि॒श्वतः॑ ।
आ प॑वस्व सह॒स्रिण॑म् ॥३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**सोम**) हे सौम्य स्वभाव वाले (**नः**) हमारे लिये (**नु**) निश्चय करके (**विश्वतः**) सब ओर से (**सहस्रिणम्**) अनेक प्रकार के (**महां**) बड़े (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**आ पवस्व**) दीजिये ॥३॥

भावार्थः—सत्कर्मी पुरुष भी जब तक परमात्मा से अपने ऐश्वर्य की वृद्धि की प्रार्थना नहीं करते, तब तक उनका अभ्युदय नहीं होता। यद्यपि अभ्युदय पूर्वकृत शुभ कर्मों का फल है, तथापि जबतक मनुष्य का अभ्युदयशाली शील नहीं बनता तब तक वह अभ्युदय को कदाचित् भी नहीं चाहता। इसलिये अभ्युदयशाली शील बनाने के लिए अभ्युदय की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये ॥३॥

विश्वा॑ सोम पवमान द्यु॒म्नानी॑न्द॒वा भ॑र ।
वि॒दाः स॑ह॒स्रिणी॒रिषः॑ ॥४॥

पदार्थः—(**सोम, पवमान**) हे जगत् को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! (**विश्वा, द्युम्नानि, आभर**) आप मेरे लिये सम्पूर्ण दिव्यरत्नों को दीजिये तथा (**सहस्रिणीः, इषः, विदाः**) और अनेक प्रकार के अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिये ॥४॥

भावार्थः—सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये उससे ऐश्वर्यों की प्रार्थना करनी चाहिये ॥४॥

स नः॑ पुना॒न आ भ॑र र॒यिं स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ।
ज॒रि॒तुर्व॑र्धय॒ गिरः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**सः**) हे परमात्मन् ! वह पूर्वोक्त आप (**नः, स्तोत्रे**) आपकी स्तुति करने वाले मुझको (**पुनानः**) पवित्र करते हुए (**सुवीर्यम्, रयिम्**) सुन्दर पराक्रम के साथ ऐश्वर्य को (**आभर**) दीजिये और (**जरितुः, गिरः, वर्धय**) मुझ उपासक की वाक्शक्ति को बढ़ाइये ॥५॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपनी वाक्शक्ति को बढ़ाते हैं, परमात्मा उन्हें वाग्मी अर्थात् सुन्दर वक्ता बनाता है ॥५॥

पु॒ना॒न इ॑न्द॒वा भ॑र॒ सोम॑ द्वि॒बर्ह॑सं र॒यिम् ।
वृष॑न्निंदो न उ॒क्थ्य॑म् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्दो, सोम**) हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन् ! (**पुनानः**) आप मेरे स्वभाव को पवित्र करते हुए (**द्विबर्हसम्, रयिम्, आभर**) द्युलोक तथा पृथिवीलोक सम्बन्धी दोनों ऐश्वर्यों को दीजिये। (**इन्दो**) हे प्रकाशरूप ! (**वृषन्**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाले आप (**नः, उक्थ्यम्**) मेरी स्तुतिरूप वाणी को स्वीकार करिये ॥६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के गुणकर्मानुसार अपने स्वभाव को बनाते हैं परमात्मा उन्हें ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की रचना का महत्त्व वर्णन करते हैं ॥

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

पदार्थः—(ये, गावः, न) पृथिव्यादिलोकों के समान जो लोक (भूर्णयः) शीघ्र गतिशील हैं (त्वेषाः) जो दीप्तिमान् और (अयासः) वेगवाले (कृष्णाम्, त्वचम्) महागूढ़ अन्धकार को (अपघ्नन्तः, प्राक्रमुः) नष्ट करते हुए प्रक्रमण करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोक लोकान्तरों को उत्पन्न करता है, उसी की सत्ता से सब पृथिव्यादि लोक गति कर रहे हैं ॥१॥

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् ।
साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥२॥

पदार्थः—(सुवितस्य, दुराव्यम्, सेतुम्) ऐसे पूर्वोक्त लोकों को उत्पन्न करने वाले दुःख से प्राप्त करने योग्य संसार के सेतुरूप ईश्वर की (मनामहे) स्तुति करते हैं, जो परमात्मा (अव्रतम्, दस्युम् साह्वांसः) वेदधर्म को नहीं पालन करने वाले, दुराचारियों का शमन करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा इस चराचर जगत् का सेतु है, अर्थात् मर्य्यादा है, उसी की मर्य्यादा में सूर्य्य चन्द्रादि सब लोक परिभ्रमण करते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि उस मर्य्यादापुरुषोत्तम को सदैव अपना लक्ष्य बनावें ॥२॥

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पदार्थः—(वृष्टेः, इव, स्वनः, शृण्वे) जिसका अनुशासन मेघ की वृष्टि के समान निस्सन्देह सुना जाता है, उसी (पवमानस्य, शुष्मिणः) संसार को पवित्र करने वाले तथा सर्वोपरि बल वाले परमात्मा की (विद्युतः, दिवि, चरन्ति) विद्युदादि शक्तियाँ आकाश में भ्रमण करती हुई दिखाई देती हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की विद्युदादि अनेक शक्तियाँ हैं, इसलिए उसे अनन्त शक्तिमद्ब्रह्म कहा जाता है ॥३॥

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (सुतः) स्वयंसिद्ध हैं (गोमत्, हिरण्यवत्, अश्वावत्, वाजवत्) गो, हिरण्य, अश्व, बल, पराक्रमादि से युक्त (महीम्, इषम्, आपवस्व) बड़े भारी ऐश्वर्य को मेरे लिये उत्पन्न करिये ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी स्वसत्ता से विराजमान है। अर्थात् परमात्मा सबका अधिष्ठान होकर सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा है और वह स्वयंप्रकाश है ॥४॥

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

पदार्थः—(विचर्षण) हे सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! (उषाः, सूर्यः, न, रश्मिभिः) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से उषःकाल को प्रकाशित कर देते हैं उसी प्रकार (मही, रोदसी) इस महान् पृथिवी लोक और द्युलोक को (आपृण) अपने ऐश्वर्य से पूरित करिये। और (पवस्व) उस ऐश्वर्य से अपने सत्कर्मी उपासकों को पवित्र करिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा ही एकमात्र पवित्रता का केन्द्र है, पवित्रता चाहने वालों को चाहिये कि पवित्र होने के लिए उसी परमात्मा की उपासना करके अपने आपको पवित्र बनायें ॥५॥

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (रसेव, विष्टपम्) जिस प्रकार रस से अर्थात् ब्रह्म से लोक व्याप्त हो रहा है, उसी प्रकार (शर्मयन्त्या, धारया) सुख देनेवाली आनन्द की धारा सहित (नः, विश्वतः, परिसर) मेरे हृदय में आप भली प्रकार निवास कीजिये ॥६॥

भावार्थः—आनन्द का स्रोत एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिये आनन्दाभिलाषी जनों को चाहिए कि उसी आनन्दाम्बुधि का रसपान करके अपने आपको आनन्दित करें ॥६॥

नवम मण्डल में यह इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य द्वाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्गायत्री । ३, ४, ६ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा को सूर्यादिकों के कर्त्ता रूप से वर्णन करते हैं ॥

ज॒नय॑न्रोच॒ना दि॒वो ज॒नय॑न्न॒प्सु सूर्य॑म् ।
वसा॑नो॒ गा अ॒पो हरिः॑ ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) पापों का हरनेवाला वह परमात्मा (**दिवः, रोचना, जनयन्**) आकाश में प्रकाशित होनेवाले ग्रहनक्षत्रादिकों को उत्पन्न करता हुआ और (**अप्सु, सूर्यम्, जनयन्**) अन्तरिक्ष में सूर्य को उत्पन्न करता हुआ (**गाः, अपः**) भूमि तथा द्युलोक को (**वसानः**) आच्छादित करता हुआ सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थः—उसी परमात्मा ने सूर्य्यादि सब लोकों को उत्पन्न किया। और उसीकी सत्ता से स्थिर होकर सब लोकलोकान्तर अपनी-अपनी स्थिति को लाभ कर रहे हैं ॥१॥

ए॒ष प्र॒त्नेन॒ मन्म॑ना दे॒वो दे॒वेभ्य॒स्परि॑ ।
धार॑या पवते सु॒तः ॥२॥

पदार्थः—(**प्रत्नेन, मन्मना**) प्राचीन वेदरूप स्तोत्र से (**देवः**) प्रकाशमान (**एषः, सुतः**) यह स्वयंसिद्ध परमात्मा (**देवेभ्यः**) दिव्यगुण सम्पन्न विद्वानों को (**धारया**) आनन्द की धारा से (**परि, पवते**) भली प्रकार आह्लादित करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने वैदिक ज्ञान से सब लोगों को ज्ञानी-विज्ञानी बनाकर आनन्दित करता है ॥२॥

वा॒वृ॒धा॒नाय॒ तूर्व॑ये॒ पव॑न्ते॒ वाज॑सातये ।
सोमाः॑ स॒हस्र॑पाजसः ॥३॥

पदार्थः—(**सहस्रपाजसः, सोमाः**) अनन्तशक्तिसम्पन्न परमात्मा (**वावृधानाय**) अपनी अभ्युन्नति की इच्छा करने वाले (**तूर्वये**) दक्षतायुक्त कर्मयोगियों की (**वाजसातये**) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये (**पवन्ते**) उनके हृदयों में ज्ञान उत्पन्न करके उनको पवित्र करता है ॥३॥

भावार्थः—इस संसार में सर्वशक्तिमान् एकमात्र परमात्मा से सब प्रकार के अभ्युदय की प्रार्थना करनी चाहिये। जो लोग उक्त परमात्मा से अभ्युदय की प्रार्थना करके उद्योगी बनते हैं, वे अवश्यमेव अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥३॥

दु॒हा॒नः प्र॒त्नमित्पयः॑ प॒वित्रे॒ परि॑ षिच्यते ।
क्रन्द॑न्दे॒वाँ अ॑जीजनत् ॥४॥

पदार्थः—(**प्रत्नम्, इव**) प्राचीन वेदवाणियों में (**पयः, दुहानः**) ब्रह्मानन्द को उत्पन्न करता हुआ वह परमात्मा (**पवित्रं, परिषिच्यते**) उपासकों के पवित्र हृदय में ध्यान का विषय होता है और (**क्रन्दन्**) उसी शब्दायमान परमात्मा ने (**देवान्, अजीजनत्**) देदीप्यमान चन्द्रादिकों को उत्पन्न किया ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ने वेदवाणीरूपी कामधेनु को ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण कर दिया है। जो लोग इस अमृतरस को पान करना चाहते हों, वे उक्तामृतप्रदायिनी ब्रह्म विद्यारूपी वेदवाग्धेनु के वत्सवत् प्रेमपात्र बनकर इस दुग्धामृत को पान करें ॥४॥

अ॒भि विश्वा॑नि॒ वार्या॒भि दे॒वाँ ऋ॑ता॒वृधः॑ ।
सोमः॑ पुना॒नो अ॑र्षति ॥५॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**ऋतावृधः, देवान्**) सत्य को बढ़ाने वाले सत्कर्मियों को (**अभिपुनानः**) सर्वथा पवित्र करके (**वार्या, विश्वानि**) सम्पूर्ण वाञ्छनीय पदार्थों को (**अभ्यर्षति**) उनके लिये प्राप्त करता है ॥५॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा दयामय और सर्वहितकारी है, तथापि उद्योगी पुरुषों को पवित्र करता हुआ, अभ्युदयरूप फल देता है; अनुद्योगियों को नहीं ॥५॥

गोम॑न्नः सोम वी॒रव॒दश्वा॑व॒द्वाज॑वत्सु॒तः ।
पव॑स्व बृह॒तीरिषः॑ ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**गोमत्**) गवादि ऐश्वर्यों से युक्त तथा (**वीरवत्**) वीरयुक्त (**अश्वावत्, वाजवत्**) अश्वादियुक्त और अन्नादि ऐश्वर्य युक्त हैं; (**बृहतीः, इषः, पवस्व**) आप अपने उपासकों को महान् ऐश्वर्य दीजिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही वीर धर्म का दाता है। उसकी कृपा से वीर पुरुष उत्पन्न होकर दुष्टों का दलन, और श्रेष्ठों का परिपालन करते हैं ॥६॥

नवम मण्डल में यह बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा का दातृत्व वर्णन करते हैं ॥

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः ।
तं गीर्भिर्वासयामसि ॥१॥

पदार्थः—(हर्यतः, यः) सर्वोपरि कमनीय जो परमात्मा (**अत्यः, इव**) विद्युत् के समान दुर्ग्राह्य है, (**गोभिः मदाय, मृज्यते**) और जो परमात्मा ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिये इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष किया जाता है (**तम्**) उस परमात्मा को (**गीर्भिः**) अपनी स्तुतियों द्वारा (**वासयामसि**) हम हृदयाधिष्ठित करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की प्रार्थना, उपासना और स्तुति करते हैं वे अवश्यमेव परमात्मा के स्वरूप को अनुभव करते हैं ॥१॥

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थः—(तम्, इन्दुम्) उस प्रकाशमान परमात्मा को (**अवस्युवः, नः, विश्वाः गिरः**) रक्षा को चाहने वाली मेरी सम्पूर्ण वाणियाँ (**इन्द्राय, पीतये**) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (**पूर्वथा**) पहले की तरह (**शुम्भन्ति**) स्तुतियों से विराजमान करती हैं ॥२॥

भावार्थः—वही परमात्मा मनुष्य की पूर्ण तृप्ति के लिये, पर्याप्त होता है। अन्य शब्द स्पर्शादि विषय इसको कदाचित् भी तृप्त नहीं कर सकते ॥२॥

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।
विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥३॥

पदार्थः—(**गीर्भिः, परिष्कृतः**) वेदवाणियों से स्तुति किया गया (**हर्यतः, सोमः**) दर्शनीय परमात्मा (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**मेध्यातिथेः, विप्रस्य**) ज्ञानयोगी विद्वान् के हृदय में (**याति**) निवास करता है ॥३॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयोगी बनकर ज्ञानप्रदीप से अपने हृदय-मन्दिर को प्रदीप्त करते हैं, उनके हृदयरूपी मन्दिर में परमात्मा का पूर्णतया अवभास होता है ॥३॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।
इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥४॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सर्वपावक परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे प्रकाशमान ! (**सोम**) हे सौम्यस्वभाव वाले ! (**अस्मभ्यम्**) आप मेरे लिये (**सहस्रवर्चसम्**) अनेक प्रकार की दीप्ति वाले (**सुश्रियम्**) सुन्दर शोभा से युक्त (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**विदा**) प्राप्त कराइये ॥४॥

भावार्थः—वही परमात्मा अनन्त प्रकार के अभ्युदयों का दाता है। अर्थात् ब्रह्मवर्चसादि सब तेज उसी की सत्ता से उपलब्ध होते हैं ॥४॥

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ ।
यदक्षारति देवयुः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) वह प्रकाशमान परमात्मा (**अत्यः न वाजसृत्**) विद्युत् के सदृश अपनी शक्तियों से व्याप्त होता हुआ (**कनिक्रंति**) शब्दायमान हो रहा है (**यत्**) जो परमात्मा (**देवयुः**) दिव्यगुण सम्पन्न विद्वानों को चाहता हुआ (**पवित्रे, आ**) उनके पवित्र हृदयों में भली प्रकार (**अति, अक्षाः**) ब्रह्मानन्द का अत्यन्त क्षरण करता है ॥५॥

भावार्थः—दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों के हृदय में परमात्मा की ज्योति सदैव देदीप्यमान रहती है। मलिनान्तःकरण, आसुरी सम्पत्ति वालों के हृदय उस दैवी दिव्य ज्योति से सर्वथैव वञ्चित रहते हैं ॥५॥

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।
सोम रास्व सुवीर्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**वाजसातये**) अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये और (**वृधे**) अभ्युन्नति के लिये (**गृणतः, विप्रस्य, पवस्व**) आपकी स्तुति करने वाले जो कर्मयोगी विद्वान् हैं उनको पवित्र करके योग्य बनाइये और (**सुवीर्यं, रास्व**) उनके शत्रुओं को दमन करने के लिये पर्याप्त पराक्रम को दीजिये ॥६॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष जो अपने उद्योग से सदैव अभ्युदयाभिलाषी रहते हैं, उनको परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ निचृद्गायत्री । २—६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा मेधावी लोगों की बुद्धि का विषय है, यह वर्णन करते हैं ॥

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (ऊर्मिम्, बिभ्रत्) आप आनन्द की तरंगों को धारण करते हुए (महे, तने) बड़े ऐश्वर्य के लिये (नः, न, प्रार्षसि) हमको शीघ्र ही प्राप्त होते हैं और (अभिदेवान्) कर्मयोगियों को (अयास्यः) विना प्रयत्न प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष अनुष्ठानशील नहीं अर्थात् उद्योगी बनकर कर्म्मयोग में तत्पर नहीं है, वह पुरुष कदाचित् भी परमात्मा को नहीं पा सकता, इसलिए उद्योगी बनकर कर्म्म में तत्पर होना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिए ॥१॥

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥२॥

पदार्थः—(कविः, सोमः) वेदरूप काव्यों का निर्माता वह परमात्मा (परावति) अल्प प्रयत्न से ध्यानविषयी न होने के कारण दूरस्थ (मती, जुष्टः) स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होता हुआ (विप्रस्य, धिया, हितः) ज्ञान योगियों की बुद्धि से साक्षात्कार किया गया (धारया, हिन्वे) अपने ब्रह्मानन्द की धारा से तृप्त करता है ॥३॥

भावार्थः—वेद परमात्मा का ज्ञान है और उस ज्ञान का आविर्भाव परमात्मा करता है। इसी अभिप्राय से उसे वेदों का निर्म्माता वा कर्त्ता कथन किया है, वास्तव में वेद नित्य है ॥२॥

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ ।
सोमो याति विचर्षणिः ॥३॥

पदार्थः—(जागृविः, सुतः, अयम्, सोमः) स्वयंसिद्ध जागरूक यह परमात्मा (विचर्षणिः) सबको देखता हुआ (आ, याति,) सर्वत्र व्याप्त है। और (देवेषु) विद्वानों के (पवित्रे) पवित्र हृदय में (एति) आविर्भूत होता है ॥३॥

भावार्थः—अन्य लोगों की जागृति नैमित्तिकी होती है अर्थात् स्वतःसिद्ध नहीं होती। एकमात्र परमात्मा की जागृति ही स्वतःसिद्ध है अर्थात् परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप है, अन्य सब जीव पराधीन ज्ञानवाले हैं ॥३॥

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् ।
बर्हिष्माँ आ विवासति ॥४॥

पदार्थः—जो परमात्मा (बर्हिष्मान्, आ, विवासति) व्यापकता रूप से सब लोकों को आच्छादन कर रहा है (सः) वह परमात्मा (अध्वरं, चारु, चक्राणः) हमारे यज्ञ को शोभायमान करता हुआ (नः, पवस्व) हम को पवित्र करे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी व्यापक सत्ता से सब लोक-लोकान्तरों को एकदेशी बनाकर व्यापक रूप से स्थिर है, उक्त यज्ञ में उसकी प्रकाशक भाव से प्रकाशित होने की प्रार्थना की गई है ॥४॥

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः ।
सोमो देवेष्वा यमत् ॥५॥

पदार्थः—(सदावृधः) जो सदैव सर्वोपरि रहता है और (विप्रवीरः) [वीरयति यद्वा विशेषेण-ईर्ते ईरयति वा इति वीरः] जो मेधावी पुरुषों को वीर अर्थात् शक्ति प्रदान करके प्रेरणा करता है (सः, सोमः) वह परमात्मा (नः भगाय, वायवे) हमारे व्याप्तिशील ऐश्वर्य के लिये (देवेषु, आयमत्) ज्ञानक्रियाकुशल विद्वानों की शक्तियों को बढ़ाये ॥५॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी तथा ज्ञानयोगी पुरुषों की शक्तियों के बढ़ाने के लिये परमात्मा सदैव उद्यत रहता है ॥५॥

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः ।
वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥६॥

पदार्थः—(क्रतुवित्) सबके कर्मों को जानने वाले और (गातुवित्तमः) कवियों में उत्तम कवि (सः) वह आप (वसुत्तये) रत्नादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये (नः) हमारे (बृहत्, वाजम्, श्रवः) बड़े बल तथा कीर्त्ति को (अद्य) तत्काल ही (जेषि) बढ़ाइये ॥६॥

भावार्थः—कवि शब्द के अर्थ यहाँ सर्वज्ञ के हैं। ज्ञानी-विज्ञानी सब में से एकमात्र परमात्मा ही सर्वोपरि कवि=सर्वज्ञ है, अन्य कोई नहीं ॥६॥

नवम मण्डल में यह चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३–५ गायत्री । २ विराड्गायत्री । ६ निचृद्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा न्याय करता है यह वर्णन करते हैं ॥

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥१॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्तगुणसम्पन्न (इन्दो) हे प्रकाशमान ! आप (नृचक्षाः) सब मनुष्यों के द्रष्टा हैं (मदाय) आह्लाद के लिये और (देववीतये) यज्ञ के लिये तथा (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (कम्, पवस्व) आप सुख प्रदान करिये ॥१॥

भावार्थः—जीवात्मा के हृदय मन्दिर को एकमात्र परमात्मा ही प्रकाशित करता है, अन्य कोई भी जीव को सत्यज्ञान के प्रकाश का दाता नहीं ॥१॥

स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे ।
देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सः) वह आप (नः दूत्यम्, अभ्यर्ष) हमारे लिये कर्मयोग प्रदान करिये (त्वम्, इन्द्राय, तोशसे) क्योंकि आप परमैश्वर्य सम्पन्न होने के लिये स्तुति किये जाते हैं। (देवान्, सखिभ्यः) और सत्कर्मी विद्वानों के लिये (आवरम्) भली प्रकार उनके अभीष्ट को दीजिये ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सदाचारियों को सुख और दुष्कर्मियों को दुःख देता है। परमात्मा के राज्य में किसी के साथ भी अन्याय नहीं होता। इस बात को ध्यान में रखकर मनुष्य को सदैव सदाचारी बनने का यत्न करना चाहिये ॥२॥

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अरुणम्, उत, त्वाम्) गतिशील आपको (मदाय) आह्लादप्राप्ति के लिये (गोभिः, अञ्ज्मः) इन्द्रियों द्वारा ज्ञान का विषय करते हैं (नः, राये) आप हमारे ऐश्वर्य के लिये (दुरः, विवृधि) पापों को नष्ट करिये तथा (कम्) सुख प्रदान करिये ॥३॥

भावार्थः—जो लोग अपनी इन्द्रियों का संयम करते हैं वे ही उस परमात्मा के शुद्धस्वरूप को अनुभव कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

अत्यू पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि ।
इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥४॥

पदार्थः—(वाजी, इन्दुः) उत्तम बलवाला वह परमात्मा (धुरम्, अत्यक्रमीत्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भार के सहने में समर्थ है, और (यामनि, न) ध्यान करने से शीघ्र ही (देवेषु, पवित्रम्, पत्यते) विज्ञानियों के हृदय में अधिष्ठित होता है ॥४॥

भावार्थः—यद्यपि प्रकृति, जीव यह दोनों पदार्थ भी अपनी सत्ता से विद्यमान हैं, तथापि अधिकरण अर्थात् सब का आधार बन कर एकमात्र परमात्मा ही स्थिर है। इसलिए उसको धुर रूप अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के आधाररूप से कथन किया गया है ॥४॥

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
इन्दुं नावा अनूषत ॥५॥

पदार्थः—(अत्यविम्) अतिशय सबकी रक्षा करने वाले (वने, क्रीडन्तम्) अखिल ब्रह्माण्डरूप वन में क्रीडा करते हुए (ईम्, इन्दुम्) इस परमात्मा की (सखायः) उसके प्रिय स्तोता लोग (अस्वरन्) शब्दायमान होते हुए (नावाः, समनूषत) उसकी रचित-वेदवाणियों से स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान का साधन मनुष्य के पास एकमात्र उस का स्तोत्र वेद ही है, अन्य कोई ग्रन्थ उसके पूर्ण ज्ञान का साधन नहीं ॥५॥

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे ।
इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यया, पीतः) जिस ज्ञान की धारा से सेवन किये गए आप (विचक्षसे, स्तोत्रे) अपने विद्वान् स्तोता के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर ज्ञानकर्मशालिनी शक्ति को देते हैं (तया, धारया, पवस्व) उसी आनन्दोत्पादक ज्ञान की धारा से आप मुझे पवित्र करिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी ज्ञानरूप धारा से सबके अन्तःकरणों को सिञ्चित करता है। तात्पर्य्य यह है कि उसका ज्ञानरूप प्रकाश प्रत्येक पुरुष के हृदय में पड़ता है। परन्तु सुपात्र पुरुष ही पात्र बनकर उसका ग्रहण कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

नवम मण्डल में यह पैंतालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री। २, ४, ६ निचृद्गायत्री। ३, ५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब पदार्थविद्या के जाननेवाले विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

असृंग्रन्देववीतयेऽत्यांसः कृत्व्यां इव ।

क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥१॥

पदार्थः—उस परमात्मा द्वारा (**पर्वतावृधः**) ज्ञान और कर्म से बढ़े हुए (**क्षरन्तः**) उपदेशक को देने वाले (**कृत्व्याः, इव**) कर्मयोगियों के समान (**अत्यासः**) सर्व कर्मों में व्यापक विद्वान् (**देववीतये**) देवों के तृप्तिकारक यज्ञ के लिये (**असृग्रन्**) पैदा किये जाते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानरूप यज्ञ के लिये ज्ञानी-विज्ञानी पुरुषों को उत्पन्न करता है। इसलिये सब मनुष्यों को चाहिये कि वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानों को बुलाकर अपने यज्ञादि कर्मों का आरम्भ किया करें ॥१॥

परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती ।

वायुं सोमा असृक्षत ॥२॥

पदार्थः—(**पित्र्यावती, योषेव**) पितावाली कन्या के समान (**परिष्कृतासः**) ब्रह्मविद्या से अलङ्कृत होने से (**इन्दवः**) परम ऐश्वर्यसम्पन्न होकर (**सोमाः**) वे विद्वान् लोग (**वायुम्**) सूक्ष्मभाव को प्राप्त हुए पदार्थों को (**असृक्षत**) सिद्ध करते हैं ॥२॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी पुरुष उक्त पदार्थों में से अति सूक्ष्मभाव निकाल कर प्रजाओं में प्रचार करते हैं। इसलिये प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह कर्म्मयोगी विद्वानों का सत्कार करें। ताकि विज्ञान की वृद्धि होकर प्रजाओं में सुख का सञ्चार हो ॥२॥

एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः ।

इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥३॥

पदार्थः—(**सुताः, एते, इन्दवः, सोमासः**) ये उत्पन्न किये गए परमैश्वर्यशाली विद्वान् लोग (**चमू, प्रयस्वन्तः**) सेनाओं में प्रयत्न करते हुए (**कर्मभिः**) अनेक प्रकार की क्रियाओं से (**इन्द्रम्**) अपने स्वामी को (**वर्धन्ति**) जययुक्त करके समृद्ध बनाते हैं ॥३॥

भावार्थः—कर्म्मयोगियों के प्रभाव से ही सैनिक बल की वृद्धि होती है। और कर्म्मयोगियों के प्रभाव से ही सम्राट् सम्पूर्ण देश-देशान्तरों का शासन करता है; इसलिये परमातमा ने इन मन्त्रों में कर्म्मयोगियों के सत्कार का वर्णन किया है ॥३॥

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना ।

गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥४॥

पदार्थः—(**सुहस्त्यः**) हे क्रियाकुशल हस्तोंवाले विद्वानो ! आप (**आ, धावत**) ज्ञान की ओर लगकर (**मन्थिना**) यन्त्र द्वारा (**शुक्रा, गृभ्णीत**) बलवाले पदार्थों का सिद्ध कीजिये (**गोभिः**) और रश्मियुक्त विद्युदादि पदार्थों द्वारा (**मत्सरम्**) आह्लाद-कारक पदार्थों को (**श्रीणीत**) सुदृढ़ करके प्रकाशित कीजिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वे कर्म्मयोगियों से प्रार्थना करके अपने देश के क्रिया-कौशल की वृद्धि करें ॥४॥

स पवस्व धनञ्जय प्रयन्ता राधसो महः ।

अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥५॥

पदार्थः—(**धनञ्जय**) हे अपने उपासकों के धन को बढ़ानेवाले ! (**गातुवित्**) हे उपदेशकों में श्रेष्ठ ! (**सः**) ऐसे-ऐसे विद्वानों के उत्पादक आप (**महः राधसः**) बड़े भारी ऐश्वर्य के (**प्रयन्ता**) प्रदाता हैं। (**सोम**) हे परमात्मन्! (**अस्मभ्यम्**) आप हमारे लिये (**पवस्व**) सब अभीष्ट का प्रदान कीजिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से सदुपदेशक उत्पन्न होकर देश में सदुपदेश देकर देश का कल्याण करते हैं ॥५॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः ।

इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥६॥

पदार्थः—(**पवमानम्**) सबको पवित्र करने वाले (**मर्ज्यम्, एतम्**) संमजनीय उस परमात्मा को (**दश, क्षिपः, मृजन्ति**) दश इन्द्रियें ज्ञानगोचर करती हैं। जो परमात्मा (**इन्द्राय, मत्सरम्, मदम्**) जीवात्मा के लिये आह्लादकारक मद है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही जीवात्मा के लिये एकमात्र आनन्द का स्रोत है। उसी के आनन्द का लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह छियालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—१-५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३, ४ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा उद्योग का उपदेश करते हैं ॥

अ॒या सोमः॑ सु॒कृ॒त्यया॑ म॒हश्चि॑द॒भ्यव॑र्धत ।
म॒न्दा॒न उद्वृ॑षायते ॥१॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**अया, सुकृत्यया**) विद्वानों के शुभकर्म्मों से (**मन्दानः**) हर्ष को प्राप्त होता हुआ (**महश्चित्, अभ्यवर्धत**) उनको अत्यन्त अभ्युदय को प्राप्त कराता है। और (**उद् वृषायते**) उन विद्वानों के लिये बल प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थः—हे अभ्युदयाभिलाषी जनो ! यदि आप अभ्युदय को चाहते हैं तो एकमात्र परमात्मा की शरण को प्राप्त होकर उद्योगी बनो ॥१॥

कृ॒तानीद॑स्य॒ कर्त्वा॒ चेत॑न्ते दस्यु॒तर्ह॑णा ॥
ऋ॒णा च॑ धृ॒ष्णुश्च॑यते ॥२॥

पदार्थः—विद्वान् लोग (**अस्य इव**) इस परमात्मा के (**दस्युतर्हणा, कृतानि, कर्त्वा**) दुष्टनाशन रूप किये हुए कर्म्मों का (**चेतन्ते**) स्मरण करते हैं (**धृष्णुः**) और स्वयंशासक वह परमात्मा (**ऋणा, च, चयते**) देव ऋणादि तीनों ऋणों के उद्धार का उपदेश करता है ॥२॥

भावार्थः—देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण—इन तीन ऋणों को उतारने योग्य वही पुरुष हो सकता है जो परमात्माज्ञापालन करता हुआ उद्योगी बनता है ॥२॥

आत्सोम॑ इ॒न्द्रियो॑ र॒सो वज्रः॑ सहस्र॒सा भुव॑त् ।
उ॒क्थं यद॑स्य॒ जाय॑ते ॥३॥

पदार्थः (**यत्, अस्य, उक्थम्, जायते**) जब इस परमात्मा की वेदरूपी स्तुति का आविर्माव होता है (**आत्**) तब (**सोमः**) वह परमात्मा (**इन्द्रियः, रसः,**) जीवात्मा का तृप्तिकारक आनन्दमय रस तथा (**वज्रः**) दुष्टों से रक्षा करने के लिये शस्त्ररूप, और (**सहस्रसाः**) अनन्त शक्तियों का प्रदाता (**भुवत्**) होता है ॥३॥

भावार्थः—जीवात्मा के लिये परमात्मा ने अनन्त शक्तियाँ प्रदान की हैं। परन्तु उन सबका आविर्भाव तभी होता है जब जीवात्मा वेदों द्वारा उन शक्तियों का ज्ञाता बनता है ॥३॥

स्व॒यं क॒विर्वि॑ध॒र्तरि॒ विप्रा॑य॒ रत्न॑मिच्छति ।
यदी॑ मर्मृ॒ज्यते॒ धियः॑ ॥४॥

पदार्थः—(**यदि, धियः, मर्मृज्यते**) यदि यह परमात्मा बुद्धि द्वारा ध्यान-विषय किया जाता है तो (**स्वयं, कविः**) स्वयं वेदादि काव्यों का रचयिता वह परमात्मा (**विधर्तरि**) रत्नादिकों को विरुद्ध धारण करने वाले असत्कर्मियों से (**विप्राय, रत्नम्, इच्छति**) सत्कर्मी विद्वान् को रत्नादि ऐश्वर्य दिलाने की इच्छा करता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा किसी को विना कारण ऊँच-नीच नहीं बनाता, किन्तु कर्म्मानुकूल फल देता है। इसीलिए उद्योगी और सदाचारियों को ही ऐश्वर्य्य मिलता है अन्यों को नहीं ॥४॥

सि॒षा॒सतू॑ रयी॒णां वाजे॒ष्वर्व॑तामिव ।
भरे॑षु जि॒ग्युषा॑मसि ॥५॥

पदार्थः—(**वाजेष्वर्वतामिव**) हे परमात्मन् ! आप सर्वशक्तियों में व्यापक के समान (**भरेषु जिग्युषाम्**) संग्राम में जय को चाहने वाले कर्मयोगियों को (**रयीणां सिषासतुरसि**) सम्पूर्ण उपयोगी पदार्थों के देनेवाले हैं ॥५॥

भावार्थः—जो संग्रामों में कर्मयोगी बनकर विजय की इच्छा करते हैं परमात्मा उन्हीं को विजयी बनाता है ॥५॥

नवम मण्डल में यह संतालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पंचर्चस्य अष्टाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य —१–५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ५ गायत्री । २–४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव कहे जाते हैं ॥

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥

पदार्थः—(**नृम्णानि बिभ्रतम्**) अनेक रत्नों को धारण करने वाले (**दिवो महः**) द्युलोक के प्रकाशक (**सुकृत्यया चारुम्**) सुन्दर कर्मों से शोभायमान (**तं त्वा**) पूर्वोक्त आपकी (**सधस्थेषु**) यज्ञस्थलों में (**ईमहे**) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का धारण करनेवाला एकमात्र परमात्मा ही है ॥१॥

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥

पदार्थः—(**संवृक्तधृष्णुम्**) धर्मपथ को छोड़ अधर्म पथ को ग्रहण करनेवाले दुराचारियों का नाश करने वाले (**उक्थ्यम्**) स्तुति करने योग्य (**महामहिव्रतम्**) बड़े श्रेष्ठ व्रतों को धारण करनेवाले (**मदम्**) आनन्दजनक (**शतं पुरो (रुरुक्षणिम्)** दुष्कर्मियों के अनेक पुरों को नाश करने वाले आपकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सत्य के विरोधी अनन्त दलों का भी नाश करने वाला है । इसलिये सत्यव्रती होने के लिए उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना की आवश्यकता है; क्योंकि, सम्पूर्ण अज्ञानों को दूर करके एकमात्र अपने सच्चे ज्ञान का प्रकाश करे ॥२॥

अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः ।
सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥३॥

पदार्थः– (**सुक्रतो**) हे शोभनकर्मों से विराजमान परमात्मन् ! (**रयिमभि राजानम्**) आप जो कि सम्पूर्ण धनाद्यैश्वर्य के स्वामी हैं और (**दिवाः सुपर्णः**) द्युलोक में भी चेतनरूप से विराजमान हैं और (**अव्यथिर्भरत्**) अनायास संसार का पालन करने वाले हैं (**अतः त्वा**) इससे आपकी स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थः– सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिए उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जिससे बढ़कर जीव का कोई अन्य स्वामी नहीं हो सकता ॥३॥

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वस्मै, इत् स्वर्दृशे**) हे परमात्मन् ! आप सब ही दिव्यगुणसम्पन्न विद्वानों के लिये (**साधारणम्**) समान हैं, और (**रजस्तुरम्**) प्रधानतया रजोगुण के प्रेरक हैं (**ऋतस्य गोपाम्**) तथा यज्ञ के रक्षिता हैं और (**विः**) सर्वव्यापक होकर (**भरत्**) संसार का पालन करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों में से रजोगुण की प्रधानता है अर्थात् रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण को धारण किये हुए रहता है इसी प्रकार से परमात्मा के सत्, चित्, और आनन्द इन तीनों गुणों में से चित् की प्रधानता है । अर्थात् चित् ही सत् और आनन्द का भी प्रकाशक है । इसी प्रकार परमात्मा के तेजोमय गुण को प्रधान समझ कर उसके उपलब्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए ॥४॥

अषा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥५॥

पदार्थः—(**अषा**) आप (**इन्द्रियं, हिन्वानः**) इन्द्रिय के प्रेरक हैं (**ज्यायः**) सर्वोपरि विराजमान होने से (**महित्वमानशे**) अपनी महिमा से सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं (**अभिष्टिकृत्**) तथा अपने भक्तों के लिये कामनाओं के प्रदाता हैं (**विचर्षणिः**) सबके कर्मों के द्रष्टा हैं ॥५॥

भावार्थः—जीवों के अन्तर्यामी रूप से एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य देव नहीं ॥५॥

नवम मण्डल का यह अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ४, ५ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की शक्ति का वर्णन करते हैं ॥

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**नः**) आप हमारे लिये (**दिवस्परि**) द्युलोक से (**अपामूर्मिम्**) जल की तरङ्गों वाली (**सुवृष्टिम्**) सुन्दर वृष्टि को (**आ पवस्व**) सम्यक् उत्पन्न करिये तथा (**अयक्ष्माः बृहतीः, इषः**) रोगरहित महान् अन्नादि ऐश्वर्य को उत्पन्न करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने ही द्युलोक को वर्षणशील और पृथिवीलोक को नानाविध अन्नादि औषधियों की उत्पत्ति का स्थान बनाया है ॥१॥

तयां पवस्व धारंया यया गावं इहागमंन् ।
जन्यांस उपं नो गृहम् ॥२॥

पदार्थः—(**तया धारया पवस्व**) हे परमात्मन् ! आप मुझे उस आनन्द की धारा से पवित्र करिये (**यया**) जिस धारा से (**गावः**) सम्पूर्ण इन्द्रियें (**जन्यासः**) सब जनों की हितकारक होकर (**इह नः गृहम्**) अपने गृहरूप शरीर के अभ्यन्तर ही में (**उपागमन्**) आयें ॥२॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप हमारी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर हमको संयमी बनाइये ॥२॥

घृतं पंवस्व धारंया यज्ञेषुं देववीतंमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पंव ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**देववीतमः**) देवताओं के अत्यन्त तृप्तिकारक हैं। (**धारया घृतं पवस्व**) आप अपनी ज्ञान की धारा से हमारे हृदय में स्नेह को उत्पन्न करिये, और (**अस्मभ्यम् वृष्टिमापवस्व**) हमारे लिये सब कामनाओं की वर्षा करिये ॥३॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयज्ञ, या कर्म में तत्पर होकर परमात्मा का भजन करते हैं, परमात्मा उनको सर्वैश्वर्यसम्पन्न बनाता है ॥३॥

स नं ऊर्जे व्य१ंव्ययं पवित्रें धाव धारंया ।
देवासंः शृणवन्हि कंम् ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**सः**) वह आप (**ऊर्जे**) ज्ञान और क्रिया में बलप्राप्ति के लिये (**नः, अव्ययं पवित्रम्**) हमारे अन्तःकरण को निश्चल करके (**धारया धाव**) ज्ञान की धारासे शुद्ध करें और हे भगवन् ! (**किम्**) आपकी उच्चारित वेदवाणी को (**देवासः, हि**) दिव्यगुणवाले विद्वान् ही (**शृणवन्**) सुनें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग दिव्यशक्ति वाले होते हैं वही परमात्मा की वेदरूपी वाणी का श्रवण मनन आदि कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥४॥

पवंमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घंनत् ।
प्रत्नवद्रोचयन्रुचंः ॥५॥

पदार्थः—(**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**रक्षांसि, अपजंघनत्**) असत्कर्मियों को नष्ट करता हुआ और (**प्रत्नवत् रुचः रोचयन्**) पहले ही के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने प्रकाश को फैलाता हुआ (**असिष्यदत्**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा चराचर के हृदय में स्थिर है, इसलिए उसकी स्थिति को अत्यन्त सन्निहित मानकर सदैव परमात्मपरायण होना चाहिए ॥५॥

नवम मण्डल में यह उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—५ उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ४, ५ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की शक्तियों की निरन्तरता का वर्णन करते हैं ॥

उच्चे शुष्मांस ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।
वाणस्यं चोदया पविम् ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**सिन्धोः, ऊर्मेः, स्वनः, इव**) जिस प्रकार समुद्र की तरङ्गों के शब्द अनवरत होते रहते हैं उसी प्रकार (**ते शुष्मास ईरते**) आपकी शक्तियों के वेग निरन्तर व्याप्त होते रहते हैं। आप (**वाणस्य पविं चोदय**) वाणी की शक्ति को प्रेरित करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्तियाँ अनन्त हैं और नित्य हैं। यद्यपि प्रकृति तथा जीवात्मा की शक्तियाँ अनादि अनन्त होने से नित्य हैं तथापि, वे अल्पाश्रित होने से अल्प और परिणामी नित्य हैं; कूटस्थ नित्य नहीं।

तात्पर्य यह है कि जीव और प्रकृति के भाव उत्पत्ति-विनाशशाली हैं और ईश्वर के भाव सदा एकरस हैं ॥१॥

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
यदव्य एषि सानवि ॥२॥

पदार्थः—(यत्) जब आप (**मखस्युवः, अव्ये सानवि, एषि**) यज्ञकर्ताओं के रक्षणीय उच्च यज्ञस्थलों में प्राप्त होते हैं, तो वह ऋत्विग्लोग (**ते प्रसवे**) आपके प्रादुर्भूत होने से (**तिस्रः वाचः, उदीरते**) ज्ञान, कर्म और उपासना विषयक तीनों वाणियों का उच्चारण करते हैं ॥२॥

भावार्थः- परमात्मा का आविर्भाव और तिरोभाव वास्तव में नहीं होता ; क्योंकि वह कूटस्थ नित्य अर्थात् एकरस सदा अविनाशी है। उसका आविर्भाव तिरोभाव उसके कीर्तनप्रयुक्त कहा जा सकता है। अर्थात् जहां उसका कीर्तन होता है उसका नाम आविर्भाव है, और जहां उसका अकीर्तन है वहां तिरोभाव है। उक्त आविर्भाव तिरोभाव मनुष्य के ज्ञान के अभिप्राय से है। अर्थात् ज्ञानियों के हृदय में उसका आविर्भाव है और अज्ञानियों के हृदय में तिरोभाव है ॥२॥

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**मधुश्चुतम्**) परम आनन्द के क्षरण करनेवाले हैं और (**पवमानम्**) सबके पवित्रकारक हैं और (**हरिम्**) सबके दुःखों के हरने वाले हैं इससे (**परि, प्रियम्**) परमप्रिय आपकी भक्ति से युक्त (**अव्यः**) आपसे रक्षा को चाहने वाले आपके उपासक (**वारे**) अपने हृदयों में (**अद्रिभिः**) इन्द्रियवृत्तियों द्वारा (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करते हैं ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी या ज्ञानयोगी विद्वान् दोनों अपने शुद्धान्त.करण से परमात्मा का साक्षात् करते हैं ॥३॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

पदार्थः—(**अर्कस्य योनिमासदम्**) तेज की योनि को प्राप्त होने के लिये अर्थात् तेजस्वी बनने के लिये (**मदिन्तम**) हे आनन्द के बढ़ाने वाले ! (**कवे**) हे वेदरूप काव्य के रचने वाले ! (**धारया**) अपनी ज्ञान की धारा से (**पवित्रं, आ पवस्व**) मेरे अन्त.करण को पवित्र करिये ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ही अपने ज्ञानप्रदीप से उपासकों के हृदयरूपी-मन्दिर को प्रकाशित करता है ॥४॥

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**मदिन्तम**) सर्वोपरि आनन्द के जनयिता! (**अक्तुभिर्गोभिरञ्जानः**) साधनभूत इन्द्रियों द्वारा ध्यानविषय किये गए (**सः**) सकल भुवनप्रसिद्ध वह आप (**इन्द्राय पीतये**) जीवात्मा की परमतृप्ति के लिये (**पवस्व**) ब्रह्मानन्द का क्षरण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जीव की सच्ची तृप्ति परमात्मानन्द से ही होती है, अन्यथा नहीं ॥५॥

नवम मण्डल में यह पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–५ उचथ्यः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २ गायत्री । ३ –५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सौम्यस्वभाव के उत्पादन का वर्णन करते हैं ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥१॥

पदार्थः—(**अध्वर्यो**) हे अध्वर्युलोगो ! (**सोमम्**) परमात्मा को (**अद्रिभिः सुतम्**) अपनी इन्द्रियों द्वारा ज्ञान का विषय (**सृज**) करिये और (**इन्द्राय पातवे**) जीवात्मा की तृप्ति के लिये(**पवित्रे पुनीहि**) अपने अन्तःकरण को पवित्र करिये ॥१॥

भावार्थः –परमात्मा की प्राप्ति के लिए अन्तःकरण का पवित्र होना अत्यावश्यक है, इसलिए प्रत्येक जिज्ञासु को चाहिये कि पहले अपने अन्तःकरण को पवित्र करे ॥१॥

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनेता मधुमत्तमम् ॥२॥

पदार्थः—हे अध्वर्युलोगो ! जोकि (**मधुमत्तमम्**) सब रसों में उत्तम है (**दिवः पीयूषम्**) और द्युलोक का अमृत है, ऐसे (**उत्तमं सोमम्**) उत्तम परमात्मा को

(इन्द्राय पातवे) अपने जीवात्मा की तृप्ति के लिये (सुनोत) ध्यान का विषय बनाओ ॥२॥

भावार्थः—जो अपनी तृप्ति के लिए एकमात्र परमात्मा को ध्यान का विषय बनाते हैं, वे ही उस ब्रह्मामृत का पान करते हैं अन्य नहीं ॥२॥

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते ।
पवमानस्य मरुतः ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (तव) आपके (मधोः) मधुर (अन्धसः) रस का (देवाः त्ये मरुतः) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान् (व्यश्नते) पान करते हैं ॥३॥

भावार्थः—ब्रह्मामृतरसास्वाद के लिए दिव्य शक्तियों को उपलब्ध करना अत्यावश्यक है; इसलिए उक्त मन्त्र में परमात्मा ने दिव्यशक्तियों का उपदेश किया है ॥३॥

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं हि) आप जब (सुतः) विद्वानों द्वारा साक्षात् किये जाते हैं तो (मदाय) आनन्द के लिये और (भूर्णये) दक्षता के लिए तथा (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तोतारम्) उपासक को (वर्धयन्) समृद्ध बनाते हुए (वृषन्) सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं ॥४॥

भावार्थः—सर्वोपरि नीति और व्यवहारकुशलता की नीति एकमात्र परमात्मा द्वारा उपदिष्ट वेदों से ही मिल सकती है, अन्यत्र नहीं ॥४॥

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥५॥

पदार्थः—(विचक्षण) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (सुतः) ध्यान विषय किये गए आप (धारया पवित्रमभ्यर्ष) आनन्द की धारा से पवित्र हुए अन्तःकरण में निवास करिये और (वाजम्) अन्नादि ऐश्वर्य तथा (उत श्रवः) सुन्दर कीर्ति का (अभि) प्रदान करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना की गई है ॥५॥

नवम मण्डल में यह इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–५ उचथ्यः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ भुरिग्गायत्री । २ गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री । ४ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सदुपदेश का वर्णन करते हैं ॥

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (परि द्युक्षः) सर्वोपरि प्रकाशमान हैं । आप (नः) हमारे लिये (सनद्रयिः) धनादिकों को देते हुए (अन्धसा) अन्नादि ऐश्वर्य के सहित (वाजं भरत्) बल को परिपूर्ण करिये और (सुवानः) स्तुति किये जाने पर, आप (पवित्रे आ अर्ष) पवित्र अन्तःकरण में निवास करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि, हे जिज्ञासु जनो ! तुम लोग जब अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाकर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उपलब्ध करने की जिज्ञासा अपने हृदय में उत्पन्न करोगे तब तुम ऐश्वर्य को उपलब्ध करोगे ॥१॥

तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः ।
सहस्रधारो यात्तना ॥२॥

पदार्थः—(तव प्रियः, अव्यः) हे भगवन् ! आपका प्रिय रक्षणीय उपासक (प्रत्नेभिरध्वभिः) आपके प्राचीन वेदविहित मार्गों द्वारा (सहस्रधारः) आपकी अनेक प्रकार की धाराओं से युक्त होने से (तना) समृद्ध होकर (वारे परियात्) आपके प्रार्थनीय पद को प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा वेदमार्ग के आश्रयण का उपदेश करते हैं ॥२॥

चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय ।
वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यः, चरुः) जो आप चराचर को ग्रहण करने वाले हैं (तम्, न, ईङ्खय) वह आप अपने रूप को शीघ्र प्राप्त कराइये । और (दानम्, न, ईङ्खय) मुझको दातव्य वस्तु को शीघ्र प्राप्त कराइये । (वधैः, वधस्नो ईङ्खय) हे अपनी प्रबलशक्तियों से शत्रुओं के नाश करने वाले आप मुझको सत्कर्म की ओर प्रेरित कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सत्कर्म्मी बनने का उपदेश दिया है ॥३॥

नि शुष्मंमिन्द्वेषां पुरुहूत जनांनाम् ।
यो अस्माँ आदिदेशति ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (पुरुहूत) हे अखिल विद्वानों से स्तुति किये गए ! (एषां जनानाम्, बलम्, नि) इन विद्वानों के बलों को बढ़ाइये (यः, अस्मान्, आविदेशति) जो कि आप हम लोगों का अनुशासन करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश दिया है कि जो पुरुष विद्या तथा बल को उपलब्ध करके सत्कर्म्मी तथा विनीत बनते हैं उन्हीं से संसार शिक्षा का लाभ करता है ॥४॥

शतं नं इन्द ऊतिभिंः सहस्रं वा शुचींनाम् ।
पवंस्व मंहयद्रयिः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (मंहयद्रयिः) आप हमारे धनादि ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए (ऊतिभिः) रक्षा के लिये (शुचीनां शतम्, न, सहस्रं, वा) पवित्र सैंकड़ों तथा सहस्रों शक्तियों को (पवस्व) उत्पन्न करिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्ना ने मनुष्य के ऐश्वर्य के लिए सैंकड़ों और सहस्रों शक्तियों को उत्पन्न किया है, मनुष्य को चाहिए कि कर्मयोगी बन कर उन शक्तियों का लाभ करे ॥५॥

नवम मण्डल में यह बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृद्गायत्री । २, ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

उत्ते शुष्मांसो अस्थू रक्षों भिन्दन्तों अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधंः ॥१॥

पदार्थः—(अद्रिवः) हे शस्त्रों को धारण करने वाले ! (ते शुष्मासः) आपकी शत्रुशोषक शक्तियां (रक्षः भिन्दन्तः) राक्षसों का नाश करती हुईं (उदस्थुः) सदा उद्यत रहती हैं (नुदस्व याः परिस्पृधः) जो आपके द्वेषी हैं उनकी शक्तियों को वेगरहित करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा में राग द्वेषादि भावों का गन्ध भी नहीं है । जो लोग परमात्मोपदिष्ट मार्ग को छोड़कर यथेष्टाचार में रत हैं उनके यथायोग्य फल देने के कारण परमात्मा उनका द्वेष्टा कथन् किया गया है ॥१॥

अया निजघ्निरोजंसा रथसङ्गे धनें हिते ।
स्तवा अबिंभ्युषा हृदा ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अया ओजसा निजघ्निः) अपने इस शत्रुनाशनशील पराक्रम से शत्रु की शक्तियों को शमन करने वाले हैं । इस से (रथसंगे धने हिते) शरीररूप रथ के हितकारक धनादि ऐश्वर्य के निमित्त (अबिभ्युषा हृदा स्तवै) निर्भय अन्तःकरणों से आपकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष शुभकार्य करते हुए परमात्मा के उपासना समय निर्भयता से उसकी समक्षता लाभ करते हैं वे सदैव तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी आदि दिव्यभावों को उपलब्ध करते हैं ॥२॥

अस्यं व्रतानि नाधृषे पवंमानस्य दूढ्यां ।
रुज यस्त्वां पृतन्यतिं ॥३॥

पदार्थः—(पवमानस्य अस्य) जगत्पावक आपके नियमानुशासन को (दूढ्या) कोई भी दुराचारी (नाधृषे) बाधित नहीं कर सकता, क्योंकि (यः त्वा पृतन्यति) जो आपसे ईर्ष्या करता है उसको (रुज) आप शक्तिहीन कर देते हैं ॥३॥

भावर्थः—परमात्मा दुराचारियों का अधःपतन करते हैं और सदाचारियों को सदैव उन्नतिशील बनाते हैं ॥३॥

तं हिंन्वंति मदच्युतं हरिं नदीषुं वाजिनंम् ।
इन्दुमिन्द्रांय मत्सरम् ॥४॥

पदार्थः—(मदच्युतम्) आनन्द को क्षरण करने वाले (हरिम्) सब दुःखों के हरने वाले (नदीषु वाजिनम्) सब शब्दायमान विद्युदादि शक्तियों में बल को निवेश करने वाले (इन्दुम्) अखिल ब्रह्माण्ड में प्रकाशमान (इन्द्राय मत्सरम्) विद्वानों के लिये गर्वजनक धनरूप आपको विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) बुद्धिद्वारा प्रेरित करते हैं ॥४॥

भावार्थः—आनन्द का स्रोत परमात्मा ही सबका प्रकाशक है उसी के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है ॥४॥

नवम मण्डल में यह त्रेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ४ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब केवल परमात्मा के सेवन में हेतु कहते हैं ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥

पदार्थः—(अह्रयः) विज्ञानी लोग (अस्य) इस परमात्मा के रचित (प्रत्नाम् ऋषिम् अनु) प्राचीन वेद से (द्युतम्) दीप्तिमान् (शुक्रम्) पवित्र (सहस्रसाम्) अपरिमित शक्तियों को उत्पन्न करने वाले (पयः दुदुह्रे) ब्रह्मानन्दरूप रस को दुहते हैं ॥१॥

भावार्थः—उक्त कामधेनुरूप परमात्मा से विद्वान् सदाचारी लोग दुग्धामृत के दोग्धा बनकर संसार में ब्रह्मामृत का संचार करते हैं ॥१॥

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥

पदार्थः—(अयम्) यह परमात्मा (सूर्यः इव उपदृग्) सूर्य के समान सबके कर्मों का द्रष्टा है और (अयं सरांसि धावति) यह परमात्मा ज्ञान द्वारा सर्वत्र व्याप्त है (सप्त प्रवतः आदिवम्) जो यह परमात्मा सात किरण वाले सूर्य को अपने भीतर लेकर और द्युलोक को भी एकदेशी बना कर स्थिर हो रहा है ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार अन्य ग्रह उपग्रहों की अपेक्षा से सूर्य स्वयंप्रकाश है, इसी प्रकार सूर्य आदिकों की अपेक्षा से परमात्मा स्वयंप्रकाश है। उस स्वयंप्रकाश स्वयंज्योति की उपासना करके सबको पवित्र बनने का यत्न करना चाहिये ॥२॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थः—(सूर्यः, न) सूर्य के समान जगत्प्रेरक (अयम्) यह परमात्मा (सोमः, देवः) सौम्यस्वभाव वाला और जगत्प्रकाशक है। और (विश्वानि, पुनानः) सब लोकों को पवित्र करता हुआ (भुवनोपरि, तिष्ठति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के ऊर्ध्व भाग में भी वर्तमान है ॥३॥

भावार्थः—उसी सर्वपावन परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥३॥

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः ।
पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन्(नः) हमको (परि पुनानः) सब ओर से पवित्र करते हुए आप (देववीतये) देवों की तृप्ति के लिए (गोमतः वाजान्) गवादि ऐश्वर्य को (अर्षसि) देते हैं (इन्द्रयुः) क्योंकि आप देवों अर्थात् दिव्यगुण सम्पन्न सत्कर्म्मियों को चाहने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही मनुष्य को दिव्यशक्तियाँ मिलती हैं। परमात्मा ही अपनी अपार दया से मनुष्यों को देवभाव प्रदान करता है। हे देवत्व के अभिलाषीजनो ! आपको चाहिए कि आप सदैव उस दिव्यगुण परमात्मा की उपासना करते रहें ॥४॥

नवम मण्डल में यह चव्वनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के अनन्तत्व, अनेक वस्तुजनकत्व आदि गुणों का वर्णन करते हैं ॥

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव ।
सोम विश्वा च सौभगा ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (नः) हमारे लिये (अन्धसा) अन्नादिकों के सहित (पुष्टम् पुष्टम्) अतिबलप्रद (यवम् यवम्) सञ्चित अनेक पदार्थों को तथा (विश्वा च सौभगा) सम्पूर्ण सौभाग्य को (परिस्रव) उत्पन्न करिये ॥१॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सौभाग्य को देने वाला एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥१॥

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यथा तव स्तवः) जिस प्रकार आपका यश संसार भर में व्याप्त है और (यथा ते अन्धसः, जातम्) जिस प्रकार अन्नादि पदार्थों का समूह आप ही ने रचा है उसी प्रकार (निषदः प्रिये बर्हिषि) जो आपका प्रिय यज्ञस्थल है उसमें आकर आप विराजमान हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा यज्ञादिस्थानों को अपने विचित्र भावों से विभूषित करता है ॥२॥

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥

पदार्थः—(**उत नः**) जो कि हमारे लिये (**गोवित् अश्ववित्**) गवाश्वादि ऐश्वर्य के प्रापक आप ही हैं इसलिये (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**मक्षुतमेभिः अहभिः**) अति अल्पकाल ही में (**अन्धसा पवस्व**) सम्पूर्ण अनादि समृद्धि से पवित्र करिये ॥३॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिए उसी की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित ॥४॥

पदार्थः—(**यः जिनाति**) जो आप सकल ब्रह्माण्डगत पदार्थों को आयुरहित कर देते हैं और (**न जीयते**) स्वयं कदापि निरायुष नहीं होते तथा (**शत्रुम् अभीत्य हन्ति**) जो आप अपनी व्याप्ति द्वारा शत्रुओं की शक्तियों को हर लेते हैं और स्वयं अहार्य शक्तिवाले हैं वह (**सहस्रजित**) सर्वोपरि शक्तिसम्पन्न आप (**पवस्व**) हमको सुरक्षित करिये ॥४॥

भावार्थः—काल सब पदार्थों के आयु को क्षय करके आप स्वयं अविनाशी बना रहता है। परन्तु काल का अविनाशित्व भी सापेक्ष है अर्थात् अनित्य पदार्थों की अपेक्षा काल को नित्य कहा जाता है परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से काल भी अनित्य है। इसलिए परमात्मा सर्वोपरि कूटस्थ नित्य है, उसी की उपासना मनुष्य को शुद्ध हृदय से करनी चाहिए ॥४॥

नवम मण्डल में यह पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १–३ गायत्री । ४ यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा सदाचारियों को ही ज्ञानगोचर हो सकता है यह कहते हैं ॥

परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**ऋतम् बृहत् आशुः**) सत्यस्वरूप और सबसे महान् तथा शीघ्र गति वाले हैं (**देवयुः**) सत्कर्मियों को चाहते हुए और (**रक्षांसि विघ्नन्**) दुष्कर्मियों का नाश करते हुए (**पवित्रे अर्षति**) पवित्र अन्तःकरणों में निवास करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मों का यथायोग्य फलप्रदाता है; इस लिए उसके उपासक को चाहिए कि वह सत्कर्म करता हुआ उसका उपासक बने, ताकि उसे परमात्मा के दण्ड का फल न भोगना पड़े। तात्पर्य यह है कि उपासना से केवल हृदय की शुद्धि होती है पापों की क्षमा नहीं होती ॥१॥

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः ।
इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥२॥

पदार्थः—(**यत्, सोमः, वाजम्, अर्षति**) जो परमात्मा बल का प्रदान करता है इससे (**अपस्युवः**) कर्मयोगी लोग (**इन्द्रस्य, सख्यम्, आविशन्**) परमैश्वर्य वाले उस परमात्मा के मैत्रीभाव को प्राप्त होते हुए (**शतम् धाराः**) उसके दिये हुए बल और आनन्द की अनेक धाराओं का उपभोग करते हैं ॥२॥

भावार्थः—वास्तव में परमात्मा का कोई मित्र या अमित्र नहीं। जो लोग परमात्मा की आज्ञापालन करने से उसके अनुकूल चलते हैं उनसे वह स्नेह करता है इसलिये वे मित्र कहलाते हैं और प्रतिकूलवर्ती लोग स्नेह के पात्र नहीं होते, इसलिए अमित्र कहलाते हैं। इसीलिए यहां मित्र शब्द आया है; कुछ मानुषी मैत्री के भाव से नहीं ॥२॥

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत ।
मृज्यसे सोम सातये ॥३॥

पदार्थः—(**कन्या, जारम्, न**) जिस प्रकार दीप्ति अग्नि को प्राप्त होती है उसी प्रकार (**दश, योषणः**) दश इन्द्रियवृत्तियां (**त्वा, अभ्यनूषत**) आपको स्तुति द्वारा प्राप्त होती हैं (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**सातये**) आप इष्टप्राप्ति के लिये (**मृज्यसे**) ध्यानगोचर किये जाते हैं ॥३॥

भावार्थः—संस्कारी पुरुषों की इन्द्रियवृत्तियाँ उसको विषय करती हैं, असंस्कारियों की नहीं ॥३॥

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।
नृन्त्स्तोतृन्पाह्यंहसः ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**त्वम्**) आप (**इन्द्राय विष्णवे**) व्याप्तिशील ज्ञानयोगी के लिये (**स्वादुः**) परम आस्वादनीय रस हैं। उनके लिये (**परिस्रव**) आप सकल अभीष्ट का प्रदान करिये (**नॄन् स्तोतॄन् पाहि अंहसः**) अपने उपासकों को पाप से बचाइये ॥४॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी अपने ज्ञान के प्रभाव से ईश्वर का साक्षात् करता है और अनिष्ट कर्मों से बचता है ॥४॥

नवम मण्डल में यह छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सारः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ ककुम्मती **गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥**

परमात्मा अपने भक्तों को त्रिविध आनन्दों से और दुराचारियों को दारिद्रय से युक्त करता है, यह कहते हैं ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थः—(**दिवः वृष्टयः न**) द्युलोक से वृष्टि के समान (**ते, धाराः**) आपके ब्रह्मानन्द की धाराएं (**असश्चत**) अनेक प्रकार की (**यन्ति**) विद्वानों के हृदयों में प्रादुर्भूत होती हैं, आप अपने उपासकों को (**सहस्रिणम् वाजम्**) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य के (**अच्छ**) अभिमुख करिये ॥१॥

भावार्थः—जिन लोगों ने सत्कर्मों द्वारा अपने आपको ज्ञान का पात्र बनाया है उनके अन्तःकरण में परमात्मा की सुधामयी वृष्टि सदैव होती रहती है ॥१॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

पदार्थः—(**हरिः**) वह परमात्मा (**आयुधा तुञ्जानः**) अपने शस्त्रों से शत्रुओं को व्यथित करता हुआ (**विश्वा काव्या चक्षाणः**) सम्पूर्ण कर्मों को देखता हुआ (**प्रियाणि अभि अर्षति**) अपने प्रिय उपासकों की ओर जाता है ॥२॥

भावार्थः—उसका दण्डरूप वज्र दुष्टों के लिए सदैव उद्यत रहता है और सत्कर्मी सदैव उससे निर्भय रहते हैं ॥२॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

पदार्थः—(**सुव्रतः, इभः, राजा, इव**) सुन्दर अनुशासन करनेवाले निर्भीक राजा के समान (**सः**) वह परमात्मा (**आयुभिः, मर्मृजानः**) ऋत्विजों द्वारा स्तुति किया गया (**श्येनः, वंसु, न**) जिस प्रकार विद्युदादि शक्तियां सूक्ष्म पदार्थों में रहती हैं उस प्रकार (**सीदति**) वह उनके हृदय में अधिष्ठित होता है ॥३॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्माण्डगत प्रत्येक पदार्थ में विद्युत् व्याप्त है इसी प्रकार परमात्मशक्ति भी सर्वत्र व्याप्त है ॥३॥

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**सः**) वह आप (**नः**) हमारे लिए (**दिवः, विश्वा, वसु**) द्युलोक सम्बन्धी सकल सम्पत्तियां (**उतो**) तथा (**पृथिव्याः, अधि**) पृथिवी सम्बन्धी सम्पूर्ण सम्पत्तियां (**आभर**) आहरण कीजिये और (**पुनानः**) मुझको पवित्र करिये ॥४॥

भावार्थः—सम्पूर्ण संपत्तियों का स्वामी एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिए ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए उसी का शरणागत होना आवश्यक है ॥४॥

नवम मण्डल में यह सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य अष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,३ निचृद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा का सर्वव्यापक होना वर्णन करते हैं ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥१॥

पदार्थः—(**मन्दी सः**) परम आनन्दमय यह परमात्मा (**तरत्**) पापियों को तारता हुआ (**सुतस्य अन्धसः धारा**) उत्पन्न किये हुए ब्रह्मानन्द के रस सहित (**धावति**) स्तोताओं के हृदय में विराजमान होता है । (**तरत् सः मन्दी धावति**) और वह परमात्मा निश्चय सब पापियों को तारता हुआ परमानन्दरूप से संसार में व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थः—पापियों को तारने का अभिप्राय यह है कि जो लोग पापका प्रायश्चित्त करके उसकी शरणको प्राप्त होते हैं वे फिर कदापि पापपंक में लिप्त नहीं होते । अथवा यों कहो कि पापमयसंचित कर्मों की स्थिति उनके हृदयसे दूर हो जाती है; अन्य पापोंकी क्षमा ईश्वर कदापि नहीं करता ॥१॥

उ॒स्रा वे॑द॒ वसू॑नां॒ मर्त॑स्य दे॒व्यव॑सः ।
तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति ॥२॥

पदार्थः—(**वसूनाम्, उस्रा**) सर्वविध रत्नादि ऐश्वर्यों की प्रदात्री (**देवी**) परमात्मा की दिव्यशक्ति (**मर्तस्य अवसः वेद**) जीवों की रक्षा करने में जागरूक रहती है और (**तरत् सः मन्दी धावति**) वह परमात्मा सबको तारता हुआ आनन्दरूप से सर्वत्र व्याप्त है ॥२॥

भावार्थः—परमात्माके आनन्दसे ही आनन्दित होकर सब प्राणी सुखको उपलब्ध करते हैं । अर्थात् आनन्दमय एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥२॥

ध्व॒स्रयोः॑ पुरु॒षन्त्यो॒रा स॒हस्रा॑णि दद्महे ।
तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः**) आपकी व्याप्तिशील जो ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति (**सहस्राणि**) अनेक प्रकार की हैं उनको (**आदद्महे**) हम प्राप्त करें (**तरत् सः मन्दी धावति**) आप सबको तारते हुए हर्षरूप से सर्वत्र विराजमान हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति को लाभ करके कर्मयोगी और ज्ञानयोगी अपने कर्तव्य में तत्पर रहते हैं ॥३॥

आ ययो॑स्त्रिं॒शतं॒ तना॑ स॒हस्रा॑णि च॒ दद्म॑हे ।
तर॒त्स म॒न्दी धा॑वति ॥४॥

पदार्थः—(**ययोः**) जिन शक्तियों से (**त्रिशतम् तना**) हम तीनसौ वर्ष तक दीर्घायु और (**सहस्राणि च आदद्महे**) सहस्रों शक्तियों को उत्पन्न कर सकते हैं । ऐसी शक्तियों वाला (**मन्दी**) आह्लादजनक (**सः**) वह परमात्मा (**तरत्**) सब पापियों को तारता हुआ (**धावति**) सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो रहा है ॥४॥

भावार्थः—यद्यपि साधारणतया मनुष्य के आयु की अवधि सौवर्ष तक है, तथापि कर्मयोगी अपने उग्रकर्मों द्वारा अपनी आयु को बढ़ा सकते हैं । इसी लिए "भूयश्च शरदः शतात्" इस वाक्य में सौ से अधिक की प्रार्थना की गई है । और जो इस मन्त्र में पापों के नाश का कथन है वह पापवासना के क्षय के अभिप्राय से है; प्रारब्धकर्मों के नाश के अभिप्राय से नहीं ॥४॥

नवम मण्डल में यह अठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य १-४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१, गायत्री २ आर्चीस्वराड्गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अभ्युन्नतिको चाहने वाला केवल परमात्मा की ही प्रार्थना
करे, यह कहते हैं ॥

पव॑स्व गो॒जिद॑श्व॒जिद्वि॑श्व॒जित्सो॑म रण्य॒जित् ।
प्र॒जाव॒द्रत्न॒मा भ॑र ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**गोजित्, अश्वजित्**) आप गवाश्वादि ऐश्वर्यों से विराजमान तथा (**रण्यजित्**) संग्राम में दुराचारियों को पराजय प्राप्त कराने वाले और (**विश्वजित्**) संसार में सर्वोपरि हैं । आप हमको (**पवस्व**) पवित्र करिये । और (**प्रजावद्रत्नम् आभर**) सन्तानादियुक्त रत्नों से परिपूर्ण करिये ॥१॥

भावार्थः--परमात्मा की दया से ही पुरुष को विविध प्रकार के रत्नों का लाभ होता है ॥१॥

पव॑स्वा॒द्भ्यो अदा॑भ्यः॒ पव॒स्वौष॑धीभ्यः ।
पव॑स्व धि॒षणा॑भ्यः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अदाभ्यः**) अदम्भनीय हैं (**अद्भ्यः**) जलों से (**ओषधिभ्यः**) ओषधियों से (**धिषणाभ्यः**) तथा बुद्धियों से (**पवस्व**) हमको सुरक्षित कीजिये ॥२॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि परमात्मा सब शक्तियों के ऊपर विराजमान है । उसका शासन करने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं ॥२॥

त्वं सो॑म॒ पव॑मानो॒ विश्वा॑नि दुरि॒ता त॑र ।
क॒विः सी॑द॒ नि ब॒र्हिषि॑ ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे भगवन् ! (**त्वम्**) आप (**विश्वानि दुरिता तर**) सम्पूर्ण पापों को दूर करिये (**कविः**) सर्वकर्माभिज्ञ आप (**बर्हिषि**) यज्ञस्थलों में (**निषीद**) विराजमान हों ॥३॥

भावार्थः—मलिनवासनाओं के क्षय के लिए परमात्मा से सदैव प्रार्थना करनी चाहिए ॥३॥

पव॑मान॒ स्व॑र्विदो॒ जाय॑मानोऽभवो म॒हान् ।
इन्दो॒ विश्वाँ॑ अ॒भीद॑सि ॥४॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सर्वपावक ! (**इन्दो**) परमात्मन् ! आप (**अभवः**) अनादि हैं और (**महान्**) पूजनीय हैं तथा (**विश्वान्, अभि, इदसि**) सबको नीचे किये हुए आप सर्वोपरि विराजमान हैं । (**जायमानः**) आप विज्ञानियों के हृदय में प्रादुर्भूत होते हुए (**स्वः, विदः**) सर्वविध अभीष्टों को प्रदान करिये ॥४॥

भावार्थः—उसी परमात्मा की उपासना से सब इष्ट फलों की प्राप्ति होती है ॥४॥

नवम मण्डल में यह उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य १–४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री । ३ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः १, २, ४ षड्जः । ३ ऋषभः ॥

अब उसके गुणों के कीर्तन से परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥

प्र गा॑य॒त्रेण॑ गायत॒ पव॑मानं॒ विच॑र्षणिम् ।
इन्दुं॑ स॒हस्र॑चक्षसम् ॥१॥

पदार्थः—हे होता लोगो ! तुम (**इन्दुम्**) परमैश्वर्यसम्पन्न (**पवमानम्**) सब को पवित्र करने वाले (**सहस्रचक्षसम्**) अनेकविध वेदादिवाणी वाले (**विचर्षणिम्**) सर्वद्रष्टा परमात्मा को (**गायत्रेण**) गायत्रादि छन्दों से (**प्रगायत**) गान करो ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम वेदाध्ययन से अपने आप को पवित्र करो ॥१॥

तं त्वा॑ स॒हस्र॑चक्षस॒मथो॑ स॒हस्र॑भर्णसम् ।
अति॒ वार॑मपाविषुः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**तम् त्वा**) लोकप्रसिद्ध उन आपको स्तोता लोग (**अति**) अत्यन्त (**अपाविषुः**) स्तुतिद्वारा प्रकाशित करते हैं जो आप (**सहस्रचक्षसम्**) अनेक वेदवाक् के रचयिता हैं तथा (**सहस्रभर्णसम्**) सम्पूर्ण जीवों के पोषक हैं और (**वारम्**) भजनीय हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की सर्वज्ञता का वर्णन किया गया है और एकमात्र उसी को उपास्यदेव वर्णन किया है ॥२॥

अति॒ वारा॒न्पव॑मानो असिष्यदत्क॒लशाँ॑ अ॒भि धा॑वति ।
इन्द्र॑स्य॒ हार्द्या॑वि॒शन् ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य, हार्दि, आविशन्**) विज्ञानी के हृदय में निवास करते हुए (**वारान् अतिपवमानः**) अपने उपासकों को अत्यन्त पवित्र करते हुए (**कलशान्, अभि, धावति**) उनके अन्तःकरणों में प्रादुर्भूत होते हुए (**असिष्यदत्**) सर्वत्र अपनी स्यन्दनशील शक्तियों से पूरित हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानप्रद होकर शुद्धान्तःकरणों में सदैव विराजमान रहता है । इस लिए परमात्मज्ञान के लिए बुद्धिका निर्मल करना अत्यावश्यक है ॥३॥

इन्द्र॑स्य सोम॒ राध॑से॒ शं प॑वस्व विचर्षणे ।
प्र॒जाव॒द्रेत॒ आ भ॑र ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**इन्द्रस्य, राधसे**) कर्मयोगी के ऐश्वर्य के लिए आप (**शं, पवस्व**) आनन्द का क्षरण कीजिये और (**प्रजावत्, रेतम् आभर**) प्रजादिकों से सम्पन्न ऐश्वर्य को परिपूर्ण करिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से अभ्युदय की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप हम को कर्मयोगी बनाकर अभ्युदयशील बनाएं ॥४॥

नवम मण्डल में यह साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२–२४, २९, ३० निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ७, ९, १३, १४, १६, १७, २०, २१, २६, २८ गायत्री । ११, १९ विराड्गायत्री । २५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर क्षात्रधर्म का उपदेश करते हैं ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सेनापते ! (यः) जो शत्रु (ते) तुम्हारे (**मदेषु**) सर्वसुखकारक प्रजापालन में (**आ**) विघ्न करे, उसको (**अया, वीती, परिस्रव**) अपनी क्रियाओं से अभिभूत करो । और (**अवाहन्, नवतीः, नव**) निन्यानवे प्रकार के भी दुर्गों का विध्वंस करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में क्षात्रधर्म्म का वर्णन है । और परमात्मा से इस विषय का बल मांगा गया है कि हम सब प्रकार से शत्रुओं का नाश करके संसार में न्याय का प्रचार करें ॥१॥

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

पदार्थः—हे कर्मयोगिन् ! जो (**इत्थाधिये, दिवोदासाय**) सत्यबुद्धि वाले और द्युलोक सम्बन्धी कर्मों में कुशल आपका (**शम्बरम्**) शत्रु है (**त्यम्, तुर्वशम्, यदुम्**) इस हिंसक मनुष्य को (**अध**) और उसके (**पुरः**) पुर को ध्वस्त करो ॥२॥

भावार्थः—कर्म्मयोगीलोग शत्रुओं के पुरों को सर्व प्रकार से भेदन कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥२॥

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे कर्मयोगिन् ! (**अश्वविद**) अश्वादिकों से युक्त आप (**नः**) हमारे लिए (परि) सब ओर से अपने कर्मयोग द्वारा (**अश्वमत, गोमत, हिरण्यवत**) अश्व, गो, हिरण्यादि युक्त (**सहस्रिणीः, इषः**) अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों को (**क्षर**) उत्पन्न करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्म्मयोगियों के द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्यों की उपलब्धिका का वर्णन किया गया है ॥३॥

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(**पवमानस्य**) अपने आश्रितजनों को पवित्र करते हुए (**पवित्रम् अभ्युन्दतः**) और पवित्र किये हुए मनुष्य को उत्साहित करने वाले (ते) तुम्हारे (**सखित्वम्**) मैत्रीभाव के लिए (**वयम्**) हम लोग (**आवृणीमहे**) प्रार्थना करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के सद्गुणों को धारण करके परमात्मा के साथ मैत्रीभाव का वर्णन किया गया है ॥४॥

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृळय ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव कर्मयोगिन् ! (**ये, ते, ऊर्मयः**) जो आपकी शरणरक्षक शक्तियें (**पवित्रम्**) शुद्ध हृदय वाले मनुष्य की ओर (**धारया**) प्रवाहरूप से (**अभिक्षरन्ति**) अभिगत होती हैं (**तेभिः**) उन शक्तियों से (नः) हमको (**मृळय**) सुरक्षित करके सुखी करिये ॥५॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी के उद्योगादि भावों को धारण करके स्वयं उद्योगी बनने का उपदेश इस मन्त्र में किया गया है ॥५॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे विद्वन् ! (**सः**) वह आप (**विश्वतः, ईशानः**) चारों ओर से अपना अधिकार जमाते हुए (**नः पुनानः**) हम लोगों को पवित्र करते हुए (**वीरवतीम्**) बड़े-बड़े वीरों से युक्त (**इषम्, रयिम्**) अन्नधनादि सम्पत्ति से (**आ, भर**) अपने जन स्थानों को परिपूर्ण करिये ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अपने विद्याबल से अपने देश को ऐश्वर्य्यों से परिपूर्ण करते हैं । इसलिए विद्वानों का सत्कार करना परम कर्तव्य है ॥६॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
समादित्येभिरख्यत ॥७॥

पदार्थः—(एतम्, त्यम्, उ) उन आपको (**दश, क्षिपः, मृजन्ति**) दसों इन्द्रियें नियत होने से ज्ञानक्रियादक्ष बनाती हैं। जिससे आप (**सिन्धुमातरम्**) समुद्रविषयक पदार्थों के ज्ञाता तथा (**आवित्येभिः, समख्यत**) विद्युदादिशक्तियों द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञाता हो जाते हैं। "आदित्यः कस्मादादत्ते रसानादत्ते भासं ज्योतिषामादीप्तो भासेति" नि० अ० २। खं० १३ ॥७॥

भावार्थः—ईश्वर का साक्षात्कार बुद्धिकी वृत्तियों के द्वारा होता है ॥७॥

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥८॥

पदार्थः—(सुतः) सुंसस्कृत कर्मयोगी (**सूर्यस्य, रश्मिभिः, सम्**) तैजस पदार्थों के आश्रय से (**इन्द्रेणः, उत, वायुना**) विद्युत्, तथा वायु से मिलकर (**पवित्रे, आ समेति**) बड़े-बड़े पवित्र कार्यों को सिद्ध करता है ॥८॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों की सिद्धि कर लेता है। अर्थात् इससे कोई काम भी अशक्य नहीं। कर्म्मयोगी के सामर्थ्य में समग्र काम है। इस बात का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है ॥८॥

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥९॥

पदार्थः—(मधुमान्) मधुर आनन्द के उत्पादक (**चारुः**) सर्वत्र गति वाले (सः) वह आप (नः) मुझको (**मित्रे**) और उचित कर्म करने वाले को तथा (**वरुणे**) जो सत्कार करने योग्य है उसको (**भगाय**) ऐश्वर्य (**वायवे**) सुन्दरगति (**पूष्णे**) तथा पुष्टि प्राप्त होने के लिये (**पवस्व**) सोद्योग होवें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से उद्योग की प्रार्थना की गई है, परमात्मा की परमकृपा से ही पुरुष उद्योगी बन कर परम ऐश्वर्य्यों को प्राप्त होता है ॥९॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥

पदार्थः—(ते, अंधसः) हे कर्मयोगिन्! तुम्हारे पैदा किए हुए पदार्थों के (**उच्चा, जातम्**) उच्च समूहको (**भूमिः आददे**) सम्पूर्ण पृथिवी भर के लोग ग्रहण करते हैं आप (**उग्रम्, शर्म**) जो कि अत्यन्त सुखस्वरूप हैं तथा (**महि श्रवः**) आपका महत् यश (**दिविषत्**) द्युलोक में भी व्याप्त है ॥१०॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी पुरुष के उत्पन्न किये हुए कलाकौशल से सम्पूर्ण लोग लाभ उठाते हैं ॥१०॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥११॥

पदार्थः—(**अर्यः**) प्रजाओं का स्वामी (एना) अपनी क्रियाओं से (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों की (**विश्वा, द्युम्नानि**) सम्पूर्ण सम्पत्तियों का (**आ**) आहरण अर्थात् संचय करता है (**सिषासन्तः**) ऐसे स्वामी की भक्ति में तत्पर रहते हुए हम (**वनामहे**) उसकी प्रार्थना करते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्वामिभक्तिका वर्णन किया गया है। तात्पर्य्य यह है कि स्वामिभक्ति से पुरुष उच्च पदवी को प्राप्त होता है ॥११॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वरिवोवित्परि स्रव ॥१२॥

पदार्थः—(सः) वह कर्मयोगी (**वरिवोवित्**) सम्पूर्ण धनों के प्रापयिता आप (**नः**) हमारे (**यज्यवे**) प्रशंसनीय (**इन्द्राय, वरुणाय, मरुद्भ्यः**) तैजस, जलीय तथा वायवीय पदार्थों की सिद्धि के लिये (**परिस्रव**) उद्यत हों ॥१२॥

भावार्थः—अग्नि तथा जलादि सब पदार्थ कर्मयोगी पुरुषों के द्वारा सब प्रकार के सुखों को उत्पन्न करते हैं ॥१२॥

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३॥

पदार्थः—(**सुजातं**) सुन्दर संस्कार युक्त (**अप्तुरम्**) अनेक कर्मों का प्रेरक (**गोभिः परिष्कृतम्**) शुद्ध इन्द्रियों वाला (**भंगम्**) शत्रुओं का भञ्जक जो (**इन्दुम्**) परम प्रकाश वाला कर्मयोगी है उसका (**देवाः**) अपनी अभ्युन्नति चाहने वाले लोग (**अयासिषुः**) अनुसरण करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—अभ्युदयाभिलाषी जनों को चाहिये कि उक्तगुण वाले कर्मयोगी का आश्रयण करें ॥१३॥

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥१४॥

पदार्थः (यः) जो राष्ट्र (**इन्द्रस्य, हृवंसनिः**) अपने स्वामी का भक्त है (**तम्**) उसको (**इत्**) निश्चय (**नः गिरः**) उपदेश प्रयुक्त मेरी वाणियें (**वर्धन्तु**) बढ़ायें (**वत्सम्, संशिश्वरीः इव**) जिस प्रकार दुग्ध से परिपूर्ण गौ अपने बच्चे को बढ़ाती है उसी प्रकार ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्वामिभक्ति का उपदेश किया गया है ॥१४॥

अर्षा॑ णः सोम॒ शं गवे॑ धु॒क्षस्व॑ पि॒प्युषी॒मिष॑म् ।
वर्धा॑ समुद्रमुक्थ्य॑म् ॥१५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे कर्मयोगिन् ! आप (**नः**) हमारी (**गवे**) वाणी के लिये (**शम्, अर्ष**) सुख को बढ़ाइये (**पिप्युषीम्, धुक्षस्व**) और तृप्ति करने में पर्याप्त अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करिये (**समुद्रम्, उक्थ्यम्, वर्ध**) समुद्र के समान अचल ऐश्वर्य को बढ़ाइये ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि आप ऐश्वर्य को बढ़ाना चाहते हैं तो कर्मयोगियों से प्रार्थना करके उद्योगी बनिये ॥१५॥

पव॑मानो अजीजनद्दि॒वश्चि॒त्रं न त॑न्य॒तुम् ।
ज्योति॑र्वैश्वान॒रं बृ॒हत् ॥१६॥

पदार्थः—(**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला कर्मयोगी (**दिवः, तन्यतुम्, न**), द्युलोक की शस्त्ररूप विद्युत् के समान (**बृहत्, वैश्वानरम्, ज्योतिः**) बड़े विद्युतादि तैजस पदार्थ को (**अजीजनत्**) पैदा करता है ॥१६॥

भावार्थः—कर्मयोगी द्वारा ही विद्युतादि पदार्थ उपयोग में आ सकते हैं । इसलिए हे मनुष्यो ! तुमको चाहिये कि तुम कर्मयोगियों को उत्पन्न करके अपने देश को अभ्युदयशाली बनाओ ॥१६॥

पव॑मानस्य ते॒ रसो॒ मदो॑ राजन्नदुच्छुनः ।
वि वार॒मव्य॑मर्षति ॥१७॥

पदार्थः—हे कर्मदक्ष ! (**पवमानस्य, ते**) सबको सुख देने वाले आपको (**रसः**) पैदा किया हुआ सुख और (**मदः**) आह्लाद (**राजन्**) हे स्वामिन् ! (**अदुच्छुनः**) जो विघ्नकारियों से रहित है वह (**वारम्, अव्यम्**) जो आपका दृढ़ भक्त है उसकी ओर (**वि**) विशेष रूप से (**अर्षति**) जाता है ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ईश्वर की भक्ति का उपदेश किया गया है। ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को समझ कर जो पुरुष ईश्वरपरायण होता है उसको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥१७॥

पव॑मान॒ रस॒स्तव॒ दक्षो॒ वि रा॑जति द्यु॒मान् ।
ज्योति॒र्विश्वं॒ स्व॑र्दृ॒शे ॥१८॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे प्रजारक्षक ! (**तव**) तुम्हारा (**रसः**) रक्षाजनित सुख (**द्युमान्**) सुन्दर (**दक्षः**) अनायासलभ्य विराजित है । और (**स्वः**) सब (**दृशे**) पदार्थों के देखने के लिये आप (**विश्वम्, ज्योतिः**) सर्वव्यापिनी सूक्ष्म शक्तियों को पैदा करते हैं ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से मनुष्य में दिव्यशक्तियाँ उत्पन्न होती हैं । जिससे मनुष्य देवभाव को धारण करता है ॥१८॥

यस्ते॒ मदो॒ वरे॑ण्य॒स्तेना॑ पव॒स्वान्ध॑सा ।
दे॒वा॒वीर॑घशंस॒हा ॥१९॥

पदार्थः—हे स्वामिन् ! आप (**देवावीः अघशंसहा**) सदाचारियों के रक्षक तथा दुष्टों को मारने वाले हैं (**यः**) जो (**ते**) तुम्हारा (**वरेण्यः, रसः**) भजनीय सुख है (**तेन, अन्धसा**) उस तृप्तिकारक सुख से हम लोगों को (**पवस्व**) पवित्र करिये ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से आनन्दोपलब्धि की प्रार्थना की गई है ॥१९॥

जघ्नि॑र्वृ॒त्रम॑मि॒त्रियं॒ सस्नि॒र्वाजं॑ दि॒वेदि॑वे ।
गो॒षा उ॑ अश्व॒सा अ॑सि ।२०॥

पदार्थः—(**अमित्रियम्, वृत्रम्, जघ्निः**) आप जो आपकी आज्ञा के प्रतिकूल है उस पापी के हन्ता है । तथा (**वाजम्, दिवेदिवे, सस्निः**) प्रतिदिन संग्राम के लिये सैनिक विभाग में तत्पर रहते हैं (**गोषाः उ, अश्वसाः, असि**) गो, अश्व आदि हितकारक जीवों के बढ़ाने वाले हैं ॥२०॥

भावार्थः—परमात्मा का वज्र दुष्टों के दमन के लिए सदैव उद्यत रहता है। इस मन्त्र में परमात्मा की दण्डशक्ति का वर्णन किया गया है ॥२०॥

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥२१॥

पदार्थः—आप (**श्येनः, न, योनिम्, आसीदन्**) विद्युत् के समान अपने स्थान में स्थित होते हुए (**न**) तत्काल ही युद्ध में (**सूपस्थाभिः, धेनुभिः, संमिश्लः**) दृढ़ स्थिति वाली इन्द्रियों से मिश्रित अर्थात् सावधान होकर (**अरुषः, भव**) देदीप्यमान होवें ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्तियाँ विद्युत् के समान सदैव उग्ररूप से विद्यमान रहती हैं। जो पुरुष उनके विरुद्ध करता है उसको आत्मिक सामाजिक और शारीरिक रूप से अवश्यमेव दण्ड मिलता है ॥२१॥

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

पदार्थः—(**यः**) जो आप (**वृत्राय, हन्तवे**) दुष्टाचारी प्रतिपक्षी के हनन करने के लिये (**महीः अपः वव्रिवांसम्**) सब अवस्थाओं में अप्रतिहत (**इन्द्रम्, आविथ**) शक्तियों को सुरक्षित रखते हैं (**सः**) एवंभूत आप (**पवस्व**) मेरी रक्षा करें ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना की गई है ॥२२॥

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३॥

पदार्थः—(**मीढ्वः**) हे सुख की वर्षा करने वाले ! (**नः**) हमारी (**गिरः**) वाक्शक्ति को (**पुनानः**) बढ़ाते हुए (**वर्ध**) हमको भी अभिनन्दित करिये। जिससे (**सोम**) हे स्वामिन् ! (**वयम्**) हम (**सुवीरासः**) सुन्दर वीरों से संगत होकर (**धनम्, जयेम**) अनेक प्रकार की सम्पत्ति का लाभ करें ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से प्रगल्भवक्ता बनने की प्रार्थना की गई है ॥२३॥

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः ।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥

पदार्थः—(**त्वोतासः, तव, अवसा**) हे प्रभो ! तुम्हारी रक्षा से सुरक्षित होकर हम (**वन्वन्तः**) आपकी सेवा में तत्पर होते हुए (**आमुरः, स्याम**) आपके विरोधियों के विनाशक हो जायें (**सोम**) हे सौम्यचित्त वाले ! आप (**व्रतेषु, जागृहि**) अपने नियमों में सदैव जागृत हैं ॥२४॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने नियमों में सदैव जागृत है अर्थात् जिसके नियम सदैव अटल हैं उन नियमों के अनुयायी होकर हम ईश्वर-नियम के विरोधियों का दलन करें ॥२४॥

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥२५॥

पदार्थः—(**सोमः**) रक्षा करने वाला स्वामी (**मृधः, अपघ्नन्**) हिंसकों को मारता हुआ (**अराव्णः**) जो लोग इसको देय धन नहीं देते उनको (**इन्द्रस्य**) अपने कर्माधिकारी के (**निष्कृतन्**) अधिकार में (**अपगच्छन्**) दुर्गति रूप से स्थापित करता हुआ (**पवते**) संसार को निर्विघ्न करता है ॥२५॥

भावार्थः—जो अपने रक्षक स्वामी अर्थात् राजा को देयधन (कर) नहीं देते वे राजनियम से दण्डनीय होते हैं ॥२५॥

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२६॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! आप (**नः**) हमको (**महः, रायः आभर,**) पवित्र धन से परिपूर्ण करिये (**पवमान**) हे सर्वरक्षक ! (**मृधः, जहि**) हिंसकों को नष्ट करिये (**वीरवत्, यशः, रास्व**) वीरों के सहित यश को प्रकट करिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म का उपदेश है। जो पुरुष राजधर्म का पालन करते हैं, वे वीरपुरुषों को उत्पन्न करके प्रजा को सर्वथा सुरक्षित करते हैं ॥२६॥

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७॥

पदार्थः—(**यत्, पुनानः, मखस्यसे**) आप जो कि अपनी प्रजाओं को सुखी करने के लिये धन ग्रहण करने की इच्छा करते हैं इससे (**राधः**) धनको (**आवि-**

ह्सन्तम्) ग्रहण करते हुए (त्वा) तुमको (शतम्, चन, हुताः) सैंकड़ों कुटिल दुष्ट (न, मिनन्) बाधित नहीं कर सकते ॥२७॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा की रक्षा के निमित्त 'कर' लेता है उसे कोई दूषित नहीं कर सकता है। और उसकी रक्षा से सुरक्षित होकर प्रजा सर्वथैव विनिघ्न रहती है, उसमें दुष्ट दस्यु आदि कोई विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ॥२७॥

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥२८॥

पदार्थः—(इन्दो) हे स्वामिन् ! आप (वृषा) सब कामनाओं के प्रापण करने में समर्थ हैं (सुतः, पवस्व) आप सेवन किये गए अपने सेवकों की रक्षा कीजिये (नः, यशसः, कृधि, जने) और मनुष्यों में मुझको यशस्वी बनाइये (विश्वा अपद्विषः, जहि) सम्पूर्ण बुरे कामों में तत्पर शत्रुओं को मारिये ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यशस्वी बनने की प्रार्थना की गई है ॥६८॥

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥२९॥

पदार्थः—(अस्य, ते, सख्ये) तुम्हारे मित्रभाव को प्राप्त होकर (इन्दो) हे सुन्दर यश से प्रकाशित ! (तव, उत्तमे द्युम्ने) तुम्हारे उत्तम यश के निमित्त हम (पृतन्यतः, सासह्याम) संग्राम में युद्ध के निमित्त आये हुए प्रतिपक्षियों को अभिभूत करें ॥२९॥

भावार्थः - इस मन्त्र में परमात्मा ने राजधर्म में साहाय्यका उपदेश किया है ॥२९॥

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥३०॥

पदार्थः– हे सेनापते ! (धूर्वणे) शत्रुओं के नाश के लिये (या) जो (ते) आपके (भीमानि, तिग्मानि, आयुधा, सन्ति) भयंकर तीक्ष्ण शस्त्र हैं तिनसे (नः) हमको (समस्य, निदः) सब प्रकार के अपयशों से (रक्ष) बचाइये ॥३०॥

भावार्थः—तीक्ष्ण शस्त्रों वाले सेनापति प्रजाओं को सब प्रकार की विपत्तियों से बचाते हैं ॥३०॥

नवम मण्डल में यह इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० जमदग्निर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, १०, २३, २५, २८, २९, निचृद्गायत्री । २, ५, ११—१९, २१—२४, २७, ३०—गायत्री । ३ ककुम्मती गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री । ८, २०, २६ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सेनापति की प्रशंसा की जाती है ॥

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

पदार्थः—(एते) यह (आशवः) क्रियादक्ष (इन्दवः) सेनाधीश (पवित्रम् अभि) अपनी पवित्र प्रजा के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के (तिरः) द्विगुण (सौभगा) भोग्य पदार्थों को (असृग्रम्) पैदा करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सेनापति के गुणों का वर्णन किया है ॥१॥

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥२॥

पदार्थः—(वाजिनः) पर्याप्त बल वाले सेनापति (पुरु, दुरिता, विघ्नन्तः) बड़ी-बड़ी आपत्तियों को हनन करते हुए (तोकाय) हमारी सन्तानों को (अर्वते) व्यापक होने के लिए (सुगा) सब प्रकार के सुखों तथा (तना) धनों का (कृण्वन्तः) संचय करते हुए भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो सेनापति प्रजा की सन्तानों को व्यापक होने के लिए सब रास्तों को निष्कंटक बनाता है। उक्तगुणों वाला सेनापति राज का अंग होकर राज्य की रक्षा करता है ॥२॥

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥

पदार्थः—(गवे, वरिवः, कृण्वन्तः) हमारे गवादिकों के लिए अनेक पदार्थों को उत्पन्न करते हुए और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (संयतम्) सुदृढ़ (इलाम्) अन्न को संचित करते हुए (सुष्टुतिम्) हमारी सुन्दर प्रार्थना को (अभ्यर्षन्ति) दत्तचित्त होकर सुनते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो सेनापति प्रजा के लिए ऐश्वर्य उत्पन्न करता है और

जा की प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है, वह धर्म का पालन करता हुआ भली-भाँति प्रजाओं की रक्षा करता है ॥३॥

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥४॥

पदार्थः—(**अप्सु, दक्षः**) क्रियाओं में कुशल (**गिरिष्ठाः, श्येनः, न**) मेघ में स्थित विद्युत् के समान शीघ्रकारी (**अंशुः**) तेजस्वी सेनापति (**असावि**) ईश्वर से पैदा किया गया (**योनिम्, आसदत्**) अपनी पदवी को ग्रहण करता है ॥४॥

भावार्थः—उक्त गुणसम्पन्न सेनापति ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होता है । तात्पर्य यह है कि ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम उक्त गुणों वाले पुरुष को सेनापति मानो । और ऐसे सेनापतियों से राजधर्म का दृढ़ प्रबन्ध करके प्रजा में रक्षा का प्रचार करो ॥४॥

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥५॥

पदार्थः—(**देववातम्**) उस दिव्यगुणसम्पन्न सेनाधिपकी रक्षा मे सुरक्षित तथा (**नृभिः, सुतः**) प्रजाओं द्वारा पैदा किये गए जो अन्न (**अप्सु, धूतः**) और जो जल से शुद्ध किया गया है (**शुभ्रम्, अन्धः**) वीर्य और बुद्धि के वर्धक उस उज्ज्वल अन्न को (**गावः, पयोभिः**) भली-भाँति जो कि गौ के दुग्ध से संस्कृत है ऐसे अन्न को (**स्वदन्ति**) प्रजागण उपभोग करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जिस देश में प्रजा की रक्षा करने वाले सेनाधीश होते हैं, उस देश की प्रजा, नाना प्रकार के अन्नों को दुग्ध से मिश्रित करके उपभोग करती है। तात्पर्य यह है राजधर्म से सुरक्षित ही ऐश्यर्य को भोग सकते हैं,अन्य नहीं। इसलिये परमात्मा ने इस मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥५॥

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय ।
मध्वो रसं सधमादे ॥६॥

पदार्थः—(**सधमादे**) यज्ञस्थलों में (**आत्**) आनन्दित होने के अनन्तर (**हेतारः**) प्रार्थयिता प्रजालोग (**अश्वम्, न**) शीघ्र ही राष्ट्रभर में व्यापक (**मध्वः, रसम्**) मधुरस के समान आस्वादनीय आनन्दका (**अमृताय**) फिर भी सुरक्षित होने के लिए (**अशूशुभन्**) स्तुति द्वारा सुभूषित करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग कर्मकाण्डी बनकर यज्ञ करते हैं, वे लोग अपने शुभ कर्मों से प्रजा को विभूषित करते हैं ॥६॥

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥७॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे कर्मप्रधान सेनापते ! (**याः**) जो (**मधुश्चुतः**) आनन्द की वर्षा करने वाली आपकी (**धाराः**) अनेक शाखाएं (**ऊतये**) प्रजाओं के रक्षणार्थ (**असृग्रम्**) इधर-उधर फैली हुई हैं (**ताभिः**) उनसे (**पवित्रम्**) सत्कर्मी को (**आसदः**) अनुगृहीत करिये ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि सेनाधीश अपनी सुरक्षारूप वृष्टि से प्रजाओं को आनन्द से सुसिञ्चित करे ॥७॥

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया ।
सीदन्योना वनेष्वा ॥८॥

पदार्थः—हे स्वामिन् ! (**सः**) पूर्वोक्त आप (**योना, आसीदन्**) अपने पद पर स्थित होते हुए (**वनेषु**) अपने राष्ट्र में (**इन्द्राय पीतये**) विज्ञानी की तृप्ति के लिये (**अर्ष**) व्याप्तिशील हों (**तिरः, रोमाणि, अव्यया**) और अन्तर्हित जीवों को भी रोम-रोम प्रति अव्यय अर्थात् दृढ़ रक्षित करिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रतिपादन किया गया है कि राजधर्म की रक्षा द्वारा देश में ज्ञान और विज्ञान की वृद्धि होती है ॥८॥

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
वरिवोविद्घृतं पयः ॥९॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे तेजस्विन् !(**त्वम्**) आप (**स्वादिष्ठः**) परमप्रिय हैं । और (**वरिवोविद्**) सब प्रजाओं को धनों के प्रापयिता हैं (**अङ्गिरोभ्यः**) आप विद्वानों के लिये (**घृतम्, पयः**) घृत दुग्धादि पदार्थ (**परिस्रव**) उत्पन्न करिये ॥९॥

भावार्थः—प्रजाओं को चाहिए कि वे सदैव अपने राजपुरुषों से ऐश्वर्य की प्रार्थना करके संसार में ऐश्वर्य बढ़ाने का यत्न करें ॥९॥

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१०॥

पदार्थः—(**सः, अयम्**) यह सेनापति (**विचर्षणिः**) प्रजाओं को विशेष रूप से देखने वाला (**हितः**) और सब का हितकारक (**पवमानः**) दुष्टों को दण्ड द्वारा शुद्ध करता हुआ (**बृहत् आप्यम् हिन्वानः**) बहुत से भोग्य पदार्थ को उत्पन्न कराता हुआ (**चेतति**) सर्वथा जागृतावस्था से विराजमान है ।।१०।।

भावार्थः—जो सेनापति अपने कर्म में तत्पर रहता है अर्थात् राजधर्म का यथाविधि पालन करता है वह, प्रजा में सब प्रकार से सुख उत्पन्न करता है ।।१०।।

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा ।
करद्वसूनि दाशुषे ।।११।।

पदार्थः—(**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला (**वृषव्रतः**) कामनापूर्त्तिरूप ही व्रत धारण करने वाला (**पवमानः**) सर्वपावक (**अशस्तिहा**) दुराचारियों का नाशक (**एषः**) यह सेनापति (**दाशुषे**) भाग देने वाले के लिये (**वसूनि, करत्**) प्रत्येक प्रकार के धनों की प्राप्ति का प्रयत्न करता है ।।११।।

भावार्थः—उक्तगुणसम्पन्न सेनापति सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न करके प्रजा में सुख बढ़ाता है ।।११।।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ।।१२।।

पदार्थः—हे सेनाधीश ! (**सहस्रिणम्**) आप प्रत्येक प्रकार के (**गोमन्तम् अश्विनम्**) गो अश्वादि के सहित (**चन्द्रम्**) हर्षोत्पादक (**पुरुस्पृहम्**) अनेक लोगों से प्रार्थनीय (**पुरु, रयिम्**) बहुतसे धन को (**आ पवस्व**) सर्वथा सञ्चित करिये ।।१२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सेनाधीश के गुणों का वर्णन किया है कि सेनाधीश सहस्र प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रजाजनों के लिये उत्पन्न करे ।।१२।।

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः ।
उरुगायः कविक्रतुः ।।१३।।

पदार्थः—(**एषः स्यः**) वह यह (**कविक्रतुः**) जो कि विद्वानों में श्रेष्ठ और (**उरु गायः**) सब लोगों से प्रशंसित है, ऐसा सेनापति (**आयुभिः**) सब प्रजाओं द्वारा (**मर्मृज्यमानः**) शुद्धाचरण रूप से सिद्ध किया गया (**परिषिच्यते**) नेतृत्वपद पर अभिषिक्त किया जाता है ।।१३।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि जो उक्तगुणसम्पन्न पुरुष है उसी को सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये ।।१३।।

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः ।
इन्द्राय पवते मदः ।।१४।।

पदार्थः—वह सेनापति (**इन्द्राय**) इन्द्र अर्थात् सर्वोपरि ऐश्वयसम्पन्न होने के लिए (**सहस्रोतिः**) सहस्रों प्रकार की रक्षण शक्ति को धारण करता है और (**शतामघः**) सैकड़ों प्रकार के धनों का सञ्चय करता है (**विमानः रजसः**) और प्रजा रक्षणार्थ रजोगुणप्रधान होता है (**कविः**) सब शास्त्रों का प्राज्ञ तथा (**इन्द्राय मदः**) विज्ञानियों का सत्कर्ता और तृप्तिकर्ता तथा (**पवते**) उनकी विशेष रूप से रक्षा करता है ।।१४।।

भावार्थः—जो विद्वानों का रक्षक तथा सत्कार करने वाला और विद्या के प्रचार में प्रेमी होता है वही सेनापति प्रशंसित कहा जाता है ।।१४।।

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते ।
विर्योना वसताविव ।।१५।।

पदार्थः—(**विः, वसतौ, इव**) "विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः अथापि इषुनामेह भवत्येतस्मादेव" (नि. अ. २ । ६) ।जिस प्रकार शत्रु से रक्षा के लिये बाण ज्या में स्थापित किया जाता है उसी प्रकार (**इह, जातः इन्दुः**) इस लोक में सब ऐश्वर्य को प्राप्त सेनापति (**गिरा, स्तुतः**) सब की वाणियों द्वारा स्तुत (**इन्द्राय**) रक्षा करने से निर्भीक होने के लिये (**योना, धीयते**) उच्च पद पर स्थापित किया जाता है ।।१५।।

भावार्थः—जिस प्रकार शस्त्र अपने नियत स्थानों में स्थित होकर राजधर्म की रक्षा करते हैं, इसी प्रकार सेनापति अपने पद पर स्थिर होकर राजधर्म की रक्षा करता है ।।१५।।

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।
चमूषु शक्मनासदम् ।।१६।।

पदार्थः—(**नृभिः सुतः**) विदुषी प्रजाओं के दारा अभिषिक्त (**सोमः**) सौम्य सेनाधीश (**पवमानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**चमूषु**) सेनाओं में (**शक्मना**) अपने पराक्रम से (**आसदम्**) अपने शत्रु की ओर अभिगमन करने के लिये (**वाजम्, इव**) विद्युदादि अद्भुत शक्ति के समान (**असरत्**) गमन करता है ।।१६।।

भावार्थः—सोम यहाँ सेनाधीश का नाम है क्योंकि सेनाधीश को भी धीरता के लिये सौम्यस्वभाव की आवश्यकता है। इसलिये उसे सोमरूप से वर्णन किया है ॥१६॥

तं त्रि॑पृ॒ष्ठे त्रि॑वन्धु॒रे रथे॑ युञ्जन्ति॒ यात॑वे ।
ऋषी॑णां स॒प्त धी॒तिभि॑ः ॥१७॥

पदार्थः—(ऋषीणाम्, सप्त, धीतिभिः) जो कि ऋषियों अर्थात् विज्ञानी शिल्पियों के द्वारा रचित है तथा सात प्रकार के आकर्षणादि गुणों से संयुक्त है तथा (त्रिपृष्ठे) तीन उपवेशनस्थानों से युक्त तथा (त्रिवन्धुरे) तीन जगह ऊँचा-नीचा है (रथे) ऐसे रथ में (तम्) उस सेनापति को (यातवे, युञ्जन्ति) यात्रा करने के लिये प्रयुक्त करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम अपने सेनापतियों के लिये ऐसे यान बनाओ, जो अनन्त प्रकार से आकर्षणविकर्षणादि गुणों से युक्त हों। और जल, स्थल तथा नभोमण्डल में सर्वत्रैव अव्याहतगति होकर गमन कर सकें ॥१७॥

तं सो॑तारो धन॒स्पृत॑मा॒शुं वाजा॑य॒ यात॑वे ।
हरिं॑ हिनोत वा॒जिन॑म् ॥१८॥

पदार्थः—(सोतारः) हे अमात्यादि अभिषेक्ता लोगो ! (धनस्पृतम्) जो कि धनों का सञ्चय करने वाला है तथा (आशुं) बहुव्यापी है (हरिम्) और शत्रुओं का विघातक (वाजिनम्) सुन्दर बल वाला है उसको (वाजाय) शक्ति बढ़ाने को (यातवे) यात्रा करने के लिये (हिनोत) प्रेरणा करो ॥१८॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! तुम लोग जो उक्तगुणसम्पन्न पुरुष है उसको अपने अभ्युदय के लिए सेनाधीशादि पदों पर नियुक्त करो ॥१८॥

आ॒वि॒शन्क॒लशं॑ सु॒तो विश्वा॒ अर्ष॑न्न॒भि श्रियः॑ ।
शूरो॒ न गोषु॑ तिष्ठति ॥१९॥

पदार्थः—(सुतः) अभिषिक्त सेनापति (कलशम्, आविशन्) शब्दायमान शस्त्रों में प्रवेश करता हुआ अर्थात् शस्त्रविद्याको सीखता हुआ (विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन्) सम्पूर्ण लक्ष्मी को प्राप्त करता हुआ (गोषु) इन्द्रियों में (शूरः, न) शूर के समान अर्थात् जितेन्द्रिय की तरह (तिष्ठति) स्थित होता है ॥१९॥

भावार्थः—जो पुरुष जितेन्द्रिय और दृढ़व्रती होते हैं वे ही राजधर्म के लिए उपयुक्त होते हैं, अन्य नहीं ॥१९॥

आ त॑ इन्द्रो॒ मदा॑य॒ क पयो॑ दुह॒न्त्याय॑वः ।
दे॒वा दे॒वेभ्यो॒ मधु॑ । २०॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यशालिन् ! (ते) आपके (मदाय) आनन्द के लिये (आयवः देवाः) दिव्य शक्ति वाले आपके अनुयायी लोग (देवेभ्यः) ज्ञानक्रियाशाली विद्वानों से (मधु) सुन्दर भोगयोग्य (पयः) दूध रूपी (कम्) सुख को (आ) भली-भांति (दुहंति) दुहते है ॥२०॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आपके अनुयायी लोग कामधेनु रूप पृथिव्यादि लोकान्तरों से अनन्त प्रकार के अमृतों को दुहते हैं ॥२०॥

आ नः॑ सोम प॒वित्र॒ आ सृ॒जता॒ मधु॑मत्तमम् ।
दे॒वेभ्यो॑ देव॒श्रुत्त॑मम् ॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम (नः) हम लोगों के (सोमम्) सौम्य स्वभाव वाले स्वामी को (आ सृजत) इस प्रकार सिद्ध करो जिससे (मधुमत्तमम्) मधुर स्वभाव वालों में उत्तम हो। और (देवेभ्यः, देवश्रुत्तमम्) सब देवों अर्थात् विद्वानों की प्रार्थना सुनने वाला हो ॥२१॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! तुम ऐसे सेनापति को वरण करो जो मधुर स्वभाव वाला हो और सब की प्रार्थनाओं पर ध्यान देने वाला हो ॥२१॥

ए॒ते सोमा॑ असृक्षत गृणा॒नाः श्रव॑से म॒हे ।
म॒दिन्त॑मस्य॒ धार॑या ॥२२॥

पदार्थः—(एते, सोमाः) ये सेनापति (महे, श्रवसे गृणानाः) महायश के लिये स्तुति किये गए (मदिन्तमस्य, धारया) आह्लादक शौर्यवीर्यादि शक्तियों की धारा के सहित (असृक्षत) पैदा किये जाते हैं ॥२२॥

भावार्थः—उक्त गुणों वाले सेनापति संसार में यश और बल बढ़ाने के लिए उत्पन्न किए हैं ॥२२॥

अ॒भि गव्या॑नि वी॒तये॒ नृम्णा॑ पुना॒नो अ॑र्षसि ।
स॒नद्वा॑ज॒ः परि॑ स्रव ॥२३॥

पदार्थः—हे स्वामिन्! **(वीतये)** उपभोग के लिए **(गव्यानि नृम्णा)** गोसम्बन्धी धनों को **(अभि पुनानः)** निर्विघ्न करते हुए **(अर्षसि)** आप गमन करते हैं **(सनद्वाजः)** सब शक्तियों को सर्वत्र विभक्त करते हुए आप **(परिस्रव)** सर्वत्र व्यापक हों ॥२३॥

भावार्थः—जो सेनापति पृथिव्यादि रत्नों को निर्विघ्न करने के लिये अपनी जीवनयात्रा करते हैं, व सेनाधीशादि पदों के लिये उपयुक्त होते हैं ॥२३॥

उ॒त नो॒ गोम॑ती॒रिषो॒ विश्वा॑ अर्ष परि॒ष्टुभ॑ः ।
गृ॒णा॒नो ज॒मद॑ग्निना ॥२४॥

पदार्थः—**(उत)** और **(जमदग्निना, गृणानः)** प्रज्वलित प्रताप होने से सब लोगों से स्तूयमान आप **(नः)** हमारे लिये **(परिष्टुभः)** जोकि किसी प्रकार नहीं चलने वाली ऐसी **(विश्वाः)** सब प्रकार की **(गोमतीःइषः)** गवादि पदार्थ युक्तशक्ति को **(अर्ष)** प्राप्त कराइये ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे प्रजाजनो ! तुम लोग उक्तगुणसम्पन्न राजपुरुषों के सदैव अनुयायी बने रहो, ताकि वे तुम्हारे लिए पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों के ऐश्वर्यों से तुम्हें विभूषित करें ॥२४॥

पव॑स्व वा॒चो अ॑ग्रि॒यः सोम॑ चि॒त्राभि॑रू॒तिभि॑ः ।
अ॒भि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ॥२५॥

पदार्थः—**(सोम)** हे सौम्य ! **(अग्रियः)** आप जोकि हम लोगों में अग्रणी हैं इससे **(चित्राभिः, ऊतिभिः)** अनेक प्रकार की विचित्र रक्षाओं से **(वाचः)** अपनी आज्ञाविषयक वाणी को **(पवस्व)** निर्बाध करिये तथा **(विश्वानि, काव्या)** सम्पूर्ण वेदादि काव्यों को **(अभि रक्ष)** सुरक्षित कीजिये ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमेश्वर से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है ॥२५॥

त्वं स॑मु॒द्रिया॑ अ॒पो॑ऽग्रि॒यो वाच॑ ईर॒यन॑ ।
पव॑स्व विश्वमेजय ॥२६॥

पदार्थः—**(विश्वमेजय)** हे सब संसार को भय से अपने वश में रखनेवाले ! आप **(अग्रियः)** प्रधान हैं **(वाचः ईरयन्)** अपने अनुशासन द्वारा **(समुद्रियाः, आपः)** समुद्र सम्बन्धी जलों को **(पवस्व)** निर्बाध करिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की कृपा से ही सब पदार्थ निर्विघ्न रह सकते हैं, अन्यथा नहीं । इसीका वर्णन किया गया है ॥२६॥

तुभ्ये॒मा भुव॑ना कवे महि॒म्ने सोम॑ तस्थिरे ।
तुभ्य॑मर्षन्ति॒ सिन्ध॑वः ॥२७॥

पदार्थः—**(कवे)** हे विद्वन् ! **(इमा भुवना)** यह लोक **(तुभ्य महिम्ने)** तुम्हारी ही महिमा के लिये **(तस्थिरे)** ईश्वर द्वारा स्थित है और **(सोम)** हे सौम्य ! **(सिन्धवः)** सब नदियाँ **(तुभ्यम् अर्षन्ति)** तुम्हारे उपभोग के लिये ही ईश्वर द्वारा स्यन्दमान हो रही हैं ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के महत्त्व का वर्णन किया गया है कि अनेक प्रकार के भुवनों की रचना और समुद्रों की रचना उसके महत्त्व का वर्णन करती है । अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति के कार्य उसके एक देश में हैं । परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है । अर्थात् परमात्मा अनन्त है, और प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य सान्त हैं ॥२७॥

प्र ते॑ दि॒वो न वृ॒ष्टयो॒ धारा॑ यन्त्यस॒श्चतः॑ ।
अ॒भि शु॒क्रामु॑पस्तिर॑म् ॥२८॥

पदार्थः—हे सेनापते ! **(दिवः वृष्टयः न)** जिस प्रकार आकाश से जल की अनेक धाराओं का पात होता है उसी प्रकार **(ते)** आपकी **(धाराः)** रक्षक सेनायें **(असश्चतः)** पृथक्-पृथक् **(प्रयन्ति)** इधर-उधर विचरती हैं और **(शुक्राम्, अभि)** अपनी रक्षणीय पवित्र प्रजा को **(उपस्तिरम्)** भलीभाँति अनुगृहीत करती हैं ॥२८॥

भावार्थः—जिस प्रकार सेनापति की सेनाएं इतस्ततः विचरती हुई उसके महत्त्व को बतलाती हैं उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड परमात्मा के महत्त्व को सेनाओं की नाईं सुशोभित करते हैं ॥२८॥

इन्द्रायेन्दु॑ं पुनीतनो॒ग्र दक्षा॑य॒ साध॑नम् ।
ई॒शा॒नं वी॒तिरा॑धसम् ॥२९॥

पदार्थः—हे प्रजालोगो ! जोकि **(उग्रम्)** महातेजस्वी है और **(दक्षाय, साधनम्)** जिसके द्वारा तुम लोग दक्ष अर्थात् सब कार्यों में कुशल हो सकते हो और जो **(ईशानम्)** स्वयं परमैश्वर्य को प्राप्त करने में समर्थ है और **(वीतिराधसम्)** जो सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता है ऐसे **(इन्दुम्)** अपने ऐश्वर्यशाली सेनाधीश को **(इन्द्राय)** ऐश्वर्यसम्पन्न होने के लिये **(पुनीतन)** सब सम्मिलित होकर यथाशक्ति उपसेवन करो ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सेनापति की आज्ञा का पालन करना कथन किया गया है, कि जो लोग ऐश्वर्यशाली होना चाहें वे अपने सेनाधीश की आज्ञा का पालन करें ॥२९॥

पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३०॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबके रक्षक ! आप (**ऋतः**) सत्यता को धारण करने वाले (**कविः**) विद्वान् (**सोमः**) उदार हैं। और (**स्तोत्रे सुवीर्यम, दधत्**) अपने स्तोताओं तथा अनुयायियों के लिए सुन्दर पराक्रम को धारण करते हुए (**पवित्रम्, आसदत्**) सत्कर्मी तथा सुरक्षित करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म की रक्षार्थ परिश्रमी बनने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है ॥३०॥

नवम मण्डल में यह बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० निध्रुविः काश्यप ऋषिः ॥ पवमानःसोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३०निचृद्गायत्री । ३, ७–११, १६, १८, १९, २१, २४, २६ गायत्री । ५, १३ १५ विराड्गायत्री । ६, १४, २९ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब दूसरी तरह से राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे जगदीश्वर ! आप (**सहस्रिणं सुवीर्यं**) अनन्त प्रकार का बल और (**रयिं**) अनन्त प्रकार का ऐश्वर्य हमको प्रदान करें (**अस्मे**) हममें (**श्रवांसि**) सब प्रकार के विज्ञान (**धारया**) प्रदान करें। (**आपवस्व**) सब तरह से पवित्र करें ॥१॥

भावार्थः—राजधर्म की पूर्ति के लिए इस मन्त्र में अनेक प्रकार के बलों की परमात्मा से याचना की गई है ॥१॥

इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा नि षीदसि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**चमूषु**) आप सब सेनाओं में (**आनिषीदसि**) नियामक रूप से स्थित हैं। आप (**इन्द्राय**) शूरवीर के लिये (**मत्सरिन्तमः**) अत्यन्त मद करने वाला वीरता का भाव उत्पन्न करें। (**इषं च**) ऐश्वर्य और (**ऊर्जं**) बल (**पिन्वसे**) धारण कराइये ॥२॥

भावार्थः—राजधर्म के लिए अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य की आवश्यकता होती है। इसलिये परमात्मा से इस मन्त्र में अनन्त सामर्थ्य की प्रार्थना की गई है ॥२॥

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**सुतः सोमः**) साधनों से सिद्ध किया हुआ सौम्य स्वभाव (**इन्द्राय**) ज्ञानयोगी के लिये (**विष्णवे**) जो बहु व्यापक है (**वायवे**) कर्मयोगी के लिए (**मधुमाँ अस्तु**) सुशीलतायुक्त माधुर्यादि भावों को देने वाला हो। और (**कलशे**) उनके अन्तःकरणों में (**अक्षरत्**) सदैव प्रवाहित होता रहे ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सर्वोपरि शील की शिक्षा दी है कि हे पुरुषो ! तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाओ ताकि तुम्हारा अन्तःकरण धृत्यादि धर्म के लक्षणों को धारण करके राजधर्म के धारण के योग्य बने ॥३॥

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।
सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥

पदार्थः—(**एते**) ये (**सोमाः**) सौम्यस्वभाव (**बभ्रवः**) जो दृढ़तायुक्त हैं वे (**ऋतस्य**) सच्चाई की (**धारया**) धारा से (**अतिह्वरांसि**) राक्षसों को अतिक्रमण करते हुए (**आशवः**) जो अत्यन्त तेजस्वी हैं, हे परमात्मन् ! आप (**असृग्रम्**) उनको उत्पन्न करें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि राजधर्मानुयायी पुरुषो ! तुम लोग उग्र स्वभाव को बनाओ ताकि दुष्ट, दस्यु और राक्षस तुम्हारे रौद्र स्वभाव से भयभीत होकर कोई अनाचार न फैला सकें ॥४॥

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्द्रं**) शूरवीर के महत्त्व को (**वर्धन्तः**) बढ़ाते हुए और उसको (**अप्तुरः**) गतिशील (**कृण्वन्तः**) करते हुए और (**अराव्णः**) सब शत्रुओं का (**अपघ्नन्तः**) नाश करते हुए (**विश्वं**) सब प्रकार के (**आर्यम्**) आर्यत्व को दें ॥५॥

भावार्थः—परामत्मा से प्रार्थना है कि परमात्मा श्रेष्ठ स्वभाव प्रदान करे, ताकि आर्यता को धारण करके पुरुष राजधर्म का शासन करे ॥५॥

सु॒ता अनु॒ स्वमा रजो॒ऽभ्य॑र्षन्ति ब॒भ्रवः॑ ।
इन्द्रं॒ गच्छ॑न्त॒ इन्द॑वः ॥६॥

पदार्थः—(**सुताः**) संस्कार किये हुए और (**स्वं**) अपने (**रजः**) स्थान को (**आगच्छन्तः**) प्राप्त होते हुए (**इन्द्रं**) परमात्मा को प्राप्त होकर (**इन्दवः**) प्रकाशस्वरूप संकल्प (**बभ्रवः**) जो स्थिर हैं वे (**अन्वभ्यर्षन्ति**) परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल करते हैं वे एक प्रकार से व्यवसायात्मक बुद्धि को बनाते हैं। अथवा यों कहो कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" (यो. १ । ३ ।) इस योगसूत्र में वर्णित किये हुए आत्मस्वरूप में स्थिति पाकर शुद्ध होते हैं। चित्तवृत्ति, संकल्प ये पर्याय शब्द हैं। परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! आप शुद्ध संकल्प होकर मेरी ओर आयें ॥६॥

अ॒या प॑वस्व॒ धार॑या॒ यया॒ सूर्य॒मरो॑चयः ।
हि॒न्वा॒नो मानु॑षीर॒पः ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अया**) उस (**धारया**) प्रकाश से प्रकाशित करते हुए (**यया**) जिससे (**सूर्यमरोचयः**) सूर्य को आप प्रकाशित करते हैं, उससे मुझे भी प्रकाशित कीजिये। और (**मानुषीः**) मनुष्यों के (**अपः**) कर्मों की (**हिन्वानः**) यथायोग्य प्रेरणा करते हुए (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यथायोग्य न्याय की प्रार्थना है। यद्यपि परमात्मा स्वभावसिद्ध न्यायकारी हैं, तथापि परमात्मा ने इस मन्त्र में "हिन्वानः मानुषीरपः" इस वाक्य से यथायोग्य कर्मों का फलप्रदाता कथन करके यह सिद्ध किया है कि तुम परमात्मा के न्याय तथा नियम के अनुकूल काम करो ॥७॥

अयु॑क्त॒ सूर॒ एत॑शं॒ पव॑मानो म॒नावधि॑ ।
अ॒न्तरि॑क्षेण॒ यात॑वे ॥८॥

पदार्थः—(**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**मनाबधि**) जो मनुष्यमात्र का स्वामी है, वह (**अन्तरिक्षेण**) अन्तरिक्ष मार्ग द्वारा (**यातवे**) जाने के लिए (**सूरः**) जो अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करता है (**एतशं**) ऐसे शक्तिसम्पन्न सूर्य को (**अयुक्त**) जोड़ता है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से अनन्त शक्ति उत्पन्न की हैं ॥८॥

उ॒त त्या ह॒रितो॒ दश॒ सूरो॑ अयुक्त॒ यात॑वे ।
इन्दु॒रिन्द्र॒ इति॑ ब्रु॒वन् ॥९॥

पदार्थः—(**उत**) और (**इन्दुः**) जो पुरुष अपने प्रेम से सब पुरुषों के हृदयों को स्निग्ध करे उसका नाम यहाँ इन्दु है (**इन्द्रः**) जो सर्वऐश्वर्ययुक्त परमात्मा है (**इति**) उनको ऐसे नामों से (**ब्रुवन्**) कथन करता हुआ जो पुरुष (**यातवे**) अपनी शारीरिक यात्रा के लिए (**त्याः**) उन (**हरितः**) पाप को नष्ट करने वाली (**दशसूरः**) दश प्रकार की वृत्तियों को (**अयुक्त**) जोड़ता है वह परमानन्द को प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष अपनी इन्द्रियवृत्तियों को सब ओर से हटाकर एक परमात्मा में लगाते हैं वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं। इस मन्त्र में परमात्मा ने इन्द्रियवृत्तियों को रोक कर ईश्वर में लगाने का उपदेश किया है। इसका नाम ईश्वर योग है "पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्" परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इसलिए वे बाहर की ओर जाती हैं। इनके रोकने का उपाय उक्त मन्त्र में बतलाया है ॥९॥

परी॒तो वा॒यवे॑ सु॒तं गिर॒ इन्द्रा॑य मत्स॒रम् ।
अव्यो॒ वारे॑षु सिञ्चत ॥१०॥

पदार्थः—(**गिरः**) हे स्तोता लोगो ! आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये और (**वायवे**) ज्ञानयोगी के लिए (**इतः**) इस कर्मभूमि में (**मत्सरं**) आह्लादजनक (**सुतं**) शील की वृष्टि करें। और (**वारेषु**) सब वरणीय पदार्थों में (**अव्यः**) रक्षा की (**परिषिंचत**) सब ओर से वृष्टि करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि वेदवेत्ता लोग ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का उपदेश करते हैं वे मानो अमृत की वृष्टि से अकर्मण्यता-रूप मृत्यु से मृत लोगों का पुनरुज्जीवन करते हैं ॥१०॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।

यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥

पदार्थः—(**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले हे परमात्मन् ! (**सोम**) हे सौम्य-स्वभाव ! (**अस्मभ्यं**) हमारे लिए उस (**रयिं**) धन को (**विदाः**) दे (**यः**) जो (**वनुष्यता**) शत्रुओं से (**दूणाशः**) अजेय है (**दुष्टरम्**) और अप्राप्य है ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने उस अलभ्य लाभ का उपदेश किया है जो ज्ञान विज्ञान रूपी धन है। ज्ञान विज्ञान रूप धन को कोई पुरुष बलात्कार से छीन वा चुरा नहीं सकता। इसी लिए कहा है कि हे वेदानुयायियो ! आप उक्त धन का संचय करें ॥११॥

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**सहस्रिणम् रयिम्**) अनन्त प्रकार के धनों को जो (**गोमत्**) अनेक प्रकार की भूमि हिरण्यादि युक्त है तथा (**अश्विनम्**) जो विविध यानों से परिपूर्ण है और जो (**वाजम्**) बलरूप (**उत**) और (**श्रवः**) यशोरूप है उसको (**अभ्यर्ष**) आप हमको दें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने अनन्त प्रकार के धनों की उपलब्धि का उपदेश किया है ॥१२॥

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः ।

दधानः कलशे रसम् ॥१३॥

पदार्थ—(**सोमः**) सब संसार को उत्पन्न करने वाला (**देवः**) दिव्यस्वरूप (**सूर्यः न**) सूर्य के समान (**अद्रिभिः**) अपनी शक्तियों से (**पवते**) पवित्र करता है। और (**सुतः**) स्वतःसिद्ध परमात्मा जो (**कलशे**) प्रत्येक पदार्थ में (**रसं**) रस को (**दधानः**) धारण कराता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मदेव ही प्रत्येक पदार्थ में रस को उत्पन्न करता है। और वही अपनी शक्तियों से सबको पवित्र करता है ॥१३॥

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया ।

वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥१४॥

पदार्थः—(**एते शुक्राः**) पूर्वोक्त शीलस्वभाव जो (**ऋतस्य धारया**) सचाई की धाराओं से (**वाजम्**) बल को और (**गोमंतं**) ऐश्वर्य को (**अक्षरन्**) बरसाते हैं वे (**आर्या**) आर्यपुरुषों के (**धामानि**) स्थान समझने चाहियें ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि श्रेष्ठ पुरुषों की स्थिति का हेतु एकमात्र शुभस्वभाव वा शील ही समझना चाहिये। अर्थात् शुभशील से ही उनकी दृढ़ता और उनका आर्यत्व बना रहता है। इस लिए शील को सम्पादन करना आर्यों का परम कर्तव्य है ॥१४॥

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः ।

पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥

पदार्थः—(**सुताः सोमासः**) स्वयंसिद्ध परमात्मा (**अतिपवित्रं दध्याशिरः**) जो सर्वोपरि पवित्रता का अधिकरण है वह (**इन्द्राय वज्रिणे**) कर्मयोगी पुरुष के लिए (**अक्षरन्**) परमानन्द की वृष्टि करता है ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी पुरुष के लिये आनन्द की वृष्टि करता है। इसका तात्पर्य यह है कि उद्योगी पुरुषों के लिये परमात्मा सदैव आनन्द को प्रदान करता है। यद्यपि परमात्मा का आनन्द सबके सन्निहित है तथापि उसके आनन्द को उद्योगी कर्मयोगी ही लाभ कर सकते हैं। इस अपूर्वता का इस मन्त्र में उपदेश किया गया है ॥१५॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ ।

मदो यो देववीतमः ॥१६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आपका (**यः**) जो (**मदः**) रस (**मधुमत्तमः**) अत्यन्त स्वादु तथा (**देववीतमः**) दिव्यस्वरूप है उसको (**राये**) हमारे ऐश्वर्य के लिये (**पवित्रे**) पवित्रान्तःकरणों में (**प्रार्ष**) प्राप्त कराइये ॥१६॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के आनन्द का अनुसन्धान करते हैं अर्थात् परमात्मा को ध्येय बनाकर उसके आह्लाद से आह्लादित होते हैं वे सब प्रकार से अभ्युदय के पात्र होते हैं ॥१६॥

तमीं॑ मृजन्त्या॒यवो॒ हरिं॑ न॒दीषु॑ वा॒जिन॑म् ।
इन्दु॒मिन्द्रा॑य मत्स॒रम् ॥१७॥

पदार्थः—(तं, हरिं) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का (इन्दुं) जो सबको अपने प्रेम से आर्द्रित करने वाला और (इन्द्राय मत्सरम्) कर्मयोगी के लिये आह्लाद का उत्पन्न करने वाला है (इं वाजिनम्) वलस्वरूप को समृद्धियों में (नदीषु) सम्पूर्ण अभ्युदयों में (आयवः) मनुष्य लोग (मृजंति) अविद्या के परदे को हटा कर बुद्धिविषय बनाते हैं ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग आवरण को दूर करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे सब प्रकार के अभ्युदयों को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

आ प॑वस्व॒ हिर॑ण्यव॒दश्वा॑वत्सोम वी॒रव॑त् ।
वाजं॒ गोम॑न्त॒मा भ॑र ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**आपवस्व**) हमको सब ओर से पवित्र करें। आप (**हिरण्यवत्**) सब प्रकार के ऐश्वर्य वाले हैं (**अश्वावत्**) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं (**वीरवत्**) विविध प्रकार के वीरों के स्वामी हैं । आप हमको (**गोमंतं वाजं**) ज्ञान के ऐश्वर्य से (**आभर**) भरपूर करिये ॥१८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं उनको परमात्मा ज्ञान-विज्ञानादि अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है ॥१८॥

परि॒ वाजे॒ न वा॑ज॒युमव्यो॒ वारे॑षु सिञ्चत ।
इन्द्रा॑य॒ मधु॑मत्तमम् ॥१९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**मधुमत्तमम्**) सर्वोपरि माधुर्य को (**परिषिञ्चत**) सिंचन करें (**अव्यः**) सबको रक्षा करने वाले आप (**वारेषु**) वरणीय पदार्थों में (**वाजयुं न**) वीरों के समान (**वाजे**) युद्ध में रक्षा करें ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग कर्मयोगी और उद्योगी बनकर अपते लक्ष्य की पूर्ति में कटिबद्ध रहते हैं परमात्मा वीरों के समान उनकी रक्षा करता है ॥१९॥

क॒विं मृ॑जन्ति॒ मर्ज्यं॑ धी॒भिर्विप्रा॑ अव॒स्यवः॑ ।
वृषा॒ कनि॑क्रदर्षति ॥२०॥

पदार्थः—(**अवस्यवः**) रक्षा करने वाले (**विप्राः**) मेधावी लोग (**धीभिः**) बुद्धि द्वारा (**मर्ज्यं**) शुद्धस्वरूप तथा (**कविं**) सर्वज्ञ परमात्मा को (**मृजन्ति**) ध्यान का विषय बनाते हैं, वह परमात्मा (**वृषा**) जोकि कामनाओं की वृष्टि करने वाला है, एवंभूत ईश्वर (**कनिक्रत्**) वेदवाणी को प्रदान करता हुआ (**क्षरति**) आनन्द की वृष्टि करता है ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि जो लोग संस्कृतबुद्धि द्वारा उसका ध्यान करते हैं उनको परमात्मा का साक्षात्कार होता है । इसी लिये उपनिषद् में कहा है कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कि सूक्ष्मदर्शी लोग सूक्ष्मबुद्धि द्वारा उसके साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं ॥२०॥

वृष॑णं धी॒भिर॒प्तुरं॒ सोम॑मृ॒तस्य॒ धार॑या ।
म॒ती विप्राः॒ सम॑स्वरन् ॥२१॥

पदार्थः—(**विप्राः**) मेधावीजन (**वृषणं**) कामनाओं की वृष्टि कराने वाले (**सोमं**) परमात्मा को (**धीभिः**) शुद्ध बुद्धि द्वारा (**मती**) स्तुति से तथा (**ऋतस्य धारया**) सत्य की धारणा से (**समस्वरन्**) बुद्धिविषय करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र से परमात्मा के साक्षात्कार करने का उपदेश किया है ॥२१॥

पव॑स्व देवायु॒षगिन्द्रं॑ गच्छतु ते॒ मदः॑ ।
वा॒युमा रो॑ह॒ धर्म॑णा ॥२२॥

पदार्थः—(**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप मुझको (**पवस्व**) पवित्र करें । (**ते**) आपका (**मदः**) परम आनन्द (**आयुषक्**) उपासक (**इन्द्रं**) कर्मयोगी पुरुष को (**गच्छतु**) प्राप्त हो । तथा आप (**वायुं**) ज्ञानयोगी पुरुष को (**धर्मणा**) उपास्य भाव से (**आरोह**) प्राप्त हों ॥२२॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोगी वा कर्मयोगी बनकर परमात्मा के उपासक बनते हैं परमात्मा उन्हें तद्धर्मतापत्तियोग द्वारा पवित्र करता है । अर्थात् अपने शिष्यादि भावों को प्रदान करके उनको शुद्ध करता है ॥२२॥

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
प्रियः समुद्रमा विश ॥२३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले ! (**सोम**) हे परमात्मन् ! जो आप (**श्रवाय्यं, रयिम्**) दुष्टों के धनों को (**नि तोशसे**) भली-भाँति नष्ट करते हैं वह (**प्रियः**) आनन्ददाता आप (**समुद्रं**) आर्द्रीभूत हमारे अन्तःकरण में (**आविश**) विराजमान हों ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के रौद्रभाव का वर्णन किया है । जैसा कि "भयं वज्रमुद्यत" इस उपनिषद्वाक्य में परमात्मा के वज्र को भयरूप से वर्णन किया गया है । इसी प्रकार यहां परमात्मा का स्वरूप दुष्टों के प्रति भयप्रद वर्णन किया है ॥२३॥

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥२४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**मत्सरः**) परम आनन्द देने वाले तथा (**क्रतुवित्**) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । जो आप (**मृध**) दुष्टों को (**अपघ्नन्**) हनन करते हुए (**पवसे**) रक्षा करते हैं वह आप (**अदेवयुं**) दुष्टाचारी (**जनं**) राक्षससमूह को (**नुदस्व**) हनन करिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी परमात्मा के रौद्ररूपका वर्णन किया गया है ॥२४॥

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥

पदार्थः—(**शुक्रासः**) जो बलवान् तथा (**इन्दवः**) दीप्तिमान् है ऐसा (**पवमानाः**) रक्षा करने वाला (**सोमाः**) परमात्मा (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**काव्या**) वेद को (**अभ्यसृक्षत**) प्रकाशित करता है ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का कथन है कि परमात्मा सब ज्ञानों का स्रोत तथा वेद का प्रकाशक है । जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि मन्त्रों में अन्यत्र भी वर्णन किया है कि परमात्मा से ऋगादि वेद उत्पन्न हुए ॥२५॥

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥२६॥

पदार्थः—(**अपद्विषः**) अनुचित द्वेषियों को (**घ्नंतः**) नाश करते हुए (**पवमानासः**) देश को पवित्र करने वाले शूरवीर (**आशवः**) अतिशीघ्रता करने वाले (**शुभ्राः**) सुन्दर (**इन्दवः**) ऐश्वर्यशाली (**विश्वाः असृग्रं**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को उत्पन्न करते हैं ॥२६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि जो शूरवीर अन्यायकारी दुष्टों का दमन करते हैं वे देश के अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं ॥२६॥

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥

पदार्थः—जो शूरवीर (**दिवस्परि**) द्युलोक से ऊपर (**अंतरिक्षात्**) अंतरिक्ष और (**पृथिव्याः अधि**) पृथिवी लोक के बीच में (**सानवि**) शूरवीरता धर्म से सर्वोपरि होकर विराजमान हैं वे (**पवमानाः**) स्वयं पवित्र होकर (**असृक्षत**) शुभगुणों को उत्पन्न करते हैं ॥२७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम अपने शूरवीरतादि धर्मों से इस संसार के उच्च शिखर पर विराजमान होकर सबकी रक्षा करो ॥२७॥

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८॥

पदार्थः—हे सौम्य स्वभाव वाले विद्वन् ! आप (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पुनानः**) हमको पवित्र करते हुए (**विश्वा अपस्रिधः**) सम्पूर्ण धर्मविरोधियों का (**जहि**) नाश करो (**रक्षांसि**) जो राक्षस शुभ कर्मों के नाशक है । हे सुक्रतो ! अनाचारियों का नाश करो ॥२८॥

भावार्थः—धीरवीरतादि गुणसम्पन्न शूरवीर दुराचारी राक्षसों का नाश करके देश में सदाचार प्रचार करता है ॥२८॥

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्न विद्वन् ! आप (रक्षसः) राक्षसों का (अपघ्नन्) नाश करते हुए (कनिक्रदत्) और शूरवीरता का उपदेश करते हुए (उत्तमं) उत्तम (द्युमंतं) दीप्ति वाला (शुष्मं) बल (अभ्यर्ष) हमको दें ॥२९॥

भावार्थः—जिस देश में सौम्यस्वभाव युक्त शूर वीर उत्पन्न होते हैं उस देश में सर्वोपरि बल और ऐश्वर्य उत्पन्न होता है । तात्पर्य यह है कि ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिये धीरवीरतादि गुणों का धारण करना अत्यावश्यक है ॥२९॥

अस्मे वसूनि धारय सोमं दिव्यानि पार्थिवा ।
इन्दो विश्वानि वार्या ॥३०॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ज्ञानविज्ञानादि गुणसम्पन्न विद्वन् ! (सोम) हे परमात्मन् ! आप (पार्थिवा) पृथिवी सम्बन्धी (दिव्यानि) तथा द्युलोक सम्बन्धी (विश्वानि वसूनि) सब रत्न (वार्या) जो वरण करने योग्य हैं, उनको (अस्मे) हमारे लिये (धारय) धारण कराइये ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा ने इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया है कि जो लोग सौम्य स्वभावयुक्त शूरवीरों के अनुयायी होकर देश का परिपालन करते हैं, वे नाना प्रकार के रत्नों का धारण करके ऐश्वर्यशाली होते हैं ॥३०॥

नवम मण्डल में यह ६३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, १२, १३, १५, १७, १९, २२, २४, २६ गायत्री । २, ५, ६, ८–११, १४, १६, २०, २३, २५, २९ निचृद्गायत्री । १८, २१, २७, २८ विराड्गायत्री । ३० यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दधिषे ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (द्युमान्) आप दीप्तिमान् (असि) हैं (वृषा) तथा सब कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं (देव) हे देव ! आप (वृषव्रतः) अर्थात् आनन्द की वृष्टिरूप शील को धारण किये हुए हैं । तथा उपासकों के हृदयों को (वृषा) स्नेह से सिञ्चन करते हैं, (वृषा धर्माणि दधिषे) और वर्षणशील धर्मों को धारण किये हुए हैं ॥१॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव हैं । और आपकी मर्यादा से ही सब लोक लोकान्तर स्थिर हैं । आप अपनी धर्ममर्यादा में हमको भी स्थिर कीजिये ॥१॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः ।
सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (वृष्णः) वर्षणशील (ते) आपका (मदः) आनन्द (वृषा) वर्षक है । तथा (ते) तुम्हारा (शवः) बल (वृष्ण्यं) वर्षणशील है । और तुम्हारा (वृषा) वर्षणशील (सत्यं) सत्यस्वरूप (वनं) भजन करने योग्य है । और एकमात्र (वृषेत्) वर्षक आपही (असि) उपासना करने योग्य हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में एकमात्र परमात्मा को उपास्य रूप से वर्णन किया गया है । तात्पर्य यह है कि ईश्वर से भिन्न सत्यादि गुणों का धाम अन्य कोई पदार्थ नहीं है ॥२॥

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अश्वो न) विद्युत् के समान (सं चक्रदः) शब्दों के देने वाले हैं । और (इन्दो) हे परमेश्वर ! आप (गाः) ज्ञानेन्द्रियों के (समर्वतः) और कर्मेन्द्रियों के (दुरः) द्वारों को (राये) ऐश्वर्यार्थ (नः) हमारे लिये (विवृधि) खोल दें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पर कृपा करता है, उन पुरुषों की ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय की शक्तियों को बढ़ाता है । तात्पर्य यह है कि उद्योगी पुरुष वा, यों कहो कि सत्कर्मी पुरुषों की शक्तियों को परमात्मा बढ़ाता है । आलसी और दुराचारियों की नहीं ॥३॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥४॥

पदार्थः—(सोमासः) सौम्य स्वभाव वाला (वाजिनः) बलरूप (अश्वया) गतिशील तथा (गव्या) प्रकाशस्वरूप (शुक्रासः) ज्ञानस्वरूप (वीरया) वीरों को

उत्पन्न करने वाला (आशवः) गतिशील परमात्मा है, उसको, उपासक लोग (प्रासृक्षत) अपना उपास्य बनाते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं, कि हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा को अपना उपास्य बनाओ ॥४॥

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥५॥

पदार्थः—(शुंभमानाः) सब भूषणों का भूषक (मृज्यमानाः) सबको शुद्ध करनेवाला (गभस्त्योः) प्रकाशस्वरूप (वारे) वरणीय पदार्थों में (अव्यये) अव्यय रूप से जो विराजमान है, और (ऋतायुभिः) सचाई को चाहने वाले लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा (पवन्ते) उनको पवित्र करता है ॥५॥

भावार्थः—जो लोग सत्य के अभिलाषी हैं, उनको परमात्मा सदैव पवित्र करता है। क्योंकि परमात्मा भक्तों पर और सत्याभिलाषियों पर अपनी कृपा करके उनका उद्धार करता है ॥५॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६॥

पदार्थः—(ते सोमाः) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (दिव्यानि) द्युलोक के (पार्थिवा) पृथिवी लोक के (अंतरिक्ष्या) अंतरिक्ष लोक के (विश्वा) सब (वसु) धन (दाशुषे) जिज्ञासु वेदानुयायियों को (आ पवन्ताम्) दें ॥६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, परमात्मा उनको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥

पदार्थः—(विश्ववित्) हे सम्पूर्ण संसार के जानने वाले परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) तुम्हारी (सर्गाः) सृष्टियें (प्रासृक्षत) जो रची गई हैं, वे (सूर्यस्येव) सूर्य की (रश्मयः) किरणों के समान (न) इस काल में शोभा को प्राप्त हो रहीं हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा के कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड सूर्य की रश्मियों के समान देदीप्यमान हो रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी ज्योति से अनन्त ब्रह्माण्डों को प्रकाशित करता है, उस प्रकार अन्य भी तेजोमय ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तरों को प्रकाश करने वाले परमात्मा की रचना में अनन्त हैं। इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी कहा है कि "कोऽद्धा वेत्ति कमिह प्रवोचत्" इत्यादि मन्त्रों में यह वर्णन किया है कि परमात्मा की रचना के अन्त को कौन जान सकता है। और कौन इसको पूर्ण रूप से कथन कर सकता है ॥७॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (दिवस्परि) द्युलोक के ऊपर (केतुं कृण्वन्) सूर्य तथा चन्द्रमा को आपने केतुरूप बनाया है। और (विश्वारूपा) सम्पूर्ण रूपों को (अभ्यर्षसि) पवित्र बनाया है। (समुद्रः) जिससे सब आनन्द मिलते हैं उसका नाम यहाँ समुद्र है (पिन्वसे) वह आप सब प्रकार के ऐश्वर्यों को हमारे लिये देते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपनी रचना में सूर्य तथा चन्द्रमा को प्रकाश के केतु बनाकर संसार की शोभा को बढ़ाया है। और आनन्द का सागर होने से परमात्मा का नाम समुद्र है ॥८॥

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (देवः) आप प्रकाशस्वरूप हैं। और (विधर्मणि) सब अधिकरणों का (अक्रान्) आप अतिक्रमण करते हैं। (पवमान) सबको पवित्र करते हुए (वाचमिष्यसि) आप वेदरूपी वाणी की इच्छा करते हैं। (हिन्वानः) आप सर्वप्रेरक हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सूर्य का दृष्टान्त देकर परमात्मा को स्वतः-प्रकाश वर्णन किया है।

यद्यपि वास्तव में सूर्य स्वतःप्रकाश नहीं है, तथापि लोक की प्रसिद्धि से सूर्य को स्वतःप्रकाश मान कर यहां सूर्य का दृष्टान्त दिया गया है। वास्तव में परमात्मा निरपेक्ष स्वतःप्रकाश है ॥९॥

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती ।
सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) परमात्मा स्वतःप्रकाश है । (**पविष्ट**) सबको पवित्र करने वाला है। (**चेतनः**) चिद्रूप है (**कवीनां प्रियः**) विद्वानों का प्रिय है। (**मती**) बुद्धिरूप है । (**अश्वं**) सर्वोपरि विद्युदादि शक्तियों को (**सृजत्**) उसने रचा है। और वह परमात्मा (**रथीरिव**) महारथी के समान तेजस्वी होकर विराजमान है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को चेतनस्वरूप वर्णन करने के लिये चेतन शब्द स्पष्ट आया है। जो लोग यह कहा करते हैं, कि वेद में परमात्मा को ज्ञानस्वरूप कहने वाले शब्द नहीं आते, उनको इस मन्त्र से शिक्षा लेनी चाहिये ॥१०॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥

पदार्थः—हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारे आनन्द की (**ऊर्मिः**) लहरें (**यः**) जो (**देवावीः**) दिव्य हैं, वे (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरणों में (**पर्यक्षरत्**) सब ओर से बहतीं हैं। आप (**ऋतस्य**) सचाई के (**योनिमासीदन्**) धाम में निवास करते हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदयों को अपनी सुधामयी वृष्टि से सिंचित कर देता है ॥११॥

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (**इन्द्राय पीतये**) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये आप (**आ**) सब ओर से (**मदः**) आनन्द की वृष्टि करें। (**यः**) जो आनन्द (**देववीतमः**) देवताओं की तृप्ति करने वाला है और (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरणों में जिसका संचार होता है (**सः**) उस आनन्द को (**नः**) हम लोगों को (**अर्ष**) दीजिये ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा का वह आनन्द जो देवताओं के लिये तृप्तिकारक है, अर्थात् जिसके अधिकारी दिव्य गुण वाले सदाचारी पुरुष हैं, वह आनन्द केवल कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों को ही उपलब्ध हो सकता है, अन्यों को नहीं। इसलिये सबको चाहिये कि कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बनकर उस आनन्द की प्राप्ति का यत्न करे ॥१२॥

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! आप (**इषे**) ऐश्वर्य के लिये (**पवस्व**) हमको योग्य बनाएँ। और (**मनीषिभिः**) बुद्धिमानों से (**अभि मृज्यमानः**) उपास्यमान आप (**धारया**) अपने आनन्द की वृष्टि से (**गाः**) हमारी इन्द्रियों को पवित्र करें। (**रुचा**) अपने प्रकाशस्वरूप से (**इहि**) आकर हमारे अन्तःकरण को पवित्र कीजिये ॥१३॥

भावार्थः—जो लोग शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा की उपासना करते हैं, परमात्मा उनकी शक्तियों को बढ़ाता है। और उनकी इन्द्रियों को विमल करके ऐश्वर्यप्राप्ति के योग्य बनाता है ॥१३॥

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥१४॥

पदार्थः—(**हरे**) हे दुष्टों की शक्तियों को हरने वाले परमात्मन् ! आप हमको (**वरिवः**) ऐश्वर्यसम्पन्न करें। (**गिर्वणः**) आप वैदिक वाणियों द्वारा उपासना करने योग्य हैं। और (**पुनानः**) पवित्र करने वाले हैं। आप संसार के लिये (**आशिरं**) मंगल (**सृजानः**) करते हुए (**जनाय**) अपने भक्त के लिये (**ऊर्जं**) बल (**कृधि**) करें ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा दुष्टों की शक्तियों को हर लेता है, श्रेष्ठों को अभ्युदय दे कर बढ़ाता है ॥१४॥

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी को (**देववीतये**) ब्रह्मप्राप्ति के लिये (**याहि**) प्राप्त हों (**यतः**) क्योंकि आप (**निष्कृतं द्युतानः**) स्वाभाविक दीप्तिमान् हैं तथा (**वाजिभिः**) उपासक लोगों से उपासना किये जाते हैं। और (**पुनानः**) सबको पवित्र करते हैं। इसलिये कर्मयोगी का लक्ष्य आपही बनें ॥१५॥

भावार्थः—कर्मयोगी यहाँ उपलक्षणमात्र है। तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी अथवा अन्य कोई उपासक हो, इन सब को एकमात्र ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिये, किसी अन्य की नहीं ॥१५॥

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः ।
धिया जूता असृक्षत ॥१६॥

पदार्थः—(धिया) संस्कृत बुद्धि से (जूताः) उपासना किया हुआ (आशवः) गतिशील (अच्छ) निर्मल परमात्मा (समुद्रं) द्रवीभूत मन में (असृक्षत) ध्यान को लक्ष्य बनाता है । उक्त परमात्मा (इन्दवः) सब प्रकार ऐश्वर्य वाला है । तथा (हिन्वानासः) सबकी प्रेरणा करने वाला है ॥१६॥

भावार्थः—सर्वप्रकाशक और सबका प्रेरक परमात्मा, संयमी पुरुषों के ध्यान का विषय होता है, अन्यों के नहीं ॥१६॥

मर्मृजानासं आयवो वृथा समुद्रमिन्दंवः ।
अग्मंन्नृतस्य योनिमा ॥१७॥

पदार्थः—उक्त परमात्मा (ऋतस्य योनिं) सत्यता के स्थान को (आ) भली-भांति (अग्मन्) प्राप्त होता है । वह परमात्मा (मर्मृजानासः) सबको पवित्र करने वाला है । (आयवः) गतिशील है (इन्दवः) प्रकाशस्वरूप है । तथा (वृथा समुद्रम्) अन्तरिक्ष में भी अनायास गमन करने वाला है ॥१७॥

भावार्थः—उक्त सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा विना परिश्रम के ही अन्तरिक्षादि लोकों में गमन कर सकता है, अन्य नहीं ॥१७॥

परिं णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजंसा ।
पाहि नः शर्मं वीरवंत् ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अस्मयुः) भक्तों को प्राप्त होने वाले आप (नः) हम लोगों के (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) धनों को (ओजसा) बल के सहित (परियाहि) सब ओर से प्राप्त कराइये । और (नः) हम लोगों के (वीरवत्) वीर पुत्रों की और (शर्म) शील की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—जो लोग सदाचारी हैं और सदाचार से अपने शील को बनाते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥१८॥

मिमांति वह्निरेतंशः पदं युंजान ऋक्वंभिः ।
प्र यत्संमुद्र आहिंतः ॥१९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ऋक्वभिः) ऋत्विक् लोगों से (यत्) जब (वह्निः) हवन की अग्नि (एतशः) जो दिव्य शक्तिसम्पन्न है (मिमाति) प्रज्वलित की जाती है, तब (युजानः) यज्ञ में युक्त होनेवाला परमात्मा जो (समुद्रे) भक्तिभाव से नम्रीभूत अन्तःकरणों में (आहितः) स्थिर रहता है, वह (पदं) अपने पद को धारण करता है ॥१९॥

भावार्थः—याज्ञिक लोग जब यज्ञ करते हैं, तब उनके नम्रीभूत अन्तःकरणों में परमात्मा निवास करता है । यज्ञ शब्द के अर्थ यहाँ उपासनात्मक यज्ञ के हैं । यों तो जपयज्ञ, योगयज्ञ, कर्मयज्ञ इत्यादि अनेक प्रकार के यज्ञों में यज्ञ शब्द आता है, जिनके करने वाले ऋत्विक् कहलाते हैं, परन्तु यहां ऋत्विक् शब्द का अर्थ उपासक है । जो ऋतु-ऋतु में अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक भाव में उपासना करते हैं, उनको यहां ऋत्विक् कहा गया है ॥१९॥

आ यद्योनिं हिरण्ययंमाशुर्ऋतस्य सीदंति ।
जहात्यप्रंचेतसः ॥२०॥

पदार्थः—(यत्) जब (आशुः) अति गतिशील परमात्मा (ऋतस्य हिरण्ययं योनिं) हिरण्मयी यज्ञवेदी को (आसीदति) प्राप्त होता है, तब (अप्रचेतसः) असमाहित लोगों के अन्तःकरणों को (जहाति) छोड़ देता है ॥२०॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि ज्ञान से प्रकाशित अंतःकरणों को परमात्मा अपनी शक्ति से विभूषित करता है, अज्ञानावृत अन्तःकरणों को नही । इसीलिये यहां "अप्रेचतसः, जहाति" यह लिखा है । वास्तव में परमात्मा न किसी स्थान को छोड़ते हैं, न पकड़ते हैं ॥२०॥

अभि वेना अनूंषतेयंक्षन्ति प्रचेंतसः ।
मज्जन्त्यविंचेतसः ॥२१॥

पदार्थः—(प्रचेतसो वेनाः) प्रकृष्ट ज्ञान वाले विज्ञानी लोग (अभ्यनूषत) परमात्मा की उपासना करते हैं और (इयक्षंति) उपासनात्मक यज्ञ से परमात्मा का यजन करते हैं । (अविचेतसः) अज्ञानी लोग (मज्जन्ति) डूबते हैं ॥२१॥

भावार्थः—जो लोग शुद्ध मन वाले हैं, वे परमात्मा के तत्वज्ञान से मुक्ति के भागी होते हैं । और अज्ञानी लोग वार-वार जन्म लेते हैं, और मरते हैं, परन्तु फिर भी परमात्मा के तत्त्व को नहीं पाते । इसी लिये उनका यहाँ डूबना दिखलाया है ॥२१॥

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मरुत्वते इन्द्राय) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी के लिये (पवस्व) आप अपने आनन्द की वृष्टि करें। क्योंकि आप (मधुमत्तम) आनन्दमय हैं। इस लिये उक्त विद्वानों को आप आनन्द का प्रदान करें। और (ऋतस्य योनिमासदम) यज्ञवेदी को आकर विभूषित करें ।।२२।।

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी और ज्ञानयोगी के हृदयमण्डप को विभूषित करता है, और उनके सत्यव्रतात्मक यज्ञ को सदैव सुशोभित करता है ।।२२।।

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तं त्वा) उक्त गुणसम्पन्न आपको (वचोविदो विप्राः) वेदवाणी के जानने वाले मेधावी लोग (परिष्कृण्वंति) वर्णन करते हैं। और (वेधस आयवः) कर्मकांडी लोग (त्वा) आपको (संमृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं।।२३।।

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी हैं, तथा योगसाधनरूपी कर्मों द्वारा परमात्मा को अपने ध्यान का विषय बनाते हैं, वे परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं ।।२३।।

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे ।
पवमानस्य मरुतः ॥२४॥

पदार्थः—(पवमानस्य) सब को पवित्र करने वाले जो आप हैं, ऐसे आपके (रसं) रस को (मित्रः) समदर्शी विद्वान् (वरुणः) विज्ञानादि गुणों से सृष्टि को आच्छादन करने वाले (मरुतः) कर्मयोगिगण (ते कवे) तुम जो सर्वज्ञ हो, ऐसे आपके रस को (अर्यमा) न्यायकारी लोग (पिबन्ति) पान करते हैं ।।२४।।

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी है, वही उस परमात्मा के आनन्द को पान कर सकता है, अन्य नहीं। तात्पर्य यह है, कि परमात्मा के समान परमात्मा का आनन्द भी सर्वत्र परिपूर्ण है। परन्तु विना उक्त उपदेश से, वा यों कहो, कि सर्वोपरि साधन के विना उसके आनन्द का कोई भी उपभोग नहीं कर सकता। इसी लिये यहां उक्त प्रकार के योगियों का कथन किया है, कि उक्त योगी ही उसके आनन्द को भोगते हैं ।।२४।।

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि ।
इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५॥

पदार्थः—(पुनानः) सबको पवित्र करने वाले ! (सोम) सब के उपास्यदेव परमात्मन् ! (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक ! (त्वम्) तुम (विपश्चितं) ज्ञान-विज्ञान को देने वाली (वाचं) जो वाणी है (सहस्रभर्णसं) और अनन्त प्रकार के भूषणों के समान जिसकी शोभा है, ऐसी वाणी को (इष्यसि) चाहते हो ।।२५।।

भावार्थः—वेदवाणी के समान कोई अन्य भूषण ज्ञानका ज्ञापक नहीं है। वह सहस्रों प्रकार के भूषणों की शोभा को धारण किये हुए है। जो पुरुष इस विद्याभूषण को धारण करता है, वह सर्वोपरि दर्शनीय बनता है ।।२५।।

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् ।
पुनान इन्दवा भर ॥२६॥

पदार्थः—(उतो) और (सहस्रभर्णसं) अनेक प्रकार के भूषणों की शोभा वाली (मखस्युवं) जो विविध प्रकार के धनों को देने वाली है, ऐसी (वाचं) वाणी का (पुनानः) सबको पवित्र करने वाले ! (सोम) परमात्मन् ! (इन्दो) सर्वप्रकाशक! (आभर) हमको सब प्रकार से प्रदान करिये ।।२६।।

भावार्थः—परमात्मा से प्रार्थना है, कि उक्त प्रकार का विद्याभूषण हमको प्रदान करें ।।२६।।

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।
प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥

पदार्थः—(पुनानः) हे सब को पवित्र करने वाले ! (पुरुहूत) सर्वपूज्य ! (इन्दो) सर्वप्रकाशक ! (प्रियः) सब के प्रिय परमात्मन् ! (एषां जनानां) इन उपासक पुरुषों के (समुद्रं) द्रवीभूत अन्तःकरण को (आविश) अपनी अभिव्यक्ति से शुद्ध करिये ।।२७।।

भावार्थः—जो लोग विद्या और विनय से सम्पन्न हैं, उनके अन्तःकरण को परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ।।२७।।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥

पदार्थः—(**सोमाः**) सर्वोत्पादक (**शुक्राः**) बलस्वरूप (**गवाशिरः**) इन्द्रियागोचर परमात्मा (**ववित्तु तत्या**) अपनी उज्ज्वल ज्योति से (**रुचा**) जो ज्ञानदीप्ति वाली है (**परिस्तोभंत्या**) और जो सर्वोपरि शोभा वाली है (**कृपा**) ऐसी कृपादृष्टि से हमारा कल्याण करें ॥२८॥

भावार्थः—परमात्मा जिन लोगों पर अपनी कृपादृष्टि करता है, उनका कल्याण अवश्यमेव होता है ॥२८॥

हिन्वानो हेतृभिर्यत वाजं वाज्यंक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९॥

पदार्थः—(**हेतृभिः**) उपासक लोगों से (**हिन्वानः**) उपासना किया हुआ परमात्मा (**यतः**) अपने प्रयत्न से (**वाजी**) सर्वोपरि बलवाला (**वाजं**) बल को (**अक्रमीत्**) जीतता है (**वनुषः**) मनुष्य (**सीदंतः**) युद्ध में प्रविष्ट होकर (**यथा**) जैसे अन्य बलों को जीतता है, इस प्रकार परमात्मा सब बलों को जीतता है ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा ने इस मन्त्र में बल का उपदेश किया है, कि जिस प्रकार योद्धा सेनापति अपने बल के गर्व से अन्य सेनाधीशों को जीत कर स्वाधीन कर लेता है, इसी प्रकार सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को अपने वशीभूत किये हुए हैं ॥२९॥

ऋषक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यों दृशे ॥३०॥

पदार्थः—(**ऋषक् सोम**) हे अद्वितीय परमात्मन् ! आप (**संजग्मानः**) सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप हैं । (**कविः**) सर्वज्ञ हैं । आप (**स्वस्तये**) हमारे कल्याण के लिये (**पवस्व**) हमको पवित्र करें (**सूर्यः**) हे परमात्मन् ! (**दृशे**) ज्ञानकी वृद्धि के लिये आप हमारे हृदय में आकर विराजमान हों ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञान का उपदेश किया है कि हे उपासक जनो ! आप अपने ज्ञानकी वृद्धि के लिये सर्वोपरि शक्ति से अपने मंगलकी उपासना सदैव करते रहें ॥३०॥

नवम मण्डल में यह ६४वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋग्वेद के ९वें मण्डल में ७वें अष्टक का पहला
अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

—: ❀ :—

अथ त्रिंशदृचस्य पंचषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ६, १०, १२, १३, १६, १८, २१, २२, २४, २६ गायत्री । २, ११, १४, १५, २९, ३० विराड्गायत्री । ३, ६ ८, १९, २०, २७, २८ निचृद्गायत्री । ४, ५ पादनिचृद्गायत्री । १७,२३ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा का ध्यानविषय निरूपण करते हैं ॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥

पदार्थः—(**पतिं**) जो सबका रक्षक है, तथा (**महामिन्दुं**) सर्वोपरि जो सब-प्रकाशक है (**सूरं**) ऐसे परमात्मा को (**स्वसारः**) बुद्धिवृत्तियाँ (**जामयः**) ज्ञानरूप बुद्धि-वृत्तियाँ (**उस्रयः**) परमात्मा को विषय करने वाली (**महीयुवः**) ब्रह्मविषयिणी उक्त प्रकार की वृत्तियाँ (**हिन्वन्ति**) उसका साक्षात्कार करतीं हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे जीवो ! तुम जगज्जन्मादिहेतुभूत महाशक्ति को विषय करने वाली संस्कृत बुद्धियों को उत्पन्न करो, ताकि इन्द्रियागोचर उस सूक्ष्मशक्ति का तुम ध्यान द्वारा साक्षात्कार कर सको ॥१॥

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥२॥

पदार्थः—(**देवेभ्यस्परि देवः**) जो सब देवों से उत्तम देव है, तथा जो परमात्मा (**रुचा रुचा पवमानः**) अपनी ज्ञानदीप्ति से सब को पवित्र करता है, ऐसा

परमेश्वर (विश्वा वसूनि) सब ऐश्वर्यों के साथ (आ विश) मेरे अन्तःकरण में आकर निवास करे ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वोपरि देव इस लिये कथन किया गया है, कि उस दिव्यशक्ति के आगे सब शक्तियाँ तुच्छ हैं। इसीलिये अन्यत्र भी वेद में कहा गया है कि "एषो देवः प्रदिशोनुसर्वः" यह सर्वोपरि देव सर्वत्र परिपूर्ण है, यहां उसी स्वजातीय विजातीय स्वगतभेदशून्य देव से यह प्रार्थना की गई है, कि हे प्रभो ! आप आकर हमारे हृदयों को शुद्ध करें ॥२॥

आ पंवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवंः ।
इषे पंवस्व संयतंम् ॥३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले ! आप (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सुष्टुति वृष्टि) सुन्दर स्तुति रूप वेद की वृष्टि को (दुवः) प्रसन्नता के लिये (आपवस्व) दीजिये। और मुझ (संयतं) संयमी को (इषे) ऐश्वर्य (आपवस्व) दीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा संयमी जनों को ऐश्वर्य प्रदान करता है, और जो लोग दिव्यगुणसम्पन्न हैं, उनको ही सुधामयी वृष्टि से परमात्मा सिञ्चित करता है।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा की कृपाओं के पाने के लिये प्रथम मनुष्य को स्वयं पात्र बनना चाहिये। अर्थात् मनुष्य अधिकारी बनके उसके ऐश्वर्यों का पात्र बने ॥३॥

वृषा ह्यसिं भानुनां द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवंमान स्वाध्यंः ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) सबको पवित्र करने वाले हे जगदीश ! आप (भानुना) अच्छे अर्थ को प्रकाश करने से (वृषाहि) अवश्य वेदरूप वाणी की वर्षा करने वाले (असि) हैं। (स्वाध्यः) अच्छी बुद्धि वाले हम लोग (द्युमन्तं) स्वयंप्रकाश (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, उन्हीं के परिश्रम सफल होते हैं। इस अभिप्राय से यह वर्णन किया है, कि परमात्मा उद्योगी पुरुषों के उद्योगों को सफल करें ॥४॥

आ पंवस्व सुवीर्यं मन्दंमानः स्वायुध ।
इहो ष्विंन्दवा गंहि ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (सुवीर्यं) हमारे पराक्रम को (आपवस्व) सब प्रकार से पवित्र करें। (मंदमानः) आप आनन्दस्वरूप हैं। और (स्वायुधः) आप स्वयम्भू हैं (इह उ) यहां ही (सु) भली-भाँति (आगहि) हमको आकर अनुग्रहण करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के आह्वान करने का तात्पर्य स्वकर्माभिमुख करने का है, अर्थात् आप हमारे कर्मों के अनुकूल फल प्रदान करें। परमात्मा सर्वव्यापक है, इसलिये एक स्थान से उठकर किसी दूसरे स्थान में जाना उसका नहीं हो सकता। इस प्रकार बुलाने का तात्पर्य सर्वत्र हृदयदेश में अवगत करने का समझना चाहिये, कुछ अन्य नहीं ॥५॥

यदुद्भिः परिषिच्यसें मृज्यमांनो गभंस्त्योः ।
द्रुणां सधस्थंमश्नुषे ॥६॥

पदार्थः—(यत) जिस कारण आप (अद्भिः) सत्कर्मों से (परिषिच्यसे) पूजित होते हैं, अतः (गभस्त्योः मृज्यमानः) स्वशक्तियों से जो शुद्ध है, और (द्रुणा) अपनी शक्ति से (सधस्थं) जीवात्मा को (अश्नुषे) व्याप्त करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष सत्कर्म करता है, उसकी आत्मा को परमात्मा स्वशक्तियों से विभूषित करता है ॥६॥

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवंमानाय गायत ।
महे सहस्रंचक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(व्यश्ववत्) कर्मयोगी के समान (सहस्रचक्षसे) अनन्त शक्ति सम्पन्न (सोमाय) परमात्मा को (प्रगायत) आप लोग गान करें जो परमात्मा (महे) सर्वपूज्य और (पवमानाय) सब को पवित्र करने वाला है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम उस पूर्ण पुरुष की उपासना करो, जो सर्वशक्तिसम्पन्न और सब संसार का हर्ता, धर्ता तथा कर्ता है। इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी कहा है कि सूर्य चन्द्रमा आदि सब पदार्थों का कर्ता एकमात्र परमात्मा है ॥७॥

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस परमात्मा का (**वर्णं**) स्वरूप (**मधुश्चुतं**) आनन्द देने वाला है, उस (**हरिं**) पाप को हरण करने वाले (**इन्दुं**) स्वतःप्रकाश परमात्मा को (**अद्रिभिः**) चित्तवृत्तियों द्वारा (**हिन्वन्ति**) उपासक लोग ध्यान का विषय बनाते हैं। (**इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पीतये**) तृप्ति के लिये इसी प्रकार की उपासना उचित समझनी चाहिये, अन्य नहीं ॥८॥

भावार्थः—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निरोध करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे ही कर्मयोगी कहला सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! जो आप (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**धनानि**) धन (**जिग्युषः**) स्वाधीन करने वाले हैं (**तस्य ते**) उस आप के (**सखित्वं**) मैत्रीभाव को (**वाजिनः**) हम उपासक लोग (**आवृणीमहे**) सब प्रकार से वरण करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के साथ मैत्रीभाव का उपदेश है। तात्पर्य यह है, कि जो सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से मित्रता का भाव रखते हैं, वे लोग परमात्मा के प्रियगुणों को अपने में अवश्यमेव धारण करते हैं ॥९॥

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥१०॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**वृषा**) आप सब कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पवस्व**) हमको पवित्र करें। (**मरुत्वते**) ज्ञान और क्रियाकुशल विद्वानों के लिये (**मत्सरः**) आप आनन्दमय हैं (**च**) और (**विश्वाः**) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों को (**ओजसा**) अपने आत्मिकबल से (**दधानः**) आप धारण किये हुए हैं ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें दुःख का लेश भी नहीं। उसके आनन्द को ज्ञानी तथा विज्ञानी कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥१०॥

तं त्वां धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥११॥

पदार्थः—(**ओण्योः**) द्युलोक और पृथिवी लोक के (**धर्तारं**) धारण करने वाले जो आप हैं (**तं त्वां**) उक्त गुणसम्पन्न आप को (**पवमान**) जो सब को पवित्र करने वाले और (**स्वःदृशं**) जो सब लोकलोकान्तरों के ज्ञाता हैं, ऐसे (**वाजिनं**) सर्वशक्तिसम्पन्न आप को (**वाजेषु**) सब यज्ञों में (**हिन्वे**) हम लोग आह्वान करते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो लोग योगयज्ञ, ध्यानयज्ञ, विज्ञानयज्ञ, संग्रामयज्ञ और ज्ञानयज्ञ इत्यादि सब यज्ञों में एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करते हैं, वे लोग अवश्यमेव कृतकार्य होते हैं। तात्पर्य यह है, कि परमात्मा की सहायता विना किसी भी यज्ञ की पूर्ति नहीं होती। इसलिये मनुष्यों को चाहिये, कि वे सदैव परमात्मा की सहायता लेकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करें ॥११॥

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
युजं वाजेषु चोदय ॥१२॥

पदार्थः—(**हरिः**) हे सम्पूर्ण बलों को स्वाधीन रखने वाले परमात्मन् ! आप (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से हमको (**पवस्व**) पवित्र करें। जो आनन्द की वृष्टि (**चित्तः**) अद्भुत है (**अया**) और कर्मशीलता देने वाली है। और (**विपा**) शुभकार्यों में प्रेरणा करने वाली है, (**अनया**) उससे (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें (**वाजेषु**) यज्ञों में (**युजं**) युक्त मुझको (**चोदय**) सत्कर्म की प्रेरणा करें ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मी बनने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुभकर्मों में लगाता है ॥१२॥

आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (**विश्वदर्शतः**) सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक हैं और (**महीमिषं**) सर्वैश्वर्यसम्पन्न हैं। (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**अस्मभ्यं**) हम लोगों के (**गातुवित्**) सम्पूर्ण ज्ञातव्य पदार्थों के ज्ञाता हैं (**नः**) हमको (**आपवस्व**) सब प्रकार से पवित्र करिए ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि, हे मनुष्यो ! तुमको अपनी पवित्रता की प्रार्थना केवल उसी देव से करनी चाहिये, जो सब ब्रह्माण्डों का ज्ञाता और सर्वोत्पादक है ॥१३॥

आ क॒लशा॑ अनूषत॒ेन्दो॒ धारा॑भि॒रोज॑सा ।
एन्द्र॑स्य पी॒तये॑ विश ॥१४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (धाराभिः) आनन्द की वृष्टि द्वारा (इन्द्रस्य पीतये) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये (कलशाः) उसके अन्तःकरण में (आविश) सब ओर से प्रवेश करें । और (ओजसा) अपने प्रकाश से कर्मयोगी को (अनूषत) विभूषित करें ॥१४॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्म करने में तत्पर रहते हैं, अर्थात् उद्योगी हैं, परमात्मा उनको अपने प्रकाश से परमोद्योगी बनाता है ॥१४॥

यस्य॑ ते म॒द्यं रसं॑ ती॒व्रं दु॒हन्त्यद्रि॑भिः ।
स प॑वस्वाभिमाति॒हा ॥१५॥

पदार्थः—(यस्य) जिस (ते) आपके (मद्यं) आह्लादकारक (तीव्रं) उत्कट (रसं) रस को कर्मयोगी लोग (अद्रिभिः) उद्योग रूप शक्तियों से (दुहन्ति) पूर्ण रूप से दुहते हैं, (सः) वह (अभिमातिहा) विघ्नों के हनन करने वाले आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥१५॥

भावार्थः—कर्मयोगियों के सब विघ्नों को हनन करने वाला परमात्मा, उनके उद्योग को सफल करता है ॥१५॥

राजा॑ मे॒धाभि॑रीयते॒ पव॑मानो म॒नावधि॑ ।
अ॒न्तरि॑क्षेण॒ यात॑वे ॥१६॥

पदार्थः—(राजा) परमात्मा (मेधाभिः) बुद्धि से (ईयते) प्राप्त होता है। (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है, (मनावधि) यज्ञों में पवित्रता देने वाला है तथा (अन्तरिक्षेण यातवे) परलोक यात्रा में सहायक है ॥१६॥

भावार्थः—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक इत्यादि सब यज्ञों में परमात्मा ही यज्ञदेव है, और याजकों को पवित्र करने वाला है। तथा परलोकयात्रा में जीव का एकमात्र सहारा परमात्मा ही है। उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा की "उपासना एकमात्र संस्कृत बुद्धि द्वारा ही करनी चाहिये ॥१६॥

आ न॑ इन्दो श॒तग्विनं॒ गवां॒ पोषं॒ स्वश्व्य॑म् ।
व॒हा भग॑त्तिमू॒तये॑ ॥१७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (भगत्ति) हमारी भक्ति की (ऊतये) रक्षा के लिये हे परमात्मन् ! (न आवह) आप हमको प्राप्त हों। और (गवां) इन्द्रियों की (शतग्विनं) सहस्रगुणी (पोषं) पुष्टि को (स्वश्वं) जो गतिशील है, ऐसी पुष्टि आप हमको दें ॥१७॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की अनन्य भक्ति करते हैं, परमात्मा उनकी सब प्रकार से रक्षा करता है। और उनकी इन्द्रियों को सहस्र प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न करता है। अर्थात् ज्ञान विज्ञानादि शक्तियों से उनकी सहस्र प्रकार की शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। इसी का नाम इन्द्रियों की सहस्र-शक्ति है ॥१७॥

आ नः॑ सोम॒ सहो॒ जुवो॑ रू॒पं न वर्च॑से भर ।
सु॒ष्वा॒णो दे॒ववी॑तये ॥१८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिये (नः) हमको (आभर) सब प्रकार के अभ्युदयों से आप भरपूर करें। आप सबके (सुस्वानः) उत्पत्तिस्थान हैं। और (सहः) शत्रुबलनाशक (जुवः) शीघ्रगतिवाले आप (वर्चसे) प्रकाश के लिये (रूपं न) रूप हमको दें ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पुरुषों में दैवी सम्पत्ति के गुण देता है, उनको तेजस्वी बनाता है। और सब प्रकार के ऐश्वर्यों का भण्डार बनाकर उनको सर्वोपरि बनाता है ॥१८॥

अर्षा॑ सोम द्यु॒मत्त॑मो॒ऽभि द्रोणा॑नि॒ रोरु॑वत् ।
सीद॑ञ्छ्ये॒नो न योनि॒मा ॥१९॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (श्येनः) विद्युत् के (न) समान गतिशील हैं। (द्रोणानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों में (रोरुवत्) गतिशील होकर आप सर्वत्र विराजमान हैं। और (द्युमत्तमः) आप स्वयंप्रकाश हैं। (योनिं) हमारे हृदय-स्थान में (आसीदन्) विराजमान होकर (अभ्यर्ष) हमारे हृदय को शुद्ध करें ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा स्वयंप्रकाश है, और उसी के प्रकाश से सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं ॥१९॥

अ॒प्सा इन्द्रा॑य वा॒यवे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्यः॑ ।
सोमो॑ अर्षति॒ विष्ण॑वे ॥२०॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वपूज्य परमात्मा (**इंद्राय वायवे**) कर्मयोगी विद्वानों के लिये (**मरुद्भ्यः**) पदार्थविद्यावेत्ता विद्वानों के लिये (**वरुणाय**) अपने विद्या बल से सबको आच्छादन करने वाले विद्वान् के लिये और (**विष्णवे**) ज्ञानयोगी विद्वान् के लिये (**अप्सा अर्षति**) अपनी ज्ञानरूपी गति से प्राप्त होता है ॥२०॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयोग कर्मयोग इत्यादि योगों से परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, उनको परमात्मा अपनी ज्ञानगति से अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२०॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥२१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**नः**) हमारे (**तोकाय**) संतानों के लिये (**सहस्रिणं**) अनन्त प्रकार के धन (**विश्वतः**) सब ओर से (**दधत्**) धारण कराएँ । और (**अस्मभ्यं**) हमको सब प्रकार का ऐश्वर्य दें । तथा (**आपवस्व**) सब प्रकार से पवित्र करें ॥२१॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा से अभ्युदय-प्राप्ति की प्रार्थना की गई है ॥२१॥

अब सोमनामक परमेश्वर की उपासना करने वाले विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥२२॥

पदार्थः—(**ये सोमासः**) जो सौम्यस्वभाव वाले विद्वान् (**परावति**) परब्रह्मरूप शक्ति में और (**ये**) जो (**अर्वावति**) प्रकृतिरूप शक्ति में, (**ये**) जो (**वा**) और (**अदः शर्यणावति**) इस संसार रूप शक्ति में, (**सुन्विरे**) निपुण किये गए हैं, इन सब विद्वानों को परमात्मा पवित्र करें ॥२२॥

भावार्थः—इस मंत्र का यह तात्पर्य है, कि परमात्मा सब प्रकार के विद्वानों को पवित्र करता है ॥२२॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३॥

पदार्थः—(**ये**) जो विद्वान् (**आर्जीकेषु कृत्वसु**) सत्कर्मों में और (**ये**) जो विद्वान् (**पस्त्यानां मध्ये**) गृहकर्मों में चतुर हैं, (**ये वा**) और जो (**जनेषु पञ्चसु**) पांच प्रकार के मनुष्यों में शिक्षा दे सकते हैं, वे सब हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥२३॥

भावार्थः—इस मंत्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन किया है । पांच प्रकार के मनुष्यों की विद्या का तात्पर्य यहां यह है कि, जो विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में उपदेश कर सकते हैं, और पांचवें उन मनुष्यों में जो सर्वथा असंस्कारी हैं, अर्थात् दस्युभाव को प्राप्त हैं, इन सबको सुधार सकते हैं, वे प्रजा के लिये सदैव कल्याणकारी होते हैं ॥२३॥

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥२४॥

पदार्थः—(**ते**) वे विद्वान् (**नः**) हमारे लिये (**वृष्टिं**) वृष्टि को (**दिवस्परि**) द्युलोक से बरसायें । (**इंदवः**) ऐश्वर्य वाले (**देवासः**) दिव्य गुण सम्पन्न विद्वान् (**सुवीर्यं**) पराक्रम को (**सुवानाः**) पैदा करते हुए (**आपवन्तां**) हमको सब प्रकार से पवित्र करें ॥२४॥

भावार्थः—द्युलोक से वृष्टि करने का तात्पर्य यहां हिमालय आदि-दिव्य स्थानों से जल की धाराओं से सींच देने का है । जो विद्वान् व्यवहार विषय के सब विद्याओं के वेत्ता होते हैं, वे अपने विद्याबल से प्रजा में सुवृष्टि करके अद्भुत पराक्रम को उत्पन्न कर देते हैं । उक्त विद्वानों से शिक्षा लेकर सुरक्षित होने का उपदेश परमात्मा ने किया है ॥२४॥

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।
हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥

पदार्थः—(**हरिः**) परमात्मा (**हर्यतः**) विद्वानों को चाहने वाला (**जमदग्निना**) अंतःचक्षुसे (**गृणानः**) ग्रहण किया हुआ जो (**अधित्वचि**) शरीर में (**गोः**) इन्द्रियों की (**हिन्वानः**) रचना करने वाला है, वह (**पवते**) ज्ञान द्वारा हमको पवित्र करता है ॥२५॥

भावार्थः—इसमें परमात्मा से इस बात की प्रार्थना की है, कि आप सर्वोपरि विद्वान् उत्पन्न करके हमारा कल्याण करें ॥२५॥

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।
श्रीणाना अप्सु मृंजत ॥२६॥

पदार्थः—(**शुक्रासः**) वीर्यवाले (**वयोजुवः**) अन्नादिकों की विद्या जानने वाले (**श्रीणानाः**) विद्या द्वारा संस्कृत हुए उक्त प्रकार के विद्वान् ऋत्विक् लोगों द्वारा (**मृंजत**) वरण किये जाते हैं । (**न**) जैसे कि (**अप्सु हिन्वानासः**) जलों में शुद्ध किये हुए (**सप्तयः**) इन्द्रियों के सात द्वार (**प्र**) शुभ गुणों को देते हैं ॥२६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे जीवो ! जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के सप्तद्वार जल में शुद्ध किये हुए सुन्दर ज्ञान के साधन बनते हैं, इसी प्रकार यज्ञों में वर्णन किये हुए विद्वान् ज्ञान द्वारा तुम्हारे कल्याणकारी होते हैं ॥२६॥

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।
स पवस्वानया रुचा ॥२७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**तं**) उक्त गुणसम्पन्न (**त्वा**) आपको (**सुतेषु**) सुन्दर करने वाले यज्ञों में (**आभुवः**) ऋत्विक् लोग (**देवतातये**) विघ्नों के विनाश के लिये (**हिन्विरे**) आपकी उपाससा करते हैं। (**सः**) वह उक्तगुणसम्पन्न आप (**अनया रुचा**) पूर्वोक्त ज्ञान की शक्ति से (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥२७॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने ज्ञानप्रदीप से भक्तों के हृदय को पवित्र करते हैं, वे हमारे अन्तःकरण को पवित्र करें ॥२७॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२८॥

पदार्थः—(**मयोभुवं**) जो सब सुखों के देने वाले आप हैं, (**पुरुस्पृहं**) जो सब पुरुषों में भजनीय हैं (**पांतं**) सर्वरक्षक हैं, (**दक्षं**) सर्वज्ञ हैं, (**वह्निं**) प्रकाशस्वरूप हैं, उक्तगुण सम्पन्न (**ते**) आपको (**अद्य**) आज (**आवृणीमहे**) हम सब प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो उपासक उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा की उपासना करते है, वे सब प्रकार से शुद्ध होकर परमात्मभाव को प्राप्त होते हैं ॥२८॥

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**मंद्रं**) जो आप सर्वोपरि स्तुति करने योग्य हैं, (**वरेण्यं**) वरण करने योग्य हैं, (**विप्रं**) मेधावी हैं, (**मनीषिणं**) मन के स्वामी हैं, (**पुरुस्पृहं**) सब पुरुषों से कामना करने योग्य हैं, (**पांतं**) सब के रक्षक हैं, ऐसे आपको (**आ**) "आवृणीमहे" हम लोग सब प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥२९॥

भावार्थः—उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का वरण करना, अर्थात् सब प्रकार से स्वीकार करना इस मन्त्र में बताया गया है। "आ" शब्द यहाँ प्रत्येक गुणसम्पन्न परमात्मा को भली भाँति वर्णन करने के लिये आया है ॥२९॥

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥३०॥

पदार्थः—(**सुक्रतो**) हे सर्वयज्ञाधिपते परमात्मन् ! आप (**रयिं**) धन का (**सुचेतुनं**) और सुन्दर ज्ञान को (**तनूषु**) हमारी संतानों में (**आ**) सब प्रकार से दें। आप (**पुरुस्पृहं**) सबके उपास्य देव हैं। (**पांतं**) सबको पवित्र करने वाले हैं (**सुक्रतो**) हे शोभन कर्मों वाले परमात्मन् ! आप ही हमारे उपास्यदेव हैं ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सर्वरक्षक पतितपावन परमात्मा के गुणों का वर्णन किया गया है। और उसको एकमात्र उपास्यदेव माना है ॥३०॥

नवम मण्डल में यह ६५वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० शतं वैखानसा ऋषिः ॥ १—१८, २२—३० पवमानः सोमः । १९–२१ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद्गायत्री । २, ३, ५–८, १०, ११, १३, १५—१७, १९, २०, २३, २४, २५, २६, ३० गायत्री । ४, १४, २२, २७ विराड् गायत्री । ९, १२, २१, २८, २९ निचृद्गायत्री १८ पादनिचृदनुष्टुप् । स्वरः—१—१७, १९–३० षड्जः । १८ गान्धारः ॥

अब ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥१॥

पदार्थः—(**विश्वचर्षणे**) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (**विश्वानि, काव्या**) सम्पूर्ण कवियों के भाव को (**अभि**) सब ओर से प्रदान करके हमको आप (**पवस्व**) पवित्र

करें । और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये आप (सखा) मित्र हैं (ईड्यः) तथा सर्वपूज्य हैं ॥१॥

भार्थः—जो लोग परमात्मा से मित्र के समान प्रेम करते हैं, अर्थात् जिनको परमात्मा मित्र के समान प्रिय लगता है, उनको परमात्मा कवित्व की अद्भुत शक्ति देता है ॥१॥

ताभ्यां विश्वंस्य राजसि ये पंवमान धामंनी ।
प्रतीची सोंम तस्थतुः ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**ताभ्यां**) ज्ञान और कर्म दोनों द्वारा (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण विश्व का (**राजसि**) प्रकाश करते हैं । (**पवमान**) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**ये धामनी**) जो ज्ञान कर्म (**प्रतीची**) प्राचीन हैं, वे (**तस्थतुः**) हममें विराजमान हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों में विराजमान है । ज्ञान, क्रिया और बल, यह तीनों प्रकार के उसके प्राचीन धाम है, जिनसे वह सबको प्रेरणा करता है ॥२॥

परि धामांनि यानिं ते त्वं सोंमासि विश्वतः ।
पवंमान ऋतुभिः कवे ॥३॥

पदार्थः—(**कवे**) हे सर्वज्ञ परमात्मन्! (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले! आप (**ऋतुभिः**)वसन्तादि ऋतुओं के परिवर्तन से संसार में नये-नये भाव उत्पन्न करते हैं । और (**यानि, ते**) जो तुम्हारे (**धामानि**)लोकलोकान्तर (**परि**) सब ओर हैं, उनको (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**सोमासि**) आप उत्पन्न करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उत्पत्ति, स्थिति, तथा प्रलय तीनों प्रकार की क्रियाओं का हेतु है । अर्थात् उसी से संसार की उत्पत्ति, और उसी में स्थिति और उसी से प्रलय होता है ॥३॥

पवंस्व जनयन्निषाऽभि विश्वानि वार्यां ।
सखा सखिंभ्य ऊतयें ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**विश्वानि**) सब पदार्थ (**वार्या**) वरणीय (**अभि**) सब ओर से आप हमें दें । और (**इषः**) ऐश्वर्य को (**जनयन्**) पैदा करते हुए (**पवस्व**)आप हमको पवित्र करें (**सखिभ्यः**) मित्रों की (**ऊतये**) रक्षा के लिये (**सखा**) आप मित्र हैं ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें सब प्रकार के आनन्दों से विभूषित करता है ॥४॥

तवं शुक्रासों अर्चयों दिवस्पृष्ठे वि तंन्वते ।
पवित्रं सोम धामंभिः ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**धामभिः**) आप अपनी शक्तियों से (**पवित्रं**) पवित्र हैं । (**तव**) तुम्हारी (**शुक्रासः**) बल वाली (**अर्चयः**) प्रकाश की लहरें (**दिवस्पृष्ठे**) द्युलोक के ऊपर (**वितन्वते**) विस्तृत हो रहीं हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की ज्योति सर्वत्र दीप्तिमती है, उसके प्रकाश से एक रेणु भी खाली नहीं । द्युलोक में उसका प्रकाश इस प्रकार फैला हुआ है, जैसे मकड़ी के जाले के नन्तुओं के आतान-वितानका पारावार नहीं मिलता, इसी प्रकार उसका पारावार नहीं ॥

अथवा यों कहो कि मयूरपिच्छ की शोभा के समान उसके द्युलोक की अनन्त प्रकार की शोभा है । जिसको परमात्मज्योति ने देदीप्यमान किया है ॥५॥

तवेमे सप्त सिन्धंवः प्रशिषं सोम सिस्रते ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवंः ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**तव**) तुम्हारे (**इमे**) ये (**सप्त सिन्धवः**) सात प्रकार के (**धेनवः**) वाणियों के प्रवाह (**प्रशिषं**) प्रशासन को (**सिस्रते**) अनुसरण करते हैं । और (**तुभ्यं**) तुम्हारे लिये ही (**धावन्ति**) प्रतिदिन गमन करते हैं ॥६॥

भावार्थः परमात्मा के शासन में वेदादिवाणियों के प्रवाह बहते हैं । अथवा यों कहो, कि ज्ञानेन्द्रियों के सप्तछिद्रों द्वारा प्राण सिन्धु के समान प्रतिक्षण क्रिया को प्राप्त हो रहे हैं । अथवा यों कहो, कि सम्पूर्ण भूत, सिन्धु, आदि नदियों के समान उसी से निकल कर उसी के स्वरूप में प्रतिदिन स्रवित होते हैं ॥६॥

प्र सोंम याहि धारंया सुत इन्द्रांय मत्सरः ।
दधांनो अक्षिंति श्रवः ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**प्रयाहि**) आप हमको आकर प्राप्त हों । आप (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिये (**सुतः**) प्रसिद्ध हैं, और

(मत्सरः) आनन्दस्वरूप हैं, तथा (अक्षिति) अक्षय (श्रवः) यशको (दधानः) आप धारण किये हुए हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा का यश अक्षय है, इस लिए अन्यत्र भी वेदने वर्णन किया है, कि "यस्य नाम महद्यशः' जिसका सबसे बड़ा यश है, वह परमात्मा निराकार भाव से सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥७॥

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः ।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (विप्रं) सर्वज्ञ (त्वा) आप को (सप्तजामयः) ज्ञानेन्द्रियों के सात गोलक (धीभिः) बुद्धिद्वारा (समु) भली-भांति (अस्वरन्) शब्द करते हुए (विवस्वतः) यज्ञ कर्ता के (आजा) यज्ञ में (हिन्वतीः) प्रेरणा करते हैं ॥८॥

भावार्थः—उपासक लोग बुद्धिवृत्तियों द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। वा यों कहो कि यमनियमादि सात अंगों द्वारा समाधिकी सिद्धि करते हैं। अर्थात् समाधि साध्य पदार्थ है, और सात उसके साधन हैं ॥८॥

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि ।
रेभो यदज्यसे वने ॥९॥

पदार्थः—हे जगदीश ! (रेभः) शब्दगम्य (त्वा) आपको (समग्रुवः) कर्मयोगी जन (अव्ये) रक्षक तथा (अधिष्वणि) शब्दगम्य और (जीरौ) शत्रुनाशक (वने) भजनीय आपको (यत्) जब (संमृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं, तब आप (अज्यसे) उनके साक्षात्कार के विषय होते हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वरक्षक परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है, कि कर्मयोगी लोग अपने कर्मण्यतायोग से परमात्मपरायण होकर, परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥९॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१०॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ ! (वाजिन्) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) आप की (सर्गाः) अनन्त प्रकार की सृष्टियें इस प्रकार (असृक्षत) उत्पन्न होतीं हैं (न) जैसे कि (अर्वन्तः) विद्युत् शक्तियां अनेक प्रकार से (श्रवस्यवः) प्रवाहित होतीं हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को निमित्तकारण वर्णन किया है, कि परमात्मा इस सृष्टि का निमित्तकारण है, उपादान कारण प्रकृति है, और निमित्तकारण परमात्मा है, इसी से यहां विद्युत् का दृष्टान्त दिया है ॥१०॥

यहां सर्वाधिकरणत्व से परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥११॥

पदार्थः—जिस परमात्मा ने इस संसार को (अच्छ) निर्मल और (कोशं) सर्वनिधान तथा (मधुश्चुतं) आनन्ददायक (असृग्रम्) रचा है उसी (अव्यये) अविनाशी तथा (वारे) वरणीय परमात्मा में (धीतयः) सृष्टियें (अवावशंत) निवास करतीं हैं ॥११॥

भार्थः—परमात्मा ही एकमात्र सब लोकलोकान्तरों का अधिकरण है ॥११॥

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२॥

पदार्थः—(धेनवो न) जैसे वेदवाणियां (अस्तं) स्थानरूप (समुद्रं) जिससे शब्द उत्पन्न होते हैं, ऐसे (अच्छ) निर्मल परमेश्वर को (आग्मन्) भली भांति प्राप्त होतीं हैं, उसी प्रकार (इन्दवः) प्रकाश करने वाली (गावः) सत्कर्मियों की इन्द्रियवृत्तियाँ (ऋतस्य योनिं) सत्य स्थान परमात्मा को भली भांति प्राप्त होतीं हैं ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र से यह सिद्ध किया है, कि परमात्मा एकमात्र शब्दगम्य है। अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा की वेदवाणी ही उसको विषय करती है। अन्य प्रमाणों का विषय सुगमता से परमात्मा नहीं ॥१२॥

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१३॥

पदार्थः—(नः) हमारे (महे रणे) ज्ञानरूप यज्ञ के लिये (इन्दो) हे प्रकाशरूप परमात्मन् ! आपने (गोभिः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हमारे शरीर का (वासयिष्यसे) निर्माण किया है। और (यत्) जब (सिंधवः) स्यन्दनशील कर्मेन्द्रियाँ (आपः) कर्मों को (प्रार्षन्ति) प्राप्त होतीं हैं, तब हमारे इस बृहत् यज्ञ की पूर्ति होती है ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञान और कर्म का समुच्चय कथन किया है, कि जब ज्ञान और कर्म दोनों मिलते हैं, तब ही यज्ञ की पूर्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥१३॥

अ॒स्य ते॑ स॒ख्ये व॒यमिय॑क्षन्त॒स्त्वोत॑यः ।
इन्दो॑ सखि॒त्वमु॑श्मसि ॥१४॥

पदार्थः—(**अस्य ते सख्ये**) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट आपके मैत्रीभाव में (**वयं**) हम लोग (**इयक्षंतः**) आपका यजन करते हैं। (**त्वोतयः**) आप से सुरक्षित हुए हम लोग (**इन्दो**) हे प्रकाशरूप परमात्मन् ! आपकी (**सखित्वं**) मित्रता को (**उश्मसि**) चाहते हैं ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा के साक्षात्कार से जब मनुष्य अत्यन्त सन्निहित हो जाता है, तब ब्रह्म के सत्यादि गुणों के धारण करने से उसमें ब्रह्मसाम्य हो जाता है। उसी का नाम ब्रह्ममैत्री है। इसी भाव का कथन इस मन्त्र में किया है, कि हे परमात्मन् ! हम तुम्हारे मैत्रीभाव को प्राप्त हों ॥१४॥

आ प॑वस्व॒ गवि॑ष्टये म॒हे सो॑म नृ॒चक्ष॑से ।
एन्द्र॑स्य ज॒ठरे॑ विश ॥१५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**आपवस्व**) हमको सब ओर से पवित्र करें (**महे**) बड़े (**नृचक्षसे**) ज्ञानकी वृद्धि के लिये और (**गविष्टये**) इन्द्रियों की शुद्धि के लिये और (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**जठरे**) जठराग्नि में (**आविश**) प्रवेश करें ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि मैं कर्मयोगी, तथा ज्ञानयोगियों के हृदय में अवश्यमेव निवास करता हूँ। यद्यपि परमात्मा सर्वत्र है, तथापि परमात्मा की अभिव्यक्ति जैसी ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के हृदय में होती है, वैसी अन्यत्र नहीं होती। इसी अभिप्राय से यहां कर्मयोगी के हृदय में विराजमान होना लिखा गया है। इसी अभिप्राय से “वैश्वानरस्तद्धर्मव्यपदेशात्” इस सूत्र में परमात्मा को “वैश्वानर” अग्निरूप से कथन किया गया है ॥१५॥

म॒हाँ अ॑सि सोम॒ ज्येष्ठ॑ उ॒ग्राणा॑मिन्द॒ ओजि॑ष्ठः ।
युध्वा॒ सञ्छश्व॑ज्जिगेथ ॥१६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**महानसि**) बड़े हैं। और (**उग्राणां**) तेजस्वियों में (**ज्येष्ठः**) बड़े हैं। (**इन्दो**) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (**ओजिष्ठः**)

सर्वोपरि ओजस्वी हैं। और आप (**युध्वासन्**) अपने से प्रतिकूलशक्तियों से युद्ध करते हुए (**शश्वत्**) निरन्तर (**जिगेथ**) जीतते हैं ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्यचन्द्रमादिकों की रचना करता है, अर्थात् उत्पत्तिसमय में विनाशरूपी सब विरोधी शक्तियों को जीतता है। इस प्रकार परमात्मा सर्वविजयी कथन किया गया है। किसी युद्धविशेष के अभिप्राय से नहीं ॥१६॥

य उ॒ग्रेभ्य॑श्चि॒दोजी॑या॒ञ्छूरे॑भ्यश्चि॒च्छूर॑तरः ।
भू॒रि॒दाभ्य॑श्चि॒न्मंही॑यान् ॥१७॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**शूरेभ्यः**) शूरवीरों से (**शूरतरः**) अत्यन्त शूरवीर है, और (**भूरिदाभ्यः**) अत्यन्त, दानशीलों से (**मंहीयान्**) अत्यन्त दानशील है (**चित्**) और (**उग्रेभ्यः**) जो अत्यन्त बल वाले हैं, उनसे (**ओजीयान्**) अत्यन्त बल वाला है, ऐसे परमात्मा की हम उपासना करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह वर्णन किया है, कि परमात्मा अजर, अमर तथा अविनाशी है। जैसा कि “तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि” इत्यादि मन्त्रों में परमात्मा को बलस्वरूप कथन किया गया है। इसी प्रकार इस मन्त्र में भी परमात्मा को बलस्वरूप कथन किया है ॥१७॥

त्वं सो॑म॒ सूर॒ एष॑स्तो॒कस्य॑ सा॒ता त॒नूना॑म् ।
वृ॒णी॒महे॑ स॒ख्याय॑ वृणी॒महे॒ युज्या॑य ॥१८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**त्वम्**) तुम को हम (**युज्याय**) योग्य (**सख्याय**) सख्य के लिये (**वृणीमहे**) वरण करें। तुम कैसे हो ? (**सूरः**) सर्वप्रेरक हो, (**इषः**) सब ऐश्वर्य देने वाले हो। और (**तोकस्य**) पुत्र के (**तनूनां**) शरीर से उत्पन्न पौत्रादिकों के (**साता**) देने वाले हो। उक्त गुणसम्पन्न आपको (**आवृणीमहे**) हम भली भाँति स्वीकार करते हैं ॥१८॥

भार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वोपरि मित्ररूप से कथन किया गया है। वस्तुतः मित्र शब्द के अर्थ स्नेह करने के हैं। वास्तव में परमात्मा के बराबर स्नेह करने वाला अन्य कोई नहीं है। इसी भाव को “त्वं वा अहमस्मि भवो देवते अहम् वा त्वमसि” इस उपनिषद् में भली भाँति वर्णन किया है, कि तू मैं, और मैं तू हूँ। अर्थात् मैं आपके निष्पापादि गुणों को धारण करके शुद्धात्मा बनूं ॥१८॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१९॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (आयूंषि) हमारी आयु को (पवसे) पवित्र करते हैं (च) और (नः) हमारे लिये (इषं) ऐश्वर्य और (ऊर्जं) बल (आसुव) दें । तथा (दुच्छुनां) विघ्नकारी राक्षसों को हमसे (आरे) दूर (बाधस्व) करें ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने विघ्नकारी राक्षसों से बचने का उपदेश किया है, कि हे पुरुषो ! तुम विघ्नकारी अवैदिक पुरुष जो राक्षस हैं, उनके हटाने में सदैव तत्पर रहो ॥१९॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥२०॥

पदार्थः—(अग्निः) ज्ञानस्वरूप (ऋषिः) सर्वव्यापक परमात्मा (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है (पांचजन्यः) पांचों ज्ञानेन्द्रियों को शुभ मार्ग में चलाने वाला (पुरोहितः) वैदिक लोगों का एकमात्र उपास्य (महागयं) वेदराशिरूप धन को देने वाला है (तं) उसको (ईमहे) हम लोग प्राप्त हों ॥२०॥

भावार्थः—जो परमात्मा सर्वगत परिपूर्ण और नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त-स्वभाव है, जिसकी उपासना से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों बल, वीर्य-सम्पन्न होकर ऐश्वर्य के उपलब्ध करने का सर्वोपरि हेतु बनते हैं । हम एकमात्र उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा को ही अपना उपास्य समझें ॥२०॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२१ ।

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (पवस्व) आप हमको पवित्र करें । आप (स्वपाः) शोभन कर्मों वाले हैं (अस्मे) हममें आप (वर्चः) ब्रह्मतेज दें । और (मयि) मुझमें (रयिं) ऐश्वर्य (सुवीर्यं) और सुन्दर बल (पोषं) तथा पुष्टि को (दधत्) धारण कराएँ ॥२१॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनमें सब प्रकार के ऐश्वर्यों को धारण कराता है ॥२१॥

पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।
सूरो न विश्वदर्शतः । २२॥

पदार्थः—(पवमानः) पवित्र करने वाला परमात्मा (स्रिधः अति) दुष्टों को अतिक्रमण करता है । और (सुष्टुतिं) सद्गुणसम्पन्न पुरुषों को (अभ्यर्षति) प्राप्त होता है, वह परमात्मा (सूरो न) सूर्य की तरह (विश्वदर्शतः) स्वतःप्रकाश है ॥२२॥

भावार्थः—जो पुरुष संयमी बनकर ईश्वरपरायण होते हैं, परमात्मा उनपर अवश्यमेव कृपा करता है ॥२२॥

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः ।
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥२३॥

पदार्थः—(इन्दुः) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (हितः) सब का हितकारक तथा (अत्यः) सतत गमनशील है, और (विचक्षणः) सर्वज्ञ (प्रयस्वान्) तर्पक (सः) वह जगदीश (प्रयसे) ब्रह्मानन्द के लिये (आयुभिः) कर्मयोगियों से (मर्मृजानः) ध्यान किया गया उनके साक्षात्कार को प्राप्त होता है ॥२३॥

भावार्थः—योगी लोग जब परमात्मा का ध्यान करते हैं, तब परमात्मा उन्हें आत्मस्वरूपवत् भान होता है । इसी अभिप्राय से योगसूत्र में कहा है कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" समाधिवेला में उपासक के स्वरूप में परमात्मा की स्थिति होती है ॥२३॥

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥२४॥

पदार्थः—तब (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (बृहत्) बड़े (शुक्रं) बलरूप (ऋतं ज्योतिः) सत्यरूप प्रकाश को (अजीजनत्) पैदा करता है । और (कृष्णा) काले (तमांसि) अंधियारे को (जंघनत्) नाश करता है ॥२४॥

भावार्थः—परमात्माके साक्षात्कारसे अज्ञान की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है । अथवा यों कहो कि "सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति" उस समय योगी सद्रूप ब्रह्म के साथ सह अवस्थान को प्राप्त होता है । अर्थात् उस समय सद्रूप ब्रह्म से भिन्न और कुछ प्रतीत नहीं होता । इसी अभिप्राय से योगसूत्र में लिखा है, कि "ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा" उस समय सद्रूप ब्राह्मी प्रज्ञा हो जाती है । ऋत, सत्य यह पर्याय शब्द हैं ॥२४॥

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥२५॥

पदार्थः—उस समय (**पनमानस्य**) पवित्र करने वाले (**जंघ्नतः**) अज्ञानों के नाश करने वाले तथा (**हरेः**) पापों के हरण करने वाले (**अजिरशोचिषः**) सर्वत्रगति तेज वाले परमात्मा की (**चन्द्राः**) आह्लादक (**जीराः**) ज्योतियें (**असृक्षत**) उत्पन्न होती हैं ॥२५॥

भावार्थः—जब योगीजन उस परमात्मा को लक्ष्य बनाकर उसका ध्यान करते हैं, तब अपूर्व ज्योति उत्पन्न होती है । वा यों कहो, कि अजर, अमर, भाव देने वाला ब्रह्मज्ञान उस समय मनुष्य की बुद्धि को प्रकाशित करता है । इसी का नाम ब्राह्मी प्रज्ञा है । इसी अभिप्राय से गीता में कृष्णजी ने कहा है, कि "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति" हे अर्जुन ! यह ब्राह्मी स्थिति है, इसको पाकर पुरुष फिर मोह को प्राप्त नहीं होता ॥२५॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२६॥

पदार्थः—(**पवमानः**) पवित्र करने वाला तथा (**रथीतमः**) गतिशील परमात्मा (**शुभ्रेभिः**) अपनी ज्योति से (**शुभ्रशस्तमः**) सर्वोपरि प्रकाशक है । ऐसा ईश्वर (**हरिश्चन्द्रः**) सबको आनन्द देने वाले (**मरुद्गणः**) विद्वानों का एकमात्र उपास्य है ॥२६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमात्मा की उपासना करते हैं, किसी अन्य की नहीं ॥२६॥

पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥२७॥

पदार्थः—(**वाजसातमः**) आध्यात्मिक बल देने वाला परमात्मा जो (**रश्मिभिः**) अपनी शक्तियों से (**व्यश्नवत्**) सबको स्वाधीन किये हुए है, वह (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला ईश्वर (**स्तोत्रे**) वेदाध्ययनशीलों में (**सुवीर्यं**) ब्रह्मवर्चस को (**दधत्**) प्रदान करता है ॥२७॥

भावार्थः—स्वयंज्योति परमात्मा से ही विद्वानों को ब्रह्मवर्चस मिलता है । इसलिए एकमात्र उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिए ॥२७॥

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥२८॥

पदार्थः—(**सुवानः**) सबको उत्पन्न करनें वाला तथा (**इन्दुः**) सर्वप्रकाशक परमात्मा (**प्राक्षाः**) आनन्द की वृष्टि करता है । तथा (**पुनानः**) पवित्र करने वाला जगदीश (**इन्द्रं**) कर्मयोगी को (**पवित्रमव्ययं**) पवित्र अव्यय भाव को देता हुआ, तथा उनके अन्तःकरणों में (**आ**) निवास करता हुआ (**अति**) "अत्येति" अज्ञान का नाश करता है ॥२८॥

भावार्थः—यद्यपि मनुष्यमात्र के हृदय में परमात्मा विराजमान है, उससे एक अणुमात्र भी खाली नहीं, तथापि कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के हृदय में योगज सामर्थ्य से अधिक अभिव्यक्ति समझी जाती है । इस अभिप्राय से परमात्मा का आवेश यहां योगीजनों के हृदय में कथन किया गया है ॥२८॥

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।
इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥२९॥

पदार्थः—(**एष सोमः**) यह परमात्मा (**गवां**) इन्द्रियों की (**अधित्वचि**) मनोरूप शक्ति में (**अद्रिभिः**) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है । (**इन्द्रं**) कर्मयोगी के कर्मक्षेत्र में (**जोहुवत्**) प्राणापान की गति को हवन करता है और कर्मयोगी को कर्मक्षेत्र में (**क्रीडति**) क्रीड़ा कराता है ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही कर्मयोगी जन प्राणापान की गति को रोक कर प्राणायाम करते हैं । और वही परमात्मा इस ब्रह्माण्डरूपी अद्भुत कर्मक्षेत्र में उनसे सर्वोपरि कर्म कराता है । इसमें "अधित्वचि" नाम मन का है, क्योंकि "इन्द्रियाणां शक्ति तनोतीतित्वक्" ; "त्वचि अधि इति अधित्वचि" "अधित्वचि" इससे यहां आध्यात्मिक यज्ञ का अभिप्राय है। सायणाचार्य ने यहां "अधित्वचि" इसके अत्यन्त घृणित अर्थ किये हैं । अर्थात् "गवामधित्वचि" इसका "अनुडुहचर्मणि" अर्थ किये हैं । सायणाचार्य के मत में अनुडुहचर्म बिछाकर उस के ऊपर सोम कूटा जाता था ।

विचार करने से यह अर्थ योग्यता से भी विरुद्ध है, क्योंकि सोम किसी कड़ी चीज पर कूटा जा सकता है, न कि चमड़े पर। कुछ हो, परन्तु "गवामधित्वचि" इसके अनुडुहृचर्म" अर्थ करना वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है ॥२६॥

यस्यं ते द्युम्नवत्पयः पवंमानाभृंतं दिवः ।
तेनं नो मृळ जीवसें ॥३०॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**यस्य**) जिस आपका (**द्युम्नवत् पयः**) दीप्तियुक्त ऐश्वर्य जो (**दिवः आभृतं**) द्युलोक से दुहा गया है, (**तेन**) उस ऐश्वर्य से (**नः**) हम लोगों के (**जीवसे**) जीवन के लिये (**मृड**) सुख दें ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा के ऐश्वर्यरूपी अमृत का जब तक मनुष्य पान नहीं करता, तब तक उसके ऐश्वर्य की वृद्धि कदापि नहीं होती। इसलिये अपने जीवन की वृद्धि के लिये इन्द्रियसंयम द्वारा ईश्वराज्ञा का पालन करता हुआ पुरुष सौ बरस जीने की इच्छा करे। इस अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी कहा है कि "जीवेम शरदः शतम् पश्येम शरदः शतम्" इत्यादि। इसी अभिप्राय से मनुधर्मशास्त्र में कहा है, कि "सदाचारेण पुरुषः शतवर्षाणि जीवति" ब्रह्मचर्यादि व्रतों से मनुष्य सैकड़ों बरस तक जीवित रहता है ॥३०॥

नवम मण्डल में यह छयासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वात्रिंशदृचस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—३ भरद्वाजः। ४–६ कश्यपः। ७–६ गोतमः। १०–१२ अत्रिः। १३—१५ विश्वामित्रः। १६–१८ जमदग्निः। १६—२१ वसिष्ठः। २२–३२ पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा ॥ देवताः–१-६, १३–२२, २८—३० पवमानः सोमः। १०—१२ पवमानः सोमः पूषा वा। २३, २४ अग्निः। २५ अग्निः सविता वा। २६ अग्निरग्निर्वा सविता च। २७ अग्निर्विश्वे देवा वा। ३१, ३२ पवमान्यध्येतृस्तुतिः ॥ छन्दः–१, २, ४, ५, ११–१३, १५, १६, २३–२५ निचृद्गायत्री। ३, ८ विराड्गायत्री। १० यवमध्यागायत्री। १६—१८ भुरिगार्ची विराड्गायत्री। ६, ७, ६, १४, २०–२२, २४, २६, २८, २६ गायत्री। २७ अनुष्टुप्। ३१, ३२ निचृदनुष्टुप् ३० पुरउष्णिक् ॥ स्वरः—१—२६ २८, २६ षड्जः। २७, ३१, ३२ गान्धारः। ३० ऋषभः ॥

अब गुणान्तरों से परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।
पवंस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**त्वं**) तुम (**धारयुः**) धारण शक्ति वाले हो। तथा (**मंद्रः**) तुम आनन्दप्रद हो। और (**ओजिष्ठः**) ओजस्वी हो। तथा आप (**अध्वरे**) यज्ञ में (**मंहयद्रयिः**) धन प्रदान करते हुए (**पवस्व**) हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वाधार कथन किया है। और सम्पूर्ण धनों का दातृरूप से वर्णन किया है ॥१॥

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।
इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**मत्सरितमः**) अत्यन्त आह्लादजनक हैं। और (**सुतः**) स्वयम्भू हैं। तथा (**नृमादनः**) आप सर्वानन्दजनक हैं। और (**दधन्वान्**) सबके धारण करने वाले हैं, और (**सूरिः**) सर्वोत्पादक हैं। तथा (**अंधसा**) अपने ऐश्वर्य से सब को ऐश्वर्यशाली बनाते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उद्योगी पुरुषों को अपने ऐश्वर्य से ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥२॥

त्वं सुष्वाणो अद्रिंभिरभ्यंर्ष कनिंक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्मंमुत्तमम् ॥३॥

पदार्थः—(**त्वं**) आप (**कनिक्रदत्**) वेदरूपी वाणियों द्वारा (**सुष्वाणः**) स्तूयमान हैं। (**द्युमन्तं**) दीप्ति वाला (**उत्तमं**) सबसे अच्छे (**शुष्मं**) बलको (**अद्रिभिः**) अपनी आदरणीय शक्तियों से (**अभ्यर्ष**) प्राप्त कीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा वेदवाणियों के द्वारा ज्ञानरूपी बल प्रदान करता है ॥३॥

इन्दुंर्हिन्वानो अंर्षति तिरो वारांण्यव्ययां ।
हरिर्वाजंमचिक्रदत् ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) स्वयंप्रकाश (**हिन्वानः**) सर्वप्रेरक परमात्मा (**तिरः**) अज्ञान का तिरस्कार करके (**वाराणि**) वरण करने योग्य (**अव्यया**) नित्य ज्ञानों को (**अर्षति**)

देता है । (हरिः) पूर्वोक्त परमेश्वर ज्ञान देने के लिये (वाजं) बलपूर्वक (अचिक्रदत्) आह्वान करता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अज्ञान को निवृत्त करके ईश्वर के सद्गुणों के धारण का उपदेश किया गया है ॥४॥

इन्दो व्यर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा ।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) सर्वैश्वर्यसम्पन्न ! (सोम) परमात्मन् ! (अव्यं) अव्यय (विश्रवांसि) विशेष यश को तथा (विसौभगा) विशेष सौभाग्य को और (गोमतो विवाजान्) ऐश्वर्यवाले विशेष बल को (व्यर्षसि) आप देते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिस पुरुष को अपने ऐश्वर्य का पात्र समझता है, उसे अनन्त प्रकार के बल, सौभाग्य तथा यश का प्रदान करता है ॥५॥

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
भरा सोम सहस्रिणम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (शतग्विनं) सैकड़ों प्रकार की शक्ति वाले (गोमन्तं) तथा ऐश्वर्ययुक्त (अश्विनं) सर्वत्र व्यापक (सहस्रिणं) हजारों प्रकार के (रयिं) धन को (नः) हमको (आभर) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों का प्रदान करने वाला है ॥३॥

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
इन्द्रं यामेभिराशत ॥७॥

पदार्थः—(पवमानासः) पवित्र करने वाला तथा (इन्दवः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न और (आशवः) व्यापक परमात्मा (यामेभिः) अपनी अनन्त शक्तियों से (तिरः) अज्ञानों का तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र (इन्द्रं) कर्मयोगी को (आशत) प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोग वा कर्मयोग द्वारा अपने आप को ईश्वर के ज्ञान का पात्र बनाते हैं, उन्हें परमात्मा अपने अनन्त गुणों से प्राप्त होता है । अर्थात् वह परमात्मा के सच्चिदादि अनेक गुणों का लाभ करता है ॥७॥

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः ।
आयुः पवत आयवे ॥८।

पदार्थः—(ककुहः) महान् (सोम्यः) सौम्य स्वभाव (इन्दुः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (आयुः) सर्वत्र गन्ता (रसः) रसस्वरूप (पूर्व्यः) अनादि परमात्मा (आयवे) सर्वत्र गति वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पवते) पवित्र करता है ॥८॥

भावार्थः—इन्द्र शब्द के अर्थ यहां केवल कर्मयोगी नहीं, किन्तु कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी दोनों के हैं । तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष कर्म वा ज्ञान द्वारा परमात्मा को उपलब्ध करना चाहते हैं, उनके लिये परमात्मा सदैव सुलभ है ॥८॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् ।
अभि गिरा समस्वरन् ॥९।

पदार्थः—(उस्रयः) ज्ञानी लोग (पवमानं) पवित्र करने वाले (मधुश्चुतं) आनन्द की वृष्टि करने वाले (सूरं) परमात्मा की (गिरा) वेदवाणियों से (समस्वरन्) स्तुति करते हुए (अभिहिन्वन्ति) सब ओर से साक्षात्कार करते हैं ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेदवाणियों द्वारा पूर्वोक्त परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥९॥

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१०।

पदार्थः—(अजाश्वः) नित्यधन वाला (पूषा) सर्वपोषक परमात्मा (नः) हम लोगों का (अविता) पालन करने वाला हो । (यामनि यामनि) सर्वदा (कन्यासु) कमनीय पदार्थों में (नः) हम लोगों को (आभक्षत्) ग्रहण करे ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा ईश्वरपरायण लोगों के लिये सदैव कल्याणकारी होता है ॥१०॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११।

पदार्थः—(अयं सोमः) पूर्वोक्त परमात्मा (कपर्दिने) कर्मयोगी को (घृतं) अपने प्रेम से (मधु न) मधु के समान (पवते) मधुर बनाता है। और (नः) हम लोगों को (कन्यासु) कमनीय पदार्थों में (आभक्षत्) ग्रहण करता है ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगियों को कमनीय पदार्थों का प्रदान करता है ॥११॥

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥

पदार्थः—(आघृणे) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (अयं) यह (सुतः) संस्कृत (ते) आपका (शुचि) शुद्ध स्वभाव (घृतं न) स्नेह की तरह (पवते) पवित्र करता है। और (नः) हम लोगों को (कन्यासु) अपने कल्याणकारक गुणों में (आभक्षत्) ग्रहण करता है ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मसुखोपलब्धि के लिए सत्कर्म करते हैं, उन्हें परमात्मा मंगलमय बनाता है ॥१२॥

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया ।
देवेषु रत्नधा असि ॥१३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (कवीनां) कवियों के मध्य में आप (वाचोजन्तुः) वेदवाणियों के उत्पादक हैं। और (देवेषु) विद्वानों को (रत्नधा असि) विद्यारूप रत्न धारण कराते हैं। ऐसे आप (धारया) अपनी सुधामयी वृष्टि से (पवस्व) पवित्र करिये ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा ही वस्तुतः आदिकवि है। उसकी कवित्वशक्ति का अनुकरण करके अन्य कवियों ने अपने-अपने भावों को प्रकट किया है ॥१३॥

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते ।
अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (श्येनः) जैसे विद्युत् (वर्म) विग्रहवत् वस्तु का (विगाहते) अवगाहन करती है, और (अभिद्रोणा) प्रत्येक विग्रहवद्वस्तु के अभिमुख (कनिक्रदत्) शब्दायमान होकर प्राप्त होती है, इस प्रकार (कलशेषु) प्रत्येक स्थान में (आधावति) आप विराजमान होते हैं ॥१४॥

भावार्थः—विद्युत् निराकार होकर भी सबसे तेजस्वी, ओजस्वी और शब्दायमान है। इसी प्रकार निराकार परमात्मा तेजस्वी ओजस्वी तथा शब्दयोनि होकर विराजमान है। यहाँ विद्युत् का दृष्टान्त अत्यन्त बल और निराकार के अभिप्राय से है किसी और अभिप्राय से नहीं ॥१४॥

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः ।
श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (श्येनो न) जैसे विद्युत् (अर्षति) सर्वत्र गमन करती है, तथा (ते) आपका (सुतः) स्वतःसिद्ध (तक्तः) सर्वत्र गमनशील (रसः) आनन्द (परि) चारों ओर (कलशे) पवित्र अन्तःकरणों में (प्रासर्जि) स्थिर होता है ॥१५॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इसी प्रकार उसके आनन्दादि गुण भी सर्वत्र व्यापक हैं ॥१५॥

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमत्तमः) अत्यन्त आनन्दमय हैं, अतः (मंदयन्) आनन्दित करते हुए (इन्द्राय) उद्योगी को (पवस्व) मंगलमय भावों से पवित्र करिये ॥१६॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष को परमात्मा उत्साहित करके पवित्र करता है ॥१६॥

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥१७॥

पदार्थः—(देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिये (वाजयंतः) बल वाले (रथा इव) रथों की तरह उद्योगी लोग (असृग्रन्) रचे जाते हैं ॥१७॥

भावार्थः—"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु" (कठ. १।२।३।) इस वाक्य में जैसे शरीर को रथ बताया है, इसी प्रकार यहां भी रथ का दृष्टान्त है। तात्पर्य यह है, कि जिन पुरुषों के शरीर दृढ़ होते हैं, वा यों कहो कि परमात्मा पूर्वकर्मानुसार जिन पुरुषों के शरीरों को दृढ़ बनाता है, वे कर्मयोग के लिये अत्यन्त उपयोगी होते हैं ॥१७॥

ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥१८॥

पदार्थः—(ते) तुम्हारे (सुतासः) संस्कृत (मदिन्तमाः) आह्लादजनक (शुक्राः) स्वभाव (वायुं) कर्मयोगी को (असृक्षत) उत्पन्न करते हैं ॥१८॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है, कि जिसको परमात्मा उत्तम शील देता है, वही कर्मयोगी बनता है, अन्य नहीं ।।१८।।

ग्राव्णां तुन्नो अभिष्टुंतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधंत्स्तोत्रे सुवीर्यँम् ।।१९।

पदार्थः—(**ग्राव्णा**) जिज्ञासुओं से (**तुन्नः**) आविर्भाव को प्राप्त हुए तथा (**अभिष्टुतः**) सब प्रकार से स्तुति किये हुए (**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**पवित्रं**) उनके पवित्र अन्तःकरणों को (**गच्छसि**) प्राप्त होते हैं । और (**स्तोत्रे**) उक्त स्तोता लोगों के लिये आप (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल को (**दधत्**) उत्पन्न करते हैं ।।१९।।

भावार्थः—उपासक लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा उनके लिये सुन्दर बल प्रदान करता है ।।१९।।

एष तुन्नो अभिष्टुंतः पवित्रमति गाहते ।
रक्षोहा वारंमव्ययंम् ।।२०।।

पदार्थः—(**एषः**) उक्त परमात्मा (**तुन्नः**) जो अज्ञाननिवृत्ति द्वारा आविर्भाव को प्राप्त हुआ है, और (**अभिष्टुतः**) सब प्रकार से स्तुति किया गया है, वह (**पवित्रं**) पवित्र अन्तःकरण को (**अति गाहते**) प्रकाशित करता है । और (**रक्षोहा**) दुष्टों का विघातक तथा (**अव्ययं**) अविनाशी और (**वारं**) भजनीय है ।।२०।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के दण्डदातृत्व और अविनाशित्वादि धर्मों का कथन किया गया है ।।२०।।

यदन्ति यच्चं दूरके भयं विन्दति मामिह ।
पवंमान वि तज्जंहि ।।२१।।

पदार्थः—(**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (**मामिह**) मुझको इस संसार में (**यद्**) जो (**भयं**) भय (**विंदति**) प्राप्त है (**च**) और (**यद्**) जो विघ्न (**अंति**) मेरे समीप तथा (**दूरके**) दूर हैं (**तत्**) उनको (**विजहि**) सर्वथा नाश करें ।।२१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से भय और विघ्नों के नाश करने की प्रार्थना की गई है ।।२१।।

पवंमानः सो अद्य नंः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु नः ।।२२।।

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**नः**) हम लोगों को (**पवमानः**) पवित्र करने वाला तथा (**विचर्षणिः**) सर्वद्रष्टा है, और (**पवित्रेण**) अपने पवित्र धर्मों से (**यः**) जो (**पोता**) सबको पवित्र करने वाला है (**सः**) वह (**नः**) हमको (**अद्य**) अब (**पुनातु**) पवित्र करे ।।२२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में इस अपूर्वता का उपदेश किया गया है, कि उपासनाकाल में उपासक अपनी पवित्रता का अनुसन्धान करे । और उस की न्यूनता देख कर उसकी याचना परमेश्वर से अवश्यमेव करे ।।२२।।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने वितंतमन्तरा ।
ब्रह्म तेनं पुनीहि नः ।।२३।।

पदार्थः—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**यत्**) जो (**ते अन्तः**) तुममें (**पवित्रं**) पवित्र (**आविततं**) विस्तृत (**अर्चिषि**) ज्योतियें हैं,–(**तेन**) उनसे (**ब्रह्म**) हे परमात्मन् ! (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ।।२३।।

भावार्थः—ब्रह्म शब्द के अर्थ यहाँ परमात्मा के हैं । सायणाचार्य ने इसके अर्थ शरीर के किए हैं, जो कि वेदाशय से सर्वदा विरुद्ध है ।।२३।।

यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेनं पुनीहि नः ।
ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ।।२४।।

पदार्थः—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**ते**) आप का (**यत्**) जो (**पवित्रं**) पवित्र (**अर्चिवत्**) सूर्यादिकों में तेज है (**तेन**) उससे (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये । तथा (**ब्रह्मसवैः**) अपने ब्रह्म भाव से (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ।।२४।।

भावार्थः—परमात्मा सूर्यादि सब दिव्य पदार्थों का प्रकाशक है, और उसी के प्रकाश से प्रकाशित होकर सब तेजोमय प्रतीत होते हैं ।।२४।।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेनं च ।
मां पुनीहि विश्वतः ।।२५।।

पदार्थः—(**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**सवितः**) हे सर्वोत्पादक ! आप (**उभाभ्यां**) ज्ञानयोग तथा कर्मयोग द्वारा (**मां**) मुझको (**विश्वतः**) सब ओर से (**पुनीहि**) पवित्र करिये (**च**) और (**पवित्रेण**) पवित्र (**सवेन**) ब्रह्मभाव से मुझे पवित्र करिये ॥२५॥

भावार्थः—जो लोग अपने में ज्ञानयोग और कर्मयोग की न्यूनता समझते हैं, वे परमात्मा से ज्ञानयोग तथा कर्मयोग की प्रार्थना करें ॥२५॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।
अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥

पदार्थः—(**सोम**) परमात्मन् ! (**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप ! (**सवितः**) हे सर्वोत्पादक ! (**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**त्वं**) आप (**त्रिभिः**) तीन (**धामभिः**) शरीरों से (**वर्षिष्ठैः**) जो श्रेष्ठ हैं, तथा (**दक्षैः**) दक्षतायुक्त हैं, उनसे (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सूक्ष्म, स्थूल, और कारण इन तीनों शरीरों की शुद्धिकी प्रार्थना है । प्रलयकाल में जीवात्मा जब प्रकृतिलीन होकर रहता है, उसका नाम कारणशरीर है । तथा जिसके द्वारा जन्मान्तर को प्राप्त होता है, उसका नाम सूक्ष्मशरीर है । और तीसरा स्थूलशरीर है । इन तीनों शरीरों की पवित्रता का उपदेश यहां किया गया है ॥२६॥

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मां ॥२७॥

पदार्थः—(**देवजनाः**) विद्वान् जन (**मां**) मुझको उपदेश द्वारा (**पुनंतु**) पवित्र करें । (**वसवः**) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण (**धिया**) अपनी शुभबुद्धि द्वारा (**पुनन्तु**) पवित्र करें (**विश्वे देवाः**) हे विद्वानो ! (**मां**) मुझको आप लोग (**पुनीत**) पवित्र करें तथा (**जातवेदः**) हे परमात्मन् ! (**मा**) मुझको (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने विद्वानों के उपदेशों द्वारा पवित्रता का उपदेश किया है, कि हे जीवो ! तुम अपने विद्वानों से तथा ब्रह्मचारिगणों से सदैव सद्बुद्धिका ग्रहण किया करो ॥७॥

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
देवेभ्यं उत्तमं हविः ॥२८॥

पदार्थः–(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**प्रप्यायस्व**) हमको वृद्धियुक्त करें । (**विश्वेभिरंशुभिः**) अपने सम्पूर्ण भावों से द्रवीभूत होकर (**प्रस्यन्दस्व**) कृपायुक्त हों । तथा (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**उत्तमं हविः**) उत्तम दानरूपी भावों का प्रदान करें ॥२८॥

भावार्थः—परमात्मा ही एकमात्र तृप्ति का कारण है । वह अपने ज्ञान के प्रदान से हमको तृप्त करे ॥२८॥

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९॥

पदार्थः—(**प्रियं**) सबको प्रसन्न करने वाले (**पनिप्नतं**) वेदादि शब्दराशि के आविर्भावक (**युवानं**) सदा एकरस (**आहुतीवृधं**) जो अपनी प्रकृतिरूपी आहुति से बृहत् है, उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा को (**नमः**) नम्रतादि भावों को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए हम लोग (**उपागन्म**) प्राप्त हों ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा नम्रतादि भावों का उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम नम्रतादि भावों को धारण करते हुए, उक्त प्रकार की प्रार्थनाओं से मुझको प्राप्त हो ॥४९॥

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।
आखुं चिदेव देव सोम ॥३०॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न ! (**अलाय्यस्य**) सर्वत्र व्याप्त शत्रु का जो (**परशुः**) अस्त्र है (**तं**) उस (**आखुंचित्**) सर्वघातक अस्त्र को (**ननाश**) नाश करिये । (**देव**) हे परमात्मन् ! (**आपवस्व**) आप मुझको पवित्र करें ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा, जिनमें दैवी सम्पत्ति के गुण समझता है, उनको वृद्धियुक्त करता है, और जिनमें आसुरी भाव के अवगुण देखता है, उनका नाश करता है ॥३०॥

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥

पदार्थः—(**यः**) जो जन (**पावमानीः**) परमेश्वरस्तुतिरूप ऋचाओं को (**अध्येति**) पढ़ता है (**सः**) वह (**ऋषिभिः**) मन्त्रद्रष्टाओं से (**संभृतं**) स्पष्ट किए हुए (**रसं**) ब्रह्मा-

नन्द को (अश्नाति) भोगता है। और (सर्वं) सम्पूर्णं (मातरिश्वना स्वदितं) वायु से स्वादुकृत (पूतं) पवित्र पदार्थों को (अश्नाति) भोगता है ॥३१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के पवित्र गुणों का सहारा लेते हैं, वे ब्रह्मानन्द रस का पान करते हैं। और उनके लिए वायु के पवित्र किये हुए पदार्थ, मधुर रसों के प्रदाता होते हैं। तात्पर्य यह है, कि वायु फलों में एक प्रकार का माधुर्य उत्पन्न करता है। उस माधुर्य के भोक्ता पुण्यात्मा ही हो सकते हैं, अन्य नहीं ॥३१॥

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२॥

पदार्थः—(**यः**) जो जन (**पावमानीः**) परमेश्वरस्तुतिरूप ऋचाओं को (**अध्येति**) पढ़ता है (**तस्मै**) उसके लिये (**ऋषिभिः**) मन्त्रद्रष्टाओं से (**सम्भृतं**) स्पष्टीकृत (**रसं**) रस का और (**क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्**) दूध, घी, मधु, और जल का (**सरस्वती**) ब्रह्मविद्या (**दुहे**) दोहन करती है ॥३२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के शरणागत होते हैं, उनके लिये मानो (सरस्वती) ब्रह्मविद्या स्वयं दुहने वाली बन कर दूध, घी, मधु और नाना प्रकार के रसों का दोहन करती है। वा यों कहो कि माता के समान (सरस्वती) विद्या नाना प्रकार के रसों को अपने विज्ञानमय स्तनों से पान कराती है ॥३२॥

नवम मण्डल में यह सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य १—१० वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ३, ६, ७ निचृज्जगती। २, ४, ५, ९, जगती। ८ विराड्जगती। १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–१—९ निषादः। १० धैवतः ॥

अब ईश्वर के उपासकों के गुण वर्णन करते हैं ॥

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१॥

पदार्थः—(**इन्दवः**) परम विद्वान् (**मधुमंतः**) मीठे उपदेशों वाले (**देवं**) परमात्मा के (**अच्छ**) प्रति (**प्रासिष्यदंत**) नम्रीभूत होकर जाते हैं। (**गावः, धेनवः, न**) जैसे प्रकाश करने वाली वाणियां (**वचनावन्तः**) सदुपदेश वाली (**बर्हिषदः**) प्रतिष्ठा वाली (**ऊधभिः**) ज्ञानरूपी अमृत को धारण करने वाली (**उस्रियाः**) सुदीप्ति वालीं (**परिस्रुतं**) व्याप्तिशील (**निर्णिजं**) शुद्ध ज्ञान को (**आधिरे**) धारण करातीं हैं, इसी प्रकार उक्त विद्वान् ज्ञान को धारण कराते हैं, ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा के मार्ग का उपदेश करने वाले विद्वान्, वाग्धेनु के समान सद् ज्ञान का उपदेश करते हैं। जिस प्रकार सद्वाणी सद्ज्ञान को उत्पन्न करती है, इसी प्रकार सम्यग्ज्ञाता विद्वान् सत्का उपदेश करके सच्चे ज्ञान का उपदेश करते हैं ॥१॥

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२॥

पदार्थः—(**हरिः**) दुर्गुण दूर करने वाला (**उपारुहः**) उन्नति शील (**सः**) पूर्वोक्त विद्वान् (**रोरुवत्**) बलपूर्वक उपदेश करता हुआ, तथा (**श्रथयन्**) सत्यानृतका विभेद करता हुआ, जिज्ञासु को (**स्वादते**) संस्कारी बनाता है। और (**पूर्वाः**) अनादिसिद्ध परमात्मा की स्तुति को (**अभ्यचिक्रदत्**) विशाल करता है। और (**देवः**) दिव्यगुण युक्त विद्वान् (**शर्याणि**) अज्ञानों का (**तिरः**) तिरस्कार करके (**पवित्रं**) पवित्र ज्ञान को (**परियन्**) प्रकाशित करता हुआ (**उरु**) बड़े (**ज्रयः**) कर्मयोगी को (**निदधते**) धारण कराता है। तथा (**वरं**) वरणीय पदार्थ को (**आ**) (**आदधते**) देता है ॥२॥

भावार्थः—सदुपदेश द्वारा अज्ञानों को निवृत्त करना पूर्ण विद्वान् का ही काम है। पूर्ण विद्वान् के उपदेश से मनुष्य ज्ञानी और विज्ञानी बनकर मनुष्यजन्म के फल को उपलब्ध करता है ॥२॥

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३॥

पदार्थः—(**यो मदः**) जो आनन्द का वर्धक कर्मयोगी (**यम्या**) युगल (**संयती**) परस्पर संबद्ध पृथिवीलोक और द्युलोक के ज्ञान को (**विममे**) उत्पन्न करता है। और (**साकं**) साथ ही (**पयसा वृधा**) ऐश्वर्य से बढ़ा हुआ (**अक्षिता**) अक्षीण द्युलोक (**रजसी**) जो आकर्षणशील है, उसको ज्ञान द्वारा (**विवेविदत्**) व्यक्त करता है। तथा (**अभिव्रजन्**) अव्याहत गति होता हुआ (**अक्षितं पाज आददे**) क्षयरहित बल को देता है ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी विद्वान् के उपदेश से ही मनुष्य को पृथिवीलोक और द्युलोक का ज्ञान होता है। और उसी के सदुपदेश से अक्षय बल मिलता है ॥३॥

स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह (मेधिरः) प्राज्ञ कर्मयोगी (मातरा) सब जीवों की माता के समान द्युलोक में तथा पृथिवीलोक में (विचरन्) विचरता हुआ और (अपः) कर्मरूपी योग का (वाजयन्) बल प्रदान करता हुआ (पदं) कर्मयोग के पद को (स्वधया) अनुष्ठानरूप क्रिया से (पिन्वते) पुष्ट करता है । (अंशुः) ज्ञानरूप प्रकाश से प्रदीप्त विद्वान् (यवेन) अपने भव और अप्ययरूप योग से (पिपिशे) योगाङ्ग को धारण करता है । (यतः) जिससे कर्मयोगी (जामिभिर्नृभिः) परस्पर संगति बांध कर चलने वाले जिज्ञासु द्वारा (संनसते) अपने कर्तव्य का पालन करता है । और (शिरः) पतित पुरुषों की (रक्षते) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—कर्मयोगी का यह कर्तव्य है, कि वह अकर्मण्यतादोषग्रस्त मनुष्यों में उद्योग उत्पन्न करके उनमें जागृति उत्पन्न करे ॥४॥

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥५॥

पदार्थः—वह कर्मयोगी (दक्षेण मनसा) समाहित मन से (ऋतस्य कविः संजायते) सचाई का कथन करने वाला होता है । (यमा) दैवने उसे (परः) सर्वोपरि (निहितः) सुरक्षित (गर्भः) गर्भस्थानीय बनाया । (यूना संता) कर्मयोग तथा ज्ञानयोग को पूर्ण करते हुए ज्ञानयोगी और कर्मयोगी यह (ह) प्रसिद्ध दोनों (गुहाहितं) अन्तःकरणरूपी गुहा में निहित परमात्मा को (प्रथमं) सबसे पहिले (विजज्ञतुः) जानते हैं । जो परमात्मा (जनिम) सब की उत्पत्ति का स्थान तथा (नेमं) सबको नियम में रखने वाला और (उद्यतं) सर्वोपरि बलस्वरूप है ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा सूक्ष्मरूप से सबके अन्तःकरण में विराजमान है, उसको कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही सुलभता से लाभ कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥५॥

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥

पदार्थः—(मंद्रस्य) आनन्दस्वरूप परमात्मा के (रूपं) रूप को (मनीषिणः) मेधावी लोग (विविदुः) जानते हैं । जो परमात्मा (परावतः) सब लोक लोकान्तरों की (अभरत्) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाला है । और (श्येनः) जो विद्युत् के समान (यदंधः) सर्वव्यापक है, (तं) उस (ऋग्मियं) स्तवनीय (अंशुं) प्रकाशस्वरूप (सुवृधं) बढ़े हुए (उशंतं) कान्ति वाले (परियंतं) सर्वव्यापक परमात्मा का हम लोग (नदीषु) वेदवाणियों से (आमर्जयन्त) साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थः—आनन्दमय परमात्मा का साक्षात्कार कर्मयोग और ज्ञानयोग द्वारा संस्कृत बुद्धि से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं । इसी अभिप्राय से कहा है, कि “दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः” कि उसको सूक्ष्मबुद्धि से सूक्ष्मदर्शी ही देख सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

अब प्रसंग संगति से परमात्मप्राप्ति का वर्णन करते हैं ॥

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सुतं) स्वयंसिद्ध (त्वां) तुमको (दश योषणः) धृत्यादि धर्म के दस साधन (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं । (सोम) हे परमात्मन् ! तुम (मतिभिः) ज्ञानयोगी तथा (धीतिभिः) कर्मयोगी (ऋषिभिः) ऋषियों से (हितं) साक्षात्कार किये जाते हो । तथा तुम (अव्यः) सर्वरक्षक हो । (उत) और (वारेभिर्देवहूतिभिर्नृभिः) सर्वोपरि वरणीय योगी मनुष्यों द्वारा (सातये) अज्ञाननिवृत्ति के लिये (वाजं) बल को (यतः) जिस हेतु (आदर्षि) देते हो अतः तुम सर्वोपरि उपासनीय हो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगियों को अनन्त बल देता है । इसलिये मनुष्य को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी अवश्य बनना चाहिये ॥७॥

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

पदार्थः—(मनीषाः स्तुभः) शुभ बुद्धियां (परिप्रियन्तं) सब को प्राप्त होने वाले (वय्यं) विद्वानों से काम्यमान (सुषंसदं) शोभन स्थिति वाले (सोमं) परमात्मा को (अभ्यनूषत) वर्णन करती हैं । (यो धारया) जो अपने अमृत की धारा से (मधुमान्) आनन्दमय है, तथा (ऊर्मिणा) आनन्द की लहर द्वारा (दिवः) द्युलोक से (वाचं) वेदवाणी को (इयर्ति) देता है, वह परमात्मा (रयिषाट्) समस्तैश्वर्यदाता तथा (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी दिव्यशक्ति से पवित्र वेदवाणी का प्रकाश करता है । और स्वयं अमरणधर्मा होकर जगज्जन्मादि का हेतु है ॥८॥

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ॥९॥

पदार्थः—(**अयं सोमः**) यह परमात्मा (**दिवः**) द्युलोक के (**विश्वं**) सम्पूर्ण (**रजः**) ऐश्वर्य को (**इयर्ति**) देता है । और (**कलशेषु**) समस्त अन्तःकरणों में (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**आसीदति**) विराजमान है । तथा (**अद्रिभिः**) इन्द्रिय वृत्तियों से (**अद्भिर्गोभिः**) ज्ञान और कर्मों द्वारा (**मृज्यते**) साक्षात्कार किया जाता है । और (**सुतः**) स्वयंसिद्ध (**इन्दुः**) परमैश्वर्यवान् (**पुनानः**) पवित्रकर्ता परमात्मा (**प्रियं**) प्रियकारक (**वरिवः**) वरणीय ऐश्वर्य को ज्ञानयोगी और कर्मयोगियों को (**विदत्**) देता है ॥९॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी को परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य देता है ॥९॥

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**परिषिच्यमानः**) ज्ञानयोग और कर्मयोग से साक्षात्कृत आप (**नः**) हम लोगों को (**चित्रतमं**) नानाविध (**वयः**) बल को (**दधत् एव**) अवश्य धारण कराते हुए (**पवस्व**) पवित्र करें । तथा (**अद्वेषे द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवीलोक को द्वेष से रहित होने की (**हुवेम**) हम लोग प्रार्थना करते हैं । और (**देवाः**) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान् (**अस्मे**) हम लोगों में (**सुवीरं रयिं**) सुन्दर वीरों वाले ऐश्वर्य को (**धत्त**) धारण करायें ॥१०॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों की सङ्गति में रहते हैं, उनके लिये परमात्मा नानाविध ऐश्वर्यों को देता है । और द्युलोक और पृथिवीलोक उनके द्वेषियों से सर्वथा रहित हो जाता है । अर्थात् वे मित्रता की दृष्टि से सबको देखते हैं ॥१०॥

नवम मण्डल में यह अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—१० हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पादनिचृज्जगती । २—४, ६ जगती । ७, ८ निचृज्जगती । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–८ निषादः । ९, १० गान्धारः ॥

अब ईश्वर के साक्षात्कार के साधनों का निरूपण करते हैं ॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

पदार्थः—(**धन्वन्**) धनुष में (**न**) जैसे (**इषुः**) वाण (**प्रतिधीयते**) रखे जाते हैं उसी प्रकार हे जिज्ञासो ! तुमको ईश्वर में (**मतिः**) बुद्धि को लगाना चाहिये और (**न**) जैसे (**वत्सः**) बछड़ा (**मातुः**) गाय के (**ऊधनि**) स्तनों के पान के लिये (**उपसर्जि**) रचा गया है उसी प्रकार तुम भी ईश्वर की उपासना के लिये रचे गए हो । और (**अस्य**) इस जिज्ञासु के (**व्रतेषु**) सत्यादि व्रतों में (**सोमः**) परमात्मा (**इष्यते**) उपास्य रूप से कहा गया है । (**वत्सस्य**) बछड़े के (**अग्रे**) आगे (**आयती**) उपस्थित (**उरुधारेव**) गौ (**दुहे**) जैसे दुही जाती है, उसी प्रकार सन्निहित परमात्मा सब अभीष्टों का प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार धन्वी, लक्ष्यभेदन करने वाला मनुष्य इतस्ततः वृत्तियों को रोक कर एकमात्र अपने लक्ष्य में वृत्ति लगाता है, इसी प्रकार परमात्मोपासकों को चाहिये, कि वे सब ओर से वृत्ति को रोक कर एकमात्र परमात्मा की उपासना करें ॥१॥

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

पदार्थः—(**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**प्रघ्नताम्**) शूरवीरों के (**सन्तनिः**) शरों के (**इव**) समान रुद्र रूप है । और साधु पुरुषों के लिये (**द्रप्सः**) गतिशील परमात्मा (**मधुमान्**) मधु के र मीठा है अर्थात् शान्तिप्रद है । (**वारम्**) जो उसका कृपापात्र भक्त जन है उ (**पर्यर्षति**) सब प्रकार से प्राप्त होता है । और (**अन्तरासनि**) भक्त पुरुषों के अन्तःकरण में (**मन्द्राजनी**) आह्लाद उत्पन्न करने वाली (**मतिः**) बुद्धि (**चोदते**) उत्पन्न होती है । जिससे (**मधु सिच्यते**) आनन्द की वृष्टि की जाती है ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष शान्त भाव से परमात्मा के नियमानुकूल चलते

हैं, परमात्मा उन्हें शान्ति रूप से उनके कर्मानुकूल फल देता है। और जो परमात्मनियमों का उल्लंघन करते हैं, उनके लिये परमात्मा दण्ड देता है। इसी अभिप्राय से यहां शूरवीरों के बाणों के समान परमात्मा को कथन किया गया है। जैसा कि "महद्भयं वज्रमुद्यतम्" उठे हुए वज्र की तरह परमात्मा भयप्रद है ॥२॥

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥

पदार्थः—(**वधूयुः**) प्रकृति का स्वामी (**हरिः**) परमात्मा (**अक्रान्**) दुष्टों को अतिक्रमण करता है। (**यजतः**) याग करने वाला जो (**संयतः**) संयमी पुरुष है (**मदः**) उसको आह्लाद उत्पन्न करने वाला है। (**नृम्णा**) बलस्वरूप है तथा (**शिशानः**) सर्वगत है (**महिषः**) और अत्यन्त तेजस्वी के (**न**) समान विराजमान है। वह परमात्मा (**अदितेः**) पृथिव्यादि तत्वों के (**ऋतंयते**) तत्त्व को जानने वाले पुरुष के लिये (**अव्यः**) जो रक्षा करने वाला है(**त्वचि**) उसके अन्तःकरण में (**परिपवते**) सब ओर से विराजमान होता है। तथा (**नप्तीः**) उसकी सन्ततियों को (**श्रथ्नीते**) सफल करता है ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष संयमी बनकर निष्काम यज्ञ करते हैं, उन पुरुषों के लिये परमात्मा शुभ सन्तानें और शुभ फलों को उत्पन्न करता है ॥३॥

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥

पदार्थः—(**उक्षा**) ब्रह्मचर्यादि बलस्वरूप पुरुष ही (**मिमाति**) सर्वज्ञाता हो सकता है। उस (**निष्कृतं**) परिष्कृत पुरुष को (**धेनवः**) इन्द्रियें (**प्रतियन्ति**) प्राप्त होती हैं।(**देवस्य देवीः**) दिव्य परमात्मा की दिव्यशक्तियाँ (**उपयन्ति**) उसी को प्राप्त होतीं हैं। वही (**अर्जुनं**) बड़े-बड़े योद्धाओं को (**अत्यक्रमीत्**) अतिक्रमण करता है। (**वारं**) उस सर्ववरणीय (**अव्ययं**) इन्द्रियविकार रहित (**अत्कं न**) कवच की तरह (**निक्तं**) यश से उज्ज्वल की (**सोमः**) परमात्मा (**पर्यव्यत**) चारों ओर से रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचारी बनकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार के बल अपने में उत्पन्न करता है, वह परमात्मा के सामर्थ्य का पात्र होता है ॥४॥

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥

पदार्थः—(**अमर्त्यो हरिः**) अमरणधर्मा परमात्मा तथा (**निर्णिजानः**) शुद्ध (**अमृक्तेन रुशता**) अपने स्वाभाविक तेज से (**वाससा**) अपनी शक्तिरूपी आच्छादन द्वारा (**दिवस्पृष्ठं**) द्युलोक के पृष्ठ को, जिसमें (**चम्वोर्नभस्मयम्**) द्युलोक और पृथिवीलोक की (**कृतोपस्करणम्**) अन्तरिक्ष रूपी बिछौना है उसको (**बर्हणा**) अपनी प्रकृतिरूपी पुच्छ से (**निर्णिजे**) पुष्ट करता है और (**परिव्यत**) सब ओर से इस ब्रह्माण्ड को आच्छादित करता है ॥५॥

भावार्थः—अजरामरादि भावयुक्त परमात्मा अपने प्रकृतिरूपी पुच्छसे सब संसार को आच्छादित किये हुए हैं ॥५॥

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६॥

पदार्थः—(**मत्सरासः**) सर्वाह्लादक (**प्रसुपः**) सबका निवासस्थान परमात्मा (**ततं तंतुं**) विस्तृत प्रकृतिरूप तन्तु के (**साकं**) साथ (**ईरते**) गति करता है। उससे (**आशवः**) गमनशील (**सर्गासः**) सृष्टियाँ (**सूर्यस्य रश्मय इव**) सूर्य की किरणों के समान (**द्रावयित्नवः**) क्षरणशील उत्पन्न होतीं हैं। उक्त परमात्मा (**इन्द्रादृते**) उद्योगी के अतिरिक्त (**किंचन धाम**) अन्य किसी के अन्तःकरण को (**न पवते**) नहीं पवित्र करता है ॥६॥

भावार्थः—उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा के द्वारा सूर्य की रश्मियों के समान अनन्त प्रकार की सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं ॥६॥

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! आप (**अस्मे**) हमारी (**निवेशे**) स्थिति में (**नः**) हमारे (**द्विपदे चतुष्पदे**) मनुष्य तथा पशुओं के (**शं**) कल्याणकारी हों। तथा हमारी (**कृष्टयः**) बुद्धियाँ (**तिष्ठन्तु**) शुभ हों। (**मदासः**) आनन्दमय (**आशवः**) व्यापक आपके यश को (**गातुं**) गानकर इस प्रकार जिज्ञासु लोग आपके स्वरूप में (**आशत**) लीन हों, जैसे (**सिन्धोरिव**) समुद्र के (**प्रवणे निम्ने**) निम्न प्रवाह में (**वृषच्युताः**) वेग से बहने वाली नदियाँ मिलती हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा करुणासिन्धु है। जिस प्रकार क्षुद्र नदियां समुद्र में मिलकर महासागर हो जाती हैं, इसी प्रकार उक्त परमात्मा को मिलकर उपासक महत्त्व को धारण करता है ॥७॥

आ नः॑ पवस्व॒ वसु॑म॒द्धिर॑ण्यव॒दश्वा॑व॒द्गोम॒द्यव॑मत्सु॒वीर्य॑म् ।
यू॒यं हि सो॑म पि॒तरो॒ मम॒ स्थन॑ दि॒वो मू॒र्धानः॒ प्रस्थि॑ता वय॒स्कृतः॑ ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**वसुमत्**) ऐश्वर्यसम्पन्न (**हिरण्यवत्**) स्वर्णादिधन के स्वामी (**गोमत्**) गवाद्यैश्वर्यवाले (**अश्ववत्**) विद्युदादि शक्तियों के स्वामी (**यवमत्**) अन्नधनाद्यैश्वर्ययुक्त आप (**सुवीर्यं**) सुन्दर पराक्रम को (**नः**) हम लोगों को (**आपवस्व**) सब ओर से दें। (**यूयम्**) आप (**हि**) निश्चय करके (**मम**) मेरे (**पितरः स्थन**) पालन करने वाले हो। और (**वयस्कृतः**) ऐश्वर्य के देने वाले आप (**दिवः**) द्युलोक के (**मूर्धानः**) मुखरूप (**प्रस्थिताः**) विराजमान हैं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥८॥

ए॒ते सोमाः॒ पव॑मानास॒ इन्द्रं॒ रथा॑ इव॒ प्र य॑युः सा॒तिमच्छ॑ ।
सु॒ताः प॒वित्र॒मति॒ यन्त्यव्यं॑ हि॒त्वी व॒व्रि ह॒रितो॑ वृ॒ष्टिमच्छ॑ ॥९॥

पदार्थः—(**पवमानासः**) पवित्र करने वाले (एते) ये (**सुताः**) संस्कृत (**सोमाः**) सौम्यस्वभाव (**रथाइव**) संग्रामों में महारथी के समान (**पवित्रं**) पवित्र (**सातिमच्छ**) संग्राम के अभिमुख जाने वाले (**इन्द्रं**) कर्मयोगी को (**प्रययुः**) प्राप्त हों। उक्त स्वभाव (**हरितः**) पापों को हरण करते हुए (**अव्यं**) कायरता को (**अतियन्ति**) दूर करते हैं। और (**वव्रि**) जराका (**हित्वी**) नाश करके (**वृष्टिं**) आनन्द की वृष्टि को (**अच्छ**) देते हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शील की प्रार्थना है। जिस शुभ शील से मनुष्य ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥९॥

इन्द॒विन्द्रा॑य बृह॒ते प॑वस्व सुमृळी॒को अ॑नव॒द्यो रि॒शादाः॑ ।
भरा॑ च॒न्द्राणि॑ गृण॒ते वसू॑नि दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥१०॥

पदार्थः—(**इन्दो**) ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**सुमृळीक**) कर्मयोगी को सुख देने वाले (**अनवद्य**) निन्दारहित (**रिशादाः**) बाधकों के नाशक आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**पवस्व**) पवित्रता का प्रदान करें। और (**गृणते**) स्तुति करने वाले

कर्मयोगी के लिये (**चन्द्राणि**) आल्हाद देने वाले (**वसूनि**) धनों को (**भर**) प्रदान करें। आप (**देवैः**) दिव्य धनों के सहित (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवी लोक को (**नः**) हम लोगों के लिये (**प्रावतं**) प्राप्त करायें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगी के लिये ऐश्वर्यप्रदान का वर्णन किया गया है ॥१०॥

नवम मण्डल में यह उनसठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य १–१० रेणुर्वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ३ त्रिष्टुप्। २, ६, ९, १० निचृज्जगती। ४, ५, ७, जगती। ८ विराड्जगती ॥ स्वरः–१, ३ धैवतः। २, ४—१०। निषादः ॥

अब पचीस प्रकार के तत्त्वों का वर्णन करते हैं ॥

त्रिर॑स्मै स॒प्त धे॒नवो॑ दुदुह्रे स॒त्यामा॒शिरं॑ पू॒र्व्ये व्यो॑मनि ।
च॒त्वार्य॒न्या भुव॑नानि नि॒र्णिजे॒ चारू॑णि चक्रे॒ यदृ॒तैरव॑र्धत ॥१॥

पदार्थः—(**पूर्व्ये व्योमनि**) महदाकाश में (**अन्या**) प्रकृति से भिन्न (**चत्वारि भुवनानि**) चार तत्त्व (**यत्**) जो कि (**चारूणि**) सुन्दर हैं, वे (**निर्णिजे**) शुद्धि के लिये (**ऋतैः**) प्रकृति के सत्य द्वारा (**चक्रे**) परमात्मा ने रचे हैं। (**अस्मै**) इस कार्य के लिये (**धेनवः**) वेदवाणियाँ (**त्रिःसप्त**) अहङ्कार से लेकर पंचभूतों तक २१ तत्त्वों द्वारा (**दुदुह्रे**) पूर्ण करती हैं। और उससे (**सत्यामाशिरं**) सत्य हैं कारण जिनके ऐसे क्षीरादि रसों को (**अवर्धत**) बढ़ाती हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृतिरूपी उपादान-कारण से इस संसार को उत्पन्न किया। और वह इस प्रकार कि प्रकृति से महत्तत्व, और महत्तत्व से अहङ्कार और अहंकार से पञ्चतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध इनसे पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय एवं पञ्च-भूत अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार आदि इन २१ प्रकृतियों से परमात्मा ने संसार को उत्पन्न किया। महत्तत्व को यहाँ इस लिये नहीं गिना, कि वह वैदिक-लोगों के मन्तव्य में एक प्रकार की प्रकृति ही है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस संसार का परिणामी उपादान-कारण है। अर्थात् प्रकृति के परिणाम से इस संसार की रचना हुई है। और परमात्मा कूटस्थ नित्य है। उसका किसी प्रकार से परिणाम वा परिवर्तन नहीं होता है ॥१॥

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

पदार्थः—(**भिक्षमाणः**) प्रकृतिरूपी तत्व को लाभ करता हुआ (**चारुणोऽमृतस्य**) सुन्दर अमृत के देने वाले (**उभे द्यावा**) द्युलोक और पृथिवीलोक को (**काव्येन**) अपनी चतुराई से (**विशश्रथे**) व्यक्त करता है। (**सः**) वह परमात्मा (**तेजिष्ठा अपः**) तेजस्वी जलमयपरमाणुओं के (**मंहना**) महत्त्व से (**परिव्यत**) आच्छादन करता है। (**यदि देवस्य**) अगर दिव्य ज्ञान के (**श्रवसा**) महत्त्व से (**सदः**) सद्रूपब्रह्म को (**विदुः**) जानें, तो उक्त परमात्मा के कर्तृत्व को जान सकते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के महत्व को जानते हैं, वे ही इस जगत् की अद्भुत सत्ता को जान सकते हैं, अन्य नहीं ॥२॥

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

पदार्थः—(**ते**) वे (**अमृत्यवः**) मरणधर्मरहित (**अदाभ्यासः**) अदम्भनीय पूर्वोक्त तत्त्ववेत्ता लोग (**अस्य**) इस संसार के (**केतवः**) मौलिमणिस्थानी (**सन्तु**) हों। (**उभे जनुषी**) दोनों जन्मों को (**अनु**) लक्ष्य करके (**देव्या नृम्णा**) दिव्य कर्म (**येभिः**) जिनसे किये जाते हैं, वे ही लोग (**पुनते**) संसार को पवित्र करते हैं (**च**) और (**आदित्**) वे ही (**मननाः**) माननीय (**राजानं**) प्रकाशरूप परमात्मा को (**अगृभ्णत**) ग्रहण करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग लोक और परलोक को लक्ष्य रखकर शुभ कर्म करते हैं, वे ही परमात्मा के ज्ञानपात्र हो सकते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४॥

पदार्थः—(**मध्यमासु प्रमातृषु**) ज्ञानेन्द्रियों में (**प्रमे**) प्रमाण के लिये (**सचा**) संगत (**सः**) वह परमात्मा (**दशभिः कर्मभिः**) पांच सूक्ष्मभूत और पांच स्थूलभूतों से (**मृज्यमानः**) विराट् रूप से अभिव्यक्ति को प्राप्त हुआ सर्वत्र विराजमान है (**व्रतानि पानः**) व्रतों को धारण करने वाला मनुष्य (**चारुणोऽमृतस्य**) सुन्दर अमृत भाव के देने वाले (**उभे विशौ**) दोनों ज्ञान और कर्म जो हैं, उनको (**नृचक्षाः**) सर्वज्ञ पुरुष ही (**अनुपश्यते**) देखता है, अन्य नहीं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष तपश्चर्यादि कर्मों को करता है, वही पुरुष ज्ञान तथा कर्म के प्रभाव से सर्वत्राभिव्यक्त परमात्मा को ज्ञानदृष्टि से देख सकता है, अन्य नहीं ॥४॥

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५॥

पदार्थः—(**मर्मृजान**) सर्वपूज्य (**दुर्मतीः शुरुधः**) दुष्ट प्रकृति वाले असुरों को (**आदेदिशानः**) शिक्षा देने वाला (**वृषा**) आनन्दका वर्षक (**उभे रोदसी**) द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों के (**अन्तर्हितः**) मध्य में विराजमान (**सः**) वह परमात्मा (**इन्द्रियाय**) इन्द्रियों के (**धायसे**) धारण करने वाले बल के लिये (**आहर्षते**) सर्वत्र विराजमान है। और (**शुष्मेण**) अपने बल से (**विबाधते**) दुष्टों को पीड़ा देता है। (**शर्यहेव**) जैसे बाणों से योद्धा अपने प्रतिपक्षी को मारता है, उसी प्रकार परमात्मा दुराचारी और विघ्नकारी राक्षसों को मारता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अपने सच्चिदानन्दरूप से सर्वत्रैव परिपूर्ण हो रहा है। और वह अपनी दमनरूप शक्ति से दुष्टों को दमन करके सत्पुरुषों का उद्धार करता है ॥५॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६॥

पदार्थः—(**मातरा ददृशानः**) माता को देखता हुआ (**न**) जैसे (**नानदत्**) शब्द करके (**उस्रियः**) गौके सन्मुख (**एति**) जाता है, इसी प्रकार (**सः**) वह (**सुक्रतुः**) शोभनकर्मा उपासक (**मरुतां स्वन इव**) कर्मयोगी विद्वानों के शब्दों से (**ऋतं**) सत्य को (**जानन्**) जानता हुआ (**स्वर्णरं**) सर्वहितकारक (**प्रथमं**) अनादि (**कं**) सुखरूप परमात्मा की (**प्रशस्तये**) प्रशंसा के लिये (**अवृणीत**) उस परमात्मा को स्वीकार करता है ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मामृतवर्षिणी धेनु के समान परमात्मा को कामधेनु समझकर उसकी उपासना करता है, वह अन्य किसी सुख की अभिलाषा नहीं करता ॥६॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७॥

पदार्थः—जिस कर्मयोगी की (**गव्ययी**) सत् असत् का निर्णय करने वाली (**त्वक्**) चैतन्यशक्ति (**निर्णिगव्ययी**) परिशोधन करने वाली और रक्षा करने वाली (**भवति**) होती है, उस (**सुकृतं**) सुकृती कर्मयोगी के हृदय को (**योनिं**) स्थान बनाकर (**तविष्यया**) वृद्धि की इच्छा से (**भीमः**) दुष्ट के भयदाता (**वृषभः**) कर्मों का वर्षक (**विचक्षणः**) सर्वज्ञ (**सोमः**) परमात्मा (**आनिषीदति**) निवास करता है। और (**हरिणी**) अविद्या की हरण करने वाली (**शृङ्गे**) दो दीप्तियों को (**शिशानः**) तीक्ष्ण करता हुआ (**रुवति**) शब्द स्पर्शादिकों के आश्रयभूत पञ्च तत्त्वों को उत्पन्न करता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा जीवरूपी शक्ति और प्रकृतिरूपी शक्ति दोनों का अधिष्ठाता है। वा यों कहो, कि उक्त दोनों दीप्तियों को उत्पन्न करके परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है ॥७॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८॥

पदार्थः—(**सुकर्मभिः**) सुन्दर कर्मों से (**त्रिधातु**) कफ, वात, पित्तात्मक (**अरेपसं**) पापरहित (**तन्वं**) शरीर (**मित्राय वरुणाय वायवे**) अध्यापक, उपदेशक और कर्मयोगी बनने के लिये (**मधु क्रियते**) जिसने संस्कृत किया है, वह पुरुष (**अव्ये सानवि**) सर्वरक्षक परमात्मा के स्वरूप में (**न्यधाविष्ट**) स्थिर होता है। जो परमात्मा (**हरिः**) पापों का हरण करने वाला है, और (**शुचिः**) पवित्र है, तथा (**पुनानः**) पवित्र करने वाला है और (**जुष्टः**) प्रीति से सेव्य है ॥८॥

भावार्थ—जो लोग अपने इन्द्रियसंयम द्वारा वा यज्ञादि कर्मों द्वारा इस शरीर का संस्कार करते हैं, वे मानो इस शरीर को मधुमय बनाते हैं। जैसे कि "महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः" इत्यादि वाक्यों में यह कहा है, कि अनुष्ठान से पुरुष इस तनुको ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाली बना लेता है। इसी भाव का उपदेश इस मन्त्र में किया गया है ॥८॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥९॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**देववीतये**) यज्ञादि कर्म के लिये (**पवस्व**) हमको पवित्र बनायें। और (**वृषा**) आनन्दवर्षक आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी को (**सोमधानं**) जो आप की स्थिति के योग्य मन (**हार्दि**) सर्वप्रिय है, उसमें (**आविश**) आकर प्रवेश करें। और जिस प्रकार (**क्षेत्रवित्**) मार्ग का जानने वाला पुरुष (**विपृच्छते**) मार्ग पूछने वाले को (**दिश आह हि**) शुभ मार्ग का उपदेश करता है, इसी प्रकार आप (**नः**) हम लोगों के (**बाधात्**) पीडन के (**पुरा**) पहले ही (**दुरिता**) पापों को (**अति पारय**) दूर करिये ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा जीवों को शुभ मार्ग का उपदेश करके आने वाले दुःखों से पहिले ही बचाता है ॥९॥

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥

पदार्थः—(**इन्दो**) परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मन् ! (**नावा न**) जैसे नाविकजन (**सिन्धुं**) नदी को (**अतिपर्षि**) पार करते हैं, ऐसे आप हमको संसार सागर से पार करें। (**विद्वान् शूरो न**) और जैसे विद्वान् शूरवीर (**युध्यन्**) युद्ध करता हुआ (**नः**) हम लोगों के (**निदः**) निन्दकों को (**अव स्पः**) मारता है, इसी तरह आप दुष्टों को दमन कर श्रेष्ठों को उबारें। और (**सप्तिर्न**) जैसे सूर्य (**वाजं**) ऐश्वर्य को उत्पन्न करता हुआ (**अभ्यर्ष**) अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है, इसी प्रकार आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**जठरं**) हृदय में ज्ञानरूपी सत्ता से विराजमान होकर (**आपवस्व**) पवित्र करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्य के समान अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके हमारे हृदय में ज्ञानदीप्ति का प्रकाश करता है ॥१०॥

नवम मण्डल में यह सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड्जगती । २ जगती । ३, ५, ८ निचृज्जगती । ६ पादनिचृज्जगती । ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—८ निषादः । ९ धैवतः ॥

अब द्युभुवादि लोकों के अधिकरण रूप से परमात्मा का निरूपण करते हैं ॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥१॥

पदार्थः— (सोमः) परमात्मा (शुष्मी) बल वाला (आसदं) सर्वत्र व्याप्त है। उपासक लोग (दक्षिणा) उपासना रूप दक्षिणा को (सृज्यते) परमात्मा को समर्पित करते हैं। (जागृविः) जागरणशील परमेश्वर (द्रुहोरक्षसः) द्रोह करने वाले राक्षसों को मारकर सज्जनों की (पाति) रक्षा करता है। और (चम्वोः) द्युलोक तथा पृथिवीलोक को (निर्णिजे) पोषण करता है। (हरिः) पापों का हरण करने वाला (ब्रह्म) परमात्मा (नभः) अन्तरिक्ष लोक को (पयः) परमाणु समूह से (उपस्तिरे) आच्छादित करता है। तथा (ओपशं) वही परमात्मा अन्तरिक्ष लोक को (कृणुते) सबको अवकाश देने वाला करता है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड को द्रवीभूत अथवा यों कहो कि वाष्परूप परमाणुओं से आच्छादित किया हुआ है उसी सर्वोपरि उपास्य देव की उपासक लोग अपनी उपासना रूप दक्षिणा से उपासना करें ॥१॥

प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥२॥

पदार्थः—(शूषः) इस संसार की उत्पत्ति करने वाला परमात्मा (कृष्टिहेव) योद्धा के समान (प्रेति) बड़े प्रभाव से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। और (असुर्यं) असुरों को (रोरुवत्) अत्यन्त रुलाता है। तथा (अस्य) इस जीवात्मा के (तं) पूर्वोक्त (वर्णं) आच्छादन करने वाली (वव्रिं) वृद्धावस्था को (जहाति) अतिक्रमण करता है। और (पितुः एति) पिता के भाव को प्राप्त होकर (निष्कृतं) कृतकार्य और (उपप्रुतं) पूर्ण (कृणुते) बना देता है। तथा (तना) इस शरीर को (निर्णिजं) सुन्दर रूप युक्त बना देता है। और (निरिणीते) निर्मुक्त करता है ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मज्ञान के पात्र हैं परमात्मा उनको पूर्ण ज्ञान देकर जरामरणादि भावों से निर्मुक्त करके अमृत बना देता है ॥२॥

अद्रिभिः सुत पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३॥

पदार्थः—(सुतः) स्वयंसिद्ध स्वयम्भू परमात्मा (अद्रिभिः) चित्त वृत्तियों द्वारा साक्षात् किया हुआ (पवते) पवित्र करता है। और (गभस्त्योः) इस जीवात्मा की ज्ञानरूपी दीप्तियों को (वृषायते) बलयुक्त करता है। तथा (मती) वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा (नभसा वेपते) व्याप्त हो रहा है। (सः) वह (मोदते) आनन्दरूप से विराजमान है। और (नसते) सबका अङ्गी सङ्गी होकर विराजमान है। (गिरा) वेदरूपी वाणियों द्वारा उपासना किया हुआ (साधते) सिद्धि का देने वाला है। और (अप्सु) सत्कर्मों में प्रवेश करके (नेनिक्ते) मनुष्य को शुद्ध करने वाला है। तथा (परीमणि) रक्षाप्रधान यज्ञों में (यजते) सर्वत्र परिपूजित है ॥३॥

भावार्थः—जो परमात्मज्ञान के पात्र होते हैं, वे प्रथम स्वयं उद्योगी बनते हैं, फिर परमात्मा उनके उद्योग द्वारा उनको शुद्ध करके परमानन्द का भागी बनाता है ॥३॥

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥४॥

पदार्थः—(सहसः) क्षमाशील वह परमात्मा (मध्वः) सब को आनन्द देने वाला (द्युक्षं) ज्ञानरूपी दीप्तियों में स्थिर जीव को (हर्म्यस्य सक्षणि) जो शत्रुओं को हनन करने वाला है, तथा (पर्वतावृधं) जो हिमालय की तरह अपने सहायक लोगों से वृद्धि को प्राप्त है, ऐसे जीवात्मा को (परिषिञ्चति) परमात्मा ज्ञानरूपी वृष्टि से सिंचन करता है। तथा वह ऐसे जीवात्मा को ज्ञान दृष्टि से परिपूर्ण करता है। (यस्मिन्) जिसमें (गावः) इन्द्रियें (सुहुतादः) अपने शब्दस्पर्शादि भोग्य विषयों को भोगने की शक्ति रखती हैं। और (वरीमभिः) अपने महत्त्व से (ऊधनि) पयोधार पात्र के समान (अग्रियं) उस अग्रणी पुरुष के (मूर्धन्) मूर्धा को (आश्रीणन्ति) अभिषेक द्वारा शुद्ध करती हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपासक को ज्ञानी तथा विज्ञानी बनाकर उसका उद्धार करता है ॥४॥

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५॥

पदार्थः—(दश) दश संख्या वाले (स्वसारः) स्वाभाविक गति वाले प्राण (अदितेः, उपस्थे) इस पार्थिव शरीर में (आजिगात्) इन्द्रियों की वृत्तियों को जीतते हैं। और (न) जैसे सारथी (रथं) रथ को (भुरिजोः) हाथों से (अहेषत) प्रेरणा देता है, इसी प्रकार परमात्मा शुभाशुभ कर्म द्वारा मनुष्यों के शरीररूपी रथ को प्रेरणा करता है। (अस्य) इस जीवात्मा के (मतुथाः) मनोरथों को जो (अजीजनन्) सफल करते हैं। तथा (यत्) जो (अपीच्यं) गूढ़ (पदं) पद हैं, वह इस जीवात्मा को प्रदान करते हैं। और (ईं) उक्त परमात्मा को (सं) भलीभांति प्राप्त होकर (उपज्रयति) अपने मनोरथों को सिद्ध कर लेता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह बतलाया गया है, कि मनुष्य प्राणायाम द्वारा संयमी बनकर उन्नतिशील बने ॥५॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा (**धियाकृतं**) संस्कृत बुद्धि से साक्षात्कार किया हुआ (**हिरण्ययं**) प्रकाशरूप (**श्येनो न योनिं सदनं**) अपने स्थिर स्थान घोंसले को प्राप्त होता है उसी तरह जैसे बाज (**आसदं**) स्थान को (**एषति**) प्राप्त होता है। (**ईं**) उक्त (**प्रियं**) सबके प्यारे परमात्मा की उपासक (**बर्हिषि**) हृदय में (**गिरा**) वेदवाणियों से (**आरिणन्ति**) स्तुति करते हैं। जैसे विद्युत् चराचर में व्याप्त हो जाती है, वैसे ही (**यज्ञियः**) परमात्मा (**देवान्**) दिव्यगुण वाले विद्वानों को (**अप्येति**) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहें, वे अपने हृदय में उसका ध्यान करें ॥६॥

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥७॥

पदार्थः—(**अरुषः**) प्रकाशस्वरूप (**वृषा**) आनन्द का वर्षक (**कविः**) सर्वज्ञ (**व्यक्तः**) स्फुट परमात्मा (**दिवः परा**) द्युलोक से भी परे है। तथा (**त्रिपृष्ठः**) त्रिकालज्ञ परमात्मा (**गाः**) उपासनारूपी वाणी को (**अभि**) लक्ष्य करके (**अनविष्ट**) स्थिर है। और वह परमेश्वर (**सहस्रणीतिः**) अनन्त शक्ति वाला है। और (**यतिः**) लोकमर्यादा का हेतु, और (**परायतिः**) सर्वत्र व्याप्त है। परमात्मा (**पूर्वी उषसः**) अनादि काल की उषाओं में (**रेभो न**) प्रकाशमान सूर्य के समान (**विराजति**) विराजमान है ॥७॥

भावार्थः—अनादि काल से परमात्मा अनेक उषाकालों को प्रकाशित करता हुआ सर्वत्र विद्यमान है ॥७॥

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते तं गोअग्रया ॥८॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**रूपं**) रूप को (**त्वेषं**) दीप्यमान (**कृणुते**) करता है। (**वर्णः**) वरणीय (**सः**) वह परमात्मा (**यत्र**) जिस (**समृता**) संग्राम में (**अशयत्**) स्थिर होता है (**अस्य**) उसमें (**स्रिधः**) दुष्टों को (**सेधति**) मारता है। (**दैव्यं जनं**) दिव्यशक्ति वाले मनुष्य को वह (**अप्साः**) सत्कर्मों का दाता (**संस्तुती**) सुन्दर स्तुति योग्य परमात्मा (**स्वधया**) अपने आनन्द से (**याति**) परिपूर्ण है। और (**गोअग्रया**) वेदवाणी से (**संनसते**) सर्वत्र संगत होता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का वर्णन किया गया है, कि परमात्मा प्रत्येक रूप को प्रदीप्त करने वाला है। उसी की सत्ता से सम्पूर्ण पदार्थ स्थिर हैं। और स्वयं वह निर्लेप होकर इन सब चीजों में विराजमान है ॥८॥

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९॥

पदार्थः—(**उक्षेव**) विद्युत् के समान (**यूथा**) गणों को (**परियन्**) प्राप्त होकर (**अरावीत्**) शब्दायमान होता है (**सूर्यस्य**) सूर्य को (**त्विषीः**) दीप्तिका (**अध्यधित**) धारण कराता है। (**दिव्यः**) दिव्य गुण वाला (**सुपर्णः**) चेतन (**सोमः**) परमात्मा (**क्षां**) पृथिवी का (**अवचक्षत**) निर्माण करने वाला है। वह परमात्मा (**जाः**) प्रजाको (**क्रतुना**) ज्ञानदृष्टि से (**परिपश्यते**) देखता है ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी ज्ञानदृष्टि से सम्पूर्ण पदार्थों को देखता है। और सूर्यादि लोकलोकान्तरों का प्रकाशक है ॥९॥

नवम मण्डल में यह इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ हरिमन्त ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१—३, ६, ७ निचृज्जगती । ४, ८ जगती । ५ विराड्जगती । ९ पादनिचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अत्र परमात्मोपदेश निरूपण करते हैं ॥

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**उद्वाचं**) सदुपदेश की (**ईरयति**) प्रेरणा करने वाला है। (**मती**) बुद्धि का (**हिन्वते**) प्रेरक है। और (**पुरुष्टुतस्य**) विज्ञानियों को (**परिप्रियः**) सर्वोपरि प्यारा परमात्मा (**कतिचित्**) अनन्त दान देता है। (**अरुषो न**) विद्युत की तरह वह परमात्मा (**युज्यते**) युक्त होता है। ऐसे (**हरिं**) परमात्मा को

उपासक (मृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं । श्रौर उसका (संधेनुभिः) इन्द्रियों के द्वारा (कलशे) श्रन्तःकरणों में (श्रज्यते) साक्षात्कार किया जाता है ॥१॥

भावार्थः—जो लोग श्रपनी इन्द्रियों को संस्कृत बनाते हैं, श्रर्थात् शुद्ध मन वाले होते हैं, परमात्मा श्रवश्यमेव उनके ध्यान का विषय होता है ॥१॥

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदीं मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

पदार्थः—(यदि) जब (बहवो मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (साकं) साथ ही (वदन्ति) उसका यशोगान करते हैं तब (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरे) श्रन्तःकरण में (सोमं) शान्ति रूप परमात्मा (दुहुः) परिपूर्ण रहते हैं श्रौर (सुगभस्तयो नरः) भाग्यवान् लोग (यदा) जब (मृजन्ति) उसका साक्षात्कार करते हैं । तब (सनीळाभिर्दशभिः) बलयुक्त दश इन्द्रियों से (काम्यं मधु) यथेष्ट श्रानन्द को लाभ करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जब कर्मयोगी लोग उस परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, तब सामाजिक वल उत्पन्न होता है । श्रर्थात् बहुत से लोगों की संघति होकर परमात्मा के यश का गान करते हैं ॥२॥

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥३॥

पदार्थः—(श्ररममाणः) जितेन्द्रिय कर्मयोगी (गाः) इन्द्रियों का (श्रत्येति) श्रतिक्रमण करता है । (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) सूर्य की प्रिय दुहिता उषा के (श्रभि) सन्मुख (तिरोरवं) शब्दायमान होकर स्थिर होता है । श्रौर वह कर्मयोगी (द्वयीभिः स्वसृभिः) कर्मयोग की दोनों वृत्तियाँ जो एक मन से उत्पन्न होने के कारण स्वसृभाव धारण किये हुई हैं, श्रौर (जामिभिः) जो युगलरूप से रहती हैं, उनसे (संक्षेति) विचरता है । (विनङ्गृसः) स्तोता (श्रस्मै) उस कर्मयोगी के लिये (जोषमन्वभरत्) प्रीति से सेवन करता है ॥३॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष के यश को स्तोता लोग गान करते हैं । क्योंकि उनके हाथ में इन्द्रिय रूपी घोड़ों की रासें रहतीं हैं । इसी श्रभिप्राय से उपनिषत् में यह कहा है, कि "सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्" वही पुरुष इस संसाररूपी मार्ग को तै करके विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है, श्रन्य नहीं ॥३॥

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! परमात्मा (नृधूतः) सबको कम्पायमान करने वाला, श्रौर (श्रद्रिषुतः) संस्कृत इन्द्रियों की वृत्तियों से साक्षात्कार को जो प्राप्त है, तथा (बर्हिषि) यज्ञों में (प्रियः) जो प्रिय है, श्रौर जो जगदीश्वर (गवां पतिः) लोकलोकान्तरों का पति है, तथा (प्रदिवः) द्युलोक का (इन्दुः) प्रकाशक है । श्रौर (ऋत्वियः) त्रिकालज्ञ (पुरन्धिवान्) सर्वज्ञ तथा (मनुषः) मनुष्यों के लिये (यज्ञसाधनः) ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञादिकों का देने वाला वह (सोमः) परमात्मा (शुचिर्धिया) शुद्ध बुद्धि से साक्षात्कार किया हुश्रा (ते) तुमको (पवते) पवित्र करता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोक-लोकान्तरों का श्रधिपति परमात्मा है, उसको जब मनुष्य ज्ञानदृष्टि से लाभ कर लेता है, तब श्रानन्दित हो जाता है ॥४॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३ रासदद्धरिः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुमको (श्रनुष्वधं) बल के लिये (सोमः) शान्तरूप परमात्मा (पवते) पवित्र करे । उक्त परमात्मा (नृबाहुभ्यां) मनुष्यों के ज्ञान श्रौर कर्म द्वारा (चोदितः) प्रेरणा किया हुश्रा, तथा (धारया) धारणा रूप बुद्धि से (सुतः) साक्षात्कार किया हुश्रा पवित्र करे । उक्त परमात्मा के पवित्र किये हुए तुम (क्रतूनाप्राः) कर्मों को प्राप्त हो । (श्रध्वरे) धर्मयुद्ध में (मतीः) श्रभिमानी शत्रुश्रों को तुम (समजैः) भलीभाँति जीतो । (वेर्न) जिस प्रकार विद्युत् (द्रुषत्) प्रत्येक गतिशील पदार्थों में स्थिर है, इसी प्रकार (हरिः) परमात्मा (चम्वोः) द्युलोक तथा पृथिवीलोक में (श्रासदत्) स्थिर है ॥५॥

भावार्थः—कर्मयोगी उद्योगी पुरुष धर्मयुद्ध में श्रन्यायकारी शत्रुश्रों पर विजय पाते हैं । श्रौर विद्युत् के समान सर्वव्यापक परमात्मा पर भरोसा रखकर इस संसार में श्रपनी गति करते हैं ॥५॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६॥

पदार्थः—(पुनर्भुवः) वारम्वार श्रभ्यास करने वाली (गावो मतयः) बुद्धिरूपी इन्द्रियवृत्तियाँ (संयतः) संयम को प्राप्त होती हुई (ऋतस्य योना सदने) सचाई के

यज्ञ में स्थिर **(ईं)** उक्त परमात्मा को **(संयन्ति)** प्राप्त कराती हैं । और **(मनीषिणः)** बुद्धिमान् **(अपसः)** कर्मयोगी **(कवयः)** स्तुति की शक्ति रखने वाले लोग **(कविं)** सर्वज्ञ **(अंशुं)** सर्वव्यापक तथा **(स्तनयन्तं)** सम्पूर्ण संसार का विस्तार करने वाले **(अक्षितं)** क्षयरहित परमात्मा का **(दुहन्ति)** साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग सर्वाधार और सर्वेश्वर परमात्मा के ज्ञान को लाभ करते हैं, वे ही उसके सचाई के यज्ञ के ऋत्विक् बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥७॥

पदार्थः—**(इन्द्रस्य वज्रः)** रुद्ररूप परमात्मा **(वृषभः)** सब कामनाओं की वृष्टि करने वाला तथा **(विभूवसुः)** परिपूर्ण ऐश्वर्य वाला और **(चारु मत्सरः)** जिसका सर्वोपरि आनन्द है, वह उक्त **(सोमः)** परमात्मा **(हृदे)** हमारे हृदय को **(पवते)** पवित्र करे । **(पृथिव्या नाभा)** जो परमात्मा पृथिवी की नाभि में स्थिर है, और **(महो-दिवः)** बड़े द्युलोक का **(धरुणः)** धारण करने वाला है तथा **(अपामूर्मौ)** जल की लहरों में और **(सिन्धुषु)** समुद्रों में **(अन्तरुक्षितः)** अभिषिक्त किया गया है । उक्त गुणविशिष्ट परमात्मा हमको पवित्र करे ॥७॥

भावार्थः—जो लोग उक्त गुण से विशिष्ट परमात्मा का उपासन करते हैं, और उसमें अटल विश्वास रखते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव पवित्र करता है । और जो हतविश्वास होकर, ईश्वर के नियम का उल्लंघन करते हैं, परमात्मा उनके मदको चूर्ण करने के लिए वज्र के समान उद्यत रहता है ॥७॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशोरयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥८॥

पदार्थः—**(सुक्रतो)** हे शोभनयज्ञेश्वर परमात्मन् ! **(सः)** वह पूर्वोक्त आप **(तु)** शीघ्र **(पार्थिवं)** पृथिवीलोक और **(रजः)** अन्तरिक्षलोक के **(परि)** चारों ओर **(पवस्व)** हमको पवित्र करें । और **(आधून्वते स्तोत्रे)** कम्पायमान हुए तथा स्तुति करते हुए मुझको **(शिक्षन्)** शिक्षा करते हुए आप पवित्र करें । और **(सादनस्पृशः)** घर के शोभाभूत **(वसुनः)** जो धन हैं उनसे **(नः)** हमको **(मा निर्भाक्)** वियुक्त मत करिये । इस लिये **(पिशङ्गं)** स्वर्णादियुत **(बहुलं रयिं)** बहुत धन को **(वसीमहि)** हम लोग प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से हम लोग पृथिवी तथा अन्तरिक्ष लोक के चारों ओर परिभ्रमण करें और नाना प्रकार धनों को प्राप्त करें ॥८॥

आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥९॥

पदार्थः—**(इन्दो)** प्रकाशरूप परमात्मन् ! आप **(शतदातु अश्व्यं)** विद्युदादि सैंकड़ों प्रकार के कलाकौशलयुक्त और **(सहस्रदातु)** सहस्रों प्रकार के **(पशुमत् हिरण्यवत्)** पशु और हिरण्यादियुत धन और **(रेवतीरिषः)** धनयुक्त ऐश्वर्य **(बृहतीः)** जो सबसे बड़े ह, उनको हमारे लिये **(उपमास्व)** निर्माण करिये । **(पवमान)** सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! **(स्तोत्रस्य)** उक्त स्तुति के करने वाले **(नः)** हमको **(अधिगहि)** आप ग्रहण करें ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने कर्मयोग और उद्योग के अनन्तर अपने कर्मों को ईश्वरार्पण कर देता है, अर्थात् निष्काम भाव से कर्मों को करता है, परमात्मा अवश्यमेव उसका उद्धार करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः--१ जगती । २--७ निचृज्जगती । ८, ९ विराड्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब परमात्मा यज्ञकर्म का उपदेश करते हैं ।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥

पदार्थः—**(सत्यस्य नावः)** सचाई की नौकारूप उक्त यज्ञ **(सुकृतं)** शोभन कर्म वाले को **(अपीपरन्)** ऐश्वर्य से परिपूर्ण करते हैं । **(स सोमः)** उक्त परमात्मा ने **(मूर्ध्नः)** सर्वोपरि **(त्रीन्)** तीन लोकों के **(आरभे)** आरम्भ के लिये **(असुरश्चक्रे)** असुरों को बनाया । और **(द्रप्सस्य)** कर्मयज्ञ के **(स्रक्वे)** मूर्धास्थानी **(धमतः)** प्रतिदिन कर्म करने में तत्पर कर्मयोगियों को बनाया । उक्त कर्मयोगी **(ऋतस्य योना)** यज्ञ के कारण रूप कर्म में **(समस्वरन्)** चेष्टा करते हुए **(समरन्तः)** सांसारिक यात्रा करते हैं । उक्त कर्मयोगियों को परमात्मा ने **(नाभयः)** नाभिस्थानीय बनाया ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में असुरों के तीन लोकों का वर्णन किया है। और वे तीन लोक काम, क्रोध और लोभ हैं! इसी अभिप्राय से गीता में यह कहा है, कि "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥" और इनसे विपरीत कर्मयोगियों को यज्ञ की नाभि और यज्ञ का मुखरूप वर्णन किया है ॥१॥

अब असुरों की निन्दा करते हुए, और कर्मयोगियों
की प्रशंसा करते हुए कहते हैं ॥

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥

पदार्थः—(**महिषाः**) महान् पुरुष (**सम्यञ्चः**) संगति वाले (**सम्यक्**) भलीभाँति (**सिन्धोरूर्मावधि**) इस संसाररूपी समुद्र में (**वेनाः**) अभ्युदय की अभिलाषा करने वाले (**अहेषत**) वृद्धि को प्राप्त होते हैं। और (**अवीविपन्**) दुष्टों को कम्पायमान करते हैं। (**मधोर्धाराभिः**) ऐश्वर्य की धाराओं से (**जनयन्तः**) प्रकट होते हुए तथा (**अर्कमित्**) अर्चनीय परमात्मा को प्राप्त होते हुए, (**प्रियामिन्द्रस्य तन्वं**) ईश्वर के प्रिय ऐश्वर्य को (**अवीवृधन्**) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के महत्त्व को धारण करके महान् पुरुष बनते हैं, वे इस भवसागर की लहरों से पार हो जाते हैं। और परमात्मा के यश का गान करके, अन्य लोगों को भी अभ्युदयशाली बना कर, इस भवसागर की धार से पार कर देते हैं ॥२॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥

पदार्थः—(**पवित्रवन्तः**) उक्त पुण्य कर्म वाले कर्मयोगी (**परिवाचं**) वेदरूपी वाणी का (**आसते**) आश्रयण करते हैं। (**एषां**) इन कर्मयोगियों का (**प्रत्नः**) प्राचीन (**पिता**) परमात्मा (**व्रतं**) इनके व्रत की (**अभिरक्षति**) रक्षा करता है। और उनके सामने (**महः समुद्रं**) इस बड़े संमाररूप सागर को (**वरुणं**) जो वरणरूप अपनी लहरों में डुबा लेने के लिये उद्यत है, उसको (**तिरोदधे**) परमात्मा तिरस्कार कर देता है। (**धरुणेषु**) उक्त कर्मयोग और ज्ञानयोगादि-साधनों में (**आरभं**) आरम्भ को (**धीराः**) धीरपुरुष (**इव**) ही (**शेकुः**) समर्थ होते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि पवित्र कर्मों वाले पुरुष ही वाग्मी बनते हैं। और वे ही इस भवसागर की लहरों से पार हो सकते हैं, अन्य नहीं। इसी अभिप्राय से उपनिषत् में यह कहा है, कि "कश्चिद्धीर आत्मानमैक्षत्" कि यह संसार छुरे की धार है। कोई धीर पुरुष ही इस धार का अतिक्रमण कर सकता है, सब नहीं। भवसागर की लहरें और छुरे की धार यह एक अत्यन्त उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए वाणी का अलंकार है ॥३॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (**ते**) आपके (**सेतवः**) मर्यादारूप सेतु (**पदेपदे सन्ति**) पद-पद पर हैं। और वे मर्यादारूप सेतु (**पाशिनः**) पापिओं के दण्डदाता हैं, (**भूर्णयः**) शीघ्रता करने वाले हैं और (**न निमिषन्ति**) उनके सामने कोई आँख उठा कर नहीं देख सकता। (**अस्य**) उस परमात्मा के (**स्पशः**) सारभूत (**असश्चतः**) अनन्त ज्योतियें हैं। हे परमात्मन्! आप (**सहस्रधारे**) अनन्त आनन्द-स्वरूप में (**अव**) हमारी रक्षा करें। और (**दिवोनाके**) द्युलोक के मध्य में (**समस्वरन्**) स्रवित होते हुए, आपके आनन्द (**मधुजिह्वा**) जो अत्यन्त आह्लादजनक हैं, वे हमको प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के आनन्द की सहस्रों धारें इस संसारमें इतस्ततः सर्वत्र बह रही हैं। जो पुरुष परमात्मा की आज्ञाओं को पालन करता है, वही उन आनन्दों का लाभ करता है, अन्य नहीं ॥४॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५॥

पदार्थः—जो लोग (**पितुर्मातुः**) पिता-माता की शिक्षा को पाकर सुशिक्षित हैं, और (**ये**) जो लोग (**ऋचा**) वेद की ऋचाओं के द्वारा (**समस्वरन्**) अपनी जीवन-यात्रा करते हैं (**शोचन्तोऽव्रतान्**) तथा शोकशील अव्रतियों का (**संदहन्तः**) भलीभांति दाह करने वाले हैं। और जो (**मायया**) अपनी अपूर्व-शक्ति से (**इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति**) ईश्वर की आज्ञा को भंग करने वाले राक्षसों का नाश करते हैं, और जो राक्षस (**असिक्नीं**) रात्रि के अन्धकार के समान (**भूमनः**) भूलोक और (**दिवः**) द्युलोक के

(परि) चारों ओर (त्वचं) त्वचा के समान वर्तमान हैं, उनको नाश करने वाले पितृमान् और मातृमान् कहलाते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य इस संसार में चार प्रकार से शिक्षा का लाभ करता है। वे चार प्रकार यह हैं, कि माता, पिता, आचार्य, और गुरु। इसी अभिप्राय से उपनिषत् में कहा है, कि "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" ॥५॥

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६॥

पदार्थः—(**अनक्षासः**) अज्ञानी लोग (**बधिराः**) जो हितोपदेश को भी नही सुन सकते वे (**ऋतस्य पन्थां**) सचाई के मार्ग को (**अपाहासत**) छोड़ देते हैं। (**दुष्कृतः**) वे दुष्टाचारी इस भवसागर की लहर को (न तरन्ति) नहीं तर सकते। और (**ये**) जो (**प्रत्नात्**) प्राचीन (**मानात्**) आप्त-पुरुष से (**अध्या**) आये हुए उपदेशों को (**समस्वरन्**) पालन करते हुए (**श्लोकयन्त्रासः**) सत्पुरुषों की संगति में रहने वाले हैं तथा (**रभसस्य मन्तवः**) परमात्मा की आज्ञा मानने वाले हैं, वे इस भवसागर की लहर को तर जाते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग आप्त-पुरुषों के वाक्यों पर विश्वास करते हैं, और सामाजिक-बल को धारण करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥६॥

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥

पदार्थः—(**नृचक्षसः**) कर्मयोगी और (**सुदृशः**) ज्ञानयोगी (**स्वञ्चः**) गतिशील और (**स्पशः**) बुद्धिमान् (**अद्रुहः**) किसी के साथ द्रोह न करने वाले हैं। तथा (**इषिरासः**) गमनशील (**रुद्रासः**) परमात्मा के न्याय पालन करने के लिये रुद्ररूप होते हैं (**एषां**) उक्तगुण-सम्पन्न पुरुषों का परमात्मा सदैव रक्षक होता है। और वे लोग (**सहस्रधारे वितते**) अनन्त आनन्दमय विस्तृत (**पवित्रे**) पवित्र परमात्मा में (**वाचमापुनन्ति**) अपनी वाणी को उसकी स्तुति द्वारा पवित्र करते हैं। उक्त प्रकार के विद्वान् ही (**मनीषिणः**) मनस्वी और (**कवयः**) क्रान्तदर्शी होते हैं ॥७॥

भावार्थः जो लोग परमात्मा के स्वरूप में चित्तवृत्ति को लगा कर अपने आपको पवित्र करते हैं, वे ही कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥७॥

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे ।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८॥

पदार्थः—(**ऋतस्य गोपाः**) सचाई की रक्षा करने वाला (**सुक्रतुः**) शोभन कर्मों वाला कर्मयोगी (**न दभाय**) जो किसी से दबाया नहीं जाता (**सः**) वह (**पवित्रा**) अपने पवित्र (**हृद्यन्ते**) अन्तःकरण में (**त्री**) परमात्मा की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयरूप तीनों शक्तियों को (**आदधे**) धारण करता है। (**विद्वान् सः**) वह विद्वान् पुरुष (**विश्वा भुवना**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (**अभिपश्यति**) देखता है। और (**कर्ते**) कर्तव्य में (**अव्रतान्**) जो अव्रती (**अजुष्टान्**) और परमात्मा से वियुक्त हैं, उनको (**अवविध्यति**) मारता है ॥८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा पर अटल विश्वास रखने वाले हैं, वे किसी से दबाये नहीं जा सकते ॥८॥

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥

पदार्थः—(**अप्रभुः**) जो पुरुष कर्मयोगी नहीं है, वह (**कर्तमवपदाति**) कर्मरूप मार्ग से गिर जाता है। (**अत्र**) इस कर्म में (**धीराश्चित्**) कर्मयोगी पुरुष ही (**तत्**) उसके समक्ष (**समिनक्षन्तः**) गतिशील होकर (**आशत**) स्थिर होते हैं। (**ऋतस्य**) सचाई का (**तन्तुः**) विस्तार करने वाला (**विततः**) जो विस्तृत है, वह परमात्मा (**वरुणस्य मायया**) सबको वशीभूत रखने वाली अपनी शक्ति के साथ (**पवित्रे**) उसके पवित्र अन्तःकरण में और (**जिह्वाया अग्रे**) जिह्वा के अग्रभाग में (**आ**) निवास करता है ॥९॥

भावार्थः—जो कर्मयोगी और उद्योगी पुरुष हैं, उन्हीं के अन्तःकरण में परमात्मा निवास करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य चतुस्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ कक्षीवानृषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती । २, ६ विराड्जगती । ४, ७ जगती । ५, ९ निचृज्जगती । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—७, ९ निषादः । ८ धैवतः ॥

अब अभ्युदय के अधिकारियों का निरूपण करते हैं ॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

पदार्थः—(**वने**) भक्ति के विषय में (**यत्**) जब (**जातः**) तत्काल उत्पन्न (**शिशुः**) बालक के (**न**) समान यह जिज्ञासु पुरुष स्वाभाविक रीति से (**चक्रदत्**) रोता है, तब (**स्वः**) सुखस्वरूप (**वाजी**) बलस्वरूप (**अरुषः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सिषासति) उसके उद्धार की इच्छा करता है। (**दिवोरेतसा**) जो परमात्मा द्युलोक से लेकर लोक-लोकान्तरों के साथ अपनी शक्ति से (**सचते**) संगत है। और (**पयोवृध**) जो अपने ऐश्वर्य से वृद्धि को प्राप्त है, (**तं**) उस परमात्मा से (**सप्रथः**) विस्तृत अभ्युदय और (**शर्म**) निःश्रेयस सुख—इन दोनों की हम लोग (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जब पुरुष दूध पीने वाले बच्चे के समान मुक्तकण्ठ से रमात्मा के आगे रोता है, तब परमात्मा उसे अवश्यमेव ऐश्वर्य देता है ॥१॥

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

पदार्थः—(**दिवो यः स्कम्भः**) जो द्युलोक का सहारा है, और (**धरुणः**)पृथिवी ा धारण करने वाला है, तथा (**स्वाततः**) विस्तृत (**आपूर्णः**) सर्वत्र परिपूर्ण (**अंशुः**) प्रापक परमात्मा (**विश्वतः**) सब ओर से (**पर्येति**) प्राप्त है (**सः**) वह परमात्मा (**इमे ही रोदसी**) इस भूलोक और अन्तरिक्ष लोक को (**आवृता**) अद्भुत कर्म से (**यक्षत्**) गत करता है, और (**समीचीने**) संगत द्युलोक और भूलोक को वही परमात्मा **दाधार**) धारण करता है। वह (**कविः**) सर्वज्ञ परमेश्वर (**इषः**) ऐश्वर्यों को (**सं**) ता है ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवी-लोकादिकों को लामात्र से धारण किया है, वही सब ऐश्वर्यों का दाता है। अन्य हीं ॥२॥

हि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेरृतं यते ।
शे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिरृग्मियः ॥३॥

पदार्थः—(**ऋग्मियः**) स्तुतियोग्य (**इत ऊतिः**) सब प्रकार का रक्षक (**यः**) जो (**नेता**) नियन्ता है, और (**अपां वृषा**) सब प्रकार के कर्मों का फल देने वाला (**उस्रियः**) प्रकाश स्वरूप है (**इतः**) द्युलोक से उत्पन्न (**वृष्टेः**) वृष्टि आदिका (**ईशे**) ईश्वर है। (**महि**) सबसे बड़ा है, (**प्सरः**) सबका अत्ता है, (**सुकृतं**) शोभनकर्मा है। (**सोम्यं**) सौम्य स्वभाव वाला है। (**अदितेः**) उस ज्ञानस्वरूप परमात्मा से (**गव्यूतिः**) इस जीवात्मा का मार्ग (**मधु**) मीठा और (**उर्वी**) विस्तृत होता है। और (**ऋतं यते**) सत्यरूप यज्ञ को प्राप्त होने वाले पुरुष के लिये वह परमात्मा शुभ करता है ॥३॥

भावार्थः—सन्मार्ग चाहने वाले पुरुषों को उचित है, कि वे सचाई का यज्ञ करने के लिये परमात्मा की शरण लें ॥३॥

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४॥

पदार्थः—जिस परमात्मा से (**नभः**) द्युमण्डल से (**आत्मन्वत्**) सारभूत (**घृतं**) जलादिक (**दुह्यते**) दुहे जाते हैं, और (**ऋतस्य**) जो सचाई की (**नाभिः**) नाभि है और (**अमृतं**) अमृतस्वरूप है वह (**पयः**) तृप्तिरूप परमात्मा (**विजायते**) सर्वत्र विराजमान है। (**नरः**) जो पुरुष उसकी उपासना करता है (**तं**) उसको (**पेरवः**) सर्वरक्षक शक्तियां (**प्रीणन्ति**) तृप्त करती हैं। और (**समीचीनाः**) सुन्दर (**सुदानवः**) दानशील शक्तियां उसके लिये (**हितं**) हित की (**अवमेहन्ति**) वृष्टि करती हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिये अपनी दानशील शक्तियों से अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों की वृष्टि करता है ॥४॥

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५॥

पदार्थः—(**ऊर्मिणा**) अपने आनन्द की लहरों से (**सचमानः**) संगत (**अंशुः**) सर्वव्यापक परमात्मा (**अरावीत्**) सदुपदेश करता है। और (**मनुषे**) मनुष्य के लिये (**देवाव्यं त्वचं**) देवभाव को पैदा करने वाले शरीर को (**पिन्वति**) पुष्ट करता है। तथा (**अदितेरुपस्थे**) इस पृथिवी पर (**गर्भं**) नाना प्रकार के औषधियों के उत्पत्तिरूप गर्भ को (**आदधाति**) धारण कराता है। (**येन**) जिससे (**तोकं**) दुःख के नाश करने वाले (**तनयं**) पुत्र-पौत्र को (**धामहे**) हम लोग धारण करें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही सुकर्मा-पुरुष को नीरोग और दिव्य शरीर मिलता है। जिससे वह सत्सन्तति प्राप्त कर इस संसार में अभ्युदयशाली बनता है ॥५॥

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजा'तीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६॥

पदार्थः—(सहस्रधारे) अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यवाले (तृतीये) तीसरे अन्तरिक्ष लोक में (रजसि) जो रजोगुणविशिष्ट है, उसमें (प्रजावतीः) नाना प्रकार की प्रजा वाले ऐश्वर्य (सन्तु) हमको प्राप्त हों (असश्चतः) जो ऐश्वर्य जीव को अशक्त करने वाले न हों (ताः) वे शक्तियाँ (घृतश्चुतः) जो नाना प्रकार के स्निग्ध पदार्थों की देने वाली हैं (हविरमृतं भरन्ति) और हविरूप अमृत को देने वाली हैं। और (दिवोऽवो निहिताः) द्युलोक के नीचे रक्खी हुई हैं, जिनमें (चतस्रो नाभः) चार प्रकार की दीप्ति हैं, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों प्रकार के फल संयुक्त हैं, वे शक्तियाँ परमात्मा हमें प्रदान करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पर प्रसन्न होता है, उनको चारों प्रकार के फलों का प्रदान करता है ॥६॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जब (सिषासति) मनुष्य सुखप्रद ऐश्वर्य को चाहता है, तब परमात्मा उसके लिए (श्वेतं रूपं कृणुते) ऐश्वर्ययुक्त रूप करता है। (मीढ्वान्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों का देने वाला (सोमः) परमात्मा (भूमनः) सब लोक-लोकान्तरों का (वेद) ज्ञाता है। (स ईं) वह परमात्मा इस उपासक को (धिया) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (सचते) संगत होता है। और वह (दिवः) इस द्युलोक से (उद्रिणं) बहुत जल वाले (कवन्धं) वृष्टि को (अववर्षत्) उत्पन्न करता है। और (प्रवत्) रुद्र (शमी) कर्म वाले (असुरः) राक्षसों को दण्ड (अभि) देता है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग अनन्य-भक्ति द्वारा परमात्म-परायण होते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव तेजस्वी बनाता है। और जो दुष्कर्मा बनकर अन्याय करते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव दण्ड देता है ॥७॥

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥

पदार्थः—(अध) जब (श्वेतं कलशं) सत्व-गुण-विशिष्ट अन्तःकरण को (गोभिः) जो इन्द्रियवृत्तियों से (अक्तं) रञ्जित है (कार्ष्मन्) जो अत्यन्त शुद्ध हो गया है, उसमें (वाजी) बलवान् परमात्मा (आक्रमीत्) अपनी दीप्ति द्वारा प्रविष्ट होता है। उस परमात्मा का (ससवान्) भजन करता हुआ (मनसा देवयन्तः) मन से प्रकाश करते हुए, (गोनां) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों के (शतहिमाय) सौ हेमन्त-ऋतु पर्यन्त अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को (कक्षीवते) विद्वान् के लिये (हिन्विरे) प्रेरणा करता है ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष शुद्धिकी परा काष्ठा को पहुँच जाता है परमात्मा उस पर अवश्यमेव दया करता है ॥८॥

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥९॥

पदार्थः—(अद्भिः) सत्कर्मों से (पपृचानस्य) अभिव्यक्त (ते) आपका (रसः) आनन्द (अव्यः) जो सर्वरक्षक है, वह (वारं) वरणीय पुरुष के प्रति (विधावति) विशेषरूप से प्राप्त होता है। (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (सोम) परमात्मन्! आप (कविभिः) विद्वानों से (मृज्यमानः) साक्षात्कृत हैं। और (पवमान) पवित्र करने वाले हैं। और (मदिन्तम) सबको आह्लादकारक आप (इन्द्राय) कर्मयोगी की (पीतये) तृप्ति लिये (स्वदस्व) प्रियकारक हों ॥९॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोग से अपने को पवित्र बनाते हैं, उनके लिये परमात्मा अवश्यमेव अपने ब्रह्मामृत का प्रदान करते हैं ॥९॥

नवम मण्डल में यह चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती । ५ विराड्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब ईश्वर को सूर्यादिकों के प्रकाशकत्वरूप से वर्णन करते हैं ॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थः—(विचक्षणः) वह सर्वज्ञ परमात्मा (विष्वञ्चं) विविध प्रकार वाले

इस संसार को (रयं) रम्य बनाकर (अध्यरुहत्) तथा सर्वोपरि होकर विराजमान हो रहा है। वह परमात्मा (बृहन्) बड़ा है। और (बृहतः सूर्यस्य) इस बड़े सूर्य के चारों ओर (आ) व्याप्त होता है। और (चनोहितः) सब का हितकारी परमात्मा (अभिप्रियाणि) सब का कल्याण करता हुआ, (पवते) पवित्र करता है। तथा (यह्वः) सबसे बड़ा है। (येषु नामानि) जिसमें अनन्त नाम हैं, वह परमात्मा (अधिवर्धते) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त है ॥१॥

भावार्थः—इस निखिल ब्रह्माण्ड का निर्माता परमात्मा सूर्यादि सब-लोक-लोकान्तरों का प्रकाशक है। इसी अभिप्राय से कहा है, कि "न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः" अर्थात् परमेश्वर का प्रकाशक कोई नहीं, वही सबका प्रकाशक है ॥१॥

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१ नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥

पदार्थः—(दिवः) द्युलोक के (रोचने) प्रकाश के लिये (तृतीयं) तीसरा (नाम) नाम (अधिदधाति) धारण करता है तथा (पुत्रः पित्रोः) सन्तान और सन्तानी भाव का (अपीच्यं) अधिकरण है। और (ऋतस्य जिह्वा) सचाई की जिह्वा है। तथा (पवते) सबको पवित्र करता है। (मधु) मधुर (प्रियं) प्रिय वचनों का (वक्ता) कथन करने वाला है। और (अदाभ्यः) अदम्भनीय वह परमात्मा (अस्या धियः) इन कर्मों का अधिपति है ॥२॥

भावार्थः—जीव के शुभाशुभ सब कर्मों का अधिपति परमात्मा है। उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा से सब द्युभुवादि लोक-लोकान्तरों का प्रकाश होता है ॥२॥

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥३॥

पदार्थः—(त्रिपृष्ठः) भूः, भुवः, स्वः, यह तीन लोक हैं पृष्ठस्थानी जिसके वह परमात्मा (उषसः) उषाकालका प्रकाशक होकर (अधिविराजति) विराजमान है। (ऋतस्य) सचाई का (दोहनाः) दोहन करने वाले (ईं) इस परमात्मा को (अभ्यनूषत) उपासक-गण उपासना द्वारा विभूषित करते हैं। (हिरण्यये कोशे) प्रकाशरूप अन्तःकरण में (येमानः) सम्पूर्ण नियमों का कर्ता वह परमात्मा (अचिक्रदत्) शब्दायमान होता हुआ (नृभिः) उपासक लोगों से स्तुति किया गया निवास करता है (कलशान्) उनके अन्तःकरणों को (अवद्युतानः) निरन्तर प्रकाश करता हुआ (आ) विराजमान है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उषा के प्रकाशित सूर्यादिकों का भी प्रकाशक है। और वह पुण्यात्माओं के स्वच्छ अन्तःकरण को हिरण्मय पात्र के समान प्रदीप्त करता है। अर्थात् जो पुरुष परमात्मपरायण होना चाहे, वह पहिले अपने अन्तःकरण को स्वच्छ बनाये ॥३॥

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥४॥

पदार्थः—(रोदसी मातरा) इस संसार के मातापितावत् वर्तमान जो द्युलोक, और पृथिवीलोक हैं, उनको (प्ररोचयन्) प्रकाशित करता हुआ (च) और (मतिभिरद्रिभिः) ज्ञानरूपी चित्तवृत्तियों से (सुतः) संस्कृत और (चनोहितः) सबका हितकारी (शुचिः) शुद्धस्वरूप परमात्मा (समया) सब ओर से (रोमाण्यव्या) सब पदार्थों की रक्षा करता हुआ (विधावति) विशेषरूप से गति करता है। (दिवेदिवे) प्रतिदिन (मधोर्धारा) अमृतवृष्टि से (पिन्वमाना) पुष्ट करता है ।४॥

भावार्थः—द्युलोक और पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों का प्रकाशक परमात्मा अपनी सुधामयी वृष्टि से सदैव पवित्र करता है ॥४॥

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ये ते मदा आहनसः) जो आप के स्वभाव वाणी के समान उपदेश करते हैं (तेभिः) उनसे (विहायसः) हमारा आप आच्छादन करें। और (इन्द्रं) कर्मयोगी को (मघं दातवे) ऐश्वर्य देने के लिये (चोदय) प्रेरणा कीजिये। (सोम) हे परमात्मन् ! (नृभिः) उपदेशकों द्वारा (परिपुनानः) हमको पवित्र करते हुए (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (प्रधन्व) प्राप्त होइये। और (आशिरं) हमारे आश्रयकी (अभिवासय) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो लोग एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करते हैं, परमात्मा उनकी सर्वथा रक्षा करते हैं। क्योंकि सर्वनियन्ता और सबका अधिष्ठाता एकमात्र वही है। जैसा कि हम पूर्व भी अनेक स्थलों में लिख आये हैं, कि

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" (तै० ३।१।।) "सर्वाणि वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्" (छा० १।९।१।।) ब्रह्मैवेदं विश्वम् (मु० २।२।११।।) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३।१४।१।।) आत्मैवेदं सर्वम् (छा० ७।२५।२।।) पुरुष एवेदं सर्वम्(ऋ० ८।४।१७।१।।) स एव जातः स जनिष्यमाणः (यजु० ३२। ४।।) नित्यो नित्यानाम्(कठ० ५।१३।।)नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् (मु० १।१।६।।) सत्यं ह्येव ब्रह्म (बृ० ५।४।१।।) ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् (श्वे० ३।२१।।) यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः (ऋ० १।७।१२। ५।।) यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव (ऋ० ८।७।३। ३।।) यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति (अथ० १०।८।४।१।।) ब्रह्मागामश्वं जनयन्त ओषधी र्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वतॉं अपः। सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ।। इत्यादि वेदोपनिषदों के वचनों में प्रसिद्ध है, कि परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है। अधिष्ठान, अधिकरण, आश्रय, ये एक ही वस्तु के नाम हैं। उसी परमात्मा ने इस चराचरात्मक संसार को उत्पन्न किया है। जिसको कोई आश्चर्य रूप से देख रहा है, कोई आश्चर्य रूप से सुन रहा है, और कोई इस गूढ़तत्त्व को न समझकर अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इसके कर्तृत्व का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। अर्थात् नास्तिक से नास्तिक भी जब इस बात का विचार करता है, कि इस विविध-रचना-संयुक्त-विश्व को किसने उत्पन्न किया, तो उसकी दृष्टि भी किसी अद्भुत शक्ति पर ही ठहरती है ।। अस्तु–

ये विचार तो उन लोगों के हैं, जो ब्रह्म को तर्कगम्य मानते हैं। और जिन आस्तिक-लोगों के विचार में ब्रह्म शब्द-गम्य है, उनके लिये प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं। इसी लिये हमने, ऋ. मं० १०। सू. ६५। मं. ११ में यह स्पष्ट कर दिया कि, ब्रह्म ने जब इस संसार को पहिले सूक्ष्मावस्था में बनाया, और फिर स्थूलावस्था में मेघाकार, फिर पृथिवी, वनस्पति, ओषधि, और फिर गवाश्वादिरूप से इस संसार की सृष्टि की।

कई एक लोग उक्त मन्त्र के ये अर्थ करते हैं,कि 'दिवि रोहयन्तः' द्युलोक में आरोहण करते हुए, 'सूर्यं' सूर्यलोक को आरोहण करते हुए 'सुदानवः' दानशील लोग ब्रह्म=अन्न, गौ, अश्वादि सृष्टिको (जनयन्तः) पैदा करते भये। इस अर्थको न केवल सायणाचार्य ने किया है किन्तु विलसन, ग्रीफ्थ, इत्यादि यूरोपियन-विद्वानों ने भी यही अर्थ किये हैं। और वे लोग हेतु यह देते हैं, कि 'जनयन्त' यह बहुवचन उक्त देवों में घट सकता है, ब्रह्म में नहीं। यदि उनसे यह पूछा जाय, कि 'आर्या व्रता विसृजन्त' इस वाक्य में व्रता का व्रतानि कैसे बना लिया और आर्या का श्रेष्ठानि कैसे बना लिया ? तो उत्तर यही मिलेगा, कि वेद में इस लौकिकव्याकरण का बल नहीं चलता। यदि इसी प्रकार लौकिक व्याकरण का त्याग करना है, तो ब्रह्म को कर्ता रखकर यह अर्थ क्यों न किए जायँ, कि ब्रह्म ने सम्पूर्ण पृथिवी-पर्वतादि पदार्थों को उत्पन्न किया, इस उदाहरण से हमारा तात्पर्य व्याकरण की लघुता करने का नहीं। किन्तु जो लोग व्याकरण का अन्यथा उपयोग करके वेदार्थ को बिगाड़ते हैं, उनकी भूल दूर करने का है। इसी प्रकार मं० १ सू० २४ मं० ८ में 'पन्थानं' के स्थान में वेद में पन्थां है। और सूर्यस्य के स्थान में सूर्याय है। इसी प्रकार अनेक स्थलों में 'विप्रेभिः प्राचैः रथीः' इत्यादि अनेक प्रयोग ऐसे पाये जाते हैं, जो अज्ञों के गर्व को भञ्जन करके वैदिक साहित्य के गर्व को स्थिर करते हैं। अस्तु---

मुख्य प्रसंग यह है, कि 'आशिरम्' हमारे आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति करने वाला परमात्मा, हममें कर्मयोगियों को उत्पन्न करके, हमको कर्मयोगी तथा उद्योगी बनाये ।।५।।

नवम मण्डल में यह पचहत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ।।

सप्तमाष्टक का द्वितीयाध्याय समाप्त हुआ ।।

* ओ३म् *

अथ तृतीयोऽध्यायः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

—: ❀ :—

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः-१ त्रिष्टुप् । २ विराड्जगती । ३, ५ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१ धैवतः । २—५ निषादः ॥

अब परमात्मा का सर्वाधाररूप से वर्णन करते हैं ॥

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥१॥

पदार्थः—(दिवः) द्युलोक का (धर्ता) धारणकर्ता परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करे (नृभिः) सब मनुष्यों का (कृत्व्यः) जो उपास्य है तथा (रसः) आनन्दस्वरूप है, और (दक्षः) सर्वज्ञ है। (देवानामनुमाद्यः) और विद्वानों का आह्लादक है। (हरिः) उक्त गुणयुक्त परमात्मा (सृजानः) सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करता हुआ (अत्यो न) विद्युत् के समान (वृथा) अनायास ही (सत्वभिः) प्राणियों द्वारा (पाजांसि) बलों को (कृणुते) करता है। और उक्त परमात्मा (नदीषु) प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियों में (आ) व्याप्त है ॥१॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राकृत पदार्थ में परमात्मा की सत्ता विद्यमान है और वही द्युलोकादि का अधिकरण है ॥१॥

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (मनीषिभिः) ज्ञानयोगियों द्वारा (अज्यते) ध्यान किया जाता है। (अपस्युभिः) कर्मयोगियों द्वारा (हिन्वानः) प्रेरणा किया हुआ तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (शुष्मं) बल को (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ

(शूरो न) शूरवीर के समान (गभस्त्योः) अपने कर्म और ज्ञानरूप शक्ति में (आयुधा) सृष्टि के करणोपकरणरूप आयुधों को (धत्ते) धारण करता है। (स्वः) वह सुखस्वरूप परमात्मा (गविष्टिषु) प्रजाओं में (सिषासन्) विभाग करने की इच्छा से (रथिरः) गतिस्वरूप परमात्मा अपनी गति से सर्वत्र परिपूर्ण होता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मों के फल देने के अभिप्राय से सर्वत्र सृष्टि में अपनी न्यायरूपी-शक्ति से सम्पूर्ण प्रजा में विराजमान होकर कर्मों के यथायोग्य फल देता है ॥२॥

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (पवमानः) सबको पवित्र करते हुए आप तथा (ऊर्मिणा) अपनी ज्ञान की लहरों से (तविष्यमाणः) सबकी वृद्धि चाहते हुए (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरेष्वाविश) अन्तःकरणों में आकर विराजमान हों। और (विद्युत्) बिजली (अभ्रेव) जिस प्रकार मेघों को प्रकाशित करती है, और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को वृद्धियुक्त करती है, उस प्रकार (नः) हमको आप (प्रपिन्व) वृद्धियुक्त करें। और (धिया) कर्मों के द्वारा (वाजान्) बलों को (शश्वतो न) संप्रति निरन्तर (उपमासि) निर्माण करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा मनुष्यों को इस प्रकार प्रदीप्त करता है, जिस प्रकार बिजली मेघ मण्डलों और द्यु तथा पृथिवी लोक को प्रदीप्त करती है। इसलिये उसकी ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करने के लिये सदैव उद्यत रहना चाहिये ॥३॥

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४॥

पदार्थः—(विश्वस्य राजा) सम्पूर्ण संसार का राजा परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है। (ऋतस्य) सत्यवक्ता कर्मयोगी का तथा (स्वर्दृशः) सुख के ज्ञाता के (धीतिं) कर्म को (अवीवशत्) चाहता है। और परमात्मा (ऋषिषाट्) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। तथा (यः) जो परमात्मा (सूर्यस्य) ज्ञान की रश्मियों से (मृज्यते) साक्षात् किया जाता है। और (मतीनां) समस्त ज्ञानों का (पिता) प्रदाता है। तथा (असमष्टकाव्यः) जो कवियों की वाणी से परे है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सब ज्ञानों का केन्द्र है। और उसको कोई

ज्ञानविषय नहीं कर सकता। इसलिए वह अतीन्द्रिय है। अर्थात् 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" उसको वाणी और मन दोनों ही विषय नहीं कर सकते। अर्थात् वह वाणी का लक्ष्यार्थ है, वाच्यार्थ नहीं ॥४॥

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥५॥

पदार्थः—(**त्वोतयः**) आप से सुरक्षित होते हुए (**यथा**) जैसे (**समिथे**) संग्राम में (**जेषाम**) हम जीतें वैसा आप करें। (सः) वह (**मत्सरिन्तमः**) आनन्द के प्रदाता आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**पवसे**) पवित्रता प्रदान करते हैं। आप (**वृषा**) कामनाओं के (**यूथेव**) दातृगण के समान (**कोशं**) ऐश्वर्य के कोश को (**पर्यर्षसि**) प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार (**अपामुपस्थे**) जलों के समीप (**वृषभः**) मेघमण्डल (**कनिक्रदत्**) गर्ज कर प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा हमारे ज्ञान-विज्ञानादि कोशों की रक्षा करने वाला है, और वह उद्योगी और कर्मयोगियों को सदैव पवित्र करता है ॥५॥

अष्टम मण्डल में यह छिहत्तरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती । ३ पादनिचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब वाणियों का सदाचार वर्णन करते हैं ॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१॥

पदार्थः—(**वाश्राः**) शब्द करती हुई (**धेनवः**) वाणियाँ जो (**पयसेव**) जल-प्रवाह के समान (**अभ्यर्षन्ति**) चलती हैं वे वाणियाँ (**ईं**) इस (**ऋतस्य**) सत्य की (सुदुघाः) दोहन करने वाली हैं। और (**घृतश्चुतः**) माधुर्य को देने वाली हैं। (**एषः**) उक्त परमेश्वर (**कोशे**) अन्तःकरण में (**मधुमान्**) आनन्द-रूप से वर्तमान परमात्मा (**प्राचिक्रदत्**) साक्षी रूप से उपदेश करता है और वह (**वपुष्टरः**) सबका आदिबीज हैं, तथा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**वपुषः**) शरीर का (**वज्रः**) वज्र है ॥१॥

भावार्थः—सब सचाइयों का आश्रय एकमात्र वाणी है। जो पुरुष वाणी को मीठी और सब कामनाओं की दोहन करने वाली बनाते हैं, वे इस संसार में सदैव सुख लाभ करते हैं ॥१॥

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्त परमात्मा (**पूर्व्यः**) अनादि है। और (**पवते**) सबको पवित्र करता है। जो (**रजः**) प्रकृति के रजोगुण को (**तिरः**) तिरस्कार करके (**परिमथायत्**) सबको मथन करता है (सः) वह (**मध्वः**) मधुरूप है। और (**आयुवते**) परमाणुरूप प्रकृति को आपस में मिलाने वाला है। (**वेविजानः**) गतिशील है। (**कृशानोः**) अपनी तेजरूप-शक्ति से (**अस्तु**) आक्षेप्ता-पुरुषों को (**मनसा**) अपनी मनन रूप-शक्ति से (**बिभ्युषा**) भय को देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा प्रकृति के रजोरूप परमाणुओं का संयोग करके इस सृष्टि को उत्पन्न करता है ॥२॥

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३॥

पदार्थः—(ते) पूर्वोक्त विद्वान् (**नः**) जो हमारे (**पूर्वासः**) पूर्वज (**उपरासः**) और जो भविष्य में होने वाले हैं (**इन्दवः**) वे ज्ञानी (**महे गोमते**) बड़े ज्ञान के लिये और (**वाजाय**) बल के लिये (**धन्वन्तु**) उस परमात्मा को प्राप्त हों। और (**ये**) जो (**ब्रह्म ब्रह्म**) ब्रह्म प्राप्ति के लिये और (**हविर्हविः**) हवि के लिए (**जुजुषुः**) सेवन करते हैं, वे (**चारवः**) श्रेष्ठ लोगों के (**न**) समान (**अह्यः**) सुन्दर और (**ईक्षेण्यासः**) दर्शनीय होते हैं ॥३॥

भावार्थः—प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् पुराने और नये दोनों प्रकार के विद्वान् जो वेद को ईश्वरप्राप्ति के लिये पढ़ते हैं, और हवनादि यज्ञों को कर्मकाण्ड के लिए करते हैं, वे इस संसार में दर्शनीय और सदाचार फैलाने के हेतु होते हैं; अन्य नहीं ॥३॥

अयं नो विद्वान् वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४॥

पदार्थः—(**अयं**) यह जो (**नः**) हमारे मध्य में विद्वान् है, वह (**वनुष्यतः**) हमारे शत्रुओं को (**सत्राचा मनसा**) समाहित मन से नाश कर सकता है। और वह (**इन्दुः**) प्रकाश-स्वरूप है (**पुरुष्टुतः**) तथा माननीय है। (**यः**) जो पुरुष (**इनस्य**) ईश्वर की (**सदने**) सन्निधि में (**गर्भं**) शिक्षा को (**आदधे**) धारण करता है, वह (**गवां**) इन्द्रियों के (**व्रजं**) फल को (**उरुब्जं**) जो सर्वोपरि है, उसको (**अभ्यर्षति**) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् ईश्वरीय ज्ञान पर विश्वास करता है, वह मनुष्य जन्म के फल को लाभ करता है ॥४॥

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥

पदार्थः—(**चक्रिः**) वह पुरुष अनुष्ठान-परायण होता है। और (**दिवः**) द्युलोक को (**पवते**) पवित्र करता है। (**कृत्व्यः**) और कर्तव्यशील (**रसः**) आनन्द-स्वरूप (**महान्**) बड़ा (**अदब्धः**) किसी से न दबाये जाने वाला परमेश्वर (**हुरुग्यते**) कुटिलता से चलने वाले पुरुष को (**वरुणः**) अपने विद्याबल से आच्छादन करता है। और (**असावि**) ज्ञानरूपी बल को उत्पन्न करता है (**मित्रः**) सर्व मित्र है (**वृजनेषु अत्यः**) सब विषयों में गमन कर सकता है। और (**यज्ञियः**) यज्ञ सम्बन्धी कर्म्मों में योग्य (**वृषयुः**) सब कामनाओं के (**यूथे**) देने वाले गण के (**न**) समान (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ, इस संसार में यात्रा करता है ॥५॥

भावार्थः—जो विद्वान् धीर-वीर दृढ़व्रती और अपने विद्याप्रभाव से कुटिल वा मायावी पुरुषों को दबाने की शक्ति रखता है वह इस मनुष्य-समाज में वृषभ के समान गर्जता हुआ, अपने सदाचारी-समाज की रक्षा करता है ॥५॥

नवम मण्डल में यह सतत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१-५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब सर्वनियामक परमात्मा के ऐश्वर्य का उपदेश करते हैं ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थः—(**राजा**) सबका प्रकाशक परमात्मा (**वाचं**) वेदरूपी वाणी को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**प्रासिष्यदत्**) संसार को उत्पन्न करता है। और (**अपः**) कर्मों को (**वसानः**) धारण करता हुआ (**गाः**) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के (**अभि**) सन्मुख (**इयक्षति**) गति करता है। जो पुरुष (**अस्य**) उस परमात्मा की (**तान्वा**) शक्ति से (**रिप्रं**) अपने दोषों को(**गृभ्णाति**) ग्रहण कर लेता है, अर्थात् उनको समझ कर मार्जन कर लेता है, इस प्रकार (**अविः**) सुरक्षित होकर (**शुद्धः**) शुद्ध है तथा (**देवानां**) देवताओं के (**निष्कृतं**) पद को (**उपयाति**) प्राप्त होता हैं ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के जगत्कर्तृत्व में विश्वास करता है, वह उसकी उपासना द्वारा शुद्ध होकर देव पद को प्राप्त होता है ॥१॥

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

पदार्थः—(**वने**) भक्ति के मार्ग में (**कविः**) सर्वज्ञ परमात्मा (**नृभिः**) मनुष्यों द्वारा (**अज्यसे**) उपासना किया जाता है। वह (**नृचक्षाः**) सबका अन्तर्यामी है। (**ऊर्मिः**) आनन्द का समुद्र है। (**सोम**) हे परमात्मन्! आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**परिषिच्यसे**) लक्ष्य बनाये गये हो। (**ते**) तुम्हारी (**स्रुतयः**) शक्तियें (**हि**) क्योंकि (**पूर्वीः**) सनातन हैं। (**यातवे**) गतिशील कर्मयोगी के लिये (**सहस्रं**) अनन्त प्रकार की (**अश्वाः**) गतिशील (**चमूषदः**) सेना में स्थिर होकर (**हरयः**) विनाश को धारण करती हुई (**सन्ति**) कर्मयोगी को प्राप्त होती हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की भक्ति में विश्वास करते हैं, परमात्मा उनके बल को अवश्यमेव बढ़ाता है। अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और संसार-रूप परमात्मा की शक्तियाँ कर्मयोगियों की आज्ञा-पालन करने के लिये आ उपस्थित होती हैं ॥२॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥३॥

पदार्थः—(**सोममभि**) परमात्मा के समक्ष (**समुद्रिया आसीना अप्सरसः**) अन्तरिक्ष की स्थिर-शक्तियाँ (**अक्षरन्**) क्षरण करती हुई (**मनीषिणं**) मनस्वी पुरुष के (**अन्तः**) अन्तःकरण में उद्बोधन करती हैं। (**ताः**) वे शक्तियाँ (**ईं**) इसको (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करती हैं। और उक्त परमात्मा से (**हर्म्यस्य**) सब सौन्दर्यों के साधन तथा

(सर्क्षणि) सब आपत्तियों के संहारने वाले (पवमानं) सब को पवित्र करने वाले (अक्षितं) क्षयरहित पद की (याचन्ते) उपासक लोग याचना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—विद्युदादि अनन्तशक्तियाँ अन्तरिक्ष में स्थिर हैं, उसी अनन्त-शक्तिमद् ब्रह्म से लोग अक्षय-पद की याचना करते हैं ॥३॥

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (गोजित्) सब प्रकार की सूक्ष्मशक्तियों को जीतने वाला है । तथा (रथजित्) बड़े से बड़े वेग वाले पदार्थ को जीतने वाला है। और (हिरण्यजित्) बड़ी-बड़ी शोभाओं को जीतने वाला है । तथा (स्वर्जित्) सब सुखों को जीतने वाला है । और (अब्जित्) बड़े-बड़े वेग को जीतने वाला है । तथा (सहस्रजित्) अनन्त पदार्थों को जीतने वाला है (यं) जिस (मदं) आह्लादक (स्वादिष्ठं) ब्रह्मानन्द देने वाले (द्रप्सं) रसस्वरूप (अरुणं) प्रकाशस्वरूप (मयोभुवं) सुख देने वाले परमात्मा का (देवासः) विद्वद्गण (नः) हमारी (पीतये) तृप्ति के लिये (चक्रिरे) व्याख्यान करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के आगे इस संसार की सब शक्तियाँ तुच्छ हैं। अर्थात् वह सर्वविजयी है । उसी से विद्वान् लोग नित्यसुख की प्रार्थना करते हैं ॥४॥

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानः) पवित्र (अस्मयुः) हमारे शुभ की इच्छा करने वाले आप (सत्यानि) सदुपदेशों को (कृण्वन्) करते हुए (एतानि) पूर्वोक्त समस्त (द्रविणानि) ऐश्वर्यों को (अर्षसि) देते हैं । और जो हमारे (अन्तिके) समीपवर्ती (च) तथा (दूरके) दूरवर्ती (शत्रुं) शत्रु हैं, उनको आप (जहि) नाश करें। (यः) जो (उर्वी) विस्तृत (गव्यूतिः) मार्ग है, उसे हमारे लिए खोल दें । और (नः) हमको (अभयं) भयरहित (कृधि) कर दीजिये ॥५॥

भावार्थः—शत्रु से तात्पर्य यहाँ अन्यायकारी मनुष्यों का है । वे मनुष्य दूरवर्ती वा निकटवर्ती हों, उन सबके नाश की प्रार्थना इस मन्त्र में परमात्मा से की गयी है ॥५॥

नवम मण्डल में यह अठत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥१॥

पदार्थः—(अचोदसः) स्वतन्त्र परमात्मा जो किसी से प्रेरणा नहीं किया जाता वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो । वह परमात्मा (इन्दवः) सर्वैश्वर्य्ययुक्त है । और (सुवानासः) सर्वोत्पादक है (हरयः) दुष्टों के हरण करने वाला है (बृहत् दिवेषु) आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के यज्ञों में हमारी रक्षा करे (च) और (इषोऽरातयः) हमारे ऐश्वर्य्य के विनाशक (अर्य्यः) शत्रुओं को (विनशन्) नाश करके (नः) हमको ऐश्वर्य दे । और (नो धियः) हमारे कर्म्मों को (सनिषन्त) शुद्ध करे ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपने कर्म्मों का शुभ-रीति से अनुष्ठान करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करते हैं । अर्थात् वे लोग आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के यज्ञों से अपनी तथा अपने समाज की उन्नति करते हैं ॥१॥

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥२॥

पदार्थः—(मदच्युतः) सबको आनन्द देने वाला परमात्मा (इन्दवः) जो प्रकाशस्वरूप है वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो (वा) अथवा (धना) गो-हिरण्यरूपधन हमको प्रदान करे (येभिः) जिन धनों से हम (अर्वता) बल वाले शत्रुओं को (जुनीमसि) जीतें (कस्यचित्) किसी के (मर्तस्य) मनुष्य को (तिरः) तिरस्कार करके (परिह्वृति) पीड़ा देकर (वयं) हम लोग (धनानि) धनों को (विश्वधा) सदैव (भरेमहि) धारण न करे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को परमात्मा से सदैव इस प्रकार के बल की याचना करनी चाहिये कि वह किसी मनुष्य को अन्याय से पीड़ा देकर धन का सग्रह न करे किन्तु यदि धन संग्रह की इच्छा हो तो वह अपने शत्रुओं को पराजय करके धन का लाभ करे ॥२॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३॥

पदार्थः—(**उत**) अथवा (**स्वस्या अरात्याः**) अपना शत्रु हो (**उत**) अथवा (**अन्यस्या अरात्याः**) दूसरे का शत्रु हो, दोनों प्रकार के शत्रु हिंसनीय होते हैं, (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह (**वृकः**) हिंसक रूप है (**धन्वन् न तृष्णा**) जिस प्रकार बाधा देने वाली तृष्णा (**समरीत**) आकर प्राप्त होती है (**तानभि**) उस तृष्णा को (**सोम**) हे परमात्मन्! तुम (**जहि**) नाश करो (**पवमान**) हे सबके पवित्र करने वाले! (**दुराध्यः**) हे इन्द्रियागोचर परमात्मन् ! आप इस कामना-रूप तृष्णा का नाश करें ॥३॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप, जो दुराराध्य शत्रु हैं, अर्थात् दुःख से वशीभूत होने वाले हैं उनका हनन करें। यहाँ शत्रु से तात्पर्य्य कामरूप शत्रु का भी है। इसी अभिप्राय से गीता में कृष्णजी ने कहा है, कि "पापमानं जहिह्येनं ज्ञानावज्ञाननाशनम्" कि ज्ञान और विज्ञान को नाश करने वाले इस पापी काम को नाश करो ॥३॥

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा वप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४॥

पदार्थः—(**मनीषिणः**) मेधावी लोग (**त्वा**) तुमको (**हस्तैः**) ज्ञानयोग कर्मयोगादि साधनों द्वारा (**दुदुहुः**) साक्षात्कार करते हैं। और उनकी (**अद्रयः**) चित्तवृत्तियां (**गोरधित्वचि**) अपने मन में (**अप्सु**) कर्म्मों के लिये (**त्वा**) तुमको (**वप्सति**) ग्रहण करती हैं। हे सोम! (**ते**) तुम्हारे (**दिविनाभा**) लोक-लोकान्तरों के बन्धनरूप द्युलोक में (**यः**) जो पुरुष (**आददे**) तुमको ग्रहण करता है, वह (**परमः**) सर्वोत्कृष्ट होता है। और (**ते**) तुम्हारे (**पृथिव्याः**) पृथिवीलोक के (**सानवि**) उच्चशिखर में (**क्षिपः**) रखा हुआ (**रुरुहुः**) उत्पन्न होता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोग चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे परमात्मा की विभूति में सर्वोपरि होकर विराजमान होते हैं ॥४॥

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारा (**सुपेशसं**) रूप (**सुभ्वं**) सुन्दर है। (**अभिश्रियः**) तुम्हारे उपासक लोग (**प्रथमा**) मुख्य (**रसं**) आनन्द को (**तुञ्जन्ति**) ग्रहण करते हैं। (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**निदंनिदं**) प्रत्येक निन्दक को आप (**नितारिषः**) नाश करते हैं। और (**ते**) तुम्हारा

(**शुष्मः**) बल (**प्रियः**) जो सबके प्रिय करने वाला है (**मदः**) और आनन्द देने वाला है, वह (**आविः**) प्रकट हो ॥५॥

भावार्थः परमात्मा का आनन्द परमात्मयोगियों के लिये सदैव आह्लादक है। और दुराचारि-दुष्टों के लिये परमात्मा का बल नाश का हेतु है। इस लिये परमात्म-परायण पुरुषों को चाहिये कि वे सदैव परमात्मा के नियमों के पालन में तत्पर रहें ॥५॥

नवम मण्डल में यह उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती । २, ५ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब परमात्मा के ऐश्वर्य को प्रकारान्तर से निरूपण करते हैं ॥

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥१॥

पदार्थः—(**नृचक्षसः**) परमात्मा के उपासक लोगों के लिये (**सोमस्य**) सर्वोत्पादक परमात्मा की (**धारा**) आनन्दमय वृष्टि (**पवते**) पवित्र करती है। और (**देवान्**) विद्वान् लोगों को (**ऋतेन**) शास्त्रीय सत्यद्वारा (**दिवस्परि**) सब ओर से (**पवते**) परमात्मा पवित्र करता है। (**बृहस्पतेः**) वाणियों के पति, विद्वान् को परमात्मा (**रवथेन**) शब्द से पवित्र करता है। (**न**) जिस प्रकार (**समुद्रासः**) अन्तरिक्ष लोक (**सवनानि**) यज्ञों का (**विव्यचुः**) विस्तार करते हैं, इसी प्रकार शब्द विद्या के वेत्ता विद्वान् परमात्मा के ऐश्वर्य्य का विस्तार करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि प्रथम शब्दब्रह्म का ज्ञाता बने, फिर मुख्य ब्रह्म का ज्ञाता बनकर लोगों को सदुपदेश दे ॥१॥

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**मघोनां**) उपासकों की (**आयुः**) आयु के (**प्रतिरन्**) बढ़ाने वाले हैं। और (**इन्द्राय**) कर्म्मयोगी के लिये (**महिश्रवः**) बड़े बल के देने वाले हैं। तथा (**मदः**) सब के आह्लादक हैं और (**वृषा**) सब कामनाओं की वृष्टि

करने वाले हैं। और (**पवते**) पवित्र करते हैं। हे परमात्मन् ! (**वाजिन्**) हे बलस्वरूप ! (**यं त्वा**) जिस आपको (**अघ्न्याः**) प्रकृत्यादि अविनाशी शक्तियां (**अभ्यनूषत**) विभूषित करती हैं। (**अयोहतं**) आप हिरण्यमय (**योनिं**) स्थान को (**आरोहसि**) व्याप्त किये हुए हैं। और (**द्युमान्**) प्रकाशस्वरूप हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा इस हिरण्यमय प्रकृति-रूपी ज्योति या अधिकरण है। वा यों कहो, कि इस हिरण्यमय प्रकृति ने उसके स्वरूप को आच्छादन किया है। इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है, कि 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्' कि हिरण्यमय-पात्र से परमात्मा का स्वरूप ढका हुआ है ॥२॥

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३॥

पदार्थः—(**श्रवसे**) सर्वोपरि बल के लिये (**सुमंगलः**) मंगलरूप है। (**ऊर्जं वसानः**) सबका प्राणाधार होकर विराजमान हो रहा है। (**मदिन्तमः**) सब का आनन्दकारक है (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**कुक्षा**) अन्तःकरण में (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है (**सः**) वह (**प्रत्यङ्**) सर्वव्यापक है। और (**विश्वा भुवना**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (**अभिपप्रथे**) रचता है। (**हरिः**) वह अनन्त बलयुक्त (**क्रीळन्**) क्रीड़ा करता हुआ और (**अत्यः**) सर्वव्यापक होकर और (**वृषा**) आनन्द का वर्षक होकर (**स्यन्दते**) अपनी व्यापक शक्ति द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥३॥

भावार्थः—सब का प्राणाधार और सर्वव्यापक परमात्मा आनन्द का वर्षक है और अपनी व्यापकशक्ति से सर्वत्र परिपूर्ण हो, सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को रचता है ॥३॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४॥

पदार्थः—(**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**मधुमत्तमं**) अत्यन्त आनन्द के प्रदाता (**तं त्वा**) पूर्वोक्त तुमको (**नरः**) ऋत्विगादि लोग (**दुहते**) दुहते हैं। और (**दश क्षिपः**) पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रियों की (**ग्रावभिः**) शक्तियों से (**सुतः**) सिद्ध किये हुए (**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**नृभिः**) मनुष्यों से साक्षात्कार किये जाते हैं। (**सहस्रजित्**) अनन्त प्रकार की आसुरीय शक्तियों को तिरस्कृत करने वाले आप (**विश्वान् देवान्**) सम्पूर्ण विद्वानों को (**आपवस्व**) पवित्र करें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्य पवित्र करते हैं ॥४॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥५॥

पदार्थः—(**तं त्वा**) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आपको जो (**वृषभं**) जो सब कामनाओं की वृष्टि करता है (**अद्रिभिः**) अपनी शक्तियों से (**दशक्षिपः**) दश प्राण (**हस्तिनः**) स्वच्छता युक्त (**अप्सु**) कर्म्म विषयक (**दुहंति**) दुहते हैं परमात्मन् ! (**इन्द्रं दैव्यं जनं**) दिव्यगुण सम्पन्न कर्म्मयोगी को (**मादयन्**) आनन्द देते हुए (**सिंधोरिवोर्मिः**) समुद्र की लहरों के समान (**पवमानः**) पवित्र करते हुए (**अर्षसि**) प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्म्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा अपने आपको परमात्मा की कृपा का पात्र बनाते हैं, परमात्मा उन्हें सिन्धु की लहरों के समान अपने आनन्द-रूपी वारि से सिञ्चित करता है ॥५॥

नवम मण्डल में यह अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–३ निचृज्जगती । ४ जगती । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः १—४ निषादः । ५ धैवतः ॥

अब ईश्वर के ज्ञान के अधिकारियों का निरूपण करते हैं ॥

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥१॥

पदार्थः—(**पवमानस्य**) सबको पवित्र करने वाले (**सोमस्य**) परमात्मा के ज्ञान की (**ऊर्मयः**) लहरें (**इन्द्रस्य**) ज्ञानयोगी के (**जठरं**) अन्तःकरण को (**प्रयन्ति**) प्राप्त होती हैं। जो लहरें (**सुपेशसः**) सुन्दर हैं और (**गवां**) इन्द्रियों के (**दानाय**) सुन्दर ज्ञान देने के लिये (**दध्ना यदीमुन्नीताः**) सहायक-संस्कार द्वारा (**यशसा**) बल से (**उदमंदिषुः**) आनन्द में (**सुताः**) संस्कार किये हुए (**शूरं**) शूरवीर कर्मयोगी को प्रदीप्त करती हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा के सदुपदेश ज्ञानयोगी को पवित्र करते हैं और उसके उत्साह को प्रतिदिन बढ़ाते हैं ॥१॥

अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यदद्त्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥२॥

पदार्थः—(देवानां) कर्म्मयोगी और विज्ञानयोगी आदि जो विद्वान् हैं, उनके (उभयस्य) दोनों (जन्मनः) ज्ञान और कर्म्म को (विद्वान्) जानता हुआ (सोमः) सौम्यस्वभाव परमात्मा (कलशान्) उनके अन्तःकरणों को (अत्यः) अतिशीघ्रगामी (वोल्हा) विद्युत् के (न) समान (अच्छा सिस्यन्दत्) भलीभांति सिञ्चन करता है। वह परमात्मा (रघुवर्तनिः) सूक्ष्म से सूक्ष्म है। और (वृषा) सब कामनाओं का प्रदाता है। जो पुरुष (अमुतः) इसी जन्म में उसके महत्त्व को जान लेता है, वह (अश्नोति) ब्रह्मानन्द को भोगता है। (च) और (यत्) जो आनन्द (इतः) इसी ज्ञानयोग से मिलता है, अन्य किसी साधन से नहीं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य की उन्नति के लिए इस लोक में ज्ञान और कर्म्म दो ही साधन हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि, वह इन दोनों मार्गों का अवलम्बन करे ॥२॥

आ नः सोम पवंमानः किरा वस्विन्दो भवं मघवा राधंसो महः ।
शिक्षां वयोधो वसंवे सु चेतुना मा नो गयंमारे अस्मत्परां सिचः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानः) आप सबको पवित्र करने वाले हैं। (इन्दो) सर्वप्रकाशक ! आप (नः) हमको (वसु) सब प्रकार के धन को (आकिर) दें। (मघवा) आप सब ऐश्वर्य्य के स्वामी हैं इसलिये हमारे (महो राधसः) अत्यन्त धन के (भव) प्रदाता बने रहें। परमात्मन् ! आप हमको अपने (सुचेतुना) पवित्र ज्ञान से (शिक्ष) शिक्षा दें। और (वयोध) आप सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों को धारण करने वाले हैं। (वसवे) ऐश्वर्य के पात्र मेरे लिये आप ऐश्वर्य प्रदान करें। और (गयं) धन को (अस्मदारे) हमसे (मा परासिचः) मत दूर करें ॥३॥

भावार्थः—ईश्वरोपासकों को चाहिये, कि ईश्वर की प्राप्ति के हेतु ईश्वर के परम ऐश्वर्य्य का कदापि त्याग न करें। और ईश्वर से भी सदा यही प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर ! आप हमको ऐश्वर्य्य से कदापि वियुक्त न करें ॥३॥

आ नः पूषा पवंमानः सुरातयों मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषंसः ।
बृहस्पतिर्मरुतों वायुरश्विना त्वष्टां सविता सुयमा सरंस्वती ॥४॥

पदार्थः – हे परमात्मन् ! (नः) हमको (पूषा) धर्म्मोपदेश द्वारा पुष्टि करने वाला विद्वान् (पवमानः) पथ्यापथ्य बताकर पवित्र करने वाला विद्वान् (सुरातयः) दानशील विद्वान् (मित्रः) सबसे मैत्री करने वाला विद्वान् (वरुणः) सबको वशीभूत

करने वाला विद्वान् (बृहस्पतिः) वाणियों के पति (मरुतः) ज्ञानयोगी (वायुः) कर्म्मयोगी (अश्विना) कर्म्म और ज्ञानयोगी दोनों (त्वष्टा) कार्य्य करने में समर्थ विद्वान् (सविता) उत्तमोत्तम पदार्थों का निर्माता विद्वान् (सुयमा) सबको नियम में रखने वाला विद्वान् (सरस्वती) ज्ञान को सर्वोपरि भूषणरूप से धारण करने वाला विद्वान् ये सब पूर्वोक्त विद्वान् (नः) हमको (आगच्छन्तु) प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्य ! तुम सामाजिक उन्नति के लिये पूर्वोक्त विद्वानों का संग्रह करो। ताकि तुम सब विद्याओं में निपुण होकर संसार में अभ्युदयशाली बनो ॥४॥

उभे द्यावां पृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंसं उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवंमानञ्जुषन्त ॥५॥

पदार्थः—(पवमानं) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा को (उभे द्यावा पृथिवी) पृथिवीलोक और द्युलोक (विश्वमिन्वे) जो विस्तृत रूप से व्याप्त है (अर्यमा देवः) और न्याय करने वाला राजा (अदितिः) अज्ञान का खण्डन करने वाला विद्वान् (विधाता) सब नियमों का विधान करने वाला (भगः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (नृशंसः) पदार्थों के गुणों का वर्णन करने वाला (उर्वन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष की विशाल विद्या को जानने वाला (विश्वे देवाः) ये सब देव (जुषन्त) सेवन करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की विभूति द्युलोक पृथिवीलोक अन्तरिक्ष लोक ये सब लोक-लोकान्तर हैं ! और इन सब लोक-लोकान्तरों के ज्ञाता विद्वान् भी परमात्मा की विभूति हैं ॥५॥

नवम मण्डल में यह इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती । २ निचृज्जगती । ३ जगती । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—४ निषादः । ५ धैवतः ॥

असांवि सोमों अरुषो वृषा हरी राजेंव दस्मो अभि गा अंचिक्रदत् ।
पुनानो वारं पर्यैत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवंन्तमासदंम् ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) जो सर्वोत्पादक प्रभु (अरुषः) प्रकाशस्वरूप (वृषा) सद्गुणों की वृष्टि करने वाला (हरिः) पापों के हरण करने वाला है, वह (राजेव) राजा के

समान (**दस्मः**) दर्शनीय है। और वह (**गाः**) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के चारों ओर (**अभि अचिक्रदत्**) शब्दायमान हो रहा है। वह (**वारं**) वर्णीय पुरुष को जो (**अव्ययं**) दृढ़भक्त है उसको (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**पर्य्येति**) प्राप्त होता है। (**न**) जिस प्रकार (**श्येनः**) विद्युत् (**घृतवन्तं**) स्नेहवाले (**आसदं**) स्थानों को (**योनि**) आधार बनाकर प्राप्त होता है। इसी प्रकार उक्त गुण वाले परमात्मा ने (**असावि**) इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया ॥१॥

भावार्थः—"सूते चराचरं जगदिति सोमः" जो इस चराचर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करता है उसका नाम सोम है। यह शब्द 'षूङ् प्राणि गर्भविमोचने' से सिद्ध होता है। और उसी धातु से असावियत् प्रयोग है। जिसके अर्थ किसी वस्तु को उत्पन्न करने के हैं। और सायणाचार्य्य ने जो इसके अर्थ सोम के कूटे जाने के किये हैं वह कदापि ठीक नहीं हो सकते क्योंकि सोम तो यहाँ कर्त्ता है कर्म्म नहीं। और यदि कोई यह कहे कि यहाँ कर्म्म में प्रत्यय है तो सोम में तृतीया क्यों नहीं तो इसका उत्तर यह है कि यह वैदिक प्रयोग है ॥१॥

क॒विर्वे॑ध॒स्या पर्ये॑षि॒ माहि॑न॒मत्यो॒ न मृ॒ष्टो अ॒भि वाज॑मर्षसि ।
अ॒प॒सेध॑न्दुरि॒ता सो॑म मृळय घृ॒तं वसा॑नः॒ परि॑ यासि नि॒र्णिज॑म् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (**वेधस्या**) उपदेश करने की इच्छा से आप (**माहिनं**) महापुरुषों को (**पर्येषि**) प्राप्त होते हो। और आप (**अत्यः**) अत्यन्त गतिशील पदार्थ के (**न**) समान (**अभिवाजं**) हमारे आध्यात्मिक यज्ञ को (**अभ्यर्षसि**) प्राप्त होते हैं। आप (**कविः**) सर्वज्ञ हैं (**मृष्टः**) शुद्ध स्वरूप हैं (**दुरिता**) हमारे पापों को (**अपसेधन्**) दूर करके (**सोम**) हे सोम! (**मृळय**) आप हमको सुख दें। और (**घृतं वसानः**) प्रेमभाव को उत्पन्न करते हुए (**निर्निजं**) पवित्रता को (**परियासि**) उत्पन्न करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वज्ञ परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे परमात्मन्! आप हमको शुद्ध करें। और सब प्रकार के सुख प्रदान करें। यहाँ सोम के लिए कवि शब्द आया है। सायण के मत में यहां सोमलता को ही कवि=सर्वज्ञ कथन किया गया है। वास्तव में वेदों में कवि शब्द जड़ के लिए कहीं भी नहीं आता। इतना ही नहीं किन्तु "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः (य० ४०।८) इत्यादि वाक्यों में कवि शब्द परमात्मा के लिए आया है। इस प्रकार उक्त मन्त्र में कवि शब्द से परमात्मा का ग्रहण करना चाहिये, जड़ सोम का नहीं ॥२॥

प॒र्जन्यः॑ पि॒ता म॑हि॒षस्य॑ प॒र्णिनो॒ नाभा॑ पृथि॒व्या गि॒रिषु॒ क्षयं॑ दधे ।
स्वसा॑र॒ आपो॑ अ॒भि गा उ॒तास॑र॒न्त्सं प्राव॑भिर्नसते वी॒ते अ॑ध्व॒रे ॥३॥

पदार्थः—(**वीते अध्वरे**) पवित्र यज्ञों में (**प्रावभिः**) रक्षा से आप (**नसते**) प्राप्त होते हैं। (**उत**) और (**गाः**) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों में (**अभिसरन्**) गति करते हुए (**आपः**) सर्वव्यापक आप (**स्वसारः**) स्वयंगतिशील होकर विराजमान होते हैं। आप कैसे हैं (**पर्जन्यः**) सबके तर्पक हैं और (**पिता**) सबके रक्षक हैं और (**महिषस्य पर्णिनः**) बड़े से बड़े गतिशील पदार्थों के नियन्ता हैं और (**पृथिव्या नाभा**) पृथिव्यादि लोक लोकान्तरों के केन्द्र होकर (**गिरिषु**) सब पदार्थों में (**क्षयं दधे**) रक्षा को उत्पन्न करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक है और पर्जन्य के समान सबका तृप्तिकारक है। उसी परमात्मा से सब प्रकार की शान्ति रक्षा उत्पन्न होती है ॥३॥

अब परमात्मा सदाचार का उपदेश करता है ॥

जा॒येव॒ पत्या॒वधि॒ शेव॑ मंहसे॒ पज्रा॑या गर्भ शृणु॒हि ब्रवी॑मि ते ।
अ॒न्तर्वाणी॑षु॒ प्र च॑रा॒ सु जी॒वसे॑ऽनि॒न्द्यो वृ॒जने॑ सोम जागृहि ॥४॥

पदार्थः—(**गर्भ**) हे गर्भ! 'गृह्णातीति गर्भः' हे सद्गुणों के ग्रहण करने वाले जीवात्मन्! (**ते**) तुमको (**ब्रवीमि**) मैं कहता हूँ कि (**शृणुहि**) तुम सुनो। (**पज्रायाः**) जिस प्रकार पृथिवी की (**पत्यौ, अधि**) पर्जन्यरूप पति में अत्यन्त प्रीति होती है (**जाया इव**) जैसे कि सदाचारिणी स्त्री की अपने पति में प्रीति होती है। वैसे ही सब स्त्रियों को अपने-अपने पतियों में प्रीति करनी चाहिए। ऐसा करने पर (**मंहसे**) प्रत्येक अधिकारी के लिये सुख की प्राप्ति होती है। (**अनिन्द्यः**) सब दोषों से दूर होकर (**वृजने**) अपने लक्ष्यों में सावधान होकर (**सोम**) हे सौम्यस्वभाव जीवात्मन्! (**जागृहि**) तुम जागो। और (**अन्तर्वाणीषु**) विद्यारूपी वाणी में (**प्रचरासु**) जो सबमें प्रचार पाने योग्य है उसमें (**जीवसे**) अपने जीने के लिये जागृति को धारण करो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव! तुमको अपने कर्त्तव्य में सदैव जागृत रहना चाहिए। जो पुरुष अपने कर्त्तव्य में नहीं जागता उसका संसार में जीना निष्फल है। यहां सोम शब्द के अर्थ

जीवात्मा के हैं। जैसे कि "स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" (ब्र० सू० २।३।५॥) यहां ब्रह्मसूत्र के अनुसार प्रकरण भेद से अर्थ का भेद हो जाता है इसी प्रकार यहां शिक्षा देने के प्रकरण में सोम नाम जीवात्मा का है ॥४॥

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे जीवात्मन् ! (**यथा**) जैसे (**पूर्वेभ्यः**) पूर्व जन्मों के लिये (**शतसाः**) सैंकड़ों (**सहस्रसाः**) हजारों प्रकार के (**वाजं**) बलों को (**पर्यया:**) तुम प्राप्त हुए (**एवा**) इसी प्रकार (**नव्यसे**) इस नवीन जन्म के लिये (**सुविताय**) अभ्युदयार्थ (**तव व्रतं**) तुम्हारे व्रत को (**अनु आपः**) सत्कर्म्म (**सचंते**) सङ्गत हों। इसलिये आप (**पवस्व**) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीवो ! तुम्हारे पूर्व जन्म बहुत व्यतीत हुए हैं तुम इस नूतन जन्म में सत्कर्म करके अभ्युदयशाली और तेजस्वी बनो। यहां पूर्व और उत्तर जन्मों का कथन सृष्टि को प्रवाहरूप से अनादि मानकर है। और यही भाव "सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इस मन्त्र में वर्णन किया गया है ॥५॥

नवम मण्डल में यह बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती । २, ५ विराड्जगती । ३ जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१॥

पदार्थः—(**ब्रह्मणस्पते**) हे वेदों के पति परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारा स्वरूप (**पवित्रं**) पवित्र है। और (**विततं**) विस्तृत है। (**प्रभुः**) आप सबके स्वामी हैं। और (**विश्वतः, गात्राणि**) सब मूर्तपदार्थों के (**पर्येषि**) चारों ओर व्यापक हैं। (**अतप्ततनूः**) जिसने अपने शरीर से तप नहीं किया (**तदामः**) वह पुरुष कच्चा है। वह तुम्हारे आनन्द को (**न अश्नुते**) नहीं भोग सकता (**शृतास इत्**) अनुष्ठानी पुरुष ही (**वहन्तः**) तुमको प्राप्त हो सकते हैं। वे (**तत्**) तुम्हारे आनन्द को (**समाशत**) भोग सकते हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में तप का वर्णन स्पष्ट रीति से किया गया है। जो लोग तपस्वी हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं। यहां शरीर का तप एक उपलक्षणमात्र है। वास्तव में आध्यात्मिकादि सब प्रकार के तपों का यहां ग्रहण है ॥१॥

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**दिवस्पदे**) द्युलोक में आपका (**तपोः**) तपोरूपी (**पवित्रं**) पवित्र (**विततं**) विस्तृतपद विराजमान है। (**अस्य**) उस पद की (**तन्तवः**) किरणें (**शोचन्तः**) दीप्तिवालीं (**व्यस्थिरन्**) स्थिर हैं। (**अस्य**) इस पदके (**पवितारं**) उपासक की (**आशवः**) इस पद के आनन्द (**अवन्ति**) रक्षा करते हैं। उक्त पद के उपासक (**दिवस्पृष्ठमधि**) द्युलोक के शिखर पर (**चेतसा**) अपने बुद्धिबल से (**तिष्ठन्ति**) स्थिर होते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि संसार में तप ही सर्वोपरि है। जो लोग तपस्वी हैं वे सर्वोपरि उच्च पद को ग्रहण करते हैं। इसलिए हे मनुष्यो तुम तपस्वी बनो ॥२॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३॥

पदार्थः—पूर्वोक्त परमात्मा (**उषसः**) सूर्य्य के प्रभामण्डल को (**अरूरुचत्**) प्रकाश करता है। और (**पृश्निः**) 'प्राश्नुते सर्वमिति पृश्णिः' प्रलयकाल में जो सबको भक्षण करे उसका नाम पृश्णि है। (**उक्षा**) 'उक्षतीति उक्षा' इति महन्नामसुपठितम्—(नि० रु० ३—१३—३)। जो इस सम्पूर्ण संसार को अपने प्रेमवारि से सिञ्चित करे उस महान् पुरुष का नाम उक्षा है। (**भुवनानि बिभर्ति**) वह सब भुवनों का भरण-पोषण करता है। (**वाजयुः**)सब बलों का आधार है।(**अस्य मायया**) उसकी शक्ति से (**मायाविनो ममिरे**) मायावी लोक मर जाते हैं। (**नृचक्षसः**) वह सर्वज्ञ (**पितरः**) सबको उत्पन्न करने वाला (**गर्भं**) इस संसाररूपी गर्भ को (**आदधुः**) धारण करता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह प्रकाशस्वरूप है। और लोक-लोकान्तरों का अधिष्ठान है। सब बलों का केन्द्र है और सब मायावियों की माया को मर्द्दन करने वाला है। तात्पर्य्य यह है कि उसी पूर्ण पुरुष की उपासना से पुरुष तपस्वी बन सकता है ॥३॥

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४॥

पदार्थः—(गां धरतीति गन्धर्वः) जो पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों को धारण करे उसका नाम यहाँ गन्धर्व है। (इत्था) इति सत्यनामसु पठितं (नि० ३-१३-१०)। वह सत्यरूप परमात्मा (देवानां जनिमानि) विद्वानों के जन्म को (रक्षति) रक्षा करता है। (अद्भुतः) बड़ा है। अद्भुत इति महन्नामसु पठितं (नि० ३—१३—१३) (निधापतिः) सब शक्तियों का पति (निधया) अपनी शक्ति से (रिपुं) अपने से प्रतिकूल शक्ति वाले शत्रु को (गृभ्णाति) स्वाधीन करता है। (अस्य मधुनः पदं) इस आनन्दमय परमात्मा के पद को (सुकृत्तमाः) पुण्यात्मा लोग (भक्षं) भोग्य बना कर (आशत) स्थिर होते हैं। और उक्त उपासकों की (पाति) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—(तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः) उस विष्णु के परमपद को सदा विद्वान् लोग देखते हैं। उसी व्यापक परमात्मा के परमपद का इस मन्त्र में वर्णन किया है कि उस परमपद के उपासक लोग ब्रह्मानन्द को भोगते हैं अन्य नहीं ॥४॥

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (हविः) आप हवि हैं। (हविष्मः) और हवि वाले हैं। (महि) बड़े हैं। (दैव्यं) दिव्यरूप वाला (नभः) यह विस्तृत आकाश (सद्म) आप का गृह है। इसमें (वसानः) निवास करते हुए (अध्वरं) अहिंसारूप यज्ञ को (परियासि) प्राप्त होते हैं। (राजा) आप सर्वत्र विराजमान हो रहे हैं। (पवित्ररथः) पवित्र गति वाले (वाजमारुहः) सब प्रकार के बलों को धारण किये हुए हैं। (सहस्रभृष्टिः) अनन्त प्रकार की पवित्रताओं को धारण किये हुए हैं (बृहत्श्रवः) सर्वोपरि यशको धारण किये हुए आप (जयसि) सबको जय करते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सहस्रशक्तियों वाला वर्णन किया है। जैसे कि 'सहस्रशीर्षा पुरुष' इस मन्त्र में वर्णन किया गया है। उस अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा की उपासना करके जो पुरुष तपस्वी बनते हैं वे इस भवनिधि से पार होते हैं ॥५॥

नवम मण्डल में यह तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ प्रजापतिर्वाच्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड्जगती । ४ जगती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४ निषादः । २, ५ धैवतः ॥

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥१॥

पदार्थः—(देवमादनः) हे विद्वानों के आनन्द के वर्द्धक परमात्मन्! (विचर्षणिरप्सा) हे कर्म्मों के द्रष्टा! (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये (वरुणाय) विज्ञानी के लिये (वायवे) ज्ञानी के लिये (पवस्व) आप पवित्रता प्रदान करें। और (नः) हमको (अद्य) इस समय (वरिवः) धनयुक्त करें। और (उरुक्षितौ) इस विस्तृत भूमण्डल में (जनं) इस जनको (दैव्यं) दिव्य बनाकर (गृणीहि) अनुग्रह करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो! आप ज्ञानी-विज्ञानी बनकर कर्म्मों के नियन्ता देव से यह प्रार्थना करो कि हे भगवन्! आप अपने ज्ञान द्वारा हमको अविनाशी बनाएँ; और हमारी दरिद्रता मिटा कर आप हमको ऐश्वर्य्ययुक्त करें ॥१॥

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्य्यः) सूर्य्य के (उषसं) उषा के (न) समान (सिषक्ति) संयुक्त करता है। और (अभिष्टये) ऐश्वर्य्य के लिये (संचृतं) प्रकाशों से सयुक्त और (विचृतं) अज्ञानों से रहित (कृण्वन्) करता हुआ (आतस्थौ) आकर हमारे हृदय में विराजमान हो। (यः) जो परमात्मा (अमर्त्यः) अविनाशी है। और (विश्वानि भुवनानि) सब लोक-लोकान्तरों के (परि, अर्षति) चारों ओर व्यापक है। वह (सोमः) सोमगुणसम्पन्न परमात्मा हमारी रक्षा करे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञानी-विज्ञानी लोगों को सूर्य्य की प्रभा के समान वर्णन किया। तात्पर्य्य यह है कि ज्ञान-विज्ञान द्वारा ही पुरुष तेजस्वी और सूर्य्य के समान प्रभाकर बन सकता है, अन्यथा नहीं ॥२॥

आ या गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥३॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (दैव्यं जनं) दिव्यगुण वाले (इन्द्रं) कर्म्मयोगी को (मादयन्) आनन्द करता हुआ (उपावसुः) स्थिर होता है। (यः) जो परमात्मा (गोभिः) पृथिव्यादिकों की सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राओं से लेकर (ओषधिषु आ) ओषधियों तक (आसृज्यते) सब ब्रह्माण्डों को रचता है। और (देवानां) विद्वानों के (सुम्ने) सुख के लिये (इषयन्) इच्छा करता हुआ (विद्युता) विद्युत् रूपी शक्ति से सबको पवित्र करता है। और (धारयासुतः) सुधामय है ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष ईश्वरी विद्या को प्राप्त होकर संसार की रक्षा करना चाहते हैं, परमात्मा उनके सुख की सदैव वृद्धि करता है ॥३॥

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४॥

पदार्थः—(सहस्रजित्) अनन्त शक्तिसम्पन्न परमात्मा विद्वानों की (इषिरां) ज्ञानप्रद (वाचं) वाणी को (उषर्बुधं) जो उषाकाल में जगाने वाली है। उसको (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (पवते) पवित्र बनाता है। (एष स्यः सोमः) वह परमात्मा (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप है। और (समुद्रं) अन्तरिक्ष को (उदियर्ति) वर्षणशील बनाता है। और (वायुभिः) अपनी ज्ञानरूपी शक्तियों से (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगी के (हार्दि) हृदयव्यापी (कलशेषु) हृदय-आकाश में (सीदति) स्थिर होता है ॥४॥

भावार्थः—"समुद्रमिति अन्तरिक्षनामसु पठितं" (नि० रु० २।१०।५॥) "समुद्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्रं" जिससे जलों का प्रवाह वहै उसका नाम यहां समुद्र है। तात्पर्य्य यह है कि जिस परमात्मा ने अन्तरिक्ष लोक को वर्षणशील और पृथ्वीलोक को दृढ़ता प्रदान की है, वह लोक-लोकान्तरों का पति परमात्मा अपनी ज्ञानगति से कर्मयोगी के हृदय में आकर विराजमान होता है ॥४॥

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (पयोवृधं) ज्ञान से वृद्धि को प्राप्त जो आप हैं (त्यं) उस आपको (गावः) इन्द्रियें (पयसा) ज्ञान द्वारा (अभि श्रीणन्ति) सेवन करतीं हैं। और (सोमं) सौम्यगुणविशिष्ट आपको (स्वर्विदं) जो आप देवताओं के लक्ष्यस्थानीय हैं, आपको (मतिभिः) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (पवते) विद्वान लोग साक्षात्कार करते हैं। (धनञ्जयः) आप धनञ्जय हैं। सम्पूर्ण धनों के जेता हैं। (कृत्व्यः) सब शक्तियों के केन्द्र हैं। (रसः) आनन्दरूप हैं। (विप्रः) मेधावी हैं। (कविः) सर्वज्ञ हैं। (काव्येन स्वर्चनाः) अपनी सर्वशक्ति से सब लोक-लोकान्तरों के प्रलयकर्त्ता हैं ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न है। उसका ज्ञानयोगी अपने चित्तवृत्ति-निरोधरूपी योग द्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥५॥

नवम मण्डल में यह चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य १—१२ वेनो भार्गव ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ५, ९, १० विराड्जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४, ६ पादनिचृज्जगती। ८ आर्चीस्वराड्जगती। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१—१० निषादः। ११, १२ धैवतः॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१॥

पदार्थः—(इन्दवः) कर्म्मयोगी इस संसार में (द्रविणस्वन्तः) ऐश्वर्य वाले होकर (इह) इस यज्ञ में (सन्तु) विराजमान हों। और (द्वयाविनः) झूठ सच का विवेक न करने वाले मायावी पुरुष (ते रसस्य) तुम्हारे आनन्द का (मा मत्सत) मत लाभ उठावें (सोम) हे जगत्कर्त्ता परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये (सुषुतः) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (परिस्रव) ज्ञान द्वारा उसके हृदय में आकर विराजमान होवो। और (रक्षसा सह) राक्षसों द्वारा किये हुए कर्म्मयोगियों के रोगादिक (अपभवतु) दूर हों ॥१॥

भावार्थः—जो लोग सत्यासत्य में विवेक नहीं कर सकते और असत्य को त्यागकर दृढ़तापूर्वक सत्य का ग्रहण नहीं कर सकते वे सदैव सत्यानृत के सागर में गोते खाते रहते हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह सत्यासत्य का विवेक करके सत्यग्राही बनें ॥१॥

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (समर्ये) वैदिक यज्ञों में आप (अस्मान्) हमको (चोदय) प्रेरणा करें। आप (देवानां) विद्वानों के

(वक्षोऽसि) प्रेरक हैं । (हि) क्योंकि (प्रियोमदः) आनन्द के प्यारे हैं । (शत्रूञ्जहि) आप अन्यायकारी शत्रुओं का नाश करें और (अभ्या) सब प्रकार से हमको प्राप्त हों (भन्दनायतः) उपासक के (सोमं) स्तुति को (पिब) आप ग्रहण करें । और (नोमृधः) हमारे यज्ञों से विघ्नकारियों को (अव जहि) दूर करें ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होकर परमात्मा के स्वरूप में ध्यान द्वारा प्रविष्ट होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ग्रहण करता है ॥२॥

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (अदब्धः) किसी से दबाये नहीं जा सकते । और (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप हैं । (पवते) पवित्र करते हैं । (इन्द्रस्य) प्रकाशयुक्त विद्युदादि पदार्थों में (आत्मा भवसि) व्यापकरूप से विराजमान हो रहे हैं । और (धासिरुत्तमः) उत्तमोत्तम गुणों को धारण करा रहे हैं । (बहवो मनीषिणः) बहुत से ज्ञानी विज्ञानी लोग (अभिस्वरन्ति) आपकी स्तुति करते हैं । और (अस्य भुवनस्य) इस संसार के (राजानं) प्रकाशक आपको (निंसते) मानते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को आत्मा शब्द से वर्णन किया है । अर्थात् "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीति आत्मा" जो सर्वत्र व्यापक हो उसका नाम आत्मा है । यहां सर्वोत्पादक सोम परमात्मा को व्यापकरूप से वर्णन किया है । जो लोग सोमशब्द को जड़लता वाचक ही मानते हैं उनको इस मन्त्र से शिक्षा लेनी चाहिये कि सोम यहां सर्वव्यापक परमात्मा का नाम है ॥३॥

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥

पदार्थः—(सहस्रनीथः) आप सहस्राक्ष हैं । (शतधारा) अनेक प्रकार के आनन्दों के स्रोत हैं । (अद्भुतः) आश्चर्य्यमय हैं । (इन्द्राय इन्दुः) ऐश्वर्य्य के प्रकाशक हैं । (काम्यं मधु) कामनारूप मधुरता को (पवते) पवित्र करने वाले हैं । और (क्षेत्रं जयेन) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड को वशीभूत करते हुए और (अपः) कर्म्मों को वशीभूत करते हुए (नो गातुं) हमारी उपासना को (उरुं कृणु) विस्तृत करें । (सोम) हे परमात्मन् ! आप सब प्रकार के आनन्दों को (मीढ्वः) सिञ्चन करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा में ज्ञान की अनन्तशक्तियें हैं । और आनन्द की अनन्तशक्तियें हैं । बहुत क्या ? सब आनन्दों की वृष्टि करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है । इस लिए उपासकों को चाहिये कि उस सर्वेश्वर्य्यप्रद परमात्मा की उपासना करें ॥४॥

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्यव्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (कनिक्रदत्) स्वसत्ता से गर्जते हुए (कलशे) विद्वानों के अन्तःकरण में (गोभिः) अन्तःकरण की वृत्तियों से (अज्यसे) साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं । (अव्ययं) अपने अव्यय स्वरूप के (समया) साथ (वारं) वर्णनीय ज्ञान के पात्र को (अर्षसि) प्राप्त होते हैं । (मर्मृज्यमानः) साक्षात्कार को प्राप्त (अत्यो न) गतिशील पदार्थों के समान (सानसिः) उपासनायोग्य आप (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगी के (जठरे) अन्तःकरण में (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् आप (समक्षरः) भली-भाँति विराजमान होते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा का अविनाशीभाव जब मनुष्य के हृदय में आता है तो मनुष्य मानो ईश्वर के समीप पहुँच जाता है । इसी का नाम परमात्मप्राप्ति है । वास्तव में परमात्मा किसी के पास चल कर नहीं आता । और न किसी से दूर जाता । इसी अभिप्राय से वेद में लिखा है कि "तद्दूरे तद्वन्तिके" अर्थात् वह अज्ञानियों से दूर और ज्ञानियों के समीप है ॥४॥

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥

पदार्थः—(अदाभ्यः) हे अदम्भनीय परमात्मन् ! (बृहस्पतये) वाणियों के पति विद्वान् के लिये आप (मधुमान्) मीठे हैं । (मित्राय) सर्वमित्र (वरुणाय) वरणीय (वायवे) ज्ञानयोगी के लिये (स्वादुः) सर्वप्रिय बना कर (पवस्व) हमको पवित्र करें । और (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये आप हमको (स्वादुः) प्रिय बनायें और (सुहवीतुनाम्ने) कर्म्मयोगी के लिये आप हमको पवित्र बनायें ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा का उपासन करते हैं उनकी कुटिलतायें ज्ञानयोग से दग्ध हो जाती हैं । इसलिये वे सर्वप्रिय हो जाते हैं ॥६॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७॥

पदार्थः—(मदिरास इन्दवः) आनन्द के वर्द्धक और ज्ञान के प्रकाशकस्वभाव (इन्द्रमाविशन्ति) कर्म्मयोगी को आकर प्राप्त होते हैं। जो कर्म्मयोगी (सुस्तुति) सुन्दर स्तुति करने वाला है। उसको (पवमानः) परमात्मा के पवित्रभाव (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होते हैं। उसको (कलशे) अन्तःकरण में (दशक्षिपः) दशप्राण (अत्यं) गतिशील परमात्मा को (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं। (विप्राणां मतयः) विज्ञानी पुरुषों की बुद्धियें (वाच ईरते) उस परमात्मा में वाणियों का प्रयोग करती हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा की उपासना से मनुष्य को सुन्दर शील मिलता है, जिस शील के द्वारा मनुष्य सद्विद्या को प्राप्त होकर ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है ॥७॥

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥

पदार्थः—(पवमानाः) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! (सुवीर्यमुर्वीं) बल के देने वाले विस्तृत मार्ग को जो (गव्यूतिं) इन्द्रियों का ज्ञानमार्ग है उसको देकर हे परमात्मन्! आप (महि) महत् (सप्रथः) सब प्रकार से बड़ा (शर्म्म) सुख (अभ्यर्ष) दें। (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन्! (परिषूतिरीशत) किसी का द्वेषी (नः) हमको (माकिः) मत करो। और (त्वया) तुम्हारे से उत्पन्न किये हुए (धनं धनं) सब धन को (जयेम) हम जीतें ॥८॥

भावार्थः—जिन लोगों के ऐश्वर्य्यसम्बन्धी इन्द्रिय विशाल होते हैं वह किसी के साथ द्वेष नहीं करते। और बुद्धिबल से ही सब ऐश्वर्य उनके अधीन हो जाते हैं ॥८॥

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥९॥

पदार्थः—(कविः) सर्वज्ञ परमात्मा (दिवोरोचना) द्युलोक के प्रकाशक नक्षत्रों को (अरूरुचत्) प्रकाश करता है। वह परमात्मा (विचक्षणः) विविध पदार्थों का द्रष्टा है। और (वृषभः) बल वाला है। (अधिद्यामस्थात्) द्युलोक को आश्रित करके स्थिर है। (राजा) सबका प्रकाशक है। और (पवित्रमत्येति) सर्वोपरि पवित्र है (रोरुवद्दिवः) जो द्युलोक को भी शब्दायमान कर रहा है। (पीयूषं) उस अमृतमय को (नृचक्षसः) विज्ञानी लोग (दुहते) परिपूर्ण करते हैं ॥९॥

भावार्थः—द्युलोक के नक्षत्रादिकों का प्रकाशक स्वयंप्रकाश परमात्मा ही है। उसी से सूर्य्यचन्द्रादिकों का प्रकाश होता है। वही स्वतः प्रकाशस्वरूप परमात्मा (पीयूषं) अमृत का धाम है। उसी से नित्यसुख मुक्ति की इच्छा करनी चाहिये ॥९॥

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥१०॥

पदार्थः—(गिरिष्ठां) वाण्यादिकों के प्रकाशक (उक्षणं) सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा को (वेनाः) याज्ञिक लोग (दुहन्ति) परिपूर्णरूप से साक्षात्कार करते हैं। (असश्चतः) कामनाओं में संसक्त नहीं। (मधुजिह्वा) मधुर बोलने वाले जो याज्ञिक (दिवो नाके) आध्यात्मिक यज्ञों में जो स्थिर हैं। वे (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (आ आप्नुवन्ति) सब ओर से प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (मधुमन्तं) आनन्दस्वरूप है। और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (सिन्धोरूर्म्मा) वाष्परूप परमाणुओं को (वावृधानं) जो बढ़ाने वाला है। और (अप्सु द्रप्सं) जो सब रसों में सर्वोपरि रस है ॥१०॥

भावार्थः—याज्ञिकलोग जो नित्य मुक्तिसुख की इच्छा करते हैं वे आनन्दमय परमात्मा का अपने पवित्र अन्तःकरण में ध्यान करते हैं। जिस प्रकार जलादि पदार्थों के सूक्ष्मरूप परमाणु इस विस्तृत नभोमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं इसी प्रकार परमात्मा के अपहत पापादि धर्म्म उनके रोम-रोम में व्याप्त हो जाते हैं। अर्थात् वे सर्वाङ्ग से पवित्र होकर परमात्मा के भावों को ग्रहण करते हैं ॥१०॥

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥११॥

पदार्थः—(वेनानां) उपासक लोगों की (पूर्वीः, गिरः) बहुत सी वाणियें (अकृपन्त) उसकी स्तुति करती हैं। जो (नाके) सुख में (सुपर्णम्) अपनी ज्ञानसत्ता से (उपपप्तिवांसम्) शब्दायमान होता है। 'शिशुम् श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले इति शिशुः परमात्मा,' जो प्रलयकाल में पदार्थों को सूक्ष्म करे उसका नाम यहां शिशु है। उस परमात्मा को (रिहन्ति) जो प्राप्त होते हैं। (मतयः) सूक्ष्मबुद्धि वाले (पनिप्नतम्) जो शब्दायमान है (हिरण्ययम्) प्रकाशस्वरूप है। और (शकुनम्) 'शक्नोति सर्वं कर्तुमिति शकुनं,' जो सर्वशक्तिमान् हो उसका नाम यहां शकुन है। (क्षामणिस्थाम्) जो क्षमा में स्थिर है ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा विद्वानों की वाणी द्वारा मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित होता है। इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे सदुपदेश द्वारा उसका ग्रहण करें ॥११॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥

पदार्थः—(विश्वा, रूपा प्रतिचक्षाणोऽस्य) इस सूर्य्यमण्डल की प्रतिचक्षाणरूपा, नाना प्रकार के रूपों को प्रख्यात करता हुआ परमात्मा (अधि, नाके, अस्थात्) सर्वोपरि सुख में बिराजमान है। (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि है। और (शुक्रेण) अपने बल से और (शोचिषा) अपनी दीप्ति से (भानुः) सूर्य्य को भी (व्यद्यौत्) प्रकाशित करता है। और (रोदसी मातरा) अन्य लोकलोकान्तरों का निर्माण करता हुआ द्यावापृथिवी को (प्रारूरुचत्) प्रकाशित करने वाला है। (शुचिः) पवित्र है। और (गन्धर्वः) सर्वलोकलोकान्तरों का अधिष्टाता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने प्रकाश से सूर्य्यचन्द्रादिकों का प्रकाशक है। और सम्पूर्ण बिश्व का निर्माता विधाता और अधिष्ठाता है, उसी की उपासना सब लोगों को करनी चाहिये ॥१२॥

नवम मण्डल में यह पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टचत्वारिंशदृचस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—१० आकृष्टामाषाः। ११—२० सिकता निवावरी। २१—३० पृश्नयोऽजाः। ३१—४० त्रय ऋषिगणाः। ४१—४५ अत्रिः। ४६—४८ गृत्समदः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३५, ४०, जगती। २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७, विराड्जगती। ३ –५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६, निचृज्जगती। १४, १५, २८, २९, ४३, ४८, पादनिचृज्जगती। २४ आर्चीजगती। ४५ आर्चीस्वराड्जगती॥ निषादः स्वरः ॥

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥१॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (ते) तुम्हारे (धीजवः) ज्ञानके (आशवः) प्राणरूपभाव (रघुजा इव त्मना) विद्युत् के समान शीघ्रगति करने वाले (मदाः) और आनन्दरूप (अर्षन्ति) अनायास प्रतिदिन गति कर रहे हैं। और वे भाव (दिव्याः) दिव्य हैं (सुपर्णाः) चेतनरूप हैं (मधुमन्तः) आनन्दरूप हैं (इन्दवः) प्रकाशरूप हैं। (मदिन्तमासः) आह्लादक हैं। वे उपासक के (कोशं) अन्तःकरण में (पर्य्यासते) स्थिर होते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग पदार्थान्तरों से चित्तवृत्ति को हटाकर एकमात्र परमात्मा का ध्यान करते हैं उनके अन्तःकरण को प्रकाशित करने के लिये परमात्मा दिव्यभाव से आकर उपस्थित हो जाते हैं ॥१॥

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥२॥

पदार्थः—(वज्रिणम्, इन्द्रम्) विद्युत् की शक्ति रखने वाले कर्म्मयोगी के लिये (धेनुः) गौ (न) जैसे (वत्सं) अपने बच्चे को (पयसा) दुग्ध के द्वारा (अभिगच्छति) प्राप्त होती है। इसी प्रकार (इन्दवः) परमात्मा के प्रकाशरूपस्वभाव (मधुमन्तः) जो जो आनन्दमय हैं। (ऊर्म्मयः) और समुद्र की लहरों के समान गतिशील हैं। वे (मदासः) आह्लादक (मदिरासः) उत्तेजक (आशवः) व्याप्तिशील स्वभाव (ते) तुम्हारे लिये (असृक्षत) रचे गये हैं। (यथा) जैसे (रथ्यासः) रथ की गति के लिये अश्वादिक (पृथक्) भिन्न-भिन्न रचे गये हैं इसी प्रकार (ते) तुम्हारे लिये हे उपासक उक्त स्वभाव रचे गये हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपासक! तुम्हारे शरीररूपी रथ के लिये ज्ञान के विचित्र भाव घोड़ों के समान, जिस प्रकार घोड़े रथ को गतिशील बनाते हैं इसी प्रकार, विज्ञानी पुरुष की चित्तवृत्तियें उसके शरीर को गतिशील बनाती हैं ॥२॥

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥३॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (इन्द्रियायधायसे) धन के धारण कराने के लिये (अव्यये) अविनाशी (पवित्रे) पवित्र आत्मा में (अधिसानो) जो सर्वोपरि विराजमान है ऐसे पवित्र आत्मा के लिए (वृषा) सब कामनाओं की वृष्टिकर्ता परमात्मा (स्वर्वित्) जो सर्वज्ञ है (अत्यः) गतिशील पदार्थ के (न) समान (हियानः) प्रेरणा करने वाला परमात्मा (वाजम्) यशके (अभि) सन्मुख (अर्ष) गति करता है (दिवो अद्रिमातरम्) द्युलोक से मेघका निर्माता (कोशम्) निधिको उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा विद्युदादि पदार्थों के समान गतिशील है। और प्रकाशमात्र के आधार निधियों का निर्म्माता है। वही परमात्मा पवित्र अन्तःकरण वाले पुरुष को ऐश्वर्य्यसम्पन्न करता है ॥३॥

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) हे परमात्मन् (ते) तुम्हारी (आश्विनीः) व्याप्तियां (धीजुवः) जो मन के वेग के समान गतिशील और (दिव्याः) दिव्यरूप हैं। (धरीमणि) आपको धारण करने वाले अन्तःकरण में (पयसासृग्रन्) अमृत बहाती हुई गमन करती है। (वेधसः) कर्म्मों का विधान करने वाले (ऋषिषाण) ज्ञानी (ये) जो (त्वा) तुमको (मृजन्ति) विवेक करके जानते हैं। वे ऋषि (स्थाविरी) सब कामना की वृष्टि करने वाले आपको (अन्तः) अन्तःकरण में (प्रासृक्षत) ध्यान का विषय बनाते हैं ॥४॥

भावार्थः - जो लोग दृढ़ता से ईश्वर की उपासना करते हैं, परमात्मा उनके ध्यान का विषय अवश्यमेव होता है। अर्थात् जब तक पुरुष सब ओर से अपनी चित्तवृत्तियों को हटाकर एकमात्र ईश्वरपरायण नहीं होता तब तक वह सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा उनकी बुद्धि का विषय कदापि नहीं होता। इसी अभिप्राय से कहा कि 'दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः', वह सूक्ष्मदर्शियों की सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही देखा जाता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (विश्वस्य भुवनस्य) सम्पूर्ण भुवनों के (पतिः) स्वामी हैं। और (धर्मभिः) अपने नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावादि धर्म्मों के द्वारा (राजसि) विराजमान हैं। (व्यानशिः) और सर्वत्र व्यापक होकर (पवसे) सबको पवित्र करते हो (विश्वचक्षः प्रभोः) हे सर्वत्र जगत्स्वामिन् ! (ते) तुम्हारी (ऋभ्वसः) बड़ी (केतवः) शक्तियें (परियन्ति) सर्वत्र विद्यमान हैं। और (ते सतः) तुम्हारी सत्ता से (विश्वा धामानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो यह संसार के पति हैं, वह अपहत पाप्मादि धर्म्मों से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। सायणादि भाष्यकार 'धर्म्मभिः' के अर्थ भी सोम के वहने के करते हैं। यदि कोई इनसे पूछे कि, अस्तु धर्म्म के अर्थ वहन ही सही पर 'पतिर्विश्वस्य भुवनस्य' इस वाक्य के अर्थ जड़ सोम में कैसे संगत होते हैं। क्योंकि एक लताविशेष वस्तु सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का पति कैसे हो सकती है। वास्तव में बात यह है कि मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थों को छोड़कर इनको केवल भौतिक अर्थ ही प्रिय लगते हैं ॥५॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥६॥

पदार्थः—(ध्रुवस्य) इस ध्रुव परमात्मा को (सतः) जो सर्वत्र विद्यमान है और (पवमानस्य) जोकि सब को पवित्र करने वाला है। उसको (रश्मयः) ज्योतियें (उभयतः) दोनों लोकों में (परियन्ति) प्राप्त होती हैं। वे ज्योतियें (केतवः) सर्वोपरि होने से केतु के समान हैं। (यदि) जब (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (हरिः) परमात्मा (अधिमृज्यते) साक्षात्कार किया जाता है। तब (सत्ता) उसकी सत्ता (नि) निरन्तर (कलशेषु योना) अन्तःकरणस्थानों में (सीदति) विराजमान होती है ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने अन्तःकरणों को सत्कर्म द्वारा शुद्ध बनाते हैं, उन्हीं के अन्तःकरणों में परमात्मा प्रतिबिम्बित होता है, अन्यों के नहीं ॥६॥

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७॥

पदार्थः—(यज्ञस्य केतुः) ज्ञानयज्ञ, कर्म्मयज्ञ, ध्यानयज्ञ, योगयज्ञ, इत्यादि यज्ञों का परमात्मा केतु है। (पवते) सबको पवित्र करने वाला है। और (स्वध्वरः) अहिंसाप्रधान यज्ञों वाला है। (सोमः) वह सोमस्वभाव परमात्मा (देवानां) विद्वानों के (निष्कृतम्) संस्कृत अन्तःकरणों को प्राप्त होता है। (सहस्रधारः) अनन्तशक्तिसम्पन्न है। और (कोशम्) ज्ञानी पुरुष के अन्तःकरण को (पर्य्यर्षति) प्राप्त होता है। वह परमात्मा (पवित्रं) प्रत्येक पवित्रता को (अत्येति) अतिक्रमण करता है। अर्थात् सर्वोपरि पवित्र है। (वृषा) वह बलस्वरूप है। और (रोरुवत्) सर्वत्र शब्दायमान है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी अनन्तशक्ति से सर्वत्र विराजमान है, यद्यपि वह सर्वत्र विद्यमान है तथापि उसकी अभिव्यक्ति विद्वानों के अन्तःकरण में ही होती है, अन्यत्र नहीं ॥७॥

राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥८॥

पदार्थः—जो परमात्मा (**पृथिव्याः**) पृथिवीलोक और (**महोदिवः**) इस बड़े द्युलोक का (**धरुणः**) आधार है। (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**नद्यः**) सब समृद्धियों को और (**अव्ययं समुद्रम्**) इस अविनाशी अन्तरिक्ष को (**विगाहते**) विगाहन करता है।(**अपामूर्मिम्**) जल की लहरें रूप नदियों को (**सिन्धुषु**) महासागरों में (**सचते**) संगत करता है। (**श्रितः**)वह सबका आश्रय होकर(**अध्यस्थात्**) विराजमान हो रहा है। और (**सानुनाभा**) उच्च से उच्च शिखरों के मध्य में भी विराजमान है ॥८॥

भावार्थः—यद्यपि स्थूलदृष्टि से यह पृथिव्यादिलोक अन्य पदार्थों के अधिष्ठान प्रतीत होते हैं तथापि सर्वाधिकर्म्म एकमात्र परमात्मा ही है क्योंकि सब लोक-लोकान्तरों की रचना करने वाला और नदियों को सागरों के साथ संगत करने वाला और ग्रह उपग्रहों को सूर्य्यादि बड़ी-बड़ी ज्योतियों में संगत करने वाला एकमात्र परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है कोई अन्य वस्तु नहीं ॥८॥

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥९॥

पदार्थः—जो परमात्मा (**दिवःसानु**) द्युलोक के उच्च शिखर को (**स्तनयन्**) विस्तार करने की (**न**) नाईं (**अचिक्रदत्**) गर्ज रहा है। (**च**) और (**यस्य धर्मभिः**) जिसके धर्मों से(**द्यौः**)द्युलोक और(**पृथिवी**)पृथिवीलोक स्थिर है,वह परमात्मा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**सख्यं**) मैत्रीभाव को (**पवते**) पवित्र करता है तथा (**विवेविदत्**) प्रसिद्ध करता है। वह (**सोमः**) परमात्मा (**पुनानः**) हमको पवित्र करता हुआ (**कलशेषु**) हमारे अन्तःकरणों में (**सीदति**) विराजमान होता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का निरूपण किया है कि द्युलोक और पृथ्वी-लोक किसी चेतन वस्तु के सहारे से स्थिर हैं। और उस चेतन में भी जगत्कर्तृत्वादि-धर्मों से इनको धारण किया है। वेद में इतना स्पष्ट ईश्वरवाद होने पर भी सायणादि-भाष्यकार इन मन्त्रों को जड-सोमलता में लगाते हैं और ऐसे मिथ्या अर्थ करना ब्राह्मण और उपनिषदों से सर्वथा विरुद्ध है। देखो "सा च प्रशासनात्"(१।३।११) 'इस सूत्र में महर्षिव्यास ने "शतपथ" ब्राह्मण के आधार पर यह लिखा है, कि "एतस्य वा अक्षरस्य वा गार्गि! द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः" (बृ० ३।८।९।) इस अक्षर की आज्ञा में हे गार्गि ! द्यु-लोक और पृथ्वी लोक स्थिर हैं। इससे स्पष्ट-सिद्ध है यहाँ ईश्वर का वर्णन है जड सोम का नहीं ॥९॥

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१०॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**ज्योतिः**) ज्योति है। और (**मधु**) आनन्दरूप है। (**प्रियं पवते**) जो उसपे प्रेम करते है उन्हें पवित्र करता हैं। (**देवानां**) सब लोक-लोकान्तरों का (**पिता**) पालन करने वाला और (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला है। (**विभूवसुः**) और अत्यन्त ऐश्वर्यवाला है। (**स्वधयोरपीच्यं**) तथा द्यावा-पृथिवी के अन्तर्गत (**रत्नं**) रत्नों को (**दधाति**) धारण करता है। और वह परमात्मा (**मदिन्तमः**) आनन्दस्वरूप है। तथा (**मत्सरः**) सबको आनन्द देने वाला है। और (**इन्द्रियः**) ऐश्वर्यंयुक्त है तथा (**रसः**) आनन्दस्वरूप है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को नानाविध रत्नों का धाता, विधाता और निर्माता, कथन किया है। अर्थात् वह सृष्टि का धारण करने वाला है, वही पालन करने वाला है और वही प्रलय करने वाला है। इस मन्त्र में "मत्सर" और मदादिक जो नाम आये हैं वे परमात्मा के गौरव को कथन करते हैं। आधुनिक संस्कृत में मद मत्सरादि नाम बुरे अर्थों में आने लगे हैं वेद में इनके ये अर्थ न थे। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि आधुनिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत में बड़ा भेद है ॥१०॥

अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥११॥

पदार्थः—(**अभिक्रन्दन्**) स्वसत्ता से गर्जता हुआ (**कलशं**) इस ब्रह्माण्ड को (**वाज्यर्षति**) बलपूर्वक गति देनेवाला है। और (**दिवः**) द्युलोक का (**पतिः**) स्वामी है। तथा (**शतधारः**) अनन्त प्रकार के आनन्दों का स्रोत है। तथा (**विचक्षणः**) सर्व-द्रष्टा और (**हरिः**) सब हानियों को स्वाधीन रखने वाला है। और (**मित्रस्य**) प्रेम-पात्र लोगों के (**सदनेषु**) अन्तःकरणों में (**सीदति**) विराजमान होता है। तथा (**मर्मृजानः**) सबको शुद्ध करता हुआ (**अविभिः, सिन्धुभिः**) वह कृपासिन्धु (**वृषा**) अपनी कृपारूप वृष्टि से सबको सिञ्चित करता है ॥११॥

भावा:—उपासकों को चाहिये कि अपने मनोरूप मन्दिर को इस प्रकार से मार्जित करें जिससे परमात्मा का निवास-स्थान बनकर मन उनकी उपासना का मुख्य साधन बने ॥११॥

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२॥

पदार्थः—जो परमात्मा (**वाचोऽग्रियः**) वेदरूपी वाणियों का मुख्य कारण है। और (**गोषु**) अपनी सत्ता से लोक-लोकान्तरों में (**गच्छति**) प्राप्त है। (**सिन्धूनां**) प्रकृति की वाष्परूप अवस्था से (**अग्रे**) पहले (**पवमानः**) पवित्र करता हुआ (**अर्षति**) सर्वत्र प्राप्त है। ऐसे परमात्मा को उपासक (**वाजस्याग्रे**) धनादि ऐश्वर्यों से पहले (**महाधनं**) महाधन रूप उक्त परमात्मा को (**भजते**) सेवन करता है। ऐसे उपासक को (**स्वायुधः**) अनन्तप्रकार की शक्तिवाला (**सोतृभिः**) अपनी संस्कृत करने वाली शक्तियों के द्वारा (**वृषा**) बलस्वरूप परमात्मा (**पूयते**) पवित्र करता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पञ्चतन्मात्राओं के आदिकारण अहङ्कार और महत्तत्त्व तथा प्रकृति से भी पहले विराजमान था। उसी ने इस शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि गुण युक्त संसार का निर्माण किया है। जिन विचित्र शक्तिओं से परमात्मा इन सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों का निर्माता है उनसे हमारे हृदय को शुद्ध करे ॥१३॥

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे कर्म्मयोगिन् (**ते**) तुम्हारे लिये (**शुचिः**) शुद्धस्वरूप (**सोमः**) परमात्मा (**पवते**) पवित्रता देने वाला है। (**कवे**) हे व्याख्याता (**तव क्रत्वा धिया**) तुम्हारे सुन्दर कर्म्मों के द्वारा (**रोदसी अन्तरा**) इस ब्रह्माण्ड में तुम्हे शुभफल देता है। और (**अयं, मतवान्**) यह सर्वज्ञ परमात्मा (**शकुनो यथा**) जिस प्रकार विद्युत् (**हितः**) हितकर होकर (**अव्ये**) रक्षायुक्त पदार्थ में (**ससार**) प्रविष्ट हो जाता है। एवं (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**ऊर्मिणा**) अपने प्रेमी की वेगरूप शक्तियों से सबको पवित्र करता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा कर्म्मों के द्वारा शुभफलों का प्रदाता है। इस लिये मनुष्यों को चाहिये कि वे उत्तम कर्म्म करें। ताकि उन्हें कर्म्मानुसार उत्तम फल मिले ॥१३॥

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४॥

पदार्थः—(**द्रापिम्**) जो अपने कवचरूपी कर्म्मों के द्वारा (**वसानः**) शारीरिक यात्रा करता है। (**यजतः**) उस कर्म्मशील (**दिविस्पृशम्**) सत्कर्म्मों द्वारा उच्च पुरुष को (**अन्तरिक्षप्रा**) अन्तरिक्ष की पूर्ति करने वाला परमात्मा (**भुवनेष्वर्पितः**) जो सर्वत्र व्याप्त है। (**स्वर्जज्ञानः**) स्वर्गादि लोकों को उत्पन्न करने वाला (**नभसा**) सूक्ष्म सूत्रात्मा द्वारा (**अक्रमीत्**) चेष्टा करता है। (**अस्य पितरं**) इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड का जो पिता है (**प्रत्नं**) और जो कि प्राचीन है। उसको उपासक पुरुष (**आविवासति**) अपना लक्ष्य बनाकर ग्रहण करता है ॥१४॥

भावार्थः—स्वर्गलोक के अर्थ यहां सुख की अवस्था विशेष के हैं ॥१४॥

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥१५॥

पदार्थः—(**सः**) उक्त परमात्मा (**अस्य**) जिज्ञासु के (**विशे**) शरणागत होने पर (**महि**) बड़ा (**शर्म्मं**) सुख (**यच्छति**) उसको देता है। (**यः**) जो जिज्ञासु (**अस्य धाम**) इसके स्वरूप को (**प्रथमं**) पहले (**व्यानशे**) प्रविष्ट होकर ग्रहण करता है। और (**यत्**) जो (**अस्य**) इस परमात्मा का (**पदं**) स्वरूप है। (**परमे व्योमनि**) जो सूक्ष्म से सूक्ष्म महदाकाश में फैला हुआ है, उसको ग्रहण करता है। (**अतः**) इसलिये (**विश्वा**) सब प्रकार से (**संयतः**) संयमी जिज्ञासु होकर (**सत्कर्म्माण्यभि**) सत्कर्मों को (**संयाति**) प्राप्त होता है ॥१५॥

भावार्थः—'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः', इत्यादि विष्णु के स्वरूप निरूपण करने वाले मन्त्रों में विष्णु के स्वरूप का वर्णन है। वही वर्णन यहां पद शब्द से किया है। पद के अर्थ किसी अंग विशेष के नहीं किन्तु स्वरूप के हैं ॥१५॥

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१६॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) सर्वप्रकाशक परमात्मा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**निष्कृतं**) संस्कृत अन्तःकरण को (**प्रो अयासीत्**) भली-भांति प्राप्त होता है। और (**सख्युः**) सखा के (**न**) समान (**सखा**) मित्र होता है। और (**संगिरं**) सम्पूर्ण शक्तियों को

(प्रमिनाति) प्रमाणित कर देता है । (युवतिभिरिव) युवती स्त्रियों के द्वारा जैसे (मर्य्यः) मर्य्यादा स्थिर की जाती है । (कलशे) इस ब्रह्माण्डरूपी कलश में (शतयाम्ना पथा) सैंकड़ों शक्तियों वाले रास्ते से परमात्मा (समर्षति) भली-भांति गति कर रहा है ।।१६।।

भावार्थः—जिस प्रकार स्त्रियां अपने सदाचार से मर्यादा को बान्धती हैं, वा यों कहो कि मर्यादापुरुषोत्तम पुरुषों को उत्पन्न करके मर्यादा बान्धती हैं इसी प्रकार परमात्मा वेद मर्यादारूप वैदिक पथ से महापुरुषों को उत्पन्न करके मर्यादा बान्धते हैं ।।१६।।

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ।।१७।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (प्र वो धियः) तुम्हारा ध्यान करने वाले (मन्द्रयुवः) तुम्हारा आनन्द चाहने वाले (विपन्युवः) उपासक लोग (पनस्युवः) स्तुति की कामना करते हुए (संवसनेषु) उपासनास्थानों में (अक्रमुः) प्रवेश करते हैं । और (सोमं) सर्वोत्पादक परमात्मा में (मनीषा) चित्त की सूक्ष्मवृत्ति द्वारा (अभ्यनूषत) सब प्रकार से निवास करते हैं (स्तुभो) जैसे उपास्य के (अभि) अभिमुख (धेनवः) इन्द्रियों की वृत्तियां (पयसा) वेग से (अशिश्रयुः) उसका आश्रय लेती हैं, इसी प्रकार उपासक की चित्तवृत्तियां ईश्वर की ओर झुक जाती हैं ।।१७।।

भावार्थः—जो पुरुष समाहत चित्त से ईश्वर का ध्यान करते हैं उन की चित्तवृत्तियां प्रबल प्रवाह से ईश्वर की ओर झुक जाती हैं ।।१७।।

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ।।१८।।

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (नः) हमारे (संयन्तं) सम्बन्धी और (पिप्युषीम्) वृद्धियुक्त (इषं) ऐश्वर्य को (अस्रिधं) जो अक्षय हो, ऐसे धन से (आपवस्व) सब ओर से हमको पवित्र करें । (या) जो कि (नः) हमारे सम्बन्ध में (त्रिरहन्) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में (असश्चुषी) प्रतिबन्ध रहित (क्षुमत्) बहुत ऐश्वर्य वाले (वाजवत्) बलवाले (मधुमत्) मधुरता युक्त (सुवीर्यं) बल करने वाले ऐश्वर्य को आप (दोहते) परिपूर्ण करें ।।१८।।

भावार्थः—स्वनियमानुकूल चलने वाले पुरुषों के लिये परमात्मा अक्षय धन को प्रदान करते हैं ।।१८।।

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ।।१९।।

पदार्थः—परमात्मा (मनीषिभिः) सदुपदेशकों से उपदेश किए हुए (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ (कलशान्) कर्मयोगियों के अन्तःकरणों की (अवीवशत्) कामना करता है । जो परमात्मा (दिवः) द्युलोक के (सिन्धूनां) स्यन्दनशील सूक्ष्म तत्त्वों का (क्राणा) कर्ता है और (अह्नः) दिन की (उषसः) ज्योतियों का (प्रतरीता) वर्द्धक है । (सोमः) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (विचक्षणः) सर्वज्ञ परमेश्वर, (मतीनां) उपासकों की कामनाओं की (वृषा) पूर्ति करने वाला उक्त परमात्मा हम लोगों को (पवते) पवित्र करे ।।१९।।

भावार्थः—जो लोग सदुपदेशकों के सदुपदेश को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करते हैं, उनके अन्तःकरणों को परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ।।१९।।

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ।।२०।।

पदार्थः—(मनीषिभिः) विद्वानों से उपदेश किया हुआ (पूर्व्यः) अनादिसिद्ध परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है । जो परमात्मा (कविभिः) विद्वानों द्वारा (यतः) ग्रहण किया हुआ है, वह (कोशान्) प्रकृति के कोशों को (अचिक्रदत्) शब्दादि द्वारा प्रसिद्ध करता है । वह (मधु) आनन्दयुक्त परमात्मा (त्रितस्य) सत्व रज और तमो गुण की साम्यावस्थारूप प्रकृति पुञ्ज को (नाम जनयन्) नामरूप में विभक्त करता हुआ (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (वायोः) तथा ज्ञानयोगी के साथ (सख्याय) मैत्री (कर्तवे) करने के लिये (क्षरत्) अपने आनन्द को प्रवाहित करता है ।।२०।।

भावार्थः—कर्मयोगी और ज्ञानयोगी लोग परमात्मगुणों के धारण करने से परमात्मा के साथ एक प्रकार की मैत्री उत्पन्न करते हैं । अर्थात् “अहं वा त्वासि भगवो देवेतत्वं वा अहमस्मि” कि “मैं, तू,” और “तू मैं” इस प्रकार की अहंग्रह उपासना द्वारा अर्थात् अभेदोपासना द्वारा परमात्मा का ध्यान करते हैं ।।२०।।

अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ।।२१।।

पदार्थः—(**अयं**) पूर्वोक्त परमात्मा अपनी शक्तियों से (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ और (**उषसः**) उषाकाल का (**विरोचयत्**) प्रकाश करता हुआ (**सिन्धुभ्यः**) स्यन्दनशीला प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों से (**लोककृत्**) संसार का करने वाला (**अभवत्**) हुआ (उ) यह दृढताबोधक है। (**अयं त्रिः सप्त**) यह परमात्मा प्रकृति के एकविंशति महत्तत्त्वादि तत्त्वों को (**दुदुहानः**) दोहन करता हुआ (**आशिरं**) ऐश्वर्यं को उत्पन्न करके (**सोमः**) यह जगदुत्पादक परमात्मा (**चारुमत्सरः**) जो अत्यन्त आह्लादक है वह (**हृदये**) हमारे हृदय में (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृति से महत्तत्त्व उत्पन्न किया और महत्तत्त्व से जो अहंकारादि एकविंशति गण है उसी का यहाँ "त्रिः सप्त" शब्द से गणन है किसी अन्य का नहीं ॥२१॥

पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**दिव्येषु धामसु**) द्युलोकादि स्थानों में (सृजानः) उक्त सृष्टि को रचने वाले आप (**पवस्व**) पवित्र करें। (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप ! (**पवित्रे कलशे**) पवित्र अन्तःकरणों में (**आसीदन्**) स्थिति करते हुए आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी की (**जठरे**) सत्तास्फूर्ति देने वाली जठराग्नि में (**कनिक्रदत्**) गर्जते हुए (**नृभिर्यतः**) मनुष्यों के स्थान के विषय आप (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यं**) सूर्यं का (**आरोहय**) आश्रय लें ॥२२॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्य-चन्द्रमादिकों का निर्माण करता हुआ इस विविध प्रकार की रचना का निर्माण करके प्रजा को उद्योगी बनाने के लिये कर्मयोगी की कर्म्माग्नि को प्रदीप्त करता है ॥२२॥

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के कर्मप्रदीप्त (**जठरेषु**) अग्नि में (**आविशन्**) प्रवेश करते हुए (**अद्रिभिः सुतः**) वज्र से संस्कार किये हुए कर्मयोगी को (**पवसे**) पवित्र करते हैं। (**आ**) और (**पवित्रे**) उसके पवित्र अन्तःकरण में (**अभवः**) निवास करें। (**नृचक्षाः**) तुम सर्वद्रष्टा हो (**विचक्षणः**) तथा सर्वज्ञ हो। (**सोम**) हे जगदुत्पादक ! आप (**अङ्गिरोभ्यः**) प्राणायामादि द्वारा (**गोत्रं**) कर्मयोगी के शरीर की रक्षा करें और उसके विघ्नों को (**अपावृणोः**) दूर करें ॥२३॥

भावार्थः—"गौर्वाग्गृहीता अनेनेति गोत्रं शरीरम्" जो वाणी को ग्रहण करे उसका नाम यहां गोत्र है। इस प्रकार यहां शरीर और प्राणों का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है। और सायणाचार्य ने गोत्र के अर्थ यहां मेघ के किये हैं और "अङ्गिरेभ्यः" के अर्थ कुछ नहीं किये हैं। यदि सायणाचार्य के अर्थों को उपयुक्त भी माना जाय तो अर्थ ये बनते हैं हे सोमलते ! तुम अङ्गिरादि ऋषियों से मेघों को दूर करो इस प्रकार सर्वथा असंबद्ध प्रलाप हो जाता है। वास्तव में यह प्रकरण कर्मयोगी का है और उसी को प्राणों की पुष्टि के द्वारा विघ्नों को दूर करना लिखा है ॥२३॥

त्वा सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**पवमानं त्वां**) सर्वपूज्य तुझको (**स्वाध्यः**) सुकर्म्मा लोग (**विप्रासः**) जो मेधावी हैं। और (**अवस्यवः**) आपकी उपासना की इच्छा करने वाले हैं। वे (**अन्वमदन्**) आपकी स्तुति करते हैं। (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप! (**त्वां**) तुझको (**सुपर्णः**) बोधयुक्त उपासक (**आभरत्**) उपासना द्वारा ग्रहण करता है। तुम कैसे (**दिवस्परि**) कि द्युलोक की भी मर्य्यादा को उल्लङ्घन करके वर्त्तमान हो। और (**विश्वाभिर्मतिभिः**) सम्पूर्ण ज्ञानों से (**परिष्कृतम्**) अलंकृत हो ॥२४॥

भावार्थः—जो लोग विद्या द्वारा अपनी बुद्धिका परिष्कार करते हैं वे ही परमात्मा की विभूति को जान सकते हैं, अन्य नहीं ॥२४॥

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥२५॥

पदार्थः—(**अव्ये वारे**) वरणीय पुरुष को (**ऊर्मिणा**) प्रेमसे (**पुनानं**) पवित्र करने वाले (**हरिम्**)परमात्मा को (**सप्त धेनवः**) इन्द्रियों की सात वृत्तियां (**अभिनवन्ते**) प्राप्त होती हैं (**अपामुपस्थे**) कर्म्मों की अध्यक्षता में जो (**कविं**) सर्वज्ञ है। उसको (**अध्यायवः**) उपासक लोग जो (**महिषाः**) महाशय हैं वे (**ऋतस्य योना**) सच्चाई के स्थान में (**अभ्यहेषत**) उपासना करते हैं ॥२५॥

भावार्थः—सदसद्विवेकी लोग अन्य उपास्य देवों की उपासना को

छोड़कर सब कर्म्मों के अधिष्ठाता परमात्मा की ही एकमात्र उपासना करते हैं, किसी अन्य की नहीं ॥२५॥

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६॥

पदार्थः—(यज्यवे) यज्ञ करने वाले यजमानों के लिये परमात्मा (विश्वानि सुपथानि) सब रास्तों को (कृण्वन्) सुगम करता हुआ (मृधः) उनके विघ्नों को (अतिगाहते) मर्दन करता है। और (पुनानः) उनको पवित्र करता हुआ और (निर्निजं) अपने रूप को (गाः कृण्वानः) सरल करता हुआ (हर्य्यतः) वह कान्तिमय परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ (अत्यो न) विद्युत् के समान (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ (वारं)वरणीय पुरुष को (पर्य्यर्षति) प्राप्त होता है ॥२६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिये सब रास्तों को सुगम करता है ॥२६॥

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७॥

पदार्थः—(उदन्युवः) प्रेम की (ताः) वे (शतधाराः) सैकड़ों धारायें (असश्चतः) जो नानारूपों में (अभिश्रियः) स्थिति को लाभ कर रही हैं। वे (हरिं) परमात्मा को (अवनवन्ते) प्राप्त होती हैं। (गोभिरावृतं) प्रकाशपुञ्ज परमात्मा को (क्षिपः) बुद्धिवृत्तियां (मृजन्ति) विषय करती हैं। जो परमात्मा (दिवस्तृतीये पृष्ठे) द्युलोक के तीसरे पृष्ठ पर विराजमान है और (रोचने) प्रकाशस्वरूप है, उसको बुद्धिवृत्तियां प्रकाशित करती हैं ॥२७॥

भावार्थः—द्युलोकादिकों के प्रकाशक परमात्मा को मनुष्य ज्ञान की वृत्तियों से ही साक्षात्कार करता है, अन्यथा नहीं ॥२७॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥२८॥

पदार्थः—(तव दिव्यस्य, रेतसः) तुम्हारे दिव्य सामर्थ्य से (इमाः प्रजाः) ये सब प्रजा उत्पन्न हुई हैं। (त्वं) तुम (विश्वस्य भुवनस्य) सम्पूर्ण सृष्टि के (राजसि) राजा होकर विराजमान हो। (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! (इदं विश्वं) ये सम्पूर्ण संसार (ते वशे) तुम्हारे वश में है। (अथ) और (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वं प्रथमं) तुम ही पहले (धामधाः) सबके निवास स्थान (असि) हो ॥२८॥

भावार्थः—परमात्मा सबका अधिकरण है। इसलिये सब भूतों का निवास स्थान वही है ॥२८॥

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९॥

पदार्थः—(विश्ववित् कवे) हे सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता परमात्मन् (त्वं) तुम (समुद्रोऽसि) समुद्र हो "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः" जिसमें सब भूत उत्पत्ति स्थिति प्रलय को प्राप्त हों उसका नाम यहां समुद्र है। (तव विधर्म्मणि) तुम्हारी विशेष सत्ता में (इमाः पञ्च प्रदिशः)। इन पांचों भूतों के सूक्ष्म पञ्च तन्मात्र विराजमान हैं। और (त्वं द्याञ्च) आप द्युलोक को (पृथिवीञ्च) और पृथिवी लोक को अति (जभ्रिषे) भरण-पोषण करते हैं। और हे पवमान परमात्मन्! (सूर्य्यः) सूर्य्य भी (तव ज्योतींषि) तुम्हारी ज्योति है।

भावार्थः—सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का हेतु होने से परमात्मा का नाम समुद्र है। उसी सर्वाधार सर्वनिधि महासागर से इस सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होती है। किसी अन्य से नहीं ॥२९॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥

पदार्थः—(त्वं) तुम (पवित्रे विधर्म्मणि) अपने पवित्र स्वरूप में (देवेभ्यो रजसः) दिव्यगुण युक्त रजोगुण के परमाणुओं से इस संसार को उत्पन्न करते हो। (सोम) हे परमात्मन् (पवमानः) सबको पवित्र करने वाले (पूयसे) तुम पवित्र करते हो। (त्वामुशिजः) तुमको विज्ञानी लोगों ने (प्रथमाः) पहले (अगृभ्णत) ग्रहण किया। (तुभ्य इमाः) तुम्हारे लिये ये (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर (येमिरे) अपने आपको समर्पित करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा ही सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों की उत्पत्ति का कर्ता है। और उसी की विभूति को सब लोक-लोकान्तर प्रदीप्त कर रहे हैं ॥३०॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥३१॥

पदार्थः—(रेभः) शब्दब्रह्म का आधार परमात्मा (वारमव्ययं) वरणीय उपासक को (प्र, प्रत्येति) भलीभांति प्राप्त होता है । जो परमात्मा (वृषा) बलों का दाता है (स हरिः) वह सबको स्वसत्ता में लीन करने वाला परमात्मा (वनेषु) उपासनाओं में (अवचक्रदत) शब्दायमान होता है (धीतयः) उपासक लोग (वावशानाः) उसकी उपासना में मग्न हुए हुए (समनूषत) भलीभांति उसकी स्तुति करते हैं । (पनिप्नतम्) उस शब्द ब्रह्म के आदि कारण ब्रह्म को, जो (शिशुं) सबका लक्ष्य स्थान है । उसको (मतयः) सुमति लोग (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥३१॥

भावार्थः—जो लोग चित्तवृत्ति को अन्य प्रवाहों से हटाकर एकमात्र परमात्मा का ध्यान करते हैं वही परमात्मा को भलीभाँति साक्षात्कार करते हैं, अन्य नहीं ॥३१॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२॥

पदार्थः—वह परमात्मा (यथाविदे) यथार्थ ज्ञानी के लिये (त्रिवृतं) ३ प्रकार के ब्रह्मचर्य्य को (तन्वानः) विस्तार करता हुआ (तन्तुं परिव्यत) सन्ततिरूप तन्तु का विस्तार करता है । (सः) और वह परमात्मा (सूर्य्यस्य रश्मिभिः) सूर्य्य की किरणों द्वारा प्रकाश करता हुआ (ऋतस्य प्रशिषः) सच्चाई की प्रशंसा (नवीयसीः) जो कि नित्य नूतन है, उसको (नयन्) प्राप्त कराता हुआ (जनीनां) मनुष्यों के (निष्कृतं) संस्कृत अन्तःकरण को (उपयाति) प्राप्त होता है । (पतिः) वही परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पति है ॥३२॥

भावार्थः—परमात्मा इस संसार में प्रथम मध्यम उत्तम—तीन प्रकार की ब्रह्मचर्य्य की मर्यादा का निर्माण करता है । उन कृतब्रह्मचर्य्य पुरुषों से शुभ सन्तति का प्रवाह संसार में प्रचलित होता है ॥३२॥

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३॥

पदार्थः—(हरिः) परमात्मा (पुनानः) सब को पवित्र करता हुआ (वाचं जनयन्) वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करता हुआ (उपावसुः) सब धनों का आधार (परिषिच्यते) विद्वानों द्वारा उपासना किया जाता है । (सहस्रधारः) वह अनन्तशक्तिमान् है । (सिन्धूनां राजा) और स्यन्दनशील सब पदार्थों का राजा है और (दिवः) द्युलोक का (पतिः) पति है । (ऋतस्य पथिभिः) सच्चाई के रास्तों से (कनिक्रदत्) वह शब्दायमान ब्रह्म (याति) अपने भक्तों के प्रति गति करता है । तथा (पवते) उनको पवित्र करता है ॥३३॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करके सदा उपदेश करता है । परमात्मानुयायी पुरुषों को चाहिये कि उसकी आज्ञानुसार अपना जीवन बनावें ॥३३॥

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥३४॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (मह्यर्णः) गतिस्वरूप हैं, (विधावसि) अपनी गति से सबको गमन कराते हैं । (सूरः न) जैसे सूर्य्य (चित्रः) नानावर्णविशिष्ट (अव्ययानि) रक्षायुक्त पदार्थों को (पव्यया) अपनी शक्ति से पवित्र करते हैं । इसी प्रकार (गभस्तिपूतः) आपकी रोशनी से पवित्र हुए आपके उपासक (अद्रिभिर्नृभिः) आपको साक्षात्कार करने वाली चित्तवृत्तियों द्वारा (सुतः) आपकी उपासना करते हैं (महेवाजाय) तब आप बड़े ऐश्वर्य के लिये और (धन्याय) धन के लिये (धन्वसि) ऐश्वर्य्यप्रद होते हैं ॥३४॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य्य अपनी किरणों द्वारा स्वाश्रित पदार्थों को प्रकाशित करता है इसी प्रकार परमात्मा अपनी ज्ञानशक्ति से अपने भक्तों का प्रकाशक है ॥३४॥

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥३५॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (इषं) ऐश्वर्य्य और (ऊर्जं) बल को (अभ्यर्षसि) देते हैं । (श्येनो न) जिस प्रकार बिजली (वंसु कलशेषु) निवासयोग्य स्थानों में स्थिर होती है । इसी प्रकार आप (सीदसि) पवित्र अन्तःकरणों में स्थिर होते हैं । (इन्द्राय) आप कर्म्मयोगी के लिये (मद्वा) आनन्द करने वाले (मद्यः) और आनन्द के हेतु हैं । (मदः) स्वयं आनन्दस्वरूप हैं । (सुतः) स्वयंसिद्ध हैं । (दिवो विष्टम्भः) द्युलोक के आधार हैं । (उपमः) और द्युलोक की उपमावाले हैं । (विचक्षणः) सर्वोपरि प्रवक्ता हैं ॥३५॥

भावार्थः—परमात्मा द्युम्वादि लोकों का आधार है और उसी के आधार में चराचर सृष्टि की स्थिति है। और वेदादि विद्याओं का प्रवक्ता होने से वह सर्वोपरि विचक्षण है ॥३५॥

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम्।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६॥

पदार्थः—(सप्त स्वसारः) ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्रों से गति करने वाली इन्द्रियों की ७ वृत्तियां (अभिमातरः) जो ज्ञानयोग्य पदार्थ को प्रमाणित करती हैं, वे (शिशुं) सर्वोपास्य परमात्मा को (नवं) जो नित्य नूतन है, (यज्ञानं) और स्फुट है (जेन्यं) सबका जेता (विपश्चितं) और सबसे बड़ा विज्ञानी है उसको विषय करती हैं। जो परमात्मा (अपां) जलों का (गन्धर्वं) और पृथिवी का धारण करने वाला है, (दिव्यं) दिव्य है, (नृचक्षसं) सर्वान्तर्य्यामी है (सोमं) सर्वोत्पादक है। उसकी (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) सम्पूर्ण भुवनों के ज्ञान के लिये विद्वान् लोग उपासना करते हैं ॥३६॥

भावार्थः—परमात्मा का ध्यान इसलिये किया जाता है कि परमात्मा अपहतपाप्मादि गुणों को देकर उपासक को भी दिव्य दृष्टि दे। ताकि उपासक लोक-लोकान्तरों के ज्ञान को उपलब्ध कर सके। इसी अभिप्राय से योग में लिखा है कि 'भुवनज्ञानं सूर्य्ये, संयमात्' परमात्मा में चित्तवृत्ति का निरोध करने से लोक-लोकान्तरों का ज्ञान होता है ॥३६॥

ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (ईशानः) आप ईश्वर हैं। (इमा भुवनानि) इन सब भुवनों को (वीयसे) चलाते हैं। (हरितः) हरणशील शक्तियां (सुपर्ण्यः) जो चेतन हैं, उनको (युजानः) नियुक्त करते हैं। (ताः) वे (ते) तुम्हारी शक्तियां (मधुमद्घृतं) मीठा प्रेम हमारे लिये (क्षरन्तु) बहायें। (पयः) और दुग्धादि स्निग्ध पदार्थ प्रदान करें। (सोम) हे परमात्मन्! (तव व्रते) तुम्हारे नियम में (कृष्टयः) सब मनुष्य (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के नियम में स्थिर रहने का वर्णन है जैसा कि 'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' इत्यादि मन्त्रों में व्रत की प्रार्थना है। यहां भी परमात्मा के नियमरूप व्रत के परिपालन की प्रार्थना है ॥३७॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (त्वं) तुम (नृचक्षाः असि) मनुष्यों के कर्म्मों के भिन्न-भिन्न फल देनेवाले हो और (पवमान) हे पवित्र करने वाले (विश्वतः) सब प्रकार से (वृषभ) हे अनन्तशक्तियुक्त परमात्मन् (ता विधावसि) उन शक्तियों से आप हमको शुद्ध करें (सः) उक्त शक्तियुक्त आप (नः) हमको (पवस्व) पवित्र करें। आप (वसुमत्) ऐश्वर्य्य वाले और (हिरण्यवत्) प्रकाश वाले हे। (वयं) हम (भुवनेषु) इस संसार में (जीवसे) जीने के लिये (स्याम) उक्त ऐश्वर्य्ययुक्त हों ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को कर्मों के साक्षीरूप से वर्णन किया है ॥३८॥

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥३९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (गोवित्) आप विज्ञानी हैं, ज्ञान से (पवस्व) हमको पवित्र करें! (वसुवित्) ऐश्वर्य्य से सम्पन्न हैं, ऐश्वर्य्य से हमको पवित्र करें! (हिरण्यवित्) प्रकाशस्वरूप हैं, प्रकाश से हमको पवित्र करें! (रेतोधाः) आप प्रजा के बीजस्वरूप सामर्थ्य को धारण करने वाले हैं। (भुवनेषु अर्पितः) और सब संसार में व्याप्त हैं। (त्वं) तुम (सुवीरोऽसि) सर्वोपरि बलयुक्त हो। (सोम) सर्वोत्पादक हो (विश्ववित्) सर्वज्ञाता हा। (तं त्वां) उक्तगुणयुक्त आपको (विप्राः) विद्वान् लोग (उपगिरेम) उपासना करते हुए (आसते) स्थित होते हैं ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को ज्ञान, प्रकाश और क्रिया इत्यादि अनन्तगुणों के आधाररूप से वर्णन किया है, कि इसी आशय को लेकर 'स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया' इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में परमात्मा को ज्ञान बल क्रिया का आधार वर्णन किया है ॥३९॥

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४०॥

पदार्थः—(मध्वः) मीठी (ऊर्मिर्वननाः) लहरों वाली वेदवाणी (उपतिष्ठिपत्) तुम आश्रय किये हो । तथा (राजा) तुम सबको प्रकाश देनेवाले हो । और (पवित्ररथः) आप पवित्र गतिवाले हैं, तथा (वाजमारुहत्) ऐश्वर्यरूपी शक्ति को आश्रय किये हुए हो और (सहस्रभृष्टिः) अनन्त शक्तियों से इस संसार को पालन करनेवाले हो । तथा (बृहच्छ्रवः) बड़े यशवाले हो । और (जयति) सर्वोत्कृष्टता से वर्तमान हो । उक्तगुणसम्पन्न आपको (अपोवसानः) कर्मयोगी (महिषः) महापुरुष (विगाहते) साक्षात्कार करता है ॥४०॥

भावार्थः—महिष शब्द के अर्थ यहां महापुरुष के हैं । 'महिष इति महन्नामसु पठितम्' (नि० अ० । ३ । खं० १३)॥ महिष यह निरुक्त में महत्त्व का वाचक है । महापुरुष यहां कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को माना है । उक्त पुरुषों में महत्त्व परमात्मा के सद्गुणों के धारण करने से आता है, इसलिये इनको महापुरुष कहा है ॥४०॥

स भ॒न्द॒ना उदि॑यर्ति प्र॒जाव॑तीर्वि॒श्वायु॑र्वि॒श्वाः सु॒भरा॒ अह॑र्दिवि ।
ब्रह्म॑ प्र॒जाव॑द्र॒यिमश्व॑पस्त्यं पी॒त इ॑न्द॒विन्द्र॑म॒स्मभ्यं॑ याचतात् ॥४१॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्त कर्मयोगी (भन्दनाः) वन्दना (उदियर्ति) करता है जो वन्दना (अहर्दिवि) सर्वदा (प्रजावतीः) शुभ प्रजा को देनेवाली है तथा (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयु को देनेवाली है । और (विश्वाः) सब प्रकार की (सुभराः) पूर्तियों की करने वाली है । (ब्रह्म) वेद (प्रजावत्) जो सदुपदेश द्वारा शुभ प्रजाओं को देने वाला है और (रयिं) धन और (अश्वपस्त्यं) अन्य गतिशील पदार्थों को देनेवाला है । (पीतः) नित्य तृप्त (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्रं) कर्मयोगी को तथा (अस्मभ्यं) हमारे लिये उक्त ऐश्वर्य (याचतात्) दें ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ऐश्वर्य्य की प्रार्थना करते हुए वेदों के सदुपदेशरूपी महत्त्व का वर्णन किया है ॥४१॥

सो अग्रे॒ अह्नां॒ हरि॑र्हर्य॒तो मदः॒ प्र चेत॑सा चेतयते॒ अनु॒ द्युभिः॑ ।
द्वा जना॑ या॒तय॑न्न॒न्तरी॑यते॒ नरा॑ च॒ शंसं॒ दैव्यं॑ च ध॒र्तरि॑ ॥४२॥

पदार्थः—(सः सोमः) उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा (अह्नामग्रे) इस दिन रात से पहले (हर्यतो हरिः) हरण करनेवाली शक्तियों का हरण करने वाला था । (मदः) आनन्दस्वरूप था और (अनुद्युभिः) द्युभ्वादि लोकों को (चेतसा) अपनी चैतन्यरूप-शक्ति से (प्रचेतयते) गीतशील करने वाला था । (द्वाजना) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों पुरुषों को (यातयन्) वेदविधि से प्रेरणा करके (अन्तरीयते) इस द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में गतिशील है (च) और (नरा) उक्त दोनों पुरुषों को (शंसं) प्रशंसनीय (दैव्यं) दिव्य (च) और (धर्तरि) धारणाविषय में सर्वोपरि बनाता है ॥४२॥

भावार्थः—वह परमात्मा इस प्रकृति की नानाविध शक्तियों का संयोजन करता हुआ कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों प्रकार के पुरुषों को प्रशंसनीय बनाता है ॥४२॥

अ॒ञ्जते॒ व्य॑ञ्जते॒ सम॑ञ्जते॒ क्रतुं॑ रिहन्ति॒ मधु॑ना॒भ्य॑ञ्जते ।
सिन्धो॑रुच्छ्वा॒से प॒तय॑न्तमु॒क्षणं॑ हिरण्यपा॒वाः प॒शुमा॑सु गृभ्णते ॥४३॥

पदार्थः—(अञ्जते) उक्त परमात्मा अपने ज्ञान द्वारा गति का हेतु है । और (व्यञ्जते) पूर्वकृत कर्मों के द्वारा जीवों के विविध प्रकार के जन्मों का हेतु है । तथा (समञ्जते) स्वयं न्यायशील होकर गति का हेतु है इसलिये सम्यग्गति कराने वाला कथन किया गया है और (क्रतुं) यज्ञरूप परमात्मा को (रिहन्ति) उपासक लोग ग्रहण करते हैं । जो परमात्मा (मधुना) अपने आनन्द से (अभ्यञ्जते) सर्वत्र प्रकट है । और (सिन्धोरुच्छ्वासे) जो सिन्धु की उच्च लहरों में (पतयन्तं) गिरा हुआ मनुष्य है (उक्षणं) और बलस्वरूप है (हिरण्यपावाः) और सदसद्विवेकी है और (पशुं) जो ज्ञानदृष्टि से देखता है "पशुः पश्यतेरिति निरुक्तम्" (३ । १६) उक्त पुरुष को परमात्मा (आसु) अपने आर्द्रभाव से अर्थात् कृपादृष्टि से (गृभ्णते) ग्रहण करता है ॥४३॥

भावार्थः—परमात्मा पतितोद्धारक है, जो पुरुष अपने मन्द कर्मों से गिरकर भी उद्योगी बना रहता है, परमात्मा उसका अवश्यमेव उद्धार करता है ॥४३॥

वि॒प॒श्चिते॒ पव॑मानाय गायत म॒ही न धारात्यन्धो॑ अर्षति ।
अहि॒र्न जू॒र्णामति॑ सर्पति॒ त्वच॒मत्यो॒ न क्रीळ॑न्नसर॒द्वृषा॒ हरिः॑ ॥४४॥

पदार्थः—हे ज्ञानीपुरुषो ! (विपश्चिते) सर्वज्ञ परमात्मा के लिये (पवमानाय) जो सबको पवित्र करने वाला है, आप (गायत) गान करें जो (धारा न) धारा के समान (मही) बड़े (अत्यन्धः) ऐश्वर्य को (अर्षति) देने वाला है । जिसको जानकर पुरुष (अहिः) सांप की (जूर्णां त्वचं न) जीर्ण त्वचा के समान (अतिसर्पति) त्याग कर गमन करता है (अत्यो न) विद्युत् के समान (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ

(असरत्) सर्वत्र गतिशील होता है। और (वृषा) सब कामनाओं की वृष्टि करता है तथा (हरिः) सब विपत्तियों को हर लेता है ॥४४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की उपासना का कथन किया गया है कि, हे उपासक लोगो तुम उस सर्वज्ञ पुरुष की उपासना करो जो सर्वोपरि विज्ञानी और पतितोद्धारक है। इस मन्त्र में विपश्चित्, शब्द परमात्मा के लिये आया है। और पहले पहल 'विपश्चित्' शब्द मेधावी के लिए वेद में ही आया है। इसी का अनुकरण आधुनिक कोषों में भी किया गया है ॥४४॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥४५॥

पदार्थः—जो परमात्मा (अग्रेगः) सबसे पहले गति करने वाला है, तथा (राजा) सबका स्वामी है और (अप्यः) सर्वगत है (तविष्यते) वह स्तुति किया जाता है। (अह्नां विमानः) सूर्यचन्द्रमादिकों का निर्माता है (भुवनेष्वर्पितः) सबलोकों में स्थिर है और (हरिः) हरणशील है तथा (घृतस्नुः) प्रेमको चाहने वाला है, तथा (सुदृशीकः) सुन्दर है। (अर्णवः) सुखों का समुद्र है (ज्योतीरथः) ज्योतिःस्वरूप है। और (ओक्यः) सब का निवासस्थान है। वह परमात्मा (राये) ऐश्वर्य के लिये (पवते) हमें पवित्र करे ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वाधिकरणरूप से वर्णन किया है, जैसा कि "यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः" (ऋ० ।१०।१२।६।) में यही वर्णन किया है कि सर्व लोकलोकान्तर उसी में निवास करते हैं ॥४५॥

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥४६॥

पदार्थः—जो परमात्मा (दिवःस्कम्भः) द्युलोक का आधार है और (त्रिधातुर्भुवनानि) प्रकृति के तीनों गुणों के कार्य जो लोक हैं उनको (पर्यर्षति) चलाने वाला है। और (मदः) आनन्दस्वरूप है तथा (उद्यतः) अपनी सत्ता से सदैव जीवितजागृत है (असर्जि) उसने इन लोकलोकान्तरों को रचा। (अंशुं) उस गतिशील (पनिप्नतं) शब्दायमान परमात्मा को (मतयः) बुद्धिमान् (गिरा) वेदवाणी द्वारा (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं। कब-कब (यदि) जब-जब (निर्णिजं) उस शुद्धस्वरूप को (ऋग्मिणः) स्तोता लोग स्तुति द्वारा (ययुः) प्राप्त होते हैं ॥४६॥

भावार्थः—जब उपासक शुद्ध भाव से उसका स्तवन करता है तो उसकी प्राप्ति अवश्यमेव होती है ॥४६॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (यद्) जब आप (गोभिः) ज्ञानी पुरुषों द्वारा (चम्वोः) आध्यात्मिक वृत्तियों की सेना के सम्बन्ध में (समज्यसे) उपासना किये जाते हो तब आप (आसुवानः) सर्वव्यापक (सोम) हे शान्तिस्वरूप परमात्मन्! (कलशेषु) उपासकों के अन्तःकरणों में (सीदसि) विराजमान होते हो। और (ते धाराः) तुम्हारी प्रेम की धारायें (अत्यण्वानि) जो सूक्ष्म हैं (संयतः) संयमी पुरुष को (पुनानस्य) जो सदुपदेश द्वारा सबको पवित्र करने वाला है उसको (यन्ति) प्राप्त होती हैं जो प्रेमधारायें (रंहयः) गतिशील हैं ॥४७॥

भावार्थः—जब उपासक बाह्य वृत्तियों का निरोध करके अन्तर्मुख होकर परमात्मा का ध्यान करता है तो वह परमात्मा के साक्षात्कार को अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥४७॥

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! आप (क्रतुवित्) कर्मों के वेत्ता हैं (नः) हमको आप (पवस्व) पवित्र करें। (उक्थ्यः) आप सर्वोपासनाओं के आधार हैं। और (अव्यः) रक्षक हैं। तथा (वारे) वरणीय पुरुष में (प्रियं मधु) प्यारे आनन्द को (परिधाव) दें। (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप! (अत्रिणो विश्वान् रक्षसः) सम्पूर्ण हिंसक राक्षसों को आप (जहि) मारें (सुवीराः) सुन्दर सन्तान वाले हम (विदथे) बड़े-बड़े यज्ञों में (बृहद्वदेम) आपकी अत्यन्त स्तुति करें ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राक्षसों से तात्पर्य यज्ञविघ्नकारी दुष्टाचारियों से है, क्योंकि 'रक्षन्ति येभ्यस्ते राक्षसाः' जिनसे रक्षा की जाय उनका नाम यहां राक्षस है; तात्पर्य यह कि सब विघ्नों से बचाकर परमात्मा हमारे यज्ञों की पूर्ति करें ॥४८॥

नवम मण्डल में यह छियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य १—९ उशना ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५—७, ९, त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

इस सूक्त में ऋषि विप्रादि नामों से परमात्मा का ही वर्णन है ।।

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ।।१।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तु) शीघ्र (**प्रद्रव**) गमन करो और गमन करके (**कोशं**) कर्म्मयोगी के अन्तःकरण को (**परिनिषीद**) ग्रहण करो (**नृभिः**) और मनुष्यों से (**पुनानः**) पूज्यमान आप (**वाघं**) बलकी (**अभ्यर्ष**) वृष्टि करो (**अश्वं**) विजली के (**न**) समान (**त्वा वाजिनं**) बलस्वरूप आपकी (**मर्जयन्तः**) उपासना करते हुए उपासक लोग (**अच्छ बर्हिः**) यज्ञ के प्रति आप की (**रशनाभिः**) उपासना द्वारा (**नयन्ति**) आपका साक्षात्कार करते हैं ।।१।।

भावार्थः—यहां 'वाजी' नाम बलवान् का है,बलस्वरूप परमात्मा से यहां हृदय की शुद्धि की प्रार्थना की गई है । जो लोग 'वाजी' के अर्थ घोड़ा करके वेदों के अर्थों को उच्चभाव से गिराकर निन्दक बना देते हैं वे अत्यन्त भूल करते हैं 'वाज शब्द के अर्थ (अन्न, ऐश्वर्य्य, और बल) ही हैं इसलिये 'मे वाजिनं परिपश्यति पक्वम्' इत्यादि मन्त्रों में ऐश्वर्य के परिपक्व करने का अर्थ है, घोड़ा मारने का नहीं ।।१।।

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ।।२।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**दिवः**) द्युलोक के (**विष्टम्भः**) आधार हैं तथा (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**धरुणः**) धारण करने वाले हैं । (**सुदक्षः**) चतुर तथा (**देवानां जनिता**) सूर्य्यादि दिव्य ज्योतियों के उत्पादक हैं ! (**वृजिनं**) व्यसनों से (**रक्षमाणः**) रक्षा करते हुए (**पिता**) पिता के समान (**अशस्तिहा**) राक्षसों को हनन करने वाले हैं और (**इन्दुः**) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । (**देवा**) दिव्यरूप हैं (**स्वायुधः**) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । उक्त गुणों वाले आप (**पवते**) हमको पवित्र करें ।।२।।

भावार्थः—यहाँ सुदक्षादि नामों से उक्त परमात्मा का प्रकारान्तर से वर्णन किया है ।।२।।

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ।।३।।

पदार्थः—(**ऋषिः**) 'ऋषति जानात्यतीन्द्रियार्थमिति ऋषिः' जो अतीन्द्रियार्थ को जाने उसका नाम यहां ऋषि है तथा (**विप्रः**) जो मेधावी है (**पुर एता जनानां**) और जो मनुष्यों के हृदय में पहिले ही प्राप्त है और (**ऋभुः**) अनन्तशक्तिसम्पन्न तथा (**धीरः**) धीर है और (**काव्येन**) अपनी सर्वज्ञता से (**उशना**) सर्वत्र देदीप्यमान है । (**सश्चित**) वही परमात्मा । (**यदासां**) जो प्रकृति की शक्तियों के (**गोनां**) जो दीप्तिवाली हैं उनके (**अपीच्यं**) भीतर (**गुह्यं नाम**) सर्वोपरि गुह्य रहस्य (**निहितं**) रखा है उसको परमात्मा ही (**विवेद**) जानता है ।।३।।

भावार्थः—'ऋषति सर्वत्र गच्छति व्यापकत्वेन सर्वं व्याप्नोति इति ऋषिः' परमात्मा जो सर्वत्र व्यापक है उसका नाम यहां ऋषि है, यहां ऋषि, विप्र, इत्यादि नामों से परमात्मा का वर्णन किया है । किसी जड़ वस्तु का नहीं ।।३।।

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ।।४।।

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे जगदीश्वर ! (**सोमः**) आप सोमस्वभाव हैं । और (**वृषा**) सब कामनाओं के देनेवाले हैं तथा (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरणों में आप (**पर्यक्षाः**) आनन्द की वृष्टि करनेवाले हैं । (**वृष्णे**) हे व्यापक परमात्मन् ! (**एषः स्यः**) वह यह (**ते**) तुम्हारा (**मधुमान्**) मधुरतादि गुणों को देनेवाला (**शतसाः सहस्रसाः**) सैंकड़ों और हजारों शक्तियों को रखनेवाला (**भूरिदावा**) जो अनन्तप्रकार की कामनाओं को देनेवाला (**शश्वत्तमम्**) निरन्तर फल उत्पन्न करनेवाला (**बर्हिः**) जो यज्ञ है तथा (**वाजी**) बलयुक्त है उसको आप (**अस्थात्**) अपनी सत्ता से सुशोभित करते हैं ।।४।।

भावार्थः—'बर्हिः इति अन्तरिक्षनामसु पठितम्' (नि० अ० । २ । खं० १।) बर्हिः शब्द के मुख्यार्थ अन्तरिक्ष के हैं । जिस प्रकार अन्तरिक्ष नानाप्रकार की ज्योतियों का आधार और अनन्त प्रकार कामनारूप वृष्टियों का आधार है, इसी प्रकार यज्ञ भी अन्तरिक्ष के समान विस्तृत है । यहां रूपकालङ्कार से यज्ञ को बर्हिः रूप से वर्णन किया है ।।४।।

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५॥

पदार्थः—(एते) पूर्वोक्त (सोमाः) परमात्मा के सोम्यस्वभाव (गव्या) गतिशील (सहस्रा) सहस्रशक्तियोंवाले (महे) बड़े (वाजाय अमृताय) यज्ञ के लिये जो (श्रवांसि) ऐश्वर्यरूप हैं (पवित्रेभिः) पवित्र अन्तःकरणों से जो (पवमानाः) पवित्रता वाले हैं वे उक्त स्वभावों को (श्रवस्यवः) यश की इच्छा करनेवाले उपासक लोग (पृतनाजः) जो युद्धों में जेता बनने की इच्छा करते हैं, वे (अत्याः न) शीघ्रगामिनी विद्युत् की शक्तियों के समान (असृग्रन्) धारण करें ॥५॥

भावार्थः—जो लोग संसार में विजेता बनना चाहें वे परमात्मा के विचित्र भावों को धारण करें, जिस प्रकार सत्पुरुष के भावों को धारण करने से पुरुष सत्पुरुष बन सकता है इसी प्रकार उस आदिपुरुष परमात्मा के गुणों के धारण करने से उपासक सत्पुरुष महापुरुष बन सकता है। इसका नाम परमात्मयोग है ॥५॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथाभर श्येन भृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥६॥

पदार्थः—(हि) क्योंकि परमात्मा (पुरुहूतः)सबका उपास्यदेव है। (जनानां) मनुष्यों के (विश्वा) सब (भोजना) भोग्यपदार्थों को (पूयमानः) पवित्र करनेवाला (पर्यसरत्) उपासकों के हृदय में आकर विराजमान होता है। (अथ) और (श्येनभृतः) विद्युत् की शक्तियों को धारण करनेवाला परमात्मा (प्रयांसि) सब ऐश्वर्यों को (आभर) पूर्ण करे और आप (रयिं) धन को (तुञ्जानः) देनेवाले हैं और आप हमको (वाजं) बल (अभ्यर्ष) सब प्रकार से दें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वैश्वर्य्यप्रदातारूप से वर्णन किया है ॥६॥

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (सुवानः) सर्वत्र आविर्भूत (सोमः) जो सोम्यस्वभावयुक्त है वह (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (सृष्टः) रचे हुए (सर्गः) सृष्टियों के (न) समान (अर्वा) गतिशील जो परमात्मा है वह (पर्यधावत्) उपासकों की ओर अपनी ज्ञानदृष्टि से आता है। (न) जिस प्रकार (तिग्मे) तीक्ष्ण (शृङ्गे)

अज्ञान के विदारण में (शिशानः) मग्न हुआ (महिषः) महापुरुष होता है अथवा (शूरः) शूरवीर (न) जैसे (सत्वा) स्थितिवाला होकर (गव्यन् गाः) बड़े ऐश्वर्य्य की इच्छा करता हुआ अपने लक्ष्य की ओर (अभि) जाता है, इसी प्रकार उपासकों को ज्ञानदृष्टि से लक्ष्य बनाता है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग श्रवणमननादि साधनों के द्वारा अपने अन्तःकरण को ज्ञान का पात्र बनाते हैं, परमात्मा उनके अन्तःकरण को अवश्यमेव ज्ञान से भरपूर करता है ॥७॥

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्रधारा ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन्! (सोमस्य) सौम्यगुणविशिष्ट परमात्मा की (धारा) ज्ञानकी धारा (ते) तुमको (पवते)पवित्र करे (न) जिस प्रकार (दिवः) द्युलोक से (अभ्रैः) अभ्रों के द्वारा (विद्युत) बिजली (स्तनयन्ती) शब्द करती हुई विस्तार पाती है इसी प्रकार परमात्मा की ज्ञानज्योति तुममें विस्तार को प्राप्त हो। (एषा) उक्तधारा (परमावद्रेः) सबको विदीर्ण करनेवाला जो परमात्मा है उसके (अन्तः) स्वरूप में (कूचित्सती) किसी एक स्थान में गूढ़ हुई (ऊर्वे) गूढ़ देश में जो (गाः) अपनी सत्ता को (विवेद) लाभ कर रही है वह (आययौ) उपासक के अन्तःकरण में स्थिर होती है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा अपने भक्त के हृदय में अपने भावों का प्रकाश करता है ॥८॥

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (इन्द्रेण) कर्मयोगी के साथ (सरथं) मैत्रीभाव को (पुनानः) पवित्र करते हुए आप (गोनां राशिं) ज्ञानरूपी शक्तियों के भण्डार को (परियासि) प्राप्त होते हैं। (उतस्म) अपि च(पूर्वीः) अनादिकाल के जो (बृहतीः) बड़े (इषः) ऐश्वर्य हैं उनके (जीरदानो) आप देनेवाले हैं। (शचीवः) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् (उपष्टुत) आप स्तुतियोग्य हैं (ताः) उन ऐश्वर्यादि शक्तियों की आप हमें शिक्षा प्रदान करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा शुभ शिक्षाओं का उपदेश करता है और ऐश्वर्य प्रदान के भावों का प्रकाश करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य १—८ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ ५ त्रिष्टुप् ॥स्वरः–१ पञ्चमः । २—८ धैवतः ॥

अ॒यं सोम॑ इन्द्र॒ तुभ्यं॑ सुन्वे॒ तुभ्यं॑ पवते॒ त्वम॑स्य पाहि त्वं ।
ह॒ यं च॑कृ॒षे त्वं व॑वृ॒षे इन्दुं॒ मदा॑य॒ युज्या॑य॒ सोम॑म् ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन् ! (तुभ्यं सुन्वे) तुम्हारे संस्कार के लिये (अयं सोमः) यह सोम परमात्मा (तुभ्यं पवते) तुमको पवित्र करता है । (त्वं) तुम (अस्य) इसकी आज्ञा को (पाहि) पालन करो । (त्वं) तुम (यं) जिस (इन्दुं) प्रकाशरूप (सोमं) परमात्मा की (चकृषे) उपासना करते हो वह (त्वं) तुम्हारे (ववृषे) वरण करने के लिये और (मदाय) आनन्द देने के लिये स्वीकार करता है । इसलिये तुम (युज्याय) अपनी सहायता के लिये (सोमं) सोमरूप परमात्मा की उपासना करो ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा को शुद्धभाव से वर्णन करते हैं परमात्मा उनको अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ॥१॥

स ईं॒ रथो॒ न भु॑रि॒षाळ॑योजि म॒हः पु॒रूणि॑ सा॒तये॒ वसू॑नि ।
आदीं॒ विश्वा॑ नहु॒ष्या॑णि जा॒ता स्व॑र्षाता॒ वन॑ ऊ॒र्ध्वा न॑वन्त ॥२॥

पदार्थः—(सः ईम्) यह सोम (रथो न) गतिशील विद्युदादि पदार्थों के समान (भुरिषात्) सबको गति करानेवाला है और सब पदार्थों को उत्पत्तिसमय में (अयोजि) मिलाता है । (पुरूणि वसूनि) बहुत से धनों को (सातये) सुख देने के लिये (आदीं) निश्चय जो (नहुष्याणि) मनुष्यत्व के योग्य हैं उनको देता है (वनेस्वर्षाता) संग्राम में (विश्वा) जो बहुत से (जाताः) शत्रु उत्पन्न हो गये हैं वे (ऊर्ध्वा आनवन्त) नीचे हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा हमको अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करे और हमारे अन्यायकारी प्रतिपक्षियों को दूर करे ॥२॥

वा॒युर्न यो नि॒युत्वाँ॑ इ॒ष्टया॑मा॒ नास॑त्येव॒ हव॒ आ शम्भ॑विष्ठः ।
वि॒श्ववा॑रो द्रविणो॒दा इ॑व॒ त्मन्पू॒षेव॑ धी॒जव॑नोऽसि सोम ॥३॥

पदार्थः—(यः) जो सोम (वायुर्न) वायु के समान (नियुत्वान्) वेगवाला है । (इष्टयामा) स्वेच्छाचारी गमनवाला है, और (नासत्येव) विद्युत् के समान (शम्भविष्टः) अत्यन्त सुख के देने वाला है । (विश्ववारः) सबके वरण करने योग्य है । (पूषेव) पूषा के समान पोषक है । (सवितेव, धीजवनः असि) सूर्य्य के समान मनोरूप वेगवाला है । उक्तगुणसम्पन्न हे सोम ! आप हमारी रक्षा करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्वोक्तगुणसम्पन्न परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हमारे अन्तःकरण को शुद्ध करें ॥३॥

इन्द्रो॒ न यो म॒हा कर्मा॑णि॒ चक्रि॑र्ह॒न्ता वृ॒त्राणा॑मसि सोम पू॒र्भित् ।
पैद्वो॒ न हि त्वमहि॑नाम्नां ह॒न्ता विश्व॑स्यासि सोम॒ दस्योः॑ ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो सोम (इन्द्रो न) इन्द्र के समान (महाकर्म्माणि) बड़े-बड़े कर्म्मों को (चक्रिः) करता है । (वृत्राणां हन्ता असि) अज्ञानों के तुम हनन करनेवाले हो । (सोम) हे सोम (पूर्भित्) अज्ञानरूपी ग्रन्थियों को भेदन करनेवाले हो (पैद्वो न) और विद्युत् के समान (अहिनाम्नां) अन्धकारों के (हन्ता) हनन करनेवाले हो । (विश्वस्य दस्योः) सम्पूर्ण दस्युओं के आप (हन्ता, असि) हनन करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सब प्रकार के अज्ञानों का नाश करनेवाला है, उसकी कृपा से उपासक में ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता है जिससे वह विद्युत् के समान तेजस्वी बनकर विरोधी शक्तियों का दलन करता है ॥४॥

अ॒ग्निर्न यो वन॒ आ सृ॒ज्यमा॑नो॒ वृथा॒ पाजां॑सि कृणुते न॒दीषु॑ ।
जनो॒ न युध्वा॑ मह॒त उ॑प॒ब्दिरिय॑र्ति॒ सोमः॒ पव॑मान ऊ॒र्मिम् ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो सोम (सृज्यमानः अग्निर्न) उत्पन्न की हुई अग्नि के समान (वने) वन में (पाजांसि) बलों को (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । (नदीषु) अन्तरिक्षों में (पाजांसि) जल के बलों को (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । (जनो न) जिस प्रकार मनुष्य (युध्वा) युद्ध करके (महतः उपब्दिः) बड़ा शब्द करता हुआ (इयर्ति) प्रेरणा करता है । इसी प्रकार (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला (सोमः) सोम (ऊर्म्मिम्) आनन्द की लहरों को बहाता है ॥५॥

भावार्थः—अग्नि जिस प्रकार सब तेजों को तिरस्कृत करके अपने में मिला लेता है अर्थात् विद्युदादि तेज, जैसे अन्य तुच्छ तेजों को तिरस्कृत कर देता है इसी प्रकार परमात्मा के समक्ष सब तेज तुच्छ हैं अर्थात् परमात्मा ही सब ज्योतियों की ज्योति होने से स्वयंज्योति है ॥५॥

ए॒ते सोमा॒ अति॒ वारा॒ण्यव्या॑ दि॒व्या न कोशा॑सो अ॒भ्रव॑र्षाः ।
वृथा॑ समु॒द्रं सिन्ध॑वो॒ न नीचीः॑ सु॒तासो॑ अ॒भि क॒लशाँ॑ असृग्रन् ॥६॥

पदार्थः—(**एते सोमाः**) उक्त परमात्मा के सोमादि गुण (**वाराण्यव्या**) वरणीय और रक्षणीय दिव्यादिव्य पदार्थों को, (**कोशासः**) पात्रों को (**अभ्रवर्षाः न**) मेघ की वर्षा के समान परिपूर्ण कर देते हैं। और (**वृथा**) जैसे अनायास ही (**समुद्रं**) अन्तरिक्ष को (**सिन्धवः**) स्यन्दनशील प्रकृति के सत्वादिक गुण प्राप्त होते हैं इसी प्रकार (**नीचीनं**) नीचाई की ओर (**सुतासः**) आविर्भाव को प्राप्त हुए गुण (**कलशां अभि**) शुद्ध अन्तःकरणों की ओर (**असृग्रन्**) भलीभांति गमन करते हैं ॥

भावार्थः—जिन पुरुषों का अन्तःकरण पवित्र है, अर्थात् जिन्होंने श्रवण मनन तथा निदिध्यासन द्वारा अपने अन्तःकरणों को शुद्ध किया है, परमात्मा के ज्ञान का प्रवाह उनके अन्तःकरणों की ओर ही प्रवाहित होता है ॥६॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥७॥

पदार्थः—(**शुष्मी**) सबको शोषण करने के कारण परमात्मा का नाम शुष्मी है। हे बलस्वरूप परमात्मन् ! (**मारुतं**) विद्वानों के गण को (**शर्धो न**) बल के समान (**पवस्व**) आप पवित्र करें। (**यथा**) जैसे (**दिव्या, विट्**) दिव्य प्रजाओं का (**अनभिशस्ता**) सुख देनेवाला राजा पवित्र होता है इसी प्रकार (**आपो न**) सत्कर्मों के समान (**मक्षु**) शीघ्र (**सुमतिः भव**) हमारे लिये सुमति उत्पन्न करें (**सहस्राप्साः**) अनन्त शक्तियोंवाले आप (पृतनाषाट्) अनाचारियों को युद्ध में नाश करनेवाले परमात्मन् ! (**यज्ञो न**) आप हमारे लिये यज्ञ के समान हों ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा का बल सब बलों में से मुख्य है इसीलिये 'य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते' (ऋ० । मं० १० । २१ । २) इत्यादि मन्त्रों में जिसको सर्वोपरि बलस्वरूप कथन किया गया है वह हमको बल प्रदान करे ॥७॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**ते वरुणस्य राज्ञः**) तुम सब वस्तुओं को अपनी शक्ति में रखनेवाले श्रेष्ठतम राजा हो। (**ते**) तुम्हारे (**नु**) निश्चय करके (**व्रतानि**) व्रतों को हम धारण करें। (**सोम**)हे परमात्मन् ! (**तव धाम**) तुम्हारा स्वरूप (**बृहद्गभीरं**) बहुत गम्भीर है। और (**शुचिस्त्वमसि**) तुम नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव हो। (**प्रियो, न**) प्रिय के समान हो (**मित्रो न**) मित्र के समान हो। (**दक्षाय्यः**) मान्य हो (**अर्य्यमा इवासि, सोम**) हे सोम परमात्मन् ! आप न्यायकारी हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने व्रतपालन का उपदेश किया। जो पुरुष व्रती होकर परमात्मा के नियम का पालन करता है वह परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है ॥८॥

नवम मण्डल में यह अठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य नवाशीतितमस्य सूक्तस्य १—७ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुण धारण करने रूपी योग का वर्णन करते हैं।

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥१॥

पदार्थः—(**वह्निः**) [वहति प्रापयतीति वह्निः] जो उत्तम गुणों को प्राप्त कराये उसका नाम यहाँ वह्नि है। परमात्मा (**पथ्याभिः**) शुभ मार्गों द्वारा (**अस्यान्**) शुभ स्थानों को प्राप्त कराता है। (**प्रोस्यः**) वह परमात्मा (**दिवः**) द्युलोक की (**वृष्टिः**) वृष्टि के (**न**) समान (**पवमानः**) पवित्र करनेवाला है (**अक्षाः**) वह परमात्मा सर्वद्रष्टा है (**सहस्रधारः**) अनन्त शक्तियों से युक्त है (**अस्मे**) हमारे लिये (**न्यसदत्**) विराजमान होता है। (**मातुरुपस्थे**) माता की गोद में (**च**) और (**वने**) वन में (**सोमः**) वह परमात्मा (**आ**) सब जगह पर आकर हमारी रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार माता की गोद में पुत्र सानन्द विराजमान होता है इसी प्रकार उपासक लोग उसके अंक में विराजमान हैं।

तात्पर्य यह है कि ईश्वरविश्वासी भक्तों को ईश्वर पर इतना विश्वास होता है कि वे माता के समान उसकी गोद में विराजमान होकर किसी दुःख का अनुभव नहीं करते ॥१॥

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वासं ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥२॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**सिन्धूनां**) प्रकृत्यादि पदार्थों का (**राजा**) स्वामी है। और (**वासः**) सर्व निवास स्थानों का (**अवसिष्ट**)आच्छादन करता है। (**रंहिष्ठां ऋतस्य नावं**) सबसे सुखाली जो कर्म्मों की नौका है। उसमें (**आरुहत्**) चढ़ाकर (**अप्सु**) कर्म्मों के सागर से पार करता है। (**द्रप्सः**) वह आनन्दस्वरूप परमात्मा (**ववृधे**) सदैव वृद्धि को प्राप्त है। (**श्येनजूतः**) विद्युत् के समान दीप्तिमती वृत्ति से ग्रहण किया हुआ परमात्मा ध्यान का विषय होता है। (**ईम्**) इसको (**पिता**) सत्कर्म्मों द्वारा यज्ञ का पालन करनेवाला यजमान (**दुहे**) परिपूर्णरूप से दुहता है। अर्थात् अपने हृदयङ्गत करता है। (**पितुर्जाम्**) सदुपदेशक से आविर्भाव को प्राप्त हुए इस परमात्मा को (**दुहे**) मैं प्राप्त करता हूँ ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी बन कर परमात्मा की आज्ञा के अनुसार परमात्मा के नियमों का पालन करता है वह परमात्मा के साक्षात्कार को अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२॥

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥

पदार्थः—(**सिंहं**) जो सिंह के समान है, (**मध्वः**) आनन्दस्वरूप है, (**अयासं**) जो अनायास ही (**हरिं**)सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेवाला है,(**अरुषं**) दीप्तिवाला (**दिवः**) जो द्युलोक का [पति] है (**अस्य**) उस परमात्मा के ज्ञान को (**युत्सु शूरः**) जो ज्ञानयज्ञादिरूप युद्ध में शूरवीर है (**प्रथमः**) जो सबसे अग्रगण्य है वह पाता है। (**अस्य पृच्छते**) और जो इसके ज्ञान को पूछता है, उस जिज्ञासु के लिये (**अस्य चक्षसा**) इसका कथन करनेवाला (**गाः**) उस ज्ञान का उपदेश करता है। और (**उक्षा**) सब कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाला परमात्मा (**परिपाति**) उसकी रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अपने ज्ञान के द्वारा रक्षा करता है ॥२॥

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥४॥

पदार्थः—(**मधुपृष्ठं**)जो सैन्धवघनवत् सर्व ओर से आनन्दमय है (**घोरमयासं**) जिसका प्रयत्न घोर है। अर्थात् भयानक है और (**अश्वं**) जो गतिरूप है (**उरुचक्रे रथे**) अत्यन्त वेगवाली द्रुतगति में (**युञ्जन्ति**) जिसने नियुक्त किया है। (**स्वसारः**) 'स्वयं सरन्तीति स्वसारः इन्द्रियवृत्तयः' स्वाभाविक गतिशील इन्द्रियों की वृत्तियां (**जामयः**) जो मन से उत्पन्न होने के कारण परस्पर बन्धुपन का सम्बन्ध रखती है (**सनाभयः**) चित्त से उत्पन्न होने के कारण सनाम सम्बन्ध रखने वाली चित्तवृत्तियां (**मर्जयन्ति**) उक्त परमात्मा को विषय करती हैं। और (**वाजिनं**) उस बलस्वरूप को (**ऊर्जयन्ति**)विषय करके उपासक को अत्यन्त आध्यात्मिक बल प्रदान करती हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में जामिनाम चित्तवृत्ति का है, क्योंकि वृत्ति मन से उत्पन्न होती है और मन से उत्पन्न होने के कारण अन्यवृत्तियाँ भी उसके साथ सम्बन्ध रखने के कारण जामि कहलाती हैं। उक्त वृत्तियाँ जब परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं तो उपासक में आत्मिकबल उत्पन्न होता है अर्थात् शारीरिक आत्मिक सामाजिक तीनों प्रकार के बल की उत्पत्ति का कारण एकमात्र परमात्मा है कोई अन्य नहीं ॥४॥

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

पदार्थः—(**चतस्रः**) पृथिवी जल तेज और वायु की चारों शक्तियां (**ईं**) इस परमात्मा को जो(**घृतदुहः**)स्नेह से दोहन करनेवाली हैं। वे (**सचन्ते**) संगत होती हैं। (**समाने धरुणे**)एक अधिकरण में (**अन्तः निषत्ताः**) व्याप्यव्यापकता का संबंध रख कर (**ताः**) वे शक्तियाँ (**ईम्**) इस परमात्मा को (**अर्षन्ति**) प्राप्त होती हैं। (**नमसा**) ऐश्वर्य्य से (**पुनानाः**) पवित्र करती हुई (**ताः**) वे शक्तियां (**पूर्वीः**) जो अनन्त हैं वे (**ईम्**) इस परमात्मा को (**परिषन्ति**) सर्व ओर से विभूषित करती हैं ॥५॥

भावार्थः—प्रकृति की परमाणुरूप शक्तियों से ईश्वर का ऐश्वर्य विभूषित हो रहा है। इन सब शक्तियों का केन्द्र एकमात्र परमात्मा ही है। उसी एकमात्र परब्रह्म में ये उत्पत्ति स्थिति प्रलय करती हैं अर्थात् आविर्भाव का नाम उत्पत्ति और सूक्ष्मरूप से विराजमान होने का नाम प्रलय है ॥५॥

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६॥

पदार्थः—(**दिवोविष्टम्भः**) जो द्युलोक का सहारा है (**धरुणः पृथिव्याः**) और पृथिवी का आधार है (**उत**) और (**विश्वाः, क्षितयः**)सब लोकलोकान्तर (**अस्य, हस्ते**) उस परमात्मा के हस्तगत हैं। (**उत्सः**) वह सब लोगों का उत्पत्तिस्थान है परमात्मा (**गृणते ते**)स्तुति करनेवाले उपासक के लिये (**नियुत्वान्, असत्**) ज्ञानप्रद हो (**मध्वः**)

जो परमात्मा आनन्दस्वरूप है (अंशुः) सर्वव्यापक है वह (इन्द्रियाय) कर्मयोगी के लिये (पवते) पवित्रता दे ॥६॥

भावार्थः—द्युभ्वादिलोकों का अधिकरण एकमात्र वही परमात्मा है अर्थात् उसी परमात्मा के सहारे सब ब्रह्माण्डों की स्थिति है इस प्रकार यहां परमात्मा को अधिकरणरूप से वर्णन किया है ॥६॥

व॒न्वन्नवा॑तो अ॒भि दे॒ववी॑ति॒मिन्द्रा॑य सोम वृत्र॒हा प॑वस्व ।
श॒ग्धि म॒हः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॑ रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (वृत्रहा) अज्ञान के नाश करनेवाले (इन्द्राय) कर्मयोगी को (देववीति) जो देवताओं के यज्ञ को प्राप्त है (वन्वन्नवातः) और जो गम्भीर है उसको (अभि पवस्व) सब ओर से आप पवित्र करिये । (शग्धि) सबकी याचना को पूर्ण करनेवाले (महः) सबसे बड़े और (पुरुश्चन्द्रस्य रायः) सब आह्लादकों के आह्लादक जो आनन्दस्वरूप आप हैं, आपकी कृपा से (सुवीर्यस्य) सब बलों के हमलोग (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ॥७॥

भावार्थः—हे परमात्मन् आपकी कृपा से हम सब लोकलोकान्तरों के पति हों ॥७॥

नवम मण्डल में यह नवासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य नवतितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, त्रिष्टुप् । २, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र हि॑न्वा॒नो ज॑नि॒ता रोद॑स्यो॒ रथो॒ न वाजं॑ सनि॒ष्यन्न॑यासीत् ।
इन्द्रं॒ गच्छ॒न्नायु॑धा सं॒शिशा॑नो॒ विश्वा॒ वसु॒ हस्त॑योरा॒दधा॑नः ॥१॥

पदार्थः—(हिन्वानः) शुभ कर्मों में प्रेरणा करते हुए (रोदस्योर्जनिता) द्युलोक और पृथिवीलोक को उत्पन्न करते हुए (रथोन) गतिशील विद्युदादि पदार्थों के समान (वाजं) बल को (सनिष्यन्) देते हुए (अयासीत) आकर आप हमारे हृदय में विराजमान हों, हे परमात्मन् ! आप (आयुधा) बलप्रद शस्त्रों को (संशिशानः) तीक्ष्ण करते हुए (इन्द्रं गच्छन्) कर्मयोगी को प्राप्त होते हुए (विश्वावसु) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (हस्तयोः) हाथों में (आदधानः) धारण करते हुए (प्रायासीत) हमारी ओर आयें ॥१॥

भावार्थः—जो-जो विभूतिवाली वस्तु हैं उन सब में परमात्मा का तेज विराजमान है इसलिये यहां परमात्मा के आयुधों का वर्णन किया है वास्तव में परमात्मा किसी आयुध को धारण नहीं करता, क्योंकि वह निराकार है ॥१॥

अ॒भि त्रि॑पृ॒ष्ठं वृष॑णं वयो॒धामा॑ङ्गू॒षाणा॑मवावशन्त॒ वाणीः॑ ।
वना॒ वसा॑नो॒ वरु॑णो॒ न सिन्धू॒न्वि र॑त्न॒धा द॑यते॒ वार्या॑णि ॥२॥

पदार्थः—(त्रिपृष्ठं) तीनों सवनोंवाले ब्रह्मचर्य को धारण किये हुए (वृषणं) बलशील कर्मयोगी के उपदेश के लिये आप (वयोधां) बल को धारण करानेवाले (आंगूषाणां) बलदायक वाणी के प्रयोग करने वाले हैं ऐसे स्तोता लोगों की वाणी में (अवावशंत) निवास करते हुए (वना वसानः) सब प्रकार की सूक्ष्मशक्तियों को धारण करते हुए (वरुणः) सबको स्वशक्ति से आच्छादन करते हुए और (सिंधून् न) समुद्र के समान (विरत्नधाः) नाना प्रकार के रत्नों को धारण करते हुए आप (वार्याणि) उत्तम धनों को (दयते) कर्मयोगियों के लिये देते हैं ॥२।

भावार्थः - यहां तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य्य का वर्णन अर्थात् ब्रह्मचर्य्य प्रथम २४वें वर्ष तक, दूसरा ३६ और तीसरा ४० वर्ष तक; इनको प्रथम मध्यम-उत्तम कहते हैं । जो पुरुष उक्त प्रकार के ब्रह्मचर्यों को धारण करते हैं उनको परमात्मा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

शूर॑ग्रामः॒ सर्व॑वीरः॒ सहा॑वा॒ञ्जेता॑ पवस्व॒ सनि॑ता॒ धना॑नि ।
ति॒ग्मायु॑धः क्षि॒प्रध॑न्वा स॒मत्स्वषा॑ळ्हः सा॒ह्वान पृत॑नासु॒ शत्रू॑न् ॥३॥

पदार्थः—(शूरग्रामः) जो शूरवीरों के समुदायवाले हैं (सर्ववीरः) और स्वयं भी सब प्रकार से वीर हैं और (सहावान्) धैर्यवान् हैं । तथा (जेता) सबको जीतने वाले हैं (धनानि सनिता) और जो ऐश्वर्योपार्जन में लगे हुए हैं उनको आप (पवस्व) पवित्र करें । आप (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण शस्त्रोंवाले हैं और (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगति शस्त्रों वाले हैं । और (समत्सु) संग्राम में (अषाळ्हः) परशक्ति को न सहनेवाले हैं । और (पृतनासु) परसेना में (साह्वान्) धुरन्धर (शत्रून्) शत्रुओं के (जेता) जीतने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—यहां परमात्मा के रुद्रधर्म का निरूपण किया है । रुद्रधर्म को धारण करने वाला परमात्मा वीरों के अनन्त, सङ्घों में शक्ति उत्पन्न करके संसार से पाप की निवृत्ति करता है । उस अनन्त शक्तियुक्त

के अतितीक्ष्ण शस्त्र हैं जिससे वह अन्यायकारियों की सेना को विदीर्ण करता है ॥३॥

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥

पदार्थः—(**उरुगव्यूतिः**) विस्तृत मार्गोंवाले आप (**समीचीने**) धर्म की राह में (**अभयानि कृण्वन्**) अभय प्रदान करते हुए (**आपवस्व**) हमको पवित्र करें। आप (**पुरन्धी**) सम्पूर्ण संसार के धारण करने वाले हैं। और (**अपः**) शुभ कर्मों की (**सिषासन्**) शिक्षा करते हुए (**उषसः**) उषाकाल की (**स्वर्गाः**) रश्मियों को (**संचिक्रदः**) अपने वैदिक शब्दों से विस्तृत करते हैं। (**महः**) हे सर्वपूज्य परमात्मन् ! (**अस्मभ्यं**) हमको (**वाजान्**) बलों को दें ।.४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के उपदेश किये हुए शुभ मार्गों पर चलते हैं परमात्मा उनको शुभ मार्गों की प्राप्ति कराता है ॥४॥

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**वरुणं**) सबको आच्छादन करने की शक्ति रखनेवाले विद्वान् को आप (**मत्सि**) तृप्त करें। (**मित्रं**) और स्नेह की शक्ति रखने वाले विद्वान् को (**मत्सि**) तृप्त करें। (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**पवमान**) सबको पवित्र करनेवाले ! परमात्मन् ! (**विष्णुं**) सब विद्याओं में व्याप्तिशील विद्वान् को और (**इन्द्रं**) कर्मयोगी को (**मत्सि**) आप तृप्त करें। (**शर्धः**) रुद्ररूप जो विद्वानों का गण है उसे (**मत्सि**) तृप्त करें (**देवान्**) शान्त्यादि दिव्यगुणयुक्त विद्वानों को (**मत्सि**) तृप्त करें (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**महां**) सर्व पूज्य आप (**मदाय**) आनन्द के लिये (**इन्द्रं**) कर्मयोगी को (**मत्सि**) तृप्त करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगी के क्रियाकौशल की पूर्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप कर्मयोगी को सब प्रकार से निपुण करिये ॥५॥

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**राजेव**) आप सबको प्रदीप्त करनेवाले और सर्वस्वामी हैं। (**क्रतुमान्**) कर्मों के अधिष्ठाता हैं (**विश्वा, अमेन**) सम्पूर्ण बल से (**दुरिता, घनिघ्नत्**) समस्त पापों को दूर करते हुए (**पवस्व**) हमको पवित्र करे (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**सूक्ताय वचसे**) सुन्दरवाणियों के कथन करने को (**वयोधाः**) ऐश्वर्य देनेवाले (**यूयं**) आप (**स्वस्तिभिः**) कल्याणकारी भावों से (**सदा**) सदैव (**नः**) हमको (**पात**) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—इसमें परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना की गई है ॥६॥

नवम मण्डल में यह नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकनवतितमस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य १—६ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,२,६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **धैवतः स्वरः ॥**

अब चिरजीवी होने का कथन करते हैं ॥

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

पदार्थः—(**मनीषी**) जो परमात्मपरायण पुरुष है, और (**प्रथमः**) गुणों में श्रेष्ठ होने से मुख्य है। (**मनोता**) जो सर्वप्रिय है वह (**धिया**) अपनी बुद्धि से (**आजौ**) आध्यात्मिकयज्ञ में ज्ञान की आहुति प्रदान करे (**यथा**) जैसे (**रथ्ये**) कर्म्मरूपी यज्ञ में (**वक्वा**) वक्ता पुरुष वाणीरूपी कर्म्म को (**असर्जि**) करता है (**अव्ये, अधिसानौ**) सर्वरक्षक परमात्मरूप यज्ञकुण्ड में (**दश स्वसारः**) दश प्राणों को (**अधि**) उक्त यज्ञ के विषय में (**अजन्ति**) डालते हैं। जिस प्रकार (**सदनानि**) सुन्दर वेदियों के (**अच्छ**) प्रति (**वह्नि**) वह्नि को लक्ष्य बनाकर हवन किया जाता है। इस प्रकार आध्यात्मिक यज्ञ में परमात्मा को वह्निस्थानीय बनाकर हवन किया जाता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन किया गया है जो लोग भलीभांति प्राणायाम करते हैं वे आध्यात्मिकयज्ञ करते हैं ॥१॥

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२॥

पदार्थः—(**अद्भिः**) कर्म्मों के द्वारा [‘अप इति कर्म्म नामसु’ पठितम्-निघण्टो—२=१] (**गोभिः**) ज्ञान के द्वारा (**अविभिः**) रक्षा से (**मर्मृजानः**) जिसका संशोधन किया गया है। ऐसा यज्ञ (**मर्त्येभिर्नृभिः**) मनुष्यों से किया हुआ (**अमृतः**)

अमृत होता है जो यज्ञ (**विप्रस्य जनस्य**) ज्ञानी पुरुष के (**कव्यैः**) हवनों के द्वारा (**अधिसुवानः**) उत्पन्न हुआ (**इन्दुः**) दीप्तिवाला होता है । और (**वीती**) देवमार्ग के लिये होता है और यह उक्त यज्ञ (**नहुष्येभिः**) मनुष्यों के द्वारा किया हुआ उत्तम फलवाला होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मों के द्वारा कर्मयज्ञ का सम्पादन करते हैं वे उत्तम सुख के भागी होते हैं ॥२॥

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३॥

पदार्थः—(**वृषा**) कामनाओं की वृष्टि करनेवाला परमात्मा (**वृष्णे**) कर्म्मयोगी के लिये (**रोरुवद्**) अत्यन्त शब्द करता हुआ (**अस्मै**) इस कर्म्मयोगी के लिये (**अंशुः**) सर्वव्यापक और (**पवमानः**) सब को पवित्र करने के लिये परमात्मा (**रुशद्**) दीप्ति देता हुआ (**गोः**) इन्द्रियों के (**पयः**) सारभूत ज्ञान को (**ईर्ते**) प्राप्त होता है। जिस से (**सहस्र ऋक्वा**) अनन्त प्रकार की वाणियों का वक्ता (**वचोवित्**) वाणियों का ज्ञाता (**पथिभिः**) वाणियों के रास्ते से जो (**अध्वस्मभिः**) हिंसारहित हैं । (**सूरः**) विज्ञानी (**अण्वं**) सूक्ष्म पदार्थों के तत्व को (**वियाति**) प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—जो लोग वेदवाणियों का अभ्यास करते हैं वे सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥३॥

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥४॥

पदार्थः—[और वह कर्म्मयोगी] (**रक्षसः**) राक्षसों की (**दृळ्हा सदांसि**) दृढ़ सभाओं को (**चिद्**) भी (**रुजा**) अपनी नाशकशक्ति से नष्ट कर देता है । और(**विवाजान्**) न्यायकारी बलयुक्त पुरुषों की शक्तियों को (**इन्दो**) हे प्रकाशमान परमात्मन् ! तुम (**ऊर्णुहि**) आच्छादन करो । और (**उपरिष्टात्**) जो ऊपर की ओर से आते हैं। अथवा (**दूरात्**) दूर देश से जो आते हैं । (**एषां**) इन राक्षसों के (**उपनायं**) स्वामी को (**तुजता वधेन**) तीक्ष्ण वध से [नाश करो] ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष शमदमादि साधनसम्पन्न होकर परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके सब विघ्नों को दूर करता है और उनके विघ्नकारी राक्षसों को दमन करके उनके मार्ग को सुगम करता है ॥४॥

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्ताँस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥

पदार्थः—(**विश्ववार**) हे विश्ववरणीय परमात्मन् ! (**सप्रत्नवत्**) आप प्राचीन हैं । (**नव्यसे**) हमको नूतन जन्म देने के लिये हमारे लिये (**प्राचः, पथः**) प्राचीन रास्तों को (**सूक्ताय कृणुहि**) सरल कीजिये । (**पुरुकृत्**) हे बहुत कर्म्म करने वाले (**पुरुक्षाः**) हे शब्दब्रह्म के उत्पादक परमात्मन्! (**ये दुःसहासः**)जो राक्षसों के सहने योग्य नहीं (**वनुषा**) और जो हिंसारूप हैं (**बृहन्तः**) बड़े हैं । (**तान्**) उन (**ते**) तुम्हारे भावों को यज्ञ में (**अश्याम**) हम प्राप्त हों ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा के स्वभाव अर्थात् परमात्मा के सत्यादि धर्मों को राक्षस लोग धारण नहीं कर सकते उनको केवल दैवीसम्पत्तिवाले ही धारण कर सकते हैं अन्य नहीं । इस मन्त्र में देवभाव के दिव्यगुणों का और राक्षसों के दुर्गुणों का वर्णन है ॥५॥

एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्न सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**एव पुनानः**) इस प्रकार पवित्र करते हुए आप (**अपः**) अन्तरिक्षलोक (**स्वर्**) स्वर्गलोक और (**गाः**) पृथिवीलोक (**अस्मभ्यं**) हमारे लिये दें । (**तोका**) पुत्र और (**तनयानि**) पौत्र (**भूरि**) बहुत से प्रदान करें । और(**नः**) हमारे लिये (**शं**) कल्याण हो । (**उरुक्षेत्रं**) और विस्तृत क्षेत्र हों । (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**उरु ज्योतींषि**) बहुतसी ज्योतियें (**नः**) हमारे लिये हों । और (**ज्योक्**) चिरकाल तक (**सूर्य्यं दृशये**) इस तेजोमय सूर्य्य के देखने के लिये (**रिरीहि**) सामर्थ्ययुक्त बनायें ॥६॥

भावार्थः—जो लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं परमात्मा उनके लिये सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह इक्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य १—६ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥१॥

पदार्थः—(सुवानः) सर्वव्यापक (हरिः) हरणशील (अंशुः) सूत्रात्मा परमात्मा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (रथो न) गतिशील पदार्थों के समान (परिसर्जि) साक्षात्कार किया जाता है (सनये) जो परमात्मा उपासना के लिये (हियानः) प्रेरणा करता है। और (इन्द्रियम्) कर्म्मयोगी को (श्लोकम्) शब्द संघात को (आपत्) उत्पन्न करता है (पूयमानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (प्रयोभिः) अपने आशीर्वादों से (देवान्, प्रति) देवताओं के लिये (अजुषत) प्रेम को उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थः—जो लोग शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा की उपासना करते हैं परमात्मा उनके अन्तःकरण में पवित्र ज्ञान प्रादुर्भूत करता है ॥१॥

अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन्होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२॥

पदार्थः—(नृचक्षाः) सबका द्रष्टा (कविः) और सर्वज्ञ (नाम दधानः) इत्यादि नामों को धारण करनेवाला परमात्मा (अस्य, योनौ) कर्म्मयोगी के अन्तःकरण में (पवित्रे) जो साधनों द्वारा पवित्रता को प्राप्त है। उसमें (अच्छासरत्) भलीभांति प्राप्त होता है। (होतेव) जिस प्रकार होता (सदने) यज्ञ में (सीदन्) प्राप्त होता हुआ (चमूषु) बहुत से समुदायों में स्थिर होता है। इसी प्रकार (उपेम्) इसके समीप (सप्तर्षयः) पांच प्राण, मन और बुद्धि (विप्राः) जो मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं (अग्मन्) वह आकर प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी है उसके पांचों प्राण- मन तथा बुद्धि वशीकृत होते हैं। उक्त साधनों द्वारा परमात्मा का अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार करता है ॥२॥

प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु जनान्यतते पञ्च धीरः ॥३॥

पदार्थः—(सुमेधाः) शोभन प्रज्ञावाला और (गातुवित्) मार्ग के जाननेवाला (विश्वदेवः) जिसका ज्ञान सर्वत्र विद्यमान है। (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ परमात्मा (नित्यं) सदैव (सदः) उस स्थान को (एति) प्राप्त होता है। जिस स्थान में (विश्वेषु काव्येषु) सम्पूर्ण प्रकार की रचनाओं में (रन्ता) रमण करनेवाला योगी (पञ्चधीरः) पांच प्रकार के (जनान्) प्राणों को (अनुयतते) लगाता है और लगातार अर्थात् प्राणायाम करके (भुवत्) रमणशील होता है ॥३॥

भावार्थः—योगीपुरुष प्राणायाम द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है। इसी अभिप्राय से यह कथन किया है कि योगी को परमात्मा प्राप्त होता है। वास्तव में परमात्मा सर्वव्यापक है उसका जाना आना कहीं नहीं होता ॥३॥

तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥४॥

पदार्थः—(विश्वेदेवाः) सम्पूर्ण देव जो (त्रय एकादशासः) ३ × ११ = ३३ हैं। वे (निण्ये) अन्तरिक्ष में वर्तमान हैं। (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्ये) वे (तव) तुम्हारे लिये (दश स्वधाभिः) पांच सूक्ष्मभूत और पांच स्थूलभूतों का (स्वधाभिः) सूक्ष्मशक्तियों द्वारा (अधिसानो) तुम्हारे सर्वोपरि उच्चस्वरूप में (अव्ये) जो सर्वरक्षक है उसमें (मृजन्ति) संशोधन करनेवाले हैं। और (त्वां) तुझको (सप्तयह्वीः नद्यः) जो बड़ी सात नाड़ियां हैं उनके द्वारा प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया है और सप्तनद्यः से तात्पर्य सात प्रकार की नाड़ियों का है जिनको इड़ापिंगलादि नाड़ियों के सुष्मणानामों से कथन किया है। तात्पर्य यह है कि योगीपुरुष उक्त नाड़ियों के द्वारा संयम करके परमात्मयोगी बने अर्थात् परमात्मा में युक्त हो ॥४॥

तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥५॥

पदार्थः—(पवमानस्य) जो सबको पवित्र करने वाला परमात्मा है उसका (सत्यं) सत्य का स्थान (नु) निश्चय करके (तत्) वह है (यत्र) जिसमें (विश्वे) सब (कारवः) उपासक (सन्नसन्त) संगत होते हैं। (अह्ने) प्रकाशक के लिये (यत्) जो ज्योति है (उ) और (लोकमकृणोत्) जो ज्योति ज्ञानरूप प्रकाश को उत्पन्न करती है और (मनुं) विज्ञानी पुरुष की (प्रावत्) रक्षा करती है उस ज्योति से (दस्यवे) अज्ञानी, असंस्कारी, वा अवैदिक, पुरुष के लिये (अभीकं) निर्भयता (कः) कौन कर सकता है ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा के सद्रूपका वर्णन किया और उक्त परमात्मा को सब ज्योतियों का प्रकाशक माना है ।।५।।

परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥६॥

पदार्थः—(**होता**) उक्त परमात्मा का उपासक (**पशुमन्ति सद्मेव**) ज्ञानागार के समान (**परियाति**) उसको प्राप्त होता है (**राजा न**) जैसे कि राजा (**सत्यः**) सत्य का अनुयायी (**समितीः**) सभा को (**इयानः**) प्राप्त होता हुआ प्रसन्न होता है इसी प्रकार विद्वान् ज्ञानागार को प्राप्त होकर प्रसन्न होता है । (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**पुनानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**कलशां**) अन्तःकरणों को (**अयासीत्**) प्राप्त होता है । (**न**) जैसे कि (**महिषो मृगः**) बलवाला (**वनेषु**) वनों में प्राप्त होता है ।।६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म का वर्णन है कि जिस प्रकार राजा लोग सत्यासत्य की निर्णय करनेवालो सभा को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार, विद्वान् लोग भी न्याय के निर्णय करने वाली सभाओं को प्राप्त होकर संसार का उद्धार करते हैं । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजा लोग अपने न्यायरूपी सत्य से संसार का उद्धार करते हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग अपने सदुपदेशों द्वारा संसार का उद्धार करते हैं ।।६।।

नवम मंडल में यह बानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ त्रिनवतितमस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य १—५ नोधा ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ पावनिचृत्त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥

पदार्थः—(**अत्यो वाजी**) बलवाले विद्युदादि पदार्थ (**न**) जैसे (**ननक्षे**) व्याप्त हो जाते हैं । इसी प्रकार (**सूर्य्यस्य द्रोणं**) सूर्य्य मण्डल का जो प्रभाकलश है तथा (**जाः**) उसीकी जो दिशा उपदिशायें हैं । उनमें (**हरिः**) हरणशील परमात्मा (**पर्य्यद्रवत्**) सर्वत्र परिपूर्ण है । उस पूर्ण परमात्मा को (**साकमुक्षः**) एक समय में (**मर्जयन्तः**) विषय करती हुई (**स्वसारः**) स्वयं सरणशील (**दश धीः**) १० प्रकार की इन्द्रियवृत्तियां (**धीतयः**) जो ध्यानद्वारा परमात्मा को विषय करने वाली हैं, और (**धनुत्रीः**) मन की प्रेरक हैं वे परमात्मा के स्वरूप को विषय करती हैं ।।१।।

भावार्थः—योगी पुरुष जब अपने मनका निरोध करता है तो उसकी इन्द्रियरूप वृत्तियां परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं ।।१।।

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

पदार्थः—(**वृषा**) कर्म्मयोगी जो (**पुरुवारः**) बहुत लोगों को वरणीय है । वह (**अद्भिः**) सत्कर्म्मों द्वारा (**दधन्वे**) धारण किया जाता है । जो कर्म्मयोगी (**वावशानः**) परमात्मा की कामना वाला है और (**मातृभिः**) अपनी इन्द्रियवृत्तियों से (**शिशुः**) सूक्ष्म करने वाले के (**न**) समान (**संदधन्वे**) धारण करता है (**न**) जिस प्रकार (**योषां**) स्त्री को (**मर्य्यः**) मनुष्य धारण करता है इस प्रकार (**उस्रियाभिः**) ज्ञान की शक्तियों के द्वारा कर्म्मयोगी परमात्मा की विभूतियों को धारण करता है । और जो परमात्मा की (**निष्कृतंयन्**) ज्ञानका विषय हुआ-हुआ (**कलशे**) उस कर्म्मयोगी के अन्तःकरण में (**संगच्छते**) प्राप्त होता है ।।२।।

भावार्थः—जिस प्रकार ऐश्वर्यप्रद प्रकृतिरूपी विभूतिको उद्योगी पुरुष धारण करता है इसी प्रकार प्रकृतिकी नानाशक्तिरूपविभूतिको कर्मयोगी पुरुष धारण करता है ।।२।।

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

पदार्थः—(**सुमेधाः**) सर्वोपरि विज्ञानवाला (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**धाराभिः**) अपनी अनन्तशक्तियों के ऐश्वर्य से (**सचते**) सर्वत्र संगत होता है । (**उत**) और (**अघ्न्याया ऊधः**) गौवों के दुग्धाधार स्तनमण्डल को (**प्रपिप्ये**) अत्यन्त वृद्धियुक्त करता है । और (**गावश्चमूषु**) गौवों की सेना में (**पयसा**) दुग्धसे (**अभिश्रीणन्ति**) संयुक्त करता है । और (**निक्तैर्वसुभिर्न**) शुभ्रधनों के समान (**मूर्धानं**) उस परमात्मा के मुख्य स्थानीय ऐश्वर्य्य को हम लोग प्राप्त हों ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात की प्रार्थना है कि परमात्मा गौ, अश्वादि उत्तम धनों का हमको प्रदान करे ।।३।।

स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (रयिं) धन (अश्विनं) कर्मयोगियों और ज्ञानयोगियों के लिये (वावशानः) धारण किये हुए आप (रव) प्रदान करो (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (देवेभिः) दिव्यशक्तियों के द्वारा (नः) हमको (वसूनां) धनों की (रथिरायतामुशती) अत्यन्त बलवती शक्ति (पुरन्धिः) जो बड़े-बड़े पदार्थों के धारण करने वाली है वह (अस्मद्यक्) हमारे लिये आप दें ।।४।।

भावार्थः—जिन पुरुषों पर परमात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है उनको धनादि ऐश्वर्य की हेतु सर्व शक्तियों से परिपूर्ण करता है ।।४।।

नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।।५।।

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (नु) निश्चय करके (नः) हमारे लिये (रयिं) ऐश्वर्यं (उपमास्व) आप दें और (नृवन्तं) लोकसंग्रह वाले मुझको (पुनानः) पवित्र करते हुए आप(वाताप्यं) प्रेमरूप (विश्वश्चन्द्रं) जो विश्व को प्रसन्न करने वाला ऐश्वर्य है, वह मुझे दें । और (वन्दितुः) इस उपासक की आप के द्वारा (प्रतारि)वृद्धि हो और (आयुः) आयु हो । (धियावसु) सम्पूर्ण ज्ञानों के निधि जो आप हैं (प्रातः) उपासना काल में (मक्षु) शीघ्र (जगम्यात्) आकर हमारी बुद्धि में आरूढ़ हों ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रकाशस्वरूप परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ।।५।।

नवम मण्डल में यह तिरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य १—५ कण्व ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः-१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३, ५ बिराट्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

अब परमात्मा को सर्वैश्वर्य्य का धाम निरूपण करते हैं ।

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ।।१।।

पदार्थः—(सूर्य्ये) सूर्य्य के विषय में (न) जैसे (विशः) रश्मियें प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार (धियः) मनुष्यों की बुद्धियां (स्पर्धन्ते) अपनी-अपनी उत्कट शक्ति से विषय करती हैं । (अस्मिन् अधि) जिस परमात्मा में (वाजिनीव) सर्वोपरि बलों के समान (शुभः) शुभ बल है । वह परमात्मा (अपोवृणानः) कर्म्मों का अध्यक्ष होता हुआ (पवते) सबको पवित्र करता है । (कवीयन्) कवियों की तरह आचरण करता हुआ (पशुवर्धनाय) सर्वद्रष्टृत्वपद के लिये (व्रजं, न) इन्द्रियों के अधिकरण मन के समान [व्रजन्ति इन्द्रियाणि यस्मिन् तद्व्रजम्] (मन्म) जो अधिकरणरूप है, वही श्रेय का धाम है ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है । जो लोग उसके साक्षात् करने के लिये अपनी चित्तवृतियों का निरोध करते हैं परमात्मा उनके ज्ञान का विषय अवश्यमेव करता है ।।१।।

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ।।२।।

पदार्थः—वह परमात्मा (द्विता) जीव और प्रकृतिरूप द्वैत को (व्यूर्ण्वन्) आच्छादन करता हुआ (अमृतस्य धाम) अमृतका धाम है । उस (स्वर्विदे) सर्वज्ञ के लिये (भुवनानि) सम्पूर्ण लोकलोकान्तर (प्रथन्त) विस्तीर्ण होते हैं । वह परमात्मा (धियः पिन्वानाः) विज्ञानों से भरा हुआ (स्वसरे) अपने स्वरूप में (न) जैसे कि (गावः) इन्द्रियां (ऋतयन्तीः) यज्ञ की इच्छा करती हुई सब ओर से (अभिवावश्रे) शब्द करती हैं । अथवा (इन्दुं) प्रकाशरूप परमात्मा की कामना करती हैं । इसी प्रकार जिज्ञासु लोग उस परमात्मा की कामना करें ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के द्वैतवाद का वर्णन किया है ।।२।।

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ।।३।।

पदार्थः—(यत्) जो परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है (काव्या भरते) कवियों के भाव को पूर्ण करने वाला है । जिसमें (शूरो न) शूरवीर के समान (रथः) क्रियाशक्ति है (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण भुवन जिसमें स्थिर है । (देवेषु) सब विद्वानों में (यशः) जिसका यश है । (मर्ताय भूषन्) सब मनुष्यों को विभूषित करता हुआ (दक्षायरायः) जो चातुर्य्य का और धन का (पुरुभूषु) स्वामी है । और (नव्यः) नित्य नूतन है ।।३।।

भावार्थः—परमात्मा सर्वज्ञ है और अपनी सर्वज्ञता से सब के ज्ञान में प्रवेश करता है ।।२।।

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ।।४।।

पदार्थः—वह परमात्मा (**श्रिये जातः**) ऐश्वर्य के लिये सर्वत्र प्रकट है । और (**श्रियं निरियाय**) श्रीके लिये ही सर्वत्र गतिशील है । और (**श्रियं**) ऐश्वर्य को और (**वयः**) आयु को (**जरितृभ्यः**) उपासकों के लिये (**दधाति**) धारण करता है । (**श्रियं वसानाः**) श्रीको धारण करता हुआ (**अमृतत्वमायन्**) अमृतत्व को विस्तार करता हुआ (**सत्या समिथा**) सत्यरूपी यज्ञों के करनेवाला होता है । (**मितद्रौ**) सर्वत्र गतिशील परमात्मा में (**सत्या भवन्ति**) ब्रह्मयज्ञ चित्तकी स्थिरता के हेतु होते हैं ।।४।।

भावार्थः—जो परमात्मोपासक हैं उनको परमात्मा सब प्रकार का ऐश्वर्य देता है ।।४।।

इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ।।५।।

पदार्थः—(**इषम्**) ऐश्वर्य्य और (**ऊर्जम्**) बल (**अभ्यर्ष**) हे परमात्मन् ! आप दें । और (**अश्वम्**) क्रियाशक्ति और (**गाम्**) ज्ञानरूपी शक्ति—इन दोनों को आप (**उरुज्योतिः**) विस्तृतज्योति (**कृणुहि**) करें और (**देवान्**) विद्वान् लोगों को (**मत्सि**) तृप्त करें ।(**विश्वानि हि सुषहा**) सम्पूर्ण सहनशीलशक्तियां निश्चय करके आप में हैं। (**तानि**) वे शक्तियां तुमको विभूषित करती हैं । (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**तुभ्यम्**) तुमसे मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम (**शत्रून्**) अन्यायकारी दुष्टों को (**बाधसे**) निवृत्त करने के लिये समर्थ हो । (**सोम**) हे परमात्मन् ! आप हममें भी इस प्रकार का बल दीजिये ।।५।।

भावार्थः—परमात्मा अनन्तशक्तिरूप है । जब वह अपने भक्तों को पात्र समझता है तो सब प्रकारके अन्यायकारियों को दमन करके सुनीति और धर्म का प्रचार संसार में फैला देता है । तात्पर्य यह है कि जो लोग परमात्मा की दया का पात्र बनते हैं उन्हीं के शत्रुभूत दुष्ट दस्युओं का परमात्मा दमन करता है अन्यों का नहीं ।।।५।

नवम मण्डल में यह चौरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्य १—५ प्रस्कण्व ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ संस्तारपंक्तिः । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । स्वरः—१, ३—५ धैवतः । २ पञ्चमः ।।

कनिक्रन्ति हरिरासृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ।।१।।

पदार्थः—(**हरिः**) हरणशील शक्तियों वाला परमात्मा (**सृज्यमानः**) साक्षात्कार को प्राप्त होता है तब (**वनस्य**) भक्त के (**जठरे**) अंतःकरण में (**सीदन्**) ठहरता हुआ और (**पुनानः**) उसको पवित्र करता हुआ विराजमान होता है । (**यतः**) जिसलिये (**नृभिः**) मनुष्यों द्वारा (**निर्णिजं कृणुते**) साक्षात्कार किया जाता है । तब (**गाः**) इन्द्रियों को शुद्ध करके (**मतिर्जनयत**) अच्छे प्रकार की बुद्धि उत्पन्न करता है (**स्वधाभिः**) स्वशक्तियों के द्वारा और (**कनिक्रन्ति**) पुनः शब्दायमान के समान साक्षात्कार को प्राप्त होता है ।।१।।

भावार्थः—वास्तव में परमात्मा सर्वव्यापक है उसके लिये विराजमान होना और न विराजमान होना कथन नहीं किया जा सकता । विराजमान होना यहां साक्षात्कार के अभिप्राय से कथन किया गया है ।।१।।

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ।।२।।

पदार्थः—(**हरिः**) वह पूर्वोक्त परमात्मा (**सृजानः**) साक्षात्कार को प्राप्त हुआ (**ऋतस्य, पथ्यां**) वाक्द्वारा मुक्तिमार्ग की (**इयर्ति**) प्रेरणा करता है । (**अरितेव नावम्**) जैसा कि नौका के पार लगाने के समय में नाविक प्रेरणा करता है । और (**देवानां देवः**) सब देवों का देव (**गुह्यानि**) गुप्त (**नामाविष्कृणोति**) संज्ञाओं को प्रकट करता है (**बर्हिषि प्रवाचे**) वाणीरूपी यज्ञ के लिये ।।२।।

भावार्थः—परमात्मा ने ब्रह्मयज्ञ के लिये बहुतसी संज्ञाओं को निर्माण किया, अर्थात्—शब्दब्रह्म जो वेद है उसका निर्माण अर्थात्—आविर्भाव संज्ञा संज्ञिभाव पर निर्भर करता है । इसीलिये संज्ञासंज्ञिभाव को रहस्यरूप से कथन किया गया है ।।२।।

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ।।३।।

पदार्थः—(**उशतीः**) शोभावाली स्तुतियां (**उशन्तम्**) शोभावाले को (**संविशन्ति**) प्राप्त होती हैं जैसे कि (**तर्तुराणाः**) शीघ्र करने वाले लोगों की (**मनीषा**) बुद्धियां (**प्रेरते**) प्रेरणा करती हैं ! इसी प्रकार (**सोमम्**) परमात्मा को (**अच्छ**) भलीभांति प्राप्त होती हैं । (**च**) और (**अपामिवोर्मयः**) जैसे कि जलों की लहरें जलों को

सुशोभित करती हैं । इसी प्रकार परमात्मा की विभूतियाँ परमात्मा को सुशोभित करती हैं । (च) और (नमस्यन्ति) परमात्मा की विभूतियाँ सत्कार करती हैं । और (उपयन्ति) उसको प्राप्त होती हैं। ।३।।

भावार्थः—इसमें परमात्मा की विभूतियों का वर्णन है कि परमात्मा की विभूतियाँ परमात्मा के भावों का प्रतिक्षण द्योतन करती हैं जिनसे परमात्मपरायण पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४॥

पदार्थः—(**तं मर्मृजानम्**) उस भक्तों द्वारा उपासित परमात्मा को (**सानौ**) सर्वोपरि शिखरपर (**महिषं न**) महापुरुष के समान विराजमान को (**अंशुम्**) जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है, (**उक्षणम्**) जो सर्वोपरि बलप्रद है । (**गिरिष्ठाम्**) जो वेदरूपी वाणी का अधिष्ठाता है । (**तं वावशानम्**) उस सर्वोपरि कमनीय परमात्मा को (**मतयः**) सुमति लोग (**सचन्ते**) संगत होते हैं । और जो परमात्मा (**समुद्रे**) अंतरिक्ष में (**वरुणम्**) वरणीय पदार्थों को (**बिभर्ति**) धारण करता है । और (**त्रितः**) प्रकृति, जीव, और महत्तत्व रूप सूक्ष्म जगत्कारणों का अधिष्ठाता है । अथवा (**त्रितः**) भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों कालों का अधिष्ठाता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है । संयमी पुरुष उसका साक्षात्कार कर सकते हैं ॥४॥

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**मनीषाम्**) बुद्धि को हमारे लिये (**विष्य**) प्रदान कीजिये । और (**वाचमिष्यन्**) वाणी की इच्छा करते हुए (**उपवक्तेव**) वक्ता के समान (**होतुः**) उपासक को सदुपदेश करें । (**च**) और (**यत्**) जो (**इन्द्रः**) कर्म्मयोगी और आप (**क्षयथः**) दोनों अद्वैत भाव को प्राप्त हैं। (**सौभगाय**) इस सौभाग्य के लिये हम आपका धन्यवाद करते हैं। और आप से प्रार्थना करते हैं कि (**सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम**) हम सर्वोपरि बल के पति हों ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उक्त परमात्मा से बल की प्रार्थना की गयी है ॥५॥

नवम मण्डल में यह पिचानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य १—२४ प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ११, १२, १४, १९, २३ त्रिष्टुप् । २, १७ विराट् त्रिष्टुप् । ४—१०; १३, १५, १८, २१, २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १६ आर्ची भुरिक्त्रिष्टुप् २०, २२ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

पदार्थः—(**सोमः**) सोमरूप परमात्मा (**सखिभ्यः**) अपने अनुयायी (**इन्द्रहवान्**) जो कर्म्मयोगी हैं उनके लिये (**भद्राणि कृण्वन्**) भलाई करता हुआ (**वस्त्रारभसानि**) अत्यन्त वेगवाले शस्त्रों को (**आदत्ते**) ग्रहण करता है । जैसे कि (**शूरः**) शूरवीर (**सेनानीः**) जो सेनाओं का नेता है वह (**रथानाम्**) संग्रामों के (**अग्रे**) समक्ष (**गव्यन्**) यजमानों के ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ (**एति**) प्राप्त होता है । इस प्रकार परमात्मा न्यायकारियों के ऐश्वर्य्य को चाहता हुआ अपने रूप से न्यायकारियों की रक्षा करता है । (**अस्य**) उस शूरवीर की (**सेना**) फौज (**हर्षते**) जैसे प्रसन्न होती है । इसी प्रकार परमात्मा के अनुयायियों की सेना भी हर्ष को प्राप्त होती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म का वर्णन है कि परमात्मपरायण पुरुष राजधर्म द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्यों को प्राप्त होते हैं ॥१॥

समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२॥

पदार्थः—(**अस्य हरिम्**) उस परमात्मा की हरणशीलशक्ति को (**हरयः**) ज्ञान की किरणें (**मृजन्ति**) प्रदीप्त करती हैं । और (**अश्वहयैः**) विद्युदादि शक्तियों के समान (**अनिशितम्**) असंस्कृत को भी (**नमोभिः**) सत्कार द्वारा संस्कृत करता हुआ (**आतिष्ठति**) आकर विराजमान होता है । (**रथम्**) उक्त गतिस्वरूप परमात्मा को (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी का (**सखा**) मित्र (**विद्वान्**) मेधावी पुरुष (**एना**) उक्त रास्ते से (**सुमतिम्**) सुन्दर मार्ग को (**अच्छ याति**) भली भांति प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग नम्रभाव से परमात्मा की उपासना करते हैं वे असंस्कृत होकर भी शुद्ध हो जाते हैं, अर्थात्—उनकी शुद्धि का कारण एकमात्र परमात्मोपासनरूपी संस्कार ही संस्कार है, कोई अन्य संस्कार नहीं ॥२॥

स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥३॥

पदार्थः—(**देव सोम**) हे दिव्यगुणयुक्त परमात्मन्! (**देवताते**) विद्वानों से विस्तृत, किये हुए (**महे**) बड़े (**प्सरसे**) सुन्दर यज्ञ में आप (**पवस्व**) पवित्र करें (**इन्द्रपानः**) आप कर्म्मयोगियों के तृप्तिरूप हैं। और (**अपः कृण्वन्**) शुभ कर्मों को करते हुए (**उत**) अथवा (**इमां द्याम्**) इस द्युलोक को उत्पन्न करते हुए आप (**उरः**) इस कर्म्मयोग के विस्तृत मार्ग से (**आ**) आते हुए (**नः**) हमको (**वरिवस्य**) धनादि ऐश्वर्य्य के द्वारा (**पुनानः**) पवित्र करते हुए आप आकर हमारे हृदय में विराजमान हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोग का वर्णन है कि कर्मयोगी अपने योगज कर्म द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है ॥३॥

अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक! (**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन्! (**अजीतये**) हम किसी से जीते न जायें। (**अहतये**) किसी से मारे न जायें (**पवस्व**) इस बात के लिये आप हमको पवित्र बनायें और (**स्वस्तये**) मङ्गल के लिये (**बृहते सर्वतातये**) सर्वोपरि बृहत् यज्ञ के लिये (**तदुशन्ति**) इसी पद की कामना (**इमे विश्वे**) ये सब (**सखायः**) मित्रगण करते हैं। (**तत्**) इसलिये (**अहम्**) मैं (**वश्मि**) यही कामना करता हूँ। इसलिये हे परमात्मन्! आप हमको उक्त प्रकार का ऐश्वर्य दें। क्योंकि आप इस ब्रह्माण्ड के उत्पत्तिकर्ता हैं ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं वे किसी से दबाये वा दीन नहीं किये जा सकते ॥४॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

पदार्थः—(**सोमः**) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (**पवते**) सबको पवित्र करता है (**जनिता मतीनाम्**) और ज्ञानों को उत्पन्न करनेवाला है (**दिवो जनिता**) द्युलोक को उत्पन्न करनेवाला है। (**पृथिव्या जनिता**) पृथिवी लोक को उत्पन्न करनेवाला है (**अग्नेर्जनिता**) अग्नि को उत्पन्न करनेवाला है। और (**सूर्यस्य जनिता**) सूर्य्य को

उत्पन्न करनेवाला है। (**उत**) और (**विष्णोः जनिता**) ज्ञानयोगी को उत्पन्न करनेवाला है। (**इन्द्रस्य जनिता**) कर्म्मयोगी को उत्पन्न करनेवाला है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के सर्वकर्तृत्व का वर्णन किया है ॥५॥

ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**पवित्रम्**) वज्रवाले को भी (**रेभन्**) शब्द करता हुआ अतिक्रमण कर जाता है। जिस प्रकार (**गृध्राणाम्**) [गृध्यति शस्त्रच्छेत्तुमभिकांक्षति इति गृध्रः शस्त्रम्] शस्त्रों के मध्य में (**स्वधितिः**) वज्र सबको अतिक्रमण कर जाता है और (**मृगाणां श्येनः**) शीघ्र गतिवाले पक्षियों में बाज और (**विप्राणाम्, कवीनां, ऋषिः**) विप्र और कवियों के मध्य में ऋषि सबको अतिक्रमण कर जाता है। (**देवानाम्**) और विद्वानों के मध्य में (**ब्रह्मा**) ४ वेदों का वक्ता सबको अतिक्रमण कर जाता है। इसी प्रकार (**पदवी**) सर्वोपरि उच्च पदरूप परमात्मा सब वस्तुओं में मुख्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कवि, विप्र, ब्रह्मादि मुख्य-मुख्य शक्तियोंवाले पुरुषों का दृष्टान्त देकर परमात्मा की मुख्यता वर्णन की है ॥६॥

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**वाच ऊर्मिम्**) वाणी की लहरों को (**सिन्धुर्न**) जैसे कि सिन्धु (**प्रावीविपत्**) कँपाता है, इसी प्रकार से कँपाता है। (**सोमः**) वह सोमरूप परमात्मा (**पवमानः**) सबको पवित्र करता है। (**मनीषाः**) मन का भी प्रेरक है। (**अन्तः पश्यन्**) सबका अन्तर्यामी होकर (**वृजना**) इस संसाररूपी यज्ञ में (**इमा अवराणि आतिष्ठति**) इन प्रकृति के कार्य्यों को आश्रयण करता है। जिस प्रकार (**वृषभः**) सब बल को देने वाला जीवात्मा (**जानन्**) चेतनरूप से अधिष्ठाता बनकर (**गोषु**) इन्द्रियों में विराजमान होता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा सबका अन्तर्यामी है। वह सर्वान्तर्यामी होकर सर्वप्रेरक है 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम् यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' इत्यादि वाक्य उक्त वेद के आधार पर निर्माण किये गये हैं ॥७॥

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (मत्सरः) आनन्दस्वरूप है। (पृत्सु) यज्ञों में (वन्वन्) सब विघ्नों को नाश करता हुआ (अवातः) निश्चल होकर विराजमान है। (सहस्ररेताः) अनन्त प्रकार के बलों से युक्त है। (वाजम्) सब बलों को (अभि) आश्रय देकर (अर्ष) व्याप्त हो रहा है (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (पवमानः) आप सबको पवित्र करने वाले हैं (मनीषी) मन के प्रेरक हैं। (गाः, अंशोः, इषण्यन्) इन्द्रियों का प्रेरणा करते हुए (ऊर्मिमीरय) आनन्द की लहरों को हमारी ओर प्रेरित करें ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष अनन्य भक्ति से अर्थात्—एकमात्र ईश्वरपरायण होकर ईश्वर की उपासना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव आनन्द का प्रदान करता है ॥८॥

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥

पदार्थः—(प्रिय.) सर्वप्रिय परमात्मा (देववातः) जो विद्वानों के लिये सुगम है वह (सोमः) सर्वोत्पादक (रण्यः) रमणीक (इन्द्राय मदाय) कर्मयोगी के आह्लाद के लिये (सहस्रधारः) जो अनन्त प्रकार की शक्ति से सम्पन्न और (शतवाजः) अनन्त-प्रकार के बल से सम्पन्न है वह (इन्दुः) परमैश्वर्य्यशाली (सप्तिर्न) विद्युत् की शक्ति के समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (समना, परिजिगाति) आध्यात्मिक यज्ञों में (कलशे) ['कलाः शेरते अस्मिन् इति कलशम्' निः—१—१२ अन्तःकरणम्]। जिसमें परमात्मा अपनी कलाओं के द्वारा विराजमान हो, उसका नाम यहां कलश है। विद्वानों के अन्तःकरण में आकर उपस्थित होता है ॥९॥

भावार्थः—जो लोग ब्रह्मविद्या द्वारा परमात्मा के तत्त्व का चिन्तन करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ज्ञान का विषय होता है ॥९॥

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥

पदार्थः—(सः) वह (पूर्व्यः) अनादिसिद्धपरमात्मा (वसुवित्) सब धनों का नेता (जायमानः) जो सब जगह पर व्यापक है। (मृजानः) शुद्ध है (अप्सु) कर्म्मों में (दुदुहानः) पूर्ण किया जाता है। और (अद्रौ) सब प्रकार के संकटों में (अभिशस्तिपाः) शत्रुओं से रक्षा करनेवाला है। (भुवनस्य राजा) सब भुवनों का राजा है। (ब्रह्मणे पूयमानः) कर्म्मों में पवित्रता प्रदान करता हुआ (गातुम्) उपासकों के लिये (विदद्) पवित्रता प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थः—शुद्ध भाव से उपासना करनेवाले लोगों को परमात्मा सर्वप्रकार के ऐश्वर्य्य और पवित्रताओं का प्रदान करता है ॥१०॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पूर्वे, पितरः) पूर्वकाल के पिता पितामह (धीराः) जो धीर हैं (त्वया) तुम्हारी प्रेरणा से (कर्म्माणि, चक्रुः) कर्म्मों को करते थे। (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (वन्वन्) आपका भजन करते हुए (अवातः) निश्चल होकर (परिधीन्) राक्षसों को (अपोर्णु) दूर करें (वीरेभिः) वीर पुरुषों से (अश्वैः) और जो शक्तिसम्पन्न हैं उनसे (नः) हमको (मघवा, भव) ऐश्वर्यसम्पन्न करें ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा की आज्ञा पालन करने से देश में ज्ञानी तथा विज्ञानी पुरुषों की उत्पत्ति होती है और देश ऐश्वर्य्यसम्पन्न होता है इस प्रकार राक्षसभावनिवृत्त होकर सभ्यता के भाव का प्रचार होता है ॥१२॥

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (यथा) ज़िस प्रकार (मनवे) विज्ञानी पुरुष के लिये (अपवथाः) धनादिक देने के लिये आप पवित्र करते हैं अन्नादिकों के देनेवाला (अमित्रः) दुष्टों को दण्ड देने वाला (वरिवोवित्) और धनादि ऐश्वर्य्य को देनेवाला (हविष्मान्) हवि वाला भक्त पुरुष आपको प्रिय होता है। इस प्रकार हे परमात्मन् ! (एव) निश्चय करके (पवस्व) आप हमको पवित्र करें। और (इन्द्रे) कर्म्मयोगी में (द्रविणं, दधानः) ऐश्वर्य्य को धारण करते हुए आप (सन्तिष्ठ) आकर विराजमान हों। तथा (जनय, आयुधानि) कर्म्मयोगी के लिये अनन्त प्रकार के आयुधों को उत्पन्न करें ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मपरायण पुरुष परमात्मा में चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्य और आयुधों को उत्पन्न करके देश को अभ्युदयशाली बनाते हैं ॥१२॥

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमान्) आनन्दमय हैं (ऋतावापः) कर्मरूपी यज्ञ के अधिष्ठाता हैं । (अव्ये) रक्षायुक्त (अधिसानो) सर्वोपरि उच्च पद में (वसानः) विराजमान हैं । (पवस्व) आप हमारी रक्षा करें । और (द्रोणानि) अन्तःकरणरूपी कलश (घृतवन्ति) जो स्नेहवाले हैं । (अवसीद) उनमें आकर स्थिर हों । आप (मत्सरः) सबके तृप्तिकारक हैं । और (मदिन्तमः) अत्यन्त आह्लादक हैं । और आप (इन्द्रपानः) कर्म्मयोगी की तृप्ति के कारण हैं ॥१३॥

भावार्थः—जिन पुरुषों के अन्तःकरण प्रेमरूप वारि से नम्र भाव को ग्रहण किये हुए हैं उनमें परमात्मा के भाव आविर्भाव को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥१४॥

पदार्थः—(शतधारः) आप अनन्तशक्तियुक्त हैं । और (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिम्) वृष्टि से (संपवस्व) पवित्र करें । (देववीतौ) यज्ञों में (वाजयुः) अनेक प्रकार के बलों को प्राप्त हैं । और (सिन्धुभिः) प्रेम के भावों से (कलशे) हमारे अन्तःकरण में (वावसानः) वास करते हुए (उस्रियाभिः) ज्ञानरूप शक्तियों से (नः) हमारी (आयुः) उमर को (प्रतिरन्) बढ़ायें ॥१४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के ज्ञानविज्ञानादि भावों को धारण करके अपने को योग्य बनाते हैं परमात्मा उनके ऐश्वर्य्य को अवश्यमेव बढ़ाता है ॥१४॥

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीः दरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥

पदार्थः—(एषः स्यः सोमः) यह उक्त परमात्मा (मतिभिः) ज्ञानविज्ञानों द्वारा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अत्यो न) विद्युत् के समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (अरातीः) शत्रुओं को (इत्) अवश्य (तरति) उल्लंघन करता है वह परमात्मा (अदितेः) गौ के (दुग्धम्) दुहे हुए (पयः) दुग्ध के (न) समान (इषिरम्) सर्वप्रिय है (उरु) विस्तीर्ण (गातुरिव) मार्ग के समान सबका आश्रयणीय है । तथा (वोळ्हा) -सम्यक् नियन्ता के (न) समान है ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा के सदृश इस संसार में कोई नियन्ता नहीं । उसी के नियम में सब लोकलोकान्तर भ्रमण करते हैं ॥१५॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (गुह्यम्) सर्वोपरि रहस्य (चारु) श्रेष्ठ (नाम) जो तुम्हारी संज्ञा है (अभ्यर्ष) आप उसका ज्ञान करायें (सोतृभिः, पूयमानः) आप उपासक लोगों से स्तूयमान हैं । (स्वायुधः) स्वाभाविक शक्ति से युक्त हैं । और (सप्तिरिव) विद्युत् के समान (श्रवस्याभि) ऐश्वर्य के सन्मुख प्राप्त कराइये और (वायुमभि) हमको प्राणों की विद्या का वेत्ता बनाइये । (देव) हे सर्वशक्तिसम्पन्न परमेश्वर ! हमको (गाः) इन्द्रियों के (अभिगमय) नियमन का ज्ञाता बनाइये ॥१६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा पर विश्वास रखते हैं वे अवश्यमेव संयमी बनकर इन्द्रियों के स्वामी बनते हैं ॥१६॥

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥

पदार्थः—(शिशुम्) [श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले जगदिति शिशुः परमात्मा] उस परमात्मा को (जज्ञानम्) जो सदा प्रकट है । (हर्य्यतः) जो अत्यन्त कमनीय है । उसको उपासक लोग (मृजन्ति) बुद्धिविषय करते हैं । और (शुंभन्ति) उसकी स्तुतिद्वारा उसके गुणों का वर्णन करते है । और (मरुतः) विद्वान् लोग (वह्निम्) उस गतिशील परमात्मा का (गणेन) गुणों के गणों द्वारा वर्णन करते हैं । और (कविः) कविलोग (गीर्भिः) वाणीद्वारा और (काव्येन) कवित्वसे उसकी स्तुति करते हैं । (सोमः) सोमस्वरूप (पवित्रम्) पवित्र वह परमात्मा कारणावस्था में अतिसूक्ष्म प्रकृति को (रेभन्, सन्) गर्जता हुआ (अत्येति) अतिक्रमण करता है ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से यह ब्रह्माण्ड सूक्ष्म से स्थूलावस्था को प्राप्त होता है और उसी से प्रलयावस्था को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥

पदार्थः—(**सोमः**) सोमस्वरूप परमात्मा (**सिसासन्**) पालन की इच्छा करता हुआ (**महिषः**) जो महान् वह परमात्मा (**तृतीयं, धाम**) देवयान और पितृयान इन दोनों से पृथक् तीसरा जो मुक्तिधाम है, उसमें (**विराजम्**) विराजमान जो ज्ञानयोगी है उसको (**अनुराजति**) प्रकाश करने वाला है। और (**स्तुप्**) स्तूयमान है। (**कवीनाम्, पदवीः**) जो क्रान्तदर्शियों की पदवी अर्थात् मुख्य स्थान है। और (**सहस्रनीथः**) अनन्त प्रकार से स्तवनीय है। (**ऋषिमनाः**) सर्वज्ञान के साधनरूप मनवाला वह परमात्मा (**यः**) जो (**ऋषिकृत्**) सब ज्ञानों का प्रदाता (**स्वर्षाः**) सूर्य्यादिकों का प्रकाशक है। वह जिज्ञासु के लिये उपासनीय है ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों का नियन्ता है तथा मुक्तिधाम में विराजमान पुरुषों का भी नियन्ता है ॥१८॥

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥

पदार्थः—(**अपामूर्मिम्**) प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों के साथ (**सचमानः**) जो संगत है और (**समुद्रम्**) [सम्यक् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः] जिससे सब भूतों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है, वह (**तुरीयम्**) चौथा (**धाम**) परमपद परमात्मा है। उसको (**महिषः**) [मह्यते इति महिषः महिष इति महन्नामसु पठितम् नि० ३—१३]। महापुरुष उक्त तुरीय परमात्मा का (**विवक्ति**) वर्णन करता है। वह परमात्मा (**चमूसत्**) जो प्रत्येक बल में स्थित है (**श्येनः**) सर्वोपरि प्रशंसनीय है और (**शकुनः**) सर्वशक्तिमान् है। (**गोविन्दुः**) यजमानों को तृप्त करके जो (**द्रप्सः**) शीघ्र गतिवाला है (**आयुधानि, बिभ्रत्**) अनन्तशक्तियों को धारण करता हुआ इस संपूर्ण संसार का उत्पादक है ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा इस विविध रचना का नियन्ता है उसने अन्तरिक्ष लोक को सम्पूण भूतों के इतस्ततः भ्रमण का स्थान बनाया है ॥१९॥

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परिकोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वो३रा विवेश ॥२०॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**यूथा, वृषेव**) जिस प्रकार एक संघ को उस का सेनापति प्राप्त होता है। इसी प्रकार (**कोशम्**) ब्रह्माण्डरूपी कोशको (**अर्षन्**) प्राप्त होकर (**कनिक्रदत्**) उच्चस्वर से गर्जता हुआ (**चम्वोः**) इस ब्रह्माण्डरूपी विस्तृत प्रकृतिखण्ड में (**पर्य्याविवेश**) भली भांति प्रविष्ट होता है। और (**न**) जैसे कि (**मर्यः**) मनुष्य (**शुभ्रस्तन्वं, मृजानः,**) शुभ्र शरीर को धारण करता हुआ (**अत्यो न**) अत्यन्त गतिशील पदार्थों के समान (**सनये**) प्राप्ति के लिये (**सृत्वा**) गतिशील होता हुआ (**धनानाम्**) धनों के लिये कटिबद्ध होता है इसी प्रकार प्रकृतिरूपी ऐश्वर्य्य को धारण करने के लिये परमात्मा सदैव उद्यत है ॥२०॥

भावार्थः—जिस प्रकार मनुष्य इस स्थूल शरीर को चलाता है अर्थात् जीवरूप से इसका अधिष्ठाता है एवं परमात्मा इस प्रकृतिरूप शरीर का अधिष्ठाता है ॥२०॥

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वो३रा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप (**महोभिः**) महापुरुषों से (**पवमानः**) उपास्यमान आप (**पवस्व**) हमको पवित्र करें। और (**कनिक्रदत्**) वैदिकवाणियों के द्वारा शब्दायमान होते हुए आप (**वाराणि**) श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति (**पर्य्यर्ष**) प्राप्त हों। और (**चम्वोः, क्रीळन्**) इस ब्रह्माण्ड में क्रीडा करते हुए और (**पूयमानः**) सबको पवित्र करते हुए (**आविश**) हमारे अन्तःकरण में आकर प्रविष्ट हों। हे परमात्मन्! (**ते**) तुम्हारा (**रसः**) आनन्द (**मदिरः**) जो आह्लादित करने वाला है, वह (**इन्द्रम्**) कर्म्मयोगी को (**ममत्तु**) प्रसन्न करे ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा के आनन्दाम्बुधि के रस को केवल कर्म्मयोगी ही पान कर सकता है; आलसी निरुद्यमी लोग उक्त आनन्द के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते ॥२१॥

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस परमात्मा के आनन्द की (**बृहतीः, धाराः**) बड़ी धाराय (**प्रासृग्रन्**) परमात्मा की ओर से रची गई हैं। (**अक्तः**) सर्वव्यापक परमात्मा (**गोभिः**) अपने ज्ञान की ज्योतिद्वारा (**कलशान्**) उपासकों के अन्तःकरणों को (**आविवेश**) प्रवेश करता है। और (**सामकृण्वन्**) संम्पूर्ण संसार में शान्ति फैलाता हुआ (**सामन्यः**) शान्तिरस में तत्पर परमात्मा (**विपश्चितः**) जो सर्वोपरि बुद्धिमान् है। वह (**सख्युः**) मित्र के (**न, जामिम्**) हाथ को पकड़ने के समान (**क्रन्दन्, अभ्येति**) मंगलमय शब्द करता हुआ हमको प्राप्त हो ॥२२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने भक्तों को सदैव सुरक्षित रखता है जिस प्रकार मित्र अपने मित्र पर सदैव रक्षा के लिये हाथ प्रसारित करता है एवं स्वमर्य्यादानुयायी लोगों पर ईश्वर सदैव कृपादृष्टि करता है ॥२२॥

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**शत्रून्, अपघ्नन्**) अन्यायकारी शत्रुओं को नाश करते हुए (**एषि**) आप सत्पुरुषों को प्राप्त होते हैं ।(**जारः, न**) [जारयतीति जारोऽग्निः] जैसे अग्नि(**प्रियाम्**) कमनीय कन्या को प्राप्त होकर उसे संस्कृत करता है जिस प्रकार (**अभिगीतः, इन्दुः**) सत्कार द्वारा आह्वान किया हुआ ज्ञानयोगी (**वनेषु, सीदन्**) भक्तों में स्थिर होता हुआ उनको शान्तिप्रदान करता है और (**शकुनः**) विद्युत्शक्ति (**न**) जैसे (**पत्वा**) अपने प्रभाव को डालकर उन्हें उत्तेजित करती है । इसी प्रकार (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**पुनानः**) सबको पवित्र करता हुआ(**कलशेषु**)भक्त पुरुषों के अन्तःकरणों में(**सत्ता**)स्थिर होता है॥२३॥

भावार्थः—अन्य पदार्थ जीवात्मा का ऐसा संस्कार नही करते जैसा कि परमात्मा करता है अर्थात् परमात्मज्ञान के संस्कार द्वारा जीवात्मा सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥२३॥

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पवमानस्य, ते रुचः**) सबको पवित्र करने वाले आपकी दीप्तियां (**सुदुघाः**) जो भली भांति सबको परिपूर्ण करने वाली हैं (**सुधाराः**) और सुन्दरधाराओं वाली हैं, वे भक्त पुरुष के प्रति (**योषेव, यन्ति**) परम प्रेम करने वाली माता के समान प्राप्त होती हैं । (**हरिः**) जो सब दुःखों को हरण करने वाला परमात्मा है वह (**आनीतः**) सब ओर से भली भांति उपासना किया हुआ (**अप्सु, पुरुवारः**) प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्ड में अत्यन्त वरणीय है । वह (**देवयूनाम्**) परमात्मा की दिव्यशक्ति चाहने वाले उपासकों के (**कलशे**) हृदय में (**अचिक्रदत्**) सर्वदैव शब्दायमान है ॥२४॥

भावार्थः—यों तो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्ड में सर्वत्रैव देदीप्यमान है,पर भक्त पुरुषों के स्वच्छ अन्तःकरणों में परमात्मा की अभिव्यक्ति सबसे अधिक दीप्तिमती होती है ॥२४॥

नवम मण्डल में यह छ्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टपञ्चाशदृचस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—३ वसिष्ठः ।
४—६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ७—९ वृषगणो वासिष्ठः । १०—१२ मन्युर्वासिष्ठः ।
१३—१५ उपमन्युर्वासिष्ठः । १६—१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठः । १९—२१ शक्तिर्वासिष्ठः ।
२२—२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः २५—२७ मृलीको वासिष्ठः । २८—३० वसुक्रोवासिष्ठः ।
३१—४४ पराशरः शाक्तः । ४५—५८ आङ्गिरसः कुत्सः ।। पवमानः सोमो देवता ।।
छन्दः—१, ६, १०, १२, १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५,
४६, ५२, ५४, ५६, निचृत्त्रिष्टुप् । २—४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३, २४,
३३, ४८, ५३, विराट्त्रिष्टुप् । ५, ९, १३, २२, २७—३०, ३४, ३५, ३७, ४२—
४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप् । १८, ४१, ५०, ५१, ५५, आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३१,
४९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४० भुरिक्त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

अब विद्वानों के गुण वर्णन किये जाते हैं ।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥१॥

पदार्थः—(**सुतः**) विद्या द्वारा संस्कृत हुआ-हुआ विद्वान् (**रेभन्**) शब्दायमान होता हुआ (**पवित्रं, पर्य्येति**) पवित्रता को प्राप्त होता है । जिस प्रकार (**पशुमन्ति**) ज्ञानवाले स्थान को (**मिता, इव**) नियमी पुरुष के समान (होता) यज्ञकर्ता पुरुष प्राप्त होता है । (**अस्य, प्रेषा**) उक्त विद्वान् की जिज्ञासा करने वाला पुरुष (**हेमना, पूयमानः**) सुवर्णादि भूषणों से पवित्र होता हुआ (**देवेभिः, सम्पृक्तः**) विद्वानों से संगति को लाभ करता हुआ (**देवः**) दिव्य भाववाला (**रसम्**) ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों के शिष्य अर्थात् जो पुरुष वेदवेत्ता विद्वानों से शिक्षा पाकर विभूषित होते हैं, वे सदैव ऐश्वर्य्य से विभूषित रहते हैं ॥१॥

भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

पदार्थः—उक्त विद्वान् (**विचक्षणः**) विलक्षण बुद्धिवाला (**जागृविः**) जागरणशील (**चम्वोः, पूयमानः**) बड़े-बड़े समाजों को अपने ज्ञानद्वारा पवित्र करता हुआ (**समन्या**) शान्ति की (**वस्त्रा**) रक्षा करने वाले (**भद्राः**) सुन्दर भावों को (**वसानः**) धारण करता हुआ (**निवचनानि शंसन्**) जो सुन्दर वक्तव्य हैं उनको जानता हुआ (**महान्, कविः**) महा विद्वान् होता है । (**देववीतौ**) यज्ञ के विषय में उक्त विद्वान् को (**आवच्यस्व**) ऐसा वचन कहकर संस्कृत करे ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने आध्यात्मिकादि यज्ञों में उक्त विद्वानों की प्रशंसा तथा सत्कार करते हैं, वे अभ्युदयशील होते हैं ॥२॥

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—यशस्वियों के मध्य में जो (**यशस्तरः**) अत्यन्त विद्वान् है और (**क्षैतः**) पृथिव्यादि लोकों में (**यशसां, प्रियः**) यज्ञो को चाहने वाला है (**सानो, अव्ये**) रक्षा के उच्चशिखर में जो (**समु, मृज्यते**) भली भांति मार्जन किया गया है उक्त गुणों वाला विद्वान् (**अस्मे**) हमारे लिये (**धन्वा**) अन्तरिक्ष में (**अभि, स्वर**) हमारे लिये सदुपदेश करे (**पूयमानः**) सब को पवित्र करने वाला विद्वान् सदा सत्कारयोग्य होता है। हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त विद्वानों के प्रति इस प्रकार का स्वस्तिवाचन कहो कि (**स्वस्तिभिः**) कल्याणरूप वाणियों के द्वारा (**यूयं**) आप लोग (**सदा**) सदैव (**नः**) हमारी (**पात**) रक्षा करें ॥३॥

भावार्थः—स्वस्तिवाचन द्वारा मंगलको करनेवाले पुरुष सदैव उन्नतिशील होते हैं ॥३॥

प्रगायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**महते, धनाय**) बड़े ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (**देवान्**) विद्वान् लोगों का (**प्र, गायत**) स्तवन करो (**अभ्यर्चामः**) और उन्हीं का सत्कार करो और (**सोमं**) उनमें जो सौम्यगुण-सम्पन्न विद्वान् है उसको (**हिनोत**) प्रेरणा करो कि वह तुम को सदुपदेश करे और (**स्वादुः**) आनन्ददायक पदार्थों के लिये (**पवाते**) पवित्र करे (**देवयुः**) दिव्यगुणी और (**वारं**) वरणीय (**अव्यं**) रक्षक उक्त विद्वान् (**नः**) हमारे (**कलशं**) अन्तःकरण में (**आसीदति**) स्थिर हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो तुम कल्याण की प्राप्ति के लिये विद्वानों का सत्कार करो ॥४॥

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) कर्म्मयोगी विद्वान् (**देवानाम्**) विद्वानों के (**उपसख्यं**) मैत्रीभाव को (**उपायद**) प्राप्त होता हुआ (**मदाय**) आनन्द के लिये (**पवते**) सबको पवित्र

करता है। वह कर्म्मयोगी (**सहस्रधारः**) अनन्त प्रकार की शक्तियां रखता हुआ (**महते सौभगाय**) बड़े सौभाग्य के लिये (**इन्द्रं**) ऐश्वर्य्य को (**अगन्**) प्राप्त होता हुआ (**पूर्व धाम**) सर्वोपरि धाम बनाता है ॥५॥

भावार्थः—जिन पुरुषों के मध्य में एक भी कर्मयोगी होता है वह सब को उद्योगी बनाकर पवित्र बना देता है ॥५॥

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(हरिः) [हरतीति हरिः] जो प्रलयकाल में सब कार्य्यों को अपने में लय कर लेता है उसका नाम यहां हरि है। वह हरि (**इन्द्रम्**) कर्मयोगी को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**अर्ष**) आता है और (**राये**) ऐश्वर्य्य के लिये (**स्तोत्रे**) यज्ञ सम्बन्धी स्तोत्रों में आकर प्राप्त होता है, हे हरि ! (**ते**) तुम्हारा (**मदः**) आनन्द (**भराय**) संग्राम के लिये (**गच्छतु**) प्राप्त हो और (**देवैः**) विद्वानों के साथ (**याहि**) आकर आप हमको प्राप्त हों (**राधः**) ऐश्वर्य्य (**अच्छ**) हमको दें ! और (**यूयम्**) आप (**स्वस्तिभिः**) स्वस्तिवाचनों से (**नः**) हमारी सदा के लिये (**पात**) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थः—जो परमात्मा प्रलय काल में सब वस्तुओं का एकमात्र आधार होता हुआ विराजमान है वह परमात्मा हमको आनन्द प्रदान करें ॥६॥

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥७॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) विद्वानों के मध्य में (**देवः**) जो मुख्य विद्वान् है वह (**उशनेव काव्यं ब्रुवाणः**) कान्तिशील विद्वान् के समान संदर्भ रचना को करनेवाला विद्वान् (**जनिम विवक्ति**) अनेक जन्मजन्मान्तरों का वर्णन करता है। (**महिव्रतः**) बड़े व्रत को धारण करनेवाला (**शुचिबन्धुः**) पवित्रता का बन्धु (**पावकः**) सबको पवित्र करनेवाला है (**वराहः**) [वरञ्च तदहश्चेति वराहः वराहो विद्यते यस्य स वराहः] जिसका श्रेष्ठ तेज हो उसका नाम यहां वराह है। उक्त प्रकार का विद्वान् (**रेभन्**) सुन्दरोपदेश करता हुआ (**पदाऽभ्येति**) सन्मार्ग द्वारा आकर उपदेश करता है ॥७॥

भावार्थः—जो उत्तम विद्वान् हैं वे अपनी रचना द्वारा पुनर्जन्मादि सिद्धान्तों का वर्णन करते हैं। 'वराह' शब्द यहां सर्वोपरि तेजस्वी विद्वान्

के लिये आया है । सायणाचार्य्य कहते हैं कि पांव से भूमि को खोदता हुआ वराह जिस प्रकार शब्द करता है इसी प्रकार सोम भी शब्द करता हुआ आता है । कई एक नवीन लोग इसको वराहावतार में भी लगाते हैं । अस्तु, वराहावतार वा सोम के पक्ष में काव्य का बनाना और उपदेश करना कदापि सङ्गत नहीं हो सकता, इसलिये वराह के अर्थ यहां विद्वान् के ही हैं ॥७॥

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्रवदन्ति वाणम् ॥८॥

पदार्थः—(**वृषगणाः**) विद्वानों के गण (**हंसासः**) हंसों के समान विचरते हुए (**तृपलम्**) शीघ्र ही (**मन्युमच्छ अमात् अस्तम्**) दुष्टों के दमन करनेवाले उक्त परमात्मा को (**आंगूष्यम्**) जो सबका लक्ष्य है और (**पवमानम्**) सबको पवित्र करनेवाला है उसको (**प्रायासुः**) प्राप्त होते हैं । तदनन्तर (**सखायः**) परस्पर मैत्रीभाव से सङ्गत होते हुए (**वाणम्**) भजनीय (**दुर्मर्षम्**) जो दुःख से प्राप्त होने योग्य लक्ष्य है उस लक्ष्य के (**साकम्**) साथ-साथ (**प्रवदन्ति**) वर्णन करते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के सद्गुणों को परम प्रेम से धारण करते हैं वे मानो परमात्मा के साथ मैत्री करते हैं, वास्तव में परमात्मा किसी का शत्रु वा मित्र नहीं कहा जा सकता ॥८॥

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥९॥

पदार्थः—(**सः**) उक्त परमात्मा (**रंहते**) गतिशील है (**उरुगायस्य**) सर्वोपासनीय परमात्मा की (**जूतिम्**) गति को स्मरण करते हुए (**गावः**) इन्द्रियां (**न मिमते**) उसके तत्त्व को नहीं पा सकतीं, जो (**वृथा**) अनायास ही (**क्रीळन्तम्**) क्रीडा कर रहा है (**तिग्मशृङ्गः**) अज्ञानों को नाश करनेवाला परमात्मा (**परीणसम्**) अनन्त प्रकार के ज्ञान का प्रकाश (**कृणुते**) करता है और (**हरिः**) जो परमात्मा (**दिवानक्तम्**) दिन-रात ज्ञानदृष्टि से (**ऋज्रः**) एकरस (**ददृशे**) देखा जाता है ॥९॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा समय-समय पर उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण है तथापि उसके स्वरूप में कोई विकार न उत्पन्न होने से वह सदैव एकरस है ॥९॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥

पदार्थः—(**वृजनस्य**) बल का (**राजा**) प्रदीप्त करनेवाला परमात्मा (**वरिवः**) ऐश्वर्य्य को (**कृण्वन्**) करता हुआ (**अरातीः**) शत्रुरूप राक्षसों को (**परिबाधते**) नाश करता है और (**इन्दुः**) वह प्रकाशस्वरूप (**वाजी**) बलस्वरूप (**गोन्योघाः**) गतिशील (**पवते**) हमको पवित्र करता है और (**इन्द्रे**) कर्मयोगी विषयक (**सोमः**) सोमस्वभाव (**सहः**) शीलस्वभाव की (**इन्वन्**) प्रेरणा करता हुआ (**मदाय**) आनन्द के लिये उक्त गुणों का प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी उद्योगी पुरुषों के सब विघ्नों की निवृत्ति करके परमात्मा कर्म्मयोगी के लिये आत्मभावों का प्रकाश करता है ॥१०॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११॥

पदार्थः—(**अद्रिदुग्धः**) चित्तवृत्तियों से साक्षात्कार किया हुआ परमात्मा (**पवते**) हमको पवित्र करता है (**अध**) और (**मध्वा, धारया**) आनन्द की धाराओं से (**पृचानः**) विद्वानों को तृप्त करता हुआ (**रोम, तिरः**) अज्ञान को तिरस्कृत करके हमको पवित्र करे और (**देवस्य**) उक्त दिव्यरूप परमात्मा का (**मत्सरः**) आह्लादक जो आनन्द है वह (**मदाय**) हमारे मोद के लिये हो । (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा के (**सख्यम्**) मैत्रीभाव को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप (**देवः**) विद्वान् सद्गति को प्राप्त होता है ॥११॥

भावार्थः—अज्ञान की निवृत्ति के लिये परमात्मा की उपासना सर्वोपरि साधन है ॥११॥

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

पदार्थः—(**देवः**) उक्त परमात्मारूप देव (**देवान्**) विद्वानों को (**स्वेन**) अपने (**रसेन**) आनन्द से (**पृञ्चन्**) तृप्त करता हुआ (**अभि प्रियाणि**) सब प्रिय पदार्थों को (**पवते**) पवित्र करता है (**पुनानः**) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (**इन्दुः**) जो प्रकाशस्वरूप है, वह (**धर्माणि**) वर्णाश्रमों के धर्म्मों को पृथक् पृथक् विधान करता हुआ (**ऋतुथा**) सब ऋतु और देश-कालों में (**वसानः**) निवास करता हुआ (**दश क्षिपः**) पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों के (**अव्ये, सानौ**) ब्रह्माण्डरूप इस कार्य्य में विराजमान होकर (**अव्यत**) हमारी रक्षा करता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा सूत्रात्मारूप से सब सूक्ष्म और स्थूल भूतों में विराजमान है, और उसी ने आदिसृष्टि में वर्णाश्रमों का गुण, कर्म, स्वभाव द्वारा विभाग किया है ॥१२॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥

पदार्थः—(**शोणः**) वह तेजस्वी परमात्मा (**वृषा**) आनन्दों का वर्षक है (**गाः, अभि, कनिक्रदत्**) लोकलोकान्तरों के समक्ष शब्दायमान होता हुआ (**द्याम्**) द्युलोक (**उत**) और (**पृथिवीम्**) पृथिवीलोक को (**नदयन्**) समृद्धि को प्राप्त करता हुआ (**एति**) विराजमान होता है (**आजौ**) धर्म्म विषय में जीवात्मा को (**प्रचेतयन्**) बोधन कराता हुआ (**इमां, वाचम्**) इस वेदरूपी वाणी को (**अर्षति**) प्राप्त होता है और उसका (**वग्नुः**) शब्द (**इन्द्र इव**) विद्युत् के समान (**शृण्वे**) सुना जाता है ॥१३॥

भावार्थः—सब आनन्दों की राशि एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये, उसी में चित्तवृत्ति का निरोध करके ब्रह्मानन्द का उपभोग करना चाहिये ॥१३॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**परिषिच्यमानः**) उपास्यमान आप (**सन्तनिम्**) अभ्युदय का (**कृण्वन्**) विस्तार करते हुए (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**एषि**) प्राप्त होते हैं (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाले आप (**पयसा रसाय्यः**) आनन्दस्वरूप हैं सब प्रकार के अभ्युदयों से (**पिन्वानः**) वृद्धि को प्राप्त आप (**मधुमन्तमंशुम्**) माधुर्ययुक्त अष्ट सिद्धियों को (**ईरयन्**) प्रेरणा करते हुए (**एषि**) प्राप्त होते हैं ॥१४॥

भावार्थः—अभ्युदय और निश्रेयस का प्रदाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि उसी परमात्मा को दृढ़ भक्ति से सब प्रकार के ऐश्वर्य और मुक्ति को लाभ करे ॥१४॥

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥

पदार्थः—(**मदिरः**) हे आनन्दस्वरूप परमात्मन् ! (**मदाय**) हमारे आनन्द के लिये आप (**उदग्राभस्य**) अज्ञान के बादल को (**वधस्नैर्नमयन्**) अपने बाधक शस्त्रों से नम्र करते हुए (**रुशन्तम्**) दीप्तिवाले (**गव्युः**) ज्ञान को (**नः**) हमारे लिये (**अर्ष**) प्रदान कीजिये। (**सोम**) हे सौम्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**वर्णं भरमाणः**) हममें योग्यता उत्पन्न करते हुए आप (**परिसिक्तः**) हमारे लिये ज्ञानप्रद हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—जो लोग अनन्यभक्ति से परमात्मा का भजन करते हैं, परमात्मा उनके अज्ञान के बीज को छिन्न-भिन्न करके अवश्यमेव ज्ञान का प्रकाश करता है ॥१५॥

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधिष्णुना धन्व सानौ अव्ये ॥१६॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे स्वप्रकाश परमात्मन् ! आप (**वरिवांसि**) धनों का प्रदान (**कृण्वन्**) करते हुए (**नः**) हमारी (**पवस्व**) रक्षा करें, और (**जुष्ट्वी**) हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न हुए आप (**सुपथा**) सुन्दर मार्ग और (**सुगानि**) सरल वैदिक धर्म्म के रास्तों का उपदेश करें। (**उरौ**) विस्तीर्ण (**सानौ, अव्ये**) रक्षा के पथ में (**विष्वग्दुरितानि**) विषम से विषम पापों को (**घना इव**) बादलों के समान (**विघ्नन्**) नाश करते हुए (**ष्णुना**) अपनी आनन्दमय धाराओं से (**अधिधन्व**) प्राप्त हों ॥१६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा का प्रीति से सेवन करते हैं अर्थात् सर्वोपरि प्रिय एकमात्र परमात्मा ही जिन को प्रतीत होता है, वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी होकर इस संसार में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरते हैं ॥१६॥

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शङ्गयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**नः**) हमारे लिये आप (**दिव्याम्**) दिव्य (**वृष्टिम्**) वृष्टि (**अर्ष**) दें, जो वृष्टि (**जिगत्नुं**) सर्वत्र व्याप्त हो, (**इळावतीम्**) अन्नवाली हो, (**शङ्गयीम्**) सुखप्रद हो, (**जीरदानुम्**) शीघ्र ऐश्वर्य के देनेवाली हो और तुम (**वीता, स्तुका, इव**) सुन्दर सन्तानों के समान (**विचिन्वन्**) उत्पन्न करते हुए (**इमान्, बन्धून्**) इस बन्धुगण को (**अवरान्**) जो देशदेशान्तरों में स्थिर हैं, और (**वायून्**) वायु के समान गतिशील हैं, उनको (**धन्व**) आकर प्राप्त होओ ॥१७॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा स्वस्वकर्मानुकूल ऊँच नीच गति प्रदान करता है, तथापि वह सन्तानों के समान जीवमात्र की भलाई चाहता है। इसलिये कर्मों द्वारा सुधार करके सबको शुभमार्ग में प्रेरित करता है ॥१७॥

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव पस्त्यावान् ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**ग्रथितम्**) बद्धपुरुषों के (**पुनानः**) मुक्तिदाता आप (**नः**) हमारे (**ग्रन्थिम्**) बन्धन को (**विष्य**) मोचन करें (**च**) और (**गातुम्**) हमारे मार्ग को (**ऋजुम्**) सरल करें। (**सोम**) हे परमात्मन् ! (**च**) तथा (**वृजिनम्**) हमको बल प्रदान करें (**अत्यो न**) विद्युत् की शक्ति के समान (**क्रदः**) आप शब्दायमान हैं (**आ, सृजानः**) उत्पत्तिकाल में सबके स्रष्टा हैं, और प्रलयकाल में (**हरिः**) सबके हरणकर्त्ता हैं। (**देव**) हे देव ! (**पस्त्यवान्**) अन्यायकारी शत्रुओं के (**मर्यः**) आप नाशक हैं, (**धन्व**) आप हमारे अन्तःकरणों को शुद्ध करें ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा स्वभाव से न्यायकारी है वह आप उपासकों के अन्तःकरण को शुद्धि प्रदान करता है। और अनाचारियों को रुद्ररूप से विनाश करता हुआ इस संसार में धर्म और नीति का स्थापन करता है ॥१८॥

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९॥

पदार्थः—(**सहस्रधारः**) अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा (**सुरभिरदब्धः**) किसी से न दबाये जानेवाला (**वाजसातौ**) यज्ञ में (**नृषह्ये**) जो मनुष्यों के तपोबल का वर्धक है, और (**अव्ये**) सब का रक्षक है (**सानौ**) रक्षारूप उच्च शिखर पर (**ष्णुना**) अपने प्रवाह से (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तुम (**धन्व, पवस्व**) हमको पवित्र करो, क्योंकि आप (**देवताते**) विद्वानों के विस्तृत यज्ञ में (**मदाय**) आनन्द को (**जुष्टः**) प्रीति से सेवन करनेवाले हैं ॥१९॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥१९॥

अरश्मानो येऽरया अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२०॥

पदार्थः—(**आजौ**) ज्ञानयज्ञों में जो विद्वान् (**ससृजानासः**) दीक्षित किये गये हैं (**अत्यासः**) विद्युत् के (**न**) समान जो (**अयुक्ताः**) बन्धनरहित हैं, (**अरश्मानः**) जीवन्मुक्त होते हुए ये जो (**अरयाः**) कर्मों के बन्धनों से रहित हैं (**एते शुक्रासः**) उक्त तेजस्वी विद्वान् (**धन्वन्ति**) अव्याहतगति होकर सर्वत्र विचरते हैं। (**सोमाः**) सौम्य (**देवासः**) परमात्मा जो दिव्य के गुण कर्म स्वभाव हैं (**तान्**) उनको, (**पिबध्यै, उपयात**) विद्वानों से प्रार्थना है कि आप लोग परमात्मा के उक्त गुणों को सेवन करने का प्रयत्न करें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने का उपदेश है अर्थात् परमात्मा के गुणों के धारण करने से पुरुष पवित्र और तेजस्वी हो जाता है ॥२०॥

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**नः**) हमारे (**देववीतिम्, अभि**) यज्ञ के प्रति (**परिस्रव**) ज्ञान की वृष्टि करें और (**चमूषु**) हमारे क्षेत्ररूप यज्ञों में (**नभः**) नभोमण्डल से (**अर्णः**) जल की वृष्टि करें, (**सोमः**) सोमगुणसम्पन्न आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**काम्यम्**) कमनीय (**बृहन्तम्**) बड़े (**रयिम्**) धन को (**ददातु**) दें और वह धन (**उग्रं वीरवन्तम्**) उग्र वीरों की सम्पत्तिवाला हो ॥२१॥

भावार्थः—जो लोग अनन्यभक्ति से ईश्वर की उपासना करते हैं, ईश्वर उनको अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२१॥

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२॥

पदार्थः—(**क्षोरनीके, धर्मणि**) वैदिकधर्म में (**वेनतो मनसः**) अत्यन्त कान्तिवाले मन की (**वाक्**) वाणी (**तक्षत्**) आत्मा का संस्कार करती है (**यदि वा**) अथवा (**गावः**) इन्द्रियां (**इन्दुम्**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का, जो (**पतिम्**) लोकलोकान्तरों का पति है (**वरम्**) वरणीय है (**जुष्टम्**) जो सबका प्रेमपूर्वक उगासनीय है (**कलशे**) अन्तःकरण में (**ईम्**) उक्त परमात्मा को (**आयन्**) आते हुए को (**वावशानाः**) ग्रहण करके (**आत्**) तदनन्तर तुरन्त ही, साक्षात्कार करती हैं ॥२२॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ द्वारा मन का संस्कार करते हैं उनका शुद्ध मन परमात्मा के ज्ञान को लाभ करता है ॥२२॥

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३॥

पदार्थः—(सुमेधाः) स्वप्रकाश परमात्मा (ऋतम्) सच्चाई को (ऋताय) कर्मयोगी के लिये (पवते) पवित्र करता है, वह परमात्मा (दानुपिन्वः) जिज्ञासुओं को धनदानादिकों से पुष्ट करनेवाला है, (विभ्वः) दिव्य है, (दानुदः) सब दाताओं का दाता है, वह (धर्मभुवत्) सब धर्मों को धारण करनेवाला है, (वृजन्यस्य) साधु-बल के धारण करनेवाला है, (रश्मिभिर्दशभिः) पांच सूक्ष्म पांच स्थूल भूतों की शक्तियों द्वारा (भूम, प्रभार्षि) इस चराचर जगत् को धारण कर रहा है और (राजा) सब लोकलोकान्तरों का प्रकाश करने वाला है ॥२३॥

भावार्थः—परमात्मा इस चराचर जगत् का निर्माण करनेवाला है उसी ने सम्पूर्ण संसार को रच कर धर्म की मर्यादा को बांधा है ॥२३॥

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥२४॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (चारु) सुन्दर (ऋतम्) प्रकृतिरूपी सत्य को (भरत्) धारण किये हुए है, वह प्रकृतिरूपी सत्य (सुभृतम्) भलीभांति — कः तृप्ति का कारण है, उक्त परमात्मा (रयीणाम्) धनों का (पतिः) स्वामी है और (द्विता) जीव और प्रकृतिरूपी द्वैत के लिये (भुवत्) स्वामीरूप से विराजमान है,(उत) और (मर्त्यानाम्) साधारण मनुष्यों का और (देवानाम्) विद्वानों का (राजा) राजा है (नृचक्षाः) शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा है तथा (पवित्रेभिः) अपनी पवित्र शक्तियों से (पवमानः) पवित्रता देनेवाला है ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृतिरूपी, परिणामी नित्य और जीवरूपी कूटस्थ नित्य द्वैत को धारण किया है। इस प्रकार जीव और प्रकृति का परमात्मा से भेद है। इस विषय का वर्णन वेद के कई एक स्थानों में अन्यत्र भी पाया जाता है। जैसा कि 'न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकम् अन्तरं बभूव' (तुम उसको नहीं जानते जिसने इस संसार को उत्पन्न किया है, वह तुमसे भिन्न है। इस मन्त्र में द्वैतवाद का वर्णन स्पष्ट रीति से पाया जाता है ॥२४॥

अर्वां इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (सहस्रा) सहस्रों प्रकार के (बृहतीः) बड़े-बड़े (इषः) ऐश्वर्यों के (दाः) देनेवाले (भव) हो, क्योंकि आप (द्रविणोवित्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के जाननेवाले हैं। इसलिये (पुनानः) ऐश्वर्यों द्वारा पवित्र करते हुए (अर्वा इव) गतिशील विद्युत् के समान (श्रवसे) ऐश्वर्य्य के लिये (सातिम्) यज्ञ को (अच्छ) हमारे लिये दें। और (इन्द्रस्य) कर्मयोगी को और (वायोरभि) ज्ञानयोगी को (वीतिम्) ज्ञान (अर्ष) दें (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (नः) हमको ज्ञानप्रदान से पवित्र करें ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगी को नानाप्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इस लिये मनुष्य को चाहिये कि वह ज्ञानयोग का सम्पादन करे ॥२५॥

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥२६॥

पदार्थः—(देवाव्यः) विद्वानों को ज्ञान द्वारा तृप्त करनेवाला परमात्मा और (आयज्यवः) यजनशील (विश्ववाराः) सबका उपास्यदेव (होतारः) होताओं के (न) समान (दिवि यजः) द्युलोक में सूर्य्यादि अग्निपुञ्जों के द्वारा यज्ञ करनेवाला (मन्द्रतमाः) आनन्दस्वरूप, उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा (परिषिच्यमानाः) उपासना किया हुआ (सोमाः) सौम्यस्वभाव परमात्मा (सुवीरम्) सुवीर सन्तान और (क्षयम्) निवास स्थान (धन्वन्तु) दें। [यहां बहुवचन आदर के लिये है] ॥२६॥

भावार्थः—सुसम्पत्ति तथा सुन्दर सन्तान एकमात्र पुण्यकर्मों से प्राप्त होती है इसलिये पुण्यात्मा बनकर पुण्यों का सञ्चय करना चाहिये ॥२६॥

एषा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धिष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥२७॥

पदार्थः—(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! आप (देवपानः) विद्वानों मे प्रारम्भ किये हुए यज्ञ में (महे) जो सबसे बड़ा है, उसमें (सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (प्सरसे) विद्वानों की तृप्ति के लिये (पवस्व) पवित्र करें, और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (सुष्ठाने) शोभन स्थान में (पुनानः) हमको पवित्र करते हुए आप (समर्ये) इस संसार के युद्धरूपी क्षेत्र में (हिताः) हितकर (कृधि) बनाएं, (हि) क्योंकि आप (महश्चित्) बड़ी से बड़ी शक्तियों को (स्मसि) अनायास से (एव) ही धारण कर रहे हो ॥२७॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोक-लोकान्तरों को अनायास से धारण कर रहा है। उसी सर्वाधार परमात्मा की सुरक्षा से पुरुष सुरक्षित रहता है, अतएव शुभ कर्म्म करते हुए एकमात्र उसी से सुरक्षा की प्रार्थना करनी चाहिये ॥२७॥

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**अर्वाचीनैः**) आपके अभिमुख करनेवाले (**पथिभिः**) मार्गों से (**ये**) जो मार्ग (**रजिष्ठाः**) सरल हैं । उनके द्वारा (**नः**) हमको (**सौमनसम्**) संस्कृत मन देकर पवित्र करें आप (**मनसो जवीयान्**) मन के वेग से भी शीघ्रगामी हैं, [अर्थात्] मन के पहुँचने से पहिले वहां विद्यमान हैं। (**सिंहः**) सिंह के (**न**) समान भयप्रद हैं, (**अश्वः**) विद्युत् के (**न**) समान (**क्रदः**) शब्दायमान हैं (**वृषभिः**) योगियों मे (**युजानः**) जुड़े हुए हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा से मन की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनके मन को शुद्ध करके उन्हें शुभ बुद्धि प्रदान करता है ॥२८॥

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुर एतासि महतो धनस्य ॥२९॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**सनित्रम्**) उपासना के साधनरूप ऐश्वर्य्य को (**दिवः**) द्युलोक से देकर (**आ पवस्व**) हमको पवित्र करें, क्योंकि, (**पुरः**) प्राचीन काल से ही आप(**महतो धनस्य**) बड़े धनों के (**एता**) दाता(**असि**) हो, आप कैसे हैं । (**शतधाराः**) अनन्त ब्रह्माण्डों के (**असृग्रन्**) धारण करने वाले हैं। और (**सहस्रम्**) सहस्रों प्रकार की (**एनाः**) विभूतियां (**मृजन्ति**) आप को अलंकृत करती हैं, (**देवजाताः**)दिव्यशक्तिसम्पन्न (**कवयः**) क्रान्तदर्शी विद्वान् तुमको शुद्ध स्वरूप से वर्णन करते हैं ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा के ऐश्वर्य्य को सब लोक लोकान्तर वर्णन करते हैं, जो कुछ यह ब्रह्माण्ड है वह परमात्मा की विभूति है अर्थात् यह सब चराचर जगत् परमात्मा के एकदेश में स्थिर है और परमात्मा इसको अपने में अभिव्याप्त करके सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥२९॥

दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३०॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप हमको (**अजीतिम्**) अजयभाव देकर (**पवस्व**) पवित्र करें । (**दिवः**) द्युलोक से (**न**) जिस प्रकार (**अह्नाम्**) आदित्य की (**सर्गाः**) रश्मियां (**अससृग्रम्**) प्रचार पाती हैं इसी प्रकार परमात्मा की ज्योति में प्रकाशरूप परमात्मा से प्रचार पाती हैं । और (**न**) जिस प्रकार (**धीरः**) धीर (**राजा**) प्रजा का स्वामी (**मित्रम्**) मित्ररूप प्रजा को (**न प्रमिनाति**) नहीं मारता इसी प्रकार परमात्मा सदाचारी लोगों को (**न प्रमिनाति**) नहीं मारता, और (**न**) जिस प्रकार (**यतानः**) यत्नशील (**पुत्रः**) पुत्र (**क्रतुभिः**) यज्ञों के द्वारा (**पितुः**) पिता के ऐश्वर्य्य को चाहता है इसी प्रकार हम लोग आपके ऐश्वर्य सत्कर्मों द्वारा चाहते हैं । इसलिये (**विशे**) सन्तानरूप प्रजा को (**आपवस्व**) आप पवित्र करें । ३०॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा से सन्तानों की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनकी सन्तानों को अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ॥३०॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥३१॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (**गोनाम्**) सब ज्योतियों का (**धाम**) निवासस्थान हैं और (**जज्ञानः**) आप अपने आविर्भाव से (**अर्कैः**) किरणों के द्वारा (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अपिन्वः**) पुष्ट करते हैं और (**ते धाराः**) तुम्हारे आनन्द की लहरें (**मधुमतीः**) मीठी हैं, और (**यत्**) जब (**पूतः**) अपने पवित्र भाव से (**अव्यान्**) रक्षायुक्त पदार्थों को (**अत्येषि**) प्राप्त होते हो तब तुम्हारी उक्त धाराएं (**प्रासृग्रन्**) अनन्त प्रकार के भावों को उत्पन्न करती हैं, और आप (**वारान्**) वरणीय पदार्थों को (**पवसे**) पवित्र करते हैं ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की ज्योतियों का वर्णन है अर्थात् परमात्मा की दिव्य ज्योतियां सब पदार्थों को पवित्र करती हैं ॥३१॥

कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥३२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**ऋतस्य**) सच्चाई के (**पन्थाम्**) रास्ते का (**कनिक्रदत्**) उपदेश करते हुए(**शुक्रः**)बलस्वरूप आप (**विभासि**) प्रकाशमान हो रहे हो, आप (**अमृतस्य धाम**) अमृत के धाम हो (**सः**) उक्त गुणसम्पन्न आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पवसे**) पवित्र करते हैं, (**मत्सरवान्**) आप आनन्दस्वरूप हैं, (**कवीनाम्**) मेधावी पुरुषों की (**वाचम्**) वाणी को (**मतिभिः**) अपने ज्ञानों द्वारा (**हिन्वानः**) प्रेरणा करते हुए (**पवसे**) पवित्र करते हैं ॥३२॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयोगी व कर्मयोगी हैं परमात्मा उनके उद्योग को अवश्यमेव सफल करता है ॥३२॥

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**दिव्यः**) दिव्यस्वरूप हैं (**सुपर्णः**) चेतन हैं (**अवचक्षि**) आप हमको सदुपदेश करें, (**सोम**) हे सोम ! (**देववीतौ**) देवताओं के यज्ञ में (**कर्मणा**) रक्षा से (**पिन्वन्**) पुष्ट करते हुए आप (**धाराः**) अपनी कृपामयी वृष्टि से पुष्ट करें, (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**सोमधानम्**) सोमगुण के धारण करनेवाले (**कलशम्**) अन्तःकरण को (**विश**) प्रवेश करें । और (**सूर्यस्य रश्मिम्**) ज्ञान की रश्मियों का (**क्रन्दन्**) उपदेश करते हुए (**उप, एहि**) आकर प्राप्त हों ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया है कि परमात्मा स्वतः ज्ञानस्वरूप है अर्थात् स्वतःप्रकाश है ॥३३॥

तिस्रो वाचं ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३४॥

पदार्थः—(**वह्निः**) [वहतीति वह्निः] सर्वप्रेरक परमात्मा (**तिस्रो वाचः**) तीन प्रकार की वाणियों की (**प्रेरयति**) प्रेरणा करता है । उक्त वाणी (**ऋतस्य, धीतिम्**) सच्चाई को धारण करनेवाली है (**ब्रह्मणः**) शब्दब्रह्मरूपवेद का (**मनीषाम्**) मनरूप है ऐसी वाणी की उक्त परमात्मा प्रेरणा करता है, (**गोपतिम्**) जिस तरह प्रकाशों के पति सूर्य्य को (**गावः**) किरणें (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (**वावशानाः**) कामना वाले जिज्ञासु (**पृच्छमानाः**) जिनको ज्ञान की जिज्ञासा है । वैसे (**मतयः**) मेधावी लोग (**सोमम्**) परमात्मा को (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥३४॥

भावार्थः—जो लोग अपने शील को बनाते हैं अर्थात् सदाचारी बनकर परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अपने ज्ञान से प्रदीप्त करता है ॥३४॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५॥

पदार्थः—(**सोमम्**) परमात्मा की (**गावो, धेनवः**) ज्ञानरूप वाणियां (**वावशानाः**) इच्छा करती हैं, (**सोमम्**) परमात्मा की (**विप्राः**) मेधावी लोग (**मतिभिः**) ज्ञान द्वारा (**पृच्छमानाः**) जिज्ञासा करते हैं (**अज्यमानः**) उपासना किया हुआ (**सुतः**) आविर्भाव को प्राप्त हुआ (**सोमः**) परमात्मा (**पूयते**) साक्षात्कार किया जाता है (**सोमे**) उक्त परमात्मा में (**त्रिष्टुभः**) कर्म, उपासना, ज्ञानरूप तीनों प्रकार की वाणियां (**अर्काः**) जो परमात्मा की अर्चना करनेवाली हैं, वे (**संनवन्ते**) सङ्गत होती हैं ॥३५॥

भावार्थः—कर्म, उपासना तथा ज्ञान तीनों प्रकार के भावों को वर्णन करनेवाली वेदरूपी वाणियां एकमात्र परमात्मा में ही संगत होती हैं अथवा यों कहो कि जिस प्रकार सब नदियां समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं इसी प्रकार वेदरूपी वाणियां परमात्मारूपी समुद्र की शरण लेती हैं ॥३५॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥३६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**परिबिच्यमानः**) उपासना किये हुए आप (**नः**) हमको (**आ पवस्व**) पवित्र करें, और (**पूयमानः**) शुद्धस्वरूप आप (**स्वस्ति**) मङ्गल वाणी से हमारा कल्याण करें, और (**इन्द्रम्**) कर्मयोगी को (**आविश**) आकर प्रवेश करें तथा (**बृहता रवेण**) बड़े उपदेश से उसको (**वर्धय**) बढ़ाएँ और (**पुरन्धिम्**) ज्ञान के देनेवाली (**वाचम्**) वाणी को (**जनय**) उसमें उत्पन्न करें ॥३६॥

भावार्थः—जो लोग उपासना द्वारा परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुद्ध करता है ॥३६॥

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥

पदार्थः—(**चमूषु**) सब प्रकार के बलों को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**सोमः**) सोमरूप परमात्मा (**मतीनाम्**) मेधावी लोगों के हृदय में (**आसदत्**) विराजमान होता है, वह परमात्मा (**ऋता**) सत्यस्वरूप है, (**विप्रः**) मेधावी है (**जागृविः**) ज्ञानस्वरूप है (**यम्**) जिस परमात्मा को (**मिथुनासः**) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी (**निकामाः**) जो निष्काम कर्म करनेवाले हैं, और (**अध्वर्यवः**) अहिंसारूपी व्रत को धारण किये हुए हैं, (**रथिरासः**) ज्ञानी और (**सुहस्ताः**) कर्मशील हैं, वे प्राप्त होते हैं ॥३७॥

भावार्थः—उक्त विशेषणोंवाले ज्ञानयोगी और कर्मयोगी परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥३७॥

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८॥

पदार्थः—(**स सोमः**) वह उक्त परमात्मा अज्ञानों को (**व्यावः**) नाश करता है (**न**) जिस प्रकार (**उभे रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में (**सूरे**) सूर्य्य के आश्रित (**धाता**) काल निवास करता है, इसी प्रकार सम्पूर्ण लोकलोकान्तर परमात्मा को आश्रय कर स्थिर होते हैं, इसी प्रकार परमात्मा (**आप्राः**) लोकलोकान्तरों का प्रचार करता है (**चित्**) और (**सत्य**) जिस परमात्मा के (**प्रियाः**) प्रेममय धाराएं (**प्रियसासः**) जो अत्यन्त प्रिय हैं (**ऊती**) जगद्रक्षा के लिये प्रचार पाती हैं (**सः**) वह (**सोमः**) परमात्मा हमको ऐश्वर्य्यं प्रदान करे (**न**) जैसे कि धन का स्वामी (**कारिणे**) अपने भृत्य के लिये (**धनम्**) धन को (**प्रयंसत्**) देता है, इसी प्रकार परमात्मा हमको धन प्रदान करे ॥३८॥

भावार्थः—अविद्यान्धकार को परमात्मारूपी सूर्य्यं ही निवृत्त करता है। भौतिक प्रकाश उस अन्धकार के निवृत्त करने के लिये समर्थ नहीं होता ॥३८॥

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**वर्धिता**) सबको बढ़ाने वाला है (**वर्धनः**) स्वयं वर्धमान है (**पूयमानः**) शुद्धस्वरूप है (**सोमः**) सौम्यस्वभाव है, (**मीढ्वान्**) सब कामनाओं की वृष्टि करता है, वह (**ज्योतिषा**) अपने ज्ञान द्वारा (**नः**) हमारी (**अभ्यावीत्**) रक्षा करे, और (**येन**) जिस परमात्मा से (**नः**) हमारे (**पूर्वे**) प्रथम सृष्टि के (**पितरः**) ज्ञानी लोग (**पदज्ञाः**) पदपदार्थ के जाननेवाले (**स्वर्विदः**) स्वतन्त्र सत्ता के जाननेवाले (**अद्रिमुष्णन्**) अपनी चित्तवृत्ति का निरोध करते हुए (**अभिगाः**) ज्ञान को लक्ष्य बनाकर उक्त परमात्मा की उपासना करते थे उसीभाव से हम भी उक्त परमात्मा की उपासना करें ॥३९॥

भावार्थः—पूर्वज लोग परमात्मा की जिस प्रकार की उपासना करते थे, उसी प्रकार की उपासनाओं का विधान इस मंत्र में किया गया है। तात्पर्य्य यह है कि “सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्” इत्यादि मन्त्रों में जो इसे सृष्टिप्रवाहरूप से वर्णन किया है उसी भाव को यहां प्रकारान्तर से वर्णन किया है ॥३९॥

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषा पवित्रे अधि सानौ अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥४०॥

पदार्थः—[सम्यग् द्रवन्ति गच्छन्ति भूतानि यस्मात्स समुद्रः] परमात्मा। उससे सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है इसलिये उसका नाम समुद्र है वह (**भुवनस्य**) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का (**राजा**) स्वामी परमात्मा (**प्रथमे**) पहिला (**विधर्मन्**) जो नाना प्रकार के धर्म्मोंवाला अन्तरिक्ष है उसमें (**प्रजाः**) प्रजाओं को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**अक्रान्**) सर्वोपरि होकर विराजमान है (**इन्दुः**) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**सुवानः**) सर्वोत्पादक (**सोमः**) सोमगुणसम्पन्न (**बृहत्**) जो सबसे बड़ा है, (**वृषा**) सब कामनाओं का देनेवाला है, वह (**अव्ये**) रक्षायुक्त (**पवित्रे**) पवित्र ब्रह्माण्ड के (**सानौ**) उच्च शिखर में (**अधिवावृधे**) सर्वव्यापकरूप से विराजमान हो रहा है ॥४०॥

भावार्थः—सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला परमात्मा अन्तरिक्ष में सर्वोपरि विराजमान है। वही सबकी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। अतः वह उपास्य है ॥४०॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥४१॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**सूर्ये**) भौतिक सूर्य में (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**अजनयत्**) उत्पन्न करता है और (**पवमानः**) सबको पवित्र करनेवाला वह परमात्मा (**इन्द्रे**) कर्मयोगी के लिये (**ओजः**) ज्ञानप्रकाशरूपी बल (**अदधात्**) धारण कराता है और (**महिषः**) महान् (**सोमः**) सोम (**तत्, महत्**) उस बड़े काम को (**चकार**) करता है (**यत्**) जो (**अपाम्**) वाष्परूप प्रकृति के अंशों में (**देवान्**) सूर्यादि दिव्य पदार्थों के (**गर्भः**) उत्पत्तिरूप गर्भ से (**अवृणीत**) वरण किया गया है ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सूर्य्यादिकों के प्रकाशकरूप से वर्णन किया है। इसी अभिप्राय से उपनिषद्कार ऋषियों ने परमात्मा को सूर्य्यादिकों का प्रकाशक माना है ॥४१॥

मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥४२॥

पदार्थः—(**पूयमानः**) वह शुद्धस्वरूप परमात्मा (**मित्रावरुणा**) अध्यापक और उपदेशक को (**राधसे**) धन के लिये (**मत्सि**) उत्साहित करता है (**च**) और (**वायुम्**) कर्मयोगी को (**इष्टये**) यज्ञादि कर्मों के लिये (**मत्सि**) उत्साहित करता है, और (**मारु-**

तम्) विद्वानों के गण को (शर्धः) बल के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है, और (देवान्) विद्वानों को (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक की विद्या के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है । (देव) उक्त दिव्यस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप उक्त प्रकार से पूर्वोक्त अधिकारियों को (मत्सि) उत्साहित करते हैं ॥४२॥

भावार्थः—परमात्मा उद्योगियों के हृदय में सर्वदा उत्साह उत्पन्न करता है जिस प्रकार सूर्य्य चक्षु वाले लोगों का प्रकाशक है इसी प्रकार अनुद्योगी परमालसियों के लिये परमात्मा उद्योगदीपक नहीं ॥४२॥

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३॥

पदार्थः—(ऋजुः) शान्तभाव से शासन करनेवाले आप (वृजिनस्य) अज्ञानरूप वृजिन दोष के (हंता) हनन करनेवाले हैं, (अमीवां) सब प्रकार की व्याधियों को (अपसारय) दूर करें, (च) और (मृधः) दुष्ट हिंसकों को (बाधमानः) दूर करते हुए आप (गोनाम्) इन्द्रियां की (पयसा) तृप्तिकारकवृत्ति द्वारा (पयः) ज्ञान को लक्ष्य करके (अभिश्रीणन्) आप लक्ष्य बनाए जाते हैं (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के मित्र हैं इसलिये (वयं, तव, सखायः) हम तुम्हारी मैत्री चाहते हैं ॥४३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सब दुःखों के दूर करनेवाले परमात्मा से दुःखनिवृत्ति की प्रार्थना है, अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक उक्त तीनों प्रकार के तापों की निवृत्ति परमात्मा से कथन की गयी है। सायणाचार्य्य 'ऋजुः पवस्व' के अर्थ यहां सोमरस के सीधा होकर बहने के करते हैं। अर्थात् क्षर के करते हैं सो (पूञ् पवने) धातु के सर्वत्र अयुक्त है ॥४३॥

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (मध्वः सूदम्) मधुरता के रसों को (आपवस्व) हमको दें (वस्वः) धनों के (उत्सम्) उपयोगी ऐश्वर्य्यों को आप हमें दें और (वीरम्) वीरसन्तानों को आप (नः) हमें (आपवस्व) दें, (च) और (भगम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य्य आप हमें दें (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (स्वदस्व) आनन्द देकर (पवमानः) पवित्र करते हुए (रयिम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों को आप (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (आपवस्व) हमको दें ॥४४॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी अर्थात् उद्योगी पुरुषों पर प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह उद्योगी बनकर परमात्मा के ऐश्वर्य्य का अधिकारी बने ॥४४॥

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादक (सुतः) स्वयंसिद्ध जो परमात्मा है वह (धारया) अपनी स्वतःसिद्ध शक्तियों के द्वारा (अत्यः) विद्युत् के समान (सम्) भलीप्रकार (हित्वा) गतिशील होता हुआ (सिन्धुः) स्यन्दनशील नदी के (न) समान (निम्नम्) नीचे की ओर (वाजी) बलस्वरूप उक्त परमात्मा (वन्यम्) अभियुक्त (योनिम्) अन्तःकरणरूप स्थान को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (असदत्) स्थिर होता है, वह (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (न) भक्तों के प्रति (अभ्यक्षाः) रक्षा करता है (गोभिः) इन्द्रियों की वृत्तियों द्वारा (अद्भिः) जो प्रेम के प्रवाह से अन्तःकरण को सिञ्चित करती हैं, उनसे (समसरत्) ज्ञानरूप से व्याप्त होता है ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार से यह वर्णन किया है कि परमात्मा नम्र स्वभाववाले पुरुषों को निम्न भूमि के समान सुसिञ्चित करता है ॥४५॥

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुम्हारे लिये (एषः, स्यः) वह उक्त परमात्मा (पवते) पवित्र करता है (यः) जो (सोमः) सौम्यस्वभाव (चमूषु) सब प्रकार के बलों में (धीरः) धीर है और (उशते) कान्तिवाले कर्मयोगी के लिये (तवस्वान्) बलस्वरूप है (स्वर्चक्षाः) सुख का उपदेष्टा (रथिरः) गतिस्वरूप (सत्यशुष्मः) सत्यरूप बल वाला और (देवयताम्) देवभाव की इच्छा करनेवालों के लिये जो (कामः) कामना के समान (असर्जि) उपदेश किया गया ॥४६॥

भावार्थः—परमात्मा ही सब कामनाओं का मूल है। जो लोग ऐश्वर्य्य की कामना वाले हैं उनको चाहिये कि वे कर्मयोगी और उद्योगी बनकर उससे ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति के अभिलाषी बनें ॥६॥

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥४७॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (प्रत्नेन वयसा) प्राचीनैश्वर्य्य से (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (दुहितुः) पृथिवी के (वपींसि) रूपों को (तिरोदधानः) अपने तेज से आच्छादन करता हुआ (शर्म) सुख को (वसानः) धारण करता हुआ (त्रिवरूथम्) सत्व रजः तमोरूप तीनों गुणों वाली प्रकृति को धारण करते हुए (अप्सु) कर्म-यज्ञों में यज्ञ करने वाले (होता, इव) होता के समान (समनेषु) यज्ञों में (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ परमात्मा (याति) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥४७॥

भावार्थः—जिस प्रकार होता अथवा उद्गातादि ऋत्विज् लोग वेदों का गायन करते हुए इस विविध रचनारूप विराट्का वर्णन करते हैं इसी प्रकार परमात्मा स्वयं उद्गातारूप होकर वेदरूप गीति के द्वारा चराचर ब्रह्माण्डों का वर्णन करता है अर्थात् प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा इस चराचर जगत् की विविध रचना का हेतु एक मात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥४७॥

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तुम (रथिरः) बलस्वरूप हो (चम्वोः) सब भुवनों को (पूयमानः) पवित्र करते हुए (अप्सु) जलों में (मधुमान्) मीठा (स्वादिष्ठः) स्वादुरस (ऋतावा) वितीर्ण करते हुए (देवः) दिव्यशक्ति के (न) समान (नु) शीघ्र (नः) हमारे लिये (सत्यमन्मा) सत्यस्वरूप आप हमारे अन्तःकरण में आकर (परिस्रव) विराजमान हों ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से स्वस्वामिभाव की प्रार्थना की गई अथवा यों कहो प्रेर्य और प्रेरक भाव से परमात्मा की उपासना की गई है ॥४८॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ भिमित्रावरुणा पूयमानः ।
अभि नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥४९॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (वायुम्) ज्ञानयोगी को (वीती) तृप्ति के लिये (अभ्यर्ष) प्राप्त हों (गृणानः) उपास्यमान आप (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक को (अभ्यर्ष) प्राप्त हों, (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए आप (धीजवनं, नरम्) कर्मयोगी पुरुष को (अभ्यर्ष) प्राप्त हों, (रथेष्ठाम्) जो कर्मों की गति स्थिर है, उसको प्राप्त हों, (वज्रबाहुम्) वज्र के समान भुजाओं वाले (इन्द्रं) योद्धा पुरुष को, (वृषणम्) जो बलस्वरूप है, उसको प्राप्त हों ॥४९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति के पात्र ज्ञानयोगी कर्मयोगी और शूरवीरों का वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष परमात्मा की कृपा का पात्र बनना चाहे उसे स्वयं उद्योगी वा कर्मयोगी अथवा शूरवीर बनना चाहिये क्योंकि परमात्मा स्वयं बलस्वरूप है इस लिये जो बलिष्ठ पुरुष हैं वे उस की कृपा का पात्र बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥४९॥

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥५०॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! तृप्ति के लिये (वस्त्रा, सुवसनानि) शोभन वस्त्र (अभ्यर्ष) दें (पूयमानः) सब को पवित्र करते हुए आप (सुदुघाः) सुन्दर अर्थों से परिपूर्ण (धेनूः) वाणियां (अभ्यर्ष) हम को दें, (चन्द्रा, हिरण्या) आल्हादक धन आप (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें, (रथिनः) वेगवाले (अश्वान्) घोड़े (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पुनरपि ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हम को ऐश्वर्यशाली बनने के लिये ऐश्वर्य प्रदान करें, पुनः-पुनः ऐश्वर्य की प्रार्थना करना अर्थपुनरुक्ति नहीं, किन्तु अभ्यास अर्थात् दृढ़ता के लिये उपदेश है जैसा कि "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यादिकों में वार-वार चित्तवृत्ति का लगाना परमात्मा में कथन किया गया है। इसी प्रकार यहां भी दृढ़ता के लिये उसी अर्थ का पुनः-पुनः कथन है जो अज्ञानियों को वेद में पुनरुक्ति दोष प्रतीत होता है। वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं यह केवल अज्ञानियों की भ्रान्ति है ॥५०॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पूयमानः) शुद्धस्वरूप आप (दिव्या, वसूनि) दिव्य धन (नः) हमें (अभ्यर्ष) दें, (विश्वा, पार्थिवा) सम्पूर्ण पृथिवी सम्बन्धी धन आप (नः) हमें दें (जमदग्निवत्) चक्षु की दिव्य दृष्टि के समान (येन) जिस सामर्थ्य से हम (आर्षेयम्) ऋषियों के योग्य (द्रविणम्) धन को (अश्नवाम) भोग सकें, वह सामर्थ्य आप (नः) हम को दें ॥५१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से भोक्तृत्वशक्ति की प्रार्थना की गई है। तात्पर्य्य यह है कि जो पुरुष स्वामी होकर ऐश्वर्य्यों को भोग सकता है

वही ऐश्वर्य्यसम्पन कहलात। है अन्य नहीं । इसी अभिप्राय से उपनिषदों में अन्नाद अर्थात् ऐश्वय्यों के भोक्ता होने की प्रार्थना की गई है ॥५१॥

अया पवा पवस्वैना वसूंनि मांश्चत्व इन्दो सरंसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुंरुमेधश्चित्तकंवे नरं दात् ॥५२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**अया**) इस (**पवा**) पवित्र करने वाली वृष्टि से (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें (**एना**) यह (**वसूनि**) धन आप हमको दें, (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**मांश्चत्वे, सरसि**) वाणी के समुद्र में आप हम को (**प्रधन्व**) प्रेरणा करके स्नातक बनाएं, और (**वातः**) कर्मयोगी के (**न**) समान (**जूतः**) गतिशील बनाते हुए आप (**अत्र**) उक्त विज्ञान विषय में (**ब्रध्नः**) प्रामाणिक (**चित्**) और (**पुरुमेधः**) बहुत बुद्धिवाला बनाएं (**चित्**) और (**तक्वे**) संसार की गति में (**नरम्**) कर्मयोगी सन्तान (**दात्**) मुझे दें ॥५२॥

भावार्थः—जो लोग उक्त प्रकार से शक्तिसम्पन्न होने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्य्यसम्पन्न बनाता है ॥५२॥

उत नं एना पंवया पंवस्वाधिं श्रुते श्रवाय्यंस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूंनि वृक्षं न पक्वं धूंनवद्रणाय ॥५३॥

पदार्थः—(**उत**) और (**एना**) इस (**पवया**) पवित्र दृष्टि से (**श्रवाय्यस्य**) जो सब के सुनने के योग्य (**श्रुते**) श्रवण हैं और (**तीर्थे**) तीर्थस्वरूप है उसमें (**अधि**) अत्यन्त (**पवस्व**) आप हम को पवित्र करें ताकि, हम (**नैगुतः**) शत्रुओं के (**षष्टि, सहस्रा, वसूनि**) असंख्यात धनों को हरण करते हुए (**पक्वम्**) पके हुए (**वृक्षम्**) वृक्ष के (**न**) समान (**रणाय**) रण के लिये (**धूनवत्**) उनको कँपाते हुए संसार में यात्रा करें ॥५३॥

भावार्थः—जो लोग उक्त प्रकार से कर्मयोगी वा उद्योगी बनते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अविद्यारूपी शत्रुओं के हनन करने का सामर्थ्य देता है ॥५३॥

महीमे अंस्य वृषनामं शूषे मांश्चंत्वे वा पृशंने वा वधंत्रे ।
अपस्वांइयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितों अचेतः ॥५४॥

पदार्थः—(**वधत्रे**) वध करने वाले (**पृशने**) युद्ध में (**मांश्चत्वे**) जिनमें गतिशील शक्तियों का उपयोग किया जाता है उनमें (**महि**) बड़े (**इमे**) यह (**अस्य**) इस परमात्मा के (**वृषनाम**) दो काम (**शूषे**) सुखकर हैं (**निगुतः**) शत्रुओं को (**प्रस्वापयत्**) सुलादेना (**च**) और (**अपमित्रान्**) अमित्रों को (**स्नेहयत्**) स्नेह प्रदान करना (**वा**) और (**अचितः**) जो लोग परमात्मा की भक्ति नहीं करते अर्थात् नास्तिक हैं, उनको (**इतः**) इस आस्तिक समाज से (**अपाच**) दूर करना ॥५४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में आस्तिक धर्म के प्रचार करने के लिये अर्थात् वैदिक धर्म की शिक्षाओं के लिये तेजस्वी भावों का वर्णन किया है ॥५४॥

सं त्री पवित्रा वितंतान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असिं दात्रस्यं दातासिं मघवां मघवंद्भ्य इन्दो ॥५५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**त्री**) तीन (**विततानि**) विस्तृत (**पवित्रा**) पवित्र पदार्थों को (**सम्**) भली प्रकार (**एषि**) प्राप्त हैं, और (**पूयमानः**) सबको पवित्र करते हुए (**अन्वेकम्**) प्रत्येक पदार्थ में (**धावसि**) गतिरूप से विराजमान हैं (**भगः**) आप ऐश्वर्य्यस्वरूप (**असि**) हैं, (**दात्रस्य**) धन के (**दाता**) देने वाले (**असि**) हैं, क्योंकि आप (**मघवद्भ्यः**) सम्पूर्ण धनिकों से (**मघवा**) धनी हैं ॥५५॥

भावार्थः—परमात्मा सब ऐश्वर्य्यों का स्वामी है और सब धनिकों से धनी है इसलिये उसी की कृपा से सब ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ॥५५॥

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वंस्य भुवंनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयंन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयातिं याति ॥५६॥

पदार्थः—(**एषः**) उक्त परमात्मा (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है (**पवते**) सब को पवित्र करने वाला है, (**मनीषी**) सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों का प्रेरक है, (**सोमः**) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**भुवनस्य**) लोकों का (**राजा**) प्रकाशक है, (**इन्दुः**) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**विदथेषु**) ज्ञानयज्ञों में (**द्रप्सान्**) ज्ञानों की (**ईरयन्**) प्रेरणा करता हुआ (**अव्यम्**) रक्षायोग्य (**वारम्**) वरणीय पुरुष को (**समयाति, याति**) अति संनिहित प्राप्त होता है ॥५६॥

भावार्थः—जो परमात्मज्ञान के अधिकारी हैं परमात्मा उन्हीं को प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं ॥५६॥

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदंब्धाः पदे रेंभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समंञ्जते रूपमपां रसेंन ॥५७॥

पदार्थः—(**इन्दुम्**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (**अवक्षाः**) दृढ़ प्रतिज्ञावाले (**महिषाः**) जो सद्गुणों के प्रभाव से महापुरुष हैं, वे (**रिहंति**) प्राप्त होते हैं, (**गृध्राः**) निष्कामकर्मी (**कवयः**) विद्वान् (**पदे**) ज्ञानरूपी यज्ञ की वेदी में (**न**, जैसे शब्दायमान होते हैं, (**धीराः**) धीर लोग (**दशभिः**) दश (**क्षिपाभिः**) प्राणों की (**रेभन्ति**) गति से (**अपाम्**) सत्कर्मों के (**रसेन**) परिपाक से (**रूपम्**) उक्त परमात्मा के स्वरूप को (**समञ्जते**) साक्षात्कार करते हैं ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्राणायाम के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है ॥५७॥

त्वयां वयं पवंमानेन सोम भरें कृतं वि चिंनुयाम शश्वंत् ।
तन्नों मित्रो वरुंणो मामहन्तामदिंतिः सिन्धुंः पृथिवी उत द्यौः ॥५८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पवमानेन**) पवित्र करने वाले (**त्वया**) आप की सहायता से (**वयम्**) हम लोग (**भरे**) अज्ञान की वृत्तियों को नाश करने वाले सङ्ग्राम में (**कृतम्**) सत्कर्मों का (**शश्वत्**) निरन्तर (**विचिनुयाम**) संग्रह करें, (**तत्**) इसलिये (**मित्रः, वरुणः**) अध्यापक और उपदेशक, (**अदितिः**) अज्ञान के खण्डन करने वाला विद्वान् (**सिन्धुः**)समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) द्युलोक; ये सब पदार्थ (**ममहंताम्**) मेरे अनुकूल होकर मुझे पूज्य बनाएं ॥५८॥

भावार्थः—जो लोग सदाचारी अध्यापकों वा उपदेशकों द्वारा परमात्म-ज्ञान की शिक्षा पाते हैं वे अवश्यमेव अज्ञान को नाश करके ज्ञानरूपी प्रदीप से प्रदीप्त होते हैं ॥५८॥

नवम मण्डल में यह सतानवेंवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य अष्टनवतितमस्य सूक्तस्य १—१२ अम्बरीष ऋजिष्वा च ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, १० अनुष्टुप् ३, ५, ६ निचृदनुष्टुप् । ६, १२ विराडनुष्टुप् । ८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ११ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१—१०, १२ गान्धारः । ११ मध्यमः ॥

अभि नों वाजसातंमं रयिमंर्ष पुरुस्पृहंम् ।
इन्दों सहस्रंभर्णसं तुविद्युम्नं विंभ्वासहंम् ॥१॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**सहस्रभर्णसम्**) अनेक प्रकार का पालन-पोषण करने वाला (**पुरुस्पृहम्**) जो सबको अभिलषित है (**वाजसातमम्**) जो अनन्त प्रकार के बलों का देने वाला है, (**रयिम्**) ऐसे धन को (**नः**) हमारे लिये (**अभ्यर्ष**) आप दें, (**तुविद्युम्नम्**) जो अनन्त प्रकार के यशों का देनेवाला और (**विभ्वासहम्**) सब तरह की प्रतिकूल शक्तियों को दबा देने वाला है, इस प्रकार का धन आप दें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अक्षय धन की प्राप्ति का वर्णन है ॥१॥

परि ष्य सुंवानो अव्ययं रथे न वर्मांव्यत ।
इन्दुंरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥२॥

पदार्थः—(**स्यः**) वह पूर्वोक्त (**सुवानः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**अव्ययम्**) रक्षा-युक्त पुरुष को (**धाराभिः**) अपनी कृपामयी वृष्टि से (**अक्षाः**) रक्षा करता है (**न**) जैसे कि, (**रथे**) कर्मयोग में स्थित विद्वान् को (**वर्म**) कर्मयोग (**पर्य्यव्यत**) सब ओर से रक्षा करता है (**इन्दुः**) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**अभिद्रुणा**) उपासना किया हुआ और (**हियानः**) ज्ञानस्वरूप (**हितः**) साक्षात्कार किया हुआ मनुष्य की बुद्धि की रक्षा करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार मनुष्य को सर्वथा सुरक्षित करता है ॥२॥

परि ष्य सुंवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदंच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥३॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**मदच्युतः**) जो आनन्दमय है वह (**अव्ये**) रक्षायोग्य सत्कर्मी पुरुष के अन्तःकरण में (**पर्य्यक्षाः**) अपना ज्ञानप्रवाह बहाता है, (**स्यः**) वह (**ऊर्ध्वः**) सर्वोपरि विराजमान परमात्मा (**यः**) जो (**अध्वरे**) अहिंसाप्रधान यज्ञों में (**धारा**) अपनी आनन्दमयी वृष्टि से (**न**) जैसे कि, (**भ्राजा**) दीप्ति अपने प्रकाश्य पदार्थों में दीप्ति डालती है इसी प्रकार (**गव्ययुः**) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (**सुवानः**)जो सर्वोत्पादक है (**एति**) वह अपनी व्याप्त सत्ता से सर्वत्र व्याप्त है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा विद्युत् की दीप्ति के समान सर्वत्र परिपूर्ण है ॥३॥

स हि त्वं देव शश्वंते वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्दों सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥४॥

पदार्थः—(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (स, त्वम्) पूर्वोक्त आप (मर्ताय, दाशुषे) जो आपकी उपासना में लगा हुआ पुरुष है (शाश्वते) निरन्तर कर्मयोगी है उसके लिये (वसु) धन (सहस्रिणम्) जो अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्योंवाला है (शतात्मानम्) जिसमें अनन्त प्रकार के बल हैं (रयिम्) ऐसे धन को (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (विवासति) आप प्रदान करें ॥४॥

भावार्थः—सामर्थ्ययुक्त पुरुष को परमात्मा ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इसलिये ऐश्वर्य्यसम्पन्न होना परमावश्यक है ॥४॥

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५॥

पदार्थः—(वृत्रहन्) हे अविद्याविनाशक परमात्मन् ! [यदवृणोत्तद्वृत्रमज्ञानम् नि० २ । १८ ।](वयम्) हम (अस्य ते) आप के (स्याम) वशवर्त्ती हों (वसो) हे सर्वाधार परमात्मन् ! (वस्वः) आप सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों के स्वामी हैं, (पुरुस्पृहः) सब के उपास्यदेव हैं (नि, नेदिष्ठतमाः) आप सर्वान्तर्यामी हैं, (अध्रिगो) हे ज्ञानगमन परमात्मन् ! आप (इषः) ऐश्वर्य्यों के और (सुम्नस्य) सुख के भोक्ता हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की उपासना द्वारा मनुष्य अविद्या को नाश करके विद्या का प्रकाश करता है ॥५॥

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् । ६ ।

पदार्थः—(यम्, ऊर्मिणम्) जो ज्ञानस्वरूप है तिस परमात्मा को (द्विः पञ्च) दश (स्वसारः) इन्द्रियवृत्तियां अथवा दश प्राण (प्रस्नापयन्ति), साक्षात्कार करते हैं (स्वयशसम्) जिसका स्वाभाविक यश है (अद्रिसंहतम्) जो ज्ञानरूपी चित्तवृत्ति का विषय है (इन्द्रस्य प्रियम्) और जो कर्मयोगी का प्रिय है (काम्यम्) कमनीय है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्राणायामादि विद्या द्वारा अथवा यों कहो कि चित्तवृत्तियों द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन किया है ॥६॥

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७॥

पदार्थः—(त्यम्) उक्त परमात्मा (हरिम्) जो अनन्त प्रकार की सृष्टि का उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता है (हर्यतम्) जो सर्वप्रिय है (बभ्रुम्) ज्ञानस्वरूप है (वारेण) वरणीय से वरणीय पदार्थों द्वारा जिसकी उपासना करते हैं और (यः) जो (विश्वान्) सब (देवान्) विद्वानों को (इव) ही (मदेन) परमानन्द के (सह) साथ (परि पुनन्ति) पवित्र करता है (परि गच्छति) वह सर्वत्र प्राप्त है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा का स्वातन्त्र्य वर्णन किया है ॥७॥

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्व१र्ण हर्यतः ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (सूरिषु) कर्मयोगियों में (बृहत्) बड़े (श्रवः) ऐश्वर्य्य को (दधे) धारण करता है (हि) क्योंकि (अस्य) उक्त परमात्मा की (अवसा) रक्षा द्वारा (वः) आप लोग (पान्तः) उसके आनन्द का पान करें, जो आनन्द (दक्षसाधनम्) सब प्रकार के चातुर्य्यों का मूल है और (स्वः) सूर्य के (न) समान (हर्यतः) अज्ञान के नाशक परमात्मा का स्वभावभूत गुण है ॥८॥

भावार्थः—उस परमात्मा के सर्वोत्तम स्वादुमय आनन्द को कर्मयोगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥९॥

पदार्थः—(सः) वह उक्त परमात्मा (वाम्) तुम कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के (यज्ञेषु) यज्ञों में (जनिष्ट) शुभ फलों को उत्पन्न करता है इसलिये (मानवी) हे मनुष्यसृष्टि के कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानो ! और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (देवी) दिव्यगुणवती स्त्रियो (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (देवः) जो दिव्यगुणयुक्त है (गिरिष्ठाः) जो सब ब्रह्माण्डों में स्थित है, तुम (तुविष्वणि) ज्ञानयज्ञों में (तम्) उस परमात्मा का (अस्रेधन्) साक्षात्कार करो ॥९॥

भावार्थः—जीवमात्र के शुभ-अशुभ कर्मों के फलों का दाता एकमात्र परमात्मा ही है ॥९॥

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥१०॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (वृत्रघ्ने) अज्ञान के नाशक (इन्द्राय) कर्मयोगी की (पातवे) तृप्ति के लिये (परिषिच्यसे) साक्षात्कार किये जाते

हो (दक्षिणावते, नरे) अनुष्ठानी विद्वान् (देवाय) जो दिव्यगुणयुक्त है, उसके लिये (सवनासदे) यज्ञगृह में साक्षात्कार किये जाते हो ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी तथा अनुष्ठानी विद्वानों का ही साक्षात्करणार्ह है ॥१०॥

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (प्रत्नासः) स्वाभाविक (सोमाः) सौम्यस्वभाव (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (अक्षरन्) प्रवाहित होते हैं, (अप्रचेतसः) अज्ञानी पुरुष (ह्वरश्चितः) जो कुटिल चित्तवाले हैं (तान्) उनको आप प्रवाहित नहीं करते क्योंकि वह (अपप्रोथन्तः) हिंसक हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा का आनन्द सौम्य स्वभाववाले ही भोग सकते हैं; कुटिल चित्तवाले नहीं ॥११॥

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२॥

पदार्थः—(त्यम्) उस पूर्वोक्त परमात्मा को (तम्) जो (वाजगन्ध्यम्) बलस्वरूप है और (पुरोरुचम्) सदा से प्रकाशस्वरूप है उसको (वयम्) हम (च) और (यूयम्) आप (सूरयः) विद्वान् (सखायः) जो मैत्रीभाव से वर्ताव करते हैं (वाजपः) जो उसकी अनन्त शक्तियों को अनुभव करना चाहते हैं, वे सब (सनेम) उसकी उपासना करें और उसके आनन्द को भोगें ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा ही के आनन्द भोगने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि सच्चा आनन्द वही है ॥१२॥

नवम मण्डल में यह अठानवेंवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य नवनवतितमस्य सूक्तस्य १—८ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्बृहती । २, ३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ मध्यमः । २—८ गान्धारः ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥१॥

पदार्थः—(महीयुवः) उपासक लोग (असुराय) जो असुर है और (धृष्णवे) अन्याय से दूसरों की शक्तियों को मर्दन करता है (हर्यताय) दूसरों के धन को हरण करनेवाला है उसके लिये (पौंस्यम्) शूरवीरता का (धनुः) धनुष (आतन्वन्ति) विस्तार करते हैं, और (विपाम्) विद्वानों के (अग्रे) समक्ष (निर्णिजम्, शुक्राम्) वे सूर्य के समान ओजस्विनी दीप्ति का (वयन्ति) प्रकाश करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग तेजस्वी बनना चाहते हैं, वे परमात्मोपासक बनें ॥१॥

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२॥

पदार्थः—(अध) अब इस बात का वर्णन करते हैं कि (क्षपापरिष्कृतः) सैनिक बलों में उपासना किया हुआ परमात्मा (वाजान्, अभि, प्रगाहते) बलों का प्रदान करता है, पर (यदि) यदि (विवस्वतः) याज्ञिक के (धियः) कर्म (यातवे) कर्मयोग के लिये (हरिम्, हिन्वन्ति) परमात्मा की प्रेरणा करें ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मोपासक हैं वही युद्ध में विजय पाते हैं ॥२॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥

पदार्थः—(अस्य) उक्त परमात्मा के (तम्) उक्त आनन्द को (मर्जयामसि) हम लोग शुद्धभाव से धारण करते हैं, (यः) जो (मदः) आनन्द (इन्द्रपातमः) कर्मयोगी की तृप्ति करनेवाला है (यम्) जिस आनन्द को (गावः) इन्द्रियां (आसभिः) अपनी वृत्तियों द्वारा (दधुः) धारण करती हैं (च) और (नूनम्) निश्चयपूर्वक (सूरयः) विद्वान् लोग (पुरा) पूर्वकाल से उपासना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी लोग अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके परमात्मानन्द का अनुभव करते हैं ॥३॥

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥४॥

पदार्थः—(तम्) उक्त परमात्मा को (पुनानम्) जो सबको पवित्र करनेवाला है, उसको (पुराण्या गाथया) अनादिसिद्ध वेदवाणी द्वारा (अभ्यनूषत) वर्णन करते

हैं, (उतो) और (धीतयः) मेधावी लोग (देवानाम्) सब देवों के मध्य में उसी के (नाम) नाम को (कृण्वत) धारण करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वोत्कृष्ट मानकर उपासना करनी चाहिये ॥४॥

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥५॥

पदार्थः—(**उक्षमाणम, तम**) उक्त बलस्वरूप परमात्मा को (**मनीषिणः**) मेधावी लोग (**अव्यये, वारे**) रक्षायुक्त विषयों में (**पुनन्ति**) वर्णन करते हैं, (**धर्णसिम्**) सर्वाधिकरण को (**दूतम्, न**) दुःखनिवारक रूप से (**पूर्वचित्तये**) सबसे प्रथम (**आशासते**) प्रार्थना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का आधार है इससे उसी की उपासना प्रथम करनी चाहिये ॥५॥

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥

पदार्थः—(**सः**) पूर्वोक्त परमात्मा (**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाला है (**मदिन्तमः**) आनन्दस्वरूप है (**सोमः**) सर्वोत्पादक है, (**चमूषु**) सब प्रकार के सैनिक बलों में (**सीदति**) स्थिर है (**पशौ, न**) द्रव्य के समान (**रेतः**) [रेत इति जलनामसु पठितं नि०] प्रकृति की सूक्ष्मावस्था को (**आदधत्**) धारण करता है (**धियः पतिः**) वह कर्माध्यक्ष (**वचस्यते**) उपासना किया जाता है ॥६॥

भावार्थः—आनन्दप्रद, विजयादि प्रदाता और प्रलयादिकर्त्ता केवल परमात्मा ही है, इससे वही उपास्य है ॥६॥

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥७॥

पदार्थः—(**सः**) पूर्वोक्त परमात्मा (**देवः**) देव (**देवेभ्यः**) जो विद्वानों के लिये (**सुतः**) स्तुति किया गया है वह (**यत्**) जब (**विदे**) साक्षात्कार किया जाता है, तब कर्मयोगी पुरुष (**आसु**) प्रजाओं में (**संददिः**) सम्यक् धनों का प्रदाता होता है तब (**महीः, आपः**) बड़े-बड़े कर्मों की विपत्तियों को (**विगाहते**) तैर जाता है ॥७॥

भावार्थः—कर्मयोगी जो परमात्मोपासक है, वह सब बलों का आश्रय हो सकता है ॥७॥

सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥८॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में (**सुतः**) आवाहन किये हुए (**नृभिः**) कर्मयोगी पुरुषों द्वारा (**यतः**) साक्षात्कार किये हुए, (**विनीयसे**) विशेषरूप से साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**मत्सरिन्तमः**) आनन्दस्वरूप आप (**चमूषु**) सब प्रकार के बलों में (**आ निषीदसि**) तुम स्थिर होते हो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्धान्तःकरण से कर्मयोगयुक्त होता है, परमात्मा उसी की सहायता करता है ॥८॥

नवम मण्डल में यह निन्यानवेंवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य शततमसूक्तस्य १—९ रेभसूनू काश्यपो ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, ९ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ गान्धारः स्वरः ॥

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थः—(**न**) जैसे कि (**पूर्वे**) प्रथम (**आयुनि**) उमर में (**जातं**) उत्पन्न हुए (**वत्सं**) वत्स को (**मातरः**) गौएं (**रिहंति**) आस्वादन करतीं हैं, इसीप्रकार (**अद्रुहः**) रागद्वेष से रहित पुरुष (**इन्द्रस्य**) कर्म्मयोगी के (**काम्यं**) कमनीय (**प्रियं**) सबसे प्यारे कर्म्मयोग को (**अभिनवंते**) प्रेमभाव से प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थः—अभ्युदय की इच्छा करनेवाले मनुष्य को कर्मयोग ही सबसे प्रिय मानना चाहिये ॥१॥

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप (**सोम**) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पुनानः**) सबको पवित्र करते हुए आप (**द्विबर्हसं**) दोनों लोकों में बढ़ने वाले (**रयिं**) धन से

(आभर) आप हमको परिपूर्ण करें और (त्वं) आप (दाशुषो गृहे) यज्ञशील दानी पुरुष के घर में (विश्वानि, वसूनि) सब धनों को (पुष्यसि) पुष्ट करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष आत्मा और पर में सुखदुःखादि को समान समझ कर परोपकार करते हैं, परमात्मा उनको उन्नतिशील करता है ॥२॥

त्वं धियं॑ मनो॒युजं॑ सृ॒जा वृ॒ष्टिं न त॑न्यतुः ।
त्वं वसू॑नि॒ पार्थि॑वा दि॒व्या च॑ सोम पुष्यसि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (मनोयुजं) मन को स्थिर करनेवाले (धियं) कर्म्मयोग को (सृज) उत्पन्न करो (न) जैसे कि (तन्यतुः) मेघ (वृष्टिं) वृष्टि का विस्तार करता है, इसी प्रकार (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्वं) तुम (पार्थिवा) पृथिवीसम्बन्धी (च) और (दिव्या) द्युलोकसम्बन्धी (वसूनि) धनों से (पुष्यसि) हमको पुष्ट करो ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष ही मन के स्थैर्य को प्राप्त करके विविध ऐश्वर्य का स्वामी बनता है ॥३॥

परि॑ ते जि॒ग्युषो॑ यथा॒ धारा॑ सु॒तस्य॑ धावति ।
रंह॑माणा॒ व्य॒१॑व्य॒यं वारं॑ वा॒जीव॑ सान॒सिः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सुतस्य) उपासना किये गए (ते) तुम्हारे आनन्द की (धारा) लहरें उपासक की ओर (परिधावति) इस प्रकार दौड़ती हैं (यथा) जैसे कि (जिग्युषः) जयशील योधा का (वाजी, इव) घोड़ा शत्रु के दमन के लिये दौड़ता है इसी प्रकार (रंहमाणा) वेगवती और (सानसिः) प्राप्त करने योग्य धारा (अव्ययं, वारं) रक्षायोग्य वरणीय पुरुष की अज्ञाननिवृत्ति के लिये है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार करनेवाले ही परमानन्द पाते हैं ॥४॥

क्रत्वे॒ दक्षा॑य नः कवे॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या ।
इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तो मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च ॥५॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (नः) हमारे (क्रत्वे) कर्म्मयोग के लिये (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (धारया) आप अपनी आनन्दमय वृष्टि से हमको पवित्र करें (च) और (इन्द्राय) कर्म्मयोगी की (पातवे) तृप्ति के लिये (मित्राय) अध्यापक और (वरुणाय) उपदेशक की तृप्ति के लिये आप (सुतः) उपासना किये जाते हो ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार कर्मयोगी, अध्यापक तथा उपदेशक—सबों की तृप्ति करता है ॥५॥

पव॑स्व वाज॒सात॑मः प॒वित्रे॒ धार॑या सु॒तः ।
इन्द्रा॑य सोम॒ विष्ण॑वे दे॒वेभ्यो॒ मधु॑मत्तमः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (वाजसातमः) सब प्रकार ऐश्वर्यों के देनेवाले आप (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (धारया) धारणारूप शक्ति से (सुतः) साक्षात्कार किये जाते हो (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (विष्णवे) ज्ञानयोगी के लिये (देवेभ्यः) अन्य विद्वानों के लिये (मधुमत्तमः) आप आनन्दमय हो ॥६॥

भावार्थः—वस्तुतः परमात्मा के ऐश्वर्य्य तथा विभूति के आनन्द को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ही भोगते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

त्वां रि॑हन्ति मा॒तरो॒ हरिं॑ प॒वित्रे॑ अ॒द्रुहः॑ ।
व॒त्सं जा॒तं न धे॒नवः॒ पव॑मान॒ विध॑र्मणि ॥७॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (विधर्मणि) नाना प्रकार के ज्ञानों को धारण करने वाले ज्ञानयज्ञ में (त्वां) तुमको (अद्रुहः) राग-द्वेष से रहित विज्ञानी लोग (रिहंति) आस्वादन करते हैं (न) जैसे कि (धेनवः) गौयें (जातं) उत्पन्न हुए (वत्सं) वत्स को आस्वादन करती हैं, इसी प्रकार (हरिं) हरिरूप परमात्मा को सब लोग प्रेम से ग्रहण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन प्रेम है ॥७॥

पव॑मान॒ महि॒ श्रव॑श्चि॒त्रेभि॑र्यासि र॒श्मिभिः॑ ।
शर्ध॒न्तमां॑सि जिघ्नसे॒ विश्वा॑नि दा॒शुषो॑ गृ॒हे ॥८॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (महिश्रवः) सर्वोपरि यशवाले हैं (चित्रेभिः) आप नाना प्रकार की (रश्मिभिः) शक्तियों के द्वारा (यासि) सर्वत्र प्राप्त हैं । और आप (शर्धन्) अपनी ज्ञानरूपी गति से (विश्वानि

तमांसि) सब अज्ञानों को (जिघ्नसे) हनन करते हो, और (दाशुषो गृहे) उपासक के अन्तःकरण में स्थिर होकर आप उसे ज्ञान से प्रकाशित करते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञानरूप प्रकाश से सब अज्ञानों का नाश होता है ॥८॥

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥९॥

पदार्थः—(**महिव्रत**) हे बड़े व्रतवाले परमात्मन् ! (**त्वं**) आप (**द्यां**) द्युलोक (**च**) और (**पृथिवीं**) पृथिवीलोक को (**अति जभ्रिषे**) अत्यन्त ऐश्वर्यसम्पन्न बनाते हो (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**महित्वना**) अपने महत्त्व से (**द्रापि**) रक्षारूपी कवच से (**प्रत्यमुञ्चथाः**) आच्छादित करते हो ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवीलोक को ऐश्वर्यशाली बनाकर उसे अपने रक्षारूपकवच से आच्छादित किया, ऐसी विचित्र रचना से इस ब्रह्माण्ड को रचा है कि उसके महत्त्व को कोई नहीं पा सकता ॥९॥

विशेष—इस अध्याय में 'सोम' नाम परमेश्वर का है; क्योंकि 'सूते चराचरं जगदिति सोमः—चराचर संसार की रचना करने वाला चेतनस्वरूप परमात्मा ही हो सकता है। कई मन्त्रों में तो स्पष्ट लिखा है कि द्यु० भू आदि लोक 'सोम' ने ही उत्पन्न किये ।

नवम मण्डल में यह एकसौवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

* * *

अथ पञ्चदशर्चस्य एकोत्तरशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१-३ अन्धीगुः श्यावाश्विः । ४—६ ययातिर्नाहुषः । ७—९ नहुषो मानवः । १०—१२ मनुः सांवरणः । १३--१६ प्रजापतिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, ११—१४, निचृदनुष्टुप् । ४, ५, ८, १५, १६ अनुष्टुप् । १० पादनिचृदनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ स्वरः—१, ४—१६ गान्धारः । २, ६, षड्जः ॥

अब परमात्मा के गुणों द्वारा उसकी उपासना का कथन करते हैं ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थः—(**वः**) आप लोग (**पुरोजिती**) जो सब के विजेता हैं (**अन्धसः**) सर्वप्रिय (**सुताय**) संस्कृत (**मादयित्नवे**) आह्लादक परमात्मा के स्वरूपज्ञान में (**श्वानम्**) जो विघ्नकारी लोग हैं उनको (**अपश्नथिष्टन**) दूर करें (**सखायः**) हे सब के मित्रभूत याज्ञिक लोगो ! आप (**दीर्घजिह्व्यम्**) वेदरूप विशाल वाणी वाले परमात्मा की उपासना करो [जिह्वेति वाङ्नामसु पठितम् । नि० २ । खं० । २३] ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा, शब्द ब्रह्म का एकमात्र कारण है इस लिये उसी को बृहस्पति वा वाचस्पति कहा जा सकता है। इसी अभिमुख्य करके प्राय से परमात्मा के लिये बहुधा कवि शब्द आया है। इस तात्पर्य से यहां परमात्मा को दीर्घजिह्व्य कहा है ॥१॥

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**पावकया, धारया**) अपवित्रताओं को दूर करने वाली अपनी सुधामयी वृष्टि से (**परिप्रस्यन्दते**) सर्वत्र परिपूर्ण है और (**सुतः**)

सर्वत्र अपने सत्, चित्, आनन्द स्वरूप से देदीप्यमान है, और **(कृत्व्यः)** वह गतिशील **(इन्दुः)** सर्वव्यापक परमात्मा **(अश्वः, न)** विद्युत् के समान सर्वत्र अपनी सत्ता से परिपूर्ण है ॥२॥

भावार्थः—यहां विद्युत् का दृष्टान्त केवल परमात्मा की पूर्णता बोधन करने के लिये आया है ॥२॥

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥३॥

पदार्थः—**(तम्)** पूर्वोक्त **(दुरोषम्)** अखण्डनीय परमात्मा को **(नरः)** नेता लोग **(अद्रिभिः)** चित्तवृत्तियों द्वारा **(अभि हिन्वन्ति)** साक्षात्कार करते हैं, जो परमात्मा **(यज्ञम्)** यज्ञरूप है, और **(सोमम्)** सर्वोत्पादक है, उसको **(विश्वाच्या, धिया)** विचित्र बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा को वेद में यज्ञ शब्द से कथन किया गया है जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" से बताया है कि सर्वपूज्य परमात्मा से ऋगादि चारों वेद प्रकट हुए। इसी अभिप्राय से यहां भी परमात्मा को यज्ञ रूप से वर्णन किया है ॥३॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥

पदार्थः—**(सुतासः)** आविर्भाव को प्राप्त हुए **(मधुमत्तमाः)** अत्यन्त आनन्दमय **(सोमाः)** परमात्मा के सौम्य स्वभाव **(मन्दिनः)** जो आह्लादक हैं वे **(इन्द्राय)** कर्मयोगी के लिये प्राप्त हों और **(वः)** तुम जो **(देवान्,)** दिव्यगुणयुक्त विद्वान् हो, उनको **(मदाः)** वह आह्लादक गुण **(पवित्रवन्तः)** पवित्रतावाले **(अक्षरन्)** आनन्द की वृष्टि करते हुए **(गच्छन्तु)** प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों का धारण करना इस मन्त्र में वर्णन किया गया है, अर्थात् परमात्मा के सौम्यस्वभावादिकों को जब जीव धारण कर लेता है तो वह शुद्ध हो कर ज्ञानयोगी व कर्मयोगी बन सकता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥

पदार्थः—**(इन्दुः)** सर्वप्रकाशक परमात्मा **(इन्द्राय)** कर्मयोगी के लिये **(पवते)** पवित्रता प्रदान करता है **(देवासः)** विद्वान् लोग **(इत्यब्रुवन्)** यह कहते हैं कि कर्मयोगी उद्योगी पुरुष ही उस के ज्ञान का पात्र है, **(वाचस्पतिः)** वह सम्पूर्ण वाणियों का पति परमात्मा है और **(मखस्यते)** ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ, इत्यादि सब यज्ञों का अधिष्ठाता है वह परमात्मा **(ओजसा)** अपने स्वाभाविक बल से **(विश्वस्य)** सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का **(ईशानः)** स्वामी है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी को अपने सद्गुणों द्वारा पवित्र करता है अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावों के धारण करने का नाम ही परम पवित्रता है ॥५॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थः—**(सोमः)** सर्वोत्पादक परमात्मा **(सहस्रधारः)** अनन्त प्रकार के आनन्दों की वृष्टि करने वाला, और **(समुद्रः)** सम्पूर्ण भूतों का उत्पत्तिस्थान **(वाचमीङ्खयः)** वाणियों का प्रेरक **(रयीणाम्)** सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी **(दिवे दिवे)** जो प्रतिदिन **(इन्द्रस्य)** कर्मयोगी का **(सखा)** मित्र है, वह परमात्मा **(पवते)** सन्मार्ग से गिरे हुए लोगों को पवित्र करता है ॥६॥

भावार्थः—'सहस्रधारः' परमात्मा को इस लिये कथन किया गया है कि वह अनन्त शक्तियुक्त है। धारा शब्द के अर्थ यहां शक्ति हैं। "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मिन्स समुद्रः" इस व्युत्पत्ति से यहां समुद्र नाम परमात्मा का है, इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा गया है कि, "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति", यहां (पवते) के अर्थ सायणाचार्य्य ने 'क्षरति' किये हैं जो व्याकरण से सर्वथा विरुद्ध हैं ॥६॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥७॥

पदार्थः—**(अयम्)** वह उक्त परमात्मा **(पूषा)** सब का पोषक है **(भगः)** ऐश्वर्य्य देने वाला है **(सोमः)** सर्वोत्पादक है **(पुनानः)** सबको पवित्र करने वाला है, **(भूमनः विश्वस्य)** इस बृहद् ब्रह्माण्ड का **(पतिः)** स्वामी है और **(रयिः)** सम्पूर्ण धनों का हेतु है **(उभे रोदसी)** द्युलोक और पृथिवीलोक को **(व्यख्यत्)** निर्माण करने वाला उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा अपनी विभुता से **(अर्षति)** सर्वत्र विराजमान हो रहा है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में द्युलोक और पृथिवी लोक का प्रकाशक परमात्मा को कथन किया है। इस से स्पष्ट सिद्ध है कि सोमशब्द के अर्थ यहां सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के हैं, किसी जड़ वस्तु के नहीं ॥७॥

समु॑ प्रि॒या अ॑नूषत॒ गावो॒ मदा॑य॒ घृष्व॑यः ।
सोमा॑सः कृण्वते प॒थः पव॑मानास॒ इन्द॑वः ॥८॥

पदार्थः—(गावः) इन्द्रियां (घृष्वयः) जो दीप्तिवाली हैं, वे, (उ) और जो (प्रियाः) परमात्मा में अनुराग रखने वाली हैं, वे (मदाय) आनन्द के लिये (समनूषत) परमात्मा का भली-भांति साक्षात्कार करती हैं (सोमासः) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (पवमानासः) जो सब को पवित्र करने वाले हैं, (इन्दवः) जो ज्ञानविज्ञानादि गुणों के प्रकाशक हैं, वे इन्द्रियों से साक्षात्कार किये हुए लोगों को संस्कृत करके (पथः कृण्वते) सन्मार्ग के यात्री बनाते हैं ॥८॥

भावार्थः—गावः शब्द के अर्थ यहां इन्द्रियवृत्तियों के हैं। किसी गौ, बैल आदि पशुविशेष के नहीं, क्योंकि "सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते" नि. २—१। इस प्रमाण से प्रकाशक रश्मियों का नाम यहाँ 'गावः' हैं ॥८॥

य ओजि॑ष्ठ॒स्तमा भ॑र॒ पव॑मान श्र॒वाय्य॑म् ।
यः पञ्च॑ चर्ष॒णीर॒भि र॒यिं येन॒ वना॑महै ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन्! (यः) जो यश (ओजिष्ठः) अत्यन्त ओज वाला है (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य है, (यः) जो यश (पञ्च, चर्षणीः) पांचों ज्ञानेन्द्रिय अथवा पांचों प्राणों को संस्कृत करता है, (येन) जिस परमात्मा के यश से (रयिम्) ऐश्वर्य्यं को (वनामहै) हम प्राप्त हों (तं, आभर) उसको दीजिये ॥९॥

भावार्थः—यहां परमात्मा के आनन्द को लाभ करके आनन्दित होने का वर्णन है ॥९॥

सोमाः॑ पवन्त॒ इन्द॑वो॒ऽस्मभ्यं॑ गातु॒वित्त॑माः ।
मि॒त्राः सु॑वा॒ना अ॑रे॒पसः॑ स्वा॒ध्यः॑ स्व॒र्विदः॑ ॥१०॥

पदार्थः—(सोमाः) परमात्मा के ज्ञानादिगुण (इन्दवः) प्रकाशक (गातुवित्तमाः) जो शब्दादि गुणों में श्रेष्ठ हैं (मित्राः) सबके मित्र भूत हैं (सुवानाः) जो स्वसत्ता से सर्वत्र विद्यमान हैं, (अरेपसः) जो अविद्यादि दोषों से रहित हैं, जो (स्वाध्यः) धारण करने योग्य हैं, (स्वर्विदः) जो सर्वज्ञान के हेतु होने के कारण सर्वज्ञ कहे जा सकते हैं, वे (अस्मभ्यम्) हमको (पवन्ते) पवित्रता प्रदान करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा के गुणों के वर्णन करने से ज्ञान और पवित्रता बढ़ती है ॥१०॥

सु॒ष्वा॒णासो॒ व्यद्रि॑भि॒श्चिता॑ना॒ गोरधि॑ त्व॒चि ।
इष॑म॒स्मभ्य॑म॒भितः॒ सम॑स्वरन्वसु॒विदः॑ ॥११॥

पदार्थः—(गोरधित्वचि) अन्तःकरण में (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (चितानाः) ध्यान किये हुए (वि) विशेषरूप से (सुष्वाणासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए उस परमात्मा के गुण (अस्मभ्यम्) हम को (अभितः) सर्वप्रकार से (इषम्) ऐश्वर्य्यं (समस्वरन्) देते हैं, और वे, परमात्मा के ज्ञानादि गुण (वसुविदः) सब प्रकार के ज्ञानों के उत्पादक हैं ॥११॥

भावार्थः—यहां इन्द्रियों का अधिकरण जो मन है, उसका नाम अधित्वक् है। इस अभिप्राय से अधित्वचि के माने अन्तःकरण के हो सकते हैं। कई एक लोग इस के यह अर्थ करते हैं कि सोम कूटने वाले अनडुह् चर्म का नाम अधित्वक् है अर्थात् गोचर्म में सोमकूटने का यहां वर्णन है। यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि ईश्वर के गुण वर्णन में गोचर्म का क्या काम! ॥११॥

ए॒ते पू॒ता वि॑प॒श्चितः॒ सोमा॑सो॒ दध्या॑शिरः ।
सूर्या॑सो॒ न द॑र्श॒तासो॑ जिग॒त्नवो॑ ध्रु॒वा घृ॒ते ॥१२॥

पदार्थः—(विपश्चितः) विज्ञान के बढ़ाने वाले (एते) पूर्वोक्त, परमात्मा के विज्ञानादि गुण (पूताः) जो पवित्र हैं, (सोमासः) जो शात्यादिभावों के देनें वाले हैं, (दध्याशिरः) धृत्यादि सद्गुणों के धारण करने वाले हैं (सूर्यासः) सूर्य के (न) समान (दर्शतासः) सब मार्गों के प्रकाशक हैं (जिगत्नवः) गतिशील (घृते) नम्रान्तःकरणों में (ध्रुवाः) स्थिर होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग साधनसम्पन्न होकर अपने शील को बनाते हैं उनके अन्तःकरणरूप दर्पण में परमात्मा के सद्गुण अवश्यमेव प्रतिबिम्बित होते हैं ॥१२॥

प्र सु॑न्वा॒नस्यान्ध॑सो॒ मर्तो॒ न वृ॑त॒ तद्वचः॑ ।
अप॒ श्वान॑मरा॒धसं॑ ह॒ता म॒खं न भृग॑वः ॥१३॥

पदार्थः—(**प्रसुन्वानस्य**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**अन्धसः**) जो उपासनीय है, (**तद्वचः**) उसकी वाणी को (**मर्तः**) सन्मार्ग में विघ्न करने वाला पुरुष (**न वृत**) न ग्रहण करे, और (**श्वानम्**) उस विघ्नकारी को (**राधसम्**) जो नास्तिकता के भाव से सत्कर्मों से रहित है, उसको (**न**) जैसे (**भृगवः**) परिपक्व बुद्धिवाले (**मखम्**) हिंसारूपी यज्ञ का हनन करते हैं इस प्रकार (**अपहत**) आप लोग इन विघ्नकारियों का हनन करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में हिंसा के दृष्टान्त से नास्तिकों की सङ्गति के त्याग का वर्णन है ॥१३॥

आ जा॒मिरत्के॑ अव्यत भु॒जे न पु॒त्र ओण्योः॑ ।
सर॑ञ्जा॒रो न योष॑णां व॒रो न योनि॑मा॒सद॑म् ॥१४॥

पदार्थः—(**न**) जैसे (**पुत्रः**) पुत्र (**ओण्योः**) माता पिता की (**भुजे**) भुजाओं की (**अव्यत**) रक्षा करता है इसी प्रकार (**जामिरत्के**) अपने उपासकों की रक्षा करने वाले परमात्मा के आधार पर आप लोग विराजमान हों। और (**न**) जैसे कि (**जारः**) “जारयतीति जारोग्निः” कफादि दोषों का हनन करने वाला अग्नि (**योषणाम्**) स्त्रियों को (**सरत्**) प्राप्त होता है और (**न**) जैसे कि, (**वरः**) वर (**योनिम्**) वेदी को (**आसदम्**) प्राप्त होता है, इसी प्रकार सर्वगुणाधार परमात्मा को आप लोग प्राप्त हों ॥१४॥

भावार्थः—यहां कई एक दृष्टान्तों से परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है। कई एक लोग यहां “जारो न योषणां” के अर्थ स्त्रैण पुरुष अर्थात् स्त्री-लम्पट पुरुष के करते हैं। यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि वेद सदाचार का रास्ता बतलाता है, दुराचार का नहीं ॥१४॥

स वी॒रो द॑क्ष॒साध॑नो॒ वि यस्त॒स्तम्भ॒ रोद॑सी ।
हरिः॑ प॒वित्रे॑ अव्यत वे॒धा न योनि॑मा॒सद॑म् ॥१५॥

पदार्थः—(**सः**)पूर्वोक्त परमात्मा (**वीरः**) सर्वगुणसम्पन्न है (**दक्षसाधनः**) सब चातुर्य्यादि बलों का देने वाला है, (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक को (**यः**) जो (**तस्तम्भ**) सहारा दिये खड़ा है, वह (**हरिः**) सब दुर्गुणों को हनन करने वाला परमात्मा (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होकर (**अव्यत**) रक्षा करता है(**न**) जैसे कि, (**वेधाः**) यजमान (**योनिम्**) अपने यज्ञमण्डप में (**आसदम्**) स्थिर होता है। इसी प्रकार परमात्मा पवित्र अन्तःकरणों में ज्ञानगति से प्रविष्ट होकर उनको प्रकाश करता है ॥१५॥

भावार्थः—जो लोग अपने अन्तःकरणों को पवित्र बनाते हैं अर्थात् मन बुद्धि आदिकों को शुद्ध करते हैं, उनके अन्तःकरणों में परमात्मा का आविर्भाव होता है ॥१५॥

अ॒व्यो वारे॑भिः पवते॒ सोमो॒ गव्ये॒ अधि॑ त्व॒चि ।
कनि॑क्रद॒द्वृषा॒ हरि॒रिन्द्र॑स्या॒भ्ये॑ति निष्कृ॒तम् ॥१६॥

पदार्थः—(**हरिः**) उक्त परमात्मा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**निष्कृतम्**) सद्गुणसम्पन्न अन्तःकरण में (**अभ्येति**) प्राप्त होता है, (**वृषा**) वह सब कामनाओं की वर्षा करने वाला (**गव्ये अधित्वचि**) इन्द्रियों के अधिष्ठाता मन में स्थिर होकर (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**पवते**) रक्षा करता है, (**सोमः**) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (**अव्यः**) जो सर्वरक्षक है वह (**वारेभिः**) पवित्र सद्भावों से सन्मार्गानुयायियों की रक्षा करता है ॥१६॥

भावार्थः—यहां कई एक लोग ‘गव्ये अधित्वचि’ के अर्थ गोचर्म के करते हैं। ऐसा करना वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है, न केवल वेदाशय से विरुद्ध है किन्तु प्रसिद्धि से भी विरुद्ध है। क्योंकि अधित्वचि के अर्थ गोचर्म पर गर्जना किये गये हैं और गोचर्म पर गर्जना अनुभव से सर्वथा विरुद्ध है। इस अधित्वचि के अर्थ मनरूप अधिष्ठाता के ही ठीक हैं, किसी अन्य वस्तु के नहीं ॥१६॥

नवम मण्डल में यह एकसोएकवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ अष्टर्चस्य द्व्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—८ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ८ निचृदुष्णिक् । ५—७ उष्णिक् ॥ ऋषभः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुणों द्वारा उसकी उपासना का कथन करते हैं ॥

(अब प्रकृति और जीवरूप से द्वैत का वर्णन करते हैं ॥)

क्रा॒णा शिशु॑र्म॒हीनां॑ हि॒न्वन्नृ॒तस्य॒ दीधि॑तिम् ।
विश्वा॒ परि॑ प्रि॒या भु॑व॒दध॑ द्वि॒ता ॥१॥

पदार्थः—(**शिशुः**) अति प्रशंसनीय परमात्मा (**महीनाम्**) बड़े से बड़े पृथिव्यादि लोकों को (**क्राणा**) रचता हुआ (**ऋतस्य**) सच्चाई के (**दीधितिम्**) प्रकाश को (**हिन्वन्**) प्रेरित करता है और वह (**विश्वा, परि**) सब लोगों के ऊपर (**प्रिया**) प्रिय-

भाव (भुवत्) प्रकट करता है (अध) और (द्विता) द्वैतभाव से प्रकृति और जीव द्वारा इस संसार की रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में द्वैतवाद का वर्णन स्पष्ट रीति से किया गया है ॥१॥

उपं त्रितस्यं पाष्योऽरभक्त यद्गुहा पदम् ।
यज्ञस्यं सप्त धामंभिरधं प्रियम् ॥२॥

पदार्थः—(**पाष्योः**) प्रकृति और पुरुषरूपी जो दृढ़ अधिकरण हैं उन के आधार पर (**त्रितस्य**) तीनों गुणों के (**पदं**) पद को (**उपाभक्त**) सेवन किया (**यत्**) जो पद (**गुहा**) प्रकृतिरूपी गुहा में (**यज्ञस्य**) परमात्मा के सम्बन्ध से (**सप्तधामभिः**) महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों द्वारा (**अध, प्रियं**) अत्यन्त प्रियता को धारण करता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में महत्तत्त्वादि कार्य्यकारणों द्वारा सृष्टि का निरूपण किया गया है ॥२॥

त्रीणिं त्रितस्य धारंया पृष्ठेष्वेरंया रयिम् ।
मिमींते अस्य योजंना वि सुक्रतुंः ॥३॥

पदार्थः—(**त्रितस्य धारया**) तीनों गुणों की धारणारूप शक्ति से (**पृष्ठेषु**) इस ब्रह्माण्ड में (**त्रीणि**) तीन प्रकार के भूतों को (**ईरय**) प्रेरणा करता हुआ परमात्मा (**रयिं**) ऐश्वर्य्य को (**मिमीते**) उत्पन्न करता है (**सुक्रतुः**) शोभनप्रज्ञावाला परमात्मा (**अस्य, योजना**) इस ब्रह्माण्ड की योजना करता है ॥३॥

भावार्थः—प्रकृति के सत्व, रज, तम तीनों गुणों द्वारा परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है ॥३॥

जज्ञानं सप्त मातरों वेधामंशासत श्रिये
अयं ध्रुवो रंयीणां चिकेंत यत् ॥४॥

पदार्थः—(**सप्त, मातरः**) महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियां (**जज्ञानं**) आविर्भाव को प्राप्त (**वेधां**) जो परमात्मा है (**श्रिये**)) ऐश्वर्य्य के लिये उसको (**अशासत**) आश्रयण करती हैं (**अयं**) उक्त परमात्मा (**ध्रुवः**) अचल रूप से विराजमान है, और (**यत्**) जो (**रयीणां**) सब लोकलोकान्तरों के ऐश्वर्य का (**चिकेत**) ज्ञाता है ॥४॥

भावार्थः—इसमें महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों का वर्णन है ॥४॥

अस्य व्रते सजोषंसो विश्वें देवासों अद्रुहंः ।
स्पार्हा भंवन्ति रन्तंयो जुषन्त यत् ॥५॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस परमात्मा के (**व्रते**) नियम में (**सजोषसः**) संगत हुए (**विश्वे, देवासः**) सम्पूर्ण विद्वान् (**अद्रुहः**) द्रोहरहित होकर उक्त परमात्मा की उपासना करें (**यत्**) यदि (**रंतयः**) रमणशील उक्त विद्वान् (**जुषंत**) उक्त परमात्मा की प्रीति से भक्ति करते हैं (**स्पार्हाः**) तो संसार के अत्यन्त प्रिय करने वाले (**भवन्ति**) होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो लोग राग द्वेष रहित होकर परमात्मा की भक्ति करते हैं वे अपने सामर्थ्य से संसार का बहुत उपकार कर सकते हैं ॥५॥

यमी गर्भमृतावृधों दृशे चारुमजींजनन् ।
कविं मंहिंष्ठमध्वरे पुंरुस्पृहंम् ॥६॥

पदार्थः—(**ऋतवृधः**) यज्ञकर्म्म में कुशल विद्वान् (**यमी**) जिस उक्त परमात्मा के (**गर्भं**) ज्ञानरूप गर्भ को धारण करते हैं (**दृशे**) संसार के प्रकाश के लिये उस से (**चारुं**) सुन्दर सन्तान को (**अजीजनन्**) उत्पन्न करते हैं, वह परमात्मा (**कविं**) सर्वज्ञ (**मंहिष्ठं**) अत्यन्त पूजनीय, और (**पुरुस्पृहं**) सबका उपास्य देव है (**अध्वरे**) ज्ञानयज्ञों में उक्त परमात्मा उपासनीय है ॥६॥

भावार्थः—जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक परमात्मा है उसकी उपासना ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ इत्यादि अनन्त प्रकार के यज्ञों द्वारा की जाती है ॥६॥

समीचीने अभी त्मनां यह्वी ऋतस्यं मातरां ।
तन्वाना यज्ञमांनुषग्यदंञ्जते ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**ऋतस्य**) इस संसार के (**मातरा**) निर्माण करने वाले द्युलोक और पृथिवी लोक को रचता है वह द्युलोक और पृथिवी लोक (**समीचीने**) सुन्दर हैं (**यह्वी**) बड़े हैं (**तन्वानाः**) इस प्रकृतिरूपी तन्तुजाल के विस्तृत करनेवाले हैं और (**त्मना**) उस परमात्मा के आत्मभूत सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं (**यत्**) जब योगी लोग (**यज्ञं**) इस ज्ञान यज्ञ को (**आनुषक्**) आनुषङ्गिक रूप से सेवन करते हैं अर्थात् साधन रूप से आश्रयण करते हैं तो (**अभ्यंजते**) उक्त परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो लोग इस कार्य्य संसार और इसके कारणभूत ब्रह्म के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे शक्तिसम्पन्न होकर इस संसार की यात्रा करते हैं ॥७॥

क्रत्वां शुक्रेभिंरक्षभिंर्ऋणोरपं व्रजं दिवः ।
हिन्वन्नृतस्य दीधिंतिं प्राध्वरे ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**व्रजं**) [व्रजतीति व्रजः] अन्धकार, जो ज्ञानरूपप्रकाश से दूर भाग जाय, उसको (**क्रत्वा**)कर्म्मों के द्वारा (**शुक्रेभिः, अक्षभिः**) बलवान् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा (**दिवः**) द्युलोक से (**अपर्णोः**) दूर करें और (**प्राध्वरे**) इस ज्ञानयज्ञ में (**ऋतस्य दीधितिं**) सच्चाई के प्रकाश को (**हिन्वन्**) प्रेरणा करते हुए आप हमारे अज्ञान को दूर करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अज्ञान की निवृत्ति के साधनों का वर्णन है अर्थात् जो पुरुष ज्ञानादि द्वारा जप तप आदि संयमसम्पन्न होकर तेजस्वी बनते हैं वे अज्ञान को निवृत्त करके प्रकाशस्वरूप ब्रह्म में विराजमान होते हैं ॥८॥

नवम मण्डल में यह १०२वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्र्यधिकशततमस्य सूक्तस्य १—६ द्वित आप्त्यः ऋषिः ॥ देवता-पवमानः सोमः ॥ छन्दः—१, ३ उष्णिक् । २, ५ निचृदुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ६ विराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

प्र पुंनानायं वेधसे सोमांय वच उद्यंतम् ।
भृतिं न भंरा मतिभिर्जुजोंषते ॥१॥

पदार्थः—(**सोमाय**) सर्वोत्पादक (**वेधसे**) जो सबका विधाता परमात्मा है, (**पुनानाय**) सबको पवित्र करने वाला है, (**जुजोषते**) जो शुभकर्मों में युक्त करनेवाला है, उसके लिये (**मतिभिः**) हमारी भक्तिरूपी (**वचः**) वाणी-स्तुतियों के द्वारा (**उद्यतम्**) उद्यत हों, और उक्त परमात्मा (**भृतिम्**) भृत्य के (**न**) समान, हमें (**भर**) ऐश्वर्य से परिपूर्ण करे ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्य्यों से भरपूर करता है, वा यों कहो कि जिस प्रकार स्वामी भृत्य को भृति देकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार परमात्मा अपने उपासकों का भरण-पोषण करके उन्हें उन्नतिशील बनाता है ॥१॥

परि वारांण्यव्यया गोभिरञ्जानो अंर्षति ।
त्री षधस्थां पुनानः कृणुते हरिंः ॥२॥

पदार्थः—(**गोभिरञ्जानः**) अन्तःकरण की वृत्तियों द्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुआ परमात्मा (**अव्यया**) अपनी रक्षायुक्त शक्ति से (**वाराणि**) वरणयोग्य अर्थात् पात्रता को प्राप्त अन्तःकरणों को (**परि, अर्षति**) प्राप्त होता है, (**त्री, सधस्था**) कारण, सूक्ष्म और स्थूल तीनों शरीरों को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ(**हरिः**) मलविक्षेपादि दोषों को हरण करने वाला परमात्मा (**कृणुते**) वह अन्तःकरण के उपासक को पवित्र करता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग अन्तःकरण के मलविक्षेपादि दोषों को दूर करते हैं, वे लोग परमात्मज्ञान के अधिकारी बन कर परमात्मज्ञान का लाभ करते हैं ॥३॥

परि कोशं मधुश्चुतंमव्यये वारें अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषींणां सप्त नूषत ॥३॥

पदार्थः—(**मधुश्चुतम्**)जो प्रेमरूपी माधुर्य्य का स्रोत (**कोशम्**) अन्तःकरण है (**अव्यये**) रक्षायुक्त (**वारे**) वरणीय जो स्थिर है, उसमें (**परि, अर्षति**) परमात्मा प्राप्त होता है, और (**वाणीः, अभि**) भक्ति को लक्ष्य में रखकर (**ऋषीणाम्, सप्त**) जो ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्र हैं, उनको (**नूषत**) विभूषित करता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपासक की ज्ञानेन्द्रियों को निर्मल करके उनमें शुद्ध ज्ञान प्रकाशित करता है ॥३॥

परिं णेता मंतीनां विश्वदेंवो अदांभ्यः ।
सोमंः पुनानश्चम्वोंर्विशद्धरिंः ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वदेवः**) जो सम्पूर्ण विश्व का प्रकाशक परमात्मा है, (**अदाभ्यः**) जो किसी से तिरस्कृत नहीं हो सकता, किन्तु सर्वोपरि होकर विराजमान है, (**हरिः**) परमात्मा (**चम्वोः**) जीव और प्रकृतिरूपी दोनों प्रकृतियों में (**परिविशत्**) प्रवेश करता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा शुभ बुद्धियों का प्रदान करनेवाला है ॥४॥

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् ।
पुनाना वाघद्वाघाद्भिरमर्त्यः ।।५।।

पदार्थः—(**इन्द्रेण**) कर्मयोगी के साथ (**सरथम्**) समान भाव को प्राप्त हो कर (**पुनानाः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**स्वधाः**) स्वधा से सृष्टि करता हुआ (**दैवीरनु**) दैवी सम्पत्ति के अनुकूल (**परियाहि**) गमन करता है । और (**वाघद्भिः**) वैदिक लोगों के साथ (**वाघत्**) सशब्द (**अमर्त्यः**) अमरणधर्मा परमात्मा अपने प्रकाश्यप्रकाशकभावरूपी योग से वैदिक लोगों को पवित्र करता है ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में दैवी सम्पत्ति के गुणों का वर्णन किया है ।।५।।

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
व्यानशिः पवमानो वि धावति ।।६।।

पदार्थः—(**देवः**) उक्त दिव्यस्वरूप परमात्मा (**देवेभ्यः, सुतः**) जो विद्वानों के लिये संस्कृत है, और (**वाजयुः**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (**व्यानशिः**) सर्वव्यापक (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला है वह परमात्मा (**सप्तिः**) विद्युत् के (**न**) समान (**परिधावति**) सर्वत्र विराजमान हो रहा है ।।६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता को विद्युत् के दृष्टान्त से स्पष्ट किया है ।।६।।

नवम मण्डल में यह १०३वां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ चतुरधिकशततमस्य षडृचस्य सूक्तस्य ऋषी—१—६ पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ ।। देवता—पवमानः सोमः ।। छन्दः—१, ३, ४ उष्णिक् । २, ५, ६ निचृदुष्णिक् ।। स्वरः—ऋषभः ।।

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ।।१।।

पदार्थः—(**सखायः**) हे उपासक लोगो ! आप (**आनिषीदत**) यज्ञवेदी पर आकर स्थिर हो (**पुनानाय**) जो सबको पवित्र करने वाला है, उसके लिये [प्रगायत] गायन करो (**श्रिये**) ऐश्वर्य के लिये (**शिशुम्**) "यः शंसनीयो भवति स शिशुः" जो प्रशंसा के योग्य है, उसको (**यज्ञैः**) ज्ञानयज्ञादि द्वारा (**परिभूषत**) अलंकृत करो ।।१।।

भावार्थः—उपासक लोग परमात्मा का ज्ञानयज्ञादि द्वारा आह्वान करके उसके ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करते हैं ।।१।।

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
देवाव्यं१मदमभि द्विशवसम् ।।२।।

पदार्थः—(**गयसाधनम्**) ज्ञान का साधन जो परमात्मा है, (**देवाव्यम्**) देवों का रक्षक (**मदम्**) जो आनन्दस्वरूप है (**द्विशवसम्**) जो बलिष्ठ है (**वत्सं, न**) जो सर्वाभिव्यक्त शक्ति के समान है (**ईम्**) इसको (**मातृभिः, संमृजत**) विद्वान् लोग बुद्धिवृत्ति द्वारा साक्षात्कार करते हैं ।।२।।

भावार्थः—परमात्मा दैवीसम्पत्तिवाले पुरुषों को अपनी दिव्य शक्तियों से विभूषित करता है और जो लोग अनाचारी आसुरी भावसम्पन्न हैं उनको परमात्मा ज्ञान की ज्योति से देवपुरुषों के समान लाभ नहीं होता । तात्पर्य्य यह है कि दिव्य पुरुषों में परमात्मा की ज्योति प्रतिबिम्बित होती है और तमरूप भावों से दूषित पुरुषों में नहीं ।।२।।

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ।।३।।

पदार्थः—(**दक्षसाधनम्**) सम्पूर्ण ज्ञानों का एकमात्र आधार जो परमात्मा है, उसकी उपासना (**शर्धाय**) बल के लिये (**वीतये**) तृप्ति के लिये (**पुनात**) आप लोग करें, (**यथा**) जिस प्रकार (**मित्राय**) उपदेशक के लिये और (**वरुणाय**) अध्यापक के लिये (**शन्तमः**) सुखों का विस्तार करने वाला वह परमात्मा हो, उस प्रकार आप उसके ज्ञान को लाभ करें ।।३।।

भावार्थः—जिस प्रकार ग्रह उपग्रहों का केन्द्र सूर्य है इसी प्रकार सब ज्ञानों का आधार परमात्मा है । जो लोग ज्ञानी तथा विज्ञानी बन कर देश का सुधार करना चाहते हैं, उनको चाहिये कि परमात्मा से ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करें ।।३।।

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ।।४।।

पदार्थः—(**वसुविदम्**) सम्पूर्ण प्रकार के ऐश्वर्य्यों को देने वाले आप को (**अस्मभ्यम्**) हमारी (**वाणीः**) स्तुतिरूप वाणी (**अभ्यनूषत**) वर्णन करे (**ते**) तुम्हारे

(वर्णम्) वर्णन को (गोभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (अभि वासयामसि) अपने चित्त में वसायें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्त गुणसम्पन्न है, उसके गुणों के वर्णन को जो पुरुष श्रवण मनन और निदिध्यासन द्वारा चित्त में वसाते हैं, वे पुरुष अवश्यमेव ज्ञानयोगी बनते हैं ॥४॥

स नों मदानां पत इन्दों देवप्संरा असि ।
सखेंव सख्ये गातुवित्तंमो भव ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मदानां, पते) आनन्दपते परमात्मन् ! (सः) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आप (देवप्सराः) दिव्यरूप (असि) हो (नः) हमारे लिये (सखेव, सख्ये) जैसे मित्र अपने मित्र के लिये (गातुवित्तमः) मार्ग दिखलाता है इसी प्रकार आप भी रास्ता दिखलाने वाले (भव) हों ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सबको सन्मार्ग दिखलाने वाला है और जिस प्रकार मित्र अपने मित्र का हितचिन्तन करता है इस प्रकार परमात्मा सब का हितचिन्तन करने वाला है ॥५॥

सनेंमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कंचिदत्रिणंम् ।
अपादेंवं द्वयुमंहों युयोधि नः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप इस यज्ञकर्त्ता के (सनेमि) सनातनकाल के मैत्रीभवन को (कृधि) धारण करें (कञ्चिदत्रिणम्) कोई भी हिंसक क्यों न हो उसको (रक्षसम्) जो राक्षस हो (अपादेवम्) जो दैवीसम्पत्ति के गुणों से रहित है (द्वयुम्) झूठ सच की माया से मिला हुआ है, उसको हमसे दूर करो और (नः) हमारे (अंहः) पापों को (युयोधि) दूर करो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा पापी पुरुषों का हनन करके निष्कपटता का प्रचार करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह एकसौ चारवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ षडृचस्य पञ्चाधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषी १—६ पर्वतनारदौ ॥ देवता–पवमानः सोमः ॥ छन्दः—१, २ उष्णिक् । ३, ४, ६ निचृदुष्णिक् । ५ विराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

तं वः सखायो मदांय पुनानमभि गायंत ।
शिशुं न यज्ञैः स्वंदयन्त गूर्तिभिंः ॥१॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासक लोगो ! (यज्ञैः स्वदयन्तः) जो कि आप लोग यज्ञ द्वारा परमात्मा का स्तवन करते हैं (गूर्तिभिः) स्तुतियों द्वारा (तम्) उस परमात्मा को (वः पुनानम्) जो आप सब का पवित्र करने वाला है (शिशुम्) प्रशंसनीय है, उसको आनन्द के लिये (अभिगायत) गायन करें ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के यश को गायन करते हैं वे अवश्यमेव परमात्मज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥१॥

सं वत्स इंव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अंज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिंष्कृतः ॥२॥

पदार्थः—(देवावीः) देवताओं का रक्षक (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (हिन्वानः) उपास्यमान (मतिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (समज्यते) उपासना किया जाता है, वह (मदः वत्सः, इव) परमानन्द के समान (मातृभिः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा (परिष्कृतः) परिष्कार को प्राप्त ध्यान विषय होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल करके उस परमात्मा का ध्यान करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यान का विषय होता है ॥२॥

अयं दक्षांय साधंनोऽयं शर्धाय वीतयें ।
अयं देवेभ्यो मधुंमत्तमः सुतः ॥३॥

पदार्थः—(अयम्) वह परमात्मा जो (दक्षाय, साधनः) चातुर्य का एक मात्र साधन है, (अयम्) वह (शर्धाय) बल के लिये (मधुमत्तमः) आनन्दमय है. (अयम्) वह (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सुतः) अभिव्यक्त है ॥३॥

भावार्थः—सब प्रकार की नीति का साधन एक मात्र परमात्मा है, जो विद्वान् नीतिनिपुण होना चाहते हैं वे भी एकमात्र परमात्मा की शरण लें ॥३॥

गोमंन्न इन्दो अश्वंवत्सुतः सुंदक्ष धन्व ।
शुचिं ते वर्णमधि गोषुं दीधरम् ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**सुदक्ष**) सर्वज्ञ (**सुतः**) आप सर्वत्र अभिव्यक्त हैं (**नः**) हमको (**गोमत्**) ज्ञानयुक्त (**अश्ववत्**) क्रियायुक्त ऐश्वर्य को (**धन्व**) प्राप्त करायें, ताकि (**ते**) तुम्हारे (**शुचिवर्णम्**) शुद्धस्वरूप को (**अधिगोषु**) मन बुद्धि आदिकों में (**वीधरम्**) धारण करें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के शुद्धस्वरूप का ध्यान करते हैं, परमात्मा उन के ज्ञान को अपनी ज्योति से अवश्यमेव देदीप्यमान करता है ॥४॥

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥५॥

पदार्थः—(**हरीणां, पते**) हे अखिल प्रकाशाधार ! (**इन्दो**) परमात्मन् ! आप (**देवप्सरस्तमः**) दिव्य से दिव्य तेजवाले हैं (**सः**) वह आप (**नः, नर्यः**) हम सब यज्ञकर्ताओं की (**रुचे, भव**) दीप्ति के लिये हों (**सख्ये, सखा, इव**) जिस प्रकार मित्र मित्र के लिये तेजोवर्द्धक होता है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य्य अन्य पदार्थों के तेज को देदीप्यमान करता है, इसी प्रकार परमात्मा भी ज्ञान-विज्ञानादि तेजों में लोगों को देदीप्यमान करता है ॥५॥

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**त्वम्**) आप (**सिनेमि**) हम पर ऐसी कृपा करें जिससे (**अदेवम्**) जो अदैवी सम्पत्ति का पुरुष है, (**अत्रिणम्**) जो हिंसक है, (**आ**) और जो (**द्वयुम्**) सत्यानृतरूपी मायायुक्त है, ऐसे (**कञ्चित् साह्वान्**) सब शत्रु जो कई एक हैं (**बाधः**) हम को पीड़ा देने वाले हैं, उनको (**अस्मत्**) हमसे (**परिजहि**) दूर करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा मायावी पुरुषों से अपने भक्तों की रक्षा अवश्यमेव करता है अर्थात् परमात्मा के सामने मायावी पुरुषों की माया और दम्भियों का दम्भ कदापि नहीं चलता ॥६॥

नवम मण्डल में यह एकसौ पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्वंशर्चस्य षडधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः १—३, १०—१४ अग्निश्चाक्षुषः । ४—६ चक्षुर्मानवः । ७—९ मनुराप्सवः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ८, १०, १४ निचृदुष्णिक् । २, ५—७, ११, १२ उष्णिक् । ९, १३ विराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थः—(**स्वर्विदः**) ज्ञानादिगुण (**इन्दवः**) जो प्रकाशस्वरूप हैं, (**जातासः**) जो सर्वत्र विद्यमान हैं, और जो (**सुताः**) संस्कृत अर्थात् उपासना द्वारा जो साक्षात्कार को प्राप्त हैं, (**हरयः**) जो सब दुःखों को हरण करने वाले हैं, (**इमे**) ये परमात्मा के सब गुण (**वृषणम्**) कर्म द्वारा उद्योग की वृष्टि करने वाले, (**इन्द्रम्**) कर्मयोगी को (**श्रुष्टी**) शीघ्र (**अच्छ, यन्तु**) प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष उद्योगी हैं अर्थात् कर्मयोगी हैं, उन को परमात्मा के गुणों की उपलब्धि अवश्यमेव होती हैं ॥१॥

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

पदार्थः—(**अयम्**) उक्त परमात्मा जो (**सानसिः**) सब का उपास्य देव है, (**सोमः**) सर्वोत्पादक है (**सुतः**) सर्वत्र विद्यमान है, वह गुणसम्पन्न परमात्मा (**यथाविदे**) यथार्थ ज्ञानी के लिये (**भराय**) जो स्वकर्तव्य से भरपूर है (**जैत्रस्य**) जो जयशील है (**इन्द्राय**) कर्मयोगी है उसको (**चेतति**) बोधन करता है, और अपने ज्ञानद्वारा (**पवते**) पवित्र करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा विजयी पुरुषों को, धर्म से जो विजय करने वाले हैं, उनको अवश्यमेव अपने ज्ञान से बोधन करता है अपने ऐश्वर्य्य से उन्हें सदैव उत्साहित बनाता है ॥२॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

पदार्थः—(**सानसिम्**) सर्वभजनीय परमात्मा को (**ग्राभम्**) जो ग्रहण करने के योग्य है, (**आ**) और (**वृषणम्**) वर्षणशील (**वज्रम्**) विद्युत् को (**संभरत्**) बनाता है, (**अस्य, इत्**) उसी की ही (**इन्द्रः**) कर्मयोगी (**अप्सुजित्**) जो सब कामनाओं का वशी-

भूत करने वाला है, **(मदेषु)** आनन्द की प्राप्ति **(गृम्णीत)** के लिये उपासना को करें ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी को चाहिये कि वह एकमात्र परमात्मा की ही अनन्य भक्ति करे, अन्य किसी की उपासना न करे ॥३॥

प्र ध॑न्वा सो॒म जागृ॑वि॒रिन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ।
द्यु॒मन्तं॒ शुष्म॒मा भ॑रा स्व॒र्विद॑म् ॥४॥

पदार्थः—**(सोम)** हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप **(जागृविः)** जागरणशील हैं **(इन्दो)** हे प्रकाशस्वरूप ! कर्मयोगी के लिये **(परिस्रव)** आप प्राप्त हों जो कर्मयोगी **(द्युमन्तं)** दीप्तिवाला **(स्वर्विदं)** विज्ञानी है उसको **(शुष्मं)** बल से **(आभर)** आप पूर्ण करें, आप **(प्रधन्व)** कर्मयोगी को प्रेरणा करें, ताकि वह संसार की भलाई करे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी शक्तियों से सदैव जागृत है और वह कर्मयोगी को सदैव जागृति देकर सावधान करता है ॥४॥

इन्द्रा॑य॒ वृष॑णं॒ मदं॒ पव॑स्व वि॒श्वद॑र्शतः ।
स॒हस्र॑यामा पथि॒कृद्वि॑चक्ष॒णः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप **(इन्द्राय)** कर्म्मयोगी के लिये **(वृषणं)** सब कामनाओं की वृष्टि करने वाले हैं **(मदं)** आनन्द **(पवस्व)** कर्म्मयोगी को दें । आप **(विश्वदर्शतः)** सर्वज्ञ हैं **(सहस्रयामा)** अनन्त शक्तियुक्त हैं और **(विचक्षणः)** चतुर हैं **(पथिकृत्)** अपने अनुयायियों के पथों को सुगम करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी के लिये सब प्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करता है, और उनको अपने ज्ञान से प्रकाशित करता है ॥५॥

अ॒स्मभ्यं॑ गा॒तुवि॑त्तमो दे॒वेभ्यो॒ मधु॑मत्तमः ।
स॒हस्रं॑ या॒हि॒ प॒थि॒भि॒ः कनि॑क्रदत् ॥६॥

पदार्थः—**(देवेभ्यः)** दैवीसम्पत्ति वाले पुरुषों के लिये **(मधुमत्तम)** आनन्दमय परमात्मन् **(अस्मभ्यं)** हमारे लिये **(गातुवित्तमः)** शुभमार्गों की प्राप्ति करने वाले हो और **(सहस्रं, पथिभिः)** अनन्तशक्तिप्रद मार्गों से **(कनिक्रदत्)** गर्जते हुए **(याहि)** आप ज्ञानरूपी गति का प्रदान करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्त मार्गों द्वारा अपने ज्ञान का प्रकाश करता है अर्थात् इस विविध रचना से उसके भक्त अनन्त प्रकार से उसके ज्ञान को उपलब्ध करते हैं । अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना द्वारा और इस विशाल नभोमण्डल में अपनी दिव्य ज्योतियों से परमात्मा सदैव गर्ज रहा है । परमात्मा का यही गर्जन है, निराकार परमात्मा और किसी भी प्रकार गर्जन नहीं करता ॥६॥

पव॑स्व दे॒ववी॑तय॒ इन्दो॒ धारा॑भि॒रोज॑सा ।
आ क॒लशं॒ मधु॑मान्त्सोम नः सदः ॥७॥

पदार्थः—**(इन्दो)** हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! **(देववीतये)** देवमार्ग की प्राप्ति के लिये **(धाराभिः)** आनन्द की वृष्टि से और **(ओजसः)** अपने विज्ञानयुक्त बल से **(पवस्व)** हमको पवित्र करें और **(सोम)** हे परमात्मन् ! **(मधुमान्)** आनन्दमय आप **(नः कलशं)** हमारे अन्तःकरण में **(असदः)** आकर विराजमान हों ॥७॥

भावार्थः—ब्रह्मानन्द जो सब आनन्दों से बढ़कर आनन्द है, जिसको उपनिषत्कारों ने "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" इत्यादि वाक्यों में वर्णन किया है, वह आनन्दरूप परमात्मा अपने भक्तों को अवश्यमेव अपने ब्रह्मानन्द से आनन्दित करता है ॥७॥

तव॑ द्र॒प्सा उ॑द॒प्रुत॒ इन्द्रं॒ मदा॑य वावृधुः ।
त्वां दे॒वासो॑ अ॒मृता॑य॒ कं प॑पुः ॥८॥

पदार्थः—**(तव, द्रप्साः)** तुम्हारी शीघ्रगति वाली शक्तियाँ जो **(उदप्रुतः)** जलों के प्रवाह के समान बहती हैं वे **(इन्द्रं)** कर्म्मयोगी के **(मदाय)** आनन्द के लिये **(ववृधुः)** बढ़ती हैं और **(त्वां)** तुम जो **(कं)** आनन्दस्वरूप हो इससे **(देवासः)** विद्वान् लोग **(अमृताय)** सदा के जीवन के लिये **(पपुः)** पीते हैं ॥८॥

भावार्थः—ब्रह्मानन्द वा ब्रह्मामृतरूपी रस जो सब रसों से अधिक स्वादु है, उसका पान ब्रह्मपरायण ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ही कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

आ नः॑ सुतास इन्दवः पु॒ना॒ना धा॑वता र॒यिम् ।
वृ॒ष्टिद्या॑वो रीत्यापः स्व॒र्विदः॑ ॥९॥

पदार्थः—**(इन्दवः)** हे प्रकाशस्वरूप ! **(सुतासः)** सर्वत्र विद्यमान परमात्मन् आप **(नः)** हमको **(पुनानाः)** पवित्र करते हुए **(रयिं)** धन को **(आधावत)** प्राप्त

करायें (वृष्टिं, द्यावः) द्युलोक को लक्ष्य रखकर वृष्टि करने वाले (रीत्यापः) सर्वव्यापक आप ! (स्वरविदः) आनन्दस्वरूप हैं, हमको भी आनन्दित करें ।।९।।

भावार्थः—जिस प्रकार बाह्य जगत् में परमात्मा की शक्तियों से अनन्त प्रकार की वृष्टि होती है इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषों के अन्तःकरण में परमात्मा की ज्ञानरूपी वृष्टि सदैव होती रहती है। इसको योगशास्त्र की परिभाषा में धर्ममेघ समाधि के नाम से कहा गया है अर्थात् धर्मरूपी मेघ से योगीजन सदैव सुसिञ्चित रहते हैं ।।९।।

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत ।।१०।।

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**ऊर्मिणा**) अपने आनन्द की लहरों से (**अव्यः**) सब की रक्षा करता हुआ (**वारं**) सद्गुणसम्पन्न पुरुष को (**विधावति**) प्राप्त होते हैं । जो परमात्मा (**अग्रे, वाचः**) सर्वोपरि आध्यात्मिक विद्यारूपवाणी को (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**पवमानः**) पवित्र बनाता है ।।१०।।

भावार्थः—जो पुरुष सद्गुणसम्पन्न हैं उनको परमात्मा अपने आनन्द में निमग्न करता है अर्थात् ब्रह्माम्बुधि में वे लोग अपने आपको सदैव शान्तिमय वारि से स्नान कराते हैं ।।१०।।

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ।।११।।

पदार्थः—(**धीभिः**) स्तुतियों द्वारा (**वाजिनं**) उस बलस्वरूप को (**हिन्वन्ति**) सर्वोपरिरूप से वर्णन करते हैं जो परमात्मा (**अत्यविं**) सब की रक्षा करने वाला है (**वने क्रीळंतं**) सर्वत्र विद्यमान है, (**त्रिपृष्ठं**) तीनों लोक, तीनों काल और तीनों सवन इत्यादि सब त्रिकों में विद्यमान है, उस को (**मतयः**) बुद्धिमान् लोग (**समस्वरन्**) स्तुति करते हैं ।।११।।

भावार्थः—परमात्मा कालातीत है अर्थात् भूत भविष्वत् और वर्तमान यह तीनों काल उसकी इयत्ता अर्थात् हद्द नहीं बांध सकते । तात्पर्य यह है कि काल की गति कार्य्य पदार्थों में है कारणों में नहीं, वा यों कहो कि नित्य पदार्थों में काल का व्यवहार नहीं होता किन्तु अनित्यों में होता है। इसी अभिप्राय से परमात्मा को कालातीतरूप से वर्णन किया है ।।११।।

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत ।।१२।।

पदार्थः—(**वाजयुः**) सबलोकों का प्राप्त परमात्मा (**मीळ्हे**)संग्राम में(**सप्तिर्न**) विद्युत् के समान (**कलशानभि**) पवित्र अन्तःकरणों में (**असर्जि**) साक्षात्कार किया जाता है, वह परमात्मा (**वाचं पुनानः**) वाणी को पवित्र करके (**जनयन्**) उत्तम भावों को उत्पन्न करता हुआ (**असिष्यदत्**) शुद्ध अन्तःकरणों को सिञ्चन करता हुआ स्थिर होता है ।।१२।।

भावार्थः– उपासकों को चाहिये कि वे उपासना से प्रथम अपने अन्तःकरणों को शुद्ध करें, क्योंकि वह उपास्य देव स्वच्छ अन्तःकरणों में ही अपनी अभिव्यक्ति को प्रकट करता है ।।१२।।

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ।।१३।।

पदार्थः—(**हर्यतः**) वह सर्वपूज्य परमात्मा (**हरिः**) जो सब अवगुणों के हरण करने वाला है, वह (**रंह्या**) ज्ञानरूपवेग से (**ह्वरांसि**) सब प्रकार की कुटिलताओं को (**अति**) अतिक्रमण करके (**पवते**) पवित्र करता है और (**स्तोतृभ्यः**) उपासकों को (**वीरवत् यशः**) वीरसन्तान और यश (**अभ्यर्षन्**) देकर (**पवते**) पवित्र करता है ।।१३।।

भावार्थः—परमात्मा परमात्मपरायण लोगों को सरल भाव प्रदान करके उनकी कुटिलताओं को दूर करता है और उनको वीर सन्तान देकर लोक-परलोक में तेजस्वी बनाता है ।।१३।।

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।।१४।।

पदार्थः—(**देवयुः**) वह परमात्मा विद्वानों को पवित्र करने वाला है (**मधोः धारा**)जिसकी आनन्दमय धारा (**असृक्षत**) आविर्भाव को प्राप्त की जाती है। (**अया**) उक्त धारा से हे परमात्मन् !(**पवस्व**)आप हमको पवित्र करें क्योंकि आप (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**पवित्रं**) पवित्र अन्तःकरण को (**रेभन्**) शब्दायमान होते हुए (**पर्येषि**) प्राप्त होते हैं ।।१४।।

भावार्थः—परमात्मा का शब्दायमान होना इसी तात्पर्य से है कि वह अपने वेदरूपी शब्दब्रह्म द्वारा शब्दायमान है अर्थात् वेद के सदुपदेश द्वारा लोगों को बोधित करता है ॥१४॥

नवम मण्डल में यह एकसौ छःवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तदशर्चस्य सप्ताधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः सप्तर्षयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ९, १४, १७, २१ विराड्बृहती । २, ५ भुरिग्बृहती । ८, १०, १२, १३, १९, २५ बृहती । २३ पादनिचृद्बृहती । ३, १६ पिपीलिकामध्या गायत्री । ७, ११,१८, २०, २४, २६, निचृत् पंक्तिः । १५, २२, पंक्तिः । स्वरः—१, २, ४—६, ८—१०, १२—१४, १७, १९, २१, २३, २५ मध्यमः । ३, १६ षड्जः ७, ११, १५, १८, २०, २२, २४, २६, पञ्चमः ॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥

पदार्थः—(**सोमम्**) सर्वोत्पादक परमात्मा को (**सुतम्**) जो सर्वत्र विद्यमान है (**अप्स्वन्तः**) जो प्रकृति के सूक्ष्म कारण में विराजमान है उसको (**अद्रिभिः**) चित्तवृत्तियों द्वारा यज्ञ का अधिष्ठाता (**आसुसाव**) भलीभाँति साक्षात्कार करता है (**यः, सोमः**) जो सोम (**उत्तमं हविः**) विद्वानों का सर्वोपरि पूजनीय है (**नर्यः**) सब नरों का हितकारी है तथा (**दधन्वान्**) सबको धारण करता हुआ जो सर्वत्र विद्यमान है उसको (**इतः**) यज्ञादि कर्मों के अनन्तर ज्ञानवृत्तिरूप वृष्टि से (**परिषिञ्चत**) परिसिञ्चन करें ॥१॥

भावार्थः—सोम जो सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति का कारण है और जो सौम्य स्वभावों का प्रदान करने वाला है, वह सोमरूप परमात्मा संसार में ओतप्रोत हो रहा है उसका अपनी ज्ञानरूपी वृत्तियों द्वारा साक्षात् करना ही वृत्तियों से सिञ्चन करना है ॥१॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**नूनम्**) निश्चय करके (**अविभिः**) अपनी रक्षाओं से (**पुनानः**) पवित्र करते हुए आप (**परिस्रव**) हमारे अन्तःकरण में आकर विराजमान हों, आप (**अदब्धः**) अखण्डनीय हैं (**सुरभिन्तरः**) अत्यन्त शोभनीय हैं, हम लोग (**उत्तरम्**) अत्यन्त प्रेमसे (**गोभिः**) ज्ञानरूप वृत्तियों द्वारा (**श्रीणन्तः**) तुम्हारा साक्षात्कार करते हुए (**अन्धसा**) मनोमय कोश से (**अप्सु**) कर्मों में (**सुते, चित्**) साक्षात्कार के लिये (**त्वा**) तुम्हारा (**मदामः**) स्तवन करते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, आपका स्वरूप अखण्डनीय है इसलिये आपका ध्यान व्यापकभाव से ही किया जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥२॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

पदार्थः—(**चक्षसे**) सब लोगों की ज्ञानवृद्धि के लिये (**परिसुवानः**) ज्ञानरूपी दीप्ति से प्रकट हुआ परमात्मा उपासकों के ध्यानगोचर होता है, वह परमात्मा (**देवमादनः**) विद्वानों को आनन्द देने वाला है (**क्रतुः**) यज्ञरूप है (**इन्दुः**) स्वयंप्रकाश है (**विचक्षणः**) विलक्षण प्रतिभा वाला अर्थात् सर्वज्ञ है ॥३॥

भावार्थः—जिस समय उस निराकार का ध्यान किया जाता है उस समय उसके सद्गुण उपासक के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके सत्चित् आनन्द इत्यादि रूप प्रतीत होने लगते हैं। यही परमात्मदेव का साक्षात्कार है ॥३॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**अपः, पुनानः**) हमारे कर्मों को पवित्र करते हुए आप (**वसानः**) हमारे अन्तःकरण में निवास करते हुए (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**अर्षसि**) हम को प्राप्त होते हैं (**रत्नधाः**) आप सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों को धारण करने वाले हैं (**ऋतस्य, योनिम्**) सत्य रूपी यज्ञ के स्थान को (**आसीदसि**) प्राप्त होते हैं (**देव**) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (**उत्सः**) आप सबका निवास स्थान और (**हिरण्ययः**) ज्योतिस्वरूप हैं, [अप इति कर्मनामसु पठितम्—निरु० अ० ३—खं—२] ॥४॥

भावार्थः—वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा अपनी दिव्य ज्योति से उपासक के अज्ञान को छिन्न-भिन्न करके उसमें विमल ज्ञान का प्रकाश करता है ॥४॥

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५॥

पदार्थः—(**दुहानः**) सबको परिपूर्ण करनेवाला (**ऊधः**) सबका अधिकरणस्वरूप परमात्मा (**मधु**) आनन्दस्वरूप (**प्रत्नम्**) प्राचीन (**सधस्थम्**) अन्तरिक्ष स्थान को (**प्रियम्**) जो प्रिय है, उसको (**आसदत्**) आश्रय करता है वह परमात्मा (**वाजी**) जो बलस्वरूप (**विचक्षणः**) विलक्षण बुद्धि वाला (**नृभिः, धूतः**) उपासकों से उपासना किया हुआ (**धरुणम्**) धारण वाले (**आपृच्छ्यम्**) जिज्ञासु=यजमान को (**अर्षति**) प्राप्त होता है ।।५।।

भावार्थः—जो पुरुष धारणा ध्यानादि साधनों से सम्पन्न हैं वे ही उस निराकार ज्योति के ज्ञान के पात्र बन सकते हैं अन्य नहीं ।।५।।

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ।।६।।

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पुनानः**) आप सबको पवित्र करते हुए (**जागृविः**) सदैव अपनी चेतन सत्ता से विराजमान हैं (**अव्यः**) सर्वरक्षक हैं (**वारे**) आपको वरण करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में (**परि, प्रियः**) आप अत्यन्त प्रिय हैं (**त्वम्**) आप (**विप्रः**) मेधावी हैं [विप्र इति मेधावि नामसु पठितम्] (**अङ्गिरस्तमः, अभवः**) सब प्राणों में प्रियतम अर्थात् प्राणों के भी प्राण हैं (**मध्वा**) अपने आनन्द से (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**मिमिक्ष**) सिञ्चन करें ।।६।।

भावार्थः—परमात्मा उपासकों के यज्ञों को अपनी ज्ञानमयी वृष्टि द्वारा सुसिञ्चित करके आनन्दित करते हैं ।।६।।

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ।।७।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**त्वम्**) आप (**सोमः**) सर्वोत्पादक हैं (**मीढ्वान्**) सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (**गातुवित्तमः**) सर्वोपरि मार्ग के दिखलाने वाले हैं, (**ऋषिः**) [ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोतीति ऋषिः] जो अपनी व्यापक शक्ति से सर्वत्र विद्यमान हो उसका नाम यहां ऋषि है (**विप्रः**) मेधावी (**विचक्षणः**) सर्वोपरि विज्ञानी है (**कविः**) सर्वज्ञ (**अभवः**) है (**देववीतमः**) सब विद्वानों के परमप्रिय तथा (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य का (**आरोहयः**) प्रादुर्भाव करते हैं, उक्त गुणशाली आप उपासकों के अन्तःकरणों को (**पवते**) पवित्र करते हैं ।।७।।

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि परमात्मा ज्ञानादि गुणों द्वारा उपासक के हृदय को दीप्तिमान बनाते हैं ।।७।।

सोमं उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ।।८।।

पदार्थः—आपको साक्षात्कार करनेवाले (**सोतृभिः**) उपासकों द्वारा (**अधि, सुवानः**) साक्षात्कार को प्राप्त हुए (**सोम**) सर्वोत्पादक आप (**अवीनाम्**) रक्षायुक्त वस्तुओं के (**ष्णुभिः**) रक्षायुक्त साधनों से (**अश्वया**) विद्युत् के (**इव**) समान (**हरिता**) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (**मन्द्रया, धारया**) आनन्दित करने वाली धारा से (**याति**) उपासकों के अन्तःकरण को प्राप्त होता है ।।८।।

भावार्थः—जिस प्रकार विद्युत् अपनी शक्तियों द्वारा नाना कार्य्यों का हेतु होती है इसी प्रकार परमात्मा अपने ज्ञान कर्मरूपी शक्ति द्वारा सब ब्रह्माण्डों की रचना का हेतु है ।।८।।

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ।।९।।

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**दुग्धाभिः**) ज्ञान को दोहन करने वाली चित्तवृत्तियों द्वारा (**अक्षाः**) साक्षात्कार को प्राप्त होता है (**गोमान्**) वह ज्ञानरूपी दीप्तिवाला परमात्मा (**गोभिः**) अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा (**अनूपे**) अनूपरूपी अन्तःकरण देश में (**अक्षाः**) प्रवाहित होता है (**न**) जैसे (**समुद्रम्**) समुद्र के अभिमुख (**संवरणानि**) समुद्र को जानेवाली नदियां (**अग्मन्**) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (**मन्दी**) आनन्दस्वरूप परमात्मा (**मदाय**) आनन्द के लिये (**तोशते**) अज्ञानरूपी आवरण को भंग करके साक्षात्कार किया जाता है ।।९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में अज्ञान को भंग करके परमात्मा का साक्षात्कार करना वर्णन किया गया है ।।९।।

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ।।१०।।

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**अद्रिभिः**) चित्तवृत्तियों द्वारा (**सुवानः**) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (**वाराणि**) वरणीयान्तःकरणों को (**आविशत्**) प्रवेश करते हैं (**हरिः**) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (**अव्यया**) जो सर्वरक्षक है वह (**तिरः**) अज्ञान को तिरस्कार करके (**वनेषु**) भक्तिभाजन अन्तःकरणों में विराजमान होता है, और उनको (**सदः**) स्थिति का स्थान बनाकर (**दधिषे**) ज्ञान का

प्रकाश करता है (न) जिस प्रकार (जनः) जनसमुदाय (चम्वोः) अधिष्ठानरूप (पुरि) पुरी को प्रवेश करता है, इसी प्रकार परमात्मज्ञान पुरीरूप अन्तःकरण में प्रवेश करता है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता वर्णन की गई है ॥१०॥

स मांमृजे तिरो अण्वानि मेष्यों मीह्ळे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवंमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११॥

पदार्थः—(**मेष्यः**) [मिषति इति मेष्यः] सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला (**वाजयुः**) ऐश्वर्य्ययुक्त भगवान् (**मीह्ळे**) युद्ध में (न) जिस प्रकार (**सप्तिः**) अश्व सत्तास्फूर्तिवाला होता है, इस प्रकार ओजस्वी (**अण्वानि**) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पञ्च तन्मात्राओं को (**तिरः**) तिरस्कार करके (**सः, ममृजे**) वह बुद्धिवृत्ति का विषय किया जाता है, और (**सोमः**) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (**विप्रेभिः**) जो मेधावी है, और (**ऋक्वभिः**) जो समय-समय पर यज्ञ करने वाले है, ऐसे (**मनीषिभिः**) मनस्वी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (**पवमानः**) सबको पवित्र करनेवाला वह परमात्मा (**अनुमाद्यः**) आनन्द प्रदान करता है ॥११॥

भावार्थः—जो सर्वोपरि ब्रह्मानन्द है जिसके आगे और सब आनन्द फीके हैं, वह एकमात्र परमात्मपरायण होने से ही उपलब्ध होता है, अन्यथा नहीं ॥११॥

प्र सोंम देववींतये सिन्धुर्न पिंप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयंसा मदिरो न जागृंविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**देववीतये**) विद्वानों की तृप्ति के लिये (**अर्णसा**) जल से (**सिन्धुः**) सिन्धु के (न) समान (**प्रपिप्ये**) वृद्धि को प्राप्त होते हैं (**अंशोः**) जीवात्मा के (**पयसा**) अभ्युदय से (**मदिरः**) आह्लादक आनन्द (न) जैसे (**मधुश्चुतम्, कोशम्**) आनन्द के कोश अन्तःकरण को (**अच्छ**) प्राप्त होता है इसी प्रकार (**जागृविः**) चैतन्यस्वरूप परमात्मा उपासकों की तृप्ति के लिये जीव के अन्तःकरण को आनन्द का स्रोत बनाता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका आनन्द यद्यपि सर्वत्र परिपूर्ण है, तथापि उसको चित्त की निर्मलता द्वारा उपलब्ध करने वाले उपासक प्राप्त कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥१२॥

आ हर्यतो अर्जुने अत्कें अव्यत प्रियः सूनुर्नमर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथारथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३॥

पदार्थः—(**अर्जुने**) कर्मों के अर्जन विषय में (**अत्के**) जो निरूपण किया जाता है वह (**हर्यतः**) सर्वप्रिय परमात्मा (**अव्यत**) हमारी रक्षा करता है (न) जैसे (**सूनुः**) सन्तति (**मर्ज्यः**) मार्जन करने योग्य होती है, इसी प्रकार (**प्रियः**) सर्वप्रिय परमात्मा सन्ततिस्थानीय हम लोगों की रक्षा करता है (**तमीम्**) उक्त परमात्मा की (**अपसः**) कर्म (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करते हैं (**यथा**) जिस प्रकार (**गभस्त्योः**) बल के समक्ष (**रथम्**) वेग को (**नदीषु**) संग्राम में प्रेरणा करते हैं, इसी प्रकार रथरूपी जीव को कर्मरूप संग्राम के अभिमुख परमात्मा प्रेरणा करता है ॥१३॥

भावार्थः—संचित कर्म, प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों प्रकार के कर्मों का ज्ञाता एकमात्र परमात्मा ही है ॥१३॥

अभि सोमांस आयवः पवंन्ते मद्यं मदंम् ।
समुद्रस्याधिं विष्टपिं मनीषिणों मत्सरासंः स्वर्विदंः ।१४॥

पदार्थः—(**आयवः**) ज्ञानशील विद्वान् (**सोमासः**) सर्वोत्पादक परमात्मा के (**अभि**) अभिमुख (**मद्यम्**) आह्लाद तथा (**मदम्**) आनन्द के लिये (**पवन्ते**) आत्मा को पवित्र करते हैं (**समुद्रस्य**) अन्तरिक्ष देश के (**अधिविष्टपि**) ऊपर (**मनीषिणः**) मननशील (**मत्सरासः**) ब्रह्मानन्द का पान करने वाले (**स्वर्विदं**) विज्ञानी लोग परमात्मा के रस को पान करते हैं ॥१४॥

भावार्थः—ज्ञानी और विज्ञानी लोग ही अपने जप तप आदि संयमों द्वारा परमात्मा के आनन्द को उपलब्ध करते हैं और वही अधिकारी होते हैं, अन्य नहीं ॥१४॥

तरंत्समुद्रं पवंमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५॥

पदार्थः—(**ऊर्मिणा**) अपने आनन्द की लहरों से (**पवमानः**) पवित्र करने वाला परमात्मा (**समुद्रम्**) अन्तरिक्षलोक को (**तरत्**) अवगाहन करता है (**राजा**) [राजते प्रकाशत इति राजा] सबको प्रकाश करने वाला (**देवः**) दिव्यस्वरूप (**बृहत्, ऋतम्**)सर्वोपरि सत्य को धारण करने वाला परमात्मा(**प्रार्षत्**) सर्वत्र गतिशील होता है और (**मित्रस्य**) अध्यापक तथा (**वरुणस्य**) उपदेशक के (**धर्मणा**) धर्मों द्वारा (**बृहत्,**

ऋतम्) सर्वोपरि सत्य को (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ अध्यापक और उपदेशकों द्वारा देश का कल्याण करता है ॥१५॥

भावार्थः—जिस देश में अध्यापक और उपदेशक अपनी शुभशिक्षा द्वारा लोगों को सुशिक्षित करते हैं, परमात्मा उस देश का अवश्यमेव कल्याण करता है ॥१५॥

नृभिर्येमा॒नो हर्य॒तो विचक्ष॒णो राजा दे॒वः समु॒द्रियः ॥१६॥

पदार्थः—(**समुद्रियः**) अन्तरिक्ष देशव्यापी (**देवः**) दिव्यस्वरूप (**राजा**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का नियन्ता (**विचक्षणः**) सर्वद्रष्टा (**हर्यतः**) सर्वप्रिय परमात्मा (**नृभिः**) सदुपदेशक मनुष्यों द्वारा (**येमानः**) उपदेश किया हुआ कर्मयोगी के लिये शुभफलों का प्रदाता होता है ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान से कर्मयोगी नानाविध फलों को लाभ करता है। यहां कर्मयोगी यह उपलक्षण मात्र है। वास्तव में ज्ञानयोगी, उद्योगी, तपस्वी और संयमी सब प्रकार के पुरुषों का यहां ग्रहण है ॥१६॥

इन्द्राय पवते॒ मदः॒ सोमो म॒रुत्वते सु॒तः।
स॒हस्रधारो॒ अत्यव्यमर्षति॒ तमीं मृजन्त्या॒यवः ॥१७॥

पदार्थः—(**मरुत्वते**) कर्मयोगी द्वारा (**सुतः**) साक्षात्कार किया हुआ (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**मदः**) आल्हादक बनकर (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है (**सहस्रधारः**) अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा (**अति, अव्यम्**) अत्यन्त रक्षा को (**अर्षति**) प्राप्त होता अर्थात् करता है (**तम्**) उक्त परमात्मा को (**आयवः**) कर्मयोगी लोग (**मृजन्ति**) साक्षात्कार करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—यहां भी कर्मयोगी उपलक्षणमात्र है। वास्तव में सब प्रकार के योगियों का यहां ग्रहण है कि वह परमात्मा का साक्षात्कार करके सुरक्षित रह कर आह्लादक तथा सुखकारी पदार्थों का उपभोग करते हैं ॥१७॥

पु॒ना॒नश्च॒मू ज॒नयन्म॒तिं क॒विः सोमो दे॒वेषु रण्यति।
अ॒पो वसा॒नः परि॒ गोभि॒रुत्त॒रः सीद॒न्वनेष्वव्यत ॥१८॥

पदार्थः—(**चमू**) जीव तथा प्रकृतिरूपी संसार की आधार दोनों शक्तियों को (**पुनानः**) पवित्र करता तथा (**मतिम्**) बुद्धि को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**कविः**) र्वज्ञ (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**देवेषु**) सूर्यादि दिव्यशक्तिवाले पदार्थों में

(**रण्यति**) सर्वव्यापक भाव से विराजमान होता है (**अपः, वसानः**) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (**गोभिः, उत्तरः**) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (**परिसीदन्**) अन्तःकरणों में विराजमान होता तथा (**वनेषु**) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों में **परि, अव्यत**) सब ओर से रक्षा करता है ॥१८॥

भावार्थः—द्युभ्वादि लोकलोकान्तर एकमात्र परमात्मा ही के आधार पर स्थित होने से योगीजन सर्वत्र सुरक्षित रहता है ॥१८॥

तवाहं सोम रारण स॒ख्य इन्दो दि॒वेदिवे।
पु॒रूणि बभ्रो॒ नि चरन्ति॒ मामव परि॒धीरति॒ ताँ इहि ॥१९॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप (**सोम**) सर्वोत्पादक परमात्मन्! (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**तव, सख्ये**) तुम्हारी मैत्री में (**अहं, रारण**) मैं सदैव तुम्हारा स्मरण करता हूं (**बभ्रो**) हे सर्वाधिकरण परमात्मन्! (**पुरूणि**) बहुत (**निचरन्ति**) नीच भावों से जो राक्षस (**माम्**) मुझको पीड़ा देते हैं (**तान्, परिधीन्**) उन राक्षसों को (**अतीहि**) अतिक्रमण करके मेरी (**अव**) रक्षा करो ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन्! वैदिक कर्मानुष्ठान में विघ्न करनेवाले मनुष्यों से हमारी रक्षा करें, "रक्षत्यस्मादिति रक्षः, रक्ष एव राक्षसः" यहाँ राक्षस शब्द से विघ्नकारी मनुष्यों का ग्रहण है, किसी जातिविशेष का नहीं ॥१९॥

उ॒ताहं नक्तमु॒त सोम ते॒ दिवा स॒ख्याय बभ्र॒ ऊधनि।
घृ॒णा तपन्त॒मति॒ सूर्यं प॒रः शकु॒ना इव पप्तिम ॥२०॥

पदार्थः—(**बभ्रो**) हे सर्वाधिकरण परमात्मन्! (**ते, सख्याय**) तुम्हारी मैत्री के लिये (**दिवा**) दिन (**उत**) अथवा (**नक्तम्**) रात्रि (**सोम**) हे सोम (**ते, ऊधनि**) तुम्हारे समीप (**घृणा, तपन्तम्**) जो तुम अपनी दीप्ति से देदीप्यमान हो (**अति, सूर्यम्**) अपने प्रकाश से सूर्य को भी अतिक्रमण करनेवाले हो, तथा (**परः**) सर्वोपरि हो, उक्त गुणसम्पन्न आपको (**शकुना, इव**) पक्षी के समान (**पप्तिम**) प्राप्त होने के लिये गतिशील बनूं ॥२०॥

भावार्थः—बिभवतीति बभ्रुः=जो सबको धारण करने वाला परमात्मा है, उसी की उपासना करनी योग्य है ॥२०॥

मृ॒ज्यमानः सुहस्त्य समु॒द्रे वाचमिन्वसि।
र॒यिं पि॒शङ्गं बहु॒लं पुरु॒स्पृहं॒ पवमाना॒भ्यर्षसि ॥२१॥

पदार्थः—(**सुहस्त्य**) हे सर्वसामर्थ्यों को हस्तगत करने वाले परमात्मन् ! आप (**समुद्रे**) अन्तरिक्ष में (**वाचम्**) वाणी की (**इन्वसि**) प्रेरणा करते हैं (**मृज्यमानः**) उपासना किये हुए आप (**बहुलम्**) बहुत सा (**पिशङ्गम्**) सुवर्णरूपी (**रयिम्**) धन (**पुरुस्पृहम्**) जो सबको प्रिय है वह (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (**अभ्यर्षसि**) आप देते हैं ।।२१।।

भावार्थः—परमात्मा की उपासना करने से सब प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं, इसलिये ऐश्वर्य्य की चाहना वाले पुरुष को उसकी उपासना करनी चाहिये ।।२१।।

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमाननिष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ।।२२।।

पदार्थः—(**मृजानः**) आप सबको शुद्ध करने वाले हैं (**अव्यये, वारे**) रक्षायुक्त वरणीय पुरुष को (**पवमानः**) पवित्र करने वाले (**वृषा**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाले आप (**वने**) सब ब्रह्माण्डों में (**अव, चक्रदः**) शब्दायमान हो रहे हैं (**सोम**) हे सर्वोत्पादक (**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (**देवानाम्**) विद्वानों के (**निष्कृतम्**) संस्कृत अन्तःकरण को (**अर्षसि**) प्राप्त होते हैं, आप कैसे हैं (**गोभिः, अञ्जानः**) इन्द्रियों द्वारा ज्ञानरूपी वृत्तियों से साक्षात्कार किये जाते हैं ।।२२।।

भावार्थः—अभ्युदय और निःश्रेयस का हेतु एकमात्र परमात्मा ही है, इसलिये उसी की उपासना करनी चाहिये ।।२२।।

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोममत्सरः ।।२३।।

पदार्थः—(**विश्वानि, काव्या**) सर्वज्ञता के सम्पूर्ण भावों को (**अभि**) लक्ष्य रखकर (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें, (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये आप (**मत्सरः**) अत्यन्त आनन्दप्रद हैं, और (**त्वम्**) तुमने (**समुद्रम्**) अन्तरिक्षरूपी कलश को (**प्रथमः**) सबसे प्रथम (**विधारयः**) धारण किया है, आप (**वाजसातये**) ऐश्वर्य धारण करने के लिये (**पवस्व**) हमको पवित्र बनायें ।।२३।।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! इस नभोमण्डल अर्थात् कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को एकमात्र आपने ही धारण किया है, इसलिये आप कृपा करके हमारे भावों को पवित्र बनायें, जिससे हम आपकी उपासना में प्रवृत्त रहें ।।२३।।

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षणशुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ।।२४।।

पदार्थः—(**पार्थिवम्, रजः**) पृथिवी के परमाणु (**च**) और (**दिव्या**) द्युलोकस्थ अन्य भूतों के परमाणुओं को (**सः, तु**) वह आप (**परि, पवस्व**) भले प्रकार पवित्र करें (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**धर्मभिः**) तुम्हारे गुणों द्वारा (**त्वाम्**) तुम्हारा (**विप्रासः**) मेधावी लोग (**मतिभिः**) अपनी बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं (**विचक्षण**) हे सर्वज्ञ ! (**शुभ्रम्**) सर्वोपरि शुद्धस्वरूप आपको (**धीतिभिः**) कर्मयोग की शक्तियों द्वारा कर्मयोगी लोग तुम्हारी (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करते हैं ।।२४।।

भावार्थः—इस ब्रह्माण्ड के परमाणुरूप सूक्ष्म कारण को एकमात्र परमात्मा ही धारण करता तथा पवित्र करता है, इसलिये हे भगवन् ! हम में भी वह शक्ति प्रदान करें कि हम कर्मयोगी बनकर ऐश्वर्यशाली हों।।२४।।

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रियाहयां मेधामभि प्रयांसि च ।।२५।।

पदार्थः—(**धारया**) अपनी कृपामयी वृष्टि से (**पवित्रम्**) पवित्र अन्तःकरण को (**अभि**) लक्ष्य रखकर (**अति, असृक्षत**) तुम्हारा साक्षात्कार किया जाता है (**पवमाना.**) तुम्हारे पवित्र स्वभाव (**मरुत्वन्तः**) जो विद्वानों द्वारा साक्षात्कार किये गये हैं (**मत्सराः**) आनन्ददायक हैं (**इन्द्रियाः**) कर्मयोगियों के हितकर हैं (**हयाः**) गतिशील हैं (**च**) और (**मेधाम्**) बुद्धि तथा (**प्रयांसि**) ऐश्वर्य्यों को देने वाले जो आपके स्वभाव हैं, उनसे आप हमको पवित्र करें ।।२५।।

भावार्थः—परमात्मा के अपहतपाप्मादि स्वभाव उपासना द्वारा मनुष्य को शुद्ध करते हैं, इसलिये मनुष्य को उसकी उपासना में सदा रत रहना चाहिये ।।२५।।

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ।।२६।।

पदार्थः—(**सोतृभिः**) कर्मयोगियों से (**हियानः**) प्रेरणा किया हुआ (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**कोशम्**) उनके अन्तःकरण को (**पर्यर्षति**) प्राप्त होता है (**अपः, वसानः**) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (**ज्योतिः**) सूर्यादि ज्योतियों को (**जनयन्**) उत्पन्न करके (**गाः**) पृथिव्यादि लोकों को (**अवीवशत्**) देदीप्यमान करता हुआ और

(**निर्णिजम्**) अपने स्वरूप को (**कृण्वानः**) स्पष्ट करते हुए के (**न**) समान (**मन्वनाः**) अभिव्यक्त करता है ॥२६॥

भावार्थः—सूर्य चन्द्रादि नाना ज्योतियों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा सब कर्मों का अध्यक्ष है, वह अपनी कृपा से हमारे अन्तःकरण को प्राप्त हो ॥२६॥

नवम मंडल में यह एकसौ सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षोडशर्चस्य अष्टोत्तरशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१, २ **गौरिवीतिः** । ३, १४—१६ **शक्तिः** । ४, ५ उरुः । ६. ७ **ऋजिष्वाः** । ८, ९ ऊर्द्धसद्मा । १०, ११ **कृतयशाः** १२, १३ **ऋणञ्चयः** ॥ **पवमानःसोमो देवता** ॥ **छन्दः** १, ९, ११ **उष्णिक् ककुप्** । ३ **पादनिचृदुष्णिक्** । ५, ७, १५ **निचृदुष्णिक्** । २ **निचृद्बृहती** । ४, ६ १०, १२ **स्वराड्बृहती** । ८, १६ **पङ्क्तिः** । १४ **निचृत्पङ्क्तिः** । १३ **गायत्री** ॥ **स्वरः** १, ३, ५, ७, ९, ११, १५ **ऋषभः** । २, ४, ६, १०, १२ **मध्यमः** । ८, १४, १६, **पञ्चमः** । १३ **षड्जः** ।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमा मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**मधुमत्तमः**) आनन्दस्वरूप और (**क्रतुवित्तमः**) सब कर्मों के वेत्ता हैं (**द्युक्षतमः**) दीप्तिवाले हैं (**महि, मदः**) अत्यन्त आनन्द के हेतु (**मदः**) हर्षस्वरूप आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पवस्व**) पवित्र करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से शुभकर्म्मों की ओर लगने की प्रार्थना की गई है कि हे शुभकर्मों में प्रेरक परमात्मन् ! आप हमारे सब कर्मों को भलीभांति जानते हुए भी अपनी कृपा से हमें शुभकर्मों की ओर प्रेरित करें कि हम कर्मयोगी बनकर आपकी समीपता का लाभ कर सकें॥१॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥

पदार्थः—(**यस्य, ते**) जिस तुम्हारे (**पीत्वा**) आनन्द के पान करने से (**वृषभः**) कर्मों की वृष्टि करने वाला कर्मयोगी (**वृषायते**) वर्षतीति वृषः, वृषु सिञ्चने, इस धातु से सदुपदेश द्वारा सिञ्चन करने वाले पुरुष के लिये यहां '**वृष**' शब्द आया है

जिसके अर्थ सदुपदेश के हैं (**अस्य, पीता**) इस आनन्द के पीने से (**सुप्रकेतः**) शोभन प्रज्ञा वाला होकर (**इषः, अभ्यक्रमीत्**) शत्रुओं को अतिक्रमण कर जाता है (**एतशः**) अश्व (**न**) जैसे (**वाजम्**) संग्राम का (**अच्छ**) अतिक्रमण करता है इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष सब बलों का अतिक्रमण करता और (**स्वर्विदः**) विज्ञानी बनता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि वेद के सदुपदेश द्वारा कर्मयोगी शोभन प्रज्ञावाला हो जाता है । यहां अश्व के दृष्टान्त से कर्मयोगी के बल और पराक्रम का वर्णन किया है कि जिस प्रकार अश्व संग्राम में विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार कर्मयोगी विज्ञान द्वारा सब शत्रुओं का पराजय करने वाला होता है ॥२॥

त्वं ह्यं१ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयः ॥३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**त्वम्, दैव्या, जनिमानि**) पवित्र जन्मों को लक्ष्य रखकर (**द्युमत्तमः**) दीप्तिवाले आप (**अमृतत्वाय**) अमृतभाव का (**घोषयः**) घोषण करते हैं (**हि**) निश्चय करके (**अंग**) हे सर्वप्रिय परमात्मन् आप ही सब का कल्याण करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—वही परमपिता परमात्मा विद्वान् तथा सत्कर्मी जीवों को कल्याण के देने वाले और वही सबका पालन-पोषण करने वाले हैं ॥३॥

येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४॥

पदार्थः—(**येन**) जिस तुम्हारे आनन्द से (**नवग्वः**) नवीन पुरुष (**दध्यङ्**) ध्यानी लोग (**अपोर्णुते**) सदुपदेशों द्वारा लोगों को सुरक्षित करते हैं (**येन**) जिससे (**विप्रासः**) मेधावी लोग (**आपिरे**) प्राप्त होते हैं (**देवानाम्, सुम्ने, चारुणः, अमृतस्य**) विद्वानों के अमृतरूपी सुख में जिज्ञासु विराजमान होता है (**येन**) जिससे (**श्रवांसि**) यशों को (**आनशुः**) भोगता है, वह एकमात्र आप ही का आनन्द है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ही अपने अनादिसिद्ध ज्ञान द्वारा लोगों को सन्मार्ग की प्रेरणा करता, वही सद्विद्यारूपी वेदों से सबका सुधार करता और वही सबको आनन्द प्रदान करने वाला है ॥४॥

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥५॥

पदार्थः—(**एषः, स्यः**) वह पूर्वोक्त परमात्मा (**अव्यः**) जो सर्वरक्षक है (**वारेभिः, सुतः**) श्रेष्ठ साधनों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पवते**) पवित्र करता है (**मदिन्तमः**) वह आनन्दस्वरूप (**अपाम्, ऊर्मिः, इव**) समुद्र की लहरों के समान (**क्रीळन्**) क्रीड़ा करता हुआ, सब ब्रह्माण्डों का निर्माण करता है ।।५।।

भावार्थः—यहां समुद्र की लहरों का दृष्टान्त अनायास के अभिप्राय से है साकार के अभिप्राय से नहीं, अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अनायास ही श्वासादि व्यवहार करता है इसी प्रकार लीलामात्र से परमात्मा इस संसार की रचना करता है ।।५।।

य उ॒स्रिया॒ अप्या॑ अ॒न्तरश्म॑नो॒ निर्गा अकृ॑न्त॒दोज॑सा ।
अ॒भि व्र॒जं त॑त्निषे॒ गव्य॒मश्व्यं॑ व॒र्मीव॑ धृष्ण॒वा रु॑ज ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**अप्याः, उस्रियाः**) अपनी व्याप्तिशील शक्तियों से (**अन्तरश्मनः**) मेघों के भीतर (**ओजसा, अकृन्तत्**) बल से छेदन करता हुआ (**निर्गाः**) निरन्तर शब्दायमान होकर (**व्रजम्**) इस ब्रह्माण्डरूपी समुदाय के समक्ष (**अभि, तत्निषे**) चारों ओर व्याप्त हो रहा है और जो (**गव्यम्**) ज्ञान तथा (**अश्व्यम्**) कर्म की शक्तियों को (**वर्मीव**) कवच के समान धारण कर रहा है उससे यह प्रार्थना है कि (**धृष्णो**) हे धृतिरूप परमात्मन् ! (**आरुज**) आप हमारी बाधक शक्तियों को नाश करें ।।६।।

भावार्थः—वह पूर्ण परमात्मा जो इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, वही मंगलमय प्रभु सब विघ्नों को निवृत्त करके कल्याण का देने वाला और वही सब पापों का क्षय करने वाला है ।।६।।

आ सो॑ता॒ परि॑ षिञ्च॒ताश्वं॒ न स्तोम॑म॒प्तुरं॑ रज॒स्तुर॑म् ।
व॒न॒क्र॒क्षमु॑द॒प्रुत॑म् ॥७।

पदार्थ—(**अश्वम्, न**) जो विद्युत् के समान (**अप्तुरम्**) अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को गति देने वाला (**रजस्तुरम्**) तेजस्वी पदार्थों को गति देने वाला, और (**वनक्रक्षम्, उदप्रुतम्**) जो सर्वत्र ओतप्रोत हो रहा है ऐसे (**स्तोमम्**) स्तुतियोग्य परमात्मा को (**परिषिञ्चत, आ**) अपनी उपासनारूप वारि से भले प्रकार सिञ्चन करते हुए उसका (**सोत**) साक्षात्कार करें ।।७।।

भाव:र्थः—विद्युदादि नानाविध क्रियाशक्तियों का प्रदाता, निर्माता तथा प्रकाशक एकमात्र परमात्मा ही है, वही सबका उपासनीय और वही सबको कल्याण का देने वाला है ।।७।।

स॒हस्र॑धारं वृष॒भं प॑यो॒वृधं॑ प्रि॒यं दे॒वाय॒ जन्म॑ने ।
ऋ॒तेन॒ य ऋ॒तजा॑तो विवावृ॒धे राजा॑ दे॒व ऋ॒तं बृ॒हत् ॥८॥

पदार्थः—(**सहस्रधारम्**) जो अनन्त प्रकार की आनन्द धाराओं से (**वृषभम्**) कामनाओं का पूर्ण करने वाला (**पयोवृधम्**) जो अन्नादि ऐश्वर्य्यों से परिपूर्ण और (**प्रियम्**) जो सर्वप्रिय है, ऐसे परमात्मा से मैं (**देवाय, जन्मने**) दिव्यजन्म के लिये प्रार्थना करता हूँ, जो (**ऋतेन**) प्रकृतिरूपी ऋत से (**ऋतजातः**) ऋतजात अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है (**विववृधे**) जो सर्वत्र विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त है, (**यः**) जो (**देवः**) दिव्यस्वरूप और जो (**राजा**) सब भूतों का स्वामी है वही (**ऋतं बृहत्**) एकमात्र सर्वोपरि सत्य है, उसी परमात्मा की लोग उपासना करें ।।८।।

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रकृति को "ऋत" इस अभिप्राय से कहा गया है कि प्रकृति परिणामी नित्य है—अर्थात् परिणाम को प्राप्त होकर नाश नहीं होती, शेष सब अर्थ स्पष्ट है ।।८।।

अ॒भि द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॒ इष॑स्पते दिदी॒हि दे॑व देव॒युः ।
वि कोशं॑ मध्य॒मं यु॑व ॥९॥

पदार्थः—(**द्युम्नम्**) दीप्ति वाला (**बृहत्, यशः**) बड़े यश वाला (**इषस्पते**) हे ऐश्वर्य्यों के पति परमात्मन् ! (**अभि, दिदीहि**) आप हमको ऐश्वर्य्य प्रदान करें (**देवयुः**) दीप्ति को प्राप्त (**देव**) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (**मध्यमम्, कोशम्**) अन्तरिक्ष कोश को (**वि, युव**) आप हमें विशेषरूप से समाश्रित करें ।।९।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप ऐश्वर्य्यरूप सम्पूर्ण कोषों के पति हैं, कृपा करके हमें भी विशेषरूप से सम्पत्तिशील बनावें ।।९।।

आ व॑च्यस्व सुदक्ष च॒म्वोः॑ सु॒तो वि॒शां वह्नि॒र्न वि॒श्पतिः॑ ।
वृ॒ष्टिं दि॒वः प॑वस्व री॒तिम॒पां जिन्वा॒ गवि॑ष्टये॒ धियः॑ ॥१०॥

पदार्थः—(**सुदक्ष**) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप (**चम्वोः**) प्रकृति तथा जीवरूप व्याप्य पदार्थों में (**सुतः**) सर्वत्र विद्यमान (**विशाम्**) सब प्रजाओं के (**वह्निः**) अग्नि के

(न) समान (विश्पतिः) वोढा=नेता हैं, आप (आ, पवस्व) हमें प्राप्त हों, (दिवः) द्युलोक की (वृष्टिम्) वृष्टि को (पवस्व) पवित्र करें, (अपां, रीतिम्) कर्मों की गति को पवित्र करें, (गविष्टये) ज्ञान और (धियः) कर्मों की इच्छा करने वाले पुरुष को (जिन्व) अपनी शक्ति से परिपूर्ण करें ॥१०॥

भावार्थः—जिस प्रकार अग्नि एक पदार्थ को स्थानान्तर को प्राप्त कर देती है अर्थात् अपनी तेजोमयी शक्ति से गतिशील बना देती है, इसी प्रकार परमात्मा ज्ञानी तथा शुभकर्मी पुरुष को गतिशील बनाता है जिससे पुरुष शक्तिसम्पन्न होकर उसकी समीपता को उपलब्ध करता है ॥१०॥

एतमु त्यं मंदच्युतं सहस्रंधारं वृषभं दिवों दुहुः ।
विश्वा वसूंनि बिभ्रंतम् ॥११॥

पदार्थः—(त्यमेतम्) उस उक्त परमात्मा को (मदच्युतम्) जो आनन्द से भरपूर, (सहस्रधारम्) अनन्त शक्तियों वाला, (दिवोवृषभम्) द्युलोक से आनन्द की वृष्टि करने वाला (विश्वावसूनि) और जो सब ऐश्वर्य्यों के (बिभ्रतम्) धारण करने वाला है, उसको (दुहुः) ज्ञानवृत्तियों से परिपूर्ण करते हैं ॥११॥

भावार्थः—ज्ञानवृत्तियाँ परमात्मा का साक्षात्कार इस प्रकार करती हैं कि आवरण भग करके सर्वव्यापक परमात्मा को अभिव्यक्त करती हैं इसी का नाम वृत्तिव्याप्ति है ॥११॥

वृषा वि जंज्ञे जनयन्नमंर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिंषा तमंः ।
स सुष्टुंतः कविभिंर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वंस्य दंसंसा ॥१२॥

पदार्थः—(अमर्त्यः) अमरणधर्मा परमात्मा (वृषा) जो सब कामनाओं की वृष्टि करने वाला है, वह (जनयन्) अपनी ज्योति को प्रकाश करता हुआ (विजज्ञे) जायमान कथन किया जाता है (ज्योतिषा) अपनी ज्ञानरूपी ज्योति से (तमः, प्रतपन्) अज्ञान को दूर करता हुआ (कविभिः) विद्वानों से वर्णित (निर्णिजम्) निराकार के पद को (दधे) धारण करता है, और (अस्य, दंससा) इसके अपूर्व कर्मों से (त्रिधातु) तीनों गुणों की आश्रयभूत प्रकृति स्थिर है (सः) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (सुष्टुतः) भलीभांति उपासना किया हुआ सद्गति प्रदान करता है ॥१२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में परमात्मा को जायमान उपचार से कथन किया गया है वस्तुतः नहीं । वास्तव में वह अजर, अमरादि गुणसम्पन्न है, वह अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला और उनको सद्गति का प्रदाता है ॥१२॥

स सुन्वे यो वसूंनां यो रायामांनेता य इळांनाम् ।
सोमो यः सुंक्षितीनाम् ॥१३॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (यः) जो (सुन्वे) सब संसार को उत्पन्न करता है, (यः) जो (सोमः) सर्वोत्पादक, (वसूनाम्) सब धनों (रायाम्) ऐश्वर्यों का (आनेता) प्रेरक, और (यः) जो (इलानां, सुक्षितीनाम्) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का अधिष्ठाता है, वह हमारे ज्ञान का विषय हो ॥१३॥

भावार्थः—सब पदार्थों का अधिष्ठाता परमात्मा है अर्थात् परमात्मा सब पदार्थों का आधार है और सब पदार्थ आधेय हैं । हे भगवन्! आप हमारे ज्ञान की वृद्धि करें कि हम लोग आपकी समीपता को प्राप्त होकर आनन्द का उपभोग कर सकें ॥१३॥

यस्यं न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्यं वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुंणा करांमह एन्द्रमवंसे महे ॥१४॥

पदार्थः—(नः) हमारा स्वामी परमात्मा (यस्य) जिसके आनन्द को (इन्द्रः) कर्मयोगी (पिबात्) पान करते हैं, (यस्य) जिसके आनन्द को (मरुतः) विद्वानों का गण पान करता है, (यस्य) जिसके आनन्द को (अर्यमणा) कर्मों के साथ (भगः) कर्मयोगी उपलब्ध करता है और (येन) जिससे (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशक (करामहे) सदुपदेश करते हैं (महे, अवसे) अत्यन्त रक्षा के लिये (इन्द्रम्) कर्मयोगी को जो उत्पन्न करता है, वही हमारा उपास्यदेव है ॥१४॥

भावार्थः—जो परमात्मा नाना प्रकार की विद्याएँ और इन विद्याओं के वेत्ता कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों को उत्पन्न करता है जिससे शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक तथा उपदेशक धर्मोपदेश करते हैं और जो दुष्टदमन के लिये रक्षक उत्पन्न करता है, वही हमारा पूजनीय देव है । उसी की उपासना करनी योग्य है ॥१४॥

इन्द्रांय सोम पातंवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तंमः ।
पवंस्व मधुंमत्तमः ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (इन्द्राय, पातवे) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये (नृभिः, यतः) साक्षात्कार किये हुए, आप जो (मधुमत्तमः) अत्यन्त

मीठे और (**मदिन्तमः**) आह्लादक गुणों को धारण किये हुए हैं (**स्वायुधः**) स्वाभाविक शक्तिप्रद आप (**पवस्व**) हमारे ज्ञान का विषय हों ॥१५॥

भावार्थः—हे आनन्दवर्द्धक तथा आह्लादजनक गुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी बनकर आपका साक्षात्कार करते हुए आनन्द को प्राप्त हों ॥१५॥

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**हार्दि**) हृदयरूप (**सोमधानम्**) अन्तःकरण को (**आविश**) प्राप्त हों (**इव**) जिस प्रकार (**सिन्धवः**) नदियाँ (**समुद्रम्**) समुद्र को प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार हमारी वृत्तियां आपको प्राप्त हों, आप (**मित्राय**) अध्यापक के लिये और (**वरुणाय**) उपदेशक के लिये (**वायवे**) ज्ञानयोगी के लिये (**जुष्टः**) प्रीति से युक्त हैं, और आप (**दिवः**) द्युलोक का (**उत्तमः**) सर्वोपरि (**विष्टम्भः**) सहारा हैं ॥१६॥

भावार्थः—कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा के आधार पर स्थिर हैं और जो कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी इत्यादि योगीजनों का विद्याप्रदाता है, वही एकमात्र उपास्य देव है ॥१६॥

नवम मण्डल में यह १०८वां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ द्वाविंशत्यृचस्य नवोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—२२ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्ची भुरिग्गायत्री । २—६, ९, ११, १२, १९, २२ आर्ची स्वराड्गायत्री । २०, २१ आर्ची गायत्री । १६ पादनिचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब कर्मयोगी के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थः—(**मित्राय**) मित्रतारूप गुणवाले (**पूष्णे**) सदुपदेश द्वारा पुष्टि करने वाले (**भगाय**) ऐश्वर्य्य वाले (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**सोम**) हे सोम ! आप (**स्वादुः**) उत्तम फल के लिये (**परि, प्र, धन्व**) भले प्रकार प्रेरणा करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उद्योगी तथा कर्मयोगियों के लिये नानाविध स्वाद फलों को उत्पन्न करता है अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्य्य और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों फलों का भोक्ता कर्मयोगी तथा उद्योगी ही हो सकता है अन्य नहीं, इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा उद्योगी बनना चाहिये ॥१॥

इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारे (**सुतस्य**) साक्षात्काररूप रस को (**इन्द्रः**) कर्मयोगी (**क्रत्वे**) विज्ञान तथा (**दक्षाय**) चातुर्य्य के लिये (**पेयाः**) पान करे (**च**) और (**विश्वे, देवाः**) सब देव तुम्हारे आनन्द को पान करें ॥२॥

भावार्थः—परमात्मानन्द के पान करने का अधिकार एकमात्र दैवीसम्पत्ति वाले पुरुषों को ही हो सकता है अन्य को नहीं, इसी अभिप्राय से यहाँ कर्मयोगी, ज्ञानयोगी तथा देवों के लिये ब्रह्मामृत का वर्णन किया गया है ॥२॥

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**शुक्रः**) आप बलस्वरूप (**दिव्यः**) दिव्यस्वरूप (**पीयूषः**) विद्वानों के लिये अमृत हैं (**सः**) उक्त गुणसम्पन्न आप (**महे**) सदा के निवासार्थ (**अमृताय**) मुक्तिसुख तथा (**क्षयाय**) दोषनिवृत्ति के लिये (**एव**) इस प्रकार (**अर्ष**) प्राप्त हों जिससे हम सदैव आपके आनन्द को भोग सकें ॥३॥

भावार्थः—यहां मुक्तिरूप सुख का "पीयूष" शब्द से वर्णन किया है, ब्रह्मानन्द का नाम ही पीयूष है, और उसी को अमृत, पीयूष, मुक्ति इत्यादि नाना प्रकार के शब्दों से कथन किया गया है ॥३॥

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक ! आप (**समुद्रः**) [सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः] जिससे पृथिव्यादि सम्पूर्ण लोकलोकान्तर उत्पन्न होते हैं उसका नाम यहां "समुद्र" है, और (**महान्**) सबसे बड़ा (**देवानां**) सूर्य्यादि देवों का (**पिता**) निर्माण करने वाला (**विश्वा, अभि, धाम**) सबको लक्ष्य रखकर हे ईश्वर ! आप हमको पवित्र करें ॥४॥

भावार्थः—परमपिता परमात्मा जो आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण है, उसी की उपासना से मनुष्य मुक्तिधाम को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥५॥

पदार्थः—(**देवेभ्यः**) आप सब विद्वानों को (**पवस्व**) पवित्र करें (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (**दिवे**) द्युलोक, (**पृथिव्यै**) पृथिवी लोक (**च**) और (**प्रजायै**) प्रजा के लिये (**शं**) कल्याणकारी हों, (**शुक्रः**) क्योंकि आप बलस्वरूप हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के लिये आनन्द की वृष्टि करने वाला है, अर्थात् वही आनन्द का स्रोत होने के कारण उसी से आनन्द की लहरें इतस्ततः प्रचार पाती हैं, किसी अन्य स्रोत से नहीं ॥५॥

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६॥

पदार्थः—(**दिवः धर्ता, असि**) हे परमात्मन् ! आप द्युलोक के धारक, और (**सत्ये, विधर्मन्**) सत्यरूप यज्ञ में (**पीयूषः**) अमृत हैं (**शुक्रः**) दीप्तिमान् तथा (**वाजी**) बलस्वरूप आप (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—द्युलोक का धारक, अमृत, देदीप्यमान तथा बलस्वरूप परमात्मा, जिसने सूर्य्य, चन्द्रमादि सब लोकलोकान्तरों का निर्माण किया है, वही हम सबका एकमात्र उपास्यदेव है, अन्य नहीं ॥६॥

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सोमगुणसम्पन्न तथा सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**द्युम्नी**) यशस्वरूप (**सुधारः**) अमृतस्वरूप, तथा (**महान्, अवीनां**) बड़े-बड़े रक्षकों में (**अनु, पूर्व्यः**) सबसे मुख्य रक्षक होने से आप (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—सर्वोपरि परमात्मा जिसका यश महान्=सबसे बड़ा है, वही हमारा रक्षक और वही एकमात्र उपास्य देव है ॥७॥

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥८॥

पदार्थः—(**नृभिः, येमानः**) संयमी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किये हुए (**जज्ञानः**) सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त (**पूतः**) पवित्र (**मन्द्रः**) आनन्दस्वरूप (**स्वर्वित्**) सर्वज्ञ (**विश्वानि**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य (**क्षरत्**) हमको देवें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार संयमी पुरुषों को ही होता है अर्थात् जप, तप, संयम तथा अनुष्ठान द्वारा वही लोग साक्षात्कार करते हैं, वह परमात्मा अपनी दिव्य ज्योतियों से सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त और नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है, वह पिता हमें सब प्रकार का सुख प्रदान करे ॥८॥

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥९॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) सर्वप्रकाशक, (**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाला, (**प्रजां, उराणः**) प्रजाओं के ऐश्वर्य्य को विशाल करता हुआ परमात्मा (**विश्वानि, द्रविणानि**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य (**नः**) हमको (**करत्**) प्रदान करे ॥९॥

भावार्थः—जो परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता और जो स्वतःप्रकाश तथा स्वयंभू है वही हमारा उपास्यदेव है । उसी की उपासना करता हुआ पुरुष आनन्द-लाभ करता है, अन्यथा नहीं ॥९॥

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१०॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सोमगुणसम्पन्न परमात्मन् (**क्रत्वे**) विज्ञान के लिये (**दक्षाय**) चातुर्य्यप्राप्ति के लिये (**अश्वः, न**) विद्युत्समान (**निक्ता**) वेगवान् (**वाजी**) बलस्वरूप परमात्मन् (**धनाय**) धन के लिये (**पवस्व**) पवित्र करें ॥१०॥

भावार्थः—जिस प्रकार विद्युत् प्रत्येक पदार्थ को देदीप्यमान करता और सब पदार्थों का प्रकाशक तथा उद्दीपक है, इसी प्रकार परमात्मा सबको उद्बोधन करके अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त करता है और कर्मयोगी पुरुष को सदैव धन का लाभ होता है ॥१०॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥

पदार्थः—(**सोतारः**) उपासक लोग (**ते**) तुम्हारे (**तं**) उस (**सोमं**) शान्तिरूप (**रसं**) आनन्द को (**मदाय**) आनन्दित होने के लिये तथा (**महे, द्युम्नाय**) बड़े ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये धारणा द्वारा (**पुनन्ति**) पवित्र करते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव यह है कि उपासक लोग इस विराट् स्वरूप को देखकर ईश्वर की धारणा अपने हृदय में करते हैं, यही इस ऐश्वर्य्य को पवित्र बनाना है ॥११॥

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२॥

पदार्थः—(**शिशुं**) सर्वोपरि प्रशंसनीय (**जज्ञानं**) सर्वत्र विद्यमान (**हरिं**) सब दुःखों को हरण करनेवाला (**इन्दुं**) प्रकाशस्वरूप (**सोमं**) सोम्यस्वभाव परमात्मा को (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (**मृजन्ति**) ऋत्विग् लोग साक्षात्कार करते हैं ॥१२॥

भावार्थः—जो ऋतु-ऋतु में यज्ञों द्वारा परमात्मा का यजन करते हैं उनका नाम "ऋत्विग्" है, अर्थात् इस विराट्स्वरूप की महिमा को देखकर

जो आध्यात्मिक यज्ञादि द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं को परमात्मा का साक्षात्कार होता है ॥१२॥

इन्दुः॑ पविष्ट॒ चारु॒र्मदा॑या॒पामु॒पस्थे॑ क॒विर्भगा॑य ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**कविः**) जो सर्वज्ञ है वह (**अपां, उपस्थे**) कर्मों की सन्निधि में (**भगाय**) ऐश्वर्य्यप्राप्ति तथा (**चारुः, मदाय**) सर्वोपरि आनन्दप्राप्ति के लिये (**पविष्ट**) हमको पवित्र बनाता है ॥१३॥

भावार्थः—जो पुरुष यज्ञादि कर्म तथा अन्य सत्कर्म करते हैं उन्हीं को परमात्मा पवित्र बनाता है, जिससे वह ऐश्वर्य्य-प्राप्ति द्वारा आनन्दोपभोग करते हैं ॥१३॥

बिभ॑र्ति॒ चार्विन्द्र॑स्य॒ नाम॒ येन॒ विश्वा॑नि वृ॒त्रा ज॒घान॑ ॥१४॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) परमात्मा कर्मयोगी के (**चारु, नाम**) सुन्दर शरीर को (**बिभर्ति**) निर्माण करता है, (**येन**) जिससे वह (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वृत्रा**) अज्ञान का (**जघान**) नाश करता है ॥१४॥

भावार्थः—यद्यपि स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण यह तीनों प्रकार के शरीर सब जीवों को प्राप्त हैं परन्तु कर्मयोगी के सूक्ष्म शरीर में परमात्मा एक प्रकार का दिव्यभाव उत्पन्न कर देता है, जिससे अज्ञान का नाश और ज्ञान की वृद्धि होती है। इस भाव से मन्त्र में कर्मयोगी के शरीर को बनाना लिखा है ॥१४॥

पिब॑न्त्यस्य॒ विश्वे॑ दे॒वासो॒ गोभिः॑ श्री॒तस्य॒ नृभिः॑ सु॒तस्य॑ ॥१५॥

पदार्थः—(**नृभिः, सुतस्य**) संयमी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (**गोभिः श्रीतस्य**) जो ज्ञानवृत्तियों से दृढ़ अभ्यास किया गया है, (**अस्य**) उसमें परमात्मा के आनन्द को (**विश्वे, देवासः**) सम्पूर्ण विद्वान् (**पिबन्ति**) पान करते हैं ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा का आनन्द इन्द्रियसंयम द्वारा दृढ़ अभ्यास के विना कदापि नहीं मिल सकता, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा दृढ़ अभ्यास करके परमात्मा के आनन्द को लाभ करे ॥१५॥

प्र सु॑वा॒नो अ॑क्षाः स॒हस्र॑धार॒स्तिरः॑ प॒वित्रं॒ वि वार॒मव्य॑म् ॥१६॥

पदार्थः—(**सहस्रधारः**) अनन्त सामर्थ्ययुक्त परमात्मा (**सुवानः**) साक्षात्कार किया हुआ (**विवारं, अव्यं, तिरः**) आवरण को तिरस्कार करके (**पवित्रं**) पवित्र अन्तःकरण को (**अक्षाः**) अपने ज्ञान के प्रवाह से सिञ्चन करता है ॥१६॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य में अज्ञान बना रहता है, तब तक वह परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नहीं कर सकता, इसलिये जिज्ञासु को आवश्यक है कि परमात्मा के स्वरूप को ढकने वाले अज्ञान का नाश करके परमात्म-दर्शन करे। अज्ञान, अविद्या तथा आवरण यह सब पर्य्याय शब्द हैं ॥१६॥

स वा॒ज्य॑क्षाः स॒हस्र॑रेता अ॒द्भिर्मृ॑जा॒नो गोभिः॑ श्री॒णा॒नः ॥१७॥

पदार्थः—(**अद्भिः, मृजानः**) कर्मों द्वारा साक्षात्कार करके (**गोभिः, श्रीणानः**) ज्ञानरूप वृत्तियों के अभ्यास से परिपक्व किया हुआ (**सहस्ररेताः**) अनन्त सामर्थ्यशाली परमात्मा (**वाजी**) जो ऐश्वर्य्यशाली है (**सः**) वह अपनी ज्ञानसुधा से (**अक्षाः**) हमको सिञ्चन करता है ॥१७॥

भावार्थः—जब दृढ़ अभ्यास से परमात्मा का परिपक्व ज्ञान हो जाता है तब परमात्मज्ञान जो अमृत के समान है वह उपासक को आनन्द प्रदान करता है, इसी का नाम यहां सिञ्चन करना है ॥१७॥

प्र सो॑म या॒हीन्द्र॑स्य कु॒क्षा नृभि॑र्येमा॒नो अद्रि॑भिः सु॒तः ॥१८॥

पदार्थः—(**अद्रिभिः, सुतः**) चित्तवृत्तियों के संयम द्वारा साक्षात्कार किये हुए (**नृभिः, येमानः**) संयमी पुरुषों के लक्ष्य, (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**कुक्षा**) अन्तःकरण में (**याहि**) प्राप्त हों ॥१८॥

भावार्थः—जो पुरुष उसी एकमात्र परब्रह्म परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते हैं उनको परमपिता परमात्मा अवश्य देदीप्यमान करते हैं ॥१८॥

असर्जि वा॒जी ति॒रः प॒वित्र॒मिन्द्रा॑य॒ सोमः॑ स॒हस्र॑धारः ॥१९॥

पदार्थः—(**सहस्रधारः**) अनन्तसामर्थ्ययुक्त (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**असर्जि**) उपदेश द्वारा प्राप्त होते हैं (**वाजी**) वह बलस्वरूप परमात्मा (**तिरः**) अज्ञान को तिरस्कार करके (**पवित्रं**) अन्तःकरण को पवित्र बनाते हैं ॥१९॥

भावार्थः—परम पिता परमात्मा जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का अधिपति है, वह अनन्त सामर्थ्ययुक्त है। उसके सामर्थ्य को उपदेशों द्वारा कर्मयोगी लाभ करता है ॥१९॥

अ॒ञ्जन्त्ये॑नं॒ मध्वो॒ रसे॒नेन्द्रा॑य॒ वृष्ण॒ इन्दुं॒ मदा॑य ॥२०॥

पदार्थः—(**एनं**) उक्त परमात्मा को (**मध्वः, रसेन**) उसके माधुर्य्ययुक्त रस से

(वृष्णे) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के (मदाय) आनन्द के लिये (इन्दुं) स्वप्रकाश परमात्मा के उपासक लोग (अञ्जन्ति) ज्ञानवृत्ति द्वारा योग करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—ब्रह्मविषयिणी वृत्ति द्वारा परमात्मा के योग का नाम "परमात्मयोग" है अर्थात् उपासक लोग ज्ञानवृत्ति द्वारा परमात्मा के समीपी होकर परमात्मरूप माधुर्य रस को पान करते हुए तृप्त होते हैं ॥२०॥

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥२१॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (पाजसे) बल के लिये (अपः, वसानं) प्रकृतिरूप व्याप्य वस्तु में निवास करते हुए (हरिं) अविद्या का हरण करने वाले (त्वां) तुमको (वृथा) कर्मफलों में अनासक्त होकर (मृजन्ति) उपासक लोग साक्षात्कार करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—विद्याप्राप्ति द्वारा विद्वान् बनना, बलवान् होना तथा नानाविध ऐश्वर्य्य प्राप्त करके ऐश्वर्य्यशाली बनना, परमात्मा की उपलब्धि के विना कदापि नहीं हो सकता, इसलिये ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों का कर्तव्य है कि वह ज्ञान द्वारा परमात्मा को उपलब्ध करें ॥२१॥

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (तोशते) साक्षात्कार किया जाता है (उग्रः) उग्रस्वरूप परमात्मा (श्रीणन्) अपनी प्रेरणा द्वारा (अपः, रिणन्) मन्द कर्मों को दूर करता हुआ (नि, तोशते) निरन्तर अज्ञान का नाश करता है ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि सुख की इच्छावाले पुरुष को मन्दकर्मों का सर्वथा त्याग करना चाहिये, जब तक पुरुष मन्द कर्म नहीं छोड़ता तबतक वह परमात्मपरायण कदापि नहीं हो सकता और न सुख उपलब्ध कर सकता है, इसी अभिप्राय से मन्त्र में अज्ञान के नाश द्वारा मन्दकर्मों के त्याग का विधान किया है ॥२२॥

नवम मण्डल में यह १०९वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—१२ त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद्बृहती । ९ बृहती ॥ स्वरः—१-३, १०-१२ गान्धारः । ४—९ मध्यमः ॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (वाजसातये) ऐश्वर्य्यप्रदान के लिये हमको (परि, प्र, धन्व) भली भांति प्राप्त हों, (सक्षणि) सहनशील आप (वृत्राणि) अज्ञानों को नाश करने के लिये हमें प्राप्त हों (ऊं) और (ऋणयाः) ऋणों को दूर करनेवाले आप (द्विषः) शत्रुओं को (परि, तरध्यै) भले प्रकार नाश करने के लिये (नः) हमको (ईयसे) प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वरपरायण होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं वही परमात्मा को उपलब्ध करनेवाले कहे जाते हैं, या यों कहो कि उन्हीं को परमात्मप्राप्ति होती है और वही अपने ऋणों से मुक्त होते और वही शत्रुओं का नाश करके संसार में अभय होकर विचरते हैं। स्मरण रहे कि पूर्वस्थान को त्यागकर स्थानान्तरप्राप्तिरूप प्राप्ति परमात्मा में नहीं घट सकती ॥१॥

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे सोमगुणसम्पन्न परमात्मन् (महे, समर्यराज्ये) न्याययुक्त बड़े राज्य में (त्वा, सुतं) साक्षात्कार को प्राप्त आप (अनु, मदामसि) हमको आनन्दित करें (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले भगवन् (वाजान्, अभि) ऐश्वर्यों को लक्ष्य रखकर (प्र, गाहसे) हमको प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र में ऐश्वर्यों के लक्ष्य का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर में आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकार के ऐश्वर्य्य हैं, जो पुरुष मुक्तिसुख का लक्ष्य रखते हैं उनको निःश्रेयसरूप आध्यात्मिक ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है और जो सांसारिक सुख को लक्ष्य रखकर ईश्वरपरायण होते हैं उनको परमात्मा अभ्युदयरूप आधिभौतिक ऐश्वर्य्य प्रदान करते हैं ॥२॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (पयः, विधारे) जलों को धारण करनेवाले अन्तरिक्ष देश में (शक्मना) अपनी शक्ति से

(**सूर्यं**) सूर्य्यं को (**अजीजनः**) उत्पन्न करते हैं और (**गोजीरया, पुरंध्या**) पृथिव्यादि लोकों को प्रेरणा करनेवाली बड़ी शक्ति से भी (**रंहमाणः**) अत्यन्त वेगवान् हैं ॥३॥

भावार्थः—वह परमपिता परमात्मा जो अभ्युदय तथा निःश्रेयस का दाता है, उसका प्रभुत्व विद्युत् से भी अधिकतर है ॥३॥

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४॥

पदार्थः—(**अमृत**) हे सदा एकरस तथा जरामरणादि धर्मों से रहित परमात्मन् ! आप (**मर्त्येषु, आ**) मनुष्यों के सन्मुख होने के लिये (**चारुणः, अमृतस्य, धर्मन्**) सुन्दर अविनाशी परमाणुओं को धारण करने वाले अन्तरिक्ष देश में (**अजीजनः**) सूर्य्यादि दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करके (**सदा, असरः**) सदैव विचरते हो, इसलिये (**वाजं, अच्छ**) ऐश्वर्य्यं को लक्ष्य रखकर (**सनिष्यदत्**) हमारी भक्ति का विषय हों ॥४॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सदा एकरस, सर्वत्र विराजमान और सदैव सब प्राणियों को अहर्निश देखते हुए विचरते हैं, अतएव प्रार्थना है कि आप हमें अपनी भक्ति का दान दें कि हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए ऐश्वर्य्यशाली हों । विचरने से तात्पर्य्य अपनी व्यापकशक्ति द्वारा सर्वत्र विराजमान होने का है, चलने का नहीं ॥४॥

अभ्यंभि हि श्रवंसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**श्रवसा**) अपने ज्ञानरूप ऐश्वर्य्य से (**अभ्यभि**) प्रत्येक उपासक के (**ततर्दिथ**) दुर्गुणों का नाश करते हैं (**न**) जैसे कोई (**अक्षितं**) जल से भरे हुए (**उत्सं**) उत्सरण योग्य जलवाले (**जनपानं, कंचित्**) वापी आदि जलाधार को मलिन जल निकालकर स्वच्छ बनाता है (**हि**) निश्चय करके (**न**) जैसे सूर्य्य (**गभस्त्योः**) अपनी किरणों की (**शर्याभिः**) कर्मशक्ति द्वारा (**भरमाणः**) सब विकारों को दूर करके प्रजा का पालन करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि जिस प्रकार सूर्य्य अपनी गरमी तथा प्रकाश-शक्ति से प्रजा के सब विकार तथा अवगुणों को दूर करके शुभ गुण देता है, इसी प्रकार परमात्मा सदाचारी पुरुषों के दोष दूर करके उनमें सद्गुणों का आधान कर देता है । इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा सदाचारी होना परमावश्यक है ॥५॥

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥६॥

पदार्थः—(**आप्यं**) पूजनीय परमात्मा को (**केचित्**) कई एक लोग (**पश्यमानासः**) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (**अभ्यनूषत**) स्तुति करते हैं (**आत्**) अथवा (**इं, वारं**) इस वरणीय परमात्मा को (**वसुरुचः, दिव्याः**) ऐश्वर्य्य चाहने वाले विद्वान् (**देवः सविता**) दिव्यरूप सूर्य्य (**वि, ऊर्णुते**) जिस प्रकार अपने प्रकाश से आच्छादन कर लेता है (**न**) इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥६॥

भावार्थः—भाव यह है कि जिस प्रकार सूर्य्य की प्रभा चहुँ ओर व्याप्त हो जाती है इसी प्रकार ब्रह्मविद्यावेत्ता पुरुषों की ब्रह्मविषयिणी बुद्धि विस्तृत होकर सब ओर परमात्मा का अवलोकन करती है और ऐसे पुरुष परमात्मपरायण होकर ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं ॥६॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (**प्रथमाः**) प्राचोन लोग (**वृक्तबर्हिषः**) जिन्होंने अपनी कामनाओं को उच्छेदन कर दिया है, वे (**त्वे**) आप में (**महे, वाजाय**) बड़े यज्ञ के लिये अथवा (**श्रवसे**) ऐश्वर्य्य के लिये (**धियं, दधुः**) कर्मरूप बुद्धि को धारण करते हैं (**वीर**) हे सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मन् (**सः, त्वं**) वह आप (**नः**) हमको (**वीर्याय**) वीर पुरुषों में होने वाले गुणों के लिये (**चोदय**) प्रेरणा करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! हम बड़े-बड़े यज्ञ करते हुए ऐश्वर्य-सम्पादन करें, अथवा वीर पुरुषों के गुणों को धारण करते हुए बलवान् बनें, क्योंकि आप ही की कृपा से मनुष्य वीरतादि गुणों को धारण कर सकता है, अन्यथा नहीं ॥७॥

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥८॥

पदार्थः—(**दिवः, पीयूषं**) जो द्युलोक का अमृत (**पूर्व्यं**) सनातन (**उक्थ्यं**) प्रशंसनीय (**यत्**) जो (**महः, गाहात्**) बड़े गहन (**दिवः**) द्युलोक से (**आ, निः, अधुक्षत**) भलीभांति दोहन किया गया है (**इन्द्रं, अभि**) जो कर्मयोगी को लक्ष्य रखकर (**जाय-**

मानं) विद्यमान है, उस परमात्मा की उपासक लोग (सं, अस्वरन्) भले प्रकार स्तुति करते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा को द्युलोक का अमृत इस अभिप्राय से कथन किया गया है कि "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋग्० १० । ९० । ३] इस मन्त्र में यह वर्णन किया है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एकदेश में है, और अनन्त परमात्मा अमृतरूप से द्युलोक में विस्तृत हो रहा है । अर्थात् उसका अमृतस्वरूप अनन्त नभोमण्डल में सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, ऐसे सर्वव्यापक परमात्मा की उपासक लोग स्तुति करते हैं ॥८॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥९॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (**इमे, रोदसी**) ये द्युलोक पृथिवीलोक (**अध, यत**) और जो(**इमा, च, विश्वा, भुवना**) यह सब लोकलोकान्तर हैं, उन सबको (**मज्मना**) बल से (**अभि तिष्ठसे**) भले प्रकार धारण कर रहे हो (**न**) जिस प्रकार (**निष्ठाः, वृषभः**) स्थिर शक्तिवाला स्वामी (**यूथे**) अपने मण्डल का मध्यवर्ती होकर स्थिर होता है ॥९॥

भावार्थः—जिस प्रकार मण्डलाधिपति अपने मण्डल के मध्य में स्थिर होकर सबको स्वाधीन रखता है, इसी प्रकार परमात्मा सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों को बल से धारण करके सर्वत्र स्थित होरहा है, या यों कहो कि उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय रूप परमात्मशक्ति सदा एकरस दृढ़ता से विराजमान रहती है, उसमें कभी रुकावट नहीं होती ॥९॥

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥१०॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला (**अव्यये, वारे**) रक्षायुक्त पदार्थों में (**शिशुः, न, क्रीलन्**) प्रशंसनीय वस्तुओं के समान क्रीड़ा करता हुआ (**सहस्रधारः**) अनन्त प्रकार की शक्तियों से युक्त (**शतवाजः**) अनन्त प्रकार के बलों वाला (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**पुनानः**) ज्ञानवृद्धि द्वारा पवित्र करता हुआ (**अक्षाः**) अपनी सुधावारि से सबको सिंचन करता है ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा के गुण तथा शक्तियां अनन्त हैं, और जिससे उसके स्वरूप का निरूपण किया जाता है वह गुण भी उसमें अनन्त है, इस लिये अनन्त स्वरूप की अनन्त रूप से ही उपासना करनी चाहिये ॥१०॥

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥११॥

पदार्थः—(**एषः**) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाला (**मधुमान्**) आनन्दमय, (**ऋतवा**) ज्ञानादि यज्ञों का स्वामी, (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप, (**इन्द्राय, पवते**) कर्मयोगी के लिये पवित्रता प्रदान करने वाला (**वाजसनिः**) अन्नादि ऐश्वर्य्यों का दाता, (**वरिवोवित**)धनादि ऐश्वर्य्य प्रदान करनेवाला,(**वयोधाः**) आयु की वृद्धि करनेवाला, (**स्वादुः, ऊर्मिः**) आनन्द की लहरें बहाता है ॥११॥

भावार्थः—जो पुरुष उक्त गुणों वाले परमात्मा की ओर क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति से बढ़ते हैं, उनको परमपिता परमात्मा अवश्य प्राप्त होते और उन पर सब ओर से आनन्द की वृष्टि करते हैं ॥११॥

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**पृतन्यून्, रक्षांसि**) संग्राम की कामना करनेवाले राक्षसों को (**दुर्गहानि**) जो दुर्गम हैं (**अप, सेधन्, पवस्व**) दूर करते हुए हमारी रक्षा करें (**सहमानः**) सहनशील (**स्वायुधः**) स्वयम्भू (**शत्रून्**) शत्रुओं का (**ससह्वान्**) तिरस्कार करते हुए (**सः**) आप हमें अभय प्रदान करें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप कुमार्ग में प्रवृत्त दुष्ट पुरुषों से हमारी रक्षा करें, जिनसे रक्षा की जाती है उनका नाम "राक्षस" है, सो हे पिता ! आप सम्पूर्ण विघ्नकारी पुरुषों से हमारी रक्षा करते हुए हमें अभय प्रदान करें ॥१२॥

नवम मण्डल में यह ११०वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्यैकादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—३ अनानतः पारुच्छेपिऋँषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ३ अष्टिः ॥ मध्यमः स्वरः ॥

अब शूरवीर का कर्तव्य कथन करते हैं ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः
सूरो न स्वयुग्वभिः । धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) [हरतीति हरिः] परपक्ष को हरण करनेवाला शूरवीर (**अरुषः**) उग्र तेजवाला, (**पुनानः**) अपने वीर कर्मों से पवित्र करने वाला, (**सुतस्य, धारा**) संस्कार की धारा से (**रोचते**) दीप्तिमान् होता है, (हरिण्या) शत्रुओं को हनन करने वाली (**अया**) इस (**रुचा**) दीप्ति से (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**स्वयुग्वभिः**) अपनी स्वाभाविक शक्तियों द्वारा (**विश्वा, द्वेषांसि**) सब शत्रुओं को (तरति) हनन करता है (**न**) जैसे (सूरः) सूर्य्य (**स्वयुग्वभिः**) अपनी स्वाभाविक शक्तियों से अन्धकार का नाशक होता है (**यत्**) जैसे (**सप्तास्येभिः**) सात मुखों वाली (**ऋक्वभिः**) किरणों से (**विश्वा, रूपा**) नाना रूपों को धारण करता हुआ सूर्य्य (**परियाति**) प्राप्त होता है । इसी प्रकार (**ऋक्वभिः**) ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्रों से निकले हुए तेज द्वारा शूरवीर परपक्ष को प्राप्त होता है, इसलिये वह सूर्य्य की सप्त किरणों की तुलना करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालंकार से शूरवीर की सूर्य्य के साथ तुलना की गई है अर्थात् जिस प्रकार सूर्य्य अपने तेजोमय प्रभामण्डल से अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता है इसी प्रकार शूरवीर योधा शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके स्वयं स्थिर होता है ॥१॥

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम
ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥२॥

पदार्थः—(**यत्र**) जिस युद्ध में (**धीतयः**) युद्धकुशल लोग (**परावतः**) दूर से ही (रणन्ति) मङ्गलमय गीत गाते हैं (**न**) जैसे (**साम**) सामगान होता है, हे शूरवीर ! (**त्वं**) तुम (**पणीनां**) परपक्ष के ऐश्वर्य्य वालों से (**त्यत्, वसु**) जो धन छीना गया है उसको (**ऋतस्य, धीतिभिः**) कर्मयज्ञ द्वारा (**विदः**) लाभ करके (**दमे**) अपने वशीभूत करते हो (**आ**) और (**दमे**) अपने आधीन धन को (**मातृभिः, सं, मर्जयसि**) माता-पिता द्वारा दत्त शक्ति द्वारा फिर भलीभांति अर्जन करके (**त्रिधातुभिः**) तीन धातुओं से बने हुए (**अरुषीभिः**) कान्तिवाले इस शरीर द्वारा (**वयः, दधे**) ऐश्वर्य को धारण करते हो और (**रोचमानः, वयः, दधे**) दीप्तिवाले ऐश्वर्य्यशाली होकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन को आनन्द में परिणत करते हो ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार ब्रह्मोपासक ब्रह्मयज्ञ में ब्रह्म के ज्ञानादि ऐश्वर्यों को धारण करते हैं, इसी प्रकार शूरवीर कर्मयज्ञ में परमात्मा के अभ्युदयरूप ऐश्वर्य को धारण करते हुए इस त्रिधातुमय शरीर के प्रयत्न को सफल करते हैं ॥२॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो
दैव्यो दर्शतो रथः । अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३॥

पदार्थः—(**दर्शतः**) दर्शनीय (**रथः**) शूरवीर का गमन (**दैव्यः**) दिव्यशक्तियुक्त (**रश्मिभिः**) उत्साहरूप किरणों द्वारा (**सं, यतते**) भलीभांति यत्नशील होता है (**चेकितत्**) युद्धविद्या के जाननेवाला योधा (**पूर्वां, प्रदिशं**) प्रशंसनीय गति को (**याति**) प्राप्त होता है (**पौंस्या, उक्थानि**) पुंस्त्वसम्बन्धि स्तवन जब (**अग्मन्**) विजेता को प्राप्त होते हैं तब (**मैत्राय**) विजेता उत्साहयुक्त होकर स्वामी को (**हर्षयन्**) प्रसन्न करता हुआ (**इन्द्रं**) अपने स्वामी को प्राप्त होता है (**यत्**) क्योंकि (**समत्सु**) संग्रामों में (**अनपच्युता, भवथः**) न गिरे हुए स्वामी तथा सेवक सद्गति के भागी होते हैं (**च**) और (**वज्रः**) उन का शस्त्र भी अवर्जनीय होकर संसार में अव्याहत गति को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शूरवीर के तेज की दिव्य तेज से तुलना की गई है कि जिस प्रकार द्युलोकवर्ती तेज अन्धकार को दूर करके सर्वत्र प्रकाश का संचार करता है इसी प्रकार शूरवीर का तेज तमोरूप शत्रु को हनन करके अभ्युदयरूप ऐश्वर्य्य का संचार करता है ॥३॥

नवम मण्डल में यह १११वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य द्वादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—४ शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १—३ विराट् पङ्क्तिः । ४ निचृत् पङ्क्तिः ॥ पंचमः स्वरः ॥

अब प्रसङ्गप्राप्त गुणकर्मानुसार वर्णों के धर्मों का वर्णन करते हैं ॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१॥

पदार्थः—(**नः**) हमारे (**धियः**) कर्म (**नानानं**) भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं (**वं**) निश्चय करके (**ऊं**) अथवा (**जनानां**) सब मनुष्यों के (**व्रतानि**) कर्म (**वि**) विविध प्रकार के होते हैं (**तक्षा**) 'तक्षतीति तक्षा'=लकड़ी गढ़ने वाला पुरुष (**रिष्टं**) अपने अनुकूल लकड़ी की (**इच्छति**) इच्छा करता है (**भिषक्**) वैद्य (**रुतं**) रोगचिकित्सा को इच्छा करता है (**ब्रह्मा**) वेदवेत्ता पुरुष (**सुन्वन्तं**) वेदविद्या से संस्कृत पुरुष की इच्छा करता है, इसलिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**इन्द्राय**) [इन्दतीति इन्द्रः] जो अपने न्यायादि नियमों से राजा बनने के सद्गुण रखता है, उसी को (**परि, स्रव**) राजसिहासन पर अभिषिक्त करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पुरुष अपने अनुकूल पदार्थ को सुसंस्कृत करके बहुमूल्य बना देता है, इसी प्रकार राज्याभिषेक-योग्य राजपुरुष को परमात्मा संस्कृत करके राज्य के योग्य बनाता है ॥१॥

जरंतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(**जरतीभिः**) प्राचीन (**ओषधीभिः**) ओषधियों से निर्मित (**शकुनानां, पर्णेभिः**) उन्नतिशील पुरुषों के नभोयानादि विमानों द्वारा (**कार्मारः**) शिल्पी लोग (**अश्मभिः, द्युभिः**) दीप्तिवाले वज्रादि शस्त्रों से (**हिरण्यवन्तं**) ऐश्वर्य्यवाले राजा की (**इच्छन्ति**) इच्छा करते हैं (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**इन्द्राय**) उक्त ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा के लिये (**परि, स्रव**) अभिषेक का कारण बनें ॥२॥

भावार्थः—जो राजा दीप्तिवाले अस्त्रशस्त्र तथा विमानादि द्वारा सर्वत्र गतिशील होता है, वह परमात्मा की कृपा से ही उत्पन्न होता है, या यों कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्मों के अनुसार परमात्मा ही ऐसे राजा को अभिषिक्त करता है ॥२॥

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थः—(**कारुः, अहम्**) मैं शिल्पविद्या की शक्ति रखता हूँ (**ततः**) पुनः (**भिषक्**) वैद्य भी बन सकता हूँ (**नना**) मेरी बुद्धि नम्र है अर्थात् मैं अपनी बुद्धि को जिधर लगाना चाहूँ, लगा सकता हूँ, (**उपलप्रक्षिणी**) पाषाणों का संस्कार करनेवाली मेरी बुद्धि मुझे मन्दिरों का निर्माता भी बना सकती है, इस प्रकार (**नानाधियः**) नाना कर्मों वाले मेरे भाव (**वसूयवः**) जो ऐश्वर्य को चाहते हैं वे विद्यमान हैं, हम

लोग (**अनु, गाः**) इन्द्रियों की वृत्तियों के समान ऊंच नीच की ओर जानेवाले (**तस्थिम**) हैं, इस लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! हमारी वृत्तियों को (**इन्द्राय**) उच्चैश्वर्य्य के लिये (**परि, स्रव**) प्रवाहित करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से उच्चोद्देश्य की प्रार्थना की गई है—कि हे भगवन्! यद्यपि मेरी बुद्धि मुझे कवि, वैद्य तथा शिल्पी आदि नाना भावों की ओर ले जाती है, तथापि आप ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये मेरे मन की प्रेरणा करके मुझे उच्चैश्वर्य्य की ओर प्रेरित करें ॥३॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमंत्रिणः । शेपोरोमण्वंतौ
भेदौ वारिन्मंडूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

पदार्थः—(**अश्वः**) "अश्नुतेऽध्वानमित्यश्वः" [निरु० १ । १३ । ५] जो शीघ्रगामी होकर अपने मार्गों का अतिक्रमण करे उसका नाम 'अश्व' है । इस प्रकार यहाँ अश्व नाम विद्युत् का है (**वोळ्हा**) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाला वा प्राप्त होने वाला विद्युत् जिस प्रकार (**रथं**) गति को (**इच्छति**) चाहता है, जैसे (**उपमंत्रिणः**) उपमन्त्री लोग (**हसनां**) आह्लादजनक क्रिया की इच्छा करते हैं, जैसे (**मंडूकः**) [मंडयतीति मण्डूकः] मण्डन करनेवाला पुरुष (**वारित्**) वरणीय पदार्थ की ही इच्छा करता है, जैसे (**शेपः**) सूर्य्य का प्रकाश (**रोमण्वन्तौ**) प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में (**भेदौ**) विभाग की इच्छा करता है, इसी प्रकार योग्यतानुसार' विभाग की इच्छा करते हुए (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा को (**परि, स्रव**) अभिषिक्त करें ॥४॥

भावार्थः—मंत्र का अर्थ स्पष्ट है । यहां यह लिखना अनुपयुक्त नहीं कि इस मन्त्र के अर्थ सायणाचार्य तथा आजकल के कई एक वैदिक ज्ञानाभिमानियों ने अत्यन्त निन्दित किये हैं, जो ऐश्वर्य्य प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखते॥४॥

नवम मण्डल में यह ११२ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ एकादशर्चस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—११ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ७ विराट् पङ्क्तिः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ पङ्क्तिः । ५, ६, ८—११ निचृत् पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अब प्रसंग संगति से राजधर्म का निरूपण करते हैं:—

शर्यणावति सोममिन्द्रःपिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

पदार्थः—(**शर्यणावति**) कर्मयोगी में (**सोमं**) ईश्वरानन्दरूप (**इन्द्रः**) [इन्दतीतीन्द्रः] परमैश्वर्यं को प्राप्त होने वाला राजा (**पिबतु**) पान करे, वह राजा (**वृत्रहा**) शत्रुरूप बादलों के नाश करने वाला होता है (**बलं, दधानः**) बल को धारण करता हुआ और (**आत्मनि**) अपने आत्मा में (**महत्, वीर्यं**) बड़े बल को (**करिष्यन्**) उत्पन्न करता हुआ राज्यपद के योग्य होता है, (**इन्द्राय**) ऐसे बल-वीर्य्य-सम्पन्न राजा के लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**परि, स्रव**) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥१॥

भावार्थः—जो राजा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों के सदुपदेश से ब्रह्मानन्द का पान करता है, वह राजा बनने योग्य होता है, हे परमात्मन्! ऐसे राजा को राज्याभिषेक से अभिषिक्त करें ॥१॥

आ प॑वस्व दिशां पत आर्जी॒कात्सो॑म मीढ्वः।
ऋ॒त॒वा॒केन॑ स॒त्येन॑ श्र॒द्धया॒ तप॑सा सु॒त इन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक (**मीढ्वः**) कामप्रद (**विशां पते**) सर्वव्यापक परमात्मन्! आप (**आर्जीकात्**) सरलभाव से प्रजा में (**आ, पवस्व**) पवित्रता उत्पन्न करते हुए (**ऋतवाकेम सत्येन**) वाणी के सत्य से (**श्रद्धया, तपसा**) श्रद्धा तथा तप से (**सुतः**) जो राज्याभिषेक के योग्य है, ऐसे (**इन्द्राय**) राजा के लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**परि स्रव**) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि जो राजा सरल भाव से प्रजा पर शासन करता हुआ श्रद्धा, तप तथा सत्यादि गुणों को धारण करता है, ऐसे कर्मशील राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥२॥

प॒र्जन्य॑वृद्धं महि॒षं तं सूर्य॑स्य दुहि॒ताभ॑रत्।
तं ग॑न्ध॒र्वाः प्रत्य॑गृभ्ण॒न्तं सोमे॒ रस॒माद॑धु॒रिन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥३॥

पदार्थः—(**पर्जन्यवृद्धं**) सघन घटा के समान वृद्धि को प्राप्त (**सूर्यस्य, दुहिता**) द्युलोक की पुत्री श्रद्धा (**तं**) उक्त गुणसम्पन्न (**महिषं**) पूजायोग्य राजा को (**आभरत्**) ऐश्वर्य्यरूप गुणों से भरपूर करती है (**तं**) उस राजा की (**गन्धर्वाः**) गानविद्या के वेत्ता जो (**प्रति, अगृम्णन्**) प्रत्येक भाव ग्रहण करने वाले हैं (**सोमे**) [सूते चराचरञ्जगदिति सोमः] जो सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करे उसका नाम यहां 'सोम" है (**तं, रसं**) उक्त परमात्मा-विषयक रस को (**आदधुः**) धारण करते हुए गन्धर्व लोग (**इन्द्राय**) उपर्युक्त गुणसम्पन्न राजा के लिये गान करें (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**परि, स्रव**) ऐसे राजा के लिये राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥३॥

भावार्थः—श्रद्धायुक्त राजा ही ऐश्वर्य्यशाली होता और परमात्मा उसी को राज्याभिषेक के योग्य बनाता है अर्थात् आस्तिक राजा ही अटल ऐश्वर्य्य भोगता है, अन्य नहीं ॥३॥

ऋ॒तं वद॑न्नृतद्युम्न स॒त्यं वद॑न्त्सत्यकर्मन्।
श्र॒द्धां वद॑न्त्सोम राजन्धा॒त्रा सो॑म॒ परि॑ष्कृत॒ इन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥४॥

पदार्थः—(**ऋतं, वदन्**) यज्ञादिकों का उपदेश करते हुए (**ऋतद्युम्न**) यज्ञकर्मरूप दीप्ति से दीप्तिमान् (**सत्यं, वदन्**) सत्य भाषण करने वाले (**सत्यकर्मन्**) सत्य के आश्रित कर्म करने वाले (**राजन्**) हे राजन्! आप (**श्रद्धां, वदन्**) श्रद्धा का उपदेश करते हुए (**सोम**) सौम्यस्वरूप युक्त (**धात्रा**) संसार को धारण करने वाले (**सोम, परिष्कृतः**) परमात्मा से परिष्कार किये गये (**इन्द्राय**) राजा के लिये (**इन्दो**) हे परमात्मन्! आप (**परि, स्रव**) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥४॥

भावार्थः—जो स्वयं यज्ञादि कर्म करता तथा औरों को यज्ञादि कर्म करने का उपदेश करता है उस सत्यभाषण और सत्य के आश्रित कर्म करने वाले राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥४॥

स॒त्यमु॑ग्रस्य बृह॒तः सं स्र॑वन्ति संस्र॒वाः।
सं य॑न्ति र॒सिनो॒ रसाः॑ पुना॒नो ब्रह्म॑णा हर॒ इन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥५॥

पदार्थः—(**उग्रस्य, सत्यं, बृहतः**) संग्राम में सत्यता होने से बढ़े हुए जिस पुरुष के (**संस्रवाः**) सत्यरूप स्रोत से अनेक सत्य के प्रवाह (**सं, स्रवन्ति**) बह रहे हैं (**रसिनः**) रसिक पुरुषों के (**रसाः**) रस (**सं, यन्ति**) जिसको भलीभांति प्राप्त होते हैं (**ब्रह्मणा**) वेदवेत्ता विद्वान् से (**पुनानः**) जो पवित्र किया गया है (**इन्द्राय**) ऐसे राजा के लिये (**हरे**) हे हरणशील (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**परि, स्रव**) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥५॥

भावार्थः—वेदवेत्ता विद्वान् से शिक्षा पाया हुआ जो राजा अपने सत्यादि धर्मों का त्याग नहीं करता, उसका राज्य अवश्यमेव चिरस्थायी होता और वह सांसारिक अनेक रसों का भोक्ता होता है ॥५॥

अब ऐश्वर्यंनिरूपण के पश्चात् मोक्षधर्म का निरूपण करते हैं ॥

यत्र॑ ब्र॒ह्मा प॑वमान छन्द॒स्यां॒३॑ वाचं॒ वद॑न्।
ग्राव्णा॒ सोमे॑ मही॒यते॒ सोमे॑नान॒न्दं ज॒नय॒न्निन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥६॥

पदार्थः—(**यत्र**) जिस संन्यासावस्था में (**ब्रह्मा**) वेदवेत्ता विद्वान् (**छन्दस्यां,**

वाचं, वदन्) वेदविषयक वाणी का वर्णन करता हुआ (ग्राव्णा) [गुणातीति ग्रावा तेन ग्राव्णा, चित्तवृत्तिनिरोधेन] चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा (सोमे) सौम्यस्वरूप परमात्मा में (महीयते) मोक्षाख्य पूज्यपद को लाभ करता है (सोमेन) सोमस्वभाव से (आनन्दं, जनयन्) आनन्द को लाभ करने वाले (इन्द्राय) योगेन्द्र संन्यासी के लिये (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) अपने ज्ञान द्वारा पूर्णाभिषेक करें ।।६।।

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि वेदवेत्ता विद्वान् संन्यासावस्था में वेदरूप वाणी का प्रकाश करता हुआ अर्थात् वैदिकधर्म का उपदेश करता हुआ चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा परमात्मा में लीन होकर इतस्ततः विचरता है । वह सब के पवित्र करने वाला होता है, हे परमात्मन् ! आप ऐसे संन्यासी को पूर्णाभिषिक्त करें ।।६।।

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन्मां धेहि
पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।७।।

पदार्थः—(यत्र) जिस मोक्ष में (अजस्रं, ज्योतिः) निरन्तर ज्योति का प्रकाश होता तथा (यस्मिन्, लोके) जिस ज्ञान में (स्वः, हितं) सुख ही सुख होता है (तस्मिन्, अमृते) उस अमृत अवस्था में (अक्षिते) जो वृद्धि तथा क्षय से रहित है (पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् (मां, धेहि) मुझे रखें, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (इन्द्राय) उक्त ज्ञानयोगी के लिये आप (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का कारण बनें ।।७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के लिये सदुपदेशरूप वाणी प्रदान करें और वृद्धि तथा क्षय से रहित अमृत अवस्था प्राप्त करायें, जिससे वेदरूप वाणी का प्रकाश हो और आप अपनी कृपा से ज्ञानयोगी को अभिषिक्त करें ।।७।।

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।८।।

पदार्थः—(यत्र) जिस अवस्था में (वैवस्वतः, राजा) काल ही राजा है (यत्र, अवरोधनं, दिवः) जहां दिन तथा रात का वशीकरण है (यत्र, अमूः, यह्वतीः, आपः) जहां उक्त आध्यात्मिक ज्ञानों का बाहुल्य है (तत्र) उस पद में (मां) मुझको (अमृतं, कृधि,) अमृत बनाओ (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक के निमित्त बनें ।।८।।

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगी को सत्य तथा अनृत के निर्णय में अभिषिक्त करता है अर्थात् ज्ञानयोगीरूप राजा सत्य तथा अनृत का निर्णय करके अपने विवेकरूप राज्य को अटल बनाता है ।।८।।

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।९।।

पदार्थः—(त्रिनाके, त्रिदिवे, दिवः) ज्ञानरूप स्वर्गलोक में (यत्र, अनुकामं, चरणं) जहां स्वेच्छानुसार विचरण होता है, (यत्र) जिसमें (ज्योतिष्मन्तः) केवल ज्ञान ही का (लोकाः) दर्शन है, (तत्र) वहां (मां) मुझको (अमृतं) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करो (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ।।९।।

भावार्थः—मुक्त पुरुष मुक्ति अवस्था में अव्याहतगति होकर विचरता है अर्थात् उसको उस अवस्था में किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहता, या यों कहो कि वह स्वतंत्रतापूर्वक ईश्वरीय सत्ता में सम्मिलित होता है । हे परमपिता परमात्मन् ! आप ज्ञानयोगी को अभिषिक्त करके वह अवस्था प्राप्त करायें ।।९।।

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् । स्वधा च यत्र
तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।१०।।

पदार्थः—(यत्र, कामा,) जहां सब काम (निकामाः) निष्काम किये जाते हैं (च) और (यत्र) जहां (ब्रध्नस्य) ब्रह्मज्ञान का (विष्टपं) सर्वोच्च पद है (यत्र) जहां (स्वधा) अमृत (च) और उससे (तृप्तिश्च) तृप्ति है (तत्र) वहां (मा) मुझको (अमृतं, कृधि) मोक्षपद प्राप्त करायें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ।।१०।।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! जो ब्रह्मज्ञान का उच्चपद है और जहाँ स्वधा से तृप्ति होती है, वह मोक्षरूप सुख मुझे प्रदान कीजिये, या यों कहो कि वह मुक्तिसुख जिससे एकमात्र ब्रह्मानन्द का ही अनुभव होता है, अन्य विषय आदि जिस अवस्था में सब तुच्छ हो जाते हैं, वह मुक्ति अवस्था मुझे प्राप्त करायें ।।१०।।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः
कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।११।।

पदार्थः—(**यत्र**) जहां (**आनन्दाः**) आनन्द (**च**) और (**मोदाः**) हर्ष है (**मुद, च, प्रमुदः**) और जहां आनन्दित तथा हर्षित मुक्त पुरुष (**आसते**) विराजमान होता है (**कामस्य, यत्र, आप्ताः कामाः**) और जहां कामना वालों को सब काम प्राप्त हैं (**तत्र**) वहां (**मां**) मुझको (**अमृतं**) मोक्षसुख का भागी (**कृधि**) करें (**इन्दो**) हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) ज्ञानयोगी के लिये (**परि, स्रव**) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥११॥

भावार्थः—हे भगवन् ! जिस अवस्था में आनन्द तथा मोद होता है और जहां सब कामनायें पूण होती हैं वह अवस्था मुझे प्राप्त करायें, या यों कहो कि हे परमात्मन् ! उस मुक्ति-अवस्था में जहां आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है, अन्य सब भाव उस समय तुच्छ हो जाते हैं, वह मुक्ति-अवस्था मुझे प्राप्त हो ॥११॥

नवम मण्डल में वह ११३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य चतुर्दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—४ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् पङ्क्तिः । ३, ४ पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अब मुक्तपुरुष के ऐश्वर्य का निरूपण करते हैं ।

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् । तमाहुः सुप्रजा
इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

पदार्थः—(**यः**) जो पुरुष (**पवमानस्य**) सबको पवित्र करने वाले (**इन्दोः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के (**धामानि**) कर्म, उपासना तथा ज्ञानरूप तीनों काण्डों का (**अनु अक्रमीत्**) भले प्रकार अनुष्ठान करता है (**तं**) उसको (**सुप्रजाः इति, आहुः**) शुभ जन्म वाला कहा जाता है, (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (**यः**) जो पुरुष (**ते**) तुम्हारे में (**मनः**) मन (**अविधत्**) लगाता है (**इन्द्राय**) उस उपासक के लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (**परि, स्रव**) ज्ञानगति से प्रवाहित हों ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा परमात्मप्राप्ति का भले प्रकार अनुष्ठान करता है, या यों कहो कि जब उपासक अनन्य भक्ति से परमात्मपरायण होकर उसी की उपासना में तत्पर रहता है, तब परमात्मा उसके अन्तःकरण में स्वसत्ता का आविर्भाव उत्पन्न करते हैं॥१॥

ऋषे मंत्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः । सोमं नमस्य
राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(**ऋषे**) हे सर्वव्यापक (**कश्यप**) सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप (**मंत्रकृतां, स्तोमैः**) स्तुतियुक्त मंत्रानुष्ठान करनेवाले उपासकों की (**गिरः**) उपासनारूप वाणियों को (**उद्वर्धयन्**) बढ़ाते हुए उपासक का कल्याण करें, (**यः**) जो उपासक (**सोमं, राजानं**) सोमस्वभाव परमात्मा को (**नमस्य**) प्रभु मानकर (**जज्ञे**) प्रकाशित होता है, (**वीरुधां, पतिः**) आप वनस्पतियों के स्वामी हैं, इसलिये (**इन्द्राय**) उपासक के लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (**परि, स्रव**) ज्ञानद्वारा उसके हृदय में व्याप्त हों ॥१॥

भावार्थः—जो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्डों का पति है उससे यहां ज्ञानयोग की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानवर्द्धक वाणियों द्वारा उपासक के हृदय में ज्ञान की वृद्धि करें ॥२॥

अब मुक्त पुरुष की अवस्था का निरूपण करते हैं:—

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः । देवा आदित्या
ये सप्ततेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थः—मुक्त पुरुष के लिये (**सप्त, दिशः**) भू आदि सातों लोक (**नानासूर्याः**) नाना प्रकार के दिव्य प्रकाश वाले हो जाते हैं, और (**सप्त**) इन्द्रियों के सातों छिद्र प्राणों की गति द्वारा (**होतारः**) होता तथा (**ऋत्विजः**) ऋत्विक् हो जाते हैं (**ये, सप्त देवाः**) प्रकृति के महत्तत्त्वादि सात कार्य्य उसके लिये मंगलमय होते हैं (**आदित्याः**) सूर्य्य सुखप्रद होता है (**तेभिः**) उक्त शक्तियों द्वारा मुक्त पुरुष यह प्रार्थना करता है कि (**सोम**) हे सोम ! (**नः**) हमारी (**अभि, रक्ष**) रक्षा कर (**इन्दो**) हे प्राणप्रद ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये आप (**परि, स्रव**) सुधा की वृष्टि करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में मुक्तपुरुष की विभूति का वर्णन किया गया है कि उसकी सब लोकों में दिव्य दृष्टि हो जाती है। "दिशा" शब्द का तात्पर्य्य यहां लोक में है और वह भूः, भुवः तथा स्वरादि सात लोक हैं अर्थात् विकृति रूप से कार्य्य और प्रकृतिरूप से जो कारण हैं वह सातों अखण्डनीय शक्तियाँ उसके लिये मंगलप्रद होती हैं ॥३॥

अब मुक्तपुरुष की ऐश्वर्यरक्षा के लिये विघ्नों की निवृत्ति कथन करते हैं॥

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः। अरातीवा मा
नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

पदार्थः—(**राजन्**) हे सर्वोपरि विराजमान परमात्मन् (**ते**) तुम्हारा (**यत्**) जो (**शृतं**) परिपक्व (**हविः**) ज्ञानरूप फल है (**तेन**) उसके द्वारा (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (**नः**) हमारी (**अभि, रक्ष**) सर्व प्रकार से रक्षा करें (**अरातीवा**) शत्रुलोग (**नः**) हमको (**मा, तारीत्**) मत सतावें (**च**) और (**नः**) हमारे (**किंचन**) मोक्ष सम्बन्धी किसी भी ऐश्वर्य्य को (**मो आममत्**) नष्ट न करें (**इन्दो**) हे परमात्मन् (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**परि, स्रव**) सुधा की वृष्टि करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में मुक्तिरूप फल का उपसंहार करते हुए सब विघ्नों की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई है कि हे सर्वरक्षक भगवन्! वैदिक कर्म तथा वैदिक अनुष्ठान के विरोधी शत्रुओं से हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ताकि वह हमारे किसी अनुष्ठान में विघ्नकारी न हों और अपनी परम कृपा से मोक्ष सम्बन्धी ऐश्वर्य्य हमें प्रदान करें, यह हमारी आपसे सविनय प्रार्थना है ॥४॥

नवम मण्डल में यह ११४वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये
नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

सूक्त १

ऋषिः–१—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ विराट्त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ७ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः धैवतः ॥

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात्।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१॥

पदार्थः (**बृहन्**) महान् शक्तिवाला (**अग्निः**) अग्नि (**रुशता**) प्रकाशमान (**भानुना**) तेज से तथा (**उषसाम्**) प्रातःसायं कीं उषाओं की (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**निर्जगन्वान्**) निकलता हुआ (**अग्रे**) पहले (**तमसः**) अन्धकार के (**ऊर्ध्वः**) ऊपर (**अस्थात्**) विराजमान होता है तथा (**स्वङ्गः**) अपनी उत्तम अंगभूत दीप्तियों से युक्त (**जातः**) होकर (**विश्वा**) समस्त (**सद्मानि**) स्थानों वा लोकों को (**आप्राः**) व्याप्त करता है।

भावार्थः—महान् अग्नि सूर्यरूप में अथवा अन्य प्रकाशक शक्तियों के रूप में उषाओं से निकल कर अपने प्रकाश से अन्धकार पर अधिकार जमाता है और अपनी शक्तियों से समस्त विश्व को प्रकाशित एवं परिपूर्ण करता है ॥१॥

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥२॥

पदार्थः—(**जातः**) प्रकट (**अग्ने**) अग्नि (**चारुः**) उत्तम है और वही (**रोदसोः**) पृथिवी और द्युलोक में (**गर्भः**) गर्भवत् गुप्त (**असि**) है। वह (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**विभृतः**) छिपा है। (**चित्रः**), विचित्र (**सः**) (**शिशुः**) ओषधि का शिशु अग्नि (**अक्तून्**) रात्रिसम कालमे (**तमांसि**) अन्धकारों के ऊपर (**परि**) अधिकार जमाता है। (**मातृभ्यः**) आकाशस्थ मेघादिकों से (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**प्र गाः**) आता है ।

भावार्थः— यह अग्नि द्यु और पृथिवी लोक में व्याप्त है, ओषधि वनस्पतियों में भी है, अन्धकार को दूर करता है और मेघों में बिजली के रूप में गर्जता हुआ प्रकट होता है ॥२॥

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥३॥

पदार्थः—(**बृहन्**) महान् (**विष्णुः**) व्यापनशील (**जातः**) प्रसिद्ध यह अग्नि (**इत्था**) इस प्रकार (**अस्य**) इस लोक के (**परमम्**) परम लोक को(**विद्वान्**) प्राप्त होकर (**तृतीयम्**) अपने तृतीय रूप सूर्य का (**अभिपाति**) पालन करता है, (**यद्**) जब विद्वान् लोग (**सचेतसः**) विज्ञानयुक्त होकर (**अस्य**) इस अग्नि के (**आसा**) मुख से अथवा माध्यम से (**पयः**) जल और विविध तरल पदार्थों को (**अक्रत**) बनाते हैं और (**अत्र**) इसके (**स्वम्**) तत्त्व वा सम्पत्ति की (**अर्चन्ति**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—यह व्याप्त अग्नि अपने तृतीय रूप (भाई) सूर्य की द्युलोक में रक्षा करता है और विज्ञान जानने वाले इसके माध्यम से बहुत से तरल पदार्थों का निर्माण करते हैं तथा इसकी सम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं ॥३॥

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४॥

पदार्थः—(**अतः**) इस लिए (**पितुभृतः**) अन्न को धारण करने वाली (**जनित्रीः**) उत्पादन शक्तियां ओषधि आदि (**अन्नावृधम्**) अन्न को बढ़ाने वाले (**त्वा**) इस अग्नि को यज्ञ में (**अन्नैः**) अन्नों के द्वारा (**प्रतिचरन्ति**) प्राप्त होती हैं, यह अग्नि पुनः (**ईम्**) वर्षाजल को (**प्रति**) प्राप्त होकर (**अन्यरूपाः**) अन्य रूपों में विद्यमान (**ताः**) उनको (**एषि**) पहुंचता है, (**त्वम्**) यह अग्नि

(**मानुषीसु**) मानवी (**विक्षु**) प्रजाओं में (**होता**) अन्न आदि पदार्थों का ग्रहण कर रूपान्तर में दाता (**असि**) है ।

भावार्थः—अन्न आदि पदार्थों की उत्पादक शक्तियां यज्ञ में अन्न के द्वारा इस अग्नि को प्राप्त होती हैं। पुनः यह अग्नि वृष्टि के द्वारा इन्हें रूपान्तर से प्राप्त होता है और यह अग्नि ही मानवी प्रजा में यज्ञ आदि के द्वारा पदार्थों को ग्रहण करने वाला और अन्न आदि को पचाने वाला है ॥४॥

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् ॥५॥

पदार्थः—(**अध्वरस्य**) हिंसारहित (**यज्ञस्य यज्ञस्य**) प्रत्येक यज्ञ के (**केतुम्**) प्रकाशक (**होतारम्**) ग्रहण करने वाले (**मह्ना**) प्रकाश से (**रुशन्तम्**) दीप्तिमान् (**श्रिया**) श्री से (**प्रत्यर्धिम्**) बढ़ाने वाले, (**देवस्य देवस्य**) प्रत्येक यज्ञ देवता के लिए (**चित्ररथम्**) विचित्र रथवत् हव्यवाहक (**त्वां**) इस (**जनानाम्**) लोगों के (**अतिथिम्**) यज्ञादि कर्म में सेवनीय (**अग्निम्**) अग्नि को हम जानें ।

भावार्थः—प्रत्येक यज्ञ के सिद्ध करने में साधन, प्रत्येक दिव्य शक्ति तक यज्ञ प्रदत्त तत्त्व को पहुंचाने वाले प्रकाशशील शक्तिशाली और लोगों के द्वारा अतिथिवत् स्वीकार्य और श्री से वढ़ाने वाले इस अग्नि को हम जानें ॥५॥

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥६॥

पदार्थः- (**अध**) और (**सः**) वह (**तु**) ही (**अग्निः**) अग्नि (**पेशनानि**) सुवर्ण आदि धातु रूप (**वस्त्राणि**) आच्छादनों को (**वसानः**) धारण करता हुआ (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**नाभा**) अन्तराल में विद्यमान हैं (**राजन्**) दीप्तिमान, (**अरुषः**) हिंसारहित, (**जातः**) प्रकट और (**पुरोहितः**) सबके आगे रहने वाला है और (**इह**) इस (**इडाया**) पृथिवी के (**पदे**) ऊपर वेदि में (**देवान्**) देवों की उसके द्वारा (**यक्षि**) होम आदि से संगति करा ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! पृथिवी पर वेदि बनाकर उस अग्नि को माध्यम बनाकर देवों का संगतिकरण यज्ञ आदि के द्वारा कर जो कि अत्यन्त

प्रकाशमान है और सुवर्ण आदि धातुओं को उत्पन्न कर धारण करता हुआ पृथिवी की नाभि में स्थित है ॥६॥

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥७॥

पदार्थः—(**मातरा**) माता-पिता को (**पुत्रः न**) पुत्र की भांति (**अग्ने**) यह अग्नि (**सदा**) सर्वदा (**हि**) ही (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी को (**आततन्थ**) प्रकाश से पूरित करता है । (**यविष्ठ**) अत्यन्त बलशाली, (**सहस्य**) शक्तिशाली यह अग्नि (**अच्छ**) निश्चय ही (**उषतः**) जानने की कामना करने वाले को (**याहि**) प्राप्त होता है तथा (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**इह**) यहां (**यक्षि**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पुत्र माता-पिता को बढ़ाता है उसी प्रकार यह अग्नि द्युलोक और पृथिवी का विस्तार करता है। इसके ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वालों को यह शक्तिमान् अग्नि प्राप्त होता है और इस लोक में विविध दिव्य पदार्थों को प्राप्त कराता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पावनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः – धैवतः ॥

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यविष्ठ**) बलशाली और (**ऋतुपते**) ऋतुओं का पालक है यही, (**ऋतून्**) ऋतुओं को प्राप्त कराता हुआ (**उषतः**) कामनावान् (**देवान्**) विद्वान् और मनुष्य आदि का (**पिप्रीहि**) पालन करता है और (**इह**) इस लोक में (**यज**) संगतिकरण के कार्य को कायम रखता है, (**ये**) जो (**दैव्याः**) दिव्य (**ऋत्विजः**) ऋत्विग् है, (**तेभिः**) उनके साथ (**त्वम्**) यह अग्नि (**होतॄणाम्**) यज्ञ करने वालों में (**यजिष्ठः**) अतिश्रेष्ठ (**असि**) है ।

भावार्थः - यह अग्नि बलशाली, ऋतुओं का दाता और उनका पालक है। यह यज्ञ करने वाले मनुष्यों और विद्वानों की रक्षा करता है और इस लोक में समस्त संगतिकरण की वैज्ञानिक क्रिया को पूरा करता है। जो विश्व में दैवी पदार्थ विश्वयज्ञ के ऋत्विग् हैं उनके साथ यह यज्ञ करने वालों का श्रेष्ठतम साधन है ॥१॥

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**होत्रम्**) हवनीय पदार्थों में व्याप्त होता है, (**पोत्रम्**) पावनीय वस्तुओं में व्याप्त होता है (**उत**) और (**जनानाम्**) लोगों के लिए (**मन्धाता**) ज्ञान का आश्रयभूत, (**द्रविणोदाः**) धन का दाता तथा (**ऋतावा**) सृष्टि नियमों पर चलने वाला है, (**वयम्**) हम (**हवींषि**) हवियों को (**स्वाहा**) मन्त्र के साथ (**कृणवाम**) प्रदान करें और (**अग्निः**) यजमान (**देवः**) दिव्य गुण युक्त (**अर्हन्**) होकर (**देवान्**) विद्वानों का सत्कार करे तथा यज्ञ के देवों की संगतिकरण वा ज्ञान करे ।

भावार्थः—यह अग्नि हवनीय और पवनीय पदार्थों में व्याप्त होता है। यह सृष्टि के नियमों पर चलने वाला और लोगों के लिए ज्ञान का आश्रय और धन आदि का दाता है। हम सबको चाहिए कि मन्त्रपूर्वक अग्नि में आहुति प्रदान करें और यजमान देवत्व को प्राप्त कर विद्वानों का सत्कार करे और यज्ञ के देवों का ज्ञान प्राप्त करे ॥२॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥३॥

पदार्थः—हम (**देवानाम्**) विद्वान् लोगों के (**पन्थाम्**) मार्ग पर (**आगन्म**) चलें, (**अपि**) और (**यत्**) जो (**शक्नवाम**) कर सकते हैं (**तत्**) उसके (**अनु**) क्रम से (**प्रवोढुम्**) पूरा करने में समर्थ हों । (**सः**) वह (**विद्वान्**) ज्ञानवान् (**अग्निः**) यजमान (**यजात्**) यज्ञ करे, (**सः**) वह (**इत उ**) ही इसका (**होता**) होता है, (**सः**) वही (**अध्वरान्**) हिंसारहित यज्ञों को करता है और (**सः**) वही (**ऋतून्**) ऋतुओं को (**कल्पयाति**) पूर्णतया निभाता है ।

भावार्थः—हम अग्नि विद्या के जानने में विद्वानों के बताये मार्ग का अनुगमन करें । जिस कर्म को करने की शक्ति हम रखते हैं उसे विधिवत्

पूरा करें। विद्वान् यजमान ही यज्ञ करता है, हिंसारहित कर्मों को करता, ऋतुओं को भली प्रकार निभाता है ॥३॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥४॥

पदार्थ—(**देवाः**) हे विद्वान् लोगो ! (**अविदुस्तरासः**) न जानते हुये अथवा न जानकार होकर (**यद्**) जब हम (**वः विदुषाम्**) आप विद्वानों के नियम व्रत आदि का (**प्रमिनाम**) उल्लंघन करें तो (**अग्निः**) स्विष्टकृत् (**अग्निः**) अग्नि अथवा (**विद्वान्**) ज्ञानवान् मनुष्य (**तत्**) उस (**विश्वम्**) समस्त कर्म को प्राप्त होकर (**आ पृणाति**) उसी प्रकार पूरा करें जिस प्रकार अग्नि (**येभिः**) इन (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**देवान्**) उनके दिव्य गुणों को पूरा करता है।

भावार्थः—यदि हम न जानते हुए विद्वानों द्वारा बताये नियम आदि का यज्ञ में भङ्ग करें तो स्विष्टकृत् अग्नि अथवा अधिक विद्वान् उसे ज्ञान देकर पूर्ण करें जिस प्रकार अग्नि ऋतुओं के साथ उसके समस्त गुणों का संगमन करता है ॥४॥

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥५॥

पदार्थः—(**दीनदक्षाः**) हीनशक्ति (**मर्त्यासः**) मनुष्य (**यत्**) जब (**पाकत्रा**) पवित्र (**मनसा**) मन से (**यज्ञस्य**) यज्ञ के विषय में (**न**) नहीं (**मन्वते**) जान सकें (**तत्**) तब (**होता**) सदा हवन करने वाला (**क्रतुविद्**) कर्मों की प्रक्रिया को जानने वाला (**यजिष्ठ**) अत्यन्त यज्ञकुशल (**अग्निः**) विद्वान् (**विजानन्**) मर्म को जानता हुआ (**ऋतुशः**) ऋतुओं के अनुसार (**देवान्**) देवों के निमित्त यज्ञ का सम्पादन करावे।

भावार्थः—समझने की शक्ति से न्यून मनुष्य जब यज्ञ कर्म के विषय में कोई त्रुटि करें वा कुछ न समझ पावें तो नियमित यज्ञ करने वाला यज्ञ की प्रक्रिया का ज्ञाता विद्वान् ऋतुओं के अनुसार उनसे यज्ञ करावे ॥५॥

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६॥

पदार्थ—(**विश्वेषाम्**) समस्त (**अध्वराणाम्**) यज्ञों के (**अनीकम्**) अद्भुत (**चित्रम्**) विचित्र (**केतुम्**) प्रकाशक (**त्वा**) इस अग्नि को (**जनिता**) इसकी जनक शक्तियों ने (**जजान**) उत्पन्न किया है। (**स**) यह अग्नि (**नृवतीः**) मनुष्यों से बसी हुई (**क्षाः**) भूमियों (**अनु**) में (**स्पार्हाः**) चाहने योग्य (**क्षुमतीः**) अन्नों से पूर्ण (**विश्वजन्याः**) सर्व हितकारी (**इषः**) ज्ञान को (**आ यजस्व**) प्रदान करता है।

भावार्थः—यह अग्नि समस्त यज्ञों का प्रकाशक एवं साधन है, इसके जनक कारणों ने इसे ऐसा ही उत्पन्न किया है और यह यज्ञ द्वारा समस्त पृथिवी के लोगों को अन्न आदि और ज्ञान का दाता है ॥६॥

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥७॥

पदार्थ—(**यं त्वा**) जिस इस अग्नि को द्युलोक और पृथिवी उत्पन्न करते हैं, (**यं त्वा**) जिस इस अग्नि को (**आपः**) जल और (**यं त्वा**) जिस इस अग्नि को (**सुजनिमा**) उत्तम उत्पादक (**त्वष्टा**) मेघ (**जजान**) उत्पन्न करता है, वह (**द्युमद्**) प्रकाशमान (**समिधानः**) समिधाओं से प्रदीप्त (**अग्ने**) अग्नि (**पितृयाणम्**) कर्मकाण्ड के कर्त्ता विद्वानों के द्वारा चले जाने वाले (**पन्थाम्**) मार्ग को (**प्रविद्वान्**) प्राप्त कराता हुआ (**अनु वि भाहि**) प्रकाशित रहे।

भावार्थः—इस अग्नि को सूर्य, पृथिवी, जल और मेघ विभिन्न प्रकारों में उत्पन्न करते हैं। यह कर्मकाण्डी विद्वानों द्वारा चले जाने वाले मार्ग को प्राप्त कराता हुआ हमारे गृहों में सदा प्रकाशित रहे ॥७॥

यह दशम मण्डल में द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३

ऋषिः—१ ७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५—७ त्रिष्टप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

पदार्थः (**इनः**) सबका राजा, (**राजन्**) प्रकाशमान, (**अरतिः**) अपनी गति से युक्त, (**समिद्धः**) दीप्तिमान (**रौद्रः**) भयंकर तथा (**सुषुमान्**) उत्तम सामर्थ्यों वाला यह सूर्य रूप अग्नि (**दक्षाय**) जगत् को शक्ति देने के लिए (**अदर्शि**) दिखाई पड़ता है, (**चिकित्**) सब में ज्ञान को जागृत करने वाला (**बृहता**) महान् (**भासा**) प्रकाश से (**वि भाति**) प्रकाशमान होता है, प्रातः काल में वह (**असिक्नीम्**) काली रात्रि को हटाता हुआ (**रुषतीम्**) उषा को प्राप्त करता है और सायंकाल में उषा को हटाता हुआ काली रात्रि को प्राप्त करता है।

भावार्थ—ग्रहों का राजा, प्रकाशमान वृहत् सूर्य जगत् को बल देने के लिए प्रकाशित होता है। वह प्रकाश से प्रकाशमान सूर्य प्रातः काल में रात्रि को हटाकर उषा को और सायंकाल में उषा को हटाकर रात्रि को प्राप्त करता है ॥१॥

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

पदार्थः—वह अग्नि (**यद्**) जब (**कृष्णाम्**) कृष्ण वर्णवाली (**एनीम्**) जाती हुई रात्रि को (**वर्पसा**) अपने प्रकाशमान रूप से (**बृहतः**) महान् (**पितुः**) आदित्य से (**जाम्**) पैदा होने वाली (**योषाम्**) उषा को (**जनयन्**) प्रकट करता हुआ (**अभिभूत्**) दबा लेता है तब (**अरतिः**) गमनशील अग्नि (**दिवः**) द्युलोक के (**वसुभिः**) आच्छादक अपने तेजों से (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**भानुम्**) प्रकाश को (**ऊर्ध्वम्**) ऊपर रोकते वा फैलाते हुए (**विभाति**) प्रकाशमान होता है।

भावार्थ—अग्नि अपने तेज से काली रात्रि के अन्धकार को दूर कर, सूर्य से उषा को पैदा कर, द्युलोक में प्रकाश से सूर्य को ऊपर चमका कर स्वयं प्रकाशित हो रहा है ॥२॥

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

पदार्थः—(**भद्रः**) कल्याणकारी तथा (**जारः**) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (**स्वसारम्**) उषा के (**पश्चात्**) पीछे (**अभ्येति**) दौड़ता है, तथा (**भद्रया**) उस कल्याणी उषा से (**सचमानः**) समकाल में युक्त होकर (**आगात्**) प्राप्त होता है (**अग्निः**) अग्नि (**सुप्रकेतैः**) उत्तम प्रकार से दिखाई पड़ने वाले

(**उशद्भिः**) कमनीय (**वर्णैः**) वर्णों वाले (**द्युभिः**) दीप्त तेजों से (**वितिष्ठन्**) सर्वत्र वर्तमान होकर (**रामम्**) रात्रि के अन्धकार को (**अभि अस्थात्**) दबाता है।

भावार्थः—यहाँ अलंकार से सूर्य और उषा के वर्णन से अग्नि की प्रशंसा की गई है। सूर्य द्युलोक से उत्पन्न उषा के पीछे दौड़ता है और उससे युक्त होकर समान काल में विद्यमान होता है। यह सूर्य रात्रि का जीर्ण करने वाला होने से जार है। अग्नि अपने प्रकाश और तेज से सायंकाल रात्रि के अन्धकार को, जिसको राम कहा जाता है, दबाता है ॥३॥

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥४॥

पदार्थः—(**यामन्**) यज्ञ में (**बृहतः**) महान् (**सख्युः**) ऋत्विजों और देवों के मित्र (**शिवस्य**) कल्याणकारक (**अस्य**) इस अग्नि की (**यामासः**) रश्मियाँ (**इन्धानाः**) दीप्त हुई (**वग्नून्**) मन्त्र पाठ करने वालों की मन्त्रमयी वाणी को (**न**) नहीं रोकती, (**ईड्यस्य**) प्रशंसनीय (**वृष्णः**) कामनाओं के पूरक (**बृहतः**) महान् (**स्वासः**) सामग्री आदि के ग्रहण करने में उत्तम मुख वाले इस अग्नि के (**अक्तवः**) हवि से सिक्त (**भामासः**) तीक्ष्ण तेज (**चिकित्रे**) सर्वत्र फैलते हैं।

भावार्थः—यज्ञ में कल्याणकारी अग्नि के तेज से दीप्त होकर मन्त्रपाठ में बाधक नहीं होते हैं। अग्नि महान् है और सामग्री आदि को ग्रहण करने में इसका मुख बहुत विस्तृत है। हवन समय इसका तीक्ष्ण तेज सर्वत्र फैलता है ॥४॥

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥५॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिसका वर्णन चल रहा है, (**रोचमानस्य**) दीप्यमान (**बृहतः**) महान् (**सुदिवः**) उत्तम दीप्ति वाले उस अग्नि के (**भामासः**) दीप्त प्रकाश (**स्वना न**) मरुतों [वायुओं] के साथ (**पवन्ते**) सर्वत्र प्राप्त होते हैं, वही यह अग्नि (**ज्येष्ठेभिः**) श्रेष्ठ (**तेजिष्ठैः**) तेजस्वितम (**क्रीडुमद्भिः**) क्रीडनशील (**वर्षिष्ठैः**) बृहत्तम (**भानुभिः**) तेजों से (**द्याम्**) द्युलोक को (**नक्षति**) व्याप्त करता है।

भावार्थः--यज्ञाग्नि में डाले गये पदार्थों से युक्त अग्नि का तेज सर्वत्र वायुओं के साथ फैलता है। अग्नि के तीव्र और फैलने वाले तेज द्युलोक तक व्याप्त होते हैं ॥५॥

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥६॥

पदार्थः—(**देवतमः**) यज्ञ देवों में मुख्य (**विभ्वा**) व्यापनशील (**यः**) जो अग्नि (**अरतिः**) गतिशील है, तथा (**प्रत्नेभिः**) सनातन (**रेभद्भिः**) वायु के साथ शब्द रूप (**रुशद्भिः**) प्रकाशमान तेजों से (**विभाति**) प्रकाशित होता है, (**ददृशानपवेः**) मेघों में रहकर वज्र को दिखाने वाले (**जेहमानस्य**) गतियुक्त (**अस्य**) उस इस अग्नि के (**शुष्मासः**) शुष्कता आदि गुण (**नियुद्भिः**) वायुओं के साथ (**स्वनयन्**) शब्दायमान होते हैं।

भावार्थः– यह अग्नि स्वभाव से तेज वाला है। मेघस्थ विद्युत् भी इसके ही कारण है। यह वायु के साथ जब मिल जाता है तो इसके शोषक आदि गुण शब्द करते हैं। जलती अग्नि चटचटाती है और बिजली भी कड़कती है ॥६॥

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७॥

पदार्थः--(**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**नः**) हमारे यज्ञ में (**महि**) महान् देवों को (**आ यक्षि**) संगतिकरण कराता है (**युवत्योः**) परस्पर मिश्रित (**दिवापृथिव्योः**) द्यु और पृथिवी लोकों के मध्य (**अरतिः**) गतिमान् वह अग्नि हमारे यज्ञ में (**आ सत्सि**) स्थिति पाता है (**सुतुकः**) त्वरायुक्त वह अग्नि (**सुतुकेभिः**) वेगवाले (**रभस्वद्भिः**) अत्यन्त गतिमान् (**अश्वैः**) प्रकाश किरणों से युक्त (**रभस्वान्**) गतिशील हुआ (**इह**) इस लोक व्यवहार में (**आ गम्याः**) प्राप्त होवे।

भावार्थ – अग्नि हमारे यज्ञों में यज्ञ देवों का संगतिकरण कराता है। द्युलोक और पृथिवी दोनों में स्थित अग्नि हमारे यज्ञों में स्थान रखता है। वह अत्यन्त वेगवाला है और सभी गतियों में अधिक गतिशील है। वह वेगवाले प्रकाश से युक्त होकर अत्यन्त वेगवाला होकर इस लोक के अनेक व्यवहारों का साधन बनता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में तृतीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१—४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१॥

पदार्थ—(**राजन्**) हे प्रकाशमान (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**ते**) तुम्हारी आज्ञा के पालनार्थ (**प्र यक्षि**) हम यज्ञ करते हैं, (**ते**) तुम्हारे लिए (**मन्म**) मननीय स्तुति (**प्र इयर्मि**) करते हैं, (**यथा**) इसलिए कि (**नः**) हमारे (**हवेषु**) स्तुति आदि कार्यों में (**वन्द्यः**) वन्दनीय आप ही (**भुवः**) होते हैं, (**प्रत्न**) हे अनादि भगवन् ! (**इयक्षवे**) यज्ञ करने वाले (**पूरवे**) मनुष्य के लिए (**त्वम्**) आप ही (**धन्वन्**) मरुदेश में (**प्रपा न**) प्रपा=प्याऊ के समान हैं।

भावार्थः –प्रकाशस्वरूप भगवान् ही की आज्ञापालनार्थ यज्ञ आदि उत्तम कर्म किये जाते हैं और इन सभी कर्मों में हमारा एकमात्र उपास्य वही है। वह अनादि प्रभु यज्ञकर्त्ता उपासक के लिये मरुप्रदेश में प्याऊ के समान है। अर्थात् कठिनाइयों में वही रक्षक और सहारा है ॥१॥

यं त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥२॥

पदार्थः – (**यविष्ठ**) हे सर्व शक्तिमान् भगवन् (**उष्णम्**) उष्णता वाले (**व्रजम्**) गोशाला को जाने वाली (**गाव इव**) गायों के समान (**जनासः**) लोग (**त्वा**) आपकी (**संचरन्ति**) शरण लेते हैं, (**देवानाम्**) विद्वान् (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यों का तू (**महान्**) महान् (**दूतः**) पूज्य (**असि**) है, तू (**रोचनेन**) प्रकाश से (**अन्तः**) सभी के अन्दर (**चरसि**) विराजमान होता है।

भावार्थः—हे परमेश्वर आप शक्तिशाली, महान् और सभी के पूजनीय हो। लोग उसी प्रकार आपकी शरण लेते हैं जिस प्रकार गौएँ शीत से आर्त्त होकर गरम गोशाले को जाती हैं। तू विद्वान् और मनुष्यों सभी का पूज्य है और सबके अन्दर अपने तेज से विराजमान है ॥२॥

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३॥

पदार्थ—(**जेन्यम्**) होनहार (**शिशुम्**) शिशु को (**सचनस्यमाना**) साथ में रखती हुई (**वर्धयन्ती**) पालने वाली (**माता इव**) माता जिस प्रकार (**बिभर्ति**) धारण करती है तथा (**हर्यन्**) खाद्य आदि पदार्थों को चाहता हुआ (**अवसृष्टः**) बन्धन से छूटा (**पशुः इव**) पशु जिस प्रकार जाता है उसी प्रकार तू (**धनोः**) हृदयाकाश में (**प्रवता**) प्रवण मार्ग से (**देवान्**) विद्वान् योगियों को (**अपि यासि**) प्राप्त होता है और (**जिगीषसे**) इन्हें अधिगत एवं ज्ञात होता है ।

भावार्थः—भगवान् भक्तों को माता के समान प्राप्त होता है तथा उनके हृदयकाश में उन्हें ज्ञात होता हैं योग आदि की अवस्था में ॥३॥

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्वतिः सन् ॥४॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप (**अमूर**) मरणधर्मा मनुष्यस्वभाव से परे हैं, तथा (**चिकित्वः**) समस्त ज्ञानों से युक्त हैं, (**मूराः**) मरणधर्मा एवं मूढ़ (**वयम्**) हम तुम्हारे (**महित्वम्**) महत्त्व को पूर्णतः (**न**) नहीं (**विद्मः**) जानते, (**अङ्ग**) हे भगवन् (**त्वम्**) तू ही (**वित्से**) जानता है, (**विश्पतिः**) प्रजा का स्वामी (**सन्**) होकर तू (**वव्रिः**) सब रूपों में (**शये**) व्यापक हो रहा है और (**चरति**) सबको गति दे रहा है, तू ही समय पर (**युवतिम्**) मिश्रण और अमिश्रण से विविध रूप बनी हुई सृष्टि को (**जिह्वया**) प्रलय कालिक जिहीर्षा शक्ति से (**अदन्**) ग्रहण करता हुआ (**रेरिह्यते**) अपने अन्दर प्रकृति कारण में समेट लेता है ।

भावार्थः—मनुष्य भगवान् की पूरी महिमा को नहीं जान सकता है, यह तो पूर्णतया वही जानता है, वह प्रजा का स्वामी होकर सभी रूपों में व्यापक हो रहा है और समय आने पर प्रलयकाल में इस सृष्टि को प्रकृति रूपी कारण में समेट लेता है ॥४॥

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५॥

पदार्थः—(**नव्यः**) सदा ही नूतन अपना स्तुत्य (**पलितः**) पुरातन पालक भगवान् (**धूमकेतुः**) धूमिल ज्ञातव्य चिह्नों वाला (**कूचित्**) कहां नहीं अर्थात् सर्वत्र (**जायते**) पदार्थों को प्रकट कर रहा है, (**वने**) जगत् में (**सनयासु**) पुरानी नई सभी वस्तुओं में (**तस्थौ**) व्यापक होकर स्थित है, (**वृषभः इव**) अग्नि अथवा सूर्य के समान (**अस्नाता**) न लिप्त हुआ (**आपः**) समस्त लोकों में (**प्रवेति**) व्यापक होता है, (**सचेतसः**) ज्ञानी (**मर्ताः**) मनुष्य ही (**यम्**) जिस को (**प्रणयन्त**) अपने अन्दर जान लेता है,वह ऐसा है ।

भावार्थः—परमेश्वर सबका पालक है, जगत् की नवीन प्राचीन सभी वस्तुओं में व्यापक हो रहा है और सबका पालक है । वह जगत् में व्यापक है और निर्लेप होकर व्यापक है । जैसे अग्नि और सूर्य जगत् में जगत् की वस्तुओं के धर्मों से लिप्त नहीं होते वैसे वह भी व्यापक होते हुए भी लिप्त नहीं होता है । उसके जानने के चिह्न सबके द्वारा नहीं जाने जाते केवल ज्ञानी ही उसे जान सकता है ॥५॥

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

पदार्थः—जिस प्रकार (**वनर्गू**) वन में गये हुए, (**तनूत्यजा**) चोरी में जीवन देने वाले (**तस्करा**) दो चोर (**रशनाभिः**) रस्सियों द्वारा (**दशभिः**) दश अंगुलियों को प्रयुक्त कर किसी को (**अधीताम्**) बांध देते हैं उसी प्रकार जन्म और मृत्यु ने संसार में जीव को दश इन्द्रियों के विषयों से बांध रखा है, (**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् ! (**ते**) तेरी प्राप्ति के लिए मैं (**इयम्**) इस (**नव्यसी**) नूतन प्रशस्त (**मनीषा**) समाधि बुद्धि का सहारा लेता हूँ, (**न**) यथा (**रथम्**) रथ में अच्छे घोड़े जोते जाते हैं तद्वत् तू (**शुचयद्भिः**) पवित्र और प्रकाशमय (**अङ्गैः**) शरीरांगों से हमें युक्त करता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार दो चोर जंगल में जाकर अपने दोनों हाथों से किसी को रस्सी से बांधते हैं वैसे ही जन्म और मृत्यु ने हमें दश इन्द्रियों के विषयों से जकड़ा है । भगवान् की प्राप्ति के लिए समाधि प्रज्ञा का प्रयोग करने पर वह भक्त-योगी के समस्त शरीरांगों को प्रकाश से और पवित्रता से युक्त कर देता है ॥६॥

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७॥

पदार्थः—(**जातवेदस्**) हे वेदज्ञान के दाता प्रभो ! (**ते**) आपकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त (**ब्रह्म**) हमारी स्तुति (**च**) और (**नमः**) नमस्कार (**च**) और

(**इयम्**) यह (**गोः**) वेदवाणी हमारे लिए (**सदमित्**) सदा ही (**वर्धनी**) वृद्धिकर हो, (**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् तू (**अप्रयुच्छन्**) तत्पर हुआ (**नः**) हमारे (**तनयानि**) पुत्रों (**तोका**) पौत्रों की रक्षा कर (**उत**) तथा (**नः**) हमारे (**तन्वः**) शरीरों की भी रक्षा कर ।

भावार्थः—हे प्रभो ! जो प्रार्थना, स्तुति, उपासना आदि आपकी प्राप्ति के लिए हम करते हैं वह हमारे लिए उन्नति और वृद्धि की दाता हो । आप हमारे पुत्र, पौत्रों और शरीर आदि की सदा रक्षा करें ॥७॥

यह दशम मण्डल में चतुर्थ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१ विराट्त्रिष्टुप् । २—५ त्रिष्टुप् । ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्तयूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१॥

पदार्थः—(**समुद्रः**) जलों का समुद्रावरण करने वाला (**रयीणाम्**) समस्त धनों का धारक (**भूरिजन्मा**) विविध नाम जन्म और स्थानों वाला (**एकः**) एक अग्नि (**अस्मद्**) हमारे (**हृदः**) हृदयों के (**विचष्टे**) विविध गतियों का सम्पादन करता है, (**निण्योः**) पृथिवी और द्युलोक के (**उपस्थे**) मध्य में (**ऊषः**) ओस विन्दुओं को (**सिषक्ति**) सिक्त करता है, (**उत्सस्य**) उदक धारक लोक [वायुमण्डल] के (**मध्ये**) मध्य में (**पदम्**) पद को (**वेः**) प्राप्त किये हैं ।

भावार्थः—अग्नि उदकों का धारक, धनों का धारक, विविध कार्यों का साधक और हृदयरूपी यन्त्र की गतियों का संचालक है । वह पृथिवी और आकाश के मध्य ओस विन्दुओं को वरसाता और अन्तरिक्ष में भी अपना स्थान रखे हुए हैं ॥१॥

समानं नीळं वृषणो वसानाः संजग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो पि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२॥

पदार्थः—(**महिषाः**) वायुएं अथवा प्राणशक्तियां (**समानम्**) समान स्थान वाले (**नीडम्**) गृह वा रहने के स्थान को (**वसानाः**) आच्छादन करते हुए अथवा उसमें निवास करते हुए (**वृषणः**) वर्षा कर्म का सम्पादन करते हुए (**अर्वतीभिः**) अग्नि की शक्तियों से (**संजग्मिरे**) संयुक्त होते हैं, (**कवयः**) क्रान्तदर्शन वाली सूर्य किरणें (**ऋतस्य**) जल के (**पदम्**) स्थान वा गति की (**निपान्ति**) रक्षा करती हैं तथा (**गुहा**) अन्तरिक्ष में (**पराणि**) दूसरे श्रेष्ठ (**नामानि**) जलों को धारण करती हैं ।

भावार्थः—अग्नि के ही स्थान में विद्यमान प्राण अग्नि की गतिशील शक्तियों से युक्त होते हैं, और वर्षा आदि कर्मों को करते हैं । सूर्य की किरणें जल की स्थिति की रक्षा करती हैं और जलों को अन्तरिक्ष में धारण करती हैं ॥२॥

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३॥

पदार्थः—(**ऋतायिनी**) जल की धारिका, (**मायिनी**) ज्ञान के साधनभूत द्यु और पृथिवी लोक इस अग्नि को (**संदधाते**) धारण करते हैं, और (**शिशुम्**) बच्चे की भांति (**मित्वा**) परिमाण में उसे उत्पन्न करते हैं और (**वर्धयन्ती**) बढ़ाते हुए रहते हैं, (**विश्वस्य**) समस्त (**चरतः**) जंगम और (**ध्रुवस्य**) स्थावर जगत् के (**नाभिम्**) केन्द्र बन्धनभूत (**कवेः चित्**) क्रान्तदर्शन अग्नि के (**तन्तुम्**) सूत्र को विद्वज्जन (**मनसा**) मन से (**वियन्तः**) विविध प्रकार से जानकर सुखी होते हैं ।

भावार्थः—जल को धारण करने वाले और अनेक ज्ञानों की प्राप्ति के केन्द्रभूत साधन द्युलोक और पृथिवी बच्चे की तरह इस अग्नि को पैदा करते हैं और मात्रा में इसे बढ़ाते रहते हैं । जड जंगम जगत् के बन्धनभूत अग्नि के सूत्र को विद्वान् जन जानकर सुख लाभ करते हैं ॥३॥

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥४॥

पदार्थः—(**ऋतस्य**) सृष्टि नियम के (**वर्तनयः**) मार्ग को जानने वाले (**प्रदिवः**) ज्ञानवान् मनुष्य लोग (**इषः**) ज्ञान प्राप्त के लिए (**वाजाय**) धन-अन्न प्राप्ति के लिए (**सुजातम्**) उत्तमता से प्रकट होने वाले अग्नि को (**सचन्ते**)

प्रयोगार्थ प्राप्त करते हैं (**वावसाने**) सबके छादक (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक (**अधीवासम्**) जगत् में व्याप्त विद्युद्रूप अग्नि को (**मधूनाम्**) जलों के धारक (**घृतैः**) स्नेहन (**अन्नैः**) पोषकतत्वों से (**वावृधाते**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—ज्ञान और अन्न आदि की प्राप्ति के लिए सृष्टि-नियम के मार्ग को जानने वाले ज्ञानवान् मनुष्य प्रयोग में लाते हैं । द्युलोक और पृथिवी लोक जलीय स्नेहन और पोषक तत्त्वों से विद्युदात्मक अग्नि को बढ़ाते रहते हैं ॥४॥

सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५॥

पदार्थः—(**विद्वान्**) सत्तावान् (**वावशानः**) शब्दयुक्त अग्नि (**कम्**) सुखपूर्वक (**दृशे**) लोगों के देखे जाने और लोगों को दिखाने के लिए (**सप्त**) सात (**अरुषीः**) प्रकाशवाली (**स्वसॄः**) ज्वालाओं को (**मध्व**) हवि आदि पदार्थों से (**उत् जभार**) प्राप्त करता है,(**अन्तरिक्षे**) आकाश में स्थित (**पुराजाः**) पहले उत्पन्न होने वाला वह अग्नि उन ज्वालाओं को (**अन्तः येमे**) अन्तर्लीन रखता है (**इच्छन्**) चाहता हुआ वह (**पूषणस्य**) पार्थिव लोक के (**वव्रिम्**) रूप को (**अविदत्**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः— सत्तामय अग्नि यज्ञ की हवि आदि से सात प्रकार की ज्वालाओं को प्राप्त करता है । आकाश में स्थित वह अपनी इन ज्वालाओं को अन्तर्लीन किये रहता है । वह ही पार्थिव लोक के रूप को अर्थात् पृश्नि वर्ण को प्राप्त होता है ॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शी विद्वान् (**सप्त**) सात (**मर्यादाः**) मनुष्य को खा जाने वाले पाप (**ततक्षुः**) बताये हैं वा नियत किये हैं, (**तासाम्**) उनमें से (**एकाम्**) किसी एक को (**इत्**) भी करने वाला (**अंहुरः**) पापी (**अभि अगात्**) बन जाता है, (**ह**) निश्चय ही (**स्कम्भः**) अवरुद्ध मार्ग वह मनुष्य (**उपमस्य**) समीपवर्त्ती (**आयोः**) जल के (**नीडे**) स्थान=गड्ढे में अथवा (**पथाम्**) अनेक रास्तों के (**विसर्गे**) चक्कर में अथवा (**धरुणेषु**) जलों में (**तस्थौ**) गिरकर पड़ जाता है ।

भावार्थः—विद्वान् लोग सात पापों का वर्णन करते हैं । वे सात पाप हैं—चोरी, ब्रह्महत्या, गोहत्या, गुरु की स्त्री से व्यभिचार, सुरापान, बुरे कर्मों का वार-वार सेवन, पाप करके पुनः झूठ बोलना । इनमें से किसी एक का करने वाला पापी होता है । इस प्रकार सारी प्रगतियों में रुका हुआ वह गड्ढे में गिरता है, पानी में डूबता है अथवा अनेक मार्गों के चक्कर में पड़ता है ॥६॥

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७॥

पदार्थः—(**असत्**) अव्यक्त (**च**) और (**सत्**) व्यक्त जगत् (**परमे**) परम (**व्योमन्**) आकाश में (**दक्षस्य**) सूर्य के (**जन्मन्**) स्थानभूत (**अदितेः**) प्रकृति के (**उपस्थे**) क्रोड में विद्यमान रहता है । (**नः**) हम सब में (**ह**) निश्चय ही (**प्रथमजा**) प्रथम उत्पन्न (**अग्निः**) अग्नि (**ऋतस्य**) जल की (**पूर्वे**) पूर्व (**आयुनि**) अवस्था में (**वृषभः**) वर्षक भी है (**च**) और (**धेनुः च**) पूरक भी है ।

भावार्थः—अव्यक्त और व्यक्त जगत् परम आकाश में सूर्य के उत्पत्ति स्थान और प्रकृतिरूपी कारण में उपस्थित रहते हैं । सृष्टि उत्पत्ति की पूर्वावस्था हम सब में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला अग्नि ही वृषभ और धेनु अर्थात् धन और ऋण रूप शक्ति होता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६

ऋषिः—१ -७ **त्रितः** ॥ **देवता—अग्निः** ॥ **छन्दः**—१ **आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** । ४, ५, **विराट्त्रिष्टुप्** । ७ **पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ २ **विराट्पङ्क्तिः** । ३ **निचृत्पङ्क्तिः** । ६ **पङ्क्तिः** । **स्वरः**—१, ४, ५, ७, **धैवतः** । २, ३, ६ **पञ्चमः** ॥

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिरृषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१॥

पदार्थः—(**जरिता**) यजमान स्तोता (**यस्य**) जिस (**अग्नेः**) अग्नि के (**अभिष्टौ**) यज्ञ में होने वाले (**अवोभिः**) पालन कार्यों से (**शर्मन्**) अपने गृह में (**एधते**) समृद्धि को प्राप्त करता है (**अयम्**) यह (**सः**) वही अग्नि है (**विभावा**) दीप्तिमान् (**यः**) जो अग्नि (**ऋषूणाम्**) सूर्यरश्मियों के (**ज्येष्ठेभिः**) प्रशस्त (**भानुभिः**) प्रकाशों वा तेजों से (**परिवीतः**) घिरा हुआ (**पर्येति**) सर्वत्र जाता है ।

भावार्थः—यह वही अग्नि है कि यज्ञ में जिसकी प्रशंसा करने वाला यजमान घर में सुख-समृद्धि प्राप्त करता है। यह सूर्य की प्रशस्त रश्मियों के तेज से आवृत सर्वत्र विचरता है ॥१॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥

पदार्थः—(**ऋतावा**) सृष्टिनियम से बद्ध, (**विभावा**) दीप्तिमान् (**अजस्रः**) निरन्तर रहने वाला (**यः**) जो (**अग्निः**) अग्नि (**देवेभिः**) प्रकाशमान (**भानुभिः**) तेजों से (**विभाति**) प्रकाशमान रहता है तथा (**यः**) जो (**अपरिहूतः**) अनवरुद्ध (**सखिभ्यः**) इससे सम्पर्क और जानकारी रखने वालों के लिए (**सख्या**) अत्यन्त उपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है, (**सप्तिः**) वेगवान् (**अत्यः न**) अश्व के समान (**आ विवाय**) निरन्तर गति करता है ।

भावार्थः—हम लोग उस अग्नि को जानें। सृष्टि के नियमों में बन्धा हुआ निरन्तर प्रकाशमान रहता है तथा अपने कार्यों को करता है और उसका परिज्ञान रखने वालों के उपयोगी कार्यों को सिद्ध करने में वेगवान् अश्व की भांति लगाया जा सकता है ॥२॥

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥३॥

पदार्थः—यह वही अग्नि है (**यः**) जो (**विश्वस्या**) समस्त (**देववीतेः**) यज्ञकर्म अथवा जगत् के लोकों के प्रकाश करने और नियन्त्रण करने में (**ईशे**) समर्थ है, (**विश्वायुः**) सबको जीवन देने वाला होकर(**उषसः**) उषा के (**व्युष्टौ**) प्रकाशन में (**ईशे**) समर्थ है, (**यस्मिन्**) जिस (**अग्नौ**) अग्नि में (**मना**) बिचारपूर्ण (**हवींषि**) हवियां दी जाती है वही (**अरिष्टरथः**) अनवरुद्ध गति

वाला (**शूषैः**) अपनी शक्तियों से समस्त लोकों को (**आ स्कम्नाति**) नियन्त्रित रखता है ।

भावार्थः—यह अग्नि ही जगत् के लोकों के धारण में समर्थ है, यही उषा को प्रकाशित करता है, इसी में विचारपूर्वक हवियां दी जाती हैं और इसकी गति विना रोक-टोक सर्वत्र है और लोकों का अपनी शक्ति से यह नियन्त्रण करता है ॥३॥

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४॥

पदार्थः—(**शूषेभिः**) हवि आदि की शक्तियों से (**वृधः**) बढ़ाया हुआ (**अर्कैः**) ऋचाओं से (**जुषाणः**) हवि दिया हुआ (**रघुपत्वा**) शीघ्रगामी अग्नि (**देवान्**) यज्ञ देव वा दिव्य भौतिक शक्तियों को (**अच्छा**) अच्छी प्रकार से (**जिगाति**) पहुंचता है । (**मन्द्रः**) प्रशस्त (**होता**) यज्ञ में डाले गए पदार्थों का ग्रहण करने वाला, (**जुह्वा**) मन्त्रों से सम्बोधित (**यजिष्ठः**) यज्ञ का श्रेष्ठ साधन, (**संमिश्लः**) समस्त पदार्थों से संयुक्त (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**देवान्**) देवों को हवि (**आ जिघर्ति**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—हवि आदि के यज्ञ में शक्तियों से वृद्धि को प्राप्त अग्नि मन्त्रों से आहुति दिया गया समस्त यज्ञ देवों को [जगत् के पदार्थों को] शीघ्रगामी होकर पहुँचता है और यज्ञ में प्रदान की गई वस्तुओं के सार को उन तक पहुँचाता है ॥४॥

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**इन्द्रम् न**) विद्युत् के समान, (**रेजमानम्**) चमकने वाले (**उस्राम्**) समस्त उपयोगों के साधक (**तम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि को) **गीर्भिः**) वेद मन्त्रों द्वारा (**नमोभिः**) अन्न आदि सामग्री से(**आ कृणुध्वम्**) उपयोग में लाओ (**यम्**) जिस (**जातवेदसम्**) समस्त पदार्थों में विद्यमान (**सहानाम्**) बलों के (**जुह्वम्**) देने वाले अग्नि की (**बिप्रासः**) मेधावी लोग (**मतिभिः**) स्तुतियों से (**आ गृणन्ति**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि की मेधावी लोग प्रशंसा करते हैं

तुम भी मन्त्रों के द्वारा सामग्री घृत आदि से यज्ञ में उसका उपयोग करो ॥५॥

सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६॥

पदार्थः—(**न**) यथा (**एवैः**) गतियों से (**सप्तीवन्तः**) शीघ्र गमन में समर्थ (**अश्वाः**) घोड़े (**वाजे**) संग्राम में जाते हैं, उसी प्रकार (**यस्मिन्**) जिस अग्नि के विज्ञान आदि से साधन बना लेने पर (**विश्वा**) समस्त (**वसूनि**) धनादि पदार्थ (**संजग्मुः**) संगत होते हैं वैसा यह (**अग्ने**) अग्नि (**अस्मे**) हमारे लिए (**इन्द्रवाततमाः**) विद्युत् के द्वारा शक्ति और वेग प्रदान किये हुए (**अर्वाचीनाः**) नवीन-नवीन (**ऊतीः**) रक्षा-साधन (**आकृणुष्व**) प्रदान करे ।

भावार्थः—जिस प्रकार वेग वाले घोड़े संग्राम में लगाये जाते हैं उसी प्रकार अग्नि को विज्ञान आदि-से अपना साधन बनाने पर सारे अन्नादि पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं। वह अग्नि विद्युत् चालित नवीन-नवीन रक्षा-साधनों को प्रदान कर सकता है ॥६॥

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७॥

पदार्थः—(**अध हि**) इसलिए कि (**अग्ने**) यह अग्नि (**महना**) शक्ति से (**जज्ञानः**) उत्पन्न हुआ (**सद्यः**) अपने उत्पत्तिकाल में ही (**निषद्य**) स्थित हो (**हव्यः**) हवन के सामर्थ्य वाला होता है, (**ते**) उसके (**तम्**) इस (**केतम्**) लक्षण को (**देवासः**) विद्वान् लोग (**अनु आयन्**) जानें (**अध**) तथा (**प्रथमासः**) उत्कृष्ट और (**ऊमाः**) रक्षित हुए (**अवर्धन्त**) बढ़ें ।

भावार्थः—अग्नि अपने उत्पत्ति काल से हवन करने योग्य गुण और शक्तियों से युक्त होता है, विद्वान् लोग उसके इस लक्ष्य को जानें और यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करके उत्कृष्टता से बढ़ें ॥७॥

यह दशम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७

ऋषिः—१–७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः १, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः —धैवतः ॥

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् ! आपकी कृपा से (**दिवः**) द्युलोक से और (**पृथिव्याः**) पृथिवी लोक से (**नः**) हमारे लिए (**स्वस्ति**) सुख हो, (**देव**) हे देव ! (**यजथाय**) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के करने के लिए (**नः**) हमें (**विश्वायुः**) समस्त उपयोगी साधन (**धेहि**) दीजिए (**दस्म**) हे आत्म साक्षात्कार योग्य प्रभो ! (**तव**) तुम्हारे (**प्रकेतैः**) ज्ञानों से हम (**सचेमहि**) युक्त होवें, (**देव**) हे देव ! अपने (**उरुभिः**) विविध (**शंसैः**) रक्षक गुणों द्वारा (**नः**) हमारी (**उरुष्य**) रक्षा कर ।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! द्यु पृथिवी आदि समस्त लोकों में हमें सुख मिले, उत्तम कर्मों के करने के लिए हम धन, पुत्र, आयु आदि समस्त साधन प्रदान करें। हम आपके ज्ञानों से युक्त होवें और अपने समस्त रक्षण गुणों और शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करें ॥१॥

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**इमाः**) यह (**मतयः**) स्तुतियां (**तुभ्यम्**) आपकी स्तुति के लिए ही (**जाताः**) प्रकट हुई हैं, ये (**अश्वैः**) घोड़ों (**गोभिः**) गौवों सहित (**राधः**) समस्त धन को (**तुभ्यम्**) तेरा, तेरी आज्ञा पालनार्थ वा तुम्हें प्राप्त करने के लिए (**अभि गृणन्ति**) बतलाती हैं, (**सुजात**) हे स्वप्रकाश से प्रकाशित (**वसो**) सबको वसाने वाले प्रभो ! (**यदा**) जब (**मर्तः**) मनुष्य (**ते**) तुम्हारे द्वारा प्रदत्त (**भोगम्**) धनादि के भोग को (**अनु आनट्**) प्राप्त करता है तब वह (**मतिभिः**) ज्ञान से (**दधानः**) आपको धारण कर प्राप्त करता है ।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! सारी वेदवाणियां और स्तुतियां तेरा गान करती हैं। विश्व में अश्व, गाय आदि से युक्त समस्त धन तेरा ही है, यही

वेद मन्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं । जब मनुष्य तुम्हारे द्वारा प्रदत्त समझ कर संसार के धनादि पदार्थों का भोग करता है तब ज्ञान से तुझे जानता और प्राप्त करता है ॥२॥

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥३॥

पदार्थ—मैं (**अग्निम्**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को ही (**पितरम्**) पिता मानता हूं, (**अग्निम्**) उस प्रकाशक को ही (**आपिम्**) बन्धु मानता हूं, (**अग्निम्**) उसी ज्ञानवान् भगवान् को (**भ्रातरम्**) भ्राता मानता हूँ, उसी को मैं (**सदमित्**) सदा साथी (**सखायम्**) सखा मानता हूं, (**बृहतः**) महान् (**अग्नेः**) भगवान् के (**अनीकम्**) अद्भुत तेज की (**दिवि**) आकाश में स्थित (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**यजतम्**) प्रशस्त (**शुक्रम्**) तेज की भांति (**सपर्यम्**) प्रशस्त करता हूँ ।

भावार्थः— भगवान् की स्तुति करने वाले को स्तुति करते समय उसे अपना पिता, बन्धु, भ्राता और सदा साथ रहने वाला सखा मानकर चलना चाहिए । जिस प्रकार आकाश में सूर्य का महान् तेज है उसी प्रकार भगवान् का प्रकाश उससे बढ़कर भी है ॥३॥

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**अस्मे**) हमारी (**धियः**) बुद्धियां और कृतियां (**सिध्राः**) सिद्ध होकर (**सनुत्रीः**) हमें फलदायक हों, (**नित्य हाता**) सदा ऐश्वर्यों का दाता तू (**दमे**) घर में (**यम**) जिसकी (**त्रायसे**) रक्षा करता है (**सः**) वह (**ऋतावा**) सत्य ज्ञान वाला, (**रोहिदश्वः**) सफल अश्वों वाला और (**पुरुक्षुः**) बहुत अन्न का स्वामी होता है, (**द्युभिः**) प्रकाशमय (**अहभिः**) दिनों के साथ (**अस्मै**) इसको (**वामम्**) श्रेष्ठ धन और ज्ञान (**अस्तु**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हमारा ज्ञान और कर्म हमें फलदाता हो । तू सदा रक्षक है और जिसकी रक्षा करता है वह सत्य ज्ञान सत्यकर्म वाला पशु और धनधान्य से पूर्ण होता है और सदा नये प्रकाश के साथ अन्न धन आदि उसे प्राप्त होते हैं ॥४॥

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥५॥

पदार्थः—(**आयवः**) मनुष्य लोग (**द्युभिः**) समस्त प्रकाशों से (**हितम्**) युक्त (**मित्रम् इव**) मित्र के समान (**प्रयोगम्**) उत्तम योगदान देने वाले (**प्रत्नम्**) अनादि, (**ऋत्विजम्**) ऋतुओं के उत्पादक (**अध्वरस्य**) संसार यज्ञ के (**जारम्**) प्रलयकर्ता (**होतारम्**) पुनः सृष्टिकाल में देने वाले (**अग्निम्**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**बाहुभ्याम्**) दोनों बाहुओं से (**अजनन्त**) नमस्कार करते हैं और (**विक्षु**) प्रजाओं में उसको (**नि असादयन्त**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—मनुष्य समस्त प्रकाशों वाले, अनादि, मित्र के समान सहयोग देने वाले, ऋतुओं के कर्त्ता, संसार के प्रलय कर्त्ता और दाता प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं और प्रत्येक प्रजा में उसे देखते हैं ॥५॥

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥६॥

पदार्थः—(**देव**) हे देव परमेश्वर ! (**दिवि**) दिव्य यज्ञ [सृष्टि यज्ञ] में (**स्वयम्**) स्वयं ही तू (**देवान्**) सृष्टि के तत्त्वों की (**यजस्व**) संगति लगाता है (**अप्रचेताः**) मूढ़ (**पाकः**) दुःखों से सन्तप्त मनुष्य (**ते**) तेरे लिए (**किम्**) क्या स्तुति आदि (**कृणवत्**) कर सकता है, (**यथा**) जिस प्रकार (**देव**) हे देव ! तू (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**अयजः**) सगत करता है (**एवा**) उसी प्रकार (**सुजात**) हे स्वप्रकाश ! तू (**तन्वम्**) संसार शरीर की भी (**यजस्वा**) संगति बैठाता है ।

भावार्थः—परमेश्वर सृष्टि की रचना रूपी दिव्य यज्ञ में सृष्टि के तत्त्वों और पदार्थों का यज्ञ अर्थात् संगतिकरण करता है । दुःख से पीड़ित मूढ़ मनुष्य उसकी क्या उपासना कर सकता है ? जिस प्रकार वह महान् देव काल के अनुसार सृष्टि के पदार्थों को संगत करता है वैसे ही संसार में शरीर की भी संगति बैठाता है ॥६॥

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७॥

पदार्थः–(**अग्ने**) हे भगवन् ! तू (**नः**) हमारा (**अविता**) रक्षक (**भव**) हो, (**उत**) और (**गोपाः**) पालक (**भव**) हो, तू (**नः**) हमारा (**वयः कृत**) प्राणदाता (**उत**) और (**वयोधाः**) प्राणधारक हो, (**सुमहः**) अत्यन्त उत्कृष्ट तेज वाला तू (**नः**) हमें (**हव्यदातिम्**) भोग्य पदार्थ (**च**) भी (**रास्व**) दे (**उत**) और (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर (**नः**) हमारे (**तन्वः**) शरीरों की भी (**त्रास्व**) रक्षा कर ।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर तू हमारा रक्षक और पालक, प्राणदाता और प्राणधारक बन। हमें भोग्य पदार्थों को दे और हमारे शरीरों की रक्षा कर ॥७॥

यह दशम मण्डल में सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ८

ऋषिः—१—९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ॥ देवता—१—६ अग्निः । ७–९ इन्द्रः ॥
छन्दः १, ५–७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः– धैवतः ॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥१॥

पदार्थः–(**अग्निः**) अग्नि (**बृहता**) महान् (**केतुना**) प्रकाश आदि चिह्नों से युक्त (**प्र याति**) सर्वत्र विचरता है, (**वृषभः**) वृष्टि का दाता वह (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक पर्यन्त (**आ रोरवीति**) विद्युत् के रूप में गर्जता है, (**महिषः**) महान् वह अग्नि (**दिवः चित्**) द्यु आकाश की (**अन्तान्**) दिशाओं और (**उपमान्**) उप दिशाओं को (**उदानट्**) व्याप्त करता है, (**अपाम्**) जलों के (**उपस्थे**) कारण स्थान अन्तरिक्ष में (**ववर्ध**) बढ़ता है ।

भावार्थः—अपने प्रकाश आदि लक्षणों से युक्त अग्नि सर्वत्र विद्यमान रहता है, वह द्युलोक और पृथिवी पर्यन्त विद्युत् आदि के रूप में गड़गड़ाता है, वह दिशाओं-उपदिशाओं में व्याप्त है और अन्तरिक्ष में विशेष वृद्धि को प्राप्त है ॥१॥

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥२॥

पदार्थः—(**वृषभः**) वृष्टि का कर्त्ता (**ककुद्मान्**) अतितेज वाला, (**गर्भः**) सबका ग्रहण करने वाला अग्नि (**मुमोद**) सबको मुदित करता है, (**अस्रेमा**) प्रशस्त (**शिमीवान्**) अपने कार्यों के करने में तत्पर (**वत्सः**) रात्रि और उषा का वत्स वह (**अरावीत्**) सन्नाटा उत्पन्न करता है। वह (**देवताति**) भौतिक शक्तियों, लोकों और किरणों में तथा (**स्वेषु**) अपने (**क्षयेषु**) स्थानों में (**उद्यतानि**) आवश्यक कार्यों की व्यवस्था (**कुर्वन्**) करता हुआ (**प्रथमः**) सबसे प्रथम हुआ (**जिगाति**) विराजमान होता है ।

भावार्थ—यह अग्नि तेजों वाला, सबका ग्रहण करने वाला है और रात्रि तथा उषा से उत्पन्न होने से अग्नि अथवा सूर्यरूप में उनका पुत्र है, यह समस्त जगत् को मुदित करता है और रात्रि में सन्नाटे को उत्पन्न करता है। जगत् में कार्य करने वाली दैवी शक्तियों और रहने के स्थानों में अपनी करणीय क्रिया को करता हुआ यह सर्वप्रथम दैवी पदार्थ का नाम धारण करता है ॥२॥

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो अग्नि (**पित्रोः**) द्युलोक और पृथिवी के (**मूर्धानम्**) शिरोभाग को (**आ ररब्ध**) बनाता वा धारण करता है, (**सूरः**) सरणशील उस अग्नि के (**अर्णः**) तेज को अथवा गति को (**यज्ञे**) संसार में गतिशील पदार्थ (**नि दधिरे**) धारण करते हैं (**अस्य**) इसके (**पत्मन्**) पतन समय में (**अरुषीः**) दीप्तिमान् (**अश्वबुध्नाः**) विद्युद् अथवा गति से बन्धे हुए (**तन्वः**) आयतन लोक वा पदार्थ (**ऋतस्य**) जगत् के (**योनौ**) कारण प्रकृति में (**जुषन्त**) लीन हो जाते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि ही द्यु और पृथिवी लोक की मूर्धा बना हुआ है, जगत् के सभी गतिशील पदार्थ इसके तेज अथवा ताप वा गति को धारण करते हैं। इसके प्रलय समय में विद्युत् अथवा इसकी गति से बन्धे हुए समस्त लोक वा पदार्थ जगत् के मूल कारण प्रकृति में लीन हो जाते हैं ॥३॥

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायै ॥४॥

पदाथः—(**वसो**) यह वसु भूत अग्नि (**उष-उषः**) प्रत्येक उषा में (**हि**) चूंकि (**अग्रम**) पूर्व ही (**ऐषि**) आता है, अतः (**त्वम्**) यह (**यमयोः**) दिन और रात्रि दोनों में (**विभावा**) दीप्तिमान् (**अभवः**) होता है, यह अग्नि (**स्वाय**) अपने (तन्वः) शरीर से (**मित्रम्**) घोर ज्वलन रूप को (**जनयन्**) उत्पन्न करके (**ऋताय**) यज्ञकार्य के लिए (**सप्त**) सात (**पदानि**) ज्वालाओं को (**दधिषे**) धारण करता है।

भावार्थः—यह अग्नि दोनों समय की सभी उषाओं में प्रथम रहता है अतः दिन और रात्रि दोनों में दीप्तिमान् रहता है। अपने शरीर से ही यह 'मित्र' नाम को धारण करके यज्ञ आदि कार्यों के लिए सात ज्वालाओं को धारण करता है। जब अग्नि घोर रूप में दिखाई पड़ता है तब इसका नाम मित्र है ॥४॥

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥

पदार्थः—यह अग्नि (**महः**) महान् (**ऋतस्य**) शाश्वत सृष्टि नियम का (**चक्षुः**) प्रकाशक (**भुवः**) है, (**गोपाः**) इन्द्रियों का पालक भी (**भुवः**) होता है, (**यत्**) जब (**ऋताय**) जल के आदान के लिए (**वेषि**) गतिमान् होता है तब यह (**वरुणः**) वरुण हो जाता है, (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में वर्तमान यह अग्नि (**अपाम्**) वृष्टि जलों का (**नपात्**) न नष्ट करने वाला एवं पौत्र (**भुवः**) है, (**यस्य**) जिस यजमान की (**हव्यम्**) हवि को (**जुजोष**) ग्रहण करता है उसका (**दूतः**) दूत (**भुवः**) होता है।

भावार्थः—यह अग्नि शाश्वत नियम का प्रकाशक है। चक्षु होकर सब पदार्थों का प्रत्यक्ष कराता है। यह इन्द्रिय शक्ति का रक्षक है जब यह सूर्य किरणों द्वारा जल को खींचकर ग्रहण करता है तब इसे वरुण कहा जाता है। यह वृष्टि जल का पौत्र है अर्थात् विनाश न करने वाला है। जलों से मेघ पैदा होता है, मेघ से विद्युद्रूप अग्नि उत्पन्न होता है अतः जलों का यह नपात्=पौत्र है। यजमान द्वारा डाली गई आहुति को यह ग्रहण करके उसके दूत का काम करता और सर्वत्र उस आहुति के तत्त्व को पहुँचा देता है ॥५॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**च**) और (**रजसः**) लोकों का (**नेता**) संचालक है, (**यत्र**) उस अन्तरिक्ष में, जिसमें (**शिवाभिः**) कल्याणकारक (**नियुद्भिः**) किरणों और प्राणों से संयुक्त वायु का (**सचसे**) सहयोग प्राप्त करता है, (**दिवि**) द्युलोक में यह (**मूर्धानम्**) शिरोरूप (**स्वर्षाम्**) सबके सम्भक्ता आदित्य को धारण करता है तथा यज्ञ में (**हव्यवाहम्**) हवि को वहन करने वाली (**जिह्वाम्**) ज्वाला को (**चकृषे**) धारण करता है।

भावार्थः—आकाश में कल्याणकारक किरणों से वा पवन गतियों से युक्त वायु का सहयोग लेकर यह अग्नि यज्ञ के पदार्थों और लोकों का संचालक है। द्युलोक में सूर्य को धारण किये हैं शिर की भांति और यज्ञ में अपनी ज्वाला से हवि का ग्रहण करता है ॥६॥

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७॥

पदार्थः -(**त्रितः**) तीनों स्थानों में रहने वाला वायु (**अन्तः**) अन्तरिक्ष में (**धीतिम्**) भाग वा स्थान को (**इच्छन्**) चाहते हुए (**एवैः**) अपनी गतियों से (**परस्य**) श्रेष्ठ (**पितुः**) जगत् के पालक (**अस्य**) इस विद्युद्रूप अग्नि के (**क्रतुना**) कर्म से (**वव्रे**) साथी वरण करता है, (**पित्रोः**) द्यु और पृथिवी के (**उपस्थे**) अन्तराल में (**सचस्यमानः**) सहयुक्त हुआ (**जामि**) शब्दों को (**ब्रुवाणः**) करता हुआ (**आयुधानि**) आयुधों को (**वेति**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—पृथिवी, अन्तरिक्ष और ऊपर द्युलोक में रहने वाला वायु त्रित है। वह आकाश में अपने लिए स्थान चाहता हुआ इन्द्र अर्थात् विद्युद्रूपी इस अग्नि को मित्र बनाता है और अन्तरिक्ष में आवाज करता हुआ मेघ के काटने में अपने उपयोगी साधनों को प्राप्त करता है ॥७॥

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥८॥

पदार्थः—(**आप्त्यः**) जलों से उत्पन्न (**सः**) वह (**त्रितः**) वायु (**इन्द्रेषितः**) विद्युत् के द्वारा प्रेरित (**पित्र्याणि**) जलरूपी पिता के (**आयुधानि**) आयुधों को (**विद्वान्**) प्राप्त करता हुआ (**अभ्ययुध्यत**) त्वष्टा=सूर्य के पुत्र मेघ से युद्ध करताहै। (**सप्तरश्मिम्**) सप्त परिधियों में बन्धे (**त्रिशीर्षाणम्**) तीन शिरों वाले मेघ को मारता है, (**त्वाष्ट्रस्य चित्**) त्वष्टा के पुत्र मेघ के भी (**गाः**) गर्जना शब्दों को (**निः ससृजे**) अपहृत कर लेता है ।

भावार्थः—जलों से उत्पन्न वायु आप्त्य त्रित है । वह विद्युद्रूपी अग्नि से प्रेरित हो जल के विविध उपकरणों को प्राप्त त्वष्टा अर्थात् सूर्य की किरणों से आकृष्ट जल से उत्पन्न त्वाष्ट्र=मेघ से युद्ध करता है और सात परिधियों में बन्धे तीन शिर वाले मेघ को मार गिराता है और उसकी गर्जना को भी समाप्त करता है ॥८॥

भूरीदिन्द्र॑ उ॒दिन॑क्षन्त॒मोजोऽवा॑भिन॒त्सत्प॑ति॒र्मन्य॑मानम् ।
त्वा॒ष्ट्रस्य॑ चि॒द्वि॒श्वरू॑पस्य॒ गोना॑माचक्रा॒णस्त्रीणि॑ शी॒र्षा परा॑ वर्क् ॥९॥

पदार्थः—(**सत्पतिः**) सत्ता वाले पदार्थों का पालक (**इन्द्रः**) विद्युद्रूप अग्नि (**भूरि इत्**) अत्यधिक (**ओजः**) बल (**उदिनक्षन्तम्**) व्याप्त (**मन्यमानम्**) अपने को मानने वाले मेघ को (**अवाभिनत्**) भेदन करता है । (**गोनाम्**) जलों के स्वामी (**विश्वरूपस्य**) विविध रूपों वाले (**त्वाष्ट्रस्य**) मेघ के (**त्रीणि**) तीनों (**शीर्षा**) शिरों को (**आचक्राणः**) शब्द करता हुआ (**परा वर्क्**) काट डालता है।

भावार्थः—इन्द्र=विद्युद्रूप अग्नि जो कि सभी सत्ता वाले पदार्थों की धारक है अपने को बहुत बलशाली मानने वाले मेघ का विदारण करता है। तथा विविध रूपों वाले मेघ के शिरों को काटता है और वृष्टि कराता है ॥९॥

यह दशम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९

ऋषिः—१—९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—१—४, ६ गायत्री । ५ वर्धमानागायत्री । ७ प्रतिष्ठागायत्री । ८, ९ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—७ षड्जः । ८, ९ गान्धारः ॥

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन ।
म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से ॥१॥

पदार्थः—(**हि**) यतः (**आपः**) जल (**मयोभुवः**) सुखदाता (**स्थ**) हैं (**ताः**) वे (**नः**) हमें (**ऊर्जे**) अन्न (**दधातन**) प्रदान करें, हमारे लिए (**महे**) बहुत (**रणाय**) रमणीय (**दृशे**) ज्ञान का (**दधातन**) साधन बनें ।

भावार्थः—जल सुखदायी हैं और वे हमें अन्न देवें तथा ज्ञान के साधन बनें ॥१॥

यो वः॑ शि॒वत॑मो॒ रस॒स्तस्य॑ भाजयते॒ह नः॑ ।
उ॒श॒तीरि॑व मा॒तरः॑ ॥२॥

पदार्थः—(**वः**) इनका (**यः**) जो (**शिवतमः**) अत्यन्त कल्याण कर (**रसः**) सारभूत रस है, (**तस्य**) उसको (**नः**) हमें (**इह**) इस लोक में ये (**भाजयत**) देवें (**उषतीः**) पुत्र का कल्याण चाहने वाली (**मातरः इव**) माताओं के समान हमें कल्याणकारी हों ।

भावार्थः—इन जलों का कल्याणकारी रस इस लोक में हमें प्राप्त हो और ये माता के समान हमारे लिये कल्याण करने वाले हों ॥२॥

तस्मा॒ अरं॑ङ्गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ ।
आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥३॥

पदार्थः—(**वः**) ये जल (**यस्य**) जिस अन्न के (**क्षयाय**) निवास वा प्राप्ति के लिए (**जिन्वथ**) उपयोगी हैं (**तस्मै**) उसके प्राप्त्यर्थ हम (**अरम्**) पर्याप्त (**गमाम**) यत्न करें । ये (**आपः**) जल (**नः**) हमें (**जनयथ**) वह प्राप्त करावें ।

भावार्थः—ये जल जिन वस्तुओं की प्राप्ति के लिए उपयोगी हैं उन की प्राप्ति में हम पर्याप्त यत्न करें और हमें उनकी प्राप्ति करावें ॥३॥

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ ।
शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥४॥

पदार्थः—(**देवीः**) सुखमयी (**आपः**) जल (**नः**) हमारे (**अभिष्टये**)

अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा (**पीतये**) रक्षा के लिए (**शम्**) कल्याणकारी होवें । (**नः**) हम पर (**शंयोः**) सुख की (**अभिस्रवन्तु**) वर्षा करें ।

भावार्थः—उत्तम जल हमारे अभीष्ट और रक्षा के लिए कल्याणकारी साधन बनें । सदा हम पर सुख की अभिवृष्टि करें ॥४॥

ईशा॑ना॒ वार्या॑णा॒ं क्षय॑न्तीश्चर्ष॑णी॒नाम् ।
अ॒पो या॑चामि भेष॒जम् ॥५॥

पदार्थः—(**अपः**) जल जो कि (**वार्याणाम्**) जलोत्पन्न अन्न, वनस्पति आदि की (**ईशानाः**) स्वामी हैं और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों को (**क्षयन्तीः**) निवास देने वाली हैं (**भेषजम्**) औषध वा सुखरूप हैं, उनको हम (**याचामि**) चाहते हैं ।

भावार्थः– जल अन्न आदि के उत्पादक हैं, मनुष्यों के जीवन के साधन है, और सभी ओषधियों की ओषधि हैं । हम उन्हें चाहें ॥५॥

अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा ।
अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुवम् ॥६॥

पदार्थः—(**सोमः**) चन्द्रमा अथवा सोमलता (**मे**) मेरे लिए (**अप्सु**) जलों के (**अन्तः**) मध्य में (**विश्वानि**) समस्त (**भेषजा**) ओषधियों (**च**) और (**विश्व शम्भुवम्**) विश्व का कल्याण करने वाले (**अग्निम्**) अग्नि का होना (**अब्रवीत्**) प्रकट करता है ।

भावार्थः—चन्द्रमा अथवा सोमलता अपने गुण और कार्यों से प्रकट होते हैं । जल में समस्त प्रकार की ओषधियों का सार है और विश्व के लिए उपयोगी विद्युत् भी उसी में है ॥६॥

आप॑ः पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३॒ मम॑ ।
ज्योक्च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥७॥

पदार्थः—(**आपः**) जलीय प्राण (**सूर्यम्**) सूर्य को (**ज्योक्**) लम्बे समय तक (**दृशे**) देखने के लिए (**मम**) मेरे (**च**) और (**तन्वे**) शरीर के लिए (**वरूथम्**) श्रेष्ठ (**भेषजम्**) औषध को (**पृणीत**) पूर्ण करते हैं ।

भावार्थः—जलीय प्राण हमें लम्बे समय तक सूर्य को देखने के लिए अर्थात् लम्बी आयु के लिए और शरीर की समस्त शक्तियों के लिए श्रेष्ठ औषध देते रहते हैं ॥७॥

इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हत॒ यत्किं च॑ दुरि॒तं मयि॑ ।
यद्वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद्वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ॥८॥

पदार्थः—(**आपः**) मेरे शरीरस्थ प्राण (**यत्**) जो (**किम्**) कुछ (**मयि**) मुझ में (**दुरितम्**) दुष्ट स्वभाव वा कर्म हैं, (**च**) और (**वा**) अथवा (**यद्**) जो (**अहम्**) मैं (**अभि दुद्रोह**) किसी से द्रोह करता हूँ, (**वा**) अथवा (**यद्**) जो कुछ मैं किसी को (**शेपे**) शाप देता हूँ, (**उत**) अथवा जो (**अनृतम्**) झूठ व्यवहार करता हूँ उस (**इदम्**) इस सबको (**प्रवहत**) अपने साथ सदा रखते हैं ।

भावार्थः—शरीरस्थ हम जो कुछ भी भले-बुरे कार्य करते हैं आत्मा के साथ उसके लिए उत्तरदायी रहते हैं और मृत्यु के अनन्तर भी उसे धारण करते हैं ॥८॥

आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥९॥

पदार्थः—(**रसेन**) रस से युक्त (**आपः**) जलों को हम (**समगस्महि**) प्राप्त करते हैं जिनसे (**पयस्वान्**) रसयुक्त शरीर वाला होकर (**अन्वचारिषम्**) पहले दूसरे जन्मों में जो कुछ किया है (**अग्ने**) अग्नि (**मा**) मुझको दूसरे जन्म में (**आगहि**) प्राप्त कराता है, (**तम्**) कर्मों के नियम से पालने वाले उस (**मा**) मुझको (**अद्य**) आज वर्त्तमान में भी (**वर्चसा**) दीप्ति से (**संसृज**) सम्बन्ध कराता है ।

भावार्थः—सभी प्राणियो को पिछले किये हुए कर्मों का फल वायु, जल और अग्नि आदि पदार्थों के माध्यम से इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता ही है ॥९॥

यह दशम मण्डल का नवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०

ऋषिः – १, ३, ५—७, ११, १३ यमी वैवस्वती । २, ४, ८—१०, १२, १४ यमो वैवस्वतः ॥ देवता—१, ३, ५ —७, ११, १३ यमो वैवस्वतः । २,४,८ – १०, १२, १४, यमी वैवस्वती ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ११ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९, १०, १२ त्रिष्टुप् । ७, १३ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

नोटः– यह सूक्त यय-यमी अर्थात् पति पत्नी का संवाद है। पति नपुंसक होने की अवस्था में पत्नी को नियोग के लिए आज्ञा देता है। दैवत पक्ष में रात्रि और सूर्य का संवाद है।

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

पदार्थ—यमी कहती है—((**सखी**) पत्नी होने से सखी मैं (**सख्या**) सख्य भाव से (**सखायम्**) पतिरूपी सखा तुझ से (**आ उ ववृत्याम चित**) समागम करूं । (**पुरु चित**) बहुत (**तिरः**) दूर लम्बे (**अर्णवम्**) संसार समुद्र को (**जगन्वान्**) पार करने की इच्छा वाला (**वेधाः**) गृहस्थ (**पितुः**) पत्नी के पिता के (**नपातम्**) नाती अथवा स्वयं के पुत्र को संसार के (**प्रतरम**) नियम व्यवहार को (**दीध्यानः**) ध्यान में रखते हुए (**क्षमि अधि**) भूमितुल्य पत्नी में (**आ दधीत**) आधान करे ।

भावार्थः—पत्नी असमर्थ पति के प्रति स्वभावतः कहती है कि "मैं सखीभूत तेरे साथ समागम करूं । संसार सागर को तरने और व्यवहार को पूर्ण करने के लिए ही गृहस्थ को अपने वंश को न गिरने देने वाले पुत्र के लिए पत्नी में गर्भ धारण करना चाहिए ॥१॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

पदार्थः– पति उत्तर देता है—हे पत्नि ! (**ते**) तेरा (**सखा**) पति रूप सखा (**एतत**) इस (**सख्यम्**) सख्य वा समागम को (**न वष्टि**) नहीं चाहता है, (**यत**) इस लिए कि (**सलक्ष्मा**) अपने पति के समान शक्ति और लक्षण वाली पत्नी (**विषुरूपा**) विविध सन्तानों वाली (**भवाति**) होती, [पत्नी ठीक हो परन्तु पति नपुंसक हो तो ऐसा नहीं होता है अतः यह तुम्हारा पति तुझसे समागम नहीं चाहता है] (**महः**) महान् (**असुरस्य**) प्राणवान् पुरुष के (**वीराः**) वीर (**पुत्रासः**) पुत्र ही (**उर्विया**) इस पृथिवी पर (**दिवः**) ज्ञान प्रकाश और दिव्य गुण के (**धर्तारः**) धारण करने वाले (**परिख्यन्**) देखे जाते हैं ॥

भावार्थः—पति उत्तर देता है कि नपुंसक होने से वह पत्नी के समान सन्तान उत्पादन में समर्थ नहीं है अतः वह इस समागम को नहीं चाहता है। पुंस्त्व वाले महान् शक्तिशाली के ही वीर पुत्र होते देखे जाते हैं और वे ही उत्तम गुणों से युक्त और संसार में सफल होते हैं ॥२॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥

पदार्थः—पत्नी कहती है—(**ते**) वे (**अमृतासः**) दीर्घायु पुरुष (**घ**) अवश्य (**एतत**) यह (**उशन्ति**) चाहते हैं कि (**एकस्य चित**) किसी भी एक (**मर्त्यस्य**) मनुष्य के (**त्यजसम्**) पुत्र हो । (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**अस्मे**) मुझ में (**निधायि**) बद्ध है तू (**जन्युः**) पुत्रोत्पादन में समर्थ पत्नी का (**पतिः**) पति है अतः मेरे (**तन्वम**) शरीर में गर्भरूपेण (**आ विविश्याः**) प्रविष्ट हो ।

भावार्थः—पत्नी कहती है कि वंश को दीर्घायु वाला रखने वाले मनुष्य चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के सन्तान हो । मेरा मन तुझ में बन्धा है अत तू ही मुझ जाया में गर्भरूप में प्रविष्ट हो ॥३॥

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

पदार्थः—पति कहता है—(**कद ह**) कौन-सा उपाय वा समागम आदि कर्म है (**यत**) जिसे हमने (**पुरा**) पहले (**न**) नहीं (**चकृम**) किया, (**नूनम्**) निश्चय ही (**अनृतम्**) असत्य (**रपेम**) बोलते हैं हम (**ऋता**) सत्य (**वदन्तः**) बोलते हुए भी यदि हमने पूर्व कुछ नहीं किया ऐसा कहें । (**गन्धर्वः**) गृहस्थ पुरुष (**अप्सु**) वीर्य आदि में पूर्ण हो, (**योषा च**) और स्त्री (**अप्या**) वीर्यादि से सशक्त हो (**सा**) वह स्त्री ही (**नः**) हम गृहस्थों में (**नाभिः**) आधार वा आश्रय है, (**तत**) वह यह (**नौ**) हम दोनों में (**परमम्**) अत्यन्त (**जामि**) अन्योन्य विपरीत दोष है ।

भावार्थः—पति कहता है कि सन्तानोत्पत्ति के लिए क्या कुछ है जो

हमने पहले नहीं किया । यदि हम कहें कि नहीं किया है तो सत्य बोलने वाले हम वस्तुतः झूठ बोलेंगे । गृहस्थ पुरुष वीर्य आदि में पूर्ण होना चाहिए और स्त्री भी वीर्यवती होनी चाहिए । तभी सन्तान होती है । स्त्री वस्तुतः सन्तान का आधार है । परन्तु हम दोनों में यह परम दोष है कि एक सन्तान-उत्पत्ति के योग्य है और दूसरा नपुंसक है ।।४।।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ।।५।।

पदार्थः—पत्नी कहती है—(**विश्वरूपः**) समस्त रूपों को देने वाले (**सविता**) सबके उत्पादक (**जनिता**) जनक (**देवः**) देव (**त्वष्टा**) परमेश्वर ने (**गर्भे नु**) गर्भधारण के विषय में अथवा अपने-अपने माता के गर्भ में रहने की अवस्था में ही (**नौ**) हम दोनों को (**दम्पती**) पति-पत्नी (**कः**) बनाया (**अस्य**) इसके (**व्रतानि**) नियमों का सभी लोग (**नकिः**) नहीं (**प्रमिनन्ति**) नाश करते हैं (**नौ**) हमारे (**अस्य**) इस पति-पत्नी भाव को (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) सूर्य भी (**वेद**) प्राप्त होते हैं अर्थात् अनुकरण करते हैं ।

भावार्थः—सबके रचयिता और सृष्टि-कर्त्ता भगवान् ने गर्भ-धारण के लिए ही हम दोनों को पति-पत्नी बनाया है । उसका यह नियम अटल है और इस भाव का अनुकरण पृथिवी और सूर्य भी करते हैं । वे भी पिता और माता के रूप में व्यवहृत होते हैं ।।५।।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ।।६।।

पदार्थः—पति कहता है (**अस्य**) इस (**प्रथमस्य**) प्रथम वा पूर्व (**अह्नः**) दिन की बात को (**कः**) कौन (**वेद**) जानता है, गर्भ धारण होने या न होने के इस मूल कारण को (**कः**) कौन (**ईम् ददर्श**) निश्चय देखता है, (**इह**) इस विषय में (**कः**) कौन (**प्रवोचत्**) बतला सकता है, (**मित्रस्य**) सबके मित्र (**वरुणस्य**) वरणीय भगवान् का (**धाम**) प्रताप (**बृहद्**) बहुत बड़ा है, (**आहनः**) हे कटाक्ष करने वाली स्त्री (**नॄन्**) मनुष्यों का (**वीच्य**) विवेक करके भी (**कद् उ**) कौन निश्चय से (**ब्रवः**) क्या कह सकता है ।

भावार्थः—हे पत्नि ! पूर्व के समय की जो बातें कहती हो उसे कौन जानता है, सन्तान होगी ही वा न होगी—इसके मूल कारण को भी किसने

देखा है और कौन इस विषय में निश्चय से कुछ कह सकता है । सबके मित्र पूज्य परमेश्वर का प्रताप महान् है अतः कटाक्ष करने वाली मत बनो ! अरे मनुष्यों का ज्ञान से विवेचन करके भी कोई कुछ निश्चित रूप में उनके विषय में नहीं कह सकता है ।।६।।

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ।।७।।

पदार्थः—पत्नी कहती है (**मा**) मुझ (**यम्यम्**) यमी=पत्नी को (**समाने**) एक साथ (**योनौ**) स्थान में (**सहशेय्याय**) साथ सोने के लिए (**यमस्य**) पति का (**कामः**) काम (**आ अगन्**) प्राप्त हो, (**इव**) जैसे (**जाया**) दूसरी स्त्री (**पत्ये**) अपने पति के लिए करती है वैसे मैं भी (**पत्ये**) तुझ पति के लिए (**तन्वम्**) अपने देह को (**रिरिच्याम्**) प्रदान करूं, हम (**रथ्या**) रथसम्बन्धी (**चक्रा**) चक्रों के (**इव**) समान (**विवृहेव चित्**) गृहस्थ धर्म के भार को वहन करें ।

भावार्थः—पत्नी कहती है कि एक स्थान में साथ सोने के लिए मुझे ति का समागम सम्बन्धी काम प्राप्त हो । जैसे अन्य स्त्रियां अपने पतियों ो अपना शरीर प्रदान करती हैं वैसे ही अपने तुझ पति को अपना अङ्ग दान करूं और हम दोनों इस गृहस्थाश्रम के भार को रथ के चक्रों के मान वहन करें ।।७।।

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ।।८।।

पदार्थः—पति कहता है—(**इह**) इस लोक में (**ये**) जो (**स्पशः**) गुप्त- र के समान देखने वाले (**देवानाम्**) देवों के (**स्पशः**) द्रष्टा ये दिन और रात्रियें चरन्ति) व्यतीत हो रहे हैं वे किसी के लिए (**तिष्ठन्ति**) खड़े रहते (**न**) नहीं, न) न वे (**निमिषन्ति**) पल भर भी झपकते हैं, (**आहनः**) हे आक्षेप- ारिणी पत्नी ! (**मत्**) मुझ से (**अन्येन**) दूसरे पुरुष के साथ (**तूयम्**) शीघ्र ाहि) सम्बन्ध कर और (**तेन**) उसके साथ (**रथ्यां**) रथसम्बन्धी (**चक्रा**) ों के (**इव**) समान (**वि वह**) गृहस्थ धर्म का भार वहन कर ।

भावार्थः—पति कहता है कि हे प्रिये ! इस संसार में देवों के चारदश तरह कार्य कर रहे रात्रि और दिन किसी के लिए न रुके रहते हैं और

न क्षणभर भी झपकते हैं। निरन्तर चलते रहते हैं अतः उन्हें गंवाना ठीक नहीं। तू अन्य पुरुष को शीघ्र प्राप्त हो और रथ के पहिए के समान गृहस्थाश्रम के धर्म का वहन कर ॥८॥

रात्रीभिरस्मा अहंभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९॥

पदार्थः—पत्नी कहती है कि—प्रभु (**रात्रिभिः**) कुछ रात्रियां और (**अहभिः**) कुछ दिनों के साथ (**दशस्येत्**) मेरे मनोरथ को पूरा करे, (**सूर्यस्य**) सूर्य का (**चक्षुः**) तेज (**मुहुः**) फिर से (**उन्मिमीयात्**) उदय को प्राप्त हो, (**दिवा**) द्युलोक और (**पृथिव्या**) पृथिवी के समान (**सबन्धू**) सहगत हुए (**मिथुना**) हम दोनों का जोड़ा रहे और (**यमी**) पत्नी (**यमस्य**) पति से स्थापित (**बिभृयात्**) गर्भ को धारण करे यही (**अजामि**) अच्छा है।

भावार्थः—रात्रि और दिन के साथ मेरा मनोरथ पूर्ण हो, सूर्य का प्रकाश पुनः उदय को प्राप्त हो, द्युलोक और पृथिवी के समान जोड़ा हमारा रहे और मेरे पति द्वारा ही मुझे गर्भ रहे। यही ठीक है। ऐसा पत्नी कहती है ॥९॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥

पदार्थः—पति कहता है—(**घा**) निश्चय ही (**ता**) वे (**उत्तरा**) उत्तर अर्थात् [नियोग सम्बन्धी बाद के] (**युगानि**) काल भी (**आ गच्छात्**) प्राप्त होते हैं (**यत्र**), जिनमें (**जामयः**) पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ स्त्रियां (**अजामि**) नियोग कर्म से (**कृण्वन्**) सन्तान उत्पन्न करती हैं, (**सुभगे**) हे सौभाग्यशालिनि! तू (**वृषभाय**) वीर्यवान् पुरुष के (**बाहुम्**) बाहु का (**उप ववृंहि**) सहारा ले और इस प्रकार (**मत्**) सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ नपुंसक पति से (**अन्यम्**) अतिरिक्त (**पतिम्**) पति की (**इच्छस्व**) इच्छा कर।

भावार्थः—नपुंसक पति कहता है कि हे देवि! विवाह के अनन्तर पति को सन्तान उत्पत्ति में असमर्थ पाने वाली सन्तति-उत्पत्ति में समर्थ स्त्रियां उस नपुंसक पति को छोड़ कर अन्य पति को नियुक्त पति स्वीकार कर सकती हैं। अतः मुझ से अन्य पति की इच्छा कर ॥१०॥

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३ तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥११॥

पदार्थः—पत्नी कहती है—(**किम्**) क्या तू (**भ्राता**) भाई (**असत्**) हो गया है (**यत्**) कि (**अनाथम्**) पतिवत् नहीं (**भवाति**) हो रहा है (**किम् उ**) क्या मैं (**स्वसा**) तुम्हारी बहन हूं (**यत्**) कि (**निर्ऋतिः**) दुःखी हो (**वि गच्छात्**) चली जाऊं, मैं (**काममूता**) काम से मूर्च्छित हुई (**एतत्**) यह (**बह्वे**) बहुत कुछ (**रपामि**) बक रही हूँ, तू (**मे**) मेरे (**तन्वा**) शरीर से (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**संपिपृग्धि**) संगत कर।

भावार्थः—पत्नी कहती है कि क्या तुम पति न होकर भाई हो जो पति के कार्य को नहीं करना चाहते, क्या मैं आपकी पत्नी न होकर बहन हूं जो इस प्रकार दुःखी होकर अन्यत्र चली जाऊँ? यह सब कुछ मैं काम से मूर्छित होकर कह रही हूँ। अरे! मेरे शरीर से अपने शरीर को संगत कर ॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

पदार्थः—पति कहता है कि (**वा उ**) यही विकल्प ठीक है कि जब मैंने असमर्थ हो तुझे दूसरे पति से नियोग की आज्ञा दे दी—तो तू बहन समान हो गई और मैं भाई समान हो गया। अब (**ते**) तेरे (**तन्वा**) शरीर से (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**न**) नहीं (**संपपृच्याम्**) संगत करूं, यही ठीक है क्योंकि (**पापम्**) पापी (**आहुः**) कहते हैं, विद्वान् लोग और समाज के लोग उसको (**यः**) जो (**स्वसारम्**) इस प्रकार बहन स्वीकार किये के साथ (**निगच्छात्**) संगम करे, (**सुभगे**) हे सौभाग्यवति! तू (**मत्**) मुझ से (**अन्येन**) अन्य के साथ (**प्रमुदः**) आमोद-प्रमोद कर (**कल्पयस्व**) अनुभव कर। (**ते**) तेरा (**भ्राता**) भरण पोषण मात्र करने वाला भाई बन गया यह व्यक्ति (**एतत्**) इस समागम को (**न**) नहीं (**वष्टि**) चाहता है।

भावार्थः—पति कहता है कि जब असमर्थ पति पत्नी को नियोग की आज्ञा दे देता है तब स्वयं भ्राता हो जाता है अतः उसके साथ पुनः समागम करने वाले को समाज और राष्ट्र के जन पापी कहते हैं। इस लिए अन्य पति के साथ समागम कर। यह भाई हुआ पति अब तेरे साथ समागम कर्म नहीं करना चाहता ॥१२॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥

पदार्थः—पत्नी पति की परीक्षा लेने के लिए पुनः ताना देकर कहती है—(**यम**) हे पते ! तू (**बत**) खेद है कि (**बतः**) निर्बल वा असमर्थ है, मैं (**ते**) तेरे (**मनः**) मन (**च**) और (**हृदयम्**) हृदय को (**नैव**) नहीं ही (**अविदाम**) जानने में समर्थ हो रही हूँ। क्या मुझे अन्य पति की इच्छा करने को कहकर यह चाहता है कि (**किल**) निश्चय (**युक्तम्**) समर्थ (**त्वा**) तुझ से (**अन्या**) कोई अन्य स्त्री (**वृक्षम्**) वृक्ष को (**लिबुजा इव**) लता के समान (**परिष्वजाते**) आलिंगन करे।

भावार्थः—पत्नी ताना देती हुई परीक्षा करने के लिए नियोग की आज्ञा देने वाले पति को कहती है—कि हे पति देव ! खेद है कि तुम निर्बल और असमर्थ हो। तुम्हारे मन और हृदय को समझने में मैं असमर्थ हूं। क्या मुझे अन्य नियुक्त पति की आज्ञा देकर चाहते हो कि दूसरी कोई स्त्री वृक्ष को लता के समान तुम्हारा आलिंगन करे ॥१३॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१४॥

पदार्थः—पति कहता है—(**यमि**) हे पत्नी ! (**त्वम्**) तू (**अन्यम्**) अन्य पति का (**उ**) विना सन्देह (**वृक्षम्**) वृक्ष को (**लिबुजा इव**) लता के समान आलिंगन कर। (**अन्यः**) अन्य नियुक्त पति (**उ**) निश्चय ही (**त्वाम्**) तुम्हारा (**परिष्वजाते**) आलिंगन करे, (**त्वम्**) तू (**वा**) सर्वथा (**तस्य**) उसके (**मनः**) मन को (**इच्छ**) चाहे और (**सः**) वह (**वा**) निश्चय ही (**तव**) तेरे मन को चाहे (**अध**) और संशय आदि से दूर रहकर (**सुभद्राम्**) कल्याणकारिणी (**मतिम्**) भावना और बुद्धि को (**कृणुष्व**) अपना अथवा रख।

भावार्थः—असमर्थ पति अन्तिम आज्ञा देता है। हे देवि लता जैसे वृक्ष का आलिंगन करती है वैसे ही तू अन्य पुरुष अर्थात् नियुक्त पति का आलिंगन कर, उसका मन तेरा हो और तेरा मन उसका हो। तू संशय आदि से रहित होकर कल्याणकारिणी मति को धारण कर ॥१४॥

नोटः—यह सारा सूक्त नियोग का है। इसमें भाई-बहन के विवाह की कल्पना भ्रान्त धारणा है और कोरी अनभिज्ञता है।

यह दशम मण्डल में दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ११

ऋषिः—१—९ हविर्धान आंगिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृज्जगती । ३—५ विराड्जगती । ७—९ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—६ निषादः । ७—९ धैवतः ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥१॥

पदार्थः—(**वृषा**) वर्षा का कारणभूत (**यह्वः**) महान् (**अदाभ्यः**) न दबाया जाने वाला अग्नि (**अदितेः**) पृथिवी पर (**वृष्णे**) घी आदि की यज्ञ में वर्षा करने वाले व्यक्ति के लिए (**दोहसा**) दोहन के द्वारा (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**पयांसि**) जलों को (**दुदुहे**) दुहता है अर्थात् वृष्टि कराता है, (**यथा**) जिस प्रकार (**सः**) वह (**वरुणः**) सूर्य (**धिया**) अपने कार्य क्रिया से (**विश्वम्**) समस्त विश्व को (**वेद**) प्राप्त होता है उसी प्रकार (**सः**) वह यह (**यज्ञियः**) जल का कारणभूत अग्नि (**यज्ञियान्**) यज्ञ के योग्य (**ऋतून्**) ऋतुओं की (**यजतु**) संगति लगाता है।

भावार्थः—वर्षा का कारणभूत महान् शक्तिशाली अग्नि पृथिवी पर यजमान के लिए अन्तरिक्ष को दुहकर वृष्टि कराता है। जैसे सूर्य अपनी क्रियाओं से समस्त विश्व को प्राप्त है वैसे ही यह जल का कारण अग्नि भी समस्त यज्ञयोग्य ऋतुओं की संगति लगाता है ॥१॥

रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥२॥

पदार्थः—(**गन्धर्वी**) मेघ में धारण की जाने वाली (**च**) और (**अप्या**) जलीय (**योषणा**) विद्युत् (**रपद्**) गर्जती हुई (**नदस्य**) गर्जनशील मेघ के (**नादे**) गर्जन में (**मे**) मुझ मनुष्य के (**मनः**) मन की (**परि पातु**) सब ओर से रक्षा करे अर्थात् डर न लगे, (**अदितिः**) अग्नि (**नः**) हमें (**इष्टस्य**) यज्ञ आदि इष्ट कर्म के (**मध्ये**) मध्य में (**निधातु**) लगाता है, (**नः**) हम में से (**ज्येष्ठः**) सबसे बड़ा (**प्रथमः**) श्रेष्ठ भ्राता (**विवोचति**) विशेष रूप से अग्नि के विषय में बताता है।

भावार्थः—मेघ सम्बन्धी जलीय योषा=विद्युत् गर्जती हुई मेघगर्जना में मेरे मन को ठीक रखें, विक्षुब्ध न करे। अग्नि हमें यज्ञ आदि इष्ट कार्यों में बीच में लगाता है और हम में से जो बड़ा और श्रेष्ठ है वह इसके विषय में अधिक ज्ञान देता है ।।२।।

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ।।३।।

पदार्थः—(**यद्**) जब (**उषताम्**) कामना करने वालों में से लोग (**क्रतुम् अनु**) प्रार्थनोपासना के अनन्तर (**होतारम्**) हवन योग्य (**उशन्तम्**) हवि आदि चाहने वाले (**ईम्**) इस (**अग्निम्**) अग्नि को (**विदथाय**) यज्ञार्थ (**जीजनन्**) उत्पन्न करते हैं तब (**सो चित्**) वही प्रसिद्ध (**क्षुमती**) शब्दयुक्त (**यशस्वती**) यशवाली (**स्वर्वती**) सूर्य को लिए हुये (**भद्रा**) कल्याणमयी (**उषा**) उषा (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**नु**) जल्दी ही (**उवास**) उदित होती है ।

भावार्थः—जब स्तुति आदि के अनन्तर यज्ञार्थी लोग हवि को देने योग्य अग्नि को जलाते हैं तो सूर्य को लिए हुए यशस्विनी उषा का उदय होता है। अर्थात् उषःकाल प्रार्थनोपासना यज्ञ आदि के लिए होता है ।।३।।

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ।।४।।

पदार्थः—(**अध**) अनन्तर (**विः**) गतिशील (**श्येनः**) वायु अथवा अग्नि का सोमात्मक तेजस्वीरूप विद्युत् (**अध्वरे**) इस संसार-यज्ञ में (**इषितः**) अग्नि से प्रेरित (**विचक्षणम्**) प्रकाशमान (**विभ्वम्**) महान् (**त्यम्**) उस (**द्रप्सम्**) सोमात्मक शक्ति को (**आभरद्**) हरण कर लेता है। पुनः (**यदि**) यदि (**आर्या**) आर्य (**विशः**) प्रजाएं (**होतारम्**) हवि आदि के ग्रहण योग्य (**दस्म**) दर्शनीय (**अग्निम्**) अग्नि को (**वृणते**) प्राप्त करते हैं तब (**धीः**)यज्ञ आदि कार्य सम्पन्न होते हैं।

भावार्थः—अग्नि का एक भाग सोमात्मक है वही द्रप्स है, उसके विना अग्नि यज्ञ आदि के कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ नहीं रहता। जब अग्नि श्यायमान होता है तब वह श्येन कहा जाता है। यही वायु का रूप है। वह सोमात्मक अग्नि को जब द्युलोक में पहुंचा देता है तब होता अग्नि

को आर्य प्रजा प्राप्त करती है और यज्ञ आदि कार्य होते है। प्रकाशशील पदार्थ सूर्य आदि आर्य प्रजा कहे जाते हैं ।।४।।

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं१ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ।।५।।

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**पुष्यते**) पुष्टि चाहने वाले के लिए (**यवसा इव**) घास तृण आदि की भांति (**सदा**) सदा (**रण्वः**) रमणीय (**असि**) होता है, (**मनुषः**) मनुष्य के (**होत्राभिः**) यज्ञकर्मों से यह (**स्वध्वरः**) उत्तम यज्ञ वाला होता है, (**यद**) जब (**विप्रस्य**) मेधावी (**वा**) अथवा यजमान के (**उक्थ्यम्**) स्तुति को (**शशमानः**) प्राप्त करता हुआ (**वाजम्**) अन्नादि हवि (**ससवान्**) ग्रहण एवं विभक्त करता हुआ (**भूरिभिः**) बहुत से देवों के साथ (**उपयासि**) उपस्थित होता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पशु के लिए घास आदि तृण अच्छे दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार यह अग्नि रमणीय दिखाई पड़ता है। वह मनुष्य के यज्ञ आदि कर्मों से स्वध्वर है, मन्त्रमय स्तुति और यज्ञान्न आदि को प्राप्त कर अग्नि विविध यज्ञदेवों के साथ यज्ञ में विद्यमान होता है ।।५।।

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ।।६।।

पदार्थः—(**जारः**) रात्रि के नक्षत्र आदि की दीप्ति का जीर्ण करने वाला आदित्य (**आ**) जैसे द्यु और पृथिवी के प्रति (**भगम्**) प्रकाश को फैलाता है उसी प्रकार अग्नि भी अपनी ज्योति को (**पितरा**) द्यु और पृथिवी पर्यन्त (**उदीरय**) बढ़ाता है, (**हर्यतः**) जिन जगत् की दैवी शक्तियों का यज्ञभाग से सम्बन्ध है उनके प्रति यजमान (**इयक्षति**) यज्ञ करता है, (**हृतः**) हृदय से (**इष्यति**) उन्हें जानने की इच्छा करता है और (**विवक्ति**) उनके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन करता है, (**वह्निः**) अग्नि (**स्वपस्यते**) अपने कार्य करता हैं, (**मखः**) यज्ञ (**तविष्यते**) वृद्धि को प्राप्त होता है और (**असुरः**) दुष्ट मनुष्य (**मती**) बुद्धि से (**वेपते**) कम्पायमान होता है ।

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से द्यु और पृथिवी को प्राप्त होता है और रात्रि के नक्षत्रों की ज्योति को दबा लेता है उसी प्रकार अग्नि इन दोनों लोकों में अपने तेज को बढ़ाता है। यजमान यज्ञभागीय जगत् की

शक्तियों (देवों) के प्रति यज्ञ करता है, हृदय से उनको जानने का प्रयत्न करता है और उनके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन करता है। अग्नि अपना कार्य करता है, यज्ञ बढ़ता है और दुष्ट व्यक्ति की वुद्धि कम्पित होती है ॥६॥

यस्ते॑ अग्ने सु॒मतिं॑ मर्तो॒ अक्ष॒त्सह॑सः सूनो॒ अति॒ स प्र शृ॑ण्वे ।
इ॒षं दधा॑नो॒ वह॑मानो॒ अश्वै॒रा स द्यु॒माँ अम॑वान्भूष॒ति द्यून् ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**मर्तः**) मनुष्य (**अग्ने**) अग्नि के (**ते**) तत्सम्बन्धी (**सुमतिम्**) ज्ञान को (**अक्षत्**) प्राप्त कर लेता है (**सः**) वह (**सहसः**) शक्ति के (**सूनो**) पुत्र अत्यन्त शक्तिशाली है अग्नि, ऐसा वह (**अति प्र शृण्वे**) अधिकतर सुनता और जानता है। (**सः**) वह (**इषम्**) ज्ञान को और अन्न को (**दधानः**) धारण करता हुआ, (**अश्वैः**) घोड़ों से (**वहमानः**) ले जाया जाता हुआ (**द्युमान्**) प्रकाशमान, ज्ञानवान् (**अमवान्**) बलवान् (**द्यून्**) सब दिन (**आ भूषति**) होता है।

भावार्थः—जो मनुष्य शक्ति के पुंज अग्नि के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह उसके विषय में विशेष जानकार हो जाता है और ज्ञान, अन्न और अश्व आदि को प्राप्त कर सब दिन ज्ञान से प्रकाशमान और बलवान् होता है ॥७॥

यद॑ग्न ए॒षा समि॑ति॒र्भवा॑ति दे॒वी दे॒वेषु॑ यज॒ता य॑जत्र ।
रत्ना॑ च॒ यद्वि॒भजा॑सि स्वधावो भा॒गं नो॒ अत्र॒ वसु॑मन्तं वी॒तात् ॥८॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यजत्र**) यष्टव्य है, (**यत्**) जब (**यजता**) यजनीय (**देवेषु**) देवों में (**एषा**) यह (**देवी**) दिव्य (**समितिः**) समिति= अधिक देवों का संमिलन (**भवाति**) हो जाता है (**स्वधावः**) अन्न आदि को यज्ञ में ग्रहण करने वाला यह अग्नि (**यद्**) जब (**रत्ना**) बहुमूल्य पदार्थों को (**च**) भी (**विभाजासि**) समस्त देवों में विभाजित करता है (**अत्र**) तब (**वसुमन्तम्**) बहुमूल्य (**नः**) हमारे द्वारा दिये गये (**भागम्**) भाग को भी (**वीतात्**) सब तक पहुँचाता है।

भावार्थः—अग्नि यज्ञ में यष्टव्य है। जब यज्ञ में बहुत से यष्टव्य देवों का दिव्य समागम हो जाता है और अग्नि उनके भाग को सबको देता है तब हमारा दिया भाग भी वह उन सब तक पहुंचाता है। वह इस भाग के पहुंचाने में कोई भेदभाव नहीं रखता है ॥८॥

श्रु॒धी नो॑ अग्ने॒ सद॑ने स॒धस्थे॑ यु॒क्ष्वा रथ॑म॒मृत॑स्य द्रवि॒त्नुम् ।
आ नो॑ वह॒ रोद॑सी दे॒वपु॑त्रे॒ माकि॑र्दे॒वाना॒मप॑ भूरि॒ह स्याः ॥९॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**नः**) हमारे (**सधस्थे**) सर्वसाधारण के लिए खुले हुए स्थान वाले (**सदने**) यज्ञगृह में (**श्रुधि**) स्तुति के सुनने-सुनाने का साधन बनता है (**अमृतस्य**) जल के (**द्रवित्नुम**) वरसाने वाले (**रथम्**) प्रकाश चक्र को (**युक्ष्व**) युक्त करता है। (**देव पुत्रे**) प्रकाश के पुत्र (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी में (**नः**) हमारे आहुति में दिये भाग को (**आ वह**) पहुँचाता है, (**देवानाम्**) देवों में कोई भी (**माकिः अप भूः**) अपमानित न हो (**इह**) यहां पर यह (**स्याः**) सदा रहे।

भावार्थः—अग्नि हमारे यज्ञगृह में स्तुति आदि के सुनने-सुनाने का साधन बनता है, वृष्टि के लिए प्रकाश चक्र को वहन करता है, प्रकाश के पुत्र द्यु और पृथिवी में यज्ञ में दिये गये पदार्थों के तत्त्व को पहुंचाता है। कोई भी देव अपने भाग से वंचित नहीं होता और ऐसा यह अग्नि सदा ही हमारे यज्ञगृह में बना रहे ॥९॥

यह दशम मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२

ऋषिः—१—९ हविर्धान आङ्गिः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१, ३, विराट्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

द्यावा॑ ह॒ क्षामा॑ प्र॒थमे ऋ॒तेना॑भिश्रा॒वे भ॑वतः सत्य॒वाचा॑ ।
दे॒वो यन्मर्ता॑न्य॒जथा॑य कृ॒ण्वन्त्सीद॒द्धोता॑ प्र॒त्यङ् स्वमसुं॒ यन् ॥१॥

पदार्थः—(**प्रथमे**) प्रधान भूत (**द्यावा क्षामा**) द्यु और पृथिवी लोक (**ह**) निश्चय ही (**अभिश्रावे**) यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों के शब्द में (**ऋतेन**) यज्ञ द्वारा (**सत्य वाचा**) सत्य वाणी से युक्त हुए (**भवतः**) हो जाते है, (**यत्**) जब (**देवः**) दिव्य अग्नि (**होता**) हवन सामग्री को ग्रहण करने वाला होता हैं तब (**यजथाय**) यज्ञ करने के लिए (**मर्तान्**) मनुष्यों को (**कृण्वन्**) प्रेरित करता

हुआ (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष ही (**स्वम्**) अपनी (**असुम**) प्राणशक्ति को (**यन्**) प्राप्त होकर (**सीदत्**) वेदि में स्थित होता है।

भावार्थः—जब यज्ञ होता है तब मन्त्रों की ध्वनि से द्यु और पृथिवी भी यज्ञ द्वारा सत्यवाणी से गूंज उठते हैं। अग्नि मनुष्य को यज्ञ के लिए प्रेरित करता है और अपनी शक्ति को प्राप्त कर वेदि में स्थान लेता है ॥१॥

देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२॥

पदार्थः—(**परिभूः**) महाशक्ति, (**प्रथमः**) मुख्य (**चिकित्वान्**) सबसे जाना जाने योग्य, (**धूमकेतुः**) धुवें से अनुमानित होने वाला (**समिधा**) समिधा से (**भाऋजीकः**) उत्तम दीप्ति वाला (**मन्द्रः**) प्रशंसनीय (**होता**) समस्त पदार्थों का धारक (**नित्यः**) सदा रहने वाला (**वाचा**) मन्त्र वाणी सहित (**यजीयान्**) यज्ञ के संपादन का साधन (**देवः**) अग्नि (**ऋतेन**) सत्य नियम से (**नः**) हमारे (**हव्यम्**) हव्य पदार्थों को (**देवान्**) देवों के प्रति (**वह**) ले जाता है।

भावार्थः—यज्ञ में समिधा से दीप्त, धूम से ज्ञात होने वाला शक्तिशाली अग्नि मन्त्र के साथ दिये गये हव्य पदार्थ को ग्रहण कर देवों तक पहुंचाता है ॥२॥

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३॥

पदार्थः—(**देवस्य**) प्रकाशमान अग्नि का (**स्वावृक्**) स्वभूत (**अमृतम्**) जल (**यदि**) जब उत्पन्न होता है तब (**अतः**) इस (**गोः**) उदक से (**जातासः**) उत्पन्न शक्ति और ओषधियां आदि (**उर्वी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**धारयन्ते**) अपने प्रभाव से पूरित करते हैं, (**विश्वेदेवाः**) सभी विद्वान् (**ते**) इस अग्नि के (**तत्**) इस (**यजुः**) दान का (**अनुगुः**) गुण गान करते हैं (**यत्**) जो यह (**ऐनी**) श्वेत दीप्ति (**दिव्यम्**) दिव्य द्युलोक में उत्पन्न (**घृतम्**) तेज को (**क्षरत्**) गिराता है वही यह (**वाः**) वृष्टिजल का (**दुहे**) दोहनन कार्य है।

भावार्थः—अग्नि का स्वभूत यज्ञीय पदार्थ जल के रूप में आता है उस जल से उत्पन्न ओषधि और शक्ति को द्यु और पृथिवीलोकस्थ पदार्थ

प्राप्त करते हैं। अग्नि के इस वृष्टिरूप दान कर्म की विद्वान् लोग प्रशंसा करते हैं। उसका जो यह वृष्टि दान है यही वस्तुतः आकाश से घृत का क्षरण है ॥३॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

पदार्थः—(**अपः**) लोकों की (**वर्धाय**) वृद्धि के लिये (**घृतस्नू**) वृष्टि के जल के दाता (**वाम्**) दोनों (**द्यावा भूमी**) द्यु और भूमि की (**अर्चामि**) मन्त्रों से प्रशस्ति करता हूँ (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी (**मे**) मेरे (**हवम्**) शब्द को (**शृणुतम्**) सब तक सुनाने के साधन बनें (**यत्**) जब (**अहा**) सायं प्रातः के यज्ञ कर्म में (**द्यावः**) विद्वान् ऋत्विज् (**असुनीतिम्**) ज्ञानयुक्त कर्म को (**अयन्**) प्राप्त करते हैं तब (**अत्र**) इस कर्म में (**पितरा**) माता-पिता भी (**नः**) हमें (**शिशीताम्**) शक्ति देते हैं।

भावार्थः—लोकों की अभिवृद्धि के लिए जल के दाता द्यु और पृथिवी की मैं मन्त्रों से प्रशंसा करता हूं। वे मेरे शब्द को सब तक सुनाने के साधन बनें। सायं प्रातः होने वाले यज्ञ में जब ऋत्विग् ज्ञानयुक्त कर्म करते हैं तब माता-पिता भी इसमें शक्ति देते हैं ॥४॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥५॥

पदार्थः—(**किं स्वित्**) तो क्या (**राजा**) दीप्तिमान् अग्नि (**नः**) हमारे हवि आदि को (**जगृहे**) ग्रहण करता है, (**कत्**) अथवा क्या (**अस्य**) अग्नि के (**व्रतम्**) कार्य वा नियम का हम (**अति चकृम**) अतिक्रमण करते हैं ? (**कः**) कौन (**विवेद**) इस रहस्य को जानता है। (**हि स्म**) अवश्य (**मित्रः**) मित्रभूत यह अग्नि (**जुहुराणः चिद्**) यदि विपरीत रूप से भी हवि से सेवित है तो (**देवान्**) देवों को (**यातम्**) हमारा हव्य पहुँचायेगा, (**न**) संप्रति (**श्लोकः**) स्तुति और (**वाजः**) हवि आदि भी देवों के प्रति जाते हैं।

भावार्थः—क्या अग्नि यज्ञ में हवि को ग्रहण करता है ? यदि नहीं तो क्या हम इस अग्नि के प्रति कर्म का अतिक्रमण करते हैं ? इस रहस्य को कौन जानता है ? परन्तु मित्र तो यदि गलती से बुलाया जावे तब भी मित्र है अतः मित्रभूत अग्नि के लिए हमने कोई भूल से अतिक्रमण भी कर

दिया है तो वह मित्रवत् ही बर्तेगा । हमारे हव्य और स्तुतियां सभी उचित देवों तक अग्नि द्वारा निश्चय पहुंचाये जाते हैं ॥५॥

दु॒र्मन्त्वत्रा॒मृत॑स्य॒ नाम॒ सल॑क्ष्मा॒ यद्विषु॑रूपा॒ भवा॑ति ।
य॒मस्य॒ यो म॒नव॑ते सु॒मन्त्वग्ने॒ तमृ॑ष्व पा॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥६॥

पदार्थः—(**यत्**) जो यह (**सलक्ष्मा**) समान गुणों वाली=गुणों की साम्यावस्था वाली प्रकृति (**विषुरूपा**) विविध रूपों वाली (**भवाति**) होती है, इस विषय में (**अमृतस्य**) अमर प्रभु का (**नाम**) प्रताप (**दुर्मन्तु**) गहन है, (**यः**) जो (**यमस्य**) नियन्त्रक शक्ति के (**सुमन्तु**) ज्ञानयोग्य गुण को (**मनवते**) जानता है (**तम**) उसकी (**ऋष्व**) महान् (**अग्ने**) अग्नि (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर (**पाहि**) रक्षा करता है ।

भावार्थः—साम्यावस्था में विद्यमान प्रकृति रूपी जगत् का कारण विविध कार्यरूपों को धारण करता है । इस विषय में अजर-अमर भगवान् का प्रभाव व कार्य गहन है । जो नियन्त्रक शक्ति के ज्ञानयोग्य गुण को जानता है, महान् अग्नि उसके लिए रक्षा का साधन बनता है ॥६॥

यस्मि॑न्दे॒वा वि॒दथे॑ मा॒दय॑न्ते वि॒वस्व॑तः॒ सद॑ने धा॒रय॑न्ते ।
सूर्ये॒ ज्योति॒रद॑धुर्मा॒स्य१॒॑क्तून्परि॑ द्योत॒निं च॑रतो॒ अज॑स्रा ॥७॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस अग्नि के होने पर (**देवाः**) विश्व की दिव्य शक्तियां (**विदथे**) जगत् में (**मादयन्ते**) विचरण करती हैं (**विवस्वतः**) वायु के (**सदने**) स्थान आकाश में (**धारयन्ते**) अपने कार्य कलापों को धारण करती हैं, (**सूर्ये**) सूर्य में (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**अदधुः**) धारण करती हैं, (**मासि**) चन्द्रमा में (**अक्तून्**) रात्रि को स्थापित करती हैं और सूर्य चन्द्र (**अजस्रा**) निरन्तर (**द्योतनिम्**) दीप्ति (**परिचरतः**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—यह वह अग्नि है जिसके होने पर ही जगत् की दिव्य शक्तियां जगत् में अपने-अपने कार्यों को करती हैं, वायु के स्थान आकाश में अपने कार्यकलापों को करती हैं, सूर्य में प्रकाश और चन्द्रमा में रात्रि स्थापित करती हैं और सूर्य तथा चन्द्र निरन्तर दीप्ति प्राप्त करते हैं ॥७॥

यस्मि॑न्दे॒वा मन्म॑नि स॒ञ्चर॑न्त्यपी॒च्ये॒३॒॑ न व॒यम॑स्य वि॒द्म ।
मि॒त्रो नो॒ अत्रादि॑ति॒रना॑गान्त्सवि॒ता दे॒वो वरु॑णाय वोचत् ॥८॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस अग्नि के (**मन्मनि**) शक्तिशाली रहने पर (**देवा**) विश्व की दिव्य शक्तियां (**संचरन्ति**) अपनी गति और क्रिया का संचार करती हैं, (**अस्य**) इस उस अग्नि के (**अपीच्ये**) अन्तर्हित में स्थित तत्त्व को (**वयम्**) हम (**न**) नहीं (**विद्म**) जानते हैं, (**अत्र**) इस विषय में (**मित्र**) वायु (**अदिति**) पृथिवी, (**सविता**) सूर्य (**देवः**) देव (**वरुणाय**) वरुण=अग्नि के रहस्य को (**अनागान्**) अपराधरहित (**नः**) हम लोगों को (**वोचत्**) प्रकट करते हैं ।

भावार्थः—इस अग्नि के होने पर ही विश्व की शक्तियां अपनी गति और क्रिया का संचार करती हैं,इस अग्नि में छिपे तत्त्व को हम नहीं जानते है। इस विषय में वायु, पृथिवी, सूर्य हमें बतला रहे हैं कि अग्नि कैसा शक्तिशाली और क्या है ॥८॥

श्रु॒धी नो॑ अग्ने॒ सद॑ने स॒धस्थे॑ यु॒क्ष्वा रथ॑म॒मृत॑स्य द्रवि॒त्नुम् ।
आ नो॑ वह॒ रोद॑सी दे॒वपु॑त्रे॒ माकि॑र्दे॒वाना॒मप॑ भूरि॒ह स्याः ॥९॥

पदार्थः—(**सधस्थे**) सहस्थान (**सदने**) आकाश में (**अग्नि**) यह अग्नि (**नः**) हमारे शब्दों को (**श्रुधि**) सब पर सुनाता हैं (**अमृतस्य**) अमृतरूप प्रकाश के (**द्रवित्नुम**) गतिशील (**रथम**) चक्र को (**युक्ष्व**) अपने से युक्त करता है, (**नः**) हमारे लिए (**देवपुत्रे**) प्रकाश के पुत्र (**रोदसी**) द्यु और भूमि को (**वह**) धारण करता है, (**देवानाम**) दिव्य शक्तियों में किसी का भी (**माकिः अप भूः**) निरादर न हो (**इह**) इस विश्व में यह अग्नि (**स्याः**) विद्यमान रहे ।

भावार्थः—आकाश में यह अग्नि हमारे शब्दों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुनाने का साधन बनाया जा सकता है । यह गनिशील प्रकाश पुंज को अपने साथ युक्त करता है । द्यु और पृथिवी को धारण करता है । इसकी इस प्रशंसा से अन्य शक्तियों का निरादर नहीं है । यह इस जगत् में सदा बना रहे ॥९॥

यह दशम मण्डल में बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३

ऋषिः १—५ विवस्वानादित्यः ॥ देवता—हविर्धाने ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—४ धैवतः । ५ निषादः ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१॥

पदार्थः—(**वाम**) इन दोनों मन और वाणी को मैं (**पूर्व्यम्**) अनादि काल से विद्यमान (**ब्रह्म**) वेदज्ञान का वेद मन्त्र से (**युजे**) संयुक्त करता हूं (**सूरेः**) ऋत्विक् की (**पथ्या इव**) स्तुति के समान (**नमोभिः**) नमस्कार से युक्त हमारा (**श्लोकः**) स्तवन (**एतु**) सर्वत्र जावे । (**अमृतस्य**) अमर भगवान् के (**विश्वे**) समस्त (**पुत्राः**) पुत्र-पुत्री अर्थात् मानवमात्र (**ये**) जो विद्वान् जन (**दिव्यानि**) दिव्य (**धाम**) तेज और ज्ञान में (**आ तस्थुः**) स्थित हैं सभी सुनें ।

भावार्थः—मैं अपने मन और वाणी को अनादिकालिक भगवान् की वाणी वेदमन्त्र और ज्ञान से युक्त करता हूं । जिस प्रकार स्तावक की स्तुति सर्वत्र पहुंचती है उसी प्रकार हमारा स्तवन सर्वत्र पहुंचे और दुनिया के सभी मनुष्यमात्र और दिव्य ज्ञान प्रकाश में स्थित विद्वान् लोग इस वेद वाणी को सुनें ॥१॥

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२॥

पदार्थः—(**यमे इव**) युगल के समान ये मन और वाणी (**यतमाने**) अपने कर्मों में नियन्त्रित रहते हुए (**एतम्**) इस यज्ञ आदि कर्म को करते हैं तब (**देवयन्तः**) देवत्व की भावना वाले (**मानुषाः**) मनुष्य (**वाम्**) इन दोनों की (**प्र भरन्**) भली प्रकार रक्षा करते हैं । ये दोनों (**स्वम् उ**) अपने (**लोकम्**) कार्यक्षेत्र को (**विदाने**) प्राप्त होकर (**स्वासस्थे**) स्वस्थ भाव में (**आ सीदतम्**) स्थित हों और (**नः**) हमें (**इन्दवे**) प्रकाशक भगवान् की प्राप्ति के लिए (**भवतम्**) हों ।

भावार्थः—अपने में नियन्त्रित ये मन और वाणी युगल के समान यज्ञकर्म में प्रवृत्त हों । देवत्व भावना को प्राप्त हुए मनुष्य इनकी रक्षा करते हैं । ये दोनों अपने कार्य क्षेत्र को जान या प्राप्त कर स्वस्थ अवस्था में रहें और हमें ऐश्वर्यशाली भगवान् के प्राप्त कराने में प्रवृत्त रहें ॥२॥

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३॥

पदार्थः—मैं साधक यज्ञकर्त्ता (**रुपः**) शरीर के (**पंच**) पांच (**पदानि**) पदों—पंच कोषों पर (**अन्वरोहम्**) स्थित होऊं, (**व्रतेन**) कर्म और नियम पालन द्वारा (**चतुष्पदीम्**) चार पदों वाली का (**अन्वेमि**) अनुसरण करूं । वाणी के चार पद परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं । (**अक्षरेण**) ओ३म् रूपी अक्षर के साथ (**एताम्**) इस वाणी को (**प्रति मिमे**) युक्त करूं तथा (**ऋतस्य**) सृष्टिनियम और ज्ञान के (**नाभौ**) नाभि-केन्द्र भगवान् में (**अधि सं पुनामि**) अपनी आत्मा को स्थित कर पवित्र करूं ।

भावार्थः साधक को चाहिए कि वह यज्ञ तो करे ही, परन्तु उसके द्वारा शरीर के पांच कोषों पर अधिकार रखे । वाणी के चार पद परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी को जाने और ओ३म् रूपी अक्षर को उस वेद वाणी के पद से युक्त करे । सृष्टि के नियम और ज्ञान के केन्द्र भगवान् में स्थिति पाकर अपनी आत्मा को पवित्र करे ॥३॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वालो ! (**यमः**) भगवान् ने (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**कम्**) किसे (**मृत्युम्**) मृत्यु वा मारक को (**अवृणीत**) चुना है, किसी को नहीं (**प्रजायै**) प्रजा के लिए (**कम्**) किस (**अमृतम्**) अमरत्व अथवा अमारक को (**न**) नहीं (**अवृणीत**) चुना है, (**बृहस्पतिम्**) वेद वाणी के ज्ञान को यजमान लोग (**यज्ञम्**) यज्ञ में ऋत्विग् (**अकृण्वत**) बनाते हैं । भगवान् हमारे (**प्रियाम्**) प्यारे (**तन्वम्**) शरीर को (**प्रारिरेचीत्**) उत्पन्न करता है ॥

भावार्थः—जगत् के नियन्त्रणकर्त्ता भगवान् ने देवों के मारने वाले को चुना है, और प्रजा के लिए अमरत्व को नहीं चुना है—ऐसा सिद्धान्त नहीं है । मृत्यु और अमरत्व अपने कर्मों से हैं । यह जानकर यज्ञ में वेदज्ञ ऋत्विग् बनाना चाहिए और समझना चाहिए कि हमारे इस प्यारे शरीर की रचना भगवान् ही करता है ॥४॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥

पदार्थः—(**पित्रे**) पिता के लिए (**पुत्रासः**) पुत्र के समान (**मरुत्वते**) प्राणों के स्वामी (**शिशवे**) अन्तर्विद्यमान आत्मा के लिए (**सप्त**) सात छन्दों वाले मन्त्र (**ऋतम्**) सत्य ज्ञान का (**क्षरन्ति**) क्षरण करते वा वर्षाते हैं, (**अपि अवीवतन्**) और संगति भी लगाते हैं (**उभे**) दोनों मन और वाणी (**अस्य उभयस्य**) इन दोनों के (**इद**) ही अर्थात् देवजात और मनुष्यजात प्रजा को(**राजतः**) प्रकाशमान करते हैं, दोनों ही (**यतेते**) अपने कार्यों में प्रयत्न करते हैं और (**उभयस्य**) दोनों को (**पुष्यतः**) पुष्ट करते हैं ।

भावार्थः—पिता के लिए पुत्रों के समान सात छन्दों से युक्त वेद-वाणियां अन्तर्विद्यमान आत्मा के लिए ज्ञान की वर्षा करती हैं और कर्म से संगत भी करती हैं । ये मन और वाणी दोनों प्रकार के लोगों अर्थात् देव और मनुष्य को ज्ञान कर्म से प्रकाशित करते, अपने कार्यों में प्रवृत्त रहते और दोनों को ही पुष्ट करते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल का तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१४

ऋषिः—१—१६ यमः ॥ देवता – १ - ५, १३–१६ यमः । ६ लिंगोक्ताः । ७ ९ लिंगोक्ताः पितरो वा । १०—१२ श्वानौ ॥ छन्दः —१,१२ भुरिक्त्रिष्टुप् । २, ३, ७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । १३, १४ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १५ विराड्बृहती ॥ स्वरः - १ – १२ धैवतः । १३, १४, १६ गान्धारः । १५ मध्यमः ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥

पदार्थः (**प्रवतः**) उतम कर्म वालों को (**महीः**) उत्ताम लोक को (**अनु परेयिवांसम्**) प्राप्त कराने वाले (**बहुभ्यः**) बहुत से जीवों के लिए (**पन्थाम्**) मार्ग को (**अनुपस्पशानम्**) दिखाने वाले, (**वैवस्वतम्**) सूर्य के भी

स्वामी, (**जनानाम्**) लोगों के कर्मों के अनुसार उन्हें (**संगमनम्**) संगमन कराने वाले (**राजानम्**) राजा (**यमम्**) जगत् के नियन्ता भगवान् की हे मनुष्य ! वा हे जीव ! तू (**हविषा**) श्रद्धाभाव से (**दुवस्य**) स्तुति कर ।

भावार्थः—हे मनुष्य वा जीव ! तू श्रद्धाभाव से उस भगवान् की सदा स्तुति किया कर जो उत्तम कर्म वालों को उत्तम लोक देने वाला, और सभी का मार्ग दर्शक, सूर्य का भी स्वामी, लोगों के कर्मों के अनुसार फल की संगति लगाने वाला और जगत् का नियन्ता है ॥१॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥२॥

पदार्थः—(**यमः**) जगत् का नियन्ता भगवान् (**प्रथमः**) सब में मुख्य है । वह (**नः**) हमारे (**गातुम्**) समस्त व्यवहारों को (**विवेद**) जानता है, (**एषा**) यह (**गव्यूतिः**) भगवान् का मार्ग (**उ**) निश्चय (**न अप भर्तवै**) तोड़ा नहीं जा सकता है (**यत्र**) जिस मार्ग पर (**नः**) हमारे (**पूर्वे**) पूर्व (**पितरः**) पिता-माता (**परा ईयुः**) चले हैं और अब माता-पिता चलते हैं (**एना**) इसे (**स्वाः**) अपना (**पथ्या**) मार्ग (**जज्ञानाः**) जानकर हे जीवो चला !

भावार्थः—जगत् का नियन्ता भगवान् सब में मुख्य है। वह हमारे समस्त कर्मों और व्यवहारों को जानता है। उसका यह जानने वाला मार्ग अथवा उसका नियम किसी प्रकार तोड़ा नहीं जा सकता है। जिस रास्ते पर हमारे पूर्व माता-पिता चले और अब हमारे माता-पिता चलते हैं उसी को अपना मार्ग बनाकर हे जीवो जगत् में चलो और अपने व्यवहार करो ॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

पदार्थः—(**मातली**) आकाश का ज्ञान रखने वाला मनुष्य(**कव्यैः**) शब्दों से, (**यमः**) मन, वाणी आदि का नियन्ता मनुष्य (**अंगिरोभिः**) तपस्वियों से, (**बृहस्पतिः**) वेदज्ञ (**ऋक्वभिः**) वेदज्ञों से (**वावृधानः**) आनन्द को प्राप्त करता है (**ये**) जो (**देवाः**) विद्वान् (**यान्**) जिनको (**वावृधुः**) आनन्द आदि से बढ़ाते हैं और जो (**देवान्**) देवों को (**वावृधुः**) बढ़ाते हैं इनमें से (**अन्ये**) कुछ

(**स्वाहा**) उत्तम वाणी, दान आदि के सत्कार से (**मदन्ति**) प्रसन्न होते हैं और दूसरे (**स्वधया**) भोजन पान से प्रसन्न होते हैं ।

भावार्थः—आकाश का ज्ञान रखने वाले विद्वान् उत्तम शब्दों से, इन्द्रियों के वशी तपस्वियों से और वेदज्ञों से मिलकर प्रसन्न होते हैं । जो विद्वानों को उनके योग्य साधनों से बढ़ाता है और विद्वान् जिनको बढ़ाते हैं इनमें से कुछ ऐसे हैं जो वाणी से और दान से आनन्द पाते हैं और कुछ भोजन और पान आदि से आनन्द पाते हैं ॥३॥

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

पदार्थः—(**यम**) हे इन्द्रियों को वश में रखने वाले (**राजन्**) तेजस्विन् विद्वन् ! तू (**अंगिरोभिः**) तपस्वी (**पितृभिः**) माता-पिता आदि श्रेष्ठ विद्वानों के साथ (**संविदानः**) एकमति होकर (**हि**) निश्चय (**इमम्**) इस (**प्रस्तरम्**) यज्ञासन पर (**आ सीद**) विराजमान हो, (**कविशस्तः**) विद्वानों द्वारा उच्चारित (**मन्त्राः**) वेद मन्त्र (**त्वा**) तुम्हें (**आ वहन्तु**) ज्ञान प्राप्त करावें तथा तू (**हविषा**) हवि आदि से यज्ञ देवों को (**मादस्व**) प्रसन्न कर और स्वयं प्रसन्न हो ।

भावार्थः—हे इन्द्रियों के वशी, तेजस्वी विद्वन् ! तू तपस्वी विद्वान् (पितृभिः) जीवित माता-माता और प्रपिता आदि के साथ एकमति होकर इस यज्ञासन पर बैठ और विद्वानों द्वारा उच्चारित मन्त्र तुझे ज्ञान दें और तू हवि से यज्ञ देवों को प्रसन्न कर और स्वयं प्रसन्न हो ॥४॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥

पदार्थः—(**यम**) हे वशी पुरुष ! तू (**यज्ञियेभिः**) यज्ञ करने योग्य, (**अंगिरोभिः**) तपस्वी (**वैरूपैः**) नाना विद्याओं के ज्ञाता विद्वानों से साथ (**इह**) इस यज्ञ में (**आ गहि**) आ और (**मादयस्व**) प्रसन्न हो (**विवस्वन्तम्**) विविध धन और ज्ञानों वाले उसको (**यः**) जो (**ते**) तेरा (**पिता**) जीवित पिता है (**तम्**) उसको भी (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) यज्ञ में बुलाता हूं । मैं ऋत्विग् और वह भी (**बर्हिषि**) यज्ञासन पर (**निषद्य**) बैठकर प्रसन्न होवे ।

भावार्थः—हे वशी पुरुष ! तू यज्ञ करने योग्य तपस्वी विविध विद्या के विद्वानों के साथ इस यज्ञ में आ और प्रसन्न हो । विविध धनों वाला, ज्ञानी तुम्हारा जीवित पिता भी इस यज्ञ में आसन पर बैठकर प्रसन्न होवे ॥५॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥

पदार्थः—(**नः**) हमारे (**पितरः**) जीवित पितृजन जो (**अंगिरसः**) अग्नि विद्या के जानने वाले हैं, (**अथर्वाणः**) अहिंसक व्यवहार वाले हैं, (**भृगवः**) तपस्वी हैं, (**सोम्यासः**) सोम विद्या के ज्ञाता हैं और (**नवग्वा**) नई-नई बुद्धियों को देते हैं (**वयम्**) हम (**तेषाम्**) उन (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ के ज्ञान वालों की (**सुमतौ**) सुमति में सदा रहें और (**भद्रे**) कल्याणकारक (**सौमनसे**) सौमनस्य में (**स्याम**) रहें ।

भावार्थः—हमारे जीवित पितर जो अग्नि विद्या के ज्ञाता, अहिंसक, तपस्वी और सोमज्ञान के ज्ञाता हैं हमें सदा उनकी सम्मति में और सोमनस्य में रहना चाहिए ॥६॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्य (**प्रेहि**) चलो, (**प्रेहि**) चलो, उन (**पूर्व्येभिः**) पुराने अनादि (**पथिभिः**) मार्गों से (**यत्र**) जिनसे (**नः**) हमारे (**पूर्वे**) पहले (**पितरः**) पिता-माता आदि (**परा इयुः**) चले हैं, इस प्रकार उन मार्गों पर चलते हुए (**राजाना**) सबके प्रकाशक और शासक (**स्वधया**) प्रकृति के साथ (**मदन्तौ**) विराजमान (**उभौ**) दोनों (**देवम्**) देव (**यमम्**) परमेश्वर (**च**) और (**वरुणम्**) जीव को (**पश्यासि**) देखो ।

भावार्थ—हे मनुष्य जिन अनादि मार्गों से हमारे पूर्वं माता-पिता आदि चले हैं उन पर चलते हुये जगत् के नियन्ता भगवान् और जीव को प्रकृति के साथ विराजमान देख ॥७॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

पदार्थः हे जीव ! (**पितृभिः**) किरणों के साथ (**परमे**) परम (**व्योमन्**) आकाश में (**सं गच्छस्व**) जा, (**यमेन**) वायु के साथ (**संगच्छस्व**) संयुक्त हो (**इष्टा पूर्तेन**) अपने किये हुए यज्ञ और पूर्त्त आदि कर्मों से युक्त हुआ तू (**अवद्यम्**) अप्रशस्त शरीर को (**हित्वा**) छोड़कर (**पुनः**) फिर (**अस्तम्**) गृह को प्राप्त हो और (**सुवर्चाः**) तेजस्वी (**तन्वा**) शरीर के साथ (**सम्**) युक्त होकर (**इह**) इस संसार में (**आ गच्छस्व**) आओ ।

भावार्थः – जीव शरीर से निकल कर किरणों के द्वारा महान् आकाश में जाता है, वायु के साथ रहता है, अपने अच्छे कर्मों के अनुसार अनुत्तम शरीर को छोड़कर नये घर में आता है और नये तेजस्वी शरीर के साथ संसार में पुनः आता है ॥८॥

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒ऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन् ।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै ॥९॥

पदार्थः – हे दुष्कृत वाले जीव ! (**अतः**) इस पितृयान मार्ग वाले स्थान से (**अपेत**) दूर हो, (**वीत**) भागो (**च**) और (**वि सर्पत**) हटो (**एतम्**) इस (**लोकम्**) लोक को (**पितरः**) कर्मकाण्डी पितृयान के गामी (**अक्रन्**) प्राप्त करते हैं, (**यमः**) वायु वा परमेश्वर (**अहोभिः**) प्रकाशमान (**अद्भिः**) कर्मों (**अक्तुभिः**) रात्रियों से (**व्यक्तम्**) प्रकट (**अवसानम्**) इस स्थान को (**अस्मै**) पितृयान मार्ग वाले जीव को (**ददाति**) देता है ।

भावार्थः – दुष्ट कर्म वाले जीव पितृयान मार्ग वाली अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकते हैं परमेश्वर प्रकाशमान रात्रि के माध्यम और कर्मों से प्राप्य इस अवस्था को पितृयान-गामी जीव को देता है ॥९॥

अति॑ द्रव सारमे॒यौ श्वानौ॑ चतुर॒क्षौ श॒बलौ॑ सा॒धुना॑ प॒था ।
अथा॑ पि॒तॄन्त्सु॑वि॒दत्राँ॒ उपे॑हि य॒मेन॒ ये स॑ध॒मादं॒ मद॑न्ति ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (**सारमेयौ**) सरमा=उषा के पुत्र, (**चतुरक्षौ**) सर्वत्र दृष्टि रखने वाले (**श्वानौ**) गतिमान् (**शवलौ**) काले और श्वेत रात्रि और दिन के जोड़े का (**अति द्रव**) अतिक्रमण कर, (**अथा**) और उन (**सुविदत्रान्**) उत्तम ज्ञान वाले (**पितृन्**) जीवित माता-पिता और विद्वानों के (**उपेहि**) पास जा (**ये**) जो (**यमेन**) जगत् के नियन्ता भगवान् के (**सधमादम्**) सम्पर्क में (**मदन्ति**) आनन्दित हो रहे हैं ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! तू चौतरफ अपना प्रभाव रखने वाले द्रुत गति से वीत रहे रात्रि और दिन का ख्याल न कर उन ज्ञानी पितृजनों के पास जाकर उनकी संगति कर जो भगवान् के ज्ञान में आनन्दित हो रहे हैं ॥१०॥

यौ ते॒ श्वानौ॑ यम रक्षि॒तारौ॑ चतुर॒क्षौ प॑थि॒रक्षी॑ नृ॒चक्ष॑सौ ।
ताभ्या॑मेनं॒ परि॑ देहि राजन्त्स्व॒स्ति चा॑स्मा अनमी॒वं च॑ धेहि ॥११॥

पदार्थः—(**यम**) हे जगन्नियन्तः ! (**राजन्**) हे सबके राजा ! तू (**ताभ्याम्**) दोनों उन रात्रि और दिन के जोड़ों से इस जीव वा मनुष्य को (**परि देहि**) बचा (**यौ**) जो (**ते**) तेरे (**चतुरक्षौ**) सर्वत्र आंख रखने वाले (**पथिरक्षी**) मार्ग के रक्षक (**नृचक्षसौ**) मनुष्यवत् दृष्टि रखने वाले (**रक्षितारौ**) रक्षक भूत (**श्वानौ**) कुत्ते के समान रात्रि और दिन हैं । तथा इस मनुष्य को (**स्वस्ति**) सुख (**च**) और (**अनमीवम्**) नीरोगता (**धेहि**) दे ।

भावार्थः—हे सबके राजा जगत् के नियन्ता भगवन् ! तू इस मनुष्य की कुत्ते के समान-मनुष्य की आयु को समाप्त करने वाले, सर्वत्र विद्यमान रात्रि और दिन के जोड़ों से इस मानव की रक्षा कर और इसे सुख और स्वस्थता दे ॥११॥

उ॒रू॒ण॒साव॑सु॒तृपा॑ उदु॒म्ब॒लौ य॒मस्य॑ दू॒तौ च॑रतो॒ जनाँ॒ अनु॑ ।
ताव॒स्मभ्यं॑ दृ॒शये॒ सूर्या॑य॒ पुन॑र्दाताम॒सुम॒द्येह भ॒द्रम् ॥१२॥

पदार्थः—(**यम**) भगवान् के (**दूतौ**) दूत (**उरूणसौ**) जल्दी पता पाने वाले, (**असुतृपौ**) लोगों की आयु का हरण करने से प्राणों से तृप्त होने वाले (**उदुम्बलौ**) विस्तीर्ण बल वाले ये रात्रि और दिन के जोड़े (**जनान्**) प्राणियों को (**अनु**) लक्ष्य करके (**चरतः**) विचरते हैं, (**तौ**) वे (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**सूर्याय**) सूर्य के (**दृशये**) देखने के लिए (**इह**) इस संसार में (**अद्य**) आज (**भद्रम्**) कल्याण को (**पुनः**) फिर-फिर (**दाताम्**) देवें ।

भावार्थः—दिन और रात्रि सभी प्राणियों पर अपना प्रभाव रखते हैं। ये यम के कुत्ते कहे गये हैं और लोगों की आयु को काटते वा कम करते रहते हैं। वे हमारे लिए सूर्य को देखने का बहुत दिनों तक साधन बनें और इस संसार में पुनः वर्तमान में भी भगवान् की कृपा से कल्याणकारी सुख देवें ॥१२॥

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**यमाय**) वायु के लिए (**सोमम्**) सोम का (**सुनुत**) निचोड़ करो (**यमाय**) वायु और सूर्य के लिए यज्ञ में (**हविः**) हवि डालो (**अग्निदूतः**) अग्नि जिसका दूत है ऐसा (**अरंकृतः**) सुष्ठु सम्पादित (**यज्ञः**) यज्ञ में क्षिप्त पदार्थ (**ह**) निश्चय से (**यमम्**) वायु और सूर्य को (**गच्छति**) पहुँचता है ।

भावार्थः- हे मनुष्यो ! वायु की शुद्धि के लिए सोम आदि पदार्थों का निष्पादन करो और यज्ञ में हवि आदि अग्नि में डालो । यह अच्छी प्रकार विधि से डाला गया पदार्थ वायु और सूर्य तक पहुंचता है क्योंकि इसका पहुंचाने वाला अग्नि यज्ञ का दूत है ॥१३॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**यमाय**) वायु और सूर्य किरणों की शुद्धि के लिए (**घृतवद्**) घृत मिश्रित (**हविः**) सामग्री (**जुहोत**) यज्ञाग्नि में डालो (**च**) और (**प्रतिष्ठत**) इस नियम पर सदा स्थिर रहो, (**देवेषु**) सभी देवों के मध्य (**सः**) वह यम (**प्रजीवसे**) उत्कृष्ट जीवन के लिए (**नः**) हमें (**दीर्घम्**) दीर्घ (**आयुः**) आयु (**आ यमत्**) देता है ।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि वे घृत युक्त सामग्री को वायु और सूर्य की किरणों को शुद्ध करने के लिए यज्ञाग्नि में डालें । यह वायु और सूर्य हमारे लिये लम्बी आयु के साधन बनते हैं ॥१४॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! (**राज्ञे**) प्रकाशमान (**यमाय**) सूर्य और वायु की शुद्धि के लिए (**मधुमत्तमम्**) मधु आदि मधुर पदार्थों से युक्त (**हव्यम्**) हव्य पदार्थ को (**जुहोतन**) यज्ञाग्नि में डालो (**ऋषिभ्यः**) ऋषियों के लिए (**पूर्वजेभ्य**) पूर्वज=जीवित माता-पिता आदि के लिए और (**पूर्व्येभ्यः**) ज्ञानपूर्ण (**पथिकृद्भ्यः**) मार्ग दिखाने वालों के लिए (**इदम्**) यह (**नमः**) ज्ञान और अन्न हो ।

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि वे सूर्य की किरणों और वायु की शुद्धि के लिए मधु आदि मधुर पदार्थों से युक्त हवि यज्ञ की अग्नि में डालें । ऋषियों, पूर्वज जीवित माता-पिता और मार्ग दिखाने वालों के लिए ज्ञान की वृद्धि करें और उन्हें अन्न आदि खाने को दें ॥१५॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥

पदार्थः- (**एकम्**) एक (**इव**) ही यह यम =सूर्य (**बृहत्**) महान् है, (**त्रिकद्रुकेभिः**) उदय, मध्याह्न और अस्तमन रूपी तीन क्रियाओं से (**षड्**) छः (**उर्वीः**) ऋतुओं को (**पतति**) प्राप्त होता है (**सर्वा**) सभी (**ता**) वे (**छन्दांसि**) छन्द (**त्रिष्टुप्**) त्रिष्टुप् (**गायत्री**) गायत्री आदि (**यमे**) सूर्य में (**अव्यक्ता**) सौरी वाणी के रूप में (**आहिता**) धृत हैं ।

भावार्थः—एक है यह सूर्य और महान् है । वह उदय, मध्याह्न और अस्तमन् क्रमों से छः ऋतुओं को बनाता है त्रिष्टुप्, गायत्री आदि सभी छन्द सौरी वाक् रूप में यम=सूर्य में व्याप्त हैं ॥१६॥

यह दशम मण्डल में चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १५

ऋषिः—१–१४ शंखो यामायनः ॥ देवता—पितरः ॥ छन्दः—१, २, ७, १२—१४ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ९, १० त्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ११ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१–१०, १२—१४ धैवतः ॥ ११ निषादः ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

पदार्थः—हमारे जीवित पितृजनों में जो अपने ज्ञानक्रिया, कुशलता आदि कार्यों में (**अवरे**) नीची कक्षा के हैं (**उद् ईरताम्**) उन्नत हों, (**मध्यमाः**) जो मध्यम कक्षा के हैं (**उद् ईरताम्**) उन्नति करें, (**परासः**) उत्तम कक्षा के और

भी (**उत् ईरताम्**) उन्नत हों, (**सोम्यासः**) सोम विद्या के ज्ञाता (**पितरः**) पितर भी (**उत् ईरताम्**) उन्नत हों, (**ते**) वे (**पितरः**) पितृजन (**हवेषु**) स्तुति, प्रार्थना वज्ञ आदि में (**नः**) हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें (**ये**) जो (**ऋतज्ञाः**) यज्ञ विद्या और सृष्टि नियम के जानने वाले हैं और (**अवृकाः**) शोषण न करने वाले हैं और (**असुम**) प्राणों को (**ईयुः**) धारण करते हैं और लम्बी आयु वाले हैं ।

भावार्थः—हमारे जीवित पितृजन में जो ज्ञान और क्रियाकुशलता में अवर, मध्यम और उन्नत कक्षा के हैं सभी उन्नति को प्राप्त हों। जो सोम विद्या के ज्ञाता हैं वे भी उन्नति करें। हमारे यज्ञ आदि कामों में सम्मिलित होकर अपने ज्ञान और अनुभव तथा लम्बे काल के प्रयोगों के साथ हमारी रक्षा करें ।।१।।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

पदार्थः -(**ये**) जो (**पूर्वासः**) पूर्ण ज्ञान वाले हैं, (**ये**) जो (**उपरासः**) न्यून ज्ञान वाले (**ईयुः**) हैं (**अद्य**) अब उन (**पितृभ्यः**) पितृजनों के लिए (**इदम्**) यह (**नमः**) अन्न जल (**अस्तु**) है, उनमें से (**ये**) जो (**पार्थिवे**) पृथिवी सम्बन्धी (**रजसि**) लोक में (**आ निषत्ताः**) उच्च पदों पर और उच्च स्थिति में हैं (**वा**) और (**नूनम्**) निश्चय ही (**ये**) जो (**सुवृजनासु**) उत्तम कर्म करने वाली विदुषी (**विक्षु**) प्रजाजनों में विद्यमान हैं ।

भावार्थः—हमारे पितृजन जो पूर्ण ज्ञान वाले और जो न्यून ज्ञान वाले हैं, जो इस पृथिवी पर उत्तम पदों पर हैं, जो विदुषी प्रजा अर्थात् विद्वज्जनों में स्थान पाते हैं उन सबके लिए अन्न जल प्राप्त हो अर्थात् हमारे द्वारा दिया जावे ।।२।।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं यजमान (**सुविदत्रान्**) उत्तम ज्ञान और अनुभव वाले (**पितॄन्**) माता-पिता आदि प्रयोगात्मक ज्ञान वाले विद्वानों को (**आ अविवित्सि**) प्राप्त करूं, (**विष्णोः**) व्यापक भगवान् के (**नपातम्**) अविनाशी स्वरूप (**च**)

और (**विक्रमणम्**) विक्रमण सृष्टिरूप पराक्रम को (**आ अविवित्सि**) जानता हूं, (**ये**) जो (**बर्हिषदः**) आकाश का ज्ञान रखने वाले विद्वज्जन (**स्वधया**) अपने पराक्रम से (**सुतस्य**) बनाये गये (**पित्वः**) सोमरस आदि को (**भजन्ते**) सेवन करते हैं वे (**इह**) इस हमारे यज्ञ में (**आगमिष्ठाः**) आवें ।

भावार्थः – हमें चाहिए कि हम ज्ञानी पिता, माता, विद्वान् आदि के पास जावें, भगवान् के अविनाशी स्वरूप और सृष्टिरूपी पराक्रम को जानते हुए जो विद्वज्जन स्वयं द्वारा तैयार किये गए सोम आदि का सेवन करते हैं अपने यज्ञ और व्यवहार कार्य में उन्हें बुलायें और उनको आदर दें ।।३।।

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा अन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४॥

पदार्थः--(**बर्हिषदः**) आकाश का ज्ञान रखने वाले (**पितरः**) हे हमारे ज्ञानी माता-पिता गुरुजन ! आप लोगों की (**ऊत्वी**) रक्षा (**अर्वाक्**) हमें सदा प्राप्त रहे, (**इमा**) इन (**हव्या**) हव्य आदि पदार्थों को (**वः**) आप लोगों को (**चकृम**) प्रदान करते हैं (**ते**) वे आप लोग (**जुषध्वम्**) इनसे यज्ञ करो (**आ गत**) आइये (**शंतमेन**) सुखकारी (**अवसा**) रक्षा और प्रीति के साथ (**अथा**) और (**नः**) हमारे लिए (**शम्**) सुख (**योः**) दुःखराहित्य एवम् (**अरपः**) निष्पापत्व (**दधात**) धारण कराइये ।

भावार्थः— आकाश आदि की विद्या के ज्ञानी हमारे माता-पिता और गुरुजन हमारे यज्ञों में आवें, बैठें और हमारे दिये हवि आदि पदार्थों से यज्ञ करें और हमारे लिए सदा अपनी सुखमयी कृपा से सुख, दुःख राहित्य और निष्पापता की भावना प्रदान करें ।।४।।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥

पदार्थः—(**सोम्यासः**) सोमविद्याविद् (**पितरः**) माता-पिता, गुरु, ज्ञानीजन (**उपहूता**) हमारे द्वारा बुलाये गये (**बर्हिष्येषु**) यज्ञ-सम्बन्धी (**प्रियेषु**) प्रिय (**निधिषु**) कार्यों में सम्मिलित हों, (**ते**) वे (**इह**) इस यज्ञ में (**आ गमन्तु**) आवें (**ते**) वे (**अधि श्रुवन्तु**) हमारे वचनों को सुनें (**ते**) वे (**अस्मान्**) हमें (**अधिब्रुवन्तु**) उपदेश करें और (**अवन्तु**) हमारी रक्षा करें ।

भावार्थः—बुलाये गए माता-पिता गुरुजन आदि हमारे यज्ञों में आवें, हमारे वचनों को सुनें, हमें उपदेश करें और हमारी रक्षा करें ॥५॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६॥

पदार्थः—(**विश्वे**) हे समस्त (**पितरः**) पितृजन ! (**दक्षिणतः**) दायें ओर (**जानु**) जांघ को (**आ अच्य**) मोड़कर (**निषद्य**) बैठकर अर्थात् वीर आसन से बैठकर (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) हमारे यज्ञ में (**अभि गृणीत**) उपदेश करो, (**केन चित्**) किसी भी (**पुरुषता**) मानवदोष से (**वः**) आप लोगों के लिए (**यत्**) यदि कोई (**आगः**) अपराध (**करामः**) हम कर बैठें तो (**नः**) हम पर (**मा**) मत (**हिंसिष्ट**) कोप करें ।

भावार्थः—हमारे पितृजन दाहिनी तरफ जांघ को मोड़कर वीर आसन से बैठकर हमारे यज्ञ में हमें उपदेश दें । यदि मानवदोषवशात् कोई अपराध उनके प्रति हो जावे तो हम पर कोप न करें ॥६॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥

पदार्थः—(**पितरः**) हे पितृजन (**अरुणीनाम्**) प्रकाशमान ज्वालाओं (**उपस्थे**) स्थान वेदी पर (**आसीनासः**) बैठे हुए आप लोग (**दाशुषे**) दानदाता (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिए (**रयिम्**) धन (**धत्त**) दीजिए, (**ते**) वे आप लोग (**तस्य**) उसके (**पुत्रेभ्यः**) पुत्र-पौत्र आदि के लिए (**वस्वः**) धनादि पदार्थ (**प्रयच्छत**) दीजिए (**इह**) इस यज्ञ में (**ऊर्ज्जम्**) अन्न आदि (**दधात**) डालें ।

भावार्थः—हमारे पितृजन यज्ञवेदी पर बैठे हुए दानदाता मनुष्य को धन दें, उसके पुत्र और पौत्र आदि को भी धन दें और यज्ञ वेदि में भी अन्न आदि की आहुति दें ॥७॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥८॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**नः**) हमारे (**पूर्वे**) ज्ञानपूर्ण (**सोम्यासः**) सोमविद्याविद् (**पितरः**) पितृजन (**वसिष्ठा**) उत्तमधन वाले होकर (**सोमपीथम्**) सोमविद्या को (**अनु ऊहिरे**) शिष्य आदि को देते हैं, (**उशद्भिः**) ज्ञान का विस्तार चाहने वाले (**तेभिः**) उन पितृजनों के साथ (**संरराणः**) रहता हुआ (**यमः**) नियमों का पालक विद्यार्थी (**हवींषि**) हवि आदि पदार्थों को (**उशन्**) चाहता हुआ (**प्रतिकामम्**) इच्छानुसार (**अत्तु**) खावे ।

भावार्थः—सोम विद्याविद् ज्ञानपूर्ण पितृजनों के साथ जो विद्यार्थी सोमविद्या आदि की प्राप्ति कर रहा है उसे उनके साथ रहते हुए भोजन-पान आदि पर्याप्त रूप में प्राप्त होता रहे—ऐसा हमें ध्यान रखना चाहिए ॥८॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ्सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**होत्राविदः**) यज्ञ कर्म में निपुण हैं, (**स्तोमतष्टासः**) वेद मन्त्रों के रहस्य को खोलने वाले हैं तथा (**अर्कैः**) वेद मन्त्रों के साथ (**देवत्रा**) यज्ञ आदि कर्मों के निमित्त (**तातृषुः**) धन आदि से तृप्त नहीं हैं अर्थात् इन कार्यों के सम्पदानार्थ जिनके पास पर्याप्त धन नहीं हैं उनको (**अग्ने**) हे विद्यार्थिन् ! तू (**सुविदत्रेभिः**) ज्ञान वाले, (**घर्मसद्भिः**) यज्ञ आदि करने वाले, (**सत्यैः**) सत्यवादी (**कव्यैः**) मेधावी (**पितृभिः**) उन पितृजनों के साथ (**आयाहि**) हमारे पास आओ और प्राप्त करो ।

भावार्थः—जो यज्ञ कर्म में निपुण, वेद के रहस्यों को खोलने वाले यज्ञ, पठन-पाठन आदि कार्यों के लिए धन से तृप्त नहीं है उनके साथ विद्यार्थीजन इस कार्य के पूर्त्यर्थ गृहस्थों के पास आवें और धन आदि प्राप्त करें ॥९॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१०॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**सत्यासः**) सत्यभूत (**हविरदः**) यज्ञ में अग्नि में डाली गई हवि के ग्रहण करने वाले हैं (**हविष्पाः**) जल को पीने वा उसकी रक्षा करने वाले हैं (**इन्द्रेण**) वायु के साथ और (**देवैः**) अन्य दिव्य पदार्थों के साथ (**सरथम्**) समान प्रकाश को (**दधानाः**) धारण करने वाले हैं उन (**सहस्रम्**) बहु (**परैः**) परे (**पूर्वैः**) पूर्व विद्यमान (**देववन्दैः**) विद्वानों द्वारा प्रशंसा किये

जाने योग्य (**घर्मसद्भिः**) ताप धारण करने वाले (**पितृभिः**) सूर्य किरणों के साथ (**अग्ने**) यह अग्नि (**आ याहि**) हमें प्राप्त होता है ।

भावार्थः—अग्नि वायु के साथ बिखरने वाली, अन्य दिव्य पदार्थों के साथ युक्त हुई जल को खींचने और धारण करने वाली, हवियों को ग्रहण करने वाली, ताप-धारक पितृ=सूर्य किरणों के साथ हमें प्राप्त होता है ॥१०॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११॥

पदार्थः--(**सुप्रणीतयः**) अच्छी नीतियां वाले (**अग्निष्वात्ताः**) अग्नि की विद्या को सुष्ठु रूप से ग्रहण कर जानने वाले (**पितरः**) हे पितृजन ! (**इह**) हमारे घर में (**आ गच्छत**) आइये (**सदः सदः**) उत्ताम-उत्तम स्थानों पर (**सदत**) बैठिये (**अथ**) अनन्तर (**प्रयतानि**) हमारे द्वारा दिये गये (**हवींषि**) खाद्य पदार्थों को (**अत्त**) खाइये (**बर्हिषि**) यज्ञ में (**सर्ववीरम्**) पुत्र-पौत्र आदि से युक्त (**रयिम्**) धन को हमें दीजिए ।

भावार्थः--अग्नि के विज्ञान को जिन्होंने भली प्रकार ग्रहण किया है और जो अच्छी नीति वाले हैं वे पितृजन हमारे घरों में आवें, उत्तम आसनों पर बैठें, हमारे द्वारा दिये अन्न आदि को खावें और हमें पुत्र-पौत्र धन आदि से पूर्ण करें ॥११॥

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२॥

पदार्थ--(**जातवेदः**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (**ईडितः**) प्रशंसित (**त्वम् अग्ने**) यह अग्नि (**हव्यानि**) इसमें डाले गए हव्यों को (**सुरभीणि**) सुगन्धमय (**कृत्वी**) करके (**अवाट्**) सब देवों तक पहुंचाता है, (**स्वधया**) अन्न से युक्त (**प्रयता**) दी गई इन (**हवींषि**) हवियों को (**पितृभ्यः**) सूर्य किरणों को (**प्र अदाः**) देता है (**ते**) वे इसको (**अक्षन्**) खाती हैं और (**देवः**) यह देव अग्नि (**त्वं**) स्वयं भी (**अद्धि**) खाता है ।

भावार्थः अग्नि यज्ञ में इसमें डाले गये हवनीय पदार्थों को सुगन्धयुक्त करके देवों तक पहुंचाता है, सूर्य किरणों को देता है । वे भी इसे ग्रहण करती हैं और यह स्वयं भी खाता है ॥१२॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३॥

पदार्थ--(**ये**) जो (**च**) भी (**पितरः**) सूर्य किरणें (**इह**) यहां प्रत्यक्षभूत हैं, (**च**) और (**ये**) जो (**इह**) यहां (**न**) प्रत्यक्षभूत नहीं हैं, (**च**) और (**यान्**) जिन किरणों को (**विद्म**) हम जानते हैं (**च**) और (**यान्**) जिनको (**न उ**) नहीं भी (**प्रविद्म**) जानते हैं (**त्वम्**) यह (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान अग्नि (**यति**) यदि (**वेत्थ**) प्राप्त हैं तो (**स्वधाभिः**) अन्न आदि पदार्थों से (**सुकृतम्**) भली प्रकार किये (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**ते**) उनका (**जुषस्व**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—सूर्य की जो किरणें यहां प्रत्यक्ष हैं और जो देशान्तर में होने से अप्रत्यक्ष हैं,जिनको हम जानते हैं और जिनको नहीं जानते हैं उनको सभी पदार्थों में विद्यमान अग्नि सर्वथा पहुंचा हुआ है और हमारे द्वारा यज्ञ में दी गई आहुतियों को उन्हें पहुंचाता है ॥१३॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥

पदार्थः--(**ये**) जो पितृजन (**अग्निदग्धाः**) अग्नि को जलाने वाले अर्थात् गृहस्थ है वा गृहमेधी हैं (**ये**) जो (**अनग्निदग्धाः**) गृहस्थ नहीं हैं, (**दिवः**) परमेश्वर के ज्ञान के (**मध्ये**) बीच में (**स्वधया**) अपनी योग आदि शक्ति सहित विद्यमान हो (**मादयन्ते**) प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं (**तेभिः**) उनके साथ (**स्वराड्**) शरीर में विद्यमान प्रकाशमय अग्नि=आत्मा ऐसी (**असुनीतिम्**) प्राण धारण नीति को अपनाता है कि (**यथावशम्**) अपने आप योगशक्ति (**तन्वम्**) दूसरे शरीर में जाने के कार्य को (**कल्पयस्व**) पूर्ण करता है अर्थात् शरीरान्तर में प्रवेश करने में समर्थ होता है ।

भावार्थः जो पितृजन गृहस्थ हैं और जो गृहस्थ नहीं हैं और परमात्मा के ज्ञान में योग से युक्त होकर आनन्द प्राप्त करते हैं उनकी प्रकाशमान आत्मा प्राणों और सूक्ष्म शरीर पर अधिकार प्राप्त करके दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो सकती है । परन्तु उस शरीर के भागों को प्राप्त नहीं कर सकती हैं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १६

ऋषिः १ १४ दमनो यामायनः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४, ७,
८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ६, ९ त्रिष्टुप् । १०
स्वराट्त्रिष्टुप् । ११ अनुष्टुप् । १२ निचृदनुष्टुप् । १३, १४ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः-
१—१० धैवतः । ११—१४ गान्धारः ॥

मैन॑मग्ने॒ वि द॑हो॒ माभि शो॑चो॒ मास्य॒ त्वचं॑ चिक्षिपो॒ मा शरी॑रम् ।
य॒दा शृ॒तं कृ॒णवो॑ जातवे॒दोऽथे॑मेनं॒ प्र हि॑णुतात्पि॒तृभ्य॑: ॥१॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) ज्ञानवान् (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**एनम्**) इस मनुष्य को (**मा**) मत (**विदहः**) सर्वथा भस्म करना, (**मा**) मत (**अभि शोचः**) संन्तापयुक्त करो, (**अस्य**) इसके (**त्वचम्**) चर्मेन्द्रिय को (**मा**) मत (**चिक्षिपः**) नष्ट करना, (**शरीरम्**) सूक्ष्म और कारणशरीर को भी (**मा**) मत नष्ट करना, (**यदा**) जब तुम (**अथ**) अनन्तर (**शृतम्**) पके कर्मफल को (**कृणवः**) देते हो तो (**एनम्**) इसको (**ईम्**) निश्चय ही (**पितृभ्यः**) माता-पिता के पास (**प्रहिणुतात्**) भेजना ।

भावार्थः—परमात्मा इस मनुष्य को सर्वथा जलाकर नष्ट नहीं करता है, न सर्वथा संतप्त करता है, इसके चर्मेन्द्रिय शक्ति और सूक्ष्म शरीर को भी नहीं नष्ट करता है । यह सूक्ष्म शरीर नित्य आत्मा के साथ विद्यमान रहता है । जब परमेश्वर कर्म फल देता है नो इस आत्मा को पुनः माता-पिता के पास भेजता है अर्थात् इसे पुनः माता-पिता जन्म लेने पर मिलते हैं ॥१॥

शृ॒तं य॒दा कर॑सि जातवे॒दोऽथे॑मेनं॒ परि॑ दत्तात्पि॒तृभ्य॑: ।
य॒दा गच्छा॒त्यसु॑नीतिमे॒तामथा॑ दे॒वानां॑ वश॒नीर्भ॑वाति ॥२॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) हे परमेश्वर ! (**अथ**) मरणानन्तर (**यदा**) जब (**शृतम्**) कर्म फल (**करसि**) प्रदान करते हो और (**एनम्**) इस जीव को पुनः (**पितृभ्यः**) माता-पिता को (**परिदत्तात्**) देते हो और (**यदा**) जब यह जीव (**एताम्**) इस (**असुनीतिम्**) प्राण व्यवहार को (**गच्छाति**) धारण कर लेता है (**अथ**) तब यह (**देवानाम्**) इन्द्रियों और उनके विषयों के (**वशनीः**) वश में हो जाता है ।

भावार्थः—परमेश्वर जब जीव को पुनर्जन्म देकर कर्मफल की व्यवस्था से पुनः माता-पिता देता है और जीव इस प्रकार के प्राणव्यवहार अथवा जीवन को प्राप्त कर लेता है तब इन्द्रियों के वश में हो जाता है ॥२॥

सूर्यं॒ चक्षु॑र्गच्छतु॒ वात॑मा॒त्मा द्यां च॑ गच्छ पृथि॒वीं च॒ धर्म॑णा ।
अ॒पो वा॑ गच्छ॒ यदि॒ तत्र॑ ते हि॒तमोष॑धीषु॒ प्रति॑ तिष्ठा॒ शरी॑रैः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! मरणान्तर तेरा (**चक्षुः**) नेत्र (**सूर्यम्**) सूर्य को (**गच्छतु**) प्राप्त हो जाता है (**आत्मा**) आत्मा (**वातम्**) प्राण वायु को प्राप्त होता है (**धर्मणा**) किये कर्मों के अनुसार आत्मा (**द्याम्**) द्युलोक को (**च**) और पृथिवी लोक (**च**) भी (**गच्छ**) जाता है (**यदि**) यदि (**तत्र**) उन लोकों की प्राप्ति में (**ते**) तुम्हारी आत्मा का (**हितम्**) कर्मफल है तो यह (**शरीरैः**) शरीर धारण कर (**अपः**) जलों में, (**वा**) भी (**गच्छ**) जाता है और(**ओषधीषु**) ओषधि और वृक्ष आदि में भी (**प्रति तिष्ठ**) स्थिति पाता है ।

भावार्थः—जीव जब शरीर छोड़ देता है तब चक्षुः सूर्य को प्राप्त हो जाता है आत्मा प्राणवायु को प्राप्त होता है और कर्मफलानुसार नये शरीर धारण कर पृथिवी लोक, आकाश और जलों में जाता है तथा ओषधि और वनस्पतियों में भी जाकर फल भोगता है ॥३॥

अ॒जो भा॒गस्तप॑सा॒ तं त॑पस्व॒ तं ते॑ शो॒चिस्त॑पतु॒ तं ते॑ अ॒र्चिः ।
यास्ते॑ शि॒वास्त॒न्वो॑ जातवेद॒स्ताभि॑र्वहेनं सु॒कृता॑मु लो॒कम् ॥४॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) हे विद्वन् ! इस मनुष्य देह का जो भाग (**अजः**) अज और नित्य आत्मा है (**तम्**) उसको (**तपसा**) ज्ञान और तपसे (**तपस्व**) तपा (**ते**) तुम्हारा (**शोचिः**) तेज (**ते**) उसे (**तपतु**) तपावे, (**तम्**) उसे (**ते**) तुम्हारी (**अर्चिः**) दीप्ति दीप्त करे (**याः**) जो (**ते**) तेरी (**शिवाः**) कल्याणमयी (**तन्वः**) नीति-कलेवर है (**ताभिः**) उनसे (**एनम्**) इसको (**सुकृताम्**) उत्तम कर्म करने वालों के (**लोकम्**) लोक को (**उ**) निश्चय (**वह**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! इस शरीर में जो भाग अजर अमर है वह आत्मा है । तू इसे अपने ज्ञान से, तेज से, प्रकाश से तपा और अपनी

कल्याणमयी नीति से उसे सुकृत कर्म करने वालों के लोक को प्राप्त करने योग्य बना ॥४॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे विद्वन् ! (**यः**) जो मनुष्य (**ते**) तेरे शिक्षण में (**आहुतः**) समर्पित हुआ (**स्वधाभिः**) अन्न जल आदि से (**चरति**) सेवा करता है उसे (**पितृभ्यः**) माता-पिता और विद्वानों की सेवा के लिए (**पुनः**) अपने पास से फिर उनके पास (**अव सृज**) तैयार करके भेज, हे विद्याविद् ! यह (**वसानः**) ज्ञान को धारण किये हुये (**शेषः**) शेष गृहस्थ आदि की (**आयुः**) जीवन समय को (**उपवेतु**) व्यतीत करे और (**तन्वा**) शरीर को (**संगच्छताम्**) उत्तमता से रखे ।

भावार्थः - हे विद्वन्! जिस मनुष्य को माता-पिता ने आपके शिक्षण में रखा है और वह अन्न आदि से आपकी सेवा करता है उसे योग्य बना कर पुनः माता-पिता के पास वापस करें कि वह शेष गृहस्थ आयुर्भाग को उनके साथ बितावे और शरीर को स्वस्थ और उत्तम रखे ॥५॥

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥६॥

पदार्थः—हे माता-पिता ! (**यत्**) जिस (**ते**) आपके शरीर भाग को (**कृष्णः**) काले (**शकुनः**) पक्षी (**पिपीलः**) चींटी चींटे, (**सर्पः**) सर्प (**उत वा**) अथवा (**श्वापदः**) कुत्ते आदि किसी जानवर ने काटा है (**तत्**) उस (**विश्वात्**) सब से (**अग्निः**) वैद्य और (**सोमः**) ओषधि (**यः**) जो (**ब्राह्मणान्**) ओषधिविद् विद्वानों के ज्ञान में (**आविवेश**) विद्यमान है (**अगदम्**) स्वस्थ (**कृणोतु**) करें ।

भावार्थः—जीवित माता-पिता आदि को यदि पक्षी, कीड़े-मकौड़े, सर्प अथवा कुत्ते आदि जानवर काट खायें तो वैद्य और ओषधि उन्हें इस से नीरोग करते रहें ॥६॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥७॥

पदार्थः—इस जीव का मृतशरीर (**अग्नेः**) अग्नि की (**वर्म**) ज्वाला से (**गोभिः**) घृतादि के द्वारा (**परिव्ययस्व**) जलकर नष्ट हो जाता है, यह जीव दूसरे जन्म में (**पीवसा**) स्थूल (**मेदसा च**) मेदस् आदि से (**संप्रोर्णुष्व**) शरीर धारण कर युक्त होता है (**धृष्णुः**) प्रचण्ड, (**हरसा**) तेज से (**जर्हृषाणः**) अति तीव्र हुआ (**दधृग्**) कठोर यह अग्नि (**त्वा इत्**) इस जीव के शरीर को (**न विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते**) जलाता हुआ पुनः न भस्मीभूत करे ।

भावार्थः—जीव के मृत शरीर को घृतादि के द्वारा प्रवृद्ध अग्नि अपनी ज्वालाओं से जलाकर नष्ट कर देता है अगले जन्म में जीव पुनः कर्मानुसार स्थूल और मेदस् आदि धातुओं वाले शरीर से युक्त होता है। यह प्रचण्ड अग्नि अगले जन्मों में मरने पर वार-वार इस शरीर को न जलावे अतः जीव को मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। न वार-वार जन्म और मृत्यु हो और न अग्नि शरीर को जलावे ॥७॥

इममग्ने चमसं मा जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥८॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे मनुष्य ! (**इमम्**) इस (**चमसम्**) शरीररूपी चमस पात्र को (**मा**) मत (**वि जिह्वरः**) उद्देश्य से भ्रष्ट न होने दे, यह (**देवानाम्**) इन्द्रियों का (**उत**) और (**सोम्यानाम्**) प्राणों का भी (**प्रियः**) प्यारा है, (**यः एष**) जो यह (**चमसः**) शरीर है वह (**देवयानः**) आत्मा के भोग का साधन है, (**तस्मिन्**) इसमें (**देवाः**) विद्वान् जन (**अमृताः**) अमरत्व को प्राप्त कर (**मादयन्ते**) आनन्दित होते हैं ।

भावार्थः—मनुष्य को चाहिए कि वह अपने इस शरीर को उद्देश्य से भ्रष्ट न होने दे। यह शरीर इन्द्रिय और प्राणों सभी का प्यारा आश्रय है। जीवात्मा के भोग का यह साधन है और इसी में विद्वान् जन अमरत्व=मोक्ष को भी सिद्ध करते हैं। यह शरीर भोग और अपवर्ग का साधन है—ऐसा समझना चाहिए ॥८॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९॥

पदार्थः—(**क्रव्यादम्**) अन्त्येष्टि कर्म में मृत शरीर को खाने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को मैं गृहस्थ (**दूरम्**) दूर स्थान, अर्थात् गांव वा शहर से बाहर

(**प्र हिणोमि**) रखता हूँ (**रिप्रवाहः**) शरीरादि पदार्थो का जलाने वाला यह अग्नि (**यमराज्ञः**) वायु और सूर्य किरणों वाले खुले स्थान में (**गच्छतु**) रहे, (**इतरः**) इससे पृथक् (**अयम्**) यह (**जातवेदाः**) जो (**प्रजानन्**) सबको ज्ञात हैं और (**देवेभ्यः**) यज्ञ देवों के लिए (**हव्यम्**) हवनीय पदार्थों को (**वहतु**) पहुँचाता है, वह (**इह**) यहां घर में (**एव**) ही स्थापित रहे ।

भावार्थः—मृत शरीर को खाने वाले अग्नि के स्थान श्मशान को गांव शहर आदि से दूर प्रदेश में रखना चाहिए और खुले वायु और धूप आदि के स्थानों में होना चाहिए। यज्ञ में देवों के लिए निक्षिप्त सामग्री को वहन करने वाले अग्नि को घर में स्थापित करना चाहिए ॥९॥

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स धर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१०॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**क्रव्यात्**) क्रव्याद (**अग्निः**) अग्नि, हे मनुष्यो (**वः**) तुम्हारे (**गृहम्**) घर में (**प्रविवेश**) प्रवेश पा गया है (**तम्**) उसको (**इमम्**) इस (**इतरम्**) दूसरे (**देवम्**) देव (**जातवेदसम्**) जातवेदस् अग्नि को (**इतरम्**) उससे भिन्न (**पश्यन्**) देखते हुये (**पितृयज्ञाय**) पितृमेध अर्थात् अन्त्येष्टि कर्म के लिए श्मशान में ले जाता हूं, (**सः**) वह अग्नि (**परमे सधस्थे**) विस्तृत यज्ञ गृह में (**घर्मम**) यज्ञ को (**इन्वात्**) प्राप्त करे ।

भावार्थः—मृतक कक्ष आदि में अग्नि जलता है और शव के साथ श्मशान में ले जाया जाता है वह शव जलाने के लिए होता है और उसे क्रव्याद कहते हैं। अन्त्येष्टि ही पितृमेध है यही पितृयज्ञ कहा गया है। गृह में स्थापित अग्नि जो उससे भिन्न है वह यज्ञ के लिए होता है॥१०॥

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥

पदार्थः—(**ऋतावृधः**) सत्य नियम पर आधारित (**यः**) जो अग्नि (**क्रव्यवाहनः**) क्रव्याद है वह (**पितृन्**) सूर्य किरणों को (**यक्षत्**) प्राप्त होता है अतः वह (**पितृभ्यः**) पितृयज्ञ के लिए (**प्रवोचति**) कहा जाता है (**च उ इत्**) और दूसरा भी है जो (**देवेभ्यः**) यज्ञ देवों के लिए (**हव्यानि**) हुत पदार्थों को (**देवेभ्य इति**) देवों के लिए ही प्राप्त कराता है ऐसा (**प्रवोचति**) कहा जाता है।

भावार्थः—अन्त्येष्टि संस्कार में मृत शरीर को जलाकर उसके परमाणुओं को सामग्री आदि से शुद्ध कर दिया जाता है कि वह सड़ने-गलने से रोग आदि को न पैदा करे अतः वह सूर्य किरण तक पहुँचकर समाप्त हो जाता है। अतः वह पितृमेध मात्र है और उसे क्रव्यादग्नि सम्पन्न करता है। परन्तु यज्ञों में देवों के निमित्त आहुति दी जाती है अतः वह देवों तक पहुंचाया जाता है और यह कार्य जातवेदस् अग्नि करता है ॥११॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥१२॥

पदार्थः—(**त्वा**) इस अग्नि को (**उशन्तः**) इच्छा के साथ हम (**निधीमहि**) स्थापित करते हैं तथा (**उशन्तः**) चाहते हुए (**समिधीमहि**) प्रदीप्त करते हैं, यह भी (**उशन्**) चाहा गया हुआ ही (**उशतः**) चाहने वाले (**पितृन्**) माता-पिता आदि को हमारे द्वारा दी गई (**हविषे**) हवि को (**अत्तवे**) प्राप्त कराने के लिए (**आ वह**) ले जाता है ।

भावार्थः—हम इच्छापूर्वक अग्नि को उत्तम कर्मों के करने के लिए स्थापित करते हैं और प्रज्वलित करते हैं। इस प्रकार चाहा गया अग्नि अग्नि में दी गई हवि को जीवित माता-पिता आदि तक उनके ग्रहणार्थ ले जाता है। माता-पिता भी इस यज्ञ से लाभान्वित होते हैं ॥१२॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥

पदार्थः—(**त्वम् अग्ने**) यह अग्नि (**यम्**) जिस श्मशान प्रदेश को (**समदहः**) जला देता है (**तम् उ**) उसी को (**पुनः**) फिर (**निर्वापयं**) घास आदि उगने के योग्य बना देता है, (**अत्र**) इसमें (**कियाम्बु**) पानी भी पड़ता है और (**व्यल्कशा**) विविध शाखाओं वाली (**पाकदूर्वा**) दूर्वा घास भी (**रोहतु**) उगती है ।

भावार्थः—जिस श्मशान प्रदेश को अग्नि जला देता है उसी में पानी भी पड़ता है और दूर्वा आदि लच्छेदार घास पैदा होती है । इस प्रकार वह पुनः हरा भरा हो जाता है ॥१३॥

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या३ सु संगम इमं स्व१ग्निं हर्षय ॥१४॥

पदार्थः—(**शीतिके**) शैत्ययुक्त (**शीतिकावति**) शीतल गुण और परिणाम वाली तथा (**ह्लादिके**) आह्लादक और (**ह्लादिकावति**) आह्लादक गुण और परिणाम वाली ओषधियें (**माडूक्या**) वृष्टि के साथ (**सु संगमः**) संयुक्त होती है और (**इमम्**) इस (**अग्निम्**) मनुष्य को (**सु**) सुष्ठु रूप में (**हर्षय**) हर्षित करती है ।

भावार्थः—शीतल और शीतल गुण परिणाम, ह्लादक और ह्लादक गुण परिणाम वाली ओषधि वृष्टि के पड़ने पर उत्पन्न होकर रोगी मनुष्य के रोग को दूर करके उसे आनन्दित करती है ॥१४॥

यह दशम मण्डल का सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १७

ऋषिः—१—१४ **देवश्रवा यामायनः** ॥ **देवता** १, २, **सरण्यूः** । ३—६ **पूषा** । ७—६ **सरस्वती** । १०, १४, **आपः** । ११—१३ **आपः सोमो वा**॥ **छन्दः**—१, ५, ८ **विराट्त्रिष्टुप्** । २, ६, १२ **त्रिष्टुप्** । ३, ४, ७, ६—११ **निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ १३ **ककुम्मतीबृहती** । १४ **अनुष्टुप्** ॥ **स्वरः**—१, १२ **धैवतः** । १३ **मध्यमः** ॥ १४ **गान्धारः** ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥१॥

पदार्थ—(**त्वष्टा**) आकाश मध्यवर्ती तमोभाग (**दुहित्रे**) उषा पु ी से (**वहतुम्**) विवाह (**कृणोति**) करता है (**इति**) अतः (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) लोक (**समेति**) अपने कार्य में प्रवृत्त होता है । वह उषा (**यमस्य**) सूर्य की माता होती हुई भी कालान्तर से (**पर्युह्यमाना**) विवाहित हुई (**महः**) महान् (**विवस्वतः**) सूर्य की (**जाया**) होती हुई (**ननाश**) नष्ट हो जाती है ।

भावार्थः—मध्यम स्थानीय तमोभाग उषा को आदित्य में प्रवृष्ट कर देता है, इस कारण से उषा के उदय काल में, अब तम जा रहा है, सूर्य उदय होगा—ऐसा समझकर समस्त प्राणी अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं । यह उषा भी आदित्य की माता हुई भी कालान्तर से महान् सूर्य की जाया होकर नष्ट हो जाती है । आदित्य उदय काल में उषा के बाद उदित होता है अतः उषा उसकी माता है । परन्तु उदय के समय एक काल में उषा और सूर्य दोनों विद्यमान हो जाते हैं अतः यह उषा उसकी जाया है ॥१॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदद्दुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२॥

पदार्थः—किरणें (**अमृताम्**)अमृत धर्मिणी वृषाकपायी नामवाली अरुणोदय काल की उषा को (**मर्त्येभ्यः**) मनुष्यों से (**अपागूहन्**) छिपा लेती हैं, पुनः उसे अरुण के उदय होने पर (**सवर्णाम्**) सरण्यू नाम की सवर्ण प्रभा के रूप में (**कृत्वी**) करके (**विवस्वते**) आदित्य के लिए (**अददुः**) दे देती हैं, (**उत**) और भी (**यत्**) जो (**आसीद्**) होता है वह यह कि (**सरण्यूः**) सरण्यू (**अश्विनौ**) तमोभाग और ज्योतिर्मय भाग को (**अभरत्**) धारण करती है (**उ इति**) और इस प्रकार अपने पूर्व रूप को (**अजहात्**) छोड़ देती है, पुन रात्रि में (**द्वा मिथुना**) मध्यम तमोभाग और सन्नाटे को पैदा करती है ।

भावार्थः—किरणें अमृत धर्मिणी वृषाकपायी नाम की अरुणोदय कालिक उषा को मनुष्यों से छिपा देती है । पुनः अरुण के उदय होने पर समान वर्ण वाली करके उसे आदित्य के समीप कर देती हैं । दी हुई सरण्यू अश्विनी अर्थात् तमोभाग और ज्योतिर्मय भाग को धारण करती है । वह पूर्वरूप को छोड़ देती है और आदि के सहारे पुनः रात्रि में मध्यम तमोभाग और रात्रि के सन्नाटे को उत्पन्न करती हैं ॥२॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(**अनष्टपशुः**) पशुओं का स्वामी (**भुवनस्य गोपाः**) भुवनों का पालक, (**विद्वान्**) सर्वज्ञ (**सः**) वह (**पूषा**) सबका पोषक (**अग्निः**) प्रकाश-

स्वरूप परमेश्वर (**त्वा**) तुझ जीव को (**इतः**) इस उत्तम मार्ग को (**प्रच्यावयतु**) प्राप्त करावे, (**त्वा**) तुझे (**एतेभ्यः**) इन (**पितृभ्यः**) माता-पिता और (**सुविदत्रियेभ्यः**) ज्ञानी (**देवेभ्यः**) विद्वानों को (**परिददत्**) देवे ।

भावार्थः—पशु आदि का स्वामी, जगत् का पालक, सर्वज्ञ परमेश्वर हे जीव ! तुझे अच्छी अवस्था को प्राप्त करावे । वह उत्तम माता-पिता और विद्वानों को तुम्हें अगले जन्म में देवें ।।३।।

आयु॑र्वि॒श्वायु॒ः परि॑ पासति त्वा पू॒षा त्वा॑ पातु॒ प्रप॑थे पु॒रस्ता॑त् ।
यत्रास॑ते सु॒कृतो॒ यत्र॒ ते य॒युस्तत्र॑ त्वा दे॒वः स॑वि॒ता द॑धातु ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वायुः**) सबको जीवन देने वाला, (**आयुः**) व्यापक (**सविता**) सबका उत्पादक (**देवः**) देव (**पूषा**) परमेश्वर हे जीव ! (**त्वा**) तेरी (**परिपासति**) रक्षा करे, (**त्वा**) तेरा (**प्रपथे**) उत्तम मार्ग में (**पातु**) रक्षा करे (**त्वा**) तुझे (**पुरस्तात्**) सामने से ((**पातु**) रक्षा करे (**यत्र**) जिस अवस्था को (**सुकृतः**) उत्तम कर्म करने वाले (**आसते**) प्राप्त करते हैं, (**यत्र**) जहां (**ते**) वे (**ययुः**) जाते हैं (**तत्र**) वहां (**त्वा**) तुझे (**दधातु**) भेजे ।

भावार्थः—सर्वव्यापक परमेश्वर जो जगत् उत्पादक है तुझ जीव की रक्षा करे, मार्ग में रक्षा करे और सामने भी तुम्हारी रक्षा करे। उत्तम कर्म करने वाले जिस शरीर वा अवस्था को प्राप्त करते, उसको तुझे देवे ।।४।।

पू॒षेमा आशा॒ अनु॑ वेद॒ सर्वा॒ः सो अ॒स्माँ अभ॑यतमेन नेषत् ।
स्व॒स्ति॒दा आघृ॑णि॒ः सर्व॑वी॒रोऽप्र॑युच्छन्पु॒र ए॑तु प्रजा॒नन् ॥५॥

पदार्थः—(**स्वस्तिदा**) कल्याणदाता (**आघृणिः**) प्रकाश का पुंज, (**सर्ववीरः**) समस्त शक्तियों से युक्त (**पूषा**) परमेश्वर (**इमाः**) इन (**सर्वाः**) सब (**आशाः**) दिशाओं को (**अनु वेद**) जानता है, (**सः**) वह (**अस्मान्**) हमें (**अभयतमेन**) भयरहित मार्ग से (**नेषत्**) ले जावे, (**प्रजानन्**) हमारे कर्मों को जानता हुआ (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर (**पुरः**) हमारे आगे (**एतु**) रहे ।

भावार्थ—सबको सुख देने वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर समस्त दिशाओं को जानता है। वह हमें निर्भय मार्ग से ले चले। हमारे कर्मों को जानता हुआ वह निरन्तर हमारे आगे हो ।।५।।

प्रप॑थे प॒थाम॑जनिष्ट पू॒षा प्रप॑थे दि॒वः प्रप॑थे पृथि॒व्याः ।
उ॒भे अ॒भि प्रि॒यत॑मे स॒धस्थे॒ आ च॒ परा॑ च चरति प्रजा॒नन् ॥६॥

पदार्थ—(**पूषा**) सबका पोषक भगवान् (**पथाम्**) मार्गों के (**प्रपथे**) बीच में (**अजनिष्ट**) विद्यमान है, (**पूषा**) सबका पोषक भगवान् (**दिवः**) आकाश के (**प्रपथे**) मार्ग में भी और । **पृथिव्याः**) पृथिवी के (**प्रपथे**) मार्ग में भी विद्यमान है, वह (**उभे**) दोनों ही (**प्रियतमे**) प्रियतम (**सधस्थे**) स्थानों में (**अभि**) विद्यमान है, (**प्रजानन्**) सब कुछ जानता हुआ (**आच**) यहां (**परा च**) वहां सर्वत्र (**चरति**) व्यापक हो रहा है ।

भावार्थः—सर्वपालक प्रभु मार्गों के मध्य, आकाश और पृथिवी के मध्य तथा द्युलोक और पृथिवी के मध्य विद्यमान है। वह यहां वहां सर्वत्र व्यापक हो रहा है ।।६।।

सर॑स्वतीं देव॒यन्तो॑ हवन्ते॒ सर॑स्वतीमध्व॒रे ता॒यमा॑ने ।
सर॑स्वतीं सु॒कृतो॑ अह्वयन्त॒ सर॑स्वती दा॒शुषे॒ वार्यं॑ दात् ॥७॥

पदार्थः—(**देवयन्तः**) देवत्व भाव को प्राप्त हुए यज्ञकर्त्ता विद्वान् (**सरस्वतीम्**) अन्तरिक्षस्थ वाणी के लिए (**हवन्ते**) यज्ञ करते हैं, (**अध्वरे**) यज्ञ के (**तायमाने**) विस्तारित करने पर (**सरस्वतीम्**) माध्यमिका वाक् के प्रति (**हवन्ते**) हवन करते हैं । (**सुकृतः**) उत्तम कर्म करने वाले भी (**सरस्वतीम्**) इस सरस्वती के प्रति (**अह्वयन्त**) आह्वान करते हैं और यह (**सरस्वती**) माध्यमिका वाक् (**दाशुषे**) यज्ञ आदि करने वाले को (**वार्यम्**) उत्तम धन अथवा वृष्टि-जल को (**दात्**) देती है ।

भावार्थः—देवत्व भाव को प्राप्त होकर यज्ञकर्त्ता लोग अन्तरिक्ष में विद्यमान माध्यमिका वाणी के प्रति अपने द्वारा किये जाने वाले यज्ञों आदि में आहुति देते हैं। उत्तम कर्म के कर्त्ता भी इसके प्रति आहुति प्रदान करते हैं। यह वाक् यजमान को वर्षा और उत्तम अन्नादि प्रदान करती है ।।७।।

सर॑स्वति॒ या स॒रथं॑ य॒याथ॑ स्व॒धाभि॑र्देवि पि॒तृभि॒र्मद॑न्ती ।
आ॒स॒द्यास्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादयस्वानमी॒वा इष॒ आ धे॑ह्य॒स्मे ॥८॥

पदार्थः—(**सरस्वति**) यह अन्तरिक्षस्थ वाणी (**देवि**) दिव्य वाणी है

(या) जो (**सरथम्**) एक समान स्थान अन्तरिक्ष में (**ययाथ**) गतिमान् रहती है, यह (**स्वधाभिः**) हवि आदि रूप अन्न और (**पितृभिः**) यज्ञ देवों के साथ (**मदन्ती**) यज्ञभाग को लेकर तृप्त होती हुई अपने कार्य करती है। यह वाणी (**अस्मिन्**) हमारे इस (**बर्हिषि**) यज्ञ अथवा अन्तरिक्ष में (**आसद्य**) स्थित होकर (**मादयस्व**) वर्षा आदि से सबको तृप्त करती और (**अस्मे**) हमारे लिए (**अनमीवाः**) रोगरहित (**इषः**) अन्न को (**आ धेहि**) देती है ।

भावार्थः—यह माध्यमिका वाक् दिव्य वाणी है, यह यज्ञ के देवों के साथ हवि के भाग को ग्रहण करती है और अन्तरिक्ष में स्थित हुई वृष्टि का साधन बनती है और लोगों को नीरोगतायुक्त अन्न आदि प्रदान करती है ॥८॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९॥

पदार्थः—(**याम्**) जिसको (**पितरः**) माता-पिता ज्ञानी जन (**यज्ञम्**) यज्ञ (**अभिनक्षमाणः**) करते हुए (**दक्षिणा**) दक्षिण दिशा में बैठकर (**हवन्ते**) हवि आदि पदार्थ देते हैं वह (**सरस्वती**) माध्यमिका वाक् (**अत्र**) इस यज्ञ में (**सहस्रार्घम्**) बहुतों द्वारा प्रशंसित (**इलः**) अन्न के (**भागम्**)भाग को और (**रायः**) धन की (**पोषम्**) पुष्टि को (**यजमानेषु**) यजमानों को (**धेहि**) देवे ।

भावार्थः—ज्ञानी पितृजन और विद्वान् जन दक्षिण दिशा में बैठकर यज्ञ करते हैं और सरस्वती को हवि प्रदान करते हैं। वह माध्यमिका वाणी अन्न और धन यजमान को प्रदान करे ॥९॥

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०॥

पदार्थः—(**मातरः**) जगत् की माता=कारण (**आपः**) जलें (**अस्मान्**) हमें (**शुन्धयन्तु**) शुद्ध करें, (**घृतप्वः**) किरणों से शुद्ध हुई वे (**घृतेन**) अपनी स्निग्धता से (**नः**) हमें (**पुनन्तु**) शुद्ध पवित्र करें, (**देवीः**) दिव्य गुणों वाली ये जलें (**विश्वम्**) समस्त (**रिप्रम्**) गन्दगी को (**हि**) निश्चय से (**प्रवहन्ति**) बहा ले जाती है, (**उत इत**) और भी (**आभ्यः**) इनसे (**पूतः**) स्वच्छ किया हुआ मैं (**शुचिः**) शुद्ध (**आ एमि**) हो जाता हूं ।

भावार्थः—जलें जगत् का कारण हैं। ये हमारे शरीर की बाह्य अशुद्धियों को दूर करती हैं। समस्त गन्दगी को ये बहा ले जाती हैं। इनसे हम सभी साफ-सुथरे हो जाते हैं ॥१०॥

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११॥

पदार्थः—(**द्रप्सः**) द्रुत गति वाला विद्युदात्मक सोम तत्त्व (**प्रथमान्**) पूर्वकालिक सृष्टि के (**द्यून्**) द्युलोक आदि को (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**चस्कन्द**) प्राप्त था (**च**) और (**इमम्**) इस (**योनिम्**) आकाश (**अनु**) में भी (**च**) और (**यः**) जो (**पूर्वः**) पूर्व सृष्टि में आकाश था उसमें भी विद्यमान था। (**सप्त**) सात (**होत्राः**) यज्ञ करने वाले हम लोग (**समानम्**) समान (**योनिम्**) आकाश अथवा कारण (**अनु**) में (**संचरन्तम्**) अपना कार्यकलाप करने वाले (**द्रप्सम्**) सोम के (**अनु**) प्रति (**जुहोमि**) आहुति देते हैं ।

भावार्थः—सोम एक प्रकार का विद्युदात्मक तत्व है जो पूर्व सृष्टि में द्यु आदि लोकों में व्याप्त था और इस सृष्टि में भी है। वह आकाश में है और पहली सृष्टि के आकाश में भी था। ऋत्विजों को इस तत्त्व का ज्ञान करना चाहिए ॥११॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥१२॥

पदार्थः—हे जगत् के कर्त्ता प्रभो ! (**ते**) आपका (**यः**) जो (**द्रप्सः**) सोमात्मक तत्त्व (**स्कन्दति** , सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, (**ते**) आपका (**यः**) जो (**अंशुः**) सोमतत्त्व (**बाहुयुक्तः**) प्राण और उदान से निकल कर (**धिषणायाः**) वाणी के (**उपस्थात**) उद्गम स्थान=आकाश से सर्वत्र फैलता है, (**वा**) अथवा (**यः**) जो (**अध्वर्योः**) वायु के (**परि**) चारों तरफ है, (**यः**) जो (**पवित्रात**) वज्र से प्राप्त है और जो (**वषट्कृतम्**) सूर्य द्वारा उत्पादित हो रहा है (**ते**) आपके (**तम्**) उस सोमतत्त्व को मैं (**मनसा**) मन से (**जुहोमि**) ग्रहण करता हूं ।

भावार्थः—सृष्टिकर्त्ता भगवान् की सृष्टि में जो सोमात्मक विद्युत्तत्त्व

सर्वत्र व्याप्त है और प्राण उदान से, आकाश से, वायु से, मेघस्थ वज्र से प्रकट होता है उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।।१२।।

यस्तें द्रप्सः स्कन्नो यस्तें अंशुरवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिंञ्चतु राधसे ।।१३।।

पदार्थः—हे भगवन् ! (**ते**) आपका (**यः**) जो (**द्रप्सः**) सोमतत्त्व (**स्कन्नः**) व्याप्त है (**ते**) आपका (**यः**) जो (**अंशुः**) किरण (**स्रुचा**) मेघस्थ विद्युत् से (**अवः**) इधर (**च**) और (**यः**) जो (**परः**) उधर व्याप्त हो रहा है (**तम्**) उस (**इमम्**) इसको (**अयम्**) यह (**बृहस्पतिः**) वेद का ज्ञाता (**देवः**) विद्वान् हमारे लिए (**राधसे**) धनादि की प्राप्त्यर्थं (**सम् सिञ्चतु**) प्राप्त करावे ।

भावार्थः—भगवान् का सोमत्तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है और यह मेघस्थ विद्युत् से सर्वत्र इधर-उधर व्याप्त हो रहा है । उसको विद्वान् जानकर हमारी समृद्धि के लिए उसका प्रयोग करें ।।१३।।

पर्यस्वतीरोषधयः पर्यस्वन्मामकं वचः ।
अपां पर्यस्वदित्पयस्तेनं मा सह शुन्धत ।।१४।।

पदार्थः—(**ओषधयः**) ओषधियां (**पयस्वतीः**) सारभूत तत्त्व से युक्त हैं उनके प्रयोग से (**मामकम्**) मेरा (**वचः**) वचन भी (**पयस्वत्**) सारमय और मधुर हो, (**अपाम्**) जलों का (**पयः**) जल (**पयस्वत्**) सारयुक्त होता है (**तेन सह**) उससे हे आयुर्वेदज्ञ जन ! (**मा**) मुझको (**शुन्धत**) शुद्ध करो ।

भावार्थः—ओषधियां सारभूत तत्त्व से युक्त हैं, उनके प्रयोग से वाणी को मधुर और अच्छी बनाना चाहिए । जलों से वैज्ञानिक ढंग पर निर्मित जल सारभूत होता है और आयुर्वेदज्ञों को चाहिए कि उससे रोग का निवारण करें ।।१४।।

यह दशम मण्डल में सतरहवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—१८

ऋषिः—१—१४ सङ्कुसुको यामायनः ।। देवता—१—४ मृत्युः । ५ धाता । ६ त्वष्टा । ७—१३ पितृमेधः । १४ पितृमेधः प्रजापतिर्वा ।। छन्दः—१, ५, ७—९ निचृत्त्रिष्टुप् । २—४, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । १० भुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत्पङ्क्तिः । १४ निचृदनुष्टुप् ।। स्वरः—१—१०, १२, १३, धैवतः । ११ पञ्चमः । १४ गान्धारः ।।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ।।१।।

पदार्थः—(**मृत्यो**) यह मृत्यु (**परम्**) दूसरे उस (**पन्थाम्**) मार्ग(**अनु**) पर (**परेहि**) ले जावे उस मनुष्य को जो देवयान मार्ग के गमन योग्य नहीं है और (**यः**) जो मार्ग (**ते स्वः**) साधारणतः उसका अपना तथा (**देवयानात्**) देवयान मार्ग से (**इतरः**) पृथक् और भिन्न हैं, परमेश्वर की (**ब्रवीमि**) प्रार्थना करता हूँ कि (**चक्षुष्मते** , नेत्र वाले, (**शृण्वते**) श्रवण वाले के समान कार्य करने वाला (**ते**) यह मृत्यु (**न**) हमारी **प्रजाम्**) सन्तति को (**मा**) मत (**रीरिषः**) मारे (**उत**) और (**वीरान्**) हमारे वीरों को (**मा**) मत मारे ।

भावार्थः—देवयान मार्ग पर न जाने योग्य मनुष्य को मृत्यु देवयान से पृथक् अपने साधारण मार्ग (पैदा हो मरो) अथवा पितृयाण से ले जाता है । उसका यह कार्य नेत्र वाले और कान वाले मनुष्य के समान विवेचन किया हुआ सा है । भगवान् से प्रार्थना है कि वह मृत्यु हमारे सन्तान और वीर पुरुषों आदि को न मारे ।।१।।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ।।२।।

पदार्थः—(**यज्ञियासः**) हे यज्ञशील जनो ! आप लोग (**मृत्योः**) मृत्यु के (**पदम्**) साधारण पद को (**योपयन्तः**) न प्राप्त करते हुए (**यत्**) जब (**ऐत**) इस जीवन से पृथक् हो तब (**द्राघीयः**) लम्बी (**प्रतरम्**) उत्तम (**आयुः**) आयु को (**दधानाः**) धारण करते हुए, (**प्रजया**) सन्तान (**धनेन**) धन से (**आप्यायमानाः**) परिपूर्ण हुए (**शुद्धाः**) शुद्ध और (**पूताः**) पवित्र (**भवत**) होओ ।

भावार्थः—यज्ञशील, दानी मनुष्य मृत्यु के साधारण पद—पैदा होना और मरना—के अतिरिक्त (पितृयाण) अवस्था को प्राप्त होते हैं और लम्बी आयु, सन्तान और धन-धान्य से पूर्ण होकर शुद्ध पवित्र गृहस्थ आदि के रूप में उत्पन्न होते हैं ॥२॥

इ॒मे जी॒वा वि मृ॒तैराव॑वृत्र॒न्नभू॑द्भ॒द्रा दे॒वहू॑तिर्नो॒ अ॒द्य ।
प्राञ्चो॑ अगाम नृ॒त॒ये॑ हसा॑य॒ द्राघी॑य॒ आयु॑ः प्रत॒रं॑ द॒धाना॑ः ॥३॥

पदार्थः—(**इमे**) ये (**जीवाः**) जीव जन (**मृतैः**) मरणधर्मा वस्तुओं से (**वि आ अववृत्रत**) विरक्त हो जाते हैं (**देवहूतिः**) यज्ञ कर्म (**नः**) हम इन सबके लिए (**अद्य**) आज-कल, सदा (**भद्रा**) कल्याणकारक (**अभूत**) होवे, (**द्राघीयः**) दीर्घ,(**प्रतरम्**) उत्कृष्ट (**आयुः**) आयु को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**प्राञ्चः**) प्रज्ञावान् ये सब (**नृतये**) नृत्य (**हसाय**) हंसने के लिए (**अगाम**) होव ।

भावार्थः—विनश्वर पदार्थों से विरक्त होने वाले कर्मकाण्डी जन यज्ञ जैसे कल्याणकारी कर्म को करके लम्बी आयु प्राप्त कर नृत्य, हास आदि के योग्य जीवन को मरणानन्तर प्राप्त करते हैं ॥३॥

इ॒मं जी॒वेभ्य॑ः परि॒धिं द॑धामि॒ मैषां॒ नु गा॒दप॑रो॒ अर्थ॑मे॒तम् ।
श॒तं जीव॑न्तु श॒रद॑ः पु॒रू॒चीर॒न्तर्मृ॒त्युं द॑ध॒तां पर्व॑तेन ॥४॥

पदार्थ—भगवान् कहते हैं ! (**जीवेभ्यः**) जीवों के लिए (**इमम्**) इस (**परिधिम्**) कर्म मर्यादा को (**दधामि**) स्थापित करता हूँ, (**एषाम्**) इन जीवों में से (**अपरः**) कोई भी (**एतम्**) इस (**अर्थम्**) मर्यादा से (**नु**) निश्चय ही (**मा**) मत (**गात्**) हटे (**शरदः**) शरद की (**शतम्**) शती तक (**पुरूचीः**) उससे अधिक भी (**जीवन्तु**) जीवें (**मृत्युम्**) मृत्यु को (**अन्तः**) दूर (**दधताम्**) रखें ।

भावार्थः—जीवों के लिए भगवान् ने वेदज्ञान की परिधि बांध दी है (कोई भी इस परिधि वा स्थापित मर्यादा से न हटे) सभी सौ शरद ऋतुओं तक अथवा उससे भी अधिक काल तक जीवन धारण करें और मृत्यु को अपने से दूर रखें ॥४॥

यथाहा॑न्यनुपू॒र्वं भव॑न्ति॒ यथ॑ ऋ॒तव॑ ऋ॒तुभि॒र्यन्ति॑ सा॒धु ।
यथा॒ न पूर्व॒मप॑रो॒ जहा॑त्ये॒वा धा॑त॒रायूं॑षि कल्पयै॒षाम् ॥५॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**अहानि**) दिन और रात्रि (**अनुपूर्वम्**) पूर्वापर के अनुक्रम से (**भवन्ति**) परिवर्तित होते हैं, (**यथा**) जैसे (**ऋतवः**) ऋतुएं (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**यन्ति**) क्रम से होती हैं, (**यथा**) जिस प्रकार (**अपरः**) दूसरा (**पूर्वम्**) पूर्व को (**न**) नहीं (**जहाति**) छोड़ता है (**एव**) ऐसे ही (**धातः**) हे धारक परमेश्वर (**एषाम्**) इन जीवों की(**आयूंषि**) आयु को (**कल्पय**) करते हो ।

भावार्थः जिस प्रकार दिन और रात्रि पूर्वापर क्रम से होते हैं, जिस प्रकार ऋतुएं ऋतुओं के साथ अनुक्रम से होती हैं, जिस समय का एक भाग पूर्व वाले के क्रम को नहीं त्यागता है, वैसे भगवान् जीवों की आयु के चक्र को चलाता है। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म ॥५॥

आ रो॑हता॒यु॒र्जर॒सं॑ वृणा॒ना अ॑नुपू॒र्वं यत॑माना॒ यति॒ ष्ठ ।
इ॒ह त्वष्टा॑ सु॒जनि॑मा स॒जोषा॑ दी॒र्घमायु॑ः करति जी॒वसे॑ वः ॥६॥

पदार्थः (**अनुपूर्वम्**) अनुपूर्व क्रम से (**यतमानाः**) यत्नवान् हुए आप (**यति**) जितने भी (**स्थ**) हो (**जरसम्**) परिपक्वता को (**वृणाना**) प्राप्त करते हुए, हे मनुष्यो ! (**आयुः**) आयु को (**आ रोहत**) भोगो, (**सुजनिमा**) उत्तम जन्म वाला (**त्वष्टा**) सूर्य (**इह**) इस जीवन में (**सजोषाः**) साथी बना हुआ (**वः**) आपके (**जीवसे**) जीने के लिए (**दीर्घम्**) लम्बी (**आयुः**) आयु (**करति**) करे ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप जितने भी हो अनुक्रम से यत्न करते हुए परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त हो आयु को भोगो। तुम्हारे जीने के लिए सूर्य जो काल का जनक है, दीर्घ आयु प्रदान करे ॥६॥

इ॒मा नारी॑रविध॒वाः सु॒पत्नी॒राञ्ज॑नेन स॒र्पिषा॒ सं वि॑शन्तु ।
अ॒न॒श्रवो॑ऽनमी॒वाः सु॒रत्ना॒ आ रो॑हन्तु॒ जन॑यो॒ योनि॒मग्रे॑ ॥७॥

पदार्थः—(**अविधवाः**) पतियुक्त (**इमाः**) ये (**नारीः**) स्त्रियाँ (**सुपत्नीः**) उत्तम पत्नी होकर (**आंजनेन**) अंजन आदि और (**सर्पिषा**) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से शोभित हुई (**संविशन्तु**) अपने घरों में जावें, तथा (**अनश्रवः**) बिना आंसु बहाये (**अनमीवाः**) नीरोग (**सुरत्नाः**) उत्तम रत्न आदि से सुसज्जित (**जनयः**) सन्तानों को उत्पन्न करने में समर्थ (**अग्रे**) अग्रणी बनी (**योनिम्**) गृह में (**आ रोहन्तु**) आवें ।

भावार्थ—पति से युक्त उत्तम पत्नी स्त्रियाँ अंजन और सुगन्ध आदि से युक्त होकर घर में प्रवेश करें तथा सदा सुखी रहती हुई उत्तम सन्तान को उत्पन्न कर घर में आभूषण आदि से युक्त रहें ।।७।।

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहिं ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥८॥

पदार्थः—(**नारि**) हे स्त्रि (**जीवलोकम्**) जीवित पति को (**अभि**) लक्ष्य करके (**उदीर्ष्व**) उठ खड़ी हो, (**गतासुम्**) मृत (**एतम्**) इस पति के पास (**उप शेषे**) क्यों पड़ी है, (**एहि**) आ, (**हस्ताग्राभस्य**) हाथ ग्रहण करने वाले (**दिधिषोः**) नियुक्त (**तव**) इस (**पत्युः**) पति के साथ (**इदम्**) इस (**जनित्वं**) सन्तान जनने को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**संबभूथ**) सम्बन्ध कर ।

भावार्थः –जब कोई स्त्री जो सन्तान आदि करने में समर्थ है विधवा हो जाती है तब वह नियुक्त पति के साथ सन्तान उत्पत्ति के लिए नियोग कर सकती है ।।८।।

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥९॥

पदार्थः—(**मृतस्य**) मरे हुए क्षत्रिय के (**हस्तात्**) हाथ से (**धनुः**) धनु आदि और अधिकारों को (**आददानः**) लेता हुआ, हे क्षत्रिय बालक ! (**अस्मे**) हमारे लिए (**क्षत्राय**) राष्ट्र-रक्षण (**वर्चसे**) वर्चस, और (**बलाय**) बल के लिए समर्थ हो । (**अत्र**) यहां (**एव**) ही (**त्वम्**) तू ठहर ! (**सुवीराः**) उत्तम सन्तानों और वीरों वाले (**वयम्**) हम लोग (**विश्वाः**) समस्त (**अभिमातीः**) अभिमान करने वाली (**स्पृधः**) शत्रु सेना पर (**जयेम**) विजय प्राप्त करें ।

भावार्थः—मृत क्षत्रिय राजा के हाथ से उसका पुत्र उसके धनुष आदि राजचिन्हों और अधिकार को लेकर प्रजा के लिए राष्ट्र-रक्षा, वर्चस् और बल से युक्त होवे । वह अपने राज्य में ही रहे और उत्तम वीरों से युक्त होकर समस्त शत्रुसेना पर विजय प्राप्त करे ।।९।।

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥१०॥

पदार्थः—हे जीव ! (**सुशेवाम्**) उत्तम सुख वाली, (**पृथिवीम्**) विस्तीर्ण (**उरु व्यचसम्**) बहुत प्रस्तार वाली (**एताम्**) इस (**मातरम्**) माता (**भूमिम्**) भूमि को (**उप सर्प**) प्राप्त हो, (**उर्णम्रदा**) सुकुमार मृदु (**दक्षिणावते**) दक्ष जीवों के लिए (**युवति**) युवती के समान (**एषा**) यह (**त्वा**) तुझे (**निर्ऋतेः**) क्लेश के (**उपस्थाद्**) स्थान से (**पातु**) सुरक्षित रखे ।

भावार्थः - सृष्टि की आदिम अवस्था में अमैथुनी सृष्टि होती है । उसी के विषय में कहा जा रहा है कि जीव सुकुमार विस्तृत पृथिवी के गर्भ में आता है और वह युवती स्त्री के समान यह इस जीव की रक्षा करती है और दुःख नहीं होने देती है ।।१०।।

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥११॥

पदार्थः—(**पृथिवि**) यह भूमि (**उत् श्वञ्चस्व**) उफनी हुई होती है, (**मा**) नहीं (**नि बाधथाः**) पीड़ित करती है (**अस्मै**) इस जीव के लिए (**सूपायना**) उत्तम परिचारिका तथा (**सूपवञ्चना**) सुस्थिर (**भव**) होती है (**माता यथा**) माता के समान (**पुत्रम्**) पुत्र को (**सिचा**) अपने आच्छादन से (**भूमे**) यह भूमि (**अभि उर्णुहि**) आच्छादित करती है ।

भावार्थः—यह भूमि अमैथुनी सृष्टि की कारणभूत हुई उफनी रहती है, जीव को अपने गर्भ में धारण कर सुरक्षित रखती है । जिस प्रकार माता पुत्र को अपने आंचल में छिपा रखती है वैसे यह जीव को अपने अन्तराल में रखती है ।।११।।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥

पदार्थः—(**पृथिवी**) भूमि (**उच्छ्वसमाना**) उफनी (**सुतिष्ठतु**) सुष्ठु रूप से स्थिर रहे (**सहस्रम्**) सहस्रों (**मितः**) परिगणित पार्थिव परमाणु (हि) निश्चय से (**उप श्रयन्ताम्**) इसमें संयुक्त रहे, (**ते**) वे परमाणु (**घृतश्चुतः**) घृत की तरह चिकने हुए (**अस्मै**) इस जीव के लिए (**गृहाः**) घर (**भवन्तु**) बने रहें (**अत्र**) इस अवस्था में ये इस जीव के लिए (**विश्वाहा**) सदा (**शरणाः**) आश्रय (**सन्तु**) होवें ।

भावार्थः—पृथिवी उफनी रहकर स्थिर रहती है । इसके पार्थिव परमाणु सटे रहते हैं । ये ही इस जीव के लिए मिलकर घर बनते हैं और इसके लिए इस अवस्था में आश्रय बने रहते हैं ॥१२॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**ते**) तुम्हारे लिए (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**उत् स्तभ्नामि**) दृढ़ करता हूँ (**त्वत्परीमम्**) तुम्हारे ऊपर यह पृथिवी न आ पड़े इस रूप में (**इमम्**) इस (**लोगम्**) जन समूह को (**निदधत्**) धारण करता हुआ मैं किसी को (**मा**) नहीं (**रिषम्**) कष्ट देता, (**ते**) तुम्हारे लिए (**एताम्**) इस (**स्थूणाम्**) दृढ़ स्तम्भसमान भूमि को (**पितरः**) सूर्य किरणें एवं आकर्षण शक्तियां (**धारयन्तु**) धारण करती हैं । (**यमः**) जगन्नियन्ता मैंने (**अत्र**) इसे (**ते**) तुम्हारा (**सदना**) रहने का स्थान (**मिनोतु**) बनाया है ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! तुम्हारे लिए मैं परमेश्वर इस पृथिवी को तुम्हारे रहने के लिए दृढ़ करता हूँ । इस पर लोगों को ऐसा धारण करता हूं कि पृथिवी कभी तुम्हारे ऊपर न हो और तुम्हें कोई कष्ट न हो । इस दृढ़ पृथिवी को सूर्य की आकर्षण शक्तियां धारण करती हैं और इसे जगन्नियन्ता मैंने तुम्हारे रहने का स्थान बनाया है ॥१३॥

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥

पदार्थः—(**इष्टवाः**) वाण के (**पर्णम्**) पुच्छ के समान विद्वान् लोग (**माम्**) मुझको (**प्रतीचीने**) कष्ट आदि से रहित (**अहनि**) दिन में (**आ दधुः**) पुष्ट करें, (**यथा**) जैसे (**रशनया**) रस्सी से (**अश्वम्**) घोड़े को वश में किया जाता है वैसे (**प्रतीचीम्**) प्रत्यग्ज्ञान वाली (**वाचम्**) वाणी को अर्थात् वेदवाणी को (**जग्रभ**) ग्रहण करूं ।

भावार्थः—जिस प्रकार बाण में पुच्छ धृत है उसी प्रकार विद्वज्जन मुझे उत्तम निर्वाध दिनों में ला देते हैं और हमारे बुरे दिन भी उत्तम बन जाते हैं । जिस प्रकार रास से घोड़ा काबू में रखा जाता है वैसे ही ज्ञानमयी वेदवाणी को मैं अपने काबू में करूं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१९

ऋषिः—१—८ मथितो यामायनो भृगर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः ॥ वता—१', २—८ आपो गावो वा । २' अग्नीषोमौ ॥ छन्दः—१, ३—५ नचृदनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ७, ८ अनुष्टुप् । ६ गायत्री ॥ स्वरः—१—५, ७, : गान्धारः । ६ षड्जः ॥

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥१॥

पदार्थः—(**रेवतीः**) धन आदि से युक्त जलें (**निवर्तध्वम्**) हमारे पास हें, (**मा**) नहीं (**गात**) जावें (**अस्मान्**) हमें (**सिसक्त**) सिक्त करें, (**पुनर्वसू**) र्वसू नक्षत्र अथवा वसाने वाले (**अग्नि सोमा**) अग्नि और सोम (**अस्मे**) हमारे ए (**रयिम्**) धन को (**धारयतम्**) धारण करावें ।

भावार्थः—जलों का रस रेवती है उससे और अन्न आदि धनों से युक्त लें हमें सुलभ रहें तथा हमें सिक्त करती रहें । सबको वसाने वाले ग्नि और सोम = अग्नि वायु हमारे लिए धनादि पदार्थों की प्राप्ति के धन बनें ॥१॥

पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥२॥

पदार्थः—हे इन्द्र=आत्मन् ! (**एनाः**) इन अन्यत्र जाने वाले जलतत्त्वों को अपने शरीर में रस रूप में लौटा (**पुनः**) फिर (**एनाः**) इन्हें (**नि आकुरु**) अपने अधीन कर (**इन्द्रः**) विद्युत् इन्हें (**नियच्छतु**) अपने काबू में रखे (**अग्निः**) अग्नि (**एनाः**) इन्हें (**उप आजतु**) उपयोगी बनावे ।

भावार्थः—हे आत्मन् ! शरीर में विद्यमान जल तत्त्वों को इसमें रोक रख, इन्हें अपने नियन्त्रण में रख । शरीरस्थ विद्युत् इन्हें काबू में रखे और शरीरस्थ अग्नि इन्हें अपने उपयोगी बनावे ॥२॥

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥३॥

पदार्थः—(**एताः**) ये गौवें (**पुनः**) फिर चरागाह आदि से (**निवर्त्तन्ताम्**) वापस आवें, (**अस्मिन्**) इस (**गोपतौ**) गोपालक में (**पुष्यन्तु**) पुष्ट होवें, (**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**इह**) इस गोपति में (**एव**) ही (**नि धारय**) स्थापित कर (**या**) जो (**रयिः**) धन है वह (**इह**) इसमें (**तिष्ठतु**) स्थित रहे ।

भावार्थः—ये गौवें चरागाहों में जावें और मुझ गोपति के पास सदा वापस आती रहें और पुष्टि को प्राप्त करती रहें । प्रकाशस्वरूप परमेश्वर मुझ गोपालक के पास इन्हें सदा बना रखे और धन मेरे पास स्थित रहे ॥३॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥४॥

पदार्थः -(**यत्**) जो (**नियानम्**) जीवों का नीचे जाना है, जो (**नि अयनम्**) निम्न लोक में रहना है (**संज्ञानम्**) जो उनका ज्ञान प्राप्त करना है, (**यत्**) जो (**परा अयनम्**) परम ऊंचे पद को प्राप्त करना है, (**यद्**) जो (**आवर्त्तनम्**) मोक्ष से वापस आना है उस सबका मैं (**हुवे**) ग्रहण करता हूं अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता हूँ (**यः**) जो (**गोपाः**) इन्द्रियों का पालक जीव है (**तम्**) उसको (**अपि**) भी (**हुवे**) जानता हूँ ।

भावार्थः—विद्वान् को योग्य है कि वह जीवों का नीचे जाना, निकृष्ट योनियों में रहना, उनके ज्ञान प्राप्त करने की अवस्था, मोक्ष को प्राप्त होना और उससे पुनः समय पर पुनरावर्तन होना और इन्द्रियों के पालक जीव को सब प्रकार से जाने ॥४॥

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥५॥

पदार्थः—(**गोपाः**) यह रक्षक परमेश्वर है जो (**वि अयनम्**) विविध लोकों को (**उद् आनट्**) उत्तम मार्ग से प्राप्त कराता है, (**यः**) जो (**परा अयनम्**) उत्तम मार्ग को (**उद् आनट्**) प्राप्त कराता है, (**आवर्त्तनम्**) इस लोक में आना (**निवर्त्तनम्**) पुनः लौटना (**अपि**) भी (**निवर्तताम्**) नियमपूर्वक चलाता है ।

भावार्थः—यह जगत् का रक्षक भगवान् है जो जीवों के विविध लोकों में जाने, मोक्ष को प्राप्त करने, मोक्ष से वापस आने और पुनः कर्मानुसार वापस जाने की व्यवस्था करता है ॥५॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! तू ही (**निवर्त**) संसार को नियम से चलाता है, (**आ नि वर्तय**) संसार में लौटाकर लाता है, (**पुनः**) फिर (**नः**) हमें (**गाः**) इन्द्रियाँ (**देहि**) देता है (**जीवाभिः**) प्राणशक्तियों से युक्त हो हम (**भुनजामहै**) भोग को प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—परमात्मा ही संसार को नियम से चलाता है । वह हम जीवों को योनियों से लौटा कर इसमें लाता है । हमें इन्द्रियां आदि देता है और हम प्राणों से अर्थात् इन्द्रिय वृत्तियों से युक्त होकर भोग को भोगते हैं ॥६॥

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन ! (**विश्वतः**) सर्वत्र स्थित (**वः**) आप लोगों को (**ऊर्जा**) दुग्ध से बने पदार्थ से, (**घृतेन**) घी से (**पयसा**) दूध से (**परि वधे**) परिपुष्ट करता हूँ [मैं गृहस्थ], (**ये**) जो (**के च**) कोई भी (**देवाः**) यज्ञदेव (**यज्ञियाः**) यज्ञयोग्य हैं (**ते**) वे (**नः**) हमें (**रय्या**) गौ आदि धन से (**संसृजन्तु**) संयुक्त करें ।

भावार्थः –हे विद्वज्जन ! आप जहां कहीं भी हों मैं गृहस्थ दुग्ध-निर्मित पदार्थ, घृत और दूध से आप लोगों को परिपुष्ट करता हूं । जो यज्ञार्ह देव हैं वे हमें गौ आदि धन से युक्त करें ॥७॥

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८॥

पदार्थः—हे गोपालक ! तू गौवों को (**आवर्तय**) लौटा फिरा, हे गावो! तुम (**निवर्तन**) वापस आओ, हे गोपालक तू इन्हें (**निवर्तय**) घुमाने ले जा। हे गायो ! तुम (**निवर्तन**) जाओ, (**भूम्याः**) भूमि की (**चतस्रः**) चार (**प्रदिशः**) दिशाएं हैं । (**ताभ्यः**) वहां से घुमा फिराकर (**एनाः**) इन्हें (**निवर्तय**) ला ।

भावार्थः—गोपालक को चाहिए कि गायों को बाहर ले जावे और सब तरफ चराते हुए घुमावे फिरावे और वापस लावे ॥८॥

यह दशम मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २०

ऋषिः—१–१० विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१ आसुरीत्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ६ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृद् गायत्री । ४, ५, ७ निचृद्गायत्री । ६ गायत्री । ८ विराड्गायत्री ॥ **स्वरः**—१, १० धैवतः । २, ६ गान्धारः । ३—८ षड्जः ॥

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥१॥

पदार्थः–(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**नः**) हमारे (**मनः**) चित्त व मन को (**भद्रम्**) उत्तम मार्ग की ओर (**अपि वातय**) प्रेरित कर ।

भावार्थः—परमेश्वर हमारे मन को उत्तम मार्ग पर चलावे ।

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥२॥

पदार्थः—(**भुजाम्**) हवि को भोगने वाले (**देवानाम्**) देवों के मध्य (**यविष्ठम्**) गतिमान् (**शासा**) अनुशासन नियन्त्रण में रखने से (**मित्रम्**) मित्र, (**दुर्धरीतुम्**) संग्राम आदि में दुर्धर्ष (**अग्निम्**) अग्नि की मैं (**ईडे**) प्रशंसा करता हूँ, (**यस्य**) जिस अग्नि के (**धर्मन्**) गुण और कार्य में (**स्वः**) सूर्य अथवा समस्त देवों के समूह को (**एनीः**) ये आहुतियां (**मातुः**) माता के (**ऊधः**) स्तन के समान (**सपर्यन्ति**) परिचरण करती हैं ।

भावार्थः—यज्ञ देवों में अधिक गतिशील नियन्त्रण में रखने में मित्र और संग्राम में दुर्धर्ष अग्नि के गुणों को जानकर उसका उपयोग रचनात्मक और युद्ध आदि कार्यों में करना चाहिए । जैसे माता का स्तन बच्चे को मिलता है उसी प्रकार अग्नि के गुण और कर्म के द्वारा हवि समस्त लोगों और यज्ञ देवों तक पहुंचती है ॥२॥

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ॥३॥

पदार्थः—(**कृपनीडम्**) कर्म अथवा सामर्थ्य के आधार (**भासा केतुम्**) ज्वाला के प्रकट करने वाले (**यम्**) जिस अग्नि को (**आसा**) मन्त्र स्तुति द्वारा (**वर्धयन्ति**) बढ़ाते हैं (**श्रेणीदन्**) अभीष्ट फल समूह को देने वाला वह अग्नि (**भ्राजते**) भासमान होता है ।

भावार्थः—जो अग्नि सामर्थ्य का आधार और ज्वालाओं का प्रकाशक है और जिसको यज्ञकर्त्ता बढ़ाते हैं वह समस्त कामनाओं का पूरक होकर दीप्तिमान् रहता है ॥३॥

अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् ।
कविरभ्रं दीद्यानः ॥४॥

पदार्थः—(**विशाम्**) प्रजाओं का (**अर्यः**) स्वामी (**जातुः**) गतियुक्त अग्नि (**यद्**) यतः (**ऐति**) गति करता है अतः (**दिवः**) आकाश के (**अन्तान्**) ओर छोर तक (**प्र आनट**) व्याप्त होता है, वह (**कविः**) क्रान्त दर्शन है और (**अभ्रम**) मेघ को (**दीधानः**) दीप्ति देने वाला है ।

भावार्थः—अग्नि समस्त प्रजाओं का स्वामी और गतिशील है अतः वह आकाश की समस्त दिशाओं तक व्याप्त है! वह अधिक प्रकाश वाला है और मेघ में भी दीप्ति को पहुंचाता है ॥४॥

जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे ।
मिन्वन्त्सद्म पुर एति ॥५॥

पदार्थः—अग्नि (**मानुषस्य**) मनुष्य द्वारा प्रदत्त (**हव्या**) हवियों को (**यज्ञे**) यज्ञ में (**जुषद्**) सेवन करते हुए (**ऋभ्वा**) ज्वाला से युक्त हो (**ऊर्ध्वः**) ऊपर (**तस्थौ**) उठता है (**सद्म**) वेदि को (**मिन्वन्**) इयत्ता करता हुआ (**पुरः**) आगे (**एति**) आता है ।

भावार्थः—मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवि को ग्रहण कर ज्वालाओं से ऊपर को उठता है । वेदि की परिधि को प्राप्त होकर वह यजमान आदि के सामने ही रहता है ॥५॥

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥६॥

पदार्थः—(**सः**) वह अग्नि (**हि**) निश्चय (**क्षेमः**) सुख का हेतु है, (**हविः**) वही हवि का ग्राहक है, (**यज्ञः**) वही यजनीय है, (**अस्य**) इस अग्नि के (**गातुः**) गतिएं (**श्रुष्टी**) जल्दी (**इव**) ही (**ऐति**) व्याप्त हो जाती हैं, (**वाशीमन्तम्**) वेद मन्त्र से प्रज्वालित (**अग्निम्**) यज्ञ की अग्नि के समीप (**देवाः**) देव लोग आते हैं ।

भावार्थः—अग्नि सुख का हेतु है, हवि का ग्रहण करने वाला है, यजनीय है और जल्दी से उसकी गति सर्वत्र पहुंच जाती है । यज्ञ में वेद मन्त्रों के साथ प्रज्वालित अग्नि के पास सभी यज्ञ देव आते हैं ॥६॥

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥७॥

पदार्थः—(**यज्ञसहम्**) यज्ञ में डाले पदार्थों के ढोने वाले, उस (**अग्निम्**) अग्नि के (**दुवः**) परिचरण की मैं (**पूर्वस्य**) पूर्ण (**शेवस्य**) लौकिक पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए (**इषे**) इच्छा करता हूँ, जिस अग्नि को वैज्ञानिक (**अद्रेः**) मेघ का (**सूनुम**) पुत्र और (**आयुम**) गति का आधार (**आहुः**) कहते हैं ।

भावार्थः—जिस अग्नि को वैज्ञानिक मेघ का पुत्र और गति का आधार कहते हैं उसका मैं उपयोग करता हूं वह यज्ञ में प्रयुक्त किया हुआ आहुति का ढोने वाला और लौकिक पारलौकिक सुखों का हेतु है ॥७॥

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥८॥

पदार्थः— **ये**) जो (**के च**) कोई भी (**अस्मत**) हमारे (**नरः**) मनुष्य पुत्र पौत्र आदि हैं (**ते**) वे (**आ**) सर्वथा (**विश्वेत**) समस्त (**वामे**) उत्तम धन में (**आ स्युः**) स्थित रहें, और (**हविषा**) हवि से (**अग्निम्**) अग्नि को (**वर्धन्तः**) बढ़ाते हुए रहें ।

भावार्थः—जो कोई भी हमारे पुत्र पौत्र आदि हैं वे सदा हवि से अग्नि को बढ़ाते रहें और उत्तम धन धान्य की परिस्थिति में सदा बने रहें ॥८॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥९॥

पदार्थः—(**जनिता**) जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता ने इस अग्नि को **हिरण्यरूपम्**) ज्योतिर्मय (**जजान**) उत्पन्न किया है । यह अग्नि (**कृष्णः**) काली ज्वाला वाला (**श्वेतः**) श्वेत प्रकाश वाला, (**अरुषः**) दीप्ति वाला है (**अस्य**) इसकी (**यामः**) गति (**ब्रध्नः**) बड़ी, (**ऋज्रः**) शीघ्रगामी, (**उत**) और (**शोणः**) तापमयी और (**यशस्वान्**) यशस्वी है ।

भावार्थः जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर ने इस अग्नि को ज्योतिर्मय और काली, श्वेत और लाल ज्वालाओं वाला बनाया है । इसकी गति बड़ी क्षिप्र, तापमयी और उत्कृष्ट है ॥९॥

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०॥

पदार्थः—(**विमदः**) विगतमद यजमान (**अमृतेभिः**) अमृतमय हवियों से (**सजोषा**) युक्त हो (**ऊर्जः**) विद्युद्रूपी बल के (**नपातम्**) पौत्र (**ते**) उस (**अग्ने**) अग्नि के (**मनीषाम्**) ज्ञान को (**एव**) इस प्रकार से प्राप्तकर (**गिरः**) वाणी से उसका (**आवक्षत्**) वर्णन करता है, (**सुमतीः**) उत्तभ बुद्धि को (**इयानः**)

प्राप्त कराता हुआ यह अग्नि (**इषम्**) अन्न, (**ऊर्जम्**) बल और (**सुक्षितिम्**) उत्तम सन्तति को तथा (**बिश्वम्**) समस्त धनों को (**आ माः**) देता है।

भावार्थः—मद से रहित यजमान समिधा हवि आदि से अग्नि को यज्ञ में प्रदीप्त करता है। यह अग्नि बल से जल को उत्पन्न करता है। जल मेघ बनाता है। उससे पुनः उत्पन्न होता है अतः बल का यह पौत्र है। यजमान इस प्रकार इस अग्नि के ज्ञान को प्राप्त करता है और बुद्धि द्वारा प्रयुक्त यह अग्नि उसके लिए अन्न बल और उत्तम सन्तति देने का कारण बनता है ॥१०॥

यह दशम मण्डल में बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२१

ऋषिः—१—८ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत्पङ्क्तिः । २ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ३, ५, ७ विराट्पङ्क्तिः । ६ आर्चीषङ्क्तिः ॥ स्वरः— पञ्चमः ॥

अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञायं स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदें शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥

पदार्थः—(**न**) संप्रति (**होतारम्**) ग्रहण करने वाले (**त्वा**) इस (**अग्निम्**) अग्नि (**स्ववृक्तिभिः**) स्तुतियों के मन्त्रों के साथ (**वृणीमहे**) प्राप्त करते हैं, (**स्तीर्णबर्हिषे**) बिछे हुए कुशों वाले, इस (**यज्ञाय**) यज्ञ के सम्पादन के लिए (**वः**) मनुष्यों के (**विमदे**) आनन्द के लिए (**विवक्षसे**) महत् कार्य के लिए (**शीरम्**) सर्वत्र विद्यमान (**पावक शोचिषम्**) दीप्ति से शुद्ध करने वाले इस अग्नि को हम प्रयुक्त करें।

भावार्थः—अपनी वेदमन्त्रमयी स्तुतियों के साथ कुशादि बिछे हुए यज्ञ के सम्पादनार्थ, सबके आनन्द के लिए महान् दीप्तिमान, यज्ञ को ग्रहण करने वाले, सब में विद्यमान अग्नि को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२॥

पदार्थः—(**स्वाभुवः**) स्वयं दीप्तिमान, (**अश्वराधसः**) प्रचुर धनवाले, (**ते**) वे यजमान लोग (**त्वाम् उ**) इस अग्नि को (**शुम्भन्ति**) यज्ञ वेदी में सुशोभित करते हैं (**त्वाम् उ**) इसको (**उप सेचनी**) सिंचन करने वाली (**ऋजीतिः**) ऋजुगामिनी (**आहुतिः**) आहुति (**वः**) इस अग्नि के (**विमदे**) तृप्ति के लिए (**वेति**) प्राप्त होती है, (**अग्ने**) यह अग्नि (**विवक्षसे**) महान् होता है।

भावार्थः - धन धान्य से पूर्ण यजमान लोग यज्ञवेदी में अग्नि को सुशोभित करते हैं। इस पर क्षरण होने वाली आहुति पड़ती है इसकी तृप्ति के लिए। यह अग्नि बड़ी शक्ति वाला है ॥२॥

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥३॥

पदार्थः—(**सिञ्चतीः इव**) वृष्टि की जलें जिस प्रकार पृथिवी को सिक्त करते हैं उसी प्रकार (**धर्माणः**) यज्ञ के करने वाले यजमान (**जुहूभिः**) होमपात्रों से (**त्वे**) इस अग्नि को (**आसते**) घी सींचकर दीप्त करते हैं (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष और तृप्ति के लिए यह अग्नि (**कृष्णा**) काली (**अर्जुना**) श्वेत ज्वाला वाले रूपों को तथा (**विश्वाः**) समस्त (**श्रियः**) श्री को (**अधि धिषे**) प्रचुरता से धारण करता है, यह अग्नि (**विवक्षसे**) महान् होता है।

भावार्थः –जिस प्रकार वृष्टि जल पृथिवी को सिक्त करता है उसी प्रकार यज्ञकर्त्ता यजमान इस अग्नि को यज्ञपात्रस्थ घृत आदि से सिक्त करते हैं। यह अग्नि सबके आनन्द और सुख के लिए काली और श्वेत ज्वालाओं के रूपों को प्रचुरता से धारण करता है और समस्त श्री को धारण करता है। यह महान् है ॥३॥

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४॥

पदार्थः— हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हे (**सहसावन्**) शक्तिशालिन् (**अमर्त्य**) अविनश्वर! आप (**यम्**) जिस (**रयिम्**) धन को (**मन्यसे**) अच्छा समझते हो (**तम्**) उस धन को (**नः**) हमें (**वाजसातये**) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (**वः**) सबके (**विमदे**) सुख के लिए (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**चित्रम्**) विशेष रूप से (**आ आभर**) दें (**विवक्षसे**) आप महान् हैं।

भावार्थः—हे शक्तिमन्, अमर, अजर, भगवन् जिस धन को आप उत्तम समझते हैं वह ज्ञान की प्राप्ति के लिए और सबके आनन्द के लिए हमें यज्ञों में प्रदान करें। आप महाशक्ति हैं ॥४॥

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥

पदार्थः—(**अथर्वणा**) नियम न तोड़ने वाले अहिंसक विद्वान् से (**जातः**) जनित (**अग्निः**) अग्नि (**विश्वानि**) समस्त (**काव्या**) स्तोतृकर्मों को (**विवत्**) प्राप्त करता है, (**विवस्वतः**) यजमान का (**दूतः**) दूत (**भुवत्**) होता है (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष के लिए (**यमस्य**) नियमधारी यजमान का (**प्रियः**) प्रिय और (**काम्य.**) काम्य होता है (**विवक्षसे**) वह महान् है।

भावार्थः—अहिंसक विद्वान् के द्वारा वेदि में जनित अग्नि समस्त स्तोतृकर्मों को प्राप्त होता है। यजमान का दूत होता हुआ उसका प्रिय और काम्य होता है। यह अग्नि महान् है ॥५॥

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६॥

पदार्थः—(**त्वाम्**) इस (**अग्ने**) अग्नि को (**अध्वरे**) यज्ञ के (**प्रयति**) प्रवृत्त होने पर (**यज्ञेषु**) सभी यज्ञों में ऋत्विग् और यजमान (**ईडते**) प्रशंसा से युक्त करते हैं (**त्वम्**) यह अग्नि (**विश्वा**) समस्त (**काम्या**) कमनीय (**वसूनि**) धनों को (**वः**) सबके हर्ष के लिए (**दाशुषे**) दाता को (**दधासि**) देता है (**विवक्षसे**) यह महान् है।

भावार्थः—इस अग्नि की यज्ञ के प्रवृत्त होने पर सभी यज्ञों में ऋत्विग् और यजमान प्रशंसा करते हैं। यह महान् है और सबके हर्ष के लिए यजमान को कमनीय धन प्रदान करता है ॥६॥

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(**घृतप्रतीकम्**) घृत से परिपूर्ण (**शुक्रम्**) तेजोयुक्त, (**अक्षभिः**) इन्द्रियों से (**चेतिष्ठम्**) चिन्तन किये जाने योग्य, (**ऋत्विजम्**) प्रत्येक ऋतु को

बनाने वाले (**चारुम्**) उत्तम (**त्वाम् अग्ने**) इस अग्नि को (**मनुषः**) मनुष्य लोग (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**निषेदिरे**) स्थापित करते हैं, (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष के लिए यह (**विवक्षसे**) महान् है।

भावार्थः—घृत से सिक्त, तेजोयुक्त इन्द्रियों द्वारा जाने जाने योग्य, ऋतुओं के उत्पादक उत्तम अग्नि को लोग यज्ञ में स्थापित करते हैं। वह सबके सुख के लिए है और महान् है ॥७॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**शुक्रेण**) तेजोमय (**शोचिषा**) दीप्ति से (**उरु**) बृहत् (**प्रथयसे**) विस्तार करता है, (**बृहत**) महान् वह (**अभिक्रन्दन्**) गर्जता हुआ (**वृषायसे**) वर्षा करता है (**वः**) सबके (**मदे**) सुख के लिए (**जामिषु**) ओषधियों में (**गर्भं**) वीज शक्ति को (**दधासि**) धारण करता है, (**विवक्षसे**) वह महान् है।

भावार्थः—अग्नि अपने तीव्र तेज से अथवा दीप्ति से विस्तार करता है अपनी गति-विधियों का, वही गर्जता हुआ वर्षा करता है। सबके सुख के लिए ओषधियों में शक्ति धारण करता है। वह महान् है ॥८॥

यह दशम मण्डल में इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २२

ऋषिः—१—१५ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वासुक्रद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४, ८, १०, १४ पादनिचृद्बृहती । ३, ११ विराड्बृहती । २, ६, १२, १३ निचृदनुष्टुप् । ५ पादनिचृदनुष्टुप् । ७ आर्च्यनुष्टुप् । ९ अनुष्टुप् । १५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४, ८, १०, ११, १४ मध्यमः । २, ५—७, ९, १२, १३ गान्धारः । १५ धैवतः ॥

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१॥

पदार्थः –(**अद्य**) आज (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**कुह**) कहां (**श्रुतः**) सुना जाता है (**मित्रः न**) वह मित्र के समान (**श्रूयते**) सुना जाता है (**कस्मिन्**) किस (**जने**) जन समूह में (**श्रूयते**) सुना जाता है, वह (**ऋषीणाम्**) ऋषियों के (**क्षये**) निवास स्थान में (**गुहा**) बुद्धि में (**गिरा**) वेदवाणी और उपासना से (**चर्कृषे**) प्रकाशित किया जाता है ।

भावार्थः –भगवान् आज कहां पर सुना जाता है ? वह मित्र के समान सुना जाता है । किस जनसमूह में सुना जाता है ? वह ऋषियों के स्थान में सुना जाता है, बुद्धि वा अन्तःकरण में सुना जाता है वस्तुतः और उपासना से एवम् वेदज्ञान से प्राप्त किया जाता है ॥१॥

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥२॥

पदार्थः —(**वज्री**) शक्तिशाली, (**ऋचीषमः**) स्तुति के योग्य (**इन्द्रः**) भगवान् (**इह**) इस संसार में (**श्रुतः**) सुना और जाना जाता है, (**अस्मे**) हमारे द्वारा (**अद्य**) आज (**स्तवे**) स्तुति किया जाता है, (**यः**) जो (**जनेषु**) लोगों में (**मित्रः न**) सूर्य की भांति (**असामि**) पूर्ण (**यशः**) यश को (**आ चक्रे**) उत्पन्न करता है ।

भावार्थः — इस संसार में हम शक्तिशाली भगवान् का श्रवण करें और उसकी स्तुति उपासना आदि करें । वह लोगों को पूर्ण यश प्रदान करता है ॥२॥

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३॥

पदार्थः —(**यः**) जो (**इन्द्रः**) इन्द्र (**महः**) महान् (**शवसः**) बल का (**पतिः**) स्वामी (**असामि आ**) सर्वथा, पूर्णतः सर्वत्र, (**महतः**) महान् (**नृम्णस्य**) धन का (**तूतुजिः**) दाता (**धृष्णोः**) घर्षक (**वज्रस्य**) **वज्र** का धारक है, (**पुत्रम्**) पुत्र को (**पिता इव**) पिता के समान सबकी रक्षा करता है ।

भावार्थ —जो परमेश्वर महान् बल का पति और अनन्त गुणों वाला है, जो धन का दाता, वज्र का स्वामी और पुत्र को पिता के समान सबका रक्षक है उसी की हे मनुष्यो प्रार्थनोपासना करो ॥३॥

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४॥

पदार्थः —हे (**वज्रिवः**) शक्तिशालिन् भगवन् ! आप ही महान् (**देवः**) देव हो (**देवस्य**) दिव्य-गुणयुक्त (**वातस्य**) वायु की शक्ति रूप (**धुनी**) इन्द्रिय आदि के प्रेरक (**अश्वा**) गतिमान् प्राण और अपान को (**युजानः**) शरीर में युक्त करते हुए (**विरुक्मता**) विशेष प्रकाशमय मार्ग से (**स्यन्ता**) जाने वाले इनको (**अध्वनः**) मार्ग के पार (**सृजानः**) ले जाते हुए (**स्तोषि**) हम से स्तुति किया जाता है ।

भावार्थः —परमेश्वर वायु के प्रकारभूत, शरीर के और इन्द्रियों के व्यापार के प्रेरक प्राण और अपान को शरीर में युक्त करता है और प्रकाशमय मार्ग से उनको चलाकर इस संसार-मार्ग के पार पहुँचा देता है । हम सदा उसी की स्तुति करें ॥४॥

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥५॥

पदार्थः —(**ययोः**) जिन दोनों प्राण और अपान का (**यन्ता**) नियन्ता (**देवः**) कोई देव (**न**) नहीं (**नकिः**) न कोई (**मर्त्यः**) मनुष्य है और न कोई (**विदाय्यः**) पूर्णतः उनका ज्ञाता है (**त्या**) उन दोनों (**चित्**) ही (**ऋज्रा**) ऋजुगामी (**अश्वा**) गतिवालो को हे इन्द्र ! (**त्वम्**) तुम (**त्मना**) स्वयं ही (**वहध्यै**) वहन करने के लिए (**आ अगाः**) प्राप्त होते हो ।

भावार्थः —महान् शक्ति वाले इन प्राण और अपान को न कोई देव नियन्त्रण कर सकता है और न कोई भी मनुष्य । न इनका पूर्णतः कोई ज्ञाता है । इनका संचालन भगवान् स्वयं करता है । वह प्राणों का भी प्राण है ॥५॥

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥६॥

पदार्थः —(**उशनाः**) भोगों को चाहने वाला मनुष्य (**अध**) अनन्तर (**पृच्छते**) पूछता है कि (**ग्मन्ता**) गमनशील (**वाम्**) ये दोनों प्राण और अपान

(**कदर्था:**) किस प्रयोजन से (**नः**) हमारे (**गृहम्**) गृहरूप शरीर में (**मर्त्यम्**) जो मरणधर्मा है (**पराकात्**) दूरवर्त्ती (**दिवः**) सूर्य (**च**) और (**ग्मः च**) भूमि से भी (**आ जग्मथुः**) आये हैं ।

भावार्थः—भोगों को भोगने वाला मनुष्य पूछता है कि ये प्राण और अपान किस प्रयोजन से दूरवर्त्ती सूर्य और पृथिवी जीव के मरणधर्मा शरीर में आये हैं ॥६॥

आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (**नः**) हमें (**आपृक्षसे**) सब प्रकार से अपने सम्पर्क में रख (**अस्माकम्**) हमारा (**ब्रह्म**) स्तवन (**उद्यतम्**) आपके लिए ऊपर उठा हुआ है (**त्वा**) तुझ से हम (**तत्**) उसी (**अमानुषम्**) अमानवी (**अवः**) रक्षण की (**याचामहे**) याचना करते हैं (**यत्**) जो (**शुष्णम्**) आसुरी बलों और दुःख आदि का शोषक और समस्त आपदाओं का (**हन्**) हन्ता है ।

भावार्थः—हे सर्वशक्तिमन् भगवन् ! आप हमें सदा अपने सम्पर्क में रखें । हमें वह बल और रक्षण प्रदान करें जो मनुष्य को प्राप्त नहीं है । हमारा महान् स्तवन आपके लिए उद्यत है । आपका यह रक्षण ही समस्त दुःखों का शोषक है और आपदाओं का नाशक है ॥७॥

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥

पदार्थः—(**अकर्मा**) उत्तम कर्म न करने वाला (**दस्युः**) उत्तम कर्मों का नाश करने वाला (**अन्यव्रतः**) वेदविहित कर्म का न करने वाला (**अमानुषः**) असुर प्रकृति, (**नः**) हमें (**अभि**) लक्ष्य करके (**अमन्तुः**) अवमान करने वाले (**दासस्य**) पुण्य के उपक्षय करने वाले (**तस्य**) इसका (**अमित्रहन्**) हे काम-क्रोधादि शत्रुओं के हन्ता इन्द्र (**त्वम्**) तू (**वधः**) हन्ता होकर (**दम्भय**) विनष्ट कर ।

भावार्थः—हे काम आदि शत्रुओं के नाश करने वाले भगवन् ! जो उत्तम कर्मों को नहीं करने वाले, वेदविहित कर्मों के क्षय करने वाले, राक्षसी प्रवृत्ति के मनुष्य हैं आप उनके दुर्गुणों का विनाश करके दूर करें ॥८॥

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥९॥

पदार्थः—(**शूर**) हे महाशूर (**इन्द्र**) भगवन् (**बर्हणा**) संग्राम आदि अवसरों में (**शूरैः**) महती शक्तियों के साथ (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारी रक्षा कर । (**उत**) और (**त्वोतासः**) तुम्हारे द्वारा रक्षित हम सदा सुरक्षित रहें । (**ते**) तुम्हारी (**पूर्तयः**) स्तुतियां (**पुरुत्रा**) बहुत से स्तावकों को (**वि नवन्ते**) विशेष रूप से व्याप्त होती हैं (**यथा**) जिस प्रकार (**क्षोणयः**) मनुष्य लोग अपने स्वामी को नमन करते हैं ।

भावार्थः—भगवान् की शक्तियां प्रभूत हैं । वह हर संसार रूपी संग्राम में हमारी रक्षा करता है । उसके द्वारा रक्षित हम सदा जगत् में अपना कार्य करते हैं । उसकी स्तुतियां स्तावकों के द्वारा की जाती हैं जिस प्रकार मनुष्य अपने मालिक को नमन करते हैं ॥९॥

त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नृन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१०॥

पदार्थः—(**वज्रिवः**) हे मेघ आदि पदार्थों के स्वामिन् (**शूर**) शक्तिशालिन् भगवन् ! (**कार्पाणे**) घोर (**वृत्रहत्ये**) मेघवध में (**तान्**) प्रसिद्ध (**नृन्**) मरुतों को (**चोदयः**) प्रेरित करते हो, (**यदि**) क्योंकि (**कवीनाम्**) क्रान्तदर्शन (**नक्षत्रशवसाम्**) नक्षत्र ग्रहों आदि में रहने वाली (**विशाम्**) प्रजा के (**गुहा**) स्थान में आप विद्यमान हो ।

भावार्थः—मेघ आदि समस्त पदार्थों का स्वामी परमेश्वर मेघ को मार कर वर्षा करने के युद्ध में मरुद्गण वायुओं को प्रेरित करता है । क्योंकि वह नक्षत्र आदि में रहने वाली क्रान्तदर्शन सूर्य आदि के स्थान आकाश में वह व्यापक हो रहा है ॥१०॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥

पदार्थः—(**वज्रिवः**) विद्युद्रूपी वज्र को धारण करने वाले (**शूर**) हे शक्तिशालिन् (**इन्द्र**) भगवन् ! (**आक्षाणे**) वृत्रवध युद्ध में (**दानाप्नसः**) वृष्टि

देने वाले कर्म के कर्त्ता (**ते**) आपके (**मक्षू**) शीघ्र किये जाने वाले (**ता**) समस्त कार्यों की प्रशंसा की जाती है (**यत् ह**) जो कि आप (**सयावभिः**) मिश्रण और अमिश्रण की क्रियाओं के साथ (**शुष्णस्य**) मेघ के (**विश्वम्**) समस्त (**जातम्**) समूह को (**दम्भयः**) विदारित करते हो ।

भावार्थः—मेघवध युद्ध में वृष्टि हेतु मिश्रण और अमिश्रण की क्रिया से शक्तिशाली भगवान् मेघ के समूह को जो मार गिराता है उसका यह कार्य प्रशंसनीय है ॥११॥

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२॥

पदार्थः—(**वज्रिवः**) वज्रधारिन्, (**शूर**) शक्तिशालिन् (**इन्द्र**) हे इन्द्र - भगवन् (**अस्मे**) हमारी (**अभिष्टयः**) अभिलाषायें और (**वस्वीः**) धन-सम्पदाए (**अकुध्रचग्**) निष्फल (**मा भूवन्**) न होवें, (**वयम् वयम्**) हम सभी सदा (**ते**) आपकी (**सुम्ने**) रक्षा में (**आसाम्**) इन प्रजाओं के बीच में (**स्याम**) रहें ।

भावार्थः—हे वज्रधारिन् शक्तिशालिन् भगवन् ! हमारा धनादि पदार्थ और अभीष्ट कभी निष्फल न हो । हम सदा लोगों के बीच में आपके रक्षण में रहें ॥१२॥

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३॥

पदार्थः—(**वज्रिवः**) वज्रधारिन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**अहिंसन्ती**) किसी की हानि न करने वाली (**अस्मे**) हमारी (**ता**) वे (**ते**) तुम्हारे (**उपस्पृशः**) समीप पहुँचने वाली स्तुति प्रार्थना आदि क्रियायें (**सत्या**) सत्य (**सन्तु**) सिद्ध हों (**यासाम्**) जिनके फलस्वरूप (**धेनूनाम् न**) गौओं के समान (**भुजः**) योग्य पदार्थों को (**विद्याम**) जानें और प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् भगवन् ! तुम तक पहुँचने वाली और किसी को हानि न पहुँचाने वाली हमारी स्तुतियां आदि सत्य हों, और उनके फलस्वरूप गौओं की भांति हम अपने भोगों को जानें और भोगें ॥१३॥

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४॥

पदार्थः—हे भगवन् ! (**यत्**) यदि (**अहस्ता**) हस्तरहित, (**अपदी**) पांव से रहित (**क्षाः**) पृथिवी (**वेद्यानाम्**) जानने योग्य सूर्य आदि पदार्थ देवों के (**शचीभिः**) क्रिया कलापों से (**वर्धत**) बढ़ती है तो इस कारण से कि आप (**विश्वायवे**) विश्व के मनुष्यों के कल्याण (**परि प्रदक्षिणित्**) पृथिवी को इस प्रकार दायें-बायें घेर कर विराजमान (**शुष्णम्**) मेघ को (**निशिश्नथ**) नितराम् ताडित करते हो ।

भावार्थः—हे शक्तिशालिन् भगवन् ! विना हाथ और विना पैर की पृथिवी यदि सूर्य आदि देवों की गतिविधियों से वृद्धि को प्राप्त करती है तो इसमें हेतु यह है कि आप उसको चारों तरफ घेरे हुए मेघ को मनुष्य के कल्याणार्थ ताड़ित कर वर्षा करते हो ॥१४॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥

पदार्थः—(**शूर**) हे शक्तिशालिन् (**इन्द्र**) भगवन् ! (**वसवान्**) धनों का नेता तथा (**वसुः**) प्रशस्त (**सन्**) होता हुआ तू (**सोमम् इत्**) जगत् के पदार्थों की (**पिबापिब**) निरन्तर रक्षा कर (**मा**) मत (**रिषण्य**) हानि पहुँचा । (**उत**) और (**गृणतः**) स्तावक (**मघोनः**) यज्ञकर्त्ता की (**त्रायस्व** रक्षा कर (**च**) और (**महः**) महान् (**रायः**) धन के प्रदान से (**नः**) हमें (**रेवतः**) धनवाला (**कृधि**) कर ।

भावार्थः—शक्तिशाली प्रभु धन का नायक और प्रशस्त है । वह जगत् के पदार्थों की रक्षा करता है । उन्हें हानि नहीं पहुंचाता है, स्तुति करने वाले और यज्ञशील जनों की रक्षा करता है । वह हमें धन प्रदान कर धनयुक्त करे ॥१५॥

यह दशम मण्डल में बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२३

ऋषिः—१—७ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ आर्चीभुरिग् जगती । ३ निचृज्जगती । ६ आर्चीस्वराड्जगती । स्वरः—१, ५, ७ धैवतः । २—४, ६ निषादः ॥

यजा॑मह॒ इन्द्रं॒ वज्र॑दक्षिणं॒ हरी॑णां र॒थ्यं१॒॑ विव्र॑तानाम् ।
प्र श्मश्रु॒ दोधु॑वदू॒र्ध्वथा॑ भू॒द्वि सेना॑भि॒र्दय॑मानो॒ वि राध॑सा ॥१॥

पदार्थः—(**वज्रदक्षिणम्**) वज्रधारण में दक्ष, (**विव्रतानाम्**) विविध कर्म वाले (**हरीणाम्**) किरणों के (**रथ्यम्**) धारक नेता (**इन्द्रम्**) विद्युत् की (**यजामहे**) संगतिकरण करते हैं, वह (**सेनाभिः**) मरुद्गण के द्वारा मेघ को (**दयमानः**) काटता हुआ (**श्मश्रु**) पृथिवी पर उत्पन्न घास वृक्ष आदि को (**प्रदोधुवत्**) कम्पित करता हुआ (**ऊर्ध्वथा**) ऊपर (**भूद्**) होता है (**वि राधसा**) विशेष धन से (**वि**) विविध प्रकार से युक्त करता है ।

भावार्थः—हम वज्रधारण में दक्ष किरणों के प्रसारक विद्युत् को संगतिकरण करके जानें । वह मरुद्गण के साथ मेघ को गिराता है पृथिवी पर होने वाले लता घास वृक्ष आदि को कम्पायमान कर मेघ के ऊपर विराजता है । वह विविध धनों की प्राप्ति का साधन बनाया जावे ॥१॥

हरी॒ न्व॑स्य॒ या वने॑ वि॒दे वस्वि॑न्द्रो॑ म॒घैर्म॒घवा॑ वृत्र॒हा भु॑वत् ।
ऋ॒भुर्वाज॑ ऋभु॒क्षाः प॑त्यते॒ शवोऽव॑ क्ष्णौमि॒ दास॑स्य॒ नाम॑ चित् ॥२॥

पदार्थः—(**नु**) निश्चय ही (**अस्य**) इस विद्युत् के (**या**) जो दो (**हरी**) अश्व=ऋणात्मक धनात्मक भेद हैं वे (**वने**) जल आदि में (**वसु**) समस्त वस्तुओं को (**विदे**) व्याप्त करते हैं । (**इन्द्रः**) यह विद्युत् (**मघैः**) अपनी शक्तियों अथवा यज्ञों से (**मघवा**) शक्ति वाला अथवा मखवान् और (**वृत्रहा**) मेघ का मारने वाला (**भुवत्**) कहा जाता है तथा वह (**ऋभुः**) दीप्त (**वाजः**) शक्ति वाला (**ऋभुक्षाः**) महान् इन्द्र (**शवः**) अन्न आदि की (**पत्यते**) रक्षा करता है। मैं उसके सहयोग से (**दासस्य**) सूखा दुष्काल आदि के (**नाम चित्**) प्रभाव को (**अवक्ष्णौमि**) विनष्ट करूं ।

भावार्थः—इन्द्र=विद्युत् के दो अश्वः=ऋणात्मक, धनात्मक भेद जो समस्त लोकों जलादि पदार्थों में व्याप्त हो रहे हैं । इन अपनी शक्तियों से इन्द्र मघवा और वृत्रहा कहा जाता है । वह दीप्त महान् और अन्न आदि का रक्षक है । मैं उसका ज्ञाता उसके सहयोग से दुष्काल आदि के प्रभाव को नष्ट करूं ॥२॥

य॒दा वज्रं॒ हिर॑ण्य॒मिदथा॒ रथं॒ हरी॒ यम॑स्य॒ वह॑तो॒ वि सू॒रिभिः॑ ।
आ ति॑ष्ठति म॒घवा॒ सन॑श्रुत॒ इन्द्रो॒ वाज॑स्य दी॒र्घश्र॑वस॒स्पतिः॑ ॥३॥

पदार्थः—(**सनश्रुतः**) सदा प्रख्यात (**दीर्घश्रवसः**) बहुत यश के देने वाला (**वाजस्य**) धन का (**पतिः**) स्वामी (**मघवा**) मखवान् (**इन्द्रः**) इन्द्र (**यद**) जब (**हिरण्यम्**) हिरण्य के समान चमकदार (**वज्रम् इत्**) वज्र को ग्रहण करता है (**अथ**) तब (**तम्**) उस (**रथम्**) तापचक्र पर (**सूरिभिः**) सूर्य की किरणों के साथ (**आ तिष्ठति**) विराजमान रहता है (**यम्**) जिस (**अस्य**) इसके रथ को (**हरी**) दो वैद्युत प्रकार (**विवहतः**) वहन करते हैं ।

भावार्थः— यह इन्द्र कीर्त्तियुक्त धनों का स्वामी है जब यह अपने चमकीले वज्र को धारण करता है तब सूर्य किरणों के साथ अपने उस तापचक्र पर विराजता है जिसे ये दो वैद्युत तत्त्व वहन करते हैं ॥३॥

सो चि॒न्नु वृ॒ष्टिर्यू॒थ्या॒३ स्वा सचाँ॒ इन्द्रः॒ श्मश्रू॑णि॒ हरि॑ता॒भि प्रु॑ष्णुते ।
अव॑ वेति सु॒क्षयं॑ सु॒ते मधूदिद्धू॑नोति॒ वातो॒ यथा॒ वन॑म् ॥४॥

पदार्थः—(**सो**) वह (**चित् नु**) ही महती (**वृष्टिः**) वृष्टि है, जिसमें (**इन्द्रः**) इन्द्र (**स्वा**) अपने (**यूथ्या**) मरुद्गण आदि यूथों के (**सचा**) साथ (**हरिता**) तेज से (**श्मश्रूणि**) पृथिवी पर हुए घास वृक्ष आदि को (**अभि प्रुष्णुते**) सिक्त करता है, वह (**सुक्षयम्**) सभी स्थानों (**उत् इव**) और (**मधु**) जगत् के पदार्थों को (**सुते**) इस उत्पन्न संसार में (**अव वेति**) प्राप्त होता है और (**धूनोति**) कम्पायमान करता है । (**यथा**) जिस प्रकार (**वातः**) वायु (**वनम्**) जंगल को हिला देता है ।

भावार्थः—उसी को महती वृष्टि कहा जाता है जिसमें इन्द्र अपने मरुद्गण आदि समूहों के साथ पृथिवी पर विद्यमान वृक्ष आदि को सिक्त करता है और समस्त स्थानों और पदार्थों को जगत् में कम्पायमान कर देता है जिस प्रकार वायु जंगल को झकझोर देता है ॥४॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ।।५।।

पदार्थः—(**यः**) जो (**इन्द्रः**) विद्युत्पदार्थ (**वाचा**) गर्जन तर्जन आदि कड़क से (**विवाचः**) अस्पष्ट वाणी वाले, (**मृध्रवाचः**) हिंसक आवाज वाले, (**पुरु**) बहुत से (**सहस्रा**) अत्यधिक (**अशिवा**) अकल्याणकारी जन्तुओं को (**जघान**) नष्ट कर देता है, (**यः**) जो (**पिता इव**) पिता के समान जगत् की (**तविषीम्**) शक्ति को और (**शवः**) बल को (**वावृधे**) बढ़ाता है (**अस्य**) इस इन्द्र के (**तत्तत् इत्**) उस उस (**पौंस्यम्**) बल की हम (**गृणीमसि**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हम इस इन्द्र के उन-उन कार्यों की प्रशंसा करते हैं जिनमें वह विविध प्रकार के अकल्याणकारक कृमि कीटों आदि को बिजली की कड़क से नष्ट कर देता है और पुत्र को पिता के समान जगत् के बल और शक्ति को वृष्टि से बढ़ाता है ।।५।।

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ।।६।।

पदार्थः—(**विमदाः**) मद आदि से रहित हम सब (**सुदानवे**) ... वाले (**ते**) इस (**इन्द्र**) इन्द्र के लिए (**पुरुतमम्**) बहुत (**अपूर्व्यम्**) उत्कृष्ट (**स्तोमम्**) प्रशंसा (**अजीजनन्**) करते हैं (**हि**) निश्चय से (**अस्य**) इस (**इनः**) समर्थ का (**यत्**) जो (**भोजनम्**) रक्षण हैं उसको (**विद्मः**) जानते हैं (**पशुम्**) पशु को (**गोपाः न**) गोपालक के समान (**आ करामहे**) समक्ष रखें ।

भावार्थः—अभियान आदि से रहित हम सब इन्द्र की उत्कृष्ट शब्दों में प्रशंसा करते हैं । हम उस समर्थ के योगदान को भली प्रकार जानकर उसे अपने समक्ष रखें जिस प्रकार गोपालक अपने पशुओं को समक्ष रखता है ।।६।।

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ।।७।।

पदार्थः—(**इन्द्र**) यह इन्द्र है । (**तव**) इसके (**च**) और अन्य के (**च**) और (**विमदस्य**) विमद नामक साम वाले (**ऋषेः**) मन्त्र के साथ (**नः**) हम सबका (**सख्या**) सहयोग वा मैत्रीभाव (**माकिः**) न (**वियोषुः**) वियुक्त होवें, (**देव**) दिव्य (**ते**) उसके (**हि**) निश्चय (**प्रमतिम्**) प्रकृष्ट ज्ञान को (**जामिवद्**) भगिनी के समान (**विद्म**) जानें, तथा (**अस्मे**) हमारे लिए (**ते**) उसका (**सख्या**) सम्पर्क (**शिवानि**) कल्याणकारी (**सन्तु**) हो ।

भावार्थः—इस इन्द्र और लोगों का, तथा विमद साम मन्त्र का सम्पर्क सदा हमसे बना रहना चाहिए । हम तत्सम्बन्धी ज्ञान को जाने और यह सम्पर्क सदा कल्याणकारी हो ।।७।।

यह दशम मण्डल में तेईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त २४

ऋषिः—१—६ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ।। देवता—१—३ इन्द्रः । ४—६ अश्विनौ ।। छन्दः—१ आस्तारपङ्क्तिः । २ आर्चीस्वराट्पङ्क्तिः । शङ्कुमतीपङ्क्तिः । ४, ६ अनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ।। स्वरः—१ ३ पञ्चमः । ४—६ गान्धारः ।।

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ।।१।।

पदार्थः—(**पुरूवसो**) सभी लोकों और धनों के स्वामिन् (**इन्द्र**) परमेश्वर (**चमू**) भूमि और आकाशपर्यन्तस्थित (**सुतम्**) उत्पन्न (**मधुमन्तम्**) जल आदि से युक्त (**इमम्**) इस (**सोमम्**) जगत् की (**पिब**) रक्षा कर, (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष के लिए (**अस्मे**) हमें (**सहस्रिणम्**) सहस्रा प्रकार के (**रयिम्**) धन को (**नि धारय**) दे, (**विवक्षसे**) तू महान् है ।

भावार्थः—हे समस्त लोकों के स्वामिन् परमेश्वर ! आप आकाश और भूमिपर्यन्त विद्यमान समस्त जगत् की रक्षा करें । सबके सुख के लिए सहस्रों प्रकार के धन को दें । प्रभो ! आप महान् हो ।।१।।

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२॥

पदार्थः—(**शचीपते**) हे बुद्धि के स्वामिन् परमेश्वर ! हम (**यज्ञेभिः**) यज्ञों द्वारा, (**उक्थेभिः**) मन्त्रों द्वारा (**हव्येभिः**) आहुतियों द्वारा (**त्वाम्**) आप की आज्ञा को (**उप इमहे**) स्वीकार और पालन करते हैं, प्रभो ! (**शचीनाम्**) ज्ञान आदि से युक्त अर्थात् ज्ञान सम्बन्धी (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**वार्यम्**) वरणीय धन को (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए (**नो**) हमें (**धेहि**)दो (**विवक्षसे**) आप महान् हो ।

भावार्थः—हे समस्त ज्ञानों के आगार परमेश्वर ! हम यज्ञ, मन्त्र और आहुति आदि से आपकी आज्ञा को स्वीकार कर उसका पालन करते हैं। आप हमें सबके सुख के लिए बुद्धि आदि से युक्त श्रेष्ठ धन को प्रदान कीजिए ॥२॥

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे भगवन् ! (**यः**) जो तू (**वार्याणाम्**) श्रेष्ठ धनों का (**पतिः**) स्वामी (**असि**) है, (**रध्रस्य**) स्तुति करने वालों को (**चोदिता**) उत्तम मार्ग पर चलाने वाला है, और (**स्तोतॄणाम्**) स्तोत्रियों का (**अविता**) रक्षक है (**नः**) हमारी (**द्विषः**) हमसे द्वेष करने वाली (**अंहसः**) बुराइयों से (**पाहि**) हमारी रक्षा कर (**वः**) सबके (**विमदे**) सुख के लिए मैं होऊं, (**विवक्षसे**) आप महान् हो ।

भावार्थः—हे प्रभो ! आप समस्त श्रेष्ठ धनों के स्वामी हो, स्तुति करने वालों को उत्तम मार्ग पर चलाने वाले हो,आप ही स्तावकों के रक्षक हो । विश्व के सुख के लिए हमारे परम द्वेषी जो दुर्गुण हैं उनसे हमारी रक्षा करें । प्रभो आप महान् हैं ॥३॥

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४॥

पदार्थः—(**शक्रा**) शक्तिशाली, (**मायाविना**) प्रज्ञा वाले (**समीची**)एक साथ रहने वाले (**युवम्**) तुम दोनों ऋत्विग् और यजमान (**निरमंथतम्**) अरणि में से अग्नि का यज्ञ में मन्थन करते हो, (**नासत्य**) हे सत्यभूत ! आप दोनों (**यद्**) जब (**विमदेन**) वेदज्ञ हर्षदायक विद्वान् के द्वारा (**ईडिता**) प्रशंसा किये जाते हो तब (**निरमन्थतम्**) अग्नि का मन्थन करते हो ।

भावार्थः—जब वेदज्ञ विद्वान् प्रशंसापूर्वक कहता है तब ऋत्विग् और यजमान अग्नि का मन्थन करते हैं। ये दोनों यज्ञ में साथ रहने वाले, प्रज्ञावान् और न+असत्य अर्थात् सत्यमय होने चाहिएँ ॥४॥

विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ॥५॥

पदार्थः—(**समीच्योः**) साथ रहने वाले (**निष्पतन्त्योः**) कभी भी व्रत से न डिगने वाले ऋत्विग् और यजमान पर (**विश्वेदेवाः**) समस्त यज्ञदेव और विद्वज्जन (**अकृपन्त**) कृपा करते हैं । (**देवाः**) विद्वज्जन दोनों को (**नासत्यौ**) न+असत्य अर्थात् सदा सत्यव्रती नासत्य (**अब्रुवन्**) कहते हैं और कहते हैं कि (**पुनः**) फिर फिर (**इति**) ऐसा ही (**आवहतात्**) कर्म करते रहो ।

भावार्थः—यज्ञ में सदा साथ रहने वाले और कभी व्रत से न डिगने वाले ऋत्विग् और यजमान पर विद्वज्जन कृपा करते हैं उन्हें नासत्य=सदा सत्य पर दृढ़ कह कर पुकारते हैं और कहते हैं कि आप दोनों सदा इस प्रकार के यज्ञ-सम्पादन कार्य को करते रहो ॥५॥

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥६॥

पदार्थः—हे आचार्योपदेशक ! (**ता**) वे (**युवम्**) आप दोनों (**देवा**) देव हो, (**देवतया**) देवत्व से (**नः**) हमें (**मधुमतः**) मधुमान् (**कृतम्**) कीजिए, जिससे (मे) मेरा (**परायणम्**) मोक्ष आदि उत्तम मार्ग को जाना (**मधुमत्**) मधुर हो और मेरा (**पुनरायनम्**) मोक्ष से लौटना भी (**मधुमत्**) मधुर हो ।

भावार्थः—आचार्य और उपदेशक देव हैं। ये दोनों हमें देवत्व-भावना से मधुर करें कि जिससे हमारी मोक्षप्राप्ति और मोक्ष से पुनः संसारप्राप्ति दोनों ही मधुर हों ॥६॥

यह दशम मण्डल में चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २५

ऋषिः —१ ११ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ देवता—सोमः ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, ११ आस्तारपङ्क्तिः । ३—५ आर्चीनिचृत्पङ्क्तिः । ७—९ आर्चीविराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥१॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (**नः**) हमें (**भद्रम्**) कल्याणकारी (**मनः**) मन (**अपि**) भी (**वातय**) प्राप्त करा (**दक्षम्**) बल (**उत**) और (**क्रतुम्**) प्रज्ञा भी कल्याणकारी ही दे, (**यवसे**) घास वा चारे के लिए (**गावः न**) गौवों की भांति (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए (**अध**) अनन्तर (**ते**) आपके (**सख्ये**) सख्य में (**अन्धसः**) अन्न आदि को (**रणन्**) प्राप्त करते हैं । (**विवक्षसे**) आप महान् हैं ।

भावार्थः—हे भगवन् ! आप हमें कल्याणकारी मन, बल और बुद्धि प्रदान करें । जैसे गाय घास को प्राप्त करती है वैसे ही हम आप के सख्य में अन्न आदि भोगों को प्राप्त करें । आप महान् हैं ॥१॥

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे प्रेरक परमेश्वर ! (**अध**) तथा (**मम**) मेरे (**इमे**) ये (**कामाः**) कामनामय (**वसूयवः**) ऐश्वर्य चाहने वाले लोग (**विश्वेषु**) समस्त (**धामसु**) स्थानों में (**हृदिस्पृशः**) हृदय को स्पर्श करने वाले अर्थात् अतिप्रिय होकर (**ते**) तेरी (**आसते**) उपासना करते हैं (**वितिष्ठन्ते**) स्थिर रहते हैं, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**वि मदे**) कल्याण के लिए है ।

भावार्थः—उत्तम कामनाओं से युक्त प्रभु के प्यारे जन सभी स्थानों पर हैं । वे उस प्रभु के प्रिय बनकर उसकी उपासना करते हैं और उसमें स्थिति पाते हैं । भगवान् सबका कल्याण करने वाला और महान् है ॥२॥

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! (**उत**) और (**अहम्**) मैं (**पाक्या**) परिपक्व बुद्धि से (**ते**) आपके (**व्रतानि**) नियमों का (**प्रमिनामि**) पालन करूं, (**अध**) और तू (**बधात्**) नाश से बचाकर (**सूनवे**) पुत्र को (**पिता इव**) पिता के समान (**अभिचित्**) सब तरफ से (**नः**) हमें (**मृड**) सुखीकर (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) हे लोगो ! आपके (**वि मदे**) कल्याण के लिए हैं ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हम परिपक्व बुद्धि से आपके नियमों का पालन करें । पुत्र को पिता के समान आप हमें नाश से सदा बचावें और सुखी करें । हे लोगो ! महान् प्रभु आपके कल्याण के लिए हैं ॥३॥

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४॥

पदार्थः—हे (**सोम**) परमेश्वर ! (**सर्गासः**) घट से बंधी हुई जल निकालने की रस्सी (**इव**) जिस प्रकार (**अवतान्**) कूप में नीचे जाती है उसी तरह (**नः**) हमारी (**धीतयः**) स्तुतियां (**उ**) निश्चय ही (**सम् प्र यन्ति**) आप तक पहुँचती हैं, (**जीवसे**) जीवन के लिए (**चमसान् इव**) भरे हुए पात्रों के समान (**क्रतुम्**) प्रज्ञा वा कर्म को (**धारय**) धारण करा (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार घड़े में बंधी रस्सी कूप से जल निकालने के लिए कूप में जाती है वैसे ही हमारी स्तुतियाँ भगवान् को ही पहुंचती हैं । वह परमेश्वर जीवन के लिए पूरित पात्र के समान हमें कर्म वा प्रज्ञा प्रदान करता है । वह महान् है और सबके कल्याण के लिए है ॥४॥

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥

पदार्थः (**सोम**) परमेश्वर ! (**त्ये**) वे (**निकामासः**) तुझे चाहने वाले (**धीराः**) धीर (**तवसः**) बलशाली विद्वान् लोग (**गृत्सस्य**) स्तुत्य एवं सर्वज्ञ तुझ द्वारा प्रदत्त (**शक्तिभिः**) शक्तियों से (**गोमन्तम्**) इन्द्रियों वाले (**अश्विनम्**) प्राणों वाले (**व्रजम्**) इस शरीर रूपी गोष्ठ को (**वि ऋण्विरे**) प्राप्त करते हैं (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए हैं ।

भावार्थः—भगवान् को चाहने वाले शक्तिशाली और योग्य को ही भगवान् की कृपा से इन्द्रिय और प्राणों का घर यह मानव-शरीर मिलता है। महान् प्रभु सबके कल्याण के लिए है ॥५॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**नः**) हमारे लिए (**पशुम**) पशु आदि की (**रक्षसि**) रक्षा करते हैं (**पुरुत्रा**) बहुत प्रकार से (**विष्ठितम**) व्यवस्था में स्थित (**जगत**) जगत् की भी रक्षा करते हैं, (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**सम्पश्यन्**) देखते हुए (**जीवसे**) जीवों के जीवन के लिए (**सम् आ कृणोषि**) भली प्रकार से व्यवस्थित करते हैं, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए है।

भावार्थः—भगवान् हमारे लिए सब प्रकार के पशुओं और व्यवस्थित जगत् की रक्षा करता है। जीवों के जीवन के लिए वह समस्त भुवनों को देखकर उनकी यथायोग्य व्यवस्था करता है। वह महान् है और सबके कल्याण के लिए है ॥६॥

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**अदाभ्यः**) अविनाशी और अदम्य है (**नः**) हमारा (**विश्वतः**) सर्वतः (**गोपाः**) रक्षक (**भव**) हो, (**राजन्**) हे सबके सम्राट् ! (**स्रिधः**) हमारे हानि करने वाले काम क्रोध आदि को (**अपसेध**) हमसे दूर कर, (**दुःशसः**) अत्याचारी (**नः**) हमारे ऊपर (**मा**) मत (**ईशत**) शासन करे, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सब लोगों के (**विमदे**) कल्याण के लिए हैं।

भावार्थः—परमेश्वर अविनाशी है। वह सब तरफ से हमारा रक्षक है। वह हमारा नाश करने वाले काम क्रोध आदि को हमसे दूर करे। हमारे ऊपर अत्याचारी शासक शासन न करे। महान् प्रभु सबका कल्याण करता है ॥७॥

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर (**त्वम्**) तू (**सुक्रतुः**) उत्तम प्रज्ञान और कर्म वाला है और (**क्षेत्रवित्तरः**) शरीर रूपी तथा ब्रह्माण्डरूपी क्षेत्रों का महान् ज्ञाता है, (**नः**) हमारे लिए (**वयोधेयाय**) अन्न प्रदानार्थ (**जागृहि**) सदा जागरूक है (**नः**) हमें (**द्रुहः**) द्रोह करने वाले (**मनुषः**) मनुष्य से और (**अंहसः**) पाप से (**पाहि**) बचा। (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबका (**विमदे**) कल्याण करता है।

भावार्थः—परमेश्वर उत्तम ज्ञान और क्रिया वाला है। वही शरीरों और ब्रह्माण्ड क्षेत्रों का महान् ज्ञाता है। वह हमें अन्न आदि देने के लिए सदा जागरूक है। वह द्रोही लोगों और पाप से हमें बचावे। वह महान् है और सबका कल्याण करता है ॥८॥

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९॥

पदार्थः—(**वृत्रहन्तम**) हे दुःखों के नाशक (**इन्दो**) परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारा (**शिवः**) कल्याणकारी (**सखा**) सखा और (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यवान् का भी कल्याणकारी सखा है, (**तोकसातौ**) पुत्र आदि के लाभार्थ किये जाने वाले (**समिथे**) जीवन संग्राम में (**युध्यमानाः**) युद्ध करने वाले (**सीम्**) सर्वतः (**यत्**) चूंकि तुझे ही (**हवन्ते**) रक्षार्थ पुकारते हैं (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण करने वाला तू (**विवक्षसे**) महान् है।

भावार्थः—दुःखों का नाशक परमेश्वर हमारा कल्याणकारी मित्र है। वही ऐश्वर्य वालों का भी मित्र है। संसार में पुत्र आदि की प्राप्ति में लगे हुए संसारयुद्ध के योद्धा उस प्रभु को ही रक्षार्थ पुकारते हैं। वह महान् प्रभु सबका कल्याण करने वाला है ॥९॥

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१०॥

पदार्थः—(**अयम**) यह (**घ**) ही (**सः**) वह सोम=परमेश्वर (**तुरः**) प्रति व्यापक होने से त्वरितगति है (**इन्द्रस्य**) जीव का (**प्रियः**) मित्र है (**वर्धत**) हमारे ज्ञान को बढ़ावे, (**अयम**) यह (**महः**) महान् (**कक्षीवतः**) कमर बांधकर काम में लगे (**विप्रस्य**) मेधावी की (**मतिम**) बुद्धि को (**वर्धयत**) बढ़ाता है, (**विवक्षसे**) महान् वह (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए है।

भावार्थः—यह परमेश्वर व्यापक होने से त्वरितगति है, जीव का मित्र है। वह हमारे ज्ञान को बढ़ावे। वह कटिबद्ध विद्वान् की बुद्धि को तीव्र करता है, वह महान् प्रभु सबका कल्याण करने वाला है ॥१०॥

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥११॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह परमेश्वर (**दाशुषे**) दानशील (**विप्राय**) मेधावी को (**गोमतः**) गौ आदि पशुओं से युक्त (**वाजान्**) धन को (**इयर्ति**) देता है, (**अयम्**) यह (**सप्तभ्यः**) सात ज्ञान के करणों को (**वरम्**) उत्तम शक्ति (**आ**) देता है, यह (**अन्धम्**) अन्धे को (**श्रोणम्**) पगु को भी (**प्र तारिषद्**) पार लगाता है, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए है।

भावार्थः—यह परमेश्वर दानशील मेधावी पुरुष को गौ आदि पशुओं से युक्त धन देता है, मन, बुद्धि और पांच ज्ञान इन्द्रियां—इन सातों को शक्ति प्रदान करता है। अन्धे और पंगु को भी वही पार पहुंचाता है। वह महान् है और सबका कल्याण करने वाला है ॥११॥

यह दशम मण्डल में पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२६

ऋषिः—१—६ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—पूषा ॥ **छन्दः**—१ उष्णिक् । ४ आर्षीनिचृदुष्णिक् । २ आर्चीस्वराडनुष्टुप् । ककुम्मत्यनुष्टुप् । ५—८ पादनिचृदनुष्टुप् । ६ आर्षीविराडनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—१, ४ ऋषभः । २, ३, ५—६ गान्धारः ॥

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१॥

पदार्थः—(**स्पार्हाः**) स्पृहणीय, (**नियुतः**) नियन्त्रित (**मनीषाः**) मनोभावनायें, (**हि**) निश्चय से (**अच्छा**) अच्छी प्रकार (**प्रयन्ति**) सबके पोषक पूषा=परमेश्वर को पहुँचती हैं, (**नियुद्रथः**) जगत् के अनेकों लोकों को रथ बनाकर स्थित (**माहिनः**) महान् (**पूषा**) परमेश्वर (**दस्रा**) दर्शनीय पति-पत्नी के जोड़े की (**प्राविष्टु**) रक्षा करे।

भावार्थः—स्पृहणीय एवं सब प्रकार से नियम में नियन्त्रित हमारे भाव उस भगवान् तक पहुंचते हैं। जगत् के लोकों का स्वामी परमेश्वर संसार में विद्यमान पति-पत्नी के जोड़ों की करे ॥१॥

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।
विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥२॥

पदार्थः—(**विप्रः**) मेधावी (**अयम्**) यह (**जनः**) मनुष्य (**यस्य**) जिस पूषा सम्बन्धी (**त्यत्**) उस (**वाताप्यम्**) वायु और प्राण आदि में व्याप्त (**महित्वम्**) महत्व को (**धीतिभिः**) बुद्धि और कर्म से (**आ वंसत्**) प्राप्त करता है, वह परमेश्वर (**सुष्टुतीनाम्**) हमारी उत्तम स्तुतियों को (**चिकेत**) जानता है।

भावार्थः—मेधावी मनुष्य समस्त जगत् और वायु आदि में व्यापक उस भगवान् के महत्व को अपने ज्ञान से जानता है। परमेश्वर हमारी स्तुतियों को जानता है ॥२॥

स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा ।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥३॥

पदार्थः—(**इन्दुः न**) चन्द्रमा के समान (**वृषा**) सुखों का बरसाने वाला (**प्सुरः**) समस्त विश्व के रूपों का धारक (**सः**) वह (**पूषा**) परमेश्वर हमारी (**सुष्टुतीनाम्**) उत्तम स्तुतियों को (**वेद**) जानता और स्वीकार करता है (**नः**) हम पर (**अभि प्रुषायति**) अपनी कृपा का सिंचन करता है और हमारे (**व्रजम्**) गोशाला पर भी (**आप्रुषायति**) कृपा की वृष्टि करता है।

भावार्थः—वह भगवान् चन्द्रमा के समान हम पर सुखों की वर्षा करने वाला है। वह हमारी उत्तम स्तुतियों को जानता और स्वीकार करता है वह जहां हम पर अपनी कृपा की वृष्टि करता है, वहां हमारी गोशाला आदि पर भी कृपा की वृष्टि करता है ॥३॥

मंसीमहिं त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥४॥

पदार्थः—(**पूषन्**) हे जगत् के पालक (**देव**) देव परमेश्वर (**वयम्**) हम (**त्वा**) तुझे (**अस्माकम्**) अपनी (**मतीनाम्**) बुद्धियों के (**साधनम्**) सफल-कर्त्ता, (**च**) और (**विप्राणाम्**) इन्द्रियों के (**आधवम्**) पवित्र करने वाला (**मंसीमहि**) जानते हैं ।

भावार्थः—जगत् का पालक परमेश्वर देव हमारी बुद्धियों का सफल करने वाला और हमारे इन्द्रिय व्यापारों का पवित्र करने वाला है । उसे हम ऐसा जानें ॥४॥

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**यज्ञानाम्**) हमारे यज्ञों का (**प्रत्यर्धि**) पूरक है (**रथानाम्**) रमणीय सूर्य आदि पदार्थों का (**अश्वहयः**) चलाने वाला है (**सः**) वह जगत् का पालक परमेश्वर (**ऋषिः**) सबका द्रष्टा (**मनुः**) ज्ञानमय तथा (**विप्रस्य**) मेधावी का (**हितः**) हितकारी (**सखः**) सखा है और (**यावयत्**) सबके दुःखों को दूर करता है और उन्हें सुखों से संयुक्त करता है ।

भावार्थः—जगत् का पालक परमेश्वर हमारे यज्ञों का पूरक और रमणीय सूर्य आदि पदार्थों का चलाने वाला है । वह सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, मेधावी पुरुष का हितकारी सखा है । वह दुःखों को दूर करताहै और सुखों से संयुक्त करता है ॥५॥

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६॥

पदार्थः–(**आधीषमाणायाः**) सब प्रकार से घृत, (**शुचायाः**) सत्व गुण वाली प्रकृति (**च**) और (**शुचस्य**) ज्ञान गुण वाले जीव का वह पालक परमेश्वर (**पतिः**) स्वामी है । (**अवीनाम्**) भेड़ों के ऊन से जैसे (**वासोवायः**) ऊनी वस्त्रों का बनाने वाला वस्त्रों को बनाकर (**वासांसि**) वस्त्रों को (**मर्मृजत्**) साफ स्वच्छ रखता है वैसे ही वह प्रभु प्रकृति परमाणुओं से अपने द्वारा बनाये गये शरीररूपी वस्त्रों को स्वच्छ साफ बनाता है ।

भावार्थः—वह परमेश्वर जीव और प्रकृति का धारक तथा स्वामी है जिस प्रकार ऊनी वस्त्र बनाने वाला (अवी) भेड़ के ऊन से स्वच्छ वस्त्र बनाता है वैसे ही वह प्रभु भी (अवी) प्रकृति परमाणुओं से जीव के शरीर रूपी वस्त्रों को स्वच्छ बनाता है ॥६॥

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७॥

पदार्थ–(**इनः**) स्वामी पूषा (**वाजानाम्**) धनों का (**पतिः**) पालक है, (**इनः**) प्रभु वह (**पुष्टीनाम**) समस्त पुष्टियों का सखा है (**अदाभ्यः**) किसी से भी न दबाया जाने वाला (**यः**) जो पूषा (**हर्यतः**) घास आदि से हरियाली युक्त जगत् के (**श्मश्रु**) घास, औषध वृक्ष आदि को (**वृथा**) अनायास (**प्रवि दूधोत**) प्रचण्ड वायु वेग आदि से कम्पायमान कर देता है ।

भावार्थः—परमेश्वर समस्त धनों और समस्त पुष्टियों का स्वामी और पालक है । वह बड़ा शक्तिशाली है और वायु के वेग आदि माध्यमों से जगत् के घास वृक्ष आदि सभी को हिला देता है ॥७॥

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८॥

पदार्थः—(**पूषन्**) हे जगत् के पालक परमेश्वर ! (**विश्वस्य**) सब (**अर्थिनः**) याचकों का तू (**सखा**) सखा है, (**सनोजाः**) सदा से विद्यमान अनादि और (**अनपच्युतः**) अपने अधिकारों से युक्त है (**ते**) तेरे (**रथस्य**) विश्वरूपी रथ के (**धुरम्**) धुरा को (**अजाः**) समस्त गतिशील भौतिक शक्तियां (**आ ववृत्युः**) आवर्त्तित करती हैं ।

भावार्थः–हे जगत् के पालनकर्त्ता परमेश्वर ! आप अनादि सर्वशक्तिमान् हैं और प्रार्थियों के मित्र हैं आपके इस विश्वरूपी रथ को समस्त गतिशील भौतिक शक्तियां आवर्त्तित करती अर्थात् चलाती हैं ॥८॥

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥९॥

पदार्थः—(**माहिनः**) महान् (**पूषा**) जगत् का पालक परमेश्वर (**ऊर्जा**) बल से (**अस्माकम्**) हमारे (**रथम्**) शरीर रूपी रथ की (**अविष्टु**) रक्षा करे, (**वाजानाम्**) अन्नों का (**वृधः**) बर्धक (**भुवद्**) होवे (**नः**) हमारी (**इमम्**) इस (**हवम्**) पुकार को (**शृणवत्**) सुने ।

भावार्थः—जगत् का पालक भगवान् सभी धनों का महान् स्वामी है। वह हमारे शरीररूपी रथ की बल से रक्षा करे। वह अन्नों का वर्धक हो और हमारी इस पुकार को सुने ॥६॥

यह दशम मण्डल का छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २७

ऋषिः—१—२४ वसुक्र ऐन्द्रः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्द**—१, ५, ८, १०, १४, २२ त्रिष्टुप् । २, ९, १६, १८ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ११, १२, १५, १९-२१, २३ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७, १३, १७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २४ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः** - धैवतः ॥

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥१॥

पदार्थः—(**जरितः**) हे स्तोतः (**मे**) मेरा (**सु**) शोमन (**सः**) वह (**अभिवेगः**) कार्य (**असत्**) है (**यत्**) जो कि (**सुन्वते**) यज्ञ करने वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**शिक्षम्**) अभिलषित वस्तु प्रदान करता हूँ (**अहम्**) मैं इन्द्र=परमेश्वर (**अनाशीर्दाम्**) बुरा चाहने वाली (**सत्यध्वृतम्**) सत्य के विघातक, (**वृजिनायन्तम्**) पाप में लगी (**आभुम्**) व्यापक प्रवृत्ति का (**प्रहन्ता**) मारने वाला (**अस्मि**) हूँ ।

भावार्थः—हे स्तुति करने वाले मनुष्य ! यह मेरा कार्य है कि मैं यज्ञ करने वाले यजमान के अभिलषित को प्रदान करता हूं। मैं परमेश्वर बुरा चाहने वाली सत्य विघातक, पाप में लगी व्यापक प्रवृत्ति नष्ट करने वाला हूं ॥१॥

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

पदार्थः—हे स्तोतः (**यदि**) यदि (**अहम् इत्**) मैं ही (**तन्वा**) शरीर से (**शूशुजानान्**) अति पुष्ट और आत्मा से कमजोर (**अदेवयून्**) यज्ञ आदि उत्तम कर्म न करने वालों को (**युधये**) उनसे युद्ध करने के लिए (**संनयानि**) एकत्र करूं तब तो (**ते**) तुम्हारे लिए (**तुम्रम्**) बली (**तीव्रम्**) तीक्ष्ण (**वृषभम्**) सूर्य को (**पचानि**) पकाऊं और (**अमा**) साथ ही (**पञ्चदशम्**) चन्द्रमा को (**सुतम्**) सोम से (**निषिञ्चम्**) सेचन करूं ।

भावार्थः हे स्तावक ! यदि शरीर से बली और आत्मा से कमजोर इन उत्तम कर्म न करने वालों से युद्ध करने के लिए मैं ही इन्हें उद्यन करूं तो इसका यह तात्पर्य है कि मैं महान् सूर्यको और सन्तप्त करूं तथा चन्द्रमा को सोम से सिक्त करूं ॥२॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३॥

पदार्थः—(**अदेवयून्**) यज्ञ आदि न करने वालों को (**समरणे**) संग्राम में (**जघन्वान्**) मैंने मारा (**इति**) ऐसा (**यः**) जो (**ब्रवीति**) कहता है (**अहम्**) मैं (**न**) नहीं (**वेद**) जानता हूँ, (**यत्**) चूंकि (**ऋघावत्**) हिंसादि से युक्त (**समरणम्**) संग्राम को (**अवाख्यत्**) देखता हूँ (**आत् इत्**) तभी (**मे**) मेरे (**वृषभा**) बलयुक्त कर्मों का (**प्र ब्रुवन्ति**) वर्णन करते हैं ।

भावार्थः—यज्ञ आदि न करने वालों को मैं भगवान् संग्राम में मारता हूं, ऐसा यदि कोई कहता है तो मैं उसे नहीं जानता हूं। चूंकि जगत् में हिंसा आदि से युक्त ऐसे संग्राम को देखता हूं अतः लोग इस महान् कर्म को मेरा कर्म वर्णन करते हैं ॥३॥

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब मैं (**अज्ञातेषु**) लोगों को नहीं ज्ञात है ऐसे (**वृजनेषु**) संग्रामों में (**आसम्**) लगा होता हूँ तब (**विश्वे**) समस्त (**मघवानः**) ऐश्वर्यशाली

(**ऋषयः**) जगत् के कारण (**सतः**) सत्ताधारी (**मे**) मेरे (**आसन्**) हैं (**वा इत्**) और (**क्षेमे**) जगत् के पालन में (**आ सन्तम्**) लगे हुए (**आभुम्**) व्यापक प्रकृति को (**जिनामि**) काबू में रखता हूँ (**तम्**) उसको (**पादगृह्य**) कदम-कदम पर (**पर्वते**) श्रेणीबद्ध जगत् में (**प्रक्षिणाम्**) परिवर्त्तित करता हूँ ।

भावार्थः—जो लोगों को ज्ञात नहीं ऐसे विश्व-रचना सम्बन्धी संग्रामों में समस्त ऐश्वर्यशाली कारण मेरे साथ और मेरे नियन्त्रण में रहते हैं। मैं समस्त कार्यों में व्यापक प्रकृति को जगत् की रक्षा में कदम-कदम पर श्रेणीबद्ध कार्य जगत् के रूप में परिवर्त्तित करता हूं ॥४॥

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥

पदार्थः—(**नं**) निश्चय ही (**वृजने**) इस संसार की रचना आदि के कार्य में (**माम्**) मुझे (**न उ**) कोई नहीं (**वारयन्ते**) हटा सकते हैं (**यद्**) जो मैं (**मनस्ये**) चाहता हूँ उसे (**पर्वतासः**) पर्वत भी (**नः**) नहीं रोक सकता है,(**मम**) मेरे (**स्वनात्**) विद्युद् के गर्जन आदि शब्दों से (**कृधु कर्णः**) कान से कम सुनने वाला भी (**भयाते**) डरता है (**एव इत्**) इसी प्रकार (**अनुद्यून्**) प्रतिदिन (**किरणः**) रश्मियों से युक्त सूर्य भी (**सम् एजात्**) चला करता है ।

भावार्थः—मैं इस संसार की रचना के कार्य को जैसा उचित है करता हूं। इसमें पर्वत जैसी महान् शक्तियां भी न मुझे रोक सकती हैं और न कोई हस्तक्षेप कर सकती हैं। मेरी विद्युत्सम्बन्धी गर्जना से कम सुनने वाला भी डर जाता है। सूर्य भी मेरी शक्ति से चलता है ॥५॥

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६॥

पदार्थः—(**अत्र**) इस जगत् में (**शृतपान्**) भोगों को भोगने वाले (**अनिन्द्रान्**) अयुक्त कर्म में लगे हुए (**बाहुक्षदः**) बाहुओं से दूसरों को पीड़ित करने वाले (**शरवे**) हिंसा पर (**पत्यमानान्**) टूट पड़ने वाले लोगों को (**नु**) शीघ्र (**दर्शन्**) देखता हूं, (**एषु**) इनके (**अधि**) ऊपर तथा (**घृषुम्**) महान् (**वा**) और (**सखायम्**) हितकारी की जो (**निनिदुः**) निन्दा करते हैं (**उ**) उन सब पर (**पवयः**) दण्ड देकर पवित्र करने वाले कार्य (**ववृत्युः**) चालू रहते हैं।

भावार्थः—इस संसार में अयुक्त कर्म करने वाले, केवल भोग में लगे हुए और हिंसक वृत्ति वाले, दूसरों को पीड़ा देने वाले हितकारी की भी निन्दा करने वाले लोगों पर मेरा दण्डकार्य उनके सुधारने के सिए चालू रहता है ॥६॥

अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७॥

पदार्थः—हे इन्द्र=प्रभो ! तू (**अभूः उ**) अनादि है, अजन्मा है (**औक्षीः**) प्रत्येक सर्ग में जगत् के बीज को तू ही बोता है, (**आयुः**) जगत् की आयु को तू ही (**आनट्**) देता है, (**पूर्वः**) पहले विद्यमान और पूर्ण ही (**दर्षत् नु**) वही शीघ्र विदारण करने में समर्थ होता है, (**अपरः**) दूसरा परकालीन कोई (**नु**) नहीं (**दर्षत्**) विदारण कर सकता है, (**पवस्ते**) विस्तृत भी (**द्वे**) द्यु और पृथिवी लोक (**तम्**) उस तुझको (**न**) नहीं (**परिभूतः**) ढांप सकते (**यः**) जो (**अस्य**) इस (**रजसः**) संसार के (**पारे**) पार भी (**विवेष**) व्यापक हो रहा है ।

भावार्थः—भगवान् अजन्मा और अनादि है। वही जगत् का समय निर्धारित करता और समय पर जगत् के लिए बीज बोता है। जो पूर्ववर्ती और पूर्ण है वही कठिनाइयों के विदारण में समर्थ है और दूसरा कोई नहीं। ये द्यु और पृथिवी लोक भी परमेश्वर को ढ़क नहीं सकते हैं क्योंकि वह जगत् के बाहर भी व्यापक हो रहा है ॥७॥

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८॥

पदार्थः—(**सहगोपाः**) गोपालक के साथ (**चरन्तीः**) चरती हुई (**प्रयुताः**) एक साथ रहने वाली गायें जिस प्रकार (**यवम्**) यव, घास आदि को (**अक्षन्**) खाती हैं वैसे ही जीव संसार में एकत्र हुए अपने कर्मों के फलानुसार फल भोगते हैं, (**अर्यः**) स्वामी मैं (**ताः**) उन सबको (**अपश्यम्**) देखता हूँ, वे (**अर्यः**) स्वामी के (**अभितः**) चारों तरफ (**हवाः इव**) बुलाये हुए से (**सम् आयन्**) एकत्र हो जाते हैं (**आसु**) उनमें (**स्वपतिः**) स्वामी ने (**कियत्**) कितनी (**छन्दयाते**) स्वतन्त्रता दी है ।

भावार्थः - जिस प्रकार गायें अपने पालक के साथ चरती हुई एक साथ यव, घास आदि को खातो हैं वैसे ही समस्त जीव अपने पालक भगवान् के नियन्त्रण में अपने कर्मफल का संसार में एकत्र हो भोग करते हैं। भगवान् उनको देखता है। वे जीव बुलाये हुए के समान प्रलय काल में अपने प्रभु के आस-पास एकत्र होते हैं। उन्हें सबके स्वामी भगवान् ने कर्म-स्वतन्त्रता दी है ॥८॥

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥९॥

पदार्थः—(**यत्**) क्योंकि (**जनानाम्**) जीवों में (**वयन्**) हम सब (**यवसादः**) भोग को भोगने वाले हैं, (**उर्वज्रे**) महान् आकाश अथवा हृदयाकाश के (**अन्तः**) अन्दर विद्यमान लोग (**यवादः**) संयोग वियोग से गृहीत हैं (**अत्र**) इस शरीर में (**युक्तः**) समाहितचित्त होकर (**अवसातारम्**) उस प्रभु को (**इच्छात्**) चाहा करे (**अथो**) और वह (**ववन्वान्**) दाता प्रभु (**अयुक्तम्**) अयोगी को भी (**युनजत्**) योग में लगाता है ।

भावार्थः—चूंकि हम इस जगत् में जन्मधारी हैं और कर्मफल को भोग रहे हैं। आकाश अथवा हृदयाकाश में विद्यमान हम संयोग-वियोग से ग्रस्त हैं। इस शरीर में रहते समाहित चित्त होकर मनुष्य भगवान् को चाहे। दाता प्रभु अयोगी को भी योग में प्रवृत्त कर सकता है ॥९॥

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥१०॥

पदार्थः—हे जीव ! (**अत्र इत् उ**) यहां ही (**मे**) मेरे (**उक्तम्**) कहे हुए को (**सत्यम्**) सत्य (**मंससे**) समझ (**यत्**) जो (**द्विपात्**) दो पांवों वाला (**च च**) और भी जो (**चतुष्पत्**) चार पावों वाला जीवजगत् हैं उसको मैं (**संसृजानि**) उत्पन्न करता हूँ (**अत्र**) इस जगत् में (**यः**) जो (**स्त्रीभिः**) स्त्रियों के साथ (**वृषणम्**) भोग भावना से इन्द्रिय को (**पृतन्यात्**) इस युद्ध में लगा रखता है और निरन्तर भोग में ही पड़ा रहता है (**अयुद्धः**) उससे विना युद्ध किये ही (**अस्य**) उसके (**वेदः**) प्राप्तव्य फल को (**विभजानि**) देता हूँ।

भावार्थः—हे जीव यह जो मेरा कथन है उसे सत्य मान। जगत् में दो पैर वाले और चार पैर वाले जीवजगत् को मैं बनाता हूं। जो इस जगत् में मानवशरीर में आकर कामिनियों के साथ भोग के युद्ध में ही लगा रहता है उसके किये का फल मैं विना युद्ध किये ही समय पर प्रदान करता हूं ॥१०॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुंचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥११॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस मेरे अधीन (**अनक्षा**) अन्धी=ज्ञानरहित (**दुहिता**) मेरे गुण, कर्म स्वभाव से भिन्न प्रकृति (**जातु**) प्रलय काल में (**आस**) रहती है, (**ताम्**) उसे (**कः**) मुझसे अतिरिक्त कौन (**विद्वान्**) पूर्णतः जानता है मेरे से अतिरिक्त कौन (**अन्धाम्**) उस अन्धी प्रकृति को (**अभि मन्याते**) सर्वतः स्वीकार कर धारण कर सकता है ? (**कतरः**) कौन है जो (**तम्**) प्रसिद्ध उस (**मेनिम्**) वज्र को (**प्रति मुंचाते**) छोड़ता है ? (**यः**) जो (**ईम्**) इसे (**वहाते**) धारण करता है (**वा**) और जो (**ईम्**) इसे (**वरेयात्**) स्वीकार करता है ।

भावार्थः परमेश्वर वस्तुतः वह प्रमुख शक्ति है जिसके नियन्त्रण में ज्ञानहीन प्रकृति है। कोई भी उस प्रभु के अतिरिक्त इसे पूर्णतया न जान सकता है और न इसका धारण ही कर सकता है। बिजली जो मेघ से आती है उसे भी वही प्रभु छोड़ता है जिसने उसको धारण कर रखा है ॥११॥

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥१२॥

पदार्थः—(**कियती**) कितनी (**योषा**) स्त्रियां हैं जो (**वधूयोः**) वधू की कामना करने वाले (**मर्यतः**) मनुष्य के (**पन्यसा**) प्रशंसायुक्त वचन और (**वार्येण**) धन से (**परिप्रीता**) सन्तुष्ट हो जाती हैं, वास्तविक रूप में (**भद्राः**) उत्तम (**वधूः**) वधू वही (**भवति**) होती है (**यत्**) जो (**सुपेशाः**) उत्तम रूप वाली है और (**सा**) वह (**जने चित्**) लोगों के बीच (**मित्रम्**) अपने सहयोगी को (**स्वयम्**) स्वयं ही (**वनुते**) चुनती है ।

भावार्थः—प्रकृति और पुरुष का प्रसंग होने से प्रसंगवश स्त्री पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि कितनी स्त्रियां ऐसी होती हैं जो पुरुष के वचन और धन से सन्तुष्ट होती हैं। उत्तम वधू वही है जो सुरूपा है और लोगों के मध्य अपने जीवनसाथी को स्वयं चुनती है ॥१२॥

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥१३॥

पदार्थः—(**पत्तः**) व्यापक इन्द्र परमेश्वर (**जगम्**) जगत् को निगलता है प्रलय काल में (**प्रत्यञ्चम्**) कार्यरूप के उल्टे कारणरूप में हो जावे ऐसा (**अत्ति**) ग्रहण करता है (**शिरः**) प्रकृति में शीर्ण (**वरूथम्**) परमाणु समूह को (**शीर्ष्णा**) उत्तम भाग आकाश में (**प्रति दधौ**) धारण करता है, वह प्रलय करते समय (**ऊर्ध्वाम्**) ऊपर के लोकों के रूप में विद्यमान प्रकृति को (**उपसि**) समीप में (**आसीनः**) स्थित हुआ (**क्षिणाति**) क्षीण करता है और (**उत्तानाम्**) उत्तान भूमि को (**न्यङ्**) नीचे से (**अनु एति**) उसका अनुगामी बनाता है अर्थात् क्षय करता है।

भावार्थः– व्यापक परमेश्वर प्रलयकाल में जगत् को निगल जाता है और कार्य्य को कारण रूप में ग्रहण करता है। प्रकृति के परमाणु पुंज को आकाश में धारण करता है। प्रलय करते समय ऊपर विद्यमान लोकों और भूमि को क्षीण करता है ॥१३॥

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥

पदार्थः—(**बृहत्**) महान् (**अच्छायः**) अन्धकाररहित, (**अपलाशः**) विनाशरहित (**अर्वा**) सब को गति देने वाला, (**माता**) जगत् का निर्माता (**विषितः**) व्यापक होकर (**तस्थौ**) स्थित है वह (**गर्भः**) ग्रहण करने वाला है और (**अत्ति**) जगत् को ग्रहण कर लेता है, (**अन्यस्याः**) अपने से भिन्न प्रकृति के (**वत्सम्**) वत्स इस जगत् को (**रिहती**) चाटन करती हुई (**धेनुः**) भगवान् रूपी शक्ति (**मिमाय**) सृष्टि काल में पुनः निर्मित करती है, (**कया**) सुखमय (**भुवा**) उत्पत्ति से (**ऊधः**) जगत् को (**नि दधे**) धारण करती है।

भावार्थः—परमेश्वर महान्, अविनाशी और सबको गति देने वाला है। वही सबका निर्माता है। प्रलयकाल में वह जगत् को समेट कर ग्रहण करता है। प्रकृति के कार्य इस जगत् को अपने में लेकर पुनः सर्गकाल में निर्मित करता है और सुखमयी उत्पत्ति से इसे पुनः धारण करता है। अर्थात् जगत् का प्रवाह सृष्टि और प्रलयरूप से चलता अनादि है ॥१४॥

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चात्तात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥१५॥

पदार्थः—(**सप्त**) सात (**वीरासः**) प्रकृति विकृति रूपी कार्य उस इन्द्र के द्वारा नियन्त्रित प्रकृति के (**अधरात्**) अधर भाग से (**उदायन्**) उत्पन्न होते हैं, (**ते**) वे (**अष्ट**) आठ अर्थात् आठ वसु (**उत्तरात्तात्**) उत्तर भाग से (**समजग्मिरन्**) उत्पन्न होते हैं (**स्थिविमन्तः**) स्थानवाले (**नव**) नव इन्द्रिय द्वारा (**पश्चात्तात्**) पश्चात् (**आयन्**) उत्पन्न हुए, (**दश**) दश प्राण (**प्राक्**) आगे से उत्पन्न (**अश्नः**) वायु के (**सानु**) ऊपर आकाश में (**वि तिरन्ति**) विचरते हैं और वृद्धि प्रदान करते हैं।

भावार्थः– शक्तिशाली भगवान् के नियन्त्रण में रहती हुई प्रकृतिरूपी सामग्री से उसके चारों तरफ से सात प्रकृति विकृतियें, आठ वसु, नव शरीर द्वार और दश प्राण वा इन्द्रियां आदि उत्पन्न होते हैं और प्राण आकाश में स्थिति पाते हैं ॥१५॥

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥१६॥

पदार्थः (**दशानाम्**) दश प्राणों वा इन्द्रियों के बीच में (**एकम्**) एक (**समानम्**) सबके साथ तदनुरूप होने वाले (**तम्**) उस (**कपिलम्**) ज्ञान वाले अथवा प्रेरक आत्मा को (**पार्याय**) क्रमबद्ध (**क्रतवे**) अनुभूति और क्रिया के लिए (**हिन्वन्ति**) प्रकृति और परमेश्वर की शक्तियां प्रेरित करती हैं, (**वक्षणासु**) प्रकृतिस्थ सूक्ष्म परमाणुओं में (**सुषितम्**) स्थापित (**अवेनन्तम्**) न चाहने वाले (**गर्भम्**) गर्भ को (**तुषयन्ती**) प्रीता (**माता**) प्रकृति (**बिभर्त्ति**) धारण करती है।

भावार्थः - दश प्राणों और इन्द्रियों के मध्य एक सब के प्रति समान होने वाले ज्ञान और गति दाता जीव को क्रमबद्ध अनुभूति और कर्म के

लिए भगवान् और प्रकृति की शक्तियां प्रेरित करती हैं । मातारूपी प्रकृति परमाणुओं में स्थित न चाहने वाले गर्भ को तुष्ट हो धारण करती है।।१६।।

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥१७॥

पदार्थः (**वीराः**) प्राण (**पीवानम**) स्थूल (**मेषम**) जीवयुक्तदेह को (**अपचन्त**) परिपक्व करते हैं, (**दीवे**) रमणीय शरीर में (**न्युप्ताः**) डाले गये (**अक्षाः**) इन्द्रिय गोलक (**अन्वासन्**) अनुरूप हो जाते हैं, (**पुनन्ता**) पवित्र करने वाले (**पवित्रवन्ता**) ऊष्मा को धारण किये हुए (**द्वे**) प्राण और अपान (**धनुम**) धनु के समान (**वृहतीम**) बढाने वाली प्रकृति की (**अप्सु**) सूक्ष्म प्राकृतिक जल परमाणुओं के (**अन्तः**) अन्तराल में (**चरतः**) परिचर्या करते हैं ।

भावार्थः—प्राण जीवात्मयुक्त उस स्थूल देह को परिपक्व करते हैं। इन्द्रिय गोलक उसमें अनुरूपता धारण करते हैं और प्राण तथा अपान रूपी दो शक्तियाँ ऊष्मा से युक्त हुई वृद्धिशाली प्रकृति के गर्भ की प्रकृति के सूक्ष्म जल परमाणुओं के मध्य परिचर्या करती हैं ।।१७।।

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥१८॥

पदार्थः--(**विक्रोशनासः**) प्रभु को पुकारते हुए (**विष्वञ्चः**) विविध मार्गों वाले जीव (**आयन्**) इस संसार में आते हैं, (**नेमः**) एकाध तो (**पचाति**) तप आदि करते हैं दूसरा (**अर्धः**) आधा (**नहि**) नहीं (**पक्षत्**) तप करता है (**सविता**) सबका प्रेरक (**अयम्**) इस (**देवः**) देव ने (**तत्**) यह (**आह**) कहा है कि (**द्र्वन्नः**) काष्ठ को खाने वाला (**इत्**) और (**सर्पिरन्नः**) घी को खाने वाला अग्नि (**वनवत्**) हवि आदि का भोक्ता होता है ।

भावार्थः - प्रभु को पुकारते हुए विविध मार्गों वाले जीव इस संसार में आते हैं । एकाध यज्ञ तप आदि करते हैं और दूसरे नहीं करते हैं । सबके प्रेरक परमेश्वर ने यह कहा है कि काष्ठ और घी को अन्नवत् खाने वाला अग्नि हवि का भोक्ता है । उसे हवि दी जानी चाहिए ॥१८॥

अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

पदार्थ (**अचक्रया**)स्वयं कार्य न करने वाली जड़ (**स्वधया**) प्रकृति के साथ वर्तमान और (**आरात्**) अनादि काल से (**ग्रामम्**) भूतसंघ को (**वहमानम्**) वहन करते हुए उस प्रभु को (**अपश्यम्**) मैं जानूं वह (**नवीयान्**) स्तुत्य, (**अर्यः**) स्वामी (**सद्यः**) सदा (**शिश्ना**) दुःखदायी कारणों का (**प्रमिनानः**) नाश करने वाला (**जनानाम्**) लोगों के (**युगा**) जोड़ों को (**प्रसिसक्ति**) उत्पन्न करता और मिलाता है ।

भावार्थः--भगवान् विना क्रिया वाली प्रकृति के साथ विद्यमान है । वह अनादि काल से भूतग्राम का परिवहन कर रहा है । उसको मैं जानूँ । वह शीघ्र ही दुःखद कारणों का नाश करने वाला है और संसार में लोगों के जोड़ों को जोड़ता है ।।१९।।

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥

पदार्थः—(**प्रमरस्य**) मरणधर्मा (**मे**) मुझ मनुष्य के (**एतौ**) ये (**गावौ**) प्राण और अपान (**युक्तौ**) देह में जुड़े हैं उन्हें (**मो**) मत (**सु**) सुष्ठुरूप से (**प्रसेधीः**) दूर कर (**मुहुः इव**) वार वार (**ममन्धि**) जोड़ (**अस्य**) इस जीव के (**आपः**) सूक्ष्म शरीर (**चित्**) ही (**अस्य**) इसके (**अर्थम्**) उद्देश्य तक (**वि नशन्ति**) पहुँचाते हैं, वह प्रभु (**सूरः च**) सूर्य के समान (**मर्कः**) जगत् का शोधक और (**उपरः**) मेघ के समान पदार्थों का दाता (**बभूवान्**) है ।

भावार्थः--भगवान् सूर्य के समान शोधक और मेघ के समान दाता है। वह मरणधर्मा इस मनुष्य के प्राण और अपान को शरीर में जुड़ा रखे, दूर न करे। जीव सूक्ष्मशरीर से ही उसके प्राप्तव्य स्थान तक पहुँचते हैं ॥२०॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**यः**) जो (**वज्रः**) वज्र=दुःखों का वारक वज्र

(पुरुधा) बहुत जीवों को धारण करने में समर्थ (**विवृत्तः**) विविध प्रकार से वर्त्त रहा है वह (**सूर्यस्य**) सूर्य के समान तेजस्वी (**बृहतः**) महान् प्रभु के (पुरीषात्) ऐश्वर्य से (**अवः**) प्राप्त होता है (**एना**) इससे (**परः**) उत्कृष्ट (**अन्यत्**) दूसरा भी (**श्रवः**) श्रवणीय (**इत् अस्ति**) है (**तत्**) उसको (**अव्यथी**) बाधा आदि से रहित (**जरिमाणः**) स्तावक (**तरन्ति**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ –यह जो दुःखों का निवारक वज्र चल रहा है वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के ऐश्वर्य से चल रहा है । इससे बढ़कर दूसरा ऐश्वर्य भी प्रभु का है जिसे स्तुति करने वाले प्राप्त करते हैं ॥२१॥

वृक्षेवृ॑क्षे नियं॑ता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पं॑तान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

पदार्थ—(**वृक्षे वृक्षे**) प्रत्येक धनुष पर (**नियता**) चढी हुई (**गौ**) डोर (**मीमयत्**) टंकार करती है (**ततः**) उस धनुष से (**वयः**) वाण (**पुरुषादः**) लोगों को खाने के लिए (**प्रपतान्**) गिरते हैं (**अथ**) और (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) लोक (**इन्द्राय**) इन्द्र के लिए (**सुन्वत्**) यज्ञ करते हुए (**च**) और (**ऋषये**) वेदज्ञ को (**शिक्षत्**) दक्षिणा आदि देते हुए भी (**भयाते**) डरता है ।

भावार्थः – प्रत्येक धनुष पर प्रत्यंचा चढी हुई टंकार मारती है और जीवों को खाने के लिए वाण उस धनुष से गिर रहे हैं । **यज्ञ** करते हुए और वेदज्ञ को दान आदि देते हुए भी यह समस्त लोक डरता है । जगत् में प्रभु की न्यायव्यवस्था बड़ी शक्तिशाली है ॥२२॥

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३॥

पदार्थ – (**देवानाम्**) दिव्य पदार्थों के (**माने**) निर्माण काल में (**प्रथमा**) मुख्य रूप से कारणरूप देव पदार्थ (**अतिष्ठन्**) रहते हैं (**एषाम्**) इनके द्वारा (**कृन्तत्रात्**) छेदन भेदन से (**उपरा**) मेघ (**उद् आयन्**) उत्पन्न होते हैं । पश्चात् (**त्रयः**) तीन तत्व अग्नि, वायु, सूर्य (**अनूपाः**) अनुकूल होकर (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**तपन्ति**) तप्त करते हैं उनमें से (**द्वा**) दो वायु और सूर्य (**पुरीषम्**) सबके प्यारे (**बृबूकम्**) जल को (**वहतः**) सूर्यमण्डल की ओर धारण करते हैं ।

भावार्थः-दिव्य पदार्थों के निर्माण के समय कारणस्थ दिव्य पदार्थ मुख्यरूप में विद्यमान रहते हैं । उन्हीं के द्वारा होने वाले संयोग वियोगसे मेघ उत्पन्न होते हैं । पश्चात् अग्नि,वायु और सूर्य ये तीनों भूमि को संन्तप्त करते हैं । उनमें से वायु और सूर्य जल को खींचकर आकाश में धारण करते हैं ॥२३॥

सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥२४॥

पदार्थ – (**ते**) उस सूर्य की (**सा**) वह शक्ति (**जीवातुः**) जीवनदात्री है (**उत**) और (**तस्य**) उसके (**एतादृक्**) ऐसे स्वरूप को (**विद्धि**) जानो, (**समर्ये**) इस संसार में (**मा**) मत (**अपगूहः**) छिपाओ, (**निर्णिजः**) सबके शोधक सूर्य का (**सः**) वह (**पादुः**) गमन (**स्वः**) सब त्रिलोकी को (**आविः**) प्रकाशमान (**कृणुते**) करता है, (**बुसम्**) पानी को (**गूहते**) ग्रहण करता है, गमन को (**न**) नहीं (**मुच्यते**) त्यागता है ।

भावार्थः—सूर्य की यह शक्ति जीवनदात्री है । उसको जानना चाहिए । इस जगत् में उसे भूलना नहीं चाहिए । समस्त वस्तुओं को शुद्ध करने वाले उस सूर्य की गति समस्त त्रिलोकी को प्रकाशित करती है । जल को किरणों द्वारा अपने पास ले जाती है । वह इस गति को कभी छोड़ता नहीं है ॥२४॥

यह दशम मण्डल का सताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२८

ऋषिः—१—१२ इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः ॥ **देवता** – इन्द्रः ॥ **छन्दः** १, २, ७, ८, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, १० विराट्त्रिष्टुप् । ६,११ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥१॥

पदार्थः –(**हि**) घृ ।क (**विश्वः**) सभी (**अन्यः**) दूसरे (**अरिः**) स्वामी (**आजगाम**) इस सभा गृह में आ गए, (**अह**) आश्चर्य है कि (**मम**) मेरा (**श्वशुरः**) मुख्य नायक (**न**) नहीं (**आजगाम**) आया, यह ठीक नहीं, वह आवे (**धानाः**) भुने धानों को (**जक्षीयात्**) खावे (**उत**) और (**सोमम्** उत्तम पेय रस (**पपीयात्**) पीवे (**पुनः**) फिर (**सु आशितः**) अच्छी प्रकार खाया पीया होकर (**अस्तम्**) गृह को जावे ।

भावार्थः –दूसरा स्वामी जो राजा से अन्य है सभा में आ जावे और राजा जो पूज्य है न आवे तो आश्चर्य की बात होती है। यह व्यवस्था ठीक नहीं। वह आवे खाद्य वस्तुओं को खावे पेय वस्तु पीवे और सन्तुष्ट हुआ पीछे घर वापस जावे ॥१॥

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥२॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**तिग्मशृङ्गः**) तीक्ष्ण अस्त्र वाला (**वृषभः**) समस्त सुखों को प्रजा पर बरसाने वाला मैं राजा (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**वरिमन्**) बड़े (**वर्ष्मन्**) विस्तीर्ण प्रदेश पर (**आ तस्थौ**) स्थित हाता हूँ। (**यः**) जो (**सुतसोमः**) सोम आदि पदार्थों को तैयार कर (**मे**) मेरी (**कुक्षी**) कुक्षी को (**पृणाति**) पूर्ण करता है (**एतम्**) इसकी (**विश्वेषु**) समस्त (**वृजनेषु** संग्रामों में (**पामि**) रक्षा करता हूं ।

भावार्थ तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों वाला, प्रजा पर सुख की वर्षा करने वाल! राजा पृथिवी के विस्तृत क्षेत्र पर बैठा शासन करता है। जो सोम आदि पदार्थों से उसकी सेवा करता है उसे कठिन से कठिन संग्रामों और आपत्तियों में बचाया करता है ॥२॥

अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥३॥

पदार्थः –(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**ते**) तेरे लिए (**मन्दिनः**) हर्षदायक (**तूयान्**) शीघ्र पचने वाले (**सोमान्**) सोम आदि ओषधियों को (**अद्रिणा**) पाषाण आदि के साधनों से (**सुन्वन्ति**) वैद्यजन तैयार करते हैं, (**एषाम्**) इन सोम आदिकों को (**त्वम्**) तू (**पिबसि**) पीता है, हे धन के स्वामिन् ! (**पृक्षेण**)

स्नेह से (**हूयमानः**) बुलाये गए आप (**ते**) वे वैद्यजन (**वृषभान्**) वृषभ नाम की बलदायक ओषधियों को (**पचन्ति**) पकाते हैं (**तेषाम्**) उनकी इन ओषधियों को (**अत्सि**) खाते हो ।

भावार्थः –हे राजन् ! प्रेम से बुलाये गए आप वैद्य जनों द्वारा तैयार किये गये सोम आदि औषध और उनके द्वारा पकाये गये बलदायक 'वृषभ' नामक औषध को पीते और खाते हो ॥३॥

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

पदार्थः –(**जरितः**) हे प्रशंसक ! तू (**मे**) मेरे (**सु**) उत्तम (**इदम्**) इस प्रभाव को (**आ चिकिद्धि**) भली प्रकार जान जिस प्रकार (**नद्यः**) नदियें (**प्रतीपम्**) उल्टे (**शापम्**) जल को (**वहन्ति**) बहाती हैं, उसी प्रकार (**लोपाशः**) घास खाने वाला मृग मेरे द्वारा प्रेषित हो (**प्रत्यञ्चम्**) उसके प्रति आने वाले (**सिंहम्**) सिंह का (**अत्साः**) मुकाबला करता है, (**क्रोष्टा**) शृगाल (**वराहम्**) बलवाले सूकर को भी (**कक्षात्**) गहन प्रदेश से (**निरक्त**) भगा देता है ।

भावार्थः – हे प्रशंसक ! तू मेरे इस प्रभाव को भली प्रकार जान। जिस प्रकार नदियें प्रतिकूल पानी को बहाती हैं वैसे मेरे इस प्रभाव से मृग सिंह पर आक्रमण करता है और शृगाल वलवान् शूकर (सुअर) को भगा देता है ॥४॥

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५॥

पदार्थः— **मघवन्**) हे धन के स्वामी अथवा यज्ञ करने वाले राजन् ! (**गृत्सस्य**) प्रशंसनीय, (**तवसः**) शक्तिशाली (**ते**) तेरे (**मनीषाम्**) मनोरथ और (**एतत्**) इस प्रभाव को (**पाकः**) परिपक्व बुद्धि वाला भी (**अहम्**) मैं (**कथा**) किस प्रकार (**आ चिकेतम्**) जान सकूं, (**विद्वान्** , जानकार (**त्वम्**) तू (**ऋतुथा**) समय समय पर (**नः**) हमें (**विवोचः**) बता, तेरे (**यम्**) जिस (**अर्धम्**) अंश की प्रशंसा करता हूँ वह (**क्षेम्या**) क्षेमकारक (**धूः**) आश्रय है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तेरी आकाँक्षाओं और प्रभाव को परिपक्व-बुद्धि भी मैं नहीं जान सकता। जानकार तू ही समय-समय पर उसकी

घोषणा करता है। तुम्हारे जिस अंश की मैं प्रशंसा करता हूं वह ही पर्याप्त क्षेमकारी आश्रय है ॥५॥

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥६॥

पदार्थः—(**एव हि**) इस प्रकार (**तवसम्**) बलशाली (**माम्**) मुझको लोग (**वर्धयन्ति**) उत्साह से बढ़ाते हैं (**वृहतः**) महान् (**मे**) मेरी (**दिवः चित्**) सूर्य से भी (**उत्तरा**) अधिक (**धूः**) धारण शक्ति है, मैं (**पुरु सहस्रा**) सहस्रों शत्रुओं को (**साकम्**) एक साथ (**नि शिशामि**) नष्ट कर सकता हूँ (**जनिता**) उत्पादक प्रभु (**मा**) मुझे (**अशत्रुम्**) विना शत्रु का (**जजान**) करे।

भावार्थः—इस प्रकार मुझ शक्तिशाली के उत्साह को लोग बढ़ाते हैं। मुझ महान् की धारिका शक्ति सूर्य से भी बड़ी है। सहस्रों शत्रुओं का मैं एक साथ नाश करता हूँ ! भगवान् मुझे शत्रुहीन करे ॥६॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥७॥

पदार्थः (**माम्**) मुझ (**इन्द्र**) शक्तिशाली राजा को (**एव हि**) इस प्रकार (**देवाः**) विद्वान् और प्रजा के लोग (**तवसम्**) महान् (**वृषणम्**) सुखों की वर्षा करने वाला (**कर्मन् कर्मन्**) प्रत्येक कर्म में (**उग्रम्**) असह्य शूर (**जज्ञुः**) जानते हैं। (**मन्दसानः**) प्रसन्न हुआ मैं (**वज्रेण**) अस्त्र-शस्त्र से (**वृत्रम्**) शत्रु और बुराई को (**वधीम्**) मारता हूँ (**महिना**) महत्व से (**दाशुषे**) दानशील के लिए (**व्रजम्**) मार्ग (**अप वम्**) खोलता हूँ।

भावार्थः—विद्वान् और प्रजा के लोग मुझ राजा को महान् और प्रत्येक कर्म में शूर एवं उग्र जानते हैं। मैं बुराइयों और शत्रुओं का नाश करता हूं और दानशील के लिये मार्ग खोलता हूँ ॥७॥

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८॥

पदार्थः—(**देवासः**) शक्तिशाली लोग (**आयन्**) आगे आवें, (**परशून्**) हथियारों को (**अबिभ्रन्**) धारण करें, (**वना**) जंगलों को (**वृश्चन्तः**) काटते हुए (**विड्भिः**) प्रजा के साथ (**अभि आयन्**) शत्रु का मुकाबला करें, (**वक्षणासु**) नदियों के (**सुद्रवम्**) वेग को (**निदधतः**) रोकते हुए (**यत्र**) संग्राम में (**कृपीटम् अनु**) पानी के वेग को अनुगमन करते हुए (**तत्**) शत्रु की सैन्य को (**दहन्तु**) जला दें।

भावार्थः–शक्तिशाली लोग आगे बढ़ें, हथियारों को धारण करें, जंगलों को काटते हुए और रास्तों में नदी पड़े तो उसके वेग को रोकते हुए पानी के वेग का अनुसरण करते हुए शत्रु सैन्य को दग्ध करें ॥८॥

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥९॥

पदार्थः–(**शशवः**) खरगोश जैसा जानर भी (**प्रत्यञ्चम्**) चढ़ाई करने वाले (**क्षुरम्**) क्षुरे वाले अथवा नख आदि वाले सिंह आदि पर (**जगार**) हमला करे, मैं तो (**लोगेन**) लोष्ठ जैसी साधारण वस्तु से भी (**आरात्**) दूर स्थित (**अद्रिम्**) पर्वत को (**व्यभेदम्**) फाड़ देता हूँ। (**रिहते**) छोटे शरीर वाले के लिए (**महान्तम्**) महान् से महान् हस्ती आदि को (**रन्धयानि**) वश में करता हूं, (**शूशुवानः**) शक्ति बढ़ाता हुआ (**वत्सः**) बछड़ा भी (**वृषभन्**) बैल के साथ (**वयत्**) युद्ध के लिए जाता है।

भावार्थः–मेरे प्रभाव से खरगोश जैसा छोटा जानवर भी बड़े-बड़े नखधारी सिंह आदि से लड़ता है, मैं ढेले जैसी छोटी वस्तु से भी दूरस्थ पर्वत का भेदन करता हूँ, छोटे शरीर वालों के प्रति आक्रमण करने वाले बड़े से बड़े को मैं वश में करता हूं और मेरा तो बछड़ा भी बैल से युद्ध कर लेता है ॥९॥

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

पदार्थः—(**तस्मै**) उस स्वामी के लिए (**सुपर्णः**) बाज के समान वेग वाला मनुष्य (**इत्था**) इस प्रकार से (**नखम्**) नख शस्त्र आदि को (**आ सिषाय**) ऐसे बांधता है जैसे (**अवरुद्धः**) रुका हुआ (**सिंहः**) सिंह (**परिपदम् न**) अपना पंजा सदा तैयार रखता है, (**निरुद्धः**) रुका हुआ (**महिषः**) भैंसा (**चित्**) भी (**तार्ष्यावान्**) प्यासा हुआ भी सींग मारने को तैयार रहता हैं, (**तस्मा**)

उसके लिए (**गोधाः**) वाणों को फेंकने वाली धनुष की प्रत्यञ्चा (**अयथम्**) विना आयास के (**एतत्**) इस धनुष को (**कर्षत्**) खींचती है ।

भावार्थः—उस राजा के कार्य के लिए बाज के समान वेग वाला मनुष्य नखास्त्र आदि को धारण करता है। रुके हुए सिंह और रुके हुए प्यासे भैंसे के समान आक्रमण को तैयार रहता है। उस राजा के लिए धनुष की डोर विना आयास धनुष को खींचकर वाण फेंकती है ॥१०॥

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

पदार्थः—(**ये**) जो सैनिक आदि लोग (**ब्रह्मणः**) महान् राजा के (**अन्नैः**) अन्न आदि से तृप्त हुए (**प्रति पीयन्ति**) शत्रुओं को नष्ट करते हैं (**तेभ्यः**) उनके लिए (**गोधा**) राजा के धनुष की डोर (**एतत्**) इन अन्न आदि पदार्थों को (**अयथम्**) अनायास ही (**कर्षद्**) खींचती है, और वे (**सिम**) समस्त (**अवसृष्टान्**) इस प्रकार प्राप्त (**उक्षणः**) घी आदि से सिक्त पदार्थों को (**बलानि**) शत्रुओं के सैन्य और (**तन्वः**) शरीरों को (**स्वयम्**) अपने आप (**शृणानाः**) शीर्ण करते हुए (**अदन्ति**) खाते हैं ।

भावार्थः—जो सैनिक आदि जन राजा के अन्न आदि पदार्थों से तृप्त हो शत्रुओं का विनाश करते हैं उनके लिए इन पदार्थों की प्राप्ति में राजा का धनुष सदा चढ़ा रहता है और ये शत्रु के सैन्यबल और शरीर को नष्ट करते हुए इस प्रकार प्राप्त और घृत आदि से सिक्त पदार्थ को खाते हैं ॥११॥

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्व१ः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥

पदार्थः—(**ये**) जो राजपुरुष (**सोमे**) सोमयाग में (**तन्वः**) सोमयाग के कलेवर और अंगों को (**उक्थैः**) उक्थ मन्त्रों से (**हिन्विरे**) बढ़ाते हैं (**एते**) वे (**शमीभिः**) सोमयाग के कर्मों से (**सुशमी**) उत्तम कर्म वाले (**अभूवन्**) हो जाते हैं, वे राजा से (**नृवत्**) अन्य मनुष्य की भांति बोलते हुए कि (**नः**) हमें (**वाजान्**) धनों को (**उप माहि**) दीजिए, हे राजन् (**वीरः**) वीर आप (**दिवि**) आकाश पर्यन्त (**श्रवः**) कीर्ति और (**नाम**) नाम को (**दधिषे**) धारण करो।

भावार्थः—जो राजपुरुष सोम याग में मन्त्रों से उसके कलेवर को बढ़ाते हैं वे सोमयाग सम्बन्धी उत्तम कर्मों के द्वारा सुकर्मा बन जाते हैं। वे राजा से दूसरे मनुष्य की तरह धन आदि मांगते हैं और कहते हैं कि राजन् ! हमें धन दें जिससे आपका नाम और यश दिग्दिगन्त में पहुंचे ॥१२॥

यह दशम मण्डल में अठाइसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २९

ऋषिः—१–८ **वसुक्रः** ॥ **देवता**—**इन्द्रः** ॥ **छन्दः**—१, ५, ७ **विराट्त्रिष्टुप्** । २, ४, ६ **निचृत्त्रिष्टुप्** । ३, ८ **पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः**—**धैवत** ॥

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

पदार्थः—(**वने**) वृक्ष पर (**वायः**) पक्षिशिशु के (**न**) समान (**चाकन्**) चाहता हुआ (**शुचिः**) पवित्र (**स्तोमः**) स्तोम (**नि अधायि**) धारण किया जाता है, (**भुरणो**) हे भरण-पोषण करने वाले मन्त्री और सेनापति (**वाम्**) आपको (**अजीगः**) पहुँचे । (**यस्य**) जिस उस स्तोम का (**पुरु दिनेषु**) सभी दिनों में (**नृणाम्**) मनुष्यों का (**नर्यः**) नेता (**नृतमः**) श्रेष्ठ मनुष्य (**क्षपावान्**) शत्रुनाशक (**इन्द्रः**) राजा (**इत्**) ही (**होता**) ग्रहण करने वाला है ।

भावार्थः—जिस प्रकार वृक्ष पर स्थित पक्षिशिशु कामना करता हुआ इधर-उधर देखता है इसी प्रकार यह स्तोम स्तुतिसमूह यहां पर विद्यमान किया गया है और वह हे मन्त्री और सेनापति आपको प्राप्त हो। यह स्तोम वह है जिसको सभी दिनों में मनुष्यों का नेता शत्रुनाशक श्रेष्ठ मनुष्य राजा ही ग्रहण किया करता है। अर्थात् राजा के लिए की जाने वाली प्रशंसा को मन्त्री और सेनापति प्रतिनिधि रूप में ग्रहण कर सकते हैं ॥१॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो (रथः) रथ (**असत्**) है उसको (**ससवान्**) प्राप्त किये हुए (**त्रिशोकः**) सूर्य की तरह शत्रुओं को तपाने के लिए (**कुत्सेन**) कुलिश के साथ संनद्ध जो इन्द्र=राजा (**शतम्**) सैकड़ों (**नृव**) नायकों को (**अनु आवहत्**) साथ लिए रहता है (**ते**) उस (**नृणाम्**) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य को हम (**अस्याः**) इस (उषसः) उषा के और (**अपरस्याः**) दूसरी के (**नृतौ**) प्राप्त होने पर (**प्र स्याम**) प्रशंसा करने वाले हों ।

भावार्थः—रथ पर सवार हो कुलिश आदि से सन्नद्ध सैकड़ों नायकों को साथ लेकर जो राजा सदा प्रजा की रक्षा करता है उस श्रेष्ठ मानव की हम सायं प्रातः प्रशंसा करें ॥२॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

पदार्थ– (**इन्द्र**) हे राजन् (**कः**) कौन सा (**मदः**) हर्षकारी पदार्थ (**ते**) तेरा (**रन्त्यः**) प्रियकर (**भूत्**) है, (**उग्रः**) ओजस्वी तू (**दुरः**) यज्ञद्वार पर और (गिरः) स्तुति में भी (**अभि वि धाव**) आवे, (**वाहः**) सुख-समृद्धि का प्राप्त कराने वाला तू (**कत्**) कब (**अर्वाक्**) हमारे सामने होगा, (**मा**) मेरा (**मनीषा**) मनोरथ (**कत् उप**) कब पूरा होगा, मैं (**उपमम्**) अपने समीप स्थित (**त्वा**) तुझे (**कद्**) कब (**अन्नैः**) अन्नद्वारा (**राधः**) आराधना (**आ शक्याम्**) कर सकूंगा ।

भावार्थः– प्रजाजन कहते हैं कि हे राजन् कौन-सा खाद्य पदार्थ आप का प्रियकर है, ओजस्वी तू हमारे यज्ञद्वार पर और महारी स्तुतियों में आवे, सब समृद्धियों का देने वाला तू कब हमारे सामने उपस्थित होगा? मेरा यह मनोरथ कब पूरा होगा कि अपने पास स्थित हुए तुम्हारी अन्न आदि से सेवा कर सकू ॥३॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

पदार्थ - हे राजन् (**कत् उ**) कैसे (**द्युम्नम्**) ऐश्वर्य प्राप्त होगा ?(**कया**) किस (**धिया**) बुद्धि और कर्म से (**नॄन्**) मनुष्यों को (**त्वावतः**) अपने जैसा (**करसे**) करता है, (**नः**) हमारे पास (**कत्**) कब (**आगन्**) आओगे, (**उरुगाय**) हे बहु कीर्ति वाले इन्द्र=राजन् (**समस्य**) सभी के (**भृत्यै**) भरण-पोषण के लिए (**अन्ने**) अन्न आदि प्रदान करने में (**यत्**) जब तेरी (**मनीषाः**) बुद्धियें चलती हैं वा प्रवृत्त होती हैं तब तू (**सत्यः**) सत्य (**मित्रः**) मित्र (**न**) जैसा दिखाई पड़ता है ।

भावार्थः—हे राजन् किस प्रकार ऐश्वर्य को प्राप्त करोगे ? आप मनुष्यों को किस बुद्धिबल और कर्म से अपने समान बनाओगे, हमारे पास कब आओगे ? जब आप प्रजा का भरण-पोषण करते हो तब वस्तुतः सच्चे मित्र मालूम पड़ते हो ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥

पदार्थः - (**तुविजात**) हे बहु प्रकार के रूप को धारण करने वाले (**इन्द्र**) राजन् तू (**सूरः न**) सूर्य के समान (**अर्थम्**) संसार से विरक्ति प्राप्त करने वाले को (**पारम्**) इस संसार से (**पारम्**) पार (**प्रेरय**) कर, (**ये**) जो लोग (**जनिधा इव**) गृहस्थ पुरुषों के समान (**अस्य ते**) इस तुम्हारी (**कामम्**) कामना को (**ग्मन्**) पूरा करते हैं (**ये**) जो (**नरः**) मनुष्य (**पूर्वीः**) ज्ञानपूर्ण (**गिरः**) वेदवाणियों को (**प्रतिशिक्षन्ति**) अन्यों को सिखाते हैं (**च**) और (**अन्नैः**) हवि और अन्न आदि के साथ अग्नि में डालते हैं उन्हें भी (**पारम्**) पार (**प्रेरय**) लगा ।

भावार्थः—हे राजन् ! सूर्य के समान तू संसार से विरक्ति वाले मनुष्य को संसार से पार लगाने का साधन बन। जो लोग गृहस्थ की भांति तुम्हारी कामना की पूर्ति कराते हैं और जो मनुष्य वेदवाणी का दूसरों को उपदेश करते हैं और हवि तथा अन्न से यज्ञ में आहुति देते हैं उन्हें भी पार लगा ॥५॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**ते**) तेरे (**मज्मना**) शत्रुओं का मज्जन करने वाले (**काव्येन**) कर्म से (**मात्रे**) भूतों की निर्मात्री (**पूर्वी**) महत्व वाली

(द्यौः) द्युलोक (पृथिवी) और पृथिवी (नु) शीघ्र ही (सुमिते) मापी हुई हो जाती है (घृतासः) घृत आदि से युक्त (सुतासः) बनाये गये पदार्थ (वराय) श्रेष्ठ (ते) तुझ को (स्वाद्मन्) खाने के योग्य हों और (मधूनि) मधुर रस पदार्थ (पीतये) पीने के लिए (भवन्तु) हों।

भावार्थः—हे राजन्! तुम्हारे शत्रु को मज्जन करने वाले कर्म से द्युलोक और पृथिवी मापे गये हैं अर्थात् आपका पराक्रम द्यु और पृथिवी को भी व्याप्त किये है। उत्तम बनाये गए खाद्य पदार्थ आप के खाने के लिए हों और मधुर रस आदि पीने के लिए हों ॥६॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥

पदार्थ—(अस्मै) इस (इन्द्राय) राजा के लिए (मध्वः) माधुर्यपूर्ण रसों एवं मधुपर्क से (पूर्णम्) पूर्ण (अमत्र) पात्र को (आ सिचत) आदर से दें, (हि) क्योंकि (सः) वह (सत्यराधः) सत्य का धनी है, (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी है (सः) वह (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरियन्) बड़े भारी प्रदेश पर (क्त्वा) अपने कर्मकौशल (च) और (पौंस्यैः) पराक्रमों से (आ अभि ववृधे) सर्वत्रः बढ़ता है।

भावार्थः– इस राजा के लिए मधुपर्क से भरा पात्र आदरपूर्वक दिया जावे। क्योंकि वह सत्य का धनी और लोगों का हितकारी है। पृथिवी के विस्तृत प्रदेश पर वह अपने कार्यकलाप और पराक्रमों से बढ़ रहा है ॥७॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

पदार्थ—(सुओजाः) उत्तम तेज वाला (इन्द्रः) राजा (पृतनाः) शत्रु सेना को (व्यानट्) छा जाता है (पूर्वीः) उत्कृष्ट सेनायें भी संधि द्वारा (अस्मै) इसके (सख्याय) मैत्री के लिए (आ यतन्ते) प्रयत्न करते हैं, हे राजन्! तू (यम्) जिस (रथम् न) रथ के समान राज्य को अपनी (भद्रया) कल्याणकारिणी (सुमत्या) सुमति से (चोदयासे स्म) प्रेरणा देते हो, उस पर (पृतनासु) प्रजा जनों के बीच (आतिष्ठ) विराजमान हो।

भावार्थ—राजा अपने सुन्दर ओज से शत्रु सेना पर व्याप्त हो जाता है। उत्तम से उत्तम सेनायें संधि द्वारा इसकी मैत्री का प्रयत्न करती हैं। संग्राम में जिस राजा को तू प्रेरणा देता है, हे राजन् उस पर तू विराजमान हो ॥८॥

यह दशम मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३०

ऋषिः—१—१५ कवष ऐलूषः ॥ **देवता**—आप अपान्नपाद्वा ॥ **छन्दः**—१, ३, ९, ११, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ४, ६, ८, १४ विराट्त्रिष्टुप्। ५, ७, १०, १३ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१॥

पदार्थः—(मनसः) मनके (प्रयुक्ति न) उद्योग के समान (ब्रह्मणे) परमेश्वर के लिए (गातुः) बोली गई स्तुति (अपः) समस्त लोकों को (देवत्रा) यज्ञ आदि कर्मों द्वारा (अच्छ) अच्छी प्रकार (प्र एतु) प्राप्त हो, हे मनुष्य (सुवृक्तिम्) दोषरहित (महीम्) महान् (धासिम्) स्तुति को (पृथुज्रयसे) बड़े वेग वाले (मित्रस्य) सबके मित्र (वरुणस्य) वरणीय परमेश्वर के लिए (रीरध) सिद्ध कर।

भावार्थः मन के उद्योग के समान परमेश्वर के लिए बोली गई स्तुति यज्ञ कर्म द्वारा भली प्रकार सब लोकों में फैले। हे मनुष्य तू महा वेग वाले सबके मित्र परमेश्वर के लिए दोषरहित स्तुति कर ॥९॥

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२॥

पदार्थः–(अध्वर्यवः) हे अध्वर्यु लोग आप (हविष्मन्तः) हविवाले (हि) ही (भूत) होवें, (उशन्तः) यज्ञ के करने की इच्छा करते हुए आप लोग (उशतीः) चाहे गए (अपः) जलों को (अच्छ) अच्छी प्रकार (इत) प्राप्त करो (याः)

जिन जलों को (**अरुणः**) प्रकाशमान (**सुपतनः**) उत्तम रश्मियों वाले सूर्य ने (**अव**) अन्तरिक्ष में (**चष्टे**) प्राप्त किया है उनकी (**तम्**) उस (**ऊर्मिम्**) उर्मि को (**अद्य**) आज (**सुहस्ताः**) उत्तम हाथों वाले आप (**आस्यध्वम्**) यज्ञ वेदि के चारों तरफ प्रक्षेप करो ।

भावार्थः—हे अध्वयु लोग आप यज्ञ के लिए हवि आदि से युक्त होवें । यज्ञ की कामना रखते हुए यज्ञार्थ चाहे गये जलों को भली प्रकार प्राप्त करें । चमकते सूर्य ने जिन जलों को आकाश में धारण किया उनकी इस उर्मि को आप लोग यज्ञवेदि के सब तरफ प्रक्षेप करें ॥२॥

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददद्रूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥३॥

पदार्थः—(**अध्वर्यवः**) हे अध्वर्यु लोग (**अपः**) जलों की प्राप्ति के लिए (**समुद्रम्**) अन्तरिक्षस्थ समुद्र=आकाश को (**इत**) जानो (**हविषा**) हवि से (**अपां नपातम्**) जलों को न नष्ट होने देने वाले सूर्य के प्रति (**यजध्वम्**) यज्ञ करो, (**सः**) वह सूर्य (**वः**) आप सब को (**अद्य**) समय पर (**सुपूतम्**) पवित्र (**ऊर्मिम्**) जल की ऊर्मि (**ददत्**) देता है, (**तस्मै**) उसके यज्ञ के लिए (**मधुमन्तम्**) मधुर वा मधु से युक्त (**सोमम्**) सोमलता को (**सुनोत**) निष्पादित करो ।

भावार्थः—हे अध्वर्यु लोग जल के लिए अन्तरिक्षस्थ समुद्र का ज्ञान करो । सूर्य तक पहुंचने वाले यज्ञ को करो । वह पवित्र जलोर्मि देता है । उस के लिए यज्ञ करने के वास्ते मधु आदि से युक्त सोमलता के रस को निष्पादित करो ॥३॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**अनिध्मः**) विना काष्ठ आदि ईधन के (**अप्सु**) मेघों के (**अन्तः**) मध्य में (**दीदयत्**) दीप्त होता है (**यम्**) जिसकी (**अध्वरेषु**) यज्ञों में (**विप्रासः**) मेधावी लोग (**ईळते**) प्रशंसा करते हैं वह (**अपाम नपात्**) सौर तेज (**मधुमतीः**) मधुर (**अपः**) जलों को (**दाः**) प्रदान करता है (**याभिः**) जिनसे (**इन्द्रः**) वायु (**वीर्याय**) बल से (**वर्धते**) बढ़ता है ।

भावार्थः मेघों में जो विना काष्ठ आदि ईंधन के दीप्त होता है, यज्ञों में जिसकी मेधावी जन प्रशंसा करते हैं वह अपांनपात्=सौरतेज मधुर जल देता है । उनसे वायु आदि अथवा उगने वाले पदार्थ बल से बढ़ते है ॥४॥

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥५॥

पदार्थः—हे (**अध्वर्यो**) हे अध्वर्यो ! (**कल्याणीभिः**) कल्याणकारिणी (**युवतिभिः**) युवतियों के साथ (**मर्यः न**) मनुष्य की तरह (**याभिः**) जिन जलों से मिला (**सोमः**) सोम रस वा गिलोय का रस लोगों को (**मोदते**) प्रसन्न करता और (**हर्षते**) हर्ष देता है (**ताः**) उनको (**अच्छ**) अच्छी प्रकार प्राप्त करने के लिए (**परेहि**) यत्न कर (**यत्**) जब प्राप्त हो जावें तब (**आसिञ्चाः**) सोम आदि को उनसे सिक्त करो (**ओषधीभिः**) ओषधियों के साथ (**पुनीतात्**) शुद्ध करो ।

भावार्थः—यज्ञकर्त्ता अध्वर्यु आदि को गिलोय का रस अथवा सोम का रस कल्याणकारी जलों से मिश्रित करना चाहिए इससे वह सोमरस लोगों को प्रसन्नता देता है जैसा युवती पुरुष को प्रसन्नता देती है । इन उत्तम जलों को जहां सोमरस पिलाया जावे वहां और ओषधियों से उसे शुद्ध भी किया जावे ॥५॥

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६॥

पदार्थः—(**एव इत्**) इस भांति जैसे (**यूने**) युवा पुरुष की प्राप्त्यर्थ (**युवतय**) युवतियें (**नमन्त**) नमती हैं (**यत्**) जैसे (**उशन्**) कामना वाला पुरुष (**उशतीः**) चाहने वाली युवती को (**इम**) ही (**अच्छ**) भली-भांति (**एति**) प्राप्त करता है वैसे ही (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोग (**मनसा**) मन से (**देवीः**) दिव्य (**आपः**) जलों को (**संजानते**) जानते हैं और (**धिषणा**) बुद्धि द्वारा (**सं चिकित्रे**) विचार करते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार युवतियें युवा पुरुष के प्रति नमती हैं और युवा पुरुष युवती को चाहता है उसी प्रकार अध्वर्यु लोग मन से दिव्य गुणों वाली इन जलों को भली-भांति जानते हैं और इनके गुण और प्रभाव का बुद्धि से विचार करते हैं ॥६॥

योवो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७॥

पदार्थः— (**यः**) जो इन्द्र=सूर्य का वायु (**वृताभ्यः**) मेघपरिवेष्टित (**वः**) इन जलों के लिए (**लोकम् उ**) मेघ से निकलने का मार्ग **अकृणोत**) बनाता है, (**यः**) जो (**वः**) इन्हें (**मह्याः**) महान् (**अभिशस्तेः**) वाधा से (**अमुञ्चत**) मुक्त करता हैं (**आपः**) जलें (**तस्मै**) उस (**इन्द्राय**) इन्द्र सूर्य वा वायु के लिए (**मधुमन्तम**) मधुर (**देवमादनम**) सूर्य की किरणों आदि को तृप्त करने वाली (**ऊर्मिम्**) जलोर्मि को (**प्र हिणोतन**) देती हैं ।

भावार्थः—जो सूर्य वा वायु मेघ में घिरी हुई इन जलों के निकलने का मार्ग बनाता है और मेघ में रुके रहने पर प्राप्त होने वाले महान् से महान् विघ्नों से मुक्त करता है उसके लिए ये जलें मधुर और किरणों को तृप्त करने वाली जलोर्मि प्रदान करती हैं ॥७॥

प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८॥

पदार्थः—(**सिन्धवः**) बहने के स्वभाव वाली (**आपः**) जलें (**वः**) इनकी (**मधुमन्तम्**) मधुर (**ऊर्मिम्**) ऊर्मि को (**यः**) जो कि (**वः**) इनका (**गर्भः**) गर्भभूत और (**मध्वः**) मधुरता का (**उत्सः**) कूप है, (**अस्मै**) इस (**अध्वरेषु**) यज्ञों में (**घृतपृष्ठम्**) घृत को धारण करने वाले (**ईड्यम्**) प्रशंसनीय (**इन्द्र**) सूर्य वा वायु के लिए (**प्र हिनोत**) देती हैं, (**रेवतीः**) धन देने वाली (**आपः**) जलें (**मे**) मुझ यज्ञकर्ता के (**हवम्**) शब्द को (**शृणुत**) सुनने का माध्यम बनें अर्थात् सुनावें ।

भावार्थः- बहने के स्वभाव वाली जलें मधुर जलोर्मि को सूर्य किरणों और वायु को प्रदान करती हैं । ये वर्षा के माध्यम से धन देने वाली हैं और विविध लाभों को प्रदान करती हैं ॥८॥

तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९॥

पदार्थः—(**सिन्धवः**) नदियां (**यः**) जो (**उभे**) शुद्धि और तृप्ति दोनों के (**इयर्त्ति**) देती हैं (**तम्**) ऐसी उस (**मत्सरम्**) हर्षित करने वाली (**इन्द्रपानम्**) सूर्य की पानभूत, (**मदच्युतम्**) सुख को देने वाली (**औशानम्**) चाहने योग्य, (**नभोजाम्**) आकाश से उत्पन्न, (**परि विचरन्तम्**) चारों तरफ विचरने वाली (**उत्सम्** बहने वाली (**त्रितन्तुम**) प्राण, उदान और तेज रूपी तीन कारणों वाली (**ऊर्मिम्**) जलोर्मि को (**प्र हेत**) बहाती हैं ।

भावार्थः— नदियें तृप्ति और शुद्धता देने वाली, आनन्ददायक, सूर्य की किरणों द्वारा पान की जाने वाली, वहनशील, आकाश से उत्पन्न विचरने वाली प्राण, उदान और तेज रूपी तीन तन्तुओं वाली जलोर्मि को लेकर बहती हैं ॥९॥

आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०॥

पदार्थः—(**ऋषे**) हे अध्वर्यो ! (**गोषु युधः**) मेघों में गमन करने वाली जलों के (**न**) समान (**अध**) और (**द्विधारा**) बहुत धाराओं वाली (**आवर्वृततीः**) आवर्तनशील (**नियवम्**) संयोग को (**चरन्तीः**) प्राप्त करने वाली (**जनित्रीः**) अन्न आदि को उत्पन्न करने वाली, (**भुवनस्य**) लोक की (**पत्नीः**) पालक (**सवृधः**) लता ओषधि आदि को बढ़ाने वाली, (**सयोनीः**) समान स्थान वाली (**अपः**) जलों की (**वन्दस्व**) प्रशंसा करो ।

भावार्थः—यज्ञकर्त्ता विद्वान् को मेघ में रहने वाले बहुत धाराओं वाले, आवर्तधारी, लोक की पालक, ओषधि अन्न आदि के उत्पन्न करने वाले विविध गुण युक्त जलों का ज्ञान कर उनके गुणों को प्रकट करना चाहिए ॥१०॥

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

पदार्थः—हे ऋत्विग्जन ! (**नः**) हमें (**देवयज्या**) देवों के यजनार्थ (**अध्वरम्**) यज्ञ (**हिनोत**) प्राप्त कराओ, तथा (**धनानाम्**) धनों की (**सनये**) उपलब्धि के लिए (**ब्रह्म**) वेदज्ञान (**हिनोत**) प्राप्त कराओ, (**ऋतस्य**) सृष्टि के नियम के (**योगे**) सम्बन्ध में (**ऊधः**) पड़े पर्दे को (**विष्यध्वम्**) हटा दो,

(**अस्मभ्यम**) हमारे लिए (**आपः**) जलें (**श्रुष्टीवरीः**) सुख देने वाली (**भूतन**) होवें ।

भावार्थः—हे ऋत्विग्जन ! देव यजन के लिए हमें उत्तम यज्ञ को कराओ, धनों की उपलब्धि के लिए हमें वेद का ज्ञान दो, और सृष्टि के नियम के विषय में पड़े पर्दे को उठाकर हमें ज्ञान दो । हमारे लिए जलें सुख देने वाली हों ।।११।।

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥

पदार्थः---(**रेवतीः**) विद्युत् की कड़क के साथ उत्पन्न होने वाली (**आपः**) जलें (**हि**) चूंकि (**वस्वः**) समस्त वसाने वाले स्थान की (**क्षयथ**) स्वामी हैं अतः (**भद्रम्**) उत्तम (**क्रतुम्**) प्रज्ञान (**च**) और (**अमृतम्**) अमृत को (**च**) भी (**विभृथ**) धारण करती हैं, (**रायस्य**) धन का (**च**) और (**स्वपत्यस्य**) उत्तम सन्तान की (**पत्नीः**) पालक (**स्थ**) होती हैं (**सरस्वती**) गर्जन लक्षण वाली जलदात्री वाणी (**गृणते**) स्तुति करने वाले के लिए (**तत्**) यह सब (**वयः**) अन्न आदि (**धात्**) देती है ।

भावार्थः—लोगों को यह जानना चाहिए कि विजली की कड़क के साथ उत्पन्न जलें बड़ी गुणकारी हैं, समस्त वसने योग्य स्थान पर उनका प्रभाव पड़ता है । वे अमृत धारण करती हैं। सब प्रजा की पालक होती हैं । इन जलों को प्रदान करने वाली गर्जनमयी वाणी (विद्युत् की कड़क) यज्ञ-कर्ता के लिए अन्न आदि धन को देती है ।।१२।।

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥

पदार्थः—मैं (**प्रति अदृश्रम्**) भली प्रकार देखता हूं कि—(**यत्**) जो (**आपः**) ये जलें हैं वे इस पृथिवी पर (**आयतीः**) आती हुई (**घृतम्**) प्रकाश को (**पयांसि**) रसों को (**मधूनि**) मधुरता को (**बिभ्रतीः**) धारण किये हुए (**इन्द्राय**) सूर्य के लिए (**सुषुतम्**) भली प्रकार उत्पादित (**सोमम्**) स्नेह और रस को (**भरन्ती**) अपने में रखती हुई (**अध्वर्युभिः**) अध्वर्यु लोगों के द्वारा (**मनसा**) मन से (**संविदाना**) जानी हुई होती हैं ।

भावार्थः—मैं देखता हूं कि ये जलें मधुरता, चमक को धारण करती हुई और स्नेहन तथा रस को सूर्य के लिए लिये हुए अध्वर्यु आदि लोगों के द्वारा जानी जाती है ।।१३।।

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥

पदार्थः--(**रेवतीः**) रेवती (**इमाः**) ये (**जीवधन्याः**) जीवों का पालन करने वाली (**आपः**) जलें (**अग्मन्**) पृथिवी पर वर्षा के द्वारा आती हैं (**सखायः**) मित्रभूत (**अध्वर्यवः**) हे अध्वर्युजन ! आप लोग (**अपाम् नप्त्रा**) जल बरसाने वाले सूर्य वायु आदि पदार्थों के साथ (**संविदानासः**) ज्ञान से सम्बन्ध प्राप्त कर (**सोम्यासः**) जल विद्या को जानते हुए (**एनाः**) इन (**अपः**) जलों को (**सादयत**) प्राप्त करो तथा (**बर्हिषि**) महान् पृथिवी के क्षितिज में (**निधत्तन**) धारण करो ।

भावार्थः- वर्षा की जलें पृथिवी पर आती हैं। अध्वर्यु आदि यज्ञ-कर्त्ताओ ! वर्षा के देव वायु, सूर्यकिरणों आदि का ज्ञानपूर्विका यज्ञ आदि क्रिया से संबन्ध कर जल विद्या को जानते हुए इन जलों को प्राप्त करना चाहिए और पृथिवी के क्षितिज में इन्हें वाष्पमय मेघ के रूप में धारण करना चाहिए जिससे वर्षा कराई जा सके ।।१४।।

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥

पदार्थः—(**उशतीः**) गतिशील, (**देवयन्तीः**) सूर्य किरणों के प्रति जाने वाली (**आपः**) जलें (**इदम्**) इस (**बर्हिः**) वायुमण्डलस्थ आकाश (**आ**) पर्यन्त (**आ अग्मन्**) आती हैं (**अध्वरे**) वायुमण्डल में (**नि असदन्**) रहती हैं, (**अध्वर्यवः**) हे अध्वर्यु लोगो ! (**इन्द्राय**) सूर्य वा वायु के लिए (**सोमम्**) तेजोयुक्त वाष्पमय पदार्थ को (**सुनुत**) उत्पन्न करो, अतः (**वः**) तुम्हारे (**देवयज्या**) देवयजन कर्म वृष्टि आदि कराने के सम्बन्ध में (**सुशका उ**) सुशक्य (**अभूत्**) होवे ।

भावार्थः—जलें सूर्य की किरणों से ऊपर उठाई जाकर वायुमण्डल पर्यन्त जाती हैं और उसमें रहती हैं। यज्ञ कराने वाले अध्वर्यु आदि लोगों को वाष्पकारी तत्त्व को यज्ञ द्वारा उत्पन्न कर वर्षा के कराने में सफलता प्राप्त करनी चाहिए ।।१५।।

यह दशम मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३१

ऋषिः—१—११ कवष ऐलूषः ॥ देवता:—विश्वेदेवा. ॥ छन्दः -१, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७, ११ त्रिष्टुप् । ३, १० विराट्त्रिष्टुप् । ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः धैवतः ॥

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥१॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) यज्ञ देवों और विद्वानों सम्बन्धी (**यजत्रः**) यष्टव्य पूजनीय (**शंसः**) उपदेश (**अवसे**) रक्षा के लिए (**नः**) हमें (**विश्वेभिः**) समस्त (**तुरैः**) उत्तम गति और क्रियाओं के साथ (**आ उपवेतु**) प्राप्त हो, (**तेभिः**) उनके साथ (**वयम्**) हम (**सखायः**) सखा (**भवेम**) होवें, (**विश्वा**) समस्त (**दुरिता**) बुराइयों को (**तरन्तः**) तरने वाले (**स्याम**) होवें ।

भावार्थः—हमें यज्ञ के देवों के सम्बन्ध में और विद्वानों के सम्बन्ध का उपदेश सदा प्राप्त रहे । इसके साथ समस्त प्रयोगात्मक ज्ञान और क्रियायें युक्त हों । इन विद्वानों और यज्ञ के देवों के उपदेश और यज्ञ में सखा बनकर हम समस्त दुःखों और बुराइथों से पार होवें ॥१॥

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥२॥

पदार्थः—(**मर्त्तः**) मनुष्य (**परिचित्**) सर्वत्र से (**द्रविणम्**) धन को (**ममन्यात्**) चाहे, (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथा**) मार्ग से (**नमसा**) उपासना और नमस्कार द्वारा (**आ विवासेत्**) परिचर्या वा तपस्या करे, (**उत**) और (**स्वेन**) अपने (**क्रतुना**) प्रज्ञान से (**संवदेत**) समन्वय करे (**श्रेयांसम्**) श्रेय मार्ग पर ले जाने वाले (**दक्षम्**) बल को (**मनसा**) मन से (**जगृभ्यात्**) ग्रहण करे ।

भावार्थः- मनुष्य को चाहिए कि वह धन को सब ओर से चाहे। सत्य के मार्ग से उपासना के साथ तपश्चर्या करे । अपने ज्ञान के अनुरूप ही अपने कर्म का समन्वय रखे और श्रेय मार्ग पर ले जाने वाले बल को मन से धारण करे ॥२॥

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥३॥

पदार्थः—(**धीतिः**) धारणा (**अधायि**) स्थित कर ली (**न**) जिस प्रकार (**तीर्थे**) किनारे पर बनी सीढ़ियों में (**अंशाः**) जल कण आते हैं वैसे ही (**ऊमाः**) समस्त रक्षायें (**अससृग्रम्**) आती है । तथा (**दस्मम्**) दुःखों के नाशक को (**उपयन्ति**) पहुचती हैं । (**सुवितस्य**) सुष्ठु रूप से प्राप्त होने योग्य सुख के (**शुषम्**) आनन्द को (**अभि आनश्य**) हम प्राप्त करें तथा (**अमृतानाम्**) मोक्ष सुखों के (**नवेदसः**) प्राप्त करने वाले (**अभूम**) हों ।

भावार्थः—धारणा को स्थिर करके भगवत्प्रदत्त रक्षाओं को प्राप्त करना चाहिए । ये रक्षायें दुःखों को जिसने भोग से नष्ट कर दिया है उसी को पहुँचती हैं । हम इस प्रकार सुष्ठु रूप से प्राप्त सुख के आनन्द को भोगें और मोक्षानन्द के प्राप्त करने वाले हों ॥३॥

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४॥

पदार्थः—(**नित्यः**) नित्य, (**स्वपतिः**) अपनी प्रजा का पालक एवं स्वामी, (**दमूनाः**) सब पदार्थों का दाता (**देवः**) देव (**सविता**) परमेश्वर (**यस्मै**) जिसके लिए जगत् के पदार्थों को (**जजान**) पैदा किया है (**तस्मै**) उसके लिए (**उ**) निश्चय (**चाकन्यात्**) सुख देना चाहता है । (**सः**) वह (**भगः**) सूर्य (**वा**) और (**अर्यमा**) वायु (**गोभिः**) किरणों जल आदि से (**इम्**) इसको (**अनज्यात्**) लाभ देते हैं, (**उत्**) और (**चारुः**) दूसरे देवगण (**अस्मै**) इसके लिए (**छदयत्**) आच्छादक=रक्षक (**स्यात्**) होते हैं ।

भावार्थः— प्रजा के स्वामी पदार्थों के दाता भगवान् ने जिस के लिए वह संसार रचा है उसे सुख देना चाहता है । सूर्य, वायु और दूसरे दिव्य पदार्थ भी इसकी रक्षा करते हैं ॥४॥

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः श[illegible]सा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥५॥

पदार्थः—(**यत् ह**) जब भी (**क्षुमन्तः**) उपदेष्टा विद्वान् (**शवसा**) उत्साह के साथ (**समायन्**) हमें प्राप्त हों तब (**उषसाम्**) उषाओं को (**क्षाः**) पृथिवी के (**इव**) समान (**इयम्**) यह (**सा**) वह स्तुति (**भूयाः**) प्राप्त होवे । (**अस्य**) इस (**जरितुः**) ज्ञानोपदेष्टा की (**स्तुतिः**) प्रस्तुति=उपदेश को (**भिक्षमाणाः**) मांगते

हुये हम (**शग्मासः**) सुखी हों और (**वाजाः**) ज्ञान और अन्न आदि पदार्थ (**नः**) हमें (**आ उप यन्तु**) प्राप्त हों ।

भावार्थ—जब ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् उत्साह से हमें प्राप्त हो, तब उषाओं को प्राप्त पृथिवी के समान उनके समक्ष यह हमारी स्तुति प्राप्त होवे । उनके ज्ञानोपदेश को मांगते हुए हम सुखी हों और ज्ञान अन्न आदि हमेंप्र ाप्त हो ।।५।।

अस्येदेषा सुमतिः पंप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥६॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस (**इत्**)ही (**असुरस्य**) जीवन दाता भगवान् की (**एषा**) यह (**सुमतिः**) उत्तम ज्ञान वाली (**भूमना**) महती (**पूर्व्या**) सनातन (**गौः**) वेद वाणी (**पप्रथाना**) ज्ञान का विस्तार करने वाली (**अभवत्**) हो । (**सनीळाः**) समान आश्रय में रहने वाले, (**समाने भरणे**) समान रक्षा में (**बिभ्रमाणाः**) रक्षण पाते हुए (**समाने**) समान (**योनौ**) स्थान में (**आ यन्तु**) आवें ।

भावार्थः—इस महान् परमेश्वर का उत्तम ज्ञान देने वाली सनातन वेदवाणी ज्ञान का विस्तार करने वाली होवे । सभी मनुष्य समान आश्रय, समान रक्षण में रहते हुए समान स्थान में आवें ।।६।।

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥७॥

पदार्थः—(**किम् स्विद्**) कौन-सा (**वनम्**) वन और (**कः उ**) कौन-सा (**सः**) वह (**वृक्षः**) वृक्ष (**आस**) है (**यतः**) जिससे (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी आदि लोक (**निः ततक्षुः**) बनाये जाते हैं, (**संतस्थाने**) भली प्रकार स्थित ये दोनों (**इत ऊती**) इस परमेश्वर और जगत् की दिव्य शक्तियों से रक्षण पाये हुये (**अजरे**) जरा वर्जित हैं (**अहानि**) दिन और (**पूर्वीः**) उनकी पूर्वकालिक (**उषसः**) उषायें (**जरन्त**) इनको स्पष्ट बतला रही हैं ।

भावार्थः—कौन सा वह वन है ! कौन सा वह वृक्ष है, जिससे द्यु और पृथिवी आदि लोक बनाये जाते हैं । ये दोनों अच्छी प्रकार स्थित, परमेश्वर और जगत् की दिव्य शक्तियों से रक्षित जरा से रहित हैं । दिन और उनसे पूर्व उषायें इनको स्पष्ट बतला रही हैं ।।७।।

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥८॥

पदार्थः—(**यद्**) जब (**ईम्**) इस (**सूर्यम्**) सूर्य को (**हरितः**) किरणें (**न:**) नहीं (**वहन्ति**) धारण करती हैं अर्थात् सृष्टि के पूर्व की अवस्था में, तब (**स्वधावान्**) प्रकृति को धारण किए हुए परमेश्वर (**पवित्रम्**) जगत् के अग्नि वायु-आदि पदार्थों के समूह और (**त्वचम्**) जीवों के त्वचा से युक्त शरीर को (**कृणुत**) बनाता है । (**एतावत्**) इससे अधिक वा इस सामर्थ्य वाला (**एना**) इस परमेश्वर से (**परः**) परे (**अन्यत्**) दूसरा कोई (**न**) नहीं (**अस्ति**) है, (**उक्षा**) महान् शक्तिशाली (**सः**) वही परमेश्वर (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**बिभर्ति**) धारण करता है ।

भावार्थः—पहले ७वें मन्त्र में पूछा गया था कि कौन सा वन और कौन सा वृक्ष है जिससे द्युलोक और पृथिवी बनाये गए । इस ८वें मन्त्र में उत्तर दिया गया है कि महान्शक्ति परमेश्वर इस द्यु और पृथिवी लोक को सृष्टि की प्रागवस्था में जब सूर्य आदि वर्तमान नहीं होते, बनाता है । उसके अतिरिक्त उसके समान वा उससे अधिक और कोई नहीं है । वह 'स्वधा' प्रकृति को जो जगत् का उपादान कारण है धारण करता है । अतः ब्रह्मरूपी वन में प्रकृतिरूपी वृक्ष से भगवान् इन की रचना करता है ।।८।।

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥९॥

पदार्थः—उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की व्यवस्था में (**स्तेगः**) रश्मियों का समूह आदित्य (**क्षाम्**) पृथिवी को (**न**) नहीं (**अत्येति**) अतिक्रान्त करता वा अधिक तपाता, (**वायुः**) वायु भी (**भूम**) भूमि पर (**मिहम्**) वृष्टि को (**ह**) निश्चय (**न**) नहीं (**विवाति**) [अतिक्रान्त मर्यादा होकर] बहाता है, (**यत्र**) जिसमें (**मित्रः**) अग्नि (**अज्यमानः**) व्यक्त हुआ और (**वरुणः**) चन्द्रमा उत्पन्न हुआ (**शोकम्**) अपने प्रकाश को वा दीप्ति को (**व्यसृष्ट**) विस्तार से फेंकते हैं (**न**) जिस प्रकार (**अग्निः**) अग्नि (**वने**) वृक्ष-समूह में अपनी दीप्ति फेंकता है ।

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की व्यवस्था में रहकर मर्यादा का अतिक्रमण न करते हुए ही सूर्य और वायु ताप देने और वृष्टि करने का कार्य करते हैं । अग्नि और चन्द्रमा भी अपनी दीप्ति को उसके नियं-

अण में रहकर ही फेंकते हैं जिस प्रकार अग्नि काष्ठसमूह में नियन्त्रित रहकर ही अपनी दीप्ति फेंकता है ॥९॥

स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥१०॥

पदार्थः–(**यत्**) जब (**अज्यमाना**) वृषभ के रेत को धारण किये हुए गर्भिणी (**स्तरीः**) गाय (**सूतं**) बछड़े को पैदा करती है तब (**व्यथिः**) पीड़ा का अनुभव करते हुए भी (**स्वगोपा**) अपने से रक्षित रहती है और (**अव्यथीः**) व्यथारहित सन्तति (**कृणुत**) उत्पन्न करती है । (**यद्**) जब (**पुत्रः**) पुत्रभूत अग्नि (**पित्रोः**) द्यु और पृथिवी से (**पूर्वः**) पहले (**अजनिष्ट**) उत्पन्न होता है तब उसे (**गौः**) पृथिवी (**शम्याम्**) शमी वृक्ष में (**जगार**) धारण करती है (**यत्**) जिसके विषय में (**ह**) निश्चय ही (**पृच्छान्**) याज्ञिक लोग पूछते हैं ।

भावार्थः– जब गाय बछड़ा पैदा करती है तब स्वयं पीड़ा को सहन करके उसे पीड़ा रहित पैदा करती है । इसी प्रकार की संसार में सभी जीवों की व्यवस्था है । द्यु और पृथिवी लोक में जो अग्नि पहले पैदा होता है पृथिवी उसे शमी वृक्ष में धारण करती है । इस विषय में याज्ञिक प्रश्न आदि करके जानकारी प्राप्त किया करते हैं ॥१०॥

उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥११॥

पदार्थः— ज्ञानीजन (**उत**) और (**कण्वम्**) मेघ को (**नृषदः**) सूर्य अथवा अग्नि का पुत्र (**आहुः**) कहते हैं, (**उत**) और (**श्यावः**) गतिशील (**वाजी**) सूर्य (**धनम्**) धन को (**आदत्त**), यह मेघ (**कृष्णाय**) किसान के लिए (**रुशद**) रूप और श्री (**प्र अपिन्वत**) देता है, (**अत्र**) इस विषय में (**नकिः**) और कोई भी नहीं (**अस्मै**) इस मेघ के लिए (**ऋतम्**) जल और (**ऊधः**) ओस (**अपीपेत्**) देता है ।

भावार्थः—ज्ञानी लोग कण्व=मेघ को सूर्य अथवा अग्नि का पुत्र मानते हैं क्योंकि ये ही मेघ को बनाते हैं सूर्य वृष्टि आदि के द्वारा सब धनों का धारक=दाता है । मेघ किसान को रूप और श्री देता है । अग्नि वा सूर्य के अतिरिक्त कोई और मेघ को जल और ओस नहीं देता है ॥११॥

यह दशम मण्डल में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३२

ऋषिः—१—९ कवष ऐलूषः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ विराड्-जगती । ३ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ५ आर्चीभुरिग्जगती । ६ त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—५ निषादः ६—९ धैवतः ॥

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥१॥

पदार्थः—(**धियसानस्य**) बुद्धियुक्त कर्म के धनी विद्वान् के (**सक्षणि**) संग (**ग्मन्ता**) जाते हुए स्त्री पुरुष वा यजमान पुरोहित से(**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् विद्वान् (**जुजोषति**) प्रेम करता है, (**प्रसीदतः**) प्रसन्न हुए विद्वान् के (**वरेभिः**) श्रेष्ठ गुणों और कर्मों से दोनों ही (**वरान्**) उत्तम सुखों को (**अभि सु**) प्राप्त करें (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य वाला विद्वान् (**अस्माकम्**) हमारे (**उभयम्**) अन्न जल दोनों को (**जुजोषति**) सेवन करता है क्योंकि वह (**सोम्यस्य**) ऐश्वर्ययुक्त (**अन्धसः**) अन्न को (**बिबोधति**) भली प्रकार जानता है ।

भावार्थः—महान् ऐश्वर्यवाला विद्वान् बुद्धियुक्त कर्म के धनी विद्वान् के साथ संगति करने वाले स्त्री पुरुषों से प्रीति रखता है, स्त्री पुरुषों को चाहिए कि उसके श्रेष्ठ गुणों को धारण कर उत्तम गुण वाले होवें । ऐश्वर्य-शाली विद्वान् हमारे अन्न और जल को भली प्रकार जानकर ग्रहण करता है ॥१॥

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) सूर्य (**दिव्यानि**) आकाश के (**रोचना**) प्रकाशमान और (**पार्थिवानि**) पृथिवी के (**रजसा**) लोकों को (**विवि यासि**) व्याप्त करता है, वह (**पुरुस्तुत**) बहुतों के द्वारा प्रशंसा किया जाता है । (**ये**) जो विद्वान् (**अध्वरान्**) यज्ञों के प्रति (**मुहुः**) बार-बार (**त्वा**) इसे (**उप वहन्ति**) धारण करते हैं (**ते**) वे (**अराधसः**) धन रहित भी होते हुए (**वग्वनान्**) प्रशंसनीय सुख को (**सु वन्वन्त**) बांटते हैं ।

भावार्थः—सूर्य आकाश के तेजोयुक्त और पृथिवी के लोकों को अपने प्रकाश से व्याप्त करता है । जो विद्वान् यज्ञ में बार-बार इस सूर्य के

लिए आहुति देते हैं वे धन रहित होते हुए भी यज्ञ द्वारा प्रशंसनीय सुख लोगों को बांटते हैं ॥२॥

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयती ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३॥

पदार्थः—(**यत्**) जिस प्रकार (**पुत्रः**) पुत्र (**पित्रोः**) माता-पिता से (**जानम्**) जन्म (**अधीयति**) ग्रहण करता है (**तत्**) वैसे हीं (**मे**) मेरा आत्मा (**वपुषः वपुष्टरम्**) उत्तम से उत्तम शरीर को (**छन्त्सत्**) प्राप्त करे (**जाया**) स्त्री (**पतिम्**) पति को (**सुमत्**) उत्तम (**वग्नुना**) वाणी से (**वहति**) प्राप्त करती है (**परिष्कृतः**) उत्तम (**वहतुः**) दहेज (**पुंसः इत्**) पुरुष को ही (**भद्रः**) सुखदायक होता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पुत्र माता-पिता से जन्म ग्रहण करता है वैसे ही जीव उत्तम से उत्तम शरीर में जन्म प्राप्त करे । पत्नी सुन्दर वाणी से अपने पति को ठीक रखती है और प्राप्त हुआ दहेज पुरुष को ही सुखदायी होता है ॥३॥

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र=ऐश्वर्यशाली विद्वन्! (**तत्**) वह (**इत्**) ही (**सधस्थम्**) स्थान (**चारु**) उत्तम प्रकार से आप (**अभि दीधय**) अपने आगमन और ज्ञान प्रदान से दीप्त कीजिए (**यत्**) जहां पर (**न**) संप्रति (**धेनवः**) फलों को देने वाली (**गावः**) वेदवाणियां (**वहतुम्**) हवि आदि के वाहक यज्ञ को (**शासन्**) चाहती हैं तथा (**यत्**) जहां पर (**मन्तुः**) मुझ मननशील यजमान और (**यूथस्य**) ऋत्विक्समूह की (**माता**) मातृभूत स्तुतियां (**पूर्व्या**) ज्ञानादि से पूर्ण हैं और (**सप्तधातुः**) सात धातुओं से बने शरीर वाला यह (**जनः**) जन (**इत्**) ही (**वाणस्य**) वाणी का (**अभि**) अभिभावक है ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप उस मेरे यज्ञस्थान को अपने ज्ञान आदि से दीप्त करो जिसमें समस्त कामनाओं को पूरा करने वाली वेदवाणियां यज्ञ को सम्पन्न करने का साधन बन रही हैं । मुझ मननशील यजमान और ऋत्विक्समूह की स्तुतियां ज्ञान से परिपूर्ण हैं । यह सात धातुओं के पुतले वाला जन ही जहां वाणी का अभिभावक है ॥४॥

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥५॥

पदार्थः—हे यजमान लोगो ! (**देवयुः**) देवों की कामना करने वाला होता (**वः**) आप लोगों के (**अच्छ**) उत्तम (**पदम्**) स्थान को (**प्र रिरिचे**) प्राप्त करता है, (**एकः**) एक (**इन्द्रः**) यज्ञ का मुख्य देव इन्द्र=वायु जो (**तुर्वणिः**) शीघ्र गतिवाला है (**रुद्रैः**) मरुतों के साथ (**याति**) इस यज्ञ में पहुँचता है (**येषु**) इन (**अमृतेषु**) अमर देवों में (**जरा**) मन्त्रोच्चार (**वा**) भी (**दावने**) धनादि देने में समर्थ होता है अतः (**ऊमेभ्यः**) रक्षा करने वाले इन देवों के निमित्त (**वः**) आप लोग (**मधु**) मधुर घृत सामग्री आदि को (**प्रसिञ्चत**) अग्नि में सीचो ।

भावार्थः—हे यजमान लोगो ! यज्ञ को करने वाला होता आपके यज्ञों में स्थान पाता है । इन्द्र=वायु समस्त मरुतों के साथ यज्ञ में पहुंचता और यज्ञीय हवि आदि को ग्रहण करता है । इन यज्ञ के देवों के निमित्त अग्नि में डाला पदार्थ और मन्त्रोचार आदि धनों के दाता हैं । अतः इन रक्षक देवों के निमित्त सभी आप लोग यज्ञ किया करो ॥५॥

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) विद्वानों के (**व्रतपाः**) व्रत और नियम के पालक (**इन्द्रः**) यजमान ने (**मे**) मुझे (**निधीयमानम्**) पदार्थों में घृत तथा (**अप्सु**) अन्तरिक्ष एवं जलों में (**अप गूढम्**) छिपे वा व्याप्त अग्नि के विषय में (**प्र उवाच**) बताया है, (**विद्वान्**) विद्वान् (**हि**) निश्चय से (**त्वा**) इस अग्नि को (**अनुचचक्ष**) देखता है, उस विद्वान् के द्वारा (**अनुशिष्टः**) शिक्षा पाकर (**अहम्**) मैं (**अग्ने**) अग्नि को (**आगाम्**) जानता हूँ ।

भावार्थः—देवों के नियम को पालने वाला यजमान यह बताता है कि अग्नि सभी पदार्थों और अन्तरिक्ष एवं जलों में छिपा है । विद्वान् ही उसे देख सकता है और विद्वान् के द्वारा शिक्षा पाया हुआ ही उसे जान पाता है ॥६॥

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्तुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥७॥

पदार्थः—(**अक्षेत्रविद्**) शरीर आदि क्षेत्रों एवं मार्ग का न जानने वाला (**क्षेत्रविदम्**) शरीर आदि क्षेत्र एवं मार्ग को जानने वाले से (**हि**) निश्चय (**अप्राट्**) पूछता है, (**क्षेत्रविदा**) क्षेत्रविद से (**अनुशिष्टः**) शिक्षित होकर (**सः**) वह (**प्र एति**) इस ज्ञान वा मार्ग को प्राप्त करता है, (**अनुशासनस्य**) अनुशासन का (**एतत्**) यह (**वै**) ही (**भद्रम्**) कल्याणदायक फल है, (**उत**) कि अनुशिष्ट (**अञ्जसीनाम्**) ज्ञान के प्रकाश करने वाली (**स्तुतिम्**) मार्ग को **विन्दति**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—अज्ञ आदमी ज्ञानी से पूछता है । उसके द्वारा अनुशिष्ट हुआ वह अज्ञ उत्तम मार्ग को प्राप्त होता है । अनुशासन का हीं यह उत्तम परिणाम है कि अनुशिष्ट हुआ व्यक्ति ज्ञान के प्रकाशक मार्ग को प्राप्त करता है ।।७।।

अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥८॥

पदार्थः—(**अद्य इत् उ**) आज ही (**प्राणीत्**) प्राण लेने लगता है तथा (**इमा**) इन (**अहा**) नाना संकल्पों को (**अममन्**) सोचने लगता है (**अपिवृतः**) देह में आवृत रहकर (**मातुः**) माता के (**ऊधः**) स्तन को (**अधयत्**) पान करता है (**एनम् ईम्**) इस (**युवानम्**) युवा को (**जरिमा**) वाणी की शक्ति (**आप**) आती है (**अहेळन्**) विना क्रोध किये **वसुः**) गुरु के पास वास करता हुआ (**सुमनाः**) उत्तम मन वाला (**बभूव**)हो जाता है ।

भावार्थः—जीव गर्भ में प्राण धारण करता है तथा नाना संकल्पों को सोचने लगता है । पैदा होकर देह में रहकर माता के स्तन का पान करता हैं । वाणी की शक्ति से युक्त होकर गुरु के पास निवास कर योग्य मन और बुद्धि वाला हो जाता है ।।८।।

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥९॥

पदार्थः—(**कलश**) कलाओं से युक्त (**कुरु श्रवण**) हे ऋत्विजों की सुनने वाले इन्द्र=विद्वन् अथवा राजन् ! (**मघानि**) धनों को (**ददतः**) देने वाले तेरे लिए (**एतानि**) इन (**भद्रा**) कल्याणकारक यज्ञ आदि कर्मों को (**क्रियाम**) हम करते हैं, (**मघवानः**) हे यज्ञ करने वाले लोगो ! (**सः**) वह राजा (**वः**) आप लोगों का (**दानः इत्**) दाता (**अस्तु**) है, (**च**) और (**अयम्**) यह (**सोमः**) वह परमेश्वर (**यम्**) जिसको (**हृदि**) हृदय में (**बिभर्मि**) धारण करता हूँ, वह भी दाता है ।

भावार्थः—यजमान आदि कहते हैं कि हे राजन् ! आप ऋत्विजों द्वारा की गई स्तुति को सुनने वाले हैं । हम धनों के देने वाले आपके लिए यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करते हैं । हे धन वाले लोगो ! यह राजा आप को धन आदि का दाता है । तथा वह परमेश्वर भी हमें धन आदि देता है जिसे हम अपने हृदय में धारण करते हैं ।।९।।

यह दशम मण्डल का बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३३

ऋषिः - १—९ कवष ऐलूषः । **देवताः**—१ विश्वेदेवाः । २, ३ इन्द्रः । ४, ५ कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः । ६—९ उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः ॥ **छन्दः**—१ त्रिष्टुप् । २ निचृद्बृहती । ३ भुरिग्बृहती । ४—७, ९ गायत्री । ८ पादनिचृद्गायत्री ॥ **स्वरः**—१ धैवतः २, ३ मध्यमः, ४—९ षड्जः ॥

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥

पदार्थः—(**प्रयुजः**) उत्तम मार्ग पर प्रवृत्त करने वाले विद्वज्जन (**मा**) मुझे (**प्र युयुज्रे**) उत्तम मार्ग पर ले जावें (**जनानाम्**) जनों के (**पूषणम्**) पोषक परमेश्वर को (**अन्तरेण**) योग आदि मार्गान्तरों से(**वहामि**) धारण करूं, (**विश्वेदेवासः**) समस्त दिव्य शक्तियां (**माम्**) मेरी (**अरक्षन्**) रक्षा करें, (**अध**) और (**दुःशासुः**) जिस पर कोई शासन नहीं कर सकता ऐसा प्रभु (**आगात्**) हमें प्राप्त हो (**इति**) ऐसा (**घोषः**) उपदेश (**आसीत्**) है ।

भावार्थः—उत्तम मार्ग पर प्रवृत्त करने वाले विद्वज्जन मुझे उत्तम मार्ग पर ले जावें। जनों के पालक भगवान् को मैं योग आदि के मार्ग से प्राप्त करूं। समस्त दिव्य शक्तियां मेरी रक्षा करें, परमेश्वर मुझे प्राप्त हो, ऐसा उपदेश है ॥१॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥२॥

पदार्थ—(**मा**) मुझ मनुष्य को (**सपत्नीः इव**) सपत्नी के समान, (**पर्शवः**) पार्श्वास्थियां (**अभितः**) चारों तरफ से (**तपन्ति**) सन्तप्त करती हैं (**अमतिः**) दारिद्रय जनित दुःख (**मा**) मुझे (**निबाधते**) दुःख देता है (**नग्नता**) वस्त्रहीनता भी बाधा पहुंचाती (**जसुः**) उपक्षय भी दुःख देता है (**वेः**) पक्षी की (**न**) भांति (**मतिः**) मति (**वेवीयते**) कम्पायमान रहती है।

भावार्थः—मुझ जीव को दरिद्रता के कारण पार्श्व की अस्थियां सपत्नी की भांति सताती हैं, दरिद्रता से उत्पन्न दुःख, नग्नता और उपक्षय मुझे दुःखी करते हैं। पक्षी की भांति मेरी बुद्धि सदा अस्थिर रहती है ॥२॥

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥३॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**मूषः**) मूषक (**शिश्ना**) रस से भीगे सूतों को खा जाता है उसी प्रकार (**आध्यः**) चिन्तायें एवं व्यथायें (**मा**) मुझको (**वि अदन्ति**) खाये डालती हैं (**शतक्रतो**) हे सर्वज्ञ (**इन्द्र**) परमेश्वर (**मघवन्**) धनों के स्वामी आप (**नः**) हमें (**सकृत्**) सर्वथा (**सु मृडय**) सुखी कर (**अध**) और (**नः**) हमारे (**पिता इव**) पिता के समान हो।

भावार्थः—संसार में व्यथायें उसी प्रकार मनुष्य को खाये डालती हैं जैसे चूहा रस से भीगे सूत्र को खाता है। परमेश्वर सब का पिता है अतः वही सुखी कर इन व्यथाओं से दूर कर सकता है ॥३॥

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् । मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥४॥

पदार्थः—(**ऋषिः**) अतीन्द्रिय पदार्थद्रष्टा मैं (**त्रासदस्यवम्**) शत्रुसंहारक राजा के पुत्र (**कुरुश्रवणम्**) ऋत्विजों के भक्त (**वाघताम्**) ऋत्विजों को (**मंहिष्ठम्**) दान देने वाले (**राजानम्**) राजा को अपनी आवश्यकताओं के लिए (**आवृणि**) प्राप्त करता हूँ।

भावार्थः—अतीन्द्रिय पदार्थों का द्रष्टा मैं अत्यन्त शत्रुसंहारक, ऋत्विजों और विद्वानों की बात सुनने वाले, उन्हें दान देने वाले राजा के पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए जाता हूँ ॥४॥

यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया । स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥५॥

पदार्थः (**यस्य**) जिसके (**रथे**) रथ में (**तिस्रः**) तीन **हरितः**) घोड़े (**मा**) मुझको (**साधुया**) भली प्रकार (**वहन्ति**) ले जाते हैं (**सहस्रदक्षिणे**) अधिक दान देने वाले उस राजा की समृद्धि के लिए मैं (**स्तवै**) स्तुति करता हूं।

भावार्थः जिसके दिये रथ में तीन घोड़े मुझे भली प्रकार ले जाते हैं ऐसे दानशील राजा की समृद्धि के लिए मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः । क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥६॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस (**उपम श्रवसः**) अति यशस्वी के (**पितुः**) पिता की (**गिरः**) वाणियां (**प्रस्वादसः**) इतनी प्रिय हैं (**न**) जिस प्रकार (**ऊचुषे**) दान चाहने वाले पुरुष के लिए (**रण्वम्**) रमणीय (**क्षेत्रम्**) क्षेत्र प्रिय है।

भावार्थः—जिस अति धनी एवं यशस्वी राजा के पिता की वाणियाँ इतनी प्रिय हैं जितना कि दान चाहने वाले को रमणीय क्षेत्र प्रिय होता है, वह प्रशंसनीय है ॥६॥

अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि । पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥७॥

पदार्थः—(**उपमश्रवः**) हे अति धनिन् राजन् आप (**मित्रातिथेः**) अतिथियों के मित्र राजा के (**नपात्**) वंश को न नष्ट होने देने वाले (**पुत्रः**) पुत्र हो, (**अधि इह**) यह समझो, मैं (**ते**) आप के (**पितुः**) पिता का (**वन्दिता**) प्रशंसक (**अस्मि**) हूँ।

भावार्थः—हे अतिधनिन् ! अतिथियों के मित्र राजा की वंश परम्परा को चलाने वाले पुत्र ! मैं आप के पिता का प्रशंसक हूँ, ऐसा आप समझो ॥७॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् । जीवेदिन्मघवा मम ॥८॥

पदार्थः (**यत्**) जो (**अमृतानाम्**) इन्द्रिय आदि देवों (**उत वा**) और (**मर्त्यानाम्**) मरणधर्मा शरीर आदि पर (**ईशीय**) अपना वश हो (**इत्**) तो (**मम**) मेरा (**मघवा**) धन दाता राजा भी (**जीवेत्**) जीता रह सके ।

भावार्थः यहां यह संभावना और हेतु वर्णन किया गया है कि यदि इन्द्रिय आदि मोक्ष पर्यन्त बने रहने वाले अमृत पदार्थों और मरणधर्मा शरीर पर अपना वश चले तो दानी राजा भी जीता रह सके, मरे नहीं ॥८॥

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति ।
तथा युजा वि वावृते ॥९॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) देवों के (**व्रतम्**) नियम का (**अति**) अतिक्रमण करके (**शतात्मा चन**) सौ वर्ष तक भी कोई (**न**) नहीं (**जीवति**) जीता है (**तथा**) और (**युजा**) शरीर, मित्र आदि के साथ वह [मरकर] (**वि वावृते**) नियुक्त होता है ।

भावार्थः—देवों के अर्थात् इन्द्रिय आदि शरीरस्थ और प्राकृतिक बाह्य देवों के नियम का उल्लंघन करने वाला सौ वर्ष नहीं जी सकता है। मरकर उसे पुनः शरीर और बन्धु-बान्धवों से युक्त होना पड़ता है ॥९॥

यह दशम मण्डल में तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३४

ऋषिः—१—१४ कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान् ॥ देवता—१, ७, ९, १२, १३, अक्षकृषिप्रशंसा । २—६, ८, १०, ११, १४, अक्षकितवनिन्दा ॥ छन्दः—१, २, ८, १२, १३ त्रिष्टुप् । ३, ६, ११, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, ९, १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ जगती ॥ स्वरः—१ ६, ८—१४ धैवतः । ७ निषादः ॥

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

पदार्थः—(**इरिणे**) सूखे कूप में (**वर्वृतानाः**) उत्पन्न अथवा निर्धन अवस्था को प्राप्त कराने वाले **बृहतः**) बड़े भारी (**प्रवातेजाः**) बीच प्रदेश में उत्पन्न हुए, (**प्रावेपाः**) कम्पनशील अक्ष=पासे (**मा**) मुझको (**मादयन्ति**) हर्षित करते हैं, (**विभीदकः**) बहेड़े के वृक्ष का यह गोटा (**मौजवतः**) भूज से युक्त पर्वत पर उत्पन्न हुए (**सोमस्य**) सोम रस के (**भक्षः इव**) पेय वा खाद्य के समान (**जागृविः**) जीता जागता (**मह्यम्**) मुझे (**अच्छान्**) हर्षित करता है ।

भावार्थः - इस सूक्त के मन्त्रों में जुआ खेलने की निन्दा और कृषि की प्रशंसा की गई है। प्रसंगतः द्यूत का प्रेमी कहता है-निर्धनता की अवस्था में ले जाने वाले नीच प्रदेश में उन्पन्न कम्पनशील अक्ष=द्यूत के पासे मुझे प्रसन्नता देतेहैं और विभीदक=वहेड़े की लकड़ी से बना यह गोटा उसी प्रकार हर्षित करता है जिस प्रकार मूज के घिरे पर्वत में उत्पन्न सोम=गिलोय आदि का रस हर्षित करता है ॥१॥

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥२॥

पदार्थः –(**एषा**) यह मेरी पत्नी (**माम्**) मुझ कितव=द्यूतखोर को (**न**) नहीं (**मिमेथ**) क्रोध करती और (**न**) नहीं (**जिहीडे**) लज्जा करती है (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिए (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**आसीत्**) है, (**उत**) और (**मह्यम्**) मेरे लिए भी कल्याणकारिणी (**आसीत्**) है, इस प्रकार की (**अनुव्रताम्**) अनुकूल (**जायाम्**) पत्नी को (**एकपरस्य**) एक ही की प्रधानता वाले (**अक्षस्य**) द्यूत के पासे के (**हेतोः**) कारण से (**अप अरोधम्**) रखता नहीं अथवा द्यूत पासे पर हार जाता हूं ।

भावार्थः - वह कहता है कि मेरी पत्नी न मुझ पर कभी क्रोध करती और न मुझ से लज्जा करती है, मेरे लिए और मेरे मित्रों के लिए हितकारिणी है। ऐसी अनुव्रता और पतिव्रता पत्नी को भी मैं द्यूत के पासे के कारण छोड़ बैठता हूँ अथवा हार देता हूँ ॥२॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥३॥

पदार्थः हारे जुआरी की (**श्वश्रूः**) सास भी (**द्वेष्टि**) द्वेष करती है, (**जाया**) पत्नी भी (**अप रुणद्धि**) विरक्त हो जाती है, (**नाथितः**) मांगता हुआ

भी (मर्डितारम्) कोई धन देने वाला (न) नहीं (विन्दते) पाता है, (जरितः) बूढ़े (वस्न्यस्य) मूल्यार्ह (अश्वस्य) घोड़े के (इव) समान (कितवस्य) जुआरी के (भोगम्) सुख और रक्षा को (अहम्) मैं विचारक (न) नहीं (विन्दामि) पाता हूं ।

भावार्थः-जुआरी आदमी को सास द्वेष करती है, पत्नी भी विरक्त हो जाती है, मांगता हुआ भी वह कहीं पैसा देने वाला नहीं पाता। मूल्यवान बूढ़े घोड़े के समान उसके सुख और रक्षा को मैं विचारक कहीं भी नहीं देखता हूँ ॥३॥

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥४॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस जुआरी के (**वेदने**) धन पर (**वाजी**) बलवान् (**अक्षः**) जुए का पासा (**अगृधद्**) आकांक्षा रखता है उस (**अस्य**) इस जुआरी की (**जायाम्**) पत्नी को (**अन्ये**) दूसरे जुआरी (**परिमृशन्ति**) हथियाते हैं, (**पिता**) जुआरी के पिता, (**माता**) माता और (**भ्रातरः**) भाई लोग भी (**एनम्**) इसे लक्ष्य करके (**आहुः**) कहते हैं कि (**न**) नहीं (**जानीमः**) जानते हैं कि यह कौन है, (**बद्धम्**) बांधकर (**एतम्**) इसको (नयत) ले जाओ ।

भावार्थः—जिसके धन पर जुए के पासे ने अपनी आकांक्षा जमा ली है उस जुआरी की पत्नी को भी दूसरे जुआरी हथियाते हैं वा तंग करते हैं। उसके पिता, माता और भाई लोग कहते हैं कि वे उसको नहीं जानते हैं कि वह कौन है ? उसे बांध कर ले जाओ ॥४॥

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥

पदार्थः—जुआरी कहता है कि मैं व्यसनी पुरुष ((**यद्**) जब (**आदीध्ये**) ध्यान करता हूं तब (**एभिः**) इनके द्वारा (**न**) नहीं (**दविषाणि**) दुःखी होता हूँ (**परायद्भ्यः**) दूसरे आने वाले (**सखिभ्यः**) मित्र तुल्य उनके लिए (**अव हीये**) ध्यान देता हूँ, वे (**बभ्रवः**) लाल पीले रंगों वाले (**न्युप्ताः**) फेंके जाकर (**वाचम्**) आवाज (**अक्रत**) करते हैं और मैं भी (**एषाम्**) इनके (**निष्कृतम्**) स्थान पर (**जारिणी इव**) जारिणी के समान (**एमि एव**) चला जाता हूँ ।

भावार्थः—व्यसनी जुआरी कहता है कि जब इन पासों को मैं देखता हूँ तो दुःखी नहीं होता, दूर से आने वाले पासों को मित्र के समान समझकर ध्यानपूर्वक देखता हूँ। लाल पीले चमकीले रंग के ये पासे फेंके गए हुए आवाज करते हैं और मैं भी जारिणी स्त्री के समान इनके स्थान पर पहुँच जाता हूं ॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

पदार्थः—(**तन्वा**) शरीर से (**शूशुजानः**) चमकता हुआ (**पृच्छमानः**) पूछता हुआ (**कितवः**) द्यूत व्यसनी (**सभाम्**) द्यूत सभा में (**एति**) आता है (**जेष्यामि**) 'मैं जीतूंगा' (**इति**) ऐसा समझकर (**प्रतिदीव्ने**) प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिए (**कृतानि**) चालबाजी की (**आ दधतः**) अपनाने वाले (**अस्य**) इस जुआरी के (**अक्षासः**) पासे (**कामम्**) धनाभिलाषा को (**वि तिरन्ति**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः- व्यसनी जुआरी शरीर से चमकता हुआ और पूछता हुआ कि किसके पास पैसा है द्यूत सभा में आता है । 'मैं जीतूंगा' ऐसा सोचता हुआ प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिए चालबाजी करता है और इसके पासे उसकी धनेच्छा को बढ़ाते हैं ॥६॥

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥७॥

पदार्थः—(**अक्षाः इव**) अक्ष ही (**अंकुशिनः**) अंकुश वाले हैं, (**नितोदिनः**) प्रतिपक्षी को व्यथित करने वाले (**निकृत्वानः**) पराजय में काटने वाले (**तपनाः**) तपाने वाले (**तापयिष्णवः**) संताप पैदा करने वाले होते हैं । (**जयतः**) जीतने वाले (**कितवस्य**) जुआरी के लिए (**कुमारदेष्णा**) धन देने से कुमारों के दाता तथा प्रतिपक्षी जुआरी द्वारा (**मध्वा**) मधु से (**संपृक्ताः**) सम्पृक्त और (**बर्हणा**) सर्वस्वहरण से इसके (**पुनर्हणः**) पुनर्हन्ता भी होते हैं ।

भावार्थः - ये पासे ही जुआरी की दृष्टि में अंकुश वाले, व्यथा देने वाले, निकर्त्ता और हार में ताप देने वाले है । जीतने वाले जुआरी के लिए जहां ये धन आदि के दाता हैं वहां जब प्रतिपक्षी जुआरी से वह हराया जाता है तो उसके हन्ता भी हैं ॥७॥

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

पदार्थः—(**एषाम्**) इन अक्षों का (**त्रिपंचाशः**) तिरपन गोटों का (**व्रातः**) समूह (**सत्यधर्मा**) सत्यनियम पर चलने वाला (**सविता**) सूर्य (**देवः**) देव के (**इव**) समान (**क्रीडति**) खेल में चालू रहता है, (**उग्रस्य चित्**) उग्र के भी (**मन्यवे**) क्रोध को भी ये (**न**) नहीं (**नमन्ते**) झुकते हैं (**राजा चित्**) राजा भी यदि जुआ खेलता है तो (**एभ्यो**) इनके लिए (**नमः इत्**) नमन ही (**कृणोति**) करता है ।

भावार्थः—जैसे सत्यधर्मा सूर्य देव सर्वत्र विहरते हैं उसी प्रकार तरेपन अक्षों का यह समूह चौपड़ विहरता है । किसी उग्र के भी क्रोध के सामने ये नम्रीभूत नहीं होते हैं । राजा भी अगर जुआरी है तो इनके सामने झुक जाता है ॥९॥

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

पदार्थः—ये अक्ष (**नीचा**) नीचे (**वर्तन्त**) होते हैं तथापि (**उपरि**) ऊपर (**स्फुरन्ति**) स्फुरित होते हैं, (**अहस्तासः**) विना हाथ वाले होते हुए भी (**हस्तवन्तम्**) हाथ वालों को (**सहन्ते**) दबा लेते हैं (**दिव्याः**) दिव्य (**अंगाराः**) अंगारे के समान ये अक्ष (**इरिणे**) इन्धनरहित चौपड़ पर (**न्युप्ताः**) फेंके गए (**शीताः**) शीतल (**सन्तः**) होते हुए भी (**हृदयम्**) जुआरियों के हृदय को (**दहन्ति**) पराजय से जलाते हैं ।

भावार्थः—ये अक्ष नीचे रहते हैं फिर भी ऊपर स्फुरित होते हैं । विना हाथ के होते हुए भी ये हाथ वाले जुआरियों को दबा लेते हैं । चौपड़ पर फेंके गए शीतल होते हुए भी ये दिव्य अङ्गारों के समान जुआरियों के हृदय को हार से होने वाले संताप से जलाते हैं ॥९॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

पदार्थः—(**कितवस्य**) जुआरी की (**हीना**) त्यक्त पत्नी (**तप्यते**) वियोग से दुःखी होती है (**क्वस्वित्**) कहीं भी (**चरतः**) विचरते हुए इस व्यसनी की (**माता**) माता भी दुःखी होती है । वह स्वयं (**ऋणावा**) ऋणग्रस्त होकर (**धनम्**) धन (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**विभ्यत्**) डरता हुआ, (**नक्तम्**) रात्रि में (**अन्येषाम्**) दूसरों के (**अस्तम्**) घर को चोरी करने (**एति**) जाता है ।

भावार्थः—जुआरी की छोड़ी हुई पत्नी संतप्त होती है । कहीं भी विचरने वाले इस व्यसनी की माता भी संताप करती है । वह ऋणी होकर धन की इच्छा करता हुआ रात्रि में दूसरों के घर चोरी करने जाता है ॥१०॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

पदार्थः—(**कितवम्**) जुआरी (**स्त्रियम्**) पत्नी को देखकर तथा (**अन्येषाम्**) दूसरों की (**जायाम्**) पत्नी, (**सुकृतम्**) उत्तम कर्म (**च**) और (**योनिम्**) गृह को (**दृष्ट्वाय**) देखकर (**ततापा**) दुःखी होता है, (**हि**) निश्चय ही वह (**पूर्वाह्णे**) दिन के पूर्व भाग में (**बभ्रून्**) शुभ्रवर्ण (**अश्वान्**) अश्वों के समान अक्षों को (**युयुञ्जे**) जोड़ता है और (**सः**) वह (**वृषलः**) पातकी मूढ (**अग्नेः**) अग्नि के (**अन्ते**) पास में रात्रि को (**पपाद**) जा गिरता है ।

भावार्थः—जुआरी अपनी स्त्री और दूसरों की स्त्री, उनके उत्तम कर्म और गृह को देखकर मन में संतप्त होता है । दिन के पूर्व भाग में पासे जोड़ता है और रात्रि में सर्दी से बचने से लिए अग्नि के पास पड़ जाता है ॥११॥

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

पदार्थः—जुआरी कहता है—मैं (**तस्मै**) उसे (**दश**) दश अंगुलियां (**कृणोमि**) करता हूँ अर्थात् अंजलि बांधकर नमस्कार करता हूँ (**यः**) जो (**वः**) तुम अक्षों के (**महतः**) बड़े (**गणस्य**) समूह (**व्रातस्य**) संघ का (**प्रथमः**) मुख्य (राजा) स्वामी (**सेनानीः**) नेता (**बभूव**) है, मैं (**दशः**) दश अंगुलियों को (**प्राचीः**) सामने (**कृणोमि**) करता हूं मैं (**धना**) धन को अक्षों के लिए (**न**) नहीं (**रुणध्मि**) लगाऊंगा (**तत्**) वह यह मैं (**ऋतम्**) सत्य ही (**वदामि**) कहता हूं ।

भावार्थः—जुआरी कहता है कि वह इन अक्षों के महान् समूह के

नेता को नमस्कार करता है। वह अंजलि जोड़ता है कि इनके लिये धन का संपादन नहीं करेगा और वह उसका कथन सत्य है ॥१२॥

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥

पदार्थः –विद्वान् इस पर उपदेश देते हुए कहता है –हे (**कितव**) जुआरी! (**अक्षैः**) अक्षों के साथ (**मा**) मत (**दीव्यः**) खेल अर्थात् द्यूत मत खेल (**कृषिम्**) खेती (**इत**) ही (**कृषस्व**) कर, इस प्रकार खेती से उत्पन्न (**वित्ते**) धन में (**रमस्व**) प्रसन्न हो, वा खेलो (**तत्र**) उसी में (**गावः**) गायें हैं (**तत्र**) उसी में (**जाया**) स्त्री भी प्राप्त होती है इसे (**बहु**) बहुत (**मन्वमानः**) स्वीकार करते हुए तुम खेती करो और द्यूत छोड़ो (**मे**) मेरे लिए (**अयम्**) यह (**अर्यः**) स्वामी (**सविता**) सबके प्रेरक विद्वान् ने (**चष्टे**) कहा है।

भावार्थः—विद्वान् इस पर उपदेश देते हुये कहता है—हे जुआरी जुआ खेलना छोड़, खेती कर। मेरी बात पर विश्वास करता हुआ खेती से उत्पन्न धन में खेल। उसी में गायें मिलती हैं और उसी में जाया भी प्राप्त होती हैं। मेरे लिये यही सबके प्रेरक स्वामी विद्वान् ने कहा है ॥१३॥

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥

पदार्थः – द्यूत के दोष को समझकर जुआरी कहता है –हे मनुष्यो! (**मित्रम्**) मित्र (**कृणुध्वम्**) बनाओ, हमें अपना और अपने को हमारा, (**नः**) हमें (**मृळत**) सुखी को (**खलु**) निश्चय ही (**नः**) हमें (**धृष्णु**) दुःखजनक (**घोरेण**) संताप देने वाले क्रोध से (**मा**) मत (**अभिचरत**) व्यवहार करो। (**मन्युः**) क्रोधी, (**अरातिः**) अभिमानी (**वः**) आप में (**निविशताम्**) क्रोध आदि का परित्याग करके, मिल जावें (**अन्यः**) शत्रु प्रजापालक राजाओं के (**प्रसितौ**) वश में (**नु**) निश्चय (**अस्तु**) रहे।

भावार्थः –द्यूत के दोष को समझ कर जुआरी अब जुआरी न रहकर कहता है–हे मनुष्यो! हमें बनाओ अपना मित्र और बनो हमारे आप मित्र। हमें सुखी करो। अभिमानी और क्रोधी अपने अभिमान और क्रोध को त्याग कर आप में मिल जावें। शत्रु प्रजापालक राजा के वश में रहे ॥१४॥

यह दशम मण्डल में चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३५

ऋषिः –१–१४ लुशो धानाकः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ६, ६, ११ विराड्जगती। २ भुरिग्जगती। ३, ७, १०, १२ पादनिचृज्जगती। ४, ८ आर्चीस्वराड्जगती। ५ आर्चीभुरिग्जगती। १३ निचृत्त्रिष्टुप्। १४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–१२ निषादः। १३, १४ धैवतः ॥

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

पदार्थः– (**इन्द्रवन्तः**) वायु को साथ लिए (**त्ये**) वे (**अग्नयः**) अग्नियें (**व्युष्टिषु**) उषा के (**उषसः**) उषा के (**भरन्तः**) धारण किये हुए (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**भरन्तः**) धारण किये हुए (**उषसः**) उषा के (**व्युष्टिषु**) उदय के समयों में (**अबुध्रम् उ**) जागृत हो जाती हैं। (**मही**) महती (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अपः**) अपने कार्य को (**चेतताम्**) करने लगते हैं (**अद्य**) आज हम (**देवानाम्**) सूर्य वायु आदि दिव्य शक्तियों के (**अवः**) रक्षण को (**आ वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं।

भावार्थः - वायु को साथ लिये हुए ये अग्नियें उषा के उदयकाल में जागृत हो जाती हैं। महान् द्यु और पृथिवी लोक अपना कार्य करते हैं। आज हम दिव्य पदार्थों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥१॥

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातृन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

पदार्थ—(**दिवः पृथिव्योः**) द्यु और पृथिवी के (**अवः**) रक्षण कार्य को (**आवृणीमहे**) हम स्वीकार करते हैं, (**मातृन्**) माता के तुल्य निर्माण कार्य करने वाली (**सिन्धून्**) नदियों, (**शर्वणावतः**) सरोवरों से युक्त (**पर्वतान्**) पर्वतों को और उनके लाभ को स्वीकार करते हैं, (**अनागस्त्वम्**) निर्दोषता को प्राप्त करें और (**उषसम्**) उषा तथा (**सूर्यम्**) सूर्य को (**ईमहे**) जानें।

भावार्थः द्यु लोक और पृथिवी की रक्षणशक्ति को हम मानते हैं नदियों और कासारों से युक्त पर्वतों के लाभ को स्वीकार करते हैं। हम निर्दोषता प्राप्त करें, और उषा तथा सूर्य के कार्य और प्रभाव को समझें ॥२॥

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥३॥

पदार्थः—भगवान् की कृपा से (**मही**) महान् (**मातरा**) सबकी माता के समान (**द्यावा पृथिवी**) आकाश और भूमि (**अद्य**) आज कल सदा (**अनागसः**) अपराधरहित (**नः**) हम लोगों को (**सुविताय**) सुख के लिये (**त्रायेताम्**) रक्षा करें, (**उच्छन्ती**) उदय को प्राप्त होती हुई (**उषाः**) उषाएं (**अघम्**) रोग आदि दोष को (**अप बाधताम्**) दूर भगावें, (**समिधानम्**) भली प्रकार दीप्त (**अग्निम्**) अग्नि को (**स्वस्ति**) सुख के लिये (**ईमहे**) जानें और प्राप्त करें ।

भावार्थः—परमेश्वर की कृपा से आकाश और भूमि हम निरपराधों की रक्षा करें । उषा उदित होती हुई हमारे रोग आदि दोषों को हटावें और प्रदीप्त अग्नि को हम कल्याणकारी बनावें और उसको जानें ॥३॥

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

पदार्थः (**रेवती**) धन वाली (**इयम्**) यह (**प्रथमा**) मुख्य (**उस्रा**) दीप्त उषा (**सनिभ्यः**) स्तुति करने वाले (**नः**) हम लोगों को (**सुदेव्यम्**) उत्तम एवं दिव्य (**रेवत्**) धन वा ऐश्वर्य को देती हुई (**व्युच्छतु**) उदित होवे । (**दुर्विदत्रस्य**) दुर्धन पुरुष के (**मन्युम्**) क्रोध को (**आरे**) दूर (**धीमहि**) फेंकते हैं । (**समिधानम्**) सुदीप्त (**अग्निम्**) सूर्य रूप अग्नि को स्वस्ति कल्याण के लिए हम (**ईमहे**) जानें और प्राप्त करें ।

भावार्थः—हम भगवान् की स्तुति और भक्ति करने वालों को यह उषा धन देती हुई उदित होवे और दुर्धन पुरुष के क्रोध को हम अपने से दूर फेंकें । दीप्त सूर्य को हम जानें और उससे लाभ उठावें ॥४॥

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥५॥

पदार्थः—(**याः**) जो (**उषसः**) उषायें (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**रश्मिभिः**) किरणों से (**प्रसिस्रते**) संयुक्त होती हैं और (**व्युष्टिषु**) उदय के समयों में (**ज्योतिः**) तेज को (**भरन्तीः**) धारण करती हुई (**अद्य**) अब भी जब भी सदा ही (**भद्राः**) कल्याणकारिणी हुई (**नः**) हमारे लिए (**श्रवसे**) अन्न आदि के लिये (**व्युच्छत**) उदित होवें । प्रदीप्त विद्युत् रूप अग्नि को हम जानें और अपने कल्याण के लिए प्राप्त करें ।

भावार्थः—जो उषायें सूर्य की किरणों के साथ संगत होती हैं और तेज को धारण करती है वे हमें अन्नादि की प्राप्ति के लिए उदित होवें और हम विद्युद्रूप अग्नि को जानें और अपने कल्याण के लिए प्राप्त करें ॥५॥

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

पदार्थः—(**अनमीवाः**) रोगों से रहित (**उषसः**) उषायें (**नः**) हमें (**आचरन्तु**) प्राप्त हों, और (**बृहता**) बृहत् (**ज्योतिषा**) तेज से युक्त (**अग्नयः**) अग्नियें (**उत् जिहताम्**) प्राप्त हों, (**अश्विना**) प्राण और अपान (**तूतुजिम्**) शीघ्रगामी (**रथम्**) रमणीय शरीर रथ को (**अयुक्षाताम्**) युक्त हो चलावें, (**समिधानम्**) प्रदीप्त (**अग्निम्**) जाठराग्नि को हम कल्याणार्थ समझें ।

भावार्थः—उषायें रोगों से रहित रहें, अग्नियें ज्योति से युक्त रहें और प्राण तथा अपान शरीर में युक्त हो उसे चलाते रहें । जाठराग्नि के कार्य को हम जानें ॥६॥

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

पदार्थः—(**सवितः**) सूर्य (**नः**) हमारे लिए (**अद्य**) रोज (**वरेण्यम्**) वरणीय (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**भागम्**) सेवनीय धन आदि को (**आसुव**) प्रेरित करता है, (**सः**) वह (**हि**) ही (**रत्नधाः**) समस्त प्रकाशों का देने वाला (**असि**) है मैं (**रायः**) धन को उत्पन्न करने वाली (**धिषणाम्**) बुद्धि और वेदवाणी की (**उप ब्रुवे**) प्रशंसा करता हूं (**समिधानम्**) सभी भूतों में प्रदीप्त भूतपति (**अग्निम्**) अग्नि को (**स्वस्ति**) कल्याण के लिए (**ईमहे**) जाने ।

भावार्थः—सूर्य प्रतिदिन हमें श्रेष्ठ धन आदि पदार्थ प्रदान करता है । वह समस्त प्रकाशों का दाता है । धन को देने वाली बुद्धि और वेदवाणी की मैं प्रशंसा करता हूं । हम समस्त प्राणियों में प्रदीप्त भूतपति अग्नि को जानें ॥७॥

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥८॥

पदार्थः–(**तत्**) उस (**ऋतस्य**) सृष्टिनियम के एवम् (**देवानाम्**) देवों सम्बन्धी (**प्रवाचनम्**) ज्ञानोपदेश को (**यत्**) जिसे (**मनुष्याः**) हम मनुष्य लोग (**अमन्महि**) ज्ञान प्राप्त करते हैं, (**मा**) मुझे (**पिपर्त्तु**) रक्षित और पालित रक्खें, (**सूर्यः**) सूर्य (**विश्वाः इत्**) सारी ही (**उस्राः**) उषाओं को (**स्पट्**) स्पर्श करता हुआ (**उदेति**) उदित होता है । हम सूर्य की किरणों में दीप्त अग्नि के ताप और आकर्षण को जानें ।

भावार्थः- सृष्टि के नियम और देवों सम्बन्धी ज्ञानोपदेश जिनको मनुष्य मात्र चाहते हैं हमारी रक्षा करें । सूर्य सारी ही उषाओं को स्पर्श करता हुआ उदित होता है । हम सूर्य की किरणों में विद्यमान ताप और आकर्षण की शक्ति को जानें ॥८॥

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥९॥

पदार्थः (**अद्य**) रोज ही (**बर्हिषः**) अन्तरिक्ष के (**स्तरीमणि**) विस्तृत स्तर वा विस्तार में, (**ग्राव्णाम्**) विद्वानों के (**योगे**) सहवास में (**मन्मनः**) मनोरथ की (**साधे**) सिद्धि के समय में हम (**अद्वेषः**) कल्याणकारी (**आदित्यान्**) द्वादश मासों को (**ईमहे**) जानें और हे मनुष्य ! (**आदित्यानाम्**) इन बारह आदित्यों के सम्बन्ध से होने वाले (**शर्मणि**) सुख में (**स्थाः**) स्थित हो और (**भुरण्यसि**) लाभ प्राप्त कर ।

भावार्थः - प्रतिदिन आकाश में, विद्वानों के सम्पर्क में और मनोरथ की सिद्धि में कल्याणकारी बारह आदित्यों के योग दान को हम जानें । हे मनुष्य ! तू उनके द्वारा प्रदत्त सुख में स्थित हो और उनका लाभ उठा । महीनों ऋतुओं के परिवर्त्तन में कारणभूत अग्नि को भी जानें ॥९॥

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥१०॥

पदार्थः—(**नः**) अपने (**बर्हिः**) यज्ञ में जो (**सधमादे**) सब देवों का सह-स्थान है, (**बृहद्दिवि**) महान् आकाश में स्थित (**देवान्**) देवों, (**सप्त होतॄन्**) सप्त यज्ञ के ऋत्विजों को अग्नि (**आ सादय**) प्राप्त कराता है, (**इन्द्रम्**) इन्द्र = वायु, (**मित्रम्**) सूर्य, (**वरुणम्**) जल और (**भगम्**) पूषा की (**सातये**) सुखादि की प्राप्ति के लिये (**ईळे**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हमारे यज्ञों में अग्नि अपने माध्यम से आकाश में स्थित देवों को जो दैवी पदार्थ है और सात होताओं को हमें प्राप्त कराता है । इन्द्र, मित्र, वरुण और भग आदि की मैं धन की प्राप्ति के लिए प्रशंसा करता हूं अर्थात् उनके गुणों और कार्यों का वर्णन करता हूं ॥१०॥

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥११॥

पदार्थः—(**ते**) वे (**आदित्याः**) बारह आदित्य (**सजोषसः**) संगत हुए (**सर्वतातये**) यज्ञ के लिये (**आ गत**) प्राप्त होते हैं (**नः**) हमारी (**वृधे**) वृद्धि के लिये (**यज्ञम्**) यज्ञ की (**अवत**) रक्षा करते हैं, (**बृहस्पतिम्**) वाणी का पति मेघ, (**पूषणम्**) पोषक वायु, (**अश्विना**) सूर्य और चन्द्रमा (**भगम्**) भग=प्रकाश और (**समिधानम्**) प्रदीप्त (**अग्निम्**) अग्नि को (**स्वस्ति**) कल्याण के लिये (**ईमहे**) जानें ।

भावार्थ-:द्वादश आदित्य आदि दैवी शक्तियां हमारे यज्ञों में आती हैं हमारी वृद्धि के लिए यज्ञ की रक्षक बनती हैं । बृहस्पति, पूषा, अश्विनी भग और अग्नि=विद्युत् आदि सभी के कार्य और रहस्य को हमें जानना चाहिए ॥११॥

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥१२॥

पदार्थः—(**आदित्य देवाः**) हे आदित्य संज्ञक विद्वज्जन ! आप लोग (**तत्**) वह (**सुप्रवाचनम्**) प्रशस्त, (**सुभरम्**) सुसमृद्ध (**नृपाय्यम्**) मनुष्यों के रक्षक (**छर्दिः**) गृह (**नः**) हमें (**पश्वे**) पशु (**तोकाय**) पुत्र (**तनयाय**) पौत्र और (**जीवसे**) जीवन के लिये (**यच्छत**) दें, (**समिधानम्**) यज्ञ में प्रदीप्त (**अग्निम्**) अग्नि को (**स्वस्ति**) कल्याणार्थ हम (**ईमहे**) धारण करते हैं वा प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—हे आदित्य संज्ञक विद्वज्जन ! आप लोग हमें पशु, पुत्र, पौत्र और जीवन की प्राप्ति के लिए समृद्ध, प्रशस्त और मनुष्यों का रक्षक

गृह प्रदान करें। हम यज्ञ में अग्नि को अपने कल्याणार्थ प्रदीप्त करते हैं और उसका लाभ जानते हैं ॥१२॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३॥

पदार्थः—परमेश्वर की कृपा से (**अद्य**) सदा (**विश्वे**) सारे (**मरुतः**) मरुद्गण, (**विश्वे**) सारे रुद्र आदि, (**समिद्धाः**) प्रदीप्त (**अग्नयः**) अग्नियें (**ऊती**) हमारी रक्षा के लिये (**भवन्तु**) होवें, (**विश्वे देवाः**) समस्त यज्ञ देव (**अवसा**) रक्षण से (**नः**) हमें (**आगमन्तु**) प्राप्त हों, (**अस्मे**) हमें (**विश्वम्**) सब (**द्रविणम्**) धन और (**वाजः**) अन्न (**अस्तु**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—परमेश्वर की कृपा से सदा सारे मरुद्गण, रुद्र प्रदीप्त अग्नियें हमारी रक्षक रहें। समस्त यज्ञ देव अपनी रक्षा हम पर रखें। हमें सब प्रकार का धन और अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हो ॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४॥

पदार्थः—(**देवासः**) हे विद्वज्जन ! (**वाजसातौ**) संग्राम, भोग और ज्ञान आदि की प्राप्ति के अवसर पर (**यम्**) जिसकी (**अवथ**) रक्षा करते हो और (**यम्**) जिसको कष्ट आदि से (**त्रायध्वे**) बचाते हो (**यम्**) जिसको (**अंहः**) पाप से (**अति पिपृथ**) बचाते हो (**यः**) जो (**वः**) आप के (**गोपीथे**) रक्षण में (**भयस्य**) भय नहीं प्राप्त करता है (**ते**) वे हम (**तुरासः**) शीघ्रकारी जन (**देववीतये**) देवत्व की प्राप्ति के लिये (**स्याम**) समर्थ हों ।

भावार्थः—हे विद्वज्जन ! सभी व्यवहारों में आप जिसकी रक्षा करते हो वह आप के रक्षण में रहकर भय का नाम भी नहीं जानता। आप बुराई से बचाते हो। हम आप के सहयोग से देवत्व प्राप्त करने में समर्थ हों ॥१४॥

यह दशम मण्डल का पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३६

ऋषिः—१—१४ लुशो धानाकः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः —१, २, ४, ६—८, ११ निचृज्जगती । ३ विराड्जगती । ५, ९, १० जगती । १२ पादनिचृज्जगती । १३ त्रिष्टुप् । १४ स्वराट्त्रिष्टुप् । स्वरः —१—१२ निषादः । १३, १४ धैवतः ॥

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥

पदार्थः—(**बृहती**) महती (**सुपेशसा**) सुरूप (**उषासानक्ता**) उषा और रात्रि, (**द्यावक्षामा**) द्यु और पृथिवी, (**वरुणः**) वरुण=जल (**मित्रः**) सूर्य, (**अर्यमा**) वायु इत्यादि, (**इन्द्रम्**) विद्युत्, (**मरुतः**) मरुद्गण (**पर्वतान्**) मेघ, (**अपः**) किरणें, (**आदित्यान्**) आदित्य गण, (**द्यावा पृथिवी**) प्राण और उदान (**अपः**) अन्तरिक्ष (**स्वः**) प्रकाशमान नक्षत्र लोक आदि की मैं (**हुवे**) प्रशंसा करता हूँ ।

भावार्थः—रात्रि और उषा, द्यु और पृथिवी सूर्य, वायु, जल, मेघ किरणें, आदित्य, मरुद्गण, प्राण और उदान, अन्तरिक्ष, प्रकाश लोक आदि को जानना चाहिए और उनके गुणों का यथावत् वर्णन कर लाभ उठाना चाहिए ॥१॥

द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२॥

पदार्थः—(**प्रचेतसा**) ज्ञान की विषयभूत (**ऋतावरी**) जलों से पूर्ण, (**द्यौः च पृथिवी च**) सूर्य और भूमि आदि (**नः**) हमें (**रिषः**) रोग आदि हिंसक (**अंहसः**) बुराइयों से (**रक्षताम्**) बचावें, (**दुर्विदत्रा**) कुत्सित (**निर्ऋतिः**) विपत्ति (**नः**) हमारे ऊपर (**मा**) मत (**ईशत**) शासन करे (**तत्**) इस लिए हम (**अद्य**) सदा (**देवानाम्**) इन दिव्य पदार्थों द्वारा होने वाले (**अवः**) रक्षण को स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः—जानने योग्य, जलों से पूर्ण सूर्य भूमि आदि हमें हिंसक रोग आदि बुराइयों से बचावें। कुत्सित विपत्ति के हम अधीन न हों। इस लिए इन दिव्य पदार्थों के रक्षण को हम स्वीकार करें और करते हैं ॥२॥

विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३॥

पदार्थः – (**रेवतः**) धन के देने वाले (**मित्रस्य**) सूर्य और (**वरुणस्य**) जल अथवा प्राण और अपान की (**माता**) माता (**अदितिः**) प्रकाश शक्ति अथवा प्रकृति (**नः**) हमें (**विश्वस्मात्**) समस्त (**अंहसः**) रोग आदि बुरी वस्तुओं से (**पातु**) बचावें, (**अवृकम**) बाधारहित, (**स्ववंत्**) सर्व (**ज्योतिः**) तेज को हम (**नशीमहि**) प्राप्त करें (**तत्**) इस लिए (**अद्य**) सदा हम (**देवानाम्**) दिव्य पदार्थों के (**अवः**) रक्षण को (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः – धन के दाता सूर्य और जल अथवा प्राण अपान की माता प्रकाशशक्ति वा प्रकृति रोग आदि बुरी वस्तुओं से हमें बचावें। हम बाधारहित तेज को प्राप्त करें। इस लिए हम दिव्य शक्तियों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥३॥

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः (**ग्रावा**) वज्र – विद्युत् (**वदन्**) गर्जती हुई (**रक्षांसि**) दुःखदायी रोगजनक कीटों का (**अपसेधतु**) निवारण करे, (**दुःस्वप्न्यम**) सोने में बाधक, (**निर्ऋतिम्**) कष्ट दायक, (**विश्वम्**) सभी (**अत्रिणम**) कृमियों को नष्ट करें, हम (**आदित्यम**) सूर्य सम्बन्धी (**मरुताम**) वायु सम्बन्धी (**शर्म**) सुख को (**अशीमहि**) प्राप्त करें वा भोगें । इसलिए देवों सम्बन्धी रक्षण को हम स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः— विद्युत् गरजते हुए समस्त रोगदायक कीटों, सोना हराम करने वाले, कष्टदायक, कृमियों को नष्ट करती है। हम सूर्य और वायु से प्राप्त होने वाले सुख को भोगें। इस लिए देवों सम्बन्धी रक्षण को हम स्वीकार करते हैं ॥४॥

ऐन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५॥

पदार्थः –(**इन्द्रः**) वायु (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष में (**आ सीदतु**) स्थिति रखे, (**इळा**) विद्युत् रूपी वाणी (**पिन्वताम्**) वृष्टि से पूर्ण करें, (**सामभिः**) सामों से

(**ऋक्वः**) प्रशस्त (**बृहस्पतिः**) विद्वान् (**अर्चतु**) भगवान् की अर्चना करें (**जीवसे**) जीवन के लिए (**सुप्रकेतम**) सुप्रज्ञान (**मन्म** मति को (**धीमहि**) धारण करें ।

भावार्थः वायु अन्तरिक्ष में अपनी स्थिति रखे। बिजली वृष्टि से पूर्ण करें। प्रशस्त वेदविद्वान् साम से भगवान् का गान करें। हम जीवन के लिये ज्ञानयुक्त मति को धारण करें। इस लिये हम देवों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥५॥

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६॥

पदार्थः (**अश्विना**) अग्नि और वायु (**अस्माकम**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**दिविस्पृशम्**) द्युलोक पर्यन्त पहुंचने वाला (**जीराध्वरम**) सूक्ष्म गति और हिंसा रहित (**कृणुतम्**) करते हैं और (**इष्टये**) अभीष्ट के लिए (**सुम्नम्**) सुखकर करते हैं, (**घृतेन**) घृतसे युक्त (**आहुतम**) हवन किये पदार्थ को (**प्राचीनरश्मिम**) सूर्य की ओर जाने वाला (**कृणुतम**) करते हैं ।

भावार्थः- अग्नि और वायु हमारे यज्ञ को द्युलोक पर्यन्त फैलने वाला सूक्ष्मगति और हिंसा रहित करते हैं। हमारे अभीष्ट के लिये सुखकारी करते हैं और घृत से युक्त हवन कृत पदार्थ को सूर्य तक पहुंचाने वाला करते हैं। इसलिये हम देवों के रक्षण को स्वीकार करते हैं॥६॥

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७॥

पदार्थः (**सुहवम**) शब्द को अच्छी तरह दूर तक पहुँचाने वाले, अथवा उत्तम शब्द-तरगों वाले, (**पावकम्**) गतिशील (**ऋष्वम**) दर्शन के साधनभूत, (**शंभुवम्**) सुख देने वाले (**रायः**) धन के (**पोषम्**) पोषक (**सख्याय**) उनके साथ जानकार होने वा उनकी मैत्री करने के लिए (**मारुतम**) उनचास मरुतों के संघ की (**उपह्वये**) प्रशस्ति करता हूँ। तथा (**सौश्रवसाय**) उत्तम यश के लिए हम (**धीमहि**) बुद्धि में धारण करते हैं। इसलिए हम देवों के रक्षण को स्वीकार करते हैं।

भावार्थः—उत्तम यश और अन्न आदि की प्राप्ति के लिये हमें कल्याणकारी शब्द-संतान के विस्तारक मरुद्गण का ज्ञान प्राप्त करा

चाहिए और बुद्धि में धारण कर उससे लाभ उठाना चाहिये। इसलिये हम देवों सम्बन्धी रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥७॥

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

पदार्थ--(**अपाम्**) जलों के (**पेरुम्**) पालक, (**जीवधन्यम्**) जीवों के कल्याण वाले, (**देवाव्यम्**) समस्त देव और मनुष्यों के तृप्तिकारक, (**सुहवम्**) प्रशंसनीय (**अध्वरश्रियम्**) आकाश की शोभा, (**सुरश्मिम्**) उत्तम रश्मियों वाले (**सोमम्**) चन्द्रमा को (**भरामहे**) हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं (**इन्द्रियम्**) मन आदि इन्द्रियों की शक्ति को (**यमीमहि**) प्राप्त करें।

भावार्थः—जलों के पालक जीवों के लिए सुखकर समस्त देवों और मनुष्यों के लिए तृप्तिकारक आकाश की शोभा चन्द्र को हम अपनी बुद्धि में धारण करते हैं। उससे मन आदि इन्द्रियों में बल प्राप्त करते हैं। इस लिए हम देवों के संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥८॥

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—(**अनागसः**) निरपराध, (**जीवपुत्राः**) जीवित पुत्रों वाले, (**जीवाः**) स्वयं जीवित रहते हुए (**वयम्**) हम (**सनित्वभिः**) दानशील पुरुषों सहित (**सुसनिता**) शोभन स्तुति से (**तत्**) उस प्रभु की (**सनेम**) भक्ति करें (**ब्रह्मद्विषः**) ज्ञान और भगवान् के द्वेषी (**एनः**) पाप को (**विष्वक्**) सब प्रकार से (**भरेरत**) भोगें।

भावार्थः—निरपराध, जीवनधारी, जीवित पुत्रों वाले हम दानशील अथवा भगवान् की भक्ति करने वालों के साथ श्रद्धापूर्वक भगवान् की भक्ति करें। ज्ञान का द्वेषी अपने पापों के फल भोगें। इसलिए हम देवों सम्बन्धी संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥९॥

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! पुरुषो ! (**ये**) जो (**मनोः**) परमेश्वर की (**यज्ञियाः**) पूजा में तत्पर (**स्थ**) हो (**ते**) वे आप लोग (**शृणोतन**) सुनें (**देवाः**) हे विद्वज्जन ! (**वः**) आप लोगों से (**यत्**) जो (**ईमहे**) हम चाहते हैं (**तत्**) उसे (**दधातन**) दें (**जैत्रम्**) परिस्थितियों पर विजय कराने वाले (**क्रतुम्**) बुद्धिबल और कर्म दें, (**रयिमत्**) धनवाला, (**वीरवत्**) पुत्र आदि से युक्त (**यशः**) यश दें।

भावार्थः- हे विद्वज्जन ! जो आप लोगों के मध्य भगवान् के उपासक हैं वे सुनें। आप लोगों से जिस ज्ञान आदि को हम चाहते हैं वह हमें दें। हर परिस्थिति पर विजय पाने वाले बुद्धिबल और कार्यकुशलता को हमें दें। धन और पुत्र आदि से युक्त यश को हमें दें। इस लिए हम देवों सम्बन्धी रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥१०॥

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

पदार्थः—(**अद्य**) प्रतिदिन हम (**महताम्**) बड़े (**अनर्वणाम्**) रक्षःपूर्ण हिंसा रहित, (**बृहताम्**) महान् (**देवानाम्**) देवों और विद्वानों के (**अवः**) संरक्षण को (**आ वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं (**यथा**) जिससे (**वीरजातम्**) वीरों से प्राप्य (**वसु**) धन को (**नशामहै**) प्राप्त करें।

भावार्थः हम सदा कल्याणकारी यज्ञ के देवों और विद्वानों के रक्षण को स्वीकार करते हैं जिससे हम वीरों से प्राप्य धन को प्राप्त करें। इस कारण हम देवों के संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥११॥

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥

पदार्थः - (**समिधानस्य**) प्रदीप्त (**महः**) महान् (**अग्नेः**) अग्नि के माध्यम से होने वाले (**शर्मणि**) सुख में (**वयम्**) हम (**स्याम**) हों तथा हम (**अनागाः**) पाप वाले न हों, (**मित्रे**) वायु के (**वरुणे**) जल के, (**सवितुः**) सूर्य के (**श्रेष्ठे**) श्रेष्ठ (**सवीमनि**) रचनात्मक कार्य में (**स्वस्तये**) कल्याण के लिये (**स्याम**) हों।

भावार्थः—हम सदा अपराधों से रहित हों। महान् प्रदीप्त अग्नि के द्वारा जो सुख प्राप्त हो सकता है उसे प्राप्त करें। वायु, जल और सूर्य के द्वारा होने वाले रचनात्मक कार्यों में हम सदा कल्याण प्राप्त करें। इसलिए हम देवों सम्बन्धी संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥१२॥

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

पदार्थः– (**ये**) जो (**विश्वे देवाः**) विश्व देव गण (**सत्यसवस्य**) सत्यनियम के उत्पादक (**सवितु**) सर्वोत्पादक, (**मित्रस्य**) सबके मित्र, (**वरुणस्य**) वरणीय परमेश्वर के (**व्रते**) नियम पर अपना कार्य करते हैं (**ते**) वे (**यूयम**) ये (**सौभगम्**) सौभाग्य, (**वीरवद्**) पुत्रादि से युक्त, (**गोमम**) गौ आदि से युक्त, (**चित्रम**) महत्त्वपूर्ण, (**द्रविणम्**) धन (**अप्नः**) कर्म (**अस्मे**) मुझे (**दधातन**) दें ।

भावार्थः विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता, सबके मित्र, वरणीय और सत्य-नियम के उत्पादक परमेश्वर के नियम पर जो विश्वेदेव चलते हैं वे मुझे पुत्र, गौ आदि से युक्त उत्तम धन और कर्म को दें ॥१३॥

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥

पदार्थः—(**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**पुरस्तात्**) हमारे आगे है, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक वही प्रभु (**पश्चात्तात्**) हमारे पीछे दिशा में है, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**उत्तरात्तात्**) हमारे उत्तर में है, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**अधरात्तात्**) नीचे की दिशा में है (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**नः**) हमें (**सर्वतातिम्**) अभिलषित (**सुवतु**) दें, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक वह प्रभु (**नः**) हमें (**दीर्घम्**) लम्बी (**आयुः**) आयु (**रासताम्**) प्रदान करें ।

भावार्थः—सर्व जगत् का उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर हमारे सामने, पीछे, उत्तर, दक्षिण, नीचे की दिशाओं में विद्यमान होकर सर्वत्र व्यापक हो रहा है । वह हमारे अभिलषित को हमें दे और हमें लम्बी आयु दे ॥१४॥

यह दशम मण्डल का छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३७

ऋषिः—१—१२ अभितपाः सौर्यः ॥ देवता— सूर्यः ॥ छन्दः—१—५ निचृज्जगती । ६—६ विराड्जगती । ११, १२ जगती । १० निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः - १—६, ११, १२ निषादः । १० धैवतः ॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१॥

पदार्थः—हे ऋत्विग्जन ! आप लोग (**मित्रस्य**) वायु (**वरुणस्य**) जल के (**चक्षसे**) प्रकाशक (**महः**) महान् (**देवाय**) दीप्ति युक्त (**दूरेदृशे**) दूर दिखाई पड़ने वाले, (**देवजाताय**) किरणों के दाता, (**केतवे**) सबके प्रज्ञापक (**दिवस्पुत्राय**) प्रकाश के पुत्र (**सूर्याय**) सूर्य के लिये (**नमः**) अन्न आदि की हवि (**सपर्यत**) दो और (**शंसत**) उसके गुणों को कहो ।

भावार्थः—हे ऋत्विजो ! वायु, जल आदि के प्रकाशक महान्, सब पदार्थों के प्रज्ञापक प्रकाश के पुत्र सूर्य को जानो और अन्न आदि की हवि अग्नि में उसके लिए यज्ञ के समय डालो ॥१॥

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२॥

पदार्थः– (**यस्य**) जिसके आधार पर (**द्यावा**) द्यु और भूमि (**च**) और (**अहानि**) दिन और रात्रियें (**च**) भी (**आततनन्**) फैले हैं, (**यद्**) जो (**एजति**) चल रहा है वह और (**अन्यत्**) दूसरा (**विश्वम्**) विश्व जो नहीं चल रहा है जिसमें (**निविशते**) प्रविष्ट होता है, (**विश्वाहा**) सदा (**आपः**) जलें बहती है (**विश्वाहा**) सदा (**सूर्यः**) सूर्य (**उदेति**) उदित होता है (**सा**) वह (**सत्योक्तिः**) सत्य वचन (**मा**) मुझे (**परिपातु**) चारों तरफ से रक्षित रखे ।

भावार्थः-वह भगवान् और उसकी सत्योक्ति वेदज्ञान हमारी रक्षा करे जिसके आधार पर द्युलोक, पृथिवी, दिन और रात्रि का विस्तार हुआ, जड़ ज । और जंगम जगत् प्रलयकाल में जिसमें आश्रय पाता है । जिसके आधार पर जलें बहती हैं और जिसके आधार प्रतिदिन सूर्य उदित होता है ॥२॥

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३॥

पदार्थः—(**यद्**) जब सूर्य (**ऐतशेभिः**) अश्वों के समान शीघ्र गामी (**पतरैः**) किरणों से (**रथर्यति**) युक्त होता है तथा (**ते**) उसका कोई भी पदार्थ (**प्रदिवः**) दिशाओं में (**अदेवः**) अप्रकाशित (**न**) नहीं (**विवासते**) रह जाता है तब (**प्राचीनम्**) प्राचीन पूर्वस्थ (**रजः**) लोक (**अनुवर्तते**) अनुव्रत अर्थात् प्रकाशमान होता है (**उत्**) और (**अन्येन**) दूसरे (**ज्योतिषा**) तेज से (**सूर्यः**) सूर्य (**अन्यद्**) दूसरे भाग को (**यासि**) जाता है ।

भावार्थः—जब सूर्य अश्व के समान वेग वाली किरणों से युक्त होता है तथा कोई भी भाग अप्रकाशित नहीं रह जाता तब वह पूर्व दिशा के भाग को प्रकाशित करता है । सायंकाल अपनी दूसरी ज्योति से दूसरे भाग को प्रकाशित करता है ॥३॥

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥४॥

पदार्थः—(**सूर्य**) सूर्य (**येन**) जिस (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**तमः**) अन्धकार को (**बाधसे**) दूर करता है (**च**) और (**भानुना**) प्रकाश से (**विश्वम्**) सब (**जगत्**) जगत् को (**उदियर्षि**) प्राप्त होता है (**तेन**) उसी ज्योति से (**अस्मत्**) हम से (**अनिराम्**) जल के अभाव, (**अनाहुतिम्**) खाद्य अन्न आदि के अभाव को (**अमीवाम्**) रोग को और (**दुष्वप्न्यम्**) निद्रा के रोग को (**अप सुव**) दूर भगाता है ।

भावार्थः—सूर्य अपने जिस तेज से अन्धकार को दूर करता है और प्रकाश से सब जगत् को प्राप्त होता है उसी तेज से वह जल, अन्न, नीरोगता आदि को प्रदान करता है ॥४॥

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५॥

पदार्थः—हे प्रभो ! तू (**प्रेषितः**) भक्तों द्वारा जाना वा चाहा गया हुआ, (**अहेडयन्**) अनादर न करता हुआ (**विश्वस्य**) समस्त विश्व के

(**व्रतम्**) नियम को (**रक्षसि**) रक्षा करता है (**स्वधाः**) विश्व की धारणशक्तियों को (**अनु उच्चरसि**) व्याप्त करता है, (**सूर्य**) हे लोकों के प्रेरक देव ! (**यत्**) जब (**अद्य**) आज (**त्वा**) आप की (**उपब्रवामहै**) स्तुति हम करते हैं तो (**तम्**) इस (**नः**) हमारे (**क्रतुम्**) कर्म को (**देवाः**) विद्वान् लोग (**अनुमंसीरन्**) स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः—हे सब जगत् के चालक प्रभो ! भक्तों द्वारा जाना व चाहा गया तू विना किसी अनादर भाव के विश्व के नियम की रक्षा करता है । जगत् की धारक शक्तियों को व्याप्त करता है । आज हम आपकी जो स्तुति करते हैं इस उस हमारे उत्तम कर्म को विद्वान् लोग भी स्वीकार करते हैं ॥५॥

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य सन्दृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६॥

पदार्थ—(**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवी (**आपः**) जलें, (**इन्द्रः**) वायु और (**मरुतः**) मरुद्गण (**नः**) हमारी (**तम्**) उस (**हवम्**) परमेश्वर के प्रति होने वाली स्तुति (**नः**) हमारे (**तत्**) उस (**वचः**) वचन को (**शृण्वन्तु**) सबको सुनाने का माध्यम बनें, हम (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**संदृशी**) देखने में (**शूने**) शून्य वा दुःख में (**मा भूम**) न होवें, (**भद्रम्**) सुखदायी जीवन को (**जीवन्तः**) जीते हुए (**जरणाम्**) परिपक्व वृद्धावस्था को (**अशीमहि**) भोगें ।

भावार्थः—द्युलोक, पृथिवी, वायु, मरुद्गण हमारी स्तुति और वाणी को सबसे सुनने का माध्यम बन उन्हें सुनावें । हम सदा सूर्य को देखें और उत्तम जीवन व्यतीत करते हुए परिपक्व वृद्धावस्था का भोग करें ॥६॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७॥

पदार्थ—(**सुमनसः**) उत्तम मन वाले, (**सुचक्षसः**) उत्तम-उत्तम दृष्टियों से युक्त, (**प्रजावन्त**) सन्तान आदि से युक्त, (**अनमीवाः**) नीरोग, (**अनागसः**) निरपराध और (**ज्योग्जीवाः**) लम्बे काल तक जीने वाले हम (**विश्वाहा**) सर्वदा (**दिवे दिवे**) प्रति दिन (**त्वा त्वा**) इस इस (**उद्यन्तम्**) उदय होते हुए, (**मित्रमहः**) मित्रों के पूज्य (**सूर्यम्**) सूर्य को (**प्रतिपश्येम**) देखें ।

भावार्थः—उत्तम मन वाले, अच्छी दृष्टि वाले, सन्तानों वाले, नीरोग, निरपराध, और लम्बी आयु वाले हम सर्वदा उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य को देखें ॥७॥

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषे चक्षुषे मयः।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८॥

पदार्थः—(**जीवाः**) चिरजीवी हम (**महि**) महत् (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**बिभ्रतम्**) धारण करने वाले, (**विचक्षण**) सबको देखने वाले (**भास्वन्तम्**) प्रकाशमान (**चक्षुषे चक्षुषे**) प्रत्येक नेत्र में (**मयः**) सुखकर ज्योति देने वाले (**बृहतः**) महान् (**पाजसः**) बलशाली काल के (**परि**) ऊपर (**आरोहन्तम्**) चढ़ते हुए (**सूर्य**) सूर्य को (**वयम्**) हम (**प्रतिपश्येम**) देखें।

भावार्थः—लम्बी आयु वाले हम महान् दीप्ति वाले, सबको दिखाने वाले, प्रत्येक नेत्र में ज्योति देने वाले, शक्तिशाली काल पर आरोहण करने वाले सूर्य को देखें ॥८॥

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः।
अनागास्तेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस (**ते**) उस सूर्य के (**केतुना**) व्यक्त करने वाले प्रकाश वा प्रज्ञान से (**विश्वा**) समस्त (**भुवनानि**) लोक (**प्र च ईरते**) चलते हैं (**च**) और (**अक्तुभिः**) धारण आकर्षण शक्ति से (**निविशन्ते**) अपनी सीमा में स्थित होते हैं ऐसा वह (**हरिकेश**) हरित वर्ण प्रकाश से युक्त (**सूर्यः**) सूर्य (**अनागस्तेन**) निर्दोषता (**वस्यसावस्यसा**) श्रेयस्कर (**अह्न अह्ना**) दिन और अनुदिन से (**नः**) हमें (**उदिहि**) उदित दिखाई पड़े।

भावार्थः—सूर्य के व्यक्त शक्ति से समस्त भुवन चलते हैं और धारण आकर्षण से अपनी मर्यादा में ठहरते हैं। वह सूर्य श्रेयस्कर निर्दोष दिनों के साथ हमें दिखाई पड़े ॥९॥

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०॥

पदार्थः—सूर्य (**चक्षसा**) तेज से, (**नः**) हमें (**शम्**) कल्याणकारी (**भव**) होवे, (**अह्ना**) दिन से (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकर होवे। (**भानुना**) तेज से (**नः**) हमें (**शम्**) कल्याणकारी होवे, (**हिमा**) ऋतु से (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकर हों, (**घृणेन**) उष्णता से (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकर होवे, (**यथा**) जिससे (**नः**) हमें (**अध्वन्**) मार्ग में (**शम्**) सुख (**असत्**) हो, (**दुरोणे**) घर में सुख होवे (**तत्**) वह (**चित्रम्**) उत्तम (**द्रविणम्**) धन (**धेहि**) देवे।

भावार्थ—सूर्य तेज द्वारा, दिन के द्वारा, किरण वा प्रकाश के द्वारा, ऋतु के द्वारा और उष्णता द्वारा हमें कल्याणकारी होवे तथा हमें वह धन देवे जिससे मार्ग और घर में सर्वत्र सुख मिले ॥१०॥

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११॥

पदार्थ—(**देवाः**) दिव्य पदार्थ (**अस्माकम्**) हमारे (**उभयाय**) दोनों प्रकार के (**जन्मने**) जन्म वाले (**द्विपदे**) दो पैरों वाले (**चतुष्पदे**) चार पैरों वाले जीवों के लिए (**शर्म**) सुख (**यच्छत**) दे, तथा (**अदत्**) ग्रहण किया जाता हुआ, (**पिबत्**) पिया जाता हुआ (**आशितम्**) खाया गया हुआ (**ऊर्जयमानम्**) बल देने वाला हो, (**अस्मे**) हमें (**अरपः**) निर्दोष (**शंयोः**) सुख (**दधातन**) दें।

भावार्थः - जगत् के दिव्य पदार्थ हमारे दोनों प्रकार के जन्म वाले जीवों अर्थात् दो पैर वाले और चार पैर वाले दोनों को सुख दें। खाया जाता हुआ, पिया जाता हुआ और खाया जा चुका हुआ बल देने वाला हो। हमें ये निर्दोष सुख प्रदान करें ॥११॥

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम्।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥१२॥

पदार्थः—(**वसवः**) वसु संज्ञक (**देवाः**) हे विद्वान् पुरुषो! (**वः**) आप लोगों के प्रति हम (**जिह्वया**) वाणी के द्वारा (**यत्**) जो (**गुरु**) भारी (**देवहेळनम्**) देवों की अवहेलना (**चकृम**) करते हैं अथवा करने की इच्छा रखते हैं, (**वा**) अथवा (**मनसः**) मन से (**प्रयुतीः**) अपराध करते हैं वा करने की इच्छा रखते हैं उनसे हमें हटाओ, (**यः**) जो (**नः**) हमारे बीच (**अरावा**) अदानशील (**नः**) हम पर (**अभि**) सब ओर से (**दुच्छुनायते**) कष्ट देना चाहता है (**तस्मिन्**) उसमें (**तत्**) उस (**एनः**) पाप को (**निधेतन**) आरोपित करें।

भावार्थः—हे वसु विद्वानो ! हम वाणी से आपके प्रति जो अवहेलना करते हैं वा करने की इच्छा रखते हैं अथवा मन से जो करते हैं वा करें उनसे हमें हटाओ। जो हमारे मध्य अदानशील है हम पर सब ओर से कष्ट देना चाहता है वा बुरा कर्म करता है उसके उस पाप को उसमें ही आरोपित करें ॥१२॥

यह दशम मण्डल में संतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३८

ऋषिः—१—५ इन्द्रो मुष्कवान् ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २ । पादनिचृज्जगती । ३, ४ विराड्जगती ।। स्वरः—निषादः ॥

अस्मिन्न॑ इन्द्र पुत्सु॒तौ यश॑स्वति॒ शिमी॑वति॒ क्रन्द॑सि॒ प्राव॑ सा॒तये॑ ।
यत्र॒ गोषा॑ता धृषि॒तेषु॑ खा॒दिषु॒ विष्व॒क्पत॑न्ति दि॒द्यवो॑ नृ॒षाह्ये॑ ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) यह सूर्य (**अस्मिन्**) इस (**पृत्सुतौ**) अन्न की उत्पत्ति करने वाले, (**यशस्वति**) यश वाले (**शिमीवति**) जल से युक्त अन्तरिक्ष में (**क्रन्दसि**) गर्जता है (**खादिषु**) खा जाने वाली (**धृषितेषु**) ऊष्ण रश्मियों के तापवान् होने पर तथा (**गोषाता**) भूमि पर जल के गिरने के समय में (**सातये**) अन्न आदि की प्राप्ति के लिए (**नः**) हमारी (**प्राव**) रक्षा करता है (**यत्र**) जिसमें (**नृसाह्ये**) मनुष्य को नष्ट कर देने वाले इस इन्द्र-वृत्र युद्ध में (**विद्यवः**) चमकती हुई बिजलियां (**विष्वक्**) सर्वतः (**पतन्ति**) गिरती हैं।

भावार्थः—सूर्य अन्तरिक्ष में बादलों के साथ युद्ध में बादल की गरज में गरजता है। वह गर्जना हमें अन्न आदि प्रदान करने के लिए है और इस प्रकार वह हमारी रक्षा करता है। जब पृथिवी पर जल की बूंदें पड़ती हैं तो सूर्य की असह्य किरणें ताप से युक्त हो जाती हैं और इस प्रकार इस युद्ध में बिजलियां गिरती हैं ॥१॥

स नः॑ क्षु॒मन्तं॒ सद॑ने॒ व्यू॑र्णुहि॒ गोअ॑र्णसं र॒यिमि॑न्द्र श्र॒वाय्य॑म् ।
स्याम॑ ते॒ जय॑तः शक्र मे॒दिनो॒ यथा॑ व॒यमु॒श्मसि॒ तद्व॑सो कृ॒धि ॥२॥

पदार्थः—(**वसो**) वसु (**शक्र**) शक्तिशाली, (**सः**) वह (**इन्द्रः**) सूर्य (**नः**) हमारे (**सदने**) गृह में (**क्षुमन्तम्**) अन्न आदि से युक्त, (**गो अर्णसम्**) गौ आदि पशुओं को बढ़ाने वाले (**श्रवाय्यम्**) सबके श्रवण योग्य (**रयिम्**) धन को (**व्युर्णुहि**) देवे हम, (**जयतः**) विजयशील (**ते**) इस सूर्य के प्रकाश आदि से (**मेदिनः**) बलवान् होवें (**वयम्**) हम (**यत्**) जो (**उश्मसि**) चाहें (**तत्**) वह (**कृधि**) देवे।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से सबका बसाने वाला शक्तिशाली सूर्य हमारे गृह में अन्न से युक्त और गौ आदि पशुओं का बढ़ाने वाला प्रशस्त धन देवे, हम बलवान् होवें और जो चाहें वह प्राप्त हो ॥२॥

यो नो॑ दा॒स आर्यो॑ वा पुरुष्टु॒तादे॑व इन्द्र यु॒धये॒ चिके॑तति ।
अ॒स्माभि॑ष्टे सु॒षहाः॑ सन्तु॒ शत्र॑व॒स्त्वया॑ व॒यं तान्व॑नुयाम सङ्ग॒मे ॥३॥

पदार्थः—(**पुरुष्टुत**) बहुतों से स्तूयमान (**इन्द्र**) हे विद्वन् अथवा राजन्! (**यः**) जो (**दासः**) अदानशील उत्तम कर्मरहित मनुष्य, (**वा**) अथवा (**आर्यः**) श्रेष्ठ मनुष्य भी (**अदेवः**) राक्षसी स्वभाव वाला मनुष्य (**नः**) हमें (**युधये**) युद्ध के लिए (**चिकेतति**) प्रवृत्त करे वा आह्वान करे तो (**ते**) वे (**शत्रवः**) शत्रु लोग (**अस्माभिः**) हमारे द्वारा (**सुसहाः**) भली प्रकार अभिभूत (**सन्तु**) होवें (**त्वया**) तुम्हारे द्वारा (**वयम्**) हम (**संगमे**) संग्राम में (**तान्**) उनको (**वनुयाम**) मारें।

भावार्थः—हे विद्वन् वा राजन् ! यदि उत्तम कर्मरहित दस्यु कर्मा मनुष्य ! अथवा श्रेष्ठ बलशाली मनुष्य और राक्षसी वृत्ति वाला हमें युद्ध के लिए ललकारे तो ये सभी शत्रु हमारे द्वारा परास्त होवें। आपके सहाय से रण में हम उन्हें मार भगायें ॥३॥

यो द॒भ्रेभि॒र्हव्यो॒ यश्च॒ भूरि॑भि॒र्यो अ॒भीके॑ वरिवो॒विन्नृ॒षाह्ये॑ ।
तं वि॑खा॒दे सस्नि॑म॒द्य श्रु॒तं नर॑म॒र्वाञ्च॒मिन्द्र॒मव॑से करामहे ॥४॥

पदार्थः—(**नृसह्ये**) नरों के द्वारा लड़े जाने वाले, (**विखादे**) विशेष विनाश वाले (**अभीके**) संग्राम में (**यः**) जो (**वरिवोवित्**) प्रशंसा पाने योग्य (**यः**) जो (**दभ्रेभिः**) थोड़े बलवालों से (**हव्यः**) बुलाया जाने योग्य है, (**यः**) जो (**भूरिभिः**) बहुत बल वालों से (**हव्यः**) बुलाया जाने योग्य है, (**तम**) उस (**सस्निम**) शुचि, (**श्रुतम**) प्रसिद्ध (**नरम**) नेता (**इन्द्रम**) सूर्य सम तेजस्वी

राजा को (**अवसे**) रक्षार्थ हम (**अर्वाञ्चम्**) अपने सम्मुख (**करामहे**) करते हैं ।

भावार्थः—मनुष्यों द्वारा लड़े जाने वाले, विनाशकारी संग्राम में जो प्रशंसा पाता और बड़े-छोटे सभी योद्धा जिसको पुकारते हैं उस सूर्यसम तेजस्बी राजा को अपनी रक्षा के लिए अपने समक्ष करते हैं ॥४॥

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५॥

पदार्थः—(**वृषभ**) कामनाओं की वर्षा करने वाले (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यशाली मनुष्य ! (**त्वाम्**) तुझे (**अहम्**) मैं (**स्ववृजम्**) स्वयं सद कष्टों का छेदक, (**अननुदम्**) दूसरों की अपेक्षा न करने वाला (**रध्रचोदनम्**) वशगामियों को उत्तम मार्ग पर चलाने वाला (**शुश्रव**) सुनते हैं (**हि**) इसलिए (**कुत्सात्**) वज्रसम विपत्तियों से (**परि**) सब तरफ से (**प्रमुञ्चस्व**) बचाओ, (**इह**) हमारे पास यहां (**आ गहि**) आओ (**किमु**) क्या (**त्वावान्**) आप जैसा अन्य कोई (**मुष्कयोः**) अण्डकोषों में (**बद्धः**) बधा हुआ (**आसते**) रह सकता है अर्थात् भोगों में फंसा रह सकता है -- कभी नहीं ।

भावार्थः—हे कामनाओं के दाता, बलशाली मनुष्य ! तू स्वयं विपत्तियों को नष्ट करने वाला, दूसरों की अपेक्षा न करने वाला, सब वशगामियों को उत्तम रास्ता दिखाने वाला है । वज्र के समान कष्टों से बचा, हमारे पास आ । क्या तुम जैसा व्यक्ति कभी इन्द्रियों के भोगों में बँधा रह सकता है ? नहीं ॥५॥

यह दशम मण्डल में अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३९

ऋषिः– **१–१४ घोषा काक्षीवती ॥ देवते—अश्विनौ ॥ छन्दः**—१, ६, ७, ११, १३ **निचृज्जगती** । २, ८ ९, १२ **जगती** । ३ **विराड्जगती** । ७, ५ पादनिचृज्जगती । १० **आर्चीस्वराड्जगती** । १४ **निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः**—१—१३ निषादः । १४ **धैवतः** ॥

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**परिज्मा**) सब तरफ जाने वाला, (**सुवृत**) अच्छी प्रकार विद्यमान (**वाम्**) आप दोनों का (**यः**) जो (**रथः**) रथ (**हविष्मता**) यज्ञ करने वाले के द्वारा (**दोषाम्** रात्रि में **उषसः**) उषाओं में अर्थात् रात्रि और दिन में (**हव्यः**) प्रशंसा का पात्र होता है, (**शश्वत्तमासः**) चिरन्तन (**वयम्**) हम लोग (**वाम्**) आप के (**सुहवम्**) उत्तम शब्द वाले (**तम् उ**) उसको (**पितुः**) पिता के (**इवम्**) इस (**नाम**) नाम (**न**) की तरह (**हवामहे**) पुकारते हैं ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! चारों तरफ जाने वाले आप के जिस रथ की यजमान रात्रिदिन यज्ञ में प्रशंसा करता है उसकी 'पिता का यह नाम है' इस प्रकार हम चिरन्तन लोग भी प्रशंसा करते हैं ॥१॥

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप दोनों हमें (**सूनृताः**) उत्तम वाणी (**प्रेरयतम्**) दो, (**धियः**) बुद्धि से (**पिन्वतम्**) पूर्ण करो, (**उत**) और (**पुरन्धीः**) प्रज्ञा (**ईरयतम्**) दो (**तत्**) इन तीनों को (**उश्मसि**) हम चाहते हैं, हमें (**यशसम्**) यशस्वी, (**भागम्**) धन का भागी (**कृणुतम्**) कीजिए, (**मघवत्सु**) धनिको अथवा यज्ञशीलों के मध्य (**नः**) हमें (**चारुम्**) उत्तम (**सोमम्**) सोम की (**न**) भांति (**कृतम्**) कीजिए ।

भावार्थः—हे वैद्य और जैज्ञानिक ! आप लोग हमें उत्तम वाक्शक्ति, बुद्धि और प्रज्ञा से युक्त करें जिसकी हमें चाह है । हमें यशस्वी और उत्तम धन का भागी करें और धन वालों अथवा यज्ञ वालों के मध्य हमें सोम की भांति करें ॥२॥

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥३॥

पदार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप दोनों (**ममाजुरः चित्**) रोग से जीर्ण हुए का (**भगः**) ऐश्वर्य वा प्रकाश (**भवथः**) होते हो, (**अनाशोः चित्**) न खाने वाले अर्थात् अनशन करने वाले के (**अवितारौ**) रक्षक होते हो, (**अपमस्य चित्**) छोटे से छोटे व्यक्ति के भी रक्षक होते हैं, (**अन्धस्य चित्**) अन्धे के और (**कृशस्य चित्**) दुर्बल हुए के रक्षक होते हो, (**नासत्या**) हे सत्ताधारी ! (**युवाम्**) आप दोनों को (**इत्**) ही (**रुतस्य चित्**) रोगी (**भिषजा**) औषधोपचार करने वाला (**आहुः**) विद्वज्जन कहते हैं ।

भावार्थः—हे वैद्य वैज्ञानिक ! आप दोनों नासत्य=सत्यभूत एवं सत्ता वाले हो । आप रोग से जीर्ण हुए की आशाकिरण अनशनकारी के रक्षक, छोटे से छोटे के रक्षक, अन्धे के रक्षक और कृश के भी रक्षक हैं क्योंकि इन सबका औषधोपचार आप करते हो । आप को रोग से पीड़ित का भिषक् कहा जाता है ॥३॥

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४॥

पदार्थः—हे अश्विना:=वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप दोनों ने (**च्यवानम्**) स्वास्थ्यमें क्षीण होते हुए पुरुष को (**सनयम्**) पुराने (**रथम्**) रथ की (**यथा**) भांति (**पुनः**) फिर (**युवानम्**) युवा (**चरथाय**) व्यवहार करने के लिए (**तक्षथुः**) कर देते हो । (**तौग्र्यम्**) जल को शुद्ध करके बनाये गए जल को (**अद्भ्यः**) साधरण जलों के (**परि**) ऊपर (**नि ऊहथुः**) स्थान देते हो (**विश्वा इत्**) समस्त (**ता**) वे आप के कर्म (**सवनेषु**) आप के रचनात्मक कार्य में (**प्रवाच्या**) कहे जाते हैं ।

भावार्थ—हे भिषग् और वैज्ञानिक जैसे बढ़ई पुराने रथ को नूतन कर देता है और वह व्यवहारयोग्य हो जाता है वैसे ही आप क्षीण होते पुरुष को पुनः युवा शक्ति प्रदान करते हो कि वह अपना व्यवहार कर सके । आप शुद्ध किये जल को साधारण जल से अधिक उच्च स्थान देते हो । आप के ये समस्त कार्य रचनात्मक कार्यों में जाने जाते हैं ॥४॥

पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

पदार्थः—हे अश्विना=भिषग् और वैज्ञानिक (**वाम्**) आप दोनों के (**पुराणा**) पुराने (**वीर्या**) पराक्रम का मैं (**जने**) लोगों में (**प्र ब्रव**) वर्णन करता हूँ, (**अथो ह**) और (**नासत्या**) हे नासत्य आप दोनों (**मयोभुवा**) सुख देने वाले (**भिषजा**) भिषग् (**आसथुः**) हो (**ता**) उन (**वाम्**) आप दोनों को (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिए (**नव्यौ**) स्तुत्य (**करामहे**) बनाते हैं, (**अयम्**) यह (**अरिः**) गमनशील मनुष्य (**यथा**) जिससे (**श्रत्**) सत्य (**दधत्**) धारण करे ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक आप के पुराने पराक्रम को मैं लोगों पर प्रकट करता हूं, और आप सुखदाता भिषग् हो । अपनी रक्षा के लिए हम आप को स्तुत्य समझते हैं और बनाते हैं, जिससे यह गतिशील व्यक्ति श्रद्धा धारण करे ॥५॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**इयम्**) यह मैं रोगिणी (**वाम्**) आप को (**अह्वे**) पुकारती हूँ आप (**मे**) मेरी (**शृणुतम्**) सुनें (**पुत्राय**) पुत्र के लिए (**पितरा**) माता-पिता (**इव**) के समान (**शिक्षतम्**) हमें स्वास्थ्य की शिक्षा दें । (**अनापिः**) अबन्धु (**अज्ञाः**) अकृतज्ञ, (**असजात्या**) विषम और (**अमतिः**) अज्ञात (**अभिशस्तिः**) रोगापदा मुझे आ जाती है (**तस्याः**) उस (**अभिशस्ते**) रोगापदा को (**पुरा**) पहले ही (**अवस्पृतम्**) दूर भगावें ।

भावार्थः—रोगिणी स्त्री कहती है कि हे वैद्य और वैज्ञानिक मैं आप को पुकारती हूं । आप मेरी सुनें और जिस प्रकार माता-पिता पुत्र के लिए सब कुछ देते हैं वैसे आप मुझे स्वास्थ्य की शिक्षा और स्वास्थ्य दें । समय-समय पर आ जाने वाली अज्ञात दुःखकारिणी रोगापदा से मुझे उसके आने के पूर्व बचावें ॥६॥

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये ॥७॥

पदार्थः—हे अश्विनौ=वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप दोनों (**पुरुमित्रस्य**) सब के मित्र राजा की (**योषणाम्**) संयोग-वियोगकारिणी शक्ति (**शुन्ध्युवम्**) बुद्धि और कर्म करने की शक्ति को (**विमदाय**) विशेष आनन्द के लिए (**रथेन**) रमणीय औषधि आदि साधन से (**न्यूहथुः**) प्राप्त कराते हो (**युवम्**)

आप (**वध्रिमत्या:**) बन्ध्या स्त्री की (**हवम्**) पुकार को (**अगच्छतम्**) सुनते हो, (**युवम्**) आप (**पुरन्धये**) शरीर को धारण करने वाली शक्ति को (**सुषुवितम्**) ऐश्वर्ययुक्त (**चक्रथुः**) करते हो ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप सब के मित्र राजा की बुद्धिशक्ति को विशेष आनन्द की प्राप्ति के योग्य करते हो औषध आदि के द्वारा । आप स्त्री की भी पुकार सुनते हो और औषधोपचार करते हो। आप शरीर की धारिका शक्ति को ऐश्वर्यमयी बनाते हो ॥७॥

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥८॥

पदार्थः- हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप (**जरणाम्**) जरावस्था को (**उपेयुषः**) प्राप्त हुए (**कलेः**) गणित करने वाले (**विप्रस्य**) मेधावी मनुष्य को (**पुनः**) फिर (**युवत्**) युवावस्था की (**वयः**) वय से (**अकृणुतम्**) युक्त कर देते हो, (**युवम्**) आप (**वन्दनम्**) स्तुति करने वाले मनुष्य को (**ऋश्यदात्**) व्याधि के खड्डे से (**उत् उपथुः**) दूर निकालते हो, (**युवम्**) आप (**विश्पलाम्**) प्रजा की रक्षा करने वाली राज्ञी वा स्त्री को (**सद्यः**) तत्काल (**एतवे**) चलने और कार्य करने के लिए (**कृथः**) कर देते हो ।

भावार्थः--हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप जरावस्था को प्राप्त गणितज्ञ अथवा कलाविज्ञ मेधावी मनुष्य को युवावस्था से युक्त करते हो। स्तुति करने वाले भक्त मनुष्य को व्याधि के खड्डे से उबारते हो। राज्ञी वा प्रजा की रक्षा में लगी स्त्री को चलने और कार्य करने की शक्ति देकर योग्य बना देते हो ॥८॥

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥९॥

पदार्थः—(**वृषणा**) सुखों की वर्षा करने वाले (**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक (**युवम्**) आप दोनों (**गुहा**) मस्तिष्क की गुफा में (**हितम्**) छिपे हुए (**ममृवान्सम्**) प्राणों का त्याग कराने वाले (**रेभम्**) ज्वर आदि से होने वाली बकबक को (**उत् ऐरयतम्**) निकालते हो, (**युवम्**) आप (**सप्तवध्रये**) सप्त धातुओं के शरीर में बंधी हुई (**अत्रये**) वाक् के लिए (**तप्तम्**) तप्त (**उत**) भी (**ऋबीसम्**) जलीय पदार्थ को (**ओमन्वन्तम्**) रक्षात्मक=सुखदायी (**चक्रथुः**) बनाते हो ।

भावार्थः -हे सुखों की वर्षा करने वाले वैद्य और वैज्ञानिक ! आप दोनों मस्तिष्क में चढ़े हुए, प्राणघातक ज्वर आदि से उत्पन्न अधिक बोलने की प्रवृत्ति दूर करते हो और आप सात धातुओं के बने शरीर में बंधी वाक् के लिए गर्म जलीय पदार्थ को सुखदायी बनाते हो । अर्थात् मस्तिष्क ज्वर और वाणी का इलाज करते हो ॥९॥

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०॥

पदार्थ (**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप (**पेदवे**) ज्ञानी और कर्मठ राजा को (**नवभिः नवती**) निन्यानवे (**वाजैः**) शक्ति से युक्त (**वाजिनम्**) बलशाली (**चर्कृत्यम्**) कार्य करने में समर्थ (**द्रावयत्सखम्**) शरीर को गति प्रदान करने वाली शक्तियों के मित्र, (**हव्यम्**) शरीर की शक्तियों का संग्राहक, (**मयोभुवम्**) सुखकारी (**श्वेतम्**) श्वेत (**अश्वम्**) वीर्य शक्ति को [**वीर्यं वा अश्वः** शतपथ २।१।४।२३] (**नृभ्यः**) मनुष्यों को (**भगम् न**) ऐश्वर्य की भांति (**ददथुः**) प्रदान करते हो ।

भावार्थः -हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप वाजीकरण आदि औषधोपचार प्रक्रिया से ज्ञानी कर्मठ राजा के शरीर ९९ शक्तियों से युक्त, बलदाता, कर्म करने का सामर्थ्य देने वाले, शरीर के गतिशील शक्तियों के मित्रभूत, समस्त शारीरिक बलों के धारक सुख देने वाले श्वेत वीर्य पदार्थ को उत्पन्न करते हो । अर्थात् राजा को अश्व के समान बलशाली बनाते हो ॥१०॥

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

पदार्थः -(**राजानौ**) ज्ञान से दीप्त (**अदिते**) स्वतन्त्र (**सुहवौ**) शुभनामों से युक्त, (**रुद्रवर्तनी**) अग्नियों और प्राणों के मार्ग को अपना कर चलने वाले (**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक (**युवम्**) आप (**यम्**) जिसको (**पत्न्या**) शरीर की पालक शक्ति और श्री के साथ (**पुरोरथम्**) उत्तम शरीर रथवाला

(**कृणुथः**) करते हो (**तम्**) उसको (**कुतश्चन**) कहीं से मी (**न**) न तो (**अंहः**) पाप व्याधि, (**न**) न तो (**दुरितम्**) बुरे रोग और (**नकिः**) न तो इनसे होने वाला (**भयम्**) मय ही (**अश्नोति**) व्याप्त होता है ।

भावार्थः - हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप लोग ज्ञान से दीप्त हो। आप शरीरस्थ अग्नियों और प्राणों की गति को देखकर शरीर का इलाज करते हो । आप जिसे उत्तम शरीरवाला शरीर की उत्तम पालक शक्ति से युक्त घोषित करते हो, वह किसी प्रकार की व्याधि और उसके भय से रहित रहता है ॥११॥

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
अस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२॥

पदार्थः—(**अश्विना**) द्यु और पृथिवी (**मनसः**) मन से (**जवीयसा**) वेग वाले (**तेन**) उस (**रथं**) प्रकाश चक्र से (**यातम्**) चलते हैं (**यम्**) जो (**रथम्**) प्रकाश चक्र (**वाम्**) उनके लिए (**ऋभवः**) किरणों ने (**चक्रुः**) बनाया है, (**यस्य**) जिस रथ के (**योगे**) सम्बन्ध होने पर (**दिवः**) सूर्य की (**दुहिता**) पुत्री (**उषाः**) उषा (**जायते**) उत्पन्न होती है तथा (**विवसतः**) मास्कर से (**उभे**) दोनों (**अहनी**) रात्रि और दिन (**सुदिने**) उत्तम रूप में उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थः—द्यु और पृथिवी किरणों द्वारा बनाये गए प्रकाश चक्र से, जो मन से भी वेग वाला है, चलते हैं । उसी के सम्बन्ध होने पर उषा और दिन-रात्रि सूर्य से उत्पन्न होते हैं ॥१२॥

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम् ॥१३॥

पदार्थः—(**ता**) वे (**अश्विना**) द्यु और पृथिवी (**जयुषा**) बाधारहित (**रथेन**) प्रकाश चक्र से (**पर्वतम्**) पर्वत पर (**वर्तिम्**) मार्ग को (**वि यातम्**) प्राप्त करते हैं (**शयवे**) अन्तरिक्ष में सोने वाले मेघ के लिए (**धेनुम्**) कड़कमयी वाणी को (**अपिन्वतम्**) पूरी करते हैं (**युवम्**) ये दोनों (**शचीभिः**) वायु की शक्तियों से (**वृकस्य चित्**) वृक के सदृश मेघ के (**आस्यात्**) मुख से (**अन्तः**) अन्दर (**ग्रसिताम्**) ग्रस्त (**वर्तिकाम्**) वर्तने वाली जल धारा को (**अमुञ्चतम्**) छुड़ाते हैं ।

भावार्थः - ये द्यु और पृथिवी अपने प्रकाश चक्र से पर्वत पर भी मार्ग प्राप्त करते हैं । अन्तरिक्ष में सोने वाले मेघ के लिए गर्जना उत्पन्न करते हैं और वायु=मरुतों की शक्तियों से मेघ के अन्तराल में ग्रस्त जल धारा को उसके मुख से छुड़ाते हैं ॥१३॥

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥

पदार्थः—(**अश्विनौ**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**न**) जैसे (**भृगवः**) रथ बनाने वाले (**रथम्**) रथ को बनाते हैं, उसी प्रकार (**एतम्**) इस (**स्तोमम्**) प्रशंसावचन को हम (**वाम्**) आप दोनों के लिए (**अतक्षाम**) उच्चारित करते हैं, (**न**) जैसे (**मर्ये**) युवा मनुष्य में (**योषणाम्**) स्त्री को सोपा जाता है वैसे ही हम अपने प्रशंसावचन को आप को (**नि अमृक्षाम**) सौंपते हैं, (**न**) जिस प्रकार (**नित्यम्**) नित्य (**तनयम्**) कुल को बढ़ाने वाले (**सूनुम्**) पुत्र को (**दधानाः**) धारण करने वाले माता-पिता उसको साफ स्वच्छ रखकर पालन करते हैं वैसे हम आप की प्रशंसा और पालना करें ।

भावार्थः—वैद्य और वैज्ञानिक की हम उसी प्रकार प्रशंसा और पालना करें जिस प्रकार कारीगर रथ को बनाता है, उत्तम स्त्रियें उत्तम युवा पुरुषों को दी जाती हैं और माता पिता पुत्र को पालते हैं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में उन्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४०

ऋषिः—१—१४ घोषा काक्षीवती ॥ **देवते**—अश्विनौ ॥ **छन्दः**—१, ५, १२, १४ विराड्जगती । २, ३, ७, १०, १३ जगती । ४, ९, ११ निचृज्जगती । ६, ८ पादनिचृज्जगती ॥ **स्वरः**—निषादः ॥

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१॥

पदार्थः—(**नरा**) हे कर्म के नेता अध्यापक और उपदेशक (**वाम्**) आपके (**द्युमन्तम्**) दीप्तिमान (**प्रातर्यावाणम्**) प्रातःकाल के (**प्रति**) यज्ञ के प्रति

(**यान्तम**) जाने वाले (**विभ्वम**) महान् (**विशे विशे**) प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति (**वस्तो वस्तोः**) प्रतिदिन (**वहमान्**) चलने वाले (**रथम्**) रमणीय शरीर को (**कुह**) कहां पर (**कः ह**) कौन (**धिया**) वस्त्र धन दान आदि कर्म से (सुवित्ताय) सुख की प्राप्ति के लिए (**प्रति भूषति**) अलंकृत करता है ।

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप सबके नेता हो। दीप्तिमान शरीर जो प्रातः काल यज्ञ आदि में भाग लेता है और प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन जाकर शिक्षा और उपदेश देता है उसे वस्त्र अन्न आदि प्रदान करके कहां कौन अलंकृत करता है । अर्थात् प्रजाजन और राजकीय पुरुषों के अतिरिक्त और कौन ऐसा करेगा ॥१॥

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्य आ ॥२॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे स्त्री और पुरुष ! आप दोनों (**दोषा**) रात्रि में (**कुहस्वित्**) कहां रहते हो, (**वस्तोः**) दिन में (**कुह**) कहां रहते हो ? (**अभिपित्वम्**) आगमन (**कुह**) कहां (**करतः**) करते हो ? (**कुह**) कहां पर (**ऊषतुः**) वास करते हो? (**शयुत्रा**) शयन में (**देवरम्**) द्वितीय अर्थात् नियुक्त पति के साथ (**विधवा इव**) विधवा के समान (**सधस्थे**) एक रहने के स्थान में (**मर्यम्**) पति के साथ (**योषा न**) स्त्री के समान (**वाम्**) आप दोनों का (**कः**) कौन (**आकृणुते**) सत्कार करता हे ।

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न द्वारा स्त्री पुरुष के रहने, परस्पर व्यवहार, निवास करने और गृहस्थ धर्म पालन करने और विधवा को नियोग की व्यवस्था का वर्णन किया गया है ॥२॥

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३॥

पदार्थः—(**नरो**) अच्छे मार्ग पर ले जाने वाले हे अध्यापक और उपदेशक (**कापया**) स्तुति पाठ के द्वारा (**जरणा**) ऐश्वर्य से वृद्ध दो राजा की (**इव**) भांति (**प्रातः**) प्रातः काल में (**जरेथे**) स्तूयमान होते हो, (**वस्तोः वस्तोः**) प्रतिदिन (**यजता**) पूजनीय आप (**गृहम्**) अंभिभावक एवं यजमान के घर को (**गच्छथः**) जाते हो, आप दोनों (**कस्य**) यजमान आदि के किस दोष के (**ध्वस्रा**)

ध्वंसक (**भवथः**) होते हो (**वा**) और (**राजपुत्रा इव**) राजकुमार और राजकुमारी के समान (**कस्य**) किस के (**सवना**) यज्ञ में (**अव गच्छथः**) सम्मिलित होते हो ।

भावार्थ—हे अच्छे मार्ग पर ले जाने वाले अध्यापक और उपदेशक जैसे ऐश्वर्य वृद्ध राजा और राज्ञी की स्तुतिपाठक जन प्रातः स्तुति करते हैं वैसे आप प्रातः स्मरणीय होते हो । प्रतिदिन पूजनीय आप लोग यजमान और अभिभावक के घर जाते हो । आप यजमान आदि के किस दोष को दूर करते हो और राजकुमार और राजकुमारी के समान किस के यज्ञ में सम्मिलित होते हो ॥३॥

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४॥

पदार्थ—(**मृगण्यवः**) शिकारी लोग (**इव**) जिस प्रकार (**वारणा मृगा**) सिंह-सिंहिनी आदि शिकारों को खाने आदि से बुलाते हैं वैसे ही हम (**युवाम्**) इन दोनों वायु और सूर्य की (**वस्तोः**) दिन में (**दोषा**) रात्रि में (**हविषा**) हवन की सामग्री से (**नि ह्वयामहे**) यज्ञ में तारीफ करते हैं (**नरा**) सबको प्राप्त (**युवाम्**) ये दोनों (**ऋतुथा**) ऋतुओं के अनुसार (**होत्राम्**) आहुति को (**जुह्वते**) ग्रहण करते हैं तथा (**शुभस्पती**) वृष्टि के उदक के स्वामी होने से (**जनाय**) लोगों के लिए (**इषम्**) अन्न को (**वहथः**) प्राप्त कराते हैं ।

भावार्थः—शिकारी लोग जिस प्रकार सिंह आदि शिकारों को खाने की वस्तु के द्वारा बुलाते हैं वैसे यज्ञ की हवि से हम यज्ञ में प्रतिदिन और प्रति रात्रि सूर्य और वायु की प्रशंसा करते हैं । ये सभी के पास हैं और प्रत्येक ऋतु में हवि को ग्रहण करते हैं तथा वृष्टि के स्वामी होने से लोक के लिए अन्न को प्राप्त कराते हैं ॥४॥

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥

पदार्थः—(**नरा**) नेता भूत (**अश्विना**) हे राजा और पुरोहित ! (**परि**) चारों तरफ (**यती**) घूमती हुई मैं (**राज्ञः**) राजा अथवा दीप्तिमान् मनुष्य की (**दुहिता**) पुत्री (**घोषा**) विवाहिता स्त्री (**वाम् युवाम्**) आप दोनों से (**ह**) ही (**ऊचे**) कहती हूँ और (**पृच्छे**) पूछती हूँ कि (**मे**) मेरे (**अह्ने**) दिन के

व्यतीत करने के लिए (**भूतम्**) आप व्यवस्था करो (**उत**) और (**अक्तवे**) रात्रि व्यतीत करने की (**भवतम्**) व्यवस्था करे, (**अश्वावते**) घोड़े वाले (**अर्वते**) शक्तिशाली (**रथिने**) रथ वाले पुरुष के लिए (**शक्तम्**) मुझे देने में समर्थ हों।

भावार्थः—राजा अथवा साधारण मनुष्य की पुत्री जो विवाहिता स्त्री पति के मर जाने अथवा नपुंसक हो जाने की अवस्था में राजा और पुरोहित से व्यवस्था चाहती है कि उसके रात्रि के निर्वाह और सन्तान उत्पत्ति आदि के लिए योग्य शक्तिशाली पुरुष से नियोग की व्यवस्था करें ।।५।।

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

पदार्थः—(**कवी**) हे दूरदर्शी (**अश्विना**) राजा और विद्वान् आप (**कुत्सः न**) बज्र के समान हो और (**रथम्**) रथ पर (**परिस्थः** बैठते हो (**जरितुः**) उपासना करने वाली (**विशः**) प्रजा को (**परिनशायथः**) प्राप्त होते हो(**युवोः**) आप लोगों के निमित्त जो (**मधु**) मधु दिया जाता है (**मक्षा**) मधुमक्खियें (**आसा**) मुख से (**परि भरत**) धारण करती हैं (**न**) जैसे (**योषणा**) नारी (**निष्कृतम्**) संस्कृत मधु को ग्रहण करती है ।

भावार्थः—हे दूरदर्शी राजा और विद्वान् ! आप वज्र के समान दृढ़ हो और भगवान् की उपासना करने वाली प्रजा के पास आप आते-जाते हो । आपके निमित्त दिये जाने वाले मधु को मधुमक्षिका अपने मुख में वैसे धारण करती है जैसे स्त्री संस्कृत किये मधु को लेती है ।।६।।

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥

पदार्थः—हे (**अश्विना**) राजा और विद्वन् ! (**युवम् ह**) आप दोनों (**भुज्युम्**) लोगों के रक्षक को (**उपारथुः**) पार लगाते हो, (**युवम्**) आप (**वशम्**) अपने वश में आये हुए अथवा वशी पुरुष को पार लगाते हो,(**युवम्**) आप (**शिञ्जारम्**) स्तुति करने वाले को (**उशनाम्**) कमनीय स्तुति सुनने के लिये पार लगाते हो (**युवोः**) आपकी (**सख्यम्**) मैत्री को (**ररावा**) हवि का दाता यजमान (**परि आसते**) चाहता है, (**युवोः**) आपके (**अवसा**) रक्षण से (**अहम्**) मैं आपका अभिभावक (**सुम्नम्**) सुख की (**आचके**) कामना करता हूँ ।

भावार्थः—राजा और विद्वान् ! रक्षक, वशी, स्नातक, यजमान आदि सभी का पार लगाते हैं । उनके सख्य में सबको सुख प्राप्त करना चाहिए ।।७।।

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे राजा और विद्वान् ! (**युवम्**) आप दोनों (**कृशम् ह** दुर्बल की (**उरुष्यथः**) रक्षा करते हो, (**युवम्**) आप (**शयुम्**) सोये हुए की रक्षा करते हो, (**युवम्**) आप (**विधन्तम्**) सेवा करने वाले की तथा (**विधवाम्**) विधवा की रक्षा करते हो, (**युवम्**) आप (**सनिभ्यः**) यज्ञ करने वालों के लिए (**स्तनयन्तम्**) शब्दों से युक्त, (**सप्तास्यम्**) सात द्वार वाले (**व्रजम्**) गोशाले को (**अप ऊर्णुथः**) खोलते हो ।

भावार्थः—हे राजा और विद्वान् ! आप दुर्बल, सोये हुए, सेवा करने वाले तथा विधवा आदि की रक्षा करते हो । आप यज्ञ करने वालों के लिए सात द्वार से युक्त गायों के शब्द से युक्त गोशाला के द्वार को खोल देते हो ।।८।।

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥९॥

पदार्थः—(**योषा**) स्त्री (**जनिष्ट**) सन्तान उत्पन्न करती है, (**कनीनकः**) कमनीय कुमार (**पतयत्**) उत्पन्न होता है, (**अस्मै**) इसके लिए (**दंसनाः**) वृष्टि के (**अनु**) अनुकूल (**वीरुधः**) ओषधि और लता आदि(**वि अरुहन्**)उत्पन्न होती हैं, (**च**) और (**अस्मै**) इसके लिए (**सिन्धवः**) नदियां (**निवना इव**) नीचे हुई के समान (**आ रीयन्ते**) जल बहाती हैं, (**अह्ने**) दिन के लिए=समय आने पर (**अस्मै**) इसको (**पतित्वनम्**) यौवन (**भवति**) होता है ।

भावार्थः—प्राण और अपान के द्वारा स्त्री रक्षित हुई सन्तान को जन्म देती है । सुन्दर बच्चा उत्पन्न होता है । उसके लिए ओषधि और लता आदि बढ़ते हैं, नदियें जल बहाती हैं, समय आने पर वह युवावस्था को प्राप्त करता है ।।९।।

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥

पदार्थः—(**ये नरः**) जो पति पत्नियों के (**जीवम्**) जीवन को लक्ष्य में रखकर (**रुदन्ति**) रोते हैं कि ये मरें नहीं और तकलीफ भी न पावें, उन जायावों को (**अध्वरे**) यज्ञ में (**विमयन्ते**) लगाते हैं, (**दीर्घाम्**) बड़े दूर तक फैले हुए (**प्रसितिम्**) बन्धन को (**अनुदीधियुः**) सोचते हैं (**इवम**) इस (वामम) वननीय=उत्तम अपत्य को (**पितृभ्यः**) माता-पिता के लिए (**सम एरिरे**) प्रेरित करते हैं (**जनयः**) जायायें (**परिष्वजे**) आलिंगनार्थ (**पतिभ्यः**) अपने पतियों को (**मयः**) सुख देती है ।

भावार्थः—जो पति जायावों के जीवन को उद्देश्य में रखकर कि यह दुःखी वा मृत न होवें, उन पत्नियों को यज्ञ में बैठाते हैं, दूर तक फैले हुए सन्तति के नियम को सोचते हैं । उत्पन्न सुन्दर सन्तान को माता-पिता को देते हैं और जायायें अपने पति को परिष्वजन से सुखी करती हैं ॥१०॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे आप्त माता-पिता ! (**यत्**) जो (**युवा**) युवा पुरुष (**युवत्या**) युवती स्त्री के साथ (**योनिषु**) गृहों में (**क्षेति**) निवास करता है हम अबोध युवा युवती जन (**तस्य**) उसके सम्बन्ध में (**न**) नहीं (विद्म) जानते हैं (**तत्**) वह (**उ**) निश्चय से (**सुप्रवोचत**) बताइये (प्रिय उस्रियस्य) युवती वधू को प्रेम करने वाले (**वृषभस्य**) वीर्यवर्धक (रेतिनः) वीर्यवान् पति के (**गृहम्**) घर को (**गमेम**) जावें (**तद्**) वैसा (**उश्मसि**) चाहतां हैं ।

भावार्थः—गृहस्थाश्रम में युवापति और युवती पत्नी के क्या व्यवहार होते हैं इन सब बातों को योग्य माता-पिता वर-वधुओं को जता देवें ॥११॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥१२॥

पदार्थः—(**वाजिनीवसू**) अन्न और धन वाले, (**शुभस्पती**) विविध पेयों के स्वामी (**अश्विना**) हे स्त्री पुरुषो ! (**वाम्**) आप दोनों को (**सुमतिः**) सुबुद्धि (**आ अगन्**) प्राप्त हो (**हृत्सु**) हृदयों में (**कामाः**) कामनाओं को (**नि अयंसत**) नियन्त्रित रखो (**मिथुना**) दोनों साथ-साथ (**गोपा**) रक्षक (**अभूतम्**) होओ, (**प्रियाः**) प्रिया होकर (**वयम्**) हम (**अर्यमणः**) पति के (**दुर्यान्**) गृहों को (**अशीमहि**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—अन्न और धनों के स्वामी, पेयों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आपको सुबुद्धि प्राप्त हो । हृदयों में कामनायें नियन्त्रित रहें । परस्पर एक-दूसरे के रक्षक रहो । आपके उपदेश से हम स्त्रियें पति के गृह को प्राप्त करें ॥१२॥

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

पदार्थः हे आप्त मात-पिता ! (**मन्दसाना**) सुख के देने वाले (**ता**) आप दोनों (**मनुषः**) उत्तम पति के (**दुरोणे**) गृह में (**वचस्यवे**) आपकी प्रशंसा वाले मुझ कन्या के लिए (**सहवीरम्**) सन्तान से युक्त (**रयिम्**) धन (**आ धतम्**) दें । (**शुभस्पती**) शुभ पदार्थों के स्वामी आप (**तीर्थम्**) जल के लिए (**सुप्रपानम्**) उत्तम प्रपा भी (**कृतम्**) बनावें । आप (**पथेस्थाम्**) मार्ग में खड़े (**स्थाणुम्**) वृक्ष के समान (**दुर्मतिम्**) दुर्बुद्धि को (**अपहतम्**) नष्ट करें ।

भावार्थः हे आप्त माता-पिता ! आप दोनों सुख के देने वाले हो । मेरे लिए उत्तम पति के गृह में सन्ततियुक्त धन दें । पीने के लिए प्रपा बनावें और दुर्मति को रास्ते में आ पड़ने वाले वृक्ष के समान काट दें ॥१३॥

क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे अध्यापक और उपदेशक ! (**दस्रा**) दर्शनीय और (**शुभस्पती**) शोभन पदार्थों के स्वामी आप दोनों (**अद्य**) आज (**क्व स्वित्**) कहां स्थित हैं ? (**कतमासु**) किन (**विक्षु**) प्रजाजनों में (**मादयेते**) हर्ष प्राप्त करते हैं, (**कः**) कौन (**ईम्**) इन आप दोनों को (**नि येमे**) अपने पास रोकता

है, (**कस्य**) किस (**यजमानस्य**) यजमान (**वा**) अथवा (**विप्रस्य**) मेधावी के (**गृहम**) घर पर जाते हो ।

भावार्थः - लोग सदा अध्यापक और उपदेशक से इस प्रकार पूछते रहें कि वे कहां, किन लोगों में और किस के घर पर जाते हैं और आतिथ्य आदि ग्रहण करते हैं जिससे उनको किसी प्रकार की असुविधा न हो और वे सबको उपदेश शिक्षा आदि देते रहें ।।१४।।

यह दशम मण्डल में चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त ४१

ऋषिः—१ ३ सुहस्त्यो घौषेयः ।। देवते—अश्विनौ ।। छन्दः—१ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३ विराड्जगती ।। स्वरः – निषादः ।।

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१ रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१॥

पदार्थः—हे वैज्ञानिक और शिल्पिन् ! आपके (**समानमु**) साधारण (त्यम्) उस (**पुरुहूतम**) बहुतों से आहूत (**उक्थ्यम**) प्रशस्य (**त्रिचक्रम्**) तीन चक्रों वाले (**सवना**) यज्ञों में (**गनिग्मतम्**) जाने वाले (**परिज्मानम**) पृथिवी के चारों तरफ जाने वाले (**विदथ्यम्**) यज्ञ के हितकारी (**रथम्**) रथ की (**उषसः**) उषा के (**व्युष्टौ**) उदित होने पर (**सुवृक्तिभिः**) उत्तम प्रशंसा वचनों के साथ (वयम्) हम (**हवामहे**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः हे वैज्ञानिक और शिल्पिन् ! हम आपके द्वारा निर्मित और प्रयोग में आने वाले तीन चक्रों वाले रथ की प्रशंसा करते हैं जिससे सर्वत्र जाया जा सकता है ।।१।।

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरोश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥२॥

पदार्थः – (**नासत्या**) हे सत्यभूत (**अश्विना**) वैज्ञानिक और शिल्पिन् ! आप (**नरा**) लोगों के पथदर्शक हो । आप (**प्रातर्युजम्**) प्रातःकाल जोड़े जाने वाले, (**प्रातः यावानम्**) प्रातःकाल में चलने वाले (**मधु वाहनम्**) उत्तम वाहनभूत (**रथम्**) रथ पर (**अधितिष्ठतः**) सवार होते हो । (**येन**) जिस रथ से (**यज्वरीः**) यजनशील (**विशः**) प्रजा में (**गच्छथ**) जाते हो (**येन**) जिससे (**कीरेः चित्**) स्तोता के (**होतृमन्तम्**) होता आदि से युक्त (**यज्ञम्**) यज्ञ में (**गच्छथः**) जाते हो ।

भावार्थः—इस मन्त्र में उस उत्तम रथ का वर्णन किया गया है जिस के द्वारा प्रातःकाल वैज्ञानिक और शिल्पी यज्ञ आदि में दूर पर भी हो तो चले जाते हैं ।।२।।

अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥३॥

पदार्थः हे (**अश्विना**) वैज्ञानिक-शिल्पिन् ! आप (**मधुपाणिम्**) सोम हाथ में लिए (**अध्वर्युम्**) अध्वर्यु (**वा**) और (**सुहस्त्यम्**) हस्तक्रिया में निपुण (**धृतवक्षम्**) बलवाले (**दमूनसम्**) दानमना (**अग्नीध्रम्**) अग्नीध्र के पास (**आयातम्**) आते जाते हो, (**यत्**) यद्यपि (**विप्रस्य**) और भी मेधावी के (**सवनानि**) यज्ञों में (**गच्छथः**) जाते हो (**अतः**) इसलिए (**मधुपेयम्**) सोमपान में भी (**आ यातम्**) आते हो ।

भावार्थः वैज्ञानिक और शिल्पी यज्ञ में अध्वर्यु, अग्नीध्र आदि से मिलकर सब विज्ञानों का विस्तार करें और मधुर सोम आदि ओषधियों का पान करें ।।३।।

यह दशम मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त ४२

ऋषिः १—११ कृष्णः ।। देवता - इन्द्रः ।। छन्दः —१, ३, ७ - ६, ११ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ।। ६, १० विराट्त्रिष्टुप् ।। स्वरः— धैवतः ।।

अस्तैव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

पदार्थः—(**जरितः**) हे भक्त ! (**प्रतरम्**) बड़े (**तायम्**) संश्लिष्ट होने वाले अर्थात् हृदयवेधी (**शरम्**) वाण को (**सु**) सुष्ठु रूप से (**अस्यन्**) फेंकते हुये (**अस्ता इव**) धनुर्धारी के समान (**भूषन् इव**) अलंकर्त्ता के समान (**अस्मै**) इस इन्द्र=परमेश्वर के लिए (**स्तोमम्**) स्तुति (**प्रभर**) करो, (**विप्राः**) हे मेधावी पुरुषो ! आप (**वाचा**) वेदवाणी द्वारा की जाने वाली स्तुति से (**अर्यः**) शत्रु की (**वाचम्**) वाणी को (**नि तरत**) सर्वथा पार कर जाओ (**सोमे**) आत्मा में (**इन्द्रम्**) भगवान् के साथ (**निरमय**) खेलो ।

भावार्थः—हे भक्त ! तू बड़े लम्बे, हृदयवेधी वाण को फेंकने वाले धनुर्धर के समान तथा उत्तम अलंकर्त्ता के समान भगवान् की वेदमन्त्र से स्तुति कर । हे मेधावी जन ! आप वेद वाणी द्वारा शत्रु की वाणी को लांघ जाओ । हे भक्त तू अपनी आत्मा में परमात्मा के साथ खेल ॥१॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२॥

पदार्थः—(**जरितः**) हे भक्त ! तू (**दोहेन**) दोहन रूप कर्म अर्थात् मन से आलोडन-विलोडन करके (**गाम्**) वेदवाणी को (**उपशिक्ष**) स्वयं प्राप्त कर और दूसरों को भी दे । (**सखायम्**) भगवान् के सखाभूत (**जारम्**) स्तुति करने वाले अथवा इन्द्रियों और शरीर को जीर्ण करने वाले (**इन्द्रम्**) अपने आत्मा को (**प्रबोधय**) जगाओ, (**पूर्णम्**) भरे हुए (**कोशम्**) जलपात्र के (**न**) समान (**वसुना**) ज्ञान धन से (**निऋष्टम्**) पूर्ण (**शूरम्**) बलशाली आत्मा को (**मघदेयाय**) आत्मिक सम्पत्ति देने के लिए (**आ च्यावय**) अभिमुख करो ।

भावार्थः—हे भक्त ! मन से विशेष आलोडन-विलोडन के द्वारा वेदवाणी को स्वयं समझ और दूसरों को समझा । भगवान् के सखाभूत इन्द्रियों के जीर्ण करने वाले अपनी आत्मा को जगा । जल से परिपूर्ण पात्र के समान आत्मिक सम्पत्ति से पूर्ण आत्मा को ज्ञानधन के प्रदान हेतु अभिमुख कर ॥२॥

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

पदार्थः—(**अंग**) हे (**मघवन्**) इन्द्र=धनों के स्वामी परमेश्वर ! (**त्वाम्**) आप को (**भोजम्**) पाल (**किम्**) क्यों (**आहुः**) विद्वज्जन कहते हैं, (**मा**) मुझे

(**शिशीहि**) उत्तम कर्म में उत्साह दे, (**त्वा**) आप को मैं (**शिशयम्**) उत्साह देने वाला (**शृणोमि**) सुनता हूँ, (**मम**) मेरी (**धीः**) बुद्धि (**अप्नस्वती**) कर्म करने में कुशल (**अस्तु**) हो, (**शक्र**) हे शक्तिशाली (**इन्द्र**) भगवन् (**नः**) हमें (**वसुविदम्**) धन से युक्त (**भगम्**) ऐश्वर्य (**आ भर**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—हे धनों के स्वामी, शक्तिशाली परमेश्वर, आप को विद्वान् लोग पालक कहते हैं । आप उत्तम कर्म में मुझे उत्साह दें । आप को मैं देने वाला सुनता हूं । मेरी बुद्धि को कर्म में कुशल बनाओ और समस्त धनों से युक्त ऐश्वर्य हमें दो ॥३॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**जनाः**) लोग (**त्वाम्**) तुझ को (**ममसत्येषु**) जीवन के विविध संग्रामों में सहायतार्थ (**वि ह्वयन्ते**) पुकारते हैं, (**समीके**) युद्ध में (**संतस्थानः**) लगे हुए भी पुकारते हैं । (**अत्र**) इस विषय में (**शूरः**) शक्तिशाली (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**तम्**) उसको (**युजम्**) सखा (**कृणुते**) बनाता है (**यः**) जो (**हविष्मान्**) श्रद्धालु होता है तथा (**असुन्वता**) अयाज्ञिक व्यक्ति के साथ (**सख्यम्**) मैत्री (**न**) नहीं (**वष्टि**) चाहता है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तुझे जीवन के सभी संग्रामों में लोग याद करते हैं । युद्ध में भी लगे हुए तुम्हें याद करते हैं । तू उसी का मित्र बनता है जो श्रद्धालु है और अयाज्ञिक व्यक्तियों की मैत्री नहीं चाहता है ॥४॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**प्रयस्वान्**) प्रयास करने वाला उद्योगी पुरुष (**बहुलम्**) बहुत से (**धनम्**) धन के (**न**) समान (**स्पन्द्रम्**) पशु आदि पदार्थों को और (**तीव्रान्**) तीव्र (**सोमान्**) पदार्थों को (**अस्मै**) इस राजा के लिए (**आसुनोति**) देता है (**तस्मै**) उसके लिए वह राजा (**सुतुकान्**) हिंसाकारक वा विनाशक हथियारों वाले (**सु अष्ट्रान्**) उत्तम घोड़ों आदि से युक्त (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**अह्नः**) दिन के (**प्रातः**) पूर्व भाग में ही (**युवति**) दूर करता है (**वृत्रम्**) दुःखों को (**निहन्ति**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जो उद्योगी पुरुष राजा को धन और सैन्य आदि की तथा तीव्र पदार्थों की सहायता करता है उसके लिए राजा घातक हथियारों और अश्व आदि से युक्त शत्रुओं को दूर भगाता है और दुःख का विनाश करता है ॥५॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस (**इन्द्रे**) राजा में (**वयम्**) हम (**शंसम्**) प्रशसा (**दधिम**) धारण करते हैं (**यः**) जो (**मघवा**) धनों का स्वामी है और (**अस्मे**) हमें (**कामम्**) अभिलाषायें (**शिश्राय**) प्राप्त कराता है (**अस्य**) इस राजा के (**शत्रुः**) शत्रु (**आरात्**) दूर (**चित्**) एव (**सन्**) होते हुए (**भयताम्**) डर जावें तथा (**अस्मै**) इसके लिए (**जन्या**) शत्रुओं के यहां उत्पन्न (**द्युम्ना**) अन्न धन आदि (**नमन्ताम्**) आ झुकें अर्थात् आ जावें ।

भावार्थः—जिस राजा की हम प्रशंसा करते हैं, जो धनों का स्वामी है और हमारी अभिलाषाओं को प्राप्त कराता है उसके शत्रु दूर से ही भाग जावें और उनके यहां उत्पन्न अन्न धन आदि वहां की प्रजा के लिए इसे प्राप्त हो जावें ॥६॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

पदार्थः (**पुरुष्टुत**) हे सबसे स्तुति किये जाने वाले (**इन्द्र**) परमेश्वर ! आप का जो (**उग्रः**) उग्र (**शम्बः**) वज्र मेघ में है उससे (**शत्रुम्**) हमारे शत्रुभूत कृमि कीट आदि को आप (**आरात्**) हमारे समीप से (**दूरम्**) दूर (**अप बाधस्व**) भगा देते हो । (**अस्मे**) हमें (**यवमत्**) यवयुक्त (**गोमत्**) गोयुक्त धन (**धेहि**) दो और (**जरित्रे**) हम स्तावक लोगों को (**वाजरत्नाम्**) धन ज्ञान और रत्न पूर्ण (**धियम्**) कर्म (**कृधि**) दें ।

भावार्थः—हे सबसे स्तुति किये जाने वाले परमेश्वर ! आप का मेघ में विद्यमान जो उग्र वज्र है उससे हमारे शत्रुभूत रोगजनक कृमि कीट आदि को आप हमारे समीप से दूर भगा देते हो । हमें अन्न और गोयुक्त धन दीजिए और हमारे कर्म को धन, ज्ञान और रत्नपूर्ण बनाइये ॥७॥

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

पदार्थः—(**यम्**) जिस इन्द्र=राजा को (**बहुल अन्तासः**) बहुत ऐश्वर्य वाले (**तीव्राः**) तीव्र (**वृष सवासः**) बलवान् पुरुषों के संचालक (**सोमाः**) उत्तम शासक (**प्र अग्मन्**) प्राप्त होते हैं, (**मघवा**) ऐश्वर्यशाली वह (**दामानम् अह**) दानशील अथवा दान्त को (**न**) नहीं (**नियंसत्**) बांधता है, (**सुन्वते**) राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले के लिए (**भूरि**) बहुत (**वामम्**) वननीय धन (**निवहति**) देता है ।

भावार्थः—जिस राजा के पास बहुत से ऐश्वर्य वाले तीव्र, बलवान् पुरुषों के संचालक शासक जाते हैं और रहते हैं वह नियन्त्रण में रहने वालों को कभी बांधता नहीं, बल्कि राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले के लिए वह प्रशस्त धन देता है ॥८॥

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९॥

पदार्थः—(**उत**) और राजा (**प्रहाम्**) हन्ता को (**अतिदीव्य**) अत्यधिक काल तक चलने देकर (**जयाति**) उस पर जय प्राप्त करता है । (**यत्**) जिस प्रकार (**श्वघ्नी**) जुआरी (**कृतम्**) अपने पासे को अल्प जुआरियों के प्रति (**काले**) समय पर (**विचिनोति**) प्रतिवादी जुआरी को चुनकर प्रयोग करता है उसी प्रकार राजा भी शत्रु को चुनकर समय पर उस पर घात करता है । (**यः**) जो मनुष्य (**देवकामः**) यज्ञ के देवों के प्रति यज्ञ आदि करने की कामना रखता है (**तम्**) उसके लिए (**धना**) धनों को (**न**) नहीं (**रुणद्धि**) रोकता है । (**स्वधावान्**) स्वशक्ति से भरपूर वह (**तम्**) उसे (**राया इत्**) धन से (**सम् सृजति**) संयुक्त कर देता है ।

भावार्थः—राजा शत्रु को पहले चढ़ा-बढ़ा कर फिर उस पर विजय प्राप्त करता है । जिस प्रकार जुआरी प्रतिद्वन्द्वी जुआरी के प्रति समय पर पासा फेंकता है और किस पर फेंकना है यह चुन लेता है उसी प्रकार राजा शत्रुओं में से शत्रु को चुनकर समय पर वार करता है । यज्ञ करने वाले के लिए वह धन को रोकता नहीं । वह धनवान् राजा ऐसे यज्ञ भावना वाले को धन से युक्त कर देता है ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थः—(**पुरुहूत**) हे सबसे प्रशंसा पाने वाले ! (**वयम**) हम (**दुरेवाम्**) दुःसाध्य (**ग्रमतिम्**) व्याधि को (**गोभिः**) गोदुग्ध आदि ओषधियों से (**तरेम**) पार करें और (**यवेन**) यव एवं उससे बने मिश्रण के द्वारा (**विश्वाम्**) समस्त (**क्षुधम्**) भूख को पार करें, (**राजभिः**) राजाओं के साथ (**प्रथमाः**) मुख्य (**धनानि**) धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) बल से (**जयेम**) जीतें ।

भावार्थः—हम दुःसाध्य रोग को गाय के दुग्ध आदि से दूर करें और यव के बने पदार्थ से सब भूखों को दूर करें तथा राजाओं के साथ होकर अपने बल से मुख्य धनों को जीतें ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का पालक विद्वान् (**नः**) हमें (**पश्चात्**) पीछे से, (**उत**) और (**उत्तरस्मात्**) ऊपर से और (**अधरात्**) नीचे से (**अघायोः**) पापाचारी से (**परिपातु**) बचावे (**इन्द्रः**) राजा (**पुरस्तात्**) आगे से और (**मध्यतः**) मध्य से (**नः**) हमारी रक्षा करे (**सखा**) मित्र (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिए (**वरिवः**) धन (**कृणोतु**) देवे ।

भावार्थः— विद्वान् जो वेदवाणी का पालक है, हमें ऊपर की दिशा से, पीछे से और नीचे की दिशा से पापाचारी से रक्षित रखें । राजा सामने से और मध्य से हमारी रक्षा करे । मित्र मित्रों के लिए धन देवे ॥११॥

यह दशम मण्डल में बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४३

ऋषिः—१—११ कृष्णः ॥ देवताः—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ६ निचृज्जगती । २ आर्ची स्वराड् जगती । ३, ६ जगती । ४, ५, ७, ८ विराड् जगती । १७ विराड् त्रिष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-६ निषादः । १, ११ धैवतः ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

पदार्थः-(**मे**) मुझ ज्ञानी की (**स्वर्विदः**) प्रकाशयुक्त (**सध्रीचीः**) सुसंगत (**विश्वा**) व्याप्त (**उशती**) चाहती हुई (**मतयः**) स्तुतियां (**इन्द्रम्**) भगवान् की (**अच्छ**) भली प्रकार (**अनूषत**) स्तुति करती हैं । (**जनयः**) जायाएँ (**यथा न**) जिस प्रकार (**मर्यम्**) मनुष्य (**पतिम्**) पति को आलिङ्गित करती है उसी प्रकार ये स्तुतियां (**शुन्ध्युम्**) शुद्ध (**मघवानम्**) धनों के स्वामी परमेश्वर को प्राप्त होती है ।

भावार्थः मुझ ज्ञानी की ज्ञानयुक्त, सुसंगत, व्याप्त स्तुतियां भगवान् की अच्छी प्रकार स्तवन करती हैं । जिस प्रकार जायायें अपने मनुष्य पति को आलिङ्गित करती हैं उसी प्रकार ये स्तुतियें शुद्धस्वरूप समस्त धनों के स्वामी भगवान् को प्राप्त होती हैं ॥१॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥

पदार्थः (**पुरुहूत**) सबसे स्तुति किये जाने वाले प्रभो ! (**न घ**) न ही (**त्वद्रिक्**) तुझमें लगा हुआ (**मे**) मेरा (**मनः**) मन (**अप वेति**) दूर हटता है (**त्वे**) तुझमें ही (**कामम्**) अपनी कामना को (**शिश्रय**) स्थापित करता हूं, (**राजा इव**) राजा के समान आप (**बर्हिषि**) हमारे हृदयाकाश में (**अधि नि सदः**) विराज रहे हैं (**दस्म**) हे योगियों से दर्शनीय भगवन् ! (**ते**) आप का (**अस्मिन्**) इस (**सोमे**) आत्मा में (**सु अव पानम्**) शोभन रक्षण (**अस्तु**) हो ।

भावार्थः—हे सबसे स्तुति किये जाने योग्य प्रभो ! आप योगियों स साक्षात्कार के योग्य हो । तुझमें लगा मेरा मन कभी भी हटता नहीं । तुझमें ही मेरी समस्त कामनायें निहित हैं । राजा के समान आप मेरे हृदयाकाश में विराज रहे हैं । इस आत्मा में आप का उत्तम रक्षण प्राप्त हो ॥२॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

पदार्थः—(**विषुवृत्**) विष्वग् वर्तमान (**इन्द्रः**) सूर्य (**अमतेः**) दुष्काल (**उत**) और (**क्षुधः**) भूख को दूर करता है। (**स इत्**) वह ही (**मघवा**) धनों वाला है और (**रायः**) धन का और (**वस्वः**) भोग्य पदार्थों का (**ईशते**) शासक है, (**वृषभस्य**) वर्षा के कारणभूत (**शुष्मिणः**) शक्तिशाली (**तस्य इत्**) उसी ही सूर्य के कारण (**प्रवणे**) निम्न प्रदेश में, बहने वाली (**इमे**) ये (**सप्त**) सात (**सिन्धवः**) नदियां (**वयः**) अन्न आदि को (**वर्धन्ति**) बढ़ाती हैं।

भावर्थ—विष्वग्वर्त्तमान सूर्य दुष्काल और भुखमरी आदि को दूर करता है। वह ही धन और भोग्य पदाथ का स्वामी है। उसके ही द्वारा वर्षा होने पर सात जल धारायें निम्न प्रदेश में बही हुई अन्न आदि को बढ़ाती हैं ॥३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥

पदार्थः-(**न**) जिस प्रकार (**वयः**) पक्षी लोग (**सुपलाशम्**) अच्छे पत्तों वाले (**वृक्षम्**) वृक्ष पर (**आ असदन्**) स्थित होते हैं उसी प्रकार (**मन्दिनः**) हर्षदायक (**चमूषदः**) द्यु और पृथिवी में स्थित (**सोमासः**) जलीय तत्व (**इन्द्रम्**) सूर्य में स्थिति पाते हैं, (**एषाम्**) इन जलीय तत्त्वों का (**अनीकम्**) समूह (**शवसा**) वेग से युक्त हुआ (**प्र दविद्युतत्**) चमकता है यह सूर्य (**स्वः**) प्रकाशमान (**आर्यम्**) श्रेष्ठ (**ज्योतिः**) ज्योति को (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**विदत्**) देता है।

भावार्थः—जिस प्रकार पक्षीगण उत्तम पत्तों वाले वृक्ष पर आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हर्षदायक, द्यु और पृथिवी लोक में स्थित समस्त जलीय तत्त्व सूर्य में स्थिति पाते हैं। इन जलीय तत्त्वों का समूह वेग से युक्त हुआ चमकता है। यह सूर्य प्रकाशमान श्रेष्ठ ज्योति को मनुष्य को प्रदान करता है। सूर्य की एक प्रकार की किरणें 'आपः' नाम की हैं। उन्हीं का यह वर्णन हैं ॥४॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५॥

पदार्थः—(**श्वघ्नी**) जुआरी (**देवने**) द्यूत खेलने में (**कृतम् न**) जिस प्रकार कृत=पासे को (**चिनोति**) चुनता है उसी प्रकार (**इन्द्रः**) विद्युत् सूर्य को चुनती है। (**यत्**) यदा (**मघवा**) मखों=यज्ञों का स्वामी इन्द्र=विद्युत् (**संवर्गम्**) वृष्टि को रोकने वाले (**सूर्यम्**) सूर्य किरण को (**जयत्**) प्राप्त करता है तब वृष्टि का होना सम्भव होता है। तब (**मघवन्**) इस इन्द्र=विद्युत् के (**वीर्यम्**) शक्ति को (**न पुराणः**) न पुरातन (**न उत नूतनः**) न ही नया (**अन्यः**) उससे भिन्न कोई भी (**ते**) उसके (**तत्**) उस (**वीर्यम्**) बल को (**अनु**) अनुकरण करने में (**न शकत्**) नहीं समर्थ होता है।

भावार्थः द्यूत खेलने वाला द्यूत खेलने के समय में जिस प्रकार पासे को चुनता है वैसे ही आकाशस्थ विद्युत् सूर्या को चुनती है। जब वह सूर्या की वृष्टि रोकने वाली रश्मि को प्राप्त करती है तब वृष्टि होती है। इसकी शक्ति का इससे भिन्न नया पुराना कोई भी अनुकरण नहीं कर सकता है। सूर्या की वृष्टिवनि नाम की किरण से वर्षा होती है। परन्तु जो वर्षा को रोकने वाली शुष्कता है उस पर इन्द्र जय प्राप्त करके इससे वर्षा कराता है ॥५॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥

पदार्थः— **वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला, (**शक्रः**) शक्तिशाली (**मघवा**) धनों का स्वामी परमेश्वर (**विशम् विशम्**) प्रत्येक प्रजा के व्यक्ति में (**पर्यशायत**) विराजमान होता है, (**जनानाम्**) स्तोता लोगों की (**धेना**) स्तुति को (**अव चाकशत्**) देखता है, (**यस्य अह**) जिस ही के (**सवनेषु**) यज्ञ आदि कार्यों में वह (**रण्यति**) प्रसन्न हो कृपा करता है (**सः**) वह (**तीव्रैः**) तीव्र (**सोमैः**) प्रज्ञान और कर्मों से (**पृतन्यतः**) काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**सहते**) दबा लेता है।

भावार्थः—भगवान् प्रत्येक प्रजा जन में व्यापक हो विराजमान है। वह सबकी स्तुतियों को जानता है। परन्तु जिसके यज्ञ आदि कार्यों में उसकी कृपा हो जाती है वह पुरुष अपने काम क्रोध आदि शत्रुओं को तीव्र प्रज्ञान और कर्म से दबा लेता है ॥६॥

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्याइव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

पदार्थ--(**यत्**) जिस प्रकार (**सोमासः**) जलीय पदार्थ (**इन्द्रम**) सूर्य को (**अभि**) लक्ष्य करके (**समक्षरन्**) बहते हैं, (**आपः**) वेगवती जलधारायें (**न**) जिस प्रकार (**सिन्धुम्**) सिन्धु = समुद्र को जाती हैं (**कुल्याः**) नाले (**इव**) जिस प्रकार (**ह्रदम्**) तालाब को प्राप्त होते हैं, (**न**) जिस प्रकार (**दिव्येन**) आकाश से होने वाले (**दानुना**) दानरूप (**वृष्टिः**) वृष्टि से किसान (**यवम्**) यव आदि बढ़ाते हैं उसी प्रकार (**विप्राः**) मेधावी लोग (**सदने**) यज्ञ वा उपासना के स्थान में (**अस्य**) इस परमेश्वर के (**महः**) महत्त्व को (**वर्धन्ति**) स्तुतियों से बढ़ाते हैं ।

भावार्थ:—जिस प्रकार जलीय तत्त्वों का बहना सूर्य को अभिलक्षित करके होता है, वेगवती जल धारायें समुद्र में जाती हैं, नाले बड़े तालाब में गिरते हैं । आकाश से हुई वृष्टि से किसान लोग यव आदि को बढ़ाते हैं वैसे ही उपासना गृह में मेधावी लोग भगवान् के महत्त्व को बखानते हैं ।।७।।

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ।।८।।

पदार्थ:—(**रजः सु**) लोकों में (**न**) जिस प्रकार (**वृषा**) बैल (**क्रुद्धः**) क्रुद्ध हुआ दूसरे बैल पर (**आ पतयत्**) टूट पड़ता है वैसे इन्द्र = वायु अथवा सूर्य मेघ पर टूट पड़ता है । (**यः**) जो इन्द्र (**अर्यपत्नीः**) कृषि का कार्य करने वाले वैश्यजनों की पालक (**इमाः**) इन (**अपः**) वृष्टि जलों को (**अकृणोद्**) अभिमुख करता है (**सः**) वह (**मघवा**) धनों का देने वाला वायु वा सूर्य (**सुन्वते**) यज्ञशील (**जीरदानवे**) शीघ्र दानी (**हविष्मते**) हवि प्रदान करने वाले (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**ज्योतिः**) तेज को (**अविदत**) देता है ।

भावार्थः- जिस प्रकार बैल क्रुद्ध हुआ लोक में बैल पर टूटता है वैसे वायु वा सूर्य मेघ पर टूटते हैं । यह मेघ को मारकर खेती करने वाले वैश्य की पालक वृष्टि जलों को प्रदान करता है । यज्ञ में आहुति देने वाले दानी स्वभाव वाले मनुष्य को प्रकाश प्रदान करता है ।।८।।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ।।९।।

पदार्थः—(**परशुः**) वज्र (**ज्योतिषा**) तेज के (**सह**) साथ (**उत् जायताम्**) अपना व्यापार करे, (**ऋतस्य**) जल की (**सुदुघा**) उत्तम प्रकार से दोहन करने वाली माध्यमिका वाक् [कड़क] (**पुराणवत्**) पूर्व की भांति नई (**भूयाः**) होवे । (**अरुषः**) प्रकाशमान सूर्य (**भानुना**) दीप्ति से (**शुचिः**) जलता हुआ (**विरोचताम्**) प्रकाशित होवे । (**सत्पतिः**) सत्ताधारी पदार्थों का पालक वायु (**स्वः न**) आदित्य के समान (**शुक्रम्**) जलता हुआ (**शुशुचीत**) दीप्त होवे ।

भावार्थः - वर्षा के लिए बिजलीरूपी वज्र तेज के साथ अपने कार्य में लग जावे, जल का दोहन करने वाली माध्यमिका वाक् (कड़क) पूर्व की भांति नई होकर काम करने लगे । सूर्य तेज के साथ जलता हुआ चमके और वायु आदित्य के समान जलता हुआ सा बहने लगे । जिससे वृष्टि होवे ।।९।।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ।।१०।।

पदार्थः—(**पुरुहूत**) हे सबसे प्रशंसा किये जाने वाले राजन् ! (**दुरेवाम्**) दुःसाध्य (**अमतिम्**) अज्ञान को हम (**गोभिः**) वेदवाणी से (**तरेम**) पार करें, (**विश्वाम्**) व्यापक (**क्षुधम्**) भूख को (**यवेन**) अमिश्रित = शुद्ध अन्न से पार करें, (**वयम्**) हम सब (**राजभिः**) चमकते औजारों आदि के साथ (**प्रथमा**) मुख्य (**धना**) धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) प्रयत्न से (**जयेम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे सबसे प्रशंसा किये जाने वाले राजन् ! हम दुःसाध्य अज्ञान को वेदवाणी से पार करें । व्याप्त भूख को अमिश्रित अर्थात् शुद्ध अन्न से दूर करें । चमकते शस्त्रों आदि से युक्त हो मुख्य धनों को अपने प्रयत्न से प्राप्त करें ।।१०।।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ।।११।।

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) समस्त आकाश आदि महान् पदार्थों का स्वामी परमेश्वर (**नः**) हमारी (**पश्चात्**) पीछे, (**उत**) और (**उत्तरस्मात्**) उत्तर से

(**अधराद्**) नीचे की दिशा से, (**पुरस्ताद्**) सामने से (**उत**) और (**मध्यतः**) मध्य से (**अघायोः**) पापी पुरुष से (**परिपातु**) रक्षा करे । (**नः**) हमारा (**सखा**) मित्र (**इन्द्रः**) राजा (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिए (**वरिवः**) धन (**कृणोतु**) अभिमुख करे ।

भावार्थः— महान् लोकों का स्वामी परमेश्वर हमारी सामने, पीछे, ऊपर, नीचे और मध्य से पापी पुरुष से रक्षा करे। हमारा मित्र राजा मित्रभूत हम सबको धन प्रदान करे ॥११॥

यह दशम मण्डल में तीतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४४

ऋषिः—१—११ कृष्णः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः** १ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, १० विराट्त्रिष्टुप् । ३, ११ त्रिष्टुप् । ४ विराड्जगती । ५—७, ६ पादनिचृज्जगती । ८ निचृज्जगती ॥ **स्वरः**—१—३, १०, ११ धैवतः । ४—६ निषादः ॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**इन्द्रः**) सूर्य (**तूतुजानः**) त्वरायुक्त (**तुविष्मान्**) तेजस्वी है और (**विश्वा**) समस्त (**सहांसि**) तेजों को (**अपारेण**) अत्यधिक, (**महता**) महान् (**वृष्ण्येन**) बल से (**प्रचक्षाणः**) छोटा करता हुआ (**अति**) अतिक्रान्त करता है । (**स्वपतिः**) धनों का स्वामी वह (**मदाय**) हर्ष के लिए (**धर्मणा**) अपने प्रकाश आदि धर्म से (**आयातु**) हमें प्राप्त होता है ।

भावार्थः— जो इन्द्र=सूर्य त्वरायुक्त तेजस्वी है और समस्त तेजों को अपने अत्यधिक महान् तेज से छोटा करके अतिक्रान्त करता है वह धनों का स्वामी हमारे सुख के लिए अपने समस्त प्रकाश आदि धर्मों के साथ हमें प्राप्त होता है ॥१॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

पदार्थः—(**नृपतेः**) नरों के पालक (**ते**) इस सूर्य का (**रथः**) प्रकाश चक्र (**सुस्थामा**) अच्छी तरह दृढ़ है और (**हरी**) इसकी दोनों प्रकार की विद्युदात्मक शक्ति भी (**सुयमा**) उत्तम प्रकार से नियन्त्रित है, (**गभस्तौ**) किरणों में (**वज्रः**) बलशाली विद्युत् भी (**मिम्यक्ष**) संहत होती है, (**राजन्**) दीप्तिमान यह सूर्य (**शीभम**) शीघ्र (**सुपथा**) शोभन मार्ग से (**अर्वाङ्**) हमारे समक्ष (**आयाहि**) आता है, हम (**पपुषः**) जलों को पीने वाले (**ते**) उसके (**वृष्ण्यानि**) बल को (**वर्धाम**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—सूर्य का प्रकाशचक्र सुदृढ़ और विद्युदात्मक दो शक्तिये सुनियन्त्रित हैं उसकी किरणों में बज्र निहित है । वह अपने उत्तम मार्ग से हमारे अभिमुख होता है और हम यज्ञ आदि में डाले गये पदार्थों से उसके बल को बढ़ाते हैं ॥२॥

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३॥

पदार्थः—(**नृपतिम्**) नरों के पालक (**वज्रबाहुम्**) वज्र को किरणों में धारण करने वाले, (**उग्रम्**) प्रचण्ड (**प्रत्वक्षसम्**) दूसरे तेजों को छोटा करने वाले, (**सत्यशुष्मम्**) सत्य बल वाले (**वृषभम्**) वृष्टि के कारणभूत (**एनम्**) इस सूर्य को (**उग्रासः**) प्रखर (**तविषासः**) शक्तिशाली, (**सधमादः**) साथ रहने वाली, (**इन्द्रवाहः**) सूर्य किरणें (**अस्मत्रा**) हमारे सम्मुख (**आ ईम् वहन्तु**) लाती हैं ।

भावार्थः किरणों में वज्र धारण करने वाले प्रचण्ड शक्तिशाली सूर्य को उसकी प्रचण्ड रश्मिये सम्मुख लाती हैं ॥३॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

पदार्थः—(**एव**) इस प्रकार से सूर्य (**पतिम्**) पालक (**द्रोणसाचम्**) प्राणों के रक्षक, (**सचेतसम्**) लोगों के चिन्तन के विषय (**ऊर्जः**) बल और शक्ति के (**स्कम्भम्**) आधार (**सोमम्**) उत्पादन शक्ति को (**धरुणे**) आकाश में (**आवृषायसे**) धारण करता है (**मह्यम्**) मुझे (**ओजः**) ओज (**कृष्व**) देता है, (**त्वे**) उसमें हमें भी (**संगृभाय**) ग्रहण करता है, (**केनिपानाम्**) मेधावी

जनों के (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**अपि**) भी (**यथा**) यथावत् (**इनः**) समर्थ (**असः**) होता है ।

भावार्थः—इस प्रकार सूर्य पालक, प्राणों की रक्षक, बल की धारक उत्पादन शक्ति को अन्तरिक्ष में धारण करता है । वह ओज देता है अपने में हमें गृहीत रखता है और मेधावी जनों की वृद्धि में यथावत् समर्थ होता है ॥४॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५॥

पदार्थः—हे ऐश्वर्यशाली विद्वन् ! (**वसूनि**) आप को देने योग्य धन (**अस्मे**) मेरे पास (**आगमन्**) आ गये हैं, (**हि**) अतः आप की मैं (**शंसिषं**) प्रशंसा करता हूं, (**सोमिनः**) ज्ञानी अथवा सोम का संपादत करने वाले मुझ व्यक्ति की (**स्वाशिषम्**) उत्तम आशिष् वाले (**भरम्**) यज्ञ में (**आ याहि**) आइये (**त्वम्**) आप (**ईशिषे**) समर्थ है, (**सः**) वह (**त्वम्**) आप (**अस्मिन्**) इस (**बर्हिषि**) आसन पर (**आ सत्सि**) बैठिये, (**तव**) आप के (**पात्राणि**) सुपात्र व्यक्ति (**धर्मणा**) धर्म कर्म से (**अनाधृष्य**) किसी से दबाये जाने योग्य नहीं हैं, अर्थात् वे धर्म-कर्म में बढ़-चढ़कर हैं ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यशाली विद्वन् ! आप को देने योग्य धन हमारे पास हैं, आप की हम प्रशंसा करते हैं । मुझ ज्ञानी व्यक्ति के यज्ञ में आइये, आसन पर बैठिये । आप के सुपात्र व्यक्ति धर्म-कर्म में बढ़-चढ़कर हैं और किसी से कम नहीं हैं ॥५॥

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६॥

पदार्थः—(**प्रथमाः**) मुख्य (**देवहूतयः**) ईश्वर स्तुति करने वाले (**पृथक्**) पृथक् मार्ग से (**प्र अयन्**) जाते हैं, (**श्रवस्यानि**) श्रवण करने योग्य (**दुस्तरा**) अपूर्व (**यशांसि**) कीर्तियों का (**अकृण्वत**) संपादन कर लेते हैं, और (**ये**) जो (**यज्ञियाम्**) प्रभु की उपासनामयी (**नावम्**) नौका पर (**आरुहम्**) चढ़ने में (**न**) नहीं (**शेकुः**) समर्थ हो सकें वे (**केपयः**) कुत्सित कर्मों में लिप्त रहकर (**ईर्मा इव**) ऋणग्रस्त के समान (**नि अविशन्त**) नीचे पड़े रहते हैं ।

भावार्थः—मुख्य व्यक्ति जो ईश्वर की उपासना में लगे हैं वे मरने पर पृथक् मार्गगामी होते हैं । तथा अपने लिए प्रशस्त यश का संपादन करते हैं जो लोग भगवान् की उपासनामयी नाव पर चढ़ने में समर्थ नहीं हो पाते हैं वे ऋणग्रस्त की तरह कुत्सित कर्मों में पड़े रहकर नीचे गिर जाते हैं ॥६॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

पदार्थः—(**एव एव**) इस प्रकार (**अपरे**) दूसरे जो (**दूढ्यः**) दुष्टबुद्धि जन हैं, (**येषाम्**) जिनके (**दुर्युजः**) कुमार्ग में चलने वाले (**अश्वाः**) इन्द्रियगण (**आ युयुज्रे**) इधर-उधर विषयों में जुड़े रहते हैं वे (**अपाग्**) नीचे जाने वाले (**एव**) ही (**सन्तु**) हो जाते हैं, (**यत्र**) जिसमें (**पुरूणि**) बहुत (**वयुनानि**) ज्ञान और (**भोजना**) ऐश्वर्य है उस परम ब्रह्म में (**ये**) जो (**प्राक्**) पहले जो ज्ञान और (**दावने**) दान देने के में ही (**उपरे**) यज्ञ एवं उपासना करने वाले हैं और (**सन्ति**) हैं (**इत्था**) इस प्रकार स्थान पाते हैं ।

भावार्थः—जो दुष्टबुद्धि हैं और जिनकी इन्द्रियां सदा विषयों में फंसी रहती हैं वे नीचे गिर जाते है । जो यज्ञ और उपासना करने वाले हैं दान देने वाले है वे सब ज्ञानों और ऐश्वर्यों के आश्रय प्रभु में अपना स्थान पाते हैं ॥७॥

गिरींरज्रो रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) वायु (**अज्रान्**) गमनशील (**रेजमानान्**) कांपने वाले (**गिरीन्**) मेघों को (**अधारयत्**) धारण करता है, (**द्यौः**) द्युलोक को (**क्रन्दत्**) गर्जने वाला करता है, (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्ष को (**कोपयत्**) कुपित करता है, (**समीचीने**) परस्पर संगत (**धिषणे**) द्यु और पृथिवी को (**विस्कभायति**) दृढ रखता है, (**वृष्णः**) जलीय पदार्थ को (**पीत्वा**) ग्रहण कर (**मदे**) स्थिरता में (**उक्थानि**) शब्दों को (**शंसति**) उच्चारित कराता है ।

भावार्थः—वायु गमनशील, कम्पायमान मेघों को धारण करता है, उसके प्रभाव से द्युलोक गर्जने वाला होता है, अन्तरिक्ष को कुपित करता

है, परस्पर संगत द्यु और पृथिवी को दृढ़ता से धारण किये रहता है और पृथिवी के जलीय तत्व को पीकर स्थिर आकाश में शब्दों को उच्चारित कराता है ॥८॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

पदार्थः—(**हे मघवन्**) परमेश्वर (**येन**) जिससे आप (**शफारुजः**) खुर वाले जन्तुओं को पीड़ा देने वालों को तू (**आरुजासि**) पीड़ित करता है अर्थात् न्याय से दुःख देता है, (**इमम्**) इस (**ते**) आप के (**अंकुशम्**) अंकुश (**सुकृतम्**) उत्तम कर्म को न्याय आदि को मैं (**बिभर्मि**) धारण करता हूँ, (**ते**) आप का (**अस्मिन्**) इस (**सवने**) जगत् में (**सु ओक्यम्**) उत्तम निवास है, (**मघवन्**) हे धनों के स्वामिन् ! (**आभगः**) सर्वैश्वर्ययुक्त आप (**सुते**) किये जाने वाली (**इष्टौ**) इष्टि में (**बोधि**) हमारी कामनाओं को जानते हैं ।

भावार्थः—हे सब धनों के स्वामी ! परमेश्वर ! आप जिस न्याय अंकुश से पीड़ा देने वालों को पीड़ा देते हो उस उत्तमोत्तम कर्म न्याय के अंकुश को मैं जीवन में धारण करता हूँ । आप का जगत् में निवास है और आप हमारे द्वारा की जाने वाली इष्टि में हमारी कामनाओं को जानते हैं ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थः—(**हे पुरुहूत**) सबकी प्रशंसा के पात्र ! राजन् ! (**वयम्**) हम (**देरेवाम्**) दु साध्य (**अमतिम्**) दुर्मति को (**गोभिः**) यज्ञ विद्या को जानने वाले ऋत्विग् विद्वानों के द्वारा (**तरेम** पार करें, (**विश्वाम्**) व्याप्त (**क्षुधम्**) भूख को (**यवेन**) यव सदृश अन्न से पार करें, हम (**राजभिः**) प्रकाशमान गुणों से (**प्रथमा**) मुख्य (**धना**) धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) पराक्रम से (**जयेम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे राजन् ! हम अपने राज्य में होने वाली दुर्मति वा अनैक्यमति को विद्वानों के द्वारा दूर करें । व्याप्त क्षुधा को अन्न से हटावें। अपने प्रकाशमान गुणों से स्वकीय पराक्रम द्वारा मुख्य धनों को प्राप्त करें ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) प्राण (**नः**) हमें (**पुरस्ताद्**) सामने से (**उत**) और (**मध्यतः**) मध्य से (**पश्चात्**) पीछे से (**उत**) और (**उत्तरस्माद्**) उत्तर से (**अधराद्**) नीचे से (**अघायोः**) पापजनित रोग से (**परिपातु**) रक्षा करे (**नः**) हमारा (**सखा**) मित्र (**इन्द्रः**) इन्द्रियों का स्वामी आत्मा (**सखिभ्यः**) समस्त शारीरिक मित्र शक्तियों को (**वरिवः**) श्रेष्ठ बल (**कृणोतु**) दें ।

भावार्थः—प्राण हमें सामने, मध्य, पीछे, उत्तर और नीचे से पापजन्य रोग से रक्षित रखे । हमारा सखा हमारी आत्मा समस्त शारीरिक सहयोगी शक्तियों को बलशाली बनावें ॥११॥

यह दशम मण्डल का चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—४५

ऋषिः—१—१२ वत्सप्रिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः १—५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृज्जगती । ९-१२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्निः**) अग्नि (**प्रथमम्**) पहले (**दिवः**) द्युलोक के (**परि**) ऊपर (**जज्ञे**) उत्पन्न होता है [आदित्यरूप में], (जातवेदाः) सब पदार्थों में विद्यमान अग्नि (**द्वितीयम्**) दूसरा (**अस्मत् परि**) हमारे समीप पार्थिव अग्नि के रूप में, (**नृमणाः**) सब को चलाने वाला अग्नि (**तृतीयम्**) तृतीय विद्युत्रूप में (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में पैदा होता है, (**स्वाधीः**) उत्तम ज्ञान वाले (**एनम्**) इस प्रकार की अग्नि को (**अजस्रम्**) निरन्तर (**इन्धानः**) प्रदीप्त करते हुए (**जरते**) इसकी प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—इस अग्नि के तीन प्रकार हैं जिसको प्रदीप्त करते हुए बुद्धिमान् जन इसकी प्रशंसा करते हैं ; पहला अग्नि आदित्यरूप में द्युलोक में है, और दूसरा पार्थिव अग्नि पृथिवी लोक में है और तीसरा विद्युदात्मक अन्तरिक्ष में है ॥१॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२॥

पदार्थः—(**विद्म**) जानते हैं हम (ते) इस (**अग्नेः**) अग्नि के (**त्रेधा**) तीन स्थानों में (**त्रयाणि**) तीन प्रकारों को, (**विद्मः**) जानते हैं हम (**ते**) इसके (**पुरुत्रा**) बहुत (**विभृता**) फैले हुए (**धाम**) स्थानों को, (**विद्मः**) जानते हैं हम (**ते**) इसके (**गुहा**) गूढ (**यत**) जो (**परमम्**) उत्कृष्ट (**नाम**) तेज है, (**विद्मः**) जानते हैं हम (**तम**) उस (**उत्सम्**) उद्गम कारण को (**यतः**) जिससे यह (**आजगन्थ**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—इस अग्नि के पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में स्थिर अग्नि-वायु और आदित्य रूप को विद्वज्जन जानते हैं, इसके व्यापन के विविध स्थान हैं, यह विश्व में विद्युद्रूप में छिपा है जो इसका उत्कृष्ट रूप है, के । इस उदगम के कारण को भी ज्ञानी जन जानते हैं ॥२॥

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्व१न्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥

पदार्थः—(**त्वा अग्ने**) इस अग्नि को (**समुद्रे**) समुद्र में (**अप्सु**) जलों के (**अन्तः**) अन्दर विद्यमान वाडवाग्नि के रूप में (**नृमणा**) वरुण = जलीय विद्युत् (**ईधे**) प्रज्वलित रखती है, (**नृचक्षाः**) मनुष्यों से देखने योग्य अथवा मनुष्यों को देखने की शक्ति देने वाला सूर्य (**दिवः**) द्युलोक के (**ऊधन्**) स्थान में (**ईधे**) प्रकाशित रखता है और (**तृतीये**) तृतीय (**रजसि**) लोक=अन्तरिक्ष में (**अपाम्**) जलों के (**उपस्थे**) स्थान में (**तस्थिवांसम्**) विद्युद्रूप में स्थित (त्वा) इसको (**महिषाः**) मरुद्गण (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः समुद्र में वाडवाग्नि को जलीय विद्युत् प्रज्वलित रखता है, द्युलोक में इसे सूर्य प्रज्वलित रखता है और जलों वा मेघों के मध्य में विद्यमान इसको मरुद्गण वा अन्तरिक्षस्थ दिव्य शक्तियां दीप्त रखती हैं ॥३॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

पदार्थः—(**अग्निः**) अग्नि (**स्तनयन्**) गर्जते हुए (**द्यौः**) विद्युन्मय पर्जन्य के (**इव**) समान (**क्षामा**) पृथिवी को (**रेरिहत**) खाता हुआ (**वीरुधः**) वनस्पति ओषधि आदि को (**समञ्जन्**) संतप्त करता हुआ (**अक्रन्दद्**) महान् शब्द करता है, (**सद्यः**) तत्क्षण (**जज्ञानः**) पैदा हुआ, (**इद्धः**) प्रदीप्त यह अग्नि (**हि**) निश्चय से (**ईम्**) जल को (**वि अख्यत्**) देखता है अथवा प्रकाशित करता है और (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक के (**अन्तः**) मध्य में (**भानुना**) तेज से (**आभाति**) प्रकाशित होता है ।

भावार्थः—गर्जते हुए विद्युद्रूप पर्जन्य की भाँति यह अग्नि पृथिवी को खाता हुआ, ओषधि वनस्पति आदि को सन्तप्त करता हुआ शब्द करता है । उत्पन्न होते ही प्रदीप्त हुआ यह जल को प्रकाशित करता है । यह द्युलोक और पृथिवी के मध्य तेज से प्रकाशित होता है ॥४॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥

पदार्थः—(**श्रीणाम्**) शोभा का (**उदारः**) उद्गम करने वाला,(**रयीणाम्**) धनों का (**धरुणः**) धारक, (**मनीषाणाम्**) कामनाओं का (**प्रार्पणः**) प्राप्त कराने वाला, (**सोमगोपाः**) ओषधि आदि का रक्षक, (**वसुः**) वासक (**सहसः**) बल का (**सूनुः**) पुत्र अर्थात् अत्यन्त बलवान् (**अप्सु**) जलों में स्थित, (**राजा**) दीप्तिमान् यह अग्नि (**उषसाम्**) उषाओं के (**अग्रे**) पूर्व (**इधानः**) प्रदीप्त हुआ (**विभाति**) प्रकाशमान होता है ।

भावार्थः- कान्ति आदि का दाता, धनों का धारक, यज्ञ का साधन बनकर सबकी इच्छाओं का प्राप्त करानेवाला,ओषधियों का रक्षक,वासक, बलवान् जल में स्थित यह अग्नि उषाओं के पहले प्रकाशमान होता है ॥५॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥

पदार्थः—(**विश्वस्य**) समस्त पदार्थों का (**केतुः**) प्रज्ञापक (**भुवनस्य**) जल का (**गर्भः**) गर्भभूत अग्नि (**जायमानः**) प्रकट होते हुए ही (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**आ अपृणात्**) पूर्ण करता है, (**परायन्**) परागत होकर (**वीलुम्**) दृढ़ (**चिद्**) भी (**अद्रिम्**) मेघ को (**अभिनत्**) भेदन करता है (**यत्**) जिस कारण (**पञ्च**) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इन वर्णों में न आने वाला पांच प्रकार का (**जनाः**) मनुष्य समुदाय अर्थात् समस्त मानव (**अग्निम्**) इस अग्नि को (**अयजन्त**) यज्ञ में प्रदीप्त करते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि समस्त पदार्थों का प्रज्ञापक है, जल का गर्भभूत है, पैदा होते ही द्यु और पृथिवी लोक को आपूरित करता है। दृढ़ भी मेघ को यह छिन्न-भिन्न करता है और इस अग्नि को यज्ञ में पांचों प्रकार का मनुष्य समुदाय प्रदीप्त करता है। चार वर्ण और पांचवां इन वर्णों में न आने वाला मनुष्य। ये पंचजन कहे जाते हैं ॥६॥

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७॥

पदार्थः (**उशिक्**) हवि आदि को चाहने वाला, (**पावकः**) शोधक, (**अरतिः**) गमनशील, (**सुमेधा**) उत्तम ज्ञान का विषय, (**अमृतः**) अमरणधर्मा (**अग्निः**) अग्नि (**मर्तेषु**) मरणधर्माओं में (**नि धायि**) निहित है, यह (**धूमम्**) धूम को (**इयर्ति**) प्रेरित करता है (**अरुषम्**) रूप को (**भरिभ्रत्**) धारण करता है (**शुक्रेण**) प्रदीप्त (**शोचिषा**) प्रकाश से (**द्याम्**) द्युलोक को (**इनक्षत्**) व्याप्त होकर विद्यमान है।

भावार्थः—हवि का चाहने वाला, शोधक, गमनशील उत्तम ज्ञान का विषय अमरणधर्मा अग्नि मरणधर्माओं में निहित हैं। यह आरोचमान रूप को धारण करते हुए प्रदीप्त तेज से द्युलोक को व्याप्त करते हुए विद्यमान है। यह धूम को प्रेरित करता है ॥७॥

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८॥

पदार्थः—(**दृशानः**) प्रत्यक्ष से देखा जाता हुआ, (**रुक्मः**) रोचमान अग्नि (**उर्विया**) अत्यन्त (**व्यद्यौत्**) द्योतमान होता है, (**आयुः**) गमनशील यह

अग्नि (**श्रियै**) विभूति के लिए (**दुर्मर्षम्**) अति प्रचण्डरूप से (**रुचानः**) रोचमान होता है। यह (**अग्निः**) अग्नि (**वयोभिः**) आकाशस्थ उष्ण लहरों से (**अमृतः**) अमर (**अभवत्**) होता है (**यत्**) जिस कारण से (**सुरेताः**) उत्तम अग्नि कणों से युक्त (**द्यौः**) प्राण अथवा सूर्य (**एतम्**) इसको (**जनयत्**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—प्रत्यक्ष से देखा जाता हुआ रोचमान अग्नि अत्यन्त द्योतमान होता है। वह गतिशील हुआ विभूति के लिए प्रचण्डरूप से चमकता है। यह अग्नि आकाशीय उष्ण लहरों से मरणरहित होता है। उत्तम तेज-कणों से युक्त प्राण वा सूर्य इस अग्नि को उत्पन्न करते हैं ॥८॥

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९॥

पदार्थः—(**भद्रशोचे**) कल्याण दीप्ति, (**देव**) द्योतमान (**यविष्ठ**) बलिष्ठ (**ते**) इस (**अग्ने**) अग्नि के लिए (**यः**) जो (**अद्य**) आज (**घृतवन्तम्**) घृतयुक्त (**अपूपम्**) पुरोडाश (**कृणवत्**) करता है उस (**प्रतरम्**) प्रकृष्टतर यजमान को (**वस्यः**) ऐश्वर्य (**अच्छ**) भली प्रकार (**प्रनय**) प्राप्त कराता है, (**देवभक्तम्**) देवभक्त उस यजमान को (**सुम्नम्**) सुख (**अभि**) चारों तरफ से (**प्रनय**) प्राप्त कराता है।

भावार्थः—उत्तम प्रकाश वाला शक्तिशाली अग्नि के लिए जो घृतयुक्त पुरोडाश पकाता है उसे यह अग्नि ऐश्वर्य देता है और सुख प्राप्त कराता है। यजमान देवों के निमित्त यज्ञ में हवि देने से देवभक्त=देवों के लिए भाग देने वाला है ॥९॥

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**सौश्रवसेषु**) उत्तम अन्न आदि पदार्थों की हवि से युक्त कर्मों में (**तम्**) उस यजमान को (**आ भज**) अभीष्ट दान से पूर्ण करता है (**उक्थे-उक्थे**) मन्त्रों के (**शस्यमाने**) पढ़े जाने पर उसको अभीष्ट फल से पूर्ण कर। वह यजमान (**सूर्ये**) सूर्य का (**प्रियः**) प्रिय (**भवाति**) होता है (**अग्नौ**) अग्नि का प्रिय होता है। (**उत**) और वह (**जातेन**) उत्पन्न हुए

पुत्र के द्वारा (**उत**) और (**जनित्वैः**) उत्पन्न होने वाले पौत्र आदि के द्वारा (**मिनदत्**) आनन्द प्राप्त करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि उत्तम हवि द्वारा किये जाने वाले कर्मों में और मन्त्रों के उच्चार होने पर यजमान को अभीष्ट दान से परिपूर्ण करता है। वह सूर्य और अग्नि का यज्ञ से प्रिय होकर पुत्र और पौत्र आदि से आनन्दित होता है ॥१०॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११॥

पदार्थः—(**त्वाम् अग्ने**) इस अग्नि को यज्ञ में लक्ष्य करके (**यजमानाः**) यजमान लोग (**अनु द्यून्**) प्रतिदिन (**विश्वा**) बहुत (**वार्याणि**) वरणीय (**वसु**) धनों को (**दधिरे**) धारण करते हैं । (**उशिजः**) मेधावी जनों ने (**त्वया**) इसके (**सह**) साथ (**द्रविणम्**) धन को (**इच्छमानाः**) चाहते हुए (**गोमन्तम्**) गौओं से युक्त (**व्रजम्**) गोष्ठान को (**वि वव्रुः**) खोला ।

भावार्थः—इस अग्नि को यज्ञ में लक्ष्य करके इसके लिए आहुति देने के लिए यजमान लोग प्रतिदिन बहुत प्रकार के वरणीय धनों को सुरक्षित रखते हैं। इस अग्नि के साथ धन की इच्छा करते हुए मेधावी लोग गौओं से भरे गोशाले को प्राप्त करते हैं ॥११॥

अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२॥

पदार्थः—(**नराम्**) मनुष्यों के लिए (**सुशेवः**) सुखदाता, (**वैश्वानरः**) समस्त नरों में विद्यमान (**सोमगोपाः**) जगत् की रक्षा करने वाला यह (**अग्निः**) अग्नि (**ऋषिभिः**) ऋषियों द्वारा (**अस्तावि**) प्रशंसा किया जाता है, हम (**अद्वेषे**) द्वेषरहित (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवी को (**हुवेम**) ज्ञान में ग्रहण करें, (**देवाः**) जगत् की दिव्य शक्तियां अथवा विद्वज्जन (**अस्मे**) हम में (**सुवीरम्**) उत्तम पुत्र आदि से युक्त (**रयिम्**) धन को (**धत्त**) धारण करें ।

भावार्थः—मनुष्यों को सुख देने वाला, वैश्वानर जगत् का यह अग्नि ऋषियों की प्रशंसा का पात्र है। हम द्यु और पृथिवी लोक को द्वेषरहित जानकर अपने ज्ञान में उन्हें धारण करें। जगत् की दैवी शक्तियां अथवा विद्वज्जन हमें पुत्र, पौत्र आदि से युक्त धन दें ॥१२॥

यह दशम मण्डल में पंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—४६

ऋषिः—१—१० **वत्सप्रिः** ॥ **देवता अग्निः** ॥ **छन्दः**—१, २, **पादनिचृत्त्रिष्टुप्** । ३, ५ **आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** । ४, ८, १० **त्रिष्टुप्** । ६ **आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप्** । ७ **विराट् त्रिष्टुप्** । ९ **निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः**—**धैवतः** ॥

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्वा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥१॥

पदार्थः—(**नृषद्वा**) मनुष्यों में विद्यमान (**यः**) जो अग्नि (**नभोविद्**) आकाश में स्थित है तथा (**अपाम्**) जलों वा मेघों के (**उपस्थे**) स्थान में विद्युद्रूपेण (**सीदत्**) स्थान लिये है (**महान्**) महान् है वह (**होता**) हवि का ग्रहण करने वाला (**प्रजातः**) माना गया है, (**तनूपाः**) शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों का पालक, (**दधिः**) धारक (**सः**) वह अग्नि (**धायि**) यज्ञ वेदी में स्थापित किया जाता है। (**विदधते**) अग्नि को वेदि में धारण कर यज्ञ करने वाले (**ते**) तुझ यजमान के लिए (**वयांसि**) अन्नों को और (**वसूनि**) धनों को (**यन्ता**) नियमित करने वाला होवे ।

भावार्थः—अग्नि मनुष्यों में विद्यमान, आकाश में स्थित, मेघ में विद्युद्रूप में रहता हुआ हवि का ग्राहक होता है और सब पदार्थों का धारक है तथा यज्ञ वेदी में स्थापित किया जाता है। यज्ञ करने वाले यजमान के लिए वह शरीर के प्रत्येक अंग का रक्षक अग्नि अन्न और धन का दाता है ॥१॥

इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२॥

पदार्थः—(**इमम्**) इस [**अग्नि**] को (**अपाम्**) जलों के (**सधस्थे**) स्थान अन्तरिक्ष में (**विधन्तः**) सम्पर्क करते हुए विद्वज्जन (**पदैः**) पैर के निशानों से (**नष्टम्**) गायब हुए **पशुम्**) पशु की (**न**) भांति (**अनुग्मन्**) ढूंढ़ने का यत्न करते हैं, (**उशिजः**) ज्ञान वाले (**धीराः**) धीर (**भृगवः**) तपस्वी लोग (**इच्छन्तः**) इच्छा करते हुए (**गुहा**) आकाश में (**चतन्तम्**) व्याप्त हुए इस अग्नि को (**नमोभिः**) ज्ञान साधनों से (**अविन्दन्**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार नष्ट हुए पशु को लोग उसके चरण-चिन्हों

का अनुगमन करके प्राप्त करते हैं वैसे ही विद्वज्जन अन्तरिक्ष में जानने का प्रयत्न करते हैं। ज्ञानी तपस्वी विद्वान् जानने की इच्छा और प्रयत्न करते हुए ज्ञान-साधनों से आकाश में व्याप्त इस अग्नि को जान लेते हैं ॥२॥

इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥३॥

पदार्थः—(**वैभूवसः**) बहुत ऐश्वर्य वाला (**त्रितः**) मेधा से तीर्णतम ज्ञान, कर्म और उपासना में संलग्न मनुष्य ने (**भूरि**) अधिक (**इच्छन्**) इच्छा करते हुए (**इमम्**) इस अग्नि को (**अघ्न्यायाः**) पृथिवी के (**मूर्धन्**) ऊपर (**अविन्दत्**) प्राप्त किया, (**सः**) वह (**युवा**) सदा युवा अग्नि (**शेवृधः**) सुख का बढ़ाने वाला होकर (**हर्म्येषु**) यजमानों के घरों में (**जातः**) प्रादुर्भत होकर (**रोचनस्य**) उत्तम स्वर्ग आदि सुख की (**नाभिः**) नाभि है।

भावार्थः—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली तीर्णतम मेधा वाला ज्ञान, कर्म उपासना में संलग्न व्यक्ति इस अग्नि को पृथिवी पर प्राप्त करता है। वह अग्नि यजमानों के घरों में सुख का बढ़ाने वाला होकर रहता है और वह उत्तम स्वर्ग सुख की नाभि है ॥३॥

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥४॥

पदार्थः—(**उशिजः**) मेधावी ऋत्विग् लोग (**मन्द्रम्**) हर्ष देने वाले, (**होतारम्**) हवि को ग्रहण करने वाले (**प्राञ्चम्**) सब यज्ञों में पूर्ववर्ती, (**यज्ञम्**) यजनीय (**अध्वराणाम्**) यज्ञों के (**नेतारम्**) नेता वा प्रापक, (**अरतिम्**) गतिशील (**पावकम्**) अग्नि को (**दधतः**) धारण करते हुए (**विशाम्**) प्रजाओं के लाभार्थ (**मानुषेषु**) मनुष्यों में (**नमोभिः**) अन्न आदि से (**हव्यवाहम्**) हवि वहन करने वाला (**अकृण्वन्**) करते हैं।

भावार्थः—मेधावी ऋत्विज् लोग सब यज्ञों का पूर्ववर्ती माध्यम, यजनीय, यज्ञों के प्रापक गतिशील इस अग्नि को प्रजा के कल्याणार्थ मनुष्यों में अन्न हवि आदि से हव्य=वाहहवि का बहन करने वाला करते हैं ॥४॥

प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥५॥

पदार्थः—(**भूर्जयन्तम्**) भू आदि लोकों को प्राप्त होने वाले अथवा उनमें व्याप्त हुए, (**महाम्**) महान् (**विपोधाम्**) मेधावियों के द्वारा बुद्धि में धारण किये जाने वाले (**अमूरम्**) अमरणधर्मा (**पुराम्**) पुरों के **दर्माणम्**) फाड़ देने वाले (**वनाम्**) वननीय (**गर्भम्**) जल के कारणभूत (**हिरिश्मश्रु**) हरित बालों वाले (**अर्वाणम्**) घोड़े के (**न**) समान (**धनर्चम्**) धन दाता इस अग्नि को (**नयन्तः**) हवि आदि प्राप्त करते हुए (**मूरा**) मनुष्य जन (**धियम्**) कर्म को (**प्रधुः**) पूर्ण करते हैं।

भावार्थः—पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त हुआ, महान्, मेधावियों द्वारा ज्ञान में धारण किया जाने वाला, पुरों को दीर्ण करने वाला और जल का कारणभूत, धनों का दाता यह अग्नि लोगों द्वारा हवि आदि के दान से प्राप्त किया जाता है और लोग इससे यज्ञ कर्म का सम्पादन करते हैं ॥५॥

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः सङ्गृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥६॥

पदार्थः—(**त्रितः**) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों में विद्यमान अग्नि (**पस्त्यासु** लोकों और शरीरों में (**स्तभूयन्**) दृढ़ता देता हुआ, (**परिवीतः**) ज्वाला से घिरा हुआ (**योनौ**) वेदि के (**अन्तः**) मध्य में (**निषीदत्**) स्थित होता है, (**अतः**) यहां से (**विशाम्**) प्रजाओं के सम्बन्ध की हवि को (**संगृभ्य**) ग्रहण करके (**दमूनाः**) अन्य यज्ञ देवों सूर्य वायु आदि को देने वाला होकर (**विधर्मणा**) विविध धारक गुणों और कर्मों के द्वारा (**अयन्त्रैः**) विना किन्हीं रुकावटों के (**नॄन्**) यज्ञ के नेता देवों को (**ईयते**) प्राप्त होता है।

भावार्थः—तीनों लोकों में स्थित अग्नि त्रित है और लोकों और शरीरों में दृढ़ता देता हुआ तेज से व्याप्त होकर वेदि के मध्य भागमें स्थित होता है। यहां से यजमान आदि द्वारा प्रदत्त हवि को ग्रहण कर उसे अन्य सूर्य वायु आदि यज्ञ देवों को देने के लिए विविध गुणों और कर्मों द्वारा विना रोक-टोक के देवों के पास जाता है ॥६॥

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥७॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस यजमान के सम्बन्धी (**अजरासः**) जीर्णा न होने वाली (**दमाम**) दमन करने योग्यों के (**अरित्राः**) तारक (**अर्चद्धूमासः**) धूमों से युक्त, (**पावकाः**) शोधक, (**शिवतीचयः**) श्वेत (**श्वात्रासः**) क्षिप्रगामी, (**भुरण्यवः**) पालक (**वनर्षदः**) वन वा जल में रहने वाली (**वायवः**) गतिशील (**सोमाः**) जलीय तत्त्वों के (**न**) समान (**अग्नयः**) अग्नियें यजमान की हवि को सर्वत्र फैलाती हैं ।

भावार्थः—यजमान द्वारा यज्ञ में प्रज्वलित अग्नि में धूम्र से युक्त, क्षिप्रगामी, पालक और कृमि एवं रोगों की नाश करने वाली होकर वेगशील जलीय तत्त्वों के समान हवि को सर्वत्र फैलाती है ॥७॥

प्र जि॒ह्वया॑ भरते॒ वेपो॑ अ॒ग्निः प्र व॒युना॑नि॒ चेत॑सा पृथि॒व्याः ।
तमा॒यवः॑ शु॒चय॑न्तं पाव॒कं म॒न्द्रं होता॑रं दधिरे॒ यजि॑ष्ठम् ॥८॥

पदार्थः—जो (**अग्निः**) अग्नि (**जिह्वया**) ज्वाला से (**वेपः**) कर्म को (**प्रभरते**) पूरा करता है, जो (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**चेतसा**) ज्ञान के द्वारा (**वयुनानि**) ज्ञानों को (**प्रभरते**) प्रदान करता है, (**शुचयन्तम**) शुचिमान (**पावकम**) शोधक (**मन्द्रम**) हर्षदाता, (**होतारम**) हवि आदि के ग्रहण करने वाले (**यजिष्ठम**) अत्यन्त यजनीय (**तम**) उस अग्नि को (**आयवः**) मनुष्य लोग (**दधिरे**) यज्ञार्थ धारण करते हैं ।

भावार्थः—जो अग्नि ज्वाला से यजमान के कर्म को पूर्ण करता है, जो पृथिवी के ज्ञान के साथ समस्त विज्ञानों को प्रदान करता है अर्थात् उनका साधन बनता है उस यजनीय शोधक और लाभकारी अग्नि को मनुष्य ज्ञान में, यज्ञकर्म आदि में धारण करते हैं ॥८॥

द्यावा॒ यम॒ग्निं पृ॑थि॒वी जनि॑ष्टा॒माप॒स्त्वष्टा॒ भृग॑वो॒ यं सहो॑भिः ।
ई॒ळेन्यं॑ प्रथ॒मं मा॑त॒रिश्वा॑ दे॒वास्त॑तक्षु॒र्मन॑वे॒ यज॑त्रम् ॥९॥

पदार्थः—(**यम**) जिस (**अग्निम**) अग्नि को (**द्यावा पृथिव्यौ**) द्युलोक और पृथिवी (**जनिष्टाम**) उत्पन्न करते हैं, (**आपः**) जलें जिसे पैदा करती हैं, (**सहोभिः**) तेजों के साथ (**भृगवः**) उष्णता की लहरें (**यम**) जिसको पैदा करती हैं, जिसको (**त्वष्टा**) सूर्य की दाहक किरण पैदा करती है, उस (**इडेन्यम्**) प्रशंसनीय (**यजत्रम्**) यजनीय अग्नि को (**प्रथमम्**) पहले (**मातरिश्वा**) वायु

उत्पन्न करता है और (**देवाः**) मरुत् आदि देव अथवा विद्वान् (**मनवे**) मनुष्य के लाभार्थ (**ततक्षुः**) उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थः—जिस अग्नि को द्यु और पृथिवी उत्पन्न करते हैं, जिसे जलें, जिसे उष्णता की लहरें, जिसे दाहक सूर्यकिरण पैदा करते हैं उसे सर्व प्रथम वायु उत्पन्न करता है और मरुद् आदि दिव्य पदार्थ एवं विद्वान् लोग उसे मनुष्य के लाभार्थ उत्पन्न करते हैं ॥९॥

यं त्वा॑ दे॒वा द॑धि॒रे ह॑व्य॒वाहं॑ पुरु॒स्पृहो॒ मानु॑षासो॒ यज॑त्रम् ।
स याम॑न्नग्ने स्तुव॒ते वयो॑ धाः॒ प्र दे॑व॒यन्य॒शसः॒ सं हि पू॒र्वीः ॥१०॥

पदार्थः—(**यम्**) जिस (**त्वा**) इस (**हव्यवाहम्**) हवि को वहन करने वाले (**यजत्रम्**) यजनीय अग्नि को (**देवाः**) विद्वज्जन और (**पुरुस्पृहः**) बहुत-सी कामनाओं वाले (**मानुषासः**) मनुष्य लोग (**दधिरे**) धारण करते हैं, (**सः**) वह (**अग्ने** अग्नि (**यामन्**) यज्ञ में (**स्तुवते**) मन्त्रस्तुति करने वाले के लिए (**वयः**) अन्न को (**प्रधाः**) देता है तथा (**देवयन्**) देवकाम यजमान (**हि**) निश्चय (**पूर्वीः**) पूर्ण (**यशसः**) यशों को (**सम्**) संप्राप्त करता है ।

भावार्थः—जिस हव्यवाहक अग्नि को विद्वज्जन और सुख आदि की कामनाओं वाले मनुष्य लोग यज्ञ में धारण करते हैं वह यह अग्नि यजमान को अन्न देता है और देवकाम यजमान पूर्णयशों को प्राप्त करता है ॥१०॥

यह दशम मण्डल में छयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—४७

सूचना—इस ४७वें सूक्त से लेकर ५०वें सूक्त तक का देवता इन्द्र वैकुण्ठ है। यहां ज्ञातव्य यह है कि "विकुण्ठा" नाम प्रकृति का है जो कभी कुण्ठित नहीं होती है। 'विकुण्ठा' में व्याप्त परमेश्वर ही वैकुण्ठ है। अतः वैकुण्ठ इन्द्र=प्रकृति में व्यापक परमेश्वर इन सूक्तों का देवता है।

ऋषिः १—८ **सप्तगुः** ॥ देवता—**इन्द्रो वैकुण्ठः** ॥ **छन्दः**—१, ४, ७ त्रिष्टुप् । २ **आर्चीस्वराट्**त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः—धैवतः** ॥

जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१॥

पदार्थः—(**वसूनाम् वसुपते**) समस्त वसुओं के स्वामी (**इन्द्र**) हे सर्व-शक्तिमन् परमेश्वर ! (**वसूयवः**) धन आदि की इच्छा करने वाले हम (**ते**) आपके (**दक्षिणम्**) दक्ष (**हस्तम्**) दुःख आदि के हन्ता सहारे वा बल को (**जगृम्भ**) ग्रहण करते हैं, (**शूर**) हे शक्तिशालिन् ! (**गोनाम्**) बहुत गौओं के (**गोपतिम्**) स्वामी (**त्वा**) आपको हम (**विद्म**) जानते हैं । (**हि**) अतः आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए अथवा हमें तू (**चित्रम**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्णसुखवर्णक (**रयिम्**) धन (**दाः**) दे ।

भावार्थः—हे समस्त वसुओं के वसुपति सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! धन आदि की इच्छा करने वाले हम आप के कुशल बल वा पराक्रम को ग्रहण करते हैं । आप गौओं के स्वामी हो—यह भी हम जानते हैं । अतः हमें आप अद्भुत और सर्वसुखवर्षक धन दें ॥१॥

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२॥

पदार्थः—हे भगवन् ! (**स्वायुधम्**) उत्तम वज्र आदि आयुधों के स्वामी, (**स्ववसम्**) उत्तम रक्षा वाले (**सुनीथम्**। उत्तम नीति वाले, (**चतुः समुद्रम्**) आकाश सहित चारों समुद्रों में व्याप्त, (**रयीणाम्**) धनों के (**धरुणम्**) धारक (**चर्कृत्यम्**) जगत् की रचना जैसे कर्मों के पुनः-पुनः कर्त्ता, (**शंस्यम्**) स्तुत्य और (**भरिवारम्**) अतिरणीय आप को हम जानते हैं । अतः आप हमें अद्भुत सुखवर्णक धन दें ।

भावार्थः उत्तम वज्र आदि आयुधों के स्वामी, उत्तम रक्षक आकाश-पर्यन्त चतुःसमुद्र आदि में व्याप्त धनों के स्वामी और जगत्‌रचना प्रत्येक कल्प में करने वाले अत्यन्त वरणीय आप को हम जानते हैं । अतः आप हमें अद्भुत और सर्वसुखवर्षक धन दें ॥२॥

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३॥

पदार्थः (**इन्द्र**) हे इन्द्र=परमेश्वर ! आप (**अस्मभ्यम**) हमें (**सुब्रह्माणयु**) उत्तम ज्ञान से युक्त, (**देववन्तम्**) देव और विद्वानों के सेवक (**बृहन्तम्**) महान्, (**गभीरम्**) गम्भीर (**पृथुबुध्नम्**) विशाल मस्तिष्करूपी मूल वाला, (**श्रुतऋषिम्**) श्रुतऋषि वाला (**उग्रम्**) उग्र (**अभिमातिसाहम्**) शत्रुओं को मार भगाने वाला (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्णसुखवर्णक (**रयिम्**) पुत्र धन (**दाः**) दें ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप हमें उत्तम वेदज्ञान से युक्त, विद्वानों और यज्ञ सम्बन्धी देवों की परिचर्या करने वाला महान्, गभीर, विशाल मस्तिष्क वाला श्रुतऋषि और शत्रु का हराने वाला, अद्भुत सर्वसुख-वर्षक पुत्र धन दें ॥३॥

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४॥

पदार्थः—(**सनद्वाजम्**) लब्धान्न, (**वि प्रवीरम्**) मेधावी, (**तरुत्रम्**) तारक, (**धनस्पृतम्**) धनों का पूरक (**शूशुवांसम्**) वृद्धिवाला, (**सुदक्षम्**) उत्तम बल वाला (**दस्युहनम्**) दस्युओं का हन्ता, (**पूर्भिदम्**) शत्रूओं की पुरी को प्रनष्ट करने वाला (**सत्यम्**) सत्यकर्मा (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्णसुख वर्णक (**रयिम्**) पुत्र धन (**अस्मभ्यम्**) हमें (**इन्द्र**) हे भगवन् ! आप (**दाः**) दें ।

भावार्थः—हे भगवन् ! आप हमें लब्धान्न, मेधावी, तारक धनों का पूरक, वृद्धि वाला, उत्तम बलोंवाला, शत्रुहन्ता, शत्रुओं के पुरों का विनाशक, सत्यकर्मा, अद्भुत और सर्णसुखवर्षक पुत्र धन दें ॥४॥

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥

पदादार्थः—हे (**इन्द्र**) भगवन् ! आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**अश्वावन्तम्**) अश्वों वाला, (**रथिनम्**) रथों वाला, (**वीरवन्तम्**) पौत्र आदि वाला, (**सहस्रिणम्**) सहस्र वाला (**शतिनम्**) शत वाला, (**वाजम्**) बलवान्, (**भद्र व्रातम्**) भद्रजनों के समूह से युक्त, (**विप्रवीरम्**) मेधावी (**स्वर्षाम्**) सबका बांटने वाला (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) पुत्र धन (**दाः**) दें ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप हमें अश्वोंवाला, रथोंवाला, पौत्र आदि से युक्त होने वाला सहस्रों धनों से युक्त मेधावी, भद्रजनों के समूह

वाला और सबको बांट कर खानेवाला अद्भुत सर्वसुखवर्षक पुत्र धन दें ।।५।।

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।।६।।

पदार्थः—(**यः**) जो (**आंगिरसः**) सृष्टि के अंग प्रत्यंग में रमे हुए (**नमसा**) विनयपूर्वक (**उपसद्यः**) प्राप्त होने योग्य है उस (**सप्तगुम्**) सात प्राणों के अथवा सप्त लोकों के आत्मा (**ऋतधीतिम्**) सृष्टि नियम के धारक (**सुमेधाम्**) उत्तम ज्ञान वाले (**बृहस्पतिं**) वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर को (**मतिः**) स्तुति (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**जिगाति**) गाती है । हे प्रभो ! आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) अद्भुत, (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन दें ।

भावार्थः—जो परमेश्वर सृष्टि के अंग-प्रत्यंग में रमा हुआ विनयपूर्वक प्राप्त होने योग्य है उस सातलोकों के आत्मा सृष्टि नियम के धारक, उत्तम ज्ञानी और वेद वाणी के स्वामी को स्तुति अच्छी प्रकार गाती है। हे प्रभो ! आप हमें अद्भुत, सर्वसुखवर्षक धन दें ।।६।।

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।।७।।

पदार्थः—(**वनीवानः**) श्रद्धा भक्ति से युक्त (**मम**) मुझ स्तोता के (**दूतासः**) दूत सदृश (**सुमती**) उत्तम बुद्धियों को (**इयानाः**) लिये हुए (**स्तोमा**) स्तुतियां (**इन्द्रम्**) परमेश्वर के प्रति (**चरन्ति**) जाती हैं तथा ये (**हृदिस्पृशः**) हमारे हृदय को छूने वाले और (**मनसा**) मन से (**वच्यमानाः**) उक्त होते हैं। हे प्रभो ! (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन (**दाः**) दे ।

भावार्थः भक्ति से युक्त मेरे दूत सदृश, बुद्धियुक्त मेरी स्तुतियां परमेश्वर के पास पहुंचती हैं । वे हमारे हृदयस्पर्शी और मन से उच्चारित वचन हैं । प्रभो ! आप हमें अद्भुत सर्वसुखवर्षक धन दें ।।७।।

यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।।८।।

पदार्थः - हे (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**त्वा**) तुझसे (**यद्**) जो (**यामि**) मांगूं (**तद्**) वह (**नः**) हमें (**दद्धि**) दे, और (**बृहन्तम्**) महान् (**क्षयम्**) ऐश्वर्य जो (**जनानाम्**) और लोगों से (**असमम्**) अधिक है, दे, तथा (**द्यावापृथिवी**) राजा और प्रजा (**अभिगृणीताम्**) प्रशंसा करें, हे प्रभो ! आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन दें ।

भावार्थः—हे भगवन् ! तुझसे मैं जो मांगू वह तू मुझे दे । लोगों से अत्यधिक ऐश्वर्य मुझे दे । तथा इसको राजा और प्रजा प्रशंसा करें । हे प्रभो ! आप हमें अद्भुत, सर्वसुखवर्षक धन दें ।।८।।

यह दशम मण्डल का सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ।।

सूक्त ४८

ऋषिः—१—११ इन्द्रो वैकुण्ठः ।। देवता – इन्द्रो वैकुण्ठः ।। छन्दः १, ३ पादनिचृज्जगती । २, ८ जगती । ४ निचृज्जगती । ५ विराड्जगती । ६, ९ आर्चीस्वराड्जगती । ७ विराट्त्रिष्टुप् । १०, ११ त्रिष्टुप् ।। स्वरः—१ ६, ८, ९, निषादः । ७, १०, ११ धैवतः ।।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ।।१।।

पदार्थः—भगवान् कहते हैं—(**अहम्**) मैं (**वसुनः**) सबको बसाने वाले जगत् का (**पूर्व्यः**) अनादि कालिक अर्थात् जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा स्वामी (**भुवम्**) हूं (**अहम्**) मैं (**शश्वतः**) समस्त (**धनानि**) धनों को (**संजयामि**) भली प्रकार संगत रखता हूं, (**जन्तवः**) प्राणीमात्र (**माम्**) मुझे (**पितरम् न**) पिता के समान (**हवन्ते**) पुकारते हैं, (**अहम्**) मैं (**दाशुषे**) दाता को (**भोजनम्**) भोजन (**विभजामि**) देता हूं ।

भावार्थः—भगवान् कहते हैं कि मैं जगत् का सबसे पूर्व अर्थात् जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा अनादिकालिक स्वामी हूं । मैं शाश्वत धनों को प्राप्त हूं, मुझे प्राणी पिता के समान पुकारते हैं और दानशील व्यक्ति को भोजन मैं देता हूं ।।१।।

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥२॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**इन्द्रः**) इन्द्र = परमेश्वर (**अथर्वणः**) वायु वा प्राण के (**वक्षः**) वक्षस्थलभूत अन्तरिक्ष का (**रोधः**) ठहराने वाला हूं, मैं (**अहेः**) मेघ के (**अधि**) ऊपर (**त्रिताय**) तीन स्थानों पर विद्यमान अग्नि के लिए (**गाः**) जलों को (**अजनयम्**) उत्पन्न करता हूँ (**अहम्**) मैं (**दस्युभ्यः**) मेघों से (**नृम्णम्**) धन को (**परि**) सब तरफ से (**आददे**) ग्रहण कर सबको देता हूँ, (**मातरिश्वने**) माता के गर्भ में रहने वाले (**दधीचे**) जीव को (**गोत्रा**) इन्द्रियों के रक्षण और बोलने की शक्ति (**शिक्षन्**) बताते हुए (**ददे**) देता हूं ।

भावार्थः—मैं परमेश्वर वायु के वक्षःस्थल सदृश अन्तरिक्ष लोक को रोककर धारण कर रहा हूँ, मैं मेघ के ऊपर अग्नि के लिए जलों को उत्पन्न करता हूँ, मैं मेघों से वृष्टि द्वारा धन लेकर सबको देता हूँ और गर्भस्थ जीव को इन्द्रियों की रक्षणशक्ति और बोलने की शक्ति मैं देता हूं ॥२॥

मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३॥

पदार्थः—(**त्वष्टा**) सूर्य (**मह्यम्**) मेरे ही (**आयसम्**) अयोमय (**वज्रम्**) वज्र को (**अतक्षत्**) प्रकट करता है, (**मयि**) मेरे में ही (**देवासः**) विद्वज्जन (**क्रतुम् अपि**) कर्म को (**अवृजन्**) अर्पण करते हैं, (**मम**) मेरा (**अनीकम्**) तेज (**सूर्यस्य**) सूर्य के समान (**दुष्टरम्**) असह्य है, समस्त लोक (**कृतेन**) किये सत्कर्म से (**च**) और (**कर्त्वेन**) किये जाने वाले से (**माम्**) मुझे (**आर्यन्ति**) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—सूर्य मेरे ही वज्र को प्रकट करता है, विद्वान् लोग अपने कर्मों का समर्पण मुझ में करते हैं, मेरा तेज सूर्य के समान दुःसह्य है तथा समस्त लोक किये सत्कर्म से अथवा किये जाने वाले से मुझे ही प्राप्त होते हैं ॥३॥

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४॥

पदार्थः (**यत्**) जब (**उक्थिनः**) वेदज्ञ (**सोमासः**) योगी जन (**मा**) मुझे (**अमन्दिषुः**) प्रसन्न करते हैं तब मैं (**दाशुषे**) कर्मों का मुझ में समर्पण करने वाले के लिए (**पुरु सहस्रा**) अनेक सहस्रों ऐश्वर्य को (**शिशामि**) देता हूँ, (**अहम्**) मैं (**एतम्**) इस (**गव्यम्**) इन्द्रियों के स्वामी, (**अश्व्यम्**) शरीर के स्वामी (**पुरीषिणम्**) नाना ऐश्वर्यों के स्वामी (**हिरण्यम्**) प्रकाशमय (**पशुम्**) द्रष्टा आत्मा को (**सायकेन**) वाणसम तीक्ष्ण ज्ञान से युक्त करता हूँ ।

भावार्थः—जब वेदज्ञ योगीजन मुझे प्रसन्न करते हैं तब मैं कर्मों का मुझ में समर्पण करने वाले के लिए सहस्रों ऐश्वर्यों को प्रदान करता हूं। मैं इन्द्रियों के स्वामी, शरीर के स्वामी, ऐश्वर्यों वाले ज्ञान प्रकाश वाले द्रष्टा जीव को वाण सम तीक्ष्ण अज्ञाननाशक ज्ञान से युक्त करता हूं ॥४॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**इन्द्रः**) सर्वशक्तिमान् हूं, (**न**) नहीं (**पराजिग्ये**) किसी से पराजित होता हूँ (**धनम्**) मेरा धन प्रकृति (**इत्**) भी नहीं समाप्त होता, (**कदा चन**) कभी भी (**मृत्यवे**) मृत्यु के लिए (**न**) नहीं (**तस्थे**) उपस्थित होता हूँ (**सोमम्**) सोम को (**सुन्वन्तः**) तैयार करने वाले यजमानो ! (**मा इत्**) मुझे ही (**वसु**) धन (**याचत**) मांगो, हे (**पूरवः**) मनुष्यो (**मे**) मेरे (**सख्ये**) मैत्री में (**न**) नहीं (**रिषाथन**) कभी नाश को प्राप्त हो ।

भावार्थः—मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, कभी भी किसी से पराजित नहीं होता हूं। मेरा धन प्रकृति भी कभी समाप्त नहीं होता। मैं कभी भी मृत्यु का शिकार नहीं होता। सोम तैयार करते हुए हे यजमानो ! मुझ से ही धन की याचना करो। हे मनुष्यो ! मेरी मैत्री में रहते हुए तुम्हें कोई हानि नहीं होगी ॥५॥

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥६॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**शाश्वसतः**) सांस लेने वाले (**एतान्**) इन (**द्वा द्वा**) दो दो के जोड़े हुए काम क्रोधादि द्वन्द्व रूप शत्रुओं को (**अवाहनम्**) मारता हूँ, (**ये**) जो (**वज्रम्**) बलवान् (**माम्**) मुझ (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**युधये**)

युद्ध के लिए (**अकृण्वत**) करते हैं, (**आह्वयमानान्**) लड़ने का आह्वान करने वाले (**नमस्विनः**) शस्त्र वाले (**दृढा**) दृढ़ वचनों को (**ब्रवन्**) बोलता हुआ (**अनमस्युः**) न नमता हुआ (**हन्मना**) मारने के विचार वाला होकर (**अव अहनम्**) नष्ट करता हूँ ।

भावार्थः—मैं शक्तिशाली इन्द्र=परमेश्वर इन श्वास लेने वाले द्वन्द्वों को जो काम क्रोध आदि हैं विनष्ट करता हूं जोकि वज्र रूप मुझे युद्ध करने को आह्वान करते हैं। इस प्रकार ललकारने वाले शक्तिशाली शत्रुओं का मैं नाश करता हूं।

यहाँ सारा वर्णन साहित्यिक भाषा में है ॥६॥

अभी३दमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७॥

पदार्थ—मैं (**इदम्**) इस समय (**निः षाट्**) शत्रुओं का नाश करने वाला (**एकः**) अकेला ही (**अभि**) चारों तरफ से खाने वाला (**अस्मि**) हूं (**एकम्**) अकेले मुझ को (**अभि**) लक्ष्य करके (**द्वा**) दो (**त्रयः**) तीन (**उ**) भी (**किम्**) क्या (**करन्ति**) कर सकेंगे, (**खले**) खलिहान में (**पर्षान् न**) धान की पूली समान (**भूरि**) बहुत शत्रुओं को (**प्रति हन्मि**) मारूंगा, (**अनिन्द्राः**) इन्द्र-विरोधी (**शत्रवः**) शत्रुजन (**मा**) मेरी (**किम्**) क्या (**निन्दन्ति**) निन्दा करेंगे ।

भावार्थः—जो कुछ भी बल और पराक्रम का कार्य है वह सब इन्द्र में माना जाता है अतः यहाँ पर मन्त्रों में भगवान् के द्वारा वह कहा जा रहा है। वस्तुतः भगवान् किसी शत्रु से लड़ाई नहीं करता है। शत्रुओं का नाश करने वाला मैं अकेला हूं। मुझ अकेले का दो तीन वा अधिक क्या कर सकते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। खलिहान में जिस प्रकार किसान धान की पूली को सटक कर पयाल अलग और धान अलग कर देता है वैसे ही मैं इन सब को मार डालूँगा ॥७॥

अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**गुङ्गुभ्यः**) ज्ञानी जनों के लिए अर्थात् इनके रक्षणार्थ (**अतिथिग्वम्**) अतिथिपूजक (**इष्करम्**) अन्न के उत्पादक ([illegible]) अन्न के समान (**वृत्रतुरम्**) आपदाओं के नाश करने वाले व्यक्ति को (**विक्षु**) प्रजा जनों में (**धारयम्**) धारण करता हूं (**यत्**) क्योंकि पालक शक्ति वाले मेघ (**उत वा**) अथवा (**करञ्जहे**) किरणों के प्रभाव से पानी त्यागने वाल मेघ के (**महे**) महान् (**वृत्रहत्ये**) वृत्र युद्ध में (**अशुश्रवि**) प्रसिद्ध रूप से सुना जाता हूँ ।

भावार्थः—मैं ज्ञानियों की रक्षा के लिए अतिथिपूजक, अन्न के उत्पादक और अन्न की भांति आपदाओं के नाश करने वाले व्यक्ति को प्रजा जनों में उत्पन्न करता हूं। क्योंकि वृत्रयुद्ध में पालक जल को सुखा देने वाले और वे किरणों के विना जल को न छोड़ने वाले मेघों के महान् वृत्रयुद्ध में प्रसिद्ध हूं ॥८॥

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥९॥

पदार्थः—(**मम**) मेरा (**नमी**) स्तोता तथा (**साप्यः**) सबके द्वारा आश्रयणीय व्यक्ति (**इषे**) ज्ञान के लिए और (**भुजे**) उत्तम भोग के लिए (**प्र भव्**) समर्थ होता है, तथा (**गवामेषे**) गौओं अथवा वेदवाणी की प्राप्ति में और (**सख्या**) सख्य के लिए लोग मेरे स्तोता को (**द्विता**) दो प्रकार का (**कृणुत**) करते हैं। (**यत्**) क्योंकि (**अस्य**) इस स्तोता के लिए (**समिथेषु**) संसारी जीवन युद्धों में (**दिद्युम्**) ज्ञान प्रकाश को (**मंहयम्**) प्रदान करता हूँ, (**आत् इत्**) अनन्तर (**एनम्**) इसको (**शस्यम्**) स्तुत्य और (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय (**करम्**) करता हूँ ।

भावार्थः—मेरा स्तोता सबके द्वारा आश्रयणीय होकर ज्ञानप्राति और उत्तम भोगों की प्राप्ति में समर्थ होता है, लोग वेदवाणी की प्राप्ति में और मेरे सख्य के लिए उसे दो प्रकार का वना देते हैं। उसके जीवन-संग्रामों में मैं ज्ञान-प्रकाश देता हूँ और उसे प्रशस्त एवम् उत्तम बना देता हूं ॥९॥

प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०॥

पदार्थः—(**नेमस्मिन्**) एक में (**अन्तः**) अन्दर (**सोमः**) आत्मा का प्रकाश (**ददृशे**) दिखायी पड़ता है, (**नेमम्**) एक को परमेश्वर (**अस्था**) अज्ञान-नाशक शक्ति से (**आविः कृणोति**) प्रकट करता है, (**सः**) वह जिसके अन्दर

आत्मा का प्रकाश नहीं दीखता है (तिग्मशृंगम) तीक्ष्ण शृङ्ग वाले (वृषभम) भोगों के वर्षक संसार को (युयुत्सन्) प्राप्त होता हुआ (द्रुहः) द्रोही की तरह (बद्धः) बंधा हुआ (बहुले) महान् जगत् के भोगों के (अन्तः) अन्दर (तस्थौ) पड़ा रहता है ।

भावार्थः—एक में आत्मज्ञान का प्रकाश प्रकट दिखाई पड़ता है। एक में परमेश्वर अपनी अज्ञान नाशक शक्ति से प्रकट करता है। परन्तु एक वह जिसमें यह प्रकाश नहीं दीखता है तीक्ष्ण शृङ्गों अर्थात् दुःखों से युक्त भोगों के वर्षक संसार को प्राप्त हुआ द्रोही के समान बद्ध होकर संसार के भोग में ही पड़ा रहता है ॥१०॥

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥११॥

पदार्थ –(**देवः**) देवों का देव (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**आदित्यानाम्**) बारह आदित्यों, (**वसूनाम्**) ८ वसुओं और (**रुद्रियाणाम्**) रुद्र सम्बन्धी मरुतों और दूसरे (**देवानाम्**) देवों के (**धाम**) नाम, स्थान और जन्म को (**न**) नहीं (**मिनाति**) नष्ट करता है । (**ते**) वे सभी देव भगवान् की कृपा से (**अपराजितम्**) अपराजित, (**अस्तृतम**) अहिंसित (**अषाढम**) अतिरस्कृत (**मा**) मुझे (**भद्राय**) कल्याण कारक (**शवसे**) अन्न धन के लिए (**ततक्षुः**) अनुग्रह करें ।

भावार्थः—देवों का देव परमेश्वर, आदित्य, वसु, मरुत् और दूसरे देवों के तेज आदि को नहीं नष्ट करता है । उसकी कृपा से ये अपराजित, अहिंसित और अतिरस्कृत मुझ को अन्न धन आदि देने का अनुग्रह करें ॥११॥

यह दशम मण्डल का अडतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–४९

ऋषिः—१—११ इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ **देवता**—इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ **छन्दः**–१ आर्चीभुरिग्जगती । ३, ९ विराड्जगती । ४ जगती । ५, ६, ८ निचृज्जगती । ७ आर्चीस्वराट्जगती । १० पादनिचृज्जगती । २ विराट्त्रिष्टुप् । ११ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१, ३—१० निषादः । २, ११ धैवतः ॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१॥

पदार्थः—(**अहम**) मैं (**गृणते**) स्तुति कर्त्ता के लिए (**पूर्व्यम**) मुख्य (**वसु**) मोक्ष रूप धन (**दाम**) देता हूं, (**अहम**) मैं (**मह्यम**) मुझे (**वर्धनम्**) बढ़ाने वाले (**ब्रह्म**) वेद-ज्ञान को (**कृणवम**) उत्पन्न करता हूँ । (**अहम्**) मैं (**यजमानस्य**) यजमान का (**चोदिता**) प्रेरक (**भुवम**) होता हूँ, (**विश्वस्मिन्**) सभी (**भरे**) जीवन संग्राम में (**अयज्वनः**) अयज्ञशील को न्याय से (**साक्षि**) दबाता हूँ ।

भावार्थः—परमेश्वर कहता है—मैं स्तोता को मोक्ष-धन प्रदान करता हूं। मैं मेरे वर्धक वेदज्ञान को उत्पन्न करता हूं । मैं यजमान में यज्ञभावना का प्रेरक हूँ और अयज्ञशीलों को सभी जीवन-संग्रामों में न्याय से दबाता हूं ॥१॥

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥२॥

पदार्थः (**माम्**) मुझ (**इन्द्रम**) परमेश्वर को ही (**जन्तवः**) प्राणी लोग (**दिवः**) द्युलोक का (**ग्मः**) पृथिवी का (**च**) और (**अपाम्**) जलों का (**च**) भी (**देवता नाम**) देव नाम से (**धुः**) पुकारते हैं (**अहम**) मैं (**वृषणा**) बलवान् (**विव्रता**) विविध कर्म वाले (**रघू**) वेगशील (**हरी**) वायु और किरणों को (**आ ददे**) वश में रखता हूं और (**शवसे**) बलकृति के लिए (**अहम**) मैं (**धृष्णु**) धर्षणकारी (**वज्रम्**) वज्र को धारण करता हूँ ।

भावार्थः—मुझ परमेश्वर को प्राणी लोग द्यु, पृथिवी और जलों के परम देवता के नाम से पुकारते हैं । मैं बलशाली, विविध कर्मों वाले वायु और किरण को वश में रखता हूं और बलकृति को प्रकट करने के लिए मैं धर्षक वज्रशक्ति को धारण करता हूं ॥२॥

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥३॥

पदार्थः—(**अहम**) मैं (**कवये**) क्रान्तदर्शी विद्वान् के लिए (**अत्कम**) ज्ञानाच्छादक अन्धकार को (**हथैः**) घातक शक्तियों से (**शिश्नथम्**) नष्ट करता हूँ,

(**अहम्**) मैं (**आभिः ऊतिभिः**) इन रक्षाओं से (**कुत्सम्**) मन्त्र के प्रयोग करने वाले को (**आवम्**) रक्षित करता हूँ, (**अहम्**) मैं (**शुष्णस्य**) शुष्क मेघ का (**श्नथिता**) हिंसक हूं और तदर्थं (**वधः**) घातक वज्र को (**यमम्**) धारण करता हूं, मैं वह हूँ (**यः**) जो (**दस्यवे**) डाकू चोर अथवा वृष्टि न करने वाले मेघ को (**आर्यम्**) श्रेष्ठ (**नाम**) नाम (**न**) नहीं (**ररे**) देता हूँ ।

भावार्थः— मैं ज्ञानी के लिए ज्ञानावरोधक शक्ति को विनाशक साधनों से नष्ट करता हूं, वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले को रक्षणों द्वारा रक्षित करता हूं । मैं वृष्टि न करने वाले शुष्क मेघ का नाश करने वाला उस कार्य के लिए वज्र धारण करता हूं । मैं वह हूं जो दस्यु अथवा वृष्टि को रोकने वाले मेघ को आर्य=श्रेष्ठ नाम नहीं देता ।।३।।

अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ।।४।।

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**पिता इव**) पिता की तरह (**अभिष्टये**) कल्याण के लिए (**वेतसून्**) उद्धत, (**तुग्रम्**) जल और (**स्मदिभम्**) उद्दण्ड मेघ को (**कुत्साय**) स्तोता के लिए (**रन्धयम्** , विदारित करता हूँ (**अहम्**) मैं (**यजमानस्य**) यजमान के (**राजनि**) प्रकाशन में (**भुवम्**) होता हूँ (**यत्**) इस लिए (**तुजये न**) पुत्र के समान उस यजमान के लिए (**आधृषे**) बुराइयों के घर्षणार्थ (**प्रिया**) प्रिय वस्तुएं (**प्रभरे**) देता हूं ।

भावार्थः—मैं पिता की तरह कल्याणार्थ उद्धत जल और मेघ को स्तोता के लिए विदारित करता हूं । मैं यजमान को प्रकाश देताहूं और जैसे पिता पुत्र के लिए करता है उसी प्रकार यजमान के लिए मैं बुराइयों का नाश करता हूं और प्रिय वस्तुएं प्रदान करता हूं ।।६।।

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय षड्गृभिमरन्धयम् ।।५।।

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**श्रुतर्वणे**) वेदोपदेश पर चलने वाले व्यक्ति के लिए (**मृगयम्**) विषय विलास को (**रन्धयम्**) वश में रखने की प्रेरणा देता हूँ, (**यत्** जिससे (**वयुना चन**) ज्ञान से और कर्म से वह (**आनुषक्**) निरन्तर (**मा**) मेरी ओर (**आजिहीत्**) आवे, (**अहम्**) मैं (**आयवे**) गतिशील मनुष्य के लिये (**वेशम्**)

अन्तःप्रविष्ट आत्मा (**नम्रम्**) नम्र (**अकरम्**) करता हूँ, (**अहम्**) मैं (**सव्याय**) दुःखों को क्षीण करने के लिए (**षड्गृभिम्**) मार्ग-बाधक को (**रन्धयम्**) वश में करता हूँ ।

भावार्थः—मैं वेदोपदेश के अनुसार चलने वाले के लिए विषय-विलास की भावना को उसके वश में करने की प्रेरणा करता हूं, जिससे वह मेरे पास निरन्तर आ सके । प्रगतिशील मनुष्य की अन्तः स्थित आत्मा को उसके वश में कराता हूं और दुःखों के दूर करने के लिए मार्ग-बाधाओं को वश में कराता हूं ।।५।।

अहं सो यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ।।६।।

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**सः**) वह हूँ (**यः**) जो मैं (**वृत्रहा**) मेघ का मारने वाला हूँ तथा (**वृत्रा इव**) वृत्र की भांति (**नववास्त्वम्**) नवीन स्थान में रहने वाले (**बृहद्रथम्**) वृहत्काय (**दासम्**) पानी को न छोड़ने वाले मेघ को (**समारुजम्**) भली प्रकार भग्न करता हूँ (**यत्**) इस कारण से (**वर्धयन्तम्**) बढ़ते हुए और (**प्रथमानम्**) विस्तार को प्राप्त होते हुए मेघ को भी (**आनुषक्**) निरन्तर (**रोचना**) प्रकाशमान (**रजसः**) लोक अर्थात् अन्तरिक्ष लोक के (**दूरे पारे**) पृथिवी पर (**अकरम्**) कर देता हूं ।

भावार्थः—मैं वह हूं जो मेघ को मारता है । वृत्त की भांति नवीन स्थान वाले बृहत्काय दास=पानी न छोड़ने वाले मेघ को भग्न करता हूँ । इस कारण से बढ़ते हुए प्रथनशील मेघों को अन्तरिक्ष से दूर पृथिवी पर ला देता हूँ ।।६।।

अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मां सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ।।७।।

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**आशुभिः**) शीघ्रगामी (**एतशेभिः**) अश्व सदृश किरणों से (**वहमानः**) धारण किया हुआ (**ओजसा**) बल से (**परिप्रयामि**) चारों तरफ पहुंचता हूँ (**यत्**) जब (**मनुषः**) मनुष्य का (**सावः**) हित (**मा**) मुझे (**आह**) कहता है तब मैं (**निर्णिजे**) उसे प्रकट रूप देने के लिए (**कृत्व्यम्**) करणीय कर्त्तव्य (**दासम्**) मेघ को (**हथैः**) हनन साधनों से (**ऋधक्**) पृथक् , **कृषे**) करता हूँ ।

भावार्थः—मैं सूर्य की शीघ्रगामी किरणों से चारों तरफ पहुँच जाता हूँ। जब मनुष्य का हित मुझे कहता है तब मैं कर्त्तव्य की पूर्त्ति में मेघ का वध करता हूँ ॥७॥

अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्य१न्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥८॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**सप्तहा**) सात प्रकार के अथवा सर्पणशील मेघों का मारने वाला हूँ, (**नहुषः**) बांधने वाला और (**नहुष्टरः**) अधिक बांधने वाला हूँ, (**शवसा**) बल से (**तुर्वशम्**) अपने को शीघ्र वश में करने वाले (**यदुम्**) यत्नशील को (**प्राश्रावयम्**) कीर्त्तिमान करता हूँ, (**अहम्**) मैं (**अन्यम्**) दूसरे स्तोता को (**सहसा**) बल से (**सहः**) बली (**करम्**) करता हूं, (**नव नवतिम् च**) ९९ (**व्राधतः**) बढ़ते हुए मेघों को (**वक्षयम्**) विनष्ट करता हूँ।

भावार्थः—मैं सर्पणशील मेघों का मारने वाला और बन्धक से भी बन्धकनर हूँ। मैं बल से शीघ्र वश में करने वाले और यत्नशील मनुष्यों को कीर्त्तिमान करता हूं। मैं दूसरे स्तोता को बल से बली बनाता हूँ बढ़ते हुए ९९ मेघों को विनष्ट करता हूं ॥८॥

अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥९॥

पदार्थ—(**वृषा**) बलवान् (**अहम्**) मैं (**सप्त**) सात (**स्रवतः**) बहते प्राणगण को (**धारयम्**) जीव को धारण कराता हूँ, (**द्रवित्नवः**) वहनशील (**सीराः**) शरीर की नाड़ियों को भी जीव को धारण कराता हूँ, (**सुक्रतुः**) उत्तम प्रज्ञावान् मैं (**अर्णांसि**) जलों वा रक्त को (**वि तिरामि**) इन्हें देता हूँ, (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**इष्टये**) उसके गमन के लिए (**गातुम्**) मार्ग को (**अविदम्**) प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थः—मैं शक्तिशाली हूं और सप्त प्राणों तथा शरीर में बहने वाली नाड़ियों को जीव को धारण कराता हूं। उत्तम ज्ञान वाला मैं जल वा रक्त को उनमें पूर्ण करता हूं। मनुष्य के लिए मैं उत्तम मार्ग को प्राप्त कराता हूँ॥९॥

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१०॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**आसु**) इन नाड़ियों में (**तत्**) वह रस धारण कराता हूँ (**यत्**) जिसको (**रुशत्**) प्रकाशमान (**देवश्चन**) ज्ञानवाला (**त्वष्टा**) शिल्पी भी (**न**) नहीं (**अधारयत्**) धारण करा सकता है, (**गवाम्**) गौओं के (**ऊधःसु**) स्तनों में दूध और (**वक्षणासु**) नदियोंमें (**श्वात्र्यम्**) शीघ्रगामी (**मधु**) जल जिस प्रकार बहता है वैसे ही (**स्पार्हम्**) स्पृहणीय (**मधोः**) सारों का (**मधु**) सार (**आशिरम्**) शरीर के आश्रयभूत (**सोमम्**) वीर्य को भी देह में धारण कराता हूँ।

भावार्थः—मैं इन नाड़ियों में उस रस (रक्त) को धारण कराता हूं जिसको कि ज्ञानी उत्तम शिल्पी भी धारण नहीं करा सकता है। गौओं के स्तन में जिस प्रकार दूध और नदियों में जिस प्रकार वेगवाला जल बहता है उसी प्रकार सारों के सारभूत शरीर के आधार वीर्य को भी मैं शरीर में धारण कराता हूँ ॥१०॥

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११॥

पदार्थ—(**मघवा**) मखों का देव, (**सत्यराधाः**) सत्य का धनी (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**च्यौत्नेन**) बल से (**नॄन्**) मनुष्यों और (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**प्रविव्ये**) चलाता है, (**हरिवः**) हे प्रकाश वाले, (**शचीवः**) कर्मवाले परमेश्वर! (**तुरासः**) शीघ्रगामी ऋत्विग् लोग (**ते**) तेरे (**ता इत्**) उस ही (**विश्वा**) समस्त (**स्वयशः**) निजी यश का (**अभि गृणन्ति**) गान करते हैं।

भावार्थः—यज्ञों का देव सत्यधन परमेश्वर अपने बल से मनुष्यों और दिव्य पदार्थों को चलाता है। वह प्रकाश वाला है, उत्तम कर्म वाला है और उसके निजी यश का ऋत्विग्जन गान करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल में उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—५०

ऋषिः १–७ इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ **देवता**—इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ **छन्दः**—१ निचृज्जगती । २ आर्चीस्वराड्जगती । ६,७ पादनिचृज्जगती । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१, २, ६, ७ निषादः । ३ ५ धैवतः ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥१॥

पदार्थः—हे स्तोतः ! (**वः**) तू (**महे**) महान् (**अन्धसः**) अन्न के द्वारा (**मन्दमानाय**) तृप्ति कराने वाले, (**विश्वानराय**) सबके नेता (**विश्वाभुवे**) सबके उत्पादक भगवान् की (**अर्च**) स्तुति कर, (**यस्य**) जिस (**इन्द्रस्य**) इन्द्र के (**सुमखम्**) उत्तम महनीय (**सहः**) बल (**महि**) महान् (**श्रवः**) अन्न (**च**) और (**नृम्णम**) सुख को (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक तथा सभी विद्वान्-विदुषी (**सपर्यतः**) पूजा करते हैं ।

भावार्थः—हे स्तोतः ! तू महान् अन्न से सबको तृप्त कराने वाले सबके संचालक परमेश्वर की अर्चना कर । इस प्रभु के उत्ताम महनीय बल, अन्न और सुख की पृथिवी लोक, द्युलोक, विद्वान् विदुषी सभी पूजा करते हैं ॥१॥

सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे ॥२॥

पदार्थः—(**सो चित नु**) वह ही (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**नर्यः**) समस्त मनुष्यों का हितैषी, (**इनः**) स्वामी और (**सख्याय**) सख्यभाव से (**मावते**) मुझ जैसे (**नरे**) मनुष्यों के लिए (**स्तुतः**) स्तुत होकर (**चर्कृत्यः**) सेवा करने योग्य हैं । (**सत्पते**) हे समस्त पदार्थों और सत्पुरुषों के पालक (**शूर**) बलशाली तू (**वाजकृत्येषु**) ज्ञान और बल से किये जाने वाले कार्यों में (**विश्वासु**) समस्त (**धूर्षु**) धारण करने योग्य पदों में, (**अप्सु**) जलों में (**वा**) और (**वृत्रे**) मेघ में (**अभि प्रमादसे**) आनन्दित हो रहे हो ।

भावार्थः—वह ही परमैश्वर्यशाली भगवान् सबका हितैषी, स्वामी और मुझ जैसे व्यक्ति के लिए सख्यभाव से स्तुत्य होकर सेवा करने योग्य है । वह समस्त सत्पदार्थों का पालक और बलशाली ज्ञान और कर्म से किये जाने वाले कार्यों, समस्त धारण करने योग्य पदार्थों, जलों और मेघ में आनन्द ले रहा है । अर्थात् व्यापक हो रहा है ॥२॥

के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्यमियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) हे परमेश्वर (**ते के नरः**) वे कौन से मनुष्य हैं (**ये**) जो (**ते**) तेरे (**इषे**) ज्ञान के लिए यत्नवान् हैं, (**ये**) जो (**ते**) तेरे (**सधन्यम्**) धनयुक्त (**सुम्नम्**) सुख को (**इयक्षान्**) प्राप्त करते हैं । (**के**) कौन हैं जो (**ते**) तेरे (**असुर्याय**) असुर सम्बन्धी (**वाजाय**) बल के लिए (**हिन्विरे**) प्रयत्न करते हैं, (**के**) कौन हैं जो (**अप्सु**) कर्मों में, (**स्वासु**) अपनी (**उर्वरासु**) उर्वरा भूमियों में (**पौंस्ये**) पुंस्त्व में यत्नशील रहते हैं ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! वे कौन से मनुष्य हैं जो तेरे ज्ञान की प्राप्ति में यत्नवान् हैं, जो तेरे सुख को प्राप्त करते हैं, कौन हैं जो तेरे असुरसम्बन्धी पराक्रम को प्राप्त करते हैं और कौन हैं जो अपने कर्मों में, अपनी उर्वरा भूमियों में और पुरुषार्थ में प्रयत्नशील हैं ॥३॥

भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥४॥

पदार्थः- हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर (**त्वम्**) तू (**ब्रह्मणा**) ज्ञान से और महत्ता से (**महान्**) महान् (**भुवः**) है, (**विश्वेषु**) समस्त (**सवनेषु**) यज्ञ उपासना आदि कार्यों में (**यज्ञियः**) उपास्य (**भुवः**) है, (**विश्वस्मिन्**) समस्त (**भरे**) पालन कर्म में (**नॄन्**) मनुष्यों को (**च्यौत्नः**) चलाने वाला है, तू (**ज्येष्ठः**) सबसे ज्येष्ठ है (**च**) और (**विश्वचर्षणे**) हे समस्त जगत् के द्रष्टा ! तू (**मन्त्रः च**) मनन करने योग्य है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू जगत् का द्रष्टा है । अपने ज्ञान और महत्ता से तू महान् है । तू समस्त उपासना आदि कार्यों में उपास्य है । समस्त पालन कर्मों में मनुष्यों का संचालक है । तू सबसे ज्येष्ठ और मनन करने योग्य हैं ॥४॥

अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥५॥

पदार्थः—हे भगवन् ! (**नु कम्**) निश्चय ही (**ज्यायान्**) श्रेष्ठ तू (**यज्ञवनसः**) सर्वोपास्य तुझ प्रभु की उपासना करने वालों की (**अव**) रक्षा कर। (**कृष्टयः**) समस्त मनुष्य (**ते**) तेरी (**महीम्**) महती (**ओमात्राम्**) रक्षणशक्ति को (**विदुः**) जानते हैं (**नु कम्**) निश्चय ही तू (**अजरः**) अजर (**असः**) है (**च**) और (**विश्वा**) सबको (**इत्**) ही (**वर्धाः**) बढ़ा (**एता**) इन (**सवना**) ऐश्वर्यों को (**तूतुमा**) शीघ्र ही (**कृषे**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! सर्वश्रेष्ठ तू निश्चय ही उपासकों की रक्षा करता है। मनुष्य लोग आपकी रक्षण शक्ति को जानते हैं। निश्चय ही तू अजर है। सबको बढ़ाता है और ऐश्वर्यों को शीघ्र उत्पन्न करता है ।।५।।

ए॒ता वि॒श्वा सव॑ना तू॒तुमा कृ॑षे स्व॒यं सू॑नो सह॒सो यानि॑ दधि॒षे ।
वरा॑य ते॒ पात्रं॒ धर्म॑णे॒ तना॑ य॒ज्ञो मन्त्रो॒ ब्रह्मोद्य॑तं॒ वचः॑ ।।६।।

पदार्थ—हे (**सहसः**) अतिशायी शक्ति के (**सुनो**) प्रेरक इन्द्र=परमेश्वर (**एता**) इन (**विश्वा**) समस्त (**सवना**) उत्पन्न पदार्थों को (**तूतुमा**) शीघ्र ही (**कृषे**) बनाते हो, (**यानि**) जिनको (**स्वयम्**) स्वयम् (**दधिषे**) धारण करते हो, (**वराय**) निवारक (**ते**) आप का (**पात्रम्**) रक्षण हमें मिले, (**तना**) धन (**धर्मणे**) धारण कार्यों के लिए हो, (**यज्ञः**) यज्ञ (**मन्त्रः**) मनन करने योग्य है, तेरी (**वचः**) वाणी ही (**ब्रह्मोद्यतम्**) महान् वेदविज्ञान है।

भावार्थः—हे सर्वातिशायी बल के प्रेरक परमेश्वर ! इन समस्त पदार्थों को आप शीघ्र ही उत्पन्न करते हो जिन को आप स्वयं धारण करते हो। आप का संरक्षण हमें मिले, आप का दिया धन धारणकार्य के लिए हो। आपकी वाणी वैदिक विज्ञान है और मनन करने योग्य है ।।६।।

ये ते॑ विप्र ब्रह्म॒कृतः॑ सु॒ते सचा॒ वसू॑नां॒ च वसु॑नश्च दा॒वने॑ ।
प्र ते॑ सु॒म्नस्य॒ मन॑सा प॒था भु॑व॒न्मदे॑ सु॒तस्य॑ सो॒म्यस्यान्ध॑सः ।।७।।

पदार्थः—हे (**विप्र**) मेधाविन् (**सुते**) इस सृष्टि में (**ब्रह्मकृतः**) वेद का उपदेश करने वाले (**सचा**) एक साथ (**वसूनाम्**) धनों के (**च**) और (**वसुनः**) ज्ञानधन के (**दावने**) दान के लिए लगे हुए (**ते**) आप की परिचर्या के लिए ही हैं। वे (**ते**) तुझ से दिये गए (**सुम्नस्य**) सुखदायी (**सुतस्य**) तैयार किये गए (**सोमस्य**) बलदायक (**अन्धसः**) अन्न के द्वारा (**मदे**) तृप्ति के लिए (**मनसा**) प्रसन्नता से (**ते**) तेरे (**पथा**) मार्ग से ही (**प्र भुवम्**) प्रभुत्व प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—हे मेधाविन् परमेश्वर ! इस जगत् में वेद का उपदेश करने वाले एक साथ होकर धनों और ज्ञानधन के दान में लगे हुए आप की ही परिचर्या करते हैं। तेरे द्वारा दत्त सुखदायी तैयार किये गए बलदायक अन्न के द्वारा तृप्ति के लिए प्रसन्नता से तेरे मार्ग से ही प्रभुत्व प्राप्त करते हैं ।।७।।

यह दशम मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त ५१

ऋषिः—१, ३, ५, ७, ९ **देवाः** । २, ४, ६, ८ **अग्निः सौचीकः** ।। **देवता**—१, ३, ५, ७, ९ **अग्निः सौचीकः** । २, ४, ६, ८ **देवाः** ।। **छन्दः**—१, ३ **निचृत्त्रिष्टुप्** । २, ५, ६ **विराट्त्रिष्टुप्** । ४, ७ **त्रिष्टुप्** । ८, ९ **भुरिक्त्रिष्टुप्** ।। **स्वरः**—**धैवतः** ।।

सूचना इस ५१वें सूक्त का देवता सौचीक अग्नि है। अग्नि के जहां विविध कार्य हैं वहाँ यज्ञ में दी गई हवि का वहन करना और यज्ञ सम्बन्धी देवों तक पहुंचाना यह भी कार्य है। यह कार्य बड़ा विशाल और भारी है। अग्नि इस कार्य से घबरा गया। अग्नि के तीन भाई थे, जो इसी कार्य में मर चुके थे। वे तीन भाई भूपति, भुवनपति और भूतपति थे। पृथिवी में जो अग्नि है वह भूपति है। लोकों में जो अग्नि है वह भुवनपति है और प्राणियों के शरीर में जो अग्नि है वह भूतपति है। इस से सौचीक अग्नि भी डरा कि वह भी मर जायेगा अतः वह हविवहन के कार्य को छोड़कर जल में छिप गया। देवों ने उसको ढूँढ़कर पुनः इस कार्य में लगाया।

इस सूक्त में अग्नि और देवों की उक्ति से इस वैज्ञानिक रहस्य को खोला गया है। जड़ पदार्थों में वार्तालाप आलंकारिक है—

देवों की उक्ति—

म॒हत्तदु॒ल्वं स्थवि॑रं॒ तदा॑सी॒द्येना॑विष्टितः प्रवि॒वेशि॒थापः॑ ।
विश्वा॑ अपश्यद्बहु॒धा ते॑ अग्ने॒ जात॑वेदस्त॒न्वो॑ दे॒व एकः॑ ।।१।।

पदार्थः—हे (**अग्ने**) अग्नि (**तत**) वह (**उल्बम**) प्रावरण अर्थात् 'ऊष' (**महत्**) महान् और (**स्थविरम्**) स्थूल (**आसीत्**) था (**तत्**) वह (**येन**) जिससे (**आवेष्टितः**) लिपटा हुआ तू (**आपः**) जलों में (**प्रविवेशिथ**) प्रविष्ट हुआ, (**ते**) तुम्हारे (**विश्वाः**) सारे (**तन्वः**) अङ्ग-प्रत्यङ्ग को (**बहुधा**) बहुत प्रकार से, हे (**जातवेदः**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्ने ! (**एकः**) एक (**देवः**) देव ने (**अपश्यत्**) देखा । द्यु और पृथिवी का जो रस पृथिवी में **आता है उसे ऊष कहा जाता है ।**

भावार्थः—हे उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्ने ! वह स्थूल ऊषरूपी प्रावरण महान् था जिसमें लिपट कर तू जल में प्रविष्ट हो गया । तुम्हारे समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सबके नियन्ता एक देव भगवान् ने सब प्रकार से देखा ॥१॥

अग्नि की उक्ति—मित्रावरुण=प्राण और उदान देवों के प्रति—

को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ॥२॥

पदार्थः—(**कः**) किसने (**मा**) मुझ को (**ददर्श**) देखा, (सः) वह (**कतमः**) कौन सा (**देवः**) देव है (**यः**) जिसने (मे) मेरे (तन्वः) अङ्ग-प्रत्यङ्गों को (**बहुधा**) बहुत प्रकार से (**पर्यपश्यत्**) देखा, (**मित्रावरुणा**) हे प्राण और उदान ! (**अग्ने मम**) मुझ अग्नि की (**देवयानी**:) देवों को प्राप्त कराने वाली अथवा देवयान मार्गवाली (**विश्वा**) सारी (**समिधः**) समिधायें (**क्व**) कहा (**अह क्षियन्ति**) रहती हैं । अर्यमा=सूर्य के मार्ग का नाम ही देवयान है । **उससे सम्बद्ध अग्नि की दीप्ति को देवयानी कहा जाता है ।**

भावार्थः—हे मित्रावरुण=प्राण और उदान ! किसने मुझे देखा । वह कौन देव है जिसने मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गों को बहुत प्रकार से देखा है । यदि देखा है तो कहे कि सारी देवयान मार्ग सम्बन्धी मेरी दीप्तियां कहाँ रहती हैं ॥२॥

देवों की उक्ति—

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥३॥

पदार्थः (**जातवेदः**) हे उत्पन्न समस्त पदार्थों में विद्यमान (**अग्ने**) अग्ने ! (**अप्सु**) जलों में (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**बहुधा**) विविध प्रकार से (**प्रविष्टम्**) प्रविष्ट (**त्वा**) तुझे (**यमः**) सबके नियन्ता परमेश्वर अथवा वायु ने (**अचिकेत्**) जाना, (**चित्रभानो**) हे चायनीय रश्मियों वाले अग्नि ! तुझे (**देशान्तरुष्पात्**) दश गूढ स्थान से (**अतिरोचमानम्**) प्रकाशमान जाना । दश स्थान ये हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, अग्नि, वायु, और आदित्य—ये तीन देव, जल, ओषधि, वनस्पति और प्राणियों के शरीर ।

भावार्थ—हे चायनीय रश्मि वाले सबमें विद्यमान अग्ने ! जलों में ओषधियों में विविध प्रकार से प्रविष्ट तुझे सबके नियन्ता परमेश्वर अथवा वायु ने देखा । तू दशस्थान में रहने वाला और प्रकाशमान है—ऐसा जाना ॥३॥

अग्नि की उक्त—

होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥४॥

पदार्थः—हे वरुण=उदान देव ! (**होत्राद्**) हव्य वहन से (**बिभ्यन्**) डरा हुआ (**अहम्**) मैं (**आयम्**) आया हूं, अतः (**देवाः**) देव लोग (**अत्र**) इस हवि वहन कार्य में (**मा**) मुझको (**नेत्**) नहीं ही (**युनजन्**) युक्त करें, (**तस्य**) इस प्रकार डरे हुए (**मे**) मुझ अग्नि के (तन्वः) अङ्ग-प्रत्यङ्ग (**बहुधा**) विविध प्रकार से जल में (**निविष्टाः**) छिप गए हैं (**अहम्**) मैं (**अग्निः**) अग्नि (एतम्) इस (**अर्थम्**) हविहवन-कार्य को (**न**) नहीं (**चिकेत**) स्वीकार करता हूँ ।

भावार्थः- हे वरुण ! हविवहन रूप कर्म से डरकर मैं इस जल में प्रविष्ट हो गया कि देव लोग मुझे इस कार्य में न जोड़ देवें । इस प्रकार डरकर आये हुए मुझ अग्नि के अङ्ग-प्रत्यङ्ग जल में विविध प्रकार से छिप गए हैं । इस हवि-वहन कार्य को मैं स्वीकार नहीं करता हूं ॥४॥

देवों की उक्ति –

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरङ्कृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः ॥५॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**आ इहि**) आओ, (**यज्ञकामः**) यज्ञ की कामना करने वाला (**मनुः**) मनुष्य (**अरंकृत्य**) अलंकृत करके (**देवयु**:) देवों

के लिए यज्ञ करना चाहता है। तू (**तमसि**) अन्धकार में (**क्षेषि**) निवास कर रहा है। हे अग्ने ! (**सुमनस्यमानः**) सौमनस्य का व्यवहार करते हुए तू (**देवयानान्**) देवयान (**पथः**) मार्ग को (**सुगान्**) उत्तम रीति से गन्तव्य (**कृणुहि**) कर, और (**हव्यानि**) हव्यों को (**वह**) देवों तक पहुँचा।

भावार्थः– हे अग्ने ! आओ। यज्ञकाम मनुष्य तुझे अलंकृत करके देवों के लिए यज्ञ करना चाहता है। तू अन्धकार में है। सौमनस्य को धारण करके तू हवि को देवों तक पहुंचा और देवयान मार्ग को सुगम बना ॥५॥

अग्नि की उक्ति––

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥६॥

पदार्थः—हे वरुण देव ! (**अग्नेः**) मुझ अग्नि के (**पूर्वे**) पूर्व उत्पन्न हुए (**भ्रातरः**) भाई भूपति, भुवनपति और भूतपति ने (**इव**) जिस प्रकार (रथी) रथी (**अध्वानम्**) मार्ग को चुनता है उसी प्रकार (**एतम्**) इस (**अर्थम्**) हवि-वहन कार्य को (**अनु आ अवरीवुः**) अनुक्रम से किया, और समाप्त हो गए,(तस्मात्) उस मरणरूपी (**भिया**) भय से उसी प्रकार (**दूरम्**) दूर (**आयम्**) आ गया हूँ (**न**) जिस प्रकार (**क्षेप्नोः**) बाण फेंकने वाले धनुष् की (**ज्यायाः**) ज्या के समीप से (**गौरः**) गौर मृग डरता है। वैसे ही मैं (**अविजे**) कांपता हूं।

भावार्थः हे वरुण ! इन तीन पूर्वज भाई भूपति, भुवनपति, भूतपति ने इस हविवहन कार्य को मार्ग को चुनने वाले रथी के समान चुना था और मृत हो गए। इस मरण भय से मैं यहां दूर प्रदेश में आ गया हूँ। जिस प्रकार गौर मृग धनुष् की ज्या से डरता है वैसे डर कर मैं भी काँपता हूं ॥६॥

देवों की उक्ति––

कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥७॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान (**अग्ने**) हे अग्ने (**यत्**) जो (**आयुः**) आयु (**अजरम्**) जरारहित है (**ते**) तेरे

लिए (**कुर्म**) हम करते हैं (**यथा**) जिससे (**युक्तः**) उस आयु से युक्त हुआ (**न**) नहीं (**रिष्या**) मरो, (**सुजात**) हे सुजात अग्ने ! (**अथ**) अनन्तर (**सुमनस्यमानः**) सौमनस्य युक्त तू (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**हविषः**) हवि के (**भागम्**) भाग को (**वहासि**) वहन कर।

भावार्थः—प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, हे सुजात अग्ने ! जो अजर आयु है वह तुझे देते हैं कि जिससे तुम न मरो और देवों के लिए सदा हवि का भाग वहन करते रहो ॥७॥

अग्नि की उक्ति --

प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥८॥

पदार्थः (**देवाः**) हे देव लोग (**मे**) मेरे लिए (**केवलान्** , केवल (**प्रयाजान्**) प्रयाज भाग को (**च**) और (**अनुयाजान्**) अनुयाज भाग को तथा (**हविषः** हवि के (**ऊर्जस्वन्तम्**) ऊर्जवान् स्विष्टकृत् (**भागम्**) भाग को (**दत्त**) प्रदान करो। (**च**) और (**अपाम्**) जलों का सारभूत (**घृतम्**) घृत (**च**) और (**ओषधीनाम्**) ओषधियों का (**पुरुषम्**) तत्व भाग प्रदान करो (**च**) और (**अग्नेः**) अग्नि की (**दीर्घम्**) लम्बी (**आयुः**) आयु (**अस्तु**) हो।

भावार्थः - हे देव लोग ! मेरे लिए प्रयाज. अनुयाज, स्विष्टकृत्, घृत और ओषधियों का सार भाग ही प्रदान करो। मुझ अग्नि की लम्बी आयु हो ॥८॥

देवों की उत्तरोक्ति––

तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो३ यमस्तु सर्वतुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥९॥

पदार्थः – (**अग्ने**) हे अग्ने ! (**तव**) तुम्हारे लिये (**केवले**) केवल (**प्रयाजाः**) प्रयाज (**च**) और (**अनुयाजाः**) अनुयाज तथा (**हविषः**) हवि का (**उर्जस्वन्तः**) अन्नमय (**भागाः**) यज्ञ भाग ही (**सन्तु**) हों, (**अयम्**) यह (सर्वः) सारा (**यज्ञः**) यज्ञ (**तव**) तुम्हारा (**अस्तु**) हो तथा (**चतस्रः**) चारों (प्रदिशः) दिशायें (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिए (**नमन्ताम्**) नम्रीभूत होवे।

भावार्थ—हे अग्ने ! तुम्हारे लिए केवल प्रयाज, अनुयाज और स्विष्टकृत् भाग ही हों। यह सारा यज्ञ तुम्हारे लिए हो और चारों दिशायें तुम्हारे लिए नम्रीभूत हों ।।६।।

यह दशम मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—५२

ऋषिः १—६ **अग्निः सौचीकः।। देवता—विश्वेदेवाः।। छन्दः**—१ त्रिष्टुप्। २ ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् ।। **स्वरः**—धैवतः ।।

अग्नि की उक्ति—

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ।।१।।

पदार्थः—(**विश्वे**) हे समस्त (**देवाः**) देव लोग ! आप (**मा**) मुझ अग्नि को (**शास्तन**) अनुज्ञा दें (**यथा**) जिससे (**इह**) इस यज्ञ में (**होता**) होता (**वृतः**) चुना गया मैं (**मनवै**) व्यवहार करूं, (**यत्**) जिस प्रकार (**निषद्य**) स्थित होकर कार्य करूं वह भी बताओ, (**यथा**) जिस प्रकार (**वः**) आप लोगों ने (**मे**) मेरा (**भागधेयम्**) भागधेय निश्चय किया है (**प्रब्रूत**) बताओ (**येन**) जिस (**पथा**) मार्ग से (**वः**) आपके लिए (**हव्यम्**) हव्य पदार्थ को (**आ वहानि**) वहन करूं ।

भावार्थः—हे विश्वे देव लोग ! मुझे बतावें कि किस प्रकार मैं यज्ञ में होता रूप में कार्य करूं । तथा मेरा जो भाग आप लोगों ने निश्चय किया है वह बतावें। और किस प्रकार आप लोगों के लिए हव्य का वहन करूं यह भी बताओ ।।१।।

अहं होता न्यसीदं यजीयान्विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ।।२।।

पदार्थः—(**यजीयान्**) यष्टव्यतम होकर (**अहम्**) मैं अग्नि (**होता**) होता के रूप में (**न्यसीदम्**) स्थित होता हूँ, (**विश्वे**) समस्त (**मरुतः**) मरुत् (**देवाः**) देव (**मा**) मुझे हवि वहन के लिए (**जुनन्ति**) प्रेरित करते हैं, हे (**अश्विना**) प्राण और अपान (**वाम्**) आप (**आध्वर्यवन्**) अध्वर्यु-सम्बन्धी कार्य की (**अहरहः**) प्रतिदिन अनुज्ञा दें, (**समित्**) सम्यक् प्रदीप्त चन्द्रमा (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा होवे, जो आध्वर्यव (**आहुतिः**) आहुति (**भवति**) होती है (**सा**) वह (**वाम्**) आप दोनों के लिए हो ।

भावार्थः—अत्यन्त यष्टव्य मैं अग्नि होता के रूप में यज्ञ में स्थिति पाऊं, समस्त मरुत् देव मुझे हविवहन में प्रेरित करें, अश्विनी लोगों की आध्वर्यव आहुति हो और चन्द्रमा का ब्रह्मापन हो ।।२।।

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ।।३।।

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**यः**) जो (**होता**) यज्ञ में हवि का ग्रहण करता है (**सः**) वह (**किः उ**) कौन है और कैसा है (**सः**) वह (**यमस्य**) वायु के सम्बन्ध की (**कम्**) किसी (**अपि**) भी हवि को (**ऊहे**) वहन करता है (**यत्**) जिसे (**देवाः**) देव लोग (**समञ्जन्ति**) प्राप्त करते हैं, अग्नि (**अहरहः**) प्रतिदिन अग्नि होत्र के लिए प्रकट किया जाता है, अथवा सूर्यरूप में प्रतिदिन प्रकट होता है और (**मासि मासि**) मास-मास में चन्द्रमा रूप में प्रकट होता है, (**अथ**) इसलिए (**देवाः**) देव इस (**हव्यवाहम्**) हवि को वहन करने वाले अग्नि को (**दधिरे**) धारण करते हैं ।

भावार्थः—यह यज्ञ में जो होता है वह कौन और कैसा हे ? वह वायु सम्बन्धी आहुति को वहन करता है जिसे देव ग्रहण करते हैं । सूर्य प्रतिदिन प्रकट होता है और सूर्य की किरण चन्द्रमा में महीने-महीने में प्रकट होती हैं। इसलिए देवों ने हव्यवाहक अग्नि को होता स्वीकारा है ।।३।।

मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।।४।।

पदार्थः—(**अपम्लुक्तम्**) अपक्रमण करके आगत (**बहु**) बहुत से (**कृच्छ्रा**) कठिन स्थानों में (**चरन्तम्**) विचरण करने वाले (**माम्**) मुझ अग्नि को (**हव्यवाहम्**) हवि का वहन करने वाले (**दधिरे**) धारण करते हैं। इस दृष्टि से कि (**विद्वान्**) सर्वत्र विद्यमान (**अग्निः**) अग्नि (**नः**) हमारे (**पंचयामम्**) पांच

याम वाले (**त्रिवृतम्**) तीन सवनों वाले (**सप्त तन्तुम्**) सात प्रकार के छन्दों वाले (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**कल्पयाति**) कल्पित=पूर्ण वा समर्थ करता है ।

भावार्थः—अपक्रमण करके भी बहुत प्रकार से कठिन स्थानों में बिराजमान मुझ अग्नि को देव लोग हव्यवाहक रूप में धारण करते हैं इस दृष्टि से कि मैं अग्नि सर्वत्र विद्यमान और पांच याम, तीन सबन और सात छन्दों वाले यज्ञ को देवों के लिए समर्थ बनाता हूं ।।४।।

आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥५॥

पदार्थः हे (**देवाः**) देव लोग ! (**युस्मान्**) आप लोगों के लिए (**यक्षि**) यज्ञ की संगति बैठाता हूं, मैं अग्नि (**सुवीरम्**) बलवान् (**अमृतत्वम्**) अमरता को प्राप्त करूं, (**यथा**) जिससे (**वः**) आपकी (**वरिवः**) परिचर्या (**कराणि**) करूं । (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=सूर्य के (**बाह्वोः**) बाहुभूत किरणों वा विद्युद्-द्वय में (**वज्रम्**) वज्र को (**धेयाम्**) धारण कराता हूँ, (**अथ**) इससे वह (**इमाः**) इन (**विश्वाः**) समस्त (**पृतनाः**) मेघ-सम्बन्धी युद्धों वा शत्रुओं को (**जयाति**) जीतता है ।

भावार्थः—हे देवो ! मैं अग्नि आप लोगों के लिए यज्ञ की संगति बैठाता हूं, मुझे दृढ़ अमरत्व प्राप्त हो । जिससे सूर्य के विद्युदात्मक हाथों में वज्र को धारण कराता हूं और वह समस्त मेघसम्बन्धी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।।५।।

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६॥

पदार्थः—(**त्रीणि शता**) तीन सौ (**च**) और (**त्री सहस्राणि**) तीन हजार (**त्रिंशत्**) तीस (**च**) और (**नव**) ९ अर्थात् तीन हजार तीन सौ ३९ (**देवाः**) निविद मन्त्र रूपी देव (**अग्निम्**) अग्नि की (**असपर्यन्**) सपर्या करते है, (**बर्हिः**) वेदि (**अस्तृणन्**) फैलाते हैं, (**अस्मै**) इस अग्नि के लिए (**घृतैः**) घृत और हवि से (**औक्षन्**) सींचते हैं (**आत् इत्**) और (**होतारम्**) होता को (**न्यसादयन्त**) स्थापित करते हैं ।

भावार्थः—मुझ अग्नि की तीन हजार तीन सौ उन्तालीस निविद मन्त्र वेदी बिछाकर, घी आदि से सिक्त करके और होता के रूप में स्थापित करके परिचर्या करते हैं ।।६।।

यह दशम मण्डल में बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—५३

ऋषयः—१—३, ६—११ **देवाः** । ४, ५ **अग्निः सौचीकः** ।। **देवता**—१-३, ६—११ **अग्निः सौचीकः** । ४, ५ **देवाः** ।। **छन्दः**—१, ३, ८ **त्रिष्टुप्** । २, ४ **विराट्-त्रिष्टुप्** । ५ **आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** । ६, ७, ९ **निचृज्जगती** । १० **विराड्जगती** । ११ **पादनिचृज्जगती** ।। **स्वरः**—१—५, ८ **धैवतः** । ६, ७, ९—११ **निषादः** ।।

यमैच्छाम मनसा सो१ यमागाद्यज्ञस्य विद्वान्परुषश्चिकित्वान् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ॥१॥

पदार्थः—हम देवलोग (**यम्**) जिस अग्नि को (**मनसा**) मन से (**ऐच्छाम**) चाहते हैं (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**विद्वान्**) प्राप्त करने वाला (**सः**) वह (**अयम्**) यह (**आगात्**) आ गया । (**परुषः**) प्रत्यंगों को यज्ञ के (**चिकित्वान्**) प्राप्त हुआ (**सः**) वह (**यजीयान्**) यष्टव्यतम (**नः**) हमें (**देवताता**) यज्ञ में (**यक्षत्**) संगति बैठावे (**हि**) निश्चय ही (**निषत्सत्**) वेदि में स्थित हो वह हम देवों का (**अन्तरः**) मध्यवर्त्ती है और (**अस्मत्**) हम देवों से (**पूर्वः**) पूर्ववर्त्ती है ।

भावार्थः—हम देव लोग जिसको मन से चाहते हैं वह यज्ञ को प्राप्त और उसके अंग प्रत्यंगों में लब्ध होने वाला अग्नि आ गया है । वह यजनीयतम हमारे यज्ञ में संगति बैठावे और हमारे मध्य रहने वाला और हमसे पूर्ववर्त्ती वह यज्ञ वेदि में विराजे ।।१।।

अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान्हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ॥२॥

पदार्थः—(**यजयान्**) यष्टव्य (**होता**) होम का निष्पन्न करने वाला यह अग्नि (**निषदा**) वेदि में स्थित होने के द्वारा (**अराधि**) सिद्ध हो गया है, वह

(**सुधितानि**) भली प्रकार निहित चरु पुरोडाश आदि अन्नों को (**हि प्रमिस्यत**) समक्ष पाता है, (**यज्ञियान्**) यष्टव्य आहुतिभाक् (**देवान्**) देवों के लिए (**हन्त**) शीघ्र (**आज्येन**) आज्य से (**यजामहै**) यज्ञ करूं (**ईड्यान्**) स्तुत्यों के लिए (**इडामहै**) स्तुति करूं ।

भावार्थः—यजनीय अग्नि वेदि में स्थिति पाने से सिद्ध हो गया है। वह चरु पुरोडाश आदि को समक्ष पाता है। उसके वेदी में होने से यह भावना होती है कि यजनीय देवों के लिए घृत आदि से यज्ञ किया जावे और स्तुति से स्तुत किया जावे ।।२।।

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ।।३।।

पदार्थः—यह अग्नि (**अद्य**) अब (**नः**) हमारे (**देववीतिम्**) यज्ञ को (**साध्वीम्**) उत्तम (**अकः**) करे, हम देव लोग (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**गुह्याम्**) गूढ़तर (**जिह्वाम्**) जिह्वा=ज्वाला को (**अविदाम**) प्राप्त करें, (**सः**) वह अग्नि (**सुरभिः**) सुगन्ध और (**आयुः**) देवों द्वारा दत्त गति को (**वसानः**) आच्छादित करता हुआ (**आगात्**) प्राप्त होता है तथा (**अद्य**) सम्प्रति (**नः**) हमारे (**देवहूतिम्**) यज्ञ को (**भद्राम्**) कल्याणकारक (**अकः**) करता है !

भावार्थः—अग्नि हम देवों के निमित्त होने वाले यज्ञ को उत्तम करता है और हम उसकी गूढ़तर ज्वाला को प्राप्त करते हैं। वह सुगन्धि और हमारे द्वारा प्रदत्त गति को धारण किये हुए सम्प्रति हमारे लिये हुए यज्ञ को कल्याणकारी बनाता है ।।३।।

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ।।४।।

पदार्थः—(**वाचः**) वाणी के (**प्रथमम्**) मुख्य भाग (**तत्**) उस वचन को (**अद्य**) संप्रति (**मंसीय**) उच्चारण करते हैं (**येन**) जिससे (**देवाः**) हम विद्वज्जन (**असुरान्**) असुरों को (**अभि असाम**) दबा देवें । हे (**ऊर्जादः**) अन्नाद (**उत**) और (**यज्ञियासः**) यज्ञ करने वालो (**पंचजनाः**) चार वर्ण और पांचवां अवर्ण मनुष्यो (**मम**) मुझ भगवान् के बताये (**होत्रम्**) होत्र को (**जुषध्वम्**) प्रीति से किया करो ।

भावार्थः— पूर्व भाग में बताया गया है कि हम विद्वज्जन वाणी के मुख्य वचन वेद वचन का उच्चारण करें जिससे कि हम असुर प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करें। दूसरे भाग में बताया गया है कि भगवान् यह उपदेश करते हैं कि चार वर्ण और पांचवा अवर्ण भी अन्न का ग्रहण करने वाले और यज्ञ के कर्त्ता होकर मेरे द्वारा उपदिष्ट यज्ञ को किया करें ।।४।।

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ।।५।।

पदार्थः—(**गोजाताः**) शरीर में उत्पन्न हुए (**उत**) और (**ये**) जो (**यज्ञियासः**) यज्ञ की इच्छा करने वाले हैं ऐसे (**पंचजनाः**) चारवर्ण और पांचवां अवर्ण मनुष्य (**मम**) मेरे द्वारा उपदिष्ट (**होत्रम्**) यज्ञ को (**जुषन्ताम्**) श्रद्धापूर्वक करें (**पृथिवी**) हमारी वाणी (**नः**) हमें (**पार्थिवात्**) वाचिक (**अंहसः**) पाप से (**पातु**) बचावें और (**अन्तरिक्षम्**) मन (**दिव्यात्**) मानसिक पाप से (**अस्मान्**) हमें (**पातु**) बचावें ।

भावार्थः परमेश्वर पूर्वभाग में आदेश देते हैं कि शरीरधारी और जो यज्ञ की भावना से युक्त हैं ऐसे पंचजन मेरे उपदिष्ट यज्ञ को किया करें। दूसरे भाग में यज्ञ करने वाले यह आशा करते हैं कि भगवान् की कृपा से हमारी वाणी वाचिक पाप से और हमारा मन मानसिक पाप से हमें बचावे ।।५।।

तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ।।६।।

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**तन्तुम्**) ज्ञान के तन्तु को (**तन्वन्**) तनते हुए (**रजसः**) लोक के (**भानुम्**) प्रकाशक सूर्य का (**अनु इहि**) नियम पालन में अनुकरण करो, (**धिया**) ज्ञान और कर्म से (**कृतान्**) किये हुए (**ज्योतिष्मतः**) प्रकाशवान् (**पथः**) मार्गों की (**रक्ष**) रक्षा करो, (**जोगुवाम्**) उपासकों के (**अपः**) कर्म को (**अनुल्वणम्**) निरन्तर (**वयत**) करो, (**मनुः**) मनुष्य (**भव**) बन (**जनम्**) लोगों को (**दैव्यम्**) दिव्य प्रभु का उपासक (**जनया**) बना ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! ज्ञान के तन्तु को तनते हुए तू लोक के प्रकाशक

सूर्य का नियम पालन में अनुकरण कर। बुद्धि और कर्म से किये गए प्रकाशयुक्त मार्गों की रक्षा कर। उपासकों के कर्म को निरन्तर कर, मनुष्य बन और लोगों को दिव्य भगवान् का उपासक बना ॥६॥

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टाबन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७॥

पदार्थः—(**सोम्याः**) योग्य मनुष्यो ! (**अक्षनहः**) प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन इन्द्रियों से बद्ध शक्तियों को (**नह्यतन**) बांधो, (**रशनाः**) मनरूपी लगाम को (**इष्कृणुध्वम**) संस्कारयुक्त करके दृढ करो, (**उत**) और (**आ पिंशत**) सुरूप बनाओ (**अष्टवन्धुरम्**) आठ धातुओं से बँधे शरीररूपी रथ को (**अभितः**) अच्छी प्रकार (**वहत**) वहन करो (**येन**) जिस रथ के द्वारा (**देवासः**) विद्वान् लोग (**अभि प्रियम्**) अपने प्रिय उद्देश्य मोक्ष को (**अनयन्**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! अक्ष=इन्द्रियों की ज्ञक्ति को ठीक बन्धन में रखो, मन लगाम को संस्कृत और उत्तम बनाओ। आठ धातुओं से बंधे शरीर को अच्छी प्रकार काम में लगाओ। यह ही वह शरीर रथ है जिससे विद्वान् लोग अपने जीवन के प्रिय उद्देश्य को प्राप्त करते आये हैं ॥७॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८॥

पदार्थः—(**अश्मन्वती**) पत्थरों से युक्त संसार नदी (**रीयते**) बह रही है (**सखायः**) हे मित्रो ! (**संरभध्वम्**) प्रयत्न करो, (**उत्तिष्ठत**) उठो, (**प्रतरत**) तैर जाओ। (**ये**) जो (**अशेवाः**) दुःखदायी कारण हैं उन्हें (**अत्र**) यहीं पर (**वयम्**) हम (**जहाम**) त्याग दें (**शिवान्**) कल्याणकारी (**वाजान्**) ज्ञान और ऐश्वर्यों को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**उत् तरेम**) ऊपर उठें।

भावार्थः—यह संसार नदी जो पत्थर आदि से भरी है बह रही है। हे मित्रो ! प्रयत्नशील होओ, उठो और इसको तैर जाओ। आप और हम जो दुःखदायी कारण हैं उन्हें यहीं पर छोड़ दें और कल्याणकारी ज्ञान और ऐश्वर्यों को लक्ष्य में रखकर ऊपर उठें ॥८॥

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥९॥

पदार्थः—(**त्वष्टा**) जगत् का रचने वाला शिल्पी भगवान् (**माया**) ज्ञाओं और कर्मों को (**वेद**) जानता है, (**अपसाम्**) उत्तम कर्मों वालों में भी **अपस्तमः**) सर्वोत्तम कर्म वाला वह (**शन्तमा**) शान्तिदायक (**पात्रा**) संरक्षणों और (**देवपानानि**) अग्नि, सूर्य आदि को (**बिभ्रत्**) धारण करता है। (**नूनम्**) निश्चय ही वह (**स्वायसम्**) अनायास प्राप्त होने वाले (**परशुम्**) ज्ञानकुठार को (**शिशीते**) तीक्ष्ण करता है (**येन**) जिससे (**एतशः**) शुक्ल कर्मा (**ब्रह्मण-स्पतिः**) वेदवाणी का पालक विद्वान् (**वृश्चात्**) बन्धनों को काटता है।

भावार्थः—जगत् को रचने वाला शिल्पियों का शिल्पी भगयान् प्रज्ञानों और कर्मों को जानता है। उत्तम कर्म वालों में अति उत्तम कर्म वाला वह शान्तिदायक संरक्षणों और सूर्य, अग्नि आदि को धारण करता है। वह सुलभ ज्ञानकुठार को तीक्ष्ण करता है जिससे शुक्लकर्मा, वेदवाणी का पालक विद्वान् समस्त बन्धनों को काट डालता है ॥९॥

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१०॥

पदार्थः—हे (**कवयः**) क्रान्तदर्शी पुरुषो ! आप लोग (**सतः**) श्रेष्ठाचारी हो **याभिः**) जिन (**वाशीभिः**) उपदेशमयी वाणियों से (**अमृताय**) अमर पद के लिए (**तक्षथ**) मार्ग बनाते हो उन को (**नूनम्**) निश्चय ही (**संशिशीत**) और भी ज्ञान से तीक्ष्ण करो। (**विद्वांसः**) विद्वान् हुए आप लोग (**गुह्यानि**) गूढ (**पदा**) पदों को (**कर्त्तन**) जानो (**येन**) जिनके द्वारा (**देवासः**) ज्ञानीजन (**अमृतत्वम्**) मोक्ष को (**आनशुः**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः हे सदाचारी क्रान्तदर्शी पुरुषो ! आप लोग जिन उपदेशमयी वाणियों से अमरपद का मार्ग बनाते हो उनको और भी ज्ञान से तीक्ष्ण करो। आप लोग पूर्ण विद्वान् होकर उन गूढ पदों=ज्ञानों को जानो जिनके द्वारा ज्ञानीजन मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥११॥

पदार्थः—(**योषाम**) स्त्री के (**गर्भे**) गर्भ में (**वत्सम्**) वत्स के समान विद्वज्जन (**अपीच्येन**) निर्दोष मन से (**उत**) और जिह्वा से (**वत्सम्**) प्रिय

वचन को (**अवधुः**) धारण करते हैं । (**सः**) वह (**कारः**) कार्य करने वाला समर्थ (**इव**) ही (**जितिम्**) सफलता (**अभि वनते**) प्राप्त करता है जो (**विश्वाहा**) समस्त विपत्तियों का हन्ता, (**सुमनाः**) उत्तम मन वाला, (**योग्याः**) योग्य और (**सिसासनिः**) निरन्तर भक्ति करने वाला है ।

भावार्थः—जैसे स्त्री के गर्भ में बच्चा रहता है वैसे ही विद्वज्जन शुद्ध मन और वाणी से प्रिय वचन का धारण करते हैं । वह कर्मकुशल समर्थ व्यक्ति ही सफलता प्राप्त करता है जो समस्त विघ्नों का हन्ता, मनस्वी, योग्य और श्रद्धा-भक्ति वाला है ॥११॥

यह दशम मण्डल में तरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५४

ऋषयः—१—६ बृहदुक्थो वामदेव्यः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ६ त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ अतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१॥

पदार्थः—(**मघवन्**) हे धनों के स्वामी (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**ते**) तेरी (**ताम्**) उस (**महित्वा**) महान् सामर्थ्य से प्राप्त (**कीर्त्तिम्**) कीर्त्ति का (**सु**) उत्तम प्रकार से कीर्तन करता हूँ, (**यत्**) जिससे कि (**भीते**) डरे हुओं के समान (**रोदसी**) आकाश और पृथिवी भी (**त्वा**) तुझे रक्षार्थ (**अह्वयेताम्**) पुकारते हैं, (**देवान्**) दिव्य भावनाओं को (**प्राव:**) रक्षा करते हैं, (**दासम्**) बुरे भाव को (**आतिरः**) भगाते हैं (**त्वस्यै**) एक (**प्रजायै**) प्रजा के लिए (**यत्**) जो (**ओजः**) बल है उसको (**अशिक्षः**) देते हैं ।

भावार्थः—हे समस्त धनों के स्वामी परमेश्वर ! आप की उस महिमा-महती कीर्ति का मैं कीर्त्तन करता हूं जिससे कि डरे हुए दो व्यक्तियों की तरह आकाश और पृथिवी भी तुझे रक्षार्थ पुकारते हैं । आप दिव्य भावनाओं की रक्षा करते हैं और बुरी भावना को भगाते हैं । प्रजा के लिए बल प्रदान करते हैं ॥१॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**यत्**) जो तू (**बलानि**) अपने बलों को (**वावृधानः**) जगत् में बढ़ाता हुआ अर्थात् व्यापक होकर (**अचरः**) विचरता है, (**जनेषु**) लोगों को (**प्रब्रुवाणः**) उत्तम वेदवाणी का उपदेश देता हुआ (**अचरः**) उनमें विचरता है, (**ते**) तेरे (**यानि**) जितने भी (**युद्धानि**) युद्ध (**आहुः**) कहे जाते हैं (**सा**) वह (**माया इव**) माया अर्थात् बुद्धि का चातुर्य मात्र है, तू (**न**) न (**अद्य**) आज (**शत्रुम्**) किसी शत्रु को (**विवित्से**) प्राप्त है और (**न +नु**) न (**पुरा**) पहिले ही प्राप्त था ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू अपने बलों को बढ़ाता हुआ विश्व में व्यापक हो रहा है । तू वेदवाणी का उपदेश करता है और जनों में विराजमान है । तुम्हारे जो युद्ध कहे जाते हैं वे केवल बुद्धि की चातुरी मात्र हैं । न तेरा कोई शत्रु कभी था और न अब है ॥२॥

क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥३॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (**के उ नु**) कौन (**ते**) तुम्हारी (**महिमनः**) महिमा का (**समस्य**) पूरी का (**अन्तम्**) पार (**अस्मत्**) हम से (**पूर्वे**) पूर्ववर्त्ती (**ऋषयः**) ऋषि लोग (**आपुः**) प्राप्त किये हैं ? (**यत्**) जिस कारण से कि तुम (**स्वायाः**) अपने (**तन्वः**) प्रकृतिरूपी शरीर से (**मातरम्**) पृथिवी (**च**) और (**पितरम्**) द्युलोक को (**च**) भी अथवा माता और पिता को भी (**साकम्**) एक साथ (**अजनयथाः**) उत्पन्न करते हो ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! कौन है हम से पूर्व भी ऋषि आदि जो तेरी संपूर्ण महिमा का पार पा सके हैं वा पा सकते हैं । अर्थात् कोई नहीं । तू माता और पिता को अमैथुनी सृष्टि में साथ उत्पन्न करता है और तू द्यु और पृथिवी लोक को भी साथ उत्पन्न करता है ॥३॥

चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४॥

पदार्थः—हे (**मघवन्**) इन्द्र=परमेश्वर (**महिषस्य**) महान् (**ते**) आपके (**चत्वारि**) चार (**नाम**) नाम (**असुर्याणि**) असुर सम्बन्धी अथवा प्राण सम्बन्धी हैं और (**अदाभ्यानि**) किसी से भी हिंसनीय नहीं हैं (**अंग**) हे प्रभो ! (**त्वम्**) तू (**विश्वानि**) समस्त (**तानि**) उन कर्मों और योजनाओं को (**वित्से**) जानता है, (**येभिः**) जिनके द्वारा (**कर्माणि**) जगत् की रचना आदि कर्मों को (**चकर्थ**) करता है।

भावार्थ हे परमेश्वर ! तुझ महान् के चार नाम=पद वा अवस्था ऐसे हैं जो असुरसम्बन्धी अथवा प्राण सम्बन्धी हैं और अदभ्य हैं। तू उन समस्त कर्मों और योजनाओं को जानता है जिनके द्वारा सृष्टि की रचना आदि कार्यों को करता है। परमेश्वर की जागृत,स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय की स्थानी हिरण्य गर्भ, विराट् आदि ऐसी अवस्थाएँ हैं जो प्राणधारी जीव में भी पायी जाती हैं परन्तु सृष्टि, उत्पत्ति और प्रलय ये अवस्थाएँ ऐसी हैं जो ब्रह्म ही करता है और जीव का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है ॥४॥

त्वं विश्वा॑ दधिषे॒ केव॑लानि॒ या॒न्याविर्या च॒ गुहा॒ वसू॑नि ।
काम॒मिन्मे॑ मघव॒न्मा वि ता॑री॒स्त्वमा॑ज्ञा॒ता त्वमि॑न्द्रासि दा॒ता ॥५॥

पदार्थः हे (**मघवन्**) सब धनों और शक्तियों के स्वामिन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**विश्वा**) समस्त (**केवलानि**) असाधारण (**वसूनि**) जगत् के पदार्थ धन को (**यानि**) जो (**आविः**) प्रकट हैं (**च**) और(**या**) जो (**गुहा**) गूढ़ वा अप्रकट हैं। (**दधिषे**) धारण करता है (**मे**) मेरे (**कामम्**) कांक्षित को (**मा**) मत (**वितारीः इत्**) नष्ट करो (**त्वम्**) तू (**आज्ञाता**) प्राप्त कराने वाला (**त्वम्**) तू ही (**दाता**) देने वाला (**असि**) है।

भावार्थः—हे सब धनों और शक्तियों के स्वामी परमेश्वर आप उन समस्त जगत् के पदार्थों को धारण करते हैं जो प्रकट हैं और जो अप्रकट हैं। हे प्रभो मेरी आकांक्षा को मत नष्ट करें। आप ही प्राप्त कराने वाले हैं और आप ही दाता हैं ॥५॥

यो अद॑धा॒ज्ज्योति॑षि॒ ज्योति॑र॒न्तर्यो अस॑ृज॒न्मधु॑ना॒ सं मधू॑नि ।
अध॑ प्रि॒यं शू॒षमि॒न्द्राय॒ मन्म॑ ब्र॒ह्मकृ॑तो बृ॒हदु॑क्थादवाचि ॥६॥

पदार्थः— (**यः**) जो परमेश्वर (**ज्योतिषि**) सूर्य आदि ज्योतियों के (**अन्तः**) अन्दर (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**अदधात्**) धारण करता है, (**यः**) जिसने (**मधुना**) मधुर रस अथवा जल से (**मधूनि**) ओषधियों के मधुर रस को अथवा जलों को (**सम् असृजत्**) बनाया है उस (**इन्द्राय**) परमेश्वर के (**प्रियम्**) प्रिय (**मन्म**) मननीय (**शूषम्**) बल को (**ब्रह्मकृतः**) वेद के उपदेष्टा (**बृहदुक्थात्**) अत्यन्त वेदज्ञ के समीप से (**अवाचि**) लेकर वर्णन करते हैं।

भावार्थः—परमेश्वर ने ही सूर्य आदि ज्योतियों के मध्य ज्योति धारण किया है। वह जल से जल और मधुर रस से ओषधि में मधुर रस का निर्माण करता है। इस शक्तिशाली भगवान् के मननीय प्रिय बल को वेदज्ञ लोग अत्यन्त वेदविद् के पास से प्राप्त कर वर्णन करते हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल का चव्वनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—५५

ऋषिः—१—८ बृहदुक्थो वामदेव्यः ॥ देवता—इन्द्रः । छन्दः—१, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः - धैवतः ॥

दू॒रे तन्नाम॒ गुह्यं॑ परा॒चैर्यत्त्वा॑ भी॒ते अह्व॑येतां वयो॒धै ।
उद॑स्तभ्नाः पृथि॒वीं द्याम॒भीके॒ भ्रातु॑ः पु॒त्रान्म॑घवन्तित्विषा॒णः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**ते**) आप का (**तत्**) वह (**नाम**) तेज (**पराचैः**) पराङ्मुख लोगों से (**दूरे**) बहुत अधिक (**गुह्यम्**) नहीं जाना जाता है अर्थात् गूढ वा रहस्यमय है, (**यत्**) जिससे (**भीते**) डरे हुए के समान द्यु और पृथिवी लोक (**वयोधैः**) बल धारण करने के लिए (**त्वा**) तुझे (**अह्वयेताम्**) पुकारते हैं। तू (**भ्रातुः**) सूर्य अथवा पर्जन्य के (**पुत्रान्**) किरणों अथवा जलों को (**तित्विषाणः**) दीप्त करता हुआ (**पृथिवीम्**) पृथिवी और (**द्याम्**) द्युलोक को (**अभीके**) उनके समीप होकर (**उत् अस्तभ्नाः**) थामे रहता है।

भावार्थः हे परमेश्वर तुम्हारा वह नाम=तेज पराङ्मुख लोगों के लिए बहुत ही गूढ है जिससे डरे हुए के समान द्यु और पृथिवी लोक शक्तिधारणार्थ तुझे पुकारते हैं। तू सूर्य की किरणों और मेघ के जलों को दीप्त करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक को उनके समीप अर्थात् उनमें व्याप्त होकर थामे हुए है ॥१॥

महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥२॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**तव**) आप का (**तत**) वह (**पुरुस्पृक्**) बहुतों से स्पृहणीय (**गुह्यम्**) गूढ (**नाम**) तेज (**महत**) महान् है (**येन**) जिससे (**भूतम्**) उत्पन्न भूत=भूतजात को (**जनयः**) उत्पन्न करते हो, (**येन**) जिससे (**भव्यम्**) होने वाले को (**जनयः**) उत्पन्न करते हो, (**यत्**) जो कि (**अस्य**) इस जगत् का (**प्रत्नम्**) पुरातन (**ज्योतिः**) प्रकाश (**जातम्**) प्रसिद्ध है तथा (**प्रियम्**) प्रिय है उसको (**प्रियाः**) प्यारे (**पंच**) पांच भूत (**समविशन्त**) आश्रय करते हैं ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! अत्यन्त स्पृहणीय और गूढ आप का तेज महान् है जिससे आप उत्पन्न भूतजात और भविष्य में उत्पन्न होने वालों को उत्पन्न करते हो । इस जगत् की प्रवाह से पुरातन, प्रसिद्ध प्रिय ज्योति सूर्य एवम् शरीरादि को पांचभूत आश्रय करते हैं ॥२॥

आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३॥

पदार्थः—यह इन्द्र=परमेश्वर (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी को (**आ अपृणात्**) अपनी व्याप्ति से पूर्ण कर रहा है, (**उत**) तथा (**मध्यम**) अन्तरिक्ष को (**आ**) पूर्ण कर रहा है (**पञ्च**) पांच (**देवान्**) पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश को पूर्ण कर रहा है, (**सप्तसप्त**) ४९ मरुतों को पूर्ण कर रहा हैं, अथवा सात प्रकृति विकृतियां, सात किरणों, सात लोकों तथा मन और बुद्धि सहित सात इन्द्रियों को पूर्ण कर रहा है । (**ऋतुशः**) प्रत्येक काल में (**चतुस्त्रिंशता**) ३४ तत्त्वों के द्वारा [आठ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति, इन्द्र और वाक्] (**सरूपेण**) समान रूप (**ज्योतिषा**) ज्योति और (**विव्रतेन**) विविध क्रियाओं से (**पुरुधा**) नाना प्रकार के (**विचष्टे**) जगत् को दिखाता है ।

भावार्थः—परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष, पांच भूतों, ४९ मरुतों, सात संख्या वाले गणों को अपनी व्याप्ति से पूर्ण कर रहा है। वह ३४ पदार्थों के द्वारा संमिश्रण शक्ति, वियोजन शक्ति और विविध क्रियाओं से इस नाना प्रकार के जगत् को हमें दिखा रहा है ॥३॥

यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**यत्**) जो कि (**विभानाम्**) प्रकाशमान सूर्य आदि के (**प्रथमा**) पूर्व (**उषः**) उषाओं को (**औच्छः**) प्रकाशमान करते हो, (**येन**) जो कि (**पुष्टस्य**) पुष्ट जगत् के (**पुष्टम्**) पुष्ट पदार्थ को (**अजनयः**) उत्पन्न करते हो, (**यत्**) जो कि (**ते**) तुम्हारा (**जामित्वम्**) बन्धुभाव (**परस्याः**) परे स्थित द्युलोक और (**महत्याः**) महती पृथिवी के बीच (**अवरम्**) हमारी ओर है यह आप का (**एकम्**) एक (**महत्**) महान् (**असुरत्वम्**) देवपन है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप जो प्रकाशमान सूर्य आदि के पूर्व उषाओं को प्रकाशित करते हो, पुष्ट जगत् के पुष्ट पदार्थों को उत्पन्न करते हो, आकाश और पृथिवी के मध्य विद्यमान हम सब पर बन्धुभाव दर्शाते हो - यह सब आप का महान् देवत्व है ॥४॥

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥५॥

पदार्थः—(**विधुम्**) विविधकर्मा, (**समने**) जीवन संग्राम में (**बहूनाम्**) बहुतों के (**दद्राणम्**) भगाने वाले इन्द्र=जीव को (**युवानम् सन्तम्**) युवा होते हुए पश्चात् (**पलितः**) जरावस्था (**जगार**) घेरती है, (**देवस्य**) इन्द्रदेव=परमेश्वर के (**महित्वा**) महत्वपूर्ण (**काव्यम्**) सामर्थ्य को (**पश्य**) हे लोगो ! देखो, (**यः**) जो (**ह्यः**) कल (**समान**) जीवित था (**सः**) वह (**अद्य**) आज (**ममार**) मर गया और जो (**ह्यः**) कल (**ममार**) मरा वह (**अद्य**) आज (**समान**) पुनः जीवन धारण कर रहा है ।

भावार्थः—विविधकर्मा, जीवन-संग्राम में बहुतों को परास्त करने वाले युवा जीव को भी समय पर जरावस्था घेरती है। परमेश्वर के इस महान् सामर्थ्य को देखो कि जो कल जीवित था आज मर गया और जो कल मर गया था आज जन्म धारण कर पुनः जीवन वाला हो रहा है ॥५॥

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥६॥

पदार्थः— वह इन्द्र=परमेश्वर (**शक्मना**) शक्ति से (**शाकः**) शक्तिशाली है, (**अरुणः**) तेजोमय है, (**सुपर्णः**) उत्तम गति वाला है, (**यः**) जो वह , **महः**) महान् (**शूरः**) शूर (**सनात्**) सनातन (**अनीडः**) किसी विशेष स्थान पर रहने वाला नहीं है, वह (**यत्**) जो (**चिकेत**) जानता है (**तत्**) वह (**इत्**) ही है, (**तत्**) वह (**मोघम्**) व्यर्थ (**न**) नहीं है, वह (**स्पार्हम्**) स्पृहणीय (**वसु**) धन का (**जेता**) प्राप्त करने वाला (**उत**) और (**दाता**) दाता (**उत**) भी है ।

भावार्थः— वह परमेश्वर शक्ति से शक्तिशाली, प्रकाशमान, उत्तम गति वाला, महान्, सर्वव्यापक है । वह जो जानता है वह सत्य ही होता है, कभी भी व्यर्थ नहीं होता। वह स्पृहणीय धन का धारक और दाता है ॥६॥

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥७॥

पदार्थः— इन्द्र=परमेश्वर (**ऐभिः**) इन मरुद्गणों के द्वारा (**वृष्ण्या**) वृष्टि सम्बन्धी (**पौंस्यानि**) बलों को (**आ ददे**) धारण करता है (**येभिः**) इनके द्वारा (**वृत्रहत्याय**) मेघ से युद्ध करने के लिए वह (**वज्री**) बिजली धारण किया हुआ होकर (**औक्षत्**) वर्षा कराता है, (**ये**) जो मरुद्गण (**देवाः**) देव (**मह्ना**) महान् इन्द्र के द्वारा (**क्रियमाणस्य**) किये जाने वाले (**कर्मणः**) वृष्टि प्रदान-कर्म में (**ऋतेकर्मम्**) जलोत्पादन कर्म के प्रति (**उदजायन्त**) उन्मुख होते हैं वे ये उसकी शक्ति से ही ऐसा करते हैं ।

भावार्थः—परमेश्वर मरुतों के द्वारा वृष्टिसम्बन्धी कार्य को पूर्ण करता है ! वह उनके द्वारा वज्री होकर वर्षा कराता है । ये उस वर्षा के कार्य में जो जलोत्पादन आदि क्रिया को करते हैं उसकी शक्ति के अन्दर ही करते हैं । विना उसके ये कुछ नहीं कर सकते हैं ॥७॥

युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥८॥

पदार्थः—वह इन्द्र=परमेश्वर (**युजा**) अपनी उद्योग-शक्ति से **कर्माणि**) जगत् के कर्मों को (**जनयन्**) उत्पन्न करताहुआ (**विश्वोजाः**) व्याप्तबल है, (**अशस्तिहा**)

बुराइयों का नाश करने वाला है, (**विश्वमनाः**) समस्त ज्ञानों वाला है, (**तुराषाड्**) सब शक्तियों पर नियन्त्रण रखने वाला, (**सोमस्य**) जगत् का (**पीत्वी**) रक्षक हो (**दिवः**) प्रकाश को (**आवृधानः**) बढ़ाता हुआ (**शूरः**) शक्तिशाली वह (**युधा**) अपनी व्यापक शक्ति से (**दस्यून्**) मेघ आदि को (**निः अधमत्**) पराजित करता है ।

भावार्थः—अपनी उद्यम शक्ति से विश्व के पदार्थों में गतियों को उत्पन्न करता हुआ परमेश्वर महाशक्ति, बुराइयों का बाधक, समस्त ज्ञानों वाला, और सभी शक्तियों पर दबदबा रखने वाला है । वह विश्व की रक्षा करता है, प्रकाश को बढ़ाता है और अपनी व्यापक शक्ति से शक्तिशाली वह मेघ आदि को पराजित करता है ॥८॥

यह दशम मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—५६

ऋषिः—१—७ बृहदुक्थो वामदेव्यः ॥ देवताः— विश्वेदेवाः ॥ छन्दः १, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृज्जगती । ५ विराड्जगती । ६ आर्चीभुरिग्जगती ॥ स्वरः—१—३, ७ धैवतः ॥ ४-६ निषादः ॥

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्व१श्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥१॥

पदार्थः हे मनुष्य, (**ते**) तेरे लिए (**इदम्**) यह जगत् (**एकम्**) एक है, (**ते**) तेरे लिए (**परः**) द्वितीय ज्योति (**एकम्**) एक आत्मा है, (**तृतीयेन**) तीसरी (**ज्योतिषा**) ज्योति परमात्मा के साथ **संविशस्व**) मग्न हो रह, (**देवानाम्**) समस्त दिव्य शक्तियों के (**परमे**) परम (**जनित्रे**) उत्पादक और (**तन्वः**) शरीरों-लोकों के (**संवेशने**) आश्रयभूत प्रभु में (**चारुः**) उत्तम तू (**एधि**) विचर ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! तेरे लिए यह जगत् एक ज्योति है, जीवात्मा दूसरी ज्योति है और परमेश्वर तीसरी ज्योति है। परमेश्वर में मगन हो

कर रह। वह ही सब शरीर और लोकों का आश्रय तथा समस्त दिव्य-शक्तियों का परम उत्पादक है। उसका प्रिय और उत्तम भक्त बनकर तू उसमें विचर ॥१॥

तनूष्टे वाजिन्तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥२॥

पदार्थः—(**वाजिन्**) हे ज्ञान वाले मनुष्य, (**ते**) तेरी (**तनूः**) काया (**तन्वम्**) दूसरे शरीर को (**नयन्ती**) प्राप्त कराती हुई (**अस्मभ्यम्**) हमें (**वामम्**) उत्तम ज्ञान दे और (**तुभ्यम्**) तुम्हें (**शर्म**) सुख (**धातु**) दे (**अह्रुतः**) सरल आचरण वाला होकर (**महः**) महान् (**देवान्**) देवों के (**धरुणाय**) धारक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (**इव**) संप्रति (**दिवि**) हृदयरूपी आकाश में (**स्वम्**) अपनी (**ज्योतिः**) ज्योति को (**आ मिमीयाः**) प्राप्त कर।

भावार्थः—हे ज्ञानी मनुष्य! तेरी काया दूसरी काया को प्राप्त कराती हुई हमें ज्ञान दे और तुम्हें सुख दे। तू अपने सरल आचरण से महान् देवों के आधार परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने हृदयाकाश में अपनी ज्योति अर्थात् आत्मा को प्राप्त कर ॥२॥

वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्मं प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३॥

पदार्थः—हे आत्मन् ! तू (**वाजिनेन**) शक्ति वा ज्ञान से (**वाजी**) शक्तिशाली वा ज्ञानी (**असि**) है, तू (**सुवेनीः**) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों की कामना वाला होकर (**सुवितः**) उत्तम मार्ग पर चल के (**स्तोमम्**) उत्तम स्तुति को (गाः) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम मार्गगामी तू (**दिवम्**) प्रकाश को (गाः) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम मार्गगामी तू (**धर्मम्**) धर्म को (**गाः**) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम मार्गगामी तू (**प्रथमा**) मुख्य (**सत्या**) सत्यों को (गाः) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम पथ का पथिक तू (**देवाद्**) दिव्य गुणों को (गाः) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम पथ का पथिक तू (**पत्म**) उत्तम ज्योति प्रभुपद को (**अनुगाः**) प्राप्त कर।

भावार्थः—हे आत्मा तू बल से बली और ज्ञान से ज्ञानी है, उत्तम पदार्थों और ज्ञानों की कामना वाला होकर उत्तम मार्ग पर चलता हुआ तू उत्तम स्तुति, प्रकाश, धर्म भावना, मुख्य सत्यों, दिव्यगुणों और परम ज्योति प्रभु पद को प्राप्त कर ॥३॥

महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥४॥

पदार्थ- हे मनुष्यो ! (**पितरः चन**) ऋतुयें चन्द्रकिरणें आदि जिन्हें पितर कहा जाता है (**एषाम**) इन देवों के (**महिषः**) महत्व का (**ईशिरे**) स्वामित्व करते हैं और (**देवाः**) अग्नि वायु आदि देव (**अपि**) भी (**देवेषु**) देवों में (**क्रतुम**) कर्म को (**अदधुः**) धारण करते हैं, (**उत**) और (**यानि**) जो तेज (**अत्विषुः**) दीप्त होते हैं वे ही (**सम विविचुः**) संगत भी होते हैं(**एषाम्**) इन देवों के (**तनूषु**) शरीरों वा संघातों में (**पुनः**) फिर (**आ विविशुः**)निविष्ट होते हैं।

भावार्थः—हे मनुष्यो! ऋतुएं आदि जो पितृगण कहे जाते हैं वे इन देवगण में गिने जाने वाले पदार्थों के महत्व को धारण करते हैं और देवगण भी इनमें अपने कर्मों को धारण करते हैं। जो तेज दीप्त होते हैं वे ही संगत भी होते हैं। इन देवों के संघातों में ही ये पुनः निविष्ट होते हैं। अर्थात् पितर और देव एक-दूसरे के नाम को ग्रहण करते हैं ॥४॥

सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५॥

पदार्थः—वे पितृगण अर्थात् ऋतुएं चन्द्रकिरण आदि (**सहोभिः**) अपनी शक्तियों से (**विश्वम्**) समस्त (**रजः**) लोक का, (**पूर्वाः**) पूर्व के (**धामानि**) स्थानों को (**अमिता**) जो दूसरों से अमित हैं (**मिमाना**) मित करते हुए (**परि चक्रमुः**) परिक्रमण करते हैं (**पुरुध**) बहुत प्रकार की (**प्रजाः**) उदक ज्योति आदि को (**अनु प्र सारयन्तः**) अनुप्रसारित करते हैं तथा (**तनूषु**) शरीरों, संघातों में (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भूत जात को (**नियेमिरे**) नियम में रखते हैं।

भावार्थः—पितृगण में कहे जाने वाले पदार्थ अमित स्थानों को भी मित करते हुए अपने बल से लोकों का परिक्रमण करते हैं। जल प्रकाश आदि को अनुप्रसारित करने और शरीर आदि संघातों में सब भूतजात को नियमित करते हैं ॥५॥

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥६॥

पदार्थः—(**सूनवः**) आदित्य के पुत्रभूत देव=किरण आदि (**असुरम्**) बलवान् (**स्वर्विदम्**) प्रकाश को प्राप्त आदित्य को (**तृतीयेन**) प्रजा की उत्पत्तिरूप कर्म से (**द्विधा**) दो प्रकार का (**आ अस्थापयन्तः**) स्थापित करते हैं, अर्थात् उदित और अस्तमित रूप का, (**पितरः**) पितृगण वाले पदार्थों ने (**स्वाम्**) अपनी (**प्रजाम्**) प्रजाभूत जल, ज्योति आदि को उत्पन्न करके (**पित्र्यम्**) पिता सूर्य-सम्बन्धी (**सहः**) बल को (**अवरेषु**) दूसरों में (**आदधुः**) धारण किया करते हैं तथा (**तन्तुम्**) प्रजा को (**आततम्**) वितत करते हैं ।

भावार्थः—आदित्य=सूर्य की दो प्रकार की दिव्य-शक्तियां हैं। एक देवोत्पादक और दूसरी पित्र्युत्पादक। ये दोनों उसके पुत्र हैं। देवगण जिनमें किरणें आदि हैं वे सूर्य को उदित और अस्तमित रूप में प्रजा को बढ़ाने हेतु दो प्रकार का स्थाण्ति करते हैं। पितृगण ऋतु और चन्द्र की किरण आदि अपनी प्रजा जल आदि को उत्पन्न कर उनमें सूर्य-सम्बन्धी पैतृक तेज को धारण करते हैं और प्रजा को वितत=विस्तारित करते हैं ॥६॥

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**नावा**) नौका से (**क्षोदः**) जल को तरा जाता है (**पृथिव्याः**) पृथिवी की (**प्रदिशः**) दिशाओं को तरा जाता है, (**स्वस्तिभिः**) क्षेत्र से (**विश्वा**) समस्त (**दुर्गाणि**) दुःख से गन्तव्य स्थानों को जाया जा सकता है उसी प्रकार (**बृहदुक्थ**) प्रशंसनीय सूर्य ने (**स्वाम्**) अपनी (**प्रजाम्**) प्रजा को (**महित्वा**) स्व महिमा से (**अवरेषु**) अवरों में (**आ अदधात**) धारण किया और (**परेषु**) परों में (**आ अदधात**) धारण किया ।

भावार्थः—जिस प्रकार नौका से जल और पृथिवी की दिशाओं को तरा जाता है तथा क्षेत्र से अति दुर्गम स्थानों को जाया जा सकता है उसी प्रकार सूर्य ने अपनी प्रजा को अपनी महिमा से अवर=जल आदि वर्ग और पर=प्रकाश आदि वर्ग में स्थापित किया ॥७॥

यह दशम मण्डल में छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५७

ऋषयः—१—६ **बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गोपायनाः ।। देवताः — विश्वेदेवाः ।। छन्दः—१ गायत्री । २—६ निचृद्गायत्री ।। स्वरः—षड्जः ।।**

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**सोमिनः**) ज्ञानयुक्त (**वयम्**) हम (**पथः**) सन्मार्ग से (**मा**) न (**प्रगाम**) दूर जावें (**यज्ञात्**) उपासना और यज्ञ कर्म से भी (**मा**) न दूर जावें, (**अरातयः**) अदानशील और बुरे कर्म वाले (**नः**) हमारे (**अन्तः**) बीच में (**मा**) न (**तस्थुः**) रहे ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! ज्ञानयुक्त हम लोग सन्मार्ग और उपासना एवं यज्ञ से कभी दूर न जावें। हमारे बीच में कोई अदानशील और बुराई वाला न रहे ॥१॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतं नशीमहि ॥२॥

पदार्थः—(**यज्ञस्य**) संसाररूपी यज्ञ का (**प्रसाधनः**) साधक (**यः**) जो (**तन्तु**) सूत्र=नियम सूत्र (**देवेषु**) संसार के दिव्यपदार्थों में (**आततः**) फैला है (**तम्**) उस (**आहुतम्**) प्रशस्त को (**नशीमहि**) हम प्राप्त करें ।

भावार्थः—संसाररूपी यज्ञ का साधक जो ऋत नाम का नियम सूत्र संसार के समस्त दिव्य पदार्थों में फैला है उस प्रशस्त सूत्र को हम जानें ॥२॥

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन ।
पितॄणां च मन्मभिः ॥३॥

पदार्थः—(**नाराशंसेन**) नरों के द्वारा प्रशस्य (**सोमेन**) जगत् के ज्ञान से (**च**) तथा (**पितॄणाम्**) माता-पिता आदि के (**मन्मभिः**) मननीय विचारों से (**मनः**) मन को (**आ हुवामहे**) युक्त करें ।

भावार्थः—हम मनुष्यों द्वारा प्रशस्य जगत्सम्बन्धी ज्ञान और माता-पिता आदि के मननीय विचारों से मन को युक्त करें ॥३॥

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४॥

पदार्थः हे मनुष्य ! (**दक्षाय**) दक्ष एवं निपुणतापूर्ण (**क्रत्वे**) कर्म करने के लिए (**जीवसे**) जीवन के लिए (**च**) और (**ज्योक्**) लम्बे समय तक (**सूर्यम्**) सूर्य को (**दृशे**) देखने के लिए (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**पुनः**) फिर (**आ एतु**) आता है ।

भावार्थः— हे मनुष्य ! मरणानन्तर में निपुणतापूर्ण कर्म के करने के लिए, जीवन के लिए और लम्बे समय तक सूर्य को देखने के लिए तेरा मन फिर से शरीरों में आवे ॥४॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥५॥

पदार्थः—(**पितरः**) हे हमारे पालक माता-पिता आदि लोग ! (**दैव्यः**) दैवी (**जनः**) व्यक्ति परमेश्वर (**नः**) हमें (**पुनः**) फिर (**मनः**) मन (**ददातु**) देवे जिससे हम (**जीवम्**) जीवन वाले (**व्रातम्**) समूह अर्थात् इन्द्रिय आदि को (**सचेमहि**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे माता-पिता आदि पालक जन ! दिव्य शक्ति परमेश्वर हमें पुनः मन प्रदान करे जिससे हम जीवित इन्द्रिय समूह आदि को प्राप्त करें ॥५॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥६॥

पदार्थः—हे (**सोम**) सबके उत्पादक परमेश्वर ! (**वयम्**) हम (**तव**) तुम्हारे (**व्रते**) नियम में रहते हुए (**तनूषु**) अपने शरीरों में अथवा आपकी नीतियों में (**मनः**) मन को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**प्रजावन्तः**) पुत्र पौत्र आदि से युक्त हुए (**सचेमहि**) जीवन में चलते रहे ।

भावार्थः—हे सर्वोत्पादक परमेश्वर हम आपके नियम में रहें । आप की नीतियों में अपने मन को लगावें और सन्तान आदि से युक्त होकर जीवन का यापन करें ॥६॥

यह दशम मण्डल में सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५८

ऋषयः —१ —१२ बन्ध्वादयो गौपायनाः॥ देवता —मन आवर्तनम् । छन्दः— निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः— गान्धारः ॥

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) पहुँचता है तथा (**वैवस्वतम्**) विविध लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी (**यमम्**) जगन्नियन्ता तक भी पहुँचता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) पुनः व्याधि से लौटाता हूं ।

भावार्थः वैद्य रुग्ण मनुष्य से कहता है कि हे मनुष्य तेरा मन जो दूर तक जाता है, जो जगन्नियन्ता प्रभु की प्राप्ति का साधन है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता अर्थात् स्वस्थ करता हूं ॥१॥

यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥२॥

पदार्थः— हे मनुष्य ! (**यत्**) जो यह (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**दिवम्**) द्युलोक (**पृथिवीम्**) पृथिवी पर (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**ते**) तेरे (**तत्**) उस मन को (**इह**) इस शरीर मे (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) पुनः व्याधि के चक्र से लौटाता हूं ।

भावार्थः— हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो मन पृथिवी और द्युलोक में दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से पुनः वापस लौटाता हूं ॥२॥

यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**चतुर्भृष्टिम्**) चारों दिशाओं में भ्रंश वाली (**भूमिम्**) पृथिवी पर (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**)

जाता है (**ते**) तेरे (**तत्**) उस मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्त्तयामसि**) व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा यह मन जो चारों दिशाओं में फैली हुई और भ्रंश को प्राप्त भूमि पर दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए मैं व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥३॥

यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**चतस्रः**) चारों (**प्रदिशः**) दिशाओं में (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिये व्याधि चक्र से (**आ वर्तयामसि**) वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो मन चारों दिशाओं में दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥४॥

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**अर्णवम्**) जलों की राशि (**समुद्रम्**) समुद्र में (**दूरकम्**) दूर-दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए व्याधिचक्र से (**आ वर्तयामसि**) वापस लौटाता हूँ।

भावार्थः हे रुग्ण मनुष्य ! जो तेरा मन समुद्र में दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि चक्र से वापस लौटाता हूं ॥५॥

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**प्रवतः**) गतिशील (**मरीचीः**) दीप्तियों को लक्ष्य कर (**दूरकम्**) दूर-दूर (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधिचक्र से वापस लौटाता हूँ ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! जो यह तेरा मन गतिशील किरणों को लक्ष्य करके दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥६॥

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**अपः**) जलों और (**ओषधीः**) ओषधियों को लक्ष्य में रखकर (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने के लिए और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण पुरुष ! तेरा जो यह मन जलों और ओषधियों को लक्ष्य में रखकर दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ॥७॥

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा यह (**मनः**) मन (**सूर्यम्**) सूर्य और (**उषसम्**) उषा को लक्ष्य में रखकर (**दूरकम्**) दूर जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूँ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन सूर्य और उषा को लक्ष्य में रखकर दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ॥८॥

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम्
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९॥

पदार्थः—(**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**बृहतः**) बड़े (**पर्वतान्**) पहाड़ों पर (**दूरकम**) दूर तक जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि चक्र से वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन बड़े-बड़े पर्वतों पर जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ॥९॥

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) समस्त (**जगत्**) जगत् में (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि चक्र से वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन इस विश्व में दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ॥१०॥

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**परा परावतः**) दूर-दूर देशों को लक्ष्य करके (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (तत्) उस (**ते** तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूँ ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन बहुत दूर तक प्रदेशों की ओर दूर तक भटकता रहता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥११॥

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**भूतम्**) भूत (**च**) और (**भव्यम**) भविष्य के विषयों में (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्त्तयामसि**) व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हुँ ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! यह जो तेरा मन भूत और भविष्य के विषयों में दूर-दूर तक भटकता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए वापस लौटाता हूं ॥१२॥

नोट—मन की अस्थिरता के रोगी का मन जगह-जगह भटकता है । वैद्य उसे आश्वासन देता है कि वह उसे इस शरीरमें स्वस्थ स्थिति में ला देगा । इस सूक्त में इस विषय को ही बतलाया गया है ।

यह दशम मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५९

ऋषयः—१—१० **बन्ध्वादयो गौपायनाः** ॥ देवताः—१—३ निर्ऋतिः ।
४ **निर्ऋतिः सोमश्च** । ५, ६ **असुनीतिः** । ७ लिंगोक्ताः । ८, ९, १०
द्यावापृथिव्यौ । १० **द्यावापृथिव्याविन्द्रश्च** ॥ **छन्दः**—१ विराट्-
त्रिष्टुप् । २, ४—६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७ **आर्ची-**
स्वराट्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक्पङ्क्तिः । ९ जगती ।
१० **विराड्जगती** ॥ **स्वरः**—१—७
धैवतः । ८ **पञ्चमः** । ९, १०
निषादः ॥

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥१॥

—(**क्रतुमता**) प्रज्ञा वाले अथवा कर्मशील (**रथस्य**) रथ के (**स्थातारा**) सवार के (**इव**) समान मनुष्य की (**आयुः**) आयु (**प्रतरम्**) नवतर और (**नवीयः**) नवीन ढंग से (**प्रतारि**) बढ़े, (**अध**) और (**च्यवानः**) क्षीण स्वास्थ्य (**अर्थंम**) आयुष्य को (**उत्तवीति**) बढ़ाता है (**निर्ऋतिः**) मृत्यु की आपत्ति (**परातरम्**) दूर (**सु** , भली प्रकार (**जिहीताम्**) हो जावे ।

भावार्थः– कर्मशील रथ के सवार के समान मनुष्य की आयु नवतर और नवीन रूप से बढ़े । स्वास्थ्य से क्षीण मनुष्य भी आयु को बढ़ाता है। मृत्यु का कष्ट दूर भाग जावे ॥१॥

सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥२॥

पदार्थः—(**राये**) धन-प्राप्ति के लिए हम (**सामन् नु**) सम भूमिभाग में (**निधिमत्**) धन देने वाले (**अन्नम्**) अन्न को (**करामहे**) उत्पन्न करें, (**नः**) हमारे लिये (**जरिता**) उपदेश करने वाला (**नः**) हमारे (**ता**) उन (**विश्वानि**) समस्त (**श्रवांसि**) अन्नों को (**पुरुध**) बहुत प्रकार से (**सुममत्तु**) आस्वाद ले (**निर्ऋतिः**) मृत्यु का कष्ट (**परातरम्**) दूर (**सुजिहीताम्**) रहे ।

भावार्थः– धन-प्राप्ति के लिए हम धन देने वाले अन्न को सम भूमि-क्षत्र में उत्पन्न करें । हमारा उपदेष्टा उन समस्त अन्नों का विविध प्रकार से आस्वाद ले । मृत्यु की आपत्ति हमसे सदा दूर रहे ॥२॥

अभी ष्व१र्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥३॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**द्यौः**) सूर्य (**भूमिम्**) भूमि को अपनी किरणों से अभिभूत करता है और (**न**) जिस प्रकार (**गिरयः**) मेघ (**अज्रान्**) वायुओं को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हम (**पौंस्यैः**) अपने पराक्रम से (**सु**) सुष्ठुरूप से (**अर्यः**) शत्रुओं को (**अभि भवेम**) अभिभूत करें (**जरिता**) उपदेष्टा विद्वान् (**ता**) उन (**नः**) हमारे (**विश्वानि**) समस्त कार्यों को जानता हैं जो हम करते हैं । (**निर्ऋतिः**) मृत्यु की आपत्ति (**परातरम्**) दूर (**सुजिहीताम्**) रहे ।

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से भूमि को अभिभूत करता है, जिस प्रकार मेघ वायुओं को प्राप्त करता है उसी प्रकार हम अपने शत्रुओं को अपने पराक्रम से अभिभूत करें । हमारा उपदेष्टा विद्वान हमारे समस्त कार्यों को जानता है जो हम करते हैं । मृत्यु की आपत्ति हम से सदा दूर रहे ॥३॥

मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥४॥

पदार्थः–(**सोम**) हे परमेश्वर ! (**नः**) हमें (**सुः**) सुष्ठुरूप से (**मृत्यवे**) मृत्यु को (**मो**) न (**परा दाः**) दें, (**उत् चरन्तम्**) उदित होते (**सूर्यम्**) सूर्य को (**नु**) निश्चय हम (**पश्येम**) देखें, (**द्युभिः**) दिनोदिन (**नः**) हमारी (**जरिमा**) जरा अवस्था (**सुहितः**) सुखावह (**अस्तु**) हो, (**निर्ऋतिः**) मृत्यु की आपत्ति (**परातरम्**) दूर (**सुजिहीताम्**) रहे ।

भावार्थः हे परमेश्वर ! हमें मृत्यु के वश न करें । हम सदा उदय होते सूर्य को देखें । हमारी वृद्धावस्था दिनोंदिन सुखावह हो और मृत्यु की आपत्ति हम से दूर रहे ॥४॥

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥५॥

पदार्थः—(**असुनीते**) हे प्राण सम्बन्धी नीति वाले ! प्राणविद्याविद् ! (**अस्मासु**) हम रोगियों में (**मनः**) मन को (**पुनः** ; फिर (**धारय**) स्थिर और स्वस्थ कर, (**जीवातवे** जीवन के लिये (**नः**) हमें (**आयुः**) आयु (**सुप्रतिर**) दें, (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**सम्दृशि**) दर्शन में (**नः**) हमें (**रारन्धि**) स्थापित कर, (**त्वम्**) तू (**घृतेन**) घृत, जल प्रकाश अथवा ओषधियों के घृत से (**नः**) हमारे (**तन्वम्**) शरीर को (**वर्धयस्व**) बढ़ा ।

भावार्थः–हे प्राणविद्याविद ! हम रोगियों के मन को फिर से स्वस्थ और स्थिर कीजिए । हमें जीवन के लिए आयु दीजिए । हम सदा सूर्य को देखें—ऐसी अवस्था में हमें लाइये । हमारे शरीर को घृत आदि से बढ़ाइये ॥५॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥६॥

पदार्थः – (**असुनीते**) हे प्राणविद्याविद् ! (**अस्मासु**) हमारे (**इह**) शरीर में (**पुनः**) फिर (**चक्षुः**) दृष्टि (**पुनः**) फिर (**प्राणम्**) प्राण को धारण करा, (**नः**) हमें (**भोगम्**) भोगों को भोगने की शक्ति (**धेहि**) दो, (**ज्योक्**)

लम्बे समय तक (**उच्चरन्तम**) उदय को प्राप्त हो । हुए (**सूर्यम**) सूर्य को(**पश्येम**) देखें, (**अनुमते**) हे अनुमति देने वाले ! (**नः**) हमें (**स्वस्ति**) सुख से (**मृडय**) सुखी कर ।

भावार्थः—हे प्राणविद्याविद् ! हमारे इस शरीर में आप पुनः दृष्टि और प्राणशक्ति को धारण कराइये । हमें भोगों के भोगने की शक्ति दें । हम चिरकाल तक उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य को देखें । हे उत्तम मति वाले हमें सुख से सुखी कर ॥६॥

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां३ या स्वस्तिः ॥७॥

पदार्थः—मरने के पश्चात् जन्मान्तर में (**देवी**) देवी (**पृथिवी**) भूमि (**नः**) हमें (**पुनः**) फिर (**असुम**) प्राणशक्ति (**ददातु**) देती है,(**द्यौः**) द्युलोक (**पुनः**) फिर प्राणशक्ति देता है और (**पुनः**) फिर प्राणशक्ति देता है **अन्तरिक्षम**) अन्तरिक्ष भी (**सोमः**) परमेश्वर (**नः**) हमें (**तन्वम**) शरीर (**पुनः**) फिर (**ददातु**) देता है, (**पूषा**) सबका पोषक वायु हमें पुष्टि दे, (**या**) जो (**स्वस्ति**) वाग् हमें (**पथ्याम**) वाणी प्रदान करती है ।

भावार्थः मरणान्तर में पुनः जन्म धारण करते समय भूमि, द्युलोक और अन्तरिक्ष प्राणशक्ति देते हैं, वायु पोषण देता है और वाक्शक्ति वाक् देती है और भगवान् इन सबसे युक्त शरीर को देता है ॥७॥

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥८॥

पदार्थः—(**सुबन्धवे**) सबके उत्तम बन्धु अथवा सभी पदार्थों और शरीर के साथ बन्धुभाव से वर्तने वाले के लिए (**यह्वी**) महान् (**ऋतस्य**) सत्य के (**मातरा**) पालक (**रोदसी**) पिता और माता (**शम्**) कल्याणकारक होते हैं (**यद्**) जो (**रपः**) खरावी है उसे (**अप भरताम्**) दूर करती हैं(**द्यौः पृथिवि**) ये पिता-माता (**रपः**) बुराई को (**क्षमा**) क्षमा करते हैं, हे पितः ! हे मातः ! (**ते**) आपका (**किम् चन**) कुछ भी (**मो**) नहीं (**सु आममत**) हमें कष्टदायी होता है ।

भावार्थः पिता-माता जो सत्य के पालक हैं वे सबके बन्धु मनुष्य के लिए सदा सुखदाता होते हैं । जो बुराई होती है उसे दूर करते हैं, अपराध को क्षमा भी करते हैं । हे पितः मातः ! आपका कुछ भी हमें कष्टदायी नहीं होता है ॥८॥

अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः
पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनामभत् ॥९॥

पदार्थः—(**दिवः**) आकाश से (**द्विका**) दो के रूप में (**त्रिका**) तीन के रूप में (**भेषजा**) ओषधियां (**अव चरन्ति**) भूमि पर आती हैं, (**क्षमा**) भूमि में (**एककम्**) एक-एक करके (**चरिष्णु**) विचरती हैं, (**द्यौः**) द्युलोक (**पृथिवि**) पृथिवी लोक (**यद्**) जो (**रपः**) शरीर की न्यूनता है उसे (**अप भरताम्**) दूर करते हैं और (**रपः**) रोग को (**क्षमा**) दूर करने में समर्थ हैं, (**ते**) उनका (**किम् चन**) कुछ भी (**मो**) नहीं (**सु आममत**) कष्टदायी होता है ।

भावार्थः - आकाश से दो तीन के रूप में ओषधियां पृथिवी पर एक-एक करके विचरती हैं । दो के रूप में अश्विना = प्राण और अपान आते हैं तथा तीन के रूप में जलीय तत्व (इडा) विद्युद्रूपी शक्ति (सरस्वती) और प्रकाशमयी शक्ति (भारती) आते हैं । पृथिवी पर इनका पृथक् उपयोग है । द्यु और पृथिवी शरीर की कमी को दूर करते हैं और रोग को हटाते हैं । इनकी कोई भी वस्तु हमें हानिकारक नहीं हैं ॥९॥

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य [illegible]वहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥१०॥

पदार्थः (**इन्द्र**) यह विद्युत् शक्ति (**गाम्**) किरण प्रकाश को और (**अनड्वाहम**) सूर्य को (**सम् ईरय**) प्रेरित करती है (**यः**) जो सूर्य (**उशीनराण्या**) उशीनराणी ओषधि के (**अनः**) रथ को (**आ वहत**) वहन करता है । (**द्यौः पृथिवि**) द्यु और पृथिवी (**यत**) जो (**रपः**) शरीर की कमी है उसे (**अप भरताम**) हटाती हैं, वे (**रपः**) रोग को (**क्षमा**) दूर करने में समर्थ हैं, (**ते**) इनका (**किम् चन**) कुछ भी **मो**) नहीं (**सु आममत**) कष्टदायी होता है ।

भावार्थः—यह विश्वव्याप्त विद्युत् शक्ति किरणों के प्रकाश और सूर्य को प्रेरित करती है। यह सूर्य समस्त ओषधियों जिनमें उशीनराणी भी है उनकी शक्ति के पुंज को धारण करता है। समस्त ओषधियों में उसी का तेज कार्य कर रहा है। द्यु और पृथिवी लोक शरीर की कमी को दूर करते हैं और रोग को हटाते हैं। इनका कुछ भी हमें कष्टदायी नहीं होता है ॥१०॥

यह दशम मण्डल में उनसठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६०

ऋषिः—१—५, ७—१२ बन्ध्वादयो गौपायनाः । ६ अगस्त्यस्य स्वसैषां माता ॥ देवता—१—४, ६ असमाती राजा । ५ इन्द्रः । ७-११ सुबन्धोर्जीविताह्वानम् । १२ हस्तः ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ पादनिचृदनुष्टुप् । ७, १०, १२ निचृदनुष्टुप् । ११ आर्च्यनुष्टुप् । ८, ९ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—५ षड्जः । ६, ७,१०–१२गान्धारः । ८, ९ पञ्चमः ॥

आ जनं त्वेषसन्दृशं माहीनानामुपस्तुतम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥१॥

पदार्थः—इन्द्रियां कहती हैं—कि हे इन्द्र ! जीवात्मन् (**नमः**) भोगों को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए हम (**त्वेष संदृशम्**) दीप्तदर्शन अर्थात् ज्ञान वाले (**माहीनानाम्**) महान् प्राणों अथवा शक्तियों के (**उपस्तुतम्**) सराहनीय (**जनम्**) जन अर्थात् तुझ जीवात्मा को (**आ अगन्म**) हम प्राप्त हो रहे हैं।

भावार्थः—इन्द्रियां कहती हैं कि हे जीवात्मन् ! भोगों को धारण करती हुई हम समस्त शारीरिक शक्तियों के आश्रयभूत तुझ जीवात्मा को सब व्यवहारों में प्राप्त करती हैं ॥१॥

असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् ।
भजेरथस्य सत्पतिम् ॥२॥

पवार्थः—(**नितोशनम्**) हमारी बुराइयों के मारने वाले, (**त्वेषम्**) ज्ञान-प्रकाश से युक्त, (**रथम्**) रथ के समान मनोरथों को (**निययिनम्**) पूरा करने वाले (**भजेरथस्य**) रथ के समान शरीर रथ के (**सत्पतिम्**) सत्पति (**असमातिम्**) इन्द्रियों से समन्वय न रखने वाले आत्मा को हम प्राप्त हो रहे हैं ॥२॥

भावार्थः—हमारी बुराइयों के मारने वाले ज्ञानगुणयुक्त रथ के समान मनोरथों को पूरा करने वाले शरीर रथ के पति इन्द्रियों से समन्वय न रखने वाले आत्मा को हम प्राप्त हो रहे हैं ॥२॥

यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् ।
उतापवीरवान्युधा ॥३॥

पदार्थः—(**पवीरवान्**) विद्युन्मय आयुध वाला (**यः**) जो इन्द्र=परमेश्वर (**महिषान् इव**) महिषों के समान महान् (**जनान्**) लोगों को विना शस्त्रधारण और युद्ध किये (**अति तस्थौ**) पराभूत कर अतिक्रान्त कर सकता है वह (**युधा**) अपने ज्ञान और बल से इस आत्मा को (**पवीरवान्**) शक्तिशाली बनावे (**उत**) और हमें प्राप्त करावें।

भावार्थः—जो विद्युन्मय आयुध धारण करने वाले परमेश्वर महान् से महान् शक्तिशाली लोगों का पराभूत कर अतिक्रान्त कर सकता है वह अपने ज्ञान और शक्ति से इस आत्मा को शक्तिशाली बनावे और हमें प्राप्त करावे ॥३॥

यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते ।
दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४॥

पवार्थः—हे इन्द्र ! हमें उस आत्मा को प्राप्त करा (**यस्य**) जिसके कर्म कृत्यों में (**मरायी**) समस्त विघ्नों का निवारक (**रेवान्**) सब धनों का स्वामी (**इक्ष्वाकुः**) सर्वद्रष्टा परमेश्वर (**एधते**) विराजमान रहता है और जिसमें (**पंचकृष्टयः**) पंच प्राण आदि प्रजा (**दिवि इव**) स्वर्ग में विराजमान प्रजा के समान सुखी रहते हैं।

भावार्थः– हे इन्द्र ! हमें उस आत्मा को प्राप्त करा जिसके कर्म उपासना आदि कार्यों में समस्त विघ्नों के हन्ता, सब धनों के स्वामी सर्वद्रष्टा परमेश्वर का स्थान है और जिसमें अत्यन्त सुखी लोगों के समय पांचों प्राण आदि प्रजा सुख से रहती हैं ॥४॥

इन्द्रं क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय ।
दिवीव सूर्यं दृशे ॥५॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**रथप्रोष्ठेषु**) शरीररथों के ही प्रेमी (**असमातिषु**) इन्द्रिय और बुद्धि से समन्वय न रखने वाले जीवात्माओं में (**क्षत्रा**) तेज और शक्ति को उसी प्रकार धारण करा (**इव**) जैसे (**दिवि**) द्युलोक में (**दृशे**) देखने के लिए (**सूर्यम**) सूर्य को धारण किया है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर! शरीर में ही लिप्त और इन्द्रिय एवं बुद्धि के साथ समन्वय न रखने वाले जीवात्माओं! तेज और शक्ति को उसी प्रकार धारण करो जिस प्रकार देखने के लिए आकाश में सूर्य को धारण कर रहे हो ॥५॥

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६॥

पदार्थः– हे परमेश्वर ! यथा (**अगस्त्यस्य**) पापरहित जीव के (**नद्भ्यः**) आनन्ददाता इन्द्रिय आदि शक्तियों के संचालन के लिए जीवात्मा के मानस में (**रोहिता**) तेजोमयी (**सप्ती**) सर्पणशील ज्योतिष्मती और बर्हिष्मती मानस वृत्तियों को आप (**युनक्षि**) जोड़ते हैं उसी प्रकार (**राजन्**) हे सब प्रकाशों के प्रकाश ! (**पणीन्**) संसार में आसक्ति पैदा करने वाली (**विश्वान्**) समस्त (**अराधसः**) आराधना रहित भावनाओं को (**अभि अक्रमीः**) दूर कर दे ।

भावार्थः– हे परमेश्वर ! जिस प्रकार आप पापरहित जीव की इन्द्रिय आदि शक्तियों के संचालनार्थ जीवात्मा के मानस में तेजोमयी सर्पणशील ज्योतिष्मती और बहिष्मती वृत्तियों को जोड़ते हैं उसी प्रकार संसार में आसक्ति पैदा करने वाली और आराधना रहित भावनाओं को दूर कीजिए ॥६॥

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् ।
इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥७॥

पदार्थः—चक्षु, श्रोत्र और जिह्वा के वृत्तिभूत प्राण घ्राण के व्यापार वाले प्राण से कहते हैं कि हे घ्राण के परिचालक प्राण (**सुबन्धो**) सुबन्धु ! (**अयम्**) यह जीवात्मा हमारा (**माता**) माता, (**अयम**) यही हमारा (**पिता**) पिता, (**अयम**) यह ही (**जीवातुः**) हमें जीवन देने वाला (**आगमत्** प्राप्त है । (**इदम**) यह ही (**तव**) तुम्हारा गमन साधन है (**आ इहि निः इहि**)तुम इसको प्राप्त हो और मिलो ।

भावार्थः—चक्षु आदि के प्राण घ्राण प्राण को सुबन्धु=उत्तम बन्धु कहकर कहते हैं कि यह जीवात्मा ही हमारा माता, पिता और जीवन है । यही तुम्हारा गमन-साधन है । तू इसे प्राप्त हो और इससे मिल ॥७॥

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥८॥

पदार्थः—हे प्राण ! (**यथा**) जिस प्रकार (**युगम्**) जुए को (**धरुणाय**) धारणार्थ (**वरत्रया**) रस्सी से (**नह्यन्ति**) लोग बांध देते हैं (**एव**) वैसे ही (**जीवातवे**) तुम्हारे जीवन के लिए (**मनः**) मन को जीवात्मा के साथ (**दाधार**) धारण किया गया है । यह (**ते**) तुम्हारे (**मृत्यवे**) विनाश के लिए (**न**) नहीं (**अथो**) अपितु (**अरिष्टतातये**) स्थिर रहने के लिए है ।

भावार्थः—जिस प्रकार धारणार्थ जुए को रस्सी से बांध दिया जाता है ऐसे ही प्राण आदि के जीवन के लिए मन को आत्मा से बान्ध दिया गया है। यह इन प्राण आदिकों के विनाशार्थ नहीं बल्कि स्थिरता के लिए है ॥८॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९॥

पदार्थः—(**यथा**) जिस प्रकार (**इयम**) यह (**मही**) बड़ी (**पृथिवी**) भूमि (**इमान्**) इन (**वनस्पतीन्**) वृक्षों को (**दाधार**) धारण करती है (**एवा**) इस प्रकार (**ते**) तुझ घ्राण प्राण के (**जीवातवे**) जीवन के लिए (**मनः**) मन

को आत्मा से (**दाधार**) धारण किया गया यह तुझ प्राण के विना (**मृत्यवे**) विनाशार्थं (**न**) नहीं है अपितु (**अरिष्टतातये**) स्थिरता के लिए है ।

भावार्थः—जिस प्रकार यह महती भूमि इन वासनाओं को धारण करती है उसी प्रकार इस घ्राण प्राण के जीवन के लिए मन को आत्मा के साथ धारण किया है । यह इसके विनाशार्थ नहीं अपितु स्थिरता के लिए है ॥९॥

यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०॥

पदार्थः – (**अहम्**) मैं घ्राण-प्राण (**वैवस्वतात्**) विविध ऐश्वर्यों के स्वामी (**यमात्**) सबके नियन्ता (**सुबन्धोः**) उत्तम बन्धु भगवान् से (**मनः**) मन (**आभरम्**) प्राप्त करता हूँ, (**जीवातवे**) जीने के लिए, (**न**) नहीं (**मृत्यवे**) विनाश के लिए (**अथो**) अपितु (**अरिष्टतातये**) स्थिरता के लिए ।

भावार्थः— मैं घ्राण-प्राण अथवा जीवात्मा समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी जगन्नियन्ता सबके बन्धु परमेश्वर से मन को प्राप्त करता हूँ, जीवन के लिए स्थिरता के लिए, विनाश के लिए नहीं ॥॥१०॥

न्य१ग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥११॥

पदार्थः—हे जीव ! (**वातः**) वायु (**न्यक्**) नीचे बहता है, (**सूर्यः**) सूर्य (**न्यक्**) नीचे को (**तपति**) ताप फेंकता है, (**अघ्न्या**) गाय (**नीचीनम्**) नीचे की तरफ दूध की धार को (**दुहे**) देती है, (**ते**) तुम्हारा (**रपः**) रोग (**न्यक्**) नीचे (**भवतु**) दब जावे ।

भावार्थः—हे जीव ! वायु नीचे बहता है, सूर्य नीचे किरणें फेंकता है, गाय नीचे की तरफ दूध की धार देती है अनः तेरा रोग भी नीचे दब जावे ॥११॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥१२॥

पदार्थः—वैद्य कहता है कि—(**अयम**) यह (**मे**) मेरा (**हस्तः**) हाथ (**भगवान्**) ऐश्वर्यवाला है (**अयम्**) यह (**मे**) मेरा हाथ (**भगवत्तरः**) और भी अधिक ऐश्वर्यशाली है, (**अयम्**) यह (**मे**) मेरा हाथ (**विश्वभेषजः**) सबका इलाज है, (**अयम्**) यह मेरा हाथ (**शिवाभिमर्शनः**) सुखमय स्पर्श वाला है ।

भावार्थः—वैद्य कहता है कि यह मेरा हाथ ऐश्वर्य वाला है, यह और भी अधिक ऐश्वर्य वाला है, यह समस्त रोगों की दवा है और सुखमय स्पर्श वाला है ॥१२॥

यह दशम मण्डल का साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६१

ऋषिः—१—२७ नाभानेदिष्ठो मानवः ॥ **देवता**——विश्वेदेवाः ॥
छन्दः—१, ८—१०, १५, १६, १८, १९, २१ निचृत्त्रिष्टुप् । २,
७, ११, १२, २० विराट्त्रिष्टुप् । ३, २६ आर्चीस्वराट्-
त्रिष्टुप् । ४, १४, १७, २२, २३; २५ पादनिचृ-
त्त्रिष्टुप् । ५, ६, १३ त्रिष्टुप् । २४, २७ आर्ची-
भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१॥

पदार्थः – (**गूर्त-वचाः**) श्रमपूर्वक वेदवाणी का अभ्यासी पुरुष (**इदम्**) इस (**इत्था**) सत्य (**रौद्रम्**) कठिन (**ब्रह्म**) वेदज्ञान को (**शच्याम्**) कर्म और वाणी में (**क्रत्वा**) बुद्धि द्वारा (**आजौ**) संघ के (**अन्तः**) मध्य में उपदेश करता है, (**तत् यत्**) जो (**अस्य**) इसके (**पितरा**) माता और पिता (**क्राणा**) जिसमें कार्यरत हैं और (**अस्य**) इसके (**मंहनेस्थाः**) महनीय स्थान पर रहने वाले जो कार्य करते हैं उस कार्य में (**पक्थे अहनि**) पाक करने के दिन (**सप्त**) सात (**होतॄन्**) ऋत्विजों वा विद्वानों को (**पर्षत्**) पूर्ण करता है अर्थात् यज्ञ का ब्रह्मा बनता है ।

भावर्थ—वेदवाणी का परिश्रम के साथ अभ्यास करने वाला मनुष्य इस कठिन वेदज्ञान का कर्म और वाणी में बुद्धि द्वारा प्रयुक्त करके संघ

आदि में उपदेश करता है । उसके माता-पिता और पूजनीय जो कार्य करते हैं उस यज्ञ कार्य में वह पाक करने के दिन सप्त होताओं में ब्रह्मा बनकर स्थित होता है ॥१॥

स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥२॥

पदार्थः—(**सः**) वह वेदज्ञ पुरुष (**इत्**) ही (**दानाय**) ऋत्विज् आदि को धन देने के लिए (**वन्वन्**) धन बांटता हुआ और (**दभ्याय**) दुष्टों का दमन करने के लिए (**सूदैः**) काटने वाले शस्त्रों द्वारा उनका (**च्यवानः**) नाश करता हुआ पृथिवी को (**वेदिम्**) यज्ञ की वेदी (**अमिमीत**) बना देता है, (**तूर्वयाणः**) त्वरितगति (**गूर्तवचस्तमः**) अत्यन्त उद्यत वचन वाला वह (**क्षोदः न**) मेघ से वर्षा में छोड़े जाने वाले जल के समान (**इतः ऊती**) इधर आने के ढंग से (**रेतः**) सामर्थ्य को (**सिञ्चत्**) सिक्त करता है ।

भावार्थः—वह वेदज्ञ पुरुष ऋत्विज् को देने के लिए धन को बांटता हुआ और शत्रुओं के नाश के लिए दुष्टों का हिंसक शस्त्रों से दमन करता हुआ सारी पृथिवी को यज्ञ वेदी बना देता है । तथा इसे परमार्थ के लिए समझकर त्वरित गमन और अत्यन्त प्रत्युत्पन्नमति होकर अपने सामर्थ्य को सर्वत्र इस प्रकार विखेरता है कि वह यहीं पर आवे और मेघ के जल के समान सर्वत्र फैले ॥२॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥३॥

पदार्थः—ये अश्विनी=सूर्य और चन्द्रमा (**तिग्मम्**) तीक्ष्ण (**मनः**) मन के (**न**) समान उन (**हवनेषु**) होमों में (**विपः**) यजमान के (**शच्या**) कर्म से (**द्रवन्ता**) जाते हुए (**वनुथः**) सेवन करते हैं (**येषु**) जिनमें (**यः**) जो अध्वर्यु है वह (**आ**) सम्यक् (**तुविनृम्णः**) प्रभूत सामग्री से युक्त होकर (**अस्य**) इसकी अपनी (**शर्याभिः**) अंगुलियों से (**गभस्तौ**) हाथ में पकड़ कर (**आदिशम्**) स्पष्ट निर्देश करके (**अश्रीणीत**) आहुति देता है ।

भावार्थः- ये सूर्य चन्द्र देवता के रूप में मन के समान तीक्ष्ण गति से उन यज्ञों में यजमान के कर्म से जाकर अपना भाग ग्रहण करते हैं जिन यज्ञों में अध्वर्यु कर्म करने वाला अपने हाथ में सामग्री को लेकर अंगुलियों के द्वारा यज्ञ के देवता के निर्देश के साथ आहुति प्रदान करता है ॥३॥

कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**कृष्णा**) रात्रि (**अरुणीषु**) अरुण वर्ण की (**गोषु**) किरणों और उषाओं में (**सीदत्**) होती है तब (**दिवः**) द्युलोक के (**नपाता**) न पालक (**वाम्**) इन अश्विनी=सूर्य और चन्द्रमा को लक्ष्य करके (**हुवे**) उनकी प्रशंसा करता हूँ, (**अस्मृतध्रू**) विना किसी उल्टा प्रभाव को डालते हुए ये दोनों (**मे**) मुझ यजमान के (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**आगतम्**) प्राप्त होते हैं (**मे**) मेरे (**अन्नम्**) आहुति में दिये गये अन्न को (**वीतम्**) ग्रहण करते हैं (**न**) संप्रति (**इषम्**) अन्न के और ज्ञान के (**ववन्वान्सा**) देने वाले होते हैं ।

भावार्थः– जब उषा का समय होता है तब द्युलोक के पालक सूर्य और चन्द्रमा को लक्ष्य में रखकर मैं यजमान आहुति प्रदान से उनकी प्रशंसा करता हूँ । वे विना किसी प्रकार की हानि किए हमारे यज्ञों को प्राप्त होते हैं, आहुति भाग को ग्रहण करते हैं और वर्षा आदि से अन्न देने वाले और ज्ञान के विषय बनकर ज्ञान के साधन बनते हैं ॥४॥

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥५॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस रुद्र नामी प्रजापति अग्नि का (**इष्णत्**) ईक्षणयुक्त (**वीरकर्मम्**) उत्पादन कर्म (**प्रथिष्ठ**) प्रथित होता है उस (**अनुस्थितम्**) स्थापित एवम् स्थित हुए उत्पादन कर्म को (**अनर्वा**) दृढ (**नर्यः**) मनुष्य और देवों का हितकारक पार्थिव अग्नि (**नु**) निश्चय से (**अप औहत्**) छिपा लेता है (**तत्**) वह (**पुनः**) फिर (**आवृहति**) चौतरफा फैलता है यह वही तत्व है (**यत्**) जो (**कनायाः**) चमकीले (**दुहितुः**) द्युलोक से (**अनुभृतम्**) ग्रहण किया गया (**आः**) होता है ।

भावार्थः—प्रजापति रुद्र=अग्नि की उत्पादन शक्ति विस्तार को प्राप्त होती है । उसके द्वारा स्थापित उत्पादन शक्ति रूप तेज को दृढ़ और नर

तथा देवों का हितकारी पार्थिव अग्नि अपने अन्दर ढककर रख लेता और वह तेज सर्वत्र फैलता है। वस्तुतः यह तेज है जो द्युलोक से ग्रहण किया जाता है ॥५॥

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६॥

पदार्थः (**कामम्**) यथेच्छ रूप से (**पितरि**) सूर्य (**युवत्याम्**) द्युलोक वा उषा के (**कृण्वाने**) करने पर (**यत्**) जो (**कर्त्वम्**) कर्म (**मध्या**) अन्तरिक्ष में (**अभीके**) उनके समीप (**अभवत्**) हुआ वा होता है उसमें (**मनानक्**) स्वल्प (**रेतः**) अरुण किरण नामी तेज को (**वियन्ता**) परस्पर अभिगमन करने वाले दोनों ने (**जहतुः**) छोड़ा वा छोड़ते हैं। यह वही तेज है जिसे प्रजापति सूर्य द्वारा (**सुकृतस्य**) उत्तमकर्म के (**सानौ**) ऊंचे (**योनौ**) स्थान द्युलोक में (**निषिक्तम्**) निषिक्त रहता है।

भावार्थः आदित्य और उषा वा द्युलोक के परस्पर अभिगमन से जो कर्म होता है उसमें आदित्य अरुण किरण नामक तेज को उषा वा द्युलोक में छोड़ता है और दिन की उत्पत्ति होती है। सूर्य का यह तेज द्युलोक में भरा पड़ा है ॥६॥

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥७॥

पदार्थः—(**पिता**) प्रजापति आदित्य (**यत्**) जब (**स्वाम्**) अपनी (**दुहितरम्**) उषा अथवा द्युलोक को (**अधिष्कन्**) प्राप्त करता है तब (**क्ष्मया**) पृथिवी के साथ संगत हुआ (**रेतः**) अपने अरुण किरण नामक तेज को (**निषिञ्चत्**) आकाश में सिक्त करता है तब (**स्वाध्यः**) अच्छी प्रकार प्रकट (**देवाः**) दिव्य शक्तियें—सूर्य किरणें (**ब्रह्म**) अग्नि को (**अजनयन्**) उत्पन्न करते हैं और उसे (**व्रतपाम्**) व्रतों के पालक (**वास्तोः पतिम्**) वास्तोष्पति रुद्र नामक अग्नि को (**निः अतक्षन्**) निर्मित करते हैं।

भावार्थः—आदित्य जब द्युलोक अथवा उषा को अभिव्याप्त करता है तब पृथिवी के साथ संगत होकर आकाश में तेज को सिक्त करता है उससे दिन का प्रकाश और अग्नि आदि उत्पन्न होते हैं। इस अग्नि को वास्तोष्पति रुद्र=अग्नि कहा जाता है ॥७॥

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥८॥

पदार्थः (**स ईम्**) वह यह (**वृषा न**) वर्षा कराने वाले (**इन्द्र**) विद्युत् बल के समान (**आजौ**) संग्राम में अथवा यज्ञ में (**फेनम्**) घृत आदि फेन को (**अस्यत्**) प्राप्त करता और यज्ञ देवों की ओर फेंकता है (**स्मत्**) हम यजमान आदि लोगों से (**आ अप परा ऐत्**) दूर तक पहुँचाता है, (**दभ्रचेताः**) अल्पमनस्क कोई मनुष्य (**दक्षिणा**) दक्षिणा के लिये (**परावृक्**) रोकने वाला (**पदा**) कदमों को (**न**) नहीं (**सरति**) उठाता है तो (**ताः**) उन (**मे**) मेरी वाणियों को (**नु**) निश्चय ही (**पृशन्यः**) सब पदार्थों को स्पर्श करने वाला अग्नि (**न**) नहीं (**जगृभ्रे**) ग्रहण करता है।

भावार्थः यह वास्तोष्पति अग्नि विद्युद्बल के समान यज्ञ में घृत आदि को प्राप्त कर यज्ञ देवों की ओर फेंकता है। इस सब कुछ को वह हम से दूर पहुंचाता है। अल्पमनस्क कोई यदि ऋत्विग् और विद्वानों की दक्षिणा के लिए रोकने वाला बनता है और इस दिशा में पग नहीं उठाता है तो यह अग्नि यजमान की बोली स्वाहा आदि वाणियों को नहीं ग्रहण करता। अर्थात् दक्षिणा के अभाव में वह यज्ञ यज्ञ नहीं रह जाता ॥८॥

मक्षु न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥९॥

पदार्थः (**प्रजायाः**) प्राणियों का (**उपब्दिः**) उत्पीडक अर्थात् जलाने आदि के द्वारा उसे पीड़ा देने वाला (**वह्निः**) अग्नि यज्ञ आदि कार्यों के साधनार्थ (**मक्षू**) आसानी से (**न**) नहीं (**उप सीदत्**) काबू में आता है, वह दिन में भी आसानी से कार्य में नहीं लाया जा सकता है, (**ऊधः**) रात्रि में भी (**नग्नः**) विना किसी आच्छादन के खुले हाथ आदि कोई (**अग्निम्**) अग्नि को (**न**) नहीं (**उप सीदत्**) ग्रहण कर सकता है ऐसा दुःसाध्य (**सः**) वह अग्नि (**इध्मम्**) समिधा को (**सनिता**) प्राप्त करने वाला, (**उत**) और (**वाजम्**) अन्न को (**सनिता**) प्राप्त करने वाला और (**धर्त्ता**) धारक (**जज्ञे**) होता है, (**सहसा**) बल से (**यवीयुत्**) संयोग और वियोग का करने वाला होता है।

भावार्थः—जो अग्नि दिन में और रात्रि में भी आसानी से कार्य में

नहीं लगाया जा सकता है और जलने आदि का भय जिससे प्राणीमात्र को बना रहता है, जिसे विना किसी आच्छादन के खुले हाथ कोई नहीं छू सकता, वही विधिवत् प्रयोग में लाया जाकर यज्ञ में समिधा, अन्न आदि को प्राप्त करने वाला पदार्थों का धारक और संयोग विभाग का साधन बन जाता है ॥९॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०॥

पदार्थः—(**नवग्वा**) नवनीत गति वाले अग्नि की लहरें (**ऋतम्**) सृष्टि-नियम को तथा (**ऋतयुक्तिम्**) नियम वा जल के योग को (**वदन्तः**) बताती हुई (**मक्षू**) शीघ्र ही (**कनायाः**) कमनीय पृथिवी के (**सख्यम्**) सख्यभाव को (**अग्मन्**) प्राप्त करती हैं। (**ये**) जो ये (**द्विवर्हसः**) द्यु और पृथिवी लोक में विद्यमान अग्नि की लहरें (**गोपम्**) पालक वायु को (**उप आ अगुः**) प्राप्त कर लेती हैं तो (**अदक्षिणासः**) यज्ञाग्नि न हुई होकर (**अच्युताः**) इधर-उधर च्युत न होती हुई वृष्टि जल आदि को (**दुदुक्षन्**) दुहती हैं।

भावार्थः—नवीन गति वाली अग्नि की लपटें सृष्टि नियम और उसके योग को बताती हुई शीघ्र ही पृथिवी पर आ जाती हैं। वे द्यु और पृथिवी लोक में रहकर वायु को प्राप्त होती है और जल का दोहन करती हैं ॥१०॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥११॥

पदार्थः (**मक्षू**) शीघ्र ही (**कनायाः**) पृथिवी के (**सख्यम्**) सख्य को प्राप्त कर (**नवीयः**) नवीन (**राधः**) धन के समान (**रेतः**) जल के वाष्पभूत बीज को सींचते हुए (**ऋतम्**) जल को (**इत्**) ही (**तुरण्यन्**) प्रेरित करते हैं ये अग्नि प्रकार वा अग्नि की लहरें। तथा इस प्रकार ये (**सबर्दुघायाः**) अमृत का दोहन करने वाली (**उस्रियायाः**) गौ के (**पयः**) दूध के समान (**शुचि**) पवित्र (**रेक्ण**) जल धन को (**ते**) तेरे लिए हे यजमान ! (**आयजन्त**) देते हैं।

भावार्थः—ये अग्नि की लहरें नवीन धन के समान जल की वाष्पभूत बीज को सींचते हुए आकाश से वृष्टि को बरसाते हैं। तथा इस प्रकार ये

तेरे लिए हे यजमान ! पवित्र जल रूप धनको अमृत देने वाली गाय के दूध के समान देते हैं ॥११॥

पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥१२॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**पश्वा**) पशु से (**वियुक्ता**) रहित अपने गोष्ठानों को (**पश्चा**) पश्चात् (**बुधन्त**) जानते हैं तब (**कारवः**) स्तोता (**इति**) ऐसा (**ब्रवीति**) कहता है कि (**वक्तरि**) स्तोता पर (**रराणः**) प्रसन्न (**वसोः**) वासक से (**वसुत्वा**) अति वासक (**अनेहाः**) पवित्र इन्द्र (**विश्वम्**) सम्पूर्ण (**द्रविणम्**) धन को (**क्षु**) शीघ्र ही (**उप विवेष्टि**) प्राप्त कर लेता है।

भावार्थः—जब यज्ञ-कर्त्ता अपने गोष्ठानों को पशु से हीन पाते हैं तब स्तोता ऐसा कहता है कि हे यज्ञकर्त्ताओ ! स्तोता पर प्रसन्न हुआ सबको वास देने वाला परमेश्वर उनके लिए समस्त धनों को धारण करता है। वह उन्हें देगा ॥१२॥

तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**पुरुजातस्य**) इन्द्रियों में नानारूप में प्रकट हुए (**शुष्णस्य**) बलवान् प्राण के (**गुहा**) बुद्धि में (**संग्रथितम्**) एकत्र हुए बल को आत्मा (**विविदत्**) जानता है, जो (**अस्य**) इस प्राण के (**परिषद्वानः**) सेवक दूसरे प्राणगण (**पुरु**) नाना इन्द्रिय स्थानों में (**सदन्तः**) वैठे हुए (**नार्षदम्**) आत्मा के रहने के स्थान देह को (**विभित्सन्**) भेदते हैं अर्थात् इन्द्रियों के छिद्रों को बना लेते हैं वे (**अस्य**) इसके (**तत्**) उस (**इत् नु**) इस बल को (**अग्मन्**) प्राप्त करते हैं और वह आत्मा (**अनर्वा**) इन्द्रिय आदि अश्वों से पृथक् है।

भावार्थः—इन्द्रियों में नाना रूप में प्रकट हुए बलवान् प्राण के बुद्धि में एकत्र बल को आत्मा जानता है। इस प्राण के रक्षक प्राण-गण नाना इन्द्रिय स्थानों में स्थित हो, आत्मा के रहने के स्थान शरीर को भेद कर इन्द्रियों का छिद्र बना लेते हैं और वे आत्मा के परम बल को प्राप्त करते हैं ॥१३॥

भर्गों ह नामोत यस्यं देवाः स्व१र्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४॥

पदार्थ—(**उत**) और (**भर्गः**) भर्ग (**ह**) निश्चय ही (**नाम**) तेज है वह जिसके सम्बन्धी (**त्रिषधस्थे**) तीन स्थानों पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में (**ये**) जो (**देवाः**) दिव्य शक्तियां हैं वे (**स्वः न**) स्वर्ग के समान (**निषेदुः**) स्थित हैं, (**उत ह**) और वह तेज (**अग्निः**) अग्नि नाम वाला है वही (**जातवेदाः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में व्याप्त होने से जातवेदस् नाम वाला है, (**होतः**) हे होता ऋत्विक् (**ऋतस्य**) यज्ञ का (**होता**) होता तू (**अध्रुक्**) द्रोहरहित (**नः**) हमारी (**श्रुधि**) सुन ।

भावार्थः– यह अग्नि भर्ग नाम वाला है जिसके निवास स्थान पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में रहने वाले प्राकृतिक पदार्थ रूप देव स्वर्ग के समान स्थान में रहते हैं । यही अग्नि नाम वाला है और यही जातवेदस् नाम वाला है । हे यज्ञ के होता ! ऋत्विक् तुम बिना किसी द्रोह के हमारे कथन को सुनो ॥१४॥

उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५॥

पदार्थः—(**उत**) अपि च (**त्या**) वे दोनों (**रौद्रौ**) अग्नि के पुत्र (**अर्चिमन्ता**) दीप्ति वाले (**नासत्या**) सत्यभूत अश्विनी=प्राण और अपान (**मे**) मुझे यज्ञाग्नि के (**गूर्तये**) बढ़ाने के लिए (**यजध्यै**) यज्ञ सम्पादन के लिए (**भवेताम्**) होवें, तथा (**मनुष्वत्**) भगवान् के चल रहे संसार यज्ञ की भांति (**वृक्तबर्हिषे**) यज्ञ में स्थित (**रराणा**) आनन्द देते हुए, (**मन्दू**) हर्षदाता होकर, (**हित प्रयसा**) धन की प्रेरणा वाले तथा (**विक्षु**) प्रजाओं में (**यज्यू**) यष्टव्य हों ।

भावार्थः—अग्नि की उक्ति है—ये रुद्ररूपी अग्नि के पुत्र दोनों अश्विनी=प्राण और अपान जो दीप्ति वाले हैं मुझ अग्नि के वृद्धि और यज्ञ के सम्पादन में देवत्वेन सहयोगी होवें । जिस प्रकार वे भगवान् के चलाये संसार यज्ञ में कार्य करते हैं वैसे ही यज्ञ में स्थित, आनन्ददाता, हर्षदाता होकर धन की प्रेरणा वाले और प्रजा में यष्टव्य होवें ॥१५॥

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥१६॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**वेधाः**) सब कार्यों का करने वाला (**राजा**) दीप्तिमान् (**स्तुतः**) प्रशस्त, (**स्वसेतुः**) स्वयं सेतुरूप, (**विप्रः**) विशेषरूप से पूरक सोम=प्राण (**वन्दि**) विद्वानों द्वारा वर्णित किया जाता है, (**सः**) वह (**अपः**) अन्तरिक्ष को भी (**तरति**) तरता है, वह (**कक्षीवन्तम्**) कक्षाओं में विद्यमान मेघ को (**रेजयत्**) कम्पित करता है तथा (**न**) जिस प्रकार (**नेमिम्**) नमे हुए (**रघुद्रु**) लघु गमन वाले (**चक्रम्**) चक्र को (**अर्वतः**) घोड़े ले जाते हैं उसी प्रकार (**अग्निम्**) अग्नि को (**रेजयत्**) कम्पित करता है ।

भावार्थः—सब कार्यों का साधक, आकाश और पृथिवी के बीच में स्वयं सेतु के समान विद्यमान दीप्ति से युक्त, विशेष पूरक वायु अन्तरिक्ष में बहता है और लोगों से वर्णित किया जाता है । वह मेघ को हिलाता है और अग्नि को भी उसी प्रकार कम्पित करता है जिस प्रकार घोड़े लघुगति रथचक्र को ले चलते हैं ॥१६॥

स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**द्विबन्धुः**) दोनों लोकों का बन्धुभूत (**यष्टा**) यष्टव्य (**वैतरणः**) सब देवों के पास हव्य पदार्थों का पहुंचाने वाला अग्नि (**सबर्धुम्**) अमृत को देने वाली (**अस्वम्**) जो अपनी नहीं हुई है उस (**धेनुम्**) वेद की मन्त्रमयी वाणी को (**दुहध्यै**) दुहने के लिए कर देता है अथवा माध्यमिका वाक् को जल दोहन के लिए कर देता है, (**यत्**) जब वह (**ज्येष्ठैः**) श्रेष्ठ (**उक्थैः**) वर्णनीय (**वरूथैः**) गुणों वाले पदार्थों के माध्यम से (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान को तथा (**अर्यमणम्**) सूर्य को (**सम् वृञ्जे**) संपृक्त करता है ।

भावार्थः- दोनों लोकों में रहने वाला सब देवों को यज्ञ भाग पहुंचाने वाला अग्नि वेदवाणी जो अमृतमय ज्ञान को देती है उसे यजमान आदि के लिए यज्ञ उनके द्वारा प्रयोग किये जाने से ज्ञानदोहन वाली कराता है । अथवा माध्यमिका वाणी को जल दोहन योग्य करता है । वह श्रेष्ठ उत्तम गुणों वाले हव्य पदार्थों के और भौतिक शक्तियों के माध्यम से प्राणोदान और सूर्य से सम्पर्क कर वृष्टि कराता है ॥१७॥

तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥१८॥

पदार्थः—(**तद्बन्धुः**) सूर्य का बन्धुभूत (**दिवि**) आकाश में (**सूरिः**) सरणशील (**ते**) इस सूर्य के (**धियंधाः**) कर्म को तीव्र करने वाला (**नाभानेदिष्ठः**) वायु (**वेनन्**) गति करता हुआ (**प्ररपति**) शब्द करता है (**सा**) वह द्युलोक (**नो**) नाभानेदिष्ठ=वायु की (**परमम**) उत्कृष्ट (**नाभिः**) नाभि है और सूर्य का अधिष्ठान है । (**वा**) अथवा (**घ**) निश्चय (**अहम्**) वायु (**तत्पश्चा**) सूर्य के पीछे (**कतिथः चित्**) कतिपय कार्यों का पूरक (**आस**) होता है ।

भावार्थः—सूर्य का बन्धु द्यु लोक में सरणशील, सूर्य के कार्य को तीव्र करने वाला नाभानेदिष्ठ=वायु गति करता हुआ शब्द करता है। वह द्यु लोक नाभानेदिष्ठ की नाभि है और सूर्य का अधिष्ठान है। यह नाभानेदिष्ठ सूर्य के पश्चात् कतिपय कार्यों का पूरक है ॥१८॥

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥१९॥

पदार्थः—(**इयम**) यह द्यु अथवा माध्यमिका वाक् (**मे**) नाभानेदिष्ठ=वायु की (**नाभिः**) नाभि है, (**इह**) इस नभोमण्डल में (**मे**) नाभानेदिष्ठ=वायु का (**सधस्थम्**) स्थान है,(**देवाः**) ये सूर्य की किरणें (**मे**) इसकी अपनी बनी हुई हैं, (**द्विजाः**) आंगिरस गण अथवा मरुद्गण (**ऋतस्य**) सृष्टि नियम के (**अह**) इसलिए (**प्रथमजाः**) प्रथमजा हैं, (**धेनुः**) माध्यमिका वाक् (**जायमाना**) उत्पन्न होती हुई (**इदम्**) इस अन्तरिक्ष का (**अदुहत्**) दोहन करती है ।

भावार्थः—यह द्यु अथवा माध्यमिका वाक् नाभानेदिष्ट=वायु की नाभि है। इस नभोमण्डल में इसका स्थान है। ये सूर्यकिरणें उसकी अपनी बनी हुई है। अंगिरस गण=अग्नि की लहरें अथवा मरुद्गण सृष्टि के प्रथमजा हैं। माध्यमिका वाक् उत्पन्न होती हुई इस अन्तरिक्ष का दोहन करती है ॥१९॥

अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२०॥

पदार्थः—(**अध**) अब (**आसु**) इन चारों दिशाओं में (**मन्द्रः**) मोदमान, (**अरति**) गतिशील (**विभावा**) दीप्तिमान् (**द्विवर्तनिः**) दोनों लोकों आकाश और पृथिवी में रहने वाला (**वनेषाट्**) जलों का अभिभव करने वाला अग्नि भी (**अवस्यति**) अवसान को प्राप्त करता है, (**यत्**) जो अग्नि (**ऊर्ध्वाः**) उन्मुख (**शिशुः**) शंसनीय (**श्रेणिः न**) सेना के समान (**मक्षू**) शीघ्र (**दन्**) शत्रु आदि का नाश कर देता है उस इस (**स्थिरम्**) स्थिर (**शेवृधम्**) सुख के वर्धक अग्नि को (**माता**) आकाश मण्डल (**सूत**) उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—चारों दिशाओं में गतिशील, दीप्तिमान और मुदित आकाश और पृथिवी में रहने वाला, जलों और काष्ठ आदि को अभिभूत करने वाला यह अग्नि अवसान को भी प्राप्त होता है। जो यह अग्नि उन्मुख शंसनीय सेना के समान शत्रुओं का हन्ता है उसे आकाश-मण्डल उत्पन्न करता है ॥२०॥

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥

पदार्थः—(**अध**) अब (**कस्य चित्**) किसी (**श्वान्तस्य**) श्रान्त महान् आत्मा की ही (**गावः**) वाणियां (**कनायाः**) स्तुति के (**उपमातिम्**) योग्य परमेश्वर के (**अनु**) प्रति (**पर ईयुः**) जाती हैं, (**सुद्रविणः**) हे उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारी (**श्रुधि**) सुन, (**त्वम्**) तू (**याट्**) हमें दे, तू (**आश्वघ्नस्य**) इन्द्रियरूपी अश्वों के जीतने वाले की ही (**सूनृताभिः**) उत्तम स्तुतियों से (**वावृधे**) बढ़ाता है ।

भावार्थः—किसी श्रम-श्रान्त आत्मा की ही वाणियां स्तुतियोग्य प्रभु को प्राप्त होती हैं। हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू हमारी सुन, हमें ज्ञान आदि दे। और तू इन्द्रियों को जीतने वाले की ही स्तुतियों से प्रसन्न होता है ॥२१॥

अध त्वमिन्द्र विद्ध्य१स्मान्महो नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥२२॥

पदार्थः—(**अध**) हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**त्वम्**) तू (**अस्मान्**) हमें (**विद्धि**) जानता है, (**हे नृपते**) समस्त मनुष्यों के स्वामी परमेश्वर ! तू (**वज्रबाहुः**) वज्रबाहु है, (**महः**) महान् (**राये**) ऐश्वर्य के लिए (**अस्मान्**

मघोनः) हम यज्ञ करने वालों की (**रक्ष**) रक्षा कर (**नः**) हम (**सूरीन्**) स्तावकों की (**पाहि**) रक्षा कर, (**हरिवः**) हे दुःखों के हरने वाले प्रभो ! (**ते**) तुम्हारी (**अभिष्टौ**) उपासना में हम (**अनेहसः**) अपराध से रहित हो।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् ! तू हमें जानता है। हे सबके स्वामिन् ! तू शक्तिशाली है। महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हम यज्ञ करने हारों की रक्षा कर। हम स्तावकों की रक्षा कर। हे दुःखों के हरने वाले ! हम तुम्हारी उपासना और तुम्हारे शासन में अपराध से रहित हों ॥२२॥

अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठ स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३॥

पदार्थः— (**अध**) अब (**राजाना**) हे ज्ञान और कर्म से प्रकाशमान जनो ! (**यत्**) जिस लिए (**गविष्टौ**) किरणों के अन्वेषण में (**सरण्युः**) सरणशील सूर्य (**सरत्**) जाता है उसी प्रकार (**कारवे**) स्तुति करने वाले के लिए (**जरण्युः**) स्तावक वा वेदज्ञ जाता है, (**सः**) वह उसी कारण से (**विप्रः**) मेधावी (**प्रेष्ठः**) प्रियतम (**एषाम्**) इन स्तावकों का (**बभूव**) हो जाता है उनके कर्त्तव्यों को (**परा वक्षत्**) बताता है (**च**) और (**एनान्**) इनको (**पर्षत् उत**) पार भी लगाता है।

भावार्थः—हे ज्ञान और कर्म से प्रकाशमान लोगो ! जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणें, जो मेघ में खोई हुई हैं, उन्हें प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार वेदज्ञ विद्वान् स्तुति और यज्ञ आदि करने वालों को प्राप्त कर लेता है और मेधावी प्रियतम बनकर उनके कर्त्तव्यों को बताता है और उनको पार भी लगाता है ॥२३॥

अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४॥

पदार्थ— (**अध**) अब (**नु**) शीघ्र ही (**अस्य**) इस (**जेन्यस्य**) जयशील अथवा गतिशील वरुण=जल तत्व के (**पुष्टौ**) पुष्टि में हम (**रेभन्तः**) प्रशंसापरक अथवा उसके गुणों को बताने वाले मन्त्रों को बोलते हुए (**वृथा**) विना प्रयत्न के आसानी से (**तत्**) उस सब (**ऊ**) को (**नु**) शीघ्र (**ईमहे**) भगवान् से मांगते हैं (**अस्य**) इस वरुण=जल तत्त्व का (**सूनुः**) उत्पन्न पुत्र अथवा उत्पादक

(**सरण्युः**) गतिशील (**अश्वः**) विद्युत् (**विप्रः**) कार्यों का पूरक (**असि**) होता है (**च**) और (**श्रवसः**) अन्न के (**सातौ**) लाभ के लिए प्रवृत्त (**च**) भी होता है।

भावार्थः - इस गतिशील जल तत्त्व की पुष्टि के लिए हम याज्ञिक उसके गुणों को बताने वाले वेदमन्त्रों को बोलते हुए आसानी से उन सब वस्तुओं को भगवान् से मांगते हैं जो उसकी पोषक हैं। इस जल की उत्पन्न अथवा उत्पादक (सरण्यु) गतिशील विद्युत् कार्यों की पूरक बनती है और वर्षा द्वारा अन्न के देने में प्रवृत्त होती है ॥२४॥

युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५॥

पदार्थ - हे सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी उपदेशक और अध्यापक ! (**यस्मिन्**) जिस प्रभु में (**समीचीः**) उत्तम (**गिरः**) स्तुतियां प्राप्त होती हैं वह (**यदि**) यदि (**युवोः**) आप दोनों के (**सख्याय**) मित्र भाव को बढ़ाने और (**अस्मे**) हमारी (**शर्धाय**) बल वृद्धि के लिए (**नमस्वान्**) नमस्कार युक्त होकर (**स्तोमम्**) स्तुतिसमूह को (**जुजुषे**) स्वीकार करता है तो वह (**विश्वत्र**) सर्वत्र (**पूर्वी**) पूर्व से प्रसिद्ध (**गातुः**) उद्देश्य पूर्त्ति में जाने वाली सरणि के (**इव**) समान (**सूनृतायै**) सनातन उत्तम वाणी के प्राप्त करने के लिए (**दाशत्**) ज्ञान एवं साधन देता है।

भावार्थः—हे सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी अध्यापक और उपदेशक ! जिस प्रभु में हमारी उत्तम स्तुतियाँ स्थान पाती हैं वह यदि आप के सख्य और हमारे बल वृद्धि के लिए हमारे नमस्कारों से युक्त हुआ हमारे स्तुतिसमूह को स्वीकार करता है तो वह सर्वत्र उद्देश्य की पूर्त्ति में जाने वाले पूर्व से प्रसिद्ध मार्ग की भाँति हमें सनातन वेदवाणी के लिए ज्ञान और साधन प्रदान करता है ॥२५॥

स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६॥

पदार्थ (**अद्भिः**) जलों से (**देववान्**) देववाला हुआ (**सुबन्धुः**) उत्तम बन्धन युक्त (**सः**) वह वरुण अर्थात् जलीय तत्त्व है (**इति**) ऐसा (**नमसा**) हवि आदि अन्नों और (**सूक्तैः**) उत्तम सूक्तों से (**गृणानः**) वर्णित किया गया

वह (**वर्धत**) वृद्धि को प्राप्त होता है, वह (**उक्थैः**) अग्नि और प्राणों तथा (**वचोभिः**) माध्यमिक गर्जनों से (**नूनम्**) निश्चय (**हि**) ही (**आ वर्धत**) वृद्धि को प्राप्त होता है (**उस्रियायाः**) प्रकाशमान अन्तरिक्ष का (**पयसः**) जल (**अध्वा**) मार्गों से (**वि एति**) क्षरित होता है ।

भावार्थः—जलों से देवत्व शक्ति प्राप्त और उत्तम बन्धन वाला यह जलीय तत्त्व (वरुण) अन्न आदि हवियों और उत्तम सूक्तों द्वारा यज्ञ में वर्णित और स्तुत होता है और इससे यह वृद्धि को प्राप्त करता है। वह अग्नि और प्राणों एवम् गर्जना से निश्चय ही अधिक वृद्धि को पाता है और प्रकाशमान अन्तरिक्ष से जल विविध मार्गों से क्षरित होता है ॥२६॥

त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥२७॥

पदार्थ—हे (**यजत्राः**) यज्ञशील (**देवासः**) विद्वज्जन ! (**ते**) वे आप लोग (**नः**) हमारे (**महः**) महती (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**सजोषाः**) प्रीतियुक्त (**सु भूत उ**) हूजिये, (**ये**) जो (**वियन्तः**) प्राप्त करते हुए हमें (**वाजान्**) ज्ञान और धन को (**अनयत**) प्राप्त कराते हो और (**ये**) जो (**अमूराः**) उत्तम मति वाले (**निचेतारः**) निश्चय करने में निपुण (**स्थ**) होते हैं ।

भावार्थः—हे यज्ञशील विद्वज्जन ! आप में जो उत्तम बुद्धि वाले और निश्चय करने में कुशल हैं और हमें ज्ञानों और धन को प्राप्त करने में यत्नशील रहते हैं वे सब हमारी महती रक्षा के लिए प्रीतियुक्त होवें ॥२७॥

यह दशम मण्डल का इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६२

ऋषिः—१—११ नाभानेदिष्ठो मानवः ॥ देवता—१—६ विश्वेदेवा
अंगिरसो वा । ७ विश्वेदेवाः । ८–११ सावर्णेर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—
१, २ विराड्जगती । ३ पादनिचृज्जगती । ४ निचृज्जगती ।
५ अनुष्टुप् । ८, ९ निचृदनुष्टुप् । ६ बृहती । ७
विराट्पङ्क्तिः । १० गायत्री । ११ भुरिक्त्रि-
ष्टुप् ॥ स्वरः—१—४ निषादः । ५,
८, ९ गान्धारः । ६ मध्यमः । ७
पञ्चमः । १० षड्जः । ११
धैवतः ॥

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**यज्ञेन**) यज्ञ से (**दक्षिणया**) विद्वानों की देय दक्षिणा अथवा दक्षता से (**समक्ताः**) संगत हुए (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के (**सख्यम्**) मित्र भाव और (**अमृतत्वम्**) अमृतत्त्व को (**आनश**) प्राप्त कर लेते हैं, (**अंगिरसः**) हे ज्ञानवान् तेजस्वी तपस्वी पुरुषो (**तेभ्यः**) उनके लिये (**वः**) आप लागों का (**भद्रम्**) सुखकारी कल्याण (**अस्तु**) हो, हे (**सुमेधसः**) उत्तम बुद्धि वाले जनो ! आप लोग (**मानवम्**) मानव को (**प्रति गृभ्णीत**) स्वीकार करो ।

भावार्थः—जो यज्ञ, दक्षता से संगत हुए परमैश्वर्यशाली प्रभु के मित्रत्व और अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं उन आप के लिए हे तपस्वी ज्ञानीजनो ! कल्याण प्राप्त हो। हे उत्तम बुद्धिवालो ! आप लोग उत्तम मानव को स्वीकार करो । अपने मध्य स्वीकार करो ॥१॥

य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमाङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥

पदार्थः (**ये**) जो (**पितरः**) पितृरूप ज्ञानी तपस्वी जन (**गोमयम्**) गाय आदि से युक्त (**वसु**) धन को (**उदाजन्**) प्राप्त करते हैं, (**परिवत्सरे**) हर समय (**ऋतेन**) ज्ञान से (**बलम्**) अज्ञानान्धकार को (**अभिन्दन्**) भेदन करते हैं,

(**अंगिरसः**) हे तपस्वी विद्वज्जन ! (**वः**) आप लोगों को (**दीर्घायुत्वम्**) दीर्घायुष्य (**अस्तु**) मिले, (**सुमेधसः**) हे उत्तम बुद्धि वालो ! (**मानवम्**) उत्तम मानव को अपने मध्य (**प्रतिगृभ्णीत**) स्वीकार करो ।

भावार्थः—जो पितृरूप हैं और जो गाय आदि पशुओं से युक्त धन को प्राप्त करते हैं तथा जो सदा ज्ञान से अज्ञानान्धकार को भेदन करते हैं उन आप लोगों को हे तपस्वी विद्वज्जन ! दीर्घायुष्य प्राप्त हो। हे उत्तम बुद्धिवालो ! आप लोग उत्तम मानव को अपने मध्य स्वीकार करो ।।२।।

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३॥

पदार्थः—(**ये**) जिन (**अंगिरसः**) आग्नेय शक्तियों ने (**ऋतेन**) सृष्टि नियमानुसार (**विवि**) आकाश में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आ अरोहयन्**) स्थापित किया है, (**मातरम्**) सब भूतों की माता (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**वि अप्रथयन्**) विस्तृत किया है (**वः**) उनकी (**सुप्रजास्त्वम्**) उत्तम उत्पादकता (**अस्तु**) बनी रहै, (**सुमेधसः**) उत्तम पवित्रता वाले ये (**मानवम्**) यज्ञ सम्बन्धी हवि आदि को (**प्रति गृभ्णीत**) ग्रहण करते हैं ।

भावार्थः—ये अङ्गिरस=अग्नि की शक्तियां अथवा आग्नेय आगार द्युलोक में सूर्य को सृष्टि नियमानुसार स्थापित करते हैं और ये सब भूतों की माता पृथिवी को फैलाते हैं । इनकी यह उत्पादन शक्ति सदा बनी रहे। ये यज्ञीय हवि को भी ग्रहण करते हैं ।।३।।

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥

पदार्थः—(**देवपुत्राः**) भगवान् के पुत्र (**ऋषयः**) हे वेदज्ञान के द्रष्टा लोगो ! (**अयम्**) यह (**नाभा=नाभानेदिष्ठः**) ध्यानी-विद्वान् (वः) आप के (**गृहे**) यज्ञभूत गृह में (**वल्गु**) कल्याणकारी वाणी को (**ववति**) कहता है, (**तत्**) उसे (**शृणोतन**) आप लोग सुने, (**अंगिरसः**) हे तपस्वी तेजस्वी लोगो ! (**वः**) आप को (**सुब्रह्मण्यम्**) उत्तम वेदज्ञान (**अस्तु**) प्राप्त हो, (**सुमेधसः**) हे उत्तम बुद्धि वालो ! (**मानवम्**) मानव को अपने अन्दर (प्रति गृभ्णीत) स्वीकार करो ।

भावार्थः—हे भगवान् के पुत्र, वेदमन्त्रद्रष्टा लोगो ! आप की यज्ञशाला में मैं यह ध्यानी कल्याणकारक वाणी को कहता हूं आप सुनें । हे तेजस्वी तपस्वी जनो ! आप को उत्तम वेदज्ञान प्राप्त हो, हे उत्तम बुद्धि वालो ! अपने अन्दर उत्तम मनुष्य को स्वीकार करो ।।४।।

विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः ।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥५॥

पदार्थः—(**विरूपासः**) विविध रूपों वाले, (**ऋषयः इत**) दृष्टि के हेतुभूत अर्थात् दर्शन के कारण, (**गम्भीरवेपसः**) सृष्टि में गम्भीर कर्मों को करने वाले (**ते**) वे (**सूनवः**) शक्तियों के उत्पादक (**अंगिरसः**) अग्नि की लहरें हैं (ते) वे (**अग्नेः**) अग्नि से (**परि जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थः—नाना रूपों वाली सबके दर्शन की कारणभूत, सृष्टि में गम्भीर कर्मों को करने वाली, शक्ति की उत्पादक ये अग्नि की लहरें ही अङ्गिरा हैं और ये अग्नि से उत्पन्न होती है ।।५।।

ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥६॥

पदार्थः—(**विरूपासः**) नाना रूपों वाले (**ये**) जो (**दिवस्परि**) द्युलोक में (**अग्नेः**) अग्नि से (**परिजज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं उनमें से (**नवग्वः**) नवनीत गतिवाला और (**दशग्वः**) दश दिशाओं में गतिवाला (**अंगिरस्तमः**) अंगिरस्तम है और (**सचा**) साथी बनकर (**देवेषु**) देवों को शक्ति (**मंहतेः**) देता है ।

भावार्थः—नानारूप वाली अग्नि की लहरें जो द्युलोक में अग्नि से उत्पन्न होती हैं उनमें नवग्व और दशग्व नाम वाली अंगिरस्तम अर्थात् अंगारतम हैं और ये समस्त किरणों आदि में साथ रहकर उन्हें शक्ति प्रदान करती हैं ।।६।।

इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥७॥

पदार्थः—(**वाघतः**) हवि को ग्रहण करने वाले विश्वे देव समस्त दिव्य शक्तियें (**इन्द्रेण**) वायु के (**युजा**) साहाय्य से (**गोमन्तम्**) किरणों से युक्त,

(**अश्विनम्**) प्राणों से युक्त (**व्रजम्**) समूह को (**निः सृजन्त**) उत्पन्न करते हैं (**ददतः**) दने वाले मुझ यजमान के (**अष्टकर्ण्यः**) आठो दिशाओं में जाने वाले (**सहस्रम्**) बहुत से (**श्रवः**) धन को (**देवेषु**) देवों में (**अकृत**) करते हैं।

भावार्थः - ये हवि को ग्रहण करने वाले विश्वेदेव लोग वायु के साहाय्य से प्राणों और किरणों के समूह को उत्पन्न करते हैं और मुझ यजमान के दिये गये हव्य आदि धनको, जो प्रचुर मात्रा में होता है और अष्ट दिशाओं में फैलने वाला होता है, देवों को पहुँचा देते हैं ॥७॥

प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥८॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**सहस्रम्**) सहस्रों (**शताश्वम्**) सैंकड़ों पशुओं से युक्त धन (**दानाय**) दान के लिए (**सद्यः**) शीघ्र (**मंहते**) देता है (**अयम्**) यह (**मनुः**) मनुष्य (**नूनम्**) निश्चय ही (**तोक्मम्**) जल से भीगे बीज के समान (**प्रजायताम्**) उत्पन्न हो और (**प्र रोहतु**) बढ़े, फले-फूले ।

भावार्थः—जो सहस्रों और सैकड़ों पशु आदि से युक्त धनों को दानार्थ देता है वह मनुष्य जल से सिक्त बीज के समान उगे, बढ़े और फले फूले ॥८॥

न तमश्नोति कश्चन दिवइव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥९॥

पदार्थः—(**दिवः**) द्युलोक के (**सानुम्**) उच्चस्थान सूर्य के (**इव**)समान (**कः'चन**) कोई भी (**आरभम्**) कर्म करके (**न**) नहीं (**अश्नोति**) प्राप्त कर सकता (**सावर्ण्यस्य**) वर्णाश्रमी मनुष्य की (**दक्षिणा**) दानशक्ति (**सिन्धुः**) सिन्धु के (**इव**) समान (**वि पप्रथे**) फैलती है ।

भावार्थः - जिस प्रकार सूर्य को कोई लांघ नहीं सकता है उसी प्रकार कोई भी प्रारम्भिक कर्ममात्र करके उस दानी को नहीं लांघ सकता है। वर्णाश्रमी मनुष्य की दानशक्ति समुद्र के समान फैलती है ॥९॥

उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा । यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥१०॥

पदार्थः—(**उत**) और (**स्मद्दिष्टी**) उत्तम कार्यों में आदिष्ट (**गो परीणसा**) गाय आदि पशुओं वाले (**यदुः**) यत्नवान् मनुष्य (**च**) और (**तुर्वः**) त्वरित

काम करने वाला मनुष्य (**दासा**) दास के समान सेवा करने (**परिविषे**) इसको भोजन परोसने में (**मामहे**) महत्व समझते हैं ।

भावार्थः - उत्तम कार्यों में नियुक्त, गाय आदि पशुओं से परिवृत यत्नवान् और त्वरित शत्रुओं का नाश करने वाले मनुष्य इसकी सेवा करने और इसे भोजन परसने में महत्व समझते हैं ॥१०॥

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥

पदार्थः - **सहस्रदाः**) सहस्रों का देने वाला, (**ग्रामणीः**) ग्राम का नेता (**सूर्येण**) सूर्य के तुल्य तेजस्वी हुआ (**मा रिषत्**) कभी पीड़ित न हो और न किसी को पीड़ित करे, (**सावर्णेः**) वर्णधर्मी राजा वा मनुष्य की (**दक्षिणा**) दानशक्ति (**यतमाना**) यत्न और उद्योग को बढ़ाती हुई (**एतु**) प्राप्त हो, (**देवाः**) ज्ञानी जन (**आयुः**) आयु को (**प्रतिरन्तु**), दें, (**यस्मिन्**) जिसमें हम (**अश्रान्ताः**) न थकते हुए (**वाजम्**) अन्न और धन को (**असनाम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः - सहस्रों का दाता ग्राम का नेता सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर न स्वयम् पीड़ित हो और न किसी को पीड़ित करे। वर्णधर्मी राजा वा मनुष्य की दानशक्ति उद्योग को बढ़ाती हुई हमें प्राप्त हो। विद्वान् लोग उसे आयु देने और उसके अन्तर्गत विना थके हुए हम अन्न आदि को प्राप्त करें ॥११॥

यह दशम मण्डल में बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६३

**ऋषिः—१—१७ गयः प्लातः ॥ देवताः—१—१४, १७ विश्वेदेवाः ।
१५, १६ पथ्यास्वस्तिः ॥ छन्दः—१, ६, ८, ११—१३ विराड्-
जगती । २, ३, १०, १४ पादनिचृज्जगती । ४, ५, ७ निचृ-
ज्जगती । ९ आर्चीस्वराड्जगती । १५ जगती त्रिष्टुब्
वा । १६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १७ पादनिचृ-
त्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-१४ निषादः ।
१५ निषादो धैवतो वा । १६, १७
धैवतः ॥**

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१॥

पदार्थः— (**ये**) जो (**मनुप्रीतासः**) मनुष्यमात्र से प्रेम रखने वाले (**परावतः**) दूर देश से आये हुए विद्वान् (**आप्यम्**) बन्धुत्वभाव को (**दिधिषन्ते**)धारण करते हैं और (**ये**) जो (**विवस्वतः**) यजमान मनुष्य के (**जनिमा**) जन्मों की (**दिधिषन्ते**) प्रशंसा करते हैं, और जो (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नहुष्यस्य**) नियमों में बन्धे हुए (**ययातेः**) ज्ञानी मनुष्य के (**र्बाहिषि**) यज्ञ में (**आसते**) विराजते हैं (**ते**) वे (**नः**) हम सब लोगों को (**अधिब्रुवन्तु**) उपदेश करें ।

भावार्थः— जो मनुष्यमात्र से प्रेमभाव रखने वाले,दूर स्थान से आये हुए विद्वान् यजमान के साथ बन्धुत्व को धारण करते हैं और जो उसके जन्म की प्रशंसा करते हैं तथा नियमों में बन्धे ज्ञानी पुरुष के यज्ञ में आते हैं वे हम सबको उपदेश दें ।।१।।

विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२॥

पदार्थः— (**देवाः**) इन यज्ञ के इन्द्र आदि जो देव हैं (**वः**) उनके(**विश्वा**) समस्त (**हि**) ही (**नामानि**) तेज और प्रभाव (**नमस्यानि**) स्तुत्य और (**वन्द्या**) वन्दनीय हैं (**उत**) और (**वः**) उनके ये तेज (**यज्ञियानि**) यज्ञार्ह हैं, (**ये**) जो ये देव (**अदितेः**) प्रकृति से (**जाताः**) उत्पन्न (**स्थ**) हैं, अथवा जो (**अदृभ्यः परि**) अन्तरिक्ष से, (**ये**) जो (**पृथिव्याः**) पृथिवी से उत्पन्न हुए (**ते**) वे (**इह**) इस यज्ञ में (**मे**) मेरे (**हवम्**) आह्वान को (**श्रुत**) सब तक पहुँचावें ।

भावार्थ यज्ञ के देव इन्द्र आदि जितने भी हैं उनका तेज और प्रभाव प्रशंसनीय और वन्दनीय है । उनके तेज यज्ञार्ह हैं । इनमें जो प्रकृति से सीधे उत्पन्न हुए हैं, अथवा जो अन्तरिक्ष और पृथिवी से उत्पन्न हैं वे इस यज्ञ में मेरे आह्वान को सब तक पहुंचाने के साधन बनें ।।२।।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥३॥

पदार्थः—(**येभ्यो**) जिन विद्वानों के लिए (**माता**) पृथिवी (**मधुमत**) माधुर्ययुक्त (**पीयूषम**) अमृतमय (**पयः**) दुग्ध आदि पदार्थों का देती है, (**अदितिः**) अखण्डनीय (**अद्रि बर्हाः**) मेघों से बढ़ा हुआ (**द्यौः**) अन्तरिक्ष लोक जल देता है, (**उक्थशुष्मान्**) अत्यन्त बलवाले, **वृषभरान्** वर्षा कराने वाले(**स्वप्नसस्तान्**) उत्तम कर्मों वाले (**आदित्यान्**) आदित्यों को (**स्वस्तये** कल्याण के लिए (**अनुमद**) प्राप्त करावें ।

भावार्थः - जिन विद्वानों के लिए पृथिवी माधुर्यायुक्त अमृतमय दुग्ध आदि प्राप्त कराती है और अखण्डनीय मेघों से युक्त अन्तरिक्ष जल देता है वे हमें अत्यन्त बल वाले, वर्षा कराने वाले और उत्तम कर्मों वाले १२ आदित्यों को कल्याणार्थ प्राप्त करावें अर्थात् उनका ज्ञान देवें ।।३।।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥

पदार्थः जो (**नृचक्षसः**) मनुष्यों के द्रष्टा, (**अनिमिषन्तः**) आलस्य-रहित (**अर्हणा** पूज्य (**बृहद्देवासः**) महान् विद्वान् लोग हैं जो (**अमृतत्वम्**) अमर पद मोक्ष को जीवन में ही (**आनशुः**) प्राप्त कर चुके हैं,जो (**ज्योतीरथाः**) प्रकाशमय रथों से युक्त है (**अहिमाया**) जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता है, ऐसे (**अनागसः**) पापरहित (**दिवः**) अन्तरिक्ष के (**वर्ष्माणम्**) ऊंचे स्थान को (**वसते**) ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं वे विद्वान् हमारे (**स्वस्तये**) कल्याण के लिये हों ।

भावार्थः—जो मनुष्यों के द्रष्टा हैं, आलस्यरहित, पूज्य, महान् विद्वान् लोग हैं, जो अमर पद मोक्ष को जीवन में ही प्राप्त कर चुके हैं, सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं, जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता ऐसे पापरहित और अन्तरिक्ष के ऊंचे स्थान को ज्ञानादि से व्याप्त करने वाले विद्वान् हमारे कल्याण के लिये हों ।।४।।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥५॥

पदार्थः (**ये**) जो (**सम्राजः**) अपने ज्ञानगुणों से प्रकाशमान (**सुवृधः**) अपने ज्ञान कर्म से सबको बढ़ाने वाले (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**आययुः**) प्राप्त होते हैं, जो (**अपरिह्वृता**) अकुटिलाचारी (**दिवि**) ज्ञानप्रकाश में (**क्षयम्**) निवास को

(**बधिरे**) धारण करते हैं (**महः**) महान् (**तान्**) उन (**आदित्यान्**) आदित्य संज्ञक विद्वानों की (**अदितिम्**) विदुषी स्त्री की (**नमसा**) हव्यान्न के साथ (**सुवृक्तिभिः**) उत्तम स्तुतियों से (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**आ विवास**) परिचर्या कर ।

भावार्थः यजमान को चाहिये कि गुणों से प्रकाशमान, सबकी वृद्धि चाहने वाले जो विद्वान् यज्ञ में आते हैं उनकी और कुटिल कर्मों से रहित ज्ञान-प्रकाश में रहने वाले महान् विद्वानों और विदुषी स्त्री की हव्यान्न और उत्तम स्तुतियों से अपने कल्याणार्थ सेवा करें ।।५।।

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।।६।।

पदार्थः—(**विश्वे देवासः**) हे समस्त विद्वानो ! (**वः**) आप में (**कः**) कौन (**स्तोमम्**) स्तुति समूह की (**राधति**) सिद्धि करता है (**यम्**) जिसे आप लोग (**जुजोषथ**) सेवन करते हैं, हे (**तुविजाताः**) बहुसंख्या में विद्यमान (**मनुषः**) मनुष्यो तुम (**यति स्थन**) जितने भी हो (**वः**) उनमें (**कः**) कौन (**अध्वरम्**) यज्ञ को (**अरम्**) अलंकृत (**करद्**) करता है, (**यः**) जो (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**नः**) हमारे (**अंहः**) पाप को (**अति पर्षद्**) दूर करता है ।

भावार्थः—हे समस्त विद्वानो ! आप में कौन है जो उस स्तुति समूह की सिद्धि करता है जिसको आप लोग प्रयोग में लाते हो । हे बहुसंख्या वाले मनुष्य आप जितने भी हो, उनमें कौन है जो यज्ञ को अलंकृत करता है और कल्याणार्थ हमारे दोष को दूर करता है ।।६।।

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ।।७।।

पदार्थः—(**समिद्धाग्निः**) अग्नि को प्रज्वलित करने वाला (**मनुः**) मननशील मनुष्य (**मनसा**) मन से (**सप्त होतृभिः**) सप्त होताओं द्वारा दो आंख, दो कान, दो नाक और मुख (**येभ्यः**) जिनके पास से (**प्रथमाम्**) प्रथम (**होत्राम्**) यज्ञ विद्या को (**आयेजे**) ग्रहण करता है (**ते**) वे (**आदित्याः**) आदित्य संज्ञक विद्वान् (**नः**) हमें (**शर्म**) सुख (**यच्छत**) दें और (**अभयम्**) निर्भयता दें, (**स्वस्तये**) हमारे कल्याण के लिए (**सुपथा**) उत्तम मार्गों को (**सुगा**) सरलता से चलने योग्य (**कर्त**) करें ।

भावार्थः—अग्नि को यज्ञार्थ प्रज्वलित करने वाले मननशील मनुष्य ने जिन विद्वानों के पास से मन और सप्त होताओं से युक्त हो यज्ञविद्या का प्रथम ग्रहण किया है वे आदित्यसंज्ञक विद्वान् हमें निर्भयता और सुख दें । हमारे कल्याणार्थ मार्ग को सुगम करें ।।७।।

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ।।८।।

पदार्थः—(**ये**) जो (**प्रचेतसः**) उत्कृष्ट ज्ञान और हृदय वाले (**मन्तवः**) मननशील (**विश्वस्य**) समस्त (**स्थातुः**) स्थावर (**च**) और (**जगतः**) जंगम (**भुवनस्य**) लोक के (**ईशिरे**) शासक होते हैं (**ते**) वे (**देवासः**) विद्वान् (**नः**) हमें (**कृताद्**) जिसे हम कर रहे हैं अथवा जिनको करने की इच्छा करते हैं वा करेंगे उनसे तथा (**अकृताद्**) न किये गए (**एनसः**) पाप से (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**अद्य**) आज (**परि पिपृत**) सब ओर से रक्षा करें ।

भावार्थः—जो प्रकृष्ट ज्ञान और हृदय वाले मननशील विद्वान् समस्त स्थावर जंगम विश्व का शासन करते हैं वे हमें हम जिन पापों को वर्तमान में कर रहे हैं अथवा जिनके करने की इच्छा करते हैं और जिसको नहीं किया है, उस पाप से आज ही हमारे कल्याण के लिए हमें बचावें ।।८।।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽंहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ।।९।।

पदार्थः—हम (**भरेषु**) संग्रामों में (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**सुहवम्**) उत्तम नाम वाले (**अंहोमुचम्**) बुराइयों को छुड़ाने वाले (**सुकृतम्**) उत्तम कर्मा (**दैव्यम्**) दैवी शक्तियों से युक्त (**जनम्**) जन (**इन्द्रम्**) राजा को और (**सातये**) ज्ञान आदि लाभ के लिए(**अग्निम्**) अग्नि, (**मित्रम्**) प्राण, (**वरुणम्**) अपान (**भगम्**) भग, (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी तथा (**मरुतः**) ४९ मरुतों की (**हवामहे**) आहुति प्रदान कर ग्रहण करते हैं ।

भावार्थः—हम संग्रामों में अपने कल्याणार्थ बुराइयों को छुड़ाने वाले, सुकृत कर्मकारी, दिव्यशक्तियों से पूर्ण जन राजा को पुकारते हैं और ज्ञान आदि के लाभ के लिए अग्नि, प्राण, अपान, भग, द्यु, पृथिवी तथा ४९ मरुतों को आहुति प्रदान कर ग्रहण करते हैं ।।९।।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१०॥

पदार्थः— (**सुत्रामाणम**) अच्छे प्रकार रक्षा के साधनों से युक्त, (**पृथिवीम्**) लम्बी चौड़ी, (**अनेहसम**) उपद्रवरहित, (**सुशर्माणम**) उत्तम सुख देने वाली, (**सुप्रणीतिम्**) अच्छी प्रकार निर्मित, (**द्याम्**) प्रकाशयुक्त (**स्वरित्राम**) अच्छे यन्त्रों वाली, (**अनागसम्**) दोषरहित, (**अदितिम्**) दृढ (**अस्रवन्तीम**) न टपकने वाली (**दैवीम्**) विद्युत्सम्बन्धी (**नावम**) नौका = विमान पर (**स्वस्तये**) अपने कल्याण के लिए (**आरुहेम**) हम चढ़ें ।

भावार्थः हम अपने कल्याण के लिए अच्छे रक्षा के साधनों से युक्त, लम्बे, चौड़े, उपद्रवरहित, सुखद, उत्तम प्रकार से निर्मित, प्रकाशयुक्त, अच्छे यन्त्रों से युक्त, दोषरहित, उपद्रवरहित, दृढ़, न टपकने वाले विद्युत्सम्बन्धी विमान पर चढ़ें ॥१०॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११॥

पदार्थः— (**विश्वे**) हे समस्त (**यजत्राः**) पूजनीय (**देवाः**) विद्वानो ! (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**अधिवोचत**) उपदेश कीजिए, (**नः**) हमें (**अभिह्रुतः**) पीड़ा देने वाली (**दुरेवायाः**) दुर्गति से (**त्रायध्वम्**) त्राण देवें (**अवसे**) रक्षार्थ और (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**सत्यया**) सत्य (**देवहूत्या**) वाणी द्वारा (**शृण्वतः**) सुनने वाले (**वः**) आप लोगों को (**हुवेम**) पुकारते हैं ।

भावार्थः— हे पूजनीय विद्वज्जन हमारी रक्षा और कल्याण के लिए आप लोग उपदेश कीजिए । हमें पीड़ा देने वाली दुर्गति से बचाइये । हमारी रक्षा और कल्याण के लिए हम सत्यवाणी द्वारा आपको पुकारते हैं ॥११॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२॥

पदार्थः— (**देवाः**) हे विद्वज्जन ! (**नः**) हमारे (**अमीवाम्**) रोग और रोग की भांति उत्पीडक को (**अप युयोतन**) दूर करो, (**विश्वाम्**) समस्त (**अनाहुतिम**) अदानशीलता को (**अप**) दूर करो, (**अघायतः**) अत्याचार करने वाले, (**अरातिम्**) न देने वाले (**दुर्विदत्राम्**) दुःख देने वाले (**द्वेषः**) द्वेषों को (**अस्मत**) हमसे (**आरे**) दूर (**अप**) करो, (**नः**) हमें (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**शर्म**) सुख (**यच्छता**) प्रदान करो ।

भावार्थः हे विद्वज्जन ! हमारे रोग और रोग की भांति पीड़ा देने वाले को हमसे दूर करो, समस्त अदानशीलता को दूर करो । अत्याचार करने वाले, न देने वाले, दुःख देने वाले द्वेषों को हमसे दूर भगाओ । हमें कल्याणार्थ सुख दो ॥१२॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३॥

पदार्थः— (**आवित्यासः**) हे आदित्यसंज्ञक विद्वानो ! (जो ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत रखकर विद्वान् हुए हों वे आदित्य कहाते हैं) (**यम्**) जिसे (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ आप लोग (**सुनीतिभिः**) उत्तम नीतियों से (**विश्वानि**) समस्त (**दुरिता**) दुरितों से (**परि अति नयथ**) पार पहुँचा देते हैं (**सः**) वह (**मर्त्तः**) मनुष्य (**अरिष्टः**) अनिष्टों से दूर हुआ (**विश्वः**) विविध लोकों और पदार्थों को प्राप्त कर (**प्र एधते**) बढ़ता है (**धर्मणः परि**) धर्म से बढ़ता है और (**प्रजाभिः**) प्रजाओं से बढ़ता है ।

भावार्थः—हे आदित्य विद्वानो ! जिसे उसके कल्याण के लिए आप लोग उत्तम नीतियों से समस्त दुरितों के पार पहुंचा देते हैं वह मनुष्य अनिष्टों से रहित हुआ विविध पदार्थों को और लोकों को प्राप्त कर धर्म से प्रजा से समृद्ध होता है ॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥

पदार्थः— (**देवासः**) हे विद्वानो ! आप (**वाजसातौ**) धन लाभार्थ (**यम्**) जिस (**रथम्**) रमणीय गमन साधन की (**अवथ**) रक्षा करते हो, हे (**मरुतः**) वीर पुरुषो अथवा ऋत्विग् लोगो ! (**हिते**) रक्षित (**धने**) धन के लिए (**शूरसाता**) संग्राम में जिस रथ का रक्षा करते हो, (**प्रातर्यावाणम्**) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले (**इन्द्रसानसिम**) बड़े यन्त्रालय के विद्वानों से सेवनीय (**अरिष्यन्तम**) अहिस्य उस रथ पर (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ हम (**आरुहेम**) चढ़ें ।

भावार्थः हे विद्वान् जनो, हे ऋत्विग्गण ! आप लोग धन-लाभार्थ जिस रमणीय गमन साधन की रक्षा करते हैं और रखे हुए धन की रक्षार्थ युद्ध में जिस रथ की रक्षा करते हैं उस प्रातःकाल गमन करने वाले बड़े यन्त्रालय के विद्वानों से सेवनीय अहिंस्य रथ पर हम कल्याणार्थ चढ़ें ॥१४॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो ! (**नः**) हमारे लिए (**पथ्यासु**) राजमार्गों में (**स्वस्ति**) कल्याण हो, (**धन्वसु**) जलरहित प्रदेश में भी (**स्वस्ति**) जलोत्पत्ति आदि से कल्याण हो (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**स्वस्ति**) कल्याण हो, (**वृजने**) संग्राम में भी (**स्वस्ति**) कल्याण हो, (**नः**) हमारे (**पुत्रकृथेषु**) पुत्रों को उत्पन्न करने वाले (**योनिषु**) योनि आदि स्थानों में (**स्वस्ति**) कल्याण और निरामयता हो (**हे मरुतः**) विद्वानो ! (**राये**) धन के लाभ के लिए (**स्वस्ति**) कल्याण (**दधातन**) धारण कीजिए ।

भावार्थः--हे विद्वज्जनो ! हमारे लिए राजमार्गों में कल्याण हो, जलरहित प्रदेशों में जलोत्पत्ति आदि से कल्याण हो, अन्तरिक्ष और संग्राम में कल्याण हो । पुत्र की उत्पत्ति के स्थान योनि आदि में कल्याण और निरामयता हो तथा धन की प्राप्ति के लिए भी कल्याण हो ॥१५॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६॥

पदार्थ - (**या**) जो पृथिवी और समुद्र (**प्रपथे**) अच्छे मार्ग के लिए (**स्वस्ति इत**) स्वस्तिकारी होतो है जो (**श्रेष्ठा**) श्रेष्ठ (**रेक्णवती**) धन वाली है और (**वामम्**) यज्ञ को (**एति**) प्राप्त होती है (**सा**) वह (**ऋद्धिः**) समृद्धि (**नः**) हमारे (**अमा**) गृह की (**निपातु**) रक्षा करे, (**सा उ**) वही (**अरणे**) वन आदि में हमारी रक्षा करे और (**देवगोपा**) देवों से रक्षा की गई वह (**स्वावेशा**) हमारे लिए अच्छे स्थान वाली (**भवतु**) हो ।

भावार्थः - जो पृथिवी और समुद्र के लिये मार्गों के कल्याणकारिणी है, जो श्रेष्ठ और धनादि से युक्त है, जो यज्ञ को भी प्राप्त होती है वह समृद्धि

हमारी घर में रक्षा करे और वन में भी रक्षा करे । विद्वज्जनों द्वारा रक्षित की गई वह हमारे लिये स्थान वाली हो ॥१६॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥

पदार्थः - हे (**विश्वे**) समस्त (**आदित्याः**) आदित्यसज्ञक विद्वानो ! हे (**अदिते**) विदुषी स्त्रि ! (**एव**) इस प्रकार (**प्लतेः**) धन से पूर्ण मनुष्य का (**मनीषी**) विद्वान् (**सूनुः**) पुत्र (**वः**) आप लोगों को खान-पान आदि से (**अवीवृधत्**) बढ़ाता है, (**नरः**) मनुष्य लोग (**ईशानासः**) धन आदि के स्वामी होते हैं (**दिव्यः**) दिव्य (**जनः**) परमेश्वर (**अमर्त्येन**) जीवनमुक्ति को प्राप्त (**गयेन**) मनुष्य से (**स्तावि**) स्तुत होता है ।

भावार्थः हे समस्त आदित्यसंज्ञक विद्वानो ! हे विदुषी स्त्रि ! इस प्रकार धन से पूर्ण मनुष्य का मनीषी पुत्र आप लोगों को खान-पान आदि से बढ़ाता है । मनुष्य उत्तम प्रयत्नों से धन आदि के स्वामी होते हैं । भगवान् जीवनमुक्त व्यक्ति के द्वारा स्तुत होता है ॥१७॥

यह दशम मण्डल का तिरसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६४

ऋषिः—१—१७ गयः प्लातः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ९, १०, १३, १५ निचृज्जगती । २, ३, ७, ८, ११ विराड्-जगती । ६, १४ जगती । १२ त्रिष्टुप् । १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—११, १३—१५ निषादः । १२, १६, १७ धैवतः ॥

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१॥

पदार्थः—(**यामनि**) इस संसार मार्ग में (**शृण्वताम्**) सुनने वाले (**देवानाम्**) विद्वानों में (**कतमस्य**) किस की (**कथा**) किस प्रकार (**सुमन्तु**) सु मननीय

(**नाम**) नाम वा तेज को (**मनामहे**) मनन करें,(**कः**) कौन(**नः**) हमें(**मृळाति**) सुखी करता है,(**कतमः**) कौन (**मयः**) सुख सम्पादन (**करत्**) करता है, (**कतमः**) कौन (**ऊती**) रक्षा के लिए (**अभि आ ववर्तति**) आता है ।

भावार्थः—इस संसार मार्ग में सुनने वाले विद्वानों में हम किसके और किस प्रकार मननीय नाम को मनन करें, हमें कौन सुखी करता है, कौन सुख-सम्पादन करता है और कौन हमारी रक्षा के लिए आता है—इसका हम विचार करें ।।१।।

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२॥

पदार्थः—(**हृत्सु**) हृदयों में (**धीतयः**) निहित (**क्रतवः**) संकल्प, (**क्रतूयन्ति**) उत्तम कर्म और ज्ञान का सम्पादन करना चाहते हैं, (**वेनाः** मेधावी जन (**वेनन्ति**) नाना प्रकार की कामनाएं करते हैं, और (**दिशः**) दिशाओं में (**आ पतयन्ति**) जाते हैं, (**एभ्यः**) इन उक्त कर्म करने वालों के लिए (**अन्यः**) दूसरा कोई (**मर्डिता**) दयालु भी (**न**) नहीं (**विद्यते**) है, (**मे**) मेरी (**कामाः**) कामनाएं (**देवेषु अधि**) देवों=यज्ञ के देवों में (**अयंसत**) नियन्त्रित हो जाती हैं ।

भावार्थः—हृदयों में निहित संकल्प उत्तम कर्म और ज्ञान का सम्पादन करना चाहते हैं । मेधावीजन नाना प्रकार की कामनाएं करते हैं और दिशाओं में जाते हैं । इनके लिये दूसरा कोई दयालु भी नहीं है । अतः मेरी कामनाएं भगवान् और यज्ञभागी देवों में नियन्त्रित हो जाती हैं ।।२।।

नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥३॥

पदार्थः—हे पुरुष ! (**गिरा**) वाणी से (**नराशंसम**) नरों से प्रशंस्य (**अगोह्यम**) न दिये हुए (**पूषणम्**) पूषा=पोषक शक्ति, और (**देवेद्धम**) विद्वानों से प्रदीप्त (**अग्निम्**) अग्नि का (**अभि अर्चसे**) वर्णन कर, (**सूर्यमासा चन्द्रमासा**) सूर्य और चन्द्र, (**दिवि**) द्युलोकस्थ (**यमम्**) वायु (**त्रितम**) तीन स्थानों अर्थात् द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी में विद्यमान इन्द्र=विद्युत् (**वातम**) प्राण तथा

(**उषसम**) प्रातःकाल और (**अक्तुम**) रात्रिकाल और (**अश्विना**) द्यु और पृथिवी अथवा प्राण और उदान के गुणों का वर्णन कर ज्ञान प्राप्त कर ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! नरों द्वारा प्रशंसनीय पूषा=पोषक शक्ति, विद्वानों द्वारा प्रज्वलित यज्ञाग्नि, सूर्य-चन्द्रमा, आकाशस्थ वायु, तीनों लोकों में व्याप्त विद्युत् [इन्द्र] प्राण, प्रातःकाल, रात्रिकाल, द्यु और पृथिवी तथा प्राण और उदान आदि के गुणों का वर्णन कर उनका ज्ञान प्राप्त करें ।।३।।

कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात्सुहवेभिर्ऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ॥४॥

पदार्थः—(**कविः**) क्रान्तदर्शन अग्नि (**कथा**) किस प्रकार (**तुवीरवान्**) अन्य दिव्य शक्तियों [**देवों**] के साथ गतिशील होता है, (**कया**) किस (**गिरा**) वाणी से प्रशसित होता है, (**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का ज्ञाता (**सुवृक्तिभिः**) उत्तम वाणियों से (**वावृधते**) बढ़ता है, प्रसन्न होता है, (**अजः एकपात्**) अनुत्पन्न एकमात्र अथवा एक व्याप्ति वाला परमेश्वर (**सुहवेभिः**) उत्तम शब्दों से युक्त (**ऋक्वभिः**) मन्त्रमयी वाणियों से (**वावृधते**) प्रसन्नता प्राप्त करता है—(**अहिः बुध्न्यः**) अग्नि (**हवीमनि**) ज्ञान प्राप्ति के उद्योग में (**शृणोतु**) हमें सुनाने का साधन बनें ।

भावार्थः—क्रान्तदर्शन अग्नि किस प्रकार देवों के साथ मिलकर काम करता है, किस प्रकार उसका वाणी से वर्णन किया जा सकता है, इत्यादि का विचार करना चाहिए । वेदज्ञ विद्वान् वेदवाणी से प्रसन्न होता है । अनादि एक व्याप्ति वाला परमेश्वर उत्तम वचनों से युक्त वेद मन्त्रों वाली वाणी से स्तुत होता है और मेघस्थ आकाशीय अग्नि हमें ज्ञान प्राप्ति के उद्योग में सब को सुनाने का साधन बनें ।।४।।

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५॥

पदार्थः—(**अदिते**) यह प्रातस्तनी उषा अपने (**वा**) और (**दक्षस्य**) सूर्य के (**जन्मनि**) उदयरूप (**व्रते**) कर्म में (**राजाना**) दीप्तिमान (**मित्रावरुणा**) दिन और रात्रि को (**आ विवाससि**) प्रकट करती है (**अतूर्तपन्थाः**) अविच्छिन्न

मार्ग, (**पुरुरथः**) अत्यन्त रमणीय, (**सप्तहोता**) सप्त किरणों वाला (**अर्यमा**) सूर्य (**विषुरूपेषु**) नाना रूपों वाले (**जन्मसु**) उदय और अस्त कर्मों में प्रवृत्त रहता है ।

नोट—प्रातःकालिक उषा से सूर्य उदित होता है और सायंकालिक सूर्य से उषा वेला पैदा होती है जो सायंकालिक उषा है ।

भावार्थः—उषा और सूर्य के उदयरूपी कर्म में दिन और रात्रि को उषायें प्रकट करती हैं । प्रातः कालिक उषा सूर्य को उदय देकर दिन को और सायंकालिक उषा रात्रि को प्रकट करती है । प्रातः काल में उषा सूर्य को उत्पन्न करती है और सायंकाल में सूर्य उषा को उत्पन्न करता है। इस प्रकार सात किरणों वाला रमणीय सूर्य अविच्छिन्न मार्ग से उदय और अस्त कर्म को पूरा करता है ॥५॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६॥

पदार्थः– (**ये**) जो (**समिथेषु**) संग्रामों में (**महः**) महान् (**धनम्**) धन को (**जभ्रिरे**) प्राप्त करते हैं जो (**त्मना**) अपने आप (**मेधसातौ इव**) यज्ञ के समान उत्तम कार्यों में (**सहस्रा**) सहस्रों का दान करते हैं (**ते**) वे (**अर्वन्तः**) ज्ञानी, (**हवनश्रुतः**) आह्वानों को सुनने वाले (**मितद्रवः**) नियमितगति और अधिक ज्ञान वाले, (**वाजिनः**) बल वाले (**नः**) हमारी (**हवम्**) पुकार को (**शृण्वन्तु**) सुनें ।

भावार्थ–जो संग्रामों में बड़े धनों को प्राप्त करते हैं, अपने आप यज्ञ के समान उत्तम कर्मों में सहस्रों देते हैं वे नियमित गति, सबकी पुकार को सुनने वाले बलशाली लोग हमारी पुकार को सुनें ॥६॥

प्र वो वायुं रथयुजं पुरन्धिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥७॥

पदार्थः– हे मनुष्यो ! आप लोग (**रथयुजम्**) रथ में लगने वाले (**वायुम्**) वेगदाता तत्त्व को (**पुरन्धिम्**) पुर के धारक को, (**पूषणम्**) पोषक को (**स्तोमैः**) उत्तम प्रशंसा-वचनों से (**वः**) अपने (**सख्याय**) मित्रत्व के लिए (**कृणुध्वम्**) करो, (**हि**) क्योंकि (**ते**) वे (**देवस्य**) देव (**सवितुः**) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (**सवीमनि**) शासन में (**सचितः**) एक साथ हुए, (**सचेतसः**) सचेत के समान हुए (**क्रतुम्**) अपने कार्यों में (**सचन्ते**) जुड़ते हैं ।

भावार्थः–हे मनुष्यो ! आप लोग रथ में लगने वाले वेगदाता पदार्थ को, पुरों के धारक तत्त्व को, पोषक तत्त्व को उत्तम वर्णनों के साथ अपने संपर्क में करो । वे सभी पदार्थ भगवान् के नियम में साथ होकर सचेत के समान हुए अपने कार्यों में लगे रहते हैं ॥७॥

त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥८॥

पदार्थः—हम ज्ञानार्थ (**त्रिः सप्त**) २१ प्रकार की (**सस्राः**) सरण करने वाली (**नद्यः**) नदियें (**महीः**) महान् (**अपः**) जलों, (**वनस्पतीन्**) वनस्पतियों (**पर्वतान्**) पर्वतों वा मेघों, (**अग्निम्**) अग्नि को जो (**कृशानुम्**) सबका दाहक है, (**अस्तॄन्**) तीर फेंकने वाले लोगों (**तिष्यम्**) तिष्य नक्षत्र, (**रुद्रेषु**) रुद्रों अर्थात् अग्नियों में (**रुद्रियम्**) रुद्र रूप से वर्णनीय (**रुद्रम्**) तीव्रतम अग्नि का (**ऊतये**) अपनी रक्षा के लिए (**हवामहे**) ज्ञानार्थ गुणवर्णन करते हैं ।

भावार्थः–नदनशील जलों के भेद से युक्त २१ प्रकार की नदियों, जलें, वनस्पतियों पर्वतों और मेघों अग्नि, तीर फेंकने वालों, तिष्य नक्षत्र, रुद्रों में परिगणित तीव्रतम अग्नि को हम अपनी रक्षा के लिए ज्ञान में ग्रहण करते हैं ॥८॥

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९॥

पदार्थः– (**महः**) महती से (**महीः**) महती, (**ऊर्मिभिः**) ऊर्मियों से युक्त (**वक्षणी**) शब्दवती (**सरस्वती**) उत्तम जलों वाली नदी (**सरयुः**) बहाव वाली (**सिन्धुः**) अत्यधिक स्यन्दनशीला नदी (**अवसा**) रक्षा के लिए (**आ यन्तु**) चारों तरफ जाती हैं, (**देवीः**) उत्तम गुणों वाली (**मातरः**) माताभूत (**सूदयित्नवः**) स्फूर्त्तिदायक (**आपः**) जलें (**न**) हमें (**घृतवत्**) तेजोयुक्त (**मधुमत्**) माधुर्य युक्त (**पयः**) रसात्मक तत्त्व (**अर्चत**) देती हैं ।

भावार्थः—बड़ी से बड़ी और ऊर्मियों से युक्त शब्दों को करती हुई उत्तम जलों वाली, बहाव वाली और अत्यधिक स्यन्दनशील नदियां हमारे

रक्षार्थ चारों ओर जाती हैं। उत्तम गुणों से युक्त माता के समान सुख-कारिणी स्फूर्तिदायक जलें हमें माधुर्ययुक्त और तेजोयुक्त रसात्मक तत्त्व देती हैं ॥९॥

उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥१०॥

पदार्थः—(उत) और (**बृहद्दिवा**) महा प्रकाशवाली (**माता**) देवमाता दति अन्तरिक्ष वा पृथिवी (**देवेभिः**) देवों सहित (**जनिभिः**) देवी=अर्थात् नता सहित (**पिता**) सबका पालक (**त्वष्टा**) सूर्य वा द्युलोक (नः) म (**वचः**) वचन को (**शृणोतु**) सब को सुनवायें, (**ऋभुक्षाः**) किरणें (**वाजः**) अन्नयवित, (**रथस्पतिः**) जगत् रथ का स्वामी (**भगः**) यज्ञ (**रण्वः**) रमणीय (**शंसः**) प्रशस्त मरुद्गण (**शसमानस्य**) इन सबकी तारीफ करने वाले यजमान के (नः) हम लोगों की (**पातु**) रक्षा करते हैं।

भावार्थः—महा प्रकाशवती अदिति, अन्य देवों और देवों की शक्तियों से युक्त द्युलोक हमारे वचन को सबको सुनवाने का साधन बने। किरणें, अन्न शक्ति, जगद्रथ का पालक यज्ञ, रमणीय प्रशस्त मरुद्गण मुझ यजमान के सभी लोगों की रक्षा करते हैं ॥१०॥

रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११॥

पदार्थ (**संदृष्टौ**) संदर्शन में (**रण्वः**) रमणीय मरुद्गण (**पितुमान्**) अन्नवान् (**क्षयः इव**) निवास के समान है याज्ञिकों के और जलों के, (**रुद्राणाम्**) रुद्रों=अग्नियों से उत्पन्न (**मरुताम्**) मारुत प्राणों को (**उपस्तुति**) उपस्थिति हमारे लिए (**भद्रा**) कल्याणदायी होती है इसलिए (**जनेषु**) जलों के मध्य हम (**गोभिः**) गौ आदि पशुओं से (**यशसः**) यशस्वी (**स्याम**) होवें (**देवासः**) इन यज्ञ देवों को (**सदा**) सर्वदा (**इलया**) अन्न की हवि से (**आ**) सब प्रकार से (**सचेमहि**) प्राप्त हों।

भावार्थः—संदर्शन में रमणीय मरुद्गण याज्ञिकों के लिए अन्नयुक्त निवास के समान हैं। अग्नियों से उत्पन्न मारुत प्राणों की उपस्थिति हमारे लिए कल्याणमयी होती है इसलिए जनों के मध्य में हम गौ आदि पशुओं से यशस्वी होवें और सदा अन्न की हवि से इन देवों को प्राप्त हों ॥११॥

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२॥

पदार्थः—(**हे मरुतः**) विद्वान् पुरुषो ! (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् गुरो ! (**हे देवाः**) हे ज्ञान दाताओ ! (**वरुण**) हे श्रेष्ठजन ! (**मित्र**) हे स्नेहीजन ! (**यूयम्**) आप लोग (**याम्**) जिस (**धियम्**) बुद्धि और कर्म को (**मे**) मुझे (**अददात**) देते हो (**ताम्**) उसको (**पयसा**) दूध से (**धेनुम् इव**) धेनु के समान (**पीपयत**) नाना फलों से युक्त करो (**कुविद्**) बहुत वार (**गिरः**) विद्वानों को (**रथे अधि**) रथ पर (**वहाथ**) चढ़ाकर लाया करो।

भावार्थः—हे विद्वज्जन, हे गुरो, हे ज्ञान दाताओ हे श्रेष्ठजन ! हे स्नेहीजन ! आप लोग जिस बुद्धि कर्म को मुझे देते हो उसे फलयुक्त=सफल करो। बहुत वार विद्वानों को रथ पर लाकर प्राप्त कराओ ॥१२॥

कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३॥

पदार्थः—(**अंग मरुतः**) हे वीरजनो ! (**यथा चित**) जैसे भी हो आप लोग (**कुवित**) बहुत वार (**नः**) हमारे (**सजात्यस्य**) समान सगे सम्बन्धी वर्ग को भी (**प्रति बोधय**) ज्ञान प्रदान करो (**यत्र**) जिस (**नाभा**) नाभि में (**प्रथमम**) पहले (**संनसामहे**) प्राप्त होते हैं (**अदितिः**) द्युलोक (**भूमिः**) भूमि (**तत्र**) उसमें (**जामित्वम**) परस्पर बन्धुत्व (**नः**) हमारा (**दधातु**) पुष्ट करे।

भावार्थः—हे वीर जनो ! जैसे भी हो आप लोग सदा हमारे सगे सम्बन्धी वर्ग को भी ज्ञान प्रदान करो। जिस नाभि में हम पहले प्राप्त होते हैं उसमें पृथिवी हमारे परस्पर बन्धुत्व को पुष्ट करती है ॥१३॥

ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४॥

पदार्थः—(**मातरा**) निर्मात्री, (**मही**) महती (**देवी**) दिव्य (**यज्ञिये**) यज्ञार्ह (**ते**) वे (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**देवान्**) इन्द्र=वायु आदि देवों को (**जन्मना**) जन्म से (**इतः हि**) यहीं पर (**प्राप्नुतः**) प्राप्त हैं। (**उभे**) दोनों

(भरीमभिः) नाना प्रकार के भरण पोषणों से (उभयम्) देव और मनुष्य दोनों का (बिभ्रतः) भरण पोषण करते हैं, (पितृभिः) पालक शक्तियों से युक्त हुए (पुरु) बहुत (रेतांसि) जलों को (च) भी (सिञ्चतः) सिक्त करते हैं ।

भावार्थः - सब के निर्माण करने वाली महान् तथा दिव्य द्यु और पृथिवी जन्मकाल से ही वायु आदि देवों को यहीं अपने पास ही प्राप्त है। ये दोनों दैवी पदार्थों और मनुष्यों दोनों को ही भरण शक्तियों से पुष्ट करते हैं। पालक शक्तियों से युक्त हुए प्रभूत जलों की वर्षा भी करते हैं ॥ १४ ॥

वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५॥

पदार्थः– (**सा**) वह (**होत्रा**) सब पदार्थों के नामों और व्यवहारों को बताने वाली वाक् (**विश्वम्**) समस्त (**वार्यम्**) वरणीय पदार्थों को (**अश्नोति**) व्यापन कर रही है, वही (**पनीयसी**) उत्तम रीति से ज्ञान को देने वाली है (**यत्र**) जिसमें कुशल पुरुष (**अरमतिः**) बहुत बुद्धि वाला (**बृहस्पतिः**) वाणी का पालक कहा जाता है, (**यत्र**) जिसमें (**ग्रावा**) उपदेष्टा (**मधुषुत्**) ज्ञान को उत्पन्न करने वाला (**उच्यते**) कहा जाता है । (**यत्र**) जिसके बल पर (**मतिभिः**) अपनी बुद्धियों द्वारा (**मनीषिण**) बुद्धिमान् लोग (**बृहत्**) उस महान् प्रभु वा ज्ञान, वा पद की (**अवीवशन्त**) कामना करते हैं ।

भावार्थः– वह सब पदार्थों के नामों और व्यवहारों को बताने वाली परम वाणी समस्त चाहे पदार्थों को व्यापन कर रही है। वह उत्तम रीति से ज्ञान देने वाली है। जिसमें कुशल पुरुष बहुत बुद्धि वाला वाणी का पालक कहा जाता है और जिसमें उपदेष्टा ज्ञान को उत्पन्न करने वाला कहा जाता है। तथा जिसके बल पर अपनी प्रज्ञा से बुद्धिमान् लोग बृहत्=ब्रह्म पद, ज्ञान, की कामना करते हैं ॥ १५ ॥

एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६॥

पदार्थः—(**एवा**) इस भांति (**अत्र**) इस यज्ञ में (**कविः**) क्रान्तदर्शी (**स्तुवीरवान्**) स्तुतिकर्त्ता, (**ऋतज्ञः**) यज्ञ का ज्ञाता (**द्रविणस्युः**) धन की

कामना वाला, (**द्रविणः**) पशु आदि धन को (**चकानः**) चाहता हुआ, (**विप्रः**) मेधावी पुरुष (**उक्थैः**) कर्मों से (**मतिभिः**) बुद्धि से (**गयः**) अपत्य (**दिव्यानि**) दिव्य वस्तुओं और जल आदि को (**अपीपयद्**) बढ़ाता है ।

भावार्थः—इस भांति इस यज्ञ में क्रान्तदर्शी कर्मण्य, यज्ञ का ज्ञाता, धन की कामना करने वाला, पशु आदि धन को चाहता हुआ मेधावी पुरुष स्तुतियों, बुद्धि और कर्मों द्वारा अपत्य, धन एवं दिव्य वस्तुओं और जन्म आदि को बढ़ा सकता है ॥ १६ ॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥

पदार्थः—(**हे विश्वे आदित्याः**) हे समस्त तेजस्वीजनो (**एव**) इस प्रकार (**प्लतेः**) सुखों धनों वाले के (**सूनुः**) पुत्र (**मनीषी**) बुद्धिमान् पुरुष (**वः**) आप लोगों को धन आदि से (**अवीवृधत्**) बढ़ाता है, (**हे अदिते**) हे विदुषी स्त्रि (**अमर्त्येन**) जीवनमुक्त (**गयेन**) उपदेष्टा के द्वारा (**ईशानासः**) शासन करने वाले (**नरः**) मनुष्य और (**दिव्यः जनः**) दिव्य प्रभु (**अस्तावि**) स्तुत होता है ।

भावार्थः—हे समस्त तेजस्वी पुरुषो ! इस प्रकार सुख और धन वाले के पुत्र मनीषी पुरुष आप लोगों को धन आदि से बढ़ाता है। हे विदुषी स्त्रि ! जीवनमुक्त उपदेष्टा के द्वारा शासनकर्त्ता मनुष्य और दिव्य प्रभु स्तुत होते हैं ॥ १७ ॥

यह दशम मण्डल में चौसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६५

ऋषिः—१—१५ वसुकर्णो वासुक्रः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—
१, ४, ६, १०, १२, १३ निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती ।
३, ७, ९ विराड्जगती । ५, ८, ११ जगती । १४ त्रिष्टुप् ।
१५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—१३ निषादः ।
१४, १५ धैवतः ॥

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्निः**) अग्नि, (**इन्द्रः**) विद्युत्, (**वरुणः**) जल तत्व, (**मित्रः**) अन्न, (**अर्यमा**) सूर्य (**वायुः**) वायु (**पूषा**) पृथिवी, (**सरस्वती**) माध्यमिका वाक्, (**आदित्याः**) १२ आदित्य, (**विष्णुः**) व्यापक आकाश, (**मरुतः**) मरुद्गण (**स्वः**) प्रकाश, (**बृहत सोमः**) महान् ओषधिगण, (**रुद्रः**) प्राण, (**अदितिः**) अखण्ड प्रकृति, (**ब्रह्मणः पतिः**) ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु (**सजोषसः**) संगत हुए इस महान् आकाश में सर्वत्र विराजमान है ।

भावार्थः—अग्नि, विद्युत्, जल तत्व, अन्न, सूर्य, वायु, पृथिवी, माध्यमिका वाक्, १२आदित्य, व्यापक, आकाश, मरुद्गण, प्रकाश, महान् ओषधि गण, प्राण, अखण्ड प्रकृति और ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु संगत हुए आकाश में विराजमान है ॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥

पदार्थः—(**वृत्रहत्येषु**) मेघ के वधों में (**इन्द्राग्नी**) पवन और अग्नि (**समोकसा**) एक स्थान पर रहते हुए (**सत्पती**) सत्तावान् पदार्थों के पालक होकर (**तन्वा**) अपनी विस्तृत शक्ति से (**मिथः**) परस्पर को (**हिन्वाना**) बढ़ाते हुए, (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**आ पप्रुः**) पूरित करते हैं, (**सोमः**) प्राण (**घृतश्रीः**) जल के आश्रय पर रहकर (**ओजसा**) बल से (**महिमानम्**) अपने सामर्थ्य को (**ईरयन्**) प्रकट करता हुआ अन्तरिक्ष को पूरित करता है।

भावार्थः—मेघ के वधों में पवन और अग्नि, एक ही स्थान वाले, सत्ता वाले पदार्थों के पालक हुए अपनी विस्तृत शक्ति से परस्पर को बढ़ाते हुए अन्तरिक्ष को व्यापन करते हैं और प्राण जल के आश्रय पर रहकर बल से अपनी महिमा को प्रकट करता हुआ अन्तरिक्ष को पूरित करता है ॥२॥

तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥३॥

पदार्थः—(**ऋतज्ञाः**) यज्ञ और सृष्टि नियम का ज्ञाता मैं विद्वान् (**महता**) महत्ता से (**महताम्**) महान् (**अनर्वणाम्**) अन्य सवारी वा चालक की अपेक्षा से रहित (**ऋतावृधाम्**) जल, ज्ञान, यज्ञ आदि को बढ़ाने वाले (**तेषाम्**) इन तत्त्वों के (**स्तोमान्**) स्तुत्य गुणों को (**इर्मामि**) कहता हूं (**ये**) जो (**चित्रराधसः**) धनों के साधक होकर (**अप्सवम्**) जलोत्पादक (**अर्णवम्**) अन्तरिक्षस्थ समुद्र को कायम रखते हैं (**ते**) वे (**सुमित्र्याः**) उत्तम मित्र हैं, (**ते**) वे (**नः**) हमें (**महये**) महान् सामर्थ्य के लिए (**रासन्ताम्**) ऐश्वर्य प्रदान करें ।

भावार्थः—यज्ञ और सृष्टि नियम का ज्ञाता मैं अपनी महत्ता से महान्, दूसरे चालक की अपेक्षा न रखने वाले जल, ज्ञान, यज्ञ आदि के वर्धक इन तत्वों के गुणों का बखान करता हूं । जो तत्त्व धनों के साधक होकर जलोत्पादक अन्तरिक्षस्थ समुद्र को कायम रखते हैं वे हमारे उत्तम मित्र हैं । वे हमें सामर्थ्ययुक्त करें ॥ ३ ॥

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षाइव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥४॥

पदार्थः—(**स्वर्णरम्**) सबको कर्मों में प्रवृत्त करने वाले आदित्य, (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्षस्थ (**रोचना**) प्रकाशमान तेजों को, (**द्यावाभूमी**) द्यु और भूमि को, (**पृथिवीम्**) विस्तृत अन्तरिक्ष को (**पृक्षा इव**) दरिद्रों को धन देने वाले के समान, (**महयन्तः**) स्तोत्रियों को धन आदि देते हुए, (**सुरातयः**) उत्तम दान वाले (**मनुषाय**) मनुष्य के लिये (**सूरयः** , धनों के प्रेरक (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**ओजसा**) बल से (**स्कम्भुः**) धारण करते हैं और (**स्तवन्ते**) स्तुत होते हैं ।

भावार्थः—धन आदि पदार्थों के प्रेरक दिव्य पदार्थ जिन्हें देव कहा जाता है आदित्य, अन्तरिक्षस्थ प्रकाश, द्यु और भूमि लोक तथा विस्तृत अन्तरिक्ष को धारण करते हैं और यज्ञ में प्रशंसा पाते हैं ॥ ४ ॥

मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥५॥

पदार्थः—हे यजमान (**दाशुषे**) दाता (**मित्राय**) उदान और (**वरुणाय**) प्राण के लिए (**शिक्ष**) यज्ञ में आहुति दे, (**या**) जो दोनों ये मित्र और वरुण

(**सम्राजा**) सम्यक् दीप्त है तथा (**मनसा**) अन्तरिक्ष लोक से युक्त हुए (**न**) नहीं (**प्रयुच्छतः**) प्रमाद करने वाले हैं, (**ययोः**) जिनका (**बृहत्**) महान् (**धाम**) तेज वा सामर्थ्य (**धर्मणा**) उनके गुण धर्मों से (**रोचते**) प्रकाशमान होता है (**ययोः**) जिन दोनों के (**नाधसी**) ऐश्वर्य से युक्त (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी (**वृतौ**) वर्तमान होते हैं ।

भावार्थः—हे यजमान ! दाता उदान और प्राण के लिए यज्ञ में आहुति प्रदान कर । ये दोनों दीप्तिमान् और अन्तरिक्ष के साथ युक्त कभी भी अपने कार्य में प्रमाद करने वाले नहीं है । इनका महान् सामर्थ्य इनके गुण धर्मों से प्रकाशमान होता है इन दोनों के ऐश्वर्य से युक्त द्युलोक और पृथिवी दोनों विद्यमान हैं ।। ५ ।।

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवातरः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६॥

पदार्थः—(**या**) जो (**गौः**) भूमि (**निष्कृतम्**) ठीक प्रकार से बने (**वर्त्तनिम्**) मार्ग को (**परि एति**) तय करती है, (**पयः**) जल का (**दुहाना**) दोहन करती हुई (**अवातरः**) निरन्तर (**व्रतनीः**) अन्न प्राप्त कराती हुई (**सा**) वह (**वरुणाय**) श्रेष्ठ (**दाशुषे**) प्रकाश के दाता (**विवस्वते**) सूर्य के सामर्थ्य को (**प्रब्रुवाणा**) प्रकट करती हुई (**हविषा**) अन्न जल आदि से (**देवेभ्यः**) जीवों के लिये (**दाशत्**) जीवन प्रदान करती है ।

भावार्थः—जल का दोहन करती हुई, अन्न प्राप्त कराती हुई, यह भूमि ठीक प्रकार से बने मार्ग को तय करती है । यह सूर्य के सामर्थ्य को प्रकट करती हुई जीवों के लिए अन्न आदि से जीवन प्रदान करती है ।६॥

दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्य१ प आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी३ नि मामृजुः ॥७

पदार्थः—(**दिवक्षसः**) द्युलोक को ब्यापन करने वाले, (**अग्निजिह्वाः**) अग्नि की ज्वालाओं वाले, अथवा अग्निरूपी जिह्वा वाले (**ऋतावृधः**) यज्ञ को बढ़ाने वाले (**देवाः**) देव (**ऋतस्य**) यज्ञ वा जल के (**योनिम्**) कारण एवं स्थान को (**विमृशन्तः**) ढूंढने वाले के समान (**आसते**) प्राप्त करते हैं, (**द्याम्**) द्युलोक को (**स्कभित्वी**) धारण करके (**ओजसा**) बल से (**अपः**) जलों को (**आ चक्रुः**) उत्पन्न करते हैं (**यज्ञम्**) अन्न आदि हव्य पदार्थों को (**जनित्वी**) उत्पन्न कर (**तन्वि**) अपने संघात में (**निममृजुः**) पुनः अग्नि द्वारा प्राप्त अलंकृत करते हैं ।

भावार्थः--द्युलोक को व्यापन करने वाले, अग्नि को अपना मुख वा माध्यम बनाने वाले, यज्ञ के वर्धक विद्युद् सूर्य आदि दिव्य पदार्थ यज्ञ वा जल के कारण वा स्थान को किसी चीज को ढूंढने वाले व्यक्तियों के समान प्राप्त करते हैं । वे द्युलोक को धारण कर जल को उत्पन्न करते हैं और अन्न आदि हवि योग्य पदार्थों को उत्पन्न करके पुनः अग्नि में दी गई आहुति के रूप में उन्हें अपने संघात में प्राप्त करते हैं ।। ७ ।।

परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८॥

पदार्थः—(**परिक्षिता**) चारों तरफ निवास वाले, (**पितरा**) सबके पिता और माता भूत, (**पूर्वजावरी**) सर्व प्रथम उत्पन्न, (**समोकसा**) समान निवास स्थान वाले ये (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**ऋतस्य**) नित्य सृष्टि नियम के (**योनौ**) कारण परमेश्वर में (**क्षयतः**) निवास करते हैं (**सव्रते**) अपने कर्मों से युक्त ये दोनों (**महिषाय**) महान् (**वरुणाय**) वरुण के लिए (**घृतवत्**) प्रकाशयुक्त (**पयः**) जल को (**पिन्वतः**) क्षरण करते हैं ।

भावार्थः—चारों तरफ फैले हुए, सब प्राणियों के पिता और माता भूत, सबसे पूर्व उत्पन्न समान निवास वाले द्यु और पृथिवी लोक सृष्टि-नियम के परमकारण परमेश्वर के आश्रय में ठहरे हैं । ये अपने कार्यों को करते हुए जलीय तत्त्व को स्थिर रखने के लिए जल से पूरित करते रहते हैं ॥८॥

पर्जन्यवाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ॥९॥

पदार्थः—(**पर्जन्य वाता**) पर्जन्य और वायु जो (**वृषभा**) वर्षा कराने वाले और (**पुरीषिणौ**) जल से युक्त हैं (**इन्द्रवायू**) विद्युत् और वात, (**वरुण**) प्राण, (**मित्र**) अपान, (**अर्यमा**) सूर्य आदि अपनी महिमा से विद्यमान हैं, (**ये**) जो (**देवाः**) देव लोग पृथिवी से उत्पन्न पार्थिव हैं और (**ये**) जो (**अप्सु**) जलों

अथवा अन्तरिक्ष में हैं और जो (**दिव्यासः**) द्युलोक में हैं इस (**आदित्यान्**) १२ आदित्य (**देवान्**) देवों और (**अदितिम्**) उनकी माता प्रकृति का (**हवामहे**) हम वर्णन करते हैं ।

भावार्थः—पर्जन्य और वायु, वर्षा कराने वाले और जल से युक्त हैं, विद्युत् और वात=मरुत्, प्राण, अपान, सूर्य आदि सभी अपनी महिमा से विद्यमान हैं । जो देव पार्थिव हैं, जो अन्तरिक्षस्थ हैं और जो दिव्य=द्युलोकस्थ हैं उन १२ आदित्य आदि देवों और उनकी माता अदिति=प्रकृति का हम वर्णन करते हैं ।।९।।

त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥१०॥

पदार्थः—(**ऋभवः**) हे ज्ञान से प्रकाशमान पुरुषो ! (**त्वष्टारम्**) सूर्य को (**वायुम्**) वायु को (**दैव्या होतारा**) दैव्याहोतारौ=प्राण और अपान (**उषसम्**) उषा को (**यः**) जो सोम=यज्ञीय पदार्थ (**स्वस्तये**) आप लोगों के कल्याण के लिए इन सब देवों को (**ओहते**) प्राप्त तथा (**बृहस्पतिम्**) नभोमण्डल, (**सुमेधसम्**) उत्तम ज्ञान के विषय (**वृत्रखादम्**) मेघनाशक इन्द्र=विद्युत् को, (**इन्द्रियम्**) इन्द्रजुष्ट (**सोमम्**) सोम आदि ओषधि को (**धनसाः**) धन की इच्छा वाले हम (**ईमहे**) प्राप्त करें ।

भावार्थ—हे ज्ञान से प्रकाशमान पुरुषो ! सूर्य, वायु, प्राण और अपान, और उषस् को हव्य पदार्थ आप के कल्याण के लिए प्राप्त होता है और जो नभोमण्डल, इन्द्र=विद्युत् और विद्युत् द्वारा सेवित सोम आदि ओषधि को प्राप्त होता है, उस सोम को हम धन की इच्छा करने वाले प्राप्त करें ।।१०।।

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥११॥

पदार्थः—(**ब्रह्म**) अन्न, (**गाम**) गौ (**अश्वम्**) अश्व, (**ओषधीः**) ओषधियों, (**वनस्पतीन्**) वनस्पतियों, (**पृथिवीषु**) पृथिवी, (**पर्वतान्**) पहाड़ों और (**अपः**) जलों को (**जनयन्तः**) उत्पन्न करते हुए (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**रोहयन्तः**) चढ़ाकर स्थापित करते हुए (**सुदानवः**) उत्तम प्रकार से अन्न जल आदि को देने वाले (**देवाः**) विश्व की कारणभूत देवशक्तियां (**अधिक्षमि**)

पृथिवी पर (**आर्या**) श्रेष्ठ (**व्रता**) कर्मों को (**विसृजन्तः**) उत्पन्न करते हुए अपना कार्य करते हैं ।

भावार्थः—जगत् में काम कर रही विश्व की कारणभूत दिव्य शक्तियां अन्न, गौ, अश्व, औषधि, वनस्पति, पृथिवी, पहाड़ों और जलों आदि को उत्पन्न करती हुई, द्युलोक में सूर्य को स्थापित करती हुई पृथिवी पर श्रेष्ठ कर्मों को उत्पन्न करती हुई अपना कार्य निरन्तर करती हैं ।।११।।

भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं१ विश्वकायाव सृजथः ॥१२॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे आचार्य और पुरोहित ! (**युवम्**) आप (**भुज्युम्**) भोग सामग्री को अथवा यज्ञ को (**अंहसः**) नष्ट करने वाली बुराई से (**पिपृथः**) बचाते हो, आप (**वध्रिमत्याः**) जितेन्द्रिया स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः**) पूर्णता से (**श्यावम्**) ज्ञान युक्त (**अजिन्वतम्**) बनाते हो, (**विमदाय**) विशेष हर्ष वाले युवा ब्रह्मचारी वर के लिए (**कमद्युवम्**) परमात्मा की स्तुति करने वाली स्त्री (**ऊहथुः**) प्राप्त कराते हो, तथा (**विश्वकाय**) विशेष ज्ञान वाले विद्यार्थी के लिए (**विष्णाप्वम्**) व्यापक ज्ञान अथवा यज्ञ को व्याप्त करने वाले कर्म को (**अवसृजथः**) देते हो ।

भावार्थः—हे आचार्य और पुरोहित ! आप भोग सामग्री और यज्ञ आदि को विनष्ट होने से बचाते हो । जितेन्द्रिया विदुषी के पुत्र को ज्ञानवान् बनाते हो । आप हर्ष वाले युवा ब्रह्मचारी वर के लिए परमात्मा की स्तुति करने वाली स्त्री प्राप्त कराते हो । तथा विशेष ज्ञान वाले विद्यार्थी के लिए व्यापक ज्ञान अथवा यज्ञ को व्याप्त करने वाले कर्म को देते हो । आचार्य ब्रह्मचर्य पूरा कर गृहस्थाश्रम में जाने वाले ब्रह्मचारी के लिए गुण कर्म से कन्या का चुनाव कर उसे प्रदान करते हैं ।।१२।।

पवीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या ॥१३॥

पदार्थः—(**पवीरवी**) विद्युन्मयी (**तन्यतुः**) माध्यमिका वाक्, (**दिवः**) द्युलोक का (**धर्ता**) धारक (**अजः एकपात्**) सूर्य (**सिन्धुः**) स्यन्दनवती नदी, (**समुद्रियः**) अन्तरिक्षस्थ (**आपः**) जलें (**धीभिः**) कर्म से (**सह**) युक्त (**पुरन्ध्या**) बहुत ज्ञानों की धारिका (**सरस्वती**) वैदिकी वाणी आदि (**विश्वे देवासः**) विश्व

देव लोग (मे) मुझ यजमान वा ज्ञान के अन्वेषक के (वचांसि) वचनों को (शृण्वन्) सबके सुनने का साधन बनें ।

भावार्थः– विद्युन्मयी माध्यमिका वाक्, द्युलोक का धारक सूर्य, सिन्धु, अन्तरिक्षस्थ जल कर्मों से युक्त बहुत ज्ञानों की धारिका वैदिकी वाणी आदि समस्त दिव्य शक्तियें मुझ अन्वेषक के वचनों को सब तक पहुँचाने और ज्ञान के साधन बनें ॥१३॥

विश्वे देवाः सह धीभिः पुरन्ध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्व१र्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥१४॥

पदार्थः—(**विश्वे देवाः**) समस्त विद्वान् (**धीभिः**) नाना बुद्धियों और कर्मों के (**सह**) साथ (**पुरन्ध्या**) लोकों के ज्ञान वाली बुद्धि के (सह) साथ (**अमृताः**) दीर्घायु (**ऋतज्ञाः**) सत्य बिद्या को जानने वाले (राति साचः) दान को ग्रहण करने वाले, (**अभि षाचः**) संघ बनाकर रहने वाले, (**स्वर्विदः**) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कराने वाले (**स्वर्विदः**) उत्तम वाणियों में (सु उक्तम्) भली प्रकार उपदिष्ट (**ब्रह्म**) ज्ञान को (**जुषेरत**) सेवन करें ।

भावार्थः– समस्त विद्वान् लोग नाना प्रकार के ज्ञानों और कर्मों के साथ लोकों का ज्ञान देने वाली बुद्धि के साथ दीर्घायु हुए, सत्यविद्या के ज्ञाता, दान को ग्रहण करने वाले, कुल बनाकर रहने वाले सब प्रकार के सुखों को प्राप्त होकर उत्तम वाणियों में भली प्रकार उपदिष्ट ज्ञान का सेवन करें ॥१४॥

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥

पदार्थ– (**वसिष्ठः**) जितेन्द्रिय आचार्य (**अमृतान्**) दीर्घ आयु वाले (**देवान्**) विद्यासेवियों को (**ववन्दे**) अभिनन्दित करें (**ये**) जो (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**अभि प्रतस्थुः**) जाते हैं । (**ते**) वे (**अद्य**) सदा (**नः**) हमें (**उरुगायम**) महान् वेदवाणी का (**रासन्ताम्**) उपदेश करें । हे विद्वानो ! (**यूयम**) आप (**स्वस्तिभिः**) कल्याणकारी साधनों से (**नः**) हमारी (**सदा**) सर्वदा (**पात**) रक्षा करें ।

भावार्थः—जितेन्द्रिय आचार्य दीर्घायु वाले उन विद्यासेवियों को अभिनन्दित करे जो समस्त भुवनों में अपने ज्ञान और प्रयत्न से जाते हैं । हे विद्वानो ! आप कल्याणकारी साधनों से हमारी सदा रक्षा करो और हमें वेदज्ञान का उपदेश करो ॥१५॥

यह दशम मण्डल में पंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६६

ऋषिः—१–१५ **वसुकर्णो वासुक्रः** ॥ **देवताः**—**विश्वेदेवाः** ॥ **छन्दः**–१, ३, ५—७ **जगती** । २, १०, १२, १३ **निचृज्जगती** । ४, ८, ११ **विराड्जगती** । ६ **पादनिचृज्जगती** । १४ **आर्चीस्वराड्जगती** । १५ **विराट्त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः**—१–१४ **निषादः** । १५ **धैवतः** ॥

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१॥

पदार्थः—(**बृहच्छ्रवसः**) प्रभूत अन्नों वाले (**ज्योतिष्कृतः**) प्रकाश को करने वाले (**अध्वरस्य**) यज्ञ के (**प्रचेतसः**) सचेतक (**देवान्**) देवों को (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**हुवे**) मैं यजमान पुकारता हूँ, (**विश्ववेदसः**) सर्व धनों वाले, (**इन्द्रज्येष्ठासः**) इन्द्र जिसका प्रधान है (**अमृताः**) अमरण धर्मा (**ऋतावृधः**) यज्ञ से बढ़ने वाले (**ये**) जो (**देवाः**) यज्ञ देव (**प्रतरम्**) निरन्तर (**वावृधुः**) बढते हैं ।

भावार्थः - प्रभूत अन्नों वाले, ज्योतिष्कृत, यज्ञ के सचेतक देवों को मैं कल्याणार्थ स्मरण करता हूं जो कि सर्व धनों वाले, इन्द्र के नेतृत्व से युक्त, अमरण धर्मा, यज्ञ से बढ़ने वाले हैं और निरन्तर यज्ञ से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्रप्रसूताः**) विद्युत् से प्रेरित, (**वरुणप्रशिष्टाः**) वायु से नियुक्त वा युक्त (**ये**) जो मरुत् (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**ज्योतिषः**) प्रकाश के (**भागम्**) भाग को (**आनशुः**) प्राप्त करते हैं (**वृजने**) बलवान् (**मरुद्गणे**) मरुद्गण में (**मन्म**) मनन को हम (**धीमहि**) धारण करते हैं (**सूरयः**) विद्वान् लोग (**मघोने**) मखों के स्वामी इन्द्र=विद्युत् के ज्ञान के लिए (**यज्ञम्**) संगतिकरण क्रिया को (**जनयन्त**) उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थः—विद्युत् से प्रेरित, वायु से बढ़ाये गए ये मरुत् सूर्य के प्रकाश के भाग को प्राप्त करते हैं । बलवान् मरुद्गण में हम मनन-क्रिया को धारण करते हैं और विद्वान् लोग विद्युत् के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए संगतिकरण क्रिया को कार्य में लाते हैं ॥२॥

इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) वायु (**वसुभिः**) आठ वसुओं के साथ (**नः**) हमारे (**गयम्**) अपत्य की (**परिपातु**) रक्षा करे, (**अदितिः**) द्युलोक (**आदित्यैः**) द्वादश आदित्यों के साथ (**नः**) हमें (**शर्म**) सुख (**यच्छतु**) देवें, (**रुद्रः**) अग्नि (**रुद्रेभिः**) एकादश रुद्रों के साथ (**नः**) हमें (**मृडयाति**) सुखी करें (**त्वष्टा**) सूर्य (**ग्नाभिः**) देवों में निहित शक्तियां [जिन्हें देवपत्नी की संज्ञा दी जाती है] के द्वारा (**नः**) हमें (**सुविताय**) अभ्युदय के लिए (**जिन्वतु**) प्रसन्न करें ।

भावार्थः—वायु आठ वसुओं के साथ हमारे अपत्य की रक्षा करे, द्युलोक बारह आदित्यों के साथ हमें सुख दें, अग्नि एकादश रुद्रों के साथ हमें सुखी करें और सूर्य दिव्य शक्तियों के साथ हमारे अभ्युदय के लिए प्रसन्न करें ॥३॥

अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून् रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥४॥

पदार्थ—(**अदितिः**) अन्तरिक्ष, (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**महत्**) महान् (**ऋतम्**) अग्नि, (**इन्द्राविष्णु**) वायु और सूर्य, (**मरुतः**) मरुत् (**बृहत्**) महान् (**स्वः**) प्रकाशमान लोकसमुदाय अपनी महिमा से विराजमान हैं, इन देवों और (**आदित्यान्**) आदित्यों, (**वसून्**) वसुओं, (**रुद्रान्**) रुद्रों (**सुदशसम्**) उत्तम कर्मा (**सवितारम**) सविता (**देवान्**) देवों को (**अवसे**) रक्षा के लिए (**हवामहे**) प्राप्त करें ।

भावार्थः अन्तरिक्ष, द्यु और पृथिवी, अग्नि, वायु और सूर्य, मरुत्, प्रकाशमान लोक समुदाय अपनी महिमा से विराजमान हैं । इनको और आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, और सविता देवों को हम ज्ञान में प्राप्त करें ॥४॥

सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥५॥

पदार्थः—(**धीभिः**) अपने कर्मों वा व्यापारों से युक्त (**सरस्वान्**) अन्तरिक्ष लोक (**धृतव्रतः**) अन्नों के धारक (**वरुणः**) जल, (**पूषा**) पृथिवी (**महिमा**) महत्व से युक्त (**विष्णुः**) सूर्य, (**वायुः**) वायु (**अश्विना**) प्राण और अपान (**ब्रह्मकृतः**) वेदार्थद्रष्टा, (**अमृताः**) अमृत (**विश्ववेदसः**) समस्त धनों के धारक होते हुए (**नः**) हमें (**अंहसः**) पाप के (**शर्म**) शीर्ण करने वाले (**त्रिवरूथम्**) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुख को (**अंसन्**) दें ।

भावार्थः अपने कर्मों सहित अन्तरिक्ष लोक अन्नों का धारक वरुण=जल पृथिवी, सूर्य, वायु प्राण और अपान, वेदार्थ द्रष्टा, अमृत =अमर पद को प्राप्त जीवन्मुक्त लोग समस्त धनों के धारक होते हुए हमें पाप के छेदक त्रिविध सुख को देवें ॥५॥

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६॥

पदार्थः—(**यज्ञः**) यज्ञ (**वृषा**) कामों का वर्षक हो, (**यज्ञियाः**) यज्ञार्ह (**देवाः**) देव लोग (**वृषणः**) कामनाओं के वर्षक (**सन्तु**) हों, (**देवाः**) विद्वान् लोग भी (**वृषणः**) कामनाओं को पूर्ण करने वाले हों, (**हविष्कृतः**) हवि प्रदान करने वाले (**वृषणः**) सुख की वर्षा करने वाले हों (**ऋतावरी**) जलों वाली (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**वृषणा**) कामों की वर्षा करने वाली हों (**पर्जन्यः**) मेघ (**वृषा**) वर्षा वाला हो (**वृषस्तुभः**) स्तुतिकर्ता भी (**वृषणः**) सुख की वर्षा करने वाले हों ।

भावार्थः—यज्ञ, यज्ञार्ह देव, विद्वान् लोग, हवि देने वाले, द्यु और पृथिवी लोक, मेघ, स्तुतिकर्ता आदि सभी सुख की वर्षा करने वाले हों ॥६॥

अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥७॥

पदार्थः—(**वृषणा**) वर्षणशील (**पुरुप्रशस्ता**) बहुतों से प्रशस्त (**अग्नि सोमा**) जगत् के दो तत्व उष्ण और शीत की (**वाजसातये**) ज्ञान लाभ के लिए (**उपब्रुवे**) वर्णन करता हूं, (**वृषणो**) शक्तिशाली (**यौ**) जो अग्नि और सोम (**वृषणः**) शक्ति आदि की वर्षा करने वाले दूसरे (**देवयज्यया**) यज्ञ से (**इजिरे**) यज्ञ करते हैं, (**ता**) वे दोनों (**नः**) हमें (**त्रिवरूथम्**) आधिभौतिक, आधदैविक और आध्यात्मिक (**शर्म**) सुख को (**वियंसतः**) देते हैं।

भावार्थः— वर्षण शील, सबके द्वारा प्रशस्त किये जाने वाले जगत् के दो तत्त्वों अग्नि और सोम (उष्णता और ठण्ड) का ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए मैं वर्णन करता हूं। वे और ऋत्विग्जन संसार यज्ञ को करते हैं। ये दोनों हमें तीनों प्रकार का सुख देते हैं ॥७॥

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥८॥

पदार्थः—(**धृतव्रताः**) धारण किया है कर्मों को जिन्होंने, (**क्षत्रियाः**) बलशाली, (**यज्ञनिष्कृतः**) यज्ञ को पूरा करने वाले, (**बृहद्दिवाः**) महान् तेजों वाले, (**अध्वराणाम्**) प्राण और रसों के (**अभिश्रियः**) आश्रयभूत, (**अग्निहोतारः**) अग्नि जिनका होता है, (**ऋतसापः**) सत्यभाक् (**अद्रुहः**) किसी को हानि न पहुँचाने वाले (**देवाः**) दिव्य पदार्थ (**वृत्रतूर्ये**) मेघ के साथ होने वाले युद्ध में (**अपः**) जलों को (**अनु असृजन्**) वृष्टि रूप में उत्पन्न करते हैं।

भावार्थः—अपने कर्मों के करने वाले शक्तिशाली, यज्ञ के निष्पादक महा तेजस्क, प्राण और रसों के आधारभूत, अग्नि जिनका होता है, सत्यभाक्, किसी को हानि न पहुँचाने वाले ये इन्द्र आदि दिव्य पदार्थ मेघ के युद्ध में जलों को वृष्टि रूप में वर्षाते हैं ॥८॥

द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रूतये वशं देवासस्तन्वी३नि मामृजुः ॥९॥

पदार्थः—(**देवासः**) इन्द्र आदि दिव्य पदार्थ (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**व्रता**) अपने कर्म से, (**आपः**) जलों (**ओषधीः**) ओषधियों (**यज्ञिया**) यज्ञ सम्बन्धी (**वनिनानि**) वन में होने वाली पलाश आदि समिधाओं के वृक्षों को (**जनयन्**) उत्पन्न करते हुए (**स्वः**) प्रकाशमान (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**आ पप्रुः**) अपने तेज से पूरित करते हैं (**अतये**) सबके रक्षार्थ (**तन्वि**) अपने संघात में (**वशम्**) यज्ञिय हव्य आदि को (**नि मामृजुः**) अलंकृत करते हैं।

भावार्थः— इन्द्र आदि दिव्य पदार्थ द्यु और पृथिवी लोक को लक्ष्य में रखकर अपने कर्म से जल, ओषधि, यज्ञिय पलाश आदि वृक्ष को उत्पन्न करते हुए प्रकाशमान आकाश को अपने तेज से पूरित करते हैं। सबके रक्षार्थ वे यज्ञ में दिये गये हव्य पदार्थ को अपने में ग्रहण करते हैं ॥९॥

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१०

पदार्थः—(**दिवः**) द्यु लोक के (**धर्तारः**) धारयिता (**ऋभवः**) किरणें (**सुहस्ता**) उत्तम गति वाले देवगण (**महिषस्य**) महान् (**तन्यतोः**) गर्जन के करने वाले (**वातापर्जन्या**) वात और पर्जन्य, (**आपः**) जलें (**ओषधीः**) ओषधियें (**नः**) हमारी (**गिरः**) वेदमयी वाणियों को (**प्रतिरन्तु**) सर्वत्र फैलावें, (**रातिः**) दाता (**भगः**) ऐश्वर्य युक्त (**अर्यमा**) यज्ञ और (**वाजिनः**) अग्नि, वायु और सूर्य (**मे**) मेरे (**हवम्**) प्रशंसा को (**यन्तु**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—द्युलोक की धारयिता प्रकाश किरणें, उत्तम गतियों वाले इन्द्र आदि देव, गर्जनावाले वायु और मेघ जल, ओषधियें हमारी वेदमयी वाणी को सर्वत्र फैलावें। ऐश्वर्य और देनें की शक्ति वाले यज्ञ, अग्नि, वायु और सूर्य मेरे प्रशंसा-वचन को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥११॥

पदार्थः (**समुद्रः**) समुद्र, (**सिन्धुः**) स्यन्दनवती नदी, (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्षस्थ (**रजः**) लोक (**अज एक पात**) सूर्य, (**अर्णवः**) जलयुक्त (**तनयुत्नुः**) माध्यमिका वाक् (**अहिर्बुध्न्यः**) अन्तरिक्षस्थ मेघ, ये (**विश्वे देवासः**) विश्वदेव (**मे**) मेरे (**वचांसि**) वचनों को (**शृणवत**) सुनाने के साधन बनें (**उत**) और (**सूरयः**) विद्वान् लोग (**मम**) मेरे वचनों को सुनें।

भावार्थः समुद्र, सिन्धु, अन्तरिक्ष लोक, सूर्य, जल युक्त माध्यमिका वाक्, अन्तरिक्षस्थ मेघ और विश्वेदेव मेरे वचनों को सुनाने के माध्यम बनें और विद्वज्जन भी मेरे वचन को सुनें ॥११॥

स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्रणयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत ॥१२॥

पदार्थः-- हे देव=विद्वानो ! (**मनवः**) हम मनुष्य (**वः**) आपके (**देववीतये**) यज्ञ के (**स्याम**) होवें, (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**साधुया**) कल्याणयुक्त (**प्राञ्चम्**) सम्पन्न (**प्रणयत**) करें । (**आदित्याः**) हे आदित्य संज्ञक विद्वानो (**रुद्राः**) हे रुद्र संज्ञक विद्वानो (**वसवः**) हे वसु संज्ञक विद्वानो ! (**सुदानवः**) हे उत्तम विद्यादाता लोग (**इमा**) इन (**शस्यमानानि**) उच्चारण किये जा रहे (**ब्रह्म**) वेद मन्त्रों को (**जिन्वत**) प्रेम से सुनें ।

भावार्थः-- हे विद्वानो ! आप के उपदेशानुसार यज्ञ के हम मनुष्य कर्त्ता हों । हमारे यज्ञ को आप लोग अपनी योग्यता से संपन्न और कल्याण कारक बनावें, हे आदित्य, हे रुद्र, हे वसु, हे सुदानु हमारे इन मन्त्रों को आप सुनें ॥१२॥

दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः ॥१३॥

पदार्थः--(**प्रथमा**) मुख्य (**पुरोहिता**) पुरोहित (**दैव्या होतारा**) दैव्य होता अग्नि और आदित्य को हवि आदि से तृप्त करता हूँ, (**ऋतस्य**) यज्ञ के (**पन्थाम्**) मार्ग का (**साधुया**) निर्विघ्न (**अन्वेमि**) अनुगमन करता हूं । (**प्रतिवेशम्**) अत्यन्त समीप रहने वाले, (**क्षेत्रस्य**) शरीर के (**पतिम्**) स्वामी आत्मा को प्राप्त करता हूं, तथा (**अप्रयुच्छतः**) प्रमाद न करने वाले सदा कार्य में तत्पर (**अमृतान्**) अमृत रूप (**विश्वान्**) समस्त (**देवान्**) विद्वानों से (**ईमहे**) ज्ञान की याचना करता हूँ ।

भावार्थ-- मुख्य और पुरोगामी अग्नि और आदित्य को हवि आदि से युक्त करता हूँ । यज्ञ के मार्ग का विना विघ्न के अनुगमन करता हूँ । अपने से अत्यन्त समीपवर्ती आत्मा को प्राप्त करता हूँ और सदा कार्य में तत्पर अमृत रूप विद्वानों से ज्ञान ग्रहण के लिए याचना करता हूं ॥१३॥

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत् स्वस्तये ।
प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४॥

पदार्थः--(**देवान्**) देवों की (**ईडानाः**) स्तुति करते हुए (**वसिष्ठासः**) ऋत्विग् लोग (**पितृवत्**) कर्मकाण्डी लोगों की भांति (**ऋषिवत्**) मन्त्रद्रष्टा लोगों की भांति (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**वाचम्**) मंत्रमयी वाणी का (**अक्रत**) उच्चारण करते हैं, (**देवासः**) देव लोग (**प्रीताः**) प्रसन्न हुए (**ज्ञातयः**) वा बन्धुओं की (**इव**) भांति (**अस्मे**) हमें (**कामम्**) यथेच्छ (**वसु**) धन को (**आ अव धूनुता**) प्रदान करते हैं ।

भावार्थः--देवों की स्तुति करते हुए ऋत्विग् लोग कर्म में निपुण लोगों की भांति, मंत्रद्रष्टा की भांति, कल्याणार्थ मन्त्रमयी वाणी का प्रयोग करते हैं । ये देवजन प्रसन्न हुए बन्धु के समान हम को यथेच्छ धन प्रदान करते हैं ॥१४॥

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥

पदार्थः--(**ये**) जिन देवों ने (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**अभिप्रतस्थुः**) धारण किया है उन (**अमृतान्**) अमरण धर्मा (**देवान्**) दिव्य शक्तियों की यज्ञ में (**वसिष्ठः**) ज्ञानी पुरोहित (**ववन्दे**) वन्दना करता है (**ते**) वे (**नः**) हमें (**उरुगायम्**) प्रशस्त धन को (**अद्य**) अभी (**रासन्ताम्**) देवें, हे विद्वानो ! (**यूयम्**) आप लोग (**नः**) हमारी (**सदा**) सदा (**स्वस्तिभिः**) कल्याणदायी साधनों द्वारा (**पात**) रक्षा करो ।

भावार्थः--जिन दिव्यशक्तियों ने समस्त लोकों को धारण कर रखा है उन अमरणधर्मा दिव्य शक्तियों की यज्ञ में ज्ञानी पुरोहित वन्दना करता है । वे हमें प्रशस्त धन देवें । हे विद्वानो ! आप लोग हमारी सदा कल्याणकारक साधनों से रक्षा करें ।

यह दशम मण्डल में छयासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६७

ऋषिः १—१२ **अयास्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—१ विराट्-त्रिष्टुप् । २—७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ८-१० १२ **त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

पदार्थः—विश्वहित का संपादक अचल संकल्प यजमान कहता है -(**नः**) हमारे (**पिता**) पिताने (**बृहतीम्**) महती (**सप्तशीर्ष्णीम्**) सप्त छन्दों वाली (**ऋतप्रजाताम्**) यज्ञ और ज्ञान के लिए उत्पन्न अथवा परमेश्वर से उत्पन्न (**इमाम्**) इस (**धियम्**) बुद्धि और क्रिया को (**अविन्दत**) प्राप्त किया है, मैं (**अयास्यः**) अचलमति (**विश्वजन्यः**) विश्व का हितैषी (**इन्द्राय**) भगवान् के लिए उसके (**उक्थम्**) स्तोत्र को (**शंसन्**) गाता हुआ इसको (**तुरीयम्-स्वित्**) चतुर्थ पीढी को भी (**जनयत्**) प्रेरणा देता हूँ ।

भावार्थः—विश्वहित का साधक अचलमति यजमान कहता है कि हमारे पिता, प्रपिता ने सात छन्दों से युक्त, यज्ञ से उत्पन्न जिस महती बुद्धि और क्रिया की साधना की है, मैं अचलमति विश्वहित का साधक यजमान भगवान् के स्तोत्र को गाता हुआ चतुर्थ पीढ़ी को भी इसका उपदेश देता हूँ ॥१॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२॥

पदार्थः—(**ऋतम्**) ज्ञान एवं कर्म और सत्य की (**शंसन्तः**) प्रशंसा करते हुए अथवा उपदेश करते हुए (**ऋजु**) सरल सत्य मार्ग का (**दीध्यानाः**) ध्यान रखते हुए (**दिवः**) ज्ञान के (**पुत्रासः**) पुत्र अर्थात् अत्यन्त ज्ञानी (**असुरस्य**) यज्ञाग्नि के (**वीराः**) वीर (**अङ्गिरसः**) तपस्वी अग्निविद्या विद्याविद् याज्ञिक (**विप्रम्**) मेधावी के (**पदम्**) पद को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**यज्ञस्य**) यज्ञ के (**धाम**) कर्म को (**प्रथमम्**) प्रथम (**मनन्त**) मानते हैं ।

भावार्थः— ज्ञान, कर्म, एवं सत्य की उपदेशना करते हुए, सरल सत्य मार्ग का ध्यान रखते हुए, ज्ञान के पुत्र=अत्यन्त ज्ञानी, यज्ञाग्नि के वीर रक्षक तपस्वी अग्निविद्याविद् याज्ञिक मेधावी के पद को धारण करते हुए यज्ञ के कर्म को प्रथम स्थान देते हैं ॥२॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

पदार्थः—(**हंसैः इव**) हंसों के समान (**सखिभिः**) मित्रभूत (**वावदद्भिः**) स्तुति करते हुए स्तोताओं के साथ (**अश्ममन्यानि**) पाषाणमय (**नहना**) बंधनों के समान अनेक बंधनों को (**वि अस्यन्**) शिथिल करता हुआ (**बृहस्पतिः**) वेदज्ञ महाविद्वान् (**गाः**) वेद वाणियों का (**अभि कनिक्रदत्**) उच्चारण करता है, (**उत**) और (**विद्वान्**) यज्ञ और वेद के मर्म को जानने वाला वह (**प्रस्तौत्**) सामगान का प्रस्ताव करता है (**उत च**) और (**अगायत्**) गाता है ।

भावार्थः- हंसों के समान मधुरवाणी से स्तुति करते हुए स्तोताओं के साथ होकर पाषाणवत् कठिन बंधनों के समान बंधनों को शिथिल कर वेदज्ञ महाविद्वान् वेदवाणी का पाठ करता है और यज्ञ एवं वेद के मर्म का जानने वाला वह सामगान का प्रस्ताव करता है और गाता है ॥३॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) वाणी का पालक विद्वान् (**गुहा**) अन्तःकरण रूपी गुफा में (**तिष्ठन्तीः**) स्थित (**गाः**) परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाणी को जो (**द्वाभ्याम्**) मुख और कण्ठ से (**अवः**) नीचे तथा (**एकया**) नाभि से (**परः**) परे हैं और (**अनृतस्य**) असत्यरूपी अन्धकार के (**सेतौ**) सेतु में हैं, इनको प्रकट करता है (**तमसि**) अन्तःकरण के अन्धकार में (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**इच्छन्**) चाहता हुआ (**उस्रा**) प्रकाश की रेखाओं को (**उत् आ अकः**) करता है तथा (**हि**) निश्चय से ही (**तिस्रः**) तीनों को (**वि आवः**) खोलता है ।

भावार्थः वेदवाणी का ज्ञाता विद्वान् अन्तःकरण में छिपी और व्यवहार में न आने वाली परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाणी को जो कि मुख और कण्ठ से नीचे नाभि के परे असत्यरूपी अन्धकार के सेतु भूत स्थान में हैं उनको प्रकट करता है। अन्धकार में ज्ञान के प्रकाश की इच्छा करता हुआ वह ज्ञान प्रकाश की किरणों को उत्पन्न कर तीनों को खोलता है ॥४॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५॥

पदार्थः – वह (**बृहस्पतिः**) अग्नि (**शयथा**) स्थिति के स्थान अन्तरिक्ष में (**अपाचीम्**) पराङ्मुखी (**पुरम्**) पूरक (**इम**) जल को (**विभिद्य**) भेदन करके (**उदधेः**) मेध के (**साकम्**) साथ ही (**त्रीणि**) तीन (**उषसम**) उषा, (**सूर्यम्**) सूर्य, (**गाम**) किरणों को (**निः अकृन्तत**) निर्गत करता है, यह (**स्तनयन्**) गर्जते हुए (**द्यौः**) अन्तरिक्ष के (**इव**) समान (**अर्कम**) प्रशंसनीय सूर्य को (**विवेद**) लब्ध करता है ।

भावार्थः– अग्नि अन्तरिक्ष में पराङ्मुख पूरक जलों के ओस रूपी छादन को भेदन करके उषस् सूर्य और किरणों को साथ ही निर्गत करता है । वह गर्जते अन्तरिक्ष के समान प्रशंसनीय सूर्य को लब्ध करता है ॥५॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥

पदार्थः –(**इन्द्रः**) वायु अथवा सूर्य (**दुघानाम्**) जल को दोहन करने वाली (**गवाम्**) किरणों के (**रक्षितारम्**) छिपा रखने वाले (**वलम्**) मेघ के अन्धकार को (**करेण इव**) कर के समान (**रवेण**) शब्द से, (**वि चकर्त**) काटता है, (**स्वेदाञ्जिभिः**) जल के प्रतिश्यायों को क्षरण करने वाले मरुतों के साथ (**आशिरम्**) सहयोग वा संयोग को (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**पणिम**) मेघ को (**अरोदयत्**) नष्ट करता है (**गाः**) छिपी किरणों को (**आ अमुष्णात**) हर लेता है ।

भावार्थः—वायु अथवा सूर्य जल को दोहन करने वाली किरणों को छिपाकर रखने वाले मेघान्धकार को करके समान शब्द से काटता है और मरुतों के साथ संयोग को चाहता हुआ मेघ को नष्ट करता और छिपी किरणों को हर लेता है ॥६॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥७॥

पदार्थः—(**सः**) वह बृहस्पति=वायु वा सूर्य (**सत्येभिः**) यथार्थ बल वाले (**सखिभिः**) सखाभूत (**शुचद्भिः**) दीप्यमान (**धनसैः**) धन के दाता मरुतों के साथ (**गोधायसम्**) किरणों को छिपाने वाले (**इम**) इस (**वलम्**) मेघान्धकार को (**वि अदर्दः**) विदारित करता है, (**ब्रह्मणः पतिः**) वह बृहस्पति=वायु वा सूर्य (**वृषभिः**) वर्षा करने वाले (**धर्मस्वेदेभिः**) बूंदों को क्षरण करने वाले (**वराहैः**) जलाहारी मेघों के द्वारा (**द्रविणम्**) धन आदि को (**व्यानट्**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः– वह वायु वा सूर्य मरुतों के साथ किरणों को छिपाने वाले इस मेघान्धकार को विदारित करता है । वह अन्नादि का स्वामी वर्षा करने वाले बूंदों की वर्षा करने वाले मेघों के द्वारा अन्न धन आदि को प्राप्त करता है ॥७॥

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८॥

पदार्थः– (**गाः**) किरणों को (**इयानासः**) प्राप्त करते हुए (**सत्येन**) यथार्थ (**मनसा**) बल से युक्त (**ते**) वे मरुद्गण (**धीभिः**) अपने कर्मों से सूर्य को (**गोपतिम**) किरणों का स्वामी करने की (**इषणयन्तः**) इच्छा करते हैं । (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**मिथोऽवद्यपेभिः**) परस्पर अवद्य=विघ्नकारी मेघों से रक्षा करने वाले **स्वयुग्भिः**) स्वयं युक्त मरुतों से (**उस्रियाः**) प्रकाशमान किरणों को **उदसृजत**) बाहर निकालता है ।

भावार्थः—किरणों को प्राप्त करते हुए यथार्थ बल से युक्त मरुद्गण अपने कर्मों द्वारा सूर्य को किरणों का स्वामी बनाना चाहते हैं । सूर्य मेघों से किरणों को बचाने वाले मरुतों के द्वारा प्रकाशमान किरणों को बाहर निकालता है ॥८॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९॥

पदार्थः (**सधस्थे**) सहस्थान अन्तरिक्ष में (**सिंहम**) सिंह के (**इव**) समान (**नानदतम्**) शब्दायमान (**वृषणम्**) वर्षा करने वाले (**जिष्णुम**) जयनशील (**तम**) उस (**बृहस्पतिम**) वायु को (**वर्धयन्तः**) हव्य आदि से बढाते हुए हम शूरों से किये जाने वाले (**भरे भरे**) यज्ञों में (**शिवाभिः**) कल्याणकारी (**मतिभिः**) कर्मों से (**अनुमदेम**) तृप्त करें ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष में सिंह के समान गर्जने वाले वर्षा के हेतुभूत जयनशील वायु को हवि आदि से बढ़ाते हुए हम शूरों द्वारा किये जाने वाले यज्ञों में कल्याणकारी कर्मों से तृप्त करें ॥९॥

यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

पदार्थः—वह बृहस्पति=सूर्य (**यदा**) जब (**वाजम्**) वर्षा आदि के द्वारा लोगों को (**विश्वरूपम्**) नानारूप (**वाजम्**) अन्न आदि धन को (**असनत्**) देता है (**द्याम्**) अन्तरिक्ष में (**आ अरुक्षत्**) ऊपर चढ़ता है (**उत्तराणि**) उत्तरवर्ती (**सद्म**) स्थानों पर चढ़ता है तब (**वृषणम्**) बलशाली (**बृहस्पतिम्**) सूर्य को (**आसा**) मुख से (**ज्योतिः**) ज्योति को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**नाना**) विविध होते हुए देव लोग=किरणें (**वर्धयन्तः**) बढाती हुई होती हैं।

भावार्थः—जब सूर्य वर्षा आदि के द्वारा नाना प्रकार के अन्न आदि को प्रजा को देता है और अन्तरिक्ष में ऊपर की ओर आरोहण करता और उत्तरायण की तरफ चढ़ता है तब सूर्य-किरणें मुख में तेज को धारण किये हुए इसे बढ़ाती हैं ॥१०॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

पदार्थः—हे देवो=विद्वानो ! आप (**वयोधै**) अन्न की प्राप्ति के लिए (**आशिषम्**) अपने आशीर्वादों को (**सत्याम्**) सत्य (**कृणुत**) करो (**स्वेभिः**) अपने (**एवैः**) ज्ञान और गमन आदि से (**हि**) निश्चय (**कीरिम्**) स्तोता की (**चित्**) भी (**अवथ**) रक्षा करो, (**पश्चा**) पश्चात् (**विश्वाः**) सारे (**मृधः**) दुःख और बुराइयें (**अप भवन्तु**) दूर होवें, (**तत्**) हमारे उन वचनों को (**विश्वमिन्वे**) सबको प्रीति करने वाले (**रोदसी**) हे अध्यापक उपदेशक ! आप (**शृणुतम्**) सुनें।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप अन्न आदि की प्राप्ति के लिए अपने आशीर्वचनों को सत्य सिद्ध करें। अपने ज्ञान और गमन आदि से स्तोता की रक्षा करें। पश्चात् समस्त दुःख और बुराइयां दूर होवें। हे सबके प्रीति करने वाले अध्यापक उपदेशक ! आप हमारे वचनों को सुनें ॥११॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) सूर्य (**मह्ना**) अपने सामर्थ्य से (**महतः**) महान् (**अर्णवस्य**) जल वाले (**अर्बुदस्य**) मेघ के (**मूर्धानम्**) शिर को (**वि अभिनत्**) विच्छिन्न करता है, (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) मारता है (**सप्तसिन्धून्**) सर्पणशील और स्यन्दमान जलों को (**अरिणात्**) बहाता है ये (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**नः**) हमारी (**देवैः**) दिव्य गुणों द्वारा (**प्रावतम्**) रक्षा करते हैं।

भावार्थः—सूर्य अपनी सामर्थ्य से महान्, जलयुक्त मेघ के शिर को काटता है, मेघ को मारता है, सर्पणशील और बहने वाले जलों को प्रवाहित करता है। द्यु और पृथिवी लोक अपने गुणों और क्रियाओं से हमारी रक्षा करते हैं ॥१२॥

यह दशम मण्डल में सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६८

ऋषिः—१—१२ अयास्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, १२ विराट्त्रिष्टुप् । २, ८—११ त्रिष्टुप् । ३—७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन् ॥१॥

पदार्थः—(**उदप्रुतः**) जल पर तैरने वाले (**वयः**) पक्षियों से सस्य की (**रक्षमाणाः**) रक्षा करने वाले किसानों के (**न**) समान (**वावदतः**) पुनः पुनः शब्द करती हुई (**अभ्रियस्य**) मेघस्थ विद्युत् के (**घोषाः**) शब्दों के (**इव**) समान (**गिरिभ्रजः**) मेघों से झरने वाली (**ऊर्मयः**) उर्मियों के (**न**) समान (**अर्काः**) स्तोता लोग (**मदन्तः**) प्रसन्न होते हुए (**बृहस्पतिम्**) ब्रह्माण्ड और वेदवाणी के स्वामी प्रभु की (**अभि अनावन्**) स्तुति करते हैं।

भावार्थः—जल पर तैरने वाले पक्षियों में सस्य की रक्षा करने वाले किसान के समान, वार-वार गर्जने वाली मेघस्थ विद्युत् के घोष के समान, मेघों से च्युत जल की उर्मियों के समान स्तोता जन वेदवाणी और महान ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर की हर्षित हो स्तुति करते हैं ॥१॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२॥

पदार्थः—(**आंगिरसः**) अंगारों का पुत्र=अंगारमय वृहस्पति=सूर्य (**नक्षमाणः**) प्रकाश से व्याप्त करता हुआ (**भग इव इत्**) भग=प्रातःकालिक दिन भाग के समान (**अर्यमणम्**) रात्रि के पूर्व होने वाले सन्नाटे को (**गोभिः**) किरणों से (**संनिनाय**) संयुक्त करता है । (**मित्रः**) मित्र के **न**) समान (**जने**) जन-समुदाय में पति-पत्नी को (**अनक्ति**) संगत करता है, (**बृहस्पते**) यह सूर्य (**आजौ**) संग्राम में (**आशून्**) शीघ्रगामी अश्वों के समान अपनी किरणों को (**वाजय**) गतिमान करता है ।

भावार्थः—अङ्गारमय यह सूर्य अपने प्रकाश से दिशाओं को व्याप्त करता हुआ दिन के प्रथम भाग के समान ही रात्रि के सन्नाटे को किरणों से संयुक्त करता है । वह मित्र के समान जन समुदाय में पति-पत्नी को भी संयुक्त करता है । रात्रि होने पर इन्हें भी संयुक्त=सहयुक्त करता है । यह सूर्य संग्राम में शीघ्रगामी घोड़ों के समान अपनी किरणों को गतिमान करता है ॥२॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यबमिव स्थिविभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(**साध्वर्याः**) उत्तम जलों को लाने वाली, (**अतिथिनीः**) निरन्तर गमन वाली, (**इषिराः**) इषिर (**स्पार्हाः**) स्पृहणीय, (**सुवर्णाः**) अच्छे वर्णों वाली, (**अनवद्यरूपा**) शुद्ध रूपों वाली इन (**गाः**) किरणों को (**पर्वतेभ्यः**) मेघान्धकारों से (**वितूर्य**) निकालकर (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**स्थिविभ्यः**) कुसीदी लोगों से (**यवम् इव**) यथ आदि के समान (**ऊपे**) अन्य वायु आदि देवों के समीप (**निः**) निर्गत कर देता है ।

भावार्थः—उत्तम जलों को लाने वाली, निरन्तर गमनशील, इषिर, स्पृहणीय, अच्छे रंगों वाली, शुद्ध रूपों वाली किरणों को मेघान्धकार से सूर्य वायु निकालकर देवों के समीप उसी प्रकार ला देता है जिस प्रकार सूदखोरों अथवा उधार पर देने वालों से यव आदि अनाज को लाकर किसान बोते हैं ॥३॥

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥

पदार्थः (**मधुना**) जल से पृथिवी को (**आप्रुषायन्**) सिक्त करता हुआ (**ऋतस्य** , जल के (**योनिम्**) स्थान मेघ को (**अवक्षिपन्**) विखेरता हुआ (**अर्कः**) प्रशस्त (**वृहस्पतिः**) सूर्य (**द्योः**) द्युलोक से (**उल्कामिव**) उल्का के समान (**अश्मनः**) व्याप्त मेघ से (**गाः**) किरणों को (**उद्धरन्**) निकालता हुआ (**उद्ना**) वृष्टि जल के (**इव**) समान (**भूम्याः**) भूमि के (**त्वचम्**) ऊपर की छाल को (**बिभेद**) छिन्न-भिन्न करता है ।

भावार्थः—जल से पृथिवी को सिक्त करता हुआ, मेघ को बिखेरता हुआ, प्रशस्त सूर्य द्युलोक से उल्का के समान, घिरे मेघ से किरणों को निकालता हुआ वृष्टि जल के समान भूमि के ऊपर पड़ी पपड़ी को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥४॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५॥

पदार्थः—(**उद्नः**) पानी से (**शीपालम्**) शैवाल का (**वातः इव**) वायु की भांति (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (तमः) अन्धकार को (**अप आजत्**) दूर करता है, (**अभ्रम्**) मेघ को (**वातः इव**) वायु की भांति (**अनुमृश्य**) सम्पर्क करके (**वलस्य**) मेघान्धकार से (**गाः**) किरणों को (**आ आ चक्र**) चारों तरफ प्रकट कर देता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार वायु पानी से शैवाल=काई को हटा देता है उसी प्रकार सूर्य अपनी ज्योति से अन्तरिक्ष से अन्धकार को दूर फेंकता है । वह मेघ से किरणों को उसी प्रकार सब तरफ विखेर कर फैला देता है जैसे वायु मेघ को फैला देता है ॥५॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥

पदार्थः— (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**अग्नितपोभिः**) अग्नि के ताप वाले (**अर्कैः**) किरण तेजों से (**यदा**) जब (**पीयतः**) जल को पीये हुए (**वलस्य**) मेघ के (**जसुम्**) बल को वा अदन शक्ति को (**भेदः**) उसी प्रकार भेदन करता है (**न**) जिस प्रकार (**जिह्वा**) जीभ (**दद्भिः**) दांतों से (**परिविष्टम्**) खाये हुए भक्ष्य को (**आवत्**) खाती है, तब (**उस्रियाणाम्**) किरणों के समान (**निधीन्**) समूह को (**आविः**) आविष्कृत=प्रकट कर देता है।

भावार्थः—जिस प्रकार जिह्वा निगले पदार्थ को दांतों से खा जाती है उसी प्रकार जब सूर्य जल को पीये हुए मेघ के बल को अपने अग्नि के तापयुक्त तेजों से भेदन कर देता है तब किरणों के समूह को वह आविष्कृत=प्रकट कर देता है ।।६।।

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) सूर्य (**गुहा**) गूढ (**सदने**) स्थान अन्तरिक्ष में (**स्वरीणाम्**) मेघों के गर्जन रूपी शब्दों को करती हुई (**आसाम्**) इन किरणों (**त्यत्**) उस (**नाम**) तेज और नाम को (**अगत**) स्वभाव से संपृक्त कर लेता है (**यत्**) जिस कारण से उस समय (**पर्वतस्य**) मेघ के अन्दर स्थित **उस्रियाः** प्रकाशमान किरणें (**त्मना**) अपने आप ही (**भित्वा**) मेघ का भेदन कर (**उत् आजत्**) उद्गत होती हैं (**इव** ; जिस प्रकार (**शकुनस्य**) पक्षी के (**आण्डानि**) अण्डों को (**भित्वा**) भेदन कर (**गर्भम्**) बच्चा बाहर आता है ।

भावार्थः—सूर्य मेघ की गूढ गुफा अन्तरिक्ष में मेघों द्वारा गर्जन कराती हुई इन किरणों के प्रभाव को स्वभाव से संपृक्त कर लेता है। वे मेघान्तर्वर्त्ती किरणें स्वयं ही मेघ को भेदन कर उसी प्रकार बाहर आ जाती हैं जिस प्रकार पक्षी के अण्डे को फोड़कर बच्चा बाहर आ जाता है ।।७।।

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) वायु (**दीने**) शुष्क (**उदनि**) जल में (**क्षियन्तम्**) बसती हुई (**मत्स्यम्**) मछली के (**इव**) समान (**अश्ना**) मेघ से (**पिनद्धम्**) ढके (**मधु**) जल को (**परि अपश्यत्**) सर्वत्र पाता है (**तत्**) उसे (**विरवेण**) शब्दों से (**विकृत्य**) काट कर (**वृक्षात्**) वृक्ष से (**चमसम् न**) सोम पात्र के समान (**निः जभार**) निकाल देता है ।

भावार्थः—सूखे जल में स्थित मछली की भांति मेघ में छिपे जल को सूर्य प्राप्त कर लेता है और जिस प्रकार वृक्ष से काटकर सोमपात्र बनाया जाता है उसी प्रकार मेघ को काटकर जल को हरता है ।।८।।

सोषामविन्दत्स स्व१ः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**बृहस्पतिः**) वायु (**उषाम्**) उषा को (**प्रविन्दत्**) प्राप्त करता है, (**सः**) वह (**स्वः**) आदित्य को, (**सः**) वह (**अग्निम्**) अग्नि को (**अविन्दत्**) प्राप्त करता है, (**सः हि**) वह ही (**अर्केण**) तेज से (**तमांसि**) अन्धकारों को (**विबाधे**) हटाता है, वह (**गोवपुषः**) किरणों से घिरे शरीर वाले (**वलस्य**) मेघान्धकार की (**मज्जानम्**) मज्जा के समान जलतत्त्व को (**पर्वणः न**) एक-एक पोरु के समान (**निः जभार**) निकालता है ।

भावार्थः—वह वायु उषा को प्राप्त करता है, आदित्य को प्राप्त करता है, और अग्नि को प्राप्त करता है । तथा किरणों से घिरे मेघ की मज्जा को पोरु-पोरु के समान निकालना है ।।९।।

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥

पदार्थः—(**इव**) यथा (**हिमा**) पाला वा तुषार से (**पर्णा**) कमल के पत्ते (**मुषिता**) चुरा लिए जाते हैं वैसे ही मेघान्धकार से (**वनानि**) किरणें आदि छिपाये जाते हैं । (**बृहस्पतिना**) सूर्य के आगमन से (**वलः**) मेघ (**गाः**) किरणों को (**अकृपयत्**) वापस करता है इस प्रकार वह (**अनानुकृत्यम्**) न अनुकरण करने योग्य (**अपुनः**) फिर न किया जाने वाला कर्म (**चकार**) करता है (**सूर्यमासा**) सूर्य और चन्द्रमा (**मिथः**) परस्पर दिन और रात्रि में (**उत् चरातः**) चलें (**यात्**) ऐसा किया ।

भावार्थः—जिस प्रकार हेमन्त का तुषार कमल के पत्तों को झाड़ देता है उसी प्रकार मेघान्धकार ने किरणों को चुरा लिया था । सूर्य के आगमन से मेघ इन किरणों को वापस कर देता है । यह ऐसा कार्य है

जिसका न पुनरावर्तन और न अनुकरण हो। सूर्य और चन्द्रमा दिन और रात्रि से उदित होते हैं, ऐसा करता है ॥१०॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विददुगाः ॥११॥

पदार्थः—(**पितरः**) पालक देव गण (**कृशनेभिः**) सुवर्ण रंगों से (**श्यावम न**) श्याववर्ण के घोड़े की भांति (**द्याम्**) द्युलोक को (**नक्षत्रेभिः**) नक्षत्रों से (**अपिंशन्**) दीप्त करते हैं, (**रात्र्याम**) रात्रि में (**तमः**) अन्धकार को (**अदधुः**) रखा (**अहन्**) दिन में (**ज्योतिः**) प्रकाश को रखा । (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**अद्रिम**) मेघ को (**भिनद्**) विभेदन करता है और (**गाः**) किरणों को (**विदत**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—पालक देवगण कृष्णवर्ण को जिस प्रकार सुवर्ण रंग के अलंकारों से सजाया जाता है उसी प्रकार द्युलोक को नक्षत्रों से दीप्तिमान् करते हैं। रात्रि में अन्धकार और दिन में प्रकाश रखते हैं। सूर्य मेघ का भेदन कर किरणों को प्राप्त करता है ॥११॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥

पदार्थः—(**अभ्रियाय**) मेघस्थ विद्युत् के लिए (**इदम**) वह (**नमः**) आदर (**अकर्म**) हम प्रकट करते हैं (**यः**) जो बृहस्पति=वेद का विद्वान् (**पूर्वीः**) सनातन ऋचाओं को (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**आनोनवीति**) बोलता है (**सः**) वह (**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का पालक ही (**गोभिः**) गायों से (**सः**) वह अश्वों, (**सः**) वह (**वीरेभिः**) वीरों (**सः**) वह (**नृभिः**) मनुष्यों से युक्त (**वयः**) अन्न को (**नः**) हमें (**धातु**) देवें ।

भावार्थः—मेघस्थ विद्युत् के लिए यह हमारा स्वीकृति वा प्रशंसा-वचन है। जो सनातन ऋचाओं को बोलता है और जानता है वह वेदवाणी का पालक विद्वान् हमें गौ, घोड़े, वीर और मनुष्यों से युक्त अन्न प्रदान करे ॥१२॥

यह दशम मण्डल में अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६९

ऋषिः—१—१२ सुमित्रो वाध्र्यश्वः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २ विराड्जगती । ३, ७ त्रिष्टुप् । ४, ५, १२ निचृत्-त्रिष्टुप् । ६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८, १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९, ११ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ निषादः । ३—१२ धैवतः ॥

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

पदार्थः—(**वध्र्यश्वस्य**) बंधी किरणों वाले (**अग्नेः**) अग्नि के (**सदृशः**) दर्शनशक्तियां (**भद्राः**) कल्याणकारिणी होवें, (**प्रणीतिः**) उसकी नीति (**वामी**) कल्याणमयी हो, (**उपेतयः**) उसकी गतिविधि और व्यापार (**सुरणाः**) उत्तमता से रमणीय हों, (**यत्**) जब (**ईम**) इस अग्नि को (**सुमित्राः**) उत्तम मित्रभूत (**विशः**) मनुष्य प्रजा (**अग्रे**) पहले (**इन्धते**) प्रदीप्त करते हैं तब यह घृतेन) घृत आदि से (**आहुतः**) हुत अग्नि (**दविद्युतत**) अत्यन्त प्रदीप्त होता है, (**जरते**) स्तुत भी किया जाता है ।

भावार्थः—बंधे हुए प्रकाश किरणों से युक्त अग्नि की दर्शनशक्ति कल्याणकारिणी हो, उसके कार्य कल्याणमय हों। इसका समस्त व्यापार रमणीय हो। जब इस अग्नि को मित्रभूत मनुष्य प्रजा पहले प्रदीप्त करती है तब यह घृत सामग्री आदि से अन्तपर्यन्त प्रज्वलित होता है और स्तुत भी होता है ॥१॥

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्यइव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२॥

पदार्थः—बंधे तेज वाले अग्नि का (**घृतम्**) घृत (**बर्धनम**) बढ़ाने वाला है, (**घृतम्**) घृत उसका (**अन्नम**) अन्न है, (**घृतम उ**) घृत ही (**अस्य**) इसका (**मेदनम**) पोषक है (**घृतेन** , घृत से (**आहुतः**) हुत (**अग्निः**) अग्नि (**उर्विया**) अधिक (**विपप्रथे**) विस्तार को प्राप्त होता है, (**सर्पिरासुति**) घी की आहुति दिया जाने वाला यह अग्नि (**सूर्य इव**) सूर्य के समान (**रोचते**) दीप्त होता है ।

भावार्थः—दृढ़ तेजस्क अग्नि का घृत बढ़ाने वाला है, घृत ही उसका

अन्न, घृत ही उसका पोषक है । घृत से हुत वह अग्नि अत्यन्त विस्तार को प्राप्त होता है । घी की आहुति खाने वाला वह अग्नि सूर्य के समान दीप्त होता है ।।२।।

यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ।।३।।

पदार्थः– (**अग्ने ते**) इस अग्नि के (**यत्**) जिस (**अनीकम्**) रश्मि समूह को (**सुमित्रः**) उत्तम मित्र (**मनुः**) मेधावी मनुष्य (**समीधे**) भली प्रकार प्रज्वलित करता है (**तत्**) वह (**इदम्**) यह (**नवीयः**) नवीय है, (**स**) वह अग्नि (**रेवत्**) धनयुक्त की तरह (**शोच**) प्रज्वलित होता है, (**सः**) वह (**गिरः**) स्तुतियों को (**जुषस्व**) सेवन करता है, (**वाजम्**) शत्रु बल को (**दर्षि**) विदारित करता है (**सः**) वह (**इह**) हम में (**श्रवः**) अन्न को (**धाः**) देता है।

भावार्थः - इस अग्नि के रश्मि समूह को उत्तम मित्र मेधावी मनुष्य भली प्रकार जैसे प्रज्वलित करता है वह इसका नवीन रूप है, यह अग्नि धन युक्त हो जैसे इस प्रकार से प्रज्वलित होता है, वह स्तुतियों से भी युक्त होता है वह शत्रु बल को नष्ट करता है, और वह हम सबको अन्न आदि देता है ।।३।।

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ।।४।।

पदार्थः—(**यम्**) जिस (**त्वा**) इस अग्नि को (**पूर्वम्**) पहले (**ईडितः**) प्रशंसा किया हुआ (**वध्र्यश्वः**) संयतेन्द्रिय मनुष्य (**समीधे**) प्रज्वलित करता है (**सः**) वह अग्नि (**इदम्**) इस हवि को (**जुषस्व**) सेवन करता है (**सः**) वह (**नः**) हमारा (**स्तिपाः**) गृह का पालक (**भव**) होता है (**उत**) और (**तनूपाः**) अङ्गों की रक्षा करने वाला (**दात्रम्**) धन की (**रक्षस्व**) रक्षा करता है (**यत्**) जो (**इदम्**) यह (**ते**) इस अग्नि का है वह (**अस्मे**) हममें है ।

भावार्थः—जिस इस अग्नि को प्रशंसित संयतेन्द्रिय मनुष्य प्रज्वलित करता है वह अग्नि उसकी इस प्रदत्त हवि का ग्रहण करता है । वह हमारे गृह का रक्षक है और हमारे अंगों का रक्षक है । वह धन की रक्षा करता है । वस्तुतः जो उसका है वह हमें ही प्राप्त होता है ।।४।।

भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ।।५।।

पदार्थः—(**वाध्र्यश्वः**) बंधे तेजा वाला यह अग्नि (**द्युम्नी**) अन्नवान् (**उत**) और (**गोपाः**) रक्षक (**भवा**) होता है (**त्वा**) इसे कोई भी (**मा**) नहीं (**तारीत्**) हानि पहुँचा सकता है क्योंकि यह (**जनानाम**) लोगों का (**अभिमातिः**) अभिभव करने वाला है, यह (**शूर इव**) बलवान् के समान (**धृष्णुः**) शत्रुओं का धर्षण कर्त्ता, (**च्यवनः**) च्यावयिता और (**सुमित्रः**) उत्तम मित्र है (**वध्र्यश्वस्य**) वद्धतेजस्क इस अग्नि के (**नाम**) विविध नाम और गुणों का मैं विद्वान् (**प्र नु वोचम**) वर्णन करता हूँ ।

भावार्थः—तेजस्वी अग्नि अन्नोत्पादक और रक्षक है । उसको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता है क्योंकि वह लोगों को दबा देने वाला है । वह शत्रुओं का धर्षण करने वाला, च्युत करने वाला और अपना सबका मित्र है । मैं विद्वान् उसके विविध नामों और गुणों का वर्णन करता हूं ।।५।।

समज्ञया पर्वत्या३वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ।।६।।

पदार्थः—यह अग्नि (**समज्ञया**) लोगों के हितकारी (**पर्वत्या**) पहाड़ों पर उत्पन्न (**वसूनि**) धनों को तथा (**दासा**) दान देने योग्य (**आर्या**) श्रेष्ठ (**वृत्राणि**) धनों को (**जिगेथ**) प्राप्त कराता है, (**अग्नेत्वम्**) यह अग्नि (**शूर-इव**) शूर के समान शत्रु का धर्षक, (**जनानाम्**) लोगों का च्यावयिता, (**पृतनायून्**) आक्रमण करने वालों का (**अभिष्याः**) अभिभव करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि मनुष्यों का हितकारी पर्वतीय धन और दान देने योग्य श्रेष्ठ धनों को प्राप्त कराता है । यह बलवान् के समान शत्रु का धर्षक दुष्ट लोगों का च्यावयिता और आक्रमण करने वालों का अभिभव करता है ।।६।।

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ।।७।।

पदार्थः – (**अयम्**) यह (**अग्निः**) अग्नि (**दीर्घतन्तुः**) बड़े तन्तुओं वाला, (**बृहदुक्षाः**) प्रभूतरश्मि, (**सहस्रस्तरीः**) सहस्रों, स्तरों पर कार्य करने वाला

(**शतनीथ**) अनेक नीतियों वाला (**ऋभ्वा**) महान् और (**द्युमत्सु**) प्रकाशमानों में (**द्युमान्**) अति प्रकाशवान् है । यह (**नृभिः**) कर्म करने वाले यजमान ऋत्विग् आदि से (**मृज्यमानः**) अलंकृत किया हुआ (**देवयत्सु** , देवयज्ञ करने वाले (**सुमित्रेषु**) हम सुमित्रों में (**दीदयः**) प्रकाशमान होता है ।

भावार्थः—यह अग्नि दीर्घ तन्तुओं अर्थात् बड़े विस्तारों से युक्त, प्रभूत रश्मियों वाला, कई स्तरों पर कार्य करने वाला, अनेक नीतियों वाला, महान् और दीप्तिमान पदार्थों में अधिक दीप्तिमान् है । यजमान ऋत्विग् आदि से अलंकृत किया गया यह देवयज्ञ करने वाले हम सब लोगो में प्रकाशमान होता है ॥७॥

त्वं धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८॥

पदार्थः- यह अग्नि (**जातवेद**:) जातवेदस् नाम वाला है, (**त्वे**) इसमें (**सुदुघा**) जल को उत्तम रूप में दोहन करने वाली (**असश्चता इव**) साथ में एकत्र न रहने वाले आदित्य से (**समना**) सगत (**सबर्धुक्**) अमृत को दोहन करने वाली (**धेनुः**) माध्यमिका वाग् है । (**अग्नेत्वम्**) यह अग्नि (**दक्षिणा-वद्भिः**) दक्षिणा देने के धन से युक्त (**देवयद्भिः**) यज्ञ करने वाले अथवा देवों की कामना करने वाले (**सुमित्रेभिः**) उत्तम मित्र भूत (**नृभिः**) मनुष्यों से (**इध्यसे**) यज्ञ में प्रज्वलित किया जाता है ।

भावार्थः—यह अग्नि जातवेदस् है । इस अग्नि में ही जल को दोहन करने वाली एक स्थान में न रहने से पृथग्भूत हुई भी आदित्य से संगत अमृत दोहन करने वाली माध्यमिका वाग् को भी पाया जाता है। यह अग्नि दक्षिणा देने के लिए धनों से युक्त देवों की कामना करने वाले हम मनुष्यों से यज्ञार्थ प्रदीप्त किया जाता है ॥८॥

देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९॥

पदार्थः—(**वाध्र्यश्वः**) अत्यन्त तीव्र गति युक्त (**जातवेदः**) सभी उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (**ते**) इस अग्नि की (**महिमानम्**) महिमा का (**अमृताः**) लम्बी आयु वाले (**देवाः चिद्**) विद्वान् भी (**प्रवोचन्**) बखान करते हैं, **यत्**) जब (**मानुषीः**) मानुषी (**विशः**) प्रजा (**सम्पृच्छम**) प्रश्न को (**आयन्**)

प्राप्त होती है तो उस समय (**त्वम**) यह अग्नि (**त्वावृधेभिः**) इसको बढ़ाने वाले (**नृभिः**) देवों के साथ (**अजयः**) जीतता है, यह उत्तर होता है ।

भावार्थः—अत्यन्त तीव्रगति, प्रत्येक उत्पन्न वस्तु में विद्यमान उस अग्नि की महिमा का ज्ञानवृद्ध विद्वान् भी गान करते हैं । जब मानुषी प्रजा के सामने यह प्रश्न उठता है कि दिव्य शक्तियों के साथ होने वाले आसुर युद्ध में इन असुरों=मेघों को कौन मारता है तब यही उत्तर होता है कि इस अग्नि को बढ़ाने वाले देवों के साथ यह अग्नि ही मेघों पर जय प्राप्त करता है ॥९॥

पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वाँ अवनोर्व्राधतश्चित् ॥१०॥

पदार्थः—(**इव**) यथा (**पिता**) पिता (**पुत्रम**) पुत्र को सामने रखता है इसी प्रकार (**वध्र्यश्वः**) जितेन्द्रिय पुरुष (**उपस्थे**) पृथिवी के उपस्थान यज्ञ वेदी में (**त्वाम् अग्ने**) इस अग्नि को (**सपर्यन्**) स्थापित करता हुआ (**अबिभः**) हवि से पुष्ट करता है । (**उत**) और (**अस्य**) इसकी (**समिधम्**) समिधा को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ (**यविष्ठः**) बलवान् अग्नि (**पूर्वान् चित्**) पुराने भी (**व्राधतः**) शत्रुओं को (**अवनोः**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को सामने बैठाता है उसी प्रकार जितेन्द्रिय यजमान पुरुष पृथिवी के उपस्थान इस वेदी में इस अग्नि को स्थापित कर हवि आदि से उसका पोषण करता है । इसकी समिधाओं को सेवन करता हुआ यह अग्नि पुराने रोग आदि के कीटाणुरूप शत्रुओं को नष्ट करता है ॥१०॥

शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥११॥

पदार्थः—(**अग्निः**) यह अग्नि (**वध्र्यश्वस्य**) बहुत अश्वों वाले राजा वा मनुष्य के (**सुतसोमवद्भिः**) सोम रस को चुआने वाले, (**नृभिः**) मनुष्यों के द्वारा (**शश्वत्**) सदा (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**जिगाय**) जीतता है, (**चित्रभानो**) चायनीय प्रकाश वाला यह अग्नि (**समनम्**) संग्राम को (**चिन्**) भी (**अदहः**) अपने तेजों से जला देता है । अग्नि के प्रभाव से (**वृधः चित्**) स्वयं बढ़ा हुआ यह राजा

वा मनुष्य भी (**वाधतम्**) बढ़ते हुए हिंसकों को (**अव अमिनत्**) छिन्न-भिन्न करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि बहुत अश्वों वाले राजा अथवा मनुष्य के सोमोत्पादक मनुष्यों के द्वारा सदा शत्रुओं को जीतता है । उत्तम तेजों वाला यह अग्नि संग्राम को भी अपने तेजों से दग्ध कर देता है । अग्नि के प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त यह राजा अथवा मनुष्य भी बढ़ने वाले हिंसकों को छिन्न-भिन्न करता है ॥११॥

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व ॥१२॥

पदार्थः—(**वृत्रहा**) रोगों आदि का हन्ता (**अयम्**) यह (**अग्निः**) अग्नि (**सनकात्**) सदा से (**नमसा**) अन्न आदि हवियों से (**वध्र्यश्वस्य**) जितेन्द्रिय याज्ञिक द्वारा (**प्रेद्धः**) प्रदीप्त होता है और (**उप वाक्यः**) प्रशंसनीय होता है । (**वाध्र्यश्वः सः**) बंधे तेजों वाला वह अग्नि (**नः**) हमारे (**शर्धतः**) हिंसक (**अजामीन्**) सजातीय (**उत वा**) और (**विजामीन्**) विजातीय को (**अभितिष्ठ**) अभिभूत करता है ।

भावार्थः—रोगों का नाशक यह अग्नि सदा से अन्न आदि हवियों से जितेन्द्रिय याज्ञिक के द्वारा प्रदीप्त होता है और प्रशंसनीय होता है । यह अतितेजस्क अग्नि हमें सताने वाले सजातीय विजातीय सभी हिंसकों को दवा देता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में उनहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—७०

ऋषिः—१—११ सुमित्रो वाध्र्यश्वः ॥ देवता—**आप्रम्** ॥ छन्दः—१,
२, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७, ९, ११
त्रिष्टुप् । ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**इडस्पदे**) उत्तरवेदि में (**मे**) मुझ जितेन्द्रिय याज्ञिक की (**समिधम्**) समिधा का (**जुषस्व**) सेवन करता है, तथा (**घृताचीम्**) घृत से परिपूर्ण स्रुवा को (**प्रतिहर्य**) प्राप्त करता है, (**सुक्रतो**) उत्तम कर्मों का साधन यह अग्नि (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**वर्ष्मन्**) उन्नत प्रदेश में (**अह्नाम्**) दिनों के (**सुदिनत्वे**) सुदिनत्व में (**देवयज्या**) देवयाग द्वारा (**ऊर्ध्वः**) ज्वालाओं से उन्नत (**भव**) होता है ।

भावार्थः- यह अग्नि उत्तरवेदि की नाभि में मुझ जितेन्द्रिय याज्ञिक की समिधाओं को ग्रहण करता है, घृत से पूर्ण स्रुवा को प्राप्त करता है । उत्तम कर्मों का साधनभूत यह अग्नि पृथिवी के उन्नत प्रदेश पर्वत आदि पर हमारे उत्तम दिनों में अथवा हमारे लिए उत्तम दिन लाने के लिए देवयज्ञ द्वारा ज्वालाओं से उन्नत होता है ॥१॥

आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) यज्ञसम्बन्धी देवों में (**अग्रयावा**) अग्रगन्ता (**नराशंसः**) नरों से शंसनीय यह अग्नि (**विश्वरूपेभिः**) नानारूप (**अश्वैः**) तेजों के साथ (**इह**) इस हमारे यज्ञ में (**आ यातु**) प्राप्त होता है, (**मियेधः**) यज्ञ का साधक (**देवतमः**) देवतम यह अग्नि (**ऋतस्य**) यज्ञ के (**पथा**) मार्ग से (**नमसा**) हवि आदि से युक्त हवि को (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**सुसूदत्**) ले जाता है ।

भावार्थः—देवों में अग्रगन्ता नरों से शंसनीय यह अग्नि नानारूप तेजों के साथ इस हमारे यज्ञ में प्राप्त होता है । यज्ञ का साधक देवतम यह अग्नि यज्ञ के माध्यम से अन्न आदि से युक्त हवि को देवों के लिए ले जाता है ॥२॥

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३॥

पदार्थः—(**हविष्मन्तः**) हवि देने वाले (**मनुष्यासः**) मनुष्य (**दूत्याय**) हविवहन रूपी दूत्य कर्म के लिए (**शश्वत्तमम्**) नित्य (**अग्निम्**) अग्नि की (**ईळते**) स्तुति वा प्रशंसा करते हैं (**वहिष्ठैः**) अधिक भार-वहन वाले (**अश्वैः**) किरणों तथा (**सुवृता**) अच्छी गति वाले (**रथेन**) प्रकाश रूप रथ के साथ (**इह**)

हमारे यज्ञ में (**देवान्**) इन्द्र आदि देवों को (**आ वक्षि**) प्राप्त कराता है (होता) होता होकर (**निषीद**) स्थित होता है ।

भावार्थः—यज्ञ में हवि देने वाले मनुष्य हवि को वहन करने के लिए अग्नि की निरन्तर प्रशंसा करते हैं । वह अग्नि अच्छी गति वाली किरणों और प्रकाशों एवं गति चक्रों के साथ यज्ञ के इन्द्र आदि देवों को यज्ञ में प्राप्त कराता है और होता होकर स्थित होता है ॥३॥

वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ॥४॥

पदार्थः—(**देवजुष्टम्**) देवों द्वारा सेवन किया जाने वाला हव्य पदार्थ (**तिरश्चा**) चारों तरफ (**दीर्घम्**) अधिक (**वि प्रथताम्**) फैले, (**अस्मे**) हमारे लिए (**द्राघ्मा**) विस्तार से (**सुरभिः**) सुगन्ध (**भूतु**) होवे, (**देव बर्हिः**) यह दिव्य हव्य पदार्थ (**उशतः**) हवि को चाहने वाले (**इन्द्रज्येष्ठाम्**) इन्द्र जिनका प्रधान है ऐसे (**देवान्**) देवों के प्रति यजमानों द्वारा (**अहेलता**) विना क्रोध वाले अर्थात् शान्त (**मनसा**) मन से (**यक्षि**) प्रदान किया गया है ।

भावार्थः—देवों द्वारा ग्रहण किया जाने वाला यह हव्य पदार्थ चारों तरफ बहुत विस्तार से फैले । हमारे लिए सुगन्धि भी अधिक होवे । हवि चाहने वाले, इन्द्र हैं प्रधान जिनमें ऐसे देवों के लिए यह पदार्थ यजमानों द्वारा शान्त मन से अग्नि में प्रदान किया गया है ॥४॥

दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥५॥

पदार्थः (**द्वारः**) ये यज्ञ की द्वारभूत देवियां=दिव्य शक्तियां (**दिवः**) द्युलोक (**वा**) अथवा (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**सानु**) उच्चतर (**वरीयः**) उरुतर स्थान को (**स्पृशत**) छूए (**मात्रया**) मात्रानुसार (**विश्रयध्वम्**) विस्तृत होवें, (**उशतीः**) इन हव्य पदार्थो को चाहती हुई (**महिना**) महिमा से (**महद्भिः**) महान् देवों के साथ (**रथयुः**) रमणीय प्रकाशों से युक्त हुई (**देवम्**) प्रकाशमान (**रथम्**) अग्निरूपी रथ को (**धारयध्वम्**) धारण करती है ।

भावार्थः—देवों की भांति ही ये देवों की देवी भूत अग्रणी आदि शक्तियां द्युलोक और पृथिवी के उरुतर उच्च स्थान को प्राप्त होवें और

यज्ञ की मात्रानुसार विस्तृत होवें । हव्य पदार्थों को चाहती हुई ये महिमा से महान् देवों के साथ रमणीय प्रकाशों से युक्त होकर अग्नि रूपी रथ को धारण करती है अर्थात् अग्नि के द्वारा यज्ञ में आकर हवि को ग्रहण करती हैं ॥५॥

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६॥

पदार्थः—(**देवी**) द्योतमान (**सुशिल्पे**) उत्तम रूप वाले (**दिवः**) द्युलोक की दुहिताभूत (**उषासानक्ता**) दिन और रात्रि (**योनौ**) यज्ञस्थान को (**नि षदताम्**) प्राप्त होते हैं । (**उशती**) हव्य चाहने वाले, (**सुभगे**) उत्तम ऐश्वर्य वाले (**वाम्**) इन दोनों के (**उरौ**) विस्तीर्ण (**उपस्थे**) समीप स्थान में (**उशन्तः**) हवि को चाहने वाले (**देवासः**) देवगण (**आ सीदन्तु**) स्थित होते हैं ।

भावार्थः—द्योतमान उत्तम रूप वाले, द्युलोक की पुत्री रूप (उषासानक्ता) दिन और रात्रि यज्ञ के स्थान को प्राप्त होते हैं । हवि चाहने वाले उत्तम ऐश्वर्य वाले इन दोनों के विस्तीर्ण समीपस्थ स्थान में हवि चाहने वाले देवगण भी स्थित होते हैं । ये सभी आकाशस्थ पदार्थ हवि को अग्नि के माध्यम से ग्रहण करते हैं और उसी के माध्यम से यज्ञ में भी प्राप्त होते हैं ॥६॥

ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥७॥

पदार्थः—जब (**ग्रावा**) सोम कूटने की पाषाण-शिला (**ऊर्ध्वः**) उन्नत होती है अर्थात् ऊपर को जाती है, जब (**बृहत्**) महान् (**अग्निः**) अग्नि (**समिद्धः**) हवि आदि से सम्यक् दीप्त होता है तथा (**प्रिया**) प्रिय (**धामानि**) हवियों के रखने के पात्र (**अदितेः**) पृथिवी के (**उपस्थे**) यज्ञ वेदी पर रख दिये जाते हैं तब (**वाम्**) ये दोनों (**ऋत्विजा पुरोहिता**) दैव्या होतारौ =प्राण और अपान जो (**विदुष्टरा**) प्राप्त तर है (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) यज्ञ में (**द्रविणम्**) धन को (**आ यजेथाम्**) प्रदान करें ।

भावार्थः—जब सोम कूटने की पाषाण-शिला ऊपर होती है, जब अग्नि हवि आदि से भली प्रकार दीप्त हो जाता है और हविपात्र वेदी पर

रख दिये जाते हैं तब ये प्राण और अपान जो सभी को सर्वत्र प्राप्ततर हैं धन को प्रदान करते हैं। अर्थात् वर्षा आदि से धन की उत्पत्ति करते हैं ॥७॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥८॥

पदार्थः–(**तिस्रः**) तोन (**देवीः**) देवियां (**वरीयः**) विस्तीर्णं (**इदम्**) इस (**बर्हिः**) वेदी पर (**आ सीदत**) विराजमान होवें (**वः**) इनके लिए (**स्योनम**) विस्तीर्ण (**चकृम**) बनाते हैं, (**इला**) इला (**देवी**) द्योतमान (**घृतपदी**) मधुर पदों वाली सरस्वती (**मनुष्वद्**) मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (**सुधिता**) अच्छी प्रकार निहित (**हवींषि**) हवियों को (**जुषन्त**) सेवन करें।

भावार्थः– इडा, सरस्वती, भारती ये तीन देवियां इस वेदी पर विराजमान होवें जिसे हम विस्तीर्णं बनाते हैं। ये तीनों मनुष्यों से युक्त यज्ञ में निहित हवियों को ग्रहण करें ॥८॥

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९॥

पदार्थः—(**यत्**) जिस कारण (**त्वष्टः देवः**) वायु (**चारुत्वम्**) हवियों से कल्याणरूपत्व को (**आनट्**) प्राप्त करता है, (**यत्**) जिस प्रकार यह (**अङ्गिरसाम्**) अंगारों वा प्राणों का (**सचाभूः**) सहभावी (**अभवः**) होता है अतः (**सः**) वह (**द्रविणोदः**) धन का दाता (**सुरत्नः**) सुधन (**उशन्**) हवि की इच्छा करता हुआ (**विद्वान्**) प्राप्त करता हुआ (**देवानाम्**) देवों के (**पाथः**) अन्न को (**उप प्रयक्षि**) देता है।

भावार्थः—वायु हवियों से कल्याणमय रूप को प्राप्त करता है, यह अंगारों और प्राणों का सहभावी होता है और हवि की इच्छा करता हुआ उसे प्राप्त कर देवों के हविरूप अन्न को उन्हें देता है ॥९॥

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥१०॥

पदार्थः—(**वनस्पते**) अग्नि (**रशनया**) बन्धन के समान परिधि बन्धन से (**वियूय**) बांधकर (**देवानाम्**) यज्ञ देवों के (**पाथः**) अन्न आदि हवि को (**विद्वान्**) प्राप्त कर (**उपयक्षि**) उन्हें देता है (**देवः**) देव अग्नि वह (**हवींषि**) हमारे द्वारा दत्त हवियों को (**स्वदाति**) खाता है अर्थात् भस्म करता है और (**कृणवत्**) उन्हें देवों की बना देता है, (**मे**) मेरी (**हवम्**) पुकार की (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अवताम्**) रक्षा करें।

भावार्थः—अग्नि रस्सी के समान परिधियों से बांधकर विना इधर-उधर किये यज्ञ के देवों की हवि को प्राप्त कर उन्हें देता है। यह देव अग्नि हवियों को भस्म कर देता है और उन्हें देवों की बना देता हैं। मेरे शब्दों की द्यु और पृथिवी रक्षा करें ॥१०॥

अग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥

पदार्थः—(**अग्ने**) वह अग्नि (**नः**) हमारे (**इष्टये**) याग के लिए (**वरुणम्**) सूर्य, (**इन्द्रम्**) वायु और (**मरुतः**) मरुतों को (**दिवः**) द्युलोक से (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (**आवह**) यज्ञ में लाता है (**यजत्राः**) यष्टव्य ये (**विश्वे**) सारे (**देवाः**) देव (**बर्हिः**) यज्ञ वेदी पर (**आ सीदन्तु**) उपस्थित होते हैं तथा (**अमृताः**) अमरणधर्मा ये (**देवाः**) देव (**स्वाहा**) स्वाहा बोलकर दी गई हवि से (**मादयन्ताम्**) तृप्त होते हैं।

भावार्थः— यह अग्नि हमारे याग के लिए सूर्य, वायु और मरुतों को द्युलोक और अन्तरिक्ष से यज्ञ में लाता है। यष्टव्य ये देव यज्ञवेदी पर स्थित होते हैं तथा अमर ये स्वाहाकार करके प्रदत्त हवि को ग्रहण करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल का सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–७१

ऋषिः—१—११ बृहस्पतिः ॥ देवता—ज्ञानम् ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप् । ९ विराड्जगती ॥ स्वरः—१-८, १०, ११ धैवतः । ९ निषादः ॥

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) हे वेदवाणी के पालक प्रभो ! (**नामधेयम्**) पदार्थों के नाम को (**दधानाः**) अपने ज्ञान में धारण करने के लिए ग्रहण शक्ति से योग्य पवित्रान्तःकरण वाले ऋषि सृष्टियों की आदि में (**यत्**) जो (**प्र ऐरत**) प्रेरणा लेते और करते हैं अर्थात् उच्चारण करते हैं वह (**प्रथमम्**) आदि है, (**वाचः**) समस्त वाणियों का (**अग्रम्**) अग्र है, (**एषाम्**) इनका (**यत्**) जो (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**अरिप्रम्**) निर्दोष (**आसीत्**) है (**तत्**) वही (**एषाम्**) इन (**प्रेणा**) ईश्वर की प्रेरणा से प्राप्त है जो (**गुहा**) अन्तःकरण में (**निहितम्**) निहित हुई ही (**आविः**) प्रकट होती है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! सृष्टि की उत्पत्ति होने के अनन्तर प्रागवस्था में पवित्रान्तःकरण वाले पदार्थों का नाम अपने ज्ञान में धारण करने और रखने के योग्य ऋषि जिस वाणी को प्रेरणा से प्राप्त कर उच्चारण करते हैं वह सबसे प्रथम आदि वाणी है । वह सब वाणियों का अग्र है (अर्थात् बाद में उसी से अन्य वाणियां बनती हैं) श्रेष्ठ, अरिप्रम=निर्दोष और पूर्ण है । वह ऋषियों के अन्तःकरण में निहित प्रेरणा से प्रकट होती है ॥१॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२॥

पदार्थः—(**तितउना**) चलनी से छाने हुए (**सक्तुम् इव**) सत्तू के समान (**यत्र**) जब (**धीराः**) गम्भीर धीर विद्वान् (**मनसा**) मन से (**पुनन्तः**) पवित्र एवं विचार करते हुए (**वाचम्**) वाणी को (**अक्रत**) बोलते हैं तब (**अत्र**) इस विषय में (**सखायः**) परस्पर विद्या से प्रेम रखने वाले विद्वान् (**सख्यानि**) शब्द और अर्थ के सम्बन्ध ज्ञान को (**जानते**) जानते हैं । (**एषाम्**) इन ज्ञाताओं की (**वाचि अधि**) वाणी में (**भद्रा**) कल्याणमयी (**लक्ष्मीः**) लक्ष्मी (**निहिता**) निहित होती है ।

भावार्थः जिस प्रकार चलनी से सत्तू को छानकर साफ कर लिया जाता है उसी प्रकार जब धीर गम्भीर विद्वान् मन से विचार कर वाणी का प्रयोग करते हैं तब वे इसके मित्रभूत हुए वाणी के शब्दार्थ सम्बन्धों को जानते हैं और इनकी वाणी में कल्याणकारिणी लक्ष्मी निहित होती है ॥२॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥३॥

पदार्थः— धीर विद्वान् जन (**यज्ञेन**)पवित्रान्तःकरण वा पवित्र भावना से (**वाचः**) वाणी के (**पदवीयम्**) मार्ग को (**आयन्**) जानते हैं और (**ऋषिषु**) ऋषियों के अन्तःकरण में (**प्रविष्टाम्**) प्रविष्ट हुई प्राप्त हुई (**ताम्**) उस वाणी को (**अनु अविन्दन्**) प्राप्त करते हैं । अनन्तर (**ताम्**) उस को (**आभृत्य**) धारण कर (**पुरुत्रा**) सर्वत्र प्रचारित (**व्यदधुः**) करते हैं (**ताम्**) इस वेदवाणी को (**सप्त**) सात (**रेभाः**) गायत्री आदि छन्द (**अभि सं नवन्ते**) सर्वतः युक्त हुए होते हैं ।

भावर्थ--धीर विद्वान् पवित्र भावना से वाणी के मार्ग को जानते हैं और ऋषियों के अन्तःकरण में निहित होकर प्राप्त इसको ग्रहण करते हैं । अनन्तर इसको दूसरे सभी मनुष्यों में प्रचारित करते हैं और गायत्री आदि सात छन्द इस वेदवाणी में प्रयुक्त हैं ॥३॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४॥

पदादार्थः— (**उत त्वः**) एक तो (**वाचम्**) वाणी को (**पश्यन्**)देखता हुआ भी (**न**) नहीं (**ददर्श**) देखता (**उत त्वः**) एक तो (**शृण्वन्**) सुनता हुआ भी (**एनाम्**) इसको (**न**) नहीं (**शृणोति**) सुनता है, (**उतो त्वस्मै**) एक के लिए तो वाणी (**तन्वम्**) अपने ज्ञानमय रूप वा कलेवर को उसी प्रकार (**विसस्रे**) खोल देती है (**इव**) जिस प्रकार (**सुवासाः**) उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए (**उशती**) कामना करती हुई (**जाया**) पत्नी (**पत्ये**) पति के लिए अपने शरीर को खोल देती है ।

भावार्थः एक तो ऐसा है कि देखते हुए भी इस वाणी के रहस्य को नहीं देख पाता है, एक तो सुनते हुए भी इसके गूढ भाव को नहीं सुनता है, एक के लिए यह वाणी अपने विस्तृत ज्ञान कलेवर को उसी प्रकार खोल देती है जिस प्रकार वस्त्रों से सजी कामना करने वाली पत्नी अपने पति के लिए अपने तनू को खोल देती है ॥४॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥

पदार्थः—(**उत त्वम्**) एक को तो (**सख्ये**) विद्वानों की संसद् में (**स्थिरपीतम्**) ज्ञान को स्थिरता से पिया हुआ (**आहुः**) कहते हैं, (**एनम्**) इसको (**वाजिनेषु**) वाणी से जानने योग्य अर्थों में (**अपि**) भी (**न**) नहीं (**हिन्वन्ति**) पहुंचते हैं। (**एषः**) वाणी और उसके अर्थ को न जानने याला (**मायया**) केवल शब्दाम्बर के द्वारा (**चरति**) व्यवहार करता है क्योंकि इसने (**अफलाम्**) विना फल वाली और (**अपुष्पाम्**) विना पुष्पों वाली (**वाचम्**) वाणी को (**शुश्रुवान्**) सुना है।

भावार्थः—एक को तो विद्वानों की संसद् में लोग ज्ञान को स्थिरता से पान किया हुआ पाते हैं। वाग्व्यवहार के विषय में इसका कोई पार नहीं पाता। वह व्यक्ति जिसने इस वाणी के तत्त्व को नहीं समझा है केवल शब्दाडम्बर से व्यवहार करता है क्योंकि उसने यज्ञ, देवता और अध्यात्म जो इसके फूल-फल हैं इनके ज्ञान के विना इस वाणी को सुना और जाना है ॥५॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**सचिविदम्**) साथी को पहिचानने वाले (**सखायम्**) मित्र के तुल्य उपकारक वेद के स्वाध्याय को (**तित्याज**) छोड़ देता है (**तस्य**) उसका (**वाचि अपि**) वेद वाणी में भी (**भागः**) भाग (**न**) नहीं (**अस्ति**) होता है वह (**यद्**) जो कुछ (**ईम्**) भी (**शृणोति**) सुनता हैं (**अलकम्**) अलीक=व्यर्थ (**शृणोति**) सुनता है (**हि**) क्योंकि वह (**सुकृतस्य**) उत्तम कर्म के (**पन्थाम्**) मार्ग को (**न**) नहीं (**प्रवेद**) जानता है।

भावार्थः—जो साथी को पहचानने वाले वेद के स्वाध्याय को छोड़ देता है उसका वेदवाणी में भी कोई भाग नहीं रह जाता वह जो कुछ भी सुनता है व्यर्थ सुनता है क्योंकि वह सुकृत के मार्ग को नहीं जानता है ॥६॥

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

पदार्थः—(**अक्षण्वन्तः**) समान आंख वाले, (**कर्णवन्तः**) समान कानों वाले (**सखायः**) परस्पर मित्र हुए भी लोग (**मनोजवेषु**) मनकी गतियों में (**असमाः**) समान नहीं (**बभूवुः**) होते हैं, उनमें (**त्वे**) कई तो (**आदघ्नासः**) मुखपर्यन्त पानी वाले, और (**त्वे**) कई (**उपकक्षासः**) कांख तक पानी वाले (**ह्रदा**) जलाशय के (**इव**) समान (**ददृशे**) दिखाई पड़ते हैं और (**उ त्वे**) कई एक (**स्नात्वाः**) स्नान करने के योग्य अत्यधिक गहरे जल वाले जलाशय के समान दीखते हैं।

भावार्थः आंख और कान में समान तथा परस्पर मित्रभूत भी मन की गतियों में समान नहीं होते हैं। कई तो मुखपर्यन्त पानी वाले जलाशय के समान, कई कोख तक पानी वाले जलाशय के समान और कई अगाध जल वाले जलाशय के समान होते हैं ॥७॥

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्मणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८॥

पदार्थः (**यत**) जब (**ब्राह्मणाः**) वेद के विद्वान् जन (**हृदा**) हृदय से (**तष्टेषु**) भली प्रकार विचारित (**मनसः**) मन के (**जवेषु**) वेगों अर्थात् ज्ञातव्य पदार्थों में (**सखायः**) समान ख्याति वाले होकर (**संयजन्ते**) परस्पर ज्ञान विचारों का आदान-प्रदान करते है (**अत्र ह**) तब इस अवसर पर (**त्वम्**) किसी को (**विजहुः**) अज्ञ जानकर छोड़ देते हैं (**त्वे**) कई एक (**ओह ब्रह्माणः**) ऊह शक्ति से युक्त वेदज्ञ (**वेद्याभिः**) ज्ञातव्य वा ज्ञानमयी प्रवृत्तियों के साथ (**विचरन्ति**) विचरते हैं।

भावार्थः—जब वेदज्ञ विद्वान् हृदय से भली प्रकार निश्चित किये गए ज्ञातव्य पदार्थों के विषय में समान ख्याति वाले होकर प्रवृत्त होते हैं तो इस अवसर पर एक वाणी के तत्त्व को न जानने वाले को तो छोड़ ही देते हैं। उसे विचार विनिमय में नहीं लगाते। कई एक ऊह=तर्क ज्ञान से युक्त वेदज्ञ ही ज्ञानमयी प्रवृत्तियों से विचरते हैं और ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं ॥८॥

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥९॥

पदार्थः—(**इमे**) ये (**ये**) जो (**न अर्वाक्**) न इस लोक के ज्ञान से युक्त होकर (**चरन्ति**) विचरते हैं और (**न परः**) न परलोक को जानकर, अर्थात् न अपराविद्या में निपुण है और न परा विद्या में निपुण है (**न**) नहीं वे (**ब्राह्मणासः**) वेदार्थतत्पर है और (**न**) न (**सुकेतुरासः**) यज्ञ आदि कर्मकाण्ड में ही निपुण हैं (**ते**) वे (**एते**) ये (**अप्रजज्ञयः**) अविद्वान् होकर (**पापया**) अदैवी वाणी से युक्त एवं (**वाचम्**) बोलने मात्र की व्यावहारिकी वाणी को (**अभिपद्य**) प्राप्त कर (**सिरीः तन्त्रम्**) हल को (**तन्वते**) विस्तारित कर कृषक होते हैं।

भावार्थः—जो न इस लोक अर्थात् अपराविद्या में निपुण हैं, न पराविद्या को जानते हैं न वेद विद्या में पारंगत हैं और न कर्मकाण्ड को जानते हैं वे अविद्वान् होकर व्यावहारिकी अर्थात् बोलने मात्र की वाणी को जानते हुए खेती आदि का कार्य करते हैं ॥९॥

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

पदार्थः—(**सर्वे**) सब (**सखायः**) समान ख्याति वाले मित्रजन (**यशसा**) यश से यशस्वी होकर (**सभासाहेन**) सभा में अपना दबदबा जमाने में समर्थ (**सख्या**) मित्र प्राप्त कर (**नन्दन्ति**) प्रसन्न होते हैं, (**एषाम्**) इनमें मध्य में (**पितुः सनिः**) अन्न देने वाला (**किल्बिषस्पृत्**) पापाचरण अज्ञान आदि का नाश करने वाला होकर (**वाजिनाय**) वाणी के ज्ञान के लिए (**अरम्**) पर्याप्त (**हितः**) उपयोगी (**भवति**) होता है।

भावार्थः——सभी समान ख्याति वाले विद्वान् यश से युक्त और सभा में प्रभाव जमाने वाली शक्ति से युक्त हुए मित्रभाव को प्राप्त कर आनन्दित होते हैं। इनमें अन्न का देने वाला पाप और अज्ञान को नष्ट करने वाला व्यक्ति देववाणी के ज्ञान को प्राप्त करने में पर्याप्त समर्थ होता है ॥१०॥

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११॥

पदार्थः—(**त्वः**) एक होता (**ऋचाम्**) ऋचाओं के (**पोषम्**) पोषण= यथाविधि प्रयोग को (**पुपुष्वान्**) पुष्ट करता है, (**त्वः**) एक उदाता (**शक्वरीषु**) शक्वरी ऋचाओं में (**गायत्रम्**) गायत्र साम को (**गायति**) गाता है (**त्वः**) एक (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदविद् ब्रह्मा (**जातविद्याम्**) कर्त्तव्य के उपस्थित होने पर कर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाली विद्या को (**वदति**) बताता है, (**त्वः**) एक अध्वर्यु (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**मात्राम् उ**) मात्रा को (**विमिमीत**) मापता वा निर्मित करता है।

भावार्थः -इस मन्त्र में यज्ञ के चार ऋत्विजों का कार्य वर्णित है। पहला होता ऋचाओं का उच्चारण कर उनके प्रयोग को पुष्ट करता है। दूसरा उद्गाता साम गान शक्वरी ऋचाओं में करता है। तीसरा अध्वर्यु यज्ञ की मात्रा निर्धारित करता है और चौथा चतुर्वेदविद ब्रह्मा सब क्रियाओं और कर्त्तव्यों को जताता है।

नोट -इस सूक्त में ज्ञान और भाषा के प्रादुर्भाव का वर्णन है। किस प्रकार प्रेरणा से ये प्रकट होते हैं यह बताया गया है। इसी लिए इस सूक्त का देवता भी ज्ञान है ॥११॥

यह दशम मण्डल में इकहत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७२

ऋषिः--१-९ **बृहस्पतिर्बृहस्पतिर्वा लौक्य अदितिर्वा दाक्षायणी ॥**
देवताः देवाः ॥ **छन्दः** -१, ४, ६ **अनुष्टुप्** । २ **पादनिचृदनुष्टुप्** ।
३, ५, ७ **निचृदनुष्टुप्** । ८, ९ **विराडनुष्टुप्** ॥ **स्वरः**—
गान्धारः ॥

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥

पदार्थः–(**वयम्**) हम विद्वान् लोग (**देवानाम् नु** सृष्टि के दिव्य पदार्थों के (**जाना**) जन्मों वा उत्पत्ति के प्रकारों को (**विपन्यया**) विशेष स्पष्ट वाणी से (**प्रवोचाम**) वर्णन करते हैं। (**उक्थेषु**) वेद के ज्ञानपूर्ण मन्त्रों के (**शस्यमानेषु**) उच्चारित किये जाने पर (**यः**) जो देव युग (**उत्तरे**) सृष्टि होने के बाद के (**युगे**) समय में भी जगत् के व्यवहार में (**पश्यात्**) देखा जाता है।

भावार्थः—हम विद्वज्जन जगदन्तर्वर्ती दिव्य पदार्थों के जन्म का विस्पष्ट वर्णन वाणी से करते हैं। यह देवयुग वेदमन्त्रों के पढ़े जाने पर सृष्टि के उत्पन्न होने के अनन्तर भी जगत् के व्यवहार में देखा जाता है ॥१॥

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥२॥

पदार्थ—(**ब्रह्मणस्पतिः**) ब्रह्माण्ड और प्रकृति के स्वामी परमेश्वर ने (एता) इन देवपदार्थों के परमाणुओं को (**कर्मार इव**) लोहार के समान (**सम आधमत्**) धौंका अर्थात् ताप से तप्त किया है (**देवानाम्**) इन दिव्य पदार्थों के (**पूर्व्ये युगे**) पूर्वयुग अर्थात् सृष्टि की प्रागवस्था में (**असतः**) अव्यक्त से (सत्) व्यक्त (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—प्रकृति के स्वामी परमेश्वर जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को लोहार की तरह संतप्त करता है। सृष्टि की रचना के समय में असत्=अव्यक्त प्रकृति और परमाणु से सत्=व्यक्त जगद्वर्ती पदार्थ उत्पन्न होता है ॥२॥

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत ।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

पदार्थ (देवानाम्) इन देवों के (**प्रथमे**) प्रथम (**युगे**) युग में (**असतः**) अव्यक्त से (**सत्**) व्यक्त (**अजायत**) उत्पन्न होता है (**तत्**) उसी से (**आशाः**) दिशायें (**अन्वजायन्त**) उत्पन्न होती हैं (**तत् परि**) और उसी से (**उत्तानपदः**) सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थः—इन दैवी पदार्थों के उत्पत्ति काल में अव्यक्त से व्यक्त जगत् उत्पन्न होता है। उसी से दिशायें अथवा आकाश उत्पन्न होता है और उसी से सूर्य आदि पदार्थ जो अपनी किरणों को ऊपर फेंकते हैं वे भी उत्पन्न होते हैं ॥३॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥४॥

पदार्थः—(**भूः**) पृथिवी (**उत्तानपदः**) सूर्य से (**जज्ञे**) उत्पन्न होती है (**भुवः**) पृथिवी से (**आशाः**) पृथिवी की दिशा को बताने वाले भेद (**अजायन्त**) उत्पन्न होते हैं (**अदितेः**) उषा से (**दक्षः**) आदित्य (**अजायत**) उत्पन्न होता है (**दक्षात् उ**) आदित्य से (**अदितिः**) उषा (**परि**) उत्पन्न होती है ।

भावार्थः—पृथिवी सूर्य से उत्पन्न होती है और पृथिवी से उसके कोण और परिच्छेद को सूचित करने वाले भेद उत्पन्न होते हैं। अदिति=प्रातःकालिक उषा से आदित्य उत्पन्न होता और सायंकालिक उषा=सन्ध्या आदित्य से उत्पन्न होती है ॥४॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥

पदार्थः—(**अदितिः**) उषा=सन्ध्या (**या**) जो (**दक्षतव**) इस आदित्य की (**दुहिता**) दुहिता है (**अजनिष्ट**) पैदा होती है (**ताम्**) उसको (**भद्राः**) उत्तम (**अमृत बन्धवः**) अमृत=जल को अपने अन्दर बांधने वाली (**देवाः**) किरणें (**अन्वजायन्त**) उत्पन्न करती हैं ।

भावार्थः—यह आदित्य की दुहिता भूत सन्ध्या उत्पन्न होती है जिसे जलधारी सूर्य-किरणें आदि उत्पन्न करती हैं ॥५॥

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥६॥

पदार्थः—(**यद्**) जब (**देवाः**) ये देव पदार्थ (**सुसंरब्धाः**) अपने कारण स्वरूप को प्राप्त कर (**अदः**) इस (**सलिले**) कारण रूप प्रकृति में (**अतिष्ठत**) स्थित होते हैं (**अत्र**) तब इस अवस्था में (**नृत्यताम्**) नाचते हुए के समान (**वः**) इन का (**तीव्रः**) प्रचण्ड (**रेणुः**) परमाणु (**अपायत्**) चारों तरफ फैल जाता है ।

भावार्थः—जब ये देवपदा अपने कारण रूप को प्राप्त कर इस प्रकृति अथवा आकाश में स्थित होते हैं तब नाचते हुए के समान इनका तीव्र रेणु=परमाणु सर्वत्र फैलता रहता है ॥६॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥७॥

पदार्थ - (**यत्**) जब (**देवाः**) ये देव शक्तियां (**यतयः**) मेघों की (**यथा**) तरह (**भुवनानि**) लोकों को अपने परमाणुओं से (**अपिन्वत**) पूरित करते हैं कार्यरूप में परिवर्त्तित करते हैं, तब (**अत्र**) इस (**समुद्रे**) आकाश में (**आ गूढम्**) निगूढ़ (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आजभर्तन**) चमका देते हैं।

भावार्थः जब मेघों की भाँति ये दिव्य पदार्थ अपने परमाणुओं से समस्त भुवनस्थ पदार्थों को पूरित कर कार्यरूप में ला देते हैं तब आकाश में सूर्य को भी चमका देते हैं ॥७॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१ स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥८॥

पदार्थः - (**अष्टौ**) आठ (**पुत्राः**) पुत्र वा कार्य (**अदितेः**) प्रकृति के होते हैं (**ये**) जो (**तन्वः परि**) शरीर से उत्पन्न होते हैं। वह अदिति=प्रकृति (**देवान्**) देवों को (**सप्तभिः**) सात पुत्रों से (**उप प्र ऐतु**) प्राप्त होती है (**मार्तण्डम्**) केवल कार्यरूप भूत संघात को (**परा**) परे (**आस्यत**) रखती है।

भावार्थः--अदिति=प्रकृति के सात पुत्र हैं। वे हैं महत्तत्त्व, अहङ्कार और पंचतन्मात्रायें। ये प्रकृति कारण से उत्पन्न होते हैं। आठवां पुत्र जो कार्यरूप भूत संघात वा इन्द्रियसमूह है जिसे (मार्त्तण्ड) मरण धर्मा केवल कार्य कहा जाता है उसे उत्पन्न करती है ॥८॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥९॥

पदार्थः - (**सप्तभिः**) सात (**पुत्रैः**) पुत्रों=प्रकृति विकृतियों से प्रकृति (**पूर्व्यम्**) पूर्वकालिक (**युगम्**) युग अर्थात् सूक्ष्मावस्था को (**उप प्रैत्**) प्राप्त होती है, (**प्रजायै**) प्राणियों के शरीर अथवा जगदन्तवर्ती पदार्थों के संघातों को उत्पन्न करने के लिए और (**मृत्यवे**) मरने वा नष्ट होने के लिए (**त्वत्**) इससे (**मार्त्तण्डम**) सूर्य वा कार्यरूप उत्पत्ति और मरणधर्मा पदार्थ को (**आभरत्**) आहृत करती है।

भावार्थः--सात प्रकृति विकृति रूपी पुत्रों से प्रकृति सूक्ष्मावस्था को प्राप्त रहती हैं परन्तु आठवें कार्यभूत संघात को उत्पन्न होने और नष्ट होने के लिए उत्पन्न करती है। यह इसकी कार्यावस्था होती है ॥९॥

यह दशम मण्डल में बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७३

ऋषिः—१—११ गौरिवीतिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ९ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥१॥

पदार्थः -(**यत्**) जब (**धनिष्ठा**) धारण करने वाली (**माता**) मातृभूमिस्थ प्रजा (**वीरम्**) वीर को धारण करती है अर्थात् राजा बनाती है तब वह (**उग्रः**) उग्र (**मन्द्रः**) स्तुतियोग्य (**ओजिष्ठः**) ओजिष्ठ (**बहुलाभिमानः**) अत्यधिक आत्म-सम्मानी और (**सहसे**) शत्रुओं के (**तुराय**) नाश करने के लिए (**जनिष्ठाः**) होता है। (**अत्र**) इस कार्य में (**मरुतः चित्**) सैन्यगण भी (**इन्द्रम्**) राजा को (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं।

भावार्थः—जब मातृभूमिस्थ प्रजा वीर पुरुष को राजा बना देती है तो वह उग्र, स्तुत्य, ओजिष्ठ और आत्म सम्मान से युक्त होता है। वह शत्रुओं के संहार के लिए होता और इस कार्य में सैन्यगण भी उसको बढ़ाते हैं ॥१॥

द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ॥२॥

पदार्थः- (**द्रुहः**) शत्रुओं से द्रोह करने वाले इन्द्र=राजा की (**पृशनी-चित्**) सेना भी (**निषत्ता**) उसके समीप स्थित होती है। और वह (**एवैः**) पदातियों से भी युक्त हुई होती है, (**ते**) वे सेना के लोग भी (**पुरु**) प्रभूत (**शंसेन**) प्रशंसा से (**इन्द्रम्**) राजा को (**ववृधुः**) बढाते हैं (**ता**) वे प्रजाजन (**महापदेन**) बड़े भारी राजाश्रय से (**अभिवृता**) सुरक्षित के समान (**उद् अरन्त**) उसी प्रकार ऊपर उठ जाते हैं जिस प्रकार (**प्रपितत्वात् ध्वान्तात्**) फैले हुए अन्धकार वाले मेघ से (**गर्भाः**) जल बाहर आ जाते हैं।

भावार्थ—शत्रुओं के द्रोही राजा की सेना भी विविध पदातियों और गतिविधियों से युक्त हुई उसके साथ होती है। वे सेना के व्यक्ति भी बहुत

प्रशंसा के साथ उसको बढ़ाते हैं। राजाश्रय से प्रजा रक्षित हुई विपत्तियों से उसी प्रकार ऊपर उठ जाती है जिस प्रकार गहरे अन्धकार वाले मेघ से पानी बाहर आ जाता है ॥२॥

ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥३॥

पदार्थः- (**हे इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् राजन् (**ते**) तेरे (**पादा**) दोनों चरण (**ऋष्वा**) महान् हैं (**उत**) और (**ये चित्**) जो भी (**अत्र**) इस राष्ट्र में (**वाजा**) वेगवान् व्यक्ति हैं वे (**प्र अवर्धन्**) तुझे बढ़ाते हैं (**यत्**) जब (**प्र जिगासि**) तू स्वयं शत्रुओं को जीतता है (**हे इन्द्र**) राजन् (**त्वम्**) तू (**सहस्रम्**) सहस्रों (**सालावृकान्**) कुत्तों के समान स्वामिभक्तों को (**आसन्**) मुख में अर्थात् मुख्य पदों पर (**दधिषे**) धारण करते हो, और (**अश्विना**) घोड़ों पर सवार सैन्य के दोनों पक्षों को (**आववृत्याः**) अपने अधीन रखते हो।

भावार्थः- हे राजन् ! आपके दोनों चरण महान् हैं। जो कोई भी वेगवान् पुरुष इस राष्ट्र में हैं वे आप को बढ़ाते हैं। जब आप शत्रुओं पर जय प्राप्त करते हो। आप अनेकों स्वामिभक्तों को मुख्य पदों पर रखते हो और घुड़सवार दोनों सैन्य पक्षों को भी अधीन रखते हो ॥३॥

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यमिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४॥

पदार्थः (**इन्द्र**) हे राजन् ! (**तूर्णिः**) अत्यन्त वेग वाला तू (**समना**) संग्राम के समय में भी (**यज्ञम्**) यज्ञ से (**उपयासि**) जाते हो, (**नासत्या**) सत्य व्यवहार वाले मंत्री और न्यायाधीश को (**सख्याय**) मित्रभाव के लिए (**वक्षि**) धारण करते हो, (**वसव्याम्**) वसुसमूह=अर्थात् वसु विद्वानों के समूह में तुम (**सहस्रम्**) हजारों को (**धारयः**) धारण करते हो (**हे शूर**) हे शूरवीर राजन् ! (**अश्विनो**) उत्तम विद्या और व्यवहार वाले मंत्री और न्यायाधीश भी (**मघानि**) धन **ददतुः**) देते हैं।

भावार्थः--हे राजन् ! तू अत्यन्त वेग वाला है और युद्ध काल में भी यज्ञ में जाता है। सत्य व्यवहार वाले मंत्री और न्यायाधीश को आप अपना मित्र बनाते हो। विद्वानों के समूह में आप के सहस्रों विद्वान् होते हैं। हे शूर ! आपके मन्त्री और न्यायाधीश भी प्रजा को धन देते हैं ॥४॥

मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५॥

पदार्थः--(**इन्द्रः**) राजा (**ऋतात्**) यज्ञ से (**इषिरैः**) गमनशील (**सखिभिः**) मित्रों के साथ (**अधि मंहमानः**) अति हर्षित होकर प्रजा और यजमान के लिए (**अर्थम्**) अर्थ देता है, (**आभिः**) इन प्रजा जनों के द्वारा (**हि**) निश्चय (**मायाः**) शत्रुओं के नाश की बुद्धि एवं युक्तियों को (**आ**) प्राप्त कर (**दस्युम**) शत्रु पर (**उप आ अगात्**) चढ़ाई करता है (**सः**) वह (**तम्राः**) रुकी हुई (**मिहः**) वृष्टि के समान (**तमांसि**) अन्धकारों को (**प्र अवयत्**) नष्ट कर देता है।

भावार्थः---राजा यज्ञ से गतिशील मित्रों के साथ प्रसन्न होता हुआ प्रजा और यजमान को धन देता है। इन प्रजाओं के द्वारा वह शत्रुओं के विनाश की युक्ति और बुद्धि को प्राप्त कर शत्रु पर चढ़ाई करता है। जिस प्रकार वृष्टि रुकी हो तो उसे वायु झाड़ देता है उसी प्रकार वह राष्ट्र के सभी अन्धकारों को समाप्त कर देता है ॥५॥

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथा नः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥

पदार्थः -(**इन्द्रः**) सूर्य वृत्र को मारने के लिए (**स नामाना चित्**) समान स्थान और नाम वाले वायु और अशनि को (**निध्वसयः**) भेजता है, (**यथा**) जिस प्रकार वह (**उषसः**) उषा के (**अनः**) शकट अथवा चक्र को (**अव अहन्**) नष्ट करता है, (**ऋष्वैः**) दीप्ति (**निकामैः**) इच्छा करने वाले (**सखिभिः**) मित्रों अर्थात् मरुतों के (**साकम्**) साथ (**अगच्छः**) जाता है तथा (**प्रतिष्ठा**) शरीरों (**हृद्या**) हृदयों का (**जघन्थ**) वध करता है।

भावार्थः- सूर्य वृत्र=मेघ के मारने के लिए समान नाम और स्थान वाले वायु और अशनि को भेजता है। जिस प्रकार वह उषा के चक्र को नष्ट कर उदित होता है उसी प्रकार मित्र भूत मरुतों के साथ वह जाता है और मेघ के संघात और हृदय को विदारित करता है ॥६॥

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७॥

पदार्थः—(**त्वम्**) यह इन्द्र (**नमुचिम्**) जल को न छोड़ने वाले अर्थात् बांध रखने वाले मेघ को (**ऋषये**) क्रान्तदर्शी याज्ञिक के लिए (**दासम्**) अदाता को भी (**विमायम्**) मायारहित (**मखस्युम्**) दानशील (**कृण्वानः**) करता हुआ (**जघन्थ**) मारता है (**त्वम्**) वह (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**देवत्रा**) देवों के मध्य जाने के (**पथः**) मार्गों को (**स्योनान्**) सुखद (**चकर्थ**) करता है तथा (**अंजसा इव**) अकुटिलरूप से (**यानान्**) चलने योग्य बनाता है।

भावार्थः—यह इन्द्र=सूर्य क्रान्तदर्शी यज्ञकर्त्ता के लिए जल को न छोड़ने वाले मेघ को. जो अदाता है उसे मायारहित दानशील अर्थात् जल देने वाला बनाता हुआ मारता है। यह मनुष्य के लिए देवों के मध्य जाने वाले अर्थात् किरणों वायु आदि को प्राप्त करने वाले मार्गों को सुखद और सरलतया गम्य बनाता है। अर्थात् जल को आहरण कर आसानी से किरणों के पास पहुंचा कर अन्तरिक्ष में मेघ आदि बनाता है ॥७॥

त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्रत्वम्**) यह इन्द्र सूर्य (**एतानि**) इन (**नाम**) जलों को (**वि पप्रिषे**) पूरित करता है, इसको (**ईशानः**) अधिकार में रखता हुआ (**गभस्तौ**) किरणों में (**दधिषे**) धारण करता है। (**त्वा**) इसको (**देवाः**) वायु आदि (**शवसा**) बल के साथ (**अनु मदन्ति**) और भी गतिशील करते हैं यह (**वनिनः**) जल वाले मेघों को (**उपरि बुध्नान्**) ऊपर मूल वाला अर्थात् उल्टा (**चकर्थ**) कर देता है।

भावार्थः—यह सूर्य इन जलों को अपनी किरणों में पूरित करता है। इसको अधिकरण में रखता हुआ धारण करता है, वायु आदि बल के साथ इसके सहायक होते हैं यह जल भरे मेघों को उल्टा कर देता है और इससे उनका जल बहकर वर्षा करता है ॥८॥

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस इन्द्र का (**यत्**) जो (**चक्रम्**) आयुध (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**निषत्तम्**) निषण्ण है (**उतो**) अपि च (**तत्**) वह (**अस्मै**)

इसके लिए (**मधु**) जल (**इत्**) भी (**चच्छद्यात्**) वश में रखता है (**यत्**) जो (**ऊधः**) मेघ से आया (**पयः**) जल (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**अतिसितम्**) विमुक्त हुआ है उसको (**गोषु**) किरणों में और (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**अदधाः**) देता है।

भावार्थः—इस इन्द्र का जो चक्र=आयुध अन्तरिक्ष में स्थित है वह इसके लिए जल को वश में करता है। जो मेघ से जल पृथिवी पर गिरता है उसे किरणों और ओषधियों आदि में यह इन्द्र देता है ॥९॥

अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०॥

पदार्थः कुछ विद्वान् लोग इस इन्द्र=विद्युत् को (**अश्वात्**) सूर्य से (**इयाय**) यह आया वा उत्पन्न हुआ है (**इति**) ऐसा (**यत्**) जो (**वदन्ति**) कहते हैं सो मैं (**एनम्**) इसको (**उत**) भी (**ओजसः**) वज्ररूरी ओज से ही (**जातम्**) उत्पन्न (**मन्ये**) मानता हूँ, (**अयम्**) यह (**मन्योः**) क्रोध से (**इयाय**) उत्पन्न हुआ है अतः जिससे (**हर्म्येषु**) शत्रुभूत मेघ के युद्धों में (**तस्थौ**) स्थित होता है (**यतः**) जहां से यह (**प्रजज्ञे**) उत्पन्न होता है. यह (**इन्द्रः**) इन्द्र ही (**अस्य**) इसको (**वेद**) जानता है।

भावार्थः कुछ विद्वान् कहते हैं कि इन्द्र=विद्युत् सूर्य से उत्पन्न होता है, मैं विद्वान् इसको ओज अर्थात् वज्ररूपी ओज से उत्पन्न हुआ मानता हूं। यह मन्यु से पैदा हुआ है इस लिए शत्रुभूत मेघों के युद्धों में स्थित रहता है। यह जहां से उत्पन्न होता है उसे यही इन्द्र ही जानता है। जो भी बलकृति है वह सब इन्द्र का कार्य है अतः बल के इन उद्गमों का विकल्प उठाकर विद्वानों के कथन द्वारा इन्द्र का रहस्य बताया गया है ॥१०॥

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य३ स्मान्निधयेव बद्धान् ॥११॥

पदार्थः—(**वयः**) गमनशील (**सुपर्णाः**) सुपतनशील आदित्य रश्मियें (**इन्द्रम्**) विद्युत् को (**उपसेदुः**) प्राप्त होती हैं, ये रश्मियां (**प्रियमेधाः**) पवित्र शुद्ध, (**ऋषयः**) देखने के हेतु (**नाधमानाः**) कामना करती हुई होती हैं, यह इन्द्र

(**ध्वान्तम्**) अन्धकार को (**अप ऊर्णुहि**) दूर करता है (**चक्षुः**) देखने की शक्ति को (**पूर्धि**) पूरित करता है (**अस्मान्**) हम सबको (**मुमुग्धि**) मुक्त करता है, अन्धकार से जिस प्रकार (**निधया**) पाश से (**बद्धान्**) बंधे हुओं को लोग मुक्त करते हैं ।

भावार्थः-- गमनशील विखरने वाली आदित्य की रश्मियें विद्युत् को प्राप्त होती हैं । ये शुद्ध पवित्र, देखने के साधन और विद्युन्मय होने के लिए उन्मुख होती हैं । यह इन्द्र अन्धकार को दूर करता है, देखने की शक्ति को पूरित करता है और पाश में बंधे लोगों के समान हम सबको अन्धकार से मुक्त करता है । इसका आध्यात्मिक अर्थ परमेश्वरपरक होगा ॥११॥

यह दशम मण्डल में तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—७४

ऋषिः--१—६ **गौरिवीतिः** ॥ **देवता**--**इन्द्रः** ॥ **छन्दः** —**१, ४ पादनिचृ-त्त्रिष्टुप्** । **२, ५ निचृत्त्रिष्टुप्** । **३ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप्** । **६ विराट्-त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः**— **धैवतः** ॥

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥१॥

पदार्थः—(**इयक्षन्**) धनों को देने की इच्छा करता हुआ इन्द्र=वायु अथवा सूर्य (**धिया**) कर्म से (**वा**) अथवा (**यज्ञैः**) यज्ञों से (**रोदस्योः**) पृथिवी और आकाशस्थ मनुष्यों और शक्तियों द्वारा (**चर्कृषे**) आकृष्ट किया जाता है, (**ये**) जो (**अर्वन्तः**) जाने वाले (**वा**) और (**रयिमन्तः**) धन वाले हैं उनके द्वारा (**सातौ**, संसार संग्राम में वह आकृष्ट किया जाता है, (**ये**) जो (**सुश्रुतः**) प्रसिद्ध लोग (**सुश्रुणम्**) प्रसिद्ध (**वनुम्**) हिंसा को (**धुः**) धारण करते हैं उनके द्वारा भी इन्द्र आकृष्ट किया जाता है ।

भावार्थः-धनों का दान करता हुआ वायु अथवा सूर्य कर्म से अथवा यज्ञों से पृथिवी और आकाश के बीच रहने वाले मनुष्यों से आकृष्ट किया जाता है । जाने वाने और धन वालों से संसार संग्राम में आकृष्ट किया जाता है । शत्रु आदि हिंसा करने वालों से भी आकृष्ट किया जाता है ॥१॥

हव एषामसुरो नक्षत्र द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥२॥

पदार्थ—(**एषाम्**) इन याज्ञिकों का (**असुरः**) प्रेरक (**हवः**) शब्द (**द्याम्**) आकाश को (**नक्षत्**) व्याप्त करता है तथा (**देवाः**) इन्द्र सम्बन्धी दिव्य पदार्थ (**श्रवस्यता**) अन्न हवि को चाहते हुए (**मनसा**) शक्ति से (**क्षाम्**) पृथिवी को (**निंसत**) प्राप्त होते हैं (**यत्र**) जिस पर (**चक्षाणाः**) सबके देखने की हेतु होती हुई किरणों (**सुविताय**) लोगों के हित के लिए (**वारेभिः**) वरणीय (**स्वैः**) अपने तेजों से (**द्यौर्न**) द्युलोक के समान (**कृण्वन्त**) करते हैं ।

भावार्थः- इन यज्ञकर्त्ताओं का प्रेरक शब्द आकाश तक व्याप्त होता है । इन्द्र से सम्बन्ध रखने वाले दिव्य पदार्थ हवि ग्रहण करने की शक्ति से पृथिवी को प्राप्त होते हैं । उनकी किरणें वा तेज लोगों के देखने का कारण होते हुए लोगों के हितार्थ पृथिवी को अपने तेज से द्युलोक के समान करते हैं ॥२॥

इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्य१ मसामि ॥३॥

पदार्थः—(**इयम्**) यह (**एषाम्**) इन (**अमृतानाम्**) यष्टव्य देवों की (**गीः**) स्तुतिरूपा वाणी है, (**सर्वताता**) यज्ञ में (**ये**) जो (**रत्नम्**) अमूल्य धन को, (**कृपणन्त**) देते हैं, (**च**) और (**धियम्**) कर्म (**च**) और (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**साधन्तः**) सिद्ध कराते हुए (**ते**) वे (**नः**) हमें (**असामि**) प्रभूत (**वसव्यम्**) धन-समूह को (**धान्तु**) देवें ।

भावार्थः—यह इन यष्टव्य देवों की प्रशंसामयी स्तुति है, यज्ञ में जो तेजोमय धन को देते हैं । कर्म और यज्ञ को सिद्ध एवं सम्पन्न कराते हुए प्रभूत धनसमूह को देते हैं ॥३॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं१ ये पुरुपुत्रां गहीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥४॥

पदार्थः--(**ये**) जो (**सकृत्–स्वम**) एक बार ही अनेक बार के अन्नों वनस्पति आदि को उत्पन्न करती हैं उस (**वृहतीम्**) विशाल, (**पुरुपुत्राम**) बहुत पुत्रों वाली अर्थात् बहुत पुरुषों वाली और (**सहस्र धाराम्**) सहस्रों धाराओं वाली (**महीम**) भूमि को (**दुधुक्षन्**) दुहना चाहते हैं तथा जो (**गोमन्तम**) गौ बैल वाले (**ऊर्वम**) सस्य समूह को (**तितृत्सान्**) काटना चाहते हैं (**ते**) वे (**प्रायवः**) मनुष्य लोग (**तत्**) उस समय (**ते**) तेरी (**पनन्त**) स्तुति करते हैं।

भावार्थः—जो एक ही वार में अनेक वार के अन्न, वनस्पति और ओषधि को उत्पन्न करती है उस विशाल, बहुत मनुष्यों वाली, सहस्रों धाराओं, धन अन्नादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को दुहना चाहते हैं तथा गौ, बैल से युक्त सस्य समूह को काटना चाहते हैं वे मनुष्य उस समय तेरी स्तुति करते हैं ॥४॥

शचींव इन्द्रमवंसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥५॥

पदार्थः--(**हे शचीवः**) हे करने वाले यजमानो ! तुम (**अनानतम्**) कभी भी न झुकने वाले (**पृतन्यून्**) शत्रुओं का (**दमयन्तम्**) दमन करने वाले (**ऋभुक्षणम्**) महान् (**मघवानम्**) धन वाले (**सुवृक्तिम**) प्रशंसा योग्य (**इन्द्रम्**, राजा को (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिए (**कृणुध्वम्**) करो अर्थात् रक्षक बनाओ (**पुरुक्षुः**) बहुत गर्जना वाला (**यः**) जो (**नर्यम्**) मनुष्यों के हितकारी (**वज्रम्**) आयुध को (**भर्ता**) धारण करता है।

भावार्थः--हे यजमान लोगो ! तुम न झुकने वाले, शत्रुओं के दमनकारी, महान्, धन वाले, प्रशंसायोग्य राजा को अपना रक्षक बनाओ जो गड़गड़ाता हुआ स्वयम् मनुष्यों के हितकारी आयुध को धारण करता है ॥५॥

यद्वावानं पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामांन्यप्राः ।
अचेंति प्रासहस्पतिस्तुविंष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥६॥

पदार्थः (**वृत्रहा इन्द्रः**) विघ्नकारी शत्रुओं का हन्ता राजा (**पुराषाट्**) शत्रु पुरों का विजय करने वाला (**पुरुतमम**) शत्रुओं के श्रेष्ठ नेता का (**बवान**) नाश करता है, (**नामानि**) अपने नामों और ख्यातियों को (**आ अप्राः**) पूर्ण करता है, (**तुविष्मान्**) बड़ा बलशाली, (**प्रसहस्पतिः**) बड़ेभारी सैन्यवल का स्वामी (**अचेति**) जाना जाता है (**यत्**) जो हम प्रजाजन (**कर्त्तवे**) करना चाहें (**तत्**) उसे (**करत्**) करता है।

भावार्थः—विघ्नकारी शत्रुओं का घातक, शत्रुओं के पुरों का विजय करने वाला वह शत्रुओं के नेता का नाश करता है। अपने नाम और ख्यातियों को सार्थक करता है। शक्तिशाली और बड़े भारी सैन्यबल का स्वामी जाना जाता है। हम प्रजाजन जो करना चाहते हैं वह नहीं करता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७५

ऋषिः--१—९ सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः देवताः—नद्यः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३ विराड्जगती। ४ जगती। ५, ७ आर्चीस्वराड्जगती। ६ आर्चीभुरिग्जगती। ८, ९ पादनिचृज्जगती ॥
स्वरः—निषादः ॥

प्र सु वं आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१॥

पदार्थः—(**आपः वः**) इन जलों की (**उत्तमम**) उत्तम (**महिमानम**) महिमा को (**कारुः**) ऋत्विग् (**विवस्वतः**) यजमान के (**सदने**) गृह में अर्थात् यज्ञशाला में (**प्र सुवोचाति**) बोलता है, ये नदियां (**सप्तसप्त**) सात सात होकर (**त्रेधा**) पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक तीन प्रकार से (**प्रचक्रमुः**) बहती है (**प्रसृत्वरीणाम**) वहने वाली इनके मध्य में (**सिन्धुः**) अति स्यन्दन=वहाव वाली नदी (**ओजसा**) अपने वेगबल से (**अति**) दूसरी को अतिक्रमण करके (**प्र**) बहती है।

भावार्थः--इन जलों की उत्कृष्टनम महिमा का ऋत्विग् यज्ञशाला में वर्णन करता है। ये नदियां जो प्रत्येक तीनों लोकों में बहती हैं सात-सात करके (७×३ =२१) इक्कीस होती है। इन शीघ्रगामिनी नदियों में अत्यन्त स्पन्दन वाली नदी अधिक वेग वाली होती है ॥१॥

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२॥

पदार्थः- (**सिन्धो ते**) इस सिन्धु=स्यन्दनशीला अधिक वहाव वाली नदी के (**यातवे**) जाने के लिए (**वरुणः**) आदित्य ने (**पथः**) मार्ग (**अरवत्** बनाया है, (**यत्**) जिससे (**त्वम्**) यह (**वाजांन्**) अन्न आदि को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**अद्रवः**) बहती है । (**भूम्याः**) पृथिवी (**अधि**) पर (**सानुना**) ऊंचे उठे हुए (**प्रवता**) मार्ग से (**यासि**) बहती है (**यत्**) जिस उठे हुए मार्ग से बहती हुई यह (**एषाम्**) इन (**जगताम्**) जङ्गम प्राणियों पर (**अग्रम्**) प्रत्यक्ष (**इरज्यसि**) प्रभाव दिखाती है ।

भावार्थः—अति बहाव वाली नदी के जाने=बहने के लिए आदित्य ने मार्ग बना रखा है जिससे यह अन्न आदि को लक्ष्य में रखकर बहती है। भूमि पर के ऊंचे मार्ग से यह बहती है। जिस उन्नत मार्ग से यह बहती है वह इन प्राणियों को प्रत्यक्ष होता है और यह प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाती है ॥२॥

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३॥

पदार्थः—(**भूम्याः**) भूमि के (**उपरि**) ऊपर होने वाला यह वेगवती नदी के बहाव का (**स्वनः**) शब्द (**दिवि**) आकाश में (**यतते** , पहुंचता है (**भानुना**) सूर्य के तेज से युक्त होकर (**अनन्तम्**) पर्याप्त (**शुषमम्**) वल को (**उत् इर्यत्ति**) प्राप्त कराती है । (**अभ्रादिव**) मेघ से जिस प्रकार (**वृष्टयः**) वृष्टियां (**प्र-स्तनयन्ति**) शब्द करती हुई भूमि पर पड़ती हैं उसी प्रकार इसके शब्द होते हैं, (**यत्**) जब (**सिन्धुः**) अति वेग वाली नदी (**वृषभः न**) सांड के समान (**रोरुवत्**) शब्द करती हुई (**एति**) जाती वा वहती है ।

भावार्थः—जब यह वेगवाली नदी सांड की तरह शब्द करती हुई बहती है तब मेघ से होने वाली वृष्टि के समान शब्द होता है। इसके बहाव का शब्द पृथिवी पर होता हुआ आकाश में पहुंचता है। सूर्य की किरणों से इसकी ऊर्मियां युक्त होती है और यह नदी अपने वेग को और भी बढ़ा लेती है ॥३॥

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४॥

पदार्थः—(**सिन्धो त्वा**) इस वेग वाली नदी को (**शिशुम्**) शिशु को (**मातर इत् न**) माताओं के समान (**पयसा**) दूध से युक्त (**धेनवः इव**) गायों के समान (**वाश्राः**) शब्द करती हुई दूसरी नदियां (**अभि अर्षन्ति**) प्राप्त होती=मिलती हैं, (**त्वम् इत्**) यह ही (**युध्वा**) युद्ध करने वाले (**राजा इव**) राजा के समान (**सिचौ**) पानी से भरे दोनों तटों को (**नयसि**) बहाती है, (**यत्**) जब (**आसाम्**) इन (**प्रवताम्**) साथ में जाने वाली नदियों को (**अग्रम्**) आगे (**इनक्षि**) व्याप्त करती है ।

भावार्थः—जिस प्रकार मातायें शिशुओं को मिलती हैं और जिस प्रकार दूध से भरी हुई नव प्रसूता गाय आती है उसी प्रकार शब्द करती हुई दूसरी नदियां इसमें मिलती हैं । युद्धे करने वाले राजा के समान यह जब इसमें मिली नदियों के आगे रहती है और बाढ़ आती है तो दोनों तटों को भी बहाती है ॥४॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५॥

पदार्थः—(**इमम्**) इस मेरे (**स्तोमम्**) प्रशसा वचन को ये नदियां (**आसचत**) सब प्रकार से सेवित कराती है (**शृणुहि**) सुनवाती है (**गङ्गे**) अति गमन शील नदी, (**यमुने**) मिलकर भी और अलग रहकर भी चलने वाली नदी, (**सरस्वति**) अधिक जल वाली नदी, (**शुतुद्रि**) शीघ्र वहने वाली नदी, (**परुष्ण्या**) पर्व वाली कुटिल गामिनी नदी, (**असिक्न्या**) जो नीले पानी वाली है, (**मरुद्वृधे**) मरुतों से बढ़ने वाली (**वितस्तया**) विस्तार वाली नदी के साथ (**आर्जिकीये**) सीधे बहने वाली नदी, (**सुषोमया**) जिसके किनारे पर सोमलता आदि हों ।

भावार्थः—ये भिन्न-भिन्न प्रकार के बहावों और जलों से युक्त नदियां हैं जिनका परिज्ञान करना चाहिए ॥५॥

सूचना - ये कोई व्यक्ति वाचक नाम नहीं हैं । इनके विषय में मेरी पुस्तक 'वैदिक इतिहास विमर्श'का वैदिक इतिहासों का निराकरण प्रकरण देखें ।

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६॥

पदार्थः– (**सिन्धो त्वम्**) यह सिन्धु=अधिक वेग वाली नदी (**क्रुमुम्**) क्रमणशील (**गोमतीम्**) गौ आदि जिसके किनारे पर चरती हों ऐसी नदी के प्रति (**यातवे**) जाने के लिए (**प्रथमम्**) पहले (**तृष्ठामया**) क्षिप्रगामिनी जलधारा से (**सजूः**) मिलती है (**सुसर्त्वा**) उत्तम प्रकार से सरण वाली, (**रसया**) जलमयी (त्या) उस (**श्वेत्या**) श्वेत जलों वाली (**कुभया**) जिसके पानी में भूमि भासती है तथा (**मेहत्न्वा**) जिसमें जल किनारों पर सीझता है ऐसी नदी के साथ मिलती है (**याभिः**) जिनके साथ (**सरथम्**) प्रकाश सहित (**ईयसे**) जाती है।

भावार्थः ये सब नदियां है जो अधिक बहाव वाली नदी से मिलकर सूर्य के प्रकाश में बहती हुई जाती है ॥६॥

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७॥

पदार्थः—(**ऋजीती**) ऋजुगामिनी (**एनी**) श्वेत वर्णवाली (**रुशती**) भासमान स्पन्दनवती नदी (**जयांसि**) वेग वाले जलों को (**परि भरते**) भरती है (**अदब्धा**) प्रवृद्ध (**सिन्धुः**) स्पन्दनवती नदी (**अप्साम्**) वेग वालियों में (**अपस्तमा**) अधिक वेगवाली है। यह (**अश्वा**) घोड़ी के (**न**) समान (**चित्रा**) चायनीय (**वपुषाइव**) शरीर वाली योषित् के समान (**दर्शता**) दर्शनीय होती है।

भावार्थः—यह स्पन्दनशील नदी जो वेग वाली नदियों में अत्यधिक वेग वाली है और जो अश्वा तथा शोभन शरीर वाली योषित् के समान दिखाई पड़ती है वेग वाले जलों को अपने अन्दर भरती है ॥७॥

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८॥

पदार्थः—(सिन्धुः) यह स्पन्दन वाली नदी (**स्वश्वा**) अश्वां वाले प्रदेश वाली, (**सुरथा**) उत्तम रथ जिसके प्रदेश में होते हैं, (**सुवाशाः**) जो उत्तम वस्त्रों के बनने के प्रदेश वाली होती है, (**हिरण्ययी**) जिसके किनारे के प्रदेशों में सोने आदि की खानें भी होती है, (**सुकृता**) उत्तम कर्म जहां पर होते हैं, (**वाजिनीवती**) अन्नों वाली, (**ऊर्णावती**) जिसके प्रदेश में ऊन होती है, (**युवतिः**) सदा जलों से भरी हुई, (**सीलमावती**) ओषधि और वनस्पति से युक्त (**उत**) और (सुभगा) खुले प्रकाश वाली (**मधुवृधम्**) जल को बढ़ाने बाले प्रदेश अथवा ओषधि को बढ़ाने वाले, अथवा मधु को बढ़ाने वाले प्रदेश को (**अधि वस्ते**) घेरती है।

भावार्थः– ऐसी स्पन्दनशील नदी के किनारे के प्रदेशों में घोड़, रथ-निर्माण, वस्त्रोत्पादन, स्वर्ण आदि धातुओं की खानें, ऊन की पैदावार, ओषधियां आदि अधिकतर होती हैं ॥८॥

सुखं रथं ययुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥९॥

पदार्थः– नदियों के नदी के समान वर्णन करने और मंत्र के देवता के रूप में वर्णन करने की शैली है। यहां पर सिधु नदी रूप में नहीं बलिक नदी देवता रूप में वर्णित है—

(**सिन्धु**) अन्तरिक्षस्थ जल-प्रवाह अथवा जल को स्थित रखने वाला तत्त्व=वरुण (**सुखम्**) सुखकर (**अश्विनम्**) किरणों वाले (**रथम्**) चक्र को (**युयुजे**) जोड़ता है। (**तेन**) उससे (**वाजम्**) अन्न को (**अस्मिन्**) इस (**आजौ**) संसार संग्राम में (**सनिषत्**) देता है (**अस्य**) इसकी (**महिमा**) महत्ता (**महान्**) महती (**पनस्यते**) सुनी जाती है (**हि**) क्योंकि यह (**अदब्धस्य**) प्रभाव शाली (**स्वयशसः**) स्वयं यशस्वी और (**विरप्शिनः**) महाशक्ति है।

भावार्थः— अन्तरिक्षस्य जल वेग (सिन्धुः) सुखकर और सूर्य किरणों के जाल को अपने साथ जोड़ता है। उससे अन्न आदि को इस संसार में देता है। उसकी महत्ता महती है। वह प्रभाव शाली, स्वयं यशस्वी और महा शक्ति है ॥९॥

सूचना इस सूक्त में नदियों का वर्णन है। ये कोई विशेष व्यक्ति वाचक नाम वाली नदी नहीं हैं। क्योंकि इनका पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में होना भी बतलाया गया है।

यह दशम मण्डल में पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—७६

ऋषिः—१—८ जरत्कर्ण ऐरावतः सर्पः ॥ देवताः—ग्रावाणः ॥ छन्दः—
१, ६, ८, पादनिचृज्जगती । २, ३ आर्चीस्वराड्जगती । ४, ७
निचृज्जगती । ५ आसुरीस्वराडार्चीनिचृज्जगती ॥
स्वरः—निषादः ॥

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो ! (**ऊर्जाम्**) ऊर्जवती उषाओं के (**व्युष्टिषु**) उदित होने पर प्रभात वेला में मैं स्तावक वा यजमान (**वः**) आप सबको (**आ-ऋञ्जसे**) सुसज्जित करता हूं, आप लोग ही (**इन्द्रम्**) विद्युत् (**मरुतः**) मरुद्गण (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**अनक्तन**) हमारे ज्ञान में व्यक्त कराते हो । (**यथा**) जिस प्रकार (**सचाभुवा**) सहोत्पन्न द्यु और पृथिवी हमें अन्न आदि से (**सदः सदः**) सभी याग गृहों में (**वरिवस्यातः**) सेवा करते हैं उसी प्रकार (**अहनी**) दिन और रात्रि भी (**नः**) हमें (**उद्भिदा**) उद्भेदक अन्न आदि धनों से युक्त करें ।

भावार्थः—हे विद्वज्जनो ! मैं यजमान आप सबको उषाओं के उदय में (प्रभात वेला और सन्ध्या वेला में) सुसज्जित करता हूं। आप हमें विद्युत्, मरुद्गण, द्यु और पृथिवी लोक का ज्ञान देते हो। जिस प्रकार द्यु और पृथिवी हमारे यज्ञों में हमें लाभ पहुचाते हैं वैसे ही दिन और रात्रि भी अन्न आदि से हमें युक्त करें ।।१।।

तद्दु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्य१र्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥२॥

पदार्थ--हे विद्वानो ! आप लोग (**तत्**) उस (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**सवनम्**) यज्ञ को (**सुनोतन**) करो, (**अत्यः न**) जिस प्रकार अश्व (**हस्तयतः**) हाथों से नियन्त्रित होकर (**सोतरि**) अपने चलाने वाले के अधीन रहकर (**पौंस्यम्**) बल को (**विदन्**) प्राप्त करता है । (**अद्रिः**) आदरणीय (**अर्यः**) यजमान (**अभिभूति**) प्रभावयुक्त (**पौंस्यम्**) बल को (**विदत्**) प्राप्त करता है । (**यत्**) यतः (**महः**) महान् (**राये**) धन की प्राप्ति के लिए (**अर्वतः**) आक्रमणकारी विघ्नों को (**तरुते**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग उस श्रेष्ठ यज्ञ को करो जो सब का कल्याणकारी है। जिस प्रकार घोड़ा हाथों से नियन्त्रित होकर चलाने वाले के आधीन रहकर बल को प्राप्त करता है उसी प्रकार आदरणीय यजमान विद्वानों के हाथों में रहकर प्रभावशाली बल को प्राप्त करता है। यतः वह महान् धन की प्राप्ति के लिए आक्रमणकारी विघ्नों-बाधाओं को नष्ट करता है ।।२।।

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥३॥

पदार्थः--(**अस्य**) इसका (**तत् सवनम्**) वह यज्ञ (**अपः**) समस्त प्रजाओं और लोकों को (**विवेः**) व्याप्त करे, जिससे (**यथा पुरा**) पूर्ववत् (**मनवे**) मनुष्य के हितार्थ (**गातुम्**) ज्ञान को (**अश्रेत्**) प्राप्त करे, (**गोऽअर्णसि**) गायों को छिपाने वाले (**अश्वनिर्णिजि**) घोड़ों को छिपाकर रूपान्तर देने वाले (**त्वाष्ट्रे**) शत्रु में हन्तव्य भावना करे, विद्वान् और लोग (**अध्वरेषु**) अहिंस्य कर्मों में (**ईम्**) इव (**अध्वरान्**) यज्ञों का (**अशिश्रयुः**) आश्रय लेवें ।

भावार्थः—इस यजमान का यज्ञ विविध लोकों और प्रजाओं को व्याप्त करे जिससे पूर्ववत् मनुष्य के हितार्थ ज्ञान को वह प्राप्त करे। गायों को छिपाने वाले तथा अश्वों को छिपाकर रूपान्तर देने वाले में हन्तव्य भावना करे। तथा अहिंस्य कर्मों में यज्ञों को स्थान दे ।।३।।

अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४॥

पदार्थः—(**अद्रयः**) हे आदरणीय विद्वानो ! (**रक्षसः**) राक्षस वृत्तियों को (**अप हत**) विनष्ट करो, (**भंगुरावतः**) नियम व्यवस्था को भंग करने वालों को (**स्कभायत**) दूर करो (**निर्ऋतिम्**) दुःखदायी आपदा तथा (**अमतिम्**) अज्ञानता को (**अपसेधत**) दूर भगाओ, (**नः**) हमारे लिए (**सर्ववीरम्**) सर्व प्रकार के पुत्रों और वीरों वाले (**रयिम्**) धन को (**सुनोतन**) दो (**देवाव्यम्**) भगवान् की प्यारी (**श्लोकम्**) स्तुति को (**भरत**) संपादित करो ।

भावार्थः—हे आदरणीय विद्वानो ! आप राक्षसी प्रवृत्तियों को नष्ट करो, नियमों की अव्यवस्था करने वालों को दूर भगाओ, दुःखदायी आपदा

और अज्ञता को दूर फेंको, हमारे लिए सब प्रकार पुत्र और वीर आदि से युक्त धन दो और भगवान् की प्यारी स्तुति का संपादन करो ॥४॥

दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५॥

पदार्थः– हे यजमान तू ! (**दिवः चित**) आदित्य से भी (**अमवत्तरेभ्यः**) बलवाले (**वः**) इव (**विभ्वना चित**) विद्युत् से भी (**आशु अपस्तरेभ्यः**) शीघ्र कर्म करने वाले, (**वायोः चित्**) वायु से भी (**सोमरभस्तरेभ्यः**) प्रेरक बल से बलशाली (**अग्नेः चिद्**) अग्नि से भी (**पितुकृत्तरेभ्यः**) अधिक अन्न को उत्पन्न करने वाले प्राणवलों के लिए (**अर्च**) आदर रख ।

भावार्थः—हे यजमान ! तू आदित्य से भी अधिक बल वाले, विद्युत से भी अधिक शीघ्र कार्य करने वाले और अग्नि से भी अधिक अन्न उत्पन्न करने वाले इन प्राणों के ज्ञान के लिये आदर रख ॥५॥

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥६॥

पदार्थः– (**यशसः**) यशस्वी (**ग्रावाणः**) विद्वज्जन (**अन्धसः**) प्राणधारक अन्न से (**सोतुः**) उत्पन्न रस को (**भरन्तु**) प्राप्त करें, **और औरों को भी देवें,** (**यत्र**) जिसमें (**नरः**) मनुष्य (**दिविता**) उत्तम कामना से प्रेरित होकर (**दिवित्मता**) स्फूर्तिदायक (**वाचा**) वाणी से (**मिथस्तुरः**) परस्पर वेगवान् होकर एवं मिलकर (**अभितः**) सब **ओर** (**आघोषयन्तः**) **ज्ञानोपदेश करते** हुए (**काम्यम्**) चाहने योग्य (**मधु**) मधुर ज्ञान को (**दुहते**) दुहे अर्थात् प्राप्त करे।

भावार्थः— यशस्वी विद्वज्जन अन्न से उत्पन्न किये गए रस को प्राप्त करें और औरों को देवें । जिसमें मनुष्यजन कामना से प्रेरित होकर स्फूर्तिदायक वाणी से परस्पर मिलकर अथवा परस्पर वेगवान् होकर ज्ञानोपदेश करते हुए चाहने योग्य मधुर ज्ञान को प्राप्त करें ॥६॥

सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७॥

पदार्थः—(**रथिरासः**) देहरूप रथ में विद्यमान (**अद्रयः**) आदरणीय (**नरः**) नेता विद्वज्जन (**सोमम्**) सोम को (**सुन्वन्ति**) चुआते हैं (**गविषः**) स्तुति करने की कामना करते हुए (**ते**) वे (**ऊधः**) उस सोम से (**रसम्**) रस को (**उपसेचनाय**) अग्नि के उपसेचन के लिए (**निः दुहन्ति**) दोहन करते हैं **न**) यथा (**हव्या**) हव्य शेष को लोग (**आसभिः**) मुख से शेषभक्षण द्वारा (**मर्जयन्ति**) शुद्ध करते हैं ।

भावार्थः–देहरूप रथ में स्थित आदरणीय पथप्रदर्शक विद्वज्जन सोम को निचोड़ते हैं और स्तुति की कामना करते हुए वे सोम से रस को अग्नि के उपसेचन के लिए दुहते हैं जिस प्रकार हुतशेष को लोग भक्षण द्वारा शुद्ध करते हैं ॥७॥

एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥८॥

पदार्थः–(**नरः**) हे नेता (**अद्रयः**) आदरणीय विद्वानो ! (**एते**) ये (**ये**) ये जो आप लोग (**इन्द्राय**) यज्ञ में इन्द्र के लिए (**सोमम्**) सोम को (**सुनुथ**) तैयार करते हो उससे (**सु अपसः**) उत्तम कर्म वाले (**अभूतन**) हो जाते हो (**वः**) आप लोग (**वामम् वामम्**) वननीय श्रेष्ठ अन्न धन आदि को (**दिव्याय**) दिव्य (**धाम्ने**) तेजों अर्थात् यज्ञ देवों के लिए करते हो **और** (**वः**) आप लोग (**वसुवसु**) जो वासयोग्य धन है उसे (**पार्थिवाय**) पृथिवीस्थ यजमान के लिए (**सुन्वते**) करते हो ।

भावार्थः–हे नेता आदरणीय विद्वानो ! इन्द्र के लिए जो यज्ञ में आप लोग सोम तैयार करते हो इससे उत्तम कर्म वाले होते हो । आप लोग वननीय हव्य आदि धन को यज्ञ देवों को देते हो और वसने योग्य को यजमान को देते हो । हुतद्रव्य साररूप में देवों को जाता है और उस प्रभाव से उत्पन्न अन्न आदि यजमान एवम् पृथिवीस्थ मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥८॥

यह दशम मण्डल में छिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७७

ऋषिः—१–८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ६—८ विराट्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१—४, ६—८ धैवतः । ५ निषादः ॥

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१॥

पदार्थः—(**अभ्रप्रुषः**) मेघ से निकली पानी की बून्दों के (**न**) समान (**वाचा**) माध्यमिका वाणी से युक्त (**मरुतः**) मरुद्गण (**वसु**) धन को (**प्रुषा**) सींचते हैं वे (**हविष्मन्तः**) हवियों से युक्त (**यज्ञाः**) यागों की (**न**) तरह (**विजानुषः**) जगत् को अन्न आदि से संसन्न करने वाले होते हैं, मैं यजमान (**ब्रह्माणम्**) वेदज्ञ के (**न**) समान (**सुमारुतम् गणम्**) मरुतों के उत्तम समूह की (**अस्तोषि**) प्रशसा करता हूँ (**न**) सम्प्रति (**शोभसे**) शोभार्थ भी प्रशंसा करता हूं ।

भावार्थः—मेघ से गिरने वाले जलविन्दुओं के समान माध्यमिक वाक् से युक्त ये मरुत् लोग धन प्रदान करते हैं । हबियों से युक्त यागों की भांति ये जगत् को अन्न आदि से संपन्न करने वाले हैं । वेदज्ञ की भाति इस मरुद्गण की मैं यजमान प्रशंसा करता और संप्रति शोभार्थ भी प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२॥

पदार्थः—(**श्रिये**) जगत् के पदार्थों की शोभा के लिए (**मर्यासः**) मरणधर्मा मरुत् (**अंजीन्**) विविध शोभा साधनों को (**अकृण्वत**) उत्पन्न करते हैं (**सुमारुतम्**) इन उत्तम मरुद्गण को (**पूर्वीः**) बहुत सी (**क्षपः**) नाशक सेना भी (**न अति**) नहीं अतिक्रान्त कर सकती है, (**दिवः**) द्युलोक के पुत्र (**एतः**) गतिशील ये मरुत् (**न**) नहीं (**येतिरे**) यत्न करते हैं (**ते**) वे (**आदित्यासः**) अदिति के पुत्र (**अक्राः**) आक्रमणशील मरुत् (**न**) नहीं (**ववृधुः**) बढ़ते हैं ।

भावार्थ—जगत् के पदार्थों की शोभा के लिए ये मरुत् शोभा सामग्री को उत्पन्न करते हैं । बहुत-सी विनाशक सेना भी इनका अतिक्रमण नहीं कर सकती है । ये द्युलोक के पुत्र होने से गतिशील होते हुए इन्हें गति करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है । अदिति के पुत्र ये आदित्य होने से वस्तुओं की आयु को कम करते हैं ये बढ़ाते नहीं हैं ॥२॥

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ॥३॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुत् (**दिवः**) द्युलोक से और (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**न**) नहीं हैं बल्कि (**बर्हणा**) महत्व और (**त्मना**) अपनी निजी शक्ति से (**रिरि चे**) अतिरिक्त होते हैं । ये (**अभ्रात**) मेघ से (**सूर्यः**) सूर्य के समान (**पाजस्वंतः**) बलवाले (**वीराः**) वीरों के (**न**) समान (**पनस्यवः**) स्तुतियोग्य होते हैं और (**रिशादसः**) शत्रुनाशक (**मर्याः**) मनुष्य के समान (**अभिद्यवः**) अभिगतदीप्ति होते हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुत् हैं वे न पृथिवी से सत्ता वाले हैं और न द्युलोक से सत्ता वाले हैं । ये मेघ से सूर्य की तरह अपनी महत्ता और निजी शक्ति से पृथिवी और द्यु आदि से अतिरिक्त हैं । बलशाली वीरों के समान ये प्रशंस्य हैं और शत्रुओं के नाशक मनुष्य के समान दीप्ति को प्राप्त हुए हैं ॥३॥

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४॥

पदार्थः—(**युष्माकम्**) इन मरुतों के (**बुध्ने**) परस्पर संघात में (**अपाम्**) जलों के (**यामनि**) गमन की (**न**) भांति (**मही**) महती भूमि (**न**) न (**विथुर्यति**) व्यथित होती है (**न**) न (**श्रथर्यति**) विशीर्ण होती है, (**विश्वप्सुः**) विश्वरूप (**अयम्**) यह (**यज्ञः**) यज्ञ (**वः**) इनके (**अर्वाक्**) समक्ष (**सु**) सुष्ठुरूप से जाता है, (**प्रयस्वन्तः**) अन्न वाले परिष्कर्त्ता लोगों की भांति (**सत्राच**) साथ-साथ हुए (**आगत**) आते हैं ।

भावार्थः—इन मरुतों के परस्पर संघात में जलों के गमन की भांति महती भूमि न व्यथित होती है और न विशीर्ण होती है । समस्त रूपों वाला यह यज्ञ पदार्थ इनके संमुख पहुँचता है और अन्न को परसने वा साफ करने वालों की भांति ये समूह में आते हैं ॥४॥

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥५॥

पदार्थः—(**यूयम्**) ये मरुत् (**धूः सु**) धुरों में (**रश्मिभिः**) रस्सी से बंधे अश्वों के (**न**) समान (**परिप्रुषः**) जाने वाले होते हैं, (**व्युष्टिषु**) उषाओं के उदयकाल मे (**ज्योतिष्मन्तः**) प्रकाशमान आदित्यों के (**न**) समान (**भासा**) प्रकाश से युक्त होते हैं, (**श्येनासः**) वायुओं के (**न**) समान (**स्वयशसः**) स्वयं यशस्वी (**रिशादसः**) बुरी वस्तुओं के नाशक हैं, (**प्रवासः**) प्रवास करने वालों के (**न**) समान (**प्रसितासः**) प्रसिद्धगति हैं ।

भावार्थः—ये मरुत् धुरे में रस्सी से बंधे घोड़ों के समान जाने वाले, उषाओं के उदयकाल में आदित्यादि की भांति तेज वाले वायु के समान स्वयं यशस्वी और बुरे पदार्थों के नाशक हैं । ये प्रवास करने वालों की भांति प्रसिद्धगति हैं ॥५॥

प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६॥

पदार्थः—(**यूयम् मरुतः**) ये मरुत् (**यत्**) जब (**पराकात्**) अत्यन्त दूर देश से (**वहध्वे**) आते हैं तब (**महः**) महान् (**संवरणस्य**) वरणीय, (**राध्यस्य**) राधनीय (**वस्वः**) धन को (**विदानासः**) देते हुए (**वसवः**) वासक ये (**आरात्**) दूर से (**चित्**) ही (**सनुतः**) अन्तर्हित (**द्वेषः**) द्वेष वालों को (**युयोत**) पृथक् करते हैं ।

भावार्थः—ये मरुत् जब अत्यन्त दूर प्रदेश अन्तरिक्ष से पृथिवी पर आते हैं तब उत्तम अन्न आदि धन को देते हुए आते हैं और दूर से ही वर्षा अन्न आदि की विरोधी शक्तियों को पृथक् कर देते हैं ॥६॥

य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७॥

पदार्थः—(**अध्वरेष्ठाः**) यज्ञ में बैठा हुआ (**यः**) जो (**मानुषः**) मनुष्य (**यज्ञे**) यज्ञ के (**उदृचि**) वेद मन्त्रों के पाठ के साथ प्रारब्ध हो जाने पर (**मरुद्भ्यः न**) मरुतों के समान ऋत्विग् आदि को (**ददाशत्**) देता है (**सः**) वह (**रेवत्**) धनयुक्त (**सुवीरम्**) उत्तम संतान से युक्त (**वयः**) अन्न को (**दधते**) धारण करता है (**देवानाम्**) देवों के (**गोपीथे**) रक्षा में (**अपि**) भी (**अस्तु**) होता है ।

भावार्थः—यज्ञ में बैठा हुआ जो मनुष्य यज्ञ के मन्त्रों के साथ प्रारब्ध होने पर मरुतों के समान ऋत्विगादि के लिए धन आदि को देता है वह उत्तम संतान से युक्त धन सहित अन्न को पाता है और देवों से रक्षित भी होता हैं ॥७॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८॥

पदार्थ—(**यज्ञियासः**) यष्टव्य, (**ऊमाः**) रक्षक (**आदित्येन**) आदित्य सम्बन्धी (**नाम्ना**) जल से (**शम्भविष्ठाः**) सुख देने वाले (**ते**) वे (**हि**) ही मरुत् (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**नः**) हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें । वे (**रथतूः**) रश्मि चक्र को त्वरित करते हुए (**अध्वरे यामन्**) याग में जाने के लिए (**महत्**) महान् (**हविः**) हवि को (**चकानाः**) चाहते हुए (**मनीषाम्**) बुद्धि की (**अवन्तु**) रक्षा करें ।

भावार्थः—यष्टव्य, रक्षा करने वाले, आदित्य सम्बन्धी (किरणों में धृत) जल से सुख देने वाले, रश्मियों के चक्र को वेगवान् करते हुए, यज्ञ में अपने हव्य भाग को चाहते हुए हमारी रक्षा और हमारी बुद्धि की रक्षा के साधन बनें ॥८॥

यह दशम मण्डल में सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७८

ऋषिः—१—८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, आर्चीत्रिष्टुप् । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । २, ५, ६ विराड्जगती । ७ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१, ३, ४, ८ धैवतः । २, ५—७ निषादः ।

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो३ न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसन्दृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥१॥

पदार्थः—(**मन्मभिः**) स्तुति एवं मननशक्ति से युक्त (**विप्रासः**) मेधावी लोगों के (न) समान(**स्वाध्यः**) अपने कार्य में संलग्न वा एकरत (**यज्ञैः**) यज्ञों के साथ युक्त (**देवाव्यः**) यज्ञमानों के (न) समान (**स्वप्नसः**) अपने उत्तम कार्यों से युक्त (**राजानः**) राजाओं के (न) समान (**चित्राः**) चित्र विचित्र कार्य करने वाले तथा (**सुसंदृशः**) सुष्ठु रूप से लोगों के दर्शन के कारण, (**क्षितीनाम्**) पृथिवी के (**मर्याः**) मनुष्यों के (न) समान (**अरेपसः**) निर्दोष हैं ये मरुद्गण ।

भावार्थः—ये मरुत् लोग मननशील मेधावी के समान अपने कार्य में एकरत यजमानों के समान अपने उत्तम कर्मों से युक्त, राजाओं के समान चित्रविचित्र कार्यों वाले और सबकी दृष्टियों के कारणभूत एवम् पृथिवी पर रहने वाले विशुद्ध मनुष्यां के समान निर्दोष हैं ॥१॥

अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥२॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुत् लोग हैं वे (**अग्निः**) अग्नि के (न) समान (**भ्राजसा**) तेज से युक्त, (**रुक्मवक्षसः**) तेज है वक्षस्थल में जिनके ऐसे (**वातासः**) वायुओं के (न) समान (**स्वयुजः**) स्वयं कार्यरत तथा (**सद्यऊतयः**) सद्यः गमन वाले, (**प्रज्ञातारः**) जानने वालों के (न) समान (**ज्येष्ठाः**) ज्येष्ठ (**सुनीतयः**) उत्तम नीतियों वाले (**सुशर्माणः**) उत्तम सुखों वालों के (न) समान (**सोमः**) उत्तम हैं (**ऋतम्**) प्राकृतिक नियम पर (**यते**) चलने वाले के लिए।

भावार्थः—ये मरुद्गण प्राकृतिक नियम पर चलने वाले के लिए अग्नि के समान सतेज, अन्तस्तल में ज्योतिधारक वायुओं के समान स्वयं कार्यरत, ज्ञानियों के समान ज्येष्ठ प्रभाव वाले, तथा उत्तम नीति और सुखों वालों के समान सोम शक्ति वाले हैं ॥२॥

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥३॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुद्गण हैं वे (**वातासः**) वायुओं के (न) समान (**धुनयः**) हिलाने वाले (**जिगत्नवः**) गतिशील, (**अग्नीनाम्**) अग्नियों के (**जिह्वाः**), ज्वाला के (न) समान (**विरोकिणः**) रोचनायुक्त (**वर्मण्वन्तः**) वर्म वाले (**योधाः**) योद्धाओं के (न) समान (**शिमीवन्तः**) शौर्य कर्म वाले, (**पितॄणाम्**) माता-पिता के (**शंसाः**) वाणी के (न) समान (**सुरातयः**) उत्तम दान वाले हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे वायुओं के समान सबको झकोरने वाले, गतिशील, अग्नि की ज्याला के समान रोचनायुक्त, कवचधारी योद्धाओं के समान सृष्टि में चलते प्राकृतिक संघर्ष के शौर्यशाली योद्धा और माता-पिता की वाणी के समान उत्तम अन्न आदि के दाता हैं ॥३॥

रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥४॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुद्गण हैं वे (**रथानाम्**) रथों के (**अराः**) अरों के (न) समान (**सनाभयः**) समान नाभि वाले, (**जिगीवांसः**) जयनशील (**शूराः**) शूरों के (न) समान (**अभिद्यवः**) सर्व प्रकार से तेजस्वी, (**वरेयवः**) परस्पर देने वाले (**मर्याः**) मनुष्यों के (न) समान (**घृतप्रुषः**) जल के वर्षाने वाले (**अर्कम्**) ऋचाओं के (**अभिस्वर्तारः**) उच्चारण करने वालों के (न) समान (**सुष्टुभः**) उत्तम शब्दों वाले हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे रथों के अरों के समान समान नाभि वाले हैं (यद्यपि संख्या में बहुत हैं परन्तु सबन्धु हैं) जयनशील शूरों के समान सर्व प्रकार से तेजस्वी, परस्पर दाता मनुष्यों के समान जल की वर्षा करते वाले तथा ऋक् पाठ करने वालों के समान उत्तम शब्दों वाले हैं ॥४॥

अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥५॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुद्गण हैं वे (**अश्वासः**) अश्वों के (न) समान (**ज्येष्ठासः**) प्रशस्यतम तथा (**आशवः**) शीघ्रगति, (**दिधिषवः**) धारक शक्ति वाले (**रथ्यः**) रथस्वामियों के (न) समान (**सुदानवः**) उत्तम दान वाले, (**आपः**) जलों के (न) समान (**निम्नैः**) नीचे को बहने वाले (**उदभिः**) जलों के (**जिगत्नवः**) गमनशील (**सामभिः**) सा+अम=पृथिवी और सूर्य दोनों से सम्बन्ध रखने वाले (**विश्वरूपाः**) नाना रूप (**अंगिरसः**) अंगारों के (न) समान पृथिवी और सूर्य से संपर्क रखने वाले हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे अश्वों के समान शीघ्रगामी और प्रशस्त, धारक शक्ति वाले रथ स्वामियों के समान उत्तम दाता, जलों के समान नीले प्रदेश की ओर बहने वाले जलों के साथ गमनशील तथा पृथिवी और सूर्य दोनों से सम्बन्ध रखने वाले आग्नेय अङ्गारों के समान पृथिवी और सूर्य से सम्बन्ध रखने वाले हैं ॥५॥

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६॥

पदार्थः—ये मरुद्गण (**सूरयः**) उदक के प्रेरक (**ग्रावाणः**) मेघों के (**न**) समान (**सिन्धुमातरः**) स्पन्दनशील धाराओं के निर्माता (**आदर्दिरासः**) विदारणशील (**अद्रयः**) वज्र अर्थात् बिजली के (**न**) समान (**विश्वहा**) विश्वरूप मेघ के हन्ता (**सुमातरः**) उत्तम माताओं वाले (**शिशूला**) शिशुओं के (**न**) समान (**क्रीडयः**) विहार करने वाले, (**उत**) और (**महाग्रामः**) महान् लोक समुदाय के (**न**) समान (**यामन्**) गमन में (**त्विषा**) दीप्ति से युक्त हैं ।

भावार्थः—ये मरुद्गण जलदाता मेघों के समान जलप्रवाहों में वेग देने वाले हैं, सबका विदारण करने वाली बिजली के समान विश्वरूप मेघ के हन्ता, उत्तम माताओं वाले शिशु के समान क्रीडा करने वाले तथा महान् लोक समुदाय के समान गमन में दीप्ति से युक्त हैं ॥६॥

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७॥

पदार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे (**उषसाम्**) उषाओं के (**केतवः**) रश्मियों के (न) समान (**अध्वरश्रियः**) अन्तरिक्ष की शोभा, (**शुभंयवः**) शुभ की कामना करने वाले श्रेष्ठ विद्वानों के (**न**) समान (**अञ्जिभिः**) प्रकाशों से (**व्यश्वितन्**) प्रकाशमान होते हैं, (**सिन्धवः**) स्पन्दन वाले जल प्रवाह के (**न**) समान (**ययिवः**) गतिशील (**भ्राजन् ऋष्टयः**) दीप्तिमान दूरदेश तक जाने वाले अश्वों के (**न**) समान (**योजनानि**) दूरियों को (**ममिरे**) मापते हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे उषाओं की रश्मियों के समान अन्तरिक्ष की शोभा हैं, शुभ कामना करने वाले श्रेष्ठ विद्वानों के समान प्रकाशों से प्रकाशमान होते हैं तथा दीप्तिमान आयुधों वाले दूर प्रदेश में जाने वाले अश्वों के समान देश की दूरी को मापते हैं ॥७॥

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८॥

पदार्थः—(**वावृधानाः**) शक्ति से बढ़ते हुए ये (**मरुतः**) मरुद्गण (**देवाः**) देव (**नः**) हमें (**सुभागान्**) उत्तम अन्न आदि पदार्थों वाला (**कृणुत**) करते हैं तथा (**अस्मान्**) हम (**स्तोतॄन्**) परमेश्वर के स्तोताओं (**सुरत्नान्**) उत्तम रत्नों वाला (**कृणुत**) करते हैं । ये (**स्तोत्रस्य**) स्तोत्र के (**सख्यस्य**) संपर्क को (**अधि गात**) प्राप्त करते हैं (**हि**) क्योंकि (**वः**) इनके (**रत्नधेयानि**) रत्नदान (**सनात्**) चिरकाल से हैं ।

भावार्थः—शक्ति से बढ़ते हुए मरुद् देवगण हम भगवान् के भक्तों को अन्न आदि से युक्त और रत्न आदि से युक्त करते हैं । ये शब्दमय स्तोत्र से संपर्क रखते हैं और इनका यह रत्न आदि का देना सदा से है ॥८॥

यह दशम मण्डल में अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७९

ऋषिः—१—७ अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा, सप्तिर्वा वाजम्भरः ॥
देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१॥

पदार्थः—मैं अग्निविद्याविद् (**अमर्त्यस्य**) अमरणधर्मा (**महतः**) महान् (**अस्य**) इस अग्नि के (**महित्वम्**) महिमा को (**मर्त्यासु**) मरणधर्मा (**विक्षु**) प्रजाओं में देखता हूं, इसके (**हनू**) हनू (**नाना**) नाना प्रकार से (**विभृते**) स्थित होकर (**संभरेते**) जगत् का पालन पोषण करती है, (**असिन्वती**) विना वंधे हुए वा वांधे हुए (**बप्सती**) अशित पीत को खाती वा पचाती हुई (**भूरि**) बहुत (**अत्तः**) खाती हैं ।

भावार्थः—मैं अग्निविद्याविद् मर्त्य प्रजा में वैश्वानर रूप में विद्यमान इस अमर्त्य अग्नि की महिमा को जानता हूं। इसके प्राणियों में रहने वाले और अप्राणियों में रहने वाले दो रूप हनू के समान हैं और सबका भरण-पोषण करते हैं। ये न बंधे हैं और न बांधते हैं सबके खाये-पिये हुए को पचाते हुए शरीर में और पदार्थों की शक्ति को खाते हुए अप्राणि जगत् में ये बहुत खाती हैं ॥१॥

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२॥

पदार्थः—इस अग्नि का (**शिरः**) मूर्धाभाग (**गुहा**) प्रत्येक प्राणी और अप्राणी के अन्तराल में ऊष्मारूप में स्थित हैं इसकी (**अक्षी**) दर्शनशक्ति (**अपृथक्**) पृथक् सूर्य और चन्द्ररूप में स्थित है (**असिन्वम्**) दांतों से न खाता हुआ यह (**जिह्वया**) जिह्वा=ज्वाला से (**वनानि**) जल काष्ठ आदि सभी को खाता है, (**अस्मै**) इस अग्नि [उदराग्नि] के लिए (**अधि विक्षु**) प्रजाओं के अन्दर लोग (**पड्भिः**) पैरों से चलकर (**उत्तानहस्ताः**) हाथ उठायेहुए (**नमसा**) उद्योग से (**अत्राणि**) खाद्य सामग्री (**संभरन्ति**) जुटाते हैं।

भावार्थः—इस अग्नि का मूर्धा भाग आकाश अथवा प्रत्येक प्राणी और अप्राणी के अन्तराल में ऊष्मा रूप में स्थित हैं। इसकी आंख चन्द्र और सूर्य हैं। यह दांतों से न खाता हुआ अपनी ज्वाला के समान जिह्वा से जल, काष्ठ और वस्तुओं को खाता है। इस उदराग्नि को तृप्त करने के लिए लोग हर प्रकार का हाथ-पैर मारकर खाद्य सामग्री एकत्र करते हैं ॥२॥

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३॥

पदार्थः—यह अग्नि (**कुमारः**) कुमार की (**न**) भांति (**मातुः**) पृथिवी सम्बन्धी (**उर्वीः**) बहुत-सी (**वीरुधः**) लता आदि को (**इच्छन्**) चाहता हुआ तथा (**गुह्यम्**) गोप्य (**प्रतरम्**) उनके मूल को भी चाहता हुआ (**प्र सर्पत**) फैलता है (**पक्वम्**) पके हुए (**ससम्**) अन्न के (**न**) समान (**रिरिह्वांसम्**) मूल से पृथिवी के रस को पीते हुए (**शुचन्तम्**) दीप्यमान नीरस वृक्ष को (**रिपः**) पृथिवी के (**उपस्थे अन्तः**) पृथिवी के उत्संग में (**अविदत्**) पाता है।

भावार्थः यह अग्नि कुमार की भांति पृथिवी सम्बन्धी लता आदि और उनके गूढ मूल को चाहता हुआ फैलता है। वह पके हुए अन्न के समान मूल से पृथिवी के रस को पीने वाले दीप्यमान नीरस वृक्ष को पृथिवी के उत्सङ्ग में प्राप्त करता है ॥३॥

तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४॥

पदार्थः—(**रोदसी**) हे आचार्य और पुरोहित ! (**वः**) आप दोनों को (**ऋतम्**) सत्य (**प्रब्रवीमि**) कहता हूँ कि यह (**जायमानः** \ उत्पन्न (**गर्भः**) गर्भभूत=अग्नि (**मातरा**) दोनों अरणियों को (**अत्ति**) खा जाता है। (**मर्त्यः**) मरणधर्मा (**अहम्**) मैं मनुष्य (**देवस्य**) अग्नि देव के रहस्य को (**न**) नहीं (**चिकेत**) जानता हूँ। (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि ही (**अंग**) निश्चय से (**विचेताः**) विशेष जानने योग्य और (**प्रचेताः**) प्रकृष्ट जानने योग्य है।

भावार्थः—हे आचार्य और पुरोहित मैं गृहस्थ आप से सत्य ही कहता हूं कि यह अग्नि जिन दो अरणी रूपी माताओं से उत्पन्न होता है उनको ही खा जाता है। मैं मरणधर्मा इस अग्निदेव के रहस्य को नहीं जानता। वह अग्नि ही विशेषरूप से जानने योग्य और प्रकृष्ट रूप से जानने योग्य हैं ॥४॥

यो अस्मा अन्नं तृष्वा३ दधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो मनुष्य (**अस्मै**) इस अग्नि के लिए (**तृषु**) शीघ्र (**अन्नम्**) अन्नरूप हवि को (**आ दधाति**) देता है (**आज्यैः**) चिकने (**घृतैः**) घृत आदि पदार्थों से (**जुहोति**) आहुति देता है (**पुष्यति**) समिधा आदि से पुष्ट करता है (**तस्मै**) उसके लिए यह अग्नि (**सहस्रम्**) सहस्र (**अक्षभिः**) ज्वालाओं से (**विचक्षे**) देखता है (**अग्नेस्त्वम**) यह अग्नि (**विश्वतः**) सब तरफ से (**प्रत्यङ्**) सामने (**असि**) है।

भावार्थः—जो मनुष्य इस अग्नि के लिए शीघ्र अन्न रूप हवि को देता है, चिकने घृत आदि पदार्थों से आहुति देता है और समिधा आदि से पुष्ट करता है उसे यह अग्नि अपनी सहस्रों ज्वालाओं से देखता है और सब प्रकार से सामने रहता है। अर्थात् सभी पदार्थों को उसे देता है ॥५॥

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ।

पदार्थः— (**किम्**) क्या (**देवेषु**) देवों में (**त्यजः**) क्रोध (**एनः**) पाप (**अग्ने**)इस अग्नि ने (**चकर्थ**) किया है (**त्वाम्**) इस अग्नि को ही (**नु**) क्षिप्रगति से (**अविद्वान्**) न जानता हुआ मैं यजमान (**पृच्छामि**) पूछता हूँ । (**अक्रीडन्**) कहीं पर न विहरता हुआ (**क्रीडन्**) कहीं पर खेलता हुआ (**हरिः**) हरणशील यह अग्नि (**अत्तवे**) खाद्य को (**अदन्**) खाता हुआ (**गाम्**) गौ, मनुष्य आदि के (**असिः**) तलवार के (**इव**) समान (**पर्वशः**) प्रत्येक पोर को (**विचकर्थ**) पृथक् पृथक् कर देता है ।

भावार्थः—देवों में इस अग्नि ने क्या क्रोध अथवा पाप किया है इस बात को मैं यजमान इस अग्नि से ही पूछता हूं । यह कहीं पर विहरता हुआ क्रीडा करता हरणशील होकर खाद्य को खाता हुआ गौ पुरुष आदि को खड्ग के समान गांठ-गांठ को छिन्न-भिन्न कर देता है । यह छिन्न-भिन्न करना ही उसका वस्तुतः क्रोध और एनः है । अन्य कुछ नहीं । वह स्वयं इसे बता रहा है ॥४॥

विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥७॥

पदार्थः (**वनेजाः**) जगलों अथवा जलों में उत्पन्न यह अग्नि (**विषूचः**) सब तरब फैले, हमें (**रशनाभिः**) रस्सी से (**गृभीतान्**) बंधे हुए **अश्वों के** समान (**ऋजीतिभिः**) लताओं से वेष्ठित (**अश्वान्**) बृक्षों को (**युयुजे**) युक्त होता है, (**वसुभिः**) रश्मियों से (**सुजातः**) सुप्रवृद्ध हुआ (**मित्रः**) सूर्य के समान सभी को (**चक्षदे**) खंड-खंड कर देता और (**पर्वभिः**) गांठ-गांठ में (**ववृधानः**) बढ़ता हुआ (**सम् आवृधे**) सम्यग् बढ़ता है ।

भावार्थः— जंगलों में उत्पन्न यह अग्नि सब तरफ फैले हुए, रस्सी से बंधे घोड़ों के समान लता से'परिवेष्टित वृक्षों से युक्त हो जाता है । रश्मियों से प्रवृद्ध हुए सूर्य के समान सभी को टुकड़े-टुकड़े कर देता है और गांठ-गांठ में बैठकर बढ़ता है । अर्थात् यह दावाग्नि का रूप धारण करता है ॥७॥

यह दशम मण्डल का उन्नासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–८०

ऋषिः— १— ७ **अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा ॥ देवता -अग्निः ॥**
छन्दः - १, ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७
निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः धैवतः ॥

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंन्धिम् ॥१॥

पदार्थः— (**अग्निः**) स्वयंप्रकाश परमेश्वर ने (**वाजम्भरम**) अन्न धन आदि को देने वाले (**सप्तिम**) वायु को हमें, (**ददाति**) देता है, (**अग्निः**) वह परमेश्वर ही हमें (**श्रुत्यम**) ज्ञानवाला (**कर्मनिष्ठाम**) कर्मनिष्ठ (**वीरम**) वीर सन्तान देता है, (**अग्निः**) वह परमेश्वर ही (**रोदसी** द्यु और पृथिवी लोक को (**समञ्जन्**) प्रकाशित करता हुआ (वि **चरत्**) व्याप्त हो रहा है, (**अग्निः**) वह प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ही (**वीरकुक्षिम**) वीर पुत्र को कोख में धारण करने वाली स्त्री (**पुरन्धिम**) गृह को संभालने वाली (**नारीम**) स्त्री को भी बनाता है ।

भावार्थः—स्वयंप्रकाश परमेश्वर अन्न आदि पदार्थों को देने वाले वायु को हमें देता है, वह ही ज्ञान वाले कर्मनिष्ठ पुत्र को देता है और वह ही द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता हुआ व्याप्त करता है । वही गृह को चलाने वाली वीर पुत्र को कोख में धारण करने वाली स्त्री को भी पैदा करता है ॥१॥

अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२॥

पदार्थः—(**अप्नसः**) कर्मों से साधनभूत (**अग्नेः**) अग्नि के लिए (**भद्रा**) उत्तम (**समित्**) समिधा (**अस्तु**) चाहिए, (**अग्निः**) यह अग्नि ही (**मही**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी में (**आविवेश**) प्रविष्ट हो रहा है, (**अग्निः**) अग्नि (**एकम्**) अकेले को (**समत्सु**) संग्रामों में (**चोदयत्** , प्रेरत करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**पुरूणि**) बहुत (**वृत्राणि**) धनों को (**दयते**) प्रदान करता है ।

भावार्थः—कर्मों के साधन भूत अग्नि के लिए उत्तम समिधा

चाहिए। वह अग्नि द्यु और पृथिवी लोकों में प्रविष्ट हो रहा है। अकेले आदमी को भी संग्रामों में प्रेरित करता है और वह बहुत धन आदि का साधन बनता है ।।२।।

अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥३॥

पदार्थः—(**अग्निः ह**) अग्नि ही (**जरतः**) स्तावक के (**त्यम्**) उस (**कर्णम्**) कर्ण के साधक देह की (**आवत्**) रक्षा करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**अद्भ्यः**) जलों के (**जरूथम्**) रोककर नष्ट करने वाले मेघ को (**निरदहत्**) जला देता है, (**अग्निः**) अग्नि ही (**घर्मेऽन्तः**) अन्तरिक्षस्थ (**अत्रिम**) वाक् की (**उरुष्यत्**) रक्षा करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**नृमेधम्**) मनुष्यों को अन्न देने वाले को (**प्रजया**) सन्तान से (**सम् असृजत्**) युक्त करता है।

भावार्थः अग्नि स्तावक यजमान के शरीर आदि की रक्षा करता है, वह जलों के रोधक और नाशक मेघ को जला देता है, अग्नि अन्तरिक्ष में माध्यमिका वाग् की रक्षा करता है और वही मनुष्यों को अन्न प्रदान करने वाले को सन्तान आदि से युक्त करता है।

अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४॥

पदार्थः (**अग्निः**) अग्नि (**वीरपेशाः**) प्रेरक ज्वाला रूप (**द्रविणम्**) धन को (**दात्**) देता है, (**अग्निः**) अग्नि (**ऋषिम्**) उस मन्त्र द्रष्टा को भी सन्तान आदि देता है (**यः**) जो (**सहस्रा**) सहस्रों का (**सनोति**) दान करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**दिवि**) द्युलोक में (**हव्यम्**) यजमान द्वारा यज्ञ में हुत द्रव्य को (**आ ततान**) फैलाता हैं, (**अग्नेः**) अग्नि के (**धामानि**) तेज (**पुरुत्रा**) विविध लोकों और पदार्थों में (**विभृता**) धारित हैं ।

भावार्थः अग्नि ज्वालाओं को विस्तारित करता है, वह उस मन्त्रद्रष्टा को सन्तान आदि से युक्त करता है जो सहस्रों का दान करता है। अग्नि यजमान द्वारा यज्ञ में हुत द्रव्य को द्युलोक में फैलाता है और अग्नि के तेज विभिन्न लोकों और पदार्थों में निहित हैं ।।४।।

अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्नि वयों अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥५॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) अग्नि की (**ऋषयः**) ऋषि लोग यज्ञ में (**उक्थैः**) मन्त्रों से (**विह्वयन्ते**) प्रशंसा करते हैं, (**यामनि**) संग्राम में (**बाधितासः**) शत्रुओं से बाधित (**नरः**) मनुष्य (**अग्निम्**) अग्नि का सहारा लेते हैं, (**वयः**) उष्णता की लहरें (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**अग्निम्**) अग्नि के आधार से ही (**पतन्तः**) विस्तृत हुई बढ़ती रहती हैं, (**अग्निः**) अग्नि (**गोनाम्**) किरणों के (**सहस्रा**) सहस्रों को (**परि याति**) प्राप्त होता है।

भावार्थः—मन्त्रद्रष्टा ऋषि यज्ञों में मन्त्रों से अग्नि की प्रशंसा करते हैं। संग्राम में शत्रुओं से बाधित मनुष्य अग्नि का सहारा लेते हैं। अन्तरिक्ष में उष्ण लहरें अग्नि के आधार पर ही फैलती रहती हैं और अग्नि ही सहस्रों किरणों को प्राप्त करता है ।।५।।

अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥६॥

पदार्थः—(**या**) जो (**मानुषीः**) मनुष्य सम्बन्धी (**विशः**) प्रजा हैं वे (**अग्निम्**) अग्नि की यज्ञ में (**ईडते**) प्रशंसा करते हैं, (**जाताः**) प्रसिद्ध (**मनुषः**) मननशील (**नहुषः**) मनुष्य लोग (**अग्निम्**) अग्नि की प्रशंसा करते है (**अग्निः**) अग्नि (**ऋतस्य**) जल के (**पथ्याम्**) मार्ग में अर्थात् अन्तरिक्ष में (**गान्धर्वीम्**) मेघ सम्बन्धी वाणी को प्राप्त करता है, (**अग्नेः**) अग्नि का (**गव्यूतिः**) मार्ग (**घृते**) प्रकाश में (**आ निषत्ता**) सर्वथा निषण्ण है ।

भावार्थः–जो मानुषी प्रजा है वह यज्ञ आदि में अग्नि की प्रशंसा करती है, प्रसिद्ध मननशील मनुष्य भी अग्नि की प्रशंसा करते हैं। अग्नि जल के मार्ग अन्तरिक्ष में मेघ सम्बन्धी वाणी को भी प्राप्त करता है और अग्नि का मार्ग प्रकाश में स्थित है ।।६।।

अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥७॥

पदार्थः—(**ऋभवः**) मेधावी लोग (**अग्नये**) परमेश्वर के लिए (**ब्रह्म**)

वेद मन्त्र का (**ततक्षु**) उच्चारण करते हैं, हम लोग (**महाम्**) उस महान् (**अग्निम्**) अग्नि को (**सुवृक्तिम्**) गुण का (**अवाचाम्**) उपदेश करें (**यविष्ठ**) हे उपास्य (**अग्ने**) प्रभु (**जरितारम्**) उपासक की (**प्र अव**) रक्षा कर, (**अग्ने**) हे प्रभो ! (**महि**) महान् (**द्रविणम्**) धन (**आ यज**) प्रदान कर ।

भावार्थः — मेधावी लोग परमेश्वर के लिए वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हैं । हम सब महान् अग्नि के गुण का उपदेश करें । हे उपास्य प्रभो, उपासक की रक्षा कर । हे भगवन् महान् धन प्रदान कर ॥७॥

यह दशम मण्डल में अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—८१

ऋषिः— १—७ विश्वकर्मा भौवनः ॥ देवता - विश्वकर्मा ॥ छन्दः - १, ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः – धैवतः ॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥१॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**ऋषिः**) सब जगत् का द्रष्टा (**होता**) सब जगत् का ग्रहण करने वाला (**नः**) हमारा (**पिता**) पिता है वह प्रभु (**इमा**) इन (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**जुह्वत**) शक्ति प्रदान करता हुआ-अथवा आहुति देता हुआ (**नि असीदत्**) विराजता है, (**सः**) वह (**आशिषा**) भावना मात्र से (**द्रविणम्**) गतिशील जगत् को (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**प्रथमच्छत्**) प्रथम जगत् में व्यापक होता हुआ (**अवरान्**) पीछे उत्पन्न होने वाले जगत् में भी (**आ विवेश**) व्यापक होता है ।

भावार्थः— यह सूक्त विश्वकर्मा भौवन =समस्त जगत् के कर्ता विश्व में व्यापक परमेश्वर के सर्वमेध=सृष्टि आदि सम्बन्धी यज्ञ से सम्बद्ध है। यहां सृष्टि रचना यज्ञ के रूप में वर्णित है । सब जगत् का द्रष्टा, समस्त जगत् को प्रलय में अन्दर ग्रहण करने वाला परमेश्वर जो हमारा पिता है वह समस्त जगत् को प्रलय काल में अपने अन्दर ले लेता है और सृष्टि के समय में वह समस्त जगत् को शक्ति प्रदान करता हुआ उसकी रचना करता है । वह कामना=सिसृक्षा से इस गतिशील ऐश्वर्यशाली जगत् को चाहता हुआ इसमें व्याप्त होता है और इसके बाद जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमें भी व्यापक होता है ॥१!'

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२॥

पदार्थ—(**किम् स्वित**) कौन-सा (**आसीत**) होता है (**अधिष्ठानम्**) आश्रय इस जगत् का ? (**कतमत् स्वित**) कौन-सा होता है । (**आरम्भणम्**) मूल उपादान कारण ? इस जगत् का प्रारम्भ (**कथा**) किस प्रकार (**आसीत**) होता है ? (**यतः**) जिससे (**विश्वकर्मा**) सब जगत् का बनाने वाला, (**विश्वचक्षाः**) समस्त जगत् का द्रष्टा परमेश्वर (**भूमिम्**) भूमि को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**महिना**) अपने ऐश्वर्य से भूमि और (**द्याम्**) द्युलोक को (**विऔर्णोत्**) आच्छादित करता है ।

भावार्थः—जगत् का आश्रय क्या है ? कौन सा मूल उपादान कारण है ? कैसे यह उत्पन्न होता है ? कि जिससे सब जगत् का द्रष्टा और सब जगत् का कर्त्ता परमेश्वर भूमि और द्यु को बनाता हुआ उन्हें अपनी व्यापकता से आच्छादित करता है। वस्तुतः परमेश्वर उसका आश्रय है । परमेश्वर की प्रकृति उसका उपदान है और उसी से वह जगत् को बनाता है। अगले मन्त्र में यह स्पष्ट हो जाता है ॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३॥

पदार्थः—परमेश्वर (**विश्वतश्चक्षुः**) सर्वद्रष्टा, (**विश्वतो मुखः**) सर्ववक्ता, (**विश्वतोबाहुः**) सर्वशक्तिमान् (**विश्वतस्पात्**) सर्वव्यापक है, (**एकः**) अकेला देव वह परमेश्वर (**पतत्रैः**) प्रकृति के परमाणुओं द्वारा (**द्यावाभूमी**) द्यु और भूमि को (**संजनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**बाहुभ्याम्**) ज्ञान और क्रिया से (**सं धमति**) सम्पूर्ण जगत् को चलाता है ।

भावार्थः—वह परमेश्वर सर्वद्रष्टा, सर्ववक्ता, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है। वह प्रकृति के परमाणुओं द्वारा अकेला ही द्यु और भूमि

को उत्पन्न करता हुआ अपने ज्ञान और क्रिया से सम्पूर्ण जगत् को चलाता है ।।३।।

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४॥

पदार्थः—(**किम् स्वित्**) कौन सा है (**वनम्**) वन, (**कः उ**) कौन सा (**वृक्षः**) वृक्ष (**आस**) है (**यतः**) जिससे परमेश्वर-प्रेरित शक्तियाँ (**द्यावापृथिवी**) आकाश और पृथिवी को (**निः ततक्षुः**) बनाती हैं, (**मनीषिणः**) हे विद्वान् पुरुषो ! (**मनसा**) अपने मनों से (**पृच्छत इत उ**) पूछो (**तत्**) उसे (**यत्**) जो (**भुवनानि**) होने के योग्य अर्थात् उत्पत्ति में समर्थ भवितव्य जगत् के कारणों को (**धारयन्**) धारण करता हुआ (**अधि अतिष्ठत्**) उनका अधिष्ठाता हो रहा है ।

भावार्थः – कौन सा है वह वन, कौन सा है वह वृक्ष जिससे परमात्मा-प्रेरित जगत् की रचना में लगी शक्तियां द्यु और पृथिवी लोक को उत्पन्न करती हैं । हे विद्वज्जनो ! अपने मन से पूछो उसको जो समस्त जगत् के कार्यरूप में परिणत होने वाले कारणों को धारण कर उसका अधिष्ठाता हो रहा है ।।४।।

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५॥

पदार्थः (**विश्वकर्मन्**) हे समस्त विश्व के कर्त्तः प्रभो (**ते**) तेरे द्वारा निर्मित (**या**) जो (**परमाणि**) परम=उत्कृष्ट (**धामानि**) नाम, रूप और स्थान है, (**या**) जो (**मध्यमा**) मध्यम कोटि के हैं (**उत**) तथा (**या**) जो (**अवमा**) अवर कोटि के हैं (**इमा**) इन सब को (**सखिभ्यः**) ज्ञानी जीवों को (**शिक्ष**) सिखा, (**स्वधावः**) हे प्रकृति के स्वामी ! (**स्वयम्**) अपने आप (**हविषि**) अन्न आदि से (**वृधानः**) बढ़ाता हुआ (**तन्वम्**) जीवों के शरीर को (**यजस्व**) प्रदान करते हो ।

भावार्थः - हे विश्व के कर्त्तः प्रभो ! आप के द्वारा निर्मित उत्तम, मध्यम और अवर कोटि के जितने नाम, जल और स्थान हैं उन सबकी जीवों को शिक्षा देते हो और अन्नादि से बढ़ाते हुए जीव के शरीरों को प्रदान करते हो ।।५।।

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मन्**) हे समस्त जगत् के निर्माता प्रभो ! (**हविषा**) अपनी प्रकृति शक्ति से (**वावृधानः**) प्रबल होता हुआ (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) द्यु लोक को (**यजस्व**) प्रदान करते हो अथवा संगत करते हो, (**अन्ये**) अन्य अज्ञानी (**जनासः**) जीव लोग (**अभितः**) सर्वथा (**मुह्यन्तु**) यथार्थ नहीं जान पाते हैं (**मघवा**) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी ही (**अस्माकम्**) हमारा (**इह**) इस जगत् में (**सूरिः**) ज्ञानदाता (**अस्तु**) है ।

भावार्थः— हे समस्त जगत् के निर्माता प्रभो ! आप अपनी प्रकृति-शक्ति से प्रबल हुए पृथिवी और द्यु लोक की संगति लगाते हो । अन्य अज्ञानी जीव लोग यथार्थता को नहीं जान पाते हैं । समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! आप ही इस जगत् में हमारे ज्ञानदाता हैं ।।६।।

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७॥

पदार्थः—हम (**वाचः पतिम्**) वेदवाणी के स्वामी (**विश्वकर्माणम्**) समस्त जगत् के कर्त्ता, (**मनोजुवम्**) मन के समान वेग वाले परमेश्वर को (**ऊतये**) अपनी रक्षा के लिए तथा (**वाजे**) ऐश्वर्य और ज्ञान के लिए (**हुवेम**) स्तुति करते हैं, अथवा बुलाते हैं । (**विश्व शम्भुः**) सब का कल्याणकारी, (**साधुकर्मा**) उत्तम कर्मों वाला (**सः**) वह परमेश्वर (**अवसे**) हमारे रक्षार्थ (**नः**) हमारे (**विश्वा**) समस्त (**हवनानि**) स्तुतियों, यज्ञ आदि को (**जोषत्**) स्वीकार करता है ।

भावार्थः– वेदवाणी के स्वामी, समस्त जगत् के कर्त्ता, मन के समान वेगवाले परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिए तथा ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए पुकारते हैं । समस्त विश्व का कल्याणकर्ता, उत्तम कर्मों वाला वह प्रभु हमारी रक्षा के लिए हमारी समस्त स्तुतियों और यज्ञ आदि को स्वीकार करता है ।।७।।

यह दशम मण्डल में इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—८२

ऋषिः—१—७ विश्वकर्मा भौवनः ॥ देवता—विश्वकर्मा ॥
छन्दः—१, ५, ६ त्रिष्टुप् । २, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ।
७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥

पदार्थः—(**चक्षुषः**) चक्षु आदि से युक्त शरीर संघात का अथवा प्रकाशमान् सूर्य आदि लोक का (**पिता**) पालयिता अथवा उत्पादक (**मनसा**) ज्ञान शक्ति से (**हि**) निश्चय (**धीरः**) धीर (**घृतम्**) प्रकाश को पहले (**अजनत्**) उत्पन्न करता है पुनः (**नम्नमाने**) गतिशील (**एते**) द्यु और पृथिवी को उत्पन्न करता है (**यदा इत्**) जब (**पूर्वे**) पुराने (**अन्तः**) दिशाओं को (**अवदृहन्त**) दृढ करता है (**आत् इत्**) तो (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अप्रथेताम्**) विस्तार को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—नेत्र आदि से युक्त शरीरसंघात और सूर्य आदि प्रकाशक लोकों का उत्पादक, ज्ञान शक्ति से धीर परमेश्वर प्रकाश को अर्थात् विराट् को उत्पन्न करता है । पुनः गतिशील द्यु और पृथिवी को उत्पन्न करता है । जब वह दिशाओं और आकाश को उत्पन्न करता है तब द्यु और पृथिवी उसमें फैलाव को प्राप्त होते हैं ॥१॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥२॥

पदार्थः (**विश्वकर्मा**) जगत् की रचना के विविध कर्मों को करने वाला, (**विमनाः**) व्यापक ज्ञान वाला (**आ**) समन्तात् (**विहाया**) आकाशवत् व्यापक (**धाता**) समस्त विश्व का धारक (**विधाता**) पृथिवी सूर्य आदि विविध पदार्थों का निर्माता, (**परमा**) परमोत्कृष्ट (**उत**) और (**संदृक्**) सर्वद्रष्टा है, (**यत्र**) जिसके नियन्त्रण और धारण में (**सप्त**) सात (**ऋषीन्**) इन्द्रियों से (**परः**) सूक्ष्म (**एकम्**) एक आत्मा को (**आहुः**) ज्ञानीजन कहते हैं (**तेषाम्**) इन इन्द्रियों के (**इष्टानि**) अभिलषित भोग्य पदार्थ जिसकी (**इषा**) ज्ञान और प्रयत्न से (**सं मदन्ति**) भली प्रकार हर्ष आदि के कारण होते हैं ।

भावार्थः-परमेश्वर जगत् की रचना के विविध कर्मों का कर्त्ता व्यापक ज्ञान वाला, आकाश व व्यापक, सबका धारक और निर्माता परमोत्कृष्ट और सर्वद्रष्टा हैं । उसके नियन्त्रण और व्यवस्था में सप्त इन्द्रियों से सूक्ष्म एक जीवात्मा है जिसे ज्ञानी जन जानते हैं, इन इन्द्रियों के भोग उस आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न से भली प्रकार हर्ष आदि के कारण होते हैं ॥२॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमेश्वर (**नः**) हमारा (**पिता**) पालक तथा (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला, (**यः**) जो (**विधाता**) सब जगत् का रचयिता है, जो (**विश्वा**) समस्त (**धामानि**) स्थानों (**भुवनानि**) लोकों को (**वेद**) जानता है (**यः**) जो (**देवानाम्**) समस्त पदार्थों का (**नामधाः**) नाम रखने वाला और (**एक एव**) अद्वितीय हैं (**तम्**) उस ही (**संप्रश्नम्**) सभी प्रश्नों के प्रश्न को (**अन्या**) दूसरे (**भुवना**) भुवन आदि (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—जो परमेश्वर हमारा पालक, हमारा उत्पन्न करने वाला जो समस्त जगत् का निर्माता है और समस्त स्थानों और लोकों तथा पदार्थों को जानता है और जो समस्त पदार्थों का नाम रखने वाला है वही अद्वितीय है । समस्त समस्याओं का वही एक मात्र समाधान है ॥३॥

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥४॥

पदार्थः-(**पूर्वे**) पूर्व कल्प के समान इस कल्प में (**ते**) वे (**ऋषयः**) जगत् को बनाने वाले पदार्थ (**जरितारः न**) स्तावकों के समान (**भूना**) अपनी शक्ति से (**अस्मै**) इस परमेश्वर की सृष्टि रचना कार्य के लिए (**द्रविणम्**) द्रुत गति संयोग और वियोग को (**सम् आ यजन्त**) संगत होते अथवा प्राप्त होते हैं (**ये**) जो (**निषत्ते**) दृढ़ (**असूर्त्ते**) गति रहित=स्थावर (**सूर्त्ते**) गतियुक्त=जंगम (**रजसि**) लोक में (**इमानि**) इन (**भूतानि**) भूत समुदाय को (**सम् अकृण्वन्**) उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थः—पूर्व कल्प के समान इस कल्प में वे जगत् के बनाने वाले

पदार्थ अपनी शक्ति से परमेश्वर की सृष्टि-रचना के कार्य के लिए द्रुत-गति, संयोग और वियोग से संगत होते हैं जो दृढ़ स्थावर और जंगम जगत में इन समस्त भूत-जात को उत्पन्न करते हैं ।।४।।

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥५॥

पदार्थः– वह परमेश्वर (**दिवा परः**) महान् आकाश से भी परे हैं, वह (**एना**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी से भी (**परः**) परे है, (**यत्**) जो (**देवेभिः**) दिव्य पदार्थों और (**असुरैः**) मेघों से (**परः**) परे है (**कम् स्वित्**) किस (**प्रथमम्**) श्रेष्ठ (**गर्भम्**) गर्भ=विराट् रूपी हिरण्यगर्भ को (**आपः**) प्रकृति के परमाणु (**दध्रे**) धारण करते हैं (**यत्र**) जिसमें (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) देव=दिव्य पदार्थ और जीवगण (**समपश्यन्त**) अपने को देखते हैं ।

भावार्थः—परमेश्वर आकाश से भी परे हैं, इस पृथिवी से परे है, सूर्य अग्नि आदि देवों और मेघों से परे है ; किसको पहले प्रकृति परमाणु हिरण्यगर्भ रूप में धारण करते हैं कि जिसमें सभी दिव्य पदार्थ और जीव अपने को सन्निविष्ट पाते हैं ।।५।।

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥६॥

पदार्थः—(**तम् इत्**) उस ही (**गर्भम्**) विराट् में स्थित हिरण्यगर्भ को (**आपः**) प्रकृति परमाणु (**प्रथमम्**) पहले (**दध्रे**) धारण करते हैं (**यत्र**) जिसमें (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) पदार्थ (**समगच्छन्त**) संगत रहते है, (**अजस्य**) अजन्मा परमेश्वर के (**नाभौ अधि**) नाभि संग्रहण शक्ति में (**एकम्**) एकवत् (**समर्पितम्**) स्थापित है (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वानि**) समस्त (**भुवनानि**) भुवन (**तस्थुः**) स्थित होते है ।

भावार्थः–उस ही परमेश्वर को हिरण्यगर्भ के रूप में प्रकृति परमाणु अपने अन्दर धारण करते हैं जिसमें सभी दिव्य पदार्थ और जीवगण संगत होते हैं । अजन्मा परमेश्वर की नाभि=धारक शक्ति में एक विराट् रूप ब्रह्माण्ड स्थापित है जिसमें समस्त लोक-लोकान्तर स्थित होते हैं ।।६।।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७॥

पदार्थः—हे जीवो ! तुम (**तम्**) उस परमेश्वर को (**न**) नहीं (**विदाथ**) जानते हो (**यः**) जो (**इमा**) इन समस्त लोक लोकान्तरों को (**जजान**) उत्पन्न करता है, तथा (**अन्यत्**) तुम से भिन्न दूसरा होकर (**युष्माकम्**) तुम्हारे (**अन्तरम्**) हृदय में (**बभूव**) विद्यमान है, (**नीहारेण**) अज्ञानान्धकार से (**प्रावृताः**) आच्छादित जन, (**जल्प्याः**) बहुत बोलने वाले, (**असुतृपः**) प्राणों की तृप्ति में ही संलग्न जन और (**उक्थशासः**) केवल शब्दाडम्बर करने वाले (**चरन्ति**) घूमते हैं पर उसको नहीं जानते हैं ।

भावार्थः—हे जीवो ! तुम नहीं जानते हो उस परमेश्वर को जिसने इन समस्त लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न किया है, तथा तुमसे भिन्न दूसरा होकर तुम्हारे अन्तःकरण में विद्यमान है, अज्ञान से आच्छादित, केवल बहस करने वाले अथवा शुष्क तर्क में रत, खाने पीने में ही लगे हुए और शब्दाडम्बर मात्र करने वाले उसको नहीं जान सकते हैं ।।७।।

यह दशम मण्डल में बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—८३

ऋषिः—१—७ मन्युस्तापसः ॥ देवता—मन्युः ॥छन्दः—१ विराड्जगती । २ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः – १ निषादः । २ ७ धैवतः ॥

सूचना ये ८३ और ८४ सूक्त मन्यु के सम्बन्ध में हैं । आत्मदीप्ति और अन्याय के प्रतीकार की भावना को मन्यु कहा जाता है । क्रोध में उग्रता होती और मन्यु में यह उग्रता उस प्रकार की नहीं होती । क्रोध में बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है परन्तु मन्यु में बुद्धि की जागरूकता रहती है ।

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

पदार्थ—(**यः**) जो मनुष्य (**ते**) इस (**वज्र**) वज्र के समान दृढ (**सायक**) सायक के समान बुराइयों का विध्वंसक (**मन्योः**) मन्यु की (**अविधत्**) सम्मान करता है वह (**विश्वम्**) समस्त (**सहः**) बाह्यबल (**ओजः**) शरीर बल को (**आनुषक्**) निरन्तर (**पुष्यति**) पुष्ट करता है, (**सहस्वना**) वलशाली, (**सहसा**) सहमान (**सहस्कृतेन**) बल से सब कुछ करने वाले (**त्वया**) इसके (**युजा**) साथ (**दासम्**) दस्यु और (**आर्यम्**) आर्य दोनों प्रकार के शत्रुओं को (**सासह्याम**) अभिभूत करें।

भावार्थः - जो मनुष्य वज्र के समान दृढ़ और सायक के समान बुराइयों का मुकाबला करने में कारगर मन्यु का सम्मान करता है वह बाह्य और शारीरिक दोनों प्रकार के बल को पुष्ट करता है। हम शक्तिशाली, शक्ति को बढ़ाने वाले इस मन्यु के सहारे से दस्यु और आर्य दोनों में जो भी दस्युकर्मा हो उसे दबा दें ।।१।।

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥

पदार्थः—(**मन्युः**) मन्यु (**इन्द्रः**) विद्युत् है, (**मन्युः**) मन्यु (**एव**) ही (**देवः**) देव (**आस**) है (**मन्युः**) मन्यु (**होता**) अग्नि है, (**मन्युः**) मन्यु ही (**जातवेदाः**) समस्त पदार्थों में विद्यमान (**वरुणः**) प्रदीप्त अग्नि है, (**याः**) जो (**मानुषीः**) मानुषी (**विशः**) प्रजायें हैं वे (**मन्युम्**) मन्यु की (**ईडते**) प्रशंसा करती हैं (**तपसा**) ताप से (**सजोषाः**) समान प्रीति (**मन्यो**) मन्यु (**नः**) हमारी (**पाहि**) रक्षा करता है ।

भावार्थः—मन्यु विद्युत्, दिव्य शक्तियों, अग्नि और वरुण=प्रदीप्ततम अग्नि के अंशों वाला है। मानुषी प्रजा इसको धारण करती है और यह ताप के साथ विद्यमान हो हमारी रक्षा का साधन है ।।२।।

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥

पदार्थः—(**मन्यो**) यह मन्यु (**अभीहि**) हमें प्राप्त हो । यह (**तवसः**) बल से भी (**तवीयान्**) वलवान् है । (**तपसा युजा**) ताप से युक्त होकर (**शत्रून्**) काम, अन्याय आदि शत्रुओं को (**जहि**) मारता है । (**अमित्रहा**) मित्र को न मारने वाला, (**वृत्रहा**) असुर प्रवृत्तियों का हन्ता (**च**) और (**दस्युहा**) दस्यु भावना का विनाशक (**त्वम्**) यह मन्यु (**नः**) हमें (**विश्वा**) समस्त (**वसूनि**) ऐश्वर्यों को (**आभर**) देता है ।

भावार्थः—यह मन्यु हममें होना चाहिए। यह बल से भी अधिक बलवान् है। तापशक्ति से युक्त हुआ यह अन्याय आदि शत्रुओं का विनाश करता है। यह मित्रों का अविघातक आसुर भावनाओं का हन्ता और दस्युता का विघातक है। समस्त ऐश्वर्यों की प्राप्ति में यह हमारा सहयोगी होता है ।।३।।

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४॥

पदार्थः—(**त्वम् हि**) यह ही (**मन्यो**) मन्यु (**अभिभूति ओजाः**) दूसरे विरोधी वलों का दबाने वाला, (**स्वयम्भूः**) अपने आप पैदा होने वाला (**भामः**) भीषण (**अभिमाति साहः**) शत्रुओं का विनाश करने वाला (**विश्व चर्षणिः**) समस्त मनुष्यों में किसी न किसी मात्रा में विद्यमान रहने वाला (**सहुरिः**) सहनशील, (**सहावान्**) सहनवान् यह (**अस्मासु**) हमारे लिए (**पृतनासु**) संग्रामों में (**ओजः**) ओज को (**धेहि**) धारण करता है ।

भावार्थः—यह मन्यु दूसरे विरोधी भावों का दबाने वाला, स्वयं सत्ता वाला, भीषण, शत्रुओं का नाश करने वाला समस्त मनुष्यों में किसी न किसी मात्रा में विद्यमान, सहनशक्ति से युक्त, दबदबा वाला है। यह हमारे लिए संग्रामों में ओज धारण कराता है ।।४।।

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥५॥

पदार्थः—(**प्रचेतः**) प्रकृत चेतना से युक्त, (**तविषस्य**) महान् (**तव**) इस मन्यु के (**क्रत्वा**) कर्म से (**अभागः**) भागरहित (**सन्**) होता हुआ मैं (**अप परा इतः**) शत्रुओं से अभिभूत हो जाता हूँ, (**अक्रतुः**) अकर्मशील मैं (**तम् त्वा**) इस उसका (**जिहील**) अनादर करता हूं, (**अहम्**) मैं (**स्वा**) स्वयं (**तनूः**) अकेला शरीर हूं (**बलदेयाय**) बल प्रदान के लिए (**मा**) मुझे (**आ इहि**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—सम्पूर्ण सावधानता से युक्त महान् इस मन्यु के कर्म से भागरहित मनुष्य शत्रुओं से अभिभूत हो जाता है। वह अकर्मण्य होकर

इस मन्यु का अनादर करता है। परन्तु जब वह अकेला होता है तब इस मन्यु से बल प्राप्त करता है ।।५।।

अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ।।६।।

पदार्थः—(**अयम**) यह मन्युरहित अकेला मनुष्य (**ते**) उस मन्यु का (**अस्मि**) हो जाता है, **मा**) मुझ को (**उपेहि**) प्राप्त हो, हे (**सुहुरे**) सहनशक्ते ! हे (**वज्रिन्**) वज्रिन् (**विश्वधायः**) सब में रहने वाले मन्यो ! (**प्रतीचीन**) पराङ्मुख हुआ तू (**माम अभि आ ववृत्स्व**) मेरे पास आ और (**अर्वाङ्**) अभिमुख हो, (**दस्यून्**) दस्यु चोर डाकुओं को (**हनाव**) नष्ट कर (**उत**) और (**आपेः**) बन्धुत्व को (**बोधि**) समझो ।

भावार्थः—मन्युरहित मनुष्य अकेला होकर उस मन्यु का बन जाता है और बोलता है कि मन्यु उससे पराङ्मुख न होकर उसके पास आवे, उसके पास रहे और चोर डाकुओं का नाश कर बन्धुत्व का परिचय दे ।।६।।

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ।।७।।

पदार्थः—वह कहता है कि—(**अभिप्रेहि**) मन्यु आवे, (**मे**) उसके (**दक्षिणतः**) दाहिने (**भव**) होवे, (**अध**) और (**वृत्राणि**) बुराइयों को (**भूरि**) बहुत प्रकार से (**जंघनाव**) नष्ट करे, (**ते**) उसके लिए यह (**धरुणम**) धारक (**मध्वः**) मधु का (**अग्रम्**) श्रेष्ठ सार (**जुहोमि**) खाता है (**उभौ**) ये मन्यु और यह मनुष्य अर्थात् दोनों ही (**उपांशु**) शान्त हो (**प्रथमा**) पहले (**पिबाव**) पीयें ।

भावार्थः—वह मन्युहीन मनुष्य कहता है कि—मन्यु उसे प्राप्त हो, उसके दायें हो और बुराई एवम् बाधाओं को सब प्रकार से हटावे। मन्यु आवे इसलिए वह धारक मधु रस को खाता है। वह और यह मन्यु दोनों इस रस को पीयें ।।७।।

यह दशम मण्डल में तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—८४

ऋषिः १—७ मन्युस्तापसः ।। देवता—मन्युः ।। छन्दः - १, ३ त्रिष्टुप् ।
२ भुरिक्त्रिष्टुप् । ४, ५ पादनिचृज्जगती । ६ आर्चीस्वराड्-
जगती । ७ विराड्जगती ।। स्वरः—१—३ धैवतः ।
४—७ निषादः ।।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ।।१।।

पदार्थः (**मन्यो मरुत्वः**) इस वीरों आदि में विशेष रूप से रहने वाले मन्यु (**त्वया**) तेरे साथ (**सरथम्**) एक ही रथ=रमणीय साधन पर (**आरुजन्तः**) जाते हुए (**हर्षमाणासः**) दृष्ट (**धृषिताः**) हृष्ट (**तिग्मेषवः**) तीक्ष्ण वाणों वाले (**आयुधा**) शस्त्रों को (**संशिशानाः**) तीक्ष्ण करते हुए (**अग्निरूपाः**) अग्नि के समान तेजस्वी (**नरः**) मनुष्य (**अभि प्रयन्तु**) युद्ध में जाते हैं ।

भावार्थः वीर पुरुषों में विशेषरूप में रहने वाले इस मन्यु के साथ एक ही रथ आदि साधन पर बैठे हुए हृष्ट, धृष्ट, तीक्ष्ण वाणों वाले, अस्त्र शस्त्रों को तीक्ष्ण करते हुए अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य युद्ध के लिए जाते हैं ।।१।।

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ।।२।।

पदार्थः (**मन्यो**) यह मन्यु (**अग्निः इव**) अग्नि के समान (**त्विषितः**) प्रज्वलित हुआ शत्रुओं को (**सहस्व**) अभिभूत करता है, (**सुहुरे**) सहनशील (**सेनानीः**) सेनानी (**हूतः**) बुलाया गया हुआ (**नः**) हमारे संग्राम में (**एधि**) होता है, (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**हत्वाय**) मारकर (**वेदः**) उनका धन (**विभजस्व**) बांटता है, (**ओजः**) बलको (**मिमानः**) देता हुआ (**मृधः**) शत्रुओं को (**विनुदस्व**) मारता है ।

भावार्थः यह मन्यु अग्नि के समान दीप्त हुआ शत्रुओं को अभिभूत करता है। सहनशील यह सेनानी बनता है, शत्रुओं को मारकर धन पात्रों में बांट देता है, अन्य शत्रुओं को भी मारता है ।।२।।

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥३॥

पदार्थः—(**मन्यो**) यह मन्यु (**रुजन्**) पीडा देता हुआ, (**मृणन्**) छिन्न-भिन्न करता हुआ (**प्रमृणन्**) विनष्ट करता हुआ (**अस्मे**) हमारे (**अभिमातिम्**) आक्रामक शत्रु को (**सहस्व**) मारता है, (**शत्रून्**) शत्रुभूत बुराइयों को (**प्रेहि**) आक्रान्त करता है, (**ते**) इसके (**उग्रम्**) प्रचण्ड (**पाजः**) बल को कौन (**आ रुरुधे ननु**) रोक सकता है (**एकजः वशी**) असहाय वशी (**त्वम्**) यह मन्यु (**वशम्**) वश में (**नयसे**) शत्रुओं को करता है ।

भावार्थः– यह मन्यु पीड़ा देता हुआ, छिन्न-भिन्न करता हुआ, विनष्ट करता हुआ हमारे आक्रामक को मारता है शत्रु पर आक्रमण करता है। इसके प्रचण्ड बल को कोई रोक नहीं सकता है। यह असहाय ही शत्रुओं को वश में करता है ॥३॥

एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥४॥

पदार्थः–(**मन्यो एकः**) यह एक मन्यु (**बहूनाम**) बहुतों का (**ईडितः**) प्रशंसनीय (**असि**) है (**विशम् विशम्**) प्रत्येक प्रजा को (**युधये**) युद्ध के लिए (**सम् शिशाधि**) सम्यक् तीक्ष्ण करता है, (**अकृत्तरुक्**) अच्छिन्न दीप्ति के (**त्वया**) इसके (**युजा**) सहाय से (**वयम्**) हम (**द्युमन्तम्**) दीप्तिमय (**घोषम्**) घोष को (**विजयाय**) विजय के लिए (**कृण्महे**) करते हैं ।

भावार्थः– यह मन्यु अकेला ही बहुतों में प्रशंसनीय है। प्रत्येक प्रजा के व्यक्ति को युद्ध के लिए भली प्रकार तीक्ष्ण करता है। अच्छिन्न-दीप्ति इस मन्यु के साहाय्य से विजय के लिए दीप्तिमय घोष करते हैं ॥४॥

विजेषकृदिन्द्रइवानवब्रवो३ स्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा समुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

पदार्थः—(**मन्यो**) यह मन्यु (**इन्द्र इव**) इन्द्र के समान (**विजेषकृत**) विजयकर्त्ता, (**अनवब्रवः**) अनिन्दित वचन होकर (**इह**) इस लोक में (**अस्माकम्**) हमारा (**अधिपा**) रक्षक (**भव**) होता है, (**सुहुरे**) सहनशील (**ते**) इस मन्यु

के (**प्रियम**) प्रिय (**नाम**) तेज की (**गृणीमसि**) प्रशंसा करते हैं हम (**तम्**) उस (**उत्सम**) उद्गम स्थान को (**विद्मः**) जानते हें (**यतः**) जिससे (**आवभूय**) पैदा होता है ।

भावार्थः– यह मन्यु इन्द्र के समान विजयकर्ता अनिन्दित वचन होकर इस लोक में हमारा रक्षक होता है। सहनशील इस मन्यु के प्रिय तेज की हम प्रशंसा करते हैं। हम उस उद्गम स्थान को जानते हैं जिससे यह पैदा होता है ॥५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

पदार्थः–(**वज्र**) वज्रवत् दृढ (**सायक**) शत्रुनाशक (**अभिभूते**) अभिभावुक यह मन्यु (**आभूत्या**) अभिभव मे (**सहजाः**) साथ ही उत्पन्न हुआ(**उत्तरम्**) उत्कृष्टतर (**सहः**) बल को (**विभर्षि**) धारण करता है (**पुरुहूत**) बहुतों से प्रशंसा किया जाने वाला (**मन्यो**) मन्यु (**महाधनस्य**) संग्राम के (**संसृजि**) सर्ग में (**क्रत्वा**) कर्म के (**सहः**) साथ (**नः**) हमारा (**मेदी**) स्निग्ध (**एधि**) होता है ।

भावार्थः– वज्रवत् दृढ, शत्रुनाशक, अभिभावुक यह मन्यु अभिभव से सहोत्पन्न हुआ उत्कृष्टतर बल को धारण करता है। बहु प्रशंसित मन्यु संग्राम के सर्ग में कर्म के साथ हमारा हर्षकारक होता है ॥६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥

पदार्थः—(**वरुणः**) प्राणशक्ति (**च**) और (**मन्युः**) मन्यु (**संसृष्टम्**) सब के साथ मिला, (**उभयम्**) चर अचर दोनों प्रकार का (**समाकृतम्**) सम्पादित (**धनम्**) धन (**अस्मभ्यम्**) हमें (**दत्ताम्**) देवें (**शत्रवः**) शत्रुजन (**हृदयेषु**) हृदयों में (**भियम्**) डर को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**पराजितासः**) पराजित हुए (**अप निलयन्ताम्**) दूर भाग कर छिप जावें ।

भावार्थः–प्राणशक्ति और मन्यु साथ मिले चर-अचर दोनों प्रकार के सम्पादित धन को हमें देवें। शत्रुजन हृदयों में भीति को धारण करते हुए पराजित होकर भागकर दूर छिप जावें ॥७॥

यह दशम मण्डल में चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ८५

ऋषिः—१—४७ सूर्या सावित्री ॥ देवता—१—५ सोमः । ६—१६ सूर्याविवाहः । १७ देवाः । १८ सोमार्कौ । १९ चन्द्रमाः । २०—२८ नृणां विवाहमन्त्रा आशीः प्रायाः । २९, ३० वधूवासःसंस्पर्शनिन्दा । ३१ यक्ष्मनाशिनी दम्पत्योः । ३२—४७ सूर्या ॥ छन्दः—१, ३, ८, ११, २५, २८, ३२, ३३, ३८, ४१, ४५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ५, ९, ३०, ३१, ३५, ३९, ४६, ४७ अनुष्टुप् । ६, १०, १३, १६, १७, २९, ४२ विराडनुष्टुप् । ७, १२, १५, २२ पादनिचृदनुष्टुप् । ४० भुरिगनुष्टुप् । १४, २०, २४, २६, ३७ निचृत्त्रिष्टुप् । १९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २१, ४४ विराट् त्रिष्टुप् । १३, २७, ३६ त्रिष्टुप् । १८ पादनिचृज्जगती । ४३ निचृज्जगती । ३४ उरोबृहती ॥ स्वरः—१—१३—१५—१७, २२, २५, २८—३३, ३५, ३८—४२, ४५—४७ गान्धारः । १४, १९—२१, २३, २४, २६, २७, ३६, ३७, ४४ धैवतः । १८, ४३ निषादः ३४ मध्यमः ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

पदार्थः—(**सत्येन**) परमेश्वर के सत्य नियम से (**भूमिः**) भूमि (**उत्तभिता**) थमी हुई है, (**सूर्येण**) सूर्य से (**द्यौः**) द्युलोक (**उत्तभिता**) थमा है, (**ऋतेन**) सृष्टि के नियम से (**आदित्याः**) आदित्य स्थित हैं (**दिवि अधि**) आकाश में (**सोमः**) चन्द्रमा (**श्रितः**) स्थित है ।

भावार्थः—परमेश्वर के सत्य नियम से भूमि ठहरी हुई है। सूर्य से द्युलोक थमा हुआ है, सृष्टि नियम से आदित्य स्थित हैं और आकाश में चन्द्रमा स्थित है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥

पदार्थः—परमेश्वर द्वारा प्रदत्त (**सोमेन**) सोमशक्ति=बलदात्री शक्ति से (**आदित्याः**) आदित्य (**बलिनः**) बली है, (**सोमेन**) सोम से ही (**मही**) महती (**पृथिवी**) शक्तिशाली है, (**अथो**) और (**एषाम्**) इन (**नक्षत्राणाम्**) नक्षत्रों के (**उपस्थे**) स्थान आकाश में (**सोमः**) सोम तत्त्व (**आहितः**) रखा है ।

भावार्थः—परमेश्वर द्वारा प्रदत्त सोमशक्ति से आदित्य शक्तिवाले हैं, सोम से ही यह महतीभूमि शक्तिशालिनी है। इन नक्षत्रों के अन्तस्थान=आकाश में सोमतत्त्व भरा है ॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥

पदार्थः—(**पपिवान्**) पान करने वाला तो (**सोमम्**) सोम (**मन्यते**) मानता उसी को (**यत्**) जो कि (**ओषधिम्**) ओषधि को (**संपिषन्ति**) पीसकर निचोड़ते और उसका रस पान करते हैं, परन्तु (**यम्**) जिस (**सोमम्**) सोम को (**ब्रह्माणः**) वैज्ञानिक मेधावी (**विदुः**) जानते हैं (**तस्य**) उसे (**न**) नहीं (**अश्नाति**) खाता है (**कश्चन**) कोई भी ।

भावार्थः—सोम ओषधि के रस को पीने वाला तो उस ओषधि को ही जिसे पीसकर रस निकाला जाता है सोम मानता है। परन्तु वैज्ञानिक मेधावी जिसे सोम कहते हैं उसको कोई खा नहीं सकता है। यह सोम तो जगत् के पदार्थों की धारिका एक शक्ति है ॥३॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४॥

पदार्थः—(**आच्छद्विधानैः**) आच्छादित है विधान विद्या आदि जिनके द्वारा ऐसी दैवीशक्तियों से (**सोमः**) सोम (**गुपितः**) रक्षित है तथा (**बार्हतैः**) बृहत्साम से सम्बद्ध शक्तियों अर्थात् सात सोमपाल जिन्हें स्वान, भ्राज और अंघारि आदि नाम दिया जाता है उनसे (**गुपितः**) रक्षित है यह (**ग्राव्णाम्**) मेघों की (**इत्**) ही ध्वनि को (**शृण्वन्**) सुनता हुआ (**तिष्ठसि**) स्थित है (**ते**) इसे (**पार्थिवः**) पृथिवीस्थ कोई (**न**) नहीं (**अश्नाति**) खाता है ।

भावार्थ—यह सोम=धारिका शक्ति आच्छादक पदार्थों और सप्त सोमपालों से रक्षित है। इसको कोई पृथिवीस्थ प्राणी नहीं खा सकता है। भाव यह है कि अग्नि और सोम से यह सारा जगत् है। स्वान, भ्राज अंघारि बम्भारि आदि अग्नि के भेद हैं। उनसे यह आकाश में रक्षित सोम किसी पार्थिव प्राणी से नहीं खाया जाता है ॥४॥

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५॥

पदार्थः—(**त्वा देव**) इस देव=दिव्य सोम को ऊपर पक्ष में रश्मियां (**प्रपिबन्ति**) पीती हैं (**ततः**) उसके अनन्तर पूर्वपक्ष में (**पुनः**) फिर (**आप्यायसे**) फिर पूर्ण हो जाता वा कर लेता है, (**वायुः**) वायु (**सोमस्य**) इस चन्द्रमा का (**रक्षिता**) रक्षक है (**समानाम्**) संवत्सरों के (**मासः**) महीने का (**आकृतिः**) कर्ता है ।

भावार्थः - चन्द्रमा जिसे भी सोम कहा जाता है वह महीने के कृष्ण पक्ष में रश्मियों द्वारा पीया जाता है और घटता है पुनः शुक्ल पक्ष में वह इसे पूरा कर लेता है । वायु इसकी गति का रक्षक है और यह वर्ष के महीने का कर्ता है ॥५॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**सूर्यायाः**) उषा का (**वासः**) वस्त्र अथवा उषा की कान्ति (**भद्रम् इत्**) भद्र ही है क्योंकि वह (**गाथया**) गाथायुक्त मन्त्रों से (**परिष्कृतम्**) अलंकृत हुआ (**एतिः**) रहता है । (**रैभी**) रैभी नामक ऋक् (**अनुदेयी**) विवाह के बाद देने योग्य (**आसीद्**) होती है और (**नाराशंसी**) नाराशंसी ऋक् (**न्योचनी**) ओढ़नी वा उपवस्त्र है ।

भावार्थः - यह ज्ञात रहे कि छन्दों का दैवी पदार्थों से सम्बन्ध है। अतः इस मन्त्र में बताया गया है सूर्या=उषा रूपी वधू का वस्त्र गाथा से अलंकृत है । उसकी विवाह की साड़ी रैभी ऋक् है और नाराशंसी उपवस्त्र ओढ़नी है ॥६॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥

पदार्थः—(**यत्**) यदा (**सूर्या**) उषा (**पतिम्**) पति को (**अयात्**) प्राप्त होती है तब (**चित्तिः**) चित्ति=पूर्वचिति उसका (**उपबर्हणम्**) तकिये के समान (**आः**) होता है, (**चक्षुः**) नेत्र (**अभ्यञ्जनम्**) अभ्यंजन (**आः**) होता है (**द्यौः**) द्युलोक और (**भूमिः**) भूमि (**कोशः**) कोश (**आसीत्**) होता है ।

भावार्थः —जब सूर्या=उषा पति को प्राप्त होती है तब चित्ति उसका सिरहाना, चक्षु उसका आंजन होते हैं । द्यु और पृथिवी उसके कोश होते हैं ॥७॥

स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८॥

पदार्थः–(**स्तोमाः**) स्तोम (**सूर्यायाः**) सूर्या=उषा के रथ के (**प्रतिधयः**) धारण करने वाले काष्ठ आदि (**आसन्**) होते हैं, (**कुरीरम्**) कुरीर (**छन्दः**) (**ओपशः**) शयन होता है (**अश्विना**) प्राण और अपान (**वरा**) वर (**पुरोगवः**) आगे चलने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**आसीत्**) होता है ।

भावार्थः – स्तोम उसके रथ के काष्ठ आदि, कुरीर छन्द शयन होता है । प्राण अपान सहवाले और अग्नि आगे चलने वाला होता है ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥

पदार्थः—(**सोमः**) सोम पदार्थ (**वधूयुः**) वधू को चाहने वाला (**अभवत्**) होता है (**अश्विना**) प्राण और अपान (**उभा**) दोनों (**वरा**) सहवाले (**आस्ताम्**) होते हैं (**यत्**) जब (**सविता**) सविता (**मनसा**) मन से (**शंसन्तीम्**) कामना करती हुई (**सूर्याम्**) सूर्या=उषा को (**पत्ये**) पति को (**अददात्**) देता है ।

भावार्थः - सोम पदार्थ वधू की कामना वाला होता है । प्राण और अपान दो सहवाले होते हैं । सविता पति को चाहती हुई सूर्या को पति को प्रदान करता है ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥

पदार्थः—(**मनः**) मन (**अस्याः**) इस सूर्या का (**अनः**) रथ (**आसीत्**) होता है (**उत**) और (**द्यौः**) द्युलोक (**छदिः**) ऊपर की छत (**आसीत्**) होती है, (**शुक्रौ**) प्रकाशमान सूर्य और चन्द्र (**अनड्वाहौ**) रथ के ले चलने वाले बैल

(**आस्ताम्**) होने हैं (**यत्**) यदा (**सूर्या**) सूर्या उषा (**गृहम्**) गृह को (**आयात्**) जाती है ।

भावार्थः –जब सूर्या=उषा पति के गृह को जाती है तब मन उसका रथ होता है, द्युलोक ऊपर की छत होता है और प्रकाशमान सूर्य और चन्द्र रथ को खीचने वाले बैल होते हैं ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

पदार्थः (**ते**) उस सूर्या के (**गावौ**) सूर्य चन्द्र रूपी बैल (**ऋक् सामाभ्याम्**) ऋक् और साम के नाम से अभिहित होने वाले (**सामानौ**) साम होकर (**इतः**) यहां से जावें, (**ते**) इसके (**श्रोत्रम्**) श्रोत्र (**चक्रे**) चक्र (**आस्ताम्**) होवें (**दिवि**) द्युलोक में (**चराचरः**) चलाचल (**पन्थाः**) मार्ग हो ।

भावार्थः– उस सूर्या के रथ के वाहक सूर्य चन्द्र रूपी बैल जो ऋक् और साम के नाम से कहे जाते है साम=संयत होकर यहां से जावें । इसके श्रोत्र रथ के चक्के हों और द्युलोक में इसका चलाचल मार्ग हो ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥

पदार्थः—(**यात्याः**) जाती हुई (**ते**) इस सूर्या के रथ के (**शुची**) श्रोत्र (**चक्रे**) चक्के हैं (**व्यानः**) व्यान (**अक्षः**) अक्ष (**आहतः**) लगा है, (**मनस्मयम्**) मनोमय (**अनः**) रथ पर (**पतिम्**) पति के पास (**प्रयती**) जाती हुई (**सूर्या**) सूर्या (**आ रोहत्**) आरूढ होती है ।

भावार्थः—जाती हुई सूर्या के रथ के चक्के होते हैं दोनों कान और व्यान उस रथ का अक्ष होता है । मनोमय रथ पर पति के धर जाती सूर्या आरूढ़ होती है ॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥

पदार्थः—(**सूर्यायाः**) सूर्या का (**वहतुः**) विवाह (**प्रागात्**) होता है (**यम्**) जिसको (**सविता**) सूर्य (**अवासृजत्**) करता है (**अघासु**) मघा नक्षत्र

अर्थात् जाड़े के महीने में (**गावः**) सूर्य किरणें (**हन्यन्ते**) मारी जाती है अर्थात् मन्द हो जाती है और (**अर्जुन्योः**) रात्रि में (**परि उह्यते**) कठिनाई से वितायी जाती है ।

भावार्थः—सूर्या का वह पिता सविता द्वारा किया जाने वाला विवाह होता है । मघा नक्षत्र अर्थात् माघ मास में सूर्य की किरणें मन्द पड़ जाती है और रात्रियें कठिनाई से बिताई जाती हैं ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

पदार्थः (**यत्**) जब (**अश्विना**) प्राण और अपान (**सूर्यायाः**) सूर्या के (**वहतुम्**) विवाह को (**पृच्छमानौ**) पूछते हुए (**त्रिचक्रेण**) तीन चक्कों वाले रथ से (**आयातम्**) आते हैं (**तत्**) तब (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**वाम्**) इन दोनों का (**अनु अजानन्**) अनुमोदन करते हैं (**पुत्रः**) पुत्र भूत (**पूषा**) वायु (**पितरौ**) प्राणापान रूपी पिता को (**अवृणीत**) स्वीकृति देता है ।

भावार्थः– सूर्या के विवाह में प्राण और अपान भाग लेते हैं । समस्त दिव्य पदार्थ इसका अनुमोदन करते हैं और वायु प्राणापान को स्वीकृति प्रदान करता है अर्थात् उनकी अनुकूलता में रहता है ॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥

पदार्थः—(**शुभस्पती**) जल के रक्षक अश्विना=प्राण और उदान (**यत्**) जब (**सूर्याम् उप**) सूर्या के पास जाने के लिए (**वरेयम्**) वरार्थ कन्या देने वाले सविता के पास (**आयातम्**) आते हैं तो (**वाम्**) उनका (**एकम्**) एक (**चक्रम्**) चक्र (**क्व**) कहां (**आसीत्**) रहता है और वे (**क्व**) कहां पर (**देष्ट्राय**) देने के लिए (**तस्थथुः**) निवास करते हैं ।

भावार्थः—जल के उत्पादक और रक्षक प्राण और उदान जब उषा के पास जाने के लिए सूर्य के पास आते हैं तब उनका तीन चक्रों में से एक चक्का कहां रह जाता है और वे जल आदि प्रदान करने में कहां रहते हैं ? भाव यह है कि सूर्य के पास होने पर पृथिवी रूपी चक्का पास नहीं

होता है केवल द्यु और अन्तरिक्ष ही पास होते हैं । ये दोनों अन्तरिक्ष में रहते हैं और शरीरादि में भी ।।१५।।

द्वे तें चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुथा विंदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदंद्धातय इद्विंदुः ।।१६।।

पदार्थः—(**सूर्ये ते**) इस सूर्या के (**द्वे**) दो (**चक्रे**) चक्के जो सूर्य और चन्द्र रूप में है (**ऋतुथा**) ऋतु के अनुसार निर्दिष्ट है उनको (**ब्रह्माणः**) मेधावी जन (**विदुः**) जानते हैं (**अथ**) और (**एकम्**) एक (**चक्रम्**) चक्का संवत्सर रूप (**यद्**) जो (**गुहा**) गूढ़ है (**तद्**) उसको (**अद्धातयः**) कालविद् मेधावी जन (**इद्**) ही (**विदुः**) जानते हैं ।

भावार्थः—सूर्या के सूर्य और चन्द्र रूपी दो चक्रों को जो ऋतुश निर्दिष्ट होते है मौसमों को जानने वाले विद्वान् लोग जानते हैं। परन्तु सम्वत्सररूप जो तीसरा छिपा हुआ चक्र है उसे कालविद् जानते हैं ।।१६।।

सूर्यायै देवेभ्यों मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ।।१७।।

पदार्थ—(**सूर्यायै**) सूर्या के लिए (**देवेभ्यः**) अग्नि आदि देवों के लिए, (**मित्राय**) वायु (**च**) और (**वरुणाय**) जल के लिए (**ये**) जो (**भूतस्य**) भूत जात के (**प्रचेतसः**) सूचक हैं (**तेभ्यः**) उनके लिए (**इदम्**) यह (**नमः**) अन्न आदि युक्त हव्य सामग्री (**अकरम्**) हम करते हैं ।

भावार्थः— सूर्या, अग्नि आदि दिव्य पदार्थ, मित्र वरुण आदि जो प्रेरा भूत ग्राम की सूचना देते रहते हैं उनके लिए यथार्थ हम अन्नादि से युक्त हवि तैयार करते हैं ।।१७।।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ।।१८।।

पदार्थः—(**एतौ**) ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा (**क्रीळन्तौ**) खेलते हुए (**शिशू**) दो शिशुओं की भांति (**अध्वरम्**) अन्तरिक्ष (**परि**) में (**मायया**) भगवान् की बुद्धि द्वारा (**पूर्वापरम्**) एक दूसरे के पूर्व और बाद (**चरतः**) चलते हैं, (**अन्यः**) उनमें एक सूर्य (**विश्वानि**) समस्त (**भुवना**) भुवनों को (**अभि चष्टे**) प्राप्त होकर देखाता है (**अन्यः**) चन्द्रमा (**ऋतून्**) ऋतुओं को (**विदधत्**) करता हुआ (**पुनः**) फिर से (**जायते**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—दो खेलते हुए शिशुओं की भांति सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के पहले और पीछे अन्तरिक्ष में उदित होते हैं । इन दोनों में सूर्य समस्त भुवनों को हमें दिखाता है और दूसरा चन्द्रमा ऋतुओं आदि को बनाता हुआ कला के हिसाब से पुनः-पुनः नया होता रहता है ।।१८।।

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रंम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ।।१९।।

पदार्थः—(**अह्नाम्**) दिनों का [प्रतिपदा आदि तिथियों का] (**केतुः**) प्रज्ञापक चन्द्रमा (**जायमानः**) अपनी कला से बढ़ता हुआ (**नवः नवः**) प्रति दिन नया-नया (**भवति**) होता रहता है यह (**उषसाम्**) उषाओं के (**अग्रम्**) अग्र को (**एति**) प्राप्त होता है (**आयन्**) पक्षान्तों को प्राप्त होता हुआ (**देवेभ्यः**) देवों को (**भागम्**) हविर्भाग (**विदधाति**) करता है अर्थात् देता है (**चन्द्रमाः**) चन्द्र (**दीर्घम्**) दीर्घ (**आयुः**) आयु (**प्रतिरते**) देता है ।

भावार्थः—तिथियों का और दिनों का प्रज्ञापक अपनी कला से घटता बढ़ता चन्द्रमा प्रतिदिन नवीन होता रहता है। यह उषाओं के अग्र को प्राप्त होता है। पक्षान्त को प्राप्त करता हुआ यज्ञ देवों को हविर्भाग प्रदान करता है और लोकों को दीर्घ आयु देता है ।।१९।।

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ।।२०।।

पदार्थः—(**सूर्ये**) हे उषः वेला के समान सुन्दर बधू ! तू (**सुकिंशुकम्**) उत्तम पुष्पों से सजाये हुए (**शल्मलिम्**) स्वच्छ साफ अथवा सेमरवृक्ष की लकड़ी के बने हुए (**विश्वरूपम्**) विविध रूपों वाले (**हिरण्यवर्णम्**) स्वर्ण आदि चमकीले धातुओं से मंडित (**सुवृतम्**) उत्तमता से व्यवहार में आने योग्य (**सुचक्रम्**) सुन्दर पहियों वाले रथ पर (**आरोह**) चढ़, तथा (**पत्ये**) पति के लिए (**वहतुम्**) अपने विवाह को (**स्योनम्**) सुखकर (**अमृतस्य**) अमृतका (**लोकम्**) स्थान (**कृणुष्व**) कर।

भावार्थः—सुन्दर पुष्पों से सजे साफ स्वच्छ, नानारूप, स्वर्ण आदि से मंडित, उत्तमगति वाले और सुन्दर पहियों वाले रथ पर हे वधू ! तू चढ़ । अपने पति के लिए अपने विवाह को सुखकर अमृत का स्थान बना। अर्थात् पति के घर को स्वर्ग सम बना ॥२०॥

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्ये३ षा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥

पदार्थः—(**विश्वावसुम**) समस्त धनों के स्वामी तथा सबको बसाने वाले परमेश्वर की मैं (**नमसा**) नमस्कार और (**गीर्भिः**) वेद वाणियों से (**ईळे**) स्तुति करूं, हे वर ! तू (**उदीर्ष्व**) उठ (**हि**) जिससे (**एषा**) यह कन्या (**पतिवती**) पतिवाली होवे, तू (**अन्याम्**) अपने से भिन्न गोत्रवाली और दूसरे से न गृह में ले जाई गई इस (**पितृषदम्**) पिता माता पर आश्रित (**व्यक्ताम्**) सुस्पष्ट यौवनवाली इस कन्या कों (**इच्छ**) चाह (**ते**) तेरा (**सः**) वही (**भागः**) भाग है (**तस्य**) उस कन्यारूप भाग को (**जनुषा**) स्वयं उसमें पुत्ररूप से उत्पन्न होने के लिए (**विद्धि**) जान ।

भावार्थः—लड़की का पिता कहता है कि समस्त धनों के स्वामी तथा सबको बसाने वाले परमेश्वर की मैं नमस्कार और वेदवाणी से स्तुति करूँ । हे वर ! तू उठ, स्वीकार कर जिससे यह कन्या पतिवाली होवे ; तू अपने से भिन्न गोत्रवाली, किसी के गृह न ले जाई गई पिता माता पर आश्रित, स्पष्ट यौन वाली कन्या को चाह । तेरा यही भाग है इसमें स्वयं पुत्र रूप में उत्पन्न होने के लिए जान ॥२१॥

उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं१ सं जायां पत्या सृज ॥२२॥

पदार्थः—हे (**विश्वावसो**) गृहस्थाश्रम में वसने वाले वर ! (**त्वा**) तुझे (**नमसा**) आदर के साथ हम कन्या पक्ष के लोग (**ईडामहे**) सत्कृत करते हैं (**अतः**) इस स्थान से (**उदीर्ष्व**) उठ और तैयार हो तू (**अन्याम्**) अपने से भिन्न गोत्र की (**प्रफर्व्यम्**) खूब पुष्ट अङ्गों वाली कन्या को (**जायाम**) जाया (**इच्छ**) चाह और (**पत्या**) पतिरूप से (**संसृज**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—हे गृहस्थाश्रम में जाने वाले वर ! तुम्हारा इस कन्या के पक्ष के लोग आदर से सत्कार करते हैं । अतः इस स्थान से उठ और तैयार हो । तू अपने से भिन्न गोत्र की खूब पुष्ट अंगों वाली कन्या को जायारूप में चाह और पतिरूप से उसे प्राप्त हो ॥२२॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३॥

पदार्थः– (**नः**) हमारे (**पन्थाः**) मार्ग (**अनृक्षरा**) कांटों से रहित (**ऋजवः**) सरल सीधे हों, (**येभिः**) जिनसे (**नः**) हमारे स्नेही जन (**वरेयम्**) उत्तम फल को (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं, (**नः**) हमें (**अर्यमा**) न्यायकारी, (**भगः**) सुखदाता (**सम समनिनीयात**) इन मार्गों से उत्तम प्रकार से ले चले, (**देवाः**) हे विद्वज्जानो ! (**नः**) हमारा (**जास्पत्यम**) पति-पत्नी भाव (**सुयमम**) संयम सहित और दृढ बद्ध हो ।

भावार्थः—हमारे मार्ग काँटों से रहित और सरल सीधे हों जिनसे हमारे स्नेहीजन उत्तमफल को प्राप्त होते हैं । हमें न्यायकारी, सुखदाता विद्वज्जन इन मार्गों से उत्तम प्रकार से ले चलें । हे विद्वज्जन ! हमारा पति-पत्नी भाव दृढ़ताबद्ध और संयत हो ॥२३॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥

पदार्थः --मैं (**त्वा**) तुझे उस (**वरुणस्य**) ब्रह्मचर्य आश्रम के (**पाशाद्**) नियमपाश से (**प्रमुञ्चामि**) छुड़ाता हूं (**येन**) जिससे (**सुशेवः**) सुख चाहने वाले (**सविता**) पिता ने (**त्वा**) तुझे (**अबध्नात्**) बाँध रखा है, (**ऋतस्य**) सत्याचरण के (**योनौ**) स्थान तथा (**सुकृतस्य**) उत्तम कर्म के (**लोके**) क्षेत्र में (**पत्या**) मुझ पति के (**सह**) साथ (**त्वा**) तुझे (**अरिष्टाम्**) निरापदा (**दधामि**) धारण करता हूँ ।

भावार्थः हे वधू ! मैं तुझे ब्रह्मचर्य नियम के उस बन्धन से मुक्त करता हूं जिसे कल्याण चाहने वाले तुम्हारे पिता ने बांध रखा है । सत्याचरण के स्थान और सत्कर्म के क्षेत्र इस गृहस्थाश्रम में मुझ पति के साथ तुझे निरापदा करता हूँ ॥२४॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुत सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५॥

पदार्थः—हे वधू ! (**इतः**) इस पितृकुल से तुझे (**प्र मुञ्चामि**) मुक्त करता हूँ (**न**) नहीं (**अमुतः**) मर्त्तृ गृह से मैं तुझे (**सुवद्धाम्**) सुवद्ध (**करम्**) करता हूँ, हे (**मीढ्वः**) वीर्यसेचक (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् पुरुष ! (**यथा**) जिससे (**सुभगा**) सौभाग्य वाली, (**सुपुत्रा**) उत्तम पुत्रों वाली (**असति**) होती है।

भावार्थः— हे वधू इस पितृकुल से तुझे मुक्त करता हूँ परन्तु पतिकुल से नहीं। पतिकुल में तुझे सुबद्ध करता हूं। हे वीर्यसेचक, ऐश्वर्यवन् ! पुरुष ! जिससे यह वधू सौभाग्यवाली और उत्तम पुत्रों वाली हो ॥२५॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६॥

पदार्थः—हे वधू ! (**पूषा**) पोषण करने वाला वर पुरुष (**त्वा**) तुझे (**इतः**) इस पितृकुल से (**हस्तगृह्य**) पाणिग्रहण करके (**नयतु**) ले जावे (**अश्विना**) सह वाले आदि (**त्वा**) तुझे (**रथेन**) रथ से (**प्रवहताम्**) ले जावें (**गृहान्**) गृहों को (**गच्छ**) जा (**यथा**) जिससे (**गृहपत्नी**) गृहपत्नी (**असः**) हो (**वशिनी**) सब भृत्य आदि को वश में करने वाली (**त्वम्**) तू (**विदथम्**) पतिगृह के भृत्य आदि जनों को (**आ वदासि**) उत्तम वचन बोलो ।

भावार्थः— पोषक पति तुझे हे वधू ! पिता माता के घर से पाणिग्रहणपूर्वक ले जावें। पति के भाई और पिता तुझे रथ से ले जावें। गृहों को तू जा जिससे गृहपत्नी हो। गृह के भृत्य आदिकों को वश में करती हुई तू उत्तम वचन बोले ॥२६॥

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥

पदार्थः—है वधू] (**इह**) इस पति के गृह में (**ते**) तेरा (**प्रियम्**) कल्याण और सुख हो, (**प्रजया**) सन्तान के (**सह**) साथ (**संमृध्यताम्**) वढ़ और समृद्धि को प्राप्त हो, (**अस्मिन्**) इस (**गृहे**) गृह में (**गार्हपत्याय**) गार्हपत्य जीवन के कर्त्तव्य के लिए (**जागृहि**) जागरूक रह, (**एना**) इस (**पत्या**) पति

के साथ (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**संसृजस्व**) संश्लिष्ट कर (**अध**) अन्तर=निरन्तर (**जिव्री**) वृद्धावस्था से जीर्ण हुए (**युवाम्**) तुम पति और पत्नी (**विदथम्**) गृह के लोगों से (**आवदाथः**) प्रेम से वार्तालाप करो ।

भावार्थः—हे बधू ! इस पति के गृह में तेरा कल्याण हो। तू संतान के साथ समृद्धि को प्राप्तकर इस घर में गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए सदा जागृत रह। इस पति के साथ अपने शरीर को संश्लिष्ट कर और दोनों वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बरावर उत्तम वचनों को घरवालों से बोला करो ॥२७॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥

पदार्थः—(**नील लोहिनम्**) आर्तव=मासिक धर्म (**भवति**) होता है (**कृत्या**) गृहस्थ के कार्य में (**आसक्तिः**) आसक्ति (**व्यज्यते**) प्रकट होने लगती है, (**अस्याः**) इस बधू के (**ज्ञातयः**) कुटुम्ब के लोग (**एधन्ते**) बढ़ते हैं और (**पतिः**) पति (**बन्धेषु**) सांसारिक बन्धनों में (**बध्यते**) बंधता है ।

भावार्थः—पत्नी को मासिक धर्म होता है। गृहस्थ कार्य में आसक्ति प्रकट होने लगती है। इसके कुटुम्ब आदि के लोग बढ़ते हैं और पति सांसारिक बन्धनों में बंधता है ॥२८॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९॥

पदार्थः—(**शामुल्यम्**) शरीरस्थ मल अथवा उससे युक्त वस्त्र को (**परादेहि**) दूर कर, (**ब्रह्मभ्यः**) ब्राह्मणों को (**वसु**) धन (**विभज**) दें, (**एषा**) यह वधू (**कृत्या**) गृहस्थ कार्य में (**पद्वती**) अपने पैरों पर खड़ी होने वाली (**जाया**) पत्नी (**भूत्व्या**) होकर (**पतिम्**) पति को (**आ विशते**) प्राप्त होती है ।

भावार्थ—हे पुरुष ! शरीरस्थ मल वा उससे युक्त आर्तव वस्त्र को दूर कर दे। ब्राह्मणों को धन दे। यह वधू गृहस्थ कर्म में अपने पैरों पर खड़ी होने वाली जाया बनकर पति को प्राप्त हो रही है ॥२९॥

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०॥

पदार्थः—(**यद्**) यदि (**पतिः**) पति (**वध्वोः**) वधू के (**वाससा**) वस्त्र से (**स्वम्**) स्वकीय (**अङ्गम्**) अंग को (**अभिधित्सते**) ढकता है अथवा उसके साथ संभोग करता है और (**रुशती**) रूप युक्त (**अमुया**) इस (**पापया**) पाप-युक्त शरीर से सम्पर्क करता है तो उसका (**तनूः**) शरीर (**अश्रीरा**) कान्तिहीन और रोगी हो जाता है ।

भावार्थः—आर्तव के समय में यदि पति पत्नी के वस्त्र से अपने शरीर को ढकता है अथवा उससे संभोग करता है और उसके इस अपवित्र रूपवान् शरीर से सम्पर्क करता है तो उसका और पत्नी का शरीर कान्ति-हीन एवं रोगी हो जाता है ॥३०॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१॥

पदार्थः –(**ये**) जो (**यक्ष्माः**) यक्ष्मा आदि रोग (**वध्वः**) वधू के (**चन्द्रम्**) आह्लादकारी (**बहतुम्**) शरीर को (**जनात्**) जनन समय अर्थात् माता पिता से पैतृक रूप में (**अनु यन्ति**) इसके शरीर में आ जाते हैं (**यज्ञियाः**) यज्ञ-विज्ञान द्वारा चिकित्सा करने वाले (**देवाः**) विद्वान् लोग (**तान्**) उन रोगों को (**पुनः**) फिर (**नयन्तु**) वापस करें (**यतः**) जहां से (**आगताः**) ये आये हैं।

भावार्थः—जो यक्ष्मा आदि पैतृक रोग इस वधू के आह्लादकारी शरीर में आये हैं उन्हें यज्ञ विद्या से चिकित्सा करने बाले विद्वान् जन जहां से वे रोग आये हैं वहीं पर वापस कर दें ॥३१॥

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**दम्पती**) पति और पत्नी को (**आ सीदन्ति**) प्राप्त होते हैं वे (**परि पन्थिनः**) शत्रु रूप होकर (**मा**) न (**विदन्**) प्राप्त हों, वे दोनों (**सुगेभिः**) सुख साधनों से (**दुर्गम्**) दुःख से (**अति इताम्**) पार जावें (**अरातयः**) कमीना पन (**अप द्रान्तु**) दूर भाग जावें ।

भावार्थः ये जो पति पत्नी को प्राप्त होते हैं वे रोग आदि अथवा शत्रुजन शत्रुरूप होकर न प्राप्त हों। ये पति पत्नी सुख साधनों और सुख-कर मार्गों से इस दुःख से पार जावें और कमीनापन की भावनायें इन से सदा ही दूर रहें ॥३२॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥

पदार्थः— (**इयम्**) यह (**वधूः**) वधू (**सुमङ्गलीः**) शुभ सौभाग्य कारिणी है (**सम् आ इत**) आप लोग आइये (**पश्यते**) देखिये (**अस्य**) इसे (**सौभाग्यम्**) सौभाग्य का आशीर्वाद (**दत्वाय**) देकर (**अथ**) अनन्तर (**अस्तम्**) गृह को (**वि परेतन**) जाइये ।

भावार्थः हे विवाह में उपस्थित भद्र स्त्री पुरुषो ! यह वधू शुभा और सौभाग्यशालिनी है। आप लोग आइये, देखिये और इसे सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अनन्तर अपने-अपने घरों को जाइये ॥३३॥

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

पदार्थः— यह आर्तव काल का वस्त्र अथवा सम्बन्ध (**तृष्टम्**) दाह जनक है (**एतत्**) यह, (**कटुकम्**) कटु तथा (**अपाष्ठवत्**) दूर रखने योग्य (**विषवत्**) विष के समान (**न**) नहीं है (**एतत्**) यह (**अत्तवे**) ग्रहण करने योग्य (**यः**) जो (**ब्रह्म**) बुद्धिमान् (**सूर्याम्**) सूर्य के दिनों की गति के अनुसार आर्तव से युक्त होने वाली इस स्त्री को (**विद्यात्**) जानता है (**सः इत्**) वह ही (**वाधूयम्**) वधू के सम्बन्ध को प्राप्त करने योग्य है ।

भावार्थः—यह आर्तव समय का वस्त्र अथवा संभोग दाहजनक, कटु-परिणाम लाने वाला, दूर रखने की चीज और विष के समान है । जो बुद्धिमान् इस आर्त्तव के विषय का जानकार है वह ही वधू के सम्बन्ध को प्राप्त करने योग्य है ॥३४॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥

पदार्थः—(**आशसनम्**) आशसन=डिठाई (**विशसनम्**) विशसन=विशेष ढिठाई (**अथो**) और (**अधिविकर्त्तनम्**) कटुवचन बोलना (**सूर्यायाः**) स्त्री के (**रूपाणि**) रूप हैं (**तानि**) उनको (**ब्रह्मा तु**) जानकार (**शुन्धति**) शुद्ध करता है ।

भावार्थः—ढिठाई, अति ढिठाई और कटु वचन कहना—ये स्त्री के रूप हैं । जो जानकार है वह इन्हें शुद्ध कर देता है ॥३५॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६॥

पदार्थः—हे वधू ! पक्षान्तर में हे वर ! (**सौभगत्वाय**) सौभाग्य के लिए (**ते**) तुम्हारे (**हस्तम्**) हाथ को (**गृभ्णामि**) ग्रहण करता हूँ (**मया**) मुझ (**पत्या**) पति के साथ पक्षान्तर में मुझ पत्नी के साथ (**यथा**) जिस प्रकार (**जरदष्टिः**) वृद्धावस्था युक्त हो वैसी वा वैसा (**असः**) हो, (**भगः**) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष (**अर्यमा**) न्यायकारी (**सविता**) उत्तम कर्मों का प्रेरक विद्वान् (**पुरन्धिः**) पोषक पुरुष (**देवाः**) विद्वज्जन (**त्वा**) तुझे (**मह्यम**) मुझे (**गार्हपत्याय**) गृहस्थाश्रम के धर्म कर्म के लिए (**अदुः**) देते हैं ।

भावार्थः—हे वधू ! अथवा हे वर ! हममें से एक दूसरा एक दूसरे के हाथ को सौभाग्य के लिए ग्रहण कर रहा है । मुझ पति वा मुझ पत्नी के साथ जिस प्रकार वृद्धावस्था युक्त हो वैसी और वैसा हो । ऐश्वर्यशाली उत्तमकर्मों के प्रेरक, पोषक, न्यायकारी, विद्वान् पुरुष मेरे लिए तुझे गृहस्थाश्रम धर्म के लिए देते हैं ॥३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७॥

पदार्थः– (**पूषन्**) हे पोषक ! (**ताम्**) उस (**शिवतमाम्**) कल्याणकारिणी वधू को (**आ ईरय**) प्रेरित कर, (**यस्याम्**) जिस उरू में (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग (**बीजम्**) वीर्यरूप बीज को (**वपन्ति**) बोते हैं (**या**) जो (**नः**) हमें (**उशती**) चाहती हुई (**ऊरू**) अपने ऊरू को (**विश्रयाते**) फैलाती है (**यस्याम्**) जिसमें (**उशन्तः**) चाहता हुआ मैं पति (**शेपम**) रेत:सेजन इन्द्रिय का (**प्रहराम**) प्रहार करता हूँ ।

भावार्थः हे पोषण करने हारे वर ! तू इस कल्याणकारिणी पत्नी को प्रेरित कर जिसके ऊरु के अन्दर पुरुष वीर्य का आधान करते हैं । जो हमें चाहती हुई अपने ऊरू के हम पर फैलाती है । और हम पति लोग अपनी अपनी पत्नियों के ऊरू में प्रजनन इन्द्रिय का प्रहार करते हैं ॥३७॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

पदार्थः—हे वधू ! (**तुभ्यम्**) इस यज्ञाग्नि के (**परि**) चारों तरफ (**वहतुना**) दहेज के (**सह**) साथ (**सूर्याम्**) वधू को (**अवहन्**) घुमाते वा प्रदक्षिणा करते हैं (**अग्ने**) यह अग्नि (**पुनः**) फिर (**पतिभ्यः**) पति के लिए (**प्रजया सह**) प्रजा के साथ युक्त होने हारी (**जायाम्**) जाया रूप में (**दा**) देता है ।

भावार्थः –विवाह में माता-पिता और सम्बन्धी आदि वधू को देय वस्तु के साथ यज्ञाग्नि की परिक्रमा कराते हैं । पुनः यह यज्ञाग्नि प्रजा को उत्पन्न करने हारी इस वधू को पति के प्रति प्रदान करता है ॥३८॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९॥

पदार्थः—(**अग्निः**) कन्या में विद्यमान अग्नि की ऊष्मा (**पुनः**) तत्र (**आयुषा**) आयु (**वर्चसा**) वर्चस् के (**सह**) साथ (**पत्नीम्**) पत्नी को पति को प्रदान करती है, (**अस्याः**) इसका (**यः**) जो (**पतिः**) पति है (**दीर्घायुः**) लम्बी आयु वाला होकर (**शरदः**) शरद् ऋतुओं का (**शतम्**) सौ (**जीवाति**) जीवे ।

भावार्थः - कन्या में विद्यमान ऊष्मा पुनः इस वधू को उसके पति को आयु और बल के साथ प्रदान करती है । इसका जो पति है वह लम्बी आयु वाला होकर सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित रहे ॥३९॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥

पदार्थः – विवाह के योग्य वधू को (**सोमः**) सोम शक्ति (**प्रथमः**) पहली (**विविदे**) प्राप्त करती है, (**गन्धर्वः**) गृहस्थाश्रम वाली शक्ति रजोदर्शन(**उत्तरः**)

दूसरा (**विविदे**) प्राप्त करता है (**अग्निः**) ऊष्मा (**ते**) इसका (**तृतीयः**) तृतीय (**पतिः**) पालक है (**ते**) इसका (**तुरीयः**) चतुर्थ (**पतिः**) पालक (**मनुष्यजा**) मनुष्य से उत्पन्न हुआ होता है ।

भावार्थः— विवाह के योग्य वधू को पहले सोम शक्ति किशोरावस्था का गुण ग्रहण करती है। पुनः रजोदर्शन की अवस्था में गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शक्ति ग्रहण करती है। तीसरी शक्ति इसकी शरीरस्थ ऊष्मा होती है और चौथी शक्ति = मनुष्यरूपी पति इसे प्राप्त करता है ॥४०॥

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१॥

पदार्थः—(**सोमः**) सोम शक्ति इस कन्या को (**गन्धर्वाय**) गृहस्थ धारण करने की शक्ति को (**ददत्**) देती है, (**गन्धर्वः**) यह गन्धर्वशक्ति उसे (**अग्नये**) यौवन की ऊष्मा को (**ददत्**) देती है (**अग्निः**) यह ऊष्मा (**अथो**) अनन्तर (**इमाम्**) इस वधू को (**मह्यम्**) मुझ पति को (**अदात्**) देता है (**रयिम्**) धन (**च**) और (**पुत्रान् च**) पुत्र भी देता है ।

भावार्थः कन्या की प्रथमावस्था शान्त सोम है, दूसरी अवस्था गृहस्थ की भावना का जिसमें उन्मेष होता है वह गन्धर्व है। तीसरी अवस्था जिसमें यौवन की ऊष्मा बढ़ती हैं अग्नि है और चौथी अवस्था में वह पति के योग्य हो जाती है ॥४१॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

पदार्थः हे वर और वधू ! (**इह**) यहां (**एव**) ही (**स्तम**) रहो (**मा**) नहीं (**वियोष्टम**) वियुक्त हो, (**विश्वम्**) पूर्ण (**आयुः**) आयु को (**व्यश्नुतम**) प्राप्त करो (**स्वे**) अपने (**गृहे**) घर में (**पुत्रैः**) पुत्रों (**नप्तृमिः**) पोतों और नातियों के साथ (**मोदमानौ**) प्रसन्न होते हुए (**क्रीडन्तौ**) खेलते हुए (**स्तम**) रहो ।

भावार्थः—हे वर और वधू ! तुम दोनों इस आश्रम में स्थिर रहो। वियुक्त मत हो और पूर्ण आयु प्राप्त करो। अपने घर में पुत्र, पौत्र, नाती आदि के साथ प्रसन्न हो खेलते हुए रहो ॥४२॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३

पदार्थः—(**प्रजापतिः**) प्रजा का पालक अग्नि (**नः**) हमें (**प्रजाम्**) सन्तान (**आ जनयतु**) उत्पन्न करे, (**अर्यमा**) सूर्य (**आजरसाय**) वृद्धावस्था पर्यन्त (**समनक्तु**) संगत रखे, (**सा**) वह तू वधू (**अदुर्मङ्गली**) सुमंगली बनी हुई (**पतिलोकम्**) पति के पास (**आविश**) प्राप्त हो, (**द्विपदे**) दो पैर वाले मनुष्य और (**चतुष्पदे**) चार पैर वाले पशुओं के लिए (**शम्**) कल्याणकारिणी (**भव**) हो ।

भावार्थः— अग्नि हममें सन्तान उत्पन्न करे, सूर्य हमें वृद्धावस्था तक संगत रखे। हे वधू ! तू सुमंगली हुई पति के पास आ और मनुष्य और पशु आदि के लिए कल्याणकारिणी हो ॥४३॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥

पदार्थः— हे वधू ! तु (**अघोरचक्षुः**) सौम्यदृष्टि और (**अपतिघ्नी**) पति की रक्षा करने वाली (**ऐधि**) हो (**पशुभ्यः**) पशुओं के लिए (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**सुमनाः**) उत्तम मन वाली (**सुवर्चा**) उत्तम बल और ज्ञान वाली, (**वीरसू**) उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली, और (**देवृकामा**) आपत्काल में आवश्यकता पड़ने पर देवर की कामना वाली, और (**स्योना**) सुखकारिणी हो, (**द्विपदे**) मनुष्यों के लिए (**शम**) कल्याणकारिणी (**भव**) हो और (**चतुष्पदे**) चौपायों के लिए (**शम**) सुखकारिणी हो ।

भावार्थः हे वधू ! तू सौम्यदृष्टि और पति की रक्षा करने वाली हो। पशुओं के लिए कल्याणकारिणी, उत्तम मनवाली, उत्तम बल और ज्ञानवाली, वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली, आपत्काल में आवश्यकता पड़ने पर देवर की कामना वाली और सुखकारिणी हो। मनुष्य के लिए कल्याणकारिणी और चौपायों के लिए कल्याणकारिणी हो ॥४४॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ।४५॥

पदार्थः (**मीढ्व**) हे वीर्यसेचन हारे (**इन्द्र**) शक्तिशाली वर ! (**सुभगाम्**) सौभाग्यशालिनी (**इमाम्**) इस वधू को (**त्वम्**) तू (**सुपुत्राम्**) उत्तम पुत्रों वाली (**कृणु**) कर, (**अस्याम्**) इसमें (**दश**) दश (**पुत्रान्**) पुत्रों को (**आ धेहि**) पैदाकर (**एकादशम्**) ग्यारहवां (**पतिम्**) तुझ पति को (**कृधि**) कर।

भावार्थः– हे वीर्यसेचनहार शक्तिशाली वर ! तू इस सौभाग्यशालिनी पत्नी को उत्तम पुत्रों वाली कर। इसमें १० पुत्रों को पैदा कर और ग्यारहवां पुत्र स्वयम् बन जा। अर्थात् दश से अधिक सन्तान न पैदा-कर ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

पदार्थः-- हे वधू ! तू (**श्वसुरे**) श्वसुर के अधीन (**साम्राज्ञी**) साम्राज्ञी (**भव**) हो (**श्वश्र्वां**) सासु के अधीन (**साम्राज्ञी**) साम्राज्ञी (**भव**) हो (**ननान्दरि**) ननदों के बीच (**साम्राज्ञी**) साम्राज्ञी (**भव**) हो और (**देवृषु**) देवरों के (**अधि**) बीच में (**साम्राज्ञी**) साम्राज्ञी (**भव**) हो।

भावार्थः—हे वधू ! तू श्वसुर के अधीन साम्राज्ञी हो, तू सासु के अधीन साम्राज्ञी हो, तू ननदों के बीच साम्राज्ञी और तू देवरों के बीच साम्राज्ञी हो ॥४६॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥

पदार्थः– हे (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) विद्वज्जन ! (**समञ्जन्तु**) अच्छी प्रकार जानो (**नौ**) हम पति और पत्नी दोनों (**सम् आपः**) पानी के समान एक हैं, (**हृदयानि**) हृदय (**मातरिश्वा**) वायु हम दोनों के हृदय को (**संदधातु**) समान करे, (**धाता**) सूर्य (**संदधातु**) समान करे (**देष्ट्री**) सरस्वती (**सम् उ दधातु**) समान करे (**नौ**) हम दोनों का।

भावार्थः– हे समस्त विद्वज्जन ! आप देखें, हम दोनों का हृदय मिले हुए जल के समान है। वायु, सूर्य, सरस्वती सभी हम दोनों के हृदय को समान करें ॥४७॥

यह दशम मण्डल में पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ८६

ऋषिः - १ -- २३ वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च ॥ देवता –इन्द्रः ॥ छन्दः–
१, ७, ११, १३ १४, १८, २३ पङ्क्तिः । २, ५ पादनिचृत्पङ्क्तिः ।
३, ६, ९, १०, १२, १५, २०—२२ निचृत्पङ्क्तिः । ४, ८,
१६, १७, १९ विराट्पङ्क्तिः ॥स्वरः पञ्चमः ॥

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

पदार्थः—अनेक जीव वा प्राणी (**सोतोः**) जगत् के उत्पादक प्रभु से ही (**वि असृक्षत**) शरीर आदि में उत्पन्न किये जाते हैं परन्तु (**देवम्**) महान् देव (**इन्द्रम्**) उस ऐश्वर्यशाली भगवान् को (**न**) नहीं (**अमंसत**) मानते और जानते हैं (**यत्र**) जहां पर (**वृषाकपिः**) जीवात्मा (**अमदत्**) तृप्ति और आनन्द को प्राप्त होता है (**यः**) जो परमेश्वर (**मत्सखा**) मुझ जीव का मित्र है और (**पुष्टेषु**) बड़े-बड़े लोकों वा पुष्ट पदार्थों में भी विद्यमान होकर उनका (**अर्यः**) स्वामी है वही (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्माद्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः –जगत् के कर्त्ता भगवान् के द्वारा ही सभी प्राणी विविध योनियों में उत्पन्न किये जाते हैं परन्तु उसको सभी मानते और जानते नहीं हैं। वह इन्द्र=परमेश्वर वह है जिसमें वृषकपिः=आत्मा आनन्द से तृप्त होता है मोक्ष में और जो इन सभी पदार्थों में विद्यमान उनका स्वामी है। वह परमैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् प्रभु ! तू (**पराहि**) परे ही (**धावसि**) दौड़ता जा रहा है यह (**वृषाकपेः**) जीवात्मा जो आप का प्राप्त करना चाहता है उसके लिए (**अति व्यथिः**) अत्यन्त व्यथा का विषय है, हे जीवात्मन् ! तू (**सोमपीतये**) आनन्दरस के पानार्थ (**अन्यत्र**) भौतिक पदार्थों और साधनों में (**नो अह**) नहीं ही (**प्रविन्दसे**) इस परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हो, (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू तो दूर ही दौड़ता जा रहा है। यह मुझ जीवात्मा के लिए व्यथा का विषय है। हे जीवात्मन् ! आनन्द रस के पानार्थ अपने अन्तरात्मा के अतिरिक्त किसी साधन और पदार्थ में उस परमेश्वर को नहीं ही प्राप्त किया जा सकता है। वह ऐश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

पदार्थ हे खमो ! (**हरितः**) आकृष्ट हुआ, (**मृगः**) मार्गणशील=खोजी (**अयम्**) यह (**वृषाकपिः**) जीवात्मा (**त्वाम्**) तुझे लक्ष्य में रखकर (**किम्**) क्या (**चकार**) साधना करता है (**यस्मै**) जिसके लिए तू (**अर्यः नु वा**) स्वामी की भांति (**पुष्टिमत् वसु**) पुष्टि और ऐश्वर्य से युक्त धन (**इरस्यसि इत्**) देता ही जाता है वह (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे प्रभो ! आपकी ओर आकृष्ट और आप का खोजी यह जीवात्मा आप को लक्ष्य में रखकर क्या साधना करता है कि आप इसके लिए पुष्टि और ऐश्वर्य से युक्त धन स्वामी की भांति देते ही जाते हो। ऐश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥३॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

पदार्थः - हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (**इमम्**) इस (**यम्**) जिस (**वृषाकपिम्**) जीवात्मा की तू (**अभि रक्षसि**) सब प्रकार से रक्षा करता हैं (**अस्य**) इसके (**कर्णे**) इन्द्रिय गण पर (**वराहयुः**) वराह को चाहने वाला (**श्वा**) कुत्ता के सदृश लोभ (**जम्भिषत्**) कब्जा कर लेता है, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य वाला प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः--हे ऐश्वर्यशालिन् प्रभो ! इस जिस जीवात्मा की तू सब प्रकार से रक्षा करता है इसके इन्द्रिय गण पर वराह को चाहने वाले कुत्ते के समान लोभ ने प्रभाव कर रखा है। प्रभो उसे हटा। परमैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

पदार्थः -कपि के समान (**कपिः**) जीव (**मे**) इस प्रकृति के (**तष्टानि**) बने (**व्यक्ता**) व्यक्त पदार्थों को (**वि अदूदुषत्**) अपनी भोग तृष्णा से दूषित करता है (**अस्य**) इसके (**शिरः**) शिर को **राविषम्**) यह प्रकृति झुका देती है, (**दुष्कृतम्**) दुष्कर्मी पुरुष के लिए (**सुगम्**) यह प्रकृति सुज्ञेय एवं सुखकारी (**न भूवम्**) नहीं होती है (**इन्द्रः**) सर्वेश्र्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः- कपि के समान यह जीवात्मा इस प्रकृति के बने व्यक्त पदार्थों को अपनी भोग तृष्णा से दूषित करता है। यह प्रकृति इसके शिर को झुका देती हैं और इसे भोगी एवं दुष्कर्मी पुरुष के लिए सुज्ञेय और सुखकर नहीं होती है। सर्वैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥५॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

पदार्थः—(**मत्**) इस प्रकृति की अपेक्षा (**स्त्री**) कोई स्त्री (**सुभसत्तरा**) कान्तिवाली (**न**) नहीं (**सुयाशुतरा**) शीघ्र संग करने वाली (**भुवत्**) है (**न**) न तो (**मत्**) इससे अधिक (**प्रतिच्यवीयसी**) पति के पास अधिक जाने वाली और (**न**) नहीं (**सक्थि**) जांघ को (**उद्यमीयसी**) उठाकर आसक्त करने वाली है। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—इस प्रकृति की अपेक्षा अन्य कोई भी स्त्री न अधिक कान्तिवाली है, न शीघ्र संग करने वाली है, न पति के पास अधिक जाने वाली और आसक्ति करने वाली है, अर्थात् यह जीव को अपने भोगों में फसाने वाली है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥६॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

पदार्थः—(**उवे**) यह (**अम्ब**) जगत् की जननी प्रकृति (**अंग सुलाभिके**) यह अनेक उत्तम लाभों को देने वाली (**यथा इव**) जैसी कैसी भी (**भविष्यति**) हो (**मे**) मुझ जीव की (**अम्ब**) अम्ब हैं, (**मे**) मेरी प्रजनन इन्द्रिय, (**मे**) मेरी (**सक्थि**) जंघा, (**मे**) मेरा (**शिरः**) शिर उससे (**वि इव**) कोकिल पक्षी के समान (**हृष्यति**) हृष्ट होते हैं। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—यह प्रकृति जगत् की जननी, लाभकारिणी हैं और जैसी कैसी भी हो यह मुझ जीव की माता है। क्योंकि इसका सम्बन्ध इन्द्र=परमेश्वर से है। मेरी प्रजनन इन्द्रिय, जंघा, शिर आदि कोकिल पक्षी के समान विशेष रूप से इसी से पुष्ट होते हैं। परमैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥७॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

पदार्थ—(**सुबाहो**) उत्तम बाहुओं वाली, (**स्वङ्गुरे**) उत्तम अंगों वाली (**पृथुष्टो**) विशाल केशों वाली (**पृथुजाघने**) विशाल नितम्बवाली और (**शूरपत्नि**) शूर की पत्नी (**त्वम्**) यह प्रकृति (**नः**) हम सब जीवों के मध्य (**वृषाकपिम्**) मोक्ष के लिए यत्न करने वाले जीवात्मा को (**किम्**) क्यों (**अभ्यमीषि**) पीड़ित करती है, (**इन्द्रः**) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—उतम बाहुओं वाली, उत्तम अंगोंवाली, विशाल केशों वाली, विशाल नितम्बवाली, और शूर पत्नी यह प्रकृति जीवात्मा को क्यों पीड़ित करती है इसलिए कि वह इसके प्रति आसक्त है। सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥८॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

पदार्थः—(**शरारुः**) घातुक मृग की भांति (**अयम्**) यह (**वृषाकपिः**) जीवात्मा (**माम्**) इस (**अवीरामिव**) वन्ध्या के समान (**अभि मन्यते**) मानता है जब कि (**अहम्**) यह प्रकृति (**वीरिणी**) ससन्तति (**अस्मि**) है यह (**इन्द्रपत्नी**) परमेश्वर की पत्नी और (**मरुत्सखा**) अनेक मुक्त जीवों की सखी के समान है। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**सर्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—घातुक मृग के समान यह जीवात्मा इस प्रकृति को जड़ और वन्ध्या के समान मानता है जब कि यह परमेश्वर रूपी पुरुष की पत्नी सृष्टि का उपादान कारण और अनेक मुक्त जीवों की सखी के समान है। परमेश्वर सभी पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥९॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

पदार्थः—(**पुरा**) पूर्व समय में (**नारी**) नर=पुरुष परमेश्वर की पत्नी-भूत प्रकृति (**संहोत्रम्**) परमेश्वर प्रदत्त निमित्तत्व एवं बीज शक्ति को (**अवगच्छति**) प्राप्त होती है (**वा**) और (**समनम् स्म**) संसर्ग को प्राप्त करती है और (**ऋतस्य**) सृष्टि क्रम की (**वेधाः**) विधात्री, (**वीरिणी**) पदार्थों की उत्पादिका (**इन्द्र पत्नी**) पुरुष रूप परमेश्वर की पत्नी हुई (**महीयते**) महत्व को प्राप्त होती है।

भावार्थः—सृष्टि की प्रागवस्था में पुरुष=परमेश्वर की पत्नी परमेश्वर प्रदत्त बीज को ग्रहण करती है और संसर्ग को प्राप्त करती है। सृष्टि क्रम की विधात्री, जगत् के पदार्थों की उत्पादिका, परमेश्वर की पत्नी हुई महत्व को प्राप्त है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

पदार्थः—(**आसु**) इन सारी (**नारीषु**) नारियों में (**अहम्**) मैं (**इन्द्राणीम्**) प्रकृति को (**सुभगाम्**) अधिक ऐश्वर्यमयी (**अश्रवम्**) सुनता हूँ (**अपरम्-चन**) और (**अस्याः**) इसका (**पतिः**) पालक पति (**जरसा**) जीर्ण करने वाले काल से (**नहि**) नहीं (**मरते**) मरता है, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—इन विश्व में देखी जाने वाली नारियों में (इन्द्राणी)

इन्द्र=परमेश्वर की पत्नी प्रकृति को मैं खोजी जीव सबसे अधिक ऐश्वर्य-वाली सुनता और मानता हूं। सब को जीर्ण करने वाले काल से भी उस का पति नाश को नहीं प्राप्त होता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

पदार्थः – (**हे इन्द्राणि !**), हे प्रकृति शक्ते ! (**अहम्**) मैं इन्द्र=परमेश्वर (**सख्युः**) मित्र (**वृषाकपेः**) जीवात्मा के (**ऋते**) विना (**न**) नहीं (**ररण**) इस जगत् में रमता वा इसे व्यक्त करता (**यस्य**) जिस मुझ इन्द्र परमेश्वर का (**इदम्**) यह जगत् (**अप्यम्**) प्रकृति के परमाणुओं से बना हुआ, (**प्रियम्**) प्रिय और (**हविः**) भोग्य (**देवेषु**) इन्द्रियों में (**गच्छति**) व्याप्त होता है अथवा प्राप्त होता है। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—मैं परमेश्वर हे प्रकृति शक्ते ! मित्र जीव के विना इस जगत् में नहीं रमता। जीव लोग भी इस जगत् में अवश्य रहते हैं। मेरा यह जगत् परमाणुओं से बना हुआ है। जीवों का प्रिय एवं भोग्य हुआ उनकी इन्द्रियों से गृहीत होता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥

पदार्थः—(**रेवति**) ऐश्वर्यों से युक्त, (**सुपुत्रे**) उत्तम कार्य पदार्थों वाली, (**सुस्नुषे**) सुखदात्री (**वृषाकपायि**) जीवों के भोगों को देने वाली प्रकृति शक्ते ! (**प्रियम्**) प्रिय (**काचित्करम्**) सुख देने वाले (**ते** तेरे (**हविः**) भोग्य जगत् को (**आत् उ**) और (**उक्षणः**) सुख आदि के साधन शरीर आदि को (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर प्रलयकाल में (**घसत्**) खा जाता है। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान प्रभु (**विस्वस्मात्**) सब पदार्थो से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यमयि, सुखरात्रि, उत्तम कार्य पदार्थों स युक्त प्रकृतिशक्ते ! तेरा यह जीवों को प्रिय और उनको सुखदायी, उनके द्वारा भोग्य जगत् और शरीर आदि पदार्थ प्रलय काल में परमैश्वर्यवान् प्रभु के द्वारा खाया जाता है। अर्थात् प्रलीन कर दिया जाता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥

पदार्थः—(**पंचदश**) दश प्राण और पांचभूत ये पन्द्रह पदार्थ, (**मे**) मेरे द्वारा बनाये गये (**उक्षणः**) सुखों के वर्धक शरीरों के (**विंशतिम्**) २० अंगों को (**साकम् हि**) साथ ही (**पचन्ति**) पका कर पुष्ट करते हैं (**उत**) और (**मे**) मेरे द्वारा प्रदत्त शरीर के (**उभाकुक्षी**) दोनों पार्श्वों को (**पृणन्ति**) पूर्ण करते हैं। (**अहम्**) मैं (**पीव इव**) सर्वदा परिपुष्ट इस सबको प्रलयकाल में (**अद्मि**) अपने अन्दर समा लेता हूँ, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—दश प्राण और पंचभूत मुझ परमेश्वर द्वारा बनाये गए शरीरों के बीस अङ्गों को साथ ही परिपक्व करके पुष्ट करते हैं और मेरे द्वारा प्रदत्त दोनों पार्श्वों को भी परिपूर्ण करते हैं। मैं सर्वदा परिपुष्ट इन्द्र=परमेश्वर इन सबको प्रलयकाल में अपने अन्दर समेट लेता हूँ। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१४॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**तिग्मशृंगः**) तीक्ष्ण सींगों वाला (**वृषभः**) बैल (**यूथेषु**) यूथों के (**अन्तः**) अन्दर (**रोरुवत्**) शब्द करता है उसी प्रकार यह जीव शारीरिक यूथों में गर्जता है, हे (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**भावयुः**) भावनामय उपासक (**यम्**) जिसको (**ते**) तुम्हारी प्राप्ति के लिए (**सुनोति**) उत्पन्न करता है वह (ते) तेरी प्राप्ति का (**मन्थः**) ज्ञान (**हृदे**) उपासक के हृदय के लिए (**शम्**) कल्याणकारी हो, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः - जिस प्रकार तीक्ष्ण सींगों वाला बैल यूथों के अन्दर शब्द करता है वैसे ही यह जीव शरीरावयवों के यूथों में गरजाता है। भावनामय

उपासक जिसको तुम्हारी प्राप्ति के लिए उत्पन्न करता है वह तुम्हारी प्राप्ति के लिए तैयार (मन्थः) ज्ञान (हृदे) उपासक के हृदय के लिए है इन्द्र=परमेश्वर कल्याणकारी हो। परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१७॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥

पदार्थः -(**न**) नहीं (**सः**) वह जीव (**ईशे**) अपने इन्द्रिय आदि पर शासन वा वस कर सकता है (**यस्य**) जिसका (**कपृत**) प्रजनन इन्द्रिय निरन्तर (**सक्थ्याः**) स्त्री के जघनों के (**अन्तरा**) अन्दर (**रम्वते**) लटकता रहता है (**सः**) वह (**इत्**) ही (**ईशे**) वश में रखता है (**निषेदुषः**) सदा दृढ़ स्थिर (**यस्य**) जिसका (**रोमशम्**) प्रजनन इन्द्रिय (**विजृम्भते**) तेज से तमतमाता और स्थिर रहता है। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्माद्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः— वह मनुष्य वा जीव अपनी इन्द्रियां पर शासन और वश नहीं प्राप्त कर सकता है जो सदा स्त्री के साथ संभोग में ही लगा रहता है। हां वह वश में इन्द्रियों को कर सकता है जो ब्रह्मचर्य आदि तपों से अपनी इन्द्रिय को दृढ़ स्थिर रखता है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

पदार्थः -(**न**) नहीं (**सः**) वह (**ईशे**) समर्थ होता है पत्नी के साथ संभोग और सन्तति जनन में (**निषेदुषः**) सोये हुए (**यस्य**) जिस गृहस्थ का (**रोमशम्**) प्रजनन इन्द्रिय (**बिजृम्भते**) संभोग से पूर्व ही खुलकर रेतश्च्युत हो जाता है, (**स इत्**) वह ही इस कार्य में (**ईशे**) समर्थ होता है (**यस्य**) जिसका (**कपृत्**) प्रजनन इन्द्रिय (**सक्थ्या**) सक्थि के (**अन्तरा**) अन्दर (**रम्बते**) लम्बा और खड़ा होकर अन्दर तक पहुंचता है, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थ - पत्नी के संभोग और सन्ततिजनन में वह नहीं समर्थ होता है कि सोये हुए, जिसका इन्द्रिय संभोग से पूर्व क्षरितवीर्य हो जाता है। वह समर्थ होता है जिसका प्रजनन इन्द्रिय योनि के अन्दर लम्बा खड़ा अन्दर तक प्रविष्ट होता है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

पदार्थः -(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! (**अयम्**) यह (**वृषाकपिः**) जीव (**असिम्**) असि के समान अज्ञान के नाशक ज्ञान को (**सूनाम्**) इन्द्रियों के (**नवम्**) नवीन (**चरुम्**) रमणीय विकरणभाव को (**ऐधस्य**) प्रकाशमान अन्तःकरण की (**आचितम्**) पूर्ण (**अनः**) स्फूर्ति को प्राप्त करे (**आत्**) अनन्तर (**परस्वन्तम्**) अपने अन्दर विद्यमान परमात्मा को दूर समझने के भाव को (**हतम्**) मारा गया (**विदत्**) जाने।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! यह जीव असि के समान अज्ञान तिमिर के नाशक ज्ञान को, इन्द्रियों के नूतन विकरणभाव को, प्रकाशमान अन्तःकरण की स्फूर्ति को प्राप्त करे और तब उसके बाद परमेश्वर आत्मा में विद्यमान होता हुआ भी दूर है - इस भाव को हत=नष्ट जाने ॥१८॥

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

पदार्थ - (**विचिन्वन्**) ज्ञान और कर्म का चयन करता हुआ, (**विचाकशन्**) ज्ञान से प्रकाशमान होकर (**अयम्**) यह मैं जीव (**दासम्**) सब सुखों के दाता (**आर्यम्**) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को (**एमि**) प्राप्त करूँ, (**पाक सुत्वनः**) पवित्र उत्पन्न ज्ञान का (**पिबामि**) पान करूँ (**धीरम्**) उस धीर प्रभु का (**अभि अचाकशम्**) साक्षात्कार करूँ (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः— ज्ञान और कर्म का चयन करता हुआ ज्ञान से प्रकाशमान यह मैं जीव सब सुखों के दाता श्रेष्ठ परमेश्वर को प्राप्त करूँ। पवित्र उत्पन्न ज्ञान का पान करूँ। उस धीर प्रभु का साक्षात्कार करूँ। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१९॥

धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

पदार्थः—(**धन्व**) मरुप्रदेश (**च**) और (**कृन्तत्रम्**) अरण्य के समान हैं (ता) वे (**कति स्वित्**) कई (**योजना**) जीव के योग और वियोग वाले देह (**वृषाकपे**) हे जीव ! (**नेदीयसः**) सबके समीप विद्यमान परमेश्वर के (**अस्तम्**) शरण को (**आ इहि**) प्राप्त कर (**गृहान्**) और समय पर पुनः देह रूपी गृहों को (**वि एहि**) विशेष रूप से प्राप्त कर (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे जीव ! तेरे ये सभी देह मरुभूमि और अरण्य के समान हैं । सबके समीप रहने वाले भगवान् की शरण में आओ और मोक्ष प्राप्त कर सनय बीत जाने पर पुनः इन शरीररूपी गृहों को प्राप्त करो। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट हैं ॥२०॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एषः स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥

पदार्थः—हे (**वृषाकपे**) जीव ! तू (**पुनः**) फिर (**आ इहि**) शरीर में आता है मैं परमेश्वर और मेरी प्रकृति तेरे लिए (**सुविता**) शरीर और भोगों को (**कल्पयावहै**) बनाते हैं (**यः**) जो (**एषः**) यह (**स्वप्ननंशनः**) निद्रा को दूर करने वाला है उस (**पथा**) मार्ग से तू (**पुनः**) फिर (**अस्तम्**) मेरी शरण में (**एषि**) आता हो । (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे जीव ! तू मरणानन्तर पुनः शरीर में आता है। मैं परमेश्वर और मेरी यह प्रकृति दोनों ही तेरे लिए शरीर और भोगों को बनाते हैं। यह निद्रा और अज्ञान का नाश करने वाला जो मार्ग है उसके द्वारा तू फिर मेरी शरण को प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष का लाभ करता है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२१॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

पदार्थः—(**वृषाकपे इन्द्र**) हे सुखवर्षक और दुष्टों के कंपाने वाले प्रभो ! (**यत्**) जब (**उदञ्चः**) ऊर्ध्वगति वाले लोग (**गृहम्**) आप के मोक्ष धाम को (**अजगन्तन**) प्राप्त करते हैं तब (**स्यः**) यह बहुत विषयों को भोगने वाला (**मृगः**) मार्गणशील, (**जनयोपनः**) इन्द्रिय आदि को प्रसन्न करने वाला आत्मा (**क्व**) कहां पर (**कम्**) आनन्द को (**अगन्**) प्राप्त करता है (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे वृषाकपि इन्द्र=परमेश्वर ! जब उर्ध्वगति वाले लोग आप की शरण में पहुँच जाते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं तब उन सबकी आत्मा कहां पर आनन्द को प्राप्त करती है । अर्थात् वे सर्वत्र प्रभु में विचरती है । परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२२॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥

पदार्थः—हे (**भल**) उत्तम पुरुष ! (**पर्शुः**) परशु (**नाम**) नाम की (**मानवी**) मानव शरीर की निर्मात्री प्रकृति (**साकम्**) एक साथ ही (**विंशतिम्**) बीस अंगुलियों अथवा २० अङ्गों को (**ससूव**) उत्पन्न करती है (**त्यस्याः**) उसी का (**भद्रम्**) कल्याण (**अभूत्**) होता है (**यस्याः**) जिसका (**उदरम्**) उदर (**आमयत्**) पीड़ित होता है (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! पर्शु नाम की यह मानवों के शरीर की निर्मात्री प्रकृति एक साथ शरीर के २० अङ्गों को उत्पन्न करती है । उसी माता का कल्याण होता है जिसको प्रसब की पीड़ा होती है । परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२३॥

यह दशम मण्डल में छयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—८७

ऋषिः—१—२५ पायुः ॥ **देवता**—अग्नी रक्षोहा ॥ **छन्दः**—१, ८, १२, १७ त्रिष्टुप् । २, ३, २० विराट्त्रिष्टुप् । ४—७, ९—११, १८, १९ निचृत्त्रिष्टुप् । १३—१६ भुरिक्त्रिष्टुप् । २१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २२, २३ अनुष्टुप् । २४, २५ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—२१ धैवतः । २२—२५ गान्धारः॥

र॒क्षो॒हणं॑ वा॒जिन॒मा जि॑घर्मि मि॒त्रं प्रथि॑ष्ठ॒मुप॑ यामि॒ शर्म॑ ।
शिशा॑नो अ॒ग्निः क्रतु॑भिः॒ समि॑द्धः॒ स नो॒ दिवा॒ स रि॒षः पा॑तु॒ नक्त॑म् ॥

पदार्थः—(**रक्षोहणम्**) कृमि कीट आदि के हन्ता (**वाजिनम्**) बल वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**आ जिघर्मि**) घृत से आहुत करता हूं, (**मित्रम्**) यजमानों के मित्र (**प्रथिष्टम्**) विस्तृत होने वाले (**शर्म**) सुखदाता को (**उपयामि**) समीप रखता हूँ (**शिशानः**) तीक्ष्ण (**अग्निः**) अग्नि (**क्रतुभिः**) यज्ञ आदि कर्मों से (**समिद्धः**) अति दीप्त हो (**सः**) वह (**दिवा**) दिन में (**सः**) वह (**नक्तम्**) रात्रि मे (**नः**) हमे (**रिषः**) हिंसक जन्तुओं से (**पातु**) रक्षा करे ।

भावार्थः—रक्षः=कृमि कीट आदि का नाश करने वाले बलशाली अग्नि को घृत आदि से प्रज्वलित करता हूं । वह यजमानों का मित्र, बहुत विशाल और सुख का साधन है । उसे समीप रखता हूँ । तीक्ष्ण वह अग्नि यज्ञ आदि कर्मों से सदा अतिदीप्त हो । वह दिन में, वह रात्रि में हमें हिंसक जन्तुओं से बचावे ॥१॥

अयो॑दंष्ट्रो अ॒र्चिषा॑ यातु॒धाना॒नुप॑ स्पृश जातवेद॒ः समि॑द्धः ।
आ जि॒ह्वया॒ मूर॑देवान्रभस्व क्र॒व्यादो॑ वृ॒क्त्व्यपि॑ धत्स्वा॒सन् ॥२॥

पदार्थः—(**अयोदंष्ट्रः**) तीक्ष्ण और कर्त्तन से युक्त (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान और (**समिद्धः**) प्रदीप्त अग्नि (**अर्चिषा**) अपनी ज्वाला से (**यातुधानान्**) रोग के जन्तुओं को (**उपस्पृश**) जलाता है (**जिह्वया**) ज्वाला से (**क्रव्यादः**) कच्चे मास को खाने वाले जन्तुओं, कृमियों आदि को (**मूरदेवान्**) मारक व्यापार वालों को (**आ रभस्व**) चपेट में लेता है और (**वृक्त्वी**) छेदन करके (**आसन् अपि**) मुख में भी (**धत्स्व**) रख ।

भावार्थः—तीक्ष्ण कर्त्तनों से युक्त प्रदीप्त अग्नि अर्चि से रोगकारी जन्तुओं को मारता है । अपनी ज्वाला से कच्चे मांस को खाने वाले कृमियों आदि और मारक व्यापार वाले रोगाणुओं को चपेट में लेता है और छिन्न भिन्न करके अपने मुख में छिपा लेता है अर्थात् नष्ट कर देता है ॥२॥

उ॒भोभ॑यावि॒न्नुप॑ धेहि॒ दंष्ट्रा॑ हि॒स्रः शिशा॒नोऽव॑रं॒ परं॑ च ।
उ॒तान्तरि॑क्षे॒ परि॑ याहि राज॒ञ्जम्भैः॒ सं धे॑ह्य॒भि या॑तु॒धाना॑न् ॥३॥

पदार्थः—(**उभया विन्**) दोनों प्रकार की अर्थात् रचनात्मक और विध्वंसात्मक शक्तियों से युक्त, (**उभा**) दोनों (**दंष्ट्रा**) कर्तन शक्तियों से युक्त (**हिस्रः**) विनाश करने वाला, (**शिशानः**) तीक्ष्ण हुआ अग्नि (**अवरम्**) अबर (**च**) और (**परम्**) पर जगत् (**उपधेहि**) स्थापित करती है (**राजन्**) चमकता हुआ यह अग्नि (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**परि याहि**) सब तरह फैलता है (**उत**) और (**जम्भैः**) दाढों से (**यातुधानान्**) जन्तुओं को (**अभि सम् धेहि**) संयुक्त करता है ।

भावार्थः—रचनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों ही शक्तियों से युक्त अपनी दोनों प्रकार की कर्त्तन शक्तियों से संयुक्त विनाश करने वाला तीक्ष्ण हुआ यह अग्नि अवर और पर दोनों प्रकार के जगत् को स्थापित करता है । चमकता हुआ यह अग्नि अन्तरिक्ष में सब तरफ फैलता है और अपनी दाहक दाढ़ों में जन्तुओं को भस्म कर देता है ॥३॥

य॒ज्ञैरिषू॑ः स॒न्नम॑मानो अग्ने वा॒चा श॒ल्याँ अ॒शनि॑भिर्दिहा॒नः ।
ताभि॑र्विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न्प्रती॒चो बा॒हून्प्रति॑ भङ्ग्ध्येषाम् ॥४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यज्ञैः**) यज्ञों द्वारा (**वाचा**) मन्त्रों के साथ (**इषूः**) इषुओं को (**संनममानः**) अधीन करता हुआ (**शल्यान्**) इन बाणों को=शल्यों को (**अशनिभिः**) दीप्तियों से (**दिहानः**) तीक्ष्ण करता हुआ (**ताभिः**) उन इषुओं से (**यातुधानान्**) जन्तुओं को (**हृदये**) हृदयमें (**विध्य**) बींध (**एषाम्**) इनमें से (**प्रतीचः**) आक्रामक (**बाहून्**) बाहुओं को (**भङ्ग्धि**) तोड़ दे ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारे मंत्रपूर्वक किए गए यज्ञों द्वारा इषुओं

को अधीन करता हुआ इनके शल्यों को दीप्तियों से तीक्ष्ण करता हुआ जन्तुओं को हृदय में वींधता है और इनमें से आक्रमणकारी है उनके बाहुओं को भङ्ग कर देता है ।।४।।

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ।।५।।

पदार्थ—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यातुधानस्य**) जन्तुओं के (**त्वचम्**) चर्म को (**भिन्धि**) भेदन करता है और (**एनम्**) इस (**हिंस्रा**) हिंसन शील को इस की (**अशनिः**) दीप्ति (**हरसा**) ताप से (**हन्ति**) मारता है, (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि (**पर्वाणि**) गांठों और जोड़ों को (**प्रशृणीहि**) छिन्न भिन्न करता है (**क्रविष्णुः**) मांस को चाहने वाला (**क्रव्याद्**) वृक (**वृक्णम्**) छिन्नसंधि इसको (**विचिनोतु**) खा जावे ।

भावार्थः—यह अग्नि इन जन्तुओं के चर्म को भेदन करता है और इस हिंसनशील को अपनी दीप्ति के ताप से मारता है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि इसके जोडों को छिन्न भिन्न करता है और मांस को चाहने वाला वृक इस छिन्न संधि को खा जावे ।।५।।

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ।।६।।

पदार्थः—(**जातवेदः अग्ने**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि (**यत्र**) जहां पर भी (**तिष्ठन्तम्**) स्थित हुआ, (**उत वा**) अथवा (**चरन्तम्**) घूमता हुआ (**यद् वा**) चाहे (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**पथिभिः**) मार्गों से (**पतन्तम्**) जाता हुआ यातुधान=दुखदायक जन्तु (**इदानीम्**) सम्प्रति (**पश्यसि**) दीखे (**तम्**) उसको (**अस्ता**) प्रक्षेपक (**शिशानः**) तीक्ष्य होता हुआ (**शर्वा**) ज्वालामय शर से (**विध्य**) भेदन कर देता है ।

भावार्थः—प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि तीक्ष्ण होकर और प्रक्षेपक होकर जहां भी बैठा, चलता फिरता अथवा अन्तरिक्ष में मार्गों से जाता हुआ दुःखदायक जन्तु दीखे, उसे अपनी तेजःशक्ति से मार देता है ।।६।।

उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ।।७।।

पदार्थः—(**जातवेदः अग्ने**) यह जातवेदा अग्नि (**आलेभानात्**) पकड़ने वाले (**यातुधानात्**) हानिकारक जन्तु से (**आलब्धम्**) पकड़े गए हुए को (**ऋष्टिभिः**) अपने चमकदार हिंसक तेजों से (**स्पृणुहि**) रक्षा करता है, (**उत**) और (**पूर्वः**) पूर्ण (**शोशुचानः**) तीक्ष्ण यह अग्नि (**आमादः**) कच्चा मांस खाने वाले इन जन्तुओं को (**निजहि**) मार देता है और (**तम्**) उस मरे हुए को (**एनी**) वेग से उड़ने वाली (**क्ष्विङ्काः**) चीलें (**अदन्तु**) खा जाती हैं ।

भावार्थः—यह जातवेदा अग्नि पकड़ने वाले हानिकारक जन्तुओं से पकड़े गए हुए को अपने चमकदार हिंसक तेजों से रक्षा करता है और पूर्ण तीक्ष्ण वह अग्नि इन कच्चे मांस खाने वालों को मारता है तथा वेग से दौड़ने वाली चीलें इस मरे हुए को खा जाती हैं ।।७।।

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ।।८।।

पदार्थः—(**यः**) जो (**यातुधानः**) पीड़ा देने वाला जन्तु हैं, (**यः**) जो (**इदम्**) विघ्नकारक कर्म को (**कृणोति**) करता है, (**यतमः**) जो भी है (**सः**) वह, (**इह**) यहां (**प्रब्रूहि**) प्रकट करता है (**तम्**) उसको (**यविष्ठ अग्ने**) यह यष्टव्य अग्नि (**समिधा**) दीप्त तेज से (**आरभस्व**) जलाता है और (**नृचक्षसः**) मनुष्यों को दिखाने के साधन भूत इस अग्नि के (**चक्षुषे**) तेज से (**एनम्**) इस को (**रन्धय**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जो पीड़ा देने वाला जन्तु है, जो विघ्नकारी कार्य करता है, जो भी इस प्रकार का है, उसको यह अग्नि प्रकट कर देता है। अपने तेज से उसे जलाता है और नष्ट कर देता है ।।८।।

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ।।९।।

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**तीक्ष्णेन**) तीक्ष्ण (**चक्षुषा**) तेज से (**प्राञ्चम्**) उत्कृष्ट (**यज्ञम्**) यज्ञ की (**रक्ष**) रक्षा करता है और (**वसुभ्यः**)

धनैश्वर्यों के लिए (प्र णय) इसको ले चलता वा बढ़ाता है, यह (**प्रचेतः**) प्रकृष्ट चिन्तन के योग्य, (**नृचक्षः**) मनुष्यों की दृष्टि का कारण है (**हिंस्रम**) हिंसा करने वाले (**रक्षांसि**) रोग जन्तुओं को (**अपि**) लक्ष्य करके (**शोशुचानम्**) प्रदीप्त (त्वा) इस अग्नि को (**यातुधानाः**) पीड़ाकारक प्राणी (**मा**) नहीं (दभन्) दबा पाते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि चिन्तन का विषय है और मनुष्यों के देखने का साधन है । यह उत्कृष्ट यज्ञ की रक्षा करता है और धनादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए उसे आगे बढ़ाता है । यह हिंसक जन्तुओं को दबाता है और इसे कोई पीड़ा देने वाला प्राणी नहीं दबा सकता है ॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

पदार्थः—(**नृचक्षाः अग्ने**) मनुष्यों की बृष्टि का साधन यह अग्नि (**विक्षु**) प्रजाओं में (**रक्षः**) इस रोग के जन्तु को (**परिपश्य**) प्राप्त करता है (**तस्य**) उसके (**त्रीणि**) तीन (**अग्रा**) शिरों वा मुखों को (**प्रति शृणीहि**) छेदन कर देता है, (**तस्य**) उसके (**पृष्टीः**) पार्श्ववर्त्तियों को भी (**हरसा**) अपने तेज से (**शृणीहि**) छिन्न करता है और इस प्रकार से (**त्रेधा**) तीन तरह से (**यातुधानस्य**) इस पीड़ाकारी जीवों के (**मूलम्**) मूल को (**वृश्च**) काट देता है ।

भावार्थः—मनुष्यों की दृष्टि का साधन यह अग्नि प्रजाओं में इन रोग जन्तुओं को प्राप्त कर इनके तीन शिरों को काट देता है इनके साथियों को भी नष्ट करता है और इस प्रकार इनके मूल को तीन प्रकार से काटता है । रोगकारी जन्तु तीन शिरों वा तीन डंकों वाले होते हैं । उन्हें यह नष्ट कर देता है ॥१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११॥

पदार्थः—(**यातुधानः**) पीड़ाकारी जन्तु (**यः**) जो (**ऋतम्**) शरीर में नियम से चल रहे नियमित कार्य को (**अनृतेन**) अपने डसने आदि अनियमित व्यवहार से (**हन्ति**) नष्ट करता है (**अग्ने ते**) इस अग्नि के (**त्रिः**) तीन (**प्रसितिम्**) बन्धन को (**एतु**) प्राप्त हो, (**तम् एनम्**) उस इसको (**जातवेदः**) यह अग्नि (**अर्चिषा**) अपने तेज से (**स्फूर्जयन्**) पीसता हुआ (**गृणते**) प्रार्थना करते यजमान के (**समक्षम्**) सामने ही (**निवृङ्धि**) काट डालता है ।

भावार्थः—जो शरीरादि में चलते सत्य नियम को अपने काटने, डसने और रोगी करने के अनृत व्यवहार से नष्ट करता है ऐसा पीड़ाकारी रोगजन्तु अग्नि के बन्धन को तीन प्रकार (पकड़ना, जलाना और नष्ट कर देना,) से प्राप्त होता है । यह अग्नि उसको पीसता हुआ यजमान आदि के सामने ही नष्ट करता है ॥११॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥१२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**येन**) जिस तेज से (**शफारुजम्**) खुर के समान नखों वा दंशों [**डंक**] से पीड़ा देने वाले (**यातुधानम्**) पीड़ाकारी जन्तु को (**पश्यसि**) पाता है (**तत्**) उस (**चक्षुः**) तेज को (**रेभे**) शब्द करते हुए रोग जन्तु पर (**प्रति धेहि**) फेंकता है और (**सत्यम्**) शरीर आदि के सत्य नियम को (**धूर्वन्तम्**) बाधा करते हुए (**अचितम्**) थोड़ा भी ख्याल न करने वाले इसको (**दैव्येन**) द्युलोक में होने वाले (**ज्योतिषा**) प्रकाश अर्थात् सूर्य किरण वा अशनि से (**अथर्ववत्**) प्रज्वलित अग्नि के समान (**न्योष**) जला देता है ।

भावार्थः—जिस तेज से अग्नि डंकों से दशने वाले रोग जन्तुओं को प्राप्त करता है उसी को इन पर फेंकता है । इन शरीर के सत्य नियमों का विघात करने वाले जन्तुओं को सूर्य की किरणों अथवा अशनि से अथर्ववत्=महा--प्रज्वलित अग्नि के समान जला देता है ॥१२॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१३

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यातुधानान्**) पीड़ाकारी जन्तुओं को (**हृदये**) हृदय में (**विध्य**) बींधता है (**तया**) उस (**शरव्या**) इषु से (**या**) जो (**यत्**) जब (**अद्य**) अभी (**मिथुना**) दो स्त्री पुरुष (**शपातः**) परस्पर आक्षेप करते हैं और (**यत्**) जब (**रेभाः**) स्तावक लोग (**वाचः**) वाणी की (**तृष्टम्**) कटुता को पैदा करते हैं तब (**मन्योः**) क्रुद्ध (**मनसः**) मन से (**जायते**) उत्पन्न होती है ।

भावार्थः यह अग्नि पीड़ाकारी जन्तुओं को उनके हृदय में उस तेजोवाण से बींधता है जो कि परस्पर झगड़ते स्त्री पुरुष के वस्तुतः कटुता का व्यवहार करते हुए स्तोताओं के क्रुद्ध मन से उत्पन्न होता है और अर्थात् क्रोधाग्नि के समान तेज से मारता है ॥१३॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥१४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**अभि शोशुचानः**) तीक्ष्ण होता हुआ (तपसा) ताप से (**यातुधानान्**) पीड़ाकारक जन्तुओं को (**परा शृणीहि**) मारता है (रक्षः) रोगकारक कृमि को (**हरसा**) उष्णता से (**परा शृणीहि**) मारता है (**मूरदेवान्**) मारक व्यापार वाले घातक रोगाणुओं को (**अर्चिषा**) अपने तेज से (पराशृणीहि) मारता है और (**असुतृपः**) प्राणों से तृप्त होने वाले क्रिमियों को (परा **शृणीहि**) मारता है ।

भावार्थः—यह अग्नि तीक्ष्ण होकर ताप से पीड़ाकारक जन्तुओं को मारता है, रोग कारक जन्तु को उष्णता से मारता है, घातक रोगाणुओं को तेज से मारता है और लोगों के प्राणों से तृप्त होने वाले जन्तुओं को भी नष्ट करता है ॥१४॥

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१५॥

पदार्थः—(**अद्य**) आज ही (**देवाः**) दिव्य शक्तियें अथवा किरणें (वृजिनम्) प्राणियों को प्राणों से वर्जित करने वाले पीड़ाकारी जन्तु को (परा शृणन्तु) मार दें, (**तृष्टाः**) कटुतापूर्ण (**शपथाः**) सभी प्राणियों के आक्रोश भी (**एनम्**) इसको (**प्रत्यक्**) भली प्रकार (**यन्तु**) चिपट जावें, (**वाचस्तेनम्**) अपनी वाणी का दुरुपयोग करने वाले इस जन्तु को (**शरवः**) वाण (**मर्मन्**) मर्म में (**ऋच्छन्तु**) घुस जावें, यह (**यातुधानः**) पीड़ाकारी जन्तु (**विश्वस्य**) व्याप्त अग्नि के (**प्रसितिम्**) जाल को (**एतु**) प्राप्त हो अर्थात् जाल में फंसें ।

भावार्थः- तत्काल ही दिव्य शक्तियें प्राणियों के प्राण से जुदा करने वाले इस पीड़ाकारी जन्तु को मार दें, कटुता पूर्ण प्राणियों के आक्रोश भी

इन्हें चिपटें, अपने डंक आदि का दुरुपयोग करने वाले इसके मर्म में वाण भी घुसें और इस प्रकार यह पीड़ाकारक जन्तु व्याप्त अग्नि के जाल में फंसें ॥१५॥

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**यातुधानः**) पीड़ाकारक जन्तु (**पौरुषेयेण**) पुरुष-सम्बन्धी (**क्रविषा**) मांस से अपने को (**समंक्ते**) संगत करता है, (**यः**) जो (**पशुना**) (**अश्व्येन**) अश्वसम्बन्धी मांस से अपने को संगत करता है और जो पशु से अपने को संगत करता है, (**यः**) जो (**अघ्न्यायाः**) गाय के (**क्षीरम्**) दुग्ध को ही (**भरति**) हर लेता है (**अग्ने**) यह अग्नि अथवा राजा (**तेषाम्**) उनके (**शीर्षाणि**) शिरों को (**हरसा अपि**) तेज से (**वृश्च**) काट दे ।

भावार्थः—जो पीड़ाकारक जन्तु पुरुष सम्बन्धी, घोड़े सम्बन्धी तथा अन्य पशुओं सम्बन्धी मांस को खाता है और जो गाय के दूध को हरण कर लेता है अग्नि उसके शिर को तेज से काट दे ॥१६॥

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥१७॥

पदार्थः—(**नृचक्षः**) हे मनुष्यों क कर्मों को देखने वाले (**अग्ने**) राजन् ! (उस्रियायाः) गाय का (**यत्**) जो (**संवत्सरीणम्**) संवत्सर में होने वाला (पयः) दुग्ध है (**तस्य**) उसको (**यातुधानः**) पीड़ाकारक जन्तु (**मा**) नहीं (**आशीत्**) खाने पावे (**यतमः**) उनमें जो कोई भी (**पीयूषम्**) पीयूष सदृश दुग्ध से (**तितृप्सात्**) अपने को तृप्त करने की इच्छा करे (**तम्**) उस (**प्रत्यञ्चम्**) विरोध में आने वाले को (**अर्चिषा**) तेज से (**मर्मन्**) मर्म में (**विध्य**) भेदन कर ।

भावार्थः—हे राजन् ! गाय के वर्ष में होने वाला जो दुग्ध हैं उसको पीड़ाकारी जन्तु न खाने पावे । यदि कोई भी उस दुग्ध को खाने की इच्छा करता है तो उसे अपने तेज से मर्म में भेदन कर दे ॥१७॥

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१८॥

पदार्थः—(**यातुधानाः**) ये पीड़ाकारी जन्तु (**गवाम्**) गौओं के गृह में रखे हुए (**विषम्**) विष को (**पिबन्तु**) पीवें (**अदितये**) गौ के लिए (**दुरेवाः**) दुख देने वाले ये जन्तु (**वृश्च्यन्ताम्**) काटे जावें, (**देवः**) देव (**सविता**) सूर्य (**एनान्**) इनको (**परा ददातु**) दूर रखें, (**ओषधीनाम्**) ओषधियों के (**भागम्**) भाग को (**परा जयन्ताम्**) अपने से दूर पावें ।

भावार्थः - ये पीड़ाकारी जन्तु गायों के गृहों में रखे विष को पीवें, गौ के लिए दुःखकारी ये काटे जावें, सविता देव इनको सदा दूर भगावें और ओषधियों का भाग भी इन्हें न प्राप्त हो ॥१८॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१९॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यातुधानान्**) इन पीड़ाकारक जन्तुओं को (**सनाद्**) सदा (**मृणसि**) मारता है, ये (**रक्षांसि**) रोगकारी जन्तु (**त्वा**) इस अग्नि को (**पृतनासु**) संग्रामों में (**न**) नहीं (**जिग्युः**) जीत सकते हैं यह (**क्रव्यादः**) इन कच्चे मांस को खाने वालों को (**सहमूरान्**) समूल (**अनु दह**) जलाता है (**ते**) इसके (**दैव्यायाः**) दैव्य (**हेत्याः**) आयुध=विद्युत् से (**मा**) नहीं (**मुक्षत**) बचते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि सदा से इन पीड़ाकारी जन्तुओं को नष्ट करता है, इसके ये रोगकारी जन्तु कभी भी संग्रामों में नहीं जीत सकते हैं, इन कच्चे मांस खाने वालों को वह अग्नि समूल नष्ट करता है और इस अग्नि के दैव्य आयुध=अशनि से ये कोई भी नहीं बचते हैं ॥१९॥

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥२०॥

पदार्थः—(**त्वम् अग्ने**) यह अग्नि (**नः**) हमारी (**अधरात्**) दक्षिण से (**उदक्तात्**) उत्तर से (**त्वम्**) यह (**पश्चात्**) पीछे से (**उत**) और (**पुरस्तात्**) आगे से (**रक्ष**) रक्षा करता है (**ते**) इस अग्नि के सम्बन्ध के (**ते**) वे (**तपिष्ठाः**) अत्यन्त तप्त (**अजरासः**) अजर (**शोशुचतः**) जलती हुई रश्मियां (**अघशंसम्**) इन पापियों को (**प्रतिदहन्तु**) जलाकर नष्ट करतीं हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारी दक्षिण, उत्तर, पीछे और आगे से रक्षा करता है । इसकी अति दाहक अजर जलती हुई रश्मियां इन सब पापी जन्तुओं को जलाकर नष्ट करती हैं ॥२०॥

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२१॥

पदार्थः –(**राजन्**) प्रकाशमान (**कविः**) क्रान्त दर्शन अग्नि (**पश्चात्**) पीछे (**पुरस्तात्**) आगे, (**अधरात्**) दक्षिण और (**उदक्तात्**) उत्तर से (**नः**) हमारी (**काव्येन**) अपने कार्य से (**परि पाहि**) रक्षा करता है (**सखे**) सखाभूत (**अजरः**) अजर यह मुझ (**सखायम्**) सखा को (**जरिम्णे**) जरा के लिए करता है, (**अग्ने त्वम्**) यह अग्नि (**अमर्त्यः**) अमर्त्य हुआ (**नः**) हम (**मर्तान्**) मरण धर्मा लोगों को जरा के लिए करता है ।

भावार्थः—यह प्रकाशमान क्रान्तदर्शन अग्नि हमारी दक्षिण, उत्तर, पीछे आगे से अपने कार्य द्वारा रक्षा करता है । यह अजर, अमर हमारा सखा होकर हम मरण धर्मा लोगों को जरा के लिए योग्य बनाता है अर्थात् लम्बी आयु देता है ॥२१॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२२॥

पदार्थः—(**वयम्**) हम (**सहस्य**) बलशाली, (**विप्रम्**) श्रेष्ठ (**पुरम्**) पूरक (**धृषद्वर्णम्**) धर्षकरूप (**भंगुरावताम्**) उल्टे चाल वाले इन रोगाणुओं के (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**हन्तारम्**) हन्ता (**त्वा**) इस (**अग्ने**) अग्नि को (**परि धीमहि**) धारण करते हैं ।

भावार्थः—हम बलशाली, श्रेष्ठ, पूरक, धर्षकरूप, टेढ़ीचाल वाले जन्तुओं के सदा विनाशक इस अग्नि को अपने ज्ञान और प्रयोग में धारण करते हैं ॥२२॥

विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥२३॥

पदार्थः –(**अग्ने**) यह अग्नि (**विषेण**) व्यापक (**तिग्मेन**) तीक्ष्ण (**शोचिषा**) तेज से तथा (**तपुरग्राभिः**) तपनशील अग्रवाली (**ऋष्टिभिः**)

ज्वालाओं से (भंगुरावतः) टेढी चाल वाले (रक्षसः) जन्तुओं को (प्रति दह स्म) जला देता है ।

भावार्थः—यह अग्नि व्यापक, तीक्ष्ण तेज और तपनशील है अग्नि जिसके ऐसी ज्वालाओं से (भंगुरावतः) टेढ़ी चाल वाले इन जन्तुओं का दहन करता है ॥२३॥

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः ॥२४॥

पदार्थः—(**विप्र अग्ने**) यह श्रेष्ठ अग्नि (**मिथुना**) मिथुन हुए (**किमीदिना**) वंचक (**यातुधाना**) पीड़ादायक जन्तुओं को (**प्रति दह**) दग्ध करता है, मैं (**मन्मभिः**) मननीय प्रशंसा वचनों से (**त्वा**) इस (**अदब्धम्**) न दवाये जाने वाले की (**संशिशामि**) प्रशंसा करता हूं, (**जागृहि**) यह जागृत होवे ।

भावार्थः—यह श्रेष्ठ अग्नि मिथुन हुए, वंचक पीड़ादायक जन्तुओं को दग्ध करता है । मैं मननीय प्रशंसा वचनों से इस अदम्य अग्नि की प्रशंसा करता हूं ॥२४॥

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥२५॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**हरसा**) अपने तेज से (**विश्वतः**) सब तरफ से इन जन्तुओं के (**हरः**) हरणशील बल को (**प्रति शृणीहि**) नष्ट करता है, तथा (रक्षसः) रोगाणु (**यातुधानस्य**) पीड़ादायक जन्तु के (**बलम्**) बल और (**वीर्यम्**) वीर्य को (**विरुज**) भंग करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि अपने तेज से सब तरफ से इन जन्तुओं के हरणशील बल को नष्ट करता है और रोगाणु तथा पीड़ादायक जन्तुओं के बल वीर्य को भङ्ग करता है ॥२५॥

यह दशम मण्डल में सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—८८

ऋषिः—१—१९मूर्धन्वानांगिरसो वामदेव्यो वा ॥ देवते—सूर्यवैश्वानरौ ॥
छन्दः—१—४, ७, १५, १९ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ८ त्रिष्टुप् । ६,
९—१४, १६, १७, निचृत्त्रिष्टुप् । १८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१॥

पदार्थः—(**पान्तम्**) पीने योग्य (**अजरम्**) जरारहित (**जुष्टम्**) देवों की प्रिय (**स्वर्विदि**) सूर्य को प्राप्त (**दिविस्पृशि**) द्युलोक को भी स्पर्श करने वाले (**अग्नौ**) अग्नि में (**आहुतम्**) अभिहुत जो (**हविः**) हवि है (**तस्य**) उस (**भर्मणे**) भरण (**भुवनाय**) भावन और (**धर्मणे**) धारण के लिए (**देवाः**) विद्वान् लोग (**कम्**) सुखकर अग्नि को (**स्वधया**) अन्न से (**पप्रथन्त**) विस्तृत करते हैं ।

भावार्थः—ग्रहणीय, अक्षुण्ण, प्रिय और सूर्य को प्राप्त तथा द्युलोक को स्पर्श करने वाले अग्नि में डाली गई जो हवि है उसके पालन, भावन और धारण के लिए विद्वज्जन सुखकर अग्नि को विस्तारित करते हैं । अर्थात् यज्ञ द्वारा बढ़ाते हैं ॥१॥

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥२॥

पदार्थ—सृष्टि के पूर्व प्रलय काल में (**गीर्णम्**) निगीर्ण [कारण में निगला हुआ] (तमसा) अन्धकार अथवा (**तमसा**) प्रकृति से (**गूढम्**) आच्छादित (**स्वः**)सारा (भुवनम्) जगत् (**अग्नौ**) ऊष्मा के (**जाते**) उत्पन्न होने पर (**आविः अभवत्**) प्रकट होता है, (**तस्य**) उस (**अस्य**) इस अग्नि=गर्मी वा ताप के (**सख्ये**) सहयोग में (देवाः) इन्द्र आदि देव, (**पृथिवी**) पृथिवी, (**द्यौः**) द्युलोक (**उत**) और (**आपः**) जलें और अन्तरिक्ष तथा (**ओषधीः**) ओषधियें (**अरणयन्**) खेलती वा प्रकट होती हैं ।

भावार्थः—सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में समस्त जगत् अपने कारण में निगला गया हुआ प्रलयान्धकार अथवा प्रकृति से ढका रहता है । ताप के प्रकट होने पर वह प्रादुर्भूत होता है । तथा इस ताप के सहकार्य से इन्द्र

आदि देव, पृथिवी, (द्यौः) द्युलोक, जलें और अन्तरिक्ष तथा ओषधियें आदि उत्पन्न होते हैं ॥२॥

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३॥

पदार्थः—(**यज्ञियेभिः**) यज्ञ करने वाले (**देवेभिः**) विद्वानों के द्वारा (**नु**) क्षिप्र (**इषितः**) प्रेरित मैं यजमान (**अजरम**) जरारहित (**बृहन्तम्**) महान् (**अग्निम**) वैश्वानर अग्नि की (**स्तोषाणि**) प्रशंसा करता हूँ (**यः**) जो (**भानुना**) अपने तेज से (**पृथिवीम्**) भूमि, (**उत**) और (**इमाम्**) इस (**द्याम्**) द्युलोक जो (**रोदसी**) रोदसी कहे जाते हैं तथा (**अन्तरिक्षं**) अन्तरिक्ष को (**आततान**) विस्तारित करता है।

भावार्थः- यज्ञकर्त्ता विद्वानों से प्रेरित मैं यजमान उस वैश्वानर अग्नि की प्रशंसा करता हूं जो अपने तेज से रोदसी कहे जाने वाले द्यु और पृथिवी लोक तथा अन्तरिक्ष को फैलाता है ॥३॥

यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं रथा जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥४॥

पदार्थः—(**देव जुष्टः**) यज्ञ देवों से सेवित (**यः**) जो वैश्वानर अग्नि (**प्रथमः**) मुख्य (**होता**) यज्ञ में हवि का ग्राहक (**अभूत**) होता हैं (**यम्**) जिस को (**वृणानाः**) यजमान लोग (**आज्येन**) घी से (**सम् आञ्जन्**) संयुक्त करते हैं (**सः**) वह (**जातवेदाः अग्निः**) वैंश्वानर अग्नि (**यत्**) जो (**पतत्रि**) उड़ने वाले पक्षी आदि, (**इत्वरम्**) जंगम (**स्थाः**) स्थावर (**जगत्**) जगत् है उसको (**श्वात्रम्**) शीघ्र (**अकृणोत्**) बनाता है।

भावार्थः—यज्ञ देवों से सेवित जो वैश्वानर अग्नि मुख्य होता=हवि का ग्रहण करने वाला होता है और जिसको यजमान लोग घी से प्रज्वलित करते हैं वह पक्षी आदि जंगम और स्थावर आदि जितना जगत् है उसको उत्पन्न करता है ॥४॥

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५॥

पदार्थः—(**यत्**) जो (**जातवेदः अग्ने**) वैंश्वानर अग्नि (**रोचनेन**) सूर्य के (**सह**) साथ (**भुवनस्य**) त्रिलोकी की (**मूर्धन्**) मूर्धा में (**प्रतिष्ठः**) स्थित है (**तम्**) उस (**त्वा**) इस अग्नि को हम (**मतिभिः**) मति, (**गीर्भिः**) वाणी (**उक्थैः**) प्रवचनों द्वारा (**अहेम**) प्राप्त करें वा जानें (**रोदसिप्राः**) द्यु और पृथिवी को अपने से पूरित करने वाला (**सः**) वह अग्नि (**यज्ञियः**) यज्ञार्ह (**अभवः**) होता है।

भावार्थः—जो जातवेदा एवं वैश्वानर अग्नि इस त्रिलोकी की मूर्धा में सूर्य के साथ स्थित है उस को हम बुद्धि वाणी=प्रशंसा और प्रवचनों से जानें। द्यु और पृथिवी को अपने तेज से पूरित करने वाला वह यज्ञार्ह होता हैं ॥५॥

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥६॥

पदार्थः—(**अग्निः**) यह वैश्वानर अग्नि (**नक्तम्**) रात्रि में (**भुवः**) भूतजात का (**मूर्धा**) मूर्धा स्थानी (**भवति**) होता है (**ततः**) फिर वह (**प्रातः**) प्रातःकाल (**उद्यन्**) उदित हुआ दिन में (**सूर्यः**) सूर्य (**जायते**) होता है, (**मायाम्-उ तु**) प्रज्ञा चातुर्य ही (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ संपादक देवों का इसे विद्वज्जन मानते हैं, (**यत्**) जो (**प्रजानन्**) प्रज्ञायमान (**तूर्णिः**) शीघ्रगति सर्य (**अपः**) अपने कर्म और अन्तरिक्ष आदि स्थानों में (**चरति**) विचरता है।

भावार्थः यह वैश्वानर अग्नि रात्रि में समस्त भूतजात की मूर्धा के समान होता है। प्रातः काल में उदित होता हुआ दिन में सूर्य रूप में होता है। विद्वान् इसे संसार रूपी यज्ञ के देवों का प्रज्ञाचातुर्य कहते हैं। सूर्य जो शीघ्रगति है और समस्त स्थानों को प्राप्त होता है वह अपने कर्मों और अन्तरिक्ष आदि स्थानों में विचरता है ॥६॥

दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो वैश्वानर अग्नि (**महिना**) महत्व से (**दृशेन्यः**) सबका दर्शनीय (**समिद्धः**) सम्यग् दीप्त, (**दिवियोनिः**) द्युस्थान में रहने वाला (**विभावा**) दीप्तिमान् हुआ (**अरोचत**) दीप्त होता हैं (**तस्मिन्**) उस (**अग्नौ**)

वैश्वानर अग्नि में (**तनूपाः**) शरीर के रक्षक (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) विद्वान् (**सूक्तवाकेन**) उत्तम वाक्य वाले मन्त्र से (**हविः**) हवि को (**आजुहवुः**) डालते हैं ।

भावार्थः—जो वैश्वानर अग्नि अपनी महिमा से सबका दर्शनीय सम्यग् दीप्त, द्यु स्थान में रहने वाला, दीप्तिमान होकर प्रकाशमान होता है उसमें समस्त विद्वान् लोग उत्तम वाक्य वाले मन्त्र से आहुति प्रदान करते हैं ॥७॥

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥८॥

पदार्थः—(**देवाः**) विद्वान् लोग (**सूक्तवाकम्**) उत्तम वाक्य वाले मन्त्र भाग को (**प्रथमम्**) पहले (**जनयन्त**) मन में उच्चारण करते हैं (**आत् इत्**) अनन्तर अग्नि को अरणियों से उत्पन्न करते हैं (**आत् इत्**) अनन्तर (**हविः**) आहुति (**अजनयन्त**) देते हैं (**सः**) वह अग्नि (**एषाम्**) इन देवों का (**यज्ञः**) यष्टव्य तथा (**तनूपाः**) शरीर का रक्षक होता है (**तम्**) उसको (**द्यौः**) द्यु=लोक (**वेद**) प्राप्त करता है (**तम्**) उसको (**पृथिवी**) पृथिवी लोक प्राप्त करता है (**तम्**) उसको (**आपः**) अन्तरिक्ष भी प्राप्त करता है !

भावार्थः—विद्वान् लोग उत्तम वाक्य वाले मन्त्र भाग को पहले मन में उच्चारण कर अग्नि को अरणियों से मथकर उत्पन्न करते हैं, और आहुति देते हैं। वह अग्नि इन विद्वानों का यष्टव्य है और शरीर का पालक है । उस हवि को ग्रहण करने वाले अग्नि को द्युलोक भी प्राप्त करता है, पृथिवी भी प्राप्त करती है और अन्तरिक्ष भी प्राप्त करना है। अर्थात् वह अग्नि इन सबको ही प्राप्त है ॥८॥

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥९॥

पदार्थः—(**देवासः**) विश्व की दिव्य शक्तियां (**यम्**) जिस (**अग्निम्**) अग्नि को (**अजनयन्त**) उत्पन्न करते हैं (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भूतग्राम को सर्वमेध सृष्टि यज्ञ में (**आ जुहवुः**) हवन कर देते हैं (**ऋजूयमानः**) ऋजुगति (**सः**) वह वैश्वानर अग्नि (**महित्वा**) महत्त्व से

(**अर्चिषा**) तेज से (**पृथिवीम्**) पृथिवी=अन्तरिक्ष को (**द्याम्**) द्युलोक को (**उत**) और (**इमाम्**) इस भूमि को (**अतपत्**) तपाता है ।

भावार्थः—विश्व की दिव्य शक्तियां जिस अग्नि को उत्पन्न करती हैं और जिसमें सृष्टि काल में सर्वमेध यज्ञ में समस्त भूतग्राम को आहुत करते हैं वह वैश्वानर अग्नि अपने तेज और महत्व से अन्तरिक्ष, द्यु और इस पृथिवी को तपाता है ॥९॥

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१०॥

पदार्थः—(**देवासः**) विश्व की दैवी शक्तियां (**स्तोमेन**) मत्र समूह के साथ (**दिवि**) द्युलोक में (**शक्तिभिः**) अपनी शक्तियों से (**रोदसिप्राम्**) द्यु और पृथिवी को पूरित करने वाले (**अग्निम्**) वैश्वानर अग्नि को **अजीजनन्**) उत्पन्न करते हैं, (**कम्**) सुखकर (**तम् उ हि**) उस ही को (**त्रेधा**) तीन प्रकार की (**भुवे**) होने के लिए (**अकृण्वन्**) करते हैं, (**सः**) वह (**विश्वरूपाः**) नाना प्रकार की (**ओषधीः**) ओषधियों को (**पचति**) पकाता है ।

भावार्थः—विश्व की दैवी शक्तियां मन्त्रसमूह के साथ आकाश में अपनी शक्तियों से द्यु और पृथिवी के पूरक अग्नि को उत्पन्न करती हैं । पुनः उसको पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में तीन प्रकार की करती हैं । वह अग्नि ही नाना प्रकार की ओषधियों को पकाता है ॥१०॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥११॥

पदार्थः—(**यदा**) जब (**इत्**) ही प्रातः वेला में (**यज्ञियासः**) यज्ञार्ह (**देवाः**) देव लोग (**दिवि**) आकाश में (**एनम्**) इस (**आदितेयम्**) प्रकाश के पुत्र सूर्य को (**अदधुः**) धारण करते हैं, (**यदा**) जब (**चरिष्णू**) चरणशील ये (**मिथुनौ**) सहचारी (**अभूताम्**) होते हैं अर्थात् उषा और सूर्य दोनों सहचारी होते हैं (**आत् इत्**) तब (**विश्वा**) सारे (**भुवना**) भूत समुदाय (**प्रापश्यन्**) इन दोनों को देखते हैं ।

भावार्थः—जब प्रातः काल में यज्ञार्ह देव आकाश में इस वैश्वानर अग्नि को प्रकाश के पुत्र सूर्य के रूप में धारण करते हैं और जब चरणशील

आदित्य और उषा सहचारी होते हैं तो समस्त प्राणी-समुदाय इन दोनों को देखता है ॥११॥

विश्वंस्मा अग्निं भुवंनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२॥

पदार्थः—(**देवाः**) विश्व की दिव्य शक्तियें (**विश्वस्मै**) समस्त (**भुवनाय**) जगत् के लिए (**वैश्वानरम्**) वैश्वानर अग्नि को (**अह्नाम्**) दिवसों का (**केतुम्**) प्रज्ञापक (**अकृण्वन्**) करती हैं (**यः**) जो वैश्वानर अग्नि (**विभातीः**) चमकती (**उषसः**) उषाओं को (**आततान**) विस्तारित करता है और (**यन्**) गति करता हुआ (**अर्चिषा**) ज्वाला से (**तमः**) अन्धकार को (**अप उ ऊर्णोति**) दूर भगाता है।

भावार्थः— विश्व की दिव्य शक्तियां समस्त जगत् के लिए वैश्वानर अग्नि को दिवसों का ज्ञापक करती हैं। यह वैश्वानर अग्नि चमकती उषाओं को विस्तारित करता है और गतिमान् हुआ अपनी ज्वाला से अन्धकार को दूर भगाता है ॥१२॥

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥१३॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शन (**यज्ञियासः**) यज्ञार्ह (**देवाः**) दिव्य पदार्थ (**अजुर्यम्**) जरारहित (**वैश्वानरम्**) वैश्वानर आदित्यरूपी (**अग्निम्**) अग्नि को (**अजनयन्**) उत्पन्न करते हैं वह उत्पादित आदित्य रूपी अग्नि (**नक्षत्रम्**) कृतिका आदि नक्षत्रों को (**प्रत्नम्**) पुराण (**चरिष्णु**) चरण शील (**यक्षस्य**) आकाश के (**अध्यक्षम्**) अध्यक्ष (**तविषम्**) बलशाली (**बृहन्तम्**) महान् हैं उनको (**अमिनत्**) तेज से अभिभूत करता है।

भावार्थः— क्रान्तदर्शन यज्ञार्ह दिव्यपदार्थ जरारहित वैश्वानर आदित्य रूपी अग्नि को उत्पन्न करते हैं। वह आदिरूपी अग्नि प्राचीन चरणशील आकाश के अध्यक्ष, बलशाली, महान् कृतिका आदि नक्षत्रों को अपने तेज से अभिभूत करता है ॥१३॥

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥१४॥

पदार्थः—हम (**मन्त्रैः**) वेद मन्त्रों से (**कविम्**) क्रांतदर्शन (**विश्वहा**) सदा (**दीदिवांसम्**) दीप्त (**वैश्वानरम्**) वैश्वानर (**अग्निम्**) अग्नि की (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**वदामः**) प्रशंसा करते हैं, (**यः**) जो (**महिम्ना**) महत्व से (**उर्वी**) द्यु और पृथिवी को (**परिबभूव**) परिभूत करता है (**उत**) और यह (**अवस्तात्**) नीचे तपता है (**उत**) और (**देवः**) सूर्यरूप देव (**परस्तात्**) ऊपर तपता है।

भावार्थः—हम वेदमन्त्रों से क्रान्तदर्शन, सदा प्रदीप्त वैश्वानर अग्नि की अच्छी प्रकार प्रशंसा करते हैं जो महत्व से द्यु और पृथिवी को परिभूत करता है और यह वैश्वानर अग्नि नीचे तपता है और सूर्य ऊपर तपता है ॥१४॥

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५॥

पदार्थः—(**द्वे**) दो (**स्रुती**) मार्गों को (**अशृणवम्**) सुनता हूं (**मर्त्यानाम्**) मरण धर्मा (**पितॄणाम्**) पितृ जनों का और मरणधर्मा (**देवानाम्**) विद्वानों का (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) सारा जगत् (**ताभ्याम्**) इन दोनों मार्गों से (**एजत्**) जाता हुआ (**समेति**) चलता है, (**यत्**) जिसके अन्तरा (**पितरम्**) पिता (**च**) और (**मातरम्**) माता को प्राप्त होता है।

भावार्थः मत्यधर्मा पितृगण और विद्वानों के मैं विद्वान् दो मार्ग सुनता हूं। एक पितृयाण है और दूसरा देवयान है। इसी के अनुसार सारा जगत् चलता है। इसमें पिता और माता भी प्राप्त होते हैं ॥१५॥

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ्विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः ॥१६॥

पदार्थः—(**समीची**) संगत हुए (**द्वे**) द्यु और पृथिवी दोनों (**चरन्तम्**) गति करते हुए (**शीर्षतः**) शिरःस्थानी आदित्य से (**जातम्**) उत्पन्न (**मनसा**) लोगों के मन से (**विमृष्टम्**) विचारे जाने वाले अग्नि को (**बिभृतः**) धारण करते हैं, (**तरणिः**) शीघ्रगति, (**भ्राजमानः**) दीप्तिमान् (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर अपने कार्य में लगा हुआ (**सः**) वह अग्नि (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवनों को (**प्रत्यङ्**) अभिमुख हुआ (**तस्थौ**) स्थित होता है।

भावार्थः- संगत हुए द्यु और पृथिवी लोक दोनों ही गतिवाले, शिरः-

स्थानीय आदित्य से उत्पन्न, लोगों के मन से विचारे जाने वाले अग्नि को धारण करते हैं। शीघ्रगति दीप्तिमान, निरन्तर कार्य में लगा यह अग्नि सभी लोकों के समक्ष स्थित होता है ॥१६॥

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७॥

पदार्थः (**यत्र**) जिस देवमण्डल में (**अवरः**) पार्थिव अग्नि (**च**) और (**परः**) मध्यम वायु (**वदेते**) विवाद करते हैं (**यज्ञन्योः**) यज्ञ के नेता (**नौ**) हम दोनों में (**कतरः**) कौन (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**विवेद**) अधिक वा विशेष रूप से जानता है, (**सखायः इव**) ऋत्विग् लोग (**सधमादम्**) यज्ञ को (**आशेकुः**) कर सकते हैं, और (**नक्षन्त**) अनुष्ठान करते हैं इनमें (**कः**) कौन (**इदम्**) इस निर्णय को (**विवोचत्**) बतावे ।

भावार्थः—यज्ञ के देवों के मण्डल में पार्थिव अग्नि और मध्यमस्थान अन्तरिक्षस्थ वायु परस्पर विवाद करते हैं कि उनमें से कौन यज्ञ को विशेष रूप से जानता है ? ऋत्विग् लोग यज्ञ कर सकते हैं और उसका अनुष्ठान करते हैं। इनमें से कौन इसका निर्णय बतावे। अर्थात् दोनों ही यथास्थान अपना महत्व रखते हैं ॥१७॥

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥१८॥

पदार्थः—(**अग्नयः**) अग्नियें (**कति**) कितनी हैं, (**सूर्यासः**) सूर्य (**कति**) कितने हैं (**उषासः**) उषायें (**कति**) कितनी हैं (**आपः**) जलें (**कति स्वित् उ**) कितने हैं ? (**पितरः**) हे पालक अनुभवी गुरुजनो (**वः**) आप से (**उपस्पिजम्**) स्पर्धावश (**न**) नहीं (**वदामि**) कहता हूँ हे (**कवयः**) क्रान्तदर्शियो (**कम्**) सुखपूर्वक (**विद्मने**) जानने के लिए (**वः**) आप से (**पृच्छामि**) पूछता हूं।

भावार्थः कितनी हैं अग्नियें, कितने हैं सूर्य, कितनी हैं उषायें और कितने हैं जलें ? हे अनुभवी गुरुओ यह सब स्पर्धावश मैं नहीं पूछता हूं अपितु हे क्रान्तदर्शियो सुखपूर्वक जानने के लिए यह पूछता हूं। यह जिज्ञासा किस प्रकार की जाती है इसका प्रकार बताया गया है ॥१८॥

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥१९॥

पदार्थः—(**न**) संप्रति (**यावन् मात्रम्**) जितने समय तक (**उषसः**) उषा की (**प्रतीकम्**) प्रतीति वा चिन्ह को (**सुपर्ण्यः**) रात्रियें (**वसते**) आच्छादित करती हैं (**मातरिश्वन्**) हे वायो ! (**तावत्**) तब तक (**अवरः**) यह निकृष्ट (**ब्राह्मणः**) होता अग्नि (**होतुः**) वैश्वानर अग्नि के (**निषीदन्**) कर्म को करता हुआ (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**आयन्**) प्राप्त करता हुआ (**उप दधाति**) होता के कर्म को करता है ।

भावार्थः—१७वें मन्त्र में उठाये गए प्रश्न का उत्तर देते हुए इस मन्त्र में बताया गया है कि जब तक रात्रि उषा के चिन्ह को छिपा रखती है तब तक यह अवर होता=पार्थिव अग्नि होता के कार्य को करता हुआ यज्ञ को प्राप्त हो यज्ञ के कार्य को करता है। अर्थात् सायं और रात्रिकालिक यज्ञ में वैश्वानर अग्नि की प्रधानता हैं ॥१९॥

यह दशम मण्डल में अट्ठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ८९

ऋषिः—१—१८ रेणुः ॥ **देवता**—१—४, ६—१८ **इन्द्रः** । ५ **इन्द्रा-**
सोमौ ॥ **छन्दः**—१, ४, ६, ७, ११, १२, १५, १८ **त्रिष्टुप्** । २
आर्चीत्रिष्टुप् । ३, ५, ९, १०, १४, १६, १७ निचृत्त्रिष्टुप् ।
८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । १३ **आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः— **धैवतः** ॥

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥१॥

पदार्थः— (**यस्य**) जिसकी (**मह्ना**) महिमा (**रोचना**) समस्त सूर्य आदि चमकने वाले पदार्थों के तेज को (**विबबाधे**) अभिभूत करती है (**विज्मः**) पृथिवी के (**अन्तान्**) पर्यन्त भागों तक अभिभूत करता है (**चर्षणीधृत**) मनुष्यमात्र

का पालक (**महित्वा**) महिमा से (**सिन्धुभ्यः**) समुद्रों (**प्ररिरिचान**) बढ़ा हुआ (**यः**) जो (**वरोभिः**) तमोवारक तेजों से (**आ पप्रौ**) आकाश आदि को पूर्ण करता है (**नृतमम्**) नेतृतम उस (**इन्द्रम्**) भगवान् की हे मनुष्य (**स्तव**) स्तुति कर।

भावार्थः - हे मनुष्य ! तू उस नेतृतम भगवान् की स्तुति कर जिसकी महिमा समस्त सूर्य आदि पदार्थों और पृथिवी की सीमाओं को भी अभिभूत करती है। अर्थात् वह अत्यन्त तेजस्वी और पृथिवी की सीमाओं से भी परे है। जो मनुष्यों का रक्षक और समुद्रों से भी बड़ा है और अपने तेज से द्युलोक और पृथिवी को भी पूरित करता है ॥१॥

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं१ न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥२॥

पदार्थ – (**सूर्यः**) सब का प्रेरक (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**रथ्या**) रथ सम्बन्धी (**चक्रा**) चक्के को (**इव**) सारथी के समान (**उरु**) बहुत (**वरांसि**) तेजों अर्थात् तेजस्वी सूर्य आदि पदार्थों को (**परि आववृत्यात**) चलाता एवं घुमाता है, (**न**) संप्रति सदा (**अतिष्ठन्तम्**) गतिशील (**अपस्यम्**) क्रियायुक्त (**सर्गम्**) सृष्टिचक्र को भी चलाता है, (**कृष्णा**) काले अज्ञानान्धकार को (**त्विष्या**) दीप्ति से (**जघान**) नष्ट करता है।

भावार्थः सब का प्रेरक परमेश्वर, रथ के चक्के को सारथी के समान, सूर्य आदि को चलाता और घुमाता है। वही सृष्टि चक्र को भी चलाता है और अपने ज्ञानप्रकाश से काले अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है ॥२॥

समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥३॥

पदार्थः— हे मनुष्य ! तू (**समानम्**) सदा एकरस (**अनपवृत**) सबके समीप विद्यमान (**क्ष्मया**) पृथिवी से (**दिवः**) द्युलोक से भी (**असमम्**) महान् (**नव्यम्**) सदा ही नवीन (**ब्रह्म**) महान् (**अस्मै**) इस प्रभु की (**अर्च**) अर्चना कर, (**यः**) जो (**इन्द्रः**) प्रभु (**अर्यः**) सब का स्वामी है (**पृष्ठा इव**) पृष्ठ स्तोत्रों की भांति (**जन्मानि**) लोगों के जन्मों को (**सखायम्**) अपने सखा जीव को

(**विचिकाय**) जानता है (**न ईषे**) किसी प्रकार किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता है।

भावार्थः - हे मनुष्य ! तू सदा एकरस, व्यापक होने से सबके समीपवर्ती पृथिवी और द्युलोक से भी महान्, सदा ही नवीन महान् इस प्रभु की स्तुति प्रार्थना कर जो सबका स्वामी है और अपने मित्र जीव को तथा इन जीवों और पदार्थों के जन्मों को जानता है तथा स्वयं किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता है ॥३॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥४॥

पदार्थः — मैं स्तावक (**सगरस्य**) अन्तरिक्ष (**बुध्नात**) प्रदेश से (**अनिशितसर्गाः**) अप्रतिहत गिरने वाली (**अपः**) जलों के समान (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिए (**गिरः**) स्तुतियों को (**प्र ईरयम्**) प्रेरित करता हूं, (**यः**) जो (**अक्षेण**) अक्ष से (**चक्रिया इव**) रथ के चक्र के समान (**शचीभिः**) अपने ज्ञान और क्रिया से (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) द्युलोक को (**विश्वक्**) सब तरफ से (**तस्तम्भ**) धारण करता है।

भावार्थः— मैं स्तावक अन्तरिक्ष से निरन्तर गिरने वाली वर्षा की जलधारा के समान स्तुतियों को परमेश्वर के प्रति निरन्तर प्रेरित करता हूं। वह प्रभु पृथिवी और द्युलोक को अपनी ज्ञानक्रियाओं से उसी प्रकार सब ओर से थांमे हुए हैं जिस प्रकार अक्ष = धुरा रथ के चक्कों को थांभ रखता है ॥४॥

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५॥

पदार्थः— (**आपान्तमन्युः**) न पातित तेजों वाला (**तृपलप्रभर्मा**) क्षिप्र प्रहार करने वाला (**धुनिः**) कंपा देने वाला, (**शिमीवान्**) कर्मवान् (**शरुमान्**) आयुध वाला (**ऋजीषी**) ऋजीष युक्त (**सोमः**) सोम पदार्थ (**विश्वानि**) समस्त (**अतसा**) काष्ठ आदि से युक्त (**वनानि**) अरण्यों को बढ़ाता है, (**प्रतिमानानि**) मापतोल के सभी मानदण्ड (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**न अर्वाक्**) न समक्ष (**देभुः**) आकृष्ट करते हैं।

भावार्थः—धृततेजाः शीघ्र प्रहार करने वाला, कंपाने वाला, कर्मकारी, आयुधवाला तरछट आदि से युक्त यह सोम=वायु काष्ठ आदि से युक्त सारे अरण्यों को बढ़ाता है । मापतोल का कोई भी मापदण्ड इन्द्र=विद्युत् को माप नहीं सकता है ॥५॥

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥६॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस इन्द्र = परमेश्वर के (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी भी माप नहीं है, (**न**) नहीं (**धन्व**) जल उसका प्रतिमान है, (**न**) न तो अन्तरिक्ष और (**न**) न (**अद्रयः**) पर्वत ही उसके प्रतिमान हैं (**सोमः**) सोम पदार्थ भी उसके अधीन ही (**अक्षाः**) क्षरित होकर पृथिवी आदि पर आता है (**यस्य**) जिसका (**मन्युः**) तेज (**यत्**) जब (**अधिनीयमानः**) सर्वोपरि विराजमान होकर कार्य करता है तब (**वीलु**) दृढ़ वस्तु को (**शृणाति**) शीर्ण करता है और (**स्थिराणि**) स्थिर को (**रुजति**) भेदन करता है ।

भावार्थः—वह परमेश्वर ऐसा है कि जिसका द्यु और पृथिवी प्रतिमान नहीं हैं और न जल अन्तरिक्ष और पर्वत आदि ही उसके मापक हैं। सोमरूपी अपस्तत्त्व भी उसी के अधीन होकर क्षरित होता है। उसका तेज इतना सर्वोपरि है कि वह दृढ वस्तु को शीर्ण और स्थिर को विदीर्ण करता है ॥३॥

जघानं वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
विभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र=सूर्य अथवा विद्युत् (**वृत्रम्**) मेघ को (**जघान**) मारता है, (**वना**) जंगलों को (**स्वधितिः**) कुठार के (**न**) समान (**पुरः**) मेघ की पुरी को (**रुरोज**) छिन्न भिन्न करता है (**सिन्धून्**) नदियों को (**न**) सम्प्रति (**अरदत्**) वृष्टि जल से खोदता है (**नवम्**) नवीन (**कुम्भम्**) घड़े के (**न**) समान (**गिरिम्**) मेघ को (**विभेद इत्**) भेदन करता है (**स्वयुग्भिः**) सहयोगी मरुतों के साथ (**गाः**) जलों को (**आ अकृणुत**) अभिमुख करता है ।

भावार्थः—इन्द्र=सूर्य अथवा विद्युत् मेघ को मारता है । जिस प्रकार कुठार जंगलों को काटता है उसी प्रकार वह मेघों की नगरियों को ध्वस्त करता है और नदियों को पानी से युक्त करता है । वह नये घड़े के समान मेघ को भेदन करता है और अपने सहयोगी मरुतों के साथ वर्षाजल को अभिमुख करता है ॥७॥

त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**त्वम्**) तू (**ह**) ही (**त्यत्**) उन परम धनों को (**ऋणयाः**) देने वाला है (**न**) जिस प्रकार (**असिः**) खड्ग (**पर्व**) पोर पोर को काटता है उसी प्रकार तू (**वृजिना**) अनेक पापों और बुराइयों को (**शृणासि**) काटता है । (**ये**) जो (**जनाः**) लोग (**मित्रस्य**) मित्र के (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पुरुष के (**धाम**) तेजस्वी कर्म (**युजम्**) सहयोगी (**मित्रम्**) मित्र को (**न**) संप्रति (**प्रमिनन्ति**) मारते हैं उनको भी आप (**शृणासि**) दण्ड देते हो ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू उन परम धनों का दाता है जो अत्यन्त लाभकर हैं, जिस प्रकार खड्ग पोर पोर को काटता है वैसे ही आप बुराइयों को काटते हो । जो लोग मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष के तेजस्वी कर्म और सहयोगी मित्र की हानि और हिंसा करते हैं उनको भी तू अपनी व्यवस्था से दण्ड देता है ॥८॥

प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र सङ्गिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य१मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्नं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९॥

पदार्थः—हे (**वृषन्**) शक्तिमन् (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् राजन् (**दुरेवाः**) दुष्ट गतिवाले (**ये**) जो जन (**मित्रम्**) सूर्यसम प्रकाशमान विद्वान् को (**प्रमिनन्ति**) मारते हैं (**अर्यमणम्**) न्यायकारी को (**प्र**) मारते हैं (**संगिरः**) स्तुति करने वाले मरुत्=ऋत्विजों को (**प्र**) मारते हैं, (**वरुणम्**) अत्यन्त वरणीय अधिकारी वा शासक को (**प्र**) मारते हैं, (**अमित्रेषु**) अमित्र भूत इनके ऊपर (**तुम्रम्**) गमनशील (**वृषाणम्**) दुःखों के वर्षक (**अरुषम्**) भास्वर (**वधम्**) वज्र को (**नि शिशीहि**) तीक्ष्ण कर ।

भावार्थः—हे शक्तिशाली राजन् ! दुष्ट गति वाले जो जन सूर्यसम तेजस्वी विद्वान् को, न्यायकारी पुरुष को, ऋत्विजों को, अत्यन्त वरणीय

शासक को मारते हैं उन अमित्र भूत लोगों पर गमनशील, दुःख की वर्षा करने वाले भास्वर वज्र को तीक्ष्ण कर अर्थात् सख्त दण्ड दे ॥९॥

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (**दिवः**) द्युलोक का (**ईशे**) शासन करता है, (**इन्द्रः**) सर्वैश्वर्यवान् वही (**पृथिव्याः**) पृथिवी का शासन करता है, (**इन्द्रः**) वह सर्वशक्तिमान् (**अपाम्**) जलों और अन्तरिक्ष का शासन करता है, (**इन्द्रः इत्**) वह सर्वशक्ति ही (**पर्वतानाम्**) मेघों पर शासन करता है, (**इन्द्रः**) परमेश्वर ही (**वृधाम्**) बढ़ने वालों का (**इत्**) भी और (**मेधिराणाम्**) मेधावियों का शासन करता है, (**इन्द्रः**) इन्द्र (**क्षेमे**) प्राप्त की रक्षा में (**हव्यः**) पुकारने योग्य है (**इन्द्रः**) परमेश्वर ही (**योगे**) अप्राप्त की प्राप्ति में भी (**हव्यः**) पुकारने योग्य है ।

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर द्युलोक का शासन करता है, पृथिवी लोक का शासन करता है, वही जलों और अन्तरिक्ष, मेघों, बढ़ने वालों और मेधावी लोगों का भी शासन करता है । वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारे योग और क्षेम के वहन में हमारा रक्षक है ॥१०॥

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**अक्तुभ्यः**) रात्रियों से भी (**प्र वृधः**) बड़ा है, (**अहभ्यः**) दिवसों से भी बड़ा है, (**अन्तरिक्षात्**) आकाश से भी (**प्र**) बड़ा है, (**समुद्रस्य**) समुद्र के (**धासेः**) धारक स्थान से भी (**प्र**) बड़ा है, (**वातस्य**) वायु के (**प्रथसः**) फैलाव से भी (**प्र**) बड़ा है, (**ज्मः**) पृथिवी के (**अन्तात्**) पर्यन्त से भी (**प्र**) बड़ा है (**सिन्धुभ्य**) नदियों से (**प्र रिरिचे**) अतिरिक्त है और (**क्षितिभ्यः**) क्षितिजों वा मनुष्यों से भी (**प्ररिरिचे**) अधिक है।

भावार्थः—परमैश्वर्यवान् प्रभु रात्रियों, दिवसों, अन्तरिक्ष, समुद्र को घेरने वाले स्थान, वायु के फैलाव और पृथिवी के पर्यन्त भागों से भी बड़ा है। वह नदियों से भी अधिक बड़ा और क्षितिजों वा मनुष्यों से भी बड़ा हैं। वह व्यापक और इन सब से अधिक है ॥११॥

प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! (**शोशुचत्याः**) जलती हुई (**उषसः**) उषाओं के (**केतुः**) प्रज्ञापक रश्मि के (**न**) समान (**ते**) तुम्हारी (**असिन्वा**) जिसका भेदन कोई नहीं कर सकता है ऐसी (**हेति**) वज्र (**प्रवर्तताम्**) प्रवृत्त होता है, (**तपिष्ठेन**) तापकारक (**हेषसा**) शब्द कारक हेति से (**द्रोघमित्राम्**) दुष्ट जनों को (**दिवः**) द्युलोक से (**आ सृजानः**) उत्पन्न (**अश्मा इव**) अशनि के समान (**विध्य**) ताड़ित कर ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! प्रकाशमान उषाओं की ज्ञापन करने वाली रश्मि के समान अभेद्य आप का न्याय वज्र अपने कार्य में प्रवृत्त होवे । वह तापकारी शब्द कारक न्यायवज्र से दुष्टजनों को उसी प्रकार दण्ड दे जिस प्रकार द्युलोक से उत्पन्न बिजली सब चीजों को नष्ट करती है ॥१२॥

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्द्रम् अनु अह**) सूर्य के अनुसार ही (**मासाः**) महीने (**अनु-अजिहत**) चलते हैं, (**वनानि**) अरण्य (**इत्**) भी उसी का अनुसरण (**ओषधीः**) ओषधियें भी (**अनु**) उसी का अनुसरण करती हैं, (**पर्वतासः**) मेघ भी उसी का (**अनु**) अनुसरण करते हैं । (**जायमानम्**) प्रादुर्भूत होते हुए इन्द्र=सूर्य का ही (**वावशाने**) कान्तियुक्त (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी अनुसरण करते हैं, (**आपः**) जले भी (**इन्द्रम्**) सूर्य का (**अनु अजिहत**) अनुगमन करती है ।

भावार्थः—सूर्य के ही अनुसार महीने होते हैं, जंगल आदि भी उसी के अनुसार बढ़ते हैं, ओषधियां उसी के अनुसार होती है, मेघ भी सूर्य के ही अनुसार बनते हैं और प्रादूर्भूत होते सूर्य का ही द्यु और पृथिवी तथा जलें अनुसरण करते हैं ॥१३॥

कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) तेजस्वी पुरुष ! (**ते**) तेरी (**अघस्य**) पापों का नाश कर देने वाली (**चेत्या**) शक्ति (**कर्हिस्वित्**) कब (**असत्**) प्रकट होगी (**यत्**) जिससे तू (**रक्षः**) राक्षसों को (**भिनदः**) भेदन करे और मित्रों पर क्रूरता करने वालों को (**आ ईषत्**) भयभीत करे (**यत्**) जिससे (**शसने**) हत्या-स्थान में (**गावः**) पशुओं के (**न**) समान वे (**आपृक्**) मर कर (**अमुया**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी के ऊपर (**शयन्ते**) पड़ें ।

भावार्थः—हे तेजस्वी पुरुष ! तेरी पापों का नाश करने वाली शक्ति कब प्रकट होगी कि जिससे तू राक्षसों का भेदन करे और मित्रों से द्रोह वा क्रूरता करने वालों को भयभीत करे । तथा जिससे हत्यागार में पशुओं के समान वे मरकर इस पृथिबी के ऊपर पड़जावें ॥१४॥

शत्रयन्तों अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥१५

पदार्थः—(**ये**) जो (**शत्रूयन्तः**) शत्रुओं के समान व्यवहार करने वाले (**ओगणासः**) संघ बनाए हुए (**महि**) बहुत (**बाधन्तः**) पीड़ित करते हुए (**नः**) हमें (**अभिततस्रे**) सब ओर से गिराते हैं, (**इन्द्र**) हे शत्रु नाशक पुरुष वे (**अमित्रा**) शत्रु गण (**अन्धेन**) अन्धकार मय (**तमसा**) तम से (**सचन्ताम्**) युक्त होवें और (**तान्**) उन्हें (**सुज्योतिषः**) उत्तम प्रकाश वाले दिन और (**अक्तवः**) रात्रिगण (**अभिष्युः**) पराजित करें ।

भावार्थः—ये जो शत्रु के समान व्यवहार करने वाले, संघ बनाये हुए बहुत पीड़ित करते हुए हमें सब ओर से गिराते हैं हे शत्रु नाशक पुरुष ! वे शत्रु गण घोर अन्धकार में पड़ें और उत्तम प्रकाश वाले दिन और रात्रियें भी पराजित करें ॥१५॥

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६॥

पदार्थः हे प्रभो ! (**त्वा**) तुझे (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**पुरूणि हि**) बहुत (**सवना**) उपासना यज्ञ आदि तथा (**गृणताम्**) स्तावक (**ऋषीणाम्**) मन्त्र द्रष्टाओं के (**ब्रह्माणि**) मन्त्र (**मदन्**) प्रसन्न करते हैं, वे (**सहूतिम्**) एक साथ मिलकर करने योग्य इस प्रार्थना को भी (**अवसा**) ज्ञान और प्रेम से (**त्वा**) आप के लिए (**आघोषन्**) प्रकट करते हैं । हे प्रभो ! (**विश्वान्**) सब (**अर्चतः**) प्रार्थना करने वालों को (**अर्वाङ्**) साक्षात् (**अवसा**) रक्षा से (**तिरः**) संसार के दुःखों से दूर (**याहि**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—हे प्रभो ! तुझे मनुष्यों के अनेकानेक उपासना यज्ञ आदि तथा स्तावक मन्त्र द्रष्टाओं के मन्त्र प्रसन्न करते हैं । वे सामूहिक प्रार्थना को भी ज्ञान और प्रेम से आप के लिए प्रकट करते हैं । हे भगवन् ! समस्त प्रार्थना करने वालों को साक्षात् रक्षा से संसार के दुःखों से पार कर ॥१६॥

एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७॥

पदार्थः—(**एव**) इस प्रकार (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् ! (**वयम्**) हम (**ते**) तेरी (**भुञ्जतीनाम्**) रक्षात्मक (**नवानाम्**) नित्य नवीन (**सुमतीनाम्**) उत्तम अनुग्रह बुद्धियों को (**विद्याम**) सदा जानें, हम (**विश्वामित्रा**) सब के मित्र होकर (**वस्तोः**) दिन रात (**नूनम्**) अवश्य (**अवसा**) ज्ञान और प्रेम से (**ते**) तेरी (**गृणन्तः**) स्तुति करते हुए (**इन्द्र**) हे भगवन् ! (**ते**) तेरी ज्ञानमयी वेदवाणियों को (**विद्याम**) जानें ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! हम तेरी रक्षात्मक नित्य नवीन उत्तम अनुग्रह बुद्धियों को जानें । हम सबके मित्र होकर दिनरात ज्ञान और प्रेमभाव से तेरी स्तुति करते हुए, हे भगवन् तेरी ज्ञानमयी वेदवाणी को समझें ॥१७॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१८॥

पदार्थः- हम लोग (**मघवानम्**) ऐश्वर्यों के स्वामी (**शुनम्**) महान् अथवा व्यापक (**इन्द्रम्**) समस्त ऐश्बर्यों के दाता (**वाजसातौ**) ऐश्वर्य और ज्ञान के प्रदान में (**नृतमम्**) सर्वश्रेष्ठ (**ऊतये**) रक्षा के कार्य में (**उग्रम्**) बलवान् (**शृण्वन्तम्**) सबकी सुनने वाले, (**समत्सु**) युद्धों में (**वृत्राणि**) विघ्नों को (**घ्नन्तम्**) नाश करने वाले (**धनानाम्**) समस्त धनों को (**संजितम्**) जीतने वाले प्रभु को (**अस्मिन्**) इस (**भरे**) जीवन संगर में (**हुवेम**) पुकारते हैं ।

भावार्थः—हम लोग ऐश्वर्यों के स्वामी, व्यापक, ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्य

और दान के प्रदान में सर्वश्रेष्ठ, रक्षा के कार्य में बलवान्, सबकी पुकार को सुनने वाले. समस्त धनों को जीतने वाले (अर्थात् धन का स्वामी तो अन्त में प्रभु ही है अत वह जीतने वाला है और सभी धनवाले हारने वाले हैं) प्रभु को इस जीवन संग्राम में याद करते हैं ॥१८॥

यह दशम मण्डल में नबासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९०

ऋषिः—१—१६ नारायणः ॥ देवता—पुरुषः ॥ छन्दः—१—३, ७, १०, १२, १३ निचृदनुष्टुप् । । ४—६, ९, १४, १५ अनुष्टुप् । ८, ११ विराडनुष्टुप् । १६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—१५ गान्धारः । १६ धैवतः ॥

विशेष वक्तव्य –यह सूक्त पुरुष सूक्त कहा जाता है । पुरुष=परमात्मा और जीवात्मा तथा प्रकृति का इस में वर्णन है । मूल्यांकन का कोई भी प्रकार केवल भौतिक नहीं हैं । पुरुष की अपेक्षा रखता है अतः प्रकृति पुरुषात्मक है । संसार और उसकी सृष्टिप्रक्रिया के जाने विना किसी अच्छे समाज की रचना नहीं हो सकती है । अतः इसमें संसार और समाज दोनों का वर्णन है । परमात्मा जीवात्मा और प्रकृतिरूपी कारणों और सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करके समाज का भी वर्णन किया गया है । शरीर और ब्रह्माण्ड की समता भी दिखाई गई है ।

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ।
स भूमिं॑ वि॒श्वतो॑ वृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥१॥

पदार्थः –(**पुरुषः**) परमेश्वर (**सहस्रशीर्षा**) संसार के शिरों वाला है, (**सहस्राक्षः**) संसार भर की आँखों वाला है, (**सहस्रपात**) संसार भर के पैरों वाला है (**सः**) वह (**भूमिम**) जगत् के महान् उपादान कारण प्रकृति को (**विश्वतः**) सब तरफ से (**वृत्वा**) आच्छादित करके (**दशाङ्गुलम**) दश इन्द्रियों वाले शरीर को (**अत्यतिष्ठत**) अतिक्रान्त करके स्थित है ।

भावार्थः—परमात्मा पुरुष में संसार भरके शिर हैं, संसार भरकी आँखें हैं और संसार भर के पैर हैं । वह प्रकृति को अपनी व्यापकता से व्याप्त करके शरीर आदि से भी रहित है । अर्थात् वह शरीर नहीं धारण करता है ॥१॥

पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भूतं यच्च॒ भाव्य॑म् ।
उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥२॥

पदार्थः – (**यत**) जो (**भूतम**) उत्पन्न हो चुका है, (**यत**) जो (**भाव्यम**) उत्पन्न होने वाला है और (**यत**) जो (**इदम**) वर्तमान में है वह (**सर्वम**) सब (**पुरुषः**) पुरुष (**एव**) ही है (**उत**) और (**अमृतत्वस्य**) अमरता अर्थात् मोक्ष का (**ईशानः**) स्वामी है, (**यत**) जो (**अन्ने**) प्रकृति से (**अतिरोहति**) बढ़ता है उसका भी स्वामी है ।

भावार्थः—भूत, वर्तमान और भविष्पत् में जो कुछ है वह पुरुषाधिष्ठित है । वह पुरुष=परमेश्वर मोक्ष का स्वामी है और अन्न=प्रकृति से जो कुछ भी होता बढ़ता है उस सब का स्वामी है । अर्थात् यह सारा जगत् प्रकृतिपुरुषात्मक है ॥२॥

ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥३॥

पदार्थः – (**एतावान्**) इतनी (**अस्य**) इस पुरुष की (**महिमा**) जगत् आदि विभूति है (**च**) और (**पुरुषः**) वह परमेश्वर तो (**अतः**) इससे भी (**ज्यायान्**) बड़ा है, (**विश्वा**) समस्त (**भूतानि**) भूतजात (**अस्य**) इसका (**पादः**) एक पाद है, (**अस्य**) इसके (**त्रिपाद्**) तीन पाद (**दिवि**) ज्ञान प्रकाश स्वरूप में (**अमृतम**) अविनाशी हैं ।

भावार्थः—यह जगत् आदि सब कुछ उस पुरुष की महिमा है । वह परमेश्वर तो इससे भी महान् है । यह सब कुछ भूतजात उसका एक पाद है । इसके तीन पाद ज्ञान प्रकाश-स्वरूप में अविनाशी हैं । अर्थात् परमेश्वर इस सब कुछ से भी महान् है ॥३॥

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑षः॒ पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।
ततो॒ विष्व॒ङ्व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ॥४॥

पदार्थः (**त्रिपाद्**) तीन पादों वाला अविनाशी यह (**पुरुषः**) पुरुष (**ऊर्ध्वः**) ऊपर (**उदैत्**) विराजमान् होता है, (**अस्य**) इसका (**पादः**) एक पाद रूप यह जगत् (**पुनः**) तो फिर (**इह**) यहां (**अभवत्**) प्रकट होता है, (**ततः**) वह प्रभु (**विश्वङ्**) सर्वत्र (**व्यक्रामत्**) व्यापता है (**सः**) वह (**अशनानशने**) खाने और न खाने वाले अर्थात् चेतन और अचेतन को (**अभि**) अभिव्याप्त करता है ।

भावार्थः—अविनाशी तीन पादों वाला पुरुष=परमेश्वर सबके ऊपर विराजमान होता है । उसका एक पादरूप यह जगत् प्रकट होता है । वह प्रभु सबको व्यापता है । जो चेतन अचेतन जगत् है उस सब को अभिव्याप्त करता है ।।४।।

तस्मा॑द्वि॒राळ॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ।
स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥५॥

पदार्थः—(**तस्माद्**) उस परमेश्वर अधिष्ठित प्रकृति से (**विराड्**) प्रकाशमय समष्टि रूप ब्रह्माण्ड (**अजायत**) उत्पन्न होता है, (**विराजः अधि**) विराट् के ऊपर अध्यक्ष रूप में (**पुरुषः**) पुरुष है (**सः**) वह पुरुष (**जातः**) उत्पन्न हुए से (**अत्यरिच्यत**) अतिरिक्त होता है, (**पश्चात्**) विराट् के पश्चात् (**भूमिम**) भूमि (**अथो**) इसके अनन्तर (**पुरः**) नाना शरीरों को उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—उस परमेश्वराधिष्ठित प्रकृति विश्व का समष्टिरूप प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है । परमेश्वर उसका अधिष्ठाता होकर उस पर विराजमान रहता है । वह अपने को उत्पन्न हुए से अतिरिक्त रखता है । विराट् के अनन्तर भूमि और उसके बाद शरीर आदि पुरियों को उत्पन्न करता है ।।५।।

यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत ।
व॒स॒न्तो अ॑स्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्मः इ॒ध्म श॒रद्ध॑विः ॥६॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**देवाः**) विश्व की दिव्य शक्तियां (**पुरुषेण**) पुरुष=परमेश्वर के द्वारा प्रदत्त (**हविषा**) जगद्रचना सामग्री से (**यज्ञम्**) सृष्टि रचना रूप यज्ञ को (**अतन्वत**) विस्तारित करते हैं तब (**अस्य**) इसका (**वसन्तः**) वसन्त (**आज्यम्**) घृत (**आसीत्**) होता है (**ग्रीष्मः**) ग्रीष्म ऋतु (**इध्मः**) समिधा और (**शरद्**) शरद् ऋतु (**हविः**) हवि होती है ।

भावार्थः—जब विश्व की दिव्य शक्तियां परमेश्वर प्रदत्त जगद्रचना-सामग्री से सृष्टि रचना रूप यज्ञ का विस्तार करती हैं तब इस यज्ञ का वसन्त घृत, ग्रीष्मऋतु समिधायें और शरद् हवि होते हैं ।।६।।

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न्पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः ।
तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त सा॒ध्या ऋष॑यश्च॒ ये ॥७॥

पदार्थः—(**अग्रतः**) पहले से (**जातम्**) विराट् के ऊपर अधिष्ठित (**यज्ञम्**) यष्टव्य अथवा पदार्थों का संगति करण करने वाले (**पुरुषम्**) परमेश्वर को दिव्य शक्तियां (**बर्हिषि**) आकाश में (**प्रौक्षन्**) अभिषिक्त करती हैं और (**तेन**) उसीके द्वारा प्रेरित हुए (**साध्याः**) सृष्टि साधन भूत (**देवाः**) दिव्य शक्तियां (**च**) और (**ये**) जो (**ऋषयः**) विश्वसृज् लोग (**अयजन्त**) इस सृष्टि के पदार्थों को योजनाबद्ध करते हैं !

भावार्थः—पहले से ही विराट् के ऊपर अधिष्ठित और समस्त जगत् के पदार्थों की संगति लगाने वाले परमेश्वर को दिव्य शक्तियां आकाश में अधिष्ठाता बनाती हैं और उसी से प्रेरित होकर सृष्टि की साधन भूत दिव्य शक्तियां और विश्वसृज् लोग इस सृष्टि को योजनाबद्ध करते हैं ।।७।।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हु॒तः सम्भृ॑तं पृष॒दाज्य॑म् ।
प॒शून्ताँश्च॑क्रे वा॒यव्या॑नार॒ण्यान्ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥८॥

पदार्थः—(**सर्वहुतः**) सब कुछ को सृष्टि यज्ञ में आहुत करने वाले (**यज्ञात्**) पूजनीय एवं जगत् की योजना करने वाले परमेश्वर से (**पृषद्**) अन्न आदि प्राणदायक और (**आज्यम्**) घृत आदि पदार्थ (**सम्भृतम्**) उत्पन्न होते हैं, उसने ही (**तान्**) उन (**वायव्याम्**) वायव्य, (**आरण्यान्**) जंगली (**पशून्**) पशुओं को (**चक्रे**) उत्पन्न किया (**च**) और (**ये**) जो (**ग्राम्याः**) ग्राम्य हैं उन्हें भी ।

भावार्थः—सृष्टियज्ञ में सब कुछ को आहुत करने वाले, जगत् की योजना करने वाले परमेश्वर के निमित्तत्व से अन्न आदि प्राणदायक और घृत आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं । उसने ही वायव्य और जंगली उन पशुओं को उत्पन्न किया है और जो ग्राम्य हैं उन्हें भी वही उत्पन्न करता है ।।८।।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

पदार्थः—(**सर्वहुतः**) सब कुछ को सृष्टि रचना रूप सर्वमेध में हुत करने वाले, (**यज्ञात्**) पूज्य एवं जगत् को योजनाबद्ध करने वाले (**तस्मात्**) उस परमेश्वर से (**ऋचः**) ऋचायें, (**सामानि**) साम मन्त्र (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं (**छन्दांसि**) अथर्ववेद के मंत्र (**तस्माद्**) उससे (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं और (**यजुः**) यजुर्वेद (**तस्माद्**) उससे (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः - सर्वमेध=सृष्टि यज्ञ में सब कुछ को हुत करने वाले तथा जगत् को योजनाबद्ध करने वाले उस परमेश्वर से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न होते हैं ॥९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

पदार्थः - (**तस्माद्**) उसी से (**अश्वाः**) घोड़े (**अजायन्त**) उत्पन्न होते हैं (**च**) और (**ये**) जो (**के**) कोई गर्दभ अश्वतर आदि (**उभयादतः**) दोनों तरफ दांत वाले हैं वे भी उत्पन्न होते हैं, (**तस्मात्**) उसी से (**ह**) ही (**गावः**) गौ आदि (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं, (**तस्माद्**) उसी से (**जाताः**) उत्पन्न हुए (**अजावयः**) बकरी भेड़ आदि ।

भावार्थः—उस परमेश्वर के ही निमित्तत्व से घोड़े उत्पन्न होते हैं और उसी से दोनों तरफ दांत वाले गर्दभ अश्वतर आदि उत्पन्न होते हैं। गाय आदि पशु उससे उत्पन्न होते हैं और बकरी भेड़ भी उसी से उत्पन्न होते हैं ॥१०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

पदार्थः—(**यत्**) जब दिव्य शक्तियां (**पुरुषम्**) सामाजिक पुरुष की (**व्यदधुः**) कल्पना करती हैं तत्र (**कतिधा**) कितने प्रकार से कल्पित करते हैं, (**अस्य**) इस समाज का (**मुखम्**) मुख सदृश (**किम्**) क्या (**आसीत्**) होता है, (**बाहू**) बाहू के समान (**कौ**) कौन होते हैं, (**ऊरु**) ऊरु के समान (**का**) कौन और (**पादा**) पैर के समान कौन (**उच्येते**) कहे जाते हैं ।

भावार्थः—जब देवशक्तियां सामाजिक पुरुष की कल्पना करती हैं तो उसे कितने प्रकार की कल्पित करती हैं ? उसके मुख सदृश कौन होता है, बाहुओं के समान कौन होता है, कौन ऊरु के समान होता है और कौन पैर के समान कहा जाता है ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस समाज वा सामाजिक पुरुष का (**ब्राह्मणः**) ब्राह्मण (**मुखम्**) मुख के सदृश (**आसीद्**) बनाया गया है (**बाहू**) बाहुएं (**राजन्यः**) क्षत्रिय (**कृतः**) किया गया है, (**यत्**) जो (**अस्य**) इसका (**ऊरु**) ऊरु भाग के सदृश है (**तद्**) वह (**वैश्यः**) वैश्य है (**पद्भ्याम्**) पादस्थानीय सेवा और अभिमान राहित्य से (**शूद्रः**) शूद्र (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—इस समाज में ब्राह्मण का स्थान मुख के सदृश है, क्षत्रिय को गुण कर्म, स्वभाव के अनुसार बाहू बनाया गया है। वैश्य ऊरू के समान है और पद=अर्थात् सेवा और निरभिमानत्व से शूद्र उत्पन्न होता है। यहां पर (कृतः) पद का प्रयोग यह-सूचना दे रहा है कि समाज में सभी शूद्रवत् उत्पन्न होते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि गुण, कर्म तथा स्वभाव से बनाए जाते हैं ॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

पदार्थः—यहां पर शरीर और ब्रह्माण्ड की एकता दिखाते हुए कहा गया है—

(**चन्द्रमा**) चन्द्रमा (**मनसः**) मन से (**जातः**) उत्पन्न हुआ है, (**चक्षोः**) नेत्रों से (**सूर्यः**) सूर्य (**अजायत**) उत्पन्न होता है, (**मुखाद्**) मुख से (**इन्द्रः**) इन्द्र (**च**) और अग्नि उत्पन्न होते हैं (**प्राणाद्**) प्राण से (**वायुः**) वायु (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—इस शरीर रूपी पिण्ड में मन चन्द्रमा रूप है, चक्षु सूर्यस्थानी हैं, मुख इन्द्र और अग्नि रूप है और प्राण वायुरूप है ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥

पदार्थः—(**नाभ्या**) नाभि से (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**आसीत्**) होता है, (**शीर्ष्णः**) शिर से (**द्यौः**) द्यु लोक (**समवर्तत**) होता है, (**पद्भ्याम्**) पैर से (**भूमिः**) भूमि (**श्रोत्रात्**) श्रोत्र से (**दिशः**) दिशायें **और** (**तथा**) इस प्रकार (**लोकान्**) अन्य लोकों को (**अकल्पयत्**) बनाया ।

भावार्थः—शरीर पिण्डस्थ नाभी अन्तरिक्ष, शिर द्युलोक, पैर भूमि, श्रोत्र दिशा स्थानीय है । इसी प्रकार अन्य लोक भी बनाए गए हैं ।

सूचना—शरीर और ब्रह्माण्ड में एकता है । समाज का निर्माण इस एकता को जाने विना नहीं हो सकता है । जब ज्ञानी शरीर में ब्रह्माण्ड के ही पदार्थों की स्थिति देखता है और शरीर के अंगों की तरह समाज के अंगों की रक्षा करता है तभी समाज ठीक चलता है ॥१४॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पदार्थः—(**यद्**) जिस (**यज्ञम्**) सृष्टि यज्ञ को (**तन्वानाः**) विस्तारित करते हुए (**देवाः**) सृष्टि के साधन भूत देव (**पशुम्**) देखने वाले द्रष्टा (**पुरुषम्**) पुरुष को (**अबध्नन्**) उसमें बांधते हैं (**अस्य**) इस यज्ञ की (**सप्त**) सात (**परिधयः**) छन्द रूपी परिवियें हैं सात आवरण—समुद्र, त्रसरेणु, मेघ मण्डल, वृष्टिजल, वायु, घनंजय और सूत्रात्मा वायु, (**त्रिः सप्त**) इक्कीस (**समिधः**) समिधायें (**कृताः**) बनाई गई है । सात प्रकृति विकृतियें, पांच तन्मात्रायें, पांचभूत परमेश्वर, जीवात्मा, वेद वाणी और काल ।

यज्ञ की सात परिधियां होती हैं—ऐष्टिक आहवनीय की तीन, उत्तर वेदी की तीन और सातवीं आदित्य है । २१ समिधायें हैं—१२ मास पांच ऋतु, तीन लोक और २१ वीं आदित्य ।

भावार्थः - दिव्य शक्तियां जिस यज्ञ को करते हुए द्रष्टा पुरुष को उसमें भोक्ता रूप में बांधते हैं उसकी सात परिधियें और २१ समिधायें होती हैं ॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

पदार्थः - (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**यज्ञेन**) संगतिकरण आदि से अथवा अग्नि से (**यज्ञम्**) सृष्टि रूपी यज्ञ को (**अयजन्त**) करते हैं क्योंकि (**तानि**) वे (**धर्माणि**) संसार के धारक बल (**प्रथमानि**) मुख्य (**आसन्**) हैं (**ते ह**) वे ही (**महिमानः**) महान् सामर्थ्य वाले हुए (**नाकम्**) आनन्दस्वरूप परमेश्वर को (**सचन्त**) निमित्त कारण रूप में प्राप्त करते हैं (**यत्र**) जिसमें (**पूर्वे**) पूर्व सृष्टि के (**साध्या**) सृष्टि साधन सम्पन्न (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**सन्ति**) रहते हैं ।

भावार्थः— दिव्य शक्तियें संगतिकरण अथवा अग्नि के माध्यम से सृष्टि रूपी यज्ञ को सम्पन्न करती हैं । क्योंकि वे संसार के धारक बल ही मुख्य बल हैं । वे महिमा को प्राप्त करते हुए परमेश्वर को निमित कारण के रूप में प्राप्त करते हैं जिस परमेश्वर में ही पूर्व कल्प के सृष्टि साधन सम्पन्न दिव्य शक्तियें रहती हैं ॥१६॥

यह दशम मण्डल में नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९१

ऋषिः— १—१५ अरुणो वैतहव्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः १, ३, ६ निचृज्जगती । २, ४, ५, ७, ९, १०, १३ विराड्जगती । ८, ११ पादनिचृज्जगती । १२, १४ जगती । १५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥

स्वरः— १—१४ निषादः । १५ धैवतः ॥

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१॥

पदार्थः—(**जागृवद्भिः**) जागरूक यज्ञकर्ताओं से (**जरमाणः**) प्रशंसा किया जाता हुआ (**दमूनाः**) देने हारा (**इळः**) पृथिवी की (**पदे**) स्थान में (**इषयन्**) अन्न आदि को हवि रूप में ग्रहण करता हुआ, (**विश्वस्य**) सब (**हविषः**) हवि को (**होता**) ग्रहण करने वाला (**वरेण्यः**) उत्तम (**विभुः**)

व्यापक (**विभावा**) दीप्तिमान् (**सुसखा**) सुमित्र यह अग्नि (**सखीयते**) सखित्व चाहने वाले यजमान के लिए (**दमे**) गृह में (**सम् इध्यते**) प्रज्वलित किया जाता है ।

भावार्थः—जागरूक यज्ञकर्ता लोगों के द्वारा प्रशंसा किया जाता हुआ अन्न आदि पदार्थों का दाता उत्तर वेदि में अन्न आदि हवि को ग्रहण करता हुआ, समस्त हवियों का खाने वाला, उत्तम, व्यापक, दीप्तिमान और यजमान का सुमित्र यह अग्नि सखित्व चाहने वाले यजमान के लिए गृह में प्रज्वलित किया जाता है ॥१॥

स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनञ्जनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो३ विशंविशम् ॥२॥

पदार्थः—(**दर्शतश्रीः**) दर्शनीय विभूति, (**अतिथिः**) आदर का पात्र (**सः**) वह अग्नि (**गृहे गृहे**) प्रत्येक गृहस्थ के घर में, (**वने वने**) प्रत्येक वन में (**शिश्रिये**) आश्रय पाता है, (**जन्यः**) जनों का हितकारी, वह अग्नि (**जनम्-जनम्**) सब जनों के पास (**तक्ववीः इव**) जाने वाले के समान (**न अति मन्यते**) तिरस्कार नहीं करता है, (**विश्यः**) प्रजाओं का हितकारी वह (**विशः**) प्रजाओं में (**आक्षेति**) जाता है (**विशम् विशम्**) प्रत्येक प्रजा में स्थित होता है ।

भावार्थः—दर्शनीय विभूति वाला, आदर का पात्र वह अग्नि गृहस्थ के घर घर में, प्रत्येक वन में आश्रय पाता है । सबके पास जाने वाले के समान वह अग्नि किसी को तिरस्कृत नहीं करता है । सभी उसमें यज्ञ कर सकते हैं । वह प्रजाओं का हितकारी प्रजा जनों को प्राप्त होता है और प्रत्येक मनुष्य में स्थित होता है ॥२॥

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥३॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**दक्षैः**) बलों से (**सुदक्षः**) उत्तम बल वाला, (**क्रतुना**) कर्म से (**सुक्रतुः**) उत्तम कर्म वाला (**काव्येन**) क्रान्तदर्शन से (**कविः**) क्रान्त दर्शन, तथा (**विश्ववित्**) समस्य विश्व में रहने वाला (**असि**) है, वह (**वसूनाम्**) वसुओं में (**वसु**) वासयिता है (**त्वम्**) यह (**एक इव**) एक ही (**क्षयसि**) निवास करता है (**च**) और (**द्यावा**) द्युलोक (**च**) और

(**पृथिवी**) पृथिवी (**यानि**) जिन धनों को (**पुष्यतः**) बढ़ाते हैं उनका भी धारक है ।

भावार्थः—यह अग्नि बलों से उत्तम बल वाला कर्म से उत्तमकर्मा कान्तदृष्टि से क्रान्त दर्शन तथा समस्त पदार्थों में रहने वाला है । वह समस्त वसुओं में वासयिता है और अकेला पदार्थों में निवास करता है । वह दिव्य और पार्थिव दोनों प्रकार के धनों का दाता है ॥३॥

प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**ऋत्वियम्**) ऋतुओं के अनुसार होने वाले (**घृतवन्तम्**) घृत से युक्त (**तव**) इसके (**योनिम्**) निवास स्थान (**इलायाः**) पृथिवी के (**पदे**) स्थान [उत्तरवेदि] में (**प्रजानन्**) प्राप्त करता हुआ (**आ-सदः**) स्थित होता है, (**ते**) इस अग्नि की (**रश्मयः**) रश्मियें (**उषसाम्**) उषाओं के (**एतयः**) प्रज्ञापक किरणों के समान (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**अरेपसः**) विशुद्ध (**रश्मयः**) रश्मियों के समान (**आ चिकित्रे**) ज्ञात होती है ।

भावार्थः—यह अग्नि ऋतु ऋतु में होने वाले घृत युक्त अपने निवास स्थान उत्तरवेदि को प्राप्त होता हुआ स्थित होता है । इसकी रश्मियां उषा की प्रज्ञापक किरणों की भांति तथा सूर्य की विशुद्ध रश्मियों की भांति स्पष्ट ज्ञात होती हैं ॥४॥

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥५॥

पदार्थः—(**तव**) इस अग्नि के (**श्रियः**) रश्मि सम्बन्धी विभूतियां (**वर्ष्यस्य**) वर्षणशील मेघ की (**विद्युतः**) विद्युतों के समान तथा (**उषसाम्**) उषाओं के (**केतवः**) प्रज्ञापक प्रकाशों के (**न**) समान (**चित्राः**) विचित्र (**चिकित्रे**) ज्ञात होती हैं । (**यद्**) जब यह (**ओषधीः**) ओषधियों (**च**) और (**वनानि**) अरण्यों में (**अभिसृष्टः**) जलाने के लिए छोड़ा हुआ (**स्वयम्**) स्वयं ही (**अन्नम्**) अदनीय वस्तु को (**आस्ये**) ज्वाला रूपी मुख में (**परि चिनुषे**) ग्रहण कर लेता है ।

भावार्थः—इस अग्नि की रश्मि विभूतियां वर्षणशील मेघ की विद्युतों

के समान तथा उषाओं के प्रज्ञापक प्रकाशों के समान विचित्र ज्ञात होती है। जब यह अग्नि ओषधि और जंगलों को जलाने के लिए छोड़ा गया स्वयं अपने अदनीय पदार्थ को अपने ज्वाला-मुख में ग्रहण करता है ॥५॥

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६॥

पदार्थः—(**ऋत्वियम्**) ऋतु में प्राप्त होने वाले (**गर्भम्**) गर्भभूत (**तम्**) उस अग्नि को (**ओषधीः**) ओषधियां (**दधिरे**) धारण करती हैं, (**मातरः**) मातृभूत (**आपः**) जलें भी (**तम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्त**) उत्पन्न करते हैं। (**वनिनः**) वनस्पतियें (**च**) भी (**समानम्**) समान रूप से (**तम् इत्**) इसको ही उत्पन्न करती है, (**अन्तःवती**) गर्भवती (**वीरुधः**) लतायें (**च**) भी इस अग्नि को (**विश्वहा**) सदा (**सुवते**) उत्पन्न करती है।

भावार्थ—ऋतुओं में प्राप्त गर्भभूत अग्नि को ओषधियां धारण करती हैं, मातृभूत जलें भी उस अग्नि को उत्पन्न करती हैं, वनस्पतियें भी समान रूप से उस को ही उत्पन्न करती हैं और गर्भवती लतायें भी सदा उस अग्नि को उत्पन्न करती हैं ॥

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यत्**) जब (**वातोपधूतः**) वायु से कम्पित किया हुआ (**वशान्**) कान्त वनस्पतियों के (**अनु**) प्रति (**तृषु**) शीघ्र (**इषित**) प्रेरित किया गया (**अन्ना**) अदनीय वनस्पति आदि को (**वेविषत्**) व्याप्त करता हुआ (**वितिष्ठसे**) इधर-उधर जाता है तब (**धक्षतः**) काष्ठों को जलाते हुए (**ते**) इसके (**अजराणि**) जरारहित (**शर्धांसि**) तेज (**रथ्यः यथा**) रथियों की भांति (**पृथक्**) पृथक् (**आयतन्ते**) जाते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि जब वायु से कम्पित किया गया उत्तम वनस्पतियों की ओर प्रेरित हुआ वनस्पति आदि अपने खाद्य पदार्थों को व्याप्त कर इधर-उधर बढ़ता है तब काष्ठों को जलाते हुए इस अग्नि के तीव्र स्थायी तेज रथियों की भांति पृथक् विचरते हैं ॥७॥

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥८॥

पदार्थः—(**मेधाकारम्**) मनुष्य के विचार को साधन प्रस्तुत करने वाले, (**विदथस्य**) यज्ञ के (**प्रसाधनम्**) प्रसाधन (**होतारम्**) हवि को ग्रहण करने वाले (**परिभूतमम्**) सब तेजों को अन्यन्त दबा लेने वाले (**मतिम्**) ज्ञान के विषय भूत (**अग्निम्**) अग्नि को हम स्वीकार करते हैं, (**तम् इत्**) उनका ही (**अर्भे**) थोड़े (**हविषि**) हूयमान सामग्री के होने पर और (**समानम्**) समान रूप से (**तम् इत्**) उसको ही (**महे**) अधिक हूयमान सामग्री के होने पर ऋत्विग् लोग (**आवृणते**) स्वीकार करते हैं (**त्वत्**) इससे (**अन्यम्**) भिन्न को (**न**) नहीं।

भावार्थः—मनुष्य के विचार को साधन प्रस्तुत करने वाले, यज्ञ के साधक, हवि के ग्रहीता, समस्त तेजों को अपने तेज से अभिभूत करने वाले तथा ज्ञान के विषयभूत अग्नि को हम अपने कार्यो में स्वीकार करते हैं। थोड़े हव्य पदार्थों के होने की अवस्था में और अधिक हव्य पदार्थों के होने की अवस्था में भी समान रूप से इस ही अग्नि को ऋत्विग् लोग प्रयोग में लाते हैं, अन्य को नहीं ॥८॥

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥९॥

पदार्थः—(**त्वाम् इत्**) इस ही (**होतारम्**) होता (**अग्ने**) अग्नि को (**त्वायवः**) इसको चाहने वाले (**वेधसः**) ऋत्विग् लोग (**विदथेषु**) यज्ञों में (**अत्र**) इस लोक में (**वृणते**) ग्रहण करते हैं, (**यत्**) जब (**देवयन्तः**) देवों के निमित्त यज्ञ करने की इच्छा करते हुए (**वृक्तबर्हिषः**) कुशाओं को काटकर बिछाये हुए (**हविष्मन्तः**) हवियों को तैयार करके लिए हुए, (**मनवः**) मननशील, ऋत्विग् लोग (**ते**) इस अग्नि के लिए (**प्रयांसि**) अन्न आदि हवियों को (**दधति**) प्रदान करते हैं।

भावार्थः—इस ही होता अग्नि को ऋत्विग्जन इस संसार में यज्ञों में स्वीकार करते हैं। देव यज्ञार्थ कुशायें आदि वेदी पर बिछाकर हवियों को लिए हुए मननशील ऋत्विग्जन इस अग्नि के लिए अन्न आदि हवि प्रदान करते हैं ॥९॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१०॥

पदार्थः—(**अग्ने तव**) इस अग्नि का (**होत्रम्**) होता का कार्य है, (**तव**) इसका ही (**ऋत्वियम्**) प्राप्त काल के अनुसार (**पोत्रम्**) पोता का कार्य है, (**तव**) इसका ही (**नेष्ट्रम्**) नेष्ट्रा का कार्य है, (**त्वम्**) यह ही (**अग्नित्**) आग्नीध्र है (**ऋतायतः**) यजमान का, (**तव**) इसका ही (**प्रशास्त्रम्**) प्रशास्ता का कार्य है, (**त्वम्**) यह (**अध्वरीयसि**) अध्वर्यु का कार्य करता है, (**च**) और (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा भी (**असि**) है (**च**) और (**नः**) हमारे (**दमे**) गृह में (**गृहपतिः**) यजमान भी है ।

भावार्थ—यह अग्नि होता, पोता, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रशास्ता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और यजमान का कार्य करने वाला है । अर्थात् बहुत ही महत्वपूर्ण है ॥१०॥

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्यमुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**मर्त्यः**) मनुष्य (**हविष्कृतिः**) यज्ञ में (**तुभ्यम् अग्ने**) इस अग्नि के लिए (**समिधा**) समिधायें (**दाशति**) प्रदान करता है (**उत वा**) अथवा (**हविः**) हवि डालता है, (**तस्य**) उसका यह (**होता**) होता (**असि**) होता है (**दूतम्**) दूतकर्म करने को (**यासि**) जाता है, (**उपब्रूषे**) प्रकट करता है (**यजसि**) हवि प्रदान करता है और (**अध्वरीयसि**) अध्वर्यु के कार्य को करता है ।

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ में इस अग्निके लिए समिधा और हवि आदि प्रदान करता है उसका यह अग्नि होता होता है और अन्य देवों के प्रति हवि ले जाने का दूतकर्म भी करता है । यह हवि जिस देव की है उसे प्रदान करके ब्रह्मत्व का कार्य करता है और हुत को देवों को पहुँचाकर यजमान का कार्य करता है तथा इस प्रकार यज्ञ को सम्पन्न करके अध्वर्यु का कार्य करता है ॥११॥

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२॥

पदार्थ—(**वृद्धासु**) गुणों और ज्ञानों से प्रवृद्ध (**यासु**) जिन के आश्रय पर (**वर्धनः चित्**) सबको बढ़ाने वाला प्रभु (**चाकनत्**) उपासकों को चाहता है, (**इमाः**) ये (**मतयः**) बुद्धियें, (**इमाः वाचः**) ये वाणियां, (**इमा ऋचः**) ये ऋचायें (**इमा सुष्टुतयः गिरः**) ये उत्तम स्तुतियुक्त वचन (**वसूयवः**) हमारे लिए धनदा होने वाली होकर (**अस्मत्**) हमारी तरफ से (**वसवे**) सबको निवास देने वाले (**जातवेदसे**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्नि अथवा सर्वज्ञ परमेश्वर को (**समग्मत**) प्राप्त होती हैं ।

भावार्थः—ज्ञान में बढ़ी हुई जिन बुद्धियों आदि के आधार पर सब को बढ़ाने वाला भगवान् उपासकों को चाहता है वे ये बुद्धियें, वाणियां, ऋचायें, स्तुतियां हमारे लिए धनदात्री होकर पास से सर्वज्ञ और सब निवास देने वाले उस प्रभु को प्राप्त होती हैं ॥१२॥

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३॥

पदार्थः—मैं (**अस्मै**) इस (**प्रत्नाय**) सनातन (**उशते**) सबका प्रिय चाहने वाले प्रभु के लिए (**इमाम्**) इन (**नवीयसीम्**) सदा नवी (**सुस्तुतिम्**) उत्तम स्तुति को (**वोचेयम्**) बोलूं, वह प्रभु (**नः**) हमें सुने (**पत्ये**) पति को (**उशते**) चाहती हुई (**सुवासाः**) उत्तम वस्त्रों को पहने हुए (**जाया इव**) जाया के समान (**अस्य**) इस प्रभु के (**हृदि अन्तरा**) हृदय में (**निःस्पृशे**) स्पर्श करने के लिए (**भूयाः**) होऊँ ।

भावार्थः—मैं इस सनातन और सब का प्रिय चाहने वाले प्रभु के प्रति इस सदा नवीन रहने वाली उत्तम स्तुति को बोलूं । जिस प्रकार सुन्दर वस्त्रों में सजी अपने पति को चाहने वाली स्त्री उसे प्राप्त होती है उसी प्रकार इस प्रभु के हृदय में पहुंचने वाला होऊँ ॥१३॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस परमेश्वर अथवा अग्नि के (**अधि**) नियन्त्रण में (**अवसृष्टाः**) उत्पन्न किये गए (**अश्वासः**) घोड़े, किरण आदि पदार्थ (**ऋषभासः**) शक्तिशाली बैल और मेघ आदि, (**उक्षणः**) सूर्य आदि, (**वशा**) गौ,

पृथिवी आदि, (**मेषाः**) मेष, बकरी आदि (**आहुताः**) प्रलय काल में पुनः अपने कारणों में वापस बुला लिए जाते हैं (**कीलालपे**) जल के रक्षक, (**सोमपृष्ठाय**) जगत् के धारण करने वाले (**वेधसे**) मेधावी अथवा विधाता (**अग्नये**) सोम स्वयं प्रकाश परमेश्वर अथवा अग्नि की स्तुति में अथवा प्रशंसा में (**हृदा**) हृदय से (**चारुम्**) सुन्दर (**मतिम्**) स्तुति वा प्रशंसा वाणी को मैं मनुष्य (**जनये**) संपन्न करता हूं।

भावार्थः—जिस परमेश्वर के नियन्त्रण में उत्पन्न किए गए घोड़े, किरण आदि, शक्तिशाली बैल, मेघ आदि सूर्य आदि, गौ, पृथिवी आदि और भेड़ बकरी आदि पदार्थ प्रलय के समय में पुनः अपने कारणों से बुला लिए अथवा लीन कर लिए जाते हैं उस जल के रक्षक, जगत् के धारक, विधाता परमेश्वर की मैं हृदय से सुन्दर स्तुति करता हूं ॥१४॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५॥

पदार्थ—(**अग्ने ते**) इस अग्नि के (**आस्ये**) ज्वालामय मुख में (**स्रुचि**) स्रुवा में (**घृतम् इव**) घी की भांति (**चम्वि**) चमस में (**सोमः इव**) सोम की भांति (**हविः**) पुरोडाश आदि हम लोगों से (**अहावि**) डाली जाती है। यह अग्नि (**अस्मे**) हमें (**वाजसनिम्**) अन्न से युक्त, (**सुवीरम्**) उत्तम सन्तानों वाली, (**प्रशस्तम्**) प्रशस्त (**यशसम्**) यशस्कर (**बृहन्तम्**) अपरिमित (**रयिम्**) धन को (**धेहि**) देता है।

भावार्थः—इस अग्नि के ज्वालामय मुख में स्रुवा में घी के समान और चमस् में सोम के समान पुरोडाश आदि हवि को हम डालते हैं। यह हमें अन्नयुक्त, उत्तम सन्तति से युक्त, प्रशस्त, अपरिमित, यशस्कर धन को प्रदान करता है ॥१५॥

यह दशम मण्डल में इक्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९२

ऋषिः—१—१५ शार्यातो मानवः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ६, १२, १४ निचृज्जगती । २, ५, ८, १०, ११, १५ जगती । ३, ४, ९, १३ विराड्जगती । ७ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१॥

पदार्थः—(**वः**) इन समस्त देवों=दिव्यशक्तियों का अन्यतम (**यज्ञस्य**) यज्ञ के (**रथ्यम्**) वाहक (**विशाम्**) प्रजाओं के (**विश्पतिम्**) पालक (**होतारम्**) होता (**अक्तोः**) रात्रि (**अतिथिम्**) अतिथिभूत और (**विभावसुम्**) विविध दीप्तियों के धनो इस अग्नि को हम प्रयोग में लाते हैं। (**शुष्कासु**) सूखी हुई ओषधियों में (**शोचन्**) जलता हुआ तथा (**हरिणीषु**) हरी-भरी ओषधियों में (**जर्भुरत्**) पुष्टि देता हुआ, (**वृषा**) वर्षा का हेतु (**केतुः**) प्रज्ञापक (**यजतः**) यष्टव्य यह अग्नि (**द्याम्**) द्युलोक में (**अशायत**) व्यापक है।

भावार्थः—समस्त दिव्य शक्तियों में एक, प्रजाओं के पालक यज्ञ के वाहक, रात्रि के अतिथिभूत और विविध दीप्तियों से युक्त इस अग्नि को हम प्रयोग में लाते हैं। शुष्क ओषधियों को जलाता हुआ और हरी-भरी को पुष्टि देता हुआ, वर्षा का कारण, प्रकाश का केतु और यष्टव्य अग्नि द्युलोक में व्यापक हो रहा है ॥१॥

इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२॥

पदार्थः—(**उभये**) देव और मनुष्य दोनों (**अञ्जः पाम्**) अनायास रक्षक, (**धर्माणम्**) धारण (**इमम्**) इस (**अग्निम्**) अग्नि को (**विदथस्य**) यज्ञका (**साधनम्**) साधन वा साधक (**अकृण्वत**) बनाते हैं, (**अरुषस्य**) आरोचमान वायु के (**तनूनपातम्**) पुत्र, (**यह्वम्**) महान् (**पुरोहितम्**) सभी पदार्थों के पूर्व विद्यमान (**उषसः**) उषा के (**अक्तुम्**) अभिरञ्जक आदित्य के (**न**) समान इस अग्नि का (**निंसते**) आश्रय लेते हैं।

भावार्थः—जगत् की दिव्यशक्तियें और मनुष्य लोग दोनों ही अना-

यासरक्षक, धारक इस अग्नि को यज्ञ का साधन = माध्यम बनाते हैं। आरोचमान वायु का पुत्र महान्, सब पदार्थों का पूर्ववर्ती उषा के प्रकट करने वाले आदित्य के समान इस अग्नि का आश्रय लेते हैं ॥२॥

बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३॥

पदार्थः—(**विपणेः**) विविध व्यवहारों के योग्य, (**अस्य**) इस अग्नि के (**नीथा**) सम्बन्धी वाणियां (**बट्**) सत्य हों ऐसा (**मन्महे**) मैं ज्ञानी चाहता हूं (**च**) और (**अस्य**) इस अग्नि की (**वयाः**) गतियां (**अत्तवे**) लोकों एवम् पदार्थों के ग्रहण के लिए (**प्रहुताः**) लगी वा संलग्न (**आसुः**) रहें । (**यदा**) जब (**घोरासः**) घोर ज्वालायें (**अमृतत्त्वम्**) अविनाशित्व को (**आशत**) प्राप्त होती हैं (**आत् इत्**) तब (**दैव्यस्य**) देवों में होने वाले (**जनस्य**) प्रकाश के **जनक** इस अग्नि के लिए लोग आहुतियों को (**चर्किरन्**) उसमें डालें ।

भावार्थः—विविध व्यवहारों में लाने योग्य इस अग्नि के सम्बन्ध में कही जाने वाली वाणियां सत्य हों, यही मुझ ज्ञानी की कामना है । तथा इस अग्नि की विविध गतियाँ लोकों और पदार्थों के धारण में संलग्न रहें। जब घोर ज्वालायें स्थिरता को प्राप्त होती हैं तब इस देवों में होने वाले अग्नि के लिए लोग आहुतियाँ डालें ॥३॥

ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्यरमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४॥

पदार्थः—(**ऋतस्य**) सृष्टि के शाश्वत नियम का (**प्रसितिः**) विस्तार (**हि**) निश्चय (**द्यौः**) द्युलोक, (**उरु**) महान् (**व्यचः**) अन्तरिक्ष, (**अरमतिः**) पर्यन्तरहित (**पनीयसी**) प्रशस्यतमा (**मही**) पृथिवी (**नमः**) अग्नि वा प्रकाश हैं, (**इन्द्रः**) विद्युत्, (**मित्रः**) उदान, (**वरुणः**) प्राण (**अथो**) और (**भगः**) वायु, तथा (**सविता**) सूर्य आदि (**पूतदक्षसः**) शुद्ध पवित्र बल वाले इस नियम का (**संचिकित्रिरे**) ज्ञान कराते हैं ।

भावार्थः—सृष्टि के शाश्वत नियम के ही विस्तार यह द्युलोक, महान् अन्तरिक्ष, पर्यन्तरहित पृथिवी और अग्नि हैं । विद्युत्, उदान, प्राण, वायु सूर्य आदि पवित्र शुद्ध बल वाले इस नियम का ज्ञान कराते हैं ॥४॥

प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५॥

पदार्थः—(**सिन्धवः**) स्यन्दनशीला जल धारायें (**ययिना**) गतिमय (**रुद्रेण**) मरुद् गण के साथ (**अरमतिम्**) पात्र रहित (**महीम्**) पृथिवी को (**तिरः दधन्विरे**) आच्छादित करती हैं, (**येभिः**) जिनके द्वारा (**परिज्मा**) सब तरफ जाने वाला वायु (**परियन्**) चारों तरफ जाता हुआ (**उरु**) बहुत (**ज्रयः**) वेग करता है, और (**जठरे**) अन्तरिक्ष में (**रोरुवत्**) गर्जता हुआ पर्जन्य (**विश्वम्**) समस्त भुवन को (**उक्षते**) सींचता है ।

भावार्थः—स्यन्दनशील जलधारायें गतिमय मरुद्गण के साथप्रान्तरहित पृथिवी को आच्छादित करती हैं । जिन मरुद्गणों के साथ सब तरफ जाने वाला वायु चलता हुआ बहुत वेग धारण करता है और अन्तरिक्ष में गर्जता हुआ पर्जन्य समस्त भुवन को वृष्टि से सींचता है ॥५॥

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥६॥

पदार्थ—(**असुरस्य**) मेघ के (**नीळयः**) आवास भूत (**दिवः**) अन्तरिक्ष के (**श्येनासः**) गतिशील (**विश्वकृष्टयः**) मनुष्यों को न्याय करने वाले (**रुद्राः**) रुद्र से उत्पन्न ये (**मरुतः**) मरुत् लोग (**क्राणाः**) अपने कार्य को करते हुए विद्यमान हैं (**तेभिः**) उनके साथ (**अर्वशेभिः**) गतिवाले (**देवेभिः**) देवों के साथ (**अर्वशः**) गतिमान् (**इन्द्रः**) वायु (**चष्टे**) देखा जाता है उन्हीं के साथ (**वरुणः**) अपस्तत्व, (**मित्रः**) अग्नि और (**अर्यमा**) सूर्य (**चष्टे**) देखे जाते हैं ।

भावार्थः—मेघ के आवासभूत, अन्तरिक्ष लोक के गतिशील तत्त्व रुद्र से उत्पन्न ये मरुत् लोग अपने कार्य में लगे रहते हैं । इनके साथ, गतिशील अन्य दिव्य तत्त्वों के साथ गतिमान् वायु देखा जाता है और इन्हीं के साथ अपस्तत्त्व अग्नि और सूर्य देखे जाते हैं ॥६॥

इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥७॥

पदार्थः—(**शशमानासः**) स्तुति करने वाले (**इन्द्रे**) ऐश्वर्यवान् प्रभु के आश्रय (**भुजम्**) रक्षा को (**आशत**) प्राप्त करते हैं क्योंकि (**दृशीके**) देखने में

(**सूरः**) सूर्य के समान तेजस्वी (**पौंस्ये**) बल में (**वृषणः**) मेघ के समान सुख आदि की वर्षा करने वाला है (**ये**) जो (**कारवः**) यजमान और ऋत्विज् लोग (**अर्हणा नु**) अर्चना द्वारा (**अस्य**) इस प्रभु की (**प्र ततक्षिरे**) स्तुति करते हैं (**नृ सदनेषु**) यज्ञों में (**युजम**) साहाय्यकारी (**वज्रम**) वज्रवत् अमोघ प्रभुबल को प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः- स्तुति करने वाले ऐश्वर्यवान् प्रभु के आश्रय रक्षा को प्राप्त करते हैं। प्रभु देखने में सूर्य-सम तेजस्वी और बल में मेघ के समान सुख आदि वर्षा करने वाला है। जो यजमान और ऋत्विग्जन अर्चना द्वारा इस प्रभु की स्तुति करते हैं वे यज्ञों में साहाय्यकारी प्रभु बल को प्राप्त करते हैं ॥७॥

सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८॥

पदार्थः- (**अस्य**) इस परमेश्वर की आज्ञा और भय में (**सूरः**) सूर्य (**चित्**) भी (**हरितः**) किरणों को (**आ**) चारों तरफ प्रेरित करता है, और (**आ रीरमत्**) सभी जगत् को आनन्दित करता है (**यः**) जो (**कः चिद्**) कोई भी विश्व में है वह (**तवीयसः**) शक्तिशाली (**इन्द्रात्**) परमेश्वर के भय से (**बिभेति**) भयभीत होता है और (**वृष्णः**) कामों की वर्षा करने वाले (**भीमस्य**) भयंकर परमेश्वर के (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**अभिश्वसः**) वायुरूपी श्वास को लेते हुए (**जठरात्**) अन्तरिक्ष से (**सुहुरिः**) सबको पराजित करने वाला मेघ (**अबाधितः**) बाधा रहित हुआ (**स्तन्**) गर्जता है ।

भावार्थः—इस परमेश्वर की आज्ञा और भय से ही सूर्य अपनी किरणों को बिखेरता, तपता और जगत् को आनन्दित करता है। संसार में जो भी अग्नि आदि पदार्थ हैं परमेश्वर के भय से भीत होते हैं। कामनाओं की वर्षा करने वाले भयंकर परमेश्वर प्रतिदिन वायुरूपी श्वास को लेते हुए अन्तरिक्ष से शक्तिशाली मेघ निर्बाध गरजता है ॥८॥

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९

पदार्थः--(**येभिः**) जिन (**एवयावभिः**) वेगात्मक शक्तिशाली पदार्थों सहित (**स्ववान्**) स्वयं शक्तिशाली, (**शिवः**) कल्याण कारी (**स्वयशाः**) स्वयं यशस्वी राजा (**निकामभिः**) नितराम् कान्तियुक्त पदार्थों (**दिवः**) दिव्य वस्तुओं को (**सिषक्ति**) प्रदान करता है, हे लोगो ! (**अद्य**) आज उन्हीं शक्तियों से युक्त (**रुद्राय**) भयंकर (**शिक्वसे**) शक्तिशालो (**क्षयद्वीराय**) वीरों को नष्ट करने वाले को (**नमसा**) नमन के साथ (**स्तोमम्**) प्रशंसा वचन (**दिदिष्टन**) प्रयुक्त करो ।

भावार्थः--जिन वेगात्मक शक्तिशाली, पदार्थों सहित, स्वयं शक्तिशाली ,कल्याणकारी, स्वयं यशस्वी राजा कान्ति युक्त पदार्थों से दिव्य वस्तुओं को प्रजा को देता है उन्हीं शक्तियों और पदार्थों से युक्त उस भयंकर शक्तिशाली और शत्रुओं के वीरों को नष्ट करने वाले की नमन के साथ प्रशंसा करो ॥९॥

ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१०॥

पदार्थः--(**हि**) यतः (**वृषभः**) कामों की वर्षा करने वाला (**बृहस्पतिः**) वायु (**सोमजामयः**) सोमतत्व के साथी (**ते**) वे (**देवाः**) विश्वेदेव लोग (**प्रजायाः**) प्रजा के लिए (**श्रवः**) अन्न को (**वि अभरन्त**) वृष्टि आदि के द्वारा पुष्ट करते हैं अतः (**अथर्वा**) विद्वान् याज्ञिक (**प्रथमः**) प्रथम (**यज्ञैः**) यज्ञों से (**विधारयत्**) मार्ग स्थापित करता है । (**भृगवः**) तपस्वी लोग (**दक्षैः**) बलों द्वारा यज्ञों को (**संचिकित्रिरे**) ज्ञात करते हैं ।

भावार्थः--यतः कामों की वर्षा करने वाला वायु और सोमत्व के साथी विश्वेदेव प्रजा के लिए वृष्टि आदि के द्वारा अन्न को संपुष्ट करते हैं अतः विद्वान् याज्ञिक प्रथम यज्ञों द्वारा ही मार्ग स्थापित करता है और तपस्वी लोग आत्मज्ञान के बलों से इन यज्ञों को ज्ञात करते हैं ॥१०॥

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११॥

पदार्थः (**भूरिरेतसा**) बहुत जलों वाले, (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक, (**यमः**) वायु, (**अदितिः**) उषा (**त्वष्टा देवः**) सूर्य देव, (**द्रविणोदाः**) धन आदि का दाता अग्नि, (**ऋभुक्षणः**) प्रकाशकिरणें, (**रोदसी**) रुद्र

की पत्नी=शक्ति (**मरुतः**) मरुत् लोग तथा (**विष्णुः**) आदित्य आदि (**ते**) वे देव लोग (**चतुरंगः**) चारों अग्नियों से युक्त (**नराशंसः**) यज्ञ में (**प्रर्याहरे**) यथायोग्य स्थान दिए जाते हैं ।

भावार्थः—बहुत जलों से युक्त द्यु और पृथिवी लोक वायु, उषा, सूर्य देव, अग्नि, प्रकाश किरणें, रुद्राणी जो रुद्र की पत्नी है वह, मरुत् गण और आदित्य आदि देव चारों प्रकार की अग्नियों से युक्त नाराशंस=यज्ञ में यथायोग्य स्थान दिए जाते हैं ॥११॥

उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ॥१२॥

पदार्थः—(**उत**) और (**नः**) हम (**उशिजाम्**) ऋत्विजों की (**उर्विया**) महती प्रशंसा उक्ति को (**स्यः**) यह (**कविः**) क्रान्तदर्शन (**अहिः बुध्न्यः**) अन्तरिक्षस्थ अग्नि (**हवीमनि**) यज्ञ में (**शृणोतु**) सुनाने का साधन बने (**दिविक्षिता**) आकाश में रहने वाले (**सूर्यामासा**) सूर्य और चन्द्रमा (**विचरन्ता**) विचरते हुए (**धिया**) अपने कर्म से (**बोधतम्**) सबके लिए अपने ज्ञान का साधन बने तथा (**शमीनहुषी**) पृथिवी और द्यु (**अस्य**) इसके बोध का साधन बनें ।

भावार्थः - हम ऋत्विजों की प्रशंसा उक्ति को अन्तरिक्षस्थ अग्नि यज्ञ में सबको सुनाने का साधन बनें । आकाशस्थ सूर्य और चन्द्रमा तथा पृथिवी द्युलोक सबके लिए इसके बोध का साधन बनें ॥१२॥

प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ॥१३॥

पदार्थः—(**पूषा**) विश्व की पोषणशक्ति (**नः**) हमारे (**चरथम्**) जंगम की (**प्र अवतु**) रक्षा करे, (**विश्वदेवाः**) सभी देवों का हितकारी (**अपाम्-नपाद्**) जलों को न नष्ट होने देने वाला (**वायुः**) वायु (**इष्टये**) यज्ञ सिद्धि के लिए (**प्रावतु**) रक्षा करे (**आत्मानम्**) सबके आत्माभूत (**वातम्**) वायु को (**वस्यः**) प्रशस्त अन्न की प्राप्ति के लिए हे ऋत्विग् लोगो ! (**अर्चत**) गुण कर्म का कथन करो, (**सुहवा**) उत्तम प्रशंसा वाले (**अश्विना**) दिन और रात्रि (**यामनि**) आकाश मार्ग में (**तद्**) उस कथन को (**श्रुतम्**) दूसरों को सुनाने के साधन बनें ।

भावार्थः—जगत् की पोषक शक्ति हमारे चेतन धन की रक्षा करे, समस्त देवों का हितकारक और जल का धारक और रक्षक वायु हमारे इष्ट के लिए हमारी रक्षा करे । हे ऋत्विग् लोग प्रशस्त धन की प्राप्ति के लिए सबके आत्माभूत वायु के गुण कर्म का वर्णन करो और दिन और रात्रि आकाश-मार्ग में हमारे इस कथन को दूसरों तक सुनाने का साधन बने ॥१३॥

विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ॥१४॥

पदार्थः—(**अभयानाम्**) संसार के भय से रहित (**आसाम्**) इन (**विशाम्**) मनुष्यों के (**अधिक्षितम्**) अन्दर निवास करने वाले (**स्वयशसम् उ**) स्वयं यशस्वी अग्नि का (**गीर्भिः**) वेद वाणियों से (**गृणीमसि**) गुणगान करते हैं, (**विश्वाभिः**) समस्त (**ग्नाभिः**) देव पत्नियों=अर्थात् देवों में निहित शक्तियों से युक्त (**अनर्वणम्**) अदीन (**अदितिम्**) देवों की माता प्रकृति का वर्णन करते हैं, (**अक्तोः**) रात्रि को (**युवानम्**) अपने तेज से मिश्रित करने वाले चन्द्रमा का, (**नृमणाः**) जो आदित्य है उसका (**अध**) और (**पतिम्**) सबके पालक इन्द्र का वर्णन करते हैं ।

भावार्थः—भयरहित इन मनुष्यों के अन्दर विद्यमान स्वयं यशस्वी अग्नि का हम वेदवाणियों से वर्णन करते हैं, समस्त देवों की शक्तियों से युक्त अदीन प्रकृति, रात्रि को तेजोयुक्त करने वाले चन्द्र, आदित्य और इन्द्र=वायु का हम वर्णन करते हैं ॥१४॥

रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५॥

पदार्थः—(**अत्र**) इस संसार में (**पूर्वः**) पूर्ण (**अङ्गिराः**) इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रमने वाला प्रभु (**जनुषा**) जगत् की उत्पत्ति के द्वारा (**रेभत्**) उपदेश करता है (**ऊर्ध्वा**) शीर्षस्थ (**ग्रावाणः**) विद्वज्जन (**अध्वरम्**) उस अविनाशी प्रभु का (**अभिचक्षुः**) साक्षात्कार करते हैं, (**विचक्षणः**) विश्व का द्रष्टा वह (**विहायाः**) आकाशवत् व्यापक (**अभवत्**) है, (**स्वधितिः**) अपने सामर्थ्य से जगत् को धारण करने वाला परमेश्वर (**येभिः**) जिन विद्वानों के द्वारा देखा

जाता है उनसे युक्त प्राणीसमुदाय के हितार्थ (**सुमेकम**) उत्तम, (**पाथः**) पालनकारी जल को (**वनन्वति**) वृष्टि के मार्ग में प्रेरित करता है ।

भावार्थः—इस संसार में पूर्ण और इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में विद्यमान प्रभु संसार की उत्पत्ति के द्वारा लोगों को अपने गुर्ण कर्म स्वभाव और जीवों के उद्देश्य का उपदेश करता है। उच्च कोटि के विद्वान् उसका साक्षात् करते हैं। वह परमेश्वर समस्त विश्व के प्राणीसमुदाय के हितार्थ उत्तम जल को वृष्टि के मार्ग में प्रेरित करता है ॥१५॥

यह दशम मण्डल में बानवेवां सूक्त समाप्त हुग्रा ॥

सूक्त ९३

ऋषिः—१—१५ तान्वः पार्थ्यः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१
विराट्पङ्क्तिः । ४ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ५ आर्चीभुरिक्पङ्क्तिः ।
६, ७, १०, १४ निचृत्पङ्क्तिः । ८ आस्तारपङ्क्तिः । ९
अक्षरपङ्क्ति । १२ आर्चीपङ्क्तिः । २, १३ आर्चीभु-
रिगनुष्टुप् । ३ पादनिचृदनुष्टुप् । ११ न्यङ्कु-
सारिणीबृहती । १५ पादनिचृद्बृहती ॥
स्वरः—१, ४–१०, १२, १४
पञ्चमः । २, ३, १३ गान्धारः ।
११, १५ मध्यमः ॥

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥१॥

पदार्थः—(**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**महि**) अत्यन्त (**उर्वी**) विस्तीर्ण (**भूतम**) होते हैं, (**यह्वी**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी (**नारी न**) दो स्त्री की तरह (**नः**) हमारी रक्षा करने वाली (**सदम**) सदा होती है। ये अपने (**ऐभिः**) रक्षा गुणों से (**नः**) हमें (**शूषणि**) बल के निमित्त (**पातम**) रक्षण देती है (**तेभिः**) उन्हीं रक्षणों के द्वारा (**नः**) हमारे (**सह्यसः**) विनाश करने वाले का भी (**पातम**) रक्षण करती है ।

भावार्थः—द्यु और पृथिवी लोक अत्यन्त विस्तीर्ण हैं । ये दोनों स्त्रियों के समान हमारी रक्षा सदा करती हैं। अपने रक्षा के गुणों से ये जिस प्रकार हमारी रक्षा और पालना करती हैं वैसे ही उन्हीं से हमारे शत्रु की भी रक्षा करती हैं ॥१॥

यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥२॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**मर्त्यः**) मनुष्य (**यज्ञे यज्ञे**) सभी यज्ञों में (**देवान्**) यज्ञ देवों की (**परिचरति**) हवि आदि से सेवा करता है (**यः**) जो (**दीर्घश्रुत्तमः**) अतिशिक्षित एवं पठित (**सुम्नैः**) सुख कारक हवियों से (**एनान्**) इन देवों की (**आविवासति**) परिचर्या करता है ।

भावार्थः—जो दीर्घश्रुत्तम मनुष्य सुखकारक हवियों से इन देवों की परिचर्या करता है वही मनुष्य सभी यज्ञों में वस्तुतः देवों की सेवा करता है। अर्थात् विना हवि के यज्ञ नहीं होता है ॥२॥

विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः ।
विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥३॥

पदार्थः—(**विश्वेषाम्**) समस्त भुवनों के (**इरज्यवः**) स्वामी (**देवानाम्**) द्योतन दान आदि गुणों से युक्त दिव्यशक्तियों का (**वाः**) वरणीय तेज धन (**महत्**) महान् हैं, (**विश्वे**) ये सभी (**विश्वमहसः**) व्यापक तेजों वाले (**हि**) निश्चय ही (**विश्वे**) ये सभी (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**यज्ञियाः**) यष्टव्य है ।

भावार्थः—समस्त भुवनों पर अधिकार रखने वाली, द्योतन, दान, दीपन आदि गुणों से युक्त इन दिव्य शक्तियों का धन, तेज, बल आदि महान् है। ये सभी व्याप्त तेजों वाले और सभी यज्ञों में यष्टव्य हैं ॥३॥

ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥४॥

पदार्थः—(**अर्यमा**) सूर्य, (**मित्रः**) उदान प्राण, (**परिज्मा**) सर्वत्रगति (**वरुणः**) वायु, (**स्तुतः**) स्तुत (**रुद्रः**) अग्नि (**पूषणः**) सबके पोषक (**मरुतः**)

मरुद्गण और (**भगः**) भग (**ते**) वे (**राजानः**) प्रकाशमान (**अमृतस्य**) हवि से (**मन्द्राः**) तृप्त होने वाले देव लोग (**नृणाम**) मनुष्यों को (**कत**) सुख देते हैं ।

भावार्थः—सूर्य, उदान, प्राण, सर्वगति वायु, प्रशस्त अग्नि, सबके पोषक मरुद्गण और भग आदि सभी हवि से तृप्त होने वाले ये देव मनुष्यों को सुख देते हैं ॥४॥

उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥५॥

पदार्थः—(**उत**) और भी (**वृषण्वसू**) वृष्टि रूपी धन वाले (**अश्विनौ**) प्राणोदान, (**अपाम्**) जलों के सम्बन्धी (**सधन्या**) समान धन वाले (**सूर्यामासा**) सूर्य और चन्द्र, (**बुध्नेषु**) अन्तरिक्ष में मेघों में (**यत्**) जो (**अहिः बुध्न्यः**) अग्नि (**सदनाय**) रहने के लिए (**सादि**) स्थित होता है (**एषाम्**) इनके (**सचा**) साथ (**नक्तम्**) रात दिन (**उरुष्यताम्**) हमारी रक्षा के साधन बनते हैं ।

भावार्थः—वृष्टि धन वाले प्राण और उदान, जलों से सम्बन्ध रखने वाले, समान संपत्ति वाले सूर्य और चन्द्रमा अन्तरिक्षस्थ मेघ में रहने वाले अग्नि के साथ रात दिन हमारी रक्षा के साधन बनते हैं ॥५॥

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥६॥

पदार्थः—(**शुभस्पती**) जल के स्वामी (**अश्विना**) सूर्य और चन्द्रमा (**उत**) और (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान (**नः**) हमारी (**धामभिः**) अपने तेजों से (**उरुष्यताम्**) रक्षा करते हैं । ये जिसकी रक्षा करते हैं (**सः**) वह (**महः**) महान् (**रायः**) धनों को (**एषते**) प्राप्त करता है और (**धन्व इव**) मरुप्रदेश के समान (**दुरिता**) दुःखों को (**अति**) लांघ जाता है ।

भावार्थः—जल के स्वामी सूर्य और चन्द्रमा तथा प्राण और उदान हमारी रक्षा करते हैं । ये देव वास्तव में जिसकी रक्षा करते हैं वह महान् धनों को प्राप्त करता है और मरु प्रदेश के समान दुःखों को लांघ जाता है ॥६॥

उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ॥७॥

पदार्थः—(**उत**) अपि च (**रुद्रा**) रुलाने वाले (**अश्विना**) प्राण और अपान (**चित्**) भी (**नः**) हमारी (**मृडताम**) रक्षा करें, (**रथस्पतिः**) रमणीय शरीरों का पालक पूषा (**भगः**) ऐश्वर्य का स्वामी सम्वत्सरी तेज, (**ऋभुः**) महान् (**वाजः**) ज्ञानी (**ऋभुक्षणः**) महान् (**विश्ववेदसः**) सब धनों के स्वामी विश्वे देव और (**परिज्मा**) सर्वत्रगामी वायु हमारी रक्षा करे ।

भावार्थः—शरीर से निकलते समय रुला देने वाले प्राण और अपान हमारी रक्षा करें । रमणीय शरीरों का पालक पूषा, सम्वत्सरीय तेज, महान् ज्ञानी, सर्वत्रगति वायु और महान् धनों के स्वामी सभी देव हमारी रक्षा करें ॥७॥

ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ॥८॥

पदार्थः—(**ऋभुक्षाः**) इन्द्र=विद्युत् (**ऋभुः**) महान् है, (**विदधतः**) इन्द्र आदि देवों को बनाने बाले प्रभु का (**मदः**) आनन्द भी (**ऋभुः**) महान् है, (**आजूजुवानस्य**) शीघ्र गति देने वाले (**ते**) इस इन्द्र=विद्युत् के (**हरी**) धारण और आकर्षण अथवा धन और ऋण भेद (**वाजिना**) बलवान् हैं, (**यस्य**) जिस विद्युत् का (**सामचित्**) फेंकने वाला धर्म भी अथवा समन्वयन (**दुस्तरम्**) कठिन है (**यज्ञः**) इस विद्युत् का संयोग, विभाग आदि धर्म भी (**मानुषः**) मानुष=मनुष्य सम्बन्धी (**न**) नहीं है किन्तु (**ऋधक्**) सर्वथा भिन्न है ।

भावार्थः—विद्युत् की शक्ति बहुत बड़ी है, इन्द्र आदि देवों को बनाने वाले परमेश्वर का आनन्द भी अपार है, शीघ्रता से गति प्रदान करने वाले इस विद्युत् के ऋणात्मक धनात्मक प्रकार एवं धारण आकर्षण भी बलवान् है, इसकी दूर फेंकने वाली शक्ति भी कठिन हैं और इस विद्युत् के संयोग विभाग आदि धर्म भी मानुष नहीं हैं । वे अमानुष और सर्वथा भिन्न हैं ॥८॥

कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ॥९॥

पदार्थः—(**सवितः देव**) यह सूर्य देव (**न**) हमें (**प्रहृयः**) सदा गौरव से उच्च मस्तक वाला करता है (**च**) और (**सः**) वह (**मघोनाम**) यजमानों के बीच में (**स्तुषे**) प्रशंसा किया जाता है । (**इन्द्रः**) शरीरस्थ विद्युत (**वह्निभिः**) ऊष्माओं अथवा वहन करने वाले (**मरुद्भिः**) प्राणों के साथ (**एषाम**) इन सभी (**चर्षणीनाम**) मनुष्यों के (**सहः**) बल को (**चक्रम न**) रथ के चक्र के समान और (**रश्मिम**) रास के (**न**) समान (**नि योयुवे**) नियन्त्रित करता है।

भावार्थः—यह सूर्य हमें सदा उच्च मस्तक रहने की प्रेरणा देता है, और वह यजमानों के द्वारा प्रशंसा किया जाता है। शरीरस्थ विद्युत् ऊष्मा और प्राणों के साथ इन सभी मनुष्यों के बल को उसी प्रकार नियन्त्रण में रखता है जिस प्रकार रथ का चक्र रथ को और रस्सी रस्सी से बंधे हुए को नियंत्रण में रखती है ।।९।।

ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ।।१०।।

पदार्थः—(**द्यावा पृथिवी**) हे विद्वान् और राजा ! आप दोनों (**अस्मे**) हमारे सम्बन्धी (**एषु**) इन (**वीरेषु**) पुत्र पौत्रों में (**विश्वचर्षणि**) सर्व मनुष्यों के हितकारी (**महत**) महान् (**श्रवः**) धन और यश को (**आ धातम**) दीजिए, (**वाजस्य**) अन्न और ज्ञान के बांटने के लिए (**पृक्षम**) पालन-पोषणकारी अन्न (**उत**) और (**तुर्वणे**) शत्रुओं वा विपत्तियों को तरने के लिए (**राया**) धन के साथ दीजिए ।

भावार्थः—हे विद्वान् और राजा ! आप दोनों हमारे पुत्र-पौत्रों में सर्व मनुष्यों का हितकारी यश और धन दीजिए । ज्ञान और अन्न के बांटने के लिए और बाधाओं एवं शत्रुओं से पार पाने के लिए धन के साथ पालन-पोषणकारी अन्न दीजिए ।।१०।।

एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये।
मेदतां वेदता वसो ॥११॥

पदार्थः—(**वसो**) हे सबको वास देने वाले, (**सहसावन्**) बलवन (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् प्रभो ! (**अस्मयुः**) हमें चाहने वाले (**त्वम**) आप (**कूचित**) कहीं पर भी (**सन्तम**) स्थित (**एतम**) इस (**शंसम**) स्तोता को (**अभिष्टये**) इसकी

अभीष्ट सिद्धि के लिए (**सदा**) सदा (**पाहि**) रक्षा करें, (**वेदता**) अपने ज्ञान से (**मेदताम**) बोधयुक्त करें ।

भावार्थ—हे सबको निवास देने वाले, बलवन्, परमैश्वर्यवन् परमेश्वर हमें चाहने वाले आप कहीं पर भी स्थित इस मुझ स्तोता की मेरे अभीष्ट की सिद्धि के लिये सदा रक्षा करें और अपने ज्ञान से हमें बोधयुक्त करें ।।११।।

एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ।।१२।।

पदार्थः—(**नृणाम्**) उत्तम कर्मों के नेताओं के (**संवननम्**) सेवनीय (**मे**) मुझ स्तोता के (**एतम्**) इस (**स्तोमम्**) स्तोत्र को ऋत्विग् लोग उसी प्रकार (**न**) संप्रति (**ववृधन्त**) बढ़ाते हैं जिस प्रकार (**सूर्ये**) सूर्य में (**द्युतद्यामानम्**) दीप्त गमन (**तना**) विस्तृत रश्मियें प्रकाश को बढाती है तथा (**न**) जिस प्रकार (**अनपच्युतम्**) च्युतिरहित (**अश्व्यम्**) अश्व से चलने वाले रथ को (**तष्टा**) शिल्पी बनाता है ।

भावार्थः—उत्तम कर्मों के नेताओं के द्वारा सेवनीय मुझ स्तोता के स्तोत्र को ऋत्विग् लोग उसी प्रकार सदा उच्चारित करते हैं जिस प्रकार सूर्यस्थ प्रकाश को दीप्त गमन वाली रश्मियें बढ़ाती है और जिस प्रकार च्युतिरहित और अश्वों से चलने वाले रथ को शिल्पी बनाता हैं ।।१२।।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययीं ।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ।।१३।।

पदार्थः—(**येषाम्**) जिनकी स्तुति उपासना (**राया**) ज्ञान धन से (**युक्ता**) युक्त होती है और जिनके पौरुष (**नेमधिता**) संग्राम में (**पौंस्या न**) बलों के समान (**वृथा इव**) अनायास ही (**विष्टान्ता**) परस्पर गुथे अन्तों वाले होते हैं (**एषाम्**) इनकी वाणी (**हिरण्ययी**) प्रकाशमयी और हितरमणीय (**ववर्त**) होती है ।

भावार्थः—जिनकी स्तुति उपासना ज्ञान धन से युक्त होती है और जिनके पराक्रम संग्राम में बलों के समान अनायास ही परस्पर गुथे हुए अन्तों वाले होते हैं इनकी वाणी प्रकाशमयी एवं हितरमणीय होती है ।।१३।।

प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥१४॥

पदार्थः—(दुःसीमे) सीमा रहित आकाश में (वेने) सूर्य के (पृथवाने) विस्तृत हो जाने पर अथवा महान् यज्ञ के विस्तृत होने पर तथा (रामे) रात्रि के अन्धकार में (असुरे) मेघ के समय में (मघवत्सु) धन प्राप्ति के कर्मों में मैं यजमान (एषाम्) इन समस्त देवों की (विश्रावि) स्पष्ट सुनने योग्य ढंग से स्तुति=प्रशंसा करता हूँ (ये) जो (अस्मयुः) अच्छी कामना रखने वाले हैं और (पथा) यज्ञ के मार्ग से हमें (पञ्च शता) सैकड़ों गुणों और शक्तियों से (युक्त्वाय) युक्त हो हमें प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—सीमारहित आकाश में सूर्य के प्रकाशित हो जाने पर अथवा महान् यज्ञ के विस्तृत होने पर, रात्रि के अन्धकार में भी, मेघ के समय में और धन प्राप्ति के कर्मों में मैं यजमान स्पष्ट सुनने योग्य ढंग से इन देवों की प्रशंसा करता हूं जो हमारे प्रति अच्छी कामना रखने वाले हैं और यज्ञ के मार्ग से हमें सैकड़ों गुणों और शक्तियों से युक्त होकर हमें प्राप्त हैं ॥१४॥

अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च ।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥१५॥

पदार्थः—(अत्र नु) इस विषय में (तान्वः) विस्तृत धन वाला (सप्त-सप्ततिम्) ७७ गायों की प्राप्ति की भगवान् से (सद्यः) सदा (अधि दिदिष्ट) याचना करता है, (पार्थ्यः) बहुत विस्तृत भूमि वाला (सद्यः) सदा (अधि-दिदिष्ट) याचना करता है,(मायवः) प्रज्ञावाला मनुष्य (इत्) भी (सद्यः) सदा (अधि दिदिष्ट) याचना करता है ।

भावार्थः—इस प्रकार इस विषय में विस्तृत धन वाला मनुष्य, विस्तृत भूमि वाला मनुष्य और प्रज्ञावाला मनुष्य भी प्रभु से ७७ गौवों= प्रभूत गौवों की प्राप्ति की याचना करता है ॥१५॥

यह दशम मण्डल में तिरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९४

ऋषिः—१—१४ अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः ॥ देवता—ग्रावाणः ॥ छन्दः—
१, ३, ४, १०, ११, १३ विराड्जगती । २, ६, १२ जगती । ८,
९ आर्चीस्वराड्जगती । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१—४, ६, ८—१३ निषादः ५, ७,
१४ धैवतः ॥

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥१॥

पदार्थः—(एते) ये विद्वान् पुरुष (प्र वदन्तु) उत्तम उपदेश करें (वयम्) हम भी (प्रवदद्भ्यः) उपदेश करते हुए (ग्रावभ्यः) विद्वानों से प्राप्त (वाचम्) वाणी को (प्रवदाम) अन्यों को उपदेश करें, हे ऋत्विग् लोग आप भी (वाचम्) उस वाणी का (वदत) उपदेश करो, (यत्) जब (अद्रयः) आदरणीय (पर्वताः) पर्वतों के समान धीर (सोमिनः) योगी (आशवः) तीक्ष्णबुद्धि विद्वान् आप सब (इन्द्राय) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु के लिए (साकम्) एक साथ (श्लोकम्) मन्त्रमय (घोषम्) घोष को (भरथ) करते हो ।

भावार्थः ये विद्वान् जन उत्तम उपदेश करें । हम भी उपदेश करने वाले विद्वानों से प्राप्त उपदेश का अन्यों को उपदेश करें । हे ऋत्विग् लोगो ! आप भी उस वाणी का उपदेश करो जब कि आदरणीय, पर्वतों के समान दृढ, योगयुक्त, तीक्ष्णबुद्धि विद्वान् आप सब एक साथ मिलकर मन्त्रमय घोष को उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिए करते हो ॥१॥

एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२॥

पदार्थः—(पूर्वे) ज्ञानपूर्ण (एते) ये (ग्रावाणः) विद्वज्जन (शतवत्) सैकड़ों और (सहस्रवत्) सहस्र लोगों की भांति (वदन्ति) बोलते हैं, (सुकृतः) उत्तम कर्मों के करने वाले (विष्ट्वी) घर-घर में जाकर (हरितेभिः) तेजस्वी (आसभिः) मुखों से (सुकृत्यया) उत्तम-उत्तम कृत्यों के साथ (अभिक्रन्दन्ति) उपदेश करते हैं, और (होतुः चित्) होता अग्नि के (अद्यम) अदनीय (हविः) हवि को यज्ञार्थ (आशत) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः— पूर्णज्ञानी ये विद्वज्जन सैकड़ों सहस्रों के समान बोलते हैं। उत्तम कर्मों के करने वाले ये घर-घर में जाकर संस्कार आदि कृत्यों के साथ अपने तेजस्वी मुखों द्वारा उपदेश करते हैं और यज्ञ आदि कार्यों के लिए अग्नि के भक्ष्य हवि आदि को प्राप्त करते हैं ॥२॥

एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३॥

पदार्थः—(**वृक्षस्य**) वृक्ष के (**पक्वे**) पके (**आमिषि अधि**) फल में जिस प्रकार लोग (**मधु**) मधुर रस को (**अविदन्**) प्राप्त करते हैं और (**अना**) मुख से उसका बखान करते हैं उसी प्रकार (**एते**) ये विद्वान् लोग (**वदन्ति**) उपदेश करते हैं और (**वि ऊङ्खयन्ते**) नियम से उसका बार-बार अभ्यास करते हैं (**अरुणस्य**) दीप्तियुक्त (**वृक्षस्य**) प्रकृति वृक्ष की (**शाखाम्**) शाखा पर लगे फल को (**बप्सतः**) भोगने वाले (**ते**) वे (**सूभर्वाः**) उत्तम भोगों के भोक्ता (**वृषभाः**) बलवान् जन (**प्र ईम अराविषुः**) परमेश्वर के विषय में अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं।

भावार्थः—वृक्ष के पके फल में लोग जिस प्रकार मधुर रस को प्राप्त करते हैं और मुख से बखान करते हैं उसी प्रकार ये विद्वान् लोग उपदेश करते हैं और नियम से उसका बार-बार अभ्यास करते हैं। दीप्तियुक्त प्रकृतिरूपी वृक्ष की शाखा पर लगे फल के भोक्ता ये उत्तम भोगों वाले बलवान् जन उसके स्वामी परमेश्वर के विषय का वर्णन करते हैं ॥३॥

बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४॥

पदार्थः—(**मदिरेण**) हर्षकर (**मन्दिना**) सुखदायी स्तुति वचन से (**एते**) ये विद्वान् लोग (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**क्रोशन्तः**) पुकारते हुए (**बृहत्**) अत्यन्त (**वदन्ति**) शब्द करते हैं, (**अना**) मुख से (**मधु**) मधुर रस को (**अविदन्**) प्राप्त करते हैं (**संरभ्य**) कार्य में दृढ़ उद्योगी होकर (**धीराः**) धीर ये (**उपब्दिभिः**) शब्दों द्वारा (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**आघोषयन्तः**) घोष से पूरित करते हुए (**स्वसृभिः**) अंगुलियों से इंगित करके (**अनर्तिषुः**) भावनाओं को व्यक्त करते हुए हर्ष में नाचते हैं।

भावार्थः—हर्षकर सुखदाया स्तुति वचन से ये विद्वान् लोग परमेश्वर को पुकारते हुए अत्यन्त शब्द करते हैं और मुख से मधुर रस का पान करते हैं। कार्य में दृढ़ उद्योगी होकर धीर ये लोग शब्दों द्वारा पृथिवी को घोष से पूरित करते हुए अंगुलियों के इंगित करके भावनाओं को व्यक्त कर हर्ष में नाचते हैं ॥४॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५॥

पदार्थः—(**सुपर्णाः**) सुपतनशील ग्रावा=मेघ (**उप द्यवि**) समीप अन्तरिक्ष में (**वाचम्**) शब्द (**अक्रत**) करते हैं (**आखरे**) मृगों के रहने के स्थान में (**इषिराः**) गमनशील (**कृष्णाः**) काले मृगों के समान (**सूर्यश्वितः**) सूर्यवत् श्वेतवर्ण ये (**अनर्तिषुः**) नाचते हैं (**निष्कृतम्**) निकाले हुए जल को (**उपरस्य**) मेघ के (**न्यक्**) नीचे (**नियन्ति**) गिराते हैं, (**पुरु**) बहुत सा (**रेतः**) जल (**दधिरे**) अपने अन्दर ही रखते हैं।

भावार्थः–सुपतनशील मेघ समीप अन्तरिक्ष में गरजते हैं। जिस प्रकार मृगशाला में काला हरिण जाता और नाचता है वैसे ही सूर्यवत् श्वेत दिखाई पड़ने वाले ये मेघ नाचते हैं। मेघ से निकले जल को ये नीचे गिराते हैं और बहुत-सा जल अपने अन्दर ही रखते हैं ॥५॥

उग्राइव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥६॥

पदार्थः—(**वृषणः**) यज्ञ के (**धुरम्**) धारक बल को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**साकम्**) एक साथ (**युक्ताः**) लगे हुए ये ग्रावा=मेघ (**प्रवहन्तः**) रथ को वहन करने वाले (**उग्राः**) उग्र घोड़ों के (**इव**) समान (**सम् आयमुः**) एक साथ घूमते हैं, (**यत्**) जब (**श्वसन्तः**) उच्छ्वास लेते हुए (**जग्रसानाः**) वायु को अपने अन्दर प्राप्त करते हुए ये मेघ (**अराविषुः**) गरजते हैं तब (**एषाम्**) इनकी गर्जना (**अर्वताम्**) घोड़ों की (**प्रोथथः**) हेषा के (**इव**) समान (**शृण्वे**) सुनाई पड़ती है।

भावार्थः—यज्ञ के धारक बल को धारण करते हुए एक साथ युक्त ये मेघ रथ को खींचने वाले उग्र घोड़ों के समान एक साथ घूमते हैं। जब

ये फूलते हैं और वायु के वेग को अपने मध्य पाते हैं तब ये गरजते हैं और इनकी यह गर्जना घोड़ों की ह्रेषा के समान सुनाई पड़ती है ॥६॥

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७॥

पदार्थः--(**दशावनिभ्यः**) दश अंगुलियां जिनके कार्य में सहयोग करती हैं, (**दशकक्ष्येभ्यः**) दश अंगुलियां जिनके कार्य की प्रकाशक हैं, (**दशयोक्त्रेभ्यः**) दश अंगुलियाँ जिनको बाँध रखने वाली हैं (**दशयोजनेभ्यः**) दश अंगुलियां जिनका सोम के साथ योग कराती है, (**दशाभीशुभ्यः**) दश अंगुलियां जिनके कर्मों में व्याप्त होती है, (**अजरेभ्यः**) न टूटने वाले, दृढ़ (**दश**) दश (**धुरः**) धु वा ताडन कर्मों से युक्त, (**दशे**) दशों (**वहद्भ्यः**) व्याप्रियमाण (**ग्रावाणः**) सोम कूटने के पाषाणों के हे ऋत्विग् लोग ! आप (**अर्चत**) लाभ की प्रशसा करो ।

भावार्थः –सोम को कूट कर निचोड़ने वाले पाषाणों के प्रत्येक कार्य को ये दश अंगुलियां ही संपादित करती हैं क्योंकि ये इन्हीं से पकड़े गए हुए सब कार्य करते हैं अतः इन दश अंगुलियों से संपादित कर्मों वाले इन पाषाणों के लाभ की ऋत्विग् लोग प्रशंसा करे ॥७॥

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८॥

पदार्थः (**ते**) वे (**अद्रयः**) पाषाण (**आशवः**) जल्दी से प्रयोग किये जाने वाले, और (**दशयन्त्रासः**) दश अंगुलियों से नियन्त्रित हैं, (**तेषाम्**) उनका (**हर्यतम्**) स्पृहणीय (**आधानम्**) अभिषव कर्म (**पर्येति**) चारों तरफ चालू होता है, (**ते उ**) वे ही (**सुतस्य**) चुआये गए (**सोम्यस्य**) सोम सम्बन्धी (**अंशोः**) खण्डरूप (**अन्धसः**) अन्नात्मक (**पीयूषम्**) अमृत को (**प्रथमस्य**) प्रथम (**भेजिरे**) सेवन करते हैं ।

भावार्थः—ये जल्दी काम में लगाये जाने वाले पाषाण दश अंगुलियों से नियन्त्रित हैं। इनका स्पृहणीय अभिषव कर्म चारों तरफ चालू रहता है। वे ही प्रथम चुवाये गए सोम के अन्न के अमृत को पहले सेवन करते हैं ॥८॥

ते सोमादो हरी इन्द्रस्य विंसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥९॥

पदार्थः–(**ते**) वे (**सोमादः**) सोमतत्व को खाने वाले मेघ (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**हरी**) धारण और आकर्षण को (**विंसते**) प्राप्त करते हैं तथा (**गवि**) अन्तरिक्ष में (**अंशुम**) सोम तत्त्व को (**दुहन्तः**) दोहन करते हुए (**अध्यासते**) स्थित रहते हैं (**तेभिः**) उनके द्वारा (**दुग्धम**) दुहे गये (**सोम्यम्**) सोम सम्बन्धी (**मधु**) मधु को (**इन्द्रः**) सूर्य (**पपिवान्**) पीता हुआ (**वर्धते**) बढ़ता है, (**प्रथते**) विस्तृत होता है और (**वृषायते**) सर्व सुखकारी होता है ।

भावार्थः- सोम को खाने वाले ये मेघ सूर्य के धारण और आकर्षण को प्राप्त करते हैं। तथा अन्तरिक्ष में सोम तत्त्व का दोहन करते हुए स्थित रहते हैं। उनके द्वारा दुहे गए सोम सम्बन्धी रस=जल को सूर्य पीता हुआ बढ़ता, विस्तृत होता और सुखकारी है ॥९॥

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥१०॥

पदार्थः—(**अंशुः**) सोम (**वः**) आप को (**वृषा**) यज्ञ में सुखदाता होता है आप लोग भी (**किल**) निश्चय ही (**न**) न (**रिषाथन**) शीर्ण हो, (**इलावन्तः**) अन्नवालों के समान आप लोग (**सदम् इत्**) सदा ही (**आशिताः**) भोजन खाकर तृप्त (**स्थन**) होओ, (**रेवत्याः**) धनवालों के (**इव**) समान (**महसा**) तेज से युक्त (**चारवः**) कल्याणकारी (**स्थन**) होओ (**ग्रावाणः**) हे विद्वानो (**यस्य**) जिस यजमान के (**अध्वरम्**) यज्ञ को आप (**अजुषध्वम्**) सेवन करते हो उसको अपने उपदेश आदि से सुखी करो ।

भावार्थः –हे विद्वानो ! सोम आप को यज्ञ में सुखदाता होता है। आप लोग भी शीर्ण न हों। अन्न वालों की भांति आप लोग सदा ही भोजन खाकर तृप्त होओ और धन वालों के समान तेज से युक्त तथा कल्याणकारी होओ। हे विद्वानो आप लोग जिस यजमान के यज्ञ में जाओ उसको उपदेश आदि से सुखी करो ॥१०॥

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥११॥

पदार्थः- हे विद्वानो ! आप (**अश्रमणा**) श्रमण रहित, (**अशृथाः**) अशिथिल, (**अद्रयः**) आदरणीय, (**अमृत्यवः**) अमारित (**अनातुराः**) रोगरहित, (**अजराः**) जरारहित, (**अमविष्णवः**) सदा गतिशील, (**सुपीवसः**) सुबल, (**अतृषिताः**) तृष्णारहित (**अतृष्णजः**) स्पृहारहित (**तृदिलाः**) दुःखों को काटने वाले (**अतृदिलाः**) स्वयं न छिन्न-भिन्न होने वाले (**स्थ**) होओ ।

भावार्थः- हे विद्वानो ! आप श्रमरहित, अशिथिल, आदरणीय, अमारित, रोगरहित, जरारहित, सदा गतिशील, सुबल, तृष्णारहित, स्पृहारहित, दुःखों के काटने वाले और स्वयं न छिन्न-भिन्न होने वाले होओ ॥११॥

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२॥

पदार्थ— हे विद्वानो ! (**युगे युगे**) सभी समयों में (**ध्रुवा**) अपने नियम में निश्चल (**एव**) ही रहें, (**वः**) आप लोगों के (**पितरः**) माता-पिता (**क्षेमकामासः**) कल्याण चाहने वाले होकर (**सदसः**) किन्ही स्थानों से (**न युञ्जते**) अपने को न जोड़ें अर्थात् सबके रहें और सर्वत्र जावें, (**अजुर्यासः**) जरारहित (**हविषाचः**) सोम के खाने वाले (**हरिद्रवः**) अश्व के समान गति वाले (**द्याम्**) आकाश (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**रवेण**) शब्द से (**आ अशुश्रवुः**) सुनावें।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप सभी समयों में अपने नियम में दृढ़ रहो । आपके माता-पिता सबका कल्याण चाहने वाले होकर किन्ही स्थानों से न चिपके रहें । वे सबके हों और सर्वत्र जावें । जरारहित, सोम के सेवन करने वाले अश्व के समान गति वाले आकाश और पृथिवी को अपने शब्द से गुंजा देवें ॥१२॥

तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥

पदार्थः वे (**अद्रयः**) आदरणीय विद्वान् (**विमोचने**) संकटों के छुड़ाने के निमित्त (**यामन्**) सन्मार्ग में (**तत् इत्**) उसी परमेश्वर का (**अंजस्पा**) शीघ्र रक्षा करने वालों के (**इव**) समान (**घ इत्**) निश्चय ही (**उपब्दिभिः**) शब्दों द्वारा (**वदन्ति**) उपदेश करें, (**बीजम्**) बीज को (**वपन्तः**) बोते हुए (**धान्याकृतः**) किसान के (**इव**) समान (**सोमम्**) सोम को (**बप्सतः**) खाते हुए (**पृञ्चन्ति**) उसे बना रखते हैं (**न मिनन्ति**) नष्ट नहीं करते हैं ।

भावार्थः—वे आदरणीय विद्वान् लोग संकटों के निवारण के निमित्त सन्मार्ग में उसी परमेश्वर शीघ्र रक्षा करने वाले के समान शब्दों द्वारा उपदेश करें । जिस प्रकार किसान लोग खेत को काटते हैं और बीज भी बोते हैं उसी प्रकार ये विद्वान् सोम का भक्षण करते हुए भी उसे बना रखते हैं । उसको नष्ट नहीं करते हैं ॥१३॥

सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥१४॥

पदार्थः—(**चायमानाः**) पूजनीय (**अद्रयः**) आदरणीय (**ग्रावाणः**) विद्वान् लोग (**अध्वरे अधि**) यज्ञ में सोम के (**सुते**) सुत होने पर (**मातरम्**) माता को हाथ से (**तुवन्तः**) तड़ित करते हुए (**आ क्रीडयः**) खेलते कुमारों के समान (**वाचम्**) शब्द (**अक्रत**) करते हैं अर्थात् मन्त्रोच्चार करते हैं, तथा (**विसुषुवुषः**) विशेष रूप से जगत् के उत्पन्न करने वाले प्रभु की (**मनीषाम्**) स्तुति को (**विमुञ्च**) मुख से उन्मुक्त करें अर्थात् करें और (**विवर्तन्ताम्**) पुनः पुनः करें ।

भावार्थः—पूजनीय, आदर के पात्र विद्वान् लोग यज्ञ में सोम के सुत होने पर माता को हाथ से ताड़ित करके खेलते हुए कुमारों के समान शब्द करते हैं अर्थात् मन्त्रोच्चार करते हैं । तथा जगत् के उत्पन्न करने वाले प्रभु की स्तुति को कण्ठ से उन्मुक्त कर छेड़ते हैं और पुनः पुनः करते हैं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में चौरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९५

ऋषिः—१,३, ६, ८—१०, १२, १४, १७ **पुरूरवा ऐलः** । २, ४, ५, ७,
११, १३, १५, १६, १८ **उर्वशी** ॥ **देवता**—१, ३, ६, ८—१०,
१२, १४, १७ **उर्वशी** । २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६,
१८ **पुरूरवा ऐलः** ॥ **छन्दः**—१, २, १२, **त्रिष्टुप्** ।
३, ४, १३, १६, **पादनिचृत्त्रिष्टुप्** । ५, १०
आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ६—८, १५ **विराट्
त्रिष्टुप्** । ९, ११, १४, १७,
१८ **निचृत्त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—धैवतः ॥

विशेष—इस सूक्त में पुरूरवा ऐल और उर्वशी का कथनोपकथन पाया जाता है। पुरूरवा के प्रक्रियानुसार मेघ, वायु और विद्वान् अर्थ होंगे उर्वशी भी प्रक्रियावश विद्युत्, वाक् और स्त्री अर्थ में प्रयुक्त है। इला नाम जल का है। इला=जल से उत्पन्न होने के कारण पुरुरवा मेघ को ऐल कहा गया है। आख्यान जो इतिहास नहीं है, अपना एक स्थान रखता है। यह जड़ पदार्थों में भी कल्पित किया जाता है। वैसा ही कथनोपकथन यहां पर भी है।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१॥

पदार्थः—(**हये**) हे (**घोरे**) घोर (**जाये**) जायाभूत अथवा जायमान विद्युत् ! (**मनसा**) मन के समान वेग से युक्त रहने वाली तू (**तिष्ठ**) ठहर, (**वचांसि**) परस्पर एक दूसरे के वचनों अथवा माध्यमिक स्थानीय शब्दों को (**मिश्रा**) आदान प्रदान से मिश्रित अर्थात् उक्ति प्रत्युक्ति से मिश्रित (**कृणवावहै नु**) करें, ऐसा न करने पर (**नो**) हमारे विषय के (**मंत्राः**) रहस्य (**अनुदितासः**) विना कहे हुए रह जावेंगे और (**एते**) ये ऐसी अवस्था में (**परतरे**) दूसरे (**अहन् चन**) दिनों में (**मयः**) सुख (**न**) नहीं (**करन्**) कर सकते हैं।

भावार्थः—यह मेघ में उत्पन्न होने वाली घोर विद्युत् जो मन के समान वेग से युक्त है स्थित होवे। मेघ और विद्युत् की जो वाणियां गर्जना और कड़क हैं वे परस्पर मिलें। विना ऐसा हुए मेघ और विद्युत् सम्बन्धी रहस्य बिना खुले रह जावेंगे अतः ये उक्ति प्रत्युक्ति द्वारा समझाये जावें ॥१॥

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वातइवाहमस्मि ॥२॥

पदार्थः—उर्वशी का उत्तर-(**एता**) इस (**वाचा**) वाणी अर्थात् वार्तालाप से (**किम्**) क्या (**कृण**) हम दोनों करेंगे क्योंकि अब विद्युत् की कड़क के बाद वह तत्काल समाप्त हो जाती हैं और समाप्त हुई का पुनः मेघ से संपर्क नहीं हो सकता है अतः हम दोनों मिला तो सकते नहीं, (**तव**) तुम्हारे पास से (**अहम्**) मैं (**उषसाम्**) उषाओं के पूर्व होने वाली (**अग्रिमा**) पूर्ववती उषाओं के (**इव**) समान (**प्राक्रमिषम्**) अतिक्रान्त होती हूँ, अतः (**पुरुरवः**) हे पुरुरव=मेघ तू (**अस्तम्**) अपने घर वा स्थान को (**पुनः**) पुनः (**परा इहि**) जा (**अहम्**) मैं (**वातः**) वायु के (**इव**) समान (**दुरापना**) दुराप=न पकड़े जाने योग्य (**अस्मि**) हूँ।

भावार्थः—परस्पर वाणी के मिलाने मात्र से दोनों का क्या बन सकता है। विद्युत् तो कड़क के बाद समाप्त हो जाती है। वह समाप्त हुई विद्युत् पुनः प्राप्त नहीं हो सकती। जिस प्रकार वीत गई हुई उषा की पूर्ववर्ती उषा पुनः वर्तमान उषा से नहीं मिल सकती है वैसे ही कड़क कर समाप्त हुई विद्युत् पुनः मेघ से नहीं मिलती। यह वायु के वेग के समान पकड़ में नहीं आने वाली है ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा मायुं चितयन्त धुनयः ॥३॥

पदार्थः—पुरुरवा का कथन—(**श्रिये**) श्री की प्राप्ति के लिए (**इषुधेः**) निषङ्ग=तूणीर से (**इषुः**) वाण (**असना**) प्रक्षेपण के लिए (**न**) नहीं समर्थ हो रहा है, तथा (**रंहिः**) अति वेगवान् (**अहम्**) मैं मेघ (**शतसा**) सैंकड़ों प्रकार की (**गोषाः**) गर्जनाओं वाला (**न**) नहीं हो सक रहा है, (**अवीरे**) वीर रहित (**क्रतौ**) वर्षा आदि कर्म में मेरा साम (**न**) नहीं (**विदविद्युतत्**) चमक रहा है, (**उरा**) महान् अन्तरिक्ष में (**धुनयः**) मेघ गण (**मायुम**) शब्द (**न**) नहीं (**चितयन्त**) प्रकट कर रहे हैं।

भावार्थः—श्री की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार तीर का प्रक्षेपण आवश्यक है वैसे विद्युत् का मेघ से पतन भी वर्षा के लिए आवश्यक है। विद्युत् के अभाव में उसकी गर्जना और वृष्टिकर्म आदि सभी रुद्ध हो जाते हैं। मेघसमूह शब्द भी आकाश में नहीं कर पाता है ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४॥

पदार्थः—(**उषः**) हे उषस् ! (**सा**) वह यह उर्वशी (**वसु**) वासक (**वयः**) अन्न आदि को (**श्वसुराय**) सूर्य के लिए (**दधती**) धारण करती हुई (**यदि**) यदि (**वष्टि**) मेघ रूप पति को चाहे तो (**अन्तिगृहात्**) श्वसुर के घर से (**अस्तम्**) पति के कक्ष में (**ननक्षे**) जावे, (**यस्मिन्**) जहां पर (**दिवा**) दिन (**नक्तम्**) रात (**वैतसेन**) वेत से (**श्नथिता**) ताड़ित हुई (**चाकन्**) चाहे।

भावार्थः—हे उषस् ! यह विद्युत् अन्न आदि को वृष्टि द्वारा उत्पन्न करके सूर्य के लिए धारण करती हैं जो मेघ का पिता होने से उसका श्वसुर है। यदि वह पति अर्थात् मेघ में ही बनी रहे तो यह सब कार्य न होवे। जिस प्रकार पति के संभोग की कामना वाली स्त्री पति के ही कक्ष में जाती है। परन्तु विद्युत् और मेघ में यह सम्भव नहीं ॥४॥

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व१स्तदासीः ॥५॥

पदार्थः– हे पुरूरवस् ! तू (**माम्**) मुझे (**वैतसेन**) वेत के दण्ड से (**अह्नः**) दिन में (**त्रिः**) तीन बार (**श्नथयः**) ताड़ित करता है, (**उत**) और (**अव्यत्यै**) मुझ एक मात्र पत्नी को (**पृणासि स्म**) हर प्रकार से पूरित करते हो, इसी लिए (**ते**) तेरे (**केतम्**) घर को मैं विद्युत् (**आयम्**) प्राप्त हूँ अर्थात् विद्युत् मेघ में अपना स्थान बनाए हुए हैं (**वीर**) हे वीर तू (**तद्**) इस लिए (**मे**) मेरे (**तन्वः**) विद्युन्मय ढांचे का (**राजा**) राजा (**आसीः**) होता है।

भावार्थः– हे मेघ तू दिन में प्रातः, दो पहर, और सायम् जब हो मुझे ताड़ित करता है मुझे सब प्रकार से पूरित भी करता है। यही कारण है कि मैं विद्युत् मेघ में अपना स्थान बनाये रहती हूं। हे वीर तू मेरे विद्युन्मय ढांचे का राजा होता है ॥५॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपि ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६॥

पदार्थः– पुरुरवा कहता है—(**या**) जो (**सुजूर्णिः**) उत्तम वेग वाली विद्युत् है, (**श्रेणिः**) श्रेणी विद्युत् है, (**सुम्न आपि**) तेज आदि को देने वाली विद्युत् है, (**ह्रदे चक्षु**) जल में रहने वाली विद्युत् (**न**) और (**ग्रन्थिनी**) ग्रन्थिनी (**चरण्युः**) चरण्यु=चरणशीला विद्युत् है, (**ता**) वे ये सारी विद्युतें (**ऋजयः**) चपला, (**अरुणयः**) तेजोमयी (**धेनवः**) नव प्रसूत (**गावः**) गायों के (**न**) समान (**श्रिये**) आश्रय के लिये (**न**) नहीं (**सस्रुः**) जाती हैं और शब्द करती है।

भावार्थः—सुजूर्णि, श्रेणी, सुम्न आपि, ह्रदेचक्षु, ग्रथिनी और चरण्यू विद्युतें चपला और तेज वाली होती है। ये किसी विशेष स्थान को प्राप्त करने नहीं जाती हैं और शब्द करती हैं। जिस प्रकार नवप्रसूत गायें कहीं नहीं जाती और शब्द करती हैं ॥६॥

समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्य१ः स्वगूर्ताः ।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥७॥

पदार्थः—उर्वशी का कथन—(**अस्मिन्**) इस पुरूरवा के (**जायमाने**) उत्पन्न होने पर (**ग्नाः**) छन्द, वाणी, और देवों की शक्तियां अर्थात् देवपत्नियें (**सम्**) साथ (**आसत**) संगत होती है, (**उत**) और (**ईम्**) इसको (**स्वगूर्ताः**) स्वयं गतिशील (**नद्यः**) अन्तरिक्षस्थ जल वेग (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं, (**पुरूरवः**) हे पुरूरवस् = मेघ (**यत्**) जो (**त्वा**) तुम्हें (**देवाः**) दिव्य शक्तियें अथवा सूर्य-किरणें (**महे**) महान् (**दस्युहत्याय**) मेघवध रूपी (**रणाय**) रण के लिए (**अवर्धयन्**) बढ़ाते हैं।

भावार्थः - इस मेघ के उत्पन्न होने पर साथ ही साथ छन्द, माध्यमिका वाक् और दैवी शक्तियां भी इससे संगत होती हैं। और इसको स्वयं गतिशील अन्तरिक्षस्थ जल धारायें भी बढ़ाती है। सूर्य किरणें अथवा अन्य देव तुझ मेघ को वृत्र युद्ध रूपी संग्राम के लिए बढ़ाते हैं ॥७॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥८॥

पदार्थः— पुरूरवा का कथन है (**यत्**) यदा (**सचा**) सहायभूत पुरूरवा=मेघ **अत्कम्**) अपने रूप को (**जहतीषु**) छोड़ती हुई (**अमानुषीषु**) दिव्यगुणों वाली (**आसु**) इस अप्सरस्=विद्युतों को (**मानुषः**) अग्नि के रेतस् को न दूषित करने वाला "मादुष" मेघ (**निषेवे**) सेवन करता है तब (**ताः**) वे अप्सरस्=विद्युतें (**मत्**) मुझ उर्वशी के पास से (**अप त्रसन्**) दूर भाग जाती हैं (**न**) यथा **तरसन्ती**) मृग को चाहती हुई (**भुज्युः**) मृगी व्याघ के डर से भागती है, (**न**) यथा (**रथस्पृशः**) रथ में जुते (**अश्वाः**) घोड़े (**अत्रसन्**) भागते हैं।

भावार्थः जब सहायभूत पुरूरवा=मेघ अपने रूप को छोड़ने वाली दिव्यगुणों वाली इन अप्सराओं=विद्युतों को मानुष=मादुष अर्थात् अग्नि के बीज को कायम रखने वाला मेघ सेवन करता है तब ये अप्सरायें=विद्युतें मुझ उर्वशी के पास से भाग जाती हैं जिस प्रकार व्याध के भय से मृगी भाग जाती हैं और रथ में जुते घोड़े भागते हैं ॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**आसु**) इन (**अमृतासु**) अमर अप्सराओं में (**मर्तः**) मरणधर्मा पुरूरवा=मेघ (**निःस्पृक्**) स्पर्श करता हुआ (**क्षोणीभिः**) वाणियों से (**न**) और (**क्रतुभिः**) कर्म से (**पृङ्क्ते**) संपर्क करता है तो (**ताः**) वे (**आतयः**) पत्नी भूत होकर (**स्वाः**) अपने (**तन्वः**) शरीरों को (**न**) नहीं (**शुम्भन्ति**) प्रकाशित करती हैं जिस प्रकार (**दन्दशानाः**) अपनी लगाम को चबाते हुये (**क्रीडयः**) खेलते हुए (**अश्वासः**) घोड़े अपने स्वरूप को रथी को नहीं देखने देते।

भावार्थः—जब इन अमर अप्सराओं में मरणधर्मा मेघ संपर्क करता है तो वे पत्नी होकर अपने शरीरों को इसे नहीं प्रकाशित करती हैं जिस प्रकार लगाम को काटते हुए अत्यन्त वेग से चलते हुए घोड़े अपने रूप को रथी को नहीं देखने देते हैं ॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥

पदार्थः—(**या**) जो (**उर्वशी**) ऋण और धनरूप से व्यापन करने वाली (**विद्युत्**) विद्युत् (**न**) सम्प्रति (**पतन्ती**) पदार्थों पर गिरती हुई (**मे**) मुझ

मेघ के (**अप्या**) जल सम्बन्धी (**काम्यानि**) चाहने योग्य कामों को (**भरन्ती**) संपादित करती हुई (**दविद्योत्**) चमकती है, (**नर्यः**) मनुष्यों के हितकारक (**सुजातः**) उत्तम पुत्र रूप (**अपः**) जलों को (**जनिष्ठः**) उत्पन्न करती है (**उर्वशी**) विद्युत् जमे प्राण वायु को उत्पन्न करके (**दीर्घम्**) दीर्घ (**आयुः**) आयु (**प्रतिरत**) प्रदान करती है।

भावार्थः— जो ऋण और धन से युक्त विद्युत् पदार्थों पर पड़ती हुई मुझ मेघ के जल वर्षण सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करती हुई चमकती है। मनुष्यों के हितकारक उत्तम जलों को उत्पन्न करती है। यह उर्वशी विद्युत् जमे प्राण वायु के रूप में दीर्घ आयु प्रदान करती है ॥१०॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥

पदार्थः—(**इत्था**) इस प्रकार (**गोपीथ्याय हि**) पृथिवी की रक्षा के लिए (**जज्ञिषे**) समर्थ हो, (**पुरूरवाः**) हे पुरूरवस् (**तत्**) उस (**ओजः**) अपने ओज को (**मे**) मुझ में (**दधाथ**) धारण करो, (**सस्मिन्**) सब (**अहनि**) दिन में (**विदुषी**) तुझे प्राप्तवती (**त्वा**) तुझे (**अशासम्**) चाहती हूं, तू (**मे**) मेरी (**न**) नहीं (**आशृणोः**) सुनता है (**अभुक्**) पालन न करता हुआ तू (**किम्**) क्या (**वदासि**) कह सकता है।

भावार्थः—इस प्रकार पृथिवी की रक्षा के समर्थ हो। हे मेघ उस ओज को मुझ में धारण कर। सभी दिन मैं तुझे प्राप्त हुई तेरी कामना रखती हूं, तू मेरी नहीं सुनता है। पालन न करने वाला तू क्या कह सकता है ॥११॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

पदार्थः—पुरूरवस् का कथन—(**कदा**) कब (**सूनुः**) पुत्र (**जातः**) तेरे उदर से उत्पन्न हुआ (**पितरम्**) पिता को (**इच्छात्**) चाहेगा, कब (**विजानत्**) प्राप्त हुआ मुझ पिता को (**चक्रन्**) क्रन्दन करता हुआ (**अश्रु**) आंसू (**न**) नहीं (**वर्तयत्**) बहावेगा, (**कः**) कौन पुत्र (**समनसा**) समान मन वाले (**दम्पती**) पति पत्नी अर्थात् तुझ माता और मुझ पिता को (**वि यूयोत्**) वियुक्त करेगा,

(**अथ**) अब (**यत्**) जो (**अग्निः**) अग्नि है वह तुम्हारे (**श्वशुरेषु**) श्वसुरों में (**दीदयत्** दीप्त होवे ।

भावार्थः– कब पुत्र तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ पिता को चाहेगा ? कब प्राप्त हुआ मुझ पिता को क्रन्दन करता हुआ आंसू नहीं बहावेगा ? कौन पुत्र अपने समवयस्क माता-पिता को वियुक्त करेगा ? कब यह जो अग्नि है वह तुम्हारे श्वसुरों सूर्य आदि पदार्थों में दीप्त होवे ॥१२॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥

पदार्थः— हे पुरूरवस् ! (**त्वाम्**) तुम्हारे (**प्रति**) प्रति (**ब्रवाणि**) मैं कहती हूँ तुम्हारा पुत्र (**अश्रु**) आंसू (**वर्त्तयते**) बहाता है, (**आध्ये**) चाही वस्तु में (**शिवायै**) कल्याण के उपस्थित होने पर (**चक्रन्**) क्रन्दन करता हुआ और आंसू (**न**) भी बहावेगा (**यत्**) जो (**ते**) तेरा अपत्य (**अस्मे**) मुझ में निहित है (**तत्**) उसे (**ते**) तुम्हारे पास (**प्रहिनव**) भेजती हूँ, (**त्वम्**) तू (**अस्तम्**) अपने घर को (**परेहि**) जा (**मूरः**) मूढ तू (**मा**) मुझे (**नहि**) नहीं (**आपः**) प्राप्त कर सकता है ।

भावार्थः—हे पुरूरवस् ! तुम्हारे प्रति मैं कहती हूं । तुम्हारा पुत्र आंसू बहाता है । सोची वस्तु में कल्याण उपस्थित होने पर वह क्रन्दन करता और रोता है । जो तेरा अपत्य मुझ में निहित है उसे मैं तुझे भेजती हूं । तू अपने घर जा । मूढ तू मुझे नहीं पा सकता है ॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥

पदार्थः—(**सुदेवः**) तुम्हारे साथ खेलने वाला पति पुरूरवा (**अद्य**) अभी ही (**प्रपतेत्**) गिर पड़े, (**अनावृत्**) न सुरक्षित हुआ वह (**परमाम्**) परम (**दूरावतम् उ**) दूर देश को (**गन्तवै**) जाने को चला जावे अथवा महायात्रा=मृत्यु को प्राप्त हो जावे, (**अध**) अथवा (**निर्ऋतेः**) पृथिवी की (**उपस्थे**) गोद में (**शयीत**) सो जावे, (**अध**) अथवा (**एनम्**) इसको (**रभसासः**) वेग वाले (**वृकाः**) भेड़िये (**अद्युः**) खा जावें ।

भावार्थः—हे उर्वशी=विद्युत् तुम्हारे साथ खेलने वाला पुरूरवा=यह मेघ अभी ही गिर पड़े, असुरक्षित हुआ, दूर देश जाने के लिए प्रयाण करे अथवा महाप्रयाण कर जाये, अथवा पृथिवी की गोद में सो जावे, अथवा इसको वेग से दौड़ने वाले भेड़िये खा जावें ॥१४॥

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥

पदार्थः–(**पुरूरवः**) हे पुरूरवस् ! तू (**मा**) मत (**मृथाः**) मर, (**मा**) मत (**प्रपप्तः**) गिरो (**अशिवासः**) अकल्याणकारी (**वृकासः**) वृक (**मा उ**) न (**त्वा**) तुझे (**अक्षन्**) खावें, (**स्त्रैणानि** ; स्त्रियों की की गई मित्रता (**वै**) निश्चय से (**न सन्ति**) मित्रता नहीं होती है (**एता**) ये मित्रतायें वस्तुतः (**सालावृकाणाम्**) जंगली कुत्ते वा भेड़ियों के (**हृदयानि**) हृदय हैं ।

भावार्थः— हे पुरूरवस् ! मरो मत, कूदकर गिरो या पड़ो भी नहीं । तुझे अभद्र भेड़िये भी न खावें । स्त्रियों की इस प्रकार कामवासनामयी मित्रता नहीं होती है । ये मित्रतायें तो जंगली कुत्ते अथवा भेड़ियों के हृदय के समान हैं ॥१५॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

पदार्थ –(**यद्** ! जब मैं देवरूप के विपरीत मरणधर्मा के रूप में (**मर्त्येषु**) मरणधर्माओं में (**अचरम्**) व्यवहार करूं तो मैं फिर (**रात्रीः**) रमणदात्री (**चतस्रः**) चार (**शरदः**) शरद् ऋतुओं तक ही (**अवसम्**) रह सकूं (**घृतस्य**) घृत वा जल का (**स्तोकम्**) तनिक मात्र ही (**अह्नः**) दिन में मैं **सकृत्**) एक ही वार (**आश्नाम्**) खाती हूँ और (**तात् एव**) उसी से ही (**इदम्**) संप्रति (**तातृषाणा**) तृप्त हुई (**चरामि**) विचरती हूँ ।

भावार्थः–जब मैं देवरूप के विपरीत मरणधर्माओं में व्यवहार तो चार शरद् ऋतुओं तक ही रह सकती हूं । मैं विद्युत् जल को तनिक मात्र खाती हूँ । और उसी से तृप्त हुई विचरती हूँ । मेघ मरणधर्मा है विद्युत् अमरणधर्मा है ॥१६॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥

पदार्थः—(**अन्तरिक्षप्राम्**) अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूरित करने वाली (**रजसः**) जल की (**विमानीम्**) निर्मात्री (**उर्वशीम्**) विद्युत् को मैं (**वसिष्ठः**) जलरूपमेघ (**उपशिक्षामि**) वश में करता हूँ । (**सुकृतस्य**) उत्तम कर्म का (**रातिः**) दाता पुरूरवा=मेघ (**त्वा**) तुझे (**उपतिष्ठात्**) प्राप्त रहे, (**मे**) मेरा (**हृदयम्**) हृदय (**तप्यते**) तप्त हो रहा है (**निवर्तस्व**) निवृत्त होओ ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूरित करने वाली तथा जल की निर्मात्री विद्युत् को मैं वसिष्ठ=जल रूप मेघ ही वश में कर सकता हूं। उत्तम कर्म का दाता पुरूरवा=मेघ तुझे प्राप्त रहे,मेरा हृदय संतप्त हो रहा है अतः हे उर्वशी ! तुम अब चुप रहो ॥१७॥

इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयसे ॥१८॥

पदार्थः—हे (**ऐल**) पुरूरवस् ! (**त्वा**) तुझे (**इमे देवाः**) ये देव लोग (**इति**) ऐसा (**आहुः**) कहते हैं (**मृत्युबन्धुः**) मृत्यु का बन्धक (**यथा ईम् एतत्**) जिस प्रकार हो यह ऐसा होगा (**प्रजा**) उत्पन्न हुआ तू (**ते**) तेरे सम्बन्धी यष्टव्य (**देवान्**) देवों को (**हविषा**) हवि से (**यजाति**) यज्ञ कर (**त्वम्**) तू (**उ**) निश्चय (**अपि**) भी (**स्वर्गे**) स्वर्ग में (**मादयासे**) सुखी होगा ।

भावार्थः—हे ऐल पुरूरवस् ! तुझे ये देव लोग ऐसा कहते हैं कि तू मृत्यु का बन्धक होगा । उत्पन्न हुआ तू अपने सम्बन्धी यष्टव्य देवों के लिए यज्ञ कर । तू स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करेगा ॥१८॥

यह दशम मण्डल में पिचानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९६

ऋषिः—१—१३ बरुः सर्वहरिर्वैन्द्रः ॥ **देवता**—हरिस्तुतिः ॥ **छन्दः**—१,
७, ८ जगती । २—४, ९, १० निचृज्जगती । ५ आर्चीस्वराड्-
जगती । ६ विराड्जगती । ११ आर्चीभुरिग्जगती । १२, १३
त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—११ निषादः । १२, १३
धैवतः ॥

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥

पदार्थः (**ते**) इस इन्द्र=सूर्य के (**हरी**) दो अश्वों —धारण और आकर्षण की (**महे**) महान् (**विदथे**) यज्ञ में (**प्रशंसिषम्**) मैं प्रशंसा करता हूं । (**वनुषः**) मेघ का वध करने वाले (**ते**) इस इन्द्र =सूर्य के सम्बन्धी (**हर्यतम्**) रमणीय (**मदम्**) सुख की (**वन्वे**) भगवान् से याचना करता हूं, (**यः**) जो (**हरिभिः**) जल आदि को हरण करने वाली किरणों के द्वारा (**चारु**) चरणीय=ग्रहणीय (**घृतम् न**) घृत के समान उत्पन्न जल को (**सेचते**) सींचता है (**हरिवर्पसम्**) चमकने वाले रूप से युक्त (**त्वा**) इस सूर्य की प्रशंसा में (**मे**) मेरी (**गिरः**) वाणियां (**आ विशन्तु**) सर्वत्र व्याप्त होवें ।

भावार्थः—इस सूर्य के धारण और आकर्षण रूप दोनों गुणों की मैं यज्ञ आदि के महान् अवसरों पर प्रशंसा करता हूं । मेघ का वध करने वाले इस सूर्य के द्वारा सबको दिये जाने वाले सुख की प्राप्ति की परमेश्वर से याचना करता हूं । जो अपनी किरणों के द्वारा घृत के समान उत्पन्न जल से पृथिवी आदि को सींचता है उस सूर्य की प्रशंसा में मेरी वाणियां सब व्याप्त हों ॥१॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**योनिम् हि**) जगत् के विविध पदार्थों के कारणभूत (**हरिम्**) हरणशील सूर्य को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**समस्वरन्**) उसके गुणों और कार्यों की प्रशंसा करते हैं वे (**दिव्यम्**) द्युलोक में होने वाले (**सदः**) स्थान में सूर्य (**यथा**) जिस प्रकार स्थित हो अपने कार्यों को करता है और उसके (हरी धारण आकर्षण गुणों की (**हिन्वन्तः**) प्रशंसा करते हुए ऐसा ही करते हैं, (**यम्**) जिस सूर्य को (**धेनवः**) गौओं के (**न**) समान ऋत्विग् लोग (**हरिभिः**) हरित वर्ण के सोम रसों से (**आ पृणन्ति**) पूरित करते हैं, हे लोगो ! आप (**इन्द्राय**) सूर्य के (**हरिवन्तम्**) तेजोमय किरणों से युक्त (**शूषम्**) बल की (**अर्चत**) प्रशंसा करते हो ।

भावार्थः—जो लोग जगत् के विविध पदार्थों के कारणभूत हरणशील सूर्य को लक्ष्य में रखकर उसके गुणों और कार्यों की प्रशंसा करते हैं वे

द्युलोक में होने वाले स्थान में सूर्य किस प्रकार स्थित है और किस प्रकार कार्यों को करता है और उसके धारण और आकर्षण की प्रशंसा करते हुए ऐसा करते हैं । उस सूर्य को गायों के समान ऋत्विग् लोग सोमरस से पूरित करते हैं । हे ऋत्विजो ! आप तेजोमय किरणों से युक्त बल की प्रशंसा करो ।।२।।

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस इन्द्र=सूर्य का सम्बद्ध (**यः**) वह विद्युत्(**हरितः**) भासमान है, (**यः**) जो (**आयसः**) चुम्बक पदार्थों से निर्मित है, वह (**हरिः**) भासमान वज्र (**निकामः**) नितान्त कमनीय और (**आ**) चारों तरफ से घातक है (**हरिः**) वह भासमान **वज्र** (**गभस्त्योः**) सूर्य के रसादान और जल प्रदान रूपी हाथों में है, वह सूर्य (**द्युम्नी**) द्योतनशील (**सुशिप्रः**) उत्तम बलों वाला और (**हरिमन्यु सायकः**) हरणशील कोप और कृमि आदि के नाशक किरणों वाला अथवा हरित वर्ण के मननशील धनुष अर्थात् इन्द्र धनुष वाला है (**इन्द्रे**) सूर्य में (**रूपा**) रूप (**हरिता**) तेजस्क एवं भासमान ही (**नि मिमिक्षिरे**) निषिक्त हूं ।

भावार्थः—इस सूर्य से सम्बद्ध वज्र=विद्युत् भासमान है और चुम्बक पदार्थों से निर्मित है । वह भासभान वज्र नितान्त कमनीय और चारों तरफ से घातक है । वह भासमान वज्र सूर्य के रसादान और जल प्रदान कार्यों से सम्बद्ध है । सूर्य द्योतनशील, उत्तम बलों का केन्द्र और इन्द्र धनुष वाला है । सूर्य में सभी रूप तेजों वाले ही निषिक्त हैं ।।३।।

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४॥

पदार्थः—(**दिवि**) अन्तरिक्ष में (**केतुः**) सूचक झण्डे के (**न**) समान यह सूर्य (**अधि धायि**) निहित किया गया है, (**हर्यतः**) कमनीय (**वज्रः**) इसका वज्र (**विव्यचत्**) सब को व्याप्त करता हैं (**न**) जिस प्रकार (**हरितः**) भासमान (**रंह्याः**) वेगवाली किरणें सर्वत्र फैल जाती है, (**यः**) जो इसका (**आयसः**) चुम्बक तत्व निर्मित वज्र है वह (**अहिम्**) मेघ को (**तुदत्**) नष्ट करता है । वह सूर्य (**हरिशिप्रः**) हरणशील वलों वाला (**हरिम्भरः**) हरणशील किरणों का स्वामी, (**सहस्रशोकाः**) अपरिमित दीप्ति वाला है ।

भावार्थः—आकाश में यह सूर्य सूचक झण्डे के समान निहित है । इसका कमनीय वज्र उसी प्रकार सबको व्याप्त करता है जिस प्रकार भासमान वेगवाली किरणें सर्वत्र फैल जाती हैं । इस चुम्बक तत्वों का बना वज्र मेघ को नष्ट करता है । यह सूर्य हरणशील वलों वाला, हरणशील किरणों से युक्त और अपरिमित दीप्ति वाला है ।।४।।

त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वैभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१ मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

पदार्थः—(**हरिकेश, हरिजात इन्द्र**) हरण शील किरणों वाला, हरणशक्ति युक्त, (**त्वंत्वम्**) वह सूर्य ही (**पूर्वेभिः**) पूर्ण (**यज्वभिः**) यज्ञकर्ताओं द्वारा (उपस्तुत) प्रशंसा किया गया (**अहर्यथाः**) हवि आदि पदार्थों को हरण करता है, (**त्वम्**) यह (**तव**) इसके निमित्त प्रदत्त (**विश्वम्**) सब (**उक्थ्यम्**) प्रशस्य (**असामि**) असाधारण (**हर्यतम्**) कान्त (**राधः**) हवि आदि धन को (**हर्यसि**) ग्रहण करता है ।

भावार्थः—हारक किरणों वाला हरणशील यह सूर्य ही ज्ञानपूर्ण यज्ञ कर्ताओं द्वारा प्रशंसा किया गया हुत पदार्थों को ग्रहण करता है । यह सभी असाधारण, प्रशस्य हवि आदि धनों को ग्रहण करता है ।।५।।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६॥

पदार्थः—(**ता**) वे (**हर्यतौ**) कमनीय (**हरी**) धारण और आकर्षण गुण (**मन्दिनम्**) सबके हर्ष के साधन भूत (**वज्रिणम्**) वज्र वाले, (**स्तोम्यम्**) प्रशसनीय (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**मदे**) हर्षदायक (**रथे**) रमणीय संसार रथ में (वहतः) धारण करते हैं, (**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) सूर्य के लिए (**हरयः**) भासमान (**सोमाः**) लोक (**पुरूणि**) बहुत से (**सवनानि**) प्रातः दोपहर और सायम् सवनों को (**दधन्विरे**) धारण करते हैं ।

भावार्थः—वे कमनीय धारण और आकर्षण गुण सबके सुख के साधन, वज्र के स्वामी, प्रशस्य सूर्य को हर्षदायक रमणीय संसार रथ में

धारण करते हैं। इस सूर्य के लिए इसके प्रकाश से भासमान विविध लोक प्रभूत प्रातः मध्य और सायं सवनों को धारण करते हैं ॥६॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७॥

पदार्थः—(**हरयः**) हरणशील किरणें (**कामाय**) सूर्य की कामना के लिए (**अरम्**) पर्याप्त शक्ति को (**दधन्विरे**) धारण करती है, वे (**हरयः**) हरणशील किरणें (**स्थिराय**) सूर्य के स्थिर रहने के लिए (**तुरा**) त्वरमाण (**हरी**) धारण आकर्षण गुण को (**हिन्वन्**) प्रेरित करती हैं, (**यः**) जो (**अर्वद्भिः**) गमनशील (**हरिभिः**) किरणों से (**जोषम्**) सेवनीय वस्तु वा लोक को (**ईयते**) जाता है (**सः**) वह (**अस्य**) इस अपने (**कामम्**) कमनीय (**हरिवन्तम्**) सोममय पदार्थ को (**आनशे**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—सूर्य की हरणशील किरणें सूर्य के कार्य की पूर्त्यर्थ पर्याप्त शक्ति को धारण करती है। वे सूर्य के स्थिर रहने के लिए त्वराशील धारण और आकर्षण गुणों को प्रेरित करती हैं। जो गमनशील किरणों से सेवनीय पदार्थ वा लोक को जाता है वह अपने कमनीय सोममय पदार्थ को प्राप्त करता है ॥७॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८॥

पदार्थः—(**हरिश्मशारुः**) हरणशील किरणें जिसकी श्मश्रु के समान हैं वह, (**हरिकेशः**) भासमान किरणों वाला, (**आयसः**) चुम्बक तत्वमय (**यः**) जो सूर्य (**तुरस्पेये**) शीघ्रपेय जल में (**हरिपाः**) किरणों द्वारा पान करने वाला हुआ (**अवर्धत**) बढ़ता है, (**यः**) जो (**अर्वद्भिः**) गमनशील (**हरिभिः**) किरणों से (**वाजिनीवसुः**) अन्न और धनों को उत्पादक पृथिवी का स्वामी है वह (**हरी**) रसादान और रसप्रदान रूप कर्मों से (**विश्वा**) सभी (**दुरिता**) रोग आदि को (**पारिषद्**) पार लगाता है।

भावार्थः हरणशील किरणों और शक्तियों से युक्त, चुम्बक तत्वमय सूर्य शीघ्रता से पीने योग्य जल आदि पदार्थों को किरणों द्वारा पीता हुआ बढ़ता है। वह गमनशील किरणों द्वारा अन्न और धन की दात्री

पृथिवी का स्वामी है। वह रसादान और रस प्रदान रूप कर्मों से समस्त रोग आदि से हमें पार लगाता है ॥८॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस इन्द्र=परमेश्वर के शासन में (**स्रुवा इव**) यज्ञ में दो स्रुवों के समान (**हरिणी**) दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र (**विपेततुः**) गति करते हैं और जिसकी (**हरिणी**) हरण शक्ति युक्त (**शिप्रे**) आकाश और पृथिवी दो दाढ़ों के समान (**वाजाय**) अन्न और ऐश्वर्य के लिए (**दविध्वतः**) चल रहे हैं (**यत्कृते**) जिसके बनाये (**चमसे**) भोग के क्षेत्र संसार में (**मदस्य**) सुखकारी (**हर्यतस्य**) कान्तियुक्त (**अन्धसः**) प्राण धारण कराने वाले रस को (**पीत्वा**) पीकर आत्मा (**हरी**) अपने ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को (**प्र मर्मृजत्**) पवित्र कर लेता है।

भावार्थः—जिस परमेश्वर के शासन में यज्ञ के दो स्रुवों की भांति दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र गति करते हैं जिसकी हरणशक्ति युक्त आकाश और भूमि दो दाढ़ों के समान अन्न और ऐश्वर्य के लिए चल रहे हैं और जिसके बनाये भोग के क्षेत्र इस जगत् के सुखकारी कान्तियुक्त प्राण धारक रस को पीकर जीवात्मा अपने ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को पवित्र करता है वह परमेश्वर उपासनीय है ॥९॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०॥

पदार्थः—(**उत**) और भी (**हर्यतस्य**) कमनीय सूर्य का (**सद्म**) स्थान (**पस्त्योः**) द्यु और पृथिवी लोक से सम्बद्ध हैं, (**हरिवान्**) हरण शक्तियों वाला यह (**अत्यः न**) अश्व के समान (**वाजम्**) संग्राम मेघ के साथ संग्राम में (**अचिक्रदत्**) जाता है, (**ओजसा**) ओज से युक्त सूर्य को (**मही**) महती (**चित् धिषण**) प्रशंसा (**अहर्यत्**) चाहती है, (**हर्यतः चित्**) यजमान के लिए (**बृहत्**) महान् (**वयः**) अन्न (**आ दधिषे**) धारण करता है।

भावार्थः—कमनीय सूर्य का स्थान द्यु और पृथिवी से सम्बद्धहै। वह हरणशक्ति वाला सूर्य अश्व की भांति वृत्र के संग्राम में जाता है। बल से

युक्त उस सूर्य की महती प्रशंसा=प्रशस्ति करना चाहती है। यजमान के लिए वह प्रचुर अन्न को धारण करता है ॥१०॥

आ रोद॑सी हर्य॒माणो॑ महि॒त्वा नव्यं॑नव्यं हर्यसि॒ मन्म॒ नु प्रि॒यम्।
प्र प॒स्त्य॑मसुर हर्य॒तं गोरा॒विष्कृ॑धि॒ हर॑ये॒ सूर्या॑य ॥११॥

पदार्थः—(**हर्यमाणः**) हरण शक्ति को लगाता हुआ, (**महित्वा**) महिमा से (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**आ**) आपूरित करता हैं तथा (**नव्यम् नव्यम्**) नवीन नवीन (**प्रियम् नु**) प्रियकारी (**मन्म**) प्रशसा वचन को (**नु**) शीघ्र (**हर्यसि**) चाहता हैं (**असुरः**) बलवान् (**हर्यतम्**) कमनीय (**गोः**) जल के (**पस्त्यम्**) स्थान (**हरये**) हरणशील (**सूर्याय**) सूर्य के लिए (**आविः कृधि**) प्रकट करता है।

भावार्थः—हरण शक्ति युक्त आदित्य अपनी महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को आपूरित करता है तथा नवीन नवीन प्रशंसा वचन को प्राप्त करता है। बलवान् वह जल के उत्तम स्थान को हरणशील सूर्यात्मक अपने लिए प्रकट करता है ॥११॥

आ त्वा॑ हर्य॒न्तं॑ प्र॒युजो॒ जना॑नां॒ रथे॑ वहन्तु॒ हरि॑शिप्रमिन्द्र।
पिबा॒ यथा॒ प्रति॑भृतस्य॒ मध्वो॒ हर्य॑न्य॒ज्ञं स॑ध॒मादे॒ दशो॑णिम् ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्द्र हर्यन्तम् त्वा**) इस भास्वर इन्द्र=सूर्य को जो (**हरि शिप्रम्**) हारक बल वाला है (**रथे**) प्रकाश चक्र में (**प्रयुजः**) जुते हुए किरण जाल (**जनानाम्**) लोगों के पास (**वहन्तु**) पहुंचाते हैं (**यथा**) जिससे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**हर्यन्**) प्राप्त होता हुआ (**प्रतिभृतस्य**) उपहृत (**दशोणिम्**) दश अंगुलियों से चुआये गये (**मध्वः**) सोमरस को (**सधमादे**) अन्तरिक्ष में (**पिब**) पीता है।

भावार्थः—भास्वर और हारक बल वाले सूर्य को उसके प्रकाश चक्र में संयुक्त किरण जाल लोगों के समीप पहुँचाते हैं। यज्ञ को प्राप्त होता हुआ वह दश अंगुलियों द्वारा निचोड़े गए सोमरस को अन्तरिक्ष में पीता है ॥१२॥

अपाः॒ पूर्वे॑षां हरिवः सु॒तानां॒मथो॑ इ॒दं सव॑नं॒ केव॑लं ते।
म॒म॒द्धि सोमं॒ मधु॑मन्तमिन्द्र स॒त्रा वृ॑षञ्ज॒ठर॒ आ वृ॑षस्व ॥१३॥

पदार्थः—(**हरिवः**) रसादान और रसप्रदान कर्मों से युक्त इन्द्र=सूर्य (**पूर्वेषाम्**) पहले से (**सुतानाम्**) अभिषुत सोमों को (**अपाः**) पीता है, (**अथ उ**) और (**इदम्**) यह (**सवनम्**) माध्यन्दिन सवन (**केवलम्**) केवल (**ते**) इस का है, (**वृषन्**) बलशाली (**इन्द्र**) यह सूर्य (**मधुमन्तम्**) माधुर्ययुक्त (**सोमम्**) सोम को (**ममद्धि**) पीता है और (**सत्रा**) सदा (**जठरे**) ये जठर में (**आवृषस्व**) सींचता है।

भावार्थः—रसादान और रस प्रदान कर्मों से युक्त सूर्य पहले से अभिषुत सोमों को पीता है और यह माध्यन्दिन सवन केवल इसका है। यह सूर्य माधुर्ययुक्त सोम को पीता है और निरन्तर अपने जठर में अर्थात् अन्तरिक्ष में सींचता है ॥१३॥

यह दशम मण्डल में छानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९७

ऋषिः—१—२३ भिषगाथर्वणः ॥ देवता—ओषधीस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २, ४–७, ११, १७ अनुष्टुप् । ३, ९, १२, २२, २३ निचृदनुष्टुप् । ८, १०, १३—१६, १८—२१ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

या ओष॑धीः॒ पूर्वा॑ जा॒ता दे॒वेभ्य॑स्त्रियु॒गं पु॒रा।
मनै॑ नु ब॒भ्रूणा॑म॒हं श॒तं धामा॑नि स॒प्त च॑ ॥१॥

पदार्थः—(**याः**) जो (**ओषधीः**) ओषधियां (**पुरा**) पहले (**देवेभ्यः**) मनुष्य आदि से (**पूर्वाः**) पुरातन (**त्रियुगम्**) वसन्त वर्षा और शरद् ऋतुओं में (**जाताः**) उत्पन्न हुई है, (**अहम्**) मैं भिषग् (**नु**) निश्चय से (**बभ्रूणाम्**) बभ्रुवर्णवाली उन ओषधियों के (**शतम् सप्त च**) एक सौ सात (**धामानि**) नाम जन्म और स्थानों को (**मने**) जानता हूँ।

भावार्थः—जो ओषधियां मनुष्य आदि से पुरातन हैं और वसन्त वर्षा और शरद् में पैदा होने वाली हैं उन भूरे वर्ण के पत्तों वाली ओषधियों के एक सौ सात नामों वाली, एक सौ सात स्थानों में होने वाली

और शरीर के १०७ मर्मस्थानों पर प्रयुक्त की जाने वाली ओषधियों को मैं भिषग् जानता हूं ॥१॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥

पदार्थः - (**अम्बवः**) इन मातृभूत ओषधियों के (**शतम्**) सौ (**धामानि**) नाम और प्रयोग के प्रकार एवं स्थान है (**उत**) और (**सहस्रम**) हजारों (**रुहः**) प्ररोह हैं, (**अधा**) और (**यूयम**) ये (**शतक्रत्वः**) सैकड़ों कर्मों वाली हैं (**मे**) मेरे (**इमम्**) इस रोगी को (**अगदम्**) रोगरहित (**कृत**) करती हैं ।

भावार्थः—मातृभूत इन ओषधियों के सैकड़ों नाम और प्रयोग के प्रकार हैं । इनके हजारों प्ररोह हैं । सैकड़ों कर्मों और प्रभावों वाली हैं । ये मेरे इस रोगी को रोगरहित करती हैं ॥२॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥३॥

पदार्थः— (**पुष्पवतीः**) फूलों वाली (**प्रसूवरीः**) फलोंवाली (**अश्वा इव**) अश्वों के समान (**सजित्वरीः**) रोगों पर विजय पाने वाली (**पारयिष्णवः**) रुग्ण को रोग से पार लगाने वाली (**वीरुधः**) लतामयी (**ओषधीः**) ओषधियें (**प्रति**) रोगी के ऊपर (**मोदध्वम्**) हृष्ट वा प्रभावशाली होती हैं ।

भावार्थः—पुष्पों वाली, फलों वाली, अश्वों के समान रोग पर विजय पाने वाली, रोगी को नीरोग करने वाली लताओं वाली ओषधियां रोगी के ऊपर प्रभावशाली, होती हैं ॥३॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४॥

पदार्थः—(**ओषधीः**) ओषधियें (**मातरः**) मातृभूत और (**देवीः**) दीपन, द्योतन आदि गुणों वाली हैं (**इति**) इस प्रकार मैं वैद्य (**वः**) इनके (**तत्**) प्रभाव को (**उपब्रुवे**) बताता हूँ, (**अश्वम्**) इन्द्रियां, (**गाम्**) नाड़ी-नस (**वासः**) रक्त (**आत्मानम्**) हृदय के प्रति हे (**पुरुष**) रोगी में (**सनेयम्**) इन्हें देता हूँ ।

भावार्थः- ओषधियें माता के समान हैं और दीपन, द्योतन आदि गुणों वाली हैं । इनके इस प्रभाव का मैं वैद्य उपदेश करता हूँ । हे पुरुष ! इन्द्रियों, नाड़ी नसों, रक्त और हृदय आदि के विकारों में इनको देता वा प्रयुक्त करता हूं ॥४॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५॥

पदार्थः—(**वः**) इन ओषधियों के ओषधिपने का (**अश्वत्थे**) वायु अथव मेघ पर (**निषदनम्**) आश्रय है, (**पर्णे**) पत्तों पर (**वः**) इनका (**वसतिः**) निवास (**कृता**) किया गया है ये (**गोभाजः**) पृथिवी, जल, सूर्य और रश्मियं का सेवन करने वाली (**इत्किल**) निश्चय ही (**असथ**) हैं (**यत्**) जिससे (**पुरुषम्**) पुरुष के देह का (**सनवथ**) सेवन करती हैं ।

भावार्थः—इन ओषधियों के ओषधिपने का आश्रय वायु, मेघ और विद्युत् पर है । पत्तों पर इनका निवास किया गया है । ये भूमि, जल, सूर्य किरण आदि का सेवन करती हैं और जिससे ये मनुष्य के देह पर प्रयुक्त की जाती हैं ॥५॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६॥

पदार्थः—(**नत्र**) जिसके चारों तरफ (**समितौ**) सभा में (**राजानः**) राजाओं के (**इव**) समान (**ओषधीः**) ओषधियें (**समग्मत**) संगत होती हैं, (रक्षोहा) कृमियो का नाशक, (**अमीव चातनः**) रोग का विनाशक (**सः**) वह (विप्रः) मेधावी (**भिषक्**) भिषक् (**उच्यते**) कहा जाता है ।

भावार्थः—जिसके चारों तरफ ओषधियां उसी प्रकार विराजती है जिस प्रकार सभा में राजा लोग बैठते हैं,वह कृमियों का नाशक और रोगों का विनाश करने वाला मेधावी भिषग् कहा जाता है ॥६॥

अश्वावतीं सोमवतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥

पदार्थः—मैं वैद्य (**अस्मै**) इस रोगी के (**अरिष्टतातये**) आरोग्य के लिए

(**अश्वावतीम्**) अश्वावती, (**सोमावतीम्**) सोमावती (**ऊर्जयन्तीम्**) ऊर्जयन्ती (**उदोजसम्**) उदोजस् इन (**सर्वाः**) सभी (**ओषधीः**) ओषधियों को जानता हूँ।

भावार्थः—मैं वैद्य अश्वावती, सोमावती, ऊर्जयन्ती और उदोजस् नाम की इन ओषधियों को इस रोगी के रोग निवारणार्थ जानता हूं ॥७॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥

पदार्थ— हे(**पुरुष**) रुग्ण मनुष्य ! (**तव**) तुम्हारे (**आत्मानम्**) शरीर के प्रति (**धनम्**) आरोग्य धन को (**सनिष्यन्तीनाम्**) देने की इच्छा करती हुई (**ओषधीनाम्**) ओषधियों के (**शुष्माः**) बल (**गोष्ठाद्**) गोशालें से (**गावः**) गायों के (**इव**) समान (**उदीरते**) आता है ।

भावार्थः— हे रुग्ण पुरुष !तुम्हारे शरीर के प्रति नीरोगता रूपी धन को देने की कामना करती हुई ओषधियों का बल तुझ में उनसे उसी प्रकार आता है जिस प्रकार गोशाला से गायें निकलती हैं ॥८॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥

पदार्थः– (**वः**) इन ओषधियों की (**माता**) माता के समान पृथिवी (**इष्कृतिः नाम**) इष्कृति [अन्न आदि को उत्पन्न करने वाली] नाम की है, (**अथो**) और (**यूयम्**) ये इस लिए (**निष्कृतीः**) रोग को बाहर निकालने वाली होने से 'निष्कृति' हैं ये (**सीराः**) देह की नस नाड़ियों को प्राप्त कर (**पतत्रिणीः**) उनमें वेग से गति करने वाली (**स्थन**) होती है (**यत्**) जो पपार्थ (**आमयति**) शरीर को रोग से पीड़ित करता है उसे (**निष्कृथ**) बाहर निकाल देती हैं ।

भावार्थः– इन ओषधियों की माता पृथिवी 'इष्कृति' है अतः ये 'निष्कृति' हैं । ये शरीर की नस-नाड़ियों में वेग से गति करती हुई जो पदार्थ रोग से पीडित कर रहा होता है उसे वहार निकाल देती हैं ॥९॥

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो३ रपः ॥१०॥

पदार्थः–(**व्रजम्**) पथिक समूह पर (**स्तेन**) चोर के (**इव**) समान (**परिस्थाः**) देह में सर्वत्र व्याप्त हुई (**ओषधीः**) ओषधियां रोग समूह पर (**अति अक्रमीव**) आक्रमण करती हैं (**यत्**) जो (**किञ्च**) कुछ (**तन्व**) शरीर का (**रपः**) दूषण है (**प्र अचुच्यवुः**) उसे देह से दूर करती हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार चोर पथिकों के समूह पर आक्रमण करता है उसी प्रकार देह में सर्वत्र व्याप्त हुई ओषधियां रोग समूह पर आक्रमण करती हैं और शरीर में जो कुछ भी दूषण होता है उसे बाहर निकाल देती हैं ॥१०॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

पदार्थ –(**यत्**) जब (**अहम्**) मैं भिषग् (**वाजयन्**) रोगी को बल देता हुआ (**इमाः ओषधीः**) इन ओषधियों को (**हस्ते**) हाथ में (**आदधे**) लेता हूँ अर्थात् रोगी पर प्रयुक्त करता हूं तो (**यक्ष्मस्य**) रोग का आत्मा उसी प्रकार (**पुरा**) पूर्णतः (**नश्यति**) नष्ट हो जाता है जिस प्रकार (**जीवगृभः**) मृत्यु से प्राणी नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थः—जब मैं रोगी में बल उत्पन्न करता हुआ इन ओषधियों को प्रयोग में लाता हूं तो रोग का आत्मा पूर्णतः भाग जाता है जिस प्रकार मृत्यु से प्राणी नष्ट हो जाते हैं ॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥

पदार्थः—ये (**ओषधीः**) ओषधियां (**यस्य**) जिस मनुष्य के (**अंगम् अंगम्**) अङ्ग अङ्ग में और (**परुष्परुः**) पोरु-पोरु में (**प्रसर्पथ**) व्याप्त हो जाती हैं (**उग्रः**) उग्र (**मध्यमशीरिव**) मध्यस्थ बलवान् पुरुष के समान (**ततः**) उससे (**यक्ष्मम्**) रोग को (**विबाधध्वे**) नष्ट कर देती हैं ।

भावार्थः—ये ओषधियां जिस मनुष्य के अङ्ग-अङ्ग में और पोढ़-पोढ़ में व्याप्त हो जाती हैं, उग्र मध्यस्थ पुरुष के समान उसके शरीर से रोग को नष्ट कर देती हैं ॥१२॥

सा॒कं य॑क्ष्म॒ प्र प॑त॒ चाषे॑ण किकिदी॒विना॑ ।
सा॒कं वात॑स्य॒ ध्राज्या॑ सा॒कं न॑श्य नि॒हाक॑या ॥१३॥

पदार्थः—(**यक्ष्म**) यह रोग (**चाषेण**) भूख के (**साकम्**) साथ (**प्रपत**) नष्ट होता है, (**किकिदीविना**) विशेष वेदना की 'कि कि' आदि ध्वनि के (**साकम्**) साथ (**प्रपत**) नष्ट होता है । (**वातस्य**) वायु के (**ध्राज्या**) वेग के (**साकम्**) साथ तथा (**निहाकया**) पीड़ा की कराह के (**साकम्**) साथ (**नश्य**) नष्ट होता है ।

भावार्थः—यह रोग ओषधियों के सेवन से भूख के साथ नष्ट होता है, विशेष वेदना के 'कि कि' शब्द के साथ नष्ट होता है और वायु के वेग के साथ तथा पीड़ा की कराह के साथ ही प्रनष्ट हो जाता है ॥१३॥

अ॒न्या वो॑ अ॒न्याम॑वत्व॒न्यान्यस्या॒ उपा॑वत ।
ताः सर्वा॑ः संविदा॒ना इ॒दं मे॒ प्राव॑ता॒ वच॑ः ॥१४॥

पदार्थः—(**वः**) इन ओषधियों में (**अन्या**) अन्यतम (**अन्याम्**) दूसरी ओषधि के प्रभाव को (**अवतु**) रक्षित रखती हैं (**अन्या**) एक दूसरी (**अन्यस्या**) एक दूसरी के (**उपावत**) समीप रहती है (**ताः**) वे (**सर्वाः**) सभी ओषधियें (**संविदाना**) परस्पर मिली हुई (**मे**) मुझ वैद्य के (**इदम्**) इस (**वचः**) वचन की (**प्र अवत**) रक्षा करती हैं ।

भावार्थः—इन ओषधियों में एक दूसरी एक दूसरी के साथ मिलकर दी जाने पर एक दूसरे के प्रभाव की रक्षा करती हैं और बढ़ाती हैं। ये सभी मिलकर बनाई गई हुई मुझ वैद्य के वचन को (कि रोगी अच्छा हो जावेगा) पूरा करती हैं ॥१४॥

याः फ॒लिनी॒र्या अ॑फ॒ला अ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणी॑ः ।
बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥१५॥

पदार्थः—(**याः**) जो (**फलिनीः**) फलवाली, (**याः**) जो (**अफलाः**) विना फलवाली, जो (**अपुष्पाः**) विना फूल वाली (**च**) और (**याः**) जो (**पुष्पिणीः**) पुष्पवाली हैं (**बृहस्पति प्रसूताः**) प्राण अथवा विद्वान् से उत्पन्न की गई अथवा निर्मित की गई (**ताः**) वे (**नः**) हमें (**अंहसः**) रोगरूपी पाप से (**मुञ्चन्तु**) छुड़ाती हैं ।

भावार्थः—जो ओषधियां फलयुक्त अथा विना फल वाली हैं, जो फूल वाली अथवा विना फूल वाली हैं वे विद्वान् वैद्य द्वारा निर्मित की गई अथवा प्राण द्वारा उत्पन्न होने वाली हमें रोगरूपी पाप से छुड़ाती हैं ॥१५॥

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒३॒॑ दथो॑ वरु॒ण्या॑दु॒त ।
अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शा॒त्सर्व॑स्माद्देवकिल्बि॒षात् ॥१६॥

पदार्थः—ये ओषधियां (**मा**) मुझे (**शपथ्याद्**) मैं शपथ खाता हूँ कि अब ऐसा कुछ नहीं करूँगा कि यह रोग पुनः आवे—इत्यादि बक झक वाले रोग से (**मुञ्चन्तु**) दूर रखती हैं, (**अथो उत**) और (**वरुण्यात्**) जल के प्रभाव से उत्पन्न रोग से दूर रखती हैं (**अथो**) और (**यमस्य**) वायु के (**पड्वीशात्**) बन्धन से अर्थात् वायु जनित गठिया आदि रोग से (**अथो**) और (**देव किल्विषात्**) इन्द्रियजन्य रोगों से छुड़ाती हैं ।

भावार्थः—ये ओषधियाँ मुझे बक-झक वाले रोग से, जल के प्रभाव से उत्पन्न रोगों से, वायु जनित रोगों से और ऐन्द्रियिक रोगों से बचाती हैं ॥१६॥

अ॒व॒पत॑न्तीरवदन्दि॒व ओष॑धय॒स्परि॑ ।
यं जी॒वम॒श्नवा॑महै॒ न स रि॑ष्याति॒ पूरु॑षः ॥१७॥

पदार्थः—(**ओषधयः**) ओषधियां (**दिवः**) द्युलोक से (**अवपतन्ती**) नीचे आती हुई (**परि अवदन्**) कहती हैं कि (**यम्**) जिस (**जीवम्**) जीव को हम (**अश्नवामहै**) व्याप्त करती हैं (**सः**) वह (**पूरुषः**) पुरुष (**न**) नहीं (**रिष्याति**) विनष्ट होता है ।

भावार्थः—ओषधियों में विद्यमान रोगघातक ऊष्मायें और शैत्य द्युलोक से इनमें आते हुए कहते हैं कि हम जिस जीव को व्याप्त करते हैं वह कभी नष्ट नहीं होता है ॥१७॥

या ओष॑धी॒ः सोम॑राज्ञी॒र्बह्वीः॑ श॒तवि॑चक्षणाः ।
तासा॒ं त्वम॑स्युत्त॒मारं॒ कामा॑य॒ शं हृ॒दे ॥१८॥

पदार्थः—(**याः**) जो (**ओषधीः**) ओषधियें (**सोमराज्ञीः**) सोमराजा=चन्द्रमा सम्बन्धी, (**बह्वीः**) बहुत और (**उत विचक्षणाः**) बहुत प्रकार से दिखाई पड़ने वाली हैं (**तासाम्**) उनमें (**त्वम्**) यह (**उत्तमा**) उत्तम (**असि**) है (**अरम्**) अत्यन्त (**कामाय**) कान्त (**हृदे**) हृदय के लिए (**शम्**) सुखदायक है।

भावार्थः – जो ओषधियाँ चन्द्रमा से रस लेकर बढ़ती हैं वे विविध प्रकार की हैं और उनमें भी वह उत्तम है और कोमल हृदय-भाग के लिये सुखकर हैं ॥१८॥

या ओष॑धीः॒ सोम॑राज्ञी॒र्विष्ठि॑ताः पृथि॒वीमनु॑ ।
बृ॒हस्पति॑प्रसूता अ॒स्यै सं द॑त्त वी॒र्य॑म् ॥१९॥

पदार्थ—(**याः**) जो (**ओषधीः**) ओषधियें (**सोमराज्ञीः**) चन्द्रमा के प्रभाव वाली हैं और (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**अनु**) पर (**निष्ठिताः**) स्थित हैं वे (**बृहस्पतिप्रसूताः**) योग्य वैद्य से निर्मित की गई (**अस्यै**) इस रुग्ण तनू=शरीर के लिए (**वीर्यम्**) बल को (**सम् दत्त**) धारण करती हैं।

भावार्थः—जो ओषधियें चन्द्रमा के प्रभाव वाली हैं और पृथिवी पर स्थित हैं वे योग्य वैद्य से निर्मित की गई हुई इस रुग्ण शरीर के लिए बल को धारण करती हैं ॥१९॥

मा वो॑ रिषत्खनि॒ता यस्मै॑ चा॒हं खना॑मि वः ।
द्वि॒पच्चतु॑ष्पद॒स्माकं॒ सर्व॑मस्त्वनातु॒रम् ॥२०॥

पदार्थः—(**खनिता**) भूमि का खोदने वाला (**अहम्**) मैं (**यस्मै**) जिस रुग्ण के लिए (**च**) भी (**वः**) इनको (**खनामि**) खोदता हूँ (**वः**) वे (**मा**) नहीं (**रिषत्**) मारतीं (**अस्माकम्**) हमारे (**सर्वम्**) सब (**द्विपत्**) दो पैर वाले और (**चतुःपत्**) चार पैरों वाले (**अनातुरम्**) नीरोग (**अस्तु**) होवें।

भावार्थः—भूमि का खोदने वाला मैं जिसके लिए इन ओषधियों को खोदता हूँ उसे वे नहीं मारती हैं। हमारे मनुष्य और पशु आदि सभी नीरोग होवें ॥२०॥

याश्चे॒दमु॑पशृ॒ण्वन्ति॒ याश्च॑ दू॒रं परा॑गताः ।
सर्वाः॑ स॒ङ्गत्य॑ वीरुधो॒ऽस्यै सं द॑त्त वी॒र्य॑म् ॥२१॥

पदार्थः—(**याः च**) जिन ओषधियों के विषय में (**इदम्**) इस मुझ वैद्य के वचन को (**उपशृण्वन्ति**) लोग सुनने हैं (**याश्च**) और जो (**दूरम्**) दूर तक (**परागताः**) फैली हुई हैं (**सर्बाः**) वे सब (**वीरुधः**) लतायें (**संगत्य**) मिलकर (**अस्मै**) इस तनू के लिए (**बीर्यम्**) बल (**संदत्त**) देवें।

भावार्थः—जिन ओषधियों के विषय में लोग उनके गुण दोष को मुझ वैद्य से सुन चुके हैं और जो दूर तक फैली हुई हैं वे सब ओषधियां मिलकर इस शरीर में बल देवें ॥२१॥

ओष॑धयः॒ सं व॑दन्ते॒ सोमे॑न स॒ह राज्ञा॑ ।
यस्मै॑ कृ॒णोति॑ ब्राह्म॒णस्तं रा॑जन्पारयामसि ॥२२॥

पदार्थः—(**ओषधयः**) ओषधियें (**राज्ञा**) ओषधियों के राजा (**सोमेन**) सोम के साथ (**संवदन्ते**) संवाद करती हैं कि (**राजन्**) हे सोमराजन् ! (**ब्राह्मणः**) वेदज्ञ विद्वान् (**यस्मै**) जिसके लिए हमारा (**कृणोति**) प्रयोग करता है (**तम्**) उसे (**पारयामसि**) संकट से पार करती हैं।

भावार्थः ओषधियें अपने राजा सोमलता से संवाद करती हैं कि हे राजन् ! जिस रोगी पर हमारा प्रयोग किया जाता है उस को हम संकट से पार लगा देती हैं ॥२२॥

त्वमु॑त्त॒मास्यो॑षधे॒ तव॑ वृ॒क्षा उप॑स्तयः ।
उप॑स्तिरस्तु॒ सो॒३॑ स्माकं॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति ॥२३॥

पदार्थः—(**त्वम्**) यह ओषधि (**उत्तमा**) उत्तम (**असि**) है (**वृक्षाः**) वृक्ष (**तव**) इसके (**उपस्तयः**) अधोवर्त्ती हैं अतः (**सः**) वह रोग (**उपस्तिः**) अधःशायी (**अस्तु**) होता है (**अस्माकम्**) हमारा (**यः**) जो (**अस्मान्**) हमें (**अभि दासति**) पीड़ित करता है।

भावार्थः—यह ओषधि बहुत उत्तम है। वृक्ष इसके अधःशायी हैं अतः वह रोग हमारा अधःशायी होता है। इन ओषधियों के सेवन से जो कि हमें सताता है ॥२३॥

यह दशम मण्डल में सत्तानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९८

ऋषिः— १—१२ देवापिरार्ष्टिषेणः ।। देवताः – देवाः ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक्त्रिष्टुप् । २, ६, ८, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५ त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, १० विराट्त्रिष्टुप् ।। स्वरः–धैवतः ॥

सूचना यह सूक्त वर्षकामेष्टि का वर्णन करता है । वर्षा के लिए यज्ञ का प्रकार इस सूक्त में वर्णित है । पाश्चात्य और उनके अनुयायी इस सूक्त से वेद में इतिहास दिखाते हैं परन्तु वास्तविक स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है । इसमें आर्ष्टिषेण, देवापि और शन्तनु पद आये हैं । परन्तु ये व्यक्तिवाचक नाम नहीं । आर्ष्टिषेण ऋष्टिषेण का पुत्र है । अर्थात् ऋष्टिषेण मरुद्गण हैं और उनके पुत्र देवापि और शन्तनु क्रमशः विद्युत् और जल हैं ।

बृहंस्पते प्रतिं मे देवतांमिहि मित्रो वा यद्वरुंणो वासिं पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुंभिर्मरुत्वान्त्स पर्जन्यं शन्तंनवे वृषाय ॥१॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) वृष्टि का देव विजातीय तेज जो स्तनयित्नु और वृष्टि का भी स्वामी है (**मे**) इस वर्षा के (**देवताम्**) निमित्तभूत समस्त दिव्य पदार्थों का (**प्रतीहि**) प्रतिनिधि बनता है, वही (**मित्रः**) मित्र (**वरुणः**) वरुण (**यद् वा पूषा**) पूषा (**असि**) है (**यत्**) जो वह (**आदित्यैः**) आदित्यों अर्थात् १२ मासों की १२ प्रकार को सूर्य किरणों से, (**वसुभिः**) वसुओं से युक्त (**मरुत्वान्**) मरुतों से भी युक्त है, (**सः**) वह (**शन्तनवे**) जल के लिए (**पर्जन्यम्**) मेघ को (**वृषाय**) बरसाता है ।

भावार्थः—वृष्टि का देने वाला विजातीय तेज जो स्तनयित्नु और वृष्टि का भी स्वामी है समस्त प्राकृतिक दिव्य शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है । वही मित्र, वरुण, पूषा है और वही आदित्य वसुओं और मरुतों से युक्त है । वह जल के लिए मेघ को बरसाता है ।।१।।

आ देवो दूतो अंजिरश्चिंकित्वान्त्वद्देवापे अभि मामंगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा वंवृत्स्व दधांमि ते द्युमतीं वाचंमासन् ॥२॥

पदार्थः—(**देवापे त्वत्**) विद्युत् के समीपता (**देवः**) द्योतन और दीपन युक्त (**अजिरः**) गतिशील, (**दूतः**) दूतभूत, (**चिकित्वान्**) संचयकारी वायु (**माम्**) इस बृहस्पति=बिजातीय तेज को (**अभि**) लक्ष्य करके (**आ अगच्छत्**) आता है, यह बृहस्पति (**प्रतीचीनः**) अभिमुख होकर (**माम्**) विद्युत् के प्रति (**आववृत्स्व**) लौटता है और (**ते**) इसके लिए (**द्युमतीम्**) दीप्तियुक्त (**वाचम्**) वाक् को (**आसन्**) मुख में (**आ दधामि**) धारण कराता हैं ।

भावार्थः—देवापि=विद्युत् द्वारा प्रेरित, द्योतन और दीपन युक्त, गतिमान् संचयकारी वायु इस विजातीय तेज को लक्ष्य करके उसके पास प्राप्त होता है । यह बृहस्पति=विजातीय तेज अतिमुख हुआ विद्युत् के प्रति लौटता है और उस विद्युत् के लिए दीप्तियुक्त गर्जना और कड़क वाली वाक् को उसके मुख में अर्थात् मेघ में धारण कराता है ।।२।।

अस्मे धेहि द्युमतीं वाचंमासन्बृहंस्पते अनमीवामिंषिराम् ।
यया वृष्टिं शन्तंनवे वनांव दिवो द्रप्सो मधुंमाँ आ विवेश ॥३॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) यह विजातीय तेज जो स्तनयित्नु का भी स्वामी है (**अस्मे**) इस देवापि=विद्युत् के लिए (**द्युमतीम्**) दीप्तिवाली (**अनमीवाम्**) अरोगकारिणी, (**इषिराम्**) गमनमयी (**वाचम्**) माध्यमिका वाक् अर्थात् कड़क आदि को (**आसन्**) इस विद्युत् के मुख मेघ में (**धेहि**) धारण करता है (**यया**) जिस वाणी=कड़क के द्वारा (**शन्तनवे**) जल के लिए (**वृष्टिम्**) वृष्टि को (**वनाव**) बरसाता है, (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**द्रप्सः**) उदकस्पन्द माधुर्ययुक्त हुआ (**आ विवेश**) पृथिवी पर व्याप्त होता है ।

भावार्थः—वह विजातीय तेज जो स्तनयित्नु का भी स्वामी है इस देवापि=विद्युत् के लिए दीप्ति वाली, अरोगकारिणी, गमनशीला माध्यमिका वाक् स्तनयित्नु को इस विद्युत् के मुख में धारण कराता है । जिससे जल के निमित्त वृष्टि बरसाता है और अन्तरिक्ष से उदकस्यन्द पृथिवी पर व्याप्त होता है ।।३।।

आ नों द्रप्सा मधुंमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिंरथं सहस्रंम् ।
नि षींद होत्रमृंतुथा यंजस्व देवान्देवापे हविषां सपर्य ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) यह बृहस्पति=विजातीय तेज (**नः**) हमें (**मधुमन्तः**) माधुर्ययुक्त (**द्रप्साः**) उदकस्यन्द वा वृष्टि संस्त्याय (**आ विशन्तु**) प्राप्त कराता है (**सहस्रम्**) अधिकाधिक (**अधिरथम्**) पृथिवीरूपी रथ पर विद्यमान धन (**देहि**)

प्रदान करता है, (**देवापे**) यह देवापि=विद्युत्‌रूपी वृष्टि यज्ञ का पुरोहित (**निषीद**) ऋत्विक्कर्म में बैठता है (**ऋतुथा**) समय-समय पर (**होत्रम्**) हवन=यज्ञ को (**यजस्व**) करता है और (**देवान्**) वृष्टि के निमित्त (**देवान्**) दिव्य पदार्थों की (**हविषा**) घृत और हवि आदि से (**सपर्य**) सेवा करता है।

भावार्थः—विजातीय तेजः हमें माधुर्ययुक्त वृष्टि संस्त्याथ प्राप्त कराता है। अधिकाधिक पृथिवी पर लदा हुआ धन प्रदान करता है। यह देवापि=विद्युत् वृष्टि यज्ञ का पुरोहित होकर समय-समय पर यज्ञ का संपादन करता है और वृष्टि के निमित्त दिव्य पदार्थों की घृत हवि आदि से सेवा करता है ॥४॥

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५॥

पदार्थः—(**आर्ष्टिषेणः**) ऋष्टिषेण=मरुद्गणों का पुत्र आर्ष्टिषेण (**ऋषिः**) गतिशील सब को दिखाई पड़ने वाला और दिखाने वाला (**देवापिः**) विद्युत्तत्व (**होत्रम्**) वृष्टि रूपी यज्ञ को सम्पन्न कराने को (**निषीदद्**) स्थित होता है (**देवसुमतिम्**) वृष्टि की अन्य सहायक देवशक्तियों का सहयोग (**चिकित्वान्**) प्राप्त करता है, (**सः**) वह (**उत्तरस्माद्**) ऊपर विद्यमान अन्तरिक्षस्थ समुद्र से (**अधरम्**) पार्थिव (**समुद्रम्**) समुद्र पर (**दिव्या**) द्युलोक से उत्पन्न हुई (**वर्ष्या**) वर्षा के (**अपः**) जलों को (**अभ्यसृजत्**) गिराता है।

भावार्थः—मरुद्गणों से उत्पन्न विद्युत्, जो गतिशील है, वृष्टि यज्ञ के संपादन के लिए स्थित होती है और वृष्टि की सहायक अन्य देवशक्तियों का सहयोग प्राप्त करती है। वह अन्तरिक्षस्थ समुद्र से भूमिस्थ समुद्र पर वृष्टि के जलों को गिराता है ॥५॥

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥६॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) इस (**उत्तरस्मिन्**) अन्तरिक्षस्थ (**समुद्रे अधि**) समुद्र में (**आपः**) जलें (**देवेभिः**) दिव्यशक्तियों के द्वारा (**निवृताः**) निरुद्ध (**अतिष्ठन्**) रहती हैं, (**ताः**) वे (**आर्ष्टिसेनेन**) मरुतों से उत्पन्न (**देवापिना**) देवापि=विद्युत् से (**सृष्टाः**) निर्मित एवम् (**प्रेषिताः**) प्रेरित की गईं (**मृक्षिणीषु**) स्वच्छ भूमियों पर (**अद्रवन्**) स्रवित होती हैं।

भावार्थः—इस अन्तरिक्षस्थ समुद्र में जलें दिव्य शक्तियों द्वारा निरुद्ध की गई ठहरी रहती हैं। मरुतों के पुत्र देवापि=विद्युत् से निर्मित एवन् प्रेरित की गई वे स्वच्छ भूमियों पर स्रवित होती हैं ॥६॥

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥७॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**शन्तनवे**) जल के लिए (**पुरोहितः**) पुरोहित (**वृतः**) वरण किया हुआ (**देवापिः**) विद्युत्तत्व (**कृपयन्**) कृपा करता हुआ अथवा समर्थ हुआ (**होत्राय**) वर्षा रूपी यज्ञ के लिए (**अदीधेत्**) गतिमान् होता है तब (**बृहस्पतिः**) वृष्टि का देव और स्नयित्नु का स्वामी विजातीय तेज (**देवश्रुतम्**) देवों से श्रुत (**वृष्टिवनिम्**) वृष्टि को देने वाली (**वाचम्**) स्तनयित्नुलक्षणा वाणी को (**रराणः**) चाहता हुआ (**अस्मै**) इस देवापि=विद्युत् को (**अयच्छत्**) प्रदान करता है।

भावार्थः—जब शन्तनु=जल के लिए पुरोहित वरण किया हुआ देवापि=विद्युत्तत्व समर्थ हुआ वर्षा रूपी कार्य के लिए गतिमान् होता है तब वृष्टि का देव और स्तनयित्नु का स्वामी विजातीय तेज अथवा उससे युक्त मेघ वृष्टि देने वाली स्तनयित्नु वाणी को इस देवापि=विद्युत् के लिए प्रदान करता है। देवापि=विद्युत् को पुरोहित=पहले धारित इस लिए कहा गया है कि पहले चमकती है और बाद में वर्षती है ॥७॥

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥८॥

पदार्थः—(**अग्ने यम् त्वाम्**) जिस उस अग्नि को (**शुशुचानः**) ज्वलित करता हुआ (**मनुष्यः**) मनुष्यों का हितकारी (**आर्ष्टिषेणः**) मरुतों से उत्पन्न (**देवापिः**) विद्युत्तत्व (**समीधे**) सम्यग् दीप्त करता है, (**विश्वेभिः**) सारे (**देवेभिः**) वृष्टि के सहयोगी देवों से (**अनुमद्यमानः**) प्रवृद्ध किया हुआ यह अग्नि=विजातीय तेज (**वृष्टिमन्तम्**) वृष्टि वाले (**पर्जन्यम्**) मेघ को वृष्टि के लिए (**प्र ईरय**) प्रेरित करता है।

भावार्थः—जिस उस अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ, मनुष्यों का हितकारी मरुतों से उत्पन्न विद्युत्तत्व भली प्रकार प्रदीप्त करता है वह

तेजोरूप अग्नि वृष्टि सहायक के समस्त देवों से प्रवृद्ध किया हुआ वृष्टि वाले मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है ॥८॥

त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ॥९॥

पदार्थ—(**रोहिदश्व**) तेजोमय ज्वालाओं वाले (**त्वाम्**) इस अग्नि को (**पूर्वे**) ज्ञानपूर्ण (**ऋषयः**) ऋषि जन (**गीर्भिः**) स्तुतियों के साथ (**आयन्**) प्राप्त करते हैं, (**त्वाम्**) इस (**पुरुहूत**) बहुतों से आहूत अग्नि को (**अध्वरेषु**) यज्ञों में प्राप्त करते हैं (**अस्मे**) हमें (**सहस्रम्**) अतिप्रचुर मात्रा में (**अधिरथानि**) रथों पर लदा धन प्राप्त हो (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ में (**आ उप याहि**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—जिस इस सबके द्वारा प्रशस्यमान अग्नि को ज्ञान पूर्ण ऋषि लोग प्रशंसा वचनों सहित प्राप्त करते हैं और जिसको मनुष्य लोग यज्ञों में प्रयोग करते हैं वह अग्नि हमारे यज्ञ में काम में आता है और यज्ञ के द्वारा प्रचुर मात्रा में रथ पर लदे हुए धनों को प्राप्त करने का साधन बनता है ॥९॥

एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ॥१०॥

पदार्थः—(**अग्ने त्वे**) इस अग्नि में किए जाने वाले यज्ञ में (**एतानि**) ये (**नवतिः नव**) ९९ वें (**सहस्रा**) सहस्रों (**अधिरथा**) रथों पर लदा धन धान्य ऋत्विजों की दक्षिणा में (**आहुतानि**) अर्पित हैं तथा इस अग्नि में भी प्रचुर मात्रा में सामग्री घी आदि अर्पित है, (**तेभिः**) उन हुत पदार्थों से (**शूर**) बलशाली, (**इषितः**) प्रेरित यह अग्नि (**पूर्वीः**) बहुत सी (**तन्वः**) ज्वालाओं को (**वर्धस्व**) बढ़ाता है और (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**नः**) हमारे लिए (**वृष्टिम्**) वृष्टि को (**रिरीहि**) पूरित करता है ।

भावार्थः—इस अग्नि में किये जाने वाले यज्ञ में ये रथों पर लदे प्रचुरमात्रा में धन धान्य ऋत्विजों की दक्षिणा में अर्पित हैं और हवि के रूप में घी और सामग्री भी अग्नि में अर्पित होती हैं इससे यह अग्नि अपनी ज्वालाओं को बढ़ाता है और अन्तरिक्ष से वृष्टि को पूरित करता है ॥१०॥

एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान्पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**एतानि**) इन (**नवतिम् सहस्रा**) अत्यधिक मात्रा में आहुत पदार्थों के (**भागम्**) भाग को (**वृष्णे**) वर्षा करने वाले (**इन्द्राय**) इन्द्र के लिए (**सं प्रयच्छ**) देता है वह (**देवयानान्**) देवयान (**पथः**) मार्गों को (**विद्वान्**) प्राप्त करता हुआ (**दिवि**) अन्तरिक्ष में (**देवेषु**) देवों में (**अपि**) भी (**औलानम्**) जलों के संघात को (**धेहि**) धारण कराता है ।

भावार्थः—यह अग्नि इन अत्यधिक मात्रा में आहुत हवि आदि पदार्थों के भाग को वर्षा के करने वाले इन्द्र=विद्युत् वा वायु के पास भी पहुँचाता है । इन वृष्टि के सहयोगी देवों की गतिविधि और पद्धति को प्राप्त कर अन्तरिक्ष में इन देवों में जल-संघात को धारण कराता है ॥११॥

अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥१२॥

पदार्थ—(**अग्ने**) यह अग्नि (**दुर्गहा**) दुःख से गाहनीय मेघ के दुर्गों को (**विबाधस्व**) बाधायुक्त करता है (**नः**) हमारे लिये (**मृधः**) हिंसक कृमि कीट आदि को नष्ट करता है, (**अमीवाम्**) रोग को (**अप सेध**) दूर भगाता है, (**रक्षांसि**) रोगकारक जन्तुओं को (**अपसेधः**) भगाता (**अस्मात्**) इस (**समुद्रात्**) समुद्रवण के साधन भूत (**बृहतः**) महान् (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**नः**) हमारे लिये (**अपाम्**) जलों की (**भूमानम्**) महती मात्रा को (**इह**) इस लोक में (**उपसृज**) छोड़ता है ।

भावार्थः—यह अग्नि दुर्गह मेघ के समूहों को नष्ट करता है, हमारे स्वास्थ्य के लिए हिंसक कृमि कीट आदि को नष्ट करता है, रोग और रोगकारी जन्तुओं को भगाता है । तथा समुद्रवण के साधन भूत महान् अन्तरिक्ष से हमारे लिये प्रभूत मात्रा में जलों को बरसाता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में अट्ठानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९९

ऋषिः—१—१२ वम्रो वैखानसः ॥ देवताः—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ९, १२ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ आसुरीस्वराडार्चीनिचृत्त्रिष्टुप् । ८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥१॥

पदार्थः— हे इन्द्र=परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (**ववृध्यै**) हमारी वृद्धि के लिए (**चिकित्वान्**) जानता हुआ तू (**नः**) हमें (**कम्**) कौन सा (**चित्रम्**) चायनीय (**पृथुग्मानम्**) बहुविस्तीर्ण (**वाश्रम्**) स्तुत्य धन (**इषण्यसि**) देना चाहता है, (**तस्य**) उस (**शवसः**) बलशाली प्रभु का (**दातु कम्**) कितना भारी दान है कि (**व्युष्टौ**) विविध कामनाओं के पूर्त्यर्थ (**वृत्रतुरम्**) मेघ को काटने वाले (**वज्रम्**) वज्र को (**तक्षत्**) बनाता है और (**अपिन्वत्**) वृष्टि जल को सींचता है।

भावार्थः हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! हमारी वृद्धि के लिये जानता हुआ तू हमें कौन सा चायनीय, विस्तीर्ण स्तुत्य धन देना चाहता है। वस्तुतः उस तुझ बलशाली प्रभु का कितना भारी दान है कि तू हमारी कामनाओं की पूर्ति के निमित्त वृत्र=मेघ के विनाशक वज्र को बनाता है और वृष्टि से संसार को सींचता है ॥१॥

स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥२॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**हि**) ही इन्द्र=प्रदीप्त अग्नि (**द्युता**) प्रकाशमान (**विद्युता**) विद्युत् से (**साम**) जल के मिश्रण और प्रक्षेपण को (**वेति**) प्राप्त होता है, (**असुरत्वा**) मेघ रूप से (**पृथुम्**) विस्तीर्ण (**योनिम्**) अन्तरिक्ष को (**आ ससाद**) प्राप्त होता है, (**सः**) वह (**सनीळेभिः**) मरुतों के साथ (**प्रसहानः**) मेघ को अभिभूत करता हुआ विद्यमान होता है, (**न**) संप्रति (**भ्रातुः**) भरण-पोषण कर्ता (**अस्य**) इस (**सप्तथस्य**) आदित्यों में सातवें आदित्य की (**ऋते**) जल के विषय में (**मायाः**) यह सब विविध कार्य कलाप है।

भावार्थः—वह प्रदीप्त अग्नि प्रकाशमान विद्युत् से जल के मिश्रण और विक्षेपण को प्राप्त होता है, मेघरूप से महान् अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है। वह मरुतों के साथ मेघ को अभिभूत करता हुआ विद्यमान है। भरण पोषण करने वाले इन आठ आदित्यों में सातवें आदित्य का जल के विषय में यह कार्यकलाप है ॥२॥

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३॥

पदार्थः—(**सः**) वह इन्द्र=ऐश्वर्यशाली जीव (**वाजम्**) ऐश्वर्य एवं ज्ञान को (**याता**) प्राप्त करता है, (**अपदुष्पदा**) बुराइयों से रहित मार्ग से (**यन्**) जाता हुआ (**स्वः साता**) सुख लाभ के निमित्त (**परि षदत्**) प्रयत्न करता है (**यत्**) जब (**अनर्वा**) अहिंसक होकर (**शतदुरस्य**) सैंकड़ों द्वारों वाले प्रभु के (**वेदः**) ऐश्वर्य का (**सनिष्यन्**) सेवन करना चाहता है तब (**वर्पसा**) बल से (**शिश्नदेवान्**) अब्रह्मचर्य भावनाओं को (**घ्नन्**) विनष्ट करता हुआ (**अभिभूत्**) समस्त दुःखों पर काबू पा लेता है।

भावार्थः—वह ऐश्वर्यशाली जीव ऐश्वर्य एवं ज्ञान को प्राप्त करता है। बुराइयों से रहित मार्ग से जाता हुआ सुखलाभ के निमित्त प्रयत्न करता है। जब अहिंसक होकर सैंकड़ों द्वारों वाले प्रभु के सैंकड़ों द्वारों वाले ऐश्वर्य का सेवन करना चाहता है तब बल से ब्रह्मचर्यविहीन भावनाओं को विनष्ट करता हुआ समस्त दुःखों पर काबू पा लेता है ॥३॥

स यह्व्यो३ वनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥४॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**अर्वा**) मेघों पर चढाई करने वाला (**सस्रिः**) सरणशील इन्द्र=वायु (**यह्व्यः**) महान् (**अवनीः**) गमनशील जलों को (**प्रधन्यासु**) बहुत धनों को प्रदान करने वाली (**गोषु**) भूमियों में (**आजुहोति**) फेंकता है, (**यत्र**) जिनमें (**अपादः**) पादरहित (**अरथाः**) रथरहित (**द्रोण्यश्वासः**) द्रुत व्यापन शील (**युज्यासः**) इन्द्र की मित्र भूत नदियें (**वाः**) वरणीय (**घृतम्**) उदक को (**ईरते**) प्रेरित करती हैं।

भावार्थ—वह मेघों पर आक्रमण करने वाला इन्द्र=वायु महान्

गमनशील जलों को बहुत धनों को प्रदान करने वाली भूमियों पर फैंकता=बरसाता है । जिन भूमियों में विना पैर वाली, विना रथों वाली, शीघ्र फैलने वाली इन्द्र की मित्रभूत नदियां उत्तम जल को प्रेरित करती हैं ॥४॥

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥५॥

पदार्थः–(**सः**) वह इन्द्र=वायु (**रुद्रेभिः**) रुद्रोत्पन्न मरुतों सहित (**अशस्तवारः**) अप्रशस्त वस्तुओं का निवारक है, (**ऋभ्वा**) महान् है, (**आरे-अवद्यः**) बुरी वस्तुओं को दूर फेंकने वाला है (**गयम्**) स्थान स्थान को (**हित्वी**) छोड़कर (**आ अगात्**) आता है, (**वम्रस्य**) ज्ञान का वमन करने वाले मनुष्य के (**मिथुनो**) माता पिता को (**विवव्री**) व्याधि रहित (**मन्ये**) मानता हूँ यह (**अन्नम्**) जीवन शक्ति को (**अभीत्य**) अभि=प्राप्त करके (**मुषायन्**) लूटता हुआ (**अरोदयत्**) रुलाता है ।

भावार्थ–वह वायु मरुतों के साथ हुआ अप्रशस्त का निवारक, महान् और बुरी वस्तुओं को दूर फेंकने वाला है । स्थान से स्थान को छोड़ता जाता हुआ वह ज्ञानी मनुष्य के माता-पिता को भी व्याधिरहित करता है ऐसा मैं यजमान मानता हूं । वह मेघ की जीवन शक्ति को प्राप्त कर उसे हरण करता है और मेघ को रुलाता है ॥५॥

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥६॥

पदार्थः–(**स इत्**) वह ही (**पतिः**) सब का पालक इन्द्र=वायु (**दासम्**) दुष्काल लाने वाले, (**तुवीरवम्**) बहुत गर्जने वाले वृत्र=मेघ का (**दन्**) दमन करता हुआ (**त्रिशीर्षाणम्**) ऊपर मध्य और नीचे की तरफ को तीन शिरों वाले (**षड्क्षम्**) छ ऋतुएं जिसकी आंखों के समान हैं ऐसे विश्वरूप=विविध रंगों वाले मेघ को (**दमन्यत्**) मारता है, (**अस्य**) इस वायु के (**ओजसा**) वेग से (**त्रितः**) तीन स्थानों अर्थात् द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर विद्यमान अग्नि (**वृधानः**) बढ़ाता हुआ (**अयोऽग्रया**) चुम्बकमयी (**विपा**) शक्ति से (**वराहम्**) जलाहारी मेघ को (**हन्**) मारता है ।

भावार्थः–यह सबका पालक वायु दुष्काल लाने वाले बहुत गर्जने वाले परन्तु बरसने वाले मेघ का दमन करता हुआ तीनों दिशाओं में शिरों वाले और छः ऋतुओं में रहने वाले विश्वरूप=विविध रूपों वाले मेघ को मारता है । पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु तीनों स्थानों में विद्यमान अग्नि इस वायु के वेग से बढ़ा हुआ होकर चुम्बकमयी शक्ति से जलाहारी मेघ को मार गिराता है ॥६॥

स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ॥
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥७॥

पदार्थः–(**सः**) वह इन्द्र=राजा (**द्रुह्वणे**) द्रोही (**मनुषे**) मनुष्य के लिए और (**अर्शसानाय**) हिंसाकारक के लिए (**ऊर्ध्वसानः**) शौर्य आदि गुणों में अधिक हुआ (**शरुम्**) विनाशक अस्त्र को (**आ साविषद्**) प्रयोग में लाता है, (**सः**) वह (**नृतमः**) उत्तम नर श्रेष्ठ (**नहुषः**) दुष्टों का बन्धनकारी (**अर्हन्**) पूज्य होकर (**अस्मत्**) हमारे (**दस्युहत्ये**) शत्रुओं से संग्राम में (**पुरः**) शत्रुओं की नगरी को (**अभिनत्**) तोड़ देता है ।

भावार्थः–वह राजा द्रोही मनुष्यों और हिंसाकारी के हनन के लिए शौर्य आदि गुणों में अधिक हुआ विनाशक अस्त्र को प्रयोग में लाता है । वह नरों में श्रेष्ठ, दुष्टों का बन्धनकारी राजा जनता का पूज्य होकर हमारे शत्रुओं के संग्राम में उनकी पुरी को तोड़ देता है ॥७॥

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥८॥

पदार्थः–(**यवसे न**) जिस प्रकार यव तथा घास आदि की पुष्टि के लिए (**उदन्यन्**) जल से पूर्ण होकर (**अभ्रियः**) मेघ समूह (**गातुम्**) भूमि को (**विदत्**) प्राप्त करता है उसी प्रकार राजा (**नः**) हमारे (**क्षयाय**) निवास के लिए (**गातुम्**) भूमि को (**विदत्**) प्राप्त करे (**अस्मे** हममें (**श्येनः**) शंसनीय (**यत्**) जो हो वह (**शरीरैः**) शरीरों से उस (**इन्दुम्**) आत्मा को (**उप सीदत्**) प्राप्त करता है (**अय अपाष्टिः**) लोहमयी ऐडी वाले पुरुष के समान बलशाली होकर वह (**दस्यून्**) काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**हन्ति**) नष्ट करता है ।

भावार्थः–जिस प्रकार यव आदि अन्न और घास आदि चारे की पुष्टि के लिए जल से पूर्ण होकर मेघ समूह भूमि को प्राप्त होता है उसी प्रकार राजा हम प्रजाजनों के निवास के लिए भूमि को प्राप्त करे । हममें

जो शसंनीय है वह शरीरों द्वारा आत्मा को प्राप्त करता है और लोहमयी ऐडी वाले पुरुष के समान काम, क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करता है ॥८॥

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९॥

पदार्थः—(**सः**) वह इन्द्र=वायु (**शवसानेभिः**) बल प्रकट करने वाले आयुधों से (**व्राधतः**) महान् शत्रुओं को (**अस्य**) फेंक देता है, (**कृपणे**) स्तुतिकर्ता (**कुत्साय**) ऋत्विग् के लिए (**शुष्णम्**) शोषक मेघ को (**परादात्**) खण्ड-खण्ड करता है, (**अयम्**) यह (**कविम्**) माध्यमिक देव अग्नि को (**शस्यमानम्**) प्रशंसनीय (**अनयत्**) बनाता है (**यः**) जो (**अस्य**) इसके (**उत**) और (**नृणाम्**) मरुतों के (**अत्कम्**) रूप को (**सनिता**) प्रदान करने वाला होता है ।

भावार्थः—वह बायु प्रबल आयुधों=शक्तियों से महान् शत्रुओं को फेंक देता है । स्तुति कर्त्ता ऋत्विक् के कल्याणार्थ शोषक मेघ को खण्ड-खण्ड करता है । यह माध्यमिक देव अग्नि को प्रशंसित बनाता है और इसके तथा मरुतों के रूप का प्रदान करने वाला है ॥९॥

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीताररुं यश्चतुष्पात् ॥१०॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह इन्द्र=वायु मनुष्यों को सुख (**दशस्यन्**) देता हुआ (**नर्येभिः**) मनुष्यों के हितकारक मरुतों के सहयोग से (**अस्य**) मेघों को फेंक देता है, तथा (**देवेभिः**) द्योतमान सूर्य किरणों के साथ (**दस्मः**) दर्शनीय हैं, (**वरुणः**) आदित्य के (**न**) समान (**मायी**) मायावान् है, (**कनीनः**) कमनीय, (**ऋतुपाः**) ऋतुओं का पालक (**अयम्**) यह (**अवेदि**) जाना जाता है, (**यः**) जो (**चतुष्पात्**) चतुष्पाद् होकर (**अररुम्**) जलावरोधक मेघ को (**अमिमीत**) नष्ट करता है ।

भावार्थः– यह वायु मनुष्यों को सुख देता हुआ मरुतों के सहयोग से मेघ को फेंकता है । देवों के साथ यह दर्शनीय होता है । यह आदित्य के समान विविध कर्मों वाला है अतः मायावान् है । इसे ऋतुओं का पालक कहा जाता है । यह चतुष्पात्=चारों ओर व्याप्त होकर जल को रोकने वाले को मारता है ॥१०॥

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**सुत्वा**) ओषधि आदि तैयार कर (**यजतः**) यज्ञ करने वाला (**गीः**) स्तोता वा ऋत्विग् (**दीदयत्**) अपने गुणों से प्रकाशित होता है, (**पुरः**) शरीर रूपी पुरी को (**इयानः**) प्राप्त होता हुआ भी (**वर्पसा**) उत्तम आत्मबल से (**अभि भूत्**) सब इन्द्रिय आदि को वश में कर लेता है, (**ऋजिश्वा**) इन्द्रियों को वश में किये हुए (**औशिजः**) मेधावी (**अस्य**) इस प्रभु के (**स्तोमेभिः**) स्तुति वचनों से (**वृषभेण**) सुखवर्षक रूप से (**पिप्रोः**) पालनीय देह के (**व्रजम्**) समूह को (**दरयत्**) ज्ञान प्राप्त होने से तोड़ देता है और मुक्त हो जाता है ।

भावार्थः—जब औषधि आदि के रस को तैयार करके यज्ञ करने वाला ऋत्विग् अपने गुणों से प्रकाशित होता है तब शरीररूपी पुरी में रहता हुआ भी आत्मबल से सब इन्द्रिय आदि पर वश प्राप्त कर लेता है । इन्द्रियों को वश में किए हुए मेधावी वह पुरुष इस प्रभु के स्तुति वचनों से सुखवर्षक प्रभाव से पालना योग्य इस देह के समूह को तोड़ देता है और मुक्त हो जाता है ॥११॥

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१२॥

पदार्थः—(**असुर**) हे बलवन् प्रभो (**एव**) इस प्रकार (**महः**) महान् (**वक्षथाय**) प्रभु की प्राप्ति के लिए (**पड्भिः**) कदम-कदम पर (**वम्रकः**) यह स्तोता (**इन्द्रम्**) आत्मा को (**उप सर्पत्**) प्राप्त कर लेता है । (**सः**) वह (**इयानः**) प्रभु को प्राप्त करता हुआ (**अस्मै**) इस अपने आत्मा के लिए (**स्वस्ति**) कल्याण (**करति**) करता है और (**विश्वम्**) सब (**इषम्**) ज्ञान (**ऊर्ज्जम्**) बल और (**सुक्षितिम्**) उत्तम मनुष्यों के समूह को (**आ अभाः**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—हे शक्तिशालिन् ! प्रभो ! इस प्रकार तुझ महान् प्रभु की प्राप्ति के लिए कदम-कदम पर यह स्तोता आत्मा को प्राप्त कर लेता है । वह यह प्रभु को प्राप्त करता हुआ इस अपने आत्मा के लिए सब ज्ञान,बल उत्तम मनुष्यों के समूह को प्राप्त करता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में निन्यानवेंवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १००

ऋषिः – १—१२ दुवस्युर्वान्दनः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१—३ जगती । ४, ५, ७, ११ निचृज्जगती । ६, ८, १० विराड्जगती । ९ पादनिचृज्जगती । १२ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—११ निषादः । १२ धैवतः ॥

इन्द्र दृह्यं मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१॥

पदार्थः—(**मघवन्**) हे बलशालिन् ! (**इन्द्र**) परमेश्वर ! तू (**त्वावत् इत्**) तुम्हारे चाहने वाले जीव को (**भुजे**) संसार के भोग और अनन्तर मोक्ष के भोग के लिए (**दृंह्य**) दृढ़ कर (**इह**) इस संसार में (**स्तुतः**) स्तुत तू (**सुतपाः**) उत्पन्न जगत् का पालक (**बोधि**) जाना जाता है । (**नः**) हमारे (**वृधे**) बढ़ने के लिए हो, (**देवैः**) अन्य देवों अथवा किरणों के साथ (**सविता**) सूर्य (**नः**) हमारे (**श्रुतम्**) ज्ञान की (**प्र अवतु**) रक्षा का साधन बनें, (**सर्वतातिम्**) सारे संसारी पदार्थों का विस्तार होता है जिससे ऐसी (**अदितिम्**) प्रकृति को (**आ वृणीमहे**) अपने ज्ञान में धारण करते हैं ।

भावार्थः—हे बलशालिन् समस्त धनों के स्वामिन् ! परमेश्वर ! तू चाहने वाले जीव को भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए दृढ़ कर। इस संसार में तू जगत् का पालक जाना जाता है । तू हमारी वृद्धि के लिए हो । अन्य देवों के साथ सूर्य हमारे ज्ञान की रक्षा का साधन बने । हम समस्त संसार के विस्तार के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥१॥

भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥२॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् लोगो ! आप (**भराय**) सब के पोषक (**शुचिपे**) शुद्ध पवित्र, (**क्रंदविष्टये**) बहते समय शब्द करते हुए (**वायवे**) उस वायु के लिए (**ऋत्वियम्**) यथा काल (**भागम्**) हवि के भाग को (**सु**) सुष्ठुरूप से (**प्रभरत**) प्रदान करो, (**यः**) जो वायु (**गौरस्य**) गौरवर्ण (**पयसः**) दुग्ध अथवा रस के (**पीतिम्**) पान को (**आनशे**) प्राप्त करता है, (**सर्वतातिम् अदितिम् आवृणीमहे**) हम सब संसार के विस्तार के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ।

भावार्थः—हे ऋत्विग् लोगो ! आप सब के पोषक शुद्ध और पवित्र तथा बहते समय ध्वनि करने वाले वायु के लिए यथाकाल प्राप्त हवि के भाग को प्रदान करो । वह यह गौर वर्ण के दुग्ध आदि का पान करता है । हम समस्त संसार के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥२॥

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते ।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥३॥

पदार्थ—(**देवः**) द्योतन आदि गुणों से युक्त (**सविता**) सूर्य (**नः**) हम सम्बन्धी (**सुन्वते**) यज्ञ करते हुए, (**ऋजूयते**) सरल कामनाओं वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**वयः**) अन्न को (**आ साविषत्**) उत्पन्न करता है (**यथा**) जिससे (**देवान्**) यज्ञ के देवों को हम (**पाकवत्**) पुरोडाश पाक आदि करके (**प्रतिभूषेम**) हवि से अलंकृत करते हैं ……।

भावार्थः—द्योतन आदि गुणों से युक्त सूर्य हमारे सम्बन्धी यज्ञकर्त्ता सरलभावना वाले यजमान के लिए अन्न को उत्पन्न करता है जिससे यज्ञ के देवों को हम पुरोडाश आदि स्थालीपाक करके हवि से यज्ञ में अलंकृत करें=हवि प्रदान करें । हम समस्त संसार के उपादान कारण अदिति=प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥३॥

इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।
यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**अस्मे**) हमें (**सुमनाः**) उत्तम मन वाला बनाने वाला (**विश्वहा**) सदा (**अस्तु**) होवे, (**राजा**) सबका राजा (**सोमः**) परमेश्वर (**नः**) हमारे (**सुवितस्य**) स्तुति को (**अध्येतु**) प्राप्त करे (**यथा यथा**) जिस जिस प्रकार से (**मित्रधितानि**) मित्रों के लिए निहित धनों को (**संदधुः**) हम प्राप्त कर सकें ……।

भावार्थः—विद्युत् हमें उत्तम मन वाला बनाने का सदा साधन बने । सब का स्वामी परमेश्वर हमारी स्तुति को प्राप्त करे । जिस-जिस प्रकार

से हम मित्रों के लिए निहित धनों को प्राप्त कर सकें वैसा अनुग्रह करे। हम जगत् के उपादान कारण प्रकृति को ज्ञान में धारण करते हैं ॥४॥

इन्द्रं उक्थेन शर्वसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुंषः ।
यज्ञो मनुः प्रमंतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमर्दितिं वृणीमहे ॥५॥

पदार्थः – (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**उक्थेन**) प्रशंसनीय (**शवसा**) बल से (**परुः**) प्रत्येक पदार्थ के पर्व=ग्रन्थि को (**दधे**) धारण करता है, (**बृहस्पते**) हे वेद वाणी वा महान् आकाश आदि के स्वामिन् ! आप (**आयुषः**) हमारी आयु के (**प्रतरीता**) बढ़ाने वाले (**असि**) होओ, (**यज्ञः**) उत्तम कर्म, (**मनुः**) मननशक्ति और (**प्रमतिः**) बुद्धि (**नः**) हमारे पालक होकर (**कम हि**) सुखकारी हो·········।

भावार्थः—परमेश्वर ! प्रशंसनीय बल से प्रत्येक वस्तु के आधार भूत पर्व=जोड़ वा ग्रन्थि को धारण करता है। वेदों का स्वामी वह हमारी आयु को बढ़ाने वाला होवे। उत्तम कर्म, मननशक्ति, और बुद्धि हमारे पालक होकर हमें सुखकारी हो। हम समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥५॥

इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमर्दितिं वृणीमहे ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य नु**) इन्द्र=विद्युत् का ही (**सुकृतम**) सुसंपादित (**दैव्यम**) देवों सम्बन्धी (**सहः**) तेज (**अग्निः**) अग्नि (**गृहे**) हम लोगों के गृहों में गार्हपत्य अग्नि के रूप में विद्यमान है, वह अग्नि (**जरिता**) हवि आदि का भक्षक, (**मेधिरः**) यज्ञ का साधन, (**कविः**) क्रान्तदर्शन, (**यज्ञः**) यष्टव्य (**च**) और (**चारुः**) उत्तम (**विदथे**) यज्ञ में (**अन्तमः**) समीपस्थ (**भूव**) रहता है । ······· ।

भावार्थः—विद्युत् का ही संपादित देवों सम्बन्धी तेज अग्नि के रूप में हमारे गृहों में गार्हपत्य अग्नि होकर विद्यमान है। वह हवि आदि का भक्षक, यज्ञ का साधन, क्रान्तदर्शन, यष्टव्य चारु और समीपस्थ है। हम समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को ज्ञान में धारण करते हैं ॥६॥

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥७॥

पदार्थः –हे (**वसवः**) ज्ञान के वासक (**देवाः**) विद्वानो ! (**वः**) इन यज्ञ के देवों के (**गुहा**) प्रच्छन्न प्रदेश में (**आविष्टयम्**) प्रकट हुए (**देवहेडनम्**) देवद्रोहरूप (**भूरि**) प्रभूत (**दुष्कृतम्**) पाप को (**नः**) नहीं (**चकृम**) करें यदि हम पाप करें तो (**नः**) हमें (**अमृतस्य**) मनुष्य के (**वर्पसः**) रूप=शरीर प्राप्ति (**माकिः**) न होवें ।······ ।

भावार्थः -हे ज्ञान के वासक विद्वान् लोगो ! इन यज्ञ के देवों के प्रच्छन्न प्रदेश में प्रकट हुए देवद्रोह रूप महान् पाप को हम न करें। यदि हम ऐसा करें तो हमें मनुष्य का शरीर अगले जन्म में न मिले। सब जगत् के उपादान कारण प्रकृति को हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥७॥

अपामीवां सविता साविषन्न्य१ग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥८॥

पदार्थः—(**सविता**) सूर्य हमारे (**अमीवाम्**) रोग को (**अप सा विषत्**) दूर फेंक देता है, तथा (**अद्रयः**) मेघ (**वरीयः**) बड़े से बड़े हमारे रोग को (**न्यक्**) अध (**अपसेधन्तु**) फेंक देते हैं, (**यत्र**) जिस प्रदेश में (**मधुसुत्**) सरस ज्ञान के उत्पादक (**ग्रावा**) विद्वान् की (**बृहत्**) बड़ी (**उच्यते**) स्तुति की जाती है ।···।

भावार्थ—जिस यज्ञ की जगह ज्ञान का प्रवाह बहाने वाले विद्वान् की महती प्रशंसा होती है वहां पर सूर्य हमारे रोगों को दूर फेंकता है, मेघ हमारे रोगों को नीचे गिरा देते हैं अर्थात् वृष्टि में बहा ले जातेहैं। हम सब जगत् के उपादान कारक प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥८॥

ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—हे (**वसवः**) विद्वानो ! (**सोतरि**) मुझ यज्ञकर्त्ता की दृष्टि वा यज्ञ में (**ग्रावा**) वेद का ज्ञाता विद्वान् (**ऊर्ध्वः**) उपरि स्थान वाला हो, (**विश्वा**) समस्त (**द्वेषांसि**) द्वेषकारी शक्तियों को (**सनुतः**) निगूढ (**युयोत**) पृथक् करो (**देवः**) देव (**सविता**) सूर्य (**नः**) हमारा (**पायुः**) पालक और (**ईड्यः**) प्रशस्य है ।···।

भावार्थः—हे विद्वानो ! मुझ यज्ञकर्त्ता के यज्ञ में वेदज्ञ विद्वान् का स्थान ऊँचा है । आप समस्त द्वेषकारी शक्तियों को पृथक् करें । सूर्य देव हमारा रक्षक और प्रशस्य है । समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥९॥

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१०॥

पदार्थः—हे (**गावः**) गौवो ! (**याः**) जो (**ऋतस्य**) जल के (**सदने**) स्थान में (**कोशे**) कक्ष में (**अङ्ग्ध्वे**) प्राप्त करती हो । उस (**यवसे**) तृणवाले प्रदेश में (**पीवः**) बहुत बड़े हुए (**ऊर्जम्**) रस को (**अत्तन**) खाओ, तुम्हारा (**तनूः**) शरीर ही (**तन्वः**) तुम्हारे शरीर की (**भेषजम्**) औषधि (**अस्तु**) होवे ······ ।

भावार्थः—हे गौवो ! जो जल के स्थान में कक्ष में प्राप्त करती हो उस घास वाले प्रदेश में बढ़े हुए रस को खाओ । तुम्हारा तन ही अपनी स्वस्थता के कारण तुम्हारे शरीर की औषधि हो । बाहर की औषधि की आवश्यकता न पड़े । हम समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को ज्ञान में धारण करते हैं ॥१०॥

क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११॥

पदार्थः—(**क्रतुप्रावा**) कर्म का पूरक (**शश्वताम्**) सबका (**जरिता**) जीर्ण करने वाला (**इन्द्रः इत्**) इन्द्र=सूर्य ही (**अवः**) रक्षक है, (**सुतावताम्**) यज्ञ करने वालों का (**भद्रा**) भद्र (**प्रमतिः**) उत्तम बुद्धिदाता है, (**यस्य**) जिस के (**सिक्तये**) पान के लिए (**दिव्यम्**) द्युलोक में होने वाला (**ऊधः**) जल-प्रतिस्याय (**पूर्णम्**) पर्याप्त है ।······ ।

भावार्थः—कर्मो का पूरक सब का समय के उत्पादक होने से जीर्ण करने वाला सूर्य ही सबका रक्षक है । वह यज्ञ करने वालों का भद्र मति-दाता है । उसके पीने के लिए अन्तरिक्ष में उत्पन्न जलनिःस्यन्द पूर्ण है हम सब जगत् के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥११॥

चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः ॥१२॥

पदार्थः—हे प्रभो ! (**ते**) तेरा (**भानुः**) प्रकाश (**चित्रः**) अद्भुत, (**क्रतुप्राः**) कर्म का पूरक और (**अभिष्टिः**) चाहने योग्य है, (**ते स्पृधः**) तेरी स्पृहणीय शक्तियां (**जरणिप्राः**) विद्वानों की इच्छाओं की पूरक और (**अधृष्टाः**) अधर्षणीय (**सन्ति**) हैं जिस प्रकार के (**दुवस्युः**) सेवक (**पश्वः**) पशु (**गोः**) गाय के (**अग्रम्**) आगे के नासिका आदि भाग को (**रजिष्ठया**) अति सरल (**रज्या**) रस्सी से (**आ परि तु तूर्षति**) पीड़ित करता है और आगे वेग से ले जाता है ऐसे ही मैं आप की स्तुति की प्रगतिशील करूं ।

भावार्थः—हे प्रभो ! तेरा प्रकाश अद्भुत है । वह कर्म का पूरक और चाहने योग्य है । तेरी स्पृहणीय शक्तियां विद्वानों की इच्छाओं की पूर्ण करने वाली और अधर्षणीय हैं । जिस प्रकार सेवक गाय आदि पशु की नाक में रस्सी लगाकर उसे दुःखित कर आगे ले जाता है वैसे ही मैं आप की स्तुति में तीव्र वेग लाऊं ॥१२॥

यह दशम मण्डल में एकसौवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०१

ऋषिः—१—१२ बुधः सौम्यः ॥ देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा ॥
छन्दः—१, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८ त्रिष्टुप् । ३, १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ गायत्री । ५ बृहती । ९ विराड्जगती । १२ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—३, ७, ८, १०, ११ धैवतः । ४, ६ षड्जः । ५ मध्यमः । ९, १२ निषादः ॥

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥१॥

पदार्थः—हे (**सखायः**) मित्रो (**समनसः**) समान मनों वाले होकर (**उद् बुध्यध्वम्**) जागो और जानो तथा (**बहवः**) अनेक (**सनीडाः**) समान निवास

वाले हुए (**अग्निम्**) यज्ञ की अग्नि को (**सम इन्धध्वम्**) सम्यक् दीप्त करो (**दधिक्राम्**) अन्न की धारक माध्यमिक वाक् (**अग्निम्**) अग्नि, (**उषसम्**) उषा (**देवीम्**) द्योतन-दीपन शील (**इन्द्रावतः**) इन्द्र से युक्त (**वः**) इनको (**अवसे**) रक्षा के लिए (**ह्वये**) वर्णन करता हूँ।

भावार्थः—मित्रो समान मन वाले होकर जागो और जानो ! अनेक होते हुए भी एक स्थान में रहकर अग्नि को प्रज्वलित करो। इन्द्र से युक्त अन्न की धारक माध्यमिका वाक्, चमकती उषा और अग्नि का रक्षार्थ वर्णन करता हूं और इनका उपयोग उठाता हूं ॥१॥

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥२॥

पदार्थः—हे मित्रो ! (**मन्द्रा**) हर्षदायक स्तुतियों को करो, (**धियः**) कर्मों का (**आ तनुध्वम्**) विस्तार करो (**अरित्रपर्णीम्**) चप्पू से पार ले जायी जाने वाली (**नावम्**) नौका का निर्माण करो, (**इष्कृणुध्वम्**) अन्न और ज्ञान का विस्तार करो (**आयुधा**) आयुधों को (**अरम्**) पर्याप्त रूप से तैयार करो, (**सखायः**) हे सखा लोगो (**प्राञ्चम्**) प्रागञ्चन (**यज्ञम्**) यष्टव्य अग्नि को (**प्रणयत**) प्रदीप्त करो।

भावार्थः—हे मित्रो हर्षदायक स्तुतियां करो, उत्तम कर्मों का विस्तार करो, चप्पू से पार ले जायी जाने वाली नौका बनाओ, अन्न और ज्ञान को बढ़ाओ, आयुध तैयार करो और यज्ञाग्नि को प्राञ्जल करो ॥२॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

पदार्थः—(**सीरा**) हलों को (**युनक्तु**) जोतो, (**युगा**) जूये को (**वितनुध्वम्**) विस्तृत करो, (**योनौ**) हल की लकीर=सीता के (**कृते**) बन जाने पर (**इह**) इसमें (**बीजम्**) बीज को (**वपत**) बोओ (**गिरा**) वेद वाणी के गान के साथ (**नः च**) हमारे (**श्रुष्टिः**) फसल (**सभराः**) हरी भरी पुष्ट (**असत्**) होवे (**सृण्यः**) हसिया वा दातरी (**पक्वम्**) पकी हुई फसल के (**नेदीयः**) समीप (**आ इयात्**) जावे।

भावार्थः—हल को जोतो। उसके जुए को विस्तृत करो। हल की बनी लकीर अर्थात् सीता में बीज को बोओ। वेदवाणी के गान के साथ हमारी

फसल हरी-भरी और पुष्ट होवे। फसल के पक जाने पर हसिया वा दातरी से उसे काटो ॥३॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग (**सीरा**) हलों की (**युञ्जन्ति**) जोतते हैं (**युगा**) दोनों जूओं को (**पृथक्**) पृथक् (**वितन्वते**) विस्तारित करते हैं, (**धीराः**) धीर लोग (**देवेषु**) देवों में (**सुम्नया**) सुखदाता कर्मों के साथ रहते हैं।

भावार्थः—क्रान्तदर्शी लोग हल को जोतते हैं और दोनों हल के जुओं को विस्तृत करते हैं। धीर लोग सुखदायी कर्मों के साथ विद्वानों में रहते हैं ॥४॥

निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥५॥

पदार्थः—(**आहावान्**) गौवों के पानी पीने के स्थानों को (**निष्कृणोतन**) बनाओ (**वरत्राः**) रस्सियों को (**सं दधातन**) बराबर परस्पर जोड़ो, (**वयम्**) हम (**उद्रिणम्**) जल से भरे हुए (**सुसेकम्**) अच्छी प्रकार सींचने योग्य, (**अनुपक्षितम्**) कभी भी जिसका **जल** क्षीण न होवे ऐसे (**अवतम्**) अवट=कूप को (**सिञ्चामहा**) सींचे।

भावार्थः—गौवों के पानी पीने के स्थानों को बनाओ। रस्सियों को परस्पर जोड़ो। हम जल से भरे हुए, अच्छी प्रकार सींचने योग्य, कभी भी जिसका जल क्षीण न होवे ऐसे कूप से खेत की सिंचाई करें ॥५॥

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥६॥

पदार्थः—(**इष्कृत आहावम्**) उत्तम जल पीने के स्थान से युक्त (**सुवरत्रम्**) उत्तम रस्सियों से युक्त, (**सुसेचनम्**) सुखपूर्वक सेचन करने वाले (**उद्रिणम्**) जल वाले (**अक्षितम्**) अक्षय (**अवतम्**) कूप को प्राप्त कर (**सिञ्चे**) सिंचाई करूं।

भावार्थः—उत्तम जलप्रपा से युक्त, उत्तम रस्सियों से युक्त, सुख-पूर्वक सेचन करने वाले, जल वाले, अक्षय कूप को प्राप्त कर सिंचाई करूं ॥६॥

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**अश्वान्**) अश्वों को (**प्रीणीत**) घास आदि से प्रसन्न रखो, (**हितम्**) हितकारक कर्षण (**जयाथ**) करो, (**रथम् इव**) रथ भी (**स्वस्तिवाहम्**) सुख पूर्वक ले जाने वाला (**कृणुध्वम्**) बनाओ, (**द्रोणाहावम्**) काष्ठ के जलपात्र से युक्त, (**अंसत्रकोशम्**) कवच के समान जल रक्षण कोश वाला (**अश्मचक्रम्**) पाषाण के घेरे वाला तथा (**नृपाणम्**) आदमियों के पानी पीने की व्यवस्था से युक्त (**अवतम्**) अवट=कूप को प्राप्त कर (**सिञ्चत**) सिंचाई का काम करो ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अश्वों को चारा पानी आदि से प्रसन्न रखो, उत्तम और हितकारक कर्षण करो। सुखपूर्वक ले जाने वाले रथ को बनाओ। काष्ठ के जल पात्र से युक्त, कवच के समान जल रक्षण कोश वाले, पाषाणमय घेरे वाले और मनुष्यों के पानी पीने की व्यवस्था से युक्त कूप बनाकर सिंचाई का कार्य करो ॥७॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८॥

पदार्थः—(**व्रजम्**) गोशाला (**कृणुध्वम्**) बनाओ, (**सः**) वह (**हि**) हो (**वः**) आप लोगों का (**नृपाणः**) पेय का साधन हो, (**बहुला**) अनेक और (**पृथूनि**) विस्तीर्ण (**वर्म**) कवचों को (**सीव्यध्वम्**) सी कर बनाओ, (**आयसीः**) लोहमयी (**अधृष्ठाः**) अघर्षणीय (**पुरः**) नगरी (**कृणुध्वम्**) बनाओ (**वः**) तुम्हारा (**चमसः**) यज्ञ का चमस पात्र (**मा**) न (**सुस्रोत**) ढीला करो (**तम्**) उसको (**दृंहत**) दृढ़ रखो ।

भावार्थः– हे मनुष्यो ! गोशाला बनाओ और वह ही आप लोगों का दुग्धपेय स्थान हो। बहुत से बड़े और मोटे कवचों को सीकर बनाओ। लोहमयी और अनाक्रमणीय पुरी बनाओ । तुम्हारा यज्ञ का चमसपात्र कभी ढीला-ढाला न हो। वह सदा ही दृढ़ रहे और यज्ञ चलता रहे ॥८॥

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥९॥

पदार्थः– (**देवाः**) हे विद्वान् ऋत्विग् गण !(**वः**) आप के (**ऊतये**)रक्षार्थ (**यज्ञियाम्**) यज्ञार्ह (**धियम्**) बुद्धि और कर्म की हम विद्वान् लोग (**आ वर्त्ते**) प्रेरणा करते हैं। (**इह**) इस मानव जीवन अथवा संसार में (**यज्ञियाम्**) यज्ञार्ह (**यजताम्**) पूजनीय (**देवीम्**) द्योतन दीपन आदि गुणों वाली उस बुद्धि को जागृत रखो। (**सा**) वह बुद्धि (**नः**) हम सबके लिए (**यवसा**) घास आदि को खाकर फिर गोष्ठ में (**गत्वी**) जाकर (**सहस्रधारा**) बहुत धारों से युक्त (**पयसा**) दूध को देने वाली (**महती**) बड़ी (**गौः**) गाय के (**इव**) समान (**दुहीयद्**) ज्ञान और व्यवहार आदि को देती है ।

भावार्थः– हे विद्वान् ऋत्विग्गण ! आप की रक्षा के लिए यज्ञमयी बुद्धि और कर्म भावना को हम विद्वान् लोग प्रवृत्त करते हैं। इस यज्ञार्ह पूज्य द्योतन, दीपन गुणों वाली बुद्धि को सदा जागृत रखो। वह उसी प्रकार ज्ञान और व्यवहार को देती है जिस प्रकार घास आदि खाकर पुनः गोष्ठ में आयी हुई गौ बहुधार से युक्त दुग्ध को देती है ॥९॥

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥१०॥

पदार्थः-- हे अध्वर्यों ! तू (**ईम् तु**) इस (**हरिम्**) हरित वर्ण सोम को (**द्रोः**) काष्ठमय द्रोण कलश के (**उपस्थे**) स्थान में (**सिञ्च**) सिक्त कर, हे पात्र बनाने वालो आप सब (**अश्मन्मयीभिः**) पाषाणमयी (**वाशीभिः**) वसूलियों से (**तक्षत**) इस पात्र को गढो, (**दश**) दश कलशों में भरे सोम को (**कक्ष्याभिः**) बारी बारी से (**परिष्वजध्वम्**) संस्कृत करो (**उभे**) दोनों (**धुरौ**) धुरों को (**वह्निम्**) वहन करने वाले बैलों को (**प्रति युनक्त**) जोड़ो ।

भावार्थः-- हे अध्वर्यों ! इस हरित वर्ण सोम को द्रोणकलश में सिक्त करो। हे पात्र बनाने वालो ! आप पाषाणमयी वसुलियों से इस पात्र को गढो। दश कलशों में भरे सोम को बारी-बारी से संस्कृत करो और धुरों के वाहक बैलों को जोड़ो ॥१०॥

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥११॥

पदार्थः—(**उभे**) दोनों (**धुरौ**) गाड़ी के धुरों को (**आपिब्दमानः**) शब्द करता हुआ (**वह्निः**) वाहक बैल (**योनौ**) आकाश के (**अन्तः**) मध्य (**द्विजानिः**) पक्षी की (**इव**) भांति (**चरति**) चलता है । (**वनस्पतिम्**) अग्नि को (**वने**) काष्ठ=समिधाओं में (**आ अस्थापयध्वम्**) स्थापित करो, (**सु**) सुष्ठु (**नि दधिध्वम्**) स्थिर करो, (**उत्सम्**) कूप को (**अखनन्तः**) खोद कर तैयार करो ।

भावार्थः—हे भनुष्यो ! दोनों गाड़ी के धुरों को शब्द करता हुआ वाहक बैल आकाश में पक्षी की तरह चलता है । अग्नि को काष्ठ=समिधा में स्थापित करो और ठीक प्रकार से व्यवस्थित करो और कूप को खोद कर तैयार करो ॥११॥

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२॥

पदार्थः–(**नरः**) हे ऋत्विग् लोगो यह इन्द्र=सूर्य (**कपृत्**) सुख का पूरक हैं इस (**कपृथम्**) सुख पूरक को (**चोदयत**) यज्ञ कर्म द्वारा प्रेरित करो, (**खुदत**) खेलने वाला बनाओ (**उत**) और (**दधातन**) ज्ञान और व्यवहार में धारण करो (**वाजसातये**) अन्न की प्राप्ति के लिए, (**सबाधः**) हे ऋत्विग्जन ! (**सोमपीतये**) सोमपानार्थ और (**ऊतये**) अपनी रक्षा के लिए (**इह**) इस यज्ञ में (**निष्टिग्र्यः**) अदिति के (**पुत्रम्**) पुत्र (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**आच्यवय**) सब तरफ से प्रेरित करो ।

भावार्थः– हे ऋत्विग् लोगो ! यह सूर्य सुख का पूरक है । इस सुखदाता को यज्ञकर्म द्वारा अन्न आदि की प्राप्ति के लिए प्रेरित करो, विस्तृत करो और ज्ञान, व्यवहार में धारण करो । सोमपानार्थ और अपनी रक्षा के लिए अदिति के पुत्र सूर्य का लाभ उठाओ ॥१२॥

यह दशम मण्डल में एकसौ एकवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १०२

ऋषिः—१ – १२ मुद्गलो भार्म्यश्वः ॥ देवता—द्रुघण इन्द्रो वा ॥
छन्दः—१ पादनिचृद्बृहती । ३, १२ निचृद्बृहती । २, ४, ५, ९
निचृत्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । ७, ८, १० विराट्त्रिष्टुप् ।
११ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, १२ मध्यमः ।
२, ४—११ धैवतः ॥

प्र ते रथं मिथुकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥१॥

पदार्थः— हे शत्रुओं के नाश करने वाले राजन् ! (**ते**) तुम्हारा (**रथम्**) रथ (**मिथूकृतम्**) व्यर्थ किया हुआ पड़ा है (**इन्द्रः**) सेनापति (**धृष्णुया**) घर्षणशील अस्त्र से रक्षा करे, (**पुरुहूत**) हे बहुतों से प्रशंसित सेनापते ! (**अस्मिन्**) इस (**श्रवाय्ये**) प्रशंसनीय (**आजौ**) संग्राम में और (**धनभक्षेषु**) धनों के भक्षण करने वालों के मध्य में (**नः**) हमारी (**अव**) रक्षा करो ।

भावार्थः—हे शत्रुओं के हर्ष को नष्ट करने वाले राजन् ! आप का रथ व्यर्थ पड़ गया है । सेनापति प्रबल अस्त्र से रक्षा करे । हे सबके प्रशंसनीय सेनापते ! इस युद्ध और धन का अपहरण करने वाले चोरों के मध्य हमारी रक्षा करो ॥१॥

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥२॥

पदार्थः– (**यत्**) जब (**अधिरथम्**) रथ पर सवार होकर (**सहस्रम्**) सहस्रों को (**अजयत्**) जीतती है तब (**अस्याः**) इस राजा की पत्नी मुद्गलानी मुद्गरधारिणी के (**वासः**) वस्त्र को (**वातः**) वायु (**उद् वहति स्म**) ऊपर उडाता है, (**गविष्टौ**) भूमि और गौ आदि की प्राप्ति के निमित्तभूत संग्राम में (**मुद्गलानी**) मुद्गरधारिणी राजा की पत्नी (**रथीः**) रथी (**अभूत्**) होती है (**इन्द्र सेना**) राजा की सेनानी भूत वह (**भरे**) संग्राम में (**कृतम्**) किए हुए शत्रुओं के कृत्य को (**व्यचेत्**) उल्टा कर देती है ।

भावार्थः–जब रथ पर सवार होकर सहस्रों को जीतती है तब इस मुद्गरधारिणी राजा की पत्नी के वस्त्र को वायु ऊपर उड़ाती है । यह

भूमि आदि की प्राप्ति के निमित्त होने वाले संग्राम में रथी होती है और संग्राम में राजा की सेनानी बनकर शत्रुओं के किये-कराये को पलट देती है ।।२।।

अन्तर्यँच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासँस्य वा मघवन्नार्यँस्य वा सनुतर्यँवया वधम् ॥३॥

पदार्थः--(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**जिघांसतः**) मारने की इच्छा करने वाले (**अभिदासतः**) अभिद्रोह करने वाले के (**वज्रम**) शस्त्र को (**अन्तर् यच्छ**) अन्तर्हित कर दो (**मघवन्**) हे धनों के स्वामिन् ! (**दासस्य**) दस्यु का हो (वा) अथवा (**आर्यस्य**) आर्य का हो उसके (**वधम्**) आयुध को (**सुनुतः**) अन्तर्हित (**यवय**) पृथक् करो ।

भावार्थः--हे राजन् ! मारने की इच्छा करने वाले अथवा अभिद्रोह करने वाले के शस्त्र को व्यर्थ कर दो दस्यु का हो अथवा आर्य का हो, उन दोनों के आयुध को अपने से दूर कर दो ।।३।।

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रवं इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥४॥

पदार्थः—(**वृषभः** , शत्रु के मुद अर्थात् हर्ष को खा जाने वाले राजा का वृषभ – बैल (**जर्हृषाणः**) खुश हुआ (**उद्नः**) जल के (**ह्रदम्**) ह्रद को (**अपिबत्**) पी जाता है (**कूटम्**) कुटिल अथवा छल वाले (**अभिमातिम्**) शत्रु को (**एति स्म**) आक्रमण करता हैं और (**तृंहत**) विदीर्ण करता है (**प्रमुष्कभारः**) प्रवृद्धमुष्कभार वह बैल (**श्रवः**) यश (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**आजिरम्**) गमनशील शत्रु के (**बाहू**) बाहुओं को (**सिसासन्**) भंग करने की इच्छा करता हुआ (**प्राभरतः**) प्रहार करता है ।

भावार्थः—शत्रु के हर्ष को निगल जाने वाले राजा का एतदर्थ निर्मित सांड खुश हुआ जल के ढेर को पी जाता है। कूट चाल वाले शत्रु पर हमला करता है और उसे विदीर्ण करता है। अपनी शक्ति से भरा हुआ वह साँड बहादुरी चाहता हुआ गमनशील शत्रु की बाहुओं को भंग करने के लिए प्रहार करता है ।।४।।

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥५॥

पदार्थः—(**आजेः**) संग्राम के (**मध्ये**) मध्य में (**उपन्तः**) समीपवर्ती (**एनम**) इस (**वृषभम्**) सांड को (**नि अक्रन्दयन्**) चिल्लाने को प्रेरित करते हैं और (**अमेहयन्**) मूत्रोत्सर्ग आदि कृत्रिम रूप से कराते हैं (**तेन**) उस कृत्रिम यांत्रिक सांड के द्वारा (**मुद्गलः**) शत्रुओं के मद को चूर्ण करने वाला राजा (**सुभर्वम्**) उत्तम दुग्ध आदि को देने वाले (**शतवत्**) सैंकड़ों (**सहस्रम्**) सहस्रों (**गवाम्**) गायों को (**प्रधने**) संग्राम में (**जिगाय**) जीतता है ।

भावार्थः—संग्राम के मध्य में समीपवर्ती लोग इस यंत्रमय सांड को चिल्लाने के लिए प्रेरित करते हैं और उसे कृत्रिम रूप से मलोत्सर्ग आदि कराते हैं। उस यांत्रिक सांड के द्वारा शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला राजा दुग्ध को देने वाली सैकड़ों सहस्रों गौओं को संग्राम में जीतता है ।।५।।

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥६

पदार्थः—शत्रुओं के (**ककर्दवे**) मारने के लिए (**वृषभः**) यह यांत्रिक सांड (**युक्तः**) जोड़ा हुआ (**आसीत्**) होता है, (**अस्य**) इस राजा की (**केशी**) केशवाली (**सारथिः**) सारथि मुद्गलानी (**अवावचीत्**) इस साँड को चिघाड़ने वाला करती है अर्थात् चिघांड़ मरवाती है, (**दुधेः**) दुर्धर्ष (**अनसः**) रथ से (**युक्तस्य**) युक्त (**द्रवतः**) दौड़ते हुए इस यांत्रिक सांड के शब्द से (**निष्पदः**) पदाति योद्धा लोग (**मुद्गलानीम्**) राजा की पत्नी की (**प्रति**) तरफ (**ऋच्छन्ति स्म**) जाते हैं !

भावार्थः—शत्रुओं के मारने के लिए यह यांत्रिक सांड रथ में जोड़ा जाता है। इस राजा की केशवाली सारथि-पत्नी मुद्गलावी इस कृत्रिम सांड से चिघाड मरवाती है। दुर्धर्ष, रथ के साथ युक्त, दौड़ते हुए इस यांत्रिक सांड के शब्द से पदाति भट मुद्गलानी की तरफ पहुँच जाते हैं ।।६।।

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥७॥

पदार्थः—(**विद्वान्**) विद्वान् मुद्गल = शत्रुमर्दक राजा (**अस्य**) इस रथ की (**प्रधिम्**) किनारे की लकड़ी को (**उद्वहन्**) ऊपर ले जाता है अर्थात् रथ को संनद्ध करता है, (**उत**) और (**अत्र**) इस रथ में (**वंसगम**) उत्तम गतिवाले वृषभ = कृत्रिम साँड को (**शिक्षन्**) रस्सी में स्थापित करता हुआ (**उपायुनक्**) समीप में जोड़ देता है, (**इन्द्रः**) विद्युत् (**अघ्न्यानाम**) गायों के (**पतिम**) इस यांत्रिक सांड को (**उतावत**) चलाती है (**ककुद्मान्**) डिल्लयुक्त वह सांड (**पथ्याभिः**) मार्गों से (**अरंहत**) वेग से चलता है ।

भावार्थः—विद्वान् शत्रुमर्दन राजा इस रथ के किनारे के काष्ठ को ऊपर ले जाकर रथ को संनद्ध करता है । और इस रथ में उत्तम गति वाले इस कृत्रिम सांड को जोड़ता है । विद्युत् गौओं के पति इस यांत्रिक सांड को चलाती है और रास्ते से वेग के साथ चलता है ॥७॥

शुनमष्ट्राव्यंचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥८॥

पदार्थः—(**शुनम**) सुखपूर्वक चलने वाला, (**अष्ट्रावी**) प्रतोदनयन्त्र से युक्त (**कपर्दी**) कपर्दवाला (**वरत्रायाम्**) रस्सी में (**दारु**) रथाङ्गभूत काष्ठ से (**आनह्यमानः**) बंधा हुआ (**बहवे**) बहुत से (**जनाय**) जनों के लिए (**नृम्णानि**) सुखों को (**कृण्वन्**) करता हुआ (**गाः**) किरणों अथवा तेजों को (**पस्पशानः**) स्पर्श करता हुआ (**तविषीः**) बलों को (**अधत्त**) धारण करता है ।

भावार्थः—सुखपूर्वक चलने वाला प्रतोदन यन्त्र से युक्त कपर्दवाला रस्सी में रथाङ्गभूत काष्ठ से बंधा हुआ बहुत से जनों के लिए सुखों को देता हुआ किरणों का स्पर्श करता बलों को धारण करता है ॥८॥

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥९॥

पदार्थः—(**वृषभस्य**) यान्त्रिक सांड के (**युञ्जम**) सहयोगी (**काष्ठायाः**) आज्यन्त = संग्राम के (**मध्ये**) मध्य (**शयानम्**) सोते हुए (**तम**) उस (**इमम**) इस (**द्रुघणम्**) काष्ठ के घन को (**पश्य**) देखो । (**येन**) जिसके बल से (**मुद्गल**) शत्रुओं के हर्ष को नष्ट करने वाला राजा (**पृतनाज्येषु**) संग्रामों में (**गवाम**) गायों के (**शतवत**) सैंकड़ों (**सहस्रम**) सहस्रों समूह को (**जिगाय**) जीतता है ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! यांत्रिक सांड के सहयोगी संग्राम के मध्य सोते हुए=पड़े हुए उस द्रुघण=द्रु+धन काष्ठ के बने घन को देखो कि जिसके द्वारा शत्रुओं के हर्ष को नाश करने वाला राजा संग्राम में सैकड़ों और हजारों गायों के समूह को जीतता है ॥९॥

आरे अघा को न्वि१ त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत ॥१०॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**आरे**) समीप में ही (**अघा**) शत्रुओं के नाशरूपी दुःखों को (**करोति**) उत्पन्न करता है (**कः नु**) कौन (**तम**) उसको (**इत्था उ**) इस प्रकार (**ददर्श**) देखता है (**यम**) जिस द्रुघण को (**युञ्जन्ति**) रथ में युक्त करते हैं और (**तम ऊं**) उसको (**आस्थापयन्ति**) मारने के लिए स्थापित करते हैं (**अस्मै**) इसके लिए (**न तृणम**) न घास (**न उदकम**) न पानी (**भरन्ति**) देते हैं, वृषभ का (**उत्तरः**) उत्तरभूत यह द्रुघण स्वामी को जय और शत्रु को भय (**प्रदेदिशत**) दिखाता हुआ (**धुरः**) रथ धुरा को (**वहति**) ले चलता है ।

भावार्थः—जो समीप में ही शत्रुओं के विनाश रूपी दुःखों को उत्पन्न करता है, जिसको रथ में युक्त करते हैं और शत्रु को मारने के लिए स्थापित करते हैं उसको कौन इस प्रकार देखता है । न इसे खाने को घास, न पीने को पानी देना पड़ता हैं । यह सांड का उत्तर बनकर राजा को विजय और शत्रु को भय दिखाता हुआ धुरों को ले चलता है ॥१०॥

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥

पदार्थः—(**परिवृक्ता**) परित्यक्ता स्त्री के (**इव**) समान (**पतिविद्यम**) पति प्राप्ति को (**आनट्**) प्राप्त होती है (**पीप्याना**) वृद्धि को प्राप्त हुई हुई होती है (**कूचक्रेण**) पृथिवी के वलय के द्वारा (**सिञ्चन्**) सीचने वाले मेघ के (**इव**) समान शत्रुओं में शरधारा बरसाती वृद्धि को प्राप्त करती है, (**एषैष्या**) गायों के समूह को इस प्रकार प्राप्त करने की इच्छा करती हुई (**रथ्या**) सारथी भूत इस मुद्गलानी के द्वारा गो समूह को (**जयेम**) जीतते हैं (**सातम्**) उसका दिया हुआ (**सुमङ्गलम**) मंगलमय हो (**सिनवत**) अन्न वाला भी हो ।

भावार्थः—वह मुद्गलानी परित्यक्ता स्त्री के समान पति को प्राप्त करती है और वृद्धि को प्राप्त करने वाली होती है । पृथिवी को चक्राकार

रूप में सींचने वाले मेघ के समान वह शरों की वर्षा करती हुई वृद्धि को प्राप्त होती है। गौओं के समूह को इस प्रकार ढूंढने की इच्छा वाली इस मुद्गलानी के द्वारा हम गोसमूह को जीतते हैं। उसका योगदान मंगलमय है और अन्न से युक्त हो ॥११॥

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥

पदार्थः—(**त्वम्**) तू (**इन्द्र**) हे इन्द्र=परमेश्वर (**विश्वस्य**) समस्त (**जगतः**) जंगम सृष्टि के (**चक्षुषः**) चक्षु का भी (**चक्षुः**) चक्षु (**असि**) है (**यत्**) जिससे (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला तू (**वध्रिणा**) पाश से (**युजा** ; युक्त (**वृषणा**) वर्षक शक्तियों को (**चोदयन्**) प्रेरित करता हुआ (**आजिम्**) सभी विरोधी शक्तियों को (**सिषाससि**) वश में रखता है।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू समस्त जंगम सृष्टि की आंखों की भी आंख है जिससे कामनाओं की वृष्टि करने वाला तू पाश से युक्त वर्षक-शक्तियों को प्रेरित करता हुआ सभी विरोधी शक्तियों को वश में रखता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में एकसो दोवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १०३

**ऋषिः—१—१३ अप्रतिरथ ऐन्द्रः ॥ देवता—१—३, ५-११ इन्द्रः ।
४ बृहस्पतिः । १२ अप्वा । १३ इन्द्रो मरुतो वा ॥ छन्दः १, ३-
५, ९ त्रिष्टुप् । २ स्वराट्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । ७, ११
निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १०, १२ विराट्त्रिष्टुप् ॥ १३
विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—१२ धैवतः ।
१३ गान्धारः ॥**

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

पदार्थः—(**आशुः**) शीघ्रगामी, अथवा व्यापक, (**शिशान**) निशित (**भीमः**) भयंकर (**वृषभः**) सांड के (**न**) समान (**घनाघनः**) घातक (**चर्षणीनाम**) मनुष्यों का (**क्षोभणः**) क्षुब्ध करने वाला (**संक्रन्दनः**) गर्जना करने वाला (**अनिमिषः**) निमेषरहित, (**एक वीरः**) एक मात्र वीर (**इन्द्र**) विद्युत् मेघों की (**शतम**) सैंकड़ों (**सेनाः**) सेनाओं को (**साकम**) एक साथ ही (**अजयत**) जीतता है।

भावार्थ—व्यापक, तीक्ष्ण, भयंकर सांड के समान, घातक लोगों को क्षुब्ध करने वाला, गर्जनायुक्त, निमेषरहित एवं एकमात्र वीर इन्द्र=विद्युत् मेघों की सैंकड़ों सेनाओं को एक साथ ही जीतता है ॥१॥

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

पदार्थः—(**युधः**) युद्ध करने वाले (**नरः**) नेतारूप मरुत् लोग (**संक्रन्दनेन**) गर्जना वाले, (**अनिमिषेण**) निर्निमेष (**जिष्णुना**) जयनशील (**युत्कारेण**) युद्ध करने वाले (**दुश्च्यवनेन**) न विचलित किए जाने वाले (**धृष्णुना**) घर्षक (**वृष्णा**) वर्षा कराने वाले (**इषुहस्तेन**) प्रक्षेपक तेज से युक्त (**इन्द्रेण**) इन्द्र=विद्युत् के द्वारा (**तत्**) उस मेघ के युद्ध को (**जयत**) जीतते हैं और (**सहध्वम्**) अभिभूत करते हैं।

भावार्थः—इस विद्युद् के सहयोगी मरुद् लोग गर्जनाशील, निर्निमेष जयनशील, युद्ध करने वाले, न विचलित किए जाने वाले, धर्षक, वर्षाकारी इन्द्र=विद्युत् के द्वारा इस मेघ युद्ध को जीतते हैं और मेघ को अभिभूत करते हैं ॥२॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

पदार्थः—(**इषुहस्तैः**) प्रक्षेपक तेजों वाले मरुद्गणों से (**वशी**) वशी (**सः**) वह इन्द्र, (**निषंगिभिः**) असंसक्त बलों से वशी (**सः**) वह इन्द्र (**युधः**) युद्ध के लिए (**गणेन**) मेघ-गण के साथ (**संस्रष्टा**) एक होकर लड़ने वाला (**सः**) वह इन्द्र, (**संसृष्टजित**) गुत्थमगुत्था होकर लड़ने वालों पर विजय शील, (**सोमपाः**) सोम तत्त्व को पीने वाला (**बाहुशर्धी**) वहनशील बलों से युक्त, (**उग्रधन्वा**) उग्र

धनुष् वाला, (**प्रतिहिताभिः**) शत्रुओं के प्रति फेंकी गई इषुओं के द्वारा (**अस्ता**) मारने वाला है ।

भावार्थः—वह इन्द्र=विद्युत् प्रक्षेपक तेजों वाले मरुद्गणों से और असंसक्त बलों से वशी युद्ध के लिए शत्रुओं से गुत्थमगुत्था होकर लड़ने वाला सोम का पान करने वाला, उग्र धनुष् वाला और इषुओं से मारने वाला है ॥३॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥

पदार्थः (**बृहस्पते**) यह तेजोवान् अग्नि (**रथेन**) अपने तेजोमय चक्र से (**परिदीय**) चारों तरफ जाता है, यह (**रक्षोहा**) कृमि कीट और रोगाणुओं का हन्ता है, (**अमित्रान्**) अमित्रभूत मेघों को (**अपबाधमानः**) सर्वतः नष्ट करता हुआ (**सेनाः**) उनकी सेना को (**प्रभञ्जन्**) भंग करता हुआ (**प्रमृणः**) मारता हुआ (**युधा**) युद्ध से (**जयन्**) जय प्राप्त करता हुआ (**अस्माकम्**) इन मरुद्गणों आदि के (**रथानाम्**) रथों का (**अविता**) रक्षक (**एधि**) होता है ।

भावार्थः—यह तेजोवान् अग्नि अपने तेजोमय चक्र से चारों तरफ फैलता है। यह रोगाणुओं का नाश करने वाला है । अमित्रभूत मेघों को नष्ट करता हुआ, उनकी सेना को मारता हुआ, युद्ध से उन पर विजय करता हुआ इन इन्द्र और मरुद्गणों के रथों=रमणीय शक्ति चक्र का रक्षक होता है ॥४॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५॥

पदार्थः—(**बलविज्ञायः**) सब बलों से बलभूत, (**स्थविरः**) महान् (**प्रवीरः**) प्रकृष्ट वीर (**सहस्वान्**) सब बलों को दबाने वाला (**वाजी**) गतिमान् (**सहमानः**) अभिभव करने वाला (**उग्रः**) उग्र (**अभिवीरः**) वीरों से युक्त (**अभिसत्वा**) अभिगत सत्व, (**सहोजा**) बली (**गोवित**) जल को प्राप्त करने वाला (**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**जैत्रम**) जयनशील (**रथम**) रमणीय वज्र को (**आतिष्ठ**) काबू में लेता है ।

भावार्थः—सब बलों का बल, महान्, प्रकृष्ट वीर बलों का अभिभव करने वाला, गतिशील, उग्र, अतितेजस्वी, बली और जलों का प्राप्त करने वाला इन्द्र=विद्युत् वज्र पर अधिरूढ़ होता है ॥५॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६॥

पदार्थः—हे (**सखायः सह जातः**) साथीभूत मित्रो (**गोत्रभिदम्**) मेघों एवं पर्वतों अथवा पृथिवी के विदारक, (**गोविदम्**) जल के प्रापक (**वज्रबाहुम्**) वज्रधारक (**अज्म**) गमनशील मेघ को (**जयन्तम्**) जीतने वाले (**ओजसा**) बल से (**प्रमिणन्तम्**) विरोधी को अभिभूत करने वाले (**इमम्**) इस (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**अनुवीरयध्वम्**) आगे करके वीरता का प्रयोग करो और (**अनु संरभध्वम्**) शत्रुओं पर प्रहार करो ।

भावार्थः—हे साथी भूत मित्रो ! मेघों के विदारक, जल के प्रापक, वज्र धारक, मेघों के गमनशील बल को जीतने वाले, बल से विरोधी को दबाने वाले इस इन्द्र को आगे करके वीरता दिखाओ और शत्रुओं पर प्रहार करो ॥६॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्यो३ स्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

पदार्थः—(**गोत्राणि**) मेघों में (**सहसा**) बल से (**अभिगाहमानः**) प्रविष्ट होकर (**अदयः**) दया न करने वाला हुआ (**वीरः**) वीर (**शतमन्युः**) बहुत क्रोध में आया हुआ अथवा अति तेजस्क (**दुश्च्यवनः**) शत्रुओं को च्युत करने वाला (**पृतनाषाड्**) शत्रु सेना का विनाशक (**अयुध्यः**) दूसरा कोई जिससे युद्ध नहीं कर सकता है । (**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**युत्सु**) प्रहारों में (**अस्माकम्**) इन मरुतों आदि की (**सेनाः**) सेना की (**प्र अवतु**) रक्षा करता है ।

भावार्थः—मेघों में बल से पैठ जाने वाला, कठोर, बली, अति तेजस्क, मेघों को च्युत करने वाला, अयोधनीय इन्द्र=विद्युत् इन मरुतों आदि के सेना-समूह की रक्षा करता है ॥७॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥

पदार्थः—(**अभिभञ्जतीनाम्**) मेघों का अभिमर्दन करती हुई (**जयन्तीनाम्**) जय प्राप्त करती हुई (**आसाम्**) इन (**देवसेनानाम्**) देवों की सेना का (**इन्द्रः**)

विद्युत् (**नेता**) नायक (**बृहस्पतिः**) अग्नि (**पुरः**) आगे (**एतु**) होता है (**दक्षिणा**) दक्षता, (**यज्ञः**) यज्ञ भावना, (**सोमः**) सोम आगे होता है (**मरुतः**) मरुद्गण (**अग्रम्**) आगे (**यन्तु**) चलते हैं ।

भावार्थः—मेघों का मर्दन करती हुई, जय को प्राप्त करने वाली इन देवों की सेनाओं का इन्द्र=विद्युत् नायक है । बृहस्पति=अग्नि दक्षता यज्ञ-भावना, सोम आगे रहते हैं और मरुद्गण भी आगे रहते हैं ॥८॥

इन्द्रंस्य वृष्णो वरुंणस्य राज्ञं आदित्यानां मरुतां शर्धं उग्रम् ।
महामंनसां भुवनच्यवानां घोषों देवानां जयंतामुदंस्थात् ॥९॥

पदार्थः— (**वृष्णः**) बली (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=विद्युत् का, (**राज्ञः**) राजा (**वरुणस्य**) वरुण=वायु का, (**आदित्यानाम**) आदित्यों का (**मरुताम**) मरुतों के (**उग्रम**) उग्र (**शर्धम**) बल महान है, (**महामनसाम**) महामना (**भुवनच्यवानाम**) भुवनों को कंपाने वाले (**जयताम**) जीतते हुए (**देवानाम**) देवों का (**घोषः**) विजयशब्द (**उदस्थात**) गूंजता है ।

भावार्थः—वली इन्द्र=विद्युत्, राजा वायु, आदित्य मरुत् लोगों का उग्र बल महान् हैं। महामना, भुवनों को कम्पायमान करने वाले और जीतने वाले देवों का विजय घोष सर्वत्र गूंजता है ॥९॥

उद्धंर्षय मघवन्नायुंधान्युत्सत्वंनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृंत्रहन्वाजिनां वाजिंनान्युद्रथांनां जयंतां यन्तु घोषाः ॥१०॥

पदार्थः—(**मघवन्**) इन्द्र (**आयुधानि**) आयुधों को (**उत हर्षय**) प्रयुक्त करता है, (**मामकानाम**) इन देवों के (**सत्वनाम**) प्राणियों के (**मनांसि**) मनों को (**उत**) हर्ष से उठा हुआ करता है (**वृत्रहन्**) वृत्र का हन्ता यह इन्द्र (**वाजिनाम**) वेग वाले पदार्थों के (**वाजिनानि**) वेग (**उत यन्तु**) बढ़ते हैं (**जयताम**) विजय प्राप्त करते हुए रथों के (**घोषाः**) जयघोष (**उत यन्तु**) उठते हैं ।

भावार्थः—इन्द्र आयुधों को प्रयुक्त करता है । इन देवों के प्राणियों के मनों को उठाता है । वृत्र का हन्ता यह इन्द्र वेग से बलों के वेग बढ़ते हैं। विजय प्राप्त करते हुए रथों के जयघोष उठते हैं ॥१०॥

अस्माकमिन्द्रः समृंतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इर्षवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तंरे भवन्त्वस्माँ उं देवा अवताहवेंषु ॥११॥

पदार्थः—(**अस्माकम्**) इन देवों के (**समृतेषु**) शत्रु की सेना को प्राप्त हुए इनके (**ध्वजेषु**) ध्वजाधारी सैनिकों की (**इन्द्रः**) इन्द्र रक्षक (**भवतु**) होता है तथा (**याः**) इन लोगों के जो (**इषवः**) वाण हैं (**ताः**) वे (**जयन्तु**) विजय प्राप्त करते हैं (**अस्माकम**) इन देवों के (**वीराः**) वीर लोग (**उत्तरे**) ऊपर अर्थात् विजयी (**भवन्तु**) होते हैं, (**देवाः**) ये सभी देव लोग (**हवेषु**) संग्रामों में (**अस्मान् ऊं**) इनकी (**अवत**) रक्षा करते हैं ।

भावार्थः—इन देवों के शत्रु सेना पर चढ़ाई करने वाले ध्वजधारी सैनिकों की इन्द्र रक्षा करता है । इनके वाण सदा विजय प्राप्त करते हैं । इन देवों के वीर विजयी होते हैं और समस्त दिव्य शक्तियें इन की संग्रामों में रक्षा करती हैं ॥११॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयंन्ती गृहाणाङ्गांन्यप्वे परेंहि ।
अभि प्रेहि निर्दंह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमंसा सचन्ताम् ॥१२॥

पदार्थ—(**अप्वे**) सभी को प्राप्त होकर दुःख से व्याप्त करने वाली विषैली गैस (**अमीषाम्**) इन योद्धाओं के (**चित्तम**) चित्त को (**प्रतिलोभयन्ती**) बेहोश करती हुई (**अंगानि**) शरीराङ्गों को (**गृहाण**) जकड़ती है (**परा इहि**) उन पर जाती है, (**अभि प्रेहि**) सब तरफ से पहुंचती है, (**हृत्सु**) हृदयों में (**शोकैः**) शोषक बल से (**निः दह**) भस्म करती है और (**अमित्राः**) शत्रु लोग (**अन्धेन**) घोर (**तमसा**) अन्धकार से (**सचन्ताम्**) युक्त हो जाते हैं ।

भावार्थः—विषैली गैस इन योद्धाओं के चित्त को विमूढ करती हुई अङ्गों को जकड़ती है । उन पर जाती है और जांकर शोषक ताप से उनके हृदयों को जलाती हैं और शत्रु जन घोर अन्धकार में घिर जाते हैं ॥१२॥

प्रेता जयंता नर इन्द्रों वः शर्मं यच्छतु ।
उग्रा वंः सन्तु बाहवोंऽनाधृष्या यथासंथ ॥१३॥

पदार्थः—(**नरः**) नेता मरुद्गण (**प्रेत**) जाते हैं (**जयत**) जय प्राप्त करते हैं, (**वः**) इन्हें (**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**शर्म**) शरण (**यच्छतु**) देता है, (**वः**) इनके (**बाहवः**) धारक शक्ति (**उग्राः**) प्रचण्ड (**सन्तु**) हो जाती हैं और ये लोग (**यथा**) जैसे (**अनाधृष्णाः**) दूसरों से अधर्षणीय हों ऐसा (**असथ**) होते हैं ।

भावार्थः—मरुद्गण जाते हैं, जय प्राप्त करते हैं । इनको इन्द्र=विद्युत् शरण देती है । इनकी धारक शक्ति प्रचण्ड हो उठती है और ये ऐसे हो जाते हैं कि कोई इन्हें अभिभूत नहीं कर सके ॥१३॥

यह दशम मण्डल में एकसो तीनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०४

ऋषिः—१—११ अष्टको वैश्वामित्रः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ६, १० निचृत्रिष्टुप् । ९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

असा॑वि॒ सोम॑ः पुरुहू॒त तुभ्यं॒ हरि॑भ्यां य॒ज्ञमुप॑ याहि॒ तूय॑म् ।
तुभ्यं॒ गिरो॒ विप्र॑वीरा इया॒ना द॑धन्वि॒र इ॑न्द्र॒ पिबा॑ सु॒तस्य॑ ॥१॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यशालिन् ! हे (**पुरुहूत**) सभी से प्रशंसित राजन् ! (**तुभ्यम्**) आप के लिये (**सोमः**) सोम आदि रस (**असावि**) तैयार किया गया है, (**हरिभ्याम्**) दोनों अश्वों द्वारा आकृष्ट यान से (**यज्ञम्**) हमारे यज्ञ में (**तूयम्**) शीघ्र (**उप याहि**) आओ, (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिए (**विप्रवीराः**) मेधावियों द्वारा प्रेरित (**गिरः**) प्रशंसायें (**इयानाः**) गमनशील हुई (**दधन्विरे**) चल रही है (**सुतस्य**) तैयार सोम को (**पिब**) पीओ ।

भावार्थः—हे सबसे प्रशंसा किये जाने वाले राजन् ! आप के लिए सोम आदि ओषधियों का रस तैयार है । आप अपने दोनों अश्वों द्वारा आकृष्ट यान से हमारे यज्ञ में शीघ्र आइये । तुम्हारे लिए मेधावी जनों द्वारा प्रेरित प्रशंसायें चालू हों । आप तैयार सोम का पान करें ॥१॥

अ॒प्सु धू॒तस्य॑ हरिवः॒ पिबे॒ह नृभिः॑ सु॒तस्य॑ ज॒ठरं॑ पृणस्व ।
मि॒मि॒क्षुर्यमद्र॑य इन्द्र॒ तुभ्यं॒ तेभि॑र्वर्धस्व॒ मद॑मुक्थवाहः ॥२॥

पदार्थः—(**हरिवः**) हे अश्वों वाले (**इन्द्र**) राजन् ! (**अप्सु**) जलों में (**धूतस्य**) कम्पित=अभिषुत (**नृभिः**) ऋत्विजों के द्वारा (**सुतस्य**) तैयार सोम को (**इह**) यहां पर (**पिब**) पी (**जठरम्**) पेट को (**पृणस्व**) भर (**यम्**) जिसको

(**अद्रयः**) पाषाण शिलायें (**तुभ्यम** , तुम्हारे लिए (**मिमिक्षुः**) तैयार करती हैं (**उक्थवाहः**) उक्थों से प्रशंसनीय तू (**तेभिः**) उन प्रशंसाओं के द्वारा (**मदम्**) हर्ष को (**वर्धस्व**) बढ़ा ।

भावार्थः—हे अश्वों वाले राजन् ! जल में निचोड़े गए और ऋत्विजों द्वारा तयार सोम रस का यहां पर आप पान करें और पेट को तृप्त करें । यह सोम पाषाण-शिलाओं ने आप के लिए निचोड़ा है । आप प्रशस्ति-भाजन हो अतः प्रशस्तियों के साथ अपने हर्ष को बढाइये ॥२॥

प्रोग्रां पी॒तिं वृष्ण॑ इयर्मि स॒त्यां प्र॒यै सु॒तस्य॑ हर्यश्व॒ तुभ्य॑म् ।
इन्द्र॒ धेना॑भिरि॒ह मा॑दयस्व धी॒भिर्विश्वा॑भिः॒ शच्या॑ गृणा॒नः ॥३॥

पदार्थः—(**हर्यश्व इन्द्र**) हे गमनशील अश्वों वाले राजन् ! (**वृष्णे**) धन आदि के बरसाने वाले (**तुभ्यम**) तुम्हारे लिए (**उग्राम्**) उग्र (**सत्याम**) सत्य (**सुतस्य**) अभिषुत (**पीतिम्**) पान को (**प्रयै**) गमन के लिए (**इयर्मि**) प्रेरित करता हूँ (**शच्या**) कर्म से युक्त (**गृणानः**) प्रशस्यमान (**विश्वाभिः**) सारी (**धेनाभिः**) प्रशंसा वाणियों से (**धीभिः**) समस्त कर्मों से (**इह**) इस यज्ञ में (**मादयस्व**) तृप्त हो ।

भावार्थः—हे गमनशील अश्वों वाले राजन् ! सुख के वर्षक आपके लिए सोमपान तैयार करके आप के लिए प्रेरित है । आप पीवें । समस्त प्रशंसाओं, कर्मों आदि से आप इस यज्ञ में तृप्त होवें ॥३॥

ऊ॒ती श॑चीव॒स्तव॑ वी॒र्ये॑ण॒ वयो॒ दधा॑ना उ॒शिज॑ ऋत॒ज्ञाः ।
प्र॒जाव॑दिन्द्र॒ मनु॑षो दुरो॒णे त॒स्थुर्गृ॒णन्तः॑ सध॒माद्या॑सः ॥४॥

पदार्थः (**शचीवन्**) प्रज्ञावन् (**इन्द्र**) राजन् ! (**तद**) आप के (**ऊती**) रक्षण से और आप के (**वीर्येण**) पराक्रम से (**प्रजावत्**) सन्तान आदि से युक्त (**वयः**) अन्न को (**दधानाः**) धारण करने वाले (**ऋतज्ञाः**) यज्ञ के ज्ञाता (**उशिजः**) मेधावी लोग (**मनुषः**) मनुष्य अथवा यजमान के (**दुरोणे**) गृह में (**गृणन्तः**) प्रशंसा करते हुए (**सधमाद्यासः**) साथ प्रसन्न होकर (**तस्थुः**) स्थित होते हैं ।

भावार्थः—हे प्रज्ञावन् राजन् ! आप के रक्षण से और आप के पराक्रम से सन्तान आदि से युक्त अन्न आदि धनों को प्राप्त किए यज्ञ के दाता

मेधावी जन मनुष्यों के गृहों में आप की प्रशंसा करते हुए सह प्रसन्न होकर रहते हैं ॥४॥

प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ॥५॥

पदार्थ—(**हर्यश्व इन्द्र**) हे वेगवान् घोड़ों वाले राजन् ! (**सुष्ठोः**) भली प्रकार प्रशंसा योग्य, (**सुषुम्नस्य**) उत्तम सुख एवं धन वाले (**पुरुरुचः**) बहुत दीप्ति वाले (**ते**) तुम्हारी (**प्रणीतिभिः**) प्रकृष्ट प्रदान नीतियों से (**स्तोतारः**) प्रशंसक (**जनासः**) लोग (**सूनृताभिः**) प्रिय और सत्य वाणियों से (**वितिरे**) अन्यों को देने के लिए (**तव**) तुम्हारी (**मंहिष्ठाम**) अतिशः मंहनीय (**ऊतिम**) रक्षा को (**दधानाः**) धारण करते हुए रहते हैं ।

भावार्थः—हे वेगवान् अश्वों वाले राजन् ! सब प्रकार प्रशंसनीय, उत्तम सुख और धन वाले, दीप्तिमान् आप के दान आदि के प्रशंसक लोग उत्तम प्रिय सत्य वाणियों से अन्यों को भी देने के लिए आप की अति महंनीय रक्षा को धारण करते हुए रहते हैं ॥५॥

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥६॥

पदार्थः—हे (**हरिवः**) अश्वों वाले (**इन्द्र**) राजन् ! (**सुतस्य**) अभिषुत (**सोमस्य**) सोम के (**पीतये**) पान के लिए (**हरिभ्याम**) दो घोड़ों से आकृष्ट यान से हमारे (**ब्रह्माणि**) कर्मों को (**उपयाहि**) प्राप्त हो (**क्षममाणम**) सामर्थ्यवान् (**त्वा**) तुझ को (**यज्ञः**) यज्ञ (**आनट्**) दुःखों से मुक्त करता है, तू (**दाश्वान्**) दान दाता और (**अध्वरस्य**) यज्ञ का (**प्रकेतः**) जानने वाला है ।

भावार्थः—हे अश्वों वाले राजन् ! अभिषुत सोम के पान के लिए दो अश्वों से आकृष्ट रथ से हमारे यज्ञोपासना आदि कर्मों में आइये । सामर्थ्यवान् तुझको यज्ञ दुःखों से मुक्त करता है । तू यज्ञ के विषय में जानने वाला और महान् दाता है ॥६॥

सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥७॥

पदार्थः—(**सहस्रवाजम**) अपरिमित अन्न और बल वाले, (**अभिमातिषाहम**) शत्रुओं के नाशक, (**सुतेरणम**) सोम आदि रस में आनन्द लेने वाले, (**मघवानम**) यज्ञ और धन वाले (**सु वृक्तिम**) उत्तम प्रशंसा वाले (**अप्रतीतम**) युद्ध में जिसका कोई मुकाबला न कर सके (**इन्द्रम**) राजा को (**गिरः**) प्रशंसा वचन (**उपभूषन्ति**) अलंकृत करते हैं (**जरितुः**) प्रशंसा करने वाले की (**नमस्याः**) आदरसूचक वाणियां (**पनन्त**) प्रशंसा करती हैं ।

भावार्थः—प्रभूत अन्न और बल वाले, शत्रुओं का मर्दन करने वाला सोमरस का पान करने वाला, प्रशंसनीय, धन वाला और वेजोड़ राजा को प्रशंसायें अलंकृत करती हैं और आदरसूचक वाणियां उसकी प्रशंसा करती हैं ॥७॥

सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥८॥

पदार्थः–(**पूर्भित्**) हे शत्रु नगरी को छिन्न-भिन्न करने वाले (**इन्द्र**) राजन् ! (**याभिः**) जिनके द्वारा (**सिन्धुम**) समुद्र को (**अतरः**) बढ़ाते हो वे (**सप्त**) सात (**आपः**) जल धारायें नदी रूप में (**देवीः**) जलदात्री और (**सुरणा**) उत्तम शब्द करती हुई (**अमृक्ता**) वे रोक टोक बहती हैं, (**नवतिम् नव च**) ९९ (**स्रवन्तीः**) बहती हुई (**स्रोत्याः**) नदियां (**देवेभ्यः**) यज्ञ के देवों को हवि देने के लिए (**च**) और (**मनुषे**) मनुष्य के भोग के लिए (**गातुम**) गन्तव्य और मार्ग को (**विन्दः**) प्राप्त करते हो ।

भावार्थः—हे शत्रुनगरी के विध्वंस करने वाले राजन् ! जिनके द्वारा समुद्र को बढ़ाते हो ऐसी सप्त जलधारायें नदी रूप में उत्तम शब्दों को करती हुई जल प्रदान करती बहती हैं । उन नदियों और यज्ञ के देवों के लिए हवि तथा मनुष्यों के लिए भोग का गन्तव्य और मार्ग आप प्राप्त करते हो ॥८॥

अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥९॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) यह सूर्य (**महीः**) प्रचुर (**अपः**) जलों को (**अभिशस्तेः**) दुःखदायी वृत्र=मेघ से (**अमुञ्चः**) मुक्त करता है, (**आसु**) इन (**अधि**) में

(**एकः**) अकेला (**देवः**) द्योतन दीपन गुणों वाला यह इन्द्र=सूर्य (**प्रजागाः**) जागरूक रहता है (**याः**) जिन जलों को (**त्वम**) यह सूर्य (**वृत्रतूर्ये**) वृत्र के साथ होने वाले संग्राम में (**चकर्थ**) उत्पन्न करता है (**ताभिः**) उन्हीं के द्वारा (**विश्वायुः**) सबकी आयु का हेतुभूत उस (**तन्वम**) अपने शरीर को (**पुपुष्याः**) पुष्ट करता है ।

भावार्थः—यह सूर्य मेघ से प्रचुर मात्रा में जल को वर्षा के लिए छुड़ाता है। इन में यह एकमात्र देव जागरूक रहता है। जिन जलों को यह मेघ का वध करके उन्मुक्त करता है उन्हीं के द्वारा रसादान से अपने शरीर को पुष्ट करता है ॥६॥

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमींट्टे ।
आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥१०॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) यह सूर्य (**वीरेण्यः**) बहुत प्रबल (**क्रतुः**) कर्मवान् (**सुशस्तिः**) प्रशस्त (**उत अपि**) और (**धेना**) वेदवाणी (**पुरुहूतम**) बहुतों से प्रशस्य इन्द्र की (**ईट्टे**) प्रशंसा करती है, (**वृत्रम्**) अन्धकार करने वाले मेघ को यह इन्द्र (**आर्दयत्**) मारता है (**लोकम् उ**) प्रकाश को करता है, (**अभिष्टिः**) शत्रुओं का घातक (**शक्रः**) शक्तिशाली इन्द्र (**पृतनाः**) सेनाओं को (**ससाहे**) दबा देता है ।

भावार्थः—यह सूर्य प्रबल कर्मवान् और प्रशस्त है। वेद वाणियां इस की प्रशंसा करती हैं। यह अन्धकार करने वाले मेघ को मारता है, प्रकाश करता है और शक्तिशाली अभिभूत करने वाला यह वृत्र की सेना को भी नष्ट करता है ॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) इस (**वाजसातौ**) अन्न बांटने वाले (**भरे**) यज्ञ में (**नृतमम्**) नेतृसम (**शुनम्**) व्यापनशील (**मघवानम्**) मखों वाले (**धनानाम्**) जल अन्न आदि धनों के (**संजितम्**) उत्पन्न करने वाले (**समत्सु**) संग्रामों में (**वृत्राणि**) शत्रुओं के (**घ्नन्तम्**) हनन करने वाले (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**शृण्वन्तम**) सुने जाने वाले (**उग्रम्**) प्रचण्ड (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**हुवेम**) हम ज्ञान में धारण करते हैं।

भावार्थः—अन्नादि के बांटने के लिए किये जाने वाले यज्ञ में व्यापनशील महान्, यज्ञों के साधन, धनों के उत्पन्न करने वाले, वृत्र=मेघों के हनन करने वाले, रक्षा में समर्थ सुने जाने वाले प्रचण्ड सूर्य को हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चारवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०५

ऋषिः—१—११ सुमित्रो दुर्मित्रो वा कौत्सः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—
१ पिपीलिकामध्योष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक् । ४, १० निचृदुष्णिक् ।
५, ६, ८, ६ विराडुष्णिक् । २ आर्चीस्वराडनुष्टुप् । ७
विराडनुष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३ – ६,
८—१० ऋषभः । २, ७ गान्धारः ।
११ धैवतः ॥

कदा वसो स्तोत्रं हर्यंत आवं श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥१॥

पदार्थः—(**स्तोत्रम्**) प्रशंसामयी उक्ति (**वसो**) बसाने वाले (**हर्यंते**) हरणशील वायु के लिए (**स्तोत्रम्**) हमारा प्रशंसा वचन (**कदा**) कब उसी प्रकार (**आ अव रुधत्**) अवरुद्ध करती है और (**वाः**) वरण करती है, जिस प्रकार (**श्मशा**) क्षेत्र की क्यारी (**दीर्घम्**) बड़े (**सुतम्**) उत्पन्न सस्य के प्रति (**वाताप्याय**) जल देने के लिए पानी को रोकती है और फिर छोड़ती है ।

भावार्थः—हमारा प्रशंसामय वचन वासक हरणशील वायु को कब उसी प्रकार रोकता और वरण करता है जिस प्रकार क्षेत्र की क्यारी सस्य वा पौदों को पानी देने के लिए पानी को रोकती और फिर क्यारी में छोड़ती है ॥१॥

हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥२॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस उस इन्द्र=वायु के (**सुयुजो**) पच्छी प्रकार कार्य में लगे, (**विव्रतौ**) विशेष कार्यों को करने वाले, (**अर्वन्ता**) गतिमान् (**शेपा**) स्पर्शनशील (**हरी**) धारक और वाहक गुण (**उभा**) दोनों (**रजी**) द्यु और पृथिवी की तरह (**केशिना**) प्रकाश युक्त हुए अपने हैं वह (**पतिः**) इन दोनों का स्वामी इन्द्र=वायु (**दन्**) अन्न आदि देता हुआ (**अनुवेः**) गतिमान् होता है ।

भावार्थः—जिस वायु के धारक और वाहक गुण जगत् में विशेष कार्यों का संपादन करते हैं और द्यु और पृथिवी की तरह प्रकाशयुक्त हुए गतिमान् हैं वह वायु सुख और अन्न आदि का साधन बनकर बहता है ॥२॥

अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् ।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) वायु (**पापजे**) पाप से उत्पन्न वृत्र के युद्ध में (**मर्तः न**) मनुष्य की भांति (**आ शश्रमाणः**) श्रम करता हुआ (**बिभीवान्**) भीत होता है (**यत्**) जब वह (**तविषीवान्**) बलवान् होकर (**शुभे**) शोभा के लिए (**युयुजे**) युक्त होता है तब (**अप योः**) वृत्र=मेघ का अपयांग=वियोग करने वाला होता है ।

भावार्थः - वायु वृत्र=मेघ के युद्ध में श्रम करता हुआ मनुष्य की भांति भीत होता है । जब वह मरुत् लोगों के साथ होकर बलवान् हुआ शोभा के लिए युक्त होता है तब वृत्र=मेघ को छिन्न-भिन्न करता है ॥३॥

सचायोरिन्द्रश्चकृष आँ उपानसः सपर्यन् ।
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥४॥

पदार्थः—(**नदयोः**) नदनशील (**विव्रतयोः**) विशेष कर्म करने वाले धारक और वाहक कार्यों का नियन्ता (**इन्द्रः**) वायु (**शूरः**) शक्ति शाली है, (**इन्द्रः**) वायु (**सचा**) अन्य शक्तियों से युक्त हुआ, (**उपानसः**) प्राणनशील मरुतों का (**आ सपर्यन्**) आदर करता हुआ (**आयोः**) जल को (**चकृषे**) उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—शब्द करने वाले, विशेष कर्म वाले धारक और वाहक गुणों और कार्यों का नियन्ता वायु शक्तिशाली है । वह अन्य भौतिक शक्तियों के साथ युक्त होकर मरुतों को साथ लिए मेघ से जल उत्पन्न करता है ॥४॥

अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै ।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥५॥

पदार्थः (**यः**) जो इन्द्र=सूर्य (**केशवन्ता**) प्रकाशमान (**न**) और (**व्यचस्वन्ता**) व्याप्ति वाले धारण और आकर्षण गुणों को (**पुष्ट्यै**) पुष्टि के लिए (**अधितस्थौ**) अधिकार में रखता है, वह (**शिप्राभ्याम**) द्यु और पृथिवी लोकों के द्वारा (**शिप्रिणीवान्**) हनु वाला होकर (**वनोति**) कृमि आदि का नाश करता है ।

भावार्थः—जो सूर्य प्रकाशमान धारण और आकर्षण गुणों को लोकों के दृढ़ रखने और पोषण के लिए अधिकार में रखता है वह द्यु और पृथिवी लोक के द्वारा हनू वाला होकर कृमि कीट आदि रोग-जन्तुओं का नाश करता है ॥५॥

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा ।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥६॥

पदार्थ- (**ऋष्वौजाः**) व्याप्तवल वह इन्द्र=सूर्य (**ऋष्वेभिः**) मरुतों के साथ (**प्रास्तौत्**) स्तुत किया जाता है जो (**शूरः**) बली (**शवसा**) बल से (**क्रतुभिः**) कर्मों से (**मातरिश्वा**) आकाश में रहता हुआ (**ऋभुः न**) शिल्पी के समान (**ततक्ष**) वृत्र=मेघ को काटता है ।

भावार्थः—व्याप्त बलों वाला वह सूर्य मरुतों के साथ स्तुत किया जाता है जो बली है और बल तथा अपने कर्मों से आकाश में स्थित हुआ शिल्पी की भाँति मेघ को काटता है ॥६॥

वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् ।
अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥७॥

पदार्थः (**हिरीमशः**) हरणशील अथवा तेजस्क किरणों वाला, (**हिरीमान्**) हरितवर्ण (**यः**) जो इन्द्र=सूर्य (**दस्यवे**) जल न छोड़ने वाले मेघ के (**सुहनाय**)

भली प्रकार मारने के लिए (**वज्रम्**) वज्र को (**चक्र**) साधन बनाता है (**सः**) वह (**अद्भुतम्**) अद्भुत (**रजः**) अन्तरिक्ष के (**न**) समान (**अरुतहनुः**) अबाधगति है ।

भावार्थः—हरणशील किरणों वाला हरितवर्ण जो सूर्य जलावरोधक मेघ के भली प्रकार हनन के लिए वज्र को साधन बनाता है वह अद्भुत अन्तरिक्ष के समान अबाधगति है ॥७॥

अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः ।
नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ॥८॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! आप (**नः**) हमारी (**वृजिना**) बुराइयों अर्थात् हमारे लिए वर्जनीय कर्मों को (**अव शिशीहि**) अत्यन्त क्षीण कर, हम (**ऋचा**) मन्त्र से (**अनृचः**) विना मन्त्र वाले कर्मों अथवा भावों को (**वनेम**) नष्ट करें (**अब्रह्म**) विना वेदमन्त्र का यज्ञ (**त्वे**) तुझे (**ऋधग्**) तनिक भी (**न**) नहीं (**जोषति**) पसन्द आता है ।

भावार्थः- हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! हमारे लिए वर्जनीय कर्मों को क्षीण करके हमसे दूर करो ! हम मन्त्रों द्वारा विना मन्त्र के किये जाने वाले कर्मों अथवा भावों को दबा देवें । विना वेद मन्त्र के होने वाला यज्ञ आप के यज्ञ के रूप में नहीं भाता है। क्योंकि दह यज्ञ नहीं है ॥८॥

ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूद्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् ।
सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ॥९॥

पदाथ—(**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**त्रेतिनी**) तीनों लोकों में व्यापक शक्ति (**धूः सु**) जगत् के धारक तत्वों में (**सद्मनि**) सब के आश्रय आकाश में (**ऊर्ध्वा**) ऊपर होकर (**भूत्**) विद्यमान होती है वह (**आयोः**) जीव मात्र की (**सचा**) साथी और (**सजूः**) समान प्रेरणा वाली है, उस (**स्वयशसम्**) स्वयं यशवाली (**नावम्**) नौका के समान तारने वाले नौका को हम प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे प्रभो ! जो तुम्हारे यज्ञ की तीनों लोकों में व्याप्त शक्ति जगत् के धारक तत्वों में और सब लोकों के आश्रय आकाश में सर्वोपरि होकर विद्यमान है वह जीवमात्र की सहयोगी और समानरूप में प्रेरणादात्री है उस (स्वयशसन्) स्वयं यश शाली नौका के समान तारने वाली नौका को हम प्राप्त करें ॥९॥

श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः ।
यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०॥

पदार्थः - (**ते**) इस इन्द्र=सूर्य की (**श्रिये**) शोभा के लिए (**पृश्निः**) पृथिवी (**उपसेचनी**) जल को दुहने वाली (**भूत्**) होती है, (**दर्विः**) अन्तरिक्ष (**अरेपाः**) शुद्ध पवित्र हुआ इस की शोभा के लिए होता है (**यया**) जिस दर्वि के समान अन्तरिक्ष (**स्वे पात्रे**) अपने पात्र=किरणजालमय पात्र में (**उत् सिञ्चसे**) सिक्त करता है ।

भावार्थः—इस सूर्य की शोभा के लिये पृथिवी वृष्टिजल का दोहन करती है। अन्तरिक्ष शुद्ध पवित्र हुआ इसकी शोभा के लिए समर्थ होता है। इसके द्वारा रसादान से वह इस जल को अपनी किरणों में ग्रहण करता है ॥१०॥

शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥११॥

पदार्थः—हे (**असुर्य**) बलवन् इन्द्र = प्रभो (**त्वा**) आप के (**प्रति**) प्रति (**शतम्**) शत संख्यायुक्त (**वा**) अथवा प्रभूत धन की (**यद्**) जब कामना करता है (**यत्**) जो आप (**दस्युहत्ये**) बुराइयों के साथ लड़ने में (**कुत्सपुत्रम्**) स्तुतिकर्ता के पुत्र स्तावक की (**आव**) रक्षा करते हो (**यत्**) जो आप (**दस्युहत्ये**) बुराइयों से लड़ने में (**कुत्सवत्सम्**) स्तोता के वत्स स्तावक की (**प्रावः**) रक्षा करते हो इसलिए कुत्सपुत्र = स्तोता का पुत्र सुमित्र = सद्गुणों और सज्जनों से मित्रता रखने वाला स्तावक (**इत्था**) इस प्रकार से (**अस्तौत्**) स्तुति करता है और कुत्सवत्स दुर्मित्र = दुर्गुणों और बुराईयों से द्वेष करने वाला (**इत्था**) इस प्रकार (**अस्तौत्**) स्तुति करता है ।

भावार्थः—हे बलशालिन् प्रभो ! जब प्रभूत धन की कामना करता है तब सद्गुणों का मित्र स्तावक आपकी इस प्रकार स्तुति करता है और बुराइयों का द्वेषी स्तावक इस प्रकार स्तुति करता है । आप स्तोता वा उपासक के पुत्र=अति उपासक सद्गुणों के मित्र की और स्तोता के पुत्र=अति स्तोता की बुराइयों के निवारक की बुराई से लड़ने में रक्षा करते हो ॥११॥

यह दशम मण्डल में एक सौ पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १०६

ऋषिः १ ११ भूतांशः काश्यपः ॥ देवते अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ३, ७ त्रिष्टुप् । २, ४, ८ –११ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः— धैवतः ॥

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥१॥

पदार्थः—(**उभा**) दोनों अश्विना=ऋणात्मक धनात्मक विद्युत् (**नूनम् उ**) निश्चय ही (**तद् इव**) उस प्रयोज्य वस्तु को (**अर्थयेथे**) चाहते हैं कि जिसमें ये दोनों (**वस्त्रा**) वस्त्रों को (**अपसा**) बुनकर के (**इव**) समान (**धियः**) कर्मों को (**वितन्वाथे**) विस्तृत करते हैं, (**सध्रीचीना**) साथ ही साथ रहकर (**सुदिना इव**) रात्रि दिन अथवा सूर्य और चन्द्रमा के समान (**यातवे**) गति, प्राप्ति के लिए (**ईम्**) जल को (**प्राजीगः**) निगरण करते हैं । (**पृक्षः**) **अन्न अथवा** स्पर्श को (**आतंसयेथे**) अलंकृत करते हैं ।

भावार्थः—दोनों अश्विनी=ऋणात्मक धनात्मक विद्युत् निश्चय ही उसी ग्राह्य और प्रयोज्य वस्तु को अपने लिए चाहते हैं जिसमें वे दोनों अपने कर्मों का उसी प्रकार विस्तार कर सकते हैं जिस प्रकार बुनकर कपड़े का विस्तार करते हैं । दोनों साथ ही साथ रहकर रात-दिन अथवा सूर्य और चन्द्रमा के समान गति, प्राप्ति और आकर्षण आदि के लिए जल को निगरण करते हैं और अन्न तथा स्पर्श आदि को अलंकृत करते हैं ॥१॥

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥२॥

पदार्थः—ये दोनों (**फर्वरेषु**) पूरक पदार्थों में (**उष्टारा इव**) दाह और कान्तियुक्त, (**श्रयेथे**) आश्रय लेते हैं, (**प्रायोगा**) जोते गये दो बैलों के (**इव**) समान (**श्वात्र्या**) आशु गमन और व्यापनशील दोनों (**शासुः**) नियन्त्रक के अधिकार (**आ इथः**) आते हैं (**जनेषु**) लोगों में (**दूता इव**) दूत के समान (**यशसा**) यशस्वी (**स्थः हि**) होते हैं (**अवपानात्**) पानी पीने के बने प्याऊ स्थान से (**महिषा**) भैंसों के समान (**मा**) नहीं (**अप स्थातम्**) अलग होते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों पूरक पदार्थों में दाह और कान्तियुक्त हुए आश्रय

लेते हैं । जोते गये बैलों के समान कहीं भी जोते गये ये आशु गमन व्यापनशील होते हैं । जनों में ये दूत के कार्य का सम्पादन कर उसके समान, प्रशंसा प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार भैंसा उदपान से दूर नहीं जाता उसी प्रकार ये एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते हैं ॥२॥

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३॥

पदार्थः—ये दोनों (**साकं युजा**) एक साथ रहने वाले (**शकुनस्य**) पक्षी के (**पक्षौ**) पक्षों के (**इव**) समान (**चित्रा**) चायनीय ये दोनों (**पश्वा**) दो पशु के समान (**यजुः**) संयोग को प्राप्त (**आ गमिष्टम्**) होते हैं (**देवयोः**) देवों की कामना करने वाले यज्ञकर्त्ता की (**अग्निः**) अग्नि के समान (**दीदिवांसा**) दीप्तिमान् (**परिज्माना इव**) चारों तरफ गति करने वालों के समान ये गतिशील (**पुरुत्रा**) बहुत से कार्यों को (**यजथः**) सम्पादित करते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों साथ रहने वाले पक्षी के दो पक्षों के समान हैं । अद्भुत ये दो पशुओं के समान संयोग=संघटन को प्राप्त होते हैं । देवों की कामना वाले यज्ञकर्त्ता की यज्ञाग्नि के समान दीप्तिमान् होते हैं और चारों रफ गति करने वालों के समान विविध कार्यों का सम्पादन करने वाले होते हैं ॥३॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्ये ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४॥

पदार्थः—(**वः**) ये दोनों (**अस्मे**) हमारे लिए (**आपी**) बन्धु के समान लाभकारी हैं, (**पुत्रा**) पुत्र को (**पितरा**) माता-पिता के समान ये हमारी रक्षा के साधन हैं, ये दोनों (**उग्रा**) अग्नि और आदित्य के समान उग्र हैं, (**रुचा**) दीप्ति से युक्त, (**तुर्ये**) त्वरित-कारिता (**नृपती**) दो राजाओं के (**इव**) समान (**पुष्ट्यै**) पुष्टि के लिए (**किरणा इव**) आदित्य की दो किरणों के समान (**भुज्यै**) भोग के लिए (**श्रुष्टीवाना**) सुख वाले के (**इव**) समान (**हवम्**) शब्द व्यवहार में (**आगमिष्टम्**) प्रयोग में आते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों हमारे लिए बन्धु के समान लाभकारी, पुत्र के प्रति माता-पिता के समान रक्षा के साधन, अग्नि और आदित्य के समान

उग्र, राजा के समान त्वरित कार्य करने वाले, पोषण के लिए दो किरणों के समान, भोगार्थ सुख वालों के समान हमारे शब्द-व्यवहार में प्रयोग में आते हैं ॥४॥

वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या३ पुरीषा ॥५॥

पदार्थः—(**वंसगा इव**) दो वृषभों के समान (**पूषर्यो**) पोषण कार्य करने वाले, (**मित्रा इव**) दो मित्रों अर्थात् मित्र और वरुण=प्राण और उदान के समान (**शिम्बाता**) सुखकारी अथवा सुखपूर्वक सतत गामी और (**ऋतो**) सर्वत्र प्राप्त होने वाले, (**शतरा**) सैकड़ों कार्यों को करने वाले तथा (**शातपन्ता**) सैकड़ों प्रकार से व्यवहार में लाये जाने वाले, (**वाजा इव**) दो अश्वों के समान (**वयसा**) गति से (**उच्चा**) उच्च तथा (**घर्म्येष्ठा**) ताप से युक्त, (**मेषा इव**) दो भेड़ों के समान (**इषा**) ज्ञान के द्वारा (**सपर्या**) व्यवहार में सेवनीय तथा (**पुरीषा**) पुष्ट हैं ।

भावार्थः—ये दोनों अश्विनी=विद्युतें बैल के समान पोषणकार्य करने वाले, प्राण और उदान के समान सुखकारी, सर्वत्र प्राप्त होने वाले, सैकड़ों कार्यों को सिद्ध करने वाले और सैकड़ों प्रकार से व्यवहार में लाये जाने वाले, दो अश्वों के समान गति में उच्च, ताप से युक्त, दो भेड़ों के समान ज्ञान के द्वारा व्यवहार में सेवनीय और पुष्ट हैं ॥५॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥६॥

पदार्थः—ये दोनों अश्विनी=विद्युतें (**सृण्या इव**) दो अंकुशों के समान (**जर्भरी**) पोषक और (**तुर्फरीतू**) हन्ता हैं, (**नैतोशा इव**) दो शत्रुघातक राजपुत्रों के समान (**तुर्फरी**) नाशक और (**पर्फरीका**) विदारक (**उदन्यजा इव**) समुद्रोत्पन्न दो रत्नों के समान (**जेमना**) जयनशील (**मदेरू**) हर्षकारी (**ता**) ये दोनों (**मे**) मेरे (**जरायु**) जीर्ण होने वाले और (**मरायु**) मरणधर्मा शरीर को (**अजरम्**) अजर=जरारहित करते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों विद्युतें दो अंकुशों के समान भरणशील और हननशील हैं, दो शत्रुघातक राजकुमारों के समान ये हन्ता और विदारक हैं।

समुद्रोत्पन्न दो रत्नों के समान ये जयनशील (अर्थात् बहुमूल्य पदार्थोंमें जिस प्रकार ये रत्न जय प्राप्त करते हैं मूल्य स्पर्धा में उसी प्रकार ये शक्तियों में जयशील हैं) ये मदेरु=हर्षदायक हैं। ये दोनों प्रयोग द्वारा हमारे जरा और मृत्यु वाले शरीर को जरारहित करते हैं ॥६॥

पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७॥

पदार्थः—(**पज्रा इव**) दो समर्थ मनुष्यों के समान (**उग्रा**) उग्र (**चर्चरम्**) चरणशील, (**जारम्** जरायुक्त (**मरायु**) मरणशील शरीर को (**क्षद्म इव**) जल के समान (**अर्थेषु**) गन्तव्य विषयों में (**तर्तरीथः**) पार लगाते हैं (**ऋभून्**) दो शिल्पियों के समान (**खरमज्रा**) तीक्ष्ण शुद्धि करने वाले ये दोनों (**खरज्रुः**) अतिशय वेग शक्ति को (**आपन्**) प्राप्त करते हैं, (**वायुः न**) वायु के समान सभी स्थानों को (**पर्फरत्**) पूरित करते हैं और (**रयीणाम्**) सम्पदाओं को (**क्षयत्**) ऐश्वर्ययुक्त करते अथवा प्राप्त कराते हैं ।

भावार्थः—दो समर्थ पुरुषों के समान ये उग्र अश्विनी=विद्युतें चरणशील जरायुक्त,मरणशील शरीर को जलके समान गन्तव्य विषयोंमें लेजाते हैं दो शिल्पी जिस प्रकार अपने रथ को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार अत्यन्त शोधक गुणों वाले ये दोनों अतिशय वेग वाली शक्ति को पूरित करते हैं और सम्पदाओं को प्राप्त कराते हैं ॥७॥

घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ॥८॥

पदार्थः—ये दोनों (**घर्मा इव**) ताप और शैत्य के समान (**जठरे**) अन्तरिक्ष में (**मधु**) जल को सम्भक्त करने वाले, (**भगेविता इव**) ऐश्वर्य की रक्षा करने वालों के समान (**तुर्फरी**) घातक और (**अरम्**) पर्याप्त शक्ति तथा (**फारिवा**) आयुध शक्ति से युक्त, (**पतरा इव**) पतनशील पक्षी के समान (**चचरा**) अतिशय गतिवाले, (**चन्द्रनिर्णिक्**) आह्लादक रूपों वाले, (**मन ऋंगा**) मन के समान वेग से आभूषित (**मनन्या इव**) दो स्तावकों के समान (**जग्मी**) गमनशील हैं ।

भावार्थः—ये दोनों विद्युतें ताप और शैत्य के समान अन्तरिक्ष में जल को संभक्त करने वाले हैं। ऐश्वर्य की रक्षा करने वालों के समान

घातक, पर्याप्तशक्ति और आयुधीय शक्तियों वाले, पतनशील दो पक्षी के समान अतिशय गतिवाले, आह्लादक रूपों वाले, मन के समान वेग से भूषित और दो स्तावकों के समान गमनशील हैं ॥८॥

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोंऽशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९॥

पदार्थः- (बृहन्ता इव) दो बड़े पुरुषों के समान (गम्भरेषु) गहन जलों में (प्रतिष्ठाम्) स्थिति को (विदाथः) प्राप्त करते हैं, (तरतः) तैरते पुरुष के (पादा इव) दोनों पैरों के समान (गाधम्) जल की गहराई में (विदाथः) प्राप्त होते हैं (कर्णा इव) दोनों कानों के समान (शासुः) स्तावक को (अनु स्मराथः) अनुस्मरण कराते हैं, (अंशा इव) अवयवों के समान (नः) हमारे (चित्रम्) अद्भुत (अप्नः) कर्म का (भजतम्) आश्रयण करते हैं।

भावार्थः– दो बड़े पुरुषों के समान ये गहन जलों में स्थिति को प्राप्त करते हैं। तैरते मनुष्य के दोनों पैरों के समान जल की गहराई को प्राप्त होते हैं, दोनों कानों के समान स्तावक को अथवा शब्दों को बोलने वालों को अपने बोले शब्दों का अनुश्रवण करा कर पुनः अनुस्मरण करने के साधन बनते हैं और हम मनुष्यों के अद्भुत कर्मों का अनुकरण करते हैं ॥९॥

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०॥

पदार्थः—(आरंगरा इव) शब्दायमान मेघों के समान (मधु) जल को (आ ईरयेथे) प्रेरित करते हैं, (सारघा इव) मधुमक्षियों के समान (नीचीनवारे) नीचे द्वार वाली (गवि) जल को ऊपर की ओर प्रेरित करते हैं (कीनारा इव) स्वेदयुक्त पुरुष के समान (स्वेदम्) जल को (आसिष्विदाना) सब तरफ से क्षरण करने वाले (इव) जिस प्रकार (क्षामा) क्षीण गौयें (सूयवसात्) घास आदि से (ऊर्जाम्) ऊर्ज=बल को प्राप्त करती हैं वैसे ये (ऊर्जाम्) बल को (सचेथे) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः– शब्दायमान मेघों के समान जल को प्रेरित करते हैं, मधुमक्षिका के समान नीचे की ओर बहने वाले जल को ऊपर की ओर प्रेरित करते हैं, स्वेदयुक्त पुरुष के समान जल को क्षरण करते हैं और जिस प्रकार क्षीण गौवें घास आदि खाकर ऊर्ज=बल को प्राप्त करती हैं वैसे ये भी बल को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥

पदार्थः हम (स्तोमम्) मन्त्र समूह को (ऋध्याम) अधिक मात्रा में पढ़ें और प्रयुक्त करें (वाजम्) ज्ञान और अन्न को (आ सनुयाम) स्वयं प्राप्त करें तथा औरों को देवें, (सरथा) रथ सवार के समान (इह) यहां पर (नः) हमारे (मंत्रम्) विचार में ये दोनों (उपयातम्) उपस्थित रहें, (गोषु) गायों के (अन्तः) मध्य विद्यमान (मधु) मधुर दुग्ध के (न) समान (पक्वम्) पके हुए (यशः) अन्न को ये यज्ञ में प्राप्त होते हैं। (भूतांशः) भूतों के अंशों को जानने वाला (अश्विनोः) इन दोनों विद्युतों का (कामम्) यथेच्छ (अप्राः) काम में पूरित करता हैं।

भावार्थः—मन्त्रसमूह को हम अधिक पढ़ें, समझें और तदनुसार प्रयुक्त करें। ज्ञान और अन्न को स्वयं प्राप्त करें और दूसरों को देवें। रथ पर सवार मनुष्यों के समान ये यहां हमारे विचार में उपस्थित रहें। गायों में विद्यमान दुग्ध के समान पके अन्न को यज्ञ में प्राप्त करते हैं। भूतों का ज्ञाता इन दोनों को यथेच्छ कार्य में आपूरित करता है ॥११॥

सूचना –इस सूक्त १०६ में ऐसे मन्त्र हैं जिनके विषय में यह शंका उठायी जाती है कि इन मन्त्रों का कोई अर्थ है ही नहीं। ये अनर्थक हैं। इस प्रकार का यह कथन कोई नई बात नहीं। महाभारत काल में इस प्रकार की शंका को उठाकर यास्क ने अपने निरुक्त और जैमिनि ने मीमांसा में उत्तर दिया है और सिद्ध किया है कि सभी मन्त्र सार्थक हैं। यह सूक्त अश्विनी देवता वाला है जो ऋणात्मक घनात्मक विद्युत् का वर्णन करता है। अश्विनी भी युगल है। सारे मन्त्रों का अर्थ कर दिया गया है और इन का अर्थ नहीं लगता है–इस धारणा को निर्मूल कर दिया गया है।

यह दशम मण्डल में एक सौ छवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०७

ऋषिः—१—११ विव्यो दक्षिणा वा प्राजापत्या ॥ देवताः—दक्षिणा तद्दातारो वा ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—३, ५—११ धैवतः । ४ निषादः ॥

आविर्भून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

पदार्थः—(**एषाम्**) इन यजमानों के याग की सिद्धि के लिए (**माघोनम्**) सूर्य सम्बन्धी (**महि**) महत्तेज (**आविः**) प्रकट (**अभूत**) होता है, (**विश्वम्**) समस्त (**जीवम्**) जंगम और स्थावर जगत् (**तमसः**) अन्धकार से (**निरमोचि**) निर्मुक्त होता है (**पितृभिः**) रात्रि के द्वारा (**दत्तम्**) दी गई (**महि**) महत् (**ज्योतिः**) सूर्य रूपी ज्योतिः (**आ अगात्**) आती है (**दक्षिणायाः**) याग का समय दिन का है अतः सूर्योदय से याग का समय आ जाने से दक्षिणा=यज्ञ की दक्षिणा देने से उत्पन्न हुई दक्षता=परिपूर्णता का (**उरुः**) विस्तृत (**पन्था**) मार्ग (**अदर्शि**) दिखाई पड़ता है ।

भावार्थः- इन यजमानों के याग की सिद्धि के लिए सूर्य सम्बन्धि महत्तेज प्रकट होता है । तथा समस्त जंगम स्थावर जगत् अन्धकार से मुक्त होता है । रात्रि के द्वारा प्रदत्त सूर्य का उदय होता है और यज्ञ का समय हो जाने से दक्षिणा का विस्तृत मार्ग दिखाई पड़ता है ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥२॥

पदार्थः—(**दक्षिणावन्तः**) दक्षिणा देने वाले (**दिवि**) प्रकाशमान स्थिति में (**उच्चा**) उच्च स्थान को (**अस्थुः**) प्राप्त करते हैं, (**ये**) जो (**अश्वदाः**) अश्व की दक्षिणा वा दान करने वाले हैं (**ते**) वे (**सूर्येण**) सूर्य के साथ प्रकाशमान होकर स्थित होते हैं, (**हिरण्यदाः**) स्वर्ण तथा रत्नों का दान करने वाले (**अमृतत्वम्**) अमरत्व को (**भजन्ते**) प्राप्त करते हैं (**सोम**) हे सोम=विद्वन् (**वासोदाः**) निवास स्थान देने वाले (**आयुः**) अपनी आयु को (**प्रतिरन्ते**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—दक्षिणा देने वाले प्रकाश की स्थिति में उच्च पद को प्राप्त करते हैं । अश्वों का दान करने वाले सूर्यसम तेजस्वी होकर स्थित होते हैं । स्वर्ण और रत्न आदि के दाता अमरता को प्राप्त करते है और हे विद्वन्! निवास स्थान के दाता अपनी आयु को बढ़ाते हैं ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥३॥

पदार्थः—(**दैवी**) यज्ञ देवों और विद्वानों सम्बन्धी (**पूर्त्तिः**) पूरिका क्रिया (**देवयज्या**) देवों के निमित किए गए यज्ञ का अंगभूत (**दक्षिणा**) दक्षिणा (**कवारिभ्यो**) कुत्सित कर्मी अथवा कुत्सित धन स्वामियों के लिए (**न**) नहीं होती है (**हि**) क्योंकि (**ते**) वे (**न**) नहीं (**पृणन्ति**) देवों को हवि आदि से प्रसन्न करते हैं, (**अथा**) अतः (**प्रयतदक्षिणासः**) दक्षिणा देने वाले (**बहवः**) बहुत से (**नरः**) यज्ञ कर्त्ता यजमान (**अवद्यभिया**) पाप वा बुराई के भय से (**पृणन्ति**) देवों को यज्ञ में हवि आदि से तृप्त करते हैं ।

भावार्थः—यज्ञ देवों और विद्वानों सम्बन्धी पूरिका क्रिया और याग की अंगभूत दक्षिणा कार्य कुत्सितकर्मी अथवा कुत्सित धन स्वामियों के लिए नहीं है क्योंकि न वे यज्ञ याग करते हैं और न कोई उत्तम कर्म ही करते हैं अतः दक्षिणा देने वाले बहुत से यज्ञ कर्त्ता यजमान पाप के भय से (कि ऐसा न करने से पाप होगा) यज्ञ आदि कर्मों को करते हैं ॥३॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सङ्गमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥४॥

पदार्थः—(**ते**) वे यजमान लोग (**शतधारम्**) सैकड़ों प्रकार के शब्दों से युक्त (**वायुम्**) वायु को (**स्वर्विदम्**) अन्तरिक्ष में विद्यमान (**अर्कम्**) सूर्य (**नृचक्षसः**) दूसरे यज्ञ देवों को (**हविः**) हवि (**अभिचक्षते**) देना जानते हैं, (**ये**) जो (**पृणन्ति**) देवों को हवि से परिपूर्ण करते हैं (**च**) और (**संगमे**) समागम युक्त यज्ञ में (**यच्छन्ति**) हवि आदि देते हैं (**ते**) वे (**सप्तमातरम्**) सात होता आदि ऋत्विग् कर्म के निर्माता हैं जिसमें ऐसी (**दक्षिणाम्**) दक्षिणा को ऋत्विजों के लिए (**दुहते**) दुहते हैं ।

भावार्थः—वे यजमान जन बहु प्रकार के शब्दों वाले वायु आकाशस्थ सूर्य और अन्य यज्ञ देवों के निमित्त हवि देना जानते हैं । जो देवों को तृप्त

करते और यज्ञ में हवि आदि देते हैं वे सात ऋत्विजों सम्बन्धी दक्षिणा को ऋत्विजों को प्रदान करते हैं ॥४॥

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥५॥

पदार्थः –(हूतः) ऋत्विग् आदि से बृलाया गया (**दक्षिणावान्**) दक्षिणा देने वाला व्यक्ति (**प्रथमाः**) मुरुय होकर (**एति**) विचरता हैं, (**प्रामणीः**) गांवों का नेता होकर (**अग्रम्**) सब के आगे (**एति**) चलता है, (**तम**) उसे (**एव**) ही (**जनानाम्**) लोगों का (**नृपतिम**) पालन करने वाला (**मन्ये**) मैं पुरोहित मानता हूँ (**यः**) जो (**प्रथमः**) मुरुय हुआ (**दक्षिणाम**) दक्षिणा (**आविवाय**) प्रदान करता है ।

भावार्थः – ऋत्विजों से बुलाया गया दक्षिणा का दाता मुख्य व्यक्ति होकर विचरता है । वह ग्राम का नेता होकर सब के आगे चलता है । उसे ही मैं पुरोहित लोगों का पालन कर्त्ता मानता हूं जो मुख्य हुआ दक्षिणा प्रदान करता है ॥५॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥

पदार्थः—(**तम**) उसकी (**एव**) ही (**ऋषिम्**) ऋषि, (**तम उ**) उसे ही (**ब्रह्माणम**) बह्मा, (**यजन्यम्**) यज्ञ का नेता अध्वर्यु (**सामगाम्**) सामों को गाने वाला (**उक्थशासम्**) शस्त्रों का शंसक अर्थात् होता (**आहुः**) ज्ञानी जन कहते हैं (**सः**) वह (**शुक्रस्य**) प्रदीप्त अग्नि के (**तिसृः**) तीन (**तन्वः**) शरीर=आहवनीय आदि तीन अथवा प्रदीप्त ज्योति के अग्नि, वैद्युत और आदित्य रूपी को (**वेद**) जानता हैं (**प्रथमः**) मुरुयभूत (**यः**) जो (**दक्षिणया**) दक्षिणा से ऋत्विग् आदि को (**रराध**) सम्पन्न करता हैं ।

भावार्थः -विद्वज्जन उसी को ऋषि, उसे ही ब्रह्मा, अध्वर्यु, सामगान करने वाला और होता कहते हैं जो प्रदीप्त अग्नि के आहवनीय आदि तीन भेद अथवा प्रदीप्त ज्योति के अग्नि, वैद्युत और आदित्यरूप तीन भेदों को जानता है और मुरुय होकर दक्षिणा से ऋत्विग् आदि का सत्कार करता है ॥६॥

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**दक्षिणा**) दक्षिणा में (**अश्वम्**) घोड़ा देता है, (**दक्षिणा**) दक्षिणा में (**गाम्**) गाय (**ददाति**) देता है, (**दक्षिणा**) दक्षिणा में (**चन्द्रम**) चांदी (**उत**) और (**यत**) जो (**हिरण्यम**) सोना देता है (**दक्षिणा**) दक्षिणा में (**अन्नम**) अन्न (**वनुते**) देता है, वह (**नः**) हम लोगों में (**आत्मा**) आत्मा से [स्वयम्] (**विजानन्**) इस रहस्य को जानता हुआ (**दक्षिणाम्** दक्षिणा को अपना (**वर्म**) कवच (**कृणुते**) बनाता है ।

भावार्थः—जो दक्षिणा में अश्व, गाय, चांदी, सोना और अन्न प्रदान करता है वह हम लोगों में स्वयं इस रहस्य को जानकर दक्षिणा को अपना कवच=रक्षा का साधन बनाता है ॥७॥

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्तेह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

पदार्थः—(**भोजाः**) दान दाता लोग (**न**) न (**मम्रुः**) यश से कभी मरते नहीं, (**न**) न तो (**न्यर्थम्**) उत्पात को (**ईयुः**) प्राप्त होते हैं, (**ह**) निश्चय ही (**भोजा**) दान दाता लोग (**न**) न बाधित होते हैं और (**न**) न तो (**व्यथन्ते**) व्यथा को ही प्राप्त होते हैं, (**इदम्**) यह (**यत**) जो (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) लोक हैं और (**स्वः**) स्वर्ग (**एतत्**) यह (**सर्वम्**) सब कुछ (**दक्षिणा**) लोगों को दिया गया दान (**एभ्यः**) इन दाताओं को (**ददाति**) देता है ।

भावार्थः—दानदाता लोग कभी यश से मरते नहीं । उनको न उत्पात का भय और न किसी बाधा का भय होता है । यह जो कुछ भी भूत जात और स्वर्ग आदि है इन सब कुछ को लोगों को दिया गया दान इन दाताओं को प्रदान करता है ॥८॥

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥९॥

पदार्थ—(**भोजाः**) दान दाता लोग (**सुरभिम**) सुगन्ध पूर्ण (**योनिम्**)

गृह को (**अग्रे**) प्रथम (**जिग्युः**) प्राप्त करते हैं (**भोजाः**) दान दाता (**वध्वम्**) स्त्री को प्राप्त करते हैं (**या**) जो (**सुवासाः**) उत्तम वस्त्रों वाली है, (**भोजाः**) दानदाता लोग (**सुरायाः**) यश की (**अन्तः पेयम्**) अगाध गहराई को (**जिग्युः**) प्राप्त करते हैं, (**ये**) जो (**अहूताः**) विना बुलाए अर्थात् अकस्मात् अनाहूत जो आपत्तियां विघ्न बाधायें (**प्रयन्ति**) आती हैं उनको (**भोजाः**) दानदाता लोग (**जिग्युः**) जीतते हैं ।

भावार्थः—दान दाता लोग सुगन्धिपूर्ण गृह, उत्तम-वस्त्र युक्त पत्नी अगाधयश को प्राप्त करते हैं । अनाहूत आने वाली विपत्तियों पर विजय प्राप्त करते हैं ।।९।।

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणींव वेश्म परिष्कृतं देवमानेवं चित्रम् ।।१०।।

पदार्थः—(**भोजाय**) दानी पुरुष के लिए परिचारक लोग (**आशुम्**) शीघ्रगामी अश्व को (**संमृजन्ति**) भली प्रकार साफ और सुसज्जित करते हैं। (**भोजाय**) दानी के लिए (**शुम्भमाना**) सुशोभित (**कन्या**) युवती पत्नी के रूप में विवाहविधि से (**आस्ते**) प्राप्त होती हैं, (**भोजस्य**) दानी के लिए (**परिष्कृतम्**) अलंकृत (**चित्रम्**) उत्तम (**देवयाना इव**) देवयान के समान (**इदम्**) यह (**वेश्म**) गृह (**पुष्करिणी इव**) कमलयुक्त सरसी के समान होता है ।

भावार्थः—दानी के लिए परिचारक शीघ्रगामी अश्व को स्वच्छ और सुसज्जित करते हैं । दानी को सुसज्जित युवती विवाह करके पत्नी रूप में प्राप्त होती और दानी का उत्तम देवयान के समान सुशोभित गृह कमखिली सरसी के समान होता है ।।१०।।

भोजमश्वाः सुष्टुवाहों वहन्ति सुवृद्रथों वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ।।११।।

पदार्थः—(**भोजम्**) दानी को (**सुष्टुवाहः**) उत्तमता से वहन करने वाले (**अश्वाः**) घोड़े (**वहन्ति**) वहन करते हैं उसके द्वारा प्रदत्त (**दक्षिणायाः**) दक्षिणा का (**सुवृत्**) उत्तम चक्रवाला (**रथः**) रथ उसके लिए (**वर्तते**) विद्यमान होता है, (**देवासः**) बिद्वान् लोग (**भोजम्**) दानी की (**भरेषु**) यज्ञों में (**अवत**) रक्षा करते हैं (**भोजः**) दानी (**समनीकेषु**) संग्रामों में (**शत्रून्**) शत्रुओं का (**जेता**) जीतने वाला होता है ।

भावार्थः—दानी को उत्तमगति वाले घोड़े वहन करते हैं । उसके द्वारा प्रदत्त दक्षिणा का उत्तमचक्रादि वाला रथ उसके प्रयोग के लिए विद्यमान रहता है । विद्वान् लोग दानी की यज्ञों में रक्षा करते हैं । दानी संग्रामों में शत्रुओं पर विजयी होता है ।।११।।

यह दशम मण्डल में एकसौ सातवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—१०८

ऋषिः—१, ३, ५, ७, ९ पणयोऽसुराः । २, ४, ६, ८, १०, ११ सरमा-देवशुनी ।। देवताः—१, ३, ५, ७, ९ सरमा । २, ४, ६, ८, १०, ११ पणयः ।। छन्दः —१ विराट्त्रिष्टुप् । २, १० त्रिष्टुप् । ३—५, ७—९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ।। स्वरः—धैवतः ।।

सूचना—इस सूक्त में सूर्य किरणों को मेघ जब छिपा लेता है तो सरमा=माध्यमिका वाक् उसे प्राप्त कराती है इसका आलंकारिक वर्णन है। इसे ही देवशुनी=देवों को कुतिया कहा जाता है ।

किमिच्छन्तीं सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहिंतिः का परिंतक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ।।१।।

पदार्थः—पणि=मेघ की उक्ति—(**सरमा**) देवों की कुतिया यह माध्यमिका वाक् (**किम्**) क्या (**इच्छन्ती**) चाहती हुई (**इदम्**) इस हमारे स्थान पर (**प्रानट्**) आई है, (**पराचैः**) आकर पुनः आसानी से लौटने योग्य गतियों से (**जगुरिः**) प्रयत्न से भी न जाने योग्य (**हि अध्वा**) यह मार्ग दूर है, (**का**) कौन सी (**अस्मेहितिः**) इसमें हमारे स्वार्थ की बात निहित है (**का**) कैसी (**परितक्म्या**) रात्रि (**आसीत्**) है, (**कथम्**) किस प्रकार से (**रसायाः**) अन्तरिक्षस्थ जलधारा के (**पयांसि**) जल को (**अतरः**) यह सरमा तैरती है ।

भावार्थः—पणि=मेघ यह विचारते हैं—किस वस्तु वा उद्देश्य को चाहती हुई यह माध्यमिका वाक् हम मेघों के स्थान में आई है । यह मार्ग ऐसा दूर और विकट है कि जहां आना-जाना आसान नहीं है । इसमें

हमारे सम्बन्धी उसका क्या हित है । उसकी रात्रि कैसे बीतती है और अन्तरिक्षस्थ जलधारा के जल को वह किस प्रकार तैर कर आती है ॥१॥

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

पदार्थः—सरमा=माध्यमिका वाक् जो देवशुनी कही जाती है उसकी उक्ति—मैं सरमा (**इन्द्रस्य**) सूर्य की (**दूतीः**) दूती हूँ (**इषिता**) उसके द्वारा प्रेषित हुई (**चरामि**) यहां पर आती हूँ,(**पणयः वः**) इन पणियों के द्वारा अपहृत (**महः**) महान् (**निधीन्**) गोनिधियों को (**इच्छन्ती**) चाहती हुई विचरती हूं, (**अतिष्कदः**) सूर्य इसे सोखकर शुष्क न कर दे इस (**भियसा**) भय से (**तत्**) वह नदी जल (**नः**) मेरी (**आवत्**) रक्षा करता है (**तथा**) उसी प्रकार से (**रसायाः**) अन्तरिक्षस्थ जलधारा के (**पयांसि**) जलों को (**अतरम्**) तैरती हूं ।

भावार्थः—मैं सूर्य की दूती हूं और सूर्य द्वारा प्रेषित होकर यहां गोनिधियों=सूर्य किरणों को चाहती हुई आती हूँ । सूर्य कहीं सोखकर इसे शुष्क न कर दे, इस भय से यह नदी जल मेरी रक्षा करता है और इसी प्रकार मैं इस अन्तरिक्ष जलधारा के जलों को तैरती हूं ॥२॥

कीदृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

पदार्थः—(**सरमे**) हे सरमे ! मध्यमा वाक् रूप देवशुनी (**इन्द्रः**) इन्द्र=सूर्य (**कीदृग्**) कैसा है ?(**का दृशीका**) उसकी शक्ति कैसी है, (**यस्य**) जिसकी (**दूतीः**) दूती हुई तू (**इदम्**) हम पणियों=मेघों के इस स्थान को (**पराकात्**) दूर से (**असरः**) आती हो, यह सरमा (**आ गच्छात् च**) आती है (**एना**) इसे (**मित्रम्**) मित्र के समान (**दधाम**) ग्रहण करें और (**नः**) हमारी (**गवाम्**) गौओं का (**अथ**) अब यह (**गोपतिः**) स्वामी (**भवाति**) होवे । पणि ऐसा कहते और विचारते हैं ।

भावार्थः—कैसा है इन्द्र=सूर्य ? कैसी है उसकी शक्ति ? जिसकी दूती बनकर दूर देश से इस स्थान पर आती हो । अच्छा है, यह आ रही है इसको मित्रवत् धारण करें और अब यह हमारी गौवों को जो हमने अपहरण करके रखी हैं उनका स्वामी बने ॥३॥

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥

पदार्थः—(**पणयः**) हे पणि=मेघ लोगो (**तम्**) उस (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**दभ्यम्**) हन्तव्य (**न**) नहीं (**वेद**) जानता हूँ (**सः**) वह (**दभत्**) सभी को मारता है (**यस्य**) जिसकी (**दूतीः**) दूती (**पराकात्**) दूर स्थान से (**इदम्**) इस स्थान पर (**असरम्**) आती हूँ (**गभीराः**) गम्भीर (**स्रवतः**) नदियां (**तम्**) उसको (**न**) नहीं (**गूहन्ति**) आच्छादित करती हैं (**इन्द्रेण**) इन्द्र=सूर्य के द्वारा (**हताः**) मारे गये तुम लोग (**शयध्वे**) सो जाओगे ।

भावार्थः—सरमा कहती है—हे पणि लोगो ! उस इन्द्र को किसी से हन्तव्य नहीं जानती हूं । वह सभी को मारता है जिसकी दूती मैं दूर से इस स्थान पर आती हूं । गहरी से गहरी नदियां भी उसको नहीं डुबा सकती हैं । इन्द्र=सूर्य से मारे गये तुम लोग सो जाओगे ॥४॥

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥

पदार्थः—पणि कहते हैं—(**सरमे**) हे सरमे ! हे सुभगे ! (**दिवः**) द्युलोक के (**अन्तान्**) पर्यन्त को (**परिपतन्ती**) जाती हुई तू (**इमाः**) इन (**याः**) जिन (**गावः**) किरणों को (**ऐच्छः**) चाहती हो (**एनाः**) इन किरणों को (**ते**) तेरे लिए (**कः**) कौन (**अयुध्वी**) विना लड़े (**अवसृजात्**) छोड़ेगा (**उत**) और (**अस्माकम्**) हमारे (**आयुधा**) आयुध (**तिग्मा**) तीक्ष्ण (**सन्ति**) हैं ।

भावार्थः—हे सुभगे सरमे ! द्युलोक के अन्त प्रदेशों तक जाती हुई तू इन जिन किरणों को चाहती है उन किरणों को तेरे लिए कौन विना युद्ध किये देगा ? और हमारे आयुद्ध तीक्ष्ण हैं ॥५॥

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥६॥

पदार्थः—सरमा कहती है—हे (**पणयः**) पणि लोगो ! (**वः**) तुम्हारे (**वचांसि**) वचन (**असेन्या**) सेनार्ह नहीं हैं (**तन्वः**) शरीर (**अनिषव्याः**) इषु के सहन योग्य नहीं हैं, और (**पापीः**) पापी हैं (**वः**) आपका (**पन्थाः**)

मार्ग (**एतवै**) जाने के लिए (**अधृष्टः**) असमर्थ (**अस्तु**) हो (**बृहस्पतिः**) इन्द्र के द्वारा प्रेरित बृहस्पति=अग्नि अथवा वायु (**उभया**) तुम्हारे दोनों शरीरों की (**न**) नहीं (**मृडात्**) रक्षा करेगा ।

भावार्थः—हे पणि लोगो ! तुम्हारे वचन सेनाओं के वचन जैसे नहीं, तुम्हारे शरीर भी बाण सहन करने योग्य नहीं हैं और पापी हैं। आपका मार्ग जानने के लिए सर्वथा असमर्थ हैं। इन्द्र=सूर्य द्वारा प्रेषित अग्नि वा वायु तुम्हारे बाण न सहने योग्य और पापी दोनों शरीरों की रक्षा नहीं करेगा ॥६॥

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥७॥

पदार्थः—(**सरमे**) हे सरमे=माध्यमिका वाक् (**अयम्**) यह (**निधिः**) कोष (**अद्रिबुध्नः**) मेघों से बन्धा हुआ (**गोभिः**) गौओं=किरणों (**अश्वेभिः**) अश्वों=गतिशील तेजों (**वसुभिः**) घनों से (**निऋष्टः**) व्याप्त है (**ये**) जो (**सुगोपाः**) उत्तम रक्षा करने वाले (**पणयः**) पणि हैं (**ते**) वे (**तम्**) उसकी (**रक्षन्ति**) रक्षा करते हैं (**रेकु पदम्**) इस शकास्पद स्थान को (**अलकम्**) व्यर्थ हो (**आ जगन्थ**) आई हो ।

भावार्थः—हे सरमे ! यह कोष मेघों से बन्धा हुआ गो, अश्व और घनों से व्याप्त है। जो उत्तम रक्षक पणि=मेघ हैं वे इसकी रक्षा करते हैं। इस शंकास्पद स्थान को व्यर्थ ही आई हो ॥७॥

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥८॥

पदार्थः—सरमा की उक्ति—(**सोमशिताः**) सोमतत्त्व से अर्थात् वायु से तीक्ष्ण किये गए (**नवग्वाः**) नवनीतगति वाले (**अयास्यः**) दृढ़ (**ऋषयः**) गतियुक्त (**अंगिरसः**) अग्नि के अङ्गार (**इह**) तुम मेघों के इस स्थान में (**आगमन्**) आते हैं (**ते**) वे (**गोनाम्**) किरणों के (**एतम्**) इस (**ऊर्वम्**) समूह को (**विभजन्त**) विभक्त करते हैं (**अथ**) इस लिए (**एतत्**) इस (**वचः**) वचन को "कि मैं यहां व्यर्थ आती हूँ" हे (**पणयः**) मेघो (**वमन् इत**) छोड़ने वाले ही बनो ।

भावार्थः—वायु से तीक्ष्ण हुए नवनीतगति ये दृढ़ अङ्गार तुम मेघों के इस स्थान में आते हैं। वे इन किरणों के समूह को विभक्त करते हैं। अतः हे मेघो ! "मैं यहां व्यर्थ में आती हूँ" इस कथन को त्याग दो। इसमें कोई तत्त्व नहीं ॥८॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९॥

पदार्थः—पणियों की उक्ति—(**सरमे**) हे सरमे ! (**त्वम्**) तू (**दैव्येन**) देवसम्बन्धी (**सहसा**) बल से (**प्रबाधिता**) पीड़ित की गई (**आ जगन्थ**) आई है तो (**स्वसारम्**) बहन (**त्वा**) तुझे (**कृणवै**) बनाते हैं (**पुनः**) फिर (**मा**) मत (**गाः**) वापस जाओ, (**सुभगे**) हे सुभगे ! (**ते**) तुझे (**गवाम्**) किरणों के समूह को (**अप भजाम**) लाकर बांटते हैं ।

भावार्थः—हे सुभगे सरमे ! यदि तू देवों सम्बन्धी बल से पीड़ित की गई आई है तो तुझे हम बहन बनाते हैं। तू देवों के पास फिर वापस मत जाओ। तुझे हम गौओं के समूह को लाकर देते हैं ॥९॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥

पदार्थः—सरमा की उक्ति - (**अहम्**) मैं (**भ्रातृत्वम्**) तुम्हारे साथ भाईपने की बात (**न**) नहीं (**वेद**) जानती हूं (**स्वसृत्वम्**) बहन भी तुम्हारी (**नो**) नहीं बनना चाहती अतः बहनपने की बात भी नहीं जानती हूँ, (**इन्द्रः**) सूर्य (**च**) और (**घोराः**) घोर (**अंगिरसः**) अग्नि के अङ्गारे ही इस बात को जानते हैं कि (**यदा**) जब मैं (**आयम्**) इन्द्र आदि को प्राप्त होऊँगो, (**मे**) मुझसे सम्बद्ध (**गोकामा**) गो की कामना वाले इन्द्र आदि इस तुम मेघों के स्थान को (**अच्छदयन्**) घेर लेंगे, (**अतः**) इस लिए (**पणयः**) हे मेघो ! (**वरीयः**) श्रेष्ठ गोसमूह को छोड़कर (**अप इत**) दूसरे स्थान को चले जाओ ।

भावार्थः—मैं भाईपने और बहनपने की बात को नहीं जानतो हूं। इस विषय में इन्द्र और घोर अग्नि के अंगार ही जानते हैं कि मैं कब इन्द्र आदि को प्राप्त होऊंगी। गौओं=किरणों की कामना वाले इन्द्र आदि हे मेघो तुम्हारे इस स्थान को घेर लेंगे। तुम गौवों को छोड़ कर दूसरे स्थान पर चले जाओ ॥१०॥

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥११॥

पदार्थः—(**पणयः**) हे मेघो ! (**दूरम् वरीयः**) दूर के उत्तम स्थान पर (**इत**) चले जाओ, (**गावः**) तुम्हारे द्वारा हरण की गई किरणें (**ऋतेन**) जल के माध्यम से (**मिनतीः**) मेघसम्बन्धी द्वारपिधान को तोड़ती हुई (**उत् यन्तु**) निकल जावेगी, (**याः**) जिन (**निगूढाः**) छिपाई गई हुई को (**बृहस्पतिः**) अग्नि, (**सोमः**) वायु, (**ग्रावाणः**) पर्जन्य, (**ऋषयः**) प्राण (**च**) और (**विप्राः**) मरुत् लोग (**अविन्दन्**) प्राप्त करेंगे ।

भावार्थः- हे मेघो ! दूर के अच्छे स्थान पर चले जाओ। तुम्हारे द्वारा अपहृत किरणें जल के माध्यम से मेघ सम्बन्धी द्वार के ढक्कन को तोड़ती हुई निकल जावेंगी और इन छिपी हुई किरणों को अग्नि, वायु, पर्जन्य, प्राण और मरुत् लोग प्राप्त करेंगे ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसो आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १०९

ऋषिः—१—७ जुहूर्ब्रह्मजाया, ऊर्ध्वनामा वा ब्राह्मः ॥ देवताः—विश्वे देवाः ॥ छन्दः –१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ३ विराट्-त्रिष्टुप् । ६, ७ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—५ धैवतः । ६, ७ गान्धारः ॥

सूचनाः—इस सूक्त में 'जुहू' और बृहस्पति का वर्णन है। वाणी आदिम अवस्था में अव्यक्त रहती है । इस अव्यक्त वाणी को देव लोग जब अपने पुरोहित शान्त अंगार रूप अग्नि को देते तो वह उसे वापस कर देता है क्योंकि अव्यक्तता दोष के कारण यह यज्ञ के प्रयोगमें नहीं आ पाती है । पुनः इसे व्यक्त करके यज्ञ के व्यवहार के योग्य बनाकर बृहस्पति को ये दैवी शक्तियां देती हैं तब इसका नाम 'जुहू' हो जाता है। अव्यक्तावस्था में यह 'ब्रह्म जाया' कही जाती है । यज्ञ व्यवहार में लाने योग्य होने पर यह 'जुहू' है । इसी यज्ञ विज्ञान का इस सूक्त में वर्णन है । विराट् के रेत पिण्ड जब अंगाररूप होते हैं तब ये अंगिरा कहलाते हैं जब वे शान्त हो प्रकाशमान होते हैं तब उन्हीं की समष्टि को बृहस्पति कहा जाता है।

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

पदार्थः— (**ते**) वे (**प्रथमाः**) प्रथम विराट् की अवस्था के अनन्तर वाले (**अकूपारः**) आदित्य, (**सलिलः**) सूक्ष्म जल (**मातरिश्वा**) वायु (**वीडुहरा**) अतितेजस्क (**तपः**) ताप से (**उग्रः**) प्रचण्ड अग्नि (**मयो भूः**) सुखदाता सोम (**देवीः**) दिव्य (**आपः**) जलें जो (**ऋतेन**) सृष्टि नियम के अनुसार (**प्रथमजाः**) प्रथमोत्पन्न हैं (**ब्रह्मकिल्विषे**) वाणी की अव्यक्तता एवं यज्ञ के योग्य न होने रूप दोष के विषय में बृहस्पति=देवपुरोहित अग्नि से (**अवदन्**) प्रकट करते हैं ।

भावार्थः—वे सर्व प्रथमावस्था में उत्पन्न सृष्टि नियम के अनुसार प्रथमज आदित्य, सूक्ष्म जल, वायु, अतितेजस्क अग्नि, सोम, दिव्य जलें, (ब्रह्म जाया) उत्पादित यज्ञ प्रयोग में अव्यक्त वाणी के अव्यक्तता दोष को देव पुरोहित शान्ताङ्गार (बृहस्पति) से प्रकट करते हैं ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

पदार्थ – (**प्रथमः**) मुख्य (**राजा**) दीप्तिमान (**सोमः**) सोम=सोमतत्त्व (**ब्रह्म जायाम्**) ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न की गई अव्यक्त वाणी को व्यक्त=यज्ञकार्य के योग्य करके (**अहृणीयमानः**) विना किसी संकोच के आता हुआ (**पुनः**) फिर देवपुरोहित बृहस्पति को (**प्र अयच्छत्**) प्रदान करता है, (**वरुणः**) वायु (**अन्वर्तिता**) इसका अनुमोदक (**आसीत्**) होता है, (**मित्रः**) सूर्य भी इसका अनुमोदक होता है, (**होता**) हवि आदि का ग्रहण करने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**हस्त गृह्य**) अपनी गति से ग्रहण करके (**आ निनाय**) देता है ।

भावार्थः मुख्य दीप्तिमान सोमतत्त्व इस अव्यक्त ब्रह्म जाया=ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न वाणी को व्यक्त तथा यज्ञोपयोग में आने वाली हुई को विना किसी संकोच बृहस्पति को पुनः प्रदान करता है। वायु और सूर्य इस कार्य का अनुमोदन करते हैं और हवि आदि का ग्रहीता होता अग्नि अपनी क्रियाओं से इसे ग्रहण कर बृहस्पति को प्रदान करता है ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

पदार्थः- (**अस्याः**) इस ब्रह्मजाया=अव्यक्तता से व्यक्तता और यज्ञ में प्रयोगार्हता को प्राप्त वाणी के (**आधिः**) कलेवर को (**हस्तेन**) गति और क्रिया से ही (**ग्राह्यः**) ग्राह्य है (**इयम्**) यह (**ब्रह्मजाया**) ब्रह्मजाया (**इति**) ऐसी है, (**च**) और (**अवोचन् इत्**) प्रकट भी करते हैं (**एषा**) यह (**प्रह्ये**) प्रेषित (**दूताय**) दूत के लिए (**तथा**) वैसे ही (**न**) नहीं (**तस्थे**) होती है अर्थात् अपने स्वरूप नहीं प्रकाशित करती है जिस प्रकार (**क्षत्रियः**) राजा का (**गुपितम्**) रक्षित (**राष्ट्रम्**) राष्ट्र शत्रु के प्रति अपने स्वरूप को नहीं प्रकट करता है।

भावार्थः—इस अव्यक्तता से व्यक्तता को आई हुई और यज्ञ में प्रयोगार्ह वाणी के कलेवर को गति और यज्ञ आदि की क्रिया से ही ग्रहण किया जा सकता है। यह ब्रह्मजाया ऐसी ही है। यह किसी दूसरे प्रेषित वा प्रेरित माध्यम को अपने को उसी प्रकार नहीं प्रकट करती है जिस प्रकार क्षत्रिय का रक्षित राष्ट्र शत्रुओं को अपना स्वरूप नहीं प्रकट करता है॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

पदार्थः—(**देवाः**) विद्वान् लोग (**एतस्याम्**) इसके विषय में (**अवदन्त**) कहते हैं और (**पूर्वे**) ज्ञान पूर्ण (**सप्त**) सात (**ऋषयः**) शरीरस्थ तर्क साधन (**ये**) जो (**तपसे**) इस कठिन तपोमय कार्य के लिए (**निषेदुः**) शरीर में स्थित हैं वे भी यही बताते हैं कि (**उपनीता**) पास लाई गई (**ब्राह्मणस्य**) यज्ञ के ज्ञाता विद्वान् वृहस्पति की यह (**जाया**) यज्ञार्ह वाणी (**भीमा**) पाप आदि के कर्मों के लिए भयंकर है (**दुर्धाम्**) दुःख से धारण योग्य इस वाणी को बृहस्पति=देवों का पुरोहित (**परमे व्योमन्**) परम आकाश में (**दधाति**) धारण करता हैं।

भावार्थः—ज्ञान पूर्ण विद्वान् और हमारे शरीर में स्थित तर्क के साधन भी यही बोलते हैं यह देवों द्वारा वृहस्पति को दी गई वाणी बड़ी भयंकर है । यह बृहस्पति=शान्तांगार तेज ही इसे आकाश में धारण करता है ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं१ न देवाः ॥५॥

पदार्थः—(**ब्रह्मचारी**) ब्रह्मचारी (**चरति**) तप का आचरण करता विचरता है, (**विषः**) समस्त यज्ञों और ज्ञानों को (**वेविषत्**) अपनी बुद्धि में व्याप्त

करता है, (**सः**) वह (**देवानाम्**) देवों का (**एकम्**) एक (**अंगम्**) अंग (**भवति**) बन जाता है, (**तेन**) इस लिए (**देवाः**) हे विद्वानो ! वह (**जायाम्**) गृहस्थाश्रम में पत्नी को उसी प्रकार प्राप्त करता है (**न**) यथा (**सोमेन**) सोम के द्वारा (**नीताम्**) लाई गई (**जुह्वम्**) जुहू को (**बृहस्पतिः**) बृहस्पति (**अविन्दत्**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करता हुआ सर्वत्र विचरता है। वह समस्त यज्ञकर्मों और ज्ञानों को अपनी बुद्धि में धारण करता है। उससे वह योग्य होकर, हे विद्वानो ! उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में पत्नी को प्राप्त करता है जिस प्रकार देव पुरोहित बृहस्पति सोम से लाई गई जुहू=वाणी को प्राप्त करता है ॥५॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥६॥

पदार्थः—(**देवाः**) देव लोग (**वै**) निश्चय से (**पुनः**) फिर (**ददुः**) देते हैं, (**उत**) और मनुष्य भी (**पुनः**) फिर देते हैं, (**राजानः**) राजा लोग (**सत्यम्**) यथार्थ (**कृण्वानाः**) करते हुए (**ब्रह्मजायाम्**) ब्रह्मजाया को (**पुनः**) फिर (**ददुः**) देते हैं।

भावार्थः- देव लोग निश्चय ही यज्ञार्ह वाणी को पुनः देते हैं, मनुष्य लोग भी इसका पुनः पुनः आदान-प्रदान और प्रचार के नियम को यथार्थ करते हुए इस यज्ञार्ह वाणी का पुनः-पुनः प्रचार करते हैं ॥६॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥७॥

पदार्थः – (**देवैः**) देव लोग (**ब्रह्मजायाम्**) अयज्ञार्ह अव्यक्त वाणी को (**निकिल्बिषम्**) यज्ञार्ह और व्यक्त (**कृत्वी**) करके बृहस्पति को (**पुनर्दाय**) फिर देकर (**पृथिव्याः**) पृथिवी से उत्पन्न (**ऊर्जम्**) अन्न को (**भक्त्वाय**) भजनीय=सेवनीय हवि आदि रूप में बनाकर (**उरुगायम्**) अत्यन्त प्रशंसनीय यज्ञ को (**उपासते**) सेवन करते हैं।

भावार्थ—देव लोग अव्यक्त और यज्ञ में न प्रयुक्त की जा सकने वाली वाणी को व्यक्त और यज्ञ में प्रयुक्त की जा सकने वाली बनाकर

बृहस्पति=देवों के पुरोहित शान्त अग्नि को देते हैं। अर्थात् ब्रह्मजाया को जुहू करके प्रदान करते हैं। वे पृथिवी से उत्पन्न अन्न को अन्न आदि की हवि बनाकर दैवी यज्ञ को चलाते हैं और उसी के अनुरूप यह हमारा यज्ञ आदि कार्य होता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११०

ऋषिः—१—११ जमदग्नी रामो वा ॥ देवता—आप्रियः ॥ छन्दः—१, २, ५, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ आर्चीत्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७, ९ त्रिष्टुप् ॥ ॥ स्वरः—धैवतः ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान अग्नि (**देवः**) द्योतन दीपन गुणों से युक्त (**मनुषः**) मनुष्य के (**दुरोणे**) गृह में (**अद्य**) आज (**समिद्धः**) सम्यक् दीप्त हुआ (**देवान्**) यज्ञ भागी देवों को (**यजसि**) इस यज्ञ में संगत करता है (**दूतः**) हवि के वहन करने से दूत भूत, (**प्रचेताः**) प्रकृष्ट चित्त वालों के ज्ञान का विषय (**कविः**) क्रान्तदर्शन (**त्वम्**) यह अग्नि (**मित्रमहः**) याज्ञिकों का आदरणीय (**चिकित्वान्**) विचार का विषय (**असि**) है, (**देवान्**) देवों को (**आ वह च**) प्राप्त कराता है।

भावार्थः—प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, द्योतन दीपन गुणों से युक्त मनुष्यों के गृहों में प्रदीप्त किया हुआ यज्ञ देवों की इस यज्ञ में संगति लगाता है। वह क्रान्तदर्शन प्रकृष्ट ज्ञान का विषय देवों का और यजमानों के आदर का विषय है। वह यज्ञ देवों को यज्ञ में प्राप्त कराता है ॥१॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥

पदार्थः—(**सुजिह्वः**) उत्तम ज्वालाओं वाला (**तनूनपात्**) अग्नि (**ऋतस्य**) यज्ञ के (**यानान्**) फल प्रापक (**पथः**) मार्गभूत हवि आदि पदार्थों को (**मध्वा**) मधु और घृत से (**समंजन्**) भली प्रकार प्रदीप्त करता हुआ (**स्वदय**) खाता है, (**मन्मानि**) हमारे द्वारा प्रयुक्त स्तोत्रों को (**धीभिः**) कर्मों से (**उत**) और (**यज्ञम्**) यजनीय हव्य आदि (**ऋन्धन्**) समृद्ध करता हुआ (**नः**) हमारे (**अध्वरम् च**) यज्ञ को (**देवत्रा**) देवों में (**कृणुहि**) करता है।

भावार्थः—उत्तम ज्वालाओं वाला यह अग्नि यज्ञ के फल के प्रापक हवि आदि पदार्थों को मधु घृत आदि से भली प्रकार प्रदीप्त करता हुआ खाता है तथा हवनीय हवि आदि को और हमारे द्वारा प्रयुक्त स्तोत्रों को कर्मों से समृद्ध करता हुआ हमारे यज्ञ को देवों में फैलाता है ॥२॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥

पदार्थः—(**आजुह्वानः**) अन्य यज्ञ देवों का यज्ञ में लाने वाला (**ईड्यः**) प्रशस्य, (**वन्द्यः**) वन्दनीय और (**वसुभिः**) वसुसंज्ञक देवों के साथ (**सजोषः**) सहप्रीत (**अग्ने**) अग्नि (**आ याहि**) इस यज्ञ में विद्यमान होता है (**यह्व**) महान् (**त्वम्**) यह अग्नि (**देवानाम्**) देवों का (**होता**) हवि ग्राहक (**असि**) है, (**सः**) वह (**यजीयान्**) यष्टितर और (**इषितः**) चाहा गया (**एनान्**) इन देवों की (**यक्षि**) यज्ञ में संगति बैठाता है।

भावार्थ—यज्ञ में दूसरे यज्ञ देवों को लाने वाला प्रशस्य, वन्दनीय, और वसु संज्ञक देवों से युक्त यह इस यज्ञ में विद्यमान होता है। महान् यह अग्नि देवों का हविग्राहक उत्कृष्ट यज्ञकर्ता और इन देवों की यज्ञ में संगति बैठाता है ॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥

पदार्थः—(**अह्नाम्**) दिनों के (**अग्रे**) पहले (**वस्तोः**) वसने योग्य (**अस्याः**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**प्रदिशा**) दिशा के द्वारा (**प्राचीनम्**) पूर्वीय प्रदेशस्थ (**बर्हिः**) यह लोक (**वृज्यते**) प्रकट होता हैं (**वितरम्**) विस्तृत (**वरीयः**) उत्तम यह (**वि प्रथते**) विस्तार को प्राप्त होता है तथा (**देवेभ्यः**) देवों (**अदितये**) पृथिवी के लिए (**स्योनम्**) सुखकर होता है।

भावार्थः—दिन के उदय काल में वसने योग्य इस पृथिवी की दिशा के कारण से पूर्वीय प्रदेशस्थ यह लोक भाग प्रकाश में आकर प्रकट होता है तथा पुनः वह बढता जाता है और सारा लोक व्यक्त हो जाता है। यह इस प्रकार देवों और पृथिवी के लिए सुखद होना है ॥४॥

व्यचंस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिंभ्यो न जनंयः शुम्भंमानाः ।
देवींर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यों भवत सुप्रायणाः ॥५॥

पदार्थ—(**व्यचस्वतीः**) व्याप्तिमयी (**उर्विया**) विस्तीर्ण (**देवीः**) द्योतन युक्त (**द्वारः**) द्वार उसी प्रकार (**विश्रयन्ताम**) विशेष आश्रय देवें (**न**) जिस प्रकार (**पतिभ्यः**) पतियों को (**शुम्भमानाः**) सुसज्जित हुई (**जनयः**) पत्नियें आश्रयरण करती हैं, ये (**बृहती**) बड़ी द्वारें (**विश्वमिन्वाः**) सबको प्रसन्न करने वाली और (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**सुप्रायणाः**) विस्तृत (**भवत**) होवें।

भावार्थः—व्याप्तिमयी विस्तीर्ण प्रकाश से युक्त की हुई ये द्वार उसी प्रकार विशेष आश्रय वाली हों जिस प्रकार अपने पतियों को चाहती हुई सुसज्जित पत्नियां आश्रय देती हैं ये बड़े द्वार सबको प्रसन्न करने वाले और देवों=विद्वानों के लिए विस्तृत हों ॥५॥

आ सुष्वयंन्ती यजते उपांके उषासानक्तां सदतां नि योनौं ।
दिव्ये योषंणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधांने ॥६॥

पदार्थः—(**सुष्वयन्ती**) अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाली (**यजते**) यष्टव्य (**उपाके**) प्रसंगतः प्राप्त (**दिव्ये**) द्युलोक में उत्पन्न, (**बृहती**) बड़ी (**योषणे**) योषा के समान प्रिय लगने वाली (**सुरुक्मे**) उत्तम दीप्ति वाली (**शुक्रपिशम**) सुरोचन रूपा (**श्रियम्**) शोभा को (**अधि दधाने**) धारण करती हुई (**उषासानक्ता**) उषा और रात्रि (**योनौ**) इस यज्ञस्थान में (**आ निषदताम्**) विद्यमान होते हैं।

भावार्थः—अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाली प्रसंग से प्राप्त, द्युलोकोत्पन्न, बृहती, योषावत् प्रिय लगने वाली, उत्तम दीप्ति वाली, सुरोचन रूप वाली शोभा को धारण करने वाली उषा और रात्रि भी इस यज्ञ-स्थान में यज्ञ देवता के रूप में प्राप्त होती है ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुंषो यजध्यै ।
प्रचोदयंन्ता विदथेंषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्तां ॥७॥

पदार्थः—(**मनुषः**) मनुष्य के (**यजध्यै**) यज्ञ की सिद्धि के लिए (**यज्ञम्**) यज्ञ का (**मिमाना**) निर्माण करते हुए (**प्रथमा**) मुख्य (**सुवाचा**) उत्तम स्तोत्रों से प्रशस्य (**विदथेषु**) यज्ञों में (**कारू**) कर्म की प्रेरणा करने वाले, और ऋत्विजों यजमानों को (**प्रचोदयन्ता**) प्रेरित करते हुए (**प्राचीनम्**) पूर्व में स्थित (**ज्योतिः**) आहवनीय को (**प्रदिशा**) प्रदिष्ट मार्ग से (**दिशन्ता**) दिखाते हुए (**दैव्या होतारा**) अग्नि और आदित्य इस यज्ञ को प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—सब मनुष्यों के यज्ञ की सिद्धि के लिए यज्ञ का निर्माण करते हुए, मुख्यभूत, प्रशस्य, यज्ञों में कर्म की प्रेरणा के साधन, ऋत्विजों और यजमानों को प्रेरित करते हुए, पूर्वस्थ आहवनीय ज्योति का प्रदिष्ट मार्ग से निर्देश करते हुए अग्नि और आदित्य इस यज्ञ में अपना भाग प्राप्त करते हैं ॥७॥

आ नों यज्ञं भारती तूयंमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयंन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपंसः सदन्तु ॥८॥

पदार्थः—(**भारती**) सूर्य की दीप्ति, (**तूयम्**) शीघ्र (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ में (**आ एतु**) प्राप्त हो, (**मनुष्वद्**) मनुष्य की भांति (**इला**) अन्न की उत्पादिका पृथिवी (**चेतयन्ती**) हमें चेताने का साधन बनती हुई (**इह**) इस यज्ञ में (**एतु**) प्राप्त हो, (**सरस्वती**) वाक् भी (**एतु**) प्राप्त हो, इस प्रकार (**स्वपसः**) उत्तम कर्मों वाली (**तिस्रः**) तीनों (**देवी**) देवियां (**इदम्**) इस (**स्योनम्**) सुखकर (**बर्हिः**) यज्ञ को (**आ सदन्तु**) प्राप्त हों।

भावार्थः—भारती=आदित्य दीप्ति, इला=मही और सरस्वती=माध्यमिका वाक्—ये तीनों देवियां इस सुखकारक हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥८॥

य इमे द्यावांपृथिवी जनिंत्री रूपैरपिंशद्भुवंनानि विश्वां ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यंक्षि विद्वान् ॥९॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**जनित्री**) उत्पादिका (**इमे**) इन (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी को तथा (**विश्वा**) समस्त (**भुवनानि**) भुवनों को (**रूपैः**) रूपों से (**अपिशत्**) युक्त करता है (**तम्**) उस (**त्वष्टारम्**) रूपों के स्वामी त्वष्टा=सूर्य (**देवम्**) देव के लिए (**होतः**) हे होता ! (**यजीयान्**) अतिशय

याज्ञिक (**विद्वान्**) विद्वान् (**इषितः**) चाहा गया (**इह**) इस यज्ञ में (**अद्य**) आज (**यक्षि**) यज्ञ कर ।

भावार्थ—जो रूपों का अधिपति त्वष्टा=सूर्य सबके उत्पादक इन द्यु और पृथिवी लोक को तथा समस्त भुवनों को रूपों से अलंकृत करता है उस के लिए हे यज्ञकर्त्ता होता तू यज्ञ कर ॥९॥

उ॒पाव॑सृज॒ त्मन्या॑ सम॒ञ्जन्दे॒वानां॒ पाथ॑ ऋतु॒था ह॒वींषि॑ ।
वन॒स्पति॑: शमि॒ता दे॒वो अ॒ग्निः स्वद॑न्तु ह॒व्यं मधु॑ना घृ॒तेन॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे यूप=यजमान (**त्मन्या**) स्वयम (**ऋतुथा**) प्राप्त काल में (**देवानाम्**) यज्ञ देवों का (**पाथः**) अन्नभूत घृत आदि तथा अन्य (**हवींषि**) हवियों को (**समञ्जन्**) भली प्रकार व्यक्त करते हुए (**उपावसृज**) तैयार कर के प्रदान कर, (**वनस्पतिः**) प्राण, (**शमिता**) मृत्यु (**देवः**) द्योतन दीपन आदि गुणों से युक्त (**अग्निः**) अग्नि (**मधुना**) मधुर (**घृतेन**) घृत से युक्त (**हव्यम्**) हव्य पदार्थ को (**स्वदन्तु**) खावें ।

भावार्थः—हे यजमान ! तू यज्ञ देवों की अन्नभूत हवियों को समय-समय पर भली प्रकार व्यक्त करके प्रदान किया कर। प्राण, मृत्यु और अग्नि मधुर घृत से युक्त इस हवि को खावें ॥१०॥

स॒द्यो जा॒तो व्य॑मिमीत य॒ज्ञम॒ग्निर्दे॒वाना॑मभवत्पुरो॒गाः ।
अ॒स्य होतु॑: प्र॒दिश्यृ॒तस्य॑ वा॒चि स्वाहा॑कृतं ह॒विर॑दन्तु दे॒वाः ॥११॥

पदार्थः—(**अग्निः**) यह अग्नि (**सद्यः**) तत्काल (**जातः**) उत्पन्न हुआ (**यज्ञम्**) यज्ञ का (**वि अमिमीत**) निष्पादन करता है, वह (**देवानाम्**) देवों का (**पुरोगाः**) प्रथमगामी अर्थात् मुख्य (**अभवत्**) होता है, (**प्रदिशि**) प्राची दिशा में (**ऋतस्य**) आहवनीय रूप (**अस्य**) इस (**होतुः**) होमनिष्पादक अग्नि के (**वाचि**) ज्वाला में (**स्वाहाकृतम्**) स्वाहा बोल कर डाली गई (**हविः**) हवि को (**देवाः**) अन्य दैवी प्रकृति शक्तियां (**अदन्तु**) खाती हैं ।

भावार्थः—अग्नि अपने उत्पत्ति काल से ही यज्ञ का निष्पादन करता है। वह देवों का मुख्य है। आहवनीय रूप इस होमनिष्पादक अग्नि के मुख=ज्वाला में डाली गई हवि को अन्य सभी यज्ञदेव प्राप्त करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसौ दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १११

ऋषिः—१—१० अष्टादंष्ट्रो वैरूपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ ४ त्रिष्टुप् । ३, ६, १० विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

मनी॑षिणः॒ प्र भ॑रध्वं मनी॒षां यथा॑यथा म॒तय॒: सन्ति॑ नृ॒णाम् ।
इन्द्रं॑ स॒त्यैरेर॑यामा कृ॒तेभि॒: स हि वी॒रो गि॑र्वण॒स्युर्विदा॑नः ॥१॥

पदार्थः—(**मनीषिणः**) हे मनीषियो ! (**यथायथा**) जैसी-जैसी (**नृणाम्**) उत्तम कर्मों के नेता मनुष्यों की (**मतयः**) बुद्धियां (**सन्ति**) हैं उसके अनुसार (**मनीषाम**) भगवान् की स्तुति (**प्रभरध्वम**) किया करो, हम (**सत्यैः**) यथार्थ (**कृतेभिः**) कृत्यों और स्तुतियों से (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यशाली प्रभु की (**आ ईरयाम**) स्तुति करते हैं, (**हि**) क्योंकि (**वीरः**) महाबली (**विदानः**) सब कुछ का ज्ञाता (सः) वह (**गिर्वणस्युः**) वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य है ।

भावार्थः—हे मनीषियो ! जैसी-जैसी उत्तम कर्म के नेता मनुष्यों की बुद्धियां होती हैं तदनुसार भगवान् की स्तुति किया करो। हम यथार्थ कृत्यों और स्तुतियों से परमैश्वर्यशाली प्रभु की स्तुति करते हैं। वह महाबली, सबका ज्ञाता और वेदवाणियों द्वारा स्तुति किये जाने योग्य है ॥१॥

ऋ॒तस्य॒ हि सद॑सो धी॒तिरद्यौ॒त्सं गा॑र्ष्टे॒यो वृ॑ष॒भो गोभि॑रानट् ।
उद॑तिष्ठत्तवि॒षेणा॒ रवे॑ण म॒हान्ति॑ चि॒त्सं वि॑व्याचा॒ रजां॑सि ॥२॥

पदार्थः (**ऋतस्य**) जल के (**सदसः**) स्थान अन्तरिक्ष का (**धीतिः**) धारक आदित्य (**अद्यौत्**) प्रकाशमान होता है (**गार्ष्टेयः**) गाय के पुत्र (**वृषभः**) बैल की भांति वह (**गोभिः**) किरणों द्वारा (**सम् आनट्**) व्यापन करता है (**तविषेण**) महान् (**रवेण**) आकाशस्थ शब्द से (**उदतिष्ठत्**) उन्नत होता है तथा (**महान्ति**) बड़े से बड़े (**रजांसि चित्**) जलों वा लोकों को (**सं विव्याच**) व्याप्त करता है ।

भावार्थः—जल के स्थान अन्तरिक्ष का धारक आदित्य प्रकाशमान हो रहा है। वह गौ से उत्पन्न वृषभ के समान किरणों द्वारा सब स्थानों को व्याप्त करता है। महान् आकाशस्थ शब्द से वह ऊपर रहता है तथा बड़े से बड़े लोकों को व्याप्त करता है ॥२॥

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय ।
आत्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥३॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस विश्व की सब बातों को (**श्रुत्यं**) सुनने के लिए (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**किल**) ही (**वेद**) जानता है, (**सः हि**) वह ही (**जिष्णुः**) सब पर विजय पाने वाला है और (**सूर्याय**) सूर्य आदि ग्रहों के लिए (**पथिकृत्**) मार्ग बनाने वाला है, (**आत्**) और (**अच्युतः**) अच्युत वह (**मेनाम्**) वेदवाणी को (**कृण्वन्**) उत्पन्न करता हुआ (**गोः**) पृथिवी का (**दिवः**) द्युलोक का (**सनजा**) सनातन (**अप्रतीतः**) अप्रतिम (**पतिः**) पति (**भुवत्**) होता है।

भावार्थः—इस विश्व की सब बातों के सुनने के लिए वह भगवान् ही जानता है। वही सब पर विजय प्राप्त करने वाला और सूर्य आदि ग्रहों के मार्ग का निर्माता है। अच्युत वह वेदवाणी का प्रकाश करता हुआ पृथिवी, द्यु आदि का सनातन और अप्रतिम स्वामी होता है ॥३॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि दाधार यो धरुणं सत्यताता ॥४॥

पदार्थः—(**अंगिरोभिः**) जगत् के अङ्ग-अङ्ग में विद्यमान तापों से (**गृणानः**) प्रकट किया जाता हुआ (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**मह्ना**) अपनी महिमा से (**महतः**) महान् (**अर्णवस्य**) अन्तरिक्षस्थ समुद्र के (**व्रता**) कार्य कलापों को (**अमिनात्**) मापता है वह ही (**पुरूणि**) बहुत से (**रजांसि चित्**) लोकों को (**निततान**) बनाता वा फैलाता है (**यः**) जो (**सत्यताता**) द्युलोक अथवा आकाश में (**धरुणम्**) धारक बल को (**दाधार**) धारण करता है।

भावार्थः—जगत् के अङ्ग-अङ्ग में विद्यमान तापों से स्वभावतः प्रकट किया जाता हुआ परमेश्वर अपनी महिमा से महान् अन्तरिक्षस्थ समुद्र के कार्य कलापों को मापता है। वह ही सभी लोकों को धारण करता है और वही है जो द्युलोक में धारक बल को धारण करता है ॥४॥

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महीं चिद् द्यामातनोत्सूर्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥५॥

पदार्थः—(**दिवः**) द्युलोक और (**पृथिव्याः**) पृथिवी का (**प्रतिमानम्**) मापने वाला (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वा**) समस्त (**सवना**) उत्पन्न पदार्थों को

(**वेद**) जानता है, (**शुष्णम्**) शोषक मेघ को (**हन्ति**) मारकर बरसाता है (**महीम्**) पृथिवी को और (**द्याम् चित्**) द्युलोक को भी (**सूर्येण**) सूर्य के द्वारा (**आतनोत्**) विस्तृत प्रकाश वाला करता है, (**स्कभीयान्**) महती धारण शक्ति से युक्त वह (**स्कम्भनेन**) धारण शक्ति से सब लोकों को (**अस्कम्भ च**) धारण करता है।

भावार्थः— पृथिवी और द्युलोक का मापने वाला परमेश्वर समस्त पदार्थों को जानता है और शोषक मेघ को मारकर बरसाता है। पृथिवी और द्युलोक को सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित करता है। वह सबसे अधिक धारक शक्ति वाला है। वह धारण शक्ति से समस्त लोगों को धारण करता है ॥५॥

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥६॥

पदार्थः—(**धृष्णो**) धर्षणशील, (**मघवन्**) धनों का स्वामी (**वृत्रहा**) मेघ का मारने वाला इन्द्र=सूर्य (**वज्रेण**) वज्र के द्वारा (**वृत्रम्** मेघ को (**अस्तः**) मारता है (**अदेवस्य**) न प्रकाश वाले (**शूशुवानस्य**) अपने बल से बढ़ने वाले उस मेघ की (**मायाः**) माया को (**धृषता**) समर्थ वज्र से (**अत्र**) इस काल में ही (**वि जघन्थ**) नष्ट करता है (**अथ**) और (**बाह्वोजाः**) बहुत ही ओज वाला (**अभवः**) होता है।

भावार्थः धर्षणशील, धनों का स्वामी एवन् मेघ का मारने वाला सूर्य बज्र को द्वारा मेघ को मारता है। न प्रकाश वाले, अपने बल से बढ़ने वाले इस मेघ की माया के समर्थ वज्र से नष्ट करता है और बहुत ही ओज वाला है ॥६॥

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥७॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**उषसः**) उषायें (**सूर्येण**) सूर्य से (**सचन्त**) संगत होती हैं तब (**अस्य**) इस इन्द्र=सूर्य की (**केतवः**) सब की ज्ञापक रश्मियें (**चित्राम्**) नाना वर्णों वाली (**राम्**) श्री को (**अविन्दन्**) प्राप्त होती हैं, (**यत्**) जब (**दिवः**) दिन में (**नक्षत्रम्**) नक्षत्र (**न**) नहीं (**आ ददृशे**) दिखाई

पड़ता है तब (**पुनः**) फिर (**यतः**) जाते हुए इस सूर्य की रश्मि को (**नकिः नु**) कोई भी नहीं (**वेद**) जानता है (**श्रद्धा**) यह सत्य है।

भावार्थः - जब उषायें सूर्य के साथ संगत होती हैं तब इस सूर्य की ज्ञापक रश्मियां नाना वर्णों वाली शोभा को प्राप्त होती हैं। जब दिन में नक्षत्र नहीं दिखाई पड़ते हैं तब जाते हुए इनकी रश्मियों को कोई भी नहीं जानता है यह सत्य है ॥७॥

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥८॥

पदार्थः—(**आसाम्**) इन जलों के मध्य में (**प्रथमाः**) प्रथमगामिनी (**आपः**) जलें (**दूरम्**) दूर (**जग्मुः**) चली जाती हैं (**याः**) जो (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=सूर्य की (**प्रसवे**) प्रेरणा में (**सस्रुः**) जाती हैं, (**आसाम्**) इनका (**क्व स्वित्**) कहां (**अग्रम्**) अग्र है, (**क्व**) कहां (**बुध्नः**) मूल है (**वः**) इनका (**क्व**) कहां (**मध्यम्**) मध्य है (**आपः**) इन जलों का (**क्व**) कहां (**नूनम्**) निश्चय ही (**अन्तः**) अन्त है।

भावार्थः - इन जलों में प्रथम गामिनी जलें दूर चली जाती हैं जो कि सूर्य की किरणों के प्रेरण से जाती हैं। इन का प्रारम्भ कहां, इनका मूल कहां? इनका मध्य कहां? और इनका अन्त कहां? अर्थात् तारतम्य में यह विवरण ज्ञात नहीं होता है ॥८॥

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन।
मुमुक्षमाणा उत मुमुच्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥९॥

पदार्थ - यह इन्द्र=सूर्य (**अहिना**) मेघ के द्वारा (**जग्रसानान्**) खाई गई (**सिन्धून्**) स्यन्दनवती जल धाराओं को (**सृजः**) निर्गत करता हैं, (**आदिद**) अनन्तर (**एताः**) ये (**जवेन**) वेग से (**प्र विविज्रे**) चलित होती है (**याः**) जो (**मुमुक्षमाणाः**) छूटना चाहती हैं वे (**मुमुच्रे**) इन्द्र से मुक्त कर दी जाती हैं (**अध इत्**) और (**एताः**) ये (**नितिक्ताः**) अत्यन्त शुद्ध हुई (**न रमन्ते**) एक स्थान पर नही खेलती हैं अपितु सर्वत्र विखरती हैं।

भावार्थः - यह इन्द्र=सूर्य मेघ द्वारा खाई हुई स्यन्दनशील जलों को उनसे निकालता है। अनन्तर ये वेग से चलित हो जाती हैं। जो मुक्त होने योग्य हैं वे मुक्त की जाती हैं। ये अत्यन्त शुद्ध जलें एक साथ नहीं खेलती हैं अपितु पृथक्-पृथक् विचरती हैं ॥९॥

सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम्।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१०॥

पदार्थः—(**सध्रीचीः**) साथ-साथ जाने वाली जलें (**उशतीः इव**) अपने-अपने पति को चाहने वाली पत्नियों के समान (**सिन्धुम्**) समुद्र को (**आयन्**) जाती हैं, (**जारः**) शत्रु को जीर्ण करने वाला (**पूर्भित्**) पुरी का भेदक (**सनात्**) सदा (**आसाम्**) इनका (**आरितः**) प्रेरक और स्वामी होता है, (**ते**) इस इन्द्र के (**अस्तम्**) गृह=अन्तरिक्ष को (**अस्मे**) हमारे द्वारा प्रदत्त (**पार्थिवा**) पार्थिव (**वसूनि**) हवि आदि तथा (**पूर्वीः**) ज्ञानपूर्ण (**सूनृताः**) स्तुति वाणियाँ (**जग्मुः**) जाती हैं।

भावार्थः- साथ-साथ जाने वाली जलें अपने-अपने पति को चाहती हुई पत्नियों के समान समुद्र को प्राप्त होती हैं। शत्रु को जीर्ण करने वाला पुरी का भेदक इन्द्र सदा इनका प्रेरक स्वामी होता है। इस इन्द्र के स्थान-भूत अन्तरिक्ष को हमारे द्वारा यज्ञ में आहुति रूप में प्रदत्त पार्थिव हवि आदि तथा ज्ञानपूर्ण स्तुति वाणियां जाती हैं ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ॥

सूक्त—११२

ऋषिः—१—१० नभः प्रभेदनो वैरूपः॥ देवताः—इन्द्रः॥ छन्दः—१,
३, ७, ८ विराट्त्रिष्टुप्। २, ४—६, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—धैवतः॥

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् प्रभो! (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए इस जगत् की (**प्रतिकामम्**) पूरी इच्छा के साथ (**पिब**) रक्षा करते हैं (**हि**) क्योंकि

(**प्रातः सावः**) सृष्टि की प्रातः वेला में उत्पन्न किया गया यह जगत् (**तव**) आप की (**पूर्व पीतिः**) पूर्ण रक्षा पर आधारित है, हे (**शूर**) हे महावली ! तू (**शत्रून्**) हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं के (**हन्तवे**) हननार्थ हमें (**हर्षस्व**) हर्षित करता है (**उक्थेभिः**) मन्त्रों द्वारा हम (**ते**) तुम्हारे (**वीर्या**) पराक्रमों की (**प्रब्रवाम**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः - हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! उत्पन्न इस जगत् की आप सर्वथा रक्षा करते हैं । यह सृष्टि की प्रभात बेला में रचा गया विश्व आप की ही पूर्ण रक्षा पर आधारित है । हे बलशालिन् ! हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं के विनाशार्थ हमें आप हर्षित करते हैं । हम मन्त्रों द्वारा आपके पराक्रमों की प्रशंसा करते हैं ॥१॥

यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥२॥

पदार्थः - (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**ते**) आप की (**यः**) जो (**रथः**) रमणीय गति है वह (**मनसः**) मन से भी (**जनीयान्**) अति वेग वाली है, (**तेन**) उस गति से (**सोमपेयाय**) जगत् की रक्षा के लिए (**याहि**) प्राप्त होते हो (**ते**) तेरे (**हरयः**) गमन-साधन अथवा क्रिया (**तूयम्**) शीघ्र (**आ प्र द्रवन्तु**) सब तरफ व्याप्त हो जाती है (**वृषभिः**) शक्ति शाली (**येभिः**) जिनके आप (**मन्दमानः**) सबको हर्षित करते हुए (**यासि**) सर्वत्र पहुँचे होते हो ।

भावार्थः - हे ऐश्वर्यवन् ! आपकी रमणीय गति मन से भी अति वेगवाली है । उससे आप जगत् की रक्षा के लिए प्राप्त होते हो,आपके गमन साधन अथवा क्रिया शीघ्र सब तरफ व्याप्त हो जाती है । जिन शक्तिशाली क्रियाओं के द्वारा आप सबको हर्षित करते हुए सर्वत्र पहुँचे होते हो ॥२॥

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥३॥

पदार्थः - (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! आप (**हरित्वता**) हरितवर्ण (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**वर्चसा**) तेज से और (**श्रेष्ठैः**) उसके श्रेष्ठ (**रूपैः**) रूपों से (**तन्वम्**) हमारे शरीर को (**स्पर्शयस्व**) तेजोयुक्त करते हैं, (**अस्माभिः**) हम (**सखिभिः**) मित्रों द्वारा (**हुवानः**) स्तुत हुए (**सध्रीचीनः**) हमारे साथ रहने वाले आप (**निषद्य**) हमारे हृदय में व्यापक होकर (**मादयस्व**) हमें आनन्दित करते हो ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! आप हरित वर्ण वाले सूर्य के तेज से और उसके श्रेष्ठ रूपों से हमारे शरीर को तेजोयुक्त करते हो । हम मित्रों द्वारा स्तुत और हमारे साथ विद्यमान आप हमारे हृदय में व्यापक होकर हमें आनन्दित करते हो ॥३॥

यस्य त्यत्ते महिमानं मदेष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**इमे**) ये (**मही**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक (**ते**) तेरी (**त्यत्**) उस (**मदेषु**) आनन्दों में होने वाली (**महिमानम्**) महिमा को (**न**) नहीं (**अविविक्ताम्**) पृथक् करते हैं (**प्रियेभिः**) प्रियकर (**युक्तैः**) योगयुक्त (**हरिभिः**) मनुष्यों के द्वारा (**तत्**) उस (**ओकः**) हृदय गृह में (**आ याहि**) प्राप्त किए जाते हो तथा (**प्रियम्**) जीवों की प्रिय (**अन्नम्**) प्रकृति को (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**आ याहि**) व्याप्त करते हो ।

भावार्थः - हे परमेश्वर ! ये महान् द्यु और पृथिवी लोक भी तेरी आनन्दों में होने वाली महिमा से पृथक् नहीं होते हैं, उसी में रहते हैं । प्रियकर योगी मनुष्यों द्वारा उस हृदय गृह में प्राप्त किए जाते हो । तथा जीवों के प्रिय प्रकृति कारण आप अच्छी प्रकार व्याप्त करते हो ॥४॥

यस्य शश्वत्पपिवाँ इन्द्र शत्रूननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरन्धिं तविषीमियर्ति स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः ॥५॥

पदार्थः - (**इन्द्र**) हे राजन् ! तू (**शश्वत्**) निरन्तर (**पपिवान्**) सोमपान करने वाला है (**यस्य**) जिस प्रजाजन के शत्रुओं को (**अनानुकृत्या**) अनुकरण रहित (**रण्या**) आयुध प्रहार से (**चकर्थ**) मारते हो (**सः** ; वह भी (**ते**) तुम्हारी (**तविषीम्**) महती (**पुरन्धिम्**) बुद्धि को (**इयर्ति**) प्राप्त करता है, (**सः**) वह (**सोमः**) सोम (**ते**) तुम्हारे (**मदाय**) आनन्द के लिए (**सुतः**) तैयार किया गया है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू निरन्तर सोम आदि ओषधियों का पान करने वाला है । तू जिस प्रजाजन के शत्रुओं को जिसका कोई दूसरा अनुकरण करने में समर्थ नहीं है ऐसे आयुध-प्रहार से मारता है वह प्रजाजन भी आप की महती बुद्धि को प्राप्त करता है । यह सोमरस तेरे आनन्द के लिए तैयार किया गया है ॥५॥

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**इदम**) यह (**पात्रम**) पात्र (**ते**) तेरे लिए (**सनवित्तम**) प्राप्त है, (**शतक्रतो**) हे शतक्रतो राजन्। (**एना**) इस से (**सोमम्**) सोम को (**पिब**) पी, (**मदिरस्य**) हर्षकारक (**मध्वः**) मधुर सोम रस का (**आहावः**) पात्र विशेष (**पूर्णः**) भरा है, जिसको (**विश्वे**) सभी (**देवाः**) देव (**इद**) भी (**अभिहर्यन्ति**) चाहते हैं ।

भावार्थः—हे राजन् ! तेरे लिए यह पात्र प्राप्त है। हे शतक्रतो ! राजन् ! इससे सोम का पान कर। हर्षकारक मधुर सोमरस का पात्रविशेष भरा है जिसे सभी देव भी चाहते हैं ॥६॥

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्र वृषभ त्वाम् हि**) इस सुख वर्षक इन्द्र=वायु को (**हितप्रयसः**) हवि को लिए हुए (**पुरुधा**) बहुत से (**जनासः**) जन (**ह्वयन्ते**) आह्वान करते हैं (**अस्माकम्**) हमारे सम्बन्धी (**इमा**) ये (**ते**) इसके (**सवना**) सवन (**मधुमत्तमानि**) मधुमत्तम (**भुवन्**) हैं (**तेषु**) उन सवनों में (**हर्य**) सोमपान करता है ।

भावार्थः—सुख के वर्षक इस इन्द्र=वायु का यज्ञ देवता के रूप में हवि लिए बहुत से लोग यज्ञार्थ आह्वान भरे शब्दों में वर्णन करते हैं। हमसे सम्बद्ध ये इसके सवन मधुमतम हैं। इन में यह सोमपान करता है ॥७॥

प्र ते इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥८॥

पदार्थः—(**ते इन्द्र**) इस इन्द्र=वायु के (**पूर्व्याणि**) पूर्णता सम्पन्न (**कृतानि**) किए हुए (**प्रथमा**) मुख्य (**वीर्या**) पराक्रमों की (**नूनम्**) निश्चय ही (**प्रप्रवोचम्**) प्रशंसा करता हूँ (**सतीनमन्युः**) जल प्रवर्षण की क्रिया और गुण वाला (**अद्रिम्**) मेघ को (**अश्रथयः**) शिथिल करता है (**ब्रह्मणे**) सूर्य के लिए (**गाम्**) किरणों को (**सुवेदनाम्**) अच्छी प्रकार से प्राप्य (**अकृणोः**) करता है।

भावार्थः—इस वायु के पूर्णता सम्पन्न प्रधान कार्य-कलापों की मैं प्रशंसा करता हूं। जल प्रवर्षण की क्रिया और गुणों से युक्त यह मेघ को विदीर्ण करता है और सूर्य के लिए किरणों को अच्छी प्रकार प्राप्य करता है ॥८॥

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥९॥

पदार्थः—(**गणपते**) पदार्थ-गणों का पालक यह (**इन्द्रः**) वायु (**गणेषु**) पदार्थ समूहों में (**सु**) सुष्ठु रूप से (**नि सीद**) स्थित होता है, (**त्वाम**) इसको (**कवीनाम्**) क्रान्तदर्शन वाले पदार्थों में (**विप्रतमम्**) देवतम (**आहुः**) कहते हैं, (**त्वत्**) इसके (**ऋते**) विना (**किम् चन**) कुछ भी (**आरे**) दूर वा समीप में (**न**) नहीं (**क्रियते**) किया जाता है, तथा (**मघवन्**) अन्न आदि धनों का स्वामी (**महाम**) महान् (**चित्रम**) अद्भुत (**अर्कम्**) जल समूह को (**अर्च**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—यह वायु जगत् के पदार्थसमूहों का पालक है और पदार्थसमूहों में विराजमान है। इसको विद्वान् लोग क्रान्तदर्शन दिव्य शक्तियों अर्थात् देवों में देवतम कहते हैं। इसके विना संसार का कोई भी कार्य कहीं पर नहीं हो सकता है। यह अन्न आदि का पालक और दाता महान् जलसमूह को प्राप्त करता है ॥९॥

अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत्सत्यशुष्माभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥१०॥

पदार्थः—(**मघवन्**) हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (**सखे**) हे परम मित्र ! भगवन् (**नाधमानान् नः**) ऐश्वर्य और ज्ञान की याचना करने वाले हम लोगों को (**अभिख्या**) कृपादृष्टि से देख, (**वसुपते**) हे समस्त जीवों और जगत् के पालक तू (**सखीनाम्**) हम मित्रों को (**बोधि**) ज्ञान से बोधयुक्त कर, (**सत्य-शुष्म**) हे सत्य बल वाले ! तू (**रणकृत**) जगत् में होने वाले रमणीय के कार्यों का कराने वाला है, अतः (**रणम्**) रमणीय कार्य को (**कृधि**) करता है, (**अभक्ते चित**) असंविभक्त धन के होते हुए भी (**अस्मान्**) हम सबको (**राये**) आत्मिक धन की प्राप्ति के लिए (**आ भज**) भागी कर ।

भावार्थः--हे ऐश्वर्यों के स्वामिन्, हे परममित्र ! हे भगवन् ! हम ऐश्वर्य और ज्ञान की याचना करने वालों को कृपादृष्टि से देख। तू हम मित्रों को ज्ञान से बोधयुक्त कर, हे सत्यबल ! तू जगत् में रमणीय कार्यों का करने वाला है अतः रमणीय कार्य को करता है। असंविभक्त धन के होते हुए भी हम सब को आत्मिक धन की प्राप्ति के लिए भागी बना ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसो बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११३

ऋषिः—१—१० शतप्रभेदनो वैरूपः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ५ जगती । ३, ६, ९ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ७, ८, आर्चीस्वराड्जगती । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—९ निषादः । १० धैवतः ॥

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥१॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस इन्द्र=वायु के (**तम**) उस (**शुष्मम**) बल की (**सचेतसा**) समान चिन्तन के साधन भूत (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**विश्वेभिः**) सारे (**देवैः**) देवों के साथ (**अनु आवताम्**) रक्षा करते हैं, (**यत्**) जिससे (**कृण्वानः**) मेघ वध आदि कार्यों को करता हुआ (**इन्द्रियम**) इन्द्र सम्बन्धी (**महिमानम**) महिमा को (**ऐत्**) प्राप्त होता है, (**सोमस्य**) सोम को (**पीत्वी**) पीकर (**क्रतुमान्**) कर्मवान् वह (**अवर्धत**) बढ़ता है।

भावार्थः—इस वायु के बल की द्यु और पृथिवी जो समान चिन्तन के विषय हैं अन्य देवों के साथ रक्षा करते हैं। जिससे मेघ वध आदि कार्यों को करता हुआ यह अपने इन्द्रत्व की महिमा को प्राप्त करता है और सोम को पीकर कर्मवान् हुआ बढ़ता है ॥१॥

तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः ॥२॥

पदार्थः—(**विष्णुः**) आदित्य (**मधुनः**) मधुर सोम के (**अंशुम**) अंशु=तत्व को (**दधन्वान्**) धारण करता है, (**अस्य**) इस इन्द्र=वायु की (**तम**) उस (**महिमानम**) महिमा को (**ओजसा**) अपने बल से (**विरप्शते**) बतलाता है, (**मघवा**) अन्न आदि का स्वामी (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु (**सयावभिः**) साथ रहने वाले (**देवैः**) मरुतों के साथ (**वृत्रम**) मेघ को (**जघन्वान्**) मारता है और (**वरेण्यः**) श्रेष्ठ (**अभवत**) होता है।

भावार्थ—आदित्य सोम के तत्व को धारण करता है। इस वायु की महिमा को अपने बल से बतलाता है। अन्न आदि का स्वामी वायु साथी मरुतों के साथ मेघ का वध करता है और श्रेष्ठ होता है ॥२॥

वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३॥

पदार्थ (**युधये**) लड़ने के लिए (**आयुधा**) वज्र आदि आयुधों को (**बिभ्रत**) धारण करता हुआ इन्द्र=वायु (**यत**) जो (**अहिना**) मारने योग्य (**वृत्रेण**) वृत्र=मेघ के साथ (**सम् अस्थिथाः**) सामना करता है वह (**आविदे**) जानकारी के लिए है, (**शंसम**) मैं यजमान प्रशंसा करता हूं। (**ते उग्र**) उस उग्र इन्द्र=वायु के (**इन्द्रियम**) इन्द्रत्व सम्बन्धी (**महिमानम**) महत्व को (**अत्र**) इस युद्ध काल में (**विश्वे**) सब (**मरुतः**) मरुत् लोग (**त्मना सह**) अपने साथ (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं।

भावार्थः—युद्धार्थ वज्र आदि आयुधों को धारण करता हुआ इन्द्र जो मारने योग्य मेघ के साथ सामना करता है वह सबके ज्ञान के लिए है। उसके महान् वृत्रवध कार्य को मैं यजमान प्रशंसा करता हूं। उसके इन्द्रत्वपने को मरुद्गण इस युद्धकाल में स्वयं बढ़ाते हैं ॥३॥

जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥४॥

पदार्थः (**वीरः**) बलवान् वह इन्द्र=वायु (**जज्ञानः**) पैदा होता हुआ (**एव**) ही (**स्पृधः**) मेघात्मक शत्रुओं को (**वि अबाधत**) पीड़ित करता है (**रणम**) रण को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**पौंस्यम**) अपने बल को (**प्र अपश्यत**) देखता है (**अद्रिम**) मेघ को (**अवृश्चद्**) काटता है (**सस्यदः**) बहती जलों को

(**अव सृजत्**) वर्षोन्मुख करता है और (**स्वपस्पया**) अपने कर्म की इच्छा से (**पृथुम्**) विस्तृत (**नाकम्**) द्यु लोक को (**अस्तभ्नात्**) धारण करता है ।

भावार्थः—इन्द्र=वायु उत्पन्न होता हुआ ही मेघरूपी शत्रुओं को पीड़ित करता है । इस रण को दृष्टि में रखता हुआ वह अपने बल को देखता है । मेघ को काटता है और बहने वाली जलों को वर्षणोन्मुख करता है । वह अपने कर्म से विस्तृत द्युलोक को धारण करता है ॥४॥

आदिन्द्रः सत्रा तविंषीरपत्यत वरींयो द्यावांपृथिवी अंबाधत ।
अवांभरद्धृषितो वज्रंमायसं शेवं मित्राय वरुंणाय दाशुषें ॥५॥

पदार्थः—(**आत्**) तथा (**इन्द्रः**) वायु (**तविषीः**) समस्त वेगवाली शक्तियों को (**सत्रा**) साथ ही (**अपत्यत**) प्राप्त करता है (**वरीयः**) महती महिमा से (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**अबाधत**) वृत्रयुद्ध में बाधित करता है, (**धृषितः**) प्रगल्भ वह (**मित्राय**) यजमान और (**वरुणाय**) पुरोहित के लिए (**शेवम्**) सुख (**दाशुषे**) देने के (**आयसम्**) विशेष गति वाले (**वज्रम्**) वज्र को (**अव अभरत्**) धारण करता है ।

भावार्थः—इन्द्र=वायु समस्त वेग वाली शक्तियों को साथ ही प्राप्त करता है और महती महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को वृत्रयुद्ध में बाधित करता है । प्रगल्भ वह यजमान और पुरोहित को सुख देने के लिए विशेष गति वाले वज्र को धारण करता है ॥५॥

इन्द्रस्यात्र तविंषीभ्यो विरप्शिनं ऋघायतो अंरंहयन्त मन्यवें ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृंश्चदोजंसापो बिभ्रंतं तमंसा परींवृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**अत्र**) इस युद्ध काल में (**विरप्शिनः**) शब्दायमान (**ऋघायतः**) मेघों को मारते हुए (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=वायु के (**तविषीभ्यः**) सेनाओं के (**मन्यवे**) प्रख्यापन के लिए (**अरंहयन्त**) जलें निकलने लगती हैं (**यत्**) जब (**तमसा**) अन्धकार से (**परीवृतम्**) आच्छादित (**अपः**) जलों को (**बिभ्रतम्**) पकड़े हुए (**वृत्रम्**) मेघ को (**उग्रः**) उग्र इन्द्र (**व्यवृश्चत्**) काटता है ।

भावार्थः इस युद्ध में शब्दायमान मेघों को मारते हुए इन्द्र की सेनाओं के प्रख्यापन के लिए जलें बाहर निकलने लगती हैं जब अन्धकार से आच्छादित और जल को न छोड़ने वाले मेघ को उग्र इन्द्र=वायु काटता है ॥६॥

या वीर्यांणि प्रथमानिं कर्त्वांं महित्वेभिर्यतंमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽवं दध्वसे हृत इन्द्रों मह्ना पूर्वहूंतावपत्यत ॥७॥

पदार्थ—(**महित्वेभिः**) मंहनीय अपने बलों से (**यतमानौ**) प्रयत्नशील न्द्र और वृत्र (**प्रथमानि**) पूर्वभावी (**या**) जो (**कर्त्वा**) करणीय (**वीर्याणि**) राक्रम हैं उनका (**समीयतुः**) संयोजन करते हैं, (**हते**) वृत्र के हत होने पर (**ध्वान्तम्**) घोर (**तमः**) अन्धकार (**अव दध्वसे**) ध्वस्त हो जाता है, (**इन्द्रः**) न्द्र (**मह्ना**) अपनी महिमा से (**पूर्वहूतौ**) प्रथम आह्वान में (**अपत्यत**) ाता है ।

भावार्थः—मंहनीय स्वकीय बलों से प्रयत्नशील इन्द्र और वृत्र अपने ाथमिक करणीय पराक्रम को संयोजित करते हैं । वृत्र=मेघ के मारे जाने र घोर अन्धकार ध्वस्त हो जाता है । इन्द्र अपनी महिमा से प्रथम ाह्वान में ही जाता है ॥७॥

विश्वें देवासो अध वृष्ण्यांनि तेऽवंर्धयन्त्सोमंवत्या वचस्ययां ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रंस्य हन्मंनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नंमावयत् ॥८॥

पदार्थः—(**विश्वे देवासः**) समस्त ऋत्विज् लोग (**अध**) अनन्तर (**ते**) इस इन्द्र के (**वृष्ण्यानि**) बलों को (**सोमवत्या**) सोम से युक्त (**वचस्यया**) स्तुति करने की इच्छा से (**अवर्धयन्**) बढ़ाते हैं, (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=वायु के (**हन्मना**) हनन साधन से (**रद्धम्**) हिंसित्त (**वृत्रम्**) जलके आवरक (**अहिम्**) मेघ को (**तृषु**) शीघ्र ही (**आ वयत्**) खा जाता है (**न**) जिस प्रकार (**अग्निः**) अग्नि (**जम्भैः**) अपने ज्वालाख्य दान्तों से (**अन्नम्**) अन्न को खाता है ।

भावार्थः—ऋत्विग् लोग इस इन्द्र के बलों को सोमयुक्त स्तुति की इच्छा से बढ़ाते हैं । वायु के हनन साधन से हिंसित जलावरक मेघ को वह वायु उसी प्रकार खा जाता है जिस प्रकार अग्नि अपने ज्वालामय दाढ़ों से अन्न को खा जाता है ॥८॥

भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वंभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोंचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुंरिं च दम्भयंञ्छ्रद्धामनस्या शृंणुते दभीतंये ॥९॥

पदार्थः—हे यजमान और ऋत्विग् लोगो ! (**दक्षेभिः**) वृद्धि हेतु (**ऋक्वभिः**) मन्त्रयुक्त (**सख्येभिः**) मैत्री योग्य (**वचनेभिः**) वचनों से (**सख्यानि**) मित्रता को लक्ष्य में रखकर (**भूरि**) बहुत बार (**प्रवोचत**) बोलो, (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु (**दभीतये**) मारने के लिए (**धुनिम**) कम्पनशील (**च**) और (**चुमुरिम**) जल को खा जाने वाले मेघ को (**दम्भयन्**) मारते हुए (**श्रद्धामनस्या**) सत्यधारक शक्ति से (**शृणुते**) सुनने का साधन होता है ।

भावार्थः—हे यजमान धौर ऋत्विग्जनो ! आप लोग वृद्धिकारक, मन्त्रमय, मैत्री योग्य वचनों को मित्रभाव को लक्ष्य में रखकर इन्द्र की बहुत वार प्रशंसा करो । वायु मेघों को मारने के हेतु कम्पनशील और जलों को खा जाने वाले मेघ का हनन करते हुए सत्य की धारिका शक्ति से यज्ञ में बोले गए वचनों को सुनने-सुनाने का साधन होता है ॥९॥

त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥१०॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू हमें (**पुरूणि**) बहुत (**स्वश्व्यानि**) उत्तम अश्व आदि से युक्त धनों को (**आ भर**) दे (**येभिः**) जिनसे युक्त (**निवचनानि**) स्तोत्रों को (**शंसन्**) कहता हुआ मैं (**मंसै**) आप की पूजा करूं, (**सुगेभिः**) उत्तम गन्तव्यों के साधन भूत उन धनों से (**विश्वा**) समस्त (**दुरिता**) दुरितों को (**तरेम**) तरें, हे भगवन् ! (**अद्य**) अब (**नः**) हमारे (**गाधम्**) प्रथित स्तोत्र को (**उर्विया**) महत्व के साथ (**सु**) सुष्ठुरूप से (**विद**) स्वीकार कर ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू हमें प्रभूत मात्रा में अश्व आदि से युक्त उत्तम धनों को प्रदान कर जिनसे युक्त मैं स्तोत्रों को बोलता हुआ आप की पूजा करूं । उत्तम गन्तव्यों के साधन भूत उन धनों से समस्त दुरितों को हम तैर जावें । हे भगवन् ! आप हमारे प्रथित स्तोत्रों को भली प्रकार स्वीकार करें ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११४

ऋषिः—१—१० सध्रिर्वैरूपो घर्मो वा तापसः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥
छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ जगती ॥
स्वरः—१—३, ५—१० धैवतः । ४ निषादः ॥

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥१॥

पदार्थः—(**घर्मा**) दीप्तिमान् अग्नि और आदित्य (**समन्ता**) दिशाओं को व्याप्त करते हुए (**त्रिवृतम**) तीनों लोकों की (**व्यापतुः**) व्यापन करते हैं (**मातरिश्वा**) वायु (**तयोः**) उन दोनों की (**जुष्टिम**) सेवा को (**जगाम**) प्राप्त होता है, (**दिधिषाणाः**) धारणशक्ति से युक्त (**देवाः**) रश्मियें (**दिवः**) द्युलोक के (**पयः**) जल को (**अवेपन्**) व्याप्त करती हैं अर्थात् वरसती हैं (**सहसामानम्**) सामों के सहित (**अर्कम**) सूर्य को (**विदुः**) प्राप्त करती हैं ।

भावार्थः—प्रदीप्त अग्नि और आदित्य दिशाओं को व्याप्त करते हुए तीनों लोकों को व्यापते हैं । वायु उन दोनों के सहयोग को प्राप्त होता है । धारण शक्ति वाली रश्मियें द्युलोक के जल को बरसाती हैं और सामों सहित सूर्य को प्राप्त करती हैं ॥१॥

तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥२॥

पदार्थः—(**तिस्रः**) तीन (**निर्ऋतीः**) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय गतियें (**देष्ट्राय**) भोग और अपवर्ग को देने के लिए (**उपासते**) प्रस्तुत हैं, (**दीर्घश्रुतः**) विशाल ज्ञान वाले (**वह्नयः**) धीरजन इनको (**विजानन्ति**) जानते हैं (**कवयः**) क्रान्तदर्शी लोग (**तासाम्**) इनके (**निदानम्**) कारण प्रकृति जीव और परमेश्वर को (**नि चिक्युः**) भली प्रकार जानते हैं (**याः**) जो (**परेषु**) उत्कृष्ट (**गुह्येषु**) गोपनीय गूढ (**व्रतेषु**) कर्मों में लगी हैं ।

भावार्थः—उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूपी तीनों क्रियायें इस जगत् में जीवों के भोग और अपवर्ग की सिद्धि के लिए प्रस्तुत हैं । विशाल ज्ञान वाले धीर लोग इनको जानते हैं । क्रान्तदर्शी लोग इनके कारण को भी जानते हैं कि जो ये उत्कृष्ट गूढ कार्यों में लगी हैं ॥२॥

चतु॑ष्कपर्दा यु॒वतिः॑ सु॒पेशा॑ घृ॒तप्र॑तीका व॒युना॑नि वस्ते ।
तस्यां॑ सु॒प॒र्णा वृष॑णा॒ नि षे॑दतु॒र्यत्र॑ दे॒वा द॑धि॒रे भा॑ग॒धेय॑म् ॥३॥

पदार्थः—(**चतुष्कपर्दा**) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूपी चार शिखाओं वाली वेदवाणी (**घृतप्रतीका**) ज्ञानमय प्रकाश से युक्त हुई (**सुपेशा**) उत्तम रूपों वाली (**युवतिः**) युवती के समान (**वयुनानि**) समस्त ज्ञानों को (**वस्ते**) आच्छादित करती है (**तस्याम**) उस वेदवाणी में (**वृषणौ**) शक्तिशाली (**सुपर्णा**) उत्तम ज्ञान गुण वाले जीवात्मा और परमात्मा (**निषेदतुः**) विराजते हैं (**यत्र**) जिसमें (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**भागधेयम**) अपने भाग को **दधिरे**) धारण करती हैं ।

भावार्थः—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूपी चार शिखायें जिनकी हैं ऐसी ज्ञानप्रकाश से युक्त वेदवाणी उत्तम रूपों वाली युवती के समान समस्त ज्ञान-विज्ञानों को आच्छादित करती है । उस वेद वाणी में शक्तिशाली ज्ञानगुण वाले जीवात्मा और परमात्मा विराजमान हैं और उसी में सारी दैवी शक्तियाँ अपना स्थान पाती हैं ।।३।।

एकः॑ सुप॒र्णः स स॑मु॒द्रमा वि॑वेश॒ स इ॒दं विश्वं॒ भुव॑नं॒ वि च॑ष्टे ।
तं पाके॑न॒ मन॑सापश्य॒मन्ति॑त॒स्तं मा॒ता रे॑ळ्हि॒ स उ॑ रेळ्हि मा॒तर॑म् ॥४॥

पदार्थः—(**एकः**) एक (**सः**) वह (**सुपर्णः**) सुपतन मध्यमस्थान वायु (**समुद्रम्**) अन्तरिक्ष में (**आ विवेश**) प्रविष्ट हो स्थित है, (**सः**) वह (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) भुवन को (**विचष्टे**) अपनी प्रवृत्तियों से प्रकाशमान करता है (**तम्**) उसको (**पाकेन**) परिपक्व (**मनसा**) मन से (**अन्तितः**) समीप में (**अपश्यम्**) मैं विद्वान् देखता हूं, (**तम्**) उसको (**माता**) जलों की निर्मात्री माध्यमिका वाक् (**रेल्हि**) प्राप्त करती है और (**सः**) वह (**मातरम्**) उस माध्यमिका वाक् को (**रेल्हि**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—एक शोभनगति माध्यमिक देव वायु अन्तरिक्ष में व्याप्त है । वह इस समस्त भुवन को अपनी प्रवृत्तियों से प्रकाशमान करता है । मैं विद्वान् उसको परिपक्व मन से जानता हूं । जलों की उत्पादिका माध्यमिका वाक् उसको प्राप्त करती है और वह उस माध्यमिका वाक् को प्राप्त करता है ।।४।।

सु॒प॒र्णं विप्राः॑ क॒वयो॒ वचो॑भि॒रेकं॒ सन्तं॑ बहु॒धा क॑ल्पयन्ति ।
छन्दां॑सि च॒ दध॑तो अध्व॒रेषु॒ ग्रहा॒न्त्सोम॑स्य मिमते॒ द्वाद॑श ॥५॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शी (**विप्राः**) मेधावी लोग (**सुपर्णम**) उत्तम ज्ञान वाले परमात्मा को (**एकम**) एक (**सन्तम्**) होते भी (**वचोभिः**) अपनी वाणियों और उसके नामों से उसे (**बहुधा**) बहुत नामों वाला (**कल्पयन्ति**) करते हैं (**च**) और (**अध्वरेषु**) अध्वरों में (**छन्दांसि**) सप्त छन्दों को (**दधतः**) धारण करते हुए (**सोमस्य**) सोम के (**द्वादश**) बारह (**ग्रहान्**) ग्रहण साधन भूत पात्रों को (**मिमते**) तैयार करते हैं ।

भावार्थः—क्रान्तदर्शी मेधावी लोग उत्तम ज्ञान वाले प्रभु को एक होते हुए भी अपनी वाणी = स्तुतियों वा वर्णनों तथा उस प्रभु के नामों से उसे विविध नामों वाला करते हैं । यज्ञों में सप्त छन्दों को धारण करते हुए सोम के बारह पात्रों को तैयार करते हैं ।।५।।

ष॒ट्त्रिं॒शाँश्च॑ च॒तुरः॑ क॒ल्पय॑न्त॒श्छन्दां॑सि च॒ दध॑त आद्वाद॒शम् ।
य॒ज्ञं वि॒माय॑ क॒वयो॑ मनी॒ष ऋ॑क्सा॒माभ्यां॒ प्र रथं॑ वर्तयन्ति ॥६॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शी लोग (**षट्त्रिशान्**) छत्तीस (**च**) और (**चतुरः**) चार इस प्रकार ४० ग्रहों को (**कल्पयन्तः**) सोम से पूरित करते हुए (**च**) और (**छन्दांसि**) गायत्री आदि छन्दों को (**आ द्वादशम्**) द्वादश संख्या वाले प्रडग से आरम्भ कर शस्त्र पर्यन्त स्तुत शस्त्र आदि रूपों में धारण करते हुए (**मनीषा**) बुद्धि से (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**विमाय**) निर्मित करके (**रथम्**) इस रमणीय यज्ञ को (**ऋक्सामाभ्याम्**) ऋक् और साम से (**प्रवर्तयन्ति**) संपादित करते हैं ।

भावार्थः—क्रान्तदर्शी लोग चालीस ग्रहों को सोम से पूर्ण करते हैं और गायत्री आदि छन्दों को प्रडग से लेकर शस्त्र पर्यन्त द्वादश पर्यन्त स्तुत शस्त्र आदि रूपों में धारण करते हुए बुद्धि से यज्ञ को निर्मित कर उसके भव्य एवम् रमणीय स्वरूप का ऋक और नाम से संपादन करते हैं ।।६।।

चतु॑र्दशा॒न्ये म॑हि॒मानो॑ अस्य॒ तं धीरा॑ वा॒चा प्र ण॑यन्ति स॒प्त ।
आप्ना॑नं ती॒र्थं क इ॒ह प्र वो॑च॒द्येन॑ प॒था प्र॒पिब॑न्ते सु॒तस्य॑ ॥७॥

पदार्थः—(**अन्ये**) दूसरी (**चतुर्दश**) चौदह (**महिमानः**) विभूतियां (**अस्य**) इस यज्ञ की हैं, (**तम**) उस यज्ञ को (**सप्त**) सात (**धीराः**) धीमान् होता आदि (**वाचा**) वाणी से (**प्र नयन्ति**) प्रकृष्ट रूप में सम्पन्न करते हैं (**आप्रानम्**) चात्वाल और उत्कर के मध्य व्याप्त (**तीर्थम**) सोम पीने के मार्ग को (**इह**) यहां पर (**कः**) कौन (**प्रवोचत्**) बतावे (**येन**) जिस (**पथा**) मार्ग से (**सुतस्य**) अभिषुत सोम को (**प्र पिवन्ते**) देव लोग पीते=ग्रहण करते हैं ।

भावार्थः—दूसरी भी यज्ञ की चौदह विभूतियां है । इस यज्ञ को बुद्धिमान् होता आदि सात ऋत्विग् वेदवाणी से सम्पन्न करते हैं । चात्वाल और उत्कर के मध्यवर्ती तीर्थ=सोम पीने के मार्ग को यहां पर कौन बता सकता है कि जिससे देव लोग सोम का ग्रहण करते हैं । अर्थात् यज्ञविज्ञान कुशल ही बता सकता है ॥७॥

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥८॥

पदार्थः—(**सहस्रधा**) सहस्रों सूक्तों वाले अथवा सहस्रों प्रकार के मन्त्रों वाले होते हुए भी (**उक्था**) वैदिक सूक्त (**पञ्चदश**) पन्द्रह प्रकार के हैं (**तत्**) वह ब्रह्म (**तावत् इत्**) उतना हैं (**यावत्**) जितने में (**द्यावा पृथिवी**) प्रकाशमान और अप्रकाशमान सभी लोक लोकान्तर स्थित हैं, (**सहस्रधा**) प्रभूत शक्तियों वाला है वह और (**सहस्रम्**) प्रभूत तथा प्रचुर हैं (**महिमानः**) उसकी महिमा (**यावद्**) जितना (**विष्टितं**) व्यापक है (**ब्रह्म**) परमेश्वर (**तावती**) उतनी है (**वाक्**) वेदवाणी ।

भावार्थः—सहस्रों सूक्तों वाले अथवा सहस्रों मन्त्रों वाले होते हुए भी वैदिक उक्थ पन्द्रह प्रकार के हैं । वह परमेश्वर उतना व्यापक है जितने में प्रकाशमान और अप्रकाशमान सभी लोक लोकान्तर और आकाश स्थित है । वह प्रभूत शक्तियों वाला है तथा उसकी महिमा बहुत है । जितना व्यापक वह है उतनी ही उसकी वेदवाणी है ॥८॥

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥९॥

पदार्थः—(**कः**) कौन (**धीरः**) धीमान् (**छन्दसाम्**) छन्दों=वैदिक छन्दों के (**योगम्**) प्रयोग वा विनियोग को (**आ वेद**) जानता है, (**कः**) कौन

(**धिष्ण्याम्**) होता आदि के सात स्थानों तथा तदनुसारी (**वाचम्**) वाणी को (**प्रति पपाद**) प्रतिपादित करता है, (**कः**) कौन (**ऋत्विजाम्**) ऋत्विजों के मध्य (**अष्टमम्**) आठवें (**शूरम्**) पूरक को किसको (**आहुः**) कहते हैं (**कः स्वित्**) कौन (**इन्द्रस्य**) इन्द्र के (**हरी**) ऋक् और साम रूपी दो अश्वों को (**नि चिकाय**) जानता है ।

भावार्थः—वैदिक छन्दों के विनियोग को कौन जानता है ? कौन सप्त होता ऋत्विजों को स्थान और उनके कार्यों को प्रतिपादित करता है? कौन ऋत्विजों के मध्य आठवां पूरक कौन हो इसको जानता है ! और कौन ऋक् और साम रूप इन्द्र के अश्वों को जानता है ? याज्ञिक ही इसे जानता है ॥९॥

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥१०॥

पदार्थः (**एके**) कई अश्व=किरणें (**भूम्याः**) महान् द्युलोक के (**अन्तम्**) पर्यन्तों में (**परिचरन्ति**) विचरती हैं, (**ये**) जो (**रथस्य**) सूर्य मण्डल की (**धूर्षु**) धुरी में (**युक्ता**) जुड़े (**अस्थुः**) स्थित होते हैं (**यदा**) जब (**यमः**) सूर्य (**हर्म्ये**) अपने स्थान द्युलोक में (**हितः**) निहित (**भवति**) होता है तब देवगण (**एभ्य**) इन के लिए (**श्रमस्य**) परिश्रम के (**दायम्**) दूर करने अर्थात् शक्ति को बराबर कायम रखने के लिए बल को (**विभजन्ति**) वितरित करते हैं ।

भावार्थः—कई किरणें महान् द्युलोक के पर्यन्त भागों तक विचरती हैं । ये ही सूर्य मण्डल की धुरा में जुडी हुई होती हैं । जब सूर्य द्युलोक में निहित होता है तब इनकी शक्ति को बढ़ाने और कायम रखने के लिए देव गण=दिव्य शक्तियां बल प्रदान करती हैं ॥१०॥

सूचना—इस सूक्त में यज्ञ के विज्ञान का विशेष वर्णन है । इसका ज्ञान प्रत्येक को रखना चाहिये और यज्ञ-प्रक्रिया में जो परिभाषायें पाई जाती हैं उनका भी आधार यह सूक्त है । इन विशिष्ट परिभाषाओं को समझकर यह भी समझना चाहिए कि वेद का ज्ञान अनन्त है तथा ब्रह्म स्वयं अनन्त है ।

यह दशम मण्डल में एकसो चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११५

ऋषिः—१—९ उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ४, ७ विराड्जगती । ३ जगती । ५ आर्चीभुरिग्जगती । ६ निचृज्जगती । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृच्छक्वरी ॥ स्वरः—१—७ निषादः । ८, ९ धैवतः ॥

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं१ चरन् ॥१॥

पदार्थः—(**शिशोः**) शिशुभूत (**तरुणस्य**) तरुण=नूतन अग्नि की (**वक्षथः**) वहन शक्ति (**चित्रः**) अद्भुत (**इव**) ही है (**यः**) जो (**धातवे**) स्तनपान के लिए (**मातरौ**) द्यु और पृथिवी लोक को (**न अप्येति**) नहीं जाता है, (**यदि**) यदि (**अनूधाः**) स्तनरहित इस पृथिवी और द्युलोक ने (**जीजनत्**) उत्पन्न किया है तो फिर ठीक है, परन्तु ऐसा नहीं (**अध च**) और (**नु**) निश्चय (**सद्यः**) उत्पन्न होते ही यह अग्नि (**महि**) महान् (**दूत्यम्**) दूत कर्म को (**चरन्**) करता हुआ देवों के प्रति हवि को (**ववक्ष**) ले जाता है ।

भावार्थः—शिशुभूत नवीन इस अग्नि की वहनशक्ति अद्भुत ही है कि यह स्तन पान के लिए द्यु और पृथिवी लोक को नहीं जाता है। यदि विना स्तन वा दुग्ध वालों ने उसे उत्पन्न किया है अतः वह नहीं जाता है ऐसा भी नहीं है । उत्पन्न होते ही यह अग्नि महान् दूत कर्म को करते हुए देवों के लिए हवि वहन करता है ॥१॥

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥२॥

पदार्थः—(**अपस्तमः**) कर्मवत्तम (**अग्निः**) अग्नि (**नाम**) नाम (**धायि**) दिया गया है (**दन्**) यजमानों को धन आदि देता हुआ (**यः**) जो (**भस्मना**) भासक तेज से (**दता**) दांत से (**वना**) काष्ठों को (**संयुवते**) संयुक्त हो जलाता है (**अभि प्रमुरा**) हवि से संवेष्टित (**जुह्वा**) जुहू से (**स्वध्वरः**) शोभन यज्ञों वाला यह अग्नि उसी प्रकार हवि आदि को ग्रहण करता है (**न**) जिस प्रकार (**इनः**) समर्थ (**प्रोथमानः**) पुष्टांग (**वृषा**) बैल (**यवसे**) घास में प्रवृत्त होता है ।

भावार्थः—इसे कर्मवत्तम अग्नि नाम दिया गया है । यह यजमानों के लिए धन आदि का दाता है । भासक तेज से और दांत से यह काष्ठों को जला देता है । हवि से संवेष्टित जुहू से यह अग्नि उसी प्रकार हवि आदि को ग्रहण करता है जिस प्रकार समर्थ पुष्टाङ्ग बैल घास आदि में प्रवृत्त होता है ॥२॥

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वन्हिं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥३॥

पदार्थः—हे स्तोता लोगो ! (**वः**) आप (**द्रुसदम्**) काष्ठ अरणि में विद्यमान, (**देवम्**) द्योतन शील (**अन्धसः**) यजमान के अन्न के (**इन्दुम्**) सेचन करने वाले, (**प्रोथन्तम्**) शब्दायमान (**प्रवपन्तम्**) दाहक (**अर्णवम्**) उदक वाले (**आसा**) देवों के समीप (**वह्निम्**) वृषभ के (**न**) समान हवि के वाहक (**शोचिषा**) दीप्ति से (**विरप्शिनम्**) महान् (**महिव्रतम्**) महाकर्मा आदित्य के (**न**) समान (**अध्वनः**) मार्गों के (**सरजन्तम्**) प्रकाशक (**तम्**) उस अग्नि की (**विम् न**) पक्षी के समान प्रशंसा करो ।

भावार्थः हे स्तोता लोगो ! आप काष्ठ की अरणियों में विद्यमान द्योतनशील अन्न के सेचक, शब्दायमान, दाहक, उदकवान्, देवों के समीप वृषभ की तरह हवि ले जाने वाले, दीप्ति से महान्, महाकर्मा आदित्य के समान मार्गं के प्रकाश और पक्षी के समान गतिशील अग्नि की प्रशंसा करो ॥३॥

वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥४॥

पदार्थः—(**अजर यस्य**) अजर जिस (**ज्रयसानस्य**) गतिशील (**ते**) उस (**धक्षोः**) दाहक अग्नि के (**अच्युताः**) न च्युत होने वाले प्रभाव (**वाता न**) वायुओं के समान (**वि परि सन्ति**) सर्वत्र विद्यमान होते हैं (**युयुधयः न**) योद्धाओं के समान (**रण्वासः**) शब्दायमान ऋत्विग् लोग (**इष्टये**) याग के लिए (**प्रशिषन्तः**) चाहते हुए (**सत्वनम्**) बलवान् (**त्रितम्**) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में विद्यमान अग्नि को (**आ नशन्त**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—अजर, गतिशील, दाहक अग्नि के न च्युत होने वाले प्रभाव वायुओं की तरह सर्वत्र विद्यमान होते हैं । योद्धाओं के समान शब्दायमान

ऋत्विग् लोग याग के लिए चाहते हुए तीन=पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में विद्यमान अग्नि को प्राप्त करते हैं ॥४॥

स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखार्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ॥५॥

पदार्थः—(**कण्वतमः**) अत्यन्त शब्दकारी, (**कण्वसखः**) ऋत्विजों का मित्र (**अर्यः**) स्वामी (**स इत**) वह ही (**अग्निः**) अग्नि (**परस्य**) बाह्य और (**अन्तरस्य**) आन्तरिक बाधाओं का (**तरुषः**) विनाशक होता है (**अग्निः**) अग्नि (**गृणतः**) स्तोताओं की (**पातु**) रक्षा करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**सूरीन्**) यजमानों की रक्षा करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**तेषाम्**) उन इन (**न**) हम लोगों को (**अवः**) रक्षण और अन्न (**ददातु**) देता है ।

भावार्थः—अत्यन्त शब्दकारी, ऋत्विजों का मित्र, गतिशील वह ही अग्नि बाह्य और आन्तरिक बाधाओं का विघातक है । अग्नि स्तोताओं की रक्षा करता है, वही यजमानों की रक्षा करता है और वही उन इन हम सवों को रक्षण और अन्न देता है ॥५॥

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ॥६॥

पदार्थः—(**सुपित्र्य**) उत्तम किरणों वाले, (**वाजिन्तमाय**) अतिशय अन्न आदि से युक्त (**सह्यसे**) शत्रुनाशक (**अनुद्रे**) आपत्ति में (**धृषता**) शत्रुधर्षक (धन्वना इत्) निज बल से (**अविष्यते**) रक्षा करने वाले (**सते**) भूष्णु (**महिन्तमाय**) दातृतम (**जातवेदसे**) अग्नि को (**तृषु**) शीघ्र (**अनुच्यवानः**) उद्युक्त (**यः**) जो मैं (**वरम्**) वरणीय हवि प्रदान करता हूं ।

भावार्थः—उत्तम रश्मियों वाले, अन्न आदि के अतिशय दाता, शत्रु के नाश के साधन, आपत्ति में निज बल से रक्षा करने वाले, बहुत से लाभों के दाता अग्नि को यज्ञ में प्रवृत्त हुआ मैं हवि प्रदान करता हूं ॥६।

एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान् ॥

पदार्थः—(**सहसः**) बल का (**सुनरः**) सूनु = पुत्र (**अग्निः**) अग्नि (**एव**) इस प्रकार (**नृभिः**) कर्म के नेता (**मर्तैः**) मनुष्यों के साथ (**सूरिभिः**) विद्वानों से (**वसुः**) धन आदि साधनों को लक्ष्य में रखकर (**स्तवे**) प्रशंसा किया जाता है, (**मित्रासः न**) मित्रों के समान (**सुधिताः**) सुहित (**ऋतायवः**) यज्ञ की कामना करने वाले विद्वान् लोग (**द्यावः न**) द्योतमान के समान (**द्युम्नैः**) यशों से (**मानुषान्**) सर्वसाधारण मनुष्यों का (**अभि सन्ति**) अतिक्रमण कर जाते है ।

भावार्थः—बल का पुत्र अत्यन्त बलशाली अग्नि इस प्रकार कर्म के नेता मनुष्यों के साथ विद्वानों से धन आदि साधनों को लक्ष्य में रखकर प्रशंसा से युक्त किया जाता है । मित्रों के समान उत्तम हितकारी, यज्ञ की कामना करने वाले विद्वान् लोग द्योतमान पदार्थों के समान अपने यशों से सर्व साधरण से ऊपर उठ जाते हैं ॥७॥

ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥८॥

पदार्थः—(**ऊर्जः**) शक्ति का (**नपात्**) अपत्य (**सहसावन्**) तेजस्वी है यह अग्नि (**इति**) इस प्रकार (**त्वा**) इस अग्नि को (**उपस्तुतस्य**) स्तुति कर्ता यजमान की (**वृषा**) हवि और घी की वर्षा करने वाली (**वाक्**) वाणी (**वन्दते**) इसके गुणों की वन्दना = प्रशंसा करती है (**द्राघीयः**) लम्बी (**आयु**) आयु को (**प्रतरम्**) निरन्तर (**दधानाः**) धारण करते हुए हम (**त्वाम्**) इस अग्नि की (**स्तोषाम्**) प्रशंसा करते हैं और (**त्वया**) इसके द्वारा (**सुवीराः**) उत्तम सन्तानों वाले होवें ।

भावार्थः—शक्ति का अपत्य और तेजस्वी है यह अग्नि ऐसा जान कर इस अग्नि की स्तावक यजमान की हवि घृत आदि से युक्त वाणी प्रशंसा करती है । हम सब लम्बी आयु को सदा धारण करते हुए इस अग्नि का गुणगान करते हैं और इसके द्वारा हम भगवान् की कृपा से उत्तम सन्तानों वाले होवें ॥८॥

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
ताँश्च पाहि गृणतश्च सूरीन्वषड्वषळित्यूर्ध्वासो
अनक्षन्नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥९॥

पदार्थः–(**इति**) इस प्रकार (**अग्ने त्वा**) इस अग्नि के विषय में (**वृष्टिहव्यस्य**) वृष्टि के लिए यज्ञ करने वाले अथवा वर्षाकाल में यज्ञ करने वाले विद्वान् वेदज्ञ के (**पुत्रासः**) पुत्र (**उपस्तुतासः**) स्तावक (**ऋषयः**) मन्त्रद्रष्टा लोग (**अवोचन्**) वार्ता करते हैं (**तान् च**) उनकी (**पाहि**) यह अग्नि रक्षा करता है (**गृणतः सूरीन् च**) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों की (**पाहि**) रक्षा करता है (**वषड् वषड् इति**) यज्ञों को करके (**ऊर्ध्वासः**) ऊंचे उठे हुए इस अग्नि को (**अनक्षन्**) प्राप्त करते हैं और (**नमः नमः इति**) अन्न आदि से (**ऊर्ध्वासः**) उत्कृष्ट होकर (**अनक्षन्**) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—इस प्रकार इस के विषय में वृष्टि के लिए एवम् बर्षाकाल में यज्ञ करने वाले वेदज्ञ विद्वान् के पुत्र स्तावक मन्त्रद्रष्टा लोग चर्चा वार्ता करते हैं। उनकी यह अग्नि रक्षा करता है। वह यज्ञों के करने वाले और अन्न आदि से अग्नि को तृप्त करने वाले दोनों की रक्षा का साधन बनता है ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसो पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ११६

ऋषिः—१—९ अग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः ॥ देवता—इन्द्रः ॥
छन्दः—१, ८, त्रिष्टुप् । २ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ **निचृत्त्रिष्टुप् ।**
५, ७ विराट्त्रिष्टुप् । ६ **आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । स्वरः—**
धैवतः ॥

पिबा सोमँ महतः इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥१॥

पदार्थः–(**इन्द्रः**) यह इन्द्र=सूर्य (**महते**) महान् (**इन्द्रियाय**) इन्द्रत्व की प्राप्ति के लिए (**सोमम्**) सोमतत्त्व का (**पिबा**) पान करता है, (**शविष्ठ**) शक्तिशाली यह (**वृत्राय**) वृत्र=मेघ के (**हन्तवे**) मारने के लिए सोम को (**पिब**) पीता है, तथा (**हूयमानः**) प्रशंसनीय यह (**शवसे**) अन्न और (**राये**) धन के देने के लिए सोम का (**पिब**) पान करता है, (**मध्वः**) मधुर रसों को (**पिब**) पीता है (**तृपव**) तृप्ति प्राप्त करता हुआ (**आ वृषस्व**) ऐश्वर्यों की वृष्टि करता है ।

भावार्थः–यह इन्द्र=सूर्य महान् इन्द्रत्व की प्राप्ति के लिए सोमतत्त्व=जल आदि रसों का पान करता है, मेघ के वध के लिए पान करता है, प्रशंसनीय यह अन्न और धन प्रदानार्थ सोम का पान करता है। मधुर रसों का पान करता है। तृप्ति प्राप्त करता हुआ। दृष्टि तथा अन्य ऐश्वर्यों की वर्षा करता है ॥१॥

अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) यह सूर्य (**क्षुमतः**) अन्नमिश्रित, (**प्रस्थितस्य**) हविर्धान से उत्तर वेदि की तरफ प्रस्थापित (**आ सुतस्य**) चुआये गए (**अस्य**) इस (**सोमस्य**) सोमरस के (**वरम्**) उत्तम अंश को (**पिब**) पीता है, (**स्वस्तिदाः**) सुख का दाता, (**अर्वाचीनः**) अभिमुख होने वाला यह (**रेवते**) धनयुक्त (**सौभगाय**) सौभाग्य के लिए हमें (**मनसा**) अपनी शक्ति से (**मादयस्व**) हर्षित करता है ।

भावार्थः—यह सूर्य अन्नमिश्रित एवम् हविर्धान से उत्तर वेदि की तरफ स्थापित, चुआये गए इस सोम रस के उत्तम अंश को ग्रहण करता है। वह सबका कल्याणदाता है और धनयुक्त सौभाग्य के लिए हमें अपनी शक्ति से सुखी करता है ॥२॥

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥३॥

पदार्थः—(**दिव्यः**) द्युलोक में उत्पन्न (**सोमः**) सोम (**त्वा**) इस (**इन्द्रः**) इन्द्र को (**ममत्तु**) तृप्त करता है (**यः**) जो सोम (**पार्थिवेषु**) पार्थिव स्थानों में (**सूयते**) तैयार किया जाता है वह (**ममत्तु**) तृप्त करता है, (**येन**) जिससे (**वरिवः**) प्रशस्त धन (**चकर्थ**) यह सूर्य करता है वह भी (**ममत्तु**) इससे तृप्त करता है, (**येन**) जिस सोम के द्वारा (**शत्रून्**) मेघ आदिकों को (**निरिणासि**) निकाल फेंकता है वह सोम भी (**ममत्तु**) इसकी तृप्ति करता है ।

भावार्थः—द्यु लोक में उत्पन्न सोम इस सूर्य को प्राप्त होता है, जो पृथिवी पर तैयार किया जाता है वह भी इसे प्राप्त होता है, जिससे उत्तम

घन आदि की उत्पत्ति का कार्य यह सूर्य करता है वह भी इसे प्राप्त होता है और जिनसे मेघ को मारता है वह सोम भी इसे प्राप्त है ॥३॥

आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥४॥

पदार्थः (**द्विवर्हाः**) द्यु और पृथिवी इन दोनों का धारण करने वाला (**अमिनः**) सर्वत्र गमन करने वाला (**वृषा**) वर्षा का कारणभूत (**परिषिक्तम्**) परिषिक्त (**अन्धः**) सोम के प्रति (**हरिभ्याम्**) धारण और आकर्षण अथवा रसादान और रस प्रदान गुणों से (**यातु**) जाता है (**गवि**) पृथिवी पर (**आसुतस्य**) चुआये गए (**प्रभृतस्य**) पात्रों में रखे (**मध्वः**) सोम के पान से (**सत्रा**) हमारे यज्ञ में प्राप्त होता है और (**अरुशहा**) मेघ का विनाशक वह (**खेदाम्**) किरणों को (**आ वृषस्व**) बरसाता है ।

भावार्थः—दोनों लोकों का धारक सर्वत्रगामी वर्षा का हेतुभूत सूर्य परिषिक्त सोम के प्रति रसादान और इस प्रदान गुणों के साथ प्राप्त होता है । पृथिवी पर तैयार किये गए, पात्रों में रखे सोम के पान से हमारे यज्ञ में प्राप्त होता है । मेघों का विनाशक वह किरणों को बरसाता है ॥४॥

नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥५॥

पदार्थः- यह इन्द्र=सूर्य (**भ्राश्यानि**) प्रकाशमान (**तिग्मानि**) तीक्ष्ण किरणों को (**भ्राशयन्**) अति प्रकाशमान करता हुआ (**यातुजूनाम्**) यातुधान= रोगकारी जन्तुओं के (**स्थिरा**) दृढ़ शरीरों को (**अवतनुहि**) क्षीण करता है (**ते उग्राय**) इस उग्र सूर्य के लिए इस कार्य में मैं विद्वान् (**सहः**) घातक (**बलम्**) हविरूप बल को (**ददामि**) देता हूँ, यह (**शत्रून्**) शत्रुभूत रोगाणुओं के (**प्रतीत्य**) प्रति जाकर (**विगदेषु**) स्वास्थ्यकारी प्रवृत्तियों में उन्हें (**वृश्च**) काटता है ।

भावार्थः- सूर्य प्रकाशमान तीक्ष्ण किरणों को अति प्रकाशमान और तीक्ष्ण करता हुआ रोगकारक जन्तुओं के दृढ़ शरीरों को क्षीण करता है। इस उग्र सूर्य के लिए इस कार्य में मैं विद्वान् घातक हवि रूप बल को यज्ञ-माध्यम से देता हूँ । इस स्वास्थ्य प्रदान की अपनी प्रवृत्तियों में सूर्य रोगाणुओं के प्रति प्राप्त होकर उन्हें मारता है ॥५॥

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥६॥

पदार्थः—(**अर्यः इन्द्रः**) सब का स्वामी इन्द्र=सूर्य (**श्रवांसि**) अन्न आदि को (**वितनुहि**) बढ़ाता है, (**ओजः**) अपने ओज से **अभिमातीः**) शत्रुभूत मेघों के प्रति (**स्थिरा इव**) स्थिर आयुधों की भांति (**धन्वनः**) अन्तरिक्ष सम्बन्धी शक्तियों को विस्तृत करता है, (**अस्मद्र्यक्**) हमारे समक्ष हुआ (**अनिभृष्टः**) अपरिभवनीय वह (**सहोभिः**) तेजों से (**वावृधानः**) बढ़ता हुआ (**तन्वम्**) अपने कलेवर को (**ववृधस्व**) बढ़ाता है ।

भावार्थः – सब ग्रहों का स्वामी वह सूर्य अन्न आदि की वृद्धि का कारण बनता है । अपने ओज से शत्रुभूत मेघों के प्रति स्थिर आयुधों की भांति अन्तरिक्ष सम्बन्धी शक्तियों और प्रवृत्तियों को विस्तृत करता है । हमारे समक्ष हुआ अपरिभवनीय वह तेजों से बढ़ता हुआ अपने कलेवर को बढ़ाता है ॥६॥

इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वो३द्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥७॥

पदार्थः—(**इदम्**) यह (**रातम्**) हमारे द्वारा प्रदत्त (**हविः**) हवि (**मघवन् तुभ्यम्**) इस धनों के स्वामी इन्द्र=सूर्य के लिए है, (**सम्राट्**) सम्यक् राजमान (**अहृणानः**) विना संकोच (**प्रति गृभाय**) ग्रहण करता है (**मघवन् इन्द्र तुभ्यम्**) इस मघवान् इन्द्र के लिए (**सुतः**) सोम तैयार हैं, (**तुभ्यम्**) इसके लिए (**पक्वः**) पुरोडाश आदि पाक होते हैं, यह (**अद्धि**) खाता है (**च**) और (**प्रस्थितस्य**) पात्र में रखे हुए सोम का (**पिब**) पान करता है ।

भावार्थः – यह हमारे द्वारा प्रदत्त हवि धनों के स्वामी सूर्य के लिए है। वह सम्यक् प्रकाशमान विना संकोच इसे ग्रहण करता है । इसके लिए सोम अभिषुत होता है, इसके लिए पुरोडाश पकाया जाता है । यह इनको खाता और पीता है । अर्थात् यह ग्रहण करता है ॥७॥

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) यह सूर्य (**प्रस्थिता**) उत्तर वेदि के प्रति स्थापित (**इमा**) इन (**हवींषि**) हवियों को (**अद्धि इव**) अग्नि के माध्यम से खाता है (**धानाः**) अन्न को (**दधिष्व**) धारण करता है (**उत**) और (**सोमम्**) सोम को पीता है (**पचता**) पके पुरोडाश आदि को खाता है। हम लोग (**प्रयस्वन्तः**) अन्न वाले होकर (**त्वा**) इसके (**प्रति हर्यामसि**) चाहते हैं। (**यजमानस्य**) यजमान की (**कामाः**) कामनायें (**सत्याः**) सत्य (**सन्तु**) होवें।

भावार्थः—यह सूर्य उत्तर वेदि के प्रति स्थापित इन हवियों को अग्नि के माध्यम से खाता है, अन्न को धारण करता है, सोम को पीता है और पुरोडाश आदि को ग्रहण करता है। हम अन्न आदि से सम्पन्न होकर इस इन्द्र की कामना करते हैं। यजमान के चाहे हुए मनोरथ पूरे हो ॥८॥

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अयाइव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥९॥

पदार्थः—मैं यजमान (**इन्द्राग्नीभ्याम्**) सूर्य और अग्नि के लिए (**सुवचस्याम्**) उत्तम प्रशंसा वचन की (**प्र इयर्मि**) प्रेरणा करता हूँ, (**सिन्धौ**) नदी में (**नावम्**) नौका की (**इव**) भांति (**अर्कैः**) मन्त्रों से (**प्रेरयम्**) प्रेरित करता हूँ, वे (**देवाः**) देव लोग (**अयाः इव**) ऋत्विजों अथवा कर्मकरों की (**इव**) भांति (**परिचरन्ति**) हमारी धनादि से परिचर्या करते हैं (**ये**) जो (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**धनदाः**) धन देने वाले (**च**) और (**उद्भिदः**) हमारे विघ्न-बाधाओं के उद्भेदक हैं।

भावार्थः—मैं यजमान सूर्य और अग्नि की प्रशंसा में उत्तम वचनों का प्रयोग करता हूं जिस प्रकार नदी में नौका को प्रेरित किया जाता है उसी प्रकार मन्त्रों से इनका वर्णन करता हूं। वे देव लोग ऋत्विजों की भांति धन आदि के प्रदान से हम पर अनुग्रह करते हैं जो कि हमारे लिए धन दाता और हमारी विघ्न बाधाओं के विघातक हैं ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसो सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ११७

ऋषिः १—९ भिक्षुः ॥ देवता धनान्नदानप्रशंसा ॥ छन्दः—१
निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती । ३, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४,
६ त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक्त्रिष्टुए् ॥ स्वरः—
१–२ निषादः । ३ - ९ धंवतः ॥

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

पदार्थः—(**देवाः उ**) देवों ने (**वै**) निश्चय ही सब को (**क्षुधम्**) भूख (**न इव**) नहीं (**ददुः**) दी है अपितु (**वधम्**) मौत दी है (**उत**) और (**आशितम्**) खाने वाले को भी (**मृत्यवः**) मृत्युयें (**उप गच्छन्ति**) प्राप्त होती हैं, (**उतो**) और (**पृणतः**) देने वाले का (**रयिः**) धन (**न**) नही (**उपदस्यति**) नष्ट होता है (**उत**) और (**अपृणन्**) न देने वाला (**मर्डितारम्**) सुख देने वाले को (**न**) नहीं (**विन्दते**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—दैवी शक्तियों ने निश्चय ही सबको भूख नहीं, अपितु मौत दी है और खाने को भी मौत आती है। देने वाले का धन क्षीण नही होता है और अदाता कभी सुख देने वाले व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता है ॥१॥

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**अन्नवान्**) अन्न वाला अथवा अन्न का स्वामी धनी (**आध्राय**) दुर्बल (**पित्वः**) अन्न को (**चकमानाय**) चाहने वाले (**रफिताय**) दरिद्रता से पीड़ित (**उपजायुषे**) गृह पर याचनार्थ आये हुए के लिए न देने में (**मनः**) मन को (**स्थिरम्**) दृढ़ (**कृणते**) कर लेता है (**पुरा**) सामने (**चित्**) ही उत्तम वस्तुओं का (**सेवते**) सेवन करता है (**सः**) वह अपने को (**मर्डितारम्**) सुख देने वाले को (**न**) नहीं (**विन्दते**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—जो धन और अन्न का स्वामी दुर्बल, अन्न को चाहने वाले और दारिद्रय से पीड़ित तथा गृह पर जाकर आवश्यकता की पूर्ति के लिए याचना करने वाले को कुछ न देने के विषय में मन को दृढ़ कर लेता है वह अपने को सुखी करने वाले को नहीं प्राप्त करता है ॥२॥

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**इत्**) ही (**भोजः**) दाता है (**यः**) जो (**गृहवे**) प्रतिगृहीता, (**अन्नकामाय**) अन्न चाहने वाले (**चरते**) घर पर आकर याचना करने वाले (**कृशाय**) अभाव से पीड़ित के लिए (**ददाति**) देता है (**अस्मै**) उस के लिए (**यामहूतौ**) इस दान क्रिया रूपी यज्ञ में (**अरम्**) पर्याप्त फल (**भवति**) होती है, अथवा लोगों की सभा में पर्याप्त सम्मान मिलता है (**उत**) और (**अपरीषु**) अन्य विरोधी वर्गों में भी (**सखायम्**) मित्र (**कृणुते**) बना लेता है।

भावार्थः—वह ही दाता है जो अर्थी, अन्न चाहने वाले, घर पर आकर याचना करने वाले, अभाव पीड़ित के लिए देता है। इस दाता को जल और विद्वानों के मध्य पर्याप्त सम्मान मिलता है और वह अन्य विरोधी वर्गों में भी अपना मित्र बना लेता है ॥३॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत ॥४॥

पदार्थः—(**न**) नहीं है (**सः**) वह (**सखा**) सखा (**यः**) जो (**सचाभुवे**) साथी (**सचमानाय**) सेवा करने के लिए समय पर तत्पर (**सख्ये**) मुसीवत में पड़े मित्र के लिए (**पित्वः**) अन्न आदि आवश्यक वस्तुओं को (**न**) नहीं (**ददाति**) देता है (**अस्मात्**) इस अदाता के पास से (**अप प्र इयात्**) अर्थी मित्र विना कुछ पाए वापस जाता है तो फिर (**तत्**) वह (**ओकः**) घर (**न**) नहीं (**अस्ति**) है, (**सः**) वह वापस गया अर्थी सखा (**अन्यम्**) दूसरे (**पृणन्तम्**) दाता (**अरणम्**) धन के स्वामी को (**चित्**) भी (**इच्छेत्**) चाह सकता है।

भावार्थः—वह सखा सखा नहीं है जो साथी, समय पर काम में आने वाले सखा के लिए अन्न आदि आवश्यकता की वस्तुओं को नहीं देता है। यदि उस अदाता के पास से वह अर्थी मुसीवत में पड़ा मित्र वापस जाता है तो वह घर घर नहीं है। वह निराश हुआ मित्र दूसरे दाता धन के स्वामी के पास भी जा सकता है ॥४॥

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५॥

पदार्थः—(**तव्यान्**) धन आदि से प्रवृद्ध मनुष्य को (**इत्**) भी चाहिए कि (**नाधमानाय**) याचना करने वाले को (**पृणीयात्**) धन देवे, (**द्राघीयांसम्**) दीर्घतम (**पन्थाम्**) व्यवहार और सुकृत के मार्ग को (**अनुपश्येत**) देखे, (**ओ हि**) अरे (**रायः**) ये धन तो (**रथ्या चक्रा**) रथ के पहिये के (**इव**) समान (**वर्तन्ते**) होते हैं और (**अन्यम् अन्यम्**) दूसरे से दूसरे के पास (**उपतिष्ठन्ते**) ठहरते हैं।

भावार्थः—धन से बढ़े हुए व्यक्ति को भी चाहिए कि वह याचना करने वाले को धन देवे और व्यवहार तथा परमार्थ के दीर्घतम मार्ग को देखे। अरे !! ये धन तो रथ के पहिये के समान फिरते हैं और एक से दूसरे के पास जाते रहते हैं ॥५॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

पदार्थः—(**अप्रचेताः**) अप्रकृष्टज्ञान (**सः**) वह अदाता धन का स्वामी (**अन्नम्**) अन्न आदि पदार्थों को (**मोघम्**) व्यर्थ (**विन्दते**) प्राप्त करता है, मैं परमेश्वर अथवा विद्वान् (**ब्रवीमि**) कहता हूँ कि (**सत्यम्**) वास्तव में (**तस्य**) उसकी यह (**वधः इत्**) मौत ही है (**न**) न तो वह (**अर्यमणम्**) सत्यवादी विद्वान् का (**पुष्यति**) पोषण करता है (**न**) और न (**सखायम्**) आपत्तिग्रस्त मित्र का पोषण करता है (**केवलादी**) अकेला खाने वाला वह (**केवलाघः**) केवल पाप खाने वाला (**भवति**) होता है।

भावार्थः—आगे पीछे न देखने वाला वह धन का स्वामी अन्न आदि पदार्थों को व्यर्थ ही प्राप्त करता है। मैं परमेश्वर यह उपदेश करता हूं कि वास्तव में यह उसका धन उसकी मौत है। न तो वह विद्वान् को पोषण करता है न मुसीबत में साथी जनों का ही। वह अकेला भोग करने वाला खाने वाला केवल पाप खाने वाला होता है ॥६॥

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥७॥

पदार्थः—(**कृषन् इत्**) कृषि करता अथवा भूमि को गहरा खोदता ही (**फालः**) हल का फाल (**आशितम्**) कृषक को अन्न का भोक्ता (**कृणोति**) करता है (**अध्वानम्**) मार्ग पर (**यन्**) चलता हुआ मनुष्य अपने (**चरित्रैः**) गमन-

कार्य से (**अपवृङ्क्ते**) दूर गन्तव्य तक जाता है, (**वदन्**) उपदेश देता (**ब्रह्मा**) ब्राह्मण (**अवदतः** , न उपदेश देने वाले से (**वनीयान्**) श्रेष्ठ होता है (**पृणन्**) दाता (**आपिः**) बन्धु (**अपृणन्तम्**) अदाता को (**अभिस्यात्**) अतिक्रान्त कर जाता है ।

भावार्थः - खेत को गहराई से खोदता हुआ हल का फाल कृषक को अन्न का भोक्ता बनाता है । रास्ते पर चलता हुआ यात्री अपनी चाल से गन्तव्य स्थान को प्राप्त करता है । उपदेष्टा ब्राह्मण अनुपदेष्टा ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है । दाता बन्धु अदाता को अपने दान-यश से अतिक्रान्त कर बड़ा होता है ॥७॥

एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥

पदार्थः –(**एकपाद्**) एक भाग का धनी (**भूयः**) पुनः (**द्विपदः**) दुगुना (**विचक्रमे**) करता है, (**द्विपात्**) द्विगुण वाला (**पश्चात्**) बाद में (**त्रिपादम्**) तीन गुना (**अभि एति**) होता है, (**चतुष्पात्**) चार गुना धनी मनुष्य (**द्विपदाम्**) एक गुना दो गुना वालों के (**पंक्तीः**) क्रम को (**अभिस्वरे**) अभिगमन में (**संपश्यन्**) देखता हुआ (**उपतिष्ठमानः**) जाता हुआ (**एति**) होता है ।

भावार्थः –एक भाग वाला मनुष्य जल्दी द्विगुण धन वाला होना चाहता है । द्विगुण फिर त्रिगुण धन का स्वामी होना चाहता है । चौगुना धन वाला इन एक गुना दुगुना धनों वालों के क्रम और कार्यकलाप को देखता हुआ इनके इस अभिवृद्धि वाले मार्ग पर आगे बढ़ता है ॥८॥

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥९॥

पदार्थः - (**समौ चित्**) समान होते हुए भी (**हस्तौ**) दोनों हाथ (**समम्**) समान कार्य (**न**) नहीं (**विविष्टः**) करते हैं । (**संमातरा**) एक माता द्वारा उत्पन्न की दो गायें (**चित्**) भी (**समम्**) समान दूध (**न**) नहीं (**दुहाते**) देती हैं, (**यमयोः**) युगल बच्चों का (**चित्**) भी (**समा**) बराबर (**वीर्याणि**) बल (**न**) नहीं होता है, (**ज्ञाती**) समान परिवार के (**सन्तौ**) होते हुए (**चित्**) भी दो व्यक्ति (**समम्**) समान (**न**) नहीं (**पृणीतः**) दान करते हैं ।

भावार्थः—दो हाथ समान होते हुए भी समान कार्यशक्ति वाले नहीं । एक ही गाय की दो बछियायें समान दूध नहीं देती हैं । दो जोड़ुवा बच्चों का बल बरावर नहीं होता है । एक ही परिवार के दो व्यक्तियों में समान दानशक्ति नहीं होती है ॥९॥

यह दशम मण्डल में एक सौ सतरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११८

ऋषिः—१—९ उरुक्षय आमहीयवः ॥ देवताः—अग्नी रक्षोहा ॥ छन्दः—१ पिपीलिकामध्यागायत्री । २, ५ निचृद्गायत्री । ३, ८, विराड्-गायत्री । ६, ७, पादनिचृद्गायत्री । ४, ९ गायत्री ॥
स्वरः—षड्जः ॥

अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

पदार्थः—(**शुचिव्रतः**) शुद्धि कर्म वाला, (**अग्ने**) यह अग्नि (**स्वे**) अपने (**क्षये**) स्थान = यज्ञ वेदी में (**मर्त्येषु**) मनुष्यों में (**आ दीद्यत्**) प्रकाशसान हुआ (**अत्रिणम्**) प्राणियों के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को (**निहंसि**) मारता है ।

भावार्थः – धातु आदि को शुद्ध करने के कर्मों वाला यह अग्नि यज्ञ वेदी और मनुष्यों के शरीरों में प्रकाशमान हुआ समस्त प्राणियों के शरीर को खा जाने वाले रोगाणुओं को मारता हैं ॥१॥

उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे ।
यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

पदार्थः—यह अग्नि (**स्वाहुतः**) अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ (**उत्तिष्ठसि**) उठता=बढ़ता है (**घृतानि**) घृतों के प्रति (**मोदसे**) प्रसन्न होता है (**यत्**) जब (**त्वा**) इस अग्नि को (**स्रुचः**) जुहू आदि पात्र (**समस्थिरन्**) संगम होते हैं ।

भावार्थः—जब जुहू आदि यज्ञपात्र आदि अच्छी प्रकार संगत होते हैं तब अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ यह अग्नि बढ़ता है और घृतों आदि से और भी प्रज्वलित होता है ॥२॥

स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा ।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

पदार्थः—(**आहुतः**) हवि से युक्त, (**गिरा**) मन्त्रमयी वाणी द्वारा (**ईडेन्यः**) प्रशंसनीय (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**विरोचते**) अति दीप्त होता है, (**स्रुचा**) स्रुवा से (**प्रतीकम्**) सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही (**अज्यते**) घृत से सिक्त किया जाता है ।

भावार्थः—हवि आदि से युक्त और वेदवाणी से प्रशंसनीय वह अग्नि विशेष दीप्त होता है और सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही स्रुवा द्वारा घी से सिक्त किया जाता है ॥३॥

घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः ।
रोचमानो विभावसुः ॥४॥

पदार्थः—(**मधुप्रतीकः**) घृत मिश्रित मधुर पदार्थों से सिक्त (**आहुतः**) प्रशंसा किया गया, (**विभावसुः**) अपने प्रकाश से सब को आच्छादित करने वाला (**रोचमानः**) प्रकाशमान (**अग्निः**) अग्नि (**घृतेन**) घी और घी सहित हवि से (**समज्यते**) भली प्रकार सिक्त होता है ।

भावार्थः—मधुर पदार्थों से सिक्त, प्रशंसित, प्रकाशमान अग्नि घी और घी मिले हवि आदि से भली प्रकार सिक्त किया जाता है ॥४॥

जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥

पदार्थः—(**हव्यवाहनः**) हवि को देवों तक पहुंचाने वाला (**जरमाणः**) स्तुतियों से भी युक्त किया गया अग्नि (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**समिध्यसे**) प्रज्वलित किया जाता है, (**मर्त्याः**) मनुष्य यजमान (**तम् त्वा**) इस उस अग्नि की (**हवन्त**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हवि का देवों तक वाहक, स्तुतियों से गुणगान किया गया यह अग्नि देवों को हवि आदि पहुँचाने के लिए प्रज्वलित किया जाता है । हम सब मनुष्य यजमान भी इस अग्नि की प्रशंसा करते हैं ॥५॥

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत ।
अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६॥

पदार्थः—(**अदाभ्यम्**) अधर्षणीय, (**गृहपतिम्**) घर में पालित (**अमर्त्यम्**) मरणधर्म रहित (**तम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**मर्ताः**) ऋत्विग्जन (**घृतेन**) घृत से (**सपर्यत**) सेवित करते हैं ।

भावार्थः—अधर्षणीय, गृह में रक्षित, मरण धर्म रहित अग्नि की ऋत्विग् लोग घृत और सामग्री से सेवा करते हैं ॥६॥

अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥७॥

पदार्थ—(**अग्ने त्वम्**) यह अग्नि (**अदाभ्येन**) अदभ्य (**शोचिषा**) तेज से (**रक्षः**) रोगोत्पादक कृमि कीटों को (**दह**) जलाता है, (**ऋतस्य**) यज्ञ का (**गोपाः**) रक्षक यह (**दीदिहि**) दीप्त होता है ।

भावार्थः—यह अग्नि अदभ्य तेज से रोगकारी कृमि कीटों को जलाता है, यज्ञ का रक्षक वह दीप्त होता है ॥७॥

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**त्वम्**) यह (**अग्ने**) अग्नि (**प्रतीकेन**) अपने तेज से (**यातुधान्यः**) रोगकारी कीटाणुओं और कीड़े मकोड़ों की मादा जातियों को (**प्रति ओष**) जलाता है (**उरुक्षयेषु**) बहुत बड़ी यज्ञ वेदियों में (**दीद्यत्**) दीप्तिमान होता हुआ ।

भावार्थः—बड़ी-बड़ी आहवनीय आदि यज्ञ वेदियों में दीप्त होता हुआ यह अग्नि रोगकारक कीड़ों-मकोड़ों की मादा जाति को भी जलाता है ॥८॥

तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥९॥

पदार्थः—(**उरुक्षयाः**) विस्तृत निवास वाले यजमान लोग (**हव्यवाहम्**) हवि के वाहक, (**मानुषे**) मनुष्य सम्बन्धी (**जने**) संघ में (**यजिष्ठम्**) अति यज्ञार्ह (**तम् त्वा**) उस इस अग्नि को (**गीर्भिः**) वेद मन्त्रों के साथ (**सम् ईधिरे**) प्रज्वलित करते हैं ।

भावार्थः—विस्तृत निवास वाले यजमान लोग हवि के वाहक मनुष्यों में अत्यन्त यजनीय इस अग्नि को वेद मन्त्रों के साथ घृत हवि आदि से प्रज्वलित करते हैं ॥९॥

यह दशम मण्डल में एक सौ अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ११९

ऋषिः—१—१३ लब ऐन्द्रः ॥ देवता—आत्मस्तुतिः ॥ छन्दः—१—५, ७—१० गायत्री । ६, १२, १३ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१॥

पदार्थः—(**इति वं इति**) ऐसा ही और इस प्रकार से (**मे**) मुझ राजा का (**मनः**) मन होता है कि यज्ञ करने वालों को (**गाम्**) गौ (**अश्वम्**) अश्व (**सनुयाम्**) प्रदान करूं (**इति**) इसीलिए (**कुवित्**) सदा (**सोमस्य**) सोमलता आदि ओषधियों का (**अपाम् इति**) पान करता हूँ ।

भावार्थः—ऐसा ही, और इस प्रकार मुझ राजा का मन होता है कि मैं यज्ञ करने वालों को गाय और घोड़े प्रदान करूँ, इसलिए सदा गिलोय आदि ओषधियों के रस का पान करता हूं ॥१॥

प्र वाताइव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥२॥

पदार्थः—(**दोधतः**) कम्पायमान (**वाता इव**) वायुओं के समान (**पीताः**) पिए गए (**सोमाः**) गिलोय आदि का रस (**मा**) मुझ को (**प्र**) प्रकर्षेण (**उत्-अयंसत**) उद्यमशील बनाते हैं इस लिए मैं सदा सोम आदि लताओं के रसों का पान करता हूं ।

भावार्थः—कम्पायमान वायु के समान ये पिये गये गिलोय आदि ओषधियों के रस मुझे उद्यमी बनाते हैं इस लिए मैं इस रस का पान करता हूं ॥२॥

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥३॥

पदार्थः—(**रथम्**) रथ को (**आशवः**) आशुगामी (**अश्वाः इव**) अश्वों की भांति (**पीताः**) पिए गए सोमलता के रस (**मा**) मुझे (**उद् अयंसत**) उद्यमी और गतिशील बनाते हैं इसलिए मैं सदा सोमरस का पान करता हूँ ।

भावार्थः—जिस प्रकार आशुगामी घोड़े रथ को ले जाते हैं उसी प्रकार पिया गया सोमरस मुझे उद्यमी और क्रियाशील बनाता है इसलिए मैं सोमलता आदि औषधियों के रस का पान करता हूं ॥३॥

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥४॥

पदार्थः—(**इव**) जिस प्रकार (**वाश्रा**) शब्द करती हुई गौ (**प्रियम्**) प्रिय (**पुत्रम्**) वत्स को प्राप्त होती है इसी प्रकार (**मतिः**) बुद्धि (**मा**) मुझे (**उप अस्थित**) उपस्थित रहती है इस लिए मैं सदा सोम का पान करता हूँ ।

भावार्थः—जिस प्रकार शब्द करती हुई धेनु अपने प्यारे बछड़े को प्राप्त होती है उसी प्रकार बुद्धि मुझ से संयुक्त रहती है । इसीलिए मैं सोम ओषधि का पान करता हूं ॥४॥

अहं तष्टेव बन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥५॥

पदार्थः—(**बन्धुरम्**) रथ को (**तष्टा इव**) शिल्पी की भांति (**अहम**) मैं राजा (**हृदा**) हृदय से (**मतिम**) बुद्धि को (**पर्यचामि**) प्राप्त करता हूँ, इस लिए मैं सदा सोमलता आदि ओषधियों के रस का पान करता हूँ।

भावार्थः—जिस प्रकार शिल्पी उत्तम रथ को बनाता है उसी प्रकार मैं राजा हृदय के साथ बुद्धि को संगत करता हूँ। इस लिए मैं सदा सोमरस का पान करता हूं ॥५॥

न॒हि मे॑ अक्षि॒प॒च्चनाच्छा॑न्त्सु॒ः पञ्च॑ कृ॒ष्टयः॑ ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥६॥

पदार्थ – (**पंच कृष्टयः**) चार वर्ण और पाँचवा अवर्ण इस प्रकार पांच प्रकार के मनुष्य (**मे**) मेरे (**अक्षिपत् चन**) दृष्टिपात को (**नहि**) नहीं (**अच्छान्त्सुः**) छिपाते हैं अतः मैं सोमरस का पान करता हूँ।

भावार्थः पांच प्रकार के मनुष्य मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होते और सदा मेरे नियन्त्रण में रहते हैं अतः मैं सोमरस का पान करता हूं ॥६॥

न॒हि मे॒ रोद॑सी उ॒भे अ॒न्यं प॒क्षं च॒न प्रति॑ ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥७॥

पदार्थः—(**उभे**) दोनों (**रोदसी चन**) द्यु और पृथिवी भी (**मे**) मेरे (**अन्यम्**) दूसरे (**पक्षम्**) बाजू के (**प्रति**) प्रति समान नहीं है अतः मैं सोमरस का पान करता हूँ।

भावार्थः—दोनों द्यु और पृथिवी लोक भी मेरे बाजू के समान नहीं है अतः मैं सोमरस का पान करता हूं ॥७॥

अ॒भि द्यां म॑हि॒ना भु॑वम॒भी॒३॒मां पृ॑थि॒वीं म॒हीम् ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥८॥

पदार्थः—मैं (**महिना**) अपने प्रभाव से (**द्याम**) द्युलोक को (**अभिभुवम**) अभिभूत करता हूं तथा (**महीम**) महती (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम**) पृथिवी को (**अभि**) अभिभूत करता हूं, इसलिए मैं सोम=गिलोय आदि ओषधियों के रस का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं अपने प्रभाव से द्युलोक और इस महती पृथिवी को अभिभूत करता हूँ। इसलिए मैं सोम के रस का पान करता हूं ॥८॥

ह॒न्ताहं पृ॑थि॒वीमि॒मां नि द॑धानी॒ह वे॒ह वा॑ ।
कु॒वित्सो॒मस्यापा॒मिति॑ ॥९॥

पदार्थः (**हन्त**) संभवतः (**अहम**) मैं (**इमाम**) इस (**पृथिवीम**) भूमि को (**इह वा**) इस अन्तरिक्ष में (**इह वा**) इस द्युलोक में (**निवधानि**) स्थापित कर दूं अतः मैं सोमरस का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं इस भूमि को अन्तरिक्ष अथवा द्यु लोक में उठाकर रख सकता हूँ अतः मैं सोमरस का पान करता हूं ॥९॥

ओ॒षमित्पृ॑थि॒वीम॒हं जङ्घ॑नानी॒ह वे॒ह वा॑ ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥१०॥

पदार्थः—(**अहम**) मैं (**पृथिवीम**) इस पृथिवी को (**ओषम् इत**) तापमान-युक्त कर सकता हूं और (**इह वा**) यहां (**इह वा**) वहां कहीं भी (**जङ्घनानि**) ले जा सकता हूँ। अतः सोम का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं इस पृथिवी को तापमान युक्त कर सकता हूं और इधर-उधर कहीं भी ले जा सकता हूं। इस लिए सोमरस का पान करता हूं ॥१०॥

दि॒वि मे॑ अ॒न्यः प॒क्षो॒३॒धो अ॒न्यम॑चीकृषम् ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥११॥

पदार्थः - (**दिवि**) आकाश में (**मे**) मेरा (**अन्यः**) एक (**पक्षः**) बाजू है और (**अन्यम्**) दूसरे बाजू को (**अधः**) नीचे अर्थात् भूमि पर (**अचीकृषम**) खींचता हूँ, इस लिए मैं सोम का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं अपने एक बाजू को आकाश में और दूसरे को पृथिवी पर रखता हूं। इसी लिये मैं सोमरस का पान करता हूं ॥११॥

अ॒हम॑स्मि महाम॒होऽभि॒नभ्यमुदीषितः ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥१२॥

पदार्थः—(**अहम**) मैं (**नभ्यम अभि**) अन्तरिक्ष में (**उदीषितः**) उदित (**महामहः**) तेजों का तेज सूर्य (**अस्मि**) हूँ, इस लिए मैं सोमरस का पान करता हूं ।

भावार्थः—मैं आकाश में उदित महातेजस्क सूर्य हूं । इस लिए सोमरस का पान करता हूं ॥१२॥

गृ॒हो या॒म्यरं॑ङ्कृतो दे॒वेभ्यो॑ हव्य॒वाह॑नः ।
कु॒वित्सोम॒स्यापा॒मिति॑ ॥१३॥

पदार्थः—(**गृहः**) हवि का गृहीता (**अरंकृतः**) अलंकृत (**देवेभ्यः**) देवों के लिए हवि का वाहक अग्नि भूत मैं (**यामि**) व्यवहार करता हूं ।

भावार्थः—हवि का गृहीता अलंकृत और देवों के लिये हवि का वाहक अग्नि रूप मैं समस्त व्यवहारों को प्राप्त होता हूं ॥१३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२०

ऋषिः—१—९ बृहद्दिव आथर्वणः ॥ देवता - इन्द्रः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ।। २, ३, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः— धैवतः ॥

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञ उ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो नि रि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यं विश्वे॒ मद॒न्त्यूमाः॑ ॥१॥

पदार्थः—(**तत् इत्**) वह ब्रह्म ही (**भुवनेषु**) भुवनों में (**ज्येष्ठम्**) ज्येष्ठ और श्रेष्ठ (**आस**) है (**यतः**) जिसकी निमित्तकारणता से (**उग्रः**) प्रचण्ड (**त्वेषनृम्णः**) प्रदीपन बल वाला इन्द्र=सूर्य (**जज्ञे**) उत्पन्न होता है, (**सद्यः**) तत्काल (**जज्ञानः**) उत्पन्न हुआ वह (**शत्रून्**) शत्रुभूत मेघ तथा आवरण आदि को (**नि रिणाति**) नष्ट करता है (**विश्वे**) समस्त (**ऊमाः**) मनुष्य तथा रक्षक बल (**यम्**) जिसको (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**मदन्ति**) प्रसन्न होते हैं ।

भावार्थः—समस्त भुवनों में देश, काल और शक्ति में ज्येष्ठ एवम् श्रेष्ठ वह परमेश्वर ही है। उसी की निमित्तता से यह प्रचण्ड प्रदीपन सामर्थ्य वाला सूर्य उत्पन्न होता है । वह सूर्य अपने उत्पत्तिकाल से ही मेध तथा अन्य आवरण आदि विरोधी बलों को क्षीण करता है। उसी को रखकर सभी मनुष्य और रक्षक बल प्रसन्न होते हैं ॥१॥

वा॒वृ॒धा॒नः शव॑सा॒ भूर्यो॑जाः॒ शत्रु॑र्दा॒साय॑ भि॒यसं॑ दधाति ।
अव्य॑नच्च॒ व्यन॒च्च सस्नि॒ सं ते॑ नवन्त॒ प्रभृ॑ता॒ मदे॑षु ॥२॥

पदार्थः—(**शवसा**) बल से (**ववृधानः**) बढ़ता हुआ (**भूर्योजाः**) प्रभूत बल, (**शत्रुः**) शातन करने वाला इन्द्र=सूर्य (**दासाय**) मेघ के लिए (**भियसम्**) भय को (**दधाति**) उत्पन्न करता है, (**अव्यनत्**) प्राणवत् जङ्गम जगत् (**च**) और (**व्यनत् च**) स्थावर भी (**सस्नि**) सूर्य द्वारा शोधित होता है, (**ते**) इसके (**मदेषु**) हर्षों में (**प्रभृताः**) पोषित (**सम् नवन्त**) संगत होते हैं ।

भावार्थः—बल से प्रवर्धमान प्रभूतबल, छेदक सूर्य मेघ के लिए भय उत्पन्न करता है । जङ्गम और स्थावर जगत् उसी से शोधिन होते हैं । उसी के हर्षकारी प्रभावों में सब संगत होते हैं ॥२॥

त्वे क्रतु॒मपि॑ वृञ्जन्ति॒ विश्वे॒ द्विर्यदे॒ते त्रिर्भव॒न्त्यूमाः॑ ।
स्वा॒दोः स्वादी॑यः स्वा॒दुना॑ सृजा॒ सम॒दः सु॒ मधु॒ मधु॑ना॒भि यो॑धीः ॥३॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**विश्वे**) सब (**त्वे**) तेरी आज्ञा पालन में (**क्रतुम् अपि**) यज्ञ आदि कर्मों को भी (**वृञ्जन्ति**) करते हैं (**यत्**) जिससे (**एते**) ये (**ऊमाः**) यजमान लोग पुत्र द्वारा (**द्विः**) दुगुने और पौत्र द्वारा (**त्रिः**) तिगुने (**भवन्ति**) होते हैं, (**स्वादोः**) स्वादु से भी (**स्वादीयः**) अधिक स्वादु वस्तु को (**स्वादुना**) स्वादु कारण से (**सृज**) उत्पन्न कर और (**मधुना**) मधुर से (**मधु**) मधुर को (**सु अभि योधीः**) भली प्रकार संगत कर ।

भावार्थः—हे प्रभो ! सब तेरी आज्ञा पालन में यज्ञ आदि कर्मों को करते हैं । जिससे ये यजमान लोग पुत्र और पौत्र आदि से दुगुने-तिगुने होते हैं । प्रभो आप स्वादु से स्वादु वस्तु को स्वादु कारण से, मधुर को मधुर से संगत करो ॥३॥

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥४॥

पदार्थः—(**इति चित् हि**) इस प्रकार हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**धना**) धनों को (**जयन्तम्**) अधिकार में रखने वाले (**त्वा**) तेरी (**विप्राः**) समस्त मेधावी लोग (**मदे मदे**) सभी हर्ष के अवसरों पर (**अनु मदन्ति**) स्तुति करते हैं (**धृष्णो**) हे समस्त बलों को अभिभूत करने वाले ! (**ओजीयः**) ओजस्वी तू (**स्थिरम्**) दृढ़ स्थिर धन को हम लोगों के लिए (**आतनुष्व**) विस्तृत कर, (**दुरेवाः**) दुःखदायक (**यातुधानाः**) बाधक शक्तियें (**त्वा**) तुझे (**मा**) नहीं (**दभन्**) दबा सकती हैं ।

भावार्थः—इस प्रकार हे परमेश्वर समस्त धनों के स्वामी! तुझ प्रभु की मेधावीजन सभी हर्ष के समयों में स्तुति करते हैं । हे समस्त बलों को अभिभूत करने वाले ओजस्वी ! तू हमें दृढ एवम् स्थायी धन दे, दुःखदायी बाधक शक्तियें तुझे नहीं दबा सकती हैं ॥४॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥

पदार्थः हे भगवन् ! (**युधेन्यानि**) युद्ध के योग्य (**भूरि**) प्रभूत बलों को (**प्रपश्यन्तः**) जानते हुए (**त्वया**) तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत (**वयम्**) हम (**रणेषु**) संग्रामों में (**शाशद्महे**) शत्रुओं का कर्तन करते हैं, (**ते**) आपके (**आयुधा**) वज्र आदि आयुध की (**वचोभिः**) स्तुतियों से (**चोदयामि**) प्रशंसा करता हूं, (**ब्रह्मणा**) वेद मन्त्र से (**वयांसि**) यज्ञ आदि के लिये अन्न को (**सं शिशामि**) भली प्रकार संस्कृत करता हूँ ।

भावार्थः—हे भगवन् ! युद्ध करने योग्य प्रभूत बलों को भली-भांति जानते हुए तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत हम संग्रामों में शत्रुओं का कर्त्तन करते हैं । आप के वज्र आदि आयुधों की हम स्तुतियों से प्रशंसा करते हैं और यज्ञ आदि के लिए अन्न का और हवि का संस्कार करते हैं ॥५॥

स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥६॥

पदार्थः—(**स्तुषेय्यम्**) स्तोतव्य, (**पुरुवर्पसम्**) संसार के बहुत से रूपों से युक्त, (**ऋभ्वम्**) व्यापक (**इनतमम्**) ईश्वरतम (**आप्त्यानाम्**) आप्त्यों में परम (**आप्त्यम्**) आप्त परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं, (**य**) जो (**शवसा**) अपने अधीनस्थ सूर्य आदि तेजों द्वारा (**सप्त**) सात (**दानून्**) नमुचि, कुवय आदि मेघों को (**आदर्षते**) विदीर्ण करता है और उनके (**भूरि**) बहुत से (**प्रतिमानानि**) बलों को (**प्र साक्षते**) क्षीण कराता है ।

भावार्थः—स्तोतव्य, संसार के समस्त रूपों से युक्त, व्यापक ईश्वरतम और आप्तों में भी परम आप्त परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ! जो प्रभु अपने अधीनस्थ सूर्य आदि बलों द्वारा नमुचि, कुवय आदि सात मेघों को विदीर्ण कराता और उसके प्रभूत बलों को क्षीण कराता है ॥६॥

नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥७॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**अवरम्**) समीप वाले (**च**) और (**परम्**) दूर वाले (**तत्**) इस जगत् का (**नि दधिषे**) धारण करता है (**दुरोणे**) गृहरूप (**यस्मिन्**) जिसमें (**अवसा**) अपने रक्षण में सब पदार्थों की आप (**आविथ**) रक्षा करते हैं, (**मातरा**) सब की मातारूप द्यु और पृथिवी को जो (**जिगत्नू**) गमनशील हैं (**आ स्थापयसे**) सर्व प्रकार से स्थापित करता है (**अतः**) तू इसलिए (**पुरूणि**) प्रभूत (**कर्वरा**) कर्मों को (**इनोषि**) अभि व्याप्त करता है अर्थात् संपादित करता है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू समीप और दूर तक फैले हुए इस जगत् को धारण करता है । गृहरूप जिस जगत् में विद्यमान समस्त प्राणियों और पदार्थों की आप अपनी रक्षणशक्ति से रक्षा करते हैं । आप गमनशील द्यु और पृथिवी को स्थापित करते हैं । इसलिए आप अत्यधिक कर्मों को करते हैं ॥७॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥८॥

पदार्थ—(**स्वर्षाः**) अत्यन्त ज्ञान प्रकाश वाला (**अग्रियः**) विद्वानों का अग्रणी (**बृहद्दिवः**) महाज्ञानी (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये

(**शूषम्**) अपने को सुखकर लगे ऐसे प्रकार से (**इमा**) इस (**ब्रह्म**) वेद मन्त्रों से युक्त स्तुतियों को (**विवक्ति**) करता है, (**स्वराजः**) ज्ञान से स्वयं राजमान (**महः**) महती (**गोत्रस्य**) वेदवाणी का (**क्षयति**) स्वामी होता है (**विश्वाः**) समस्त (**स्वाः**) स्वभूत (**दुरः**) द्वारों को अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के माध्यमों को (**अपावृणोत्**) खोल देता है ।

भावार्थः—अत्यन्त ज्ञान प्रकाश वाला, विद्वानों का अग्रणी महा ज्ञानी परमेश्वर के लिए अपने को आनन्दित करे ऐसे प्रकार से वेदमन्त्रों की स्तुति को बोलता है। ज्ञान से स्वयं दीप्त महती वेदवाणी का वह परमेश्वर स्वामी है। वह अपनी प्राप्ति के समस्त माध्यमों को ज्ञानी उपासक के लिए खोल देता है ॥८॥

एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥

पदार्थः—(**एव**) इस प्रकार (**महान्**) महान् (**अथर्वा**) स्थिरमति (**बृहद्दिवः**) महा ज्ञानी (**इन्द्रम्**) भगवान् के प्रति (**एव**) ही (**स्वाम्**) अपनी (**तन्वम्**) विस्तृत स्तुति को (**अवोचत्**) बोलता है (**च**) और (**अरिप्राः**) निर्दुष्ट (**मातरिश्वरीः**) निर्मात्री (**स्वसारः**) स्वयम् सरणशील (**शवसा**) बल से (**हिन्वन्ति**) जगत् को प्रसन्न करती हैं (**च**) और (**वर्धयन्ति**) बढ़ाती हैं।

भावार्थः—इस प्रकार महान् स्थिरमति महाज्ञानी विद्वान् भगवान् के प्रति अपनी विस्तृत स्तुति को बोलता है और निर्दुष्ट निर्मात्री एवम् पालनकर्त्री स्वयं सरणवती शक्तियां भगवान् के द्वारा दिए गए बल से जगत् को प्रसन्न करती हैं और बढ़ाती है ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२१

ऋषिः—१—१० हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः ॥ देवता—कः ॥ छन्दः—१,
३, ६, ८, ९ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, १० विराट्त्रिष्टुप् ।
७ स्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पदार्थः—(**अग्रे**) सृष्टि की प्रागवस्था में (**हिरण्यगर्भः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**समवर्तत**) विद्यमान रहता है, (**जातः**) प्रसिद्ध अथवा जनक वह (**भूतस्य**) उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् का (**एकः**) एक मात्र (**पतिः**) स्वामी (**आसीत्**) होता है (**सः**) वह (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) द्युलोक को (**दाधार**) धारण करता है (**कस्मै**) सुखस्वरूप उस (**देवाय**) देव के लिए हम (**हविषा**) श्रद्धा और भक्ति विशेष से (**विधेम**) उपासना करें ।

भावार्थः—पहले स्व प्रकाश स्वरूप परमेश्वर विद्यमान रहता है। अत्यन्त प्रसिद्ध अथवा सबका जनक वह समस्त उत्पन्न जगत् का एक मात्र स्वामी है। वह इस पृथिवी और द्युलोक का धारण करता है। उस सुखस्वरूप देव=परमेश्वर की हम श्रद्धा भक्ति से उपासना करें ॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

पवार्थ—(**यः**) बो परमेश्वर (**आत्मदा**) आत्मज्ञान का दाता, (**बलदा**) भौतिक और आध्यात्मिक बलों का दाता है, (**यस्य**) जिसकी (**विश्वे**) सभी (**उपासते**) उपासना करते हैं (**यस्य**) जिसके (**प्रशिषम्**) प्रकृष्ट शासन तथा आज्ञा को (**देवाः**) समस्त प्राकृतिक शक्तियां और विद्वज्जन (**उपासते**) स्वीकार करते हैं (**यस्य**) जिसकी (**छाया**)कृपा की छाया (**अमृतम्**) अमरत्वमय है और जिसका न मानना ही (**मृत्युः**) मृत्यु है, उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) देव के लिए हम सदा (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से (**विधेम**) उपासना करें ।

भावार्थः—जो परमेश्वर आत्मज्ञान का दाता भौतिक आत्मिक बलों का देने हारा है, जिसकी सब उपासना करते हैं और जिसके शासन एवम् आज्ञा को समस्त प्राकृतिक दैवी शक्तियां और विद्वज्जन स्वीकार करते हैं, जिसकी कृपादृष्टि में अमरत्व है और जिसका न मानना ही मृत्यु है उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करते हैं ॥१॥

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पदार्थः—(**य:**) जो (**प्राणत:**) श्वास लेने वाले, (**निमिषत:**) आंख झपकने वाले अथवा अजीवित (**जगत:**) जगत् का (**महित्वा**) अपनी सामर्थ्य से (**एक: इव**) एक ही (**राजा**) राजा (**बभूव**) होता है (**य:**) जो (**अस्य**) इस (**द्विपद:**) दो पैरों वाले मनुष्य आदि तथा (**चतुष्पद:**) पशु आदि प्राणियों का (**ईशे**) स्वामी है उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) परमेश्वर के लिए हम (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से (**विधेम**) उपासना करते हैं ।

भावार्थः—जो अपने सामर्थ्य से प्राणवान्, अप्राणवान् जगत् का एक मात्र राजा है । जो दो पैरों वाले मनुष्यादि एवम् चार पैरों वाले पशु आदि प्राणियों का स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहु: ।
यस्येमा: प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

पदार्थः—(**हिमवन्त:**) हिम से ढके पर्वत तथा दूसरे पहाड़ भी (**यस्य**) जिसकी (**महित्वा**) महिमा को (**आहु:**) कहते हैं (**रसया सह**) नदियों के सहित (**समुद्रम्**) सभी समुद्र (**यस्य**) जिसकी (**महित्वा**) महिमा को (**आहु:**) कहते हैं (**यस्य**) जिसकी (**इमा**) ये (**प्रदिश:**) प्रदिशायें (**यस्य**) जिसके (**बाहू**) बाहुयें हैं उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) देव परमेश्वर के लिए (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से (**विधेम**) उपासना करें ।

भावार्थः—जिसकी महिमा को बनाते हैं ये हिमाच्छादित और दूसरे प्रकार के पर्वत तथा नदियों सहित ये समुद्र । जिसकी ये प्रदिशायें उसके बाहुओं के समान हैं । उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वं स्तभितं येन नाक: ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

पदार्थः—(**येन**) जिससे (**उग्रा:**) प्रचण्ड (**द्यौ:**) द्युलोक (**च**) और (**पृथिवी**) पृथिवी (**दृढ़ा**) दृढ़ किए गए हैं (**येन**) जिससे (**स्व:**) अन्तरिक्ष (**स्तभितम्**) धारित है (**येन**) जिससे (**नाक:**) आदित्य आदि प्रकाशमान लोक स्थापित हैं, (**य:**) जो (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**रजस:**) धूलि कणों के समान लोकों का (**विमान:**) बनाने वाला है अथवा जो अन्तरिक्ष में जल की बूंदों का बनाने वाला है, (**कस्मै**) उस सुखस्वरूप (**देवाय**) देव परमेश्वर की हम (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना (**विधेम**) करें ।

भावार्थः—जिसके द्वारा प्रचण्ड द्युलोक और पृथिवी दृढ़ किए गये हैं, जिसके द्वारा अन्तरिक्ष और प्रकाशमान लोक स्थापित हैं, जो आकाश में धूलिकणों के समान लोकों का अथवा जल की बूंदों का बनाने वाला है उस सुखस्वरूप परमेश्वर देव की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥५॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पदार्थः—(**अवसा**) रक्षण से (**तस्तभाने**) धारित (**रेजमाने**) दीप्तिमान (**क्रन्दसी**) द्यु और पृथिवी (**मनसा**) अपने प्रकट बल से (**यम्**) जिसको (**अभ्यैक्षेताम्**) प्रकट करते हैं (**यत्र अधि**) जिसके अधिनियम में (**उदित:**) उदित हुआ (**सूर:**) सूर्य (**विभाति**) प्रकाशमान होता है (**कस्मै**) उस सुख स्वरूप (**देवाय**) देव के लिए (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से हम (**विधेम**) उपासना करें ।

भावार्थ—जिसके रक्षण से धारित, दीप्तिमान द्युलोक और पृथिवी अपने प्रकट बल से जिसको प्रकट करते हैं, जिसके अधिनियम में उदय को प्राप्त सूर्य चमकता है उस सुख स्वरूप=देव परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से सदा उपासना करें ॥६॥

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेक: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पदार्थः—(**यद्**) जिससे (**बृहती**) महान् (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्ती:**) प्रकट करने वाले (**गर्भम्**) हिरण्मयाण्ड को (**दधाना:**) धारण करते हुए (**आप:**) प्रकृति परमाणु (**विश्वम्**) समस्त जगत् को (**आयन्**) प्राप्त करते

हैं (**ततः**) इसलिए (**देवानाम्**) देवादिकों और प्राणियों का (**असुः**) प्राणभूत (**एकः**) एक परमेश्वर (**समवर्तत**) विद्यमान रहता है उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) देव की हम (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना (**विधेम**) सदा किया करें ।

भावार्थः— यतः महान् अग्नि को प्रकट करने वाले, हिरण्यमय अण्ड को धारण करते हुए प्रकृति परमाणु समस्त जगत् को अपने से प्राप्त करते हैं इस लिये देव आदि को और प्राणियों का प्राणभूत एक परमेश्वर विद्यमान रहता है। उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥७॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

पदार्थः—(**यः चित्**) जो (**यज्ञम्**) समस्त विकृति समूह (**जगत्**) जगत् को (**जनयन्तीः**) प्रकट करते हुए (**दक्षम्**) अग्निताप को धारण करते हुए (**आपः**) प्रकृति परमाणुओं को (**महिना**) अपनी महिमा से (**पर्यपश्यत्**) देखता है (**यः**) जो (**देवेषु अधि**) समस्त देवों का (**एकः**) एक ही (**देवः**) देव (**आसीत्**) है, उस (**कस्मै**) सुख स्वरूप (**देवाय**) देव के लिए (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से हम सदा उपासना (**विधेम**) किया करें ।

भावार्थः—जो समस्त विकारजात को प्रकट करते हुए ताप को धारण करते हुए प्रकृति-परमाणुओं को अपनी महिमा से देखता है, जो देवों का एक मात्र अधिदेव हैं, उस सुखस्वरूव देव की हम सदा श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना किया करें ॥८॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**पृथिव्याः**) भूमि का (**जनिता**) उत्पादक है, (**वा**) और (**यः**) जो (**सत्य धर्मा**) सत्यधर्मा (**दिवम्**) द्यु लोक को (**जजान**) उत्पन्न करता है, (**च**) और (**यः**) जो (**बृहतीः**) महान् (**चन्द्राः**) आह्लादक (**अपः**) जलों को (**जजान**) उत्पन्न करता है वह (**नः**) हमें (**मा**) नहीं (**हिंसीत्**) दुःख देता है, (**कस्मै**) उस सुखस्वरूप (**देवाय**) देव की (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष मक्ति से हम (**विधेम**) सदा उपासना किया करें ।

भावार्थः—जो भूमि का उत्पादक हैं, और जो सत्यधर्मा द्युलोक को उत्पन्न करता है वह प्रभु हमें दुःख नहीं देता है। उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम सदा श्रद्धा और विशेष मक्ति से उपासना किया करें ॥६॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

पदार्थः—(**प्रजापते**) हे प्रजा के स्वामिन् ! (**त्वत् अन्यः**) आप से भिन्न कोई (**एता**) इन (**ता**) उन (**विश्वा**) समस्त (**जातानि**) उत्पन्न हुए पदार्थों पर (**न**) नहीं (**परि बभूव**) अध्यक्ष होता है (**यत्कामाः**) जिस कामना वाले हम (**ते**) तेरी (**जुहुमः**) उपासना करें (**तत्**) वह (**नः**) हमें (**अस्तु**) मिले (**वयम्**) हम (**रयीणाम्**) धनों के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें ।

भावार्थः— हे प्रजा के स्वामिन् ! तुझसे भिन्न कोई अन्य इस समस्त विश्व के पदार्थों का अध्यक्ष नहीं है। तू ही इनका अध्यक्ष है। जिस वस्तु की कामना वाले हम आप की उपासना करते हैं वह हमें प्राप्त हो। आप की कृपा से हम धनों के स्वामी बनें ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२२

ऋषिः—१—८ चित्रमहा वासिष्ठः ॥ देवताः—अग्निः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ जगती । ३, ८ पादनिचृज्जगती । ४, ६ निचृज्जगती । ७ आर्चीस्वराड्जगती ॥ स्वरः—१, ५ धैवतः । २—४, ६—८ निषादः ॥

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(**वसुम् न**) वासक आदित्य के समान (**चित्रमहसम्**) अद्भुत तेज वाले, (**वामम्**) वननीय (**शेवम्**) सुखकर (**अतिथिम्**) आदरणीय (**अद्विषेण्यम्**) द्वेषरहित अग्नि की मैं यजमान (**गृणीषे**) प्रशंसा करता हूँ, (**होता**) हवि

का ग्रहण करने वाला, (**गृहपतिः**) गृह का पालक (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**शुरुधः**) शोक=ताप को रोकने वाली (**विश्वधायसः**) सब के रस का पान करने वाली शक्तियों का पदार्थों को और (**सुवीर्यम**) उत्तम बल को (**रासते**) प्रदान करता है।

भावार्थः—सबको निवास देने वाले आदित्य के समान अद्भुत तेजों वाले, वननीय आदरणीय और द्वेष्यरहित इस अग्नि की मैं यजमान प्रशंसा करता हूं। होता, गृह का पालक यह अग्नि ताप को रोकने वाली और सब को रस का पान करानेवाली शक्तियों वा पदार्थों को और उत्तम बल को प्रदान करता है ॥१॥

जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् ॥२॥

पदार्थः—(**सुक्रतो**) शोभनकर्मन् अथवा उत्तम ज्ञान वाले (**अग्ने**) हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (**जुषाणः**) प्रीति से सेव्यमान तू (**विश्वानि**) मेरे सभी (**वयुनानि**) ज्ञात ज्ञेय और कर्मों को (**विद्वान्**) जानने वाला है, (**मे**) मेरे (**वचः**) वचन को (**प्रतिहर्य**) स्वीकार कर, (**घृतनिर्णिक्**) हे प्रकाश स्वरूप ! (**ब्रह्मणे**) वेदज्ञ यजमान के लिए (**गातुम्**) ज्ञातव्य की (**आ ईरय**) प्रेरणा कर (**देवाः**) विद्वान् लोग और दैवी शक्तियें (**तव**) तुम्हारे (**व्रतम्**) नियम के (**अनु**) अनुसार ही (**अजनयन्**) सब कार्यों का सम्पादन करते हैं।

भावार्थः—हे शोभनकर्मन् प्रभो ! प्रीति से उपासना किये गये आप मेरे स्तुति वचन को स्वीकार करें। आप मेरे समस्त ज्ञान ज्ञेयों और कर्मों को जानते हैं। हे प्रकाश स्वरूप ! आप वेदज्ञ यजमान के लिए ज्ञातव्य की प्रेरणा दें। विद्वान् और समस्त दैवी शक्तियां तुम्हारे नियम के अनुसार ही अपने कार्यों का संपादन करती हैं ॥२॥

सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ॥३॥

पदार्थः—अग्नि (**सप्त धामानि**) सात लोकों को (**परियन्**) व्याप्त करता है, (**अमर्त्यः**) मरण धर्मरहित वह (**सुकृते**) उत्तम कर्म करने वाले (**दाशुषे**) दाता यजमान के लिए (**दाशत्**) सब लाभों को देता है (**मामहस्व**) धन आदि को देता है, (**यः**) जो (**ते**) इस अग्नि को (**समिधा**) प्रदीप्त करने के साधनभूत समिधा घृत और हवि से (**आनट्**) प्राप्त होता है (**तम्**) उस यजमान को यह अग्नि (**स्वाभुवा**) बढ़ाने वाले (**सुवीरेण**) उत्तम सन्तान आदि से युक्त (**रयिणा**) धन से (**जुषस्व**) प्रसन्न करता है।

भावार्थः—अग्नि सप्त लोकों में व्याप्त होता है, मरणधर्म से रहित वह दाता और उत्तम कर्मों वाले यजमान के लिगे सब लाभों को देता है और धन आदि भी देता है। जो दीपन के साधन समिधा, घृत, हवि आदि से इसे प्रदीप्त करता है उसे उत्तम सन्तान से युक्त समृद्धिदायक धन से प्रसन्न करता है ॥३॥

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम्।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ॥४॥

पदार्थः—(**हविष्मन्तः**) हवि आदि से युक्त (**सप्त**) सप्त ऋत्विग् लोग (**यज्ञस्य**) यज्ञ के (**केतुम्**) प्रज्ञापक (**प्रथमम्**) सब यज्ञ देवों में प्रथम, (**पुरोहितम्**) सामने रखे जाने वाले, (**वाजिनम्**) बलवान् (**शृण्वन्तम्**) सुनाने के साधनभूत (**घृतपृष्ठम्**) दीप्तावयव, (**उक्षणम्**) वृष्टि के दाता, (**सुवीर्यम्**) उत्तम पराक्रम के साधन (**पृणते**) हवि आदि के द्वारा अग्नि को दीप्त करने वाले यजमान को (**पृणतम्**) धन आदि देने वाले (**अग्निम्**) अग्नि की (**ईलते**) प्रशंसा करते हैं।

भावार्थः—हवि आदि से युक्त सात ऋत्विग् लोग यज्ञ के ज्ञापक, देवों में मुख्य तथा पुरोहित आदि विशेषणों स युक्त इस अग्नि की प्रशंसा करते हैं ॥४॥

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व।
त्वां मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ॥५॥

पदार्थः—(**सः त्वम्**) वह यह अग्नि (**दूतः**) देवों को पहुँचने वाला दूत, (**प्रथमः**) मुख्य और (**वरेण्यः**) वरेण्य है, (**हूयमानः**) हवि आदि से तृप्त किया गया वह (**अमृताय**) हमें अमरत्व प्राप्ति के लिए (**मत्स्व**) हर्षित करता है, (**दाशुषः**) यजमान (**मरुतः**) ऋत्विग् लोग (**गृहे**) घर में (**त्वाम्**) इस अग्नि को (**मर्जयन्**) हवि आदि से अलंकृत करते हैं और (**त्वाम्**) इसको (**भृगवः**) तपस्वी लोग (**स्तोमेभिः**) स्तोत्रों से (**वि रुरुचुः**) प्रदीप्त करते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि यज्ञ देवों तक जाने वाला दूत, मुख्य और वरेण्य है। हवि आदि से तृप्त किया गया यह हमें अमरत्व की प्राप्ति के लिये (मत्स्व) हर्षित करता है। यजमान और ऋत्विग् लोग घर में इस अग्नि को हवि आदि से अलंकृत करते हैं। इसको तपस्वी जन स्तोत्रों से प्रदीप्त करते हैं ॥५॥

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिरृतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥६॥

पदार्थः—(**सुक्रतो**) उत्तम यज्ञ आदि कर्मों के साधन भूत (**अग्ने**) अग्नि (**यज्ञप्रिये**) यज्ञों से देवों को प्रसन्न करने वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**विश्वधायसम्**) सबको फल देने वाली (**सुदुघाम्**) यज्ञरूपी गौ से (**इषम्**) अन्न और ज्ञान का दोहन करता हुआ (**घृतस्नुः**) घृत से दीप्त ज्वाला वाला (**त्रिः**) तीन (**ऋतानि**) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक को (**दीद्यत्**) प्रकाशमान करता है (**यज्ञम् वर्ति**) यज्ञ के स्वरूप को (**परियन्**) धारण करता हुआ (**सुक्रतूयसे**) उत्तम यज्ञ कर्मों के समान व्यवहार करता है।

भावार्थः—यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का साधनभूत यह अग्नि सबको फल देने वाले यज्ञ से ज्ञान और अन्न का दोहन यजमान के लिए करता है। घृत से प्रदीप्त ज्वालाओं वाला वह तीनों लोकों को प्रकाशित करता है और यज्ञ के स्वरूप को धारण करता हुआ उत्तमकर्मा के समान व्यवहार को कराता है ॥६॥

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥७॥

पदार्थः—(**अस्याः**) इस (**उषसः**) उषा के (**व्युष्टिषु**) विवासन काल प्रभात वेलाओं में (**मानुषाः**) मनुष्य लोग (**त्वाम् इत्**) इस अग्नि को ही (**दूतम्**) दूत (**कृण्वानाः**) बनाकर (**अयजन्त**) यज्ञ करते हैं (**देवाः**) विद्वज्जन (**आज्यम्**) घृत तथा सामग्री आदि को (**अध्वरे**) यज्ञ में (**निमृजन्तः**) डालते हुए (**अग्ने त्वाम्**) इस अग्नि को (**महयाय्य**) महत्व प्राप्त करने के लिए (**वावृधुः**) बढ़ाते हैं।

भावार्थः—इस उषा के निवासक प्रभात काल में मनुष्य लोग इस अग्नि को देवों का दूत बनाकर यज्ञ करते हैं। विद्वज्जन हवि आदि को डालते हुए महत्व प्राप्ति के लिए इस अग्नि को बढ़ाते हैं ॥७॥

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थः—(**वसिष्ठाः**) ज्ञान और कर्म में वसने वाले (**वेधसः**) ऋत्विग् लोग (**विदथेषु**) यज्ञों में (**गृणन्तः**) परमेश्वर की स्तुति करते हुए (**वाजिनम्**) शक्तिशाली (**अग्ने त्वा**) इस अग्नि की (**नि अह्वन्त**) प्रशंसा करते हैं, यह अग्नि (**यजमानेषु**) हम यजमान लोगों में (**रायः**) धन की (**पोषम्**) पुष्टि को (**धारय**) धारण कराता है, हे विद्वज्जनो (**यूयम्**) आप लोग (**नः**) हमें (**सदा**) सर्वदा, (**स्वस्तिभिः**) सुखदायक साधनों द्वारा (**पात**) रक्षा करें।

भावार्थः—ज्ञान और कर्म में रमने वा बसने वाले ऋत्विग् लोग यज्ञों में परमेश्वर की स्तुति करते हुए शक्तिशाली इस अग्नि की प्रशंसा करते हैं। यह अग्नि हम लोगों में धन की पुष्टि को धारण कराता है। हे विद्वानो! आप सदा सुखकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥८॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १२३

ऋषिः—१—८ वेनः ॥ देवता—वेनः ॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ।
२—४, ६, ८ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥१॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**वेनः**) आदित्य (**ज्योतिः**) द्योतमान तथा (**जरायुः**) मेघों के मध्य वेष्टित हुआ (**रजसः**) जल के (**विमाने**) निर्माता अन्तरिक्ष में (**पृश्निगर्भाः**) सूर्यरश्मियें गर्भ में हैं जिनके ऐसे जलों को (**चोदयत्**) वृष्ट्यर्थं प्रेरित करता है, (**अपाम्**) अन्तरिक्षस्थ जलों के तथा (**सूर्यस्य**) सूर्य के

(**संगमे**) संगमन स्थान अन्तरिक्ष में (**इयम**) इस आदित्य को (**विप्राः**) ज्ञानी-जन (**शिशुम् न**) शिशु के समान (**मतिभिः**) प्रशंसा वचनों से (**रिहन्ति**) स्तुत करते हैं ।

भावार्थः—यह आदित्य द्योतमान तथा मेघों के मध्य वेष्टित हुआ सूर्य रश्मियों से युक्त अन्तरिक्षस्थ जलों को जल के निर्माता अन्तरिक्ष में वृष्टि के लिए प्रेरित करता है। अन्तरिक्षस्थ जलों और सूर्य के संगमन स्थान में विद्यमान इस आदित्य की ज्ञानीजन शिशु की भाँति प्रशंसा वचनों से प्रशंसा करते हैं ॥१॥

समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२॥

पदार्थः (**नभोजाः**) आकाश में उत्पन्न (**वेनः**) आदित्य (**समुद्राद्**) अन्तरिक्ष मे (**ऊर्मिम्**) जल धारा को (**उदियर्ति**) भूमि पर प्रेरित करता अथवा बरसाता है (**हर्यतस्य**) कान्तिमान् आदित्य के (**पृष्ठम्**) पीठ को विद्वान् लोग (**दर्शि**) देखते है (**ऋतस्य**) जल के (**सानौ**) शिखरभूत (**विष्टपि अधि**) अन्तरिक्ष में (**समानम्**) समान (**योनिम्**) स्थान वाले इस आदित्य की (**व्राः**) विद्वान्-जन (**अभ्यनूषत**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः आकाशस्थ आदित्य अन्तरिक्ष से जलधारा को पृथिवी पर प्रेरित करता है। कान्तिमान् इस सूर्य के पृष्ठ भाग को ज्ञानी जन देखते हैं। जल के शिखरभूत अन्तरिक्ष में समान स्थान में स्थित इस आदित्य की विद्वज्जन प्रशंसा करते हैं ॥२॥

समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥३॥

पदार्थः—(**पूर्वीः**) बहुत (**समानम्**) समान स्थान को (**अभि**) प्राप्त कर (**वावशानाः**) शब्द करती हुई (**वत्सस्य**) वत्सभूत विद्युत् की (**मातरः**) माताभूत (**सनीलाः**) समान स्थान वाली जलें (**तिष्ठन्**) स्थित रहती हैं। (**ऋतस्य**) जल के (**सानौ अधि**) सर्वोच्च स्थान में (**चक्रमाणाः**) प्रवर्तमान (**मध्वः**) मधुर (**अमृतस्य**) जल के (**वाणीः**) शब्द इस वेन=आदित्य की (**रिहन्ति**) अर्चना करती है ।

भावार्थः—बहुत सी समान स्थान को प्राप्त शब्द करती हुई वत्सभूत विद्युत् की माताभूत समान स्थान वाली जलें अन्तरिक्ष में स्थिर रहती हैं। जल के सर्वोच्च स्थान अन्तरिक्ष में प्रवर्तमान मधुर जल के शब्द=गर्जन इस आदित्य की प्रशंसा करते हैं ॥३॥

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥४॥

पदार्थः - (**विप्राः**) मेधावी लोग इस वेन=आदित्य के (**रूपम**) स्वरूप को (**जानन्तः**) जानते हुए (**अकृपन्त**) इसकी प्रशंसा करते हैं (**मृगस्य**) अन्वेष्टव्य (**महिषस्य**) महान् आदित्य के (**घोषम्**) मेघस्थ शब्द को (**ग्मन्**) जानते हैं वे (**ऋतेन**) सत्यभूत नियम के द्वारा (**यन्तः**) आदित्य को जानते हुए (**सिन्धुम**) स्यन्दनशील जल समूह को (**अधि अस्थुः**) पहुँचते हैं (**गन्धर्वः**) किरणों का धारक यह आदित्य (**अमृतानि**) अमर (**नाम**, जलों को (**विदत**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः— मेधावी लोग इस आदित्य के स्वरूप को जानते हुए इस की प्रशंसा करते हैं। अन्वेष्टव्य महान् मेघ की गर्जना को भी जानते हैं। वे सृष्टि नियम द्वारा आदित्य को जानते हुए स्यन्दनशील जल समूह को पहुँचते हैं। किरणों का धारक यह आदित्य जलों को प्राप्त करता है ॥४॥

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५॥

पदार्थः—(**अप्सराः**) अप्सारिणी, विद्युत् (**योषा इव**) स्त्री के समान (**उपसिष्मियाणा**) हंसती हुई अर्थात् गरजती हुई अथवा चमकती हुई (**परमे**) परम (**व्योमन्**) अन्तरिक्ष में (**जारम**) जलों के जरयिता आदित्य को (**बिभर्ति**) धारण करती है, अर्थात् पुष्ट करती है, (**प्रियस्य**) प्रिय इस सूर्य के (**योनिषु**) स्थानों में (**चरत**) विचरती है (**सः**) वह (**वेनः**) आदित्य (**प्रियः**) उस विद्युत् का प्रिय (**सन्**) हुआ (**हिरण्यये**) ज्योतिष्क (**पक्षे**) अपने पक्षभूत मेघ में (**सीदत**) उसके साथ स्थित होता है ।

भावार्थः- अप्सारिणी=जल को प्राप्त कराने वाली विद्युत् स्त्री के समान गर्जती हुई अथवा चमकती हुई अन्तरिक्ष में जलों के जरयिता आदित्य को पुष्ट करती है। प्रिय आदित्य के स्थानों अर्थात् अन्तरिक्ष और

मेघों में यह विद्युत् विचरती है। इस विद्युत् का प्रिय यह आदित्य अपने भास्वर पक्ष मेघ में इसके साथ स्थित होता है ॥५॥

नाके॑ सु॒प॒र्णमुप॒ यत्पत॑न्तं हृ॒दा वेन॑न्तो अ॒भ्यच॑क्षत त्वा ।
हिर॑ण्यपक्षं॒ वरु॑णस्य दू॒तं य॒मस्य॒ योनौ॑ शकु॒नं भु॑र॒ण्युम् ॥६॥

पदार्थः—(**हृदा**) हृदय से (**वेनन्तः**) कामना करते हुए मेधावीजन (**नाके**) अन्तरिक्ष में (**उप पतन्तम्**) गति करते हुए (**सुपर्णम्**) शोभन किरणों वाले, (**हिरण्यपक्षम्**) प्रकाशमान पक्षों से युक्त (**वरुणस्य**) जलीय तत्त्व के दूत (**यमस्य**) नियामक वैद्युत अग्नि के (**योनौ**) स्थान अन्तरिक्ष में (**शकुनम्**) पक्षी के समान वर्तमान (**भुरण्युम्**) भरण करने वाले जिस (**त्वा**) इस आदित्य को (**यत्**) जिस प्रकार (**अभि अचक्षत**) देखते हैं उसी प्रकार हम सब भी देखा करें।

भावार्थः—हृदय से जानने की इच्छा करते हुए मेधावीजन अन्तरिक्ष में गतिशील, उत्तम किरणों वाले, प्रकाशमान पक्षों वाले जलीय तत्व के दूत और वैद्युत अग्नि के स्थान अन्तरिक्ष में पक्षी के समान वर्तमान भरण=पोषण करने वाले आदित्य को जिस प्रकार देखते और जानते हैं वैसे ही हम सब भी देखा करें ॥६॥

ऊ॒र्ध्वो ग॑न्ध॒र्वो अधि॒ नाके॑ अस्थात्प्र॒त्यङ् चि॒त्रा बिभ्र॑द॒स्यायु॑धानि ।
वसा॑नो॒ अत्कं॑ सु॒रभिं॑ दृ॒शे कं स्व१॒॑र्ण नाम॑ जनत प्रि॒याणि॑ ॥७॥

पदार्थः—(**ऊर्ध्वः**) ऊपर वर्तमान (**गन्धर्वः**) जलों का धारक आदित्य (**अस्य**) अपने (**चित्रा**) अद्भुत (**आयुधानि**) वज्र आदि आयुधों को (**बिभ्रद्**) धारण करता हुआ, (**दृशे**) लोगों के दर्शनार्थ (**सुरभिम्**) शोभन (**अत्कम्**) रूप को (**वसानः**) आच्छादित करता हुआ, (**स्वः कम् न**) प्रकाश के समान (**प्रियाणि**) प्रियकर (**नाके अधि**) आकाश में (**अस्थात्**) स्थित होता है। तथा (**नाम**) उदक जलों को (**जनत**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—उपरि स्थान में वर्तमान जलों का धारक अपने अद्भुत वज्र आदि आयुधों को धारण करता हुआ, शोभन रूप को आच्छादित करता हुआ, प्रकाश के समान यह आदित्य आकाश में स्थित होता है और जलों को उत्पन्न करता है ॥७॥

द्र॒प्सः स॑मु॒द्रम॒भि यज्जिगा॑ति॒ पश्य॒न्गृध्र॑स्य॒ चक्ष॑सा॒ विध॑र्मन् ।
भा॒नुः शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ चका॒नस्तृ॒तीये॑ चक्रे॒ रज॑सि प्रि॒याणि॑ ॥८॥

पदार्थः—(**विधर्मन्**) अन्तरिक्ष में स्थित (**द्रप्सः**) उदक बिन्दुओं का धारक (**गृध्रस्य**) रसों को चाहने वाले सूर्य के (**चक्षसा**) तेज से (**पश्यन्**) प्रकाशमान आदित्य (**यत्**) जब (**समुद्रम्**) क्लेदयुक्त मेघ को (**अभि जिगाति**) प्राप्त होता है तब (**भानुः**) सूर्य (**शुक्रेण**) शुभ्र (**शोचिषा**) तेज से (**तृतीये**) तीसरे (**रजसि**) लोक अर्थात् द्युलोक में (**चकानः**) चमकता हुआ (**प्रियाणि**) प्रियकर जलों को (**चक्रे**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—अन्तरिक्ष में स्थित, जल बिन्दुधारी रसों को चाहने वाले सूर्य के तेज से प्रकाशमान आदित्य जब क्लेदनयुक्त मेघ को (अभि जिगाति) प्राप्त होता है तब सूर्य शुभ्र तेज से द्युलोक में चमकता हुआ प्रियकर जलों को उत्पन्न करता है ॥८॥

सूचना—इस आठवें मन्त्र में आदित्यात्मक रूप में और भानु के रूप में एक ही सूर्य का वर्णन उसके भिन्न-भिन्न कार्यों और गुणों के कारण है। एक ही सूर्य की उसके कार्यों से भिन्न संज्ञा हो जाती है।

यह दशम मण्डल में एकसौ तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–१२४

ऋषिः—१, ५—९ **अग्निवरुणसोमानां निहवः** । २—४ **अग्निः** ॥ **देवता**—१—४ **अग्निः** । ५—८ **यथानिपातम्** । ९ **इन्द्रः** ॥ **छन्दः**—१, ३, ८ **त्रिष्टुप्** । २, ४, ६ **निचृत्त्रिष्टुप्** । ५ **विराट्त्रिष्टुप्** । ९ **पादनिचृत्त्रिष्टुप्** । ७ **जगती** ॥ **स्वरः**—१—६, ८, ९ **धैवतः** । ७ **निषादः** ॥

इ॒मं नो॑ अग्न॒ उप॑ य॒ज्ञमेहि॒ पञ्च॑यामं त्रि॒वृतं॑ स॒प्ततं॑तुम् ।
असो॑ ह॒व्य॒वाळु॒त नः॑ पुरो॒गा ज्योगे॒व दी॒र्घं तम॒ आश॑यिष्ठाः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) अग्नि (**त्रिवृतम**) पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयज्ञ भेद वाले (**पञ्चयामम**) चार वर्ण पांचवां अवर्ण जिससे यज्ञ करता है अथवा चार ऋत्विज् और यजमान से किये जाने वाले (**सप्त तन्तुम**) 'अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र आप्तोयमि रूप में विस्तीर्ण, (**इमम**) इस (**नः**) हमारे (**यज्ञम**) यज्ञ (**उप आइहि**) प्राप्त होता है, हमारा (**हव्यवाट्**) हव्यवाहक (**असः**) होता है, (**उत**) और (**नः**) हमारा (**पुरोगाः**) होता अग्रगण्य होता है, (**ज्योक् एव**) चिरकाल तक (**दीर्घम**) दीर्घ (**तमः**) अन्धकार में (**आ अशयिष्ठाः**) छिपा रहता है अर्थात् पृथिवी के अन्तराल, जलकी गहराई और मेघ आदि के अन्दर छिपा रहता है ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारे त्रिवृत, पंचयाम. सप्ततन्तु यज्ञ को प्राप्त होता है । वह हमारे द्वारा प्रदत्त हवि का वाहक और पुरोगन्ता होता है और वह अत्यन्त गूढ स्थानों में भी विद्यमान रहता है ।।१।।

अदेवादेवः प्रचता गुहा यन्प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि ।
शिवं यत्सन्तमशिवो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेमि ।।२।।

पदार्थः—(**गुहा**) गुहा में वर्तमान (**अदेवान्**) अदेवरूप अग्नि से (**प्रचता**) देवों से याचना किए जाने से (**यन्**) बाहर आता हुआ (**देवः**) देवनशील (**प्रपश्यमानः**) हवि को प्राप्त होता हुआ (**अमृतत्वम**) देवत्व को (**ऐमि**) प्राप्त होता है (**शिवम**) कल्याणकारक (**सन्तम**) होते हुए मी यज्ञ को (**अशिवः**) अशिव होकर (**यत्**) जब (**जहामि**) छोड़ देता है तब (**स्वात्**) स्वकीय (**सख्यात्**) मैत्री भाव से (**नाभिम**) बन्धनशील (**अरणीम**) अरणी को (**एमि**) प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थः—जब यज्ञ की हवि को वहन न करते यह अग्नि अप् आदि पदार्थों में गूढ़ रहता है तब यह अदेव रहता है पुनः जब यह हवि का वहन करता है तब यह देवत्व को प्राप्त कर लेता है । शिव यज्ञ को अशिव रूप जब यह छोड़ देता है तब बांध रखने वाली अरणी में जा बैठता है ।।२।।

पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयायां ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि ।
शंसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि ।।३।।

पदार्थः—(**अन्यस्याः**) इस पृथिवी से भिन्न (**वयायाः**) गमनीय द्युलोक सम्बन्धी (**अतिथिम**) सततगामी सूर्य को (**पश्यत्**) देखता हुआ (**ऋतस्य**) यज्ञ

के (**पुरूणि**) बहुत से (**धाम**). कलेश्वरों को (**वि मिमे**) निष्पादित करता है (**पित्रे**) पितृभूत (**असुराय**) देवजन के लिए (**शेवम**) सुख को उद्देश में रखकर (**शंसामि**) उक्थ को कहलाता है और (**अयज्ञियात्**) अयज्ञमय स्थान से निकल कर (**यज्ञियम**) यज्ञिय (**भागम**) भाग को (**एमि**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—इस पृथिवी से गमनीय द्युलोक सम्बन्धी सततगामी सूर्य को देखता हुआ अर्थात् पूर्य से होने वाले वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता हुआ विविध यज्ञों को निष्पन्न करता है, पितृभूत देवजनों के सुख को उद्देश्य में रखकर यह अग्नि अयज्ञिय गूढ़ स्थानों से निकल कर यज्ञिय भाग को प्राप्त होता है ।।३।।

बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि ।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावद्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ।।४।।

पदार्थः—(**बह्वीः**) बहुत (**समाः**) संवत्सरों तक (**अस्मिन्**) इस वेदि के (**अन्तः**) अन्दर (**अकरम**) निवास करता है, (**इन्द्रम**) इन्द्र को (**वृणानः**) स्वीकार करते हुए (**पितरम**) पितृभूत अरण्य को (**जहामि**) छोड़ देता है, जब यह गुहा में छिपा रहता है तब (**अग्निः**) यज्ञ निष्पादक अग्नि, (**सोमः**) सोम, (**वरुणः**) वरुण भूमि के राष्ट्र से (**च्यवन्ते**) च्युत होते है (**आयन्**) पुनः आ कर (**तत्**) उस (**राष्ट्रम**) राष्ट्र को (**पर्यावत्**) पुनः लौटा कर (**अवामि**) असुरों से बचाता है ।

भावार्थः—बहुत सम्वत्सरों तक इस वेदि में यह अग्नि निवास करता है । इन्द्र को स्वीकार करता हुआ पितभूत वनस्पति और अरण्य को छोड़ देता है । जब यह यज्ञ में न रहकर गुहा में छिपा रहता है तब यज्ञ निष्पादक अग्नि, सोम = पूषा, वरुण वायु भूमि के राष्ट्र से च्युत हो जाते हैं । वापस आकर यह अग्नि पुनः उस राष्ट्र को वापस लेकर असुरों से उसकी रक्षा करता है ।।४।।

निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे ।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ।।५।।

पदार्थः—अग्नि के यज्ञिय रूप में आ जाने पर (**त्ये**) वे (**असुराः**) असुर लोग (**निर्माया उ**) माया रहित (**अभूवन्**) हो जाते हैं, (**च**) यदि (**त्वम**)

यह (**वरुणः**) वरुण (**मा**) उस अग्नि को (**कामयासे**) चाहता हैं तो (**ऋतेन**) सत्य से (**राजन्**) राजा भूत यह (**अनृतम्**) असत्य को (**विविञ्चत्**) पृथक् करता हुआ (**मम**) अग्नि से पुनः वापस लाये गये (**राष्ट्रस्य**) राष्ट्र के (**आधिपत्यम्**) आधिपत्य को (**आ इहि**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—अग्नि के यज्ञियरूप में आ जाने पर ये असुर लोग माया-रहित हो जाते हैं। यदि यह वरुण उस अग्नि को चाहता है तो सत्य से असत्य का विवेचन करता हुआ राजा के रूप में इस वापस लिए गये राष्ट्र के आधिपत्य को प्राप्त करता है ॥५॥

इ॒दं स्व॑रि॒दमिदा॑स वा॒मम॒यं प्र॑का॒श उ॒र्व॑न्तरि॑क्षम् ।
हना॑त्र वृ॒त्रं नि॒रेहि॑ सोम ह॒विष्ट्वा॒ सन्तं॑ ह॒विषा॑ यजाम ॥६॥

पदार्थः—यहां पर यह अग्नि की उक्ति कल्पित की गई है सोम के प्रति—

(**सोम**) हे सोम ! (**इदम्**) यह (**स्वः**) द्युलोक है, (**इदम्**) यह (**इत्**) ही (**वामम्**) वननीय (**आस**) होता हैं, (**अयम्**) यह (**प्रकाशः**) प्रकाश का आधारभूत हैं, यह है (**उरु**) विस्तीर्ण (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष, संप्रति हम दोनों (**वृत्रम्**) मेघ को (**हनाव**) मारें (**निरेहि**) निकल (**हविः सन्तम् त्वा**) हवि होते हुए भी तेरे लिए देवता रूप में (**हविषा**) हवि से (**यजाम**) यज्ञ करते हैं।

भावार्थः—सोम=सोमतत्व के प्रति अग्नि की उक्ति है कि—हे सोम=सोमतत्त्व ! यह द्युलोक है। यह ही वननीय होता है। यह प्रकाश का आधार भूत है। यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष है। इस समय हम दोनों मेघ का हनन करें, निकलकर आओ ! तू हविरूप है परन्तु हम देवता रूप में तुम्हारे लिए हवि प्रदान करते हैं ॥६॥

क॒विः क॑वि॒त्वा दि॒वि रू॒पमास॑जद॒प्र॑भूती॒ वरु॑णो॒ निर॒पः सृ॑जत् ।
क्षेमं॑ कृण्वा॒ना जन॑यो॒ न सिन्ध॑व॒स्ता अ॑स्य॒ वर्णं॒ शुच॑यो भरिभ्रति ॥७॥

पदार्थः—(**कविः**) क्रान्तदर्शन सूर्य (**कवित्वा**) क्रान्तदर्शन से (**दिवि**) द्युलोक में (**रूपम्**) अपने तेज को (**आ सृजत्**) आसक्त करता है, (**अप्रभूती**) अल्प यत्न से (**वरुणः**) वायु अथवा जलीयतत्व (**अपः**) जलों को (**निः सृजत्**) निकालता है (**ताः**) ये जलें (**सिन्धवः**) स्पन्दनशील जल धारायें होकर (**जनयः न**) अपने पतियों के प्रति जायाओ के समान (**क्षेमम्**) क्षेम (**कृण्वानाः**) करती

हुई (**शुचयः**) दीप्यमान (**अस्य**) इस वरुण के (**वर्णम्**) शुक्ल भास्वर रूप को (**भरिभ्रति**) धारण करती हैं।

भावार्थः क्रान्तदर्शन सूर्य अपनी तीक्ष्णता से द्युलोक में अपने तेज को आसक्त करता है। अल्प प्रयत्न से वरुण=आपस्तत्व जलों को निकालता है। वे जलें स्यन्दनवाली जलधारायें होकर अपने-अपने पतियों के प्रति पत्नियों की तरह लोक के क्षेम को करती हुई दीप्यमान हुई इस वरुण के शुक्ल भास्वर रूप को धारण करती हैं ॥७॥

ता अ॑स्य॒ ज्येष्ठ॑मिन्द्रि॒यं स॑चन्ते॒ ता ई॒मा क्षे॑ति स्व॒धया॒ मद॑न्तीः ।
ता ई॒ वि॒शो न राजा॑नं वृणा॒ना बी॑भ॒त्सुवो॒ अप॑ वृ॒त्राद॑तिष्ठन् ॥८॥

पदार्थः—(**ताः**) वे स्यन्दन वाली जल धारायें (**अस्य**) इस वरुण के (**ज्येष्ठम्**) श्रेष्ठ (**इन्द्रियम्**) बल को (**सचन्ते**) धारण करती हैं (**ताः**) उन (**स्वधया**) हवि में डाले गए अन्न आदि से (**मदन्तीः**) तृप्त करती हुई जलों को (**ईम्**) यह वरुण (**आ क्षेति**) प्राप्त करता है, (**ताः**) वे (**विशः न**) प्रजा के समान (**ईम्**) इस वरुण को (**राजानम्**) राजा (**वृणानाः**) वरण करती हुई (**बीभत्सुवः**) वृत्र से आवृत हुई वृत्र के वध के बाद (**वृत्रात्**) उस वृत्र से (**अपप्रतिष्ठन्**) दूर रहती हैं।

भावार्णः—वे स्यन्दन वाली जल धारायें वरुण के श्रेष्ठ बल को धारण करती हैं। पुनः यज्ञ में डाली गई अन्नमय हवि से तृप्त हुई उन धाराओं को वरुण प्राप्त करता है। वे प्रजा के समान वरुण को राजा वरण करती हुई वृत्र से आच्छादित हुई भी वृत्र=मेघ के वध के बाद उस से दूर हो जाती हैं ॥८॥

बी॒भ॒त्सूनां॑ स॒युजं॑ हं॒समा॑हुर॒पां दि॒व्यानां॑ स॒ख्ये चर॑न्तम् ।
अ॒नु॒ष्टुभ॒मनु॑ चर्चू॒र्यमा॑ण॒मिन्द्रं॒ नि चि॑क्युः क॒वयो॑ मनी॒षा ॥९॥

पदार्थः—(**कवयः**) विद्वान् लोग (**बीभत्सूनाम्**) मेघ से बचे हुए (**दिव्यानाम्**) अन्तरिक्ष जलों के (**सख्ये**) सख्य में (**चरन्तम्**) वर्तमान (**हंसम्**) सूर्य को (**सयुजम्**) सखा (**आहुः**) कहते हैं तथा (**अनुष्टुभम्**) अनुष्टुप् से युक्त यज्ञ को (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**चर्चूर्यमाणम्**) पुनः पुनः चलते हुए (**इन्द्रम्**) वायु को (**मनीषा**) बुद्धि से (**नि चिक्युः**) जानते हैं।

भावार्थः—विद्वान् लोग मेघ से बंधे हुए अन्तरिक्षस्थ जलों की मैत्री में वर्तमान सूर्य को इनका सखा कहते हैं तथा अनुष्टुप् छन्द से युक्त यज्ञ को लक्ष्य में रखकर पुनः पुनः बहते हुए वायु को बुद्धि से जानते हैं ॥६॥

सूचना—इस सूक्त में जल आदि में गूढ़ और हवि को न वहन करने वाले अग्नि का हवि वहन कार्य में प्रवृत्त होकर अदेवत्व से देवत्व प्राप्त करने का वर्णन है। जो पूर्ववर्ती मन्त्रों से प्रकट होता है। जब यज्ञ की भावना पृथिवी पर लुप्त होने लगती है तब असुर पृथिवी को अपने काबू में कर लेते हैं और देव लोग पृथिवी पर से अपना राज्य गंवा बैठते हैं। सारी पृथिवी आसुरी=मेघमयी बन जाती है। विष्णु जो यज्ञ है उसका देव लोग विस्तार करते हैं और वह बढ़ने लगता है। बढ़ती हुई वह यज्ञ भावना समस्त पृथिवी पर फैल जाती है और सारी पृथिवी यज्ञ वेदी बन जाती है। इस प्रकार जितनी यह भूमि है उतनी यह वेदी है। देवों का पुनः पृथिवी पर राज्य होता है। इसी बात का संकेत एक से पांच मन्त्रों में किया गया है।

यह दशम मण्डल में एकसौ चौवीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२५

ऋषिः—१—८ **वागम्भृणी** ॥ **देवता**—**वागम्भृणी** ॥ **छन्दः**—१, ३, ७, ८ **विराट्त्रिष्टुप्** । ४, ५, **त्रिष्टुप्** । ६ **निचृत्त्रिष्टुप्** । २ **पादनिचृज्जगती** ॥ **स्वरः**—१, ३—८ **धैवतः** । २ **निषादः** ॥

सूचना—यह १२५ वां सूक्त वागम्भृणीय सूक्त है। अम्भृण शब्द बहुत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बहुतों की वाणी अर्थात् राजा की सर्वोच्च सभा (राजपरिषद्) का इस सूक्त में वर्णन है। उसकी अपनी शक्ति आदि को उसी के द्वारा वर्णन कराया गया है। इस प्रकार सारा कथन राजपरिषद् का स्वयं का है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्र सभा (**रुद्रेभिः**) रुद्र संज्ञक विद्वानों और कार्यकरों से, (**वसुभिः**) वसुसंज्ञक विद्वानों और कार्यकरों से (**चरामि**) अपने कार्य कलाप में विचरती हूँ, (**अहम्**) मैं (**आदित्यैः**) आदित्य संज्ञक विद्वानों और कार्यकरों से (**उत**) तथा (**विश्वदेवैः**) समस्त वैज्ञानिक और विद्याविदों से अपने कार्यों में विचरती हू, (**अहम्**) मैं (**उभा**) दोनों (**मित्रावरुणा**) वायु और जलों को (**बिभर्मि**) अपने काबू में रखती हूं, (**अहम्**) मैं (**इन्द्राग्नी**) विद्युत् और अग्नि को और (**अहम्**) मैं (**उभा**) दोनों (**अश्विनौ**) भूमि और आकाश को अपने काबू में रखती हूं। २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालन से हुए विद्वान् को वसु, ३६ वा ४४ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालन से हुए विद्वान् रुद्र और ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालन और विद्या प्राप्ति से हुए विद्वान् को आदित्य कहा जाता है।

भावार्थः—मैं राष्ट्रपरिषत् वसु, रुद्र, आदित्य विद्वानों और कार्यकर्ताओं तथा समस्त वैज्ञानिक और विद्याविदों से अपने कार्यकलापों में विचरती हूं। मैं वायु और जल, विद्युत् और अग्नि तथा आकाश और भूमि पर अपना अधिकार रखती हूँ ॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्रसभा (**आहनसम्**) शत्रुओं के विनाशक (**सोमम्**) सोमतत्व को (**बिभर्मि**) धारण करती हूं, (**अहम्**) मैं (**त्वष्टारम्**) सूर्य को (उत) और (**पूषणम्**) राष्ट्र के पोषक बल और (**भगम्**) ऐश्वर्य को धारण करती हूं, (**हविष्मते**) हवि आदि से यज्ञ करने वाले, (**सुप्राव्ये**) अच्छी प्रकार लोगों को तृप्त करने वाले (**सुन्वते**) उत्तम पदार्थों के उत्पादक (**यजमानाय**) देव पूजा, संगति करण और दान के करने वाले के लिए (**द्रविणम्**) धन को (**अहम्**) मैं (**दधामि**) धारण करती हूँ।

भावार्थः मैं राष्ट्रसभा शत्रुओं के विनाशक सोमतत्व को धारण करती हूं। सूर्य, पोषक बल और समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्य को मैं धारण करती हूं। हवि आदि यज्ञ करने वाले, सब लोगों को अन्न आदि से तृप्त करने वाले, उत्तम पदार्थों के उत्पादक तथा भगवान् की उपासना, संगति करण और दान को करने वाले व्यक्ति के लिये धन को मैं धारण करती हूँ ॥२॥

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्रसभा (**राष्ट्री**) पूरे राष्ट्र की स्वामिनी हूं (**वसूनाम्**) धनों की (**संगमनी**) सम्यक् प्राप्ति कराने वाली हूं, (**यज्ञियानाम्**) उत्तम कार्यों और व्यवहारों की (**प्रथमा**) मुख्य (**चिकितुषी**) सोच विचार और निर्णय करने वाली मैं हूं, (**देवाः**) विद्वान् और नागरिकजन (**ताम्**) उस (**मा**) मुझ राष्ट्रसभा को (**भूरि**) बहुत सी शक्तियों, कार्यों और अधिकारों को (**आवेशयन्तीम्**) प्राप्त हुई, (**भूरिस्थात्राम्**) बहुत के रूप में स्थित तथा (**पुरुत्रा**) बहुत जनों से युक्त (**व्यदधुः**) बनाते हैं ।

भावार्थः—मैं राष्ट्रसभा ही राष्ट्र की स्वामिनी हूं, धनों का संगमन मैं करती हूं, समस्त उत्तम कार्यों और व्यवहारों का मुख्य सोच-विचार और निर्णय करने वाली मैं हूं। विद्वान् और प्रजाजन मुझे बहुत सी शक्तियों, कार्यों, और अधिकारों को देकर बहुतों के समूह के रूप में बहुतों से युक्त हुई निर्मित करते हैं ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**अन्नम्**) अन्न को (**अत्ति**) खाता है, (**यः**) जो (**विपश्यति**) देखता है, (**यः**) जो (**प्राणिति**) श्वास आदि लेता है (**यः**) जो (**ईम्**) इस (**उक्तम्**) कहे हुए को सुनता है (**सः**) वह (**मया**) मेरे द्वारा ही ऐसा करता है, जो (**अमन्तवः**) विरोधी विचार करने वाले हैं (**ते**) वे (**माम्**) मेरे लिए (**उप क्षियन्ति**) विरोध भी करते हैं (**श्रुत**) हे श्रुतजन ! (**श्रुधि**) सुनो (**ते**) तेरे लिए (**श्रद्धिवम्**) श्रद्धायुक्त बात को (**वदामि**) कहती हूं ।

भावार्थः—जो खाता है, जो देखता है, जो श्वास आदि लेता है, जो कही बात को सुनता है उसका यह सब कुछ मुझसे ही होता है। विरोधी विचार वाले प्रजाजन मुझ पर आक्षेप भी करते हैं परन्तु मैं श्रद्धायुक्त बात को कहती हूं। हे श्रुत व्यक्ति ! तू इसे सुन ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

पदार्थः—जो (**देवेभिः**) विद्वानों से (**जुष्टम्**) प्रीति से सेवित है (**उत**) और जो (**मानुषेभिः**) मनुष्य लोगों सेवित है उस (**इदम्**) इस का (**अहम् एव**) मैं राष्ट्रसभा ही (**स्वयम्**) स्वयम् (**वदामि**) उपदेश करती हूँ, (**यम्**) जिसको गुण, कर्म और स्वभाव से (**कामये**) चाहती हूं (**तम्**) उस (**तम्**) उसको (**उग्रम्**) ऊंचा (**कृणोमि**) करती हूँ, (**तम्**) उसको (**ब्रह्माणम्**) ब्राह्मण, (**तम्**) उसको (**ऋषिम्**) ऋषि (**तम्**) उसको (**सुमेधाम्**) उत्तम बुद्धि वाला बनाती हूं ।

भावार्थः—जो विद्वानों से और जो मनुष्यों से सेवित ज्ञान अथवा व्यवहार है उसको मैं ही स्वयम् उपदेश करती हूं जिसको मैं गुण, कर्म, स्वभाव के परीक्षण से चाहती हूं, ब्राह्मण बनाती, ऋषि बनाती और ज्ञानी बनाती हूँ ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्रसभा (**रुद्राय**) कठोर शत्रु के लिए, (**ब्रह्मद्विषे**) ज्ञान के द्वेषी, (**शरवे**) हिंसक के (**हन्तवा उ**) हनन के लिए (**धनुः**) धनुष् (**आतनोमि**) तानती हूँ, (**अहम्**) मैं (**जनाय**) जनों के हित के लिए (**समदम्**) संग्राम (**कृणोमि**) करती हूं, (**अहम्**) मैं (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवी पर (**आविवेश**) व्याप्त रहती हूँ ।

भावार्थ—मैं राष्ट्रसभा कठोर शत्रु, ज्ञान के द्वेषी, हिंसक के हनन के लिए धनुष् तानती हूं । मैं जनों के हित के लिए संग्राम करती हूं और मैं द्युलोक और पृथिवी पर व्याप्त रहती हूं ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं राष्ट्रसभा (**अस्य**) उस राष्ट्र की (**मूर्धन्**) शिर पर (**पितरम्**) पालक राजा वा मुख्य को (**सुवे**) उत्पन्न करती वा स्थापित करती हूं, (**मम**) मेरा (**योनिः**) स्थान (**अप्सु अन्तः**) आकाश में और (**समुद्रे**) समुद्र में भी है, (**ततः**) उसी कारण से (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवनों (**अनु**) में (**वितिष्ठे**) स्थित रहती हूँ, (**उत**) और (**अमूम्**) इस (**द्याम्**) आकाश को (**वर्ष्मणा**) श्रेष्ठता से (**उपस्पृशामि**) छूती हूँ ।

भावार्थः—मैं राष्ट्रसभा इस राष्ट्र के मस्तक पर राजा अथवा पालक को बैठाती हूँ। मेरा स्थान अन्तरिक्ष और समुद्र में भी है। सारे भुवनों में प्रविष्ट होकर मैं रहती हूं। अपने गौरव से आकाश को छूती हूँ ॥७॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥८॥

पदार्थः (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवनों के (**आरभमाणा**) व्यवहार का चालू करते हुए (**अहम् एव**) मैं ही (**वात इव**) वायु के समान (**प्रवामि**) बहती हूँ, (**दिवा**) द्युलोक से (**परः**) परे (**एना**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**परः**) परे (**एतावती**) इतनी (**महिना**) महिमा (**संबभूव**) है।

भावार्थः—समस्त भुवनों के कार्य-व्यवहार को करती हुई मैं वायु की तरह बहती हूं। द्युलोक, पृथिवी से परे भी इतनी विस्तृत मेरी महिमा है ॥८॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १२६

ऋषिः १ ८ कुल्मलबर्हिषः शैलूषिः, अंहोमुग्वा वामदेव्यः ॥ **देवताः**—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ५, ६ **निचृद्बृहती** । २–४ **विराड्बृहती** । ७ बृहती । ८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–७ **मध्यमः** । ८ धैवतः ॥

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥१॥

पदार्थ—हे (**देवासः**) विद्वानो ! (**यम्**) जिस (**मर्त्यम्**) मनुष्य के (**द्विषः**) द्वेषकारी काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**सजोषसः**) सम्मिलित हुए (**अर्यमा**) न्यायकारी, (**मित्रः**) मित्र, (**वरुणः**) वरणीय श्रेष्ठ विद्वान् (**अति नयन्ति**) दूर करते हैं (**तम्**) उसे (**न**) न तो (**अंहः**) पाप (**न**) न (**दुरितम्**) दुरित ही (**अष्ट**) व्यापता है।

भावार्थः—हे विद्वज्जनो ! जिस मर्त्य=मनुष्य के द्वेष्टा काम क्रोध आदि शत्रुओं को न्यायकारी मनुष्य, मित्र, वरणीय पुरुष मिलकर दूर कर देते हैं उसे न पाप और नहीं ही कोई दुरित व्याप्त होता है ॥१॥

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ॥२॥

पदार्थः—(**वरुण**) हे वरणीय पुरुष ! (**मित्र**) हे मित्रभूत पुरुष ! (**अर्यमन्**) हे न्यायकारिन् पुरुष ! (**यूयम्**) आप लोग (**येन**) जिस अपने रक्षण से (**अंहसः**) पाप से (**मर्त्यम्**) मनुष्य की (**निपाथ**) रक्षा करते हो, (**च**) और (**द्विषः**) काम क्रोध आदि को (**अतिनेथ**) दूर करते हो (**तत्**) उस रक्षण को (**हि**) ही (**वयम्**) हम (**वृणीमहे**) मांगते हैं।

भावार्थः—हे वरणीय पुरुष ! हे मित्र ! हे न्यायकारी पुरुष ! आप लोग जिस अपने रक्षण से मनुष्य को पाप से बचाते हो तथा काम क्रोध आदि शत्रुओं को दूर करते हो हम आप के उस रक्षण को अपने लिए मांगते हैं ॥२॥

ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ॥३॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**वरुणः**) वरुण (**मित्रः**) मित्र (**अर्यमा**) अर्यमा (**ते**) वे (**नूनम्**) निश्चय ही (**नः**) हमारे (**ऊतये**) रक्षण के लिए होते हैं, हे वरुण आदि देवो ! (**नः**) हमें (**नेषणि**) नेतव्य विषय में (**नयिष्ठाः**) ले चलो (**द्विषः**) द्वेष कारियों को (**अति पर्षिष्ठाः**) पार लगाओ।

सूचनाः ये मित्र, वरुण और अर्यमा आदि योग्यजन निश्चय ही हमारे रक्षण के लिए होते हैं। हे इस प्रकार के पुरुषो ! आप हमें हमारे नेतव्य विषयों में नेता बनकर ले चलें और पार लगाने योग्य विषयों में हमें द्वेषों से पार ले जावें ॥३॥

यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ॥४॥

पदार्थः—(**वरुणः**) हे वरुण, (**मित्रः**) हे मित्र, (**अर्यमा**) हे अर्यमन् (**यूयम्**) आप (**विश्वम्**) समस्त जगत् की (**परिपाथ**) रक्षा करते हो, हे (**सुप्रणीतयः**) उत्तम नीति वाले वरुण आदि ! हम सब (**युष्माकम्**) आप लोगों के (**प्रिये**) अनुकूल (**शर्मणि**) सुख में (**स्याम**) होवें, (**द्विषः**) द्वेषकारी काम क्रोध मोह आदि को (**अति**) दूर करो ।

भावार्थः—हे वरुण ! हे मित्र ! हे अर्यमन् ! आप लोग समस्त जगत् की रक्षा करते हो। हे उत्तम व्यवहार और नीति वाले ! हम आप लोगों के प्रिय सुख में होवें और हम से हमारे काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि शत्रुओं को दूर करो ।।६।।

आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ॥५॥

पदार्थः—(**आदित्यासः**) ब्रह्मचर्य आदि नियमों का ४८ **वर्ष** तक पालन करके विविध विद्याओं को प्राप्त किए हुए विद्वान् (**वरुणः**) वरुण, (**मित्रः**) मित्र (**अर्यमा**) अर्यमन् ! आप लोग (**स्रिधः**) हिंसक वृत्तियों को हम से (**अति**) दूर कीजिए, हम (**मरुद्भिः**) ऋत्विजों सहित (**उग्रम्**) तेजस्वी (**रुद्रम्**) रुद्र ब्रह्मचारी विद्वान (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यशाली पुरुष राजा को, (**अग्निम्**) ज्ञान से प्रकाशमान नेता को (**स्वस्तये**) अपने कल्याण के लिए (**हुवेम**) पुकारते हैं, वे (**द्विषः**) हमारे काम क्रोध आदि को (**अति**) दूर करें ।

भावार्थः —आदित्य विद्वान् की कोटि में विद्यमान वरुण, मित्र और अर्यमा लोग हमारी हिंसक प्रवृत्तियों को दूर करें । हम लोग अपने कल्याणार्थ ऋत्विजों सहित तेजस्वी रुद्र ब्रह्मचारी विद्वान्, ऐश्वर्यशाली राजा ज्ञान से प्रकाशमान नेता को पुकारते हैं । वे हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को हम से दूर करें ।।५।।

नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ॥६॥

पदार्थः— नेतारः) उत्तम कर्मों के नेता, (**वरुणः**) वरणीय पुरुष, (**मित्रः**) मित्र तथा (**अर्यमा**) न्यायकारी पुरुष (**नः**) हमारे दुर्गुणों को (**सु**) सुष्ठु प्रकार से (**तिरः**) दूर करें (**चर्षणीनाम**) मनुष्यों के (**राजानः**) स्वामी ये (**विश्वानि**) समस्त (**दुरिता**) दुःखों-पापों आदि को (**अति**) दूर करें (**द्विषः**) काम क्रोध आदि को (**अति**) हटावें ।

भावार्थ — उत्तम कर्मों के नेता ये वरुण, मित्र और अर्यमा हमारे दुर्गुणों को भली प्रकार से हमसे दूर करें। मनुष्यों के स्वामी ये समस्त दुःखों और पापों को दूर रखें और हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को हटावें ।।४।।

शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ॥७॥

पदार्थः—(**वरुणः**) वरुण (**मित्रः**) मित्र, (**अर्यमा**) अर्यमा (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**अस्मभ्यम**) हमें (**शुनम**) सुख दें, (**आदित्यासः**) आदित्य संज्ञक विद्वान् लोग (**सप्रथः**) विस्तृत (**शर्म**) वह सुख हमें (**यच्छन्तु**) दें (**यत**) जिसे हम (**ईमहे**) चाहते हैं (**द्विषः**) हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**अति**) दूर हटावे ।

भावार्थः - ये वरुण, मित्र और अर्यमा हमारी रक्षा के लिए हमें सुख प्रदान करें। आदित्य विद्वान् विस्तृत वह सुख हमें दें जिसको हम चाहते हैं। हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को हमसे दूर करें ।।७।।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥८॥

पदार्थः— हे (**वसवः**) वासक एवम् वसुविद्वानो ! हे (**यजत्राः**) यज्ञ करने वालो ! (**त्यत् ह**) वह प्रसिद्ध आप लोग (**यथा**) जिस प्रकार (**पदि**) पांव में (**षिताम्**) बंधी हुई (**गौर्यम् चित्**) गौर वर्ण वाली गाय को (**अमुञ्चत**) छुड़ाते हो (**एवो**) उसी प्रकार (**अस्मत्**) हम से (**अंहः**) बुराई को (**सु**) भली प्रकार से (**वि मुञ्चत**) छुड़ाओ, (**अग्ने**) हे विद्वान् ! आचार्य ! (**नः**) हमारे (**आयुः**) जीवन को (**प्रतरम्**) दीर्घ (**प्रतारि**) बढ़ाओ ।

भावार्थ - हे वसु विद्वानो ! हे यज्ञकर्त्ता आप लोग जिस प्रकार पांव में रस्सी बंधी गाय को छुड़ाते हो इसी प्रकार हमसे बुराई को छुड़ाकर दूर करो। हे विद्वन् आचार्य ! हमारी आयु को आप लम्बी बढ़ाओ ।।८।।

यह दशम मण्डल में एकसौ छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—१२७

ऋषिः—१–८ कुशिकः सौभरो, रात्रिर्वा भारद्वाजी ॥ देवता—रात्रिस्तवः ॥
छन्दः—१, ३, ६ विराड्गायत्री । २ पादनिचृद्गायत्री । ४, ५, ८
गायत्री । ७ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

रात्री॒ व्य॑ख्यदाय॒ती पु॑रु॒त्रा दे॒व्य१॒॑क्षभिः ।
विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॑ऽधित ॥१॥

पदार्थः—(**आयती**) आती हुई (**अक्षभिः**) रंजक तेजों अथवा नक्षत्रों से (**पुरुत्रा**) बहुत स्थानों में (**देवी**) देवन शीला (**रात्री**) यह रात्रि (**वि अख्यत**) विशेष रूप से देखी जाती है, (**विश्वाः**) समस्त (**श्रियः**) शोभाओं को (**अधि अधित**) धारण करती है ।

भावार्थः—आती हुई और चमकते नक्षत्रों अथवा तेजों से बहुत से प्रदेशों में देवनशील भूत यह रात्रि विशेषरूप से दिखाई पड़ती है। यह समस्त शोभाओं को धारण करती है ॥१॥

ओर्व॑प्रा॒ अम॑र्त्या नि॒वतो॑ दे॒व्यु१॒॑द्वतः॑ ।
ज्योति॑षा बाधते॒ तमः॑ ॥२॥

पदार्थः—(**अमर्त्या**) मरणरहिता (**देवी**) देवनशीला रात्रि (**उरु**) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (**आ अप्राः**) तम से पूरित करती है, तथा (**निवतः**) नीचे जाने वाले लता गुल्मों आदि को (**उद्वतः**) उठे हुए वृक्षादिकों को अपने प्रभाव से घेरती है, बाद में उस (**तमः**) अन्धकार को (**ज्योतिषा**) ग्रह नक्षत्रादि रूप तेज से (**बाधते** , बाधित करती है ।

भावार्थः—मरणरहित, देवनशीला रात्रि विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को तम से पूरित करती है तथा नीचे जाने वाले लता गुल्मादिकों, और ऊपर खड़े हुए वृक्ष आदि को अपने प्रभाव से घेरती है। बाद में ग्रह नक्षत्र आदि तेजों से उस अन्धकार को पीड़ित करती है ॥२॥

निरु॒ स्वसा॑रमस्कृतो॒षसं॑ दे॒व्या॑य॒ती ।
अपेदु॑ हासते॒ तमः॑ ॥३॥

पदार्थ—(**आयती**) आती हुई (**देवी**) देवनशीला रात्रि (**स्वसारम्**) भगिनी (**उषसम्**) उषा को (**निः अकृत उ**) प्रकाश से संस्कृत करती है (**तमः**) अन्धकार (**अपइद**) दूर होता हुआ (**हासते**) जाता है। अर्थात् अपगत होता है।

भावार्थः—आती हुई देवनशीला रात्रि अपनी भगिनी उषा को प्रकाश से संस्कृत करती है और उसके उदय होने से रात्रि सम्बन्धी अन्धकार अपगत हो जाता है ॥३॥

सा नो॑ अ॒द्य यस्या॑ व॒यं नि ते॒ याम॒न्नवि॑क्ष्महि ।
वृ॒क्षे न व॑स॒तिं वयः॑ ॥४॥

पदार्थः -(**यस्याः**) जिस (**ते**) इस रात्रि के (**यामन्**) प्राप्त होने पर (**वयम्**) हम उसी प्रकार (**नि अविक्ष्महि**) सुख से घर में निवास करते हैं (**न**) जिस प्रकार (**वृक्षे**) वृक्षपर (**वयः**) पक्षिगण (**वसतिम्**) निवास करते हैं (**सा**) वह रात्रि (**अद्य**) आज सुखकारी होवे ।

भावार्थः—जिस इस रात्रि के आने पर हम उसी प्रकार अपने घरों में सुख से निवास करते हैं जिस प्रकार वृक्ष पर पक्षिगण निवास करते हैं, वह रात्रि आज हमें सुखावहा हो ॥४॥

नि ग्रामा॑सो अविक्षत॒ नि प॒द्वन्तो॒ नि प॒क्षिणः॑ ।
नि श्ये॒नास॑श्चिद॒र्थिनः॑ ॥५॥

पदार्थः—जिस रात्रि के आ जाने पर (**ग्रामासः**) सारे लोग (**नि अविक्षत**) सो जाते हैं, (**पद्वन्तः**) पशु आदि (**नि**) सो जाते हैं (**पक्षिणः**) पक्षी लोग (**नि**) सो जाते हैं (**अर्थिनः**) शीघ्र गमन वाले (**श्येनाः चित्**) श्येन आदि भी (**नि अविक्षत**) सो जाते हैं वह रात्रि सब को सुख देने वाली हो ।

भावार्थः—जिस रात्रि के आ जाने पर सारे लोग सो जाते हैं, सारे पशु सो जाते हैं, सारे पक्षी सो जाते हैं और शीघ्र गमन वाले श्येन भी सो जाते हैं वह रात्रि सब को सुख देने वाली हो ॥५॥

या॒वया॑ वृ॒क्य१॒॑ं वृकं॑ य॒वय॑ स्ते॒नमू॑र्म्ये ।
अथा॑ नः सु॒तरा॑ भव ॥६॥

पदार्थः—(**ऊर्म्ये**) यह रात्रि (**वृक्यम्**) मादा भेड़िया और (**वृकम्**)

भेड़िये को (यवय) हमसे दूर रखे, (स्तेनम्) चोर को दूर रखे, (अथ) और (नः) हमारे लिए (सुतरा) अच्छी प्रकार बीतने वाली (भव) होवे ।

भावार्थः—यह रात्रि मादा भेड़िया और नर भेड़िया से हमें दूर रखे, चोर से हमें दूर रखे और भगवान् की कृपा से सुख से बीतने वाली होवे ॥६॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेव यातय ॥७॥

पदार्थः—(**पेपिशत्**) सबको आश्लिष्ट करने वाला (**कृष्णम्**) काला (**व्यक्तम्**) स्पष्ट रूप नैश (**तमः**) अन्धकार (**माम्**) मुझ को (**उप अस्थित**) उपस्थित होता है (**उषस्**) यह उषा (**ऋणा इव**) ऋणों की भांति (**यातय**) भगा देती है ।

भावार्थः—सभी पदार्थों को आश्लिष्ट करने वाला काला स्पष्ट रूप वाला नैश अन्धकार मुझे घेरता है । यह उषा ऋण की भांति उस अन्धकार को भगा देती है ॥७॥

उप ते गाइवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

पदार्थः—(**रात्रि ते**) इस रात्रि को (**गा इव**) गौवों के समान (**उप-आकरम्**) अपने समक्ष करता हूँ (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्य की (**दुहितः**) पुत्री अथवा दिन की तनूपा यह रात्रि (**जिग्युषः**) जयन शील मुझ यजमान के (**स्तोमम् न**) स्तोत्र के समान हवि आदि को भी (**वृणीष्व**) यज्ञ में प्राप्त करती है ।

भावार्थः—दुग्ध देने वाली गायों के समान मैं यजमान दिन अथवा द्योतमान सूर्य की पुत्री इस रात्रि को अपने समक्ष रखता हूं अर्थात् अपने ज्ञान में रखता हूँ । यज्ञ में यह मेरे स्तोत्र की भांति ही हवि आदि को भी प्राप्त करती है ॥८॥

यह दशम मण्डल में एक सौ सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२८

ऋषिः—१—९ विहव्यः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ३ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४, ८ त्रिष्टुप् । ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ भुरिक्त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१—८ धैवतः । ९ निषादः ॥

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥

पदार्थः (**अग्ने**) यह अग्नि ऐसा है कि इसके द्वारा (**विहवेषु**) संग्रामों और यज्ञों में (**मम**) मुझे (**वर्चः**) दीप्ति (**अस्तु**) होती है, (**त्वा**) इस को (**इन्धानः**) प्रज्वलित करते हुए हम (**तन्वम्**) इसके और अपने शरीर की (**पुषेम**) पुष्टि करते हैं, (**चतस्रः**) चारों (**प्रदिशः**) दिशायें (**मह्यम्**) मेरे लिए (**नम-न्ताम्**) नम्र बनती वा झुकती है (**त्वया**) इसके (**अध्यक्षेण**) अध्यक्ष=प्रभावशाली होने से (**पृतनाः**) संग्रामों को (**जयेम**) जीतते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि ऐसा है कि इसके द्वारा संग्रामों तथा यज्ञों में मुझे दीप्ति होती है । इसको जलाते हुए हम हवि आदि से इसके और यज्ञ से होने वाले लाभों से अपने शरीर की पुष्टि करते हैं । चारों दिशायें मेरे लिए झुकती हैं । इस अग्नि के प्रभावशाली होने से हम संग्रामों को जीतते हैं ॥१॥

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्रवन्तः**) इन्द्र के सहित (**मरुतः**) मरुद्गण, (**विष्णुः**) सूर्य, (**अग्निः**) अग्नि आदि (**सर्वे**) सभी (**देवाः**) देव (**मम**) मेरे (**विहवे**) यज्ञ में और संग्राम में (**सन्तु**) साधक होवें, (**मम**) मेरे लिए (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**उरु-लोकम्**) विस्तीर्ण प्रकाश वाला (**अस्तु**) होवे, (**मह्यम्**) मेरे लिए (**कामे**) कमनीय (**अस्मिन्**) इस यज्ञ में (**वातः**) वायु (**पवताम्**) बहे ।

भावार्थः—इन्द्र=विद्युत् के सहित मरुद्गण, सूर्य, अग्नि आदि सभी देव मेरे यज्ञ में और संग्राम में साधक होवें । मेरे लिए अन्तरिक्ष विस्तीर्ण प्रकाश वाला होवे । मेरे लिये कमनीय यज्ञ में वायु अनुकूलता से बहे ॥२॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥३॥

पदार्थः—(**देवाः**) ये यज्ञ के सभी इन्द्र आदि देव और विद्वज्जन (**मयि**) मुझ स्तोता में (**द्रविणम्**) धन को (**आ यजताम्**) प्राप्त करावें, (**मयि**) मुझ पर (**आशीः**) आशीर्वाद (**अस्तु**) होवें (**मयि**) मुझ में (**देवहूतिः**) यज्ञ हो, (**पूर्वे**) ज्ञान से परिपूर्ण (**दैव्या होतारः**) याज्ञिक ऋत्विग्जन (**वनुषन्त**) देवों के प्रति आहुति देवें, (**सुवीराः**) उत्तम सन्तान वाले (**तन्वा**) शरीर से (**अरिष्टाः**) उत्पीड़ित (**स्याम**) होवें ।

भावार्थः—यज्ञ के इन्द्र आदि सभी देव और विद्वज्जन मुझ स्तोता को धन प्राप्त करावें । मुझ पर आशीर्वाद वरसे । मुझ में सदा यज्ञ की भावना रहे । ज्ञान से पूर्ण याज्ञिक ऋत्विग्जन देवों के प्रति आहुति देवें । उत्तम सन्तान वाले हम शरीर से अपीड़ित होवें ॥३॥

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४॥

पदार्थः—(**मह्यम्**) मेरे लिए ऋत्विग्जन (**यजन्तु**) यज्ञ का सम्पादन करें, (**यानि**) जो (**हव्या**) हवनीय पदार्थ हैं वे (**मम**) मेरे हों, (**मे**) मेरे (**मनसः**) मन का (**आकूतिः**) संकल्प (**सत्या**) सत्य (**अस्तु**) हो (**अहम्**) मैं (**कतमत्चन**) किसी भी (**एनः**) पाप को (**मा**) न (**निगाम्**) प्राप्त होऊं वा करूं (**विश्वे देवाः**) हे विद्वान् लोगो ! आप (**नः**) हमें (**अधिवोचत**) उपदेश करो ।

भावार्थः—मेरे लिए ऋत्विग्जन यज्ञ का संपादन करें । जों हवनीय पदार्थ हैं वे सदा हमारे पास तैयार रहें । मेरे मन के संकल्प सत्य हों । मैं किसी भी पाप को न करूं । हे विद्वान् लोगो ! आप हमें उत्तम उपदेश किया करो ॥४॥

देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥५॥

पदार्थः—(**षट्**) छः द्युलोक, पृथिवी, दिन, रात्रि, जलें और ओषधियें जो (**देवीः**) देवनशील हैं और (**उर्वीः**) विशाल हैं (**उरु**) महत् धन (**नः**) हमें

(**कृणोत**) देवें (**विश्वे देवासः**) समस्त दिव्य शक्तियें (**इह**) इस धन आदि की प्राप्ति में (**वीरयध्वम्**) पराक्रम करें, (**मा**) न (**प्रजया**) सन्तान और (**मा**) न तो (**तनूभिः**) शरीरों से (**हास्महि**) रहित हों, (**राजन्**) दीप्तिमान् (**सोम**) हे सोम=ज्ञानिन् ! (**द्विषते**) शत्रु के (**मा**) नहीं (**रधाम**) वश होवें ।

भावार्थः—द्युलोक, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि ये छः देवनशील पदार्थ हमें प्रचुर धन और शक्ति देवें । समस्त दिव्य शक्तियें इस धन आदि की प्राप्ति में पराक्रम करते रहें । हम सन्तान और शरीर से रहित न हों । हे दीप्तिमन् ज्ञानिन् ! हम कभी शत्रु के वश में न हों ॥५॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते३ मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥६॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे राजन् ! (**परेषाम्**) शत्रुओं के (**मन्युम्**) क्रोध को (**प्रतिनुवन्**) तिरस्कृत करते हुए (**अदब्धः**) अपीड़ित (**गोपाः**) रक्षक (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारी (**परि पाहि**) रक्षा कर । (**ते**) वे शत्रु लोग (**प्रत्यञ्चः**) प्रति निवर्तमान, (**निगुतः**) गुनगुनाते हुए (**पुनः**) फिर अपने स्थान पर (**यन्तु**) चले जावें, (**प्रबुधाम्**) प्रबुध्यमान (**एषाम्**) इन शत्रुओं का (**चित्तम्**) मन (**अभा**) एक साथ ही (**विनेशत्**) नष्ट हो जावें ।

भावार्थः— हे राजन् ! शत्रुओं के क्रोध को तिरस्कृत करते हुए, अपीड़ित और रक्षक आप हमारी रक्षा करें । वे शत्रु अपने पीछे लौटते हुए और गुनगुनाते हुए अपने स्थान को वापस जावें । प्रबुध्यमान इन शत्रुओं के होश हवाश नष्ट हो जावें ॥६॥

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥७॥

पदार्थः—(**धात्रीणाम्**) धारक अथवा उत्पादक शक्तियें एवम् पदार्थों का भी (**धाता**) धारक एवं उत्पादक (**यः**) जो इन्द्र=परमेश्वर (**भुवनस्य**) भुवन का (**पतिः**) स्वामी है उस (**त्रातारम्**) सब के रक्षक (**अभि मातिसाहम्**) समस्त बुराइयों को नष्ट करने वाले (**देवम्**) देव परमेश्वर की हम उपासना करते हैं, (**उभा**) दोनों (**अश्विना**) ऋत्विग् और पुरोहित (**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का पालक महा वेदज्ञ तथा (**देवाः**) समस्त विद्वान् लोग (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) यज्ञ को और यजमान को (**न्यर्थात्**) बुराई वा खराबी से (**पान्तु**) बचावें ।

भावार्थः—धारकों का धारक, उत्पादकों का उत्पादक जो परमेश्वर जगत् का स्वामी है उस सबके रक्षक और बुराइयों को दूर करने वाले प्रभु की मैं उपासक यजमान उपासना करता हूं। दोनों ऋत्विग् और पुरोहित महादेव और अन्य विद्वान् जन इस यज्ञ और यजमान को बुराई और खराबी से बचावें ॥७॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥

पदार्थः—(**उरुव्यचाः**) विस्तीर्ण व्यापन युक्त (**महिषः**) महान् (**पुरुहूतः**) बहुतों के द्वारा प्रशंसनीय (**पुरुक्षु**) बहुत निवास वाला इन्द्र=सूर्य (**अस्मिन्**) इस (**हवे**) हवन में (**नः**) हमें (**शर्म**) सुख (**यंसद्**) देवे । (**हर्यश्वः**) हरणशील किरणों वाला (**सः**) वह (**इन्द्रः**) सूर्य (**नः**) हमारी (**प्रजायै**) सन्तति को (**मृडय**) सुखी करे, (**नः**) हमें (**मा**) न (**रिरिषः**) पीड़ित करे (**मा**) न (**परा दाः**) परित्याग करे ।

भावार्थः—विस्तीर्ण व्यापन वाला, बहुतों के द्वारा प्रशंसनीय, बहुत निवास वाला, सूर्य हमारे इस हवन में हमें सुख दे। हरणशील किरणों वाला वह हमारी सन्तति को सुखी करे। हमें न पीड़ित करे और न हमारा परित्याग करे ॥८॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥९॥

पदार्थः—(**नः**) हमारे (**ये**) जो (**सपत्नाः**) शत्रु हैं (**ते**) वे हमसे (**अप भवन्तु**) दूर रहें, (**तान्**) उन्हें हम (**इन्द्राग्नीभ्याम्**) विद्युद् और अग्नि के द्वारा (**अव बाधामहे**) बाधित करें, (**वसवः**) वसु संज्ञक विद्वज्जन, (**रुद्राः**) रुद्र ब्रह्मचारी विद्वज्जन और (**आदित्याः**) आदित्य विद्वज्जन (**मा**) मुझे (**उपरिस्पृशम्**) उच्चस्थानीय, (**उग्रम्**) तेजस्वी (**चेत्तारम्**) विचार करने वाला (**अधिराजम्**) अधीश्वर (**अक्रन्**) बनावें ।

भावार्थः—हमारे जो शत्रु लोग हैं वे हम से दूर भागें। उन्हें हम विद्युद् और अग्नि की शक्ति से बाधित करें। वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञक विद्वान् और प्रजाजन मुझे उच्चपदस्थ, तेजस्वी, विचारवान् अधीश्वर बनावें ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १२९

ऋषिः १-७ प्रजापतिः परमेष्ठी ॥ देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१-३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४-६ त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

सूचना इस १२९वें सूक्त को नासदीयसूक्त कहा जाता है। इसका देवता भाववृत्त=सत्ता है। इसमें जगत् के मूल कारणों और सृष्टि की प्रागवस्था एवम् उत्पत्ति का वर्णन है। लोग इसकी व्याख्या बहुत तोड़ मरोड़ कर करते हैं। परन्तु इस सूक्त में त्रैतवाद का वर्णन है—यह सन्देह-रहित तथ्य है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

पदार्थः—(**तदानीम्**) सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व (**न**) न (**असत्**) अभाव वा असत्ता (**आसीत्**) होता है (**नो**) और न (**सत्**) व्यक्त जगत् (**आसीत्**) रहता है (**न**) न (**रजः**) लोक रहता है और (**नो**) न (**व्योम**) अन्तरिक्ष (**आसीत्**) रहता है (**यत्**) जो आकाश से (**परः**) ऊपर नीचे लोक-लोकान्तर हैं वे भी नहीं रहते । (**किम्**) क्या (**आवरीवः**) किसको घेरता वा आवृत्त करता है, सब कुछ (**कुहकस्य**) कुहरान्धकार के (**शर्मन्**) गृह=आवरण में रहता है, (**गहनम्**) गहन (**गभीरम्**) गहरा (**अम्भः**) जल (**किम्**) क्योंकि (**आसीद्**) रह सकता है ।

भावार्थः—सृष्टि की रचना के पूर्व न अभाव रहता और न व्यक्त जगत् रहता है, न कोई लोक-रहता है न यह अन्तरिक्ष तथा उसके ऊपर नीचे के लोक-लोकान्तर रहते हैं। क्या किसको घेरता वा आवृत करता है? सब कुछ कुहक=कुहरे के अन्धकार में आवृत रहता है। गहन गहरा जल क्योंकर हो सकता है? ॥१॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

पदार्थः—उस अवस्था में (**न**) न तो (**मृत्युः**) मृत्यु (**आसीत्**) रहता है (**न**) और न (**तर्हि**) उस समय (**अमृतम्**) काल का नित्य व्यवहार रहता है,

तथा (**राव्याः**) रात्रि का और (**अह्नः**) दिन का (**प्रकेतः**) प्रज्ञापक चिन्ह वा व्यवहार (**आसीत्**) रहता है (**अवातः**) कम्पनरहित (**स्वधया**) प्रकृति से युक्त (**तत्**) वह (**एकम्**) एक ब्रह्म=महान् परमेश्वर (**आनीत्**) चेतना का व्यवहार करता है (**तस्मात्**) उससे (**परः**) परे (**अन्यत् ह**) दूसरा उसके समान, उससे बड़ा वा उस जैसा (**किञ्चन**) कोई (**न**) नहीं (**आस**) रहता है ।

भावार्थः—उस अबस्था में न मृत्यु और न नित्य काल का व्यवहार रहता है । तथा दिन और रात्रि का ज्ञापक चिन्ह वा व्यवहार भी नही होता है । स्वधा=प्रकृति से युक्त कम्पनरहित एक परमेश्वर अपने में स्फूर्त्तिमान् रहता है । उससे भिन्न,उस समान,उससे अधिक और उस जैसा कोई नहीं रहता है ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥

पदार्थः—(**अग्रे**) सृष्टि से पूर्व की अवस्था में (**तमसा**) अन्धकार से (**गूढम्**) आच्छादित (**तमः**) प्रकृति (**आसीत्**) रहती है, (**सर्वम्**) सब कुछ (**इदम्**) यह (**अप्रकेतम्**) अप्रकट चिन्हरहित (**सलिलम्**) सबको लीन किये हुए सलिल=प्रधान प्रकृति (**आः**) व्यापता है (**यत्**) जो (**आभु**) व्यापक प्रकृति (**तुच्छ्येन**) कारणरूपता से (**अपिहितम्**) आच्छादित (**आसीत्**) रहती है (**तद्**) उसको (**तपसः**) ताप के (**महिना**) प्रभाव से (**एकम्**) एक परमेश्वर (**अजायत**) कार्यरूप में उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—सृष्टि से पूर्व की अवस्था में अन्धकार से आच्छादित प्रकृति विद्यमान रहती है । यह सब कुछ कारण रूप सलिल=प्रकृति में लीन रहता है । व्यापक प्रधान वा प्रकृति तत्त्व कारणरूप में व्यापता रहता है । उसको ही वह अद्वितीय परमेश्वर अपने ताप के प्रभाव एवम् निमित्तता से कार्यरूप में प्रकट करता है ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

पदार्थः—(**अग्रे**) प्रागवस्था में (**कामः**) सृष्टि रचना की इच्छा=ईक्षति=ईक्षण (**अधि सम् अवर्तत**) सब के ऊपर विद्यमान होता है (**तत्**) वह (**यत्**) जोकि (**मनसः**) मन का (**प्रथमम्**) प्रथम (**रेतः**) बीज (**आसीत्**) होता है (**कवयः**). कान्तदर्शन विश्वसृज् तत्त्व (**हृदि**) प्रकृति के केन्द्र में विद्यमान (**मनीषा**) परमेश्वर की ज्ञान शक्ति से (**प्रतीष्य**) प्रेरित होकर (**सतः**) व्यक्त जगत् के (**बन्धुम्**) बांधने वाले कार्य कारणात्मक व्यवहार को (**असति**) अव्यक्त प्रकृति में अथवा व्यक्तता के बन्धनभूत कार्य जगत् को अव्यक्त प्रकृति में (**निरविन्दन्**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—प्रागवस्था में सृष्टिरचना की इच्छा=ईक्षति अथवा काम सब पर विद्यमान होता है और वह ही मन का प्रथम बीज होता है । क्रान्तदर्शन विश्वसृज् आदि कारण तत्त्व प्रकृति के केन्द्र में विद्यमान भगवान् की मनीषा=ज्ञान शक्ति से प्रेरित होकर व्यक्तता के बन्धन करने वाले कार्य जगत् को अथवा कार्यकारण सम्बन्ध को अव्यक्त कारण प्रकृति में प्राप्त करते हैं ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

पदार्थः—(**एषाम्**) इन कारण तत्त्वों की (**रश्मिः**) रश्मि (**तिरश्चीनः**) चारों तरफ हुई (**विततः**) फैली हुई हो जाती है, (**अधः स्वित्**) नीचे को भी (**आसीत्**) होती है और (**उपरि स्वित्**) ऊपर को भी (**आसीत्**) होती है, उसमें दिखाई पड़ता है कि (**रेतोधाः**) अपने कर्म फलों के बीज को धारण करने वाले जीव (**आसन्**) हैं और (**महिमानः**) मुक्त जीव भी (**आसन्**) हैं, (**स्वधा**) प्रकृति (**अवस्तात्**) नीचे और (**प्रयतिः**) परमेश्वर का प्रयत्न (**परस्तात्**) उसके ऊपर है ।

भावार्थः—इन कारणों की रश्मि चारों ओर हुई फैल जाती है । नीचे को और ऊपर को भी होती है । उस रश्मि प्रकाश में अपने कर्मों के फल की वासना और कर्मों को धारण करने वाले बद्धजीव भी दिखाई पड़ते हैं और मुक्त जीव भी दिखाई पड़ते हैं । स्वधा=प्रकृति नीचे और परमेश्वर का प्रयत्न उसके ऊपर विद्यमान होता है ॥५॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

पदार्थः—(**कः**) प्रजापति=परमेश्यर (**अद्धा**) निश्चय से (**वेद**) जानता है, (**इह**) इस विषय में (**कः**) सुख स्वरूप वह भगवान् ही (**प्रवोचत्**) बताता है कि (**कुतः**) कहां से (**आ जाता**) आई और (**कुतः**) कहां से (**इयम्**) यह (**विसृष्टिः**) विविध सृष्टि है, (**देवाः**) विद्वान् और इन्द्रिय आदि (**अस्य**) इस जगत् के (**विसर्जनेन**) रचने के (**अर्वाक्**) बाद होते हैं । (**अथ**) अतः इनमें (**कः**) कौन (**वेद**) जानता है (**यतः**) जिससे यह जगत् (**आ बभूव**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—प्रजापति=परमेश्वर निश्चय से जानता है और इस विषय में सुख स्वरूप वह परमेश्वर ही बताता है कि कहां से यह सृष्टि आई और कहां से यह विविध सृष्टि हुई है । विद्वान् और इन्द्रियगण भी इस जगत् की रचना के बाद होते हैं अतः इनमें कौन जानता है कि जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

पदार्थः—(**इयम्**) यह (**विसृष्टिः**) विविध सृष्ट=(**यतः**) जिससे (**आबभूव**) उत्पन्न होती (**वा**) अथवा (**यदि**) जिसमें (**दधे**) धारित है या अथवा जिसमें (**न**) नहीं (**दधे**) धारित है उसको (**यः**) जो (**अस्य**) इसका (**अध्यक्षः**) अधिष्ठाता एवम् आधार (**परमे**) परमोत्कृष्ट (**व्योमन्**) प्रकाश स्वरूप में स्थित है (**सः**) वह (**अंग**) ही (**वेद**) सर्वथा जानता है, (**वा**) और (**यदि**) यदि दूसरा कोई जानता है तो वह (**न**) नहीं (**वेद**) पूर्णतया जानता है ।

भावार्थः—यह विविध सृष्टि जिससे उत्पन्न होती अथवा जिसमें धारित होती है वा जिसमें नहीं धारित होती उसको इसका अधिष्ठाता परमेश्वर ही पूर्णतया जानता है अन्य कोई इसे पूर्णतया नहीं जानता है ॥७॥

सूचना - इस सूक्त के मन्त्रों में प्रयुक्त स्वधा, तमः, सलिल और आयु पदों का अर्थ प्रकृति है । इस विषय का सप्रमाण वणन मेरी पुस्तकें 'वैदिक ज्योति' और 'दर्शनतत्त्व विवेक' में देखा जा सकता है ।

यह दशम मण्डल में एकसो उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १३०

ऋषिः—१—७ यज्ञः प्राजापत्य : देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१ विराड्जगती । २ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ त्रिष्टुप् । ४ विराट्-त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ निषादः । २—७ धैवतः ॥

सूचना—इस सूक्त का देवता भी भाववृत्त है । इस सूक्त में सृष्टि का वर्णन यज्ञ के रूप में किया गया है । यज्ञ वेद मन्त्रों से सम्पन्न होता है । वेद मन्त्रों का सम्बन्ध सृष्टि के पदार्थों के साथ है । छन्द ही पदार्थों को घेरते हैं । इनसे ही प्रत्येक पदार्थ की परिधि बनती है । इस विषय का वर्णन यहां सूक्त में किया गया है ।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥

पदार्थः—(**यः**) जो विश्वरूप (**यज्ञः**) यज्ञ (**विश्वतः**) चारों तरफ से (**तन्तुभिः**) विस्तार करने वाले कारणों से (**ततः**) विस्तृत किया गया है, (**एकशतम्**) १०१ [८ वसु १२ आदित्य, ११ रुद्र, ११ विश्वदेव, ४९ मरुत् तथा १० विश्वसृज] (**देवकर्मेभिः**) देवों की गतिविधियों से (**आयतः**) दीर्घ विस्तार को लाया गया है, (**इमे**) ये (**पितरः**) पालक शक्तियां (**ये**) जो (**आययुः**) इस जगत् को व्याप्त करती है इस विश्व को (**वयन्ति**) बुनती है, (**प्रवय**) ऊपर को बुनो (**अपवय**) नीचे को बुनो-ऐसी प्रेरणा करती हैं (**तते**) इस जगत्रूपी यज्ञपट के विस्तृत रूप में तन जाने पर (**इति**) इस प्रकार (**आसते**) इसमें स्थित वा कार्यरत होते हैं ।

भावार्थः - जो विश्वसर्गरूप यज्ञ चारों तरफ से विस्तार के कारणों से विस्तृत किया जाता है तथा १०१ देवकर्मों=दैवी पदार्थों की गतिविधियों से प्रवर्धित होता है उसे ये पालक शक्तियां (विश्वसृज्) जो इसमें व्याप्त हैं पट की भांति बुनती हैं । ऊपर बुनो और नीचे को बुनो—ऐसी प्रेरणा करती हैं । इस जगत् रूपी यज्ञ पट के विस्तृत रूप में तन जाने पर इस प्रकार इसमें स्थित और कार्यरत होती हैं ॥१॥

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥२॥

पदार्थः—(**पुमान्**) परम पुरुष परमेश्वर ही (**एनम्**) इस संसार सर्ग को (**तनुते**) वस्त्रवत् तानता वा विस्तारित करता है और समय पर (**उत्कृणत्ति**) समेटता है (**पुमान्**) परम पुरुष ही (**अस्मिन्**) इस भूलोक में तथा (**नाके अधि**) आकाश में इस सर्ग को (**तत्ने**) फैलाता है (**इमे**) ये (**मयूखाः**) रश्मिभूत विश्वसृज् देव(**सदः**) इस यज्ञ में देवयजन स्थान को (**उप सेदुः**) प्राप्त करते हैं तथा (**ओतवे**) इस यज्ञ पट को बुनने के लिए (**सामानि**) रथन्तर आदि सामों को (**तसराणि**) बाना बनाते हैं ।

भावार्थः—परम पुरुष परमेश्वर ही संसार सर्ग को वस्त्रवत् तानता है और विस्तृत करता है और समय पर प्रलयकाल में समेटता है। परम पुरुष ही इस पृथिवी पर और आकाश में इस सर्ग को विस्तृत करता है। ये रश्मिभूत विश्वसृज देव इस यज्ञ में देवयजन स्थान को प्राप्त करते हैं तथा इस यज्ञ पट को बुनने के लिए रथन्तर आदि सामों को ताना बनाते हैं ॥२॥

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**विश्वे**) सब (**देवाः**) साध्यदेव (**देवम्**) परमदेव परमेश्वर को (**अयजन्त**) इस सर्गात्मक यज्ञ में निमित्त कारण प्रजापतिरूप करते हैं तब (**प्रमा**) प्रमाण (**का**) किस प्रकार का (**आसीत्**) होता है (**प्रतिमा**) मापने का साधन क्या होता है, (**निदानम्**) इष्ट ध्येय क्या होता है ? (**आज्यम्**) घृत वा सामग्री (**किम्**) क्या (**आसीत्**) होता है, (**परिधिः**) जिस प्रकार यज्ञ में परिधिरूप तीन समिधायें रखी जाती हैं उस प्रकार की परिधि क्या होती है ? गायत्री आदि (**छन्दः**) छन्दः (**किम्**) क्या (**आसीत्**) क्या होता है, (**प्रउगम् उक्थम्**) प्रउग आदि उक्थ क्या रहता है ।

भावार्थः—जिस समय समस्त साध्यदेव परमदेव परमेश्वर को इस सर्गात्मक यज्ञ में निमित्त कारण प्रजापतिरूप करते हैं तब प्रमाण क्या होता है ? मापने का साधन क्या होता है ? इष्ट ध्येय क्या होता है ? घृत क्या होता है, परिधि क्या होती है ? गायत्री आदि छन्द कौन होते हैं और प्रउग आदि उक्थ क्या होता है ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

पदार्थः—(**अग्नेः**) अग्नि के (**सयुग्वा**) साथ सम्बद्ध हुआ (**गायत्री**) गायत्री छन्द (**अभवत्**) उत्पन्न होता है, (**उष्णिहया**) उष्णिग् (**सविता**) सविता (**संबभूव**) होता है, (**उक्थैः**) स्तुत शस्त्रों सहित (**अनुष्टुभा**) अनुष्टुप् छन्द से संबद्ध हुआ (**महस्वान्**) तेजस्वी (**सोमः**) सोम उत्पन्न होता है (**बृहस्पतेः**) बृहस्पति के (**वाचम्**) वाक्य को वृहती छन्दः (**आवत्**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः– अग्नि [जो यज्ञ का देवता और मन्त्र का भी देवता है] उससे सम्बद्ध गायत्री छन्द, उष्णिग् छन्द से सम्बद्ध सविता, स्तुत शस्त्रों से युक्त अनुष्टुप् छन्द से सम्बद्ध तेजस्वी सोम और वृहती छन्द से सम्बद्ध बृहस्पति उत्पन्न होते हैं। अर्थात् इन यज्ञ के देवों और मन्त्रों के विषयों का सम्बन्ध इन छन्दों से होता है ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥५॥

पदार्थः—(**विराट्**) विराट् छन्द (**मित्रावरुणयोः**) मित्र और वरुण से (**अभिश्रीः**) आश्रित वा सम्बद्ध होते हैं अर्थात् मित्रावरुण विराट् छन्दः से सम्बद्ध उत्पन्न होते हैं, (**इह**) इस यज्ञ में (**अह्नः भागः**) दिनका भाग माध्यम दिन सवन और (**त्रिष्टुप्**) त्रिष्टुप् छन्दः (**इन्द्रस्य**) इन्द्र के आश्रित है अर्थात् इनसे सम्बद्ध इन्द्र उत्पन्न होता है, (**विश्वान् देवान्**) विश्वे देवों को (**जगती**) जगती छन्द (**आविशे**) व्याप्त करता है अर्थात् विश्वे देवों का सम्बन्ध जगती छन्द से है, (**तेन**) उस यज्ञ के द्वारा (**ऋषयः**) ऋषि और (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग (**चाक्लृप्रे**) रचे जाते हैं ।

भावार्थः मित्र और वरुण विराट् छन्द से सम्बद्ध उत्पन्न होते हैं, दिनका भागभू मध्याह्नसवन और त्रिष्टुप् छन्द से सम्बद्ध इन्द्र उत्पन्न होना है, विश्वेदेव जगती छन्दः से सम्बद्ध उत्पन्न होते हैं और इस प्रकार उस यज्ञ के द्वारा ऋषि और मनुष्य आदि उत्पन्न किये जाते हैं ॥५॥

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥६॥

पदार्थः – (**पुराये**) सृष्टि सम्बन्धी इस (**यज्ञे**) यज्ञ के (**जाते**) होने पर (**तेन**) उसके द्वारा (**ऋषयः**) ऋषि लोग, (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग और (**नः**) हमारे (**पितरः**) पूर्वपालक माता-पिता आदि (**चाक्लृप्रे**) उत्पन्न किये जाते हैं (**ये पूर्वे**) जो पूर्ववर्त्ती साध्य देव आदि (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सृष्टि यज्ञ को (**अयजन्त**) संपन्न करते हैं (**तान्**) उनको (**चक्षसा**) दर्शनहेतुभूत (**मनसा**) मन से (**पश्यन्**) जानते हुए मैं सृष्टिविद्या का ज्ञाता (**मन्ये**) विचरता हूँ ।

भावार्थः– सृष्टि सम्बन्धी इस यज्ञ के वितत होने पर उसके द्वारा ऋषि, मनुष्य और उनमें हमारे माता-दिता आदि उत्पन्न किये जाते हैं। जो पूर्ववर्त्ती साध्य देव आदि इस सृष्टि यज्ञ को संपन्न करते हैं उनको मैं सृष्टि विद्या का ज्ञाता अन्वेषण-प्रधान मन से जानते हुए विचरता हूँ ॥६॥

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो३ न रश्मीन् ॥७॥

पदार्थः—(**सहस्तोमाः**) त्रिवृत् पञ्च दश आदि स्तोमों सहित (**सहछन्दसः**) गायत्री आदि छन्दों सहित (**आवृतः**) आवर्तमान, (**सहप्रमाः**) यज्ञ की इयत्ता आदि के साथ (**दैव्याः**) देव सम्बन्धी (**सप्त**) सात (**ऋषयः**) शीर्षण्य प्राण (**पूर्वेषाम्**) पूर्वसृष्टियों के (**पन्थाम्**) क्रम और मार्गव्यवस्था को (**अनुदृश्य**) अनुकरण करते हुए (**धीराः**) दृढ़ हुए (**रथ्यः न**) रथी के समान (**रश्मीन्**) कार्यकारण सम्बन्धों को (**अन्वालेभिरे**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः त्रिवृत्, पञ्चदश आदि स्तोमों के सहित, गायत्री आदि छन्दों के सहित, आवर्तमान, यज्ञ की इयत्ता आदि के सहित देवसम्बन्धी, और दृढ़ सात शीर्षण्य प्राण पूर्वसृष्टियों कर्म और मर्गाव्यवस्था का अनुकरण करते हुए, रथी के समान, जगत् के कार्यकारण सम्बन्ध को प्राप्त करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३१

ऋषिः १—७ सुकीर्तिः काक्षीवतः ॥ देवता १ ३, ६, ७ इन्द्रः । ४, ५ अश्विनौ ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्-त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः——१—३, ५—७ धैवतः । ४ गान्धारः ॥

अप प्राचं इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराचं उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥१॥

पदार्थः—(**अभिभूते**) सबको दबाने वाले, (**शूर**) शक्तिशालिन् (**इन्द्र**) हे राजन् ! (**प्राचः**) समक्ष उपस्थित (**विश्वान्**) समस्त (**अमित्रान्**) शत्रुओं को (**अप नुवस्व**) हमसे दूर कर **अपाचः**) पीछे वाले शत्रुओं को (**अप नुदस्व**) हमसे दूरकर, (**उदीचः**) ऊपर की दिशा में विद्यमान शत्रुओं को (**अप**) दूर कर (**अधराचः**) नीचे की दिशा में विद्यमान शत्रुओं को दूर कर हम (**यथा**) जिस प्रकार से (**तव**) आपके (**उरौ**) विस्तीर्ण (**शर्मन्**) आश्रम में (**मदेम**) हृष्ट होवें ऐसा कर ।

भावार्थः हे सबको अभिभूत करने वाले, शक्तिशाली राजन् ! आप समक्ष, पीछे, ऊपर और नीचे विद्यमान हमारे सभी शत्रुओं को हमसे दूर करें। हम जिस प्रकार आप के विस्तीर्ण रक्षाश्रय में प्रसन्न रहें ऐसा करें ॥१॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥

पदार्थः– (**अंग**) हे इन्द्र=राजन् ! (**यवमन्तः**) कृषक लोग (**यथा**) जिस प्रकार (**अनुपूर्वम्**) क्रम से (**वियूय**) अलग करके (**यवम्चित्**) यव आदि फसल को (**कुविद्**) भली प्रकार (**दान्ति**) काटते हैं उसी प्रकार (**इह इह**) यहां-वहां सर्वत्र (**एषाम्**) इनके भोग के साधनभूत धनों को (**कृणहि**) कर (**ये**) जो (**बर्हिषः**) यज्ञ में (**नमोवृक्तिम्**) अन्न आदि की हवि का वर्जन (**न**) नहीं (**जग्मुः**) करते हैं ।

भावार्थः—हे राजन् ! जिस प्रकार से कृषक लोग अनुक्रम से फसल को पृथक् विचार करके पके यव आदि को भली प्रकार काटते हैं उसी प्रकार

सर्वत्र यज्ञ में अन्न आदि हवियों को देने वाले यजमानों के लिए भोग्य अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न कर ॥२॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

पदार्थः (**ऋतुथा**) समय पर (**स्थूरि**) एक बैल की गाड़ी वा विना बैल की गाड़ी (**यातम्**) गन्तव्य प्रदेश को प्राप्त (**नहि**) नहीं (**अस्ति**) होती है (**उत**) और (**श्रवः**) अन्न यश भी (**संगमेषु**) संग्रामों में (**न**) नहीं (**विविदे**) प्राप्त करती (**गव्यन्तः**) गौ चाहने वाले, (**अश्वायन्तः**) अश्व चाहने वाले, (**वाजयन्तः**) अन्न चाहने वाले (**विप्राः**) मेधावी हम लोग (**वृषणम्**) सुख की वर्षा करने वाले (**तम्**) उस (**इन्द्रम्**) इन्द्र राजा वा विद्वान् को (**सख्याय**) मैत्री के लिए पुकारते हैं ।

भावार्थः– एक बैल की गाड़ी अथवा विना बैल की गाड़ी न गन्तव्य देश को जा सकती है और न संग्रामों में कीर्ति को प्राप्त करती है। इस लिए सब प्रकार साधनों से संपन्न होकर हम गाय, अश्व, धन की कामना करने वाले विद्वान् राजा वा ऐश्वर्यशाली विद्वान् को मैत्री के लिए पुकारते हैं और सहायक बनाते हैं ॥३॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

पदार्थः (**अश्विना**) आचार्य और उपदेशक (**शुभः**) उत्तम धन आदि के (**पती**) स्वामी (**युवम्**) आप दोनों (**सुरामम्**) उत्तम सुखकारक भोजन आदि को (**विपिपाना**) ग्रहण करते हुए (**आसुरे**) आसुरी प्रवृत्ति वाले (**नमुचौ**) अदान दाता के संघर्ष में (**सचा**) साथ-साथ होकर (**कर्मसु**) इन संघर्ष कर्मों में (**इन्द्रम्**) मुझ यजमान की (**आवतम्**) रक्षा करते हो ।

भावार्थः हे उत्तम धन आदि के स्वामी आचार्य और उपदेशक आप दोनों उत्तम भोजन आदि को ग्रहण करते हुए आसुरी प्रवृत्ति वाले अदानदाता के संघर्ष के समय संघर्ष कर्मों में मुझ यजमान की रक्षा करते हो ॥४॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

पदार्थः— हे (**मघवन्**) धनिक (**इन्द्र**) यजमान (**पुत्रम्**) पुत्र को (**पितरा-इव**) माता-पिता की तरह (**उभा**) दोनों (**अश्विना**) आचार्य और पुरोहित (**काव्यैः**) प्रशंसनीय (**दंसनाभिः**) कर्मों से (**आवथुः**) रक्षा करते हैं (**यत्**) जब तू (**सुरामम्**) उत्तम पदार्थों का (**शचीभिः**) शक्ति के साथ (**व्यपिबः**) सेवन करता है तब (**सरस्वती**) बुद्धि (**त्वा**) तुम्हारी (**अभिष्णक्**) सहायक होती है ।

भावार्थः—हे धनिक यजमान ! पुत्र को माता-पिता की तरह ये दोनों आचार्य और पुरोहित अपने प्रशंसनीय कर्मों से तुम्हारी रक्षा करते हैं। जब आप उत्तम उपभोगों का सेवन करते हो तब उनके द्वारा प्रदत्त बुद्धि आप की सहायक होती है ॥५॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६॥

पदार्थः—(**सुत्रामा**) उत्तम त्राता, (**स्ववान्**) शक्तिमान् (**विश्व वेदाः**) समस्त धनों वाला (**इन्द्रः**) राजा (**अवोभिः**) रक्षण साधनों द्वारा (**सुमृडीकः**) सुखकारी (**भवतु**) होता है (**द्वेषः**) द्वेष करने वालों को (**बाधताम्**) हटाता है, (**अभयम्**) निर्भय (**कृणोतु**) करता है, हम (**सुवीर्यस्य**) उत्तम बल पराक्रम के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होते हैं ।

भावार्थः—उत्तम रक्षक शक्तिमान् समस्त धनों वाला राजा अपने साधनों द्वारा सुखकारी होता है, द्वेष करने वालों को हटाता है, हमें निर्भय करता है। हम उत्तम बल के स्वामी होते हैं ॥६॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥७॥

पदार्थः– (**वयम्**) हम (**यज्ञियस्य**) पूज्य (**तस्य**) उस इन्द्र=विद्वान् के (**सुमतौ**) सुमति और (**भद्रे**) कल्याणकारी (**सौमनसे**) सौमनस्य में (**अपि**) भी (**स्याम**) रहें, (**सुत्रामा**) उत्तमरक्षक, (**स्ववान्**) धनवान् (**सः**) वह (**इन्द्रः**)

विद्वान् (**अस्मे**) हमसे (**दूरात् चिद्**) दूर देश में (**द्वेषः**) शत्रुओं को (**सनुतः**) अन्तर्हित (**युयोतु**) फेंक दें ।

भावार्थः—हम पूजनीय, उस विद्वान् की सुमति और उसके कल्याणकारी सौमनस्य में रहें । उत्तम रक्षक धनवान् वह विद्वान् हमारे द्वेषकारी शत्रुओं को हमसे दूर छिपे स्थान में फेंक देवे ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१३२

ऋषिः—१—७ शकपूतो नार्मेधः ॥ देवताः—१ लिंगोक्ताः । २–७ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ बृहती । ७ महासतोबृहती । २, ४ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिः । ५, ६ विराट्पङ्क्तिः । स्वरः—१, ७ मध्यमः । २—६ पञ्चमः ॥

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसुरीजानं भूमिरभि प्रभूषणि ।
ईजानं देवावश्विनावभि सुम्नैरवर्धताम् ॥१॥

पदार्थः—(**ईजानम् इत्**) यज्ञ करने वाले को ही (**द्यौः**) द्युलोक (**गूर्तावसु**) ऐश्वर्य को हाथ में लिए (**सुम्नैः**) नाना सुखों से बढ़ाता है (**ईजानम्**) यज्ञ करने वाले को (**भूमिः**) भूमि (**प्रभूषणि**) प्रचुर सत्ता प्राप्त करने के निमित्त (**अभि**) बढ़ाती है, (**ईजानम्**) यज्ञशील को (**अश्विनौ देवौ**) दिन रात्रि भी सुखों से (**अभि अवर्धताम्**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थ—यज्ञशील को द्युलोक ऐश्वर्य को हाथ में लिए नाना सुखों से बढाता है । यज्ञशील को भूमि भी प्रचुर सत्ता की प्राप्ति में सुखों से बढ़ाती है । यज्ञशील मनुष्य को देवनशील दिन और रात्रि भी सुखों से बढ़ाते हैं ॥१॥

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।
युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ॥२॥

पदार्थः—(**धारयत्क्षिती**) जिनके लिए मनुष्य हवि धारण करते हैं, (**सुषुम्नः**) उत्तम धन वाले (**ता**) उन (**वाम्**) इन (**मित्रावरुणा**) प्राण और अपान के लिए (**इषितत्वता**) प्राप्तव्य गुण के कारण (**यजामसि**) संगत करते हैं (**युवो**) इनके (**सख्यैः**) मैत्री भावों से (**क्राणाय**) कर्मकर्ता यजमान के लिए (**रक्षस**) बाधक शक्तियों को (**अभिष्याम**) अभिभूत करते हैं ।

भावार्थः जिनके लिए मनुष्य हवि धारण करते हैं उत्तम धन वाले, उन इन प्राण अपान को प्राप्तव्य इनके गुणों के कारण संगत करते हैं, इनके सहयोग से हम कर्मकर्ता यजमान के लिए बाधक शक्तियों पर काबू प्राप्त करते हैं ॥२॥

अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥३॥

पदार्थः—(**वाम्**) इन दोनों मित्रावरुण=मित्र और वरणीय पुरुष के लिए (**यत्**) जब हम (**दिधिषामहे**) खाद्य आदि वस्तुओं को धारण करते हैं (**अधा चित्**) तो (**नु**) शीघ्र ही (**प्रियम्**) अभीष्ट (**रेक्णः**) धन को (**पत्यमानाः**) प्राप्त करने वाले होते हैं । (**वा**) और (**यत्**) जो मनुष्य (**दद्वान्**) हवि आदि प्रदान करके (**रेक्णः**) धन को (**पुष्याति**) पुष्ट करता है (**अस्य**) इसके (**मघानि**) धन (**नकिः**) नहीं (**सम् आरन् उ**) व्यर्थ होते हैं ।

भावार्थः—इन दोनों मित्र और वरणीय पुरुष के लिए जो मनुष्य खाद्य आदि वस्तुओं को देता है वह शीघ्र ही धन आदि का प्राप्त करने वाला होता है । यज्ञ में हवि प्रदान करके जो मनुष्य धन को पुष्ट करता है उसका धन-क्षीण नहीं होता है ॥३॥

असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥४॥

पदार्थः—(**द्यौः**) द्योतमान अदिति (**त्वम्**) इस (**असौ**) उस (**अन्यः**) अन्य (**असुर**) प्राणदाता भिन्न=सूर्य को (**सूयते**) उत्पन्न करती है, (**वरुण**) वरुण=वायु (**विश्वेषाम्**) सभी का (**राजा**) दीपनाधार (**असि**) है ये मित्र और वरुण=सूर्य और वायु (**रथस्य**) यज्ञ का (**मूर्धा**) उच्चैस्तम कार्य इनको (**चाकन्**) चाहता है इसलिए (**अन्तक ध्रुक्**) मृत्यु का द्रोही यह यज्ञ (**एतावता**) लेश मात्र भी (**एनसा**) पाप से (**न**) नहीं युक्त होवे ।

भावार्थः द्योतमान प्रकृति जो कि दिव्य पदार्थों की माता है इस प्राणदाता सूर्य को पृथक् उत्पन्न करती है। यज्ञ का सर्वोच्च पद=हवि ग्रहण करने का पद इन सूर्य और वायु को चाहता है। इसलिए मृत्यु को हटाने वाला यह यज्ञ लेशमात्र भी पाप से युक्त नहीं होता है ॥४॥

अस्मिन्त्स्वे३ तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान्हन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात्तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्ववा ॥५॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) इस (**शकपूते**) कर्म से पवित्र यजमान पुरुष में (**उहिते**) हितकारी (**मित्रे**) मित्र के होने पर भी (**एनस्**) स्वल्प भी पाप यदि रहता है तो वह (**निगतान्**) उसके अधीन रहने वाले (**वीरान्**) पुत्र पौत्र आदि को भी (**सु हन्ति**) भली प्रकार हानि पहुँचाता है। मित्र और वरणीय विद्वान् (**यत्**) जब (**अर्वा**) व्यापक (**अपः**) रक्षण वा ज्ञान (**धात्**) देते हैं तब (**अवः**) हवि के दाता अथवा ज्ञानी यजमान के (**प्रियासु**) प्रिय (**यज्ञियासु**) यज्ञिय (**तनूषु**) शरीरांगों में कोई तनिक भी पाप नहीं रहता है।

भावार्थः—इस कर्म से पवित्र यजमान पुरुष में हितकारी मित्र के होने पर भी यदि स्वल्प भी पाप रहता है तो अधीन रहने वाले पुत्र पौत्र आदि को भी भली प्रकार हानि पहुँचाता हैं। मित्र और वरणीय विद्वान् जब व्यापक रक्षण और ज्ञान देते हैं तब यजमान के प्रिय यज्ञिय शरीरों में तनिक भी पाप नहीं रहता है। अर्थात् वह पाप नहीं करता है ॥५॥

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ॥६॥

पदार्थः—(**विचेतसा**) विशेष चिन्तन के विषयभूत मित्र और वरुण=सूर्य और वायु (**युवोः**) दोनों की (**हि**) ही (**माता**) माता (**अदितिः**) भूमि वा अखण्डनीय पृथिवी है, (**द्यौः न**) द्युलोक की भांति यह (**भूमिः**) भूमि (**पयसा**) रस आदि से (**पुपूतनि**) पवित्रता में में हेतु होती है। ये दोनों=मित्र और वरुण (**प्रिया**) प्रिय धनों को (**अव दिदिष्टन**) देते हैं, तथा (**सूरः**) सूर्य की (**रश्मिभिः**) रश्मियों से (**निनिक्त**) पवित्र करते हैं।

भावार्थः—विशेष चिन्तन के विषयभूत मित्र और वरुण=सूर्य और वायु की अखण्डनीय पृथिवी माता है। वह द्युलोक की भांति रस आदि से पवित्रता में कारण बनती हैं। ये दोनों मित्र और वरुण प्रिय धनों को देते हैं और सूर्य की रश्मियों से सबको पवित्र करते हैं ॥६॥

युवं ह्य१प्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ॥७॥

पदार्थः—हे मित्र और वरणीय विद्वन् ! (**युवम्**) आप दोनों (**हि**) निश्चय (**असीदतम्**) अपने स्थानों पर विराजमान होवें, आप दोनों (**कणूकयन्तीः**) शब्द करती हुई (**नः**) हमारी (**ताः**) उन शत्रु सेनाओं को दबाने के लिए (**न**) संप्रति (**धूर्षदम्**) अश्वों के वहन प्रदेश में स्थित (**वनर्षदम्**) वन में क्रीडन योग्य (**रथम्**) रथ पर (**तिष्ठत्**) बैठें, (**नृमेध**) मनुष्यों का संघटन करने वाला (**अंहसः**) पाप से पाप द्वारा (**तत्रे**) बचाया जाता है और (**सुमेधः**) उत्तम ज्ञानी भी (**अंहसः**) पाप से पाप द्वारा (**तत्रे**) बचाया जाता है।

भावार्थः—हे मित्र और वरणीय विद्वन् ! आप दोनों अपने स्थानों पर विराजमान होवें। शब्द करती हुई हमारी शत्रु सेनाओं को दबाने के लिए संप्रति अश्वों के वहन प्रदेश में स्थित अरण्य में क्रीडन योग्य रथ पर बैठें। मनुष्यों का संघटन करने वाला आप द्वारा पाप से बचाया जाता है और उत्तम ज्ञानी भी आप द्वारा पाप करने से बचाया जाता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में एक सौ बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १३३

ऋषिः १–७ सुदाः पैजवनः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१–३ शक्वरी । ४–६ महापङ्क्तिः । ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—३, ७ धैवतः । ४—६ पञ्चमः ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

पदार्थः—(**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) इन्द्र=वायु के (**पुरोरथम्**) रथ के आगे विद्यमान (**शूषम्**) बल की (**सु**) सुष्ठुरूप से (**प्रो अर्चत**) प्रशंसा करो, (**समत्सु**) संग्रामों में (**संगे**) शत्रुबल के (**अभीके चित् उ**) समीप प्राप्त होने पर (**लोककृत्**) स्थितिकृत (**वृत्रहा**) वह वृत्र=मेघ का हन्ता है वह (**अस्माकम्**) हमारा (**चोदिता**) धन दाता (**बोधि**) जाना जाता है । (**अन्यकेषाम्**) शत्रुओं की (**धन्वसु अधि**) धनुष पर चड़ी हुई (**ज्याकाः**) प्रत्यञ्चायें (**नमन्ताम्**) नष्ट हो जावें ।

भावार्थः इस वायु के चक्र के आगे विद्यमान बल की हे स्तोता लोगो ! सुष्ठुरूप से प्रशंसा करो । संग्रामों में शत्रु बल के सामने आने पर वह अपनी स्थिति को ठीक रखता है और मेघ को मारता है । हमारे लिए वह धन का दाता जाना जाता है । शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी प्रत्यंचा नष्ट हो जावे ।।१।।

त्वं सिन्धूँरवा॑सृजोऽध॒राचो॒ अह॒न्नहि॑म् ।
अ॒श॒त्रुरि॑न्द्र जज्ञि॒षे विश्वं॑ पुष्यसि॒ वार्यं॒ तं त्वा॒ परि॑ ष्वजामहे॒
नभ॑न्तामन्य॒केषां॑ ज्या॒का अधि॒ धन्व॑सु ॥२॥

पदार्थः—(**त्वम्**) यह (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु अथवा विद्युत् (**सिन्धून्**) स्यन्दनशील जलों को (**अधराचः**) अधोमुखी (**अवासृजः**) करता है, (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) मारता है, यह इन्द्र (**अशत्रुः**) शत्रुरहित (**जज्ञिषे**) होता है, (**विश्वम्**) समस्त (**वार्यम्**) वरणीय धन की(**पुष्यासि**) पुष्टि करता है, (**तम्**) उस (**त्वा**) इसको हम (**परिष्वजामहे**) वश में रखते हैं जिससे (**अन्यकेषाम्**) शत्रुओं के (**धन्वसु अधि**) धनुषों पर चढ़ी हुई (**ज्याका**) प्रत्यञ्चायें (**नमन्ताम्**) नष्ट हो जावें ।

भावार्थः— यह इन्द्र=विद्युत् स्यन्दनशील जलों को अधोमुखी करके बरसाता है, मेघ को मारता है । यह इन्द्र शत्रुसहित पैदा हुआ है । वह समस्त वरणीय धन को पुष्ट करता है । उसको हम अपने प्रयोग में लाते हैं । जिससे शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ।

वि षु विश्वा॒ अरा॑तयो॒ऽर्यो न॑शन्त नो॒ धियः॑ ।
अस्ता॑सि॒ शत्र॑वे व॒धं यो न॑ इन्द्र॒ जिघां॑सति॒ या ते॑ रा॒तिर्द॒दिर्वसु॒
नभ॑न्तामन्य॒केषां॑ ज्या॒का अधि॒ धन्व॑सु ॥३॥

पदार्थः—(**विश्वा**) समस्त (**अर्यः**) आक्रामक (**अरातयः**) शत्रुभूत बल (**सु**) सुष्ठुरूप के (**विनशन्त**) नष्ट हो जावें, (**नः**) हमारी (**धियः**) बुद्धियां और कर्म अच्छे रास्ते पर हों, (**यः**) जो (**नः**) हमें (**जिघांसति**)मारना चाहता है उस (**शत्रवे**) शत्रु के लिए (**इन्द्र**) यह वायु वा विद्युत् (**वधम्**) घातक वज्र का (**अस्ता** ! प्रक्षेप्ता (**असि**) है (**ते**) उसकी (**या**) जो (**रातिः**) दानशक्ति है वह (**वसु**) धन को (**ददिः**) देने वाली है । शत्रुओं के धनुषों पर चढ़ी प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ।

भावार्थः—समस्त बाधक बल नष्ट हो जावें ! हमारी बुद्धियां और कर्म उत्तम मार्ग पर चलें । जो हमें मारने की इच्छा करता है उस शत्रु के लिए यह घातक वज्र का प्रक्षेप्ता है । उसकी जो देन है वह धन की दात्री है। शत्रुओं के धनुष पर चढी हुई प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ।।३।।

यो न॑ इन्द्रा॒भितो॒ जनो॑ वृका॒युरा॒दिदे॑शति ।
अ॒ध॒स्प॒दं तमीं॑ कृधि विबा॒धो अ॑सि सास॒हि
नभ॑न्तामन्य॒केषां॑ ज्या॒का अधि॒ धन्व॑सु ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**यः**) जो (**वृकयुः**) भेड़िये की चाल चलने वाला (**जनः**) मनुष्य (**नः**) हमें (**अभितः**) सब ओर से (**आदिदेशति**) शस्त्र का निशाना बनाता है (**तम्**) उस (**ईम्**) इस शत्रु को (**अधः पदम्**) पैर के नीचे (**कृधि**) कर दे, तू (**विबाधः**) शत्रुओं की बाधक और (**ससहिः**) विनाशक (**असि**) है ।

भावार्थः हे राजन् ! जो भेड़िये की चाल चलने वाला मनुष्य हमें सब तरफ से शस्त्र का निशाना बनाता है उसे तू पैर के नीचे कुचल दे । तू शत्रुओं का बाधक और संहारक है ।।४।।

यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥५॥

पदार्थ—हे इन्द्र=राजन् ! (**यः**) जो (**सनाभिः**) समान जन्मा (**च**) और (**यः**) जो (**निष्टयः**) निकृष्टजन्मा (**नः**) हमें (**अभिदासति**) क्षीण करता है (**अध**) अनन्तर (**तस्य**) उसके (**बलम्**) बल को जो (**मही**) महती (**द्यौः इव**) द्युलोक के समान विस्तृत है (**त्मना**) स्वयं (**अवतिर**) नष्ट कर।

भावार्थः—हे राजन् ! जो समानजन्मा अथवा असमान जन्मा शत्रु हमें पीड़ित और क्षीण करता है उसके विशाल द्युलोक के समान बल को नष्ट कर। शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ॥५॥

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥६॥

पदार्थः—हे इन्द्र=विद्वान् योगिन् ! (**त्वायवः**) तुझको चाहने वाले (**वयम्**) हम आप के (**सखित्वम्**) मैत्रीभाव को (**आ रभामहे**) प्राप्त करने में लगे हैं, (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथा**) मार्ग से (**नः**) हमें (**नय**) ले चल, (**विश्वानि**) समस्त (**दुरिता**) दुर्गुणों को (**अतिनय**) दूर कर।

भावार्थः—हे विद्वान् योगिन् तुझको चाहने वाले हम आप के मैत्रीभाव को प्राप्त करने में लगे हैं। सत्य के मार्ग से हमें ले चल और समस्त दुर्गुणों को दूर कर। शत्रुभूत काम क्रोध आदि के प्रभाव सर्वथा नष्ट हों ॥६॥

अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे विद्वन् ! (**त्वम्**) तू (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**ताम्**) उस वेदवाणी को (**सु**) सुष्ठुरूप से (**शिक्ष**) प्रदान कर (**या**) जो (**जरित्रे**) स्तावक को (**वरम्**) श्रेष्ठ ज्ञान को (**प्रति दोहते**) प्रदान करती है (**अच्छिद्रोध्नी**) निर्दोषरूप से देने वाला (**सहस्रधारा**) सहस्र वचनों से युक्त (**मही**) महती (**गौः**) वह वाणी (**नः**) हमें (**पयसा**) ज्ञान दुग्ध से (**यथा**) जिस प्रकार (**पीपयत्**) पूरित करे, वैसा करो।

भावार्थः—हे विद्वन् ! तू हमारे लिए उस वेदवाणी को प्रदान कर जो स्तोता को श्रेष्ठ ज्ञान और कर्म को प्रदान करती है। निर्दोषरूप से दोह्य वह सहस्रों वचनों वाली महती वाणी जिस प्रकार हमें ज्ञान और कर्म की भावना से पूरित करे वैसा कर ॥७॥

यह दशम मण्डल में एक सौ तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३४

ऋषिः १-६[1] मान्धाता यौवनाश्वः । ६[2], ७ गोधा ॥ देवता-इन्द्रः ॥
छन्दः—१—६ महापङ्क्तिः ।७ पंक्तिः ॥ स्वरः-पञ्चमः ।

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशालिन् परमेश्वर ! (**यत्**) जो तू (**उषाः-इव**) उषा के प्रकाश के समान (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**आ प प्राथ**) तेज से आपूरित करते हो (**महीनाम्**) महान् देवों के और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**सम्राजम्**) सम्राट् (**त्वाम्**) तुझको अध्यक्ष मानकर (**जनित्री**) सब जगत् की उपादान कारण (**देवी**) प्रकृति (**अजीजनत्**) जगत् को उत्पन्न करती है (**भद्रा**) कल्याणकारिणी (**जनित्री**) पैदा करने वाली प्रकृति जगत् को (**अजीजनत्**) उत्पन्न करती है।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! जो तू उषा के समान द्यु और पृथिवी लोकों को अपनी व्याप्ति से पूरित करता है, उस देवों के और

मनुष्यों के सम्राट् तुझ को अधिष्ठाता मान कर जगत् का उपादान कारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है और कल्याणकारिणी वह सबको उत्पन्न करती है ॥१॥

अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

पदार्थः - हे प्रभो ! (**मर्तस्य**) मनुष्य के (**दुर्हणायतः**) पीड़ा देने वाले दुर्व्यवहारों और द्वेषों को (**स्थिरम्**) स्थिर रूप से (**अव तनुहि**) क्षीण कर, (**यः**) जो (**अस्मान्**) हमें (**आ दिदेशति**) दवाता और पीड़ा पहुँचाता है ऐसे (**तम् ईम्**) उस इस अज्ञान को (**अधस्पदम्**) उसके स्थान से भ्रष्ट करके (**अव तनुहि**) नष्ट कर । देवी ····· ।

भावार्थ —हे प्रभो ! मनुष्य के पीडक दुर्व्यवहारों और द्वेष आदिकों को स्थिररूप से क्षीण करो । जो हमें दवाता और पीड़ा पहुँचाता है ऐसे अज्ञान को उसके स्थान से भ्रष्ट करके उसे नष्ट कर । आपके ही अधिष्ठातृत्व में जगत् को उत्पन्न करता है और वह कल्याणकारिणी प्रकृति सब जगत् को उत्पन्न करती है ॥२॥

अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभिः
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥

पदार्थः हे (**अमित्रहन्**) मित्रों को न मारने वाले ! (**शक्र**) शक्तिमय (**इन्द्र**) प्रभो ! (**विश्वश्चन्द्राः**) सब को आह्लादित करने वाले (**त्याः**) उन (**बृहतीः**) महान् (**त्याः**) इन (**इषः**) ज्ञान और धनों को (**शचीभिः**) शक्तियों तथा (**विश्वाभिः**) समस्त (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के सहित (**अव धूनुहि**) हमारी तरफ प्रेरित कर । देवी ·····

भावार्थ.—हे मित्रों को न मारने वाले ! शक्तिशाली प्रभो ! सबको आह्लाहित करने वाले उन महान् ज्ञान और धनों को शक्तियों तथा समस्त रक्षाओं के साथ हमारी तरफ प्रेरित कर, तेरे अधिष्ठातृत्व में जगत् का उपादान का कारण प्रकृति समस्त जगत् को उत्पन्न करती है। कल्याणकारिणी वह विश्व को उत्पन्न करती है ॥३॥

अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिः
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥४॥

पदार्थः —हे (**शतक्रतो**) बहुप्रज्ञ तथा बहुकर्मन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**सुन्वते**) यज्ञ करने वाले यजमान के लिए (**यत्**) जब (**विश्वानि**) प्रचुर धन (**अव धूनुषे**) देता है तब (**रयिम् न**) धन के समान पुत्र धन आदि को भी (**सहस्रणीभिः**) सहस्रों (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के (**सचा**) साथ देता है । देवी

भावार्थः—हे अनन्त प्रज्ञ ! बहुकर्मन् परमेश्वर ! तू यज्ञ करने वाले यजमान के लिए जब प्रचुर धन देता हैं तब धन के समान उत्तम पुत्रधन आदि को भी सहस्रों रक्षाओं के साथ देता है । तुम्हारी अध्यक्षता में जगत् का उपादान कारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है और कल्याणकारिणी वह जगत् को उत्पन्न करती है ॥४॥

अव स्वेदा इवाभितो विष्वक्पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वायाइव तन्तवो व्य१स्मदेतु दुर्मतिः
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥५॥

पदार्थः –(**स्वेदाः इव**) शरीर से निकले पसीने के विन्दुओं के समान (**अभितः**) सर्वतः (**दिद्यवः**) प्रकाशमान परमेश्वर का ज्ञान प्रकाश (**विष्वक्**) नाना मुख हो (**दूर्वायाः**) दूर्वा के (**तन्तवः**) तन्तुओं के (**इव**) समान (**अवपतन्तु**) फैलें, (**दुर्मतिः**) दुर्बुद्धि (**अस्मत्**) हमसे (**वि एतु**) दूर हो । देवी

भावार्थः – शरीर से निकले पसीने की बूंदों के समान सर्वत्र प्रकाशमान परमेश्वर का ज्ञान प्रकाश (विष्वक्) नानामुख होकर दूर्वा घास के लच्छों के समान सर्वत्र फैले । दुर्बुद्धि हमसे दूर हो । प्रभो ! आपके अधिष्ठातृत्व में जगत् का उपादानकारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है । वही कल्याणी समस्त विश्व को उत्पन्न करती है ॥५॥

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥६॥

पदार्थः—(**मन्तुमः**) हे ज्ञानवन् ! (**मघवन्**) हे मघवन् ! आप (**शक्तिम्**) शक्ति को (**दीर्घम्**) बड़े (**अंकुशम्**) अंकुश के (**यथा**) समान (**बिभर्षि**) धारण करते हो, (**यथा**) जिस प्रकार (**अजः**) बकरा (**पूर्वेण**) पूर्व (**पदा**) पैर से (**वयाम्**) शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार आप समस्त जगत् को (**यमः**) नियन्त्रित करते हो । देवी······।

भावार्थः—हे ज्ञानाकर ! हे मघवन् प्रभो ! आप आयत अंकुश की भांति शक्ति को धारण करते हो । जिस प्रकार बकरा एक पैर से वृक्ष की शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार आप जगत् को अपने नियन्त्रण में रखते हो । आप के अधिष्ठातृत्व में जगत् का उपादान कारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है । कल्याणी वह विश्व को उत्पन्न करती है ॥६॥

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ॥७॥

पदार्थः—हे (**देवाः**) विद्वान् लोगो (**नकिः**) न कुछ हम (**मिनीमसि**) हानि पहुँचाते हैं, (**नकिः**) न कुछ (**आयोपयामसि**) गड़बड़ करते हैं, (**मंत्रश्रुत्यम्**) मन्त्र से प्रतिपादित कर्म को (**चरामसि**) आचरण में लाते हैं (**पक्षेभिः**) अपनों और (**अपिकक्षेभिः**) सहयोगियों सहित (**अत्र**) इस लोक में (**अभिसंरभामहे**) यत्न करते हैं ।

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! न हम कुछ हिंसा का व्यवहार करते हैं, न कुछ भी गडबड़ करते हैं, मन्त्र से प्रनिपादित कर्म को करते हैं अपने तथा अपने सहयोगियों सहित इस लोक में यत्न करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १३५

ऋषिः– १– ७ कुमारो यामायनः ॥ देवता– यमः ॥ छन्दः १—३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ७ भुरिगनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥१॥

पदार्थः—(**सुपलाशे**) उत्तम पत्तों वाले (**यस्मिन्**) जिस (**वृक्षे**) देहरूपी वृक्ष पर (**यमः**) इन्द्रिय आदि का स्वामी जीव (**देवैः**) इन्द्रियों के साथ (**संपिबते**) अच्छे बुरे कर्म फल के भोगों को भोगता है (**अत्र**) इसी पर (**नः**) हमारा (**पिता**) पिता (**विश्पतिः**) प्रजा का पालक परमेश्वर (**पुराणान्**) पुरातन जीवों को (**अनु**) अनुक्रम से (**वेनति**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—उत्तम वर्णों से युक्त इस शरीर रूपी वृक्ष पर जीव अपने पूर्व कृत कर्मों के भले बुरे फल को इन्द्रियों सहित भोगता है । जगत् प्रजा का पालक हमारा पिता परमेश्वर कर्म के फल की ब्यवस्था के अनुसार पुरातन जीवों को इस शरीर-वृक्ष पर भोगों को प्राप्त कराता है ॥१॥

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥२॥

पदार्थः—(**पुराणान्**) पुरातन भोगों की (**अनु वेनन्तम्**) पुनः कामना करते हुए (**आमुया**) इस (**पापया**) पापयुक्त बुद्धि से (**चरन्तम्**) कष्टों को भोगते हुए पुरुष को मैं (**असूयन्**) ईर्ष्या करता हुआ (**अभि अचाकशम्**) देखता हूं (**पुनः**) फिर भी (**तस्मै अस्पृहयम्**) उसके लिए प्रेम करता हूं ।

भावार्थः—पुरातन भोगों की कामना करते हुए पापमयी बुद्धि कष्टों को भोगते हुए पुरुष को ईर्ष्या करता हुआ देखता हूं परन्तु फिर उसी से प्रेम भी करता हूं । अर्थात् यह जानता हूं कि यह पाप का फल भोग रहा है फिर भी उसी से प्रेम करता हूं ॥२॥

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥३॥

पदार्थः—(**कुमार**) हे कुमार जीव ! (**अचक्रम्**) चक्ररहित (**एकेषम्**) एक प्राणरूपी दण्ड वाले (**विश्वतः**) सर्वत्र (**प्राञ्चम्**) जाते हुए (**नवम्**) नूतन (**रथम्**) शरीर रथ को तू (**मनसा**) मन से अपना (**अकृणोः**) करता है इस पर (**अपश्यन्**) उसके रहस्य को विना जाने (**अधि तिष्ठसि**) स्थित है ।

भावार्थः—हे कुमार जीव ! चक्ररहित एक प्राणरूपी दण्डवाले सर्वत्रगामी जिस नए शरीररथ को तू मन से अपना करता है उस पर उसके वास्तविक रहस्य को विना जाने सवार है ॥३॥

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥४॥

पदार्थः—(**कुमार**) हे कुमार जीव ! (**विप्रेभिः**) ज्ञान के साधन इन्द्रियों से प्रेरित होकर तू (**यम्**) जिस (**रथम्**) शरीर रथ को (**प्र अवर्तयः**) चलाता है (**तम्**) उसमें (**साम**) सम्वन्वय और शान्ति (**अनु प्र अवर्तत**) प्रवृत्त होवे और (**इतः**) इस संसार से पार होने का साधन बने जिस प्रकार (**नावि**) नौका मे (**सम् आहिताम्**) सम्यक् रखी हुई वस्तु पार जाती है ।

भावार्थः—हे कुमार जीव ! ज्ञान के साधन इन्द्रियों से प्रेरित होकर तू जिस शरीर रथ को चलाता है उसमें समन्वय और शान्ति प्रवृत्त होवे और इस संसार से पार होने का साधन बने जिस प्रकार नौका में रखी वस्तु पार जाती है ॥४॥

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत ।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ॥५॥

पदार्थः—(**कः**) कौन (**कुमारम्**) अवोध जीव को (**अजनयत्**) उत्पन्न करता है, (**कः**) कौन (**रथम्**) देहरथ को (**निरवर्तयत्**) निरन्तर चलाता है (**कः स्वित् नः**) कौन हमें (**अद्य**) आज (**तत्**) उस रहस्य को (**ब्रूयात्**) बतलावे (**यथा**) जिस प्रकार (**अनुदेयी**) भिन्न पदार्थ सत्ता (**अभवत्**) होती है ।

भावार्थः—कौन अवोध जीव को उत्पन्न करता है । कौन देहरथ को निरन्तर चलाता है । कौन हमें आज इस रहस्य को बतावे कि किस प्रकार से यह अपने से भिन्न सत्ता उत्पन्न होती हैं ॥५॥

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**यथा**) जिस प्रकार से (**अनुदेयी**) यह आत्मा से भिन्न आत्मा को दिया जाने वाला शरीर (**अभवत्**) होता है उसी प्रकार से (**ततः**) उसीसे (**अग्रम्**) मुख्य तत्त्व मन भी (**अजायत**) उत्पन्न होता है (**पुरस्तात्**) उससे पूर्व (**बुध्नः**) मूल प्रकृति (**आततः**) फैली होती है, (**पश्चात्**) तदनन्तर (**निरयणम्**) निकालकर व्यक्त हुआ जगत् (**कृतम्**) बनाया जाता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार यह आत्मा से भिन्न आत्मा को दिया जाने वाला शरीर उत्पन्न होता है उसी की तरह उसी कारण से मन भी उत्पन्न होता है । उससे पूर्व अवस्था में मूल प्रकृति फैली होती है और बाद में व्यक्त जगत् उसी से बनाया जाता है ॥६॥

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥७॥

पदार्थः—(**इदम्**) वह (**यमस्य**) आदित्य का (**सादनम्**) स्थान है (**तत्**) जो (**देवमानम्**) रश्मियों के निर्माण का साधन है, (**इयम्**) यह (**नाडी**) वाणी (**अस्य**) इसके लिए (**धम्यते**) शब्दायमान होती है (**अयम्**) यह (**गीर्भिः**) प्रशंसकों से (**परिष्कृतः**) अलंकृत वा प्रशंसित किया जाता है ।

भावार्थः—यह अन्तरिक्ष आदित्य का स्थान है । यह ही रश्मियों के निर्माण का साधनभूत है । यह वाणी इसके लिए शब्दायमान होती है और यह आदित्य प्रशंसाओं से अलंकृत होता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पेंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३६

ऋषिः—१—७ मुनयो वातरशनाः=१ जूतिः । २ वातजूतिः । ३ विप्रजूतिः । ४ वृषाणकः । ५ करिक्रतः । ६ एतशः । ७ ऋष्यशृंगः ॥ **देवताः**—केशिनः ॥ **छन्दः**—१ विराडनुष्टुप् । २—४, ७ अनुष्टुप् । ५, ६ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥१॥

पदार्थः - (**केशी**) रश्मिधारी सूर्य (**अग्निम**) अग्नि को (**विभर्ति**) धारण करता है, (**केशी**) सूर्य ही (**विषम्**) जल को धारण करता है तथा (**केशी**) सूर्य (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी को (**विभर्ति**) धारण करता है, (**केशी**) सूर्य (**विश्वम्**) व्याप्त (**स्वः**) समस्त जगत् को (**दृशे**) दर्शन के लिए करता है, (**इदम्**) यह मण्डलस्थ (**ज्योतिः**) ज्योति=सूर्य (**केशी**) केशी (**उच्यते**) कहा जाता है ।

भावार्थ:—रश्मिधारी सूर्य अग्नि को धारण करता है । वह सूर्य ही जल और द्युलोक तथा पृथिवी को धारण करता है । सूर्य ही व्याप्त समस्त जगत् को देखने योग्य करता है । यह मण्डलस्थ आदित्य ज्योति ही केशी कही जाती है ॥१॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥२॥

पदार्थः—(**वातरशनाः**) वायु है बन्धन जिनका ऐसे (**मुनयः**) ग्रहनक्षत्र आदि (**पिशंगा**) कपिल वर्ण के (**मला**) मलिन प्रकाश को (**वसते**) आच्छादित करते हैं (**यत्**) जब (**देवासः**) सूर्य किरणें (**अविक्षत**) आकाश में प्रविष्ट होती हैं तब (**वातस्य**) वायु के (**ध्राजिम्**) गति को (**अनुयन्ति**) अनुगत होती हैं ।

भावार्थः—वायुबन्धन वाले नक्षत्र आदि कपिलवर्ण के मलिन प्रकाश को आच्छादित करते हैं अर्थात् धारण करते हैं । जब सूर्य की किरणें आकाश में प्रविष्ट होती हैं तो वे वायु की गति का अनुसरण करती हैं ॥२॥

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥३॥

पदार्थः—(**वयम्**) हम प्राण, अपान, उदान आदि प्राणगण (**मौनेयेन**) मननशील अन्तःकरण के भी स्वामी आत्मा से (**उन्मदिताः**) हर्षित किये हुए (**वातान्**) वायुओं पर (**आ तस्थिम**) आधार करके स्थित होते हैं, (**मर्तासः**) हे मनुष्यो ! (**यूयम्**)आप लोग (**अस्माकम्**) हमारे (**शरीरा इत्**) शरीरों को ही (**अभि पश्यथ**) देखते हो, शरीर के अन्दर की बातों को नहीं ।

भावार्थः—हम प्राण, अपान आदि मननशील अन्तःकरण के स्वामी आत्मा से हर्षित किये हुए वायुओं के आधार पर स्थित होते हैं । हे मर्त्य लोगो ! आप हमारे शरीरों को तो देखते हो परन्तु हमें और आन्तरिक वस्तुओं को नहीं जानते हो ॥३॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥४॥

पदार्थ—(**मुनिः**) विज्ञानमय मनःसत्व (**अन्तरिक्षेण**) भीतरी व्याप्तबल से (**पतति**) गति करता है (**विश्वा रूपा**) समस्त रूपों को (**अव चाकशत्**) देखता है, वह (**देवस्य देवस्य**) प्रत्येक इन्द्रिय के (**सौकृत्याय**) उत्तमता से कार्य करने के लिए (**सखा**) मित्र होकर (**हितः**) स्थित है ।

भावार्थः—विज्ञानमय मनःसत्व भीतरी व्याप्तबल से गति करता है । समस्त रूपों और पदार्थों को देखता है । वह प्रत्येक इन्द्रिय के सौकर्य के लिए मित्र होकर स्थित है ॥४॥

वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥५॥

पदार्थः—(**मुनिः**) मनःसत्व (**वातस्य**) प्राण का (**अश्वः**) भोक्ता (**वायोः**) वायु का (**सखा**) मित्र (**देवेषितः**) इन्द्रियों से चाहने योग्य है (**यः**) जो (**पूर्वः**) पूर्व (**च**) और (**अपरः**) दूसरा (**उत**) भी (**उभौ**) दोनों (**समुद्रौ**) हृदय के दोनों पाश्वों को (**आ क्षेति**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—मनःसत्व प्राण का भोक्ता, वायु का मित्र, इन्द्रियों से चाहने योग्य है । वह पूर्व और दूसरे हृदय पाश्वों को प्राप्त होता है ॥५॥

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥६॥

पदार्थः—(**अप्सरसाम्**) विद्युतों (**गन्धर्वाणाम्**) मेघों के तथा (**मृगाणाम्**) मृगों के (**चरणे**) संचारस्थल में (**चरन्**) विचरने वाला (**केतस्य**) प्रज्ञापक वस्तु को (**विद्वान्**) प्राप्त हुआ (**सखा**) मित्र (**स्वादुः**) सब का ग्रहण करने वाला (**केशी**) सूर्य (**मदिन्तमः**) अतिशय सुखी करने वाला है ।

भावार्थः - विद्युतों, और मेघों के संचार-स्थान अन्तरिक्ष में तथा मृगों के संचार-स्थल जंगल में विचरने वाला प्रज्ञापक चिन्हों को प्राप्त हुआ मित्र-भूत, सबका ग्रहण करने वाला सूर्य, अग्नि, वायु अतिशय सुखदाता है ॥६॥

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥७॥

पदार्थः—(**केशी**) सूर्य (**रुद्रेण**) मरुद्गण अथवा वैद्युताग्नि के (**सह**) साथ (**यत**) जब (**पात्रेण**) पानसाधन रश्मिजाल से (**विषस्य**) जल को (**अपिवत्**) पीता है तब (**अस्मै**) इस सूर्य के लिए (**वायुः**) वायु भूगत समस्त रसों का (**उपामन्थत्**) उपमन्थन करता है (**कुनंनमा**) माध्यमिका वाक् (**पिनष्टि स्म**) पीसती है ।

भावार्थः— सूर्य मरुद्गण अथवा वैद्युताग्नि के साथ जब रश्मि जाल से जल को पीता है तब इस सूर्य के लिए वायु समस्त पृथिवीस्य रसों का उपमंथन करता है और माध्यमिका वाक् उस जल को पिसा हुआ कर देती हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसो छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३७

ऋषयः—१—७ सप्त ऋषय एकर्चाः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ४, ६ अनुष्टुप् । २, ३, ५, ७ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

पदार्थः (उत) अपि च (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**अवहितम्**) नीचे गिरे हुए को (**उन्नयथ**) ऊपर उठाओ, हे (**देवाः**) विद्वानो ! (**उत**) और (**आगः**) अपराध (**चक्रुषम**) करने वाले को (**पुनः**) फिर अपराध करने से बचाओ, (**देवाः**) हे विद्वानो ! रक्षा करके (**पुनः**) फिर (**जीवयथ**) चिरजीवी करो ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! नीचे गिरे को ऊपर उठाओ, और अपराध करने वाले को अपराध करने से वचाओ और फिर उसको चिरजीवी करो ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥२॥

पदार्थः—(**इमौ**) प्रत्यक्षभूत (**द्वौ**) दो (**वातौ**) वायुयों (**आ सिन्धोः**) सिन्धु पर्यन्त और (**आ परावतः**) समुद्र से परे दूर प्रदेश पर्यन्त (**वातः**) बहती हैं, हे साधक ! (**अन्यः**) एक तो (**ते**) तेरे लिए (**दक्षम**) बल को (**आवातु**) प्राप्त करावे और (**अन्यः**) दूसरा (**यत्**) जो (**रपः**) खरावी है उसे (**परा वातु**) दूर फेंकती हैं ।

भावार्थः—प्रत्यक्षभूत दो वायुएँ सिन्धु पर्यन्त और उसके दूर के प्रदेश पर्यन्त बहती हैं । हे मनुष्य एक तो तेरे लिए बल को प्राप्त कराती है और दूसरी खराबी को दूर फेंकती है ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३॥

पदार्थः—(**वातः**) वायु (**भेषजम**) औषध को (**आ वाहि**) प्राप्त कराता है, (**यद्**) जो (**रपः**) खरावी है उसे (**वातः**) वायु (**विवाहि**) दूर करता है (**त्वम**) यह (**हि**) ही (**देवानाम**) देवों का (**दूतः**) दूत हुआ (**विश्वभेषजः**) सारी ओषधियों के लिए (**ईयसे**) निरन्तर बहता है ।

भावार्थः—वायु औषध को प्राप्त कराता और खराबी दूर करता है, वह देवों का दूत है और सारी ओषधियां उसमें हैं । इन गुणों वाला वह निरन्तर बहता है ॥३॥

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥४॥

पदार्थः—हे रोगी मनुष्य ! में वैद्य (**त्वा**) तेरे पास (**शंतातिभिः**) सुखकर (**अथो**) और (**अरिष्टतातिभिः**) अहिंसा कर रक्षणों सहित (**आ अगमम**) आता

हूँ, (**ते**) तेरे लिए (**भद्रम्**) कल्याणकारक, (**दक्षम्**) बल को (**आ अभार्षम्**) वायु के द्वारा लाता हूँ और (**ते**) तेरे (**यक्ष्मम्**) रोग को (**परा सुवामि**) दूर करता हूँ।

भावार्थः—हे रोगी मनुष्य ! तेरे पास मैं वैद्य सुखकर और अहिंसाकर रक्षणों के साथ आता हूं। तेरे लिए कल्याणकारक बल को वायु के द्वारा लाता हूं और तेरे रोग को नष्ट करता हूं ॥४॥

त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥५॥

पदार्थः—(**इह**) इस लोक में (**देवाः**) सारी दिव्य शक्तियें (**त्रायन्ताम्**) सब की रक्षा करें, (**मरुताम्**) मरुतों का (**गणः**) समूह (**त्रायताम्**) सब की रक्षा करें, (**विश्वा**) समस्त (**भूतानि**) भूत जात (**त्रायन्ताम्**) रक्षा लरें (**यथा**) जिससे (**अयम्**) यह हमारा शरीर आदि (**अरपाः**) निर्दोष (**असत्**) रहे।

भावार्थः—इस लोक में सभी दिव्य शक्तियां सबकी रक्षा करें, मरुतों का समूह सबकी रक्षा करें, समस्त भूतजात सब की रक्षा करें जिससे यह हमारा शरीर आदि निर्दोष रहे ॥५॥

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥६॥

पदार्थः—(**आपः**) जलें (**इत् वै उ**) निश्चय ही (**भेषजीः**) भेषजरूप हैं, (**आपः**) जलें (**अमीवचातनीः**) रोग को दूर करने वाली हैं, (**आपः**) जलें (**सर्वस्य**) सब प्राणियों की (**भेषजीः**) भेषजभूत हैं अतः (**ताः**) वे (**ते**) तुझ रोगी का (**भेषजम्**) इलाज (**कृण्वन्तु**) करें।

भावार्थः—जलें निश्चय ही भेषजभूत हैं। जलें रोग को नष्ट करने वाली हैं, जलें सभी प्राणियों की भेषजभूत हैं, अतः वे तुझ रोगी का इलाज करें ॥६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥७॥

पदार्थः—(**दशशाखाभ्याम्**) दश अंगुली वाले (**हस्ताभ्याम्**) दोनों हाथों के साथ (**वाचः**) वाणी की (**पुरोगवी**) आगे को फेंकने वाली (**जिह्वा**) जीभ है (**अनामयित्नुभ्याम्**) नीरोगता उत्पन्न करने वाले (**ताभ्याम्**) उन दोनों हाथों से (**त्वा त्वा**) तुझ-तुझ को हे रोगी मनुष्य ! (**उप स्पृशामसि**) स्पर्श करते हैं।

भावार्थः—दश अंगुलियों वाले दोनों हस्तों के साथ वाणी को आगे आगे फेंकने वाली जीभ है। नीरोगता देने वाले उन दोनों हाथों से, हे रोगी जनो ! तुझ तुझ को हम स्पर्श करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसो संतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३८

ऋषिः—१—६ अंग औरवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४, ६ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३, ५, विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१॥

पदार्थः—(**तव**) उस (**इन्द्र**) इन्द्र=विद्युत् के (**सख्येषु**) सख्यभावों में विद्यमान (**त्ये**) ये (**वह्नयः**) अग्नि की दीप्तियें (**ऋतम**) जल को (**मन्वानाः**) जानकर (**बलम्**) आवरक मेघ को (**व्यर्दविरुः**) अत्यन्त विदीर्ण करते हैं, (**यत्र**) जिस समय में (**मन्मनि**) स्तोत्र के होने पर (**कुत्साय**) स्तोता के लिए (**उषसः**) उषाओं को (**दशस्यन्**) देते हुए (**अपः**) जलों को (**रिणन्**) निगत करते हुए होते हो तब (**अहयः**) वृत्र के (**दंसयः**) कर्म वितथ हो जाते हैं।

भावार्थः—इस विद्युत् के संख्य भावों में विद्यमान अग्नि की दीप्तियें जलों को प्राप्त कर आवरक मेघ को अत्यन्त विदीर्ण करती हैं। जिस समय में स्तोत्र किया जाता है उस प्रभात वेला में स्तोता के लिए उषाओं को जब यह विद्युत् देता है तब वृत्र के सारे ही कर्म विफल हो जाते है ॥१॥

अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा ॥२॥

पदार्थः -- यह इन्द्र=विद्युत् (**प्रस्वः**) जलों को (**अवासृजः**) उत्पन्न करता अर्थात् मेघ से गिराता है, (**गिरीन्**) मेघों को (**श्वञ्चयः**) विदारता है (**उस्राः**) किरणों को (**उदाजः**) बाहर निकालता है, (**प्रियम्**) प्रियकर (**मधु**) मधुर हवि को (**अपिबः**) पीता है, (**वनिनः**) जल युक्त समुद्रों को (**अवर्धयः**) बढ़ाता है (**अस्य**) इस इन्द्र=विद्युत् के (**दंससा**) कर्म से (**ऋत जातया**) ऋत नियम से उत्पन्न (**गिरा**) त्रयीरूप वेदवाणी से (**सूर्यः**) सूर्य (**शुशोच**) प्रदीप्त होता है।

भावार्थः--यह इन्द्र=विद्युत् जलों को मेघ से नीचे गिराती है। मेघों को विदीर्ण करती है, मेघों में छिपाई गई सूर्य किरणों को बाहर निकालती है। प्रियकर मधुर हवि को पीती है। इसके कर्म और त्रयीरूपा वेदवाणी से सूर्य प्रदीप्त होता है ॥२॥

वि सूर्यो॒ मध्ये॑ अमु॒चद्रथं॑ दि॒वो वि॒दद्दा॒साय॑ प्रति॒मान॒मार्यः॑ ।
दृ॒ळ्हानि॒ पिप्रो॒रसु॑रस्य मा॒यिन॒ इन्द्रो॒ व्या॑स्यच्चकृ॒वाँ ऋ॒जिश्व॑ना ॥३॥

पदार्थ—(**दिवः**) द्युलोक के (**मध्ये**) मध्य में (**सूर्यः**) सूर्य (**रथम्**) रश्मिचक्र को (**विअमुचद्**) छोड़ता है, (**आर्यः**) श्रेष्ठ अथवा महागति (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु (**दासाय**) उपक्षपयिता मेघ के (**प्रतिमानम्**) प्रतिकार को (**विदत्**) प्राप्त करता है। (**ऋजिश्वना**) सूर्य की ऋजुगामी किरण से (**चक्रिवान्**) मैत्री को करता हुआ (**मायिनः**) मायावी (**पिप्रोः**) जल से पूर्ण (**असुरस्य**) मेघ के (**दृढा**) दृढ़ समूहों को (**आस्यत्**) उखाड़ फेंकता है।

भावार्थः—द्युलोक के मध्य में सूर्य अपने रश्मिजाल को विखेरता है, श्रेष्ठ एवं महागति वायु सूर्य की सीधी किरणों से सहयोग करता हुआ मायावी जलपूर्ण मेघ के समूहों को नष्ट कर देता है ॥३॥

अना॑धृष्टानि धृषि॒तो व्या॑स्यन्नि॒धीँरदे॑वाँ अमृण॒दयास्यः॑ ।
मा॒सेव॒ सूर्यो॒ वसु॒ पुर्य॒मा द॑दे गृणा॒नः शत्रूँ॑रशृणाद्वि॒रुक्म॑ता ॥४॥

पदार्थः—(**धृषितः**) शत्रुओं का घर्षक (**अपास्यः**) दृढ़ इन्द्र=वायु (**अनाधृष्टानि**) अबाधित मेघबल को (**व्यस्यत्**) नष्ट करता है, उनके बलों के (**निधीन्**) धारयिता (**अदेवान्**) अदेवभूत मेघों को (**अमृणत्**) मारता है, (**मासा**) महीने के अनुसार (**सूर्य इव**) सूर्य के समान मेघों के (**पुर्यम्**) पुर में होने वाले (**वसु**) धन को (**आ ददे**) ले लेता है (**गृणानः**) निगरण करता हुआ (**विरुक्मता**) विरोचमान वज्र से (**शत्रून्**) शत्रुभूत मेघों को (**अशृणात्**) शीर्ण कर देता है।

भावार्थः—शत्रुओं का धर्षक दृढ़ वायु अबाधित मेघबल को नष्ट करता है, अदेव भूत मेघों को मारता है, और, जिस प्रकार मास मास के अनुसार सूर्य रसों को ग्रहण करता है उसी प्रकार मेघों की पुरी में होने वाले धन को हर लेता है। चमकते वज्र से शत्रुभूत मेघों को शीर्ण करता है ॥४॥

अयु॑द्धसेनो वि॒भ्वा॑ विभिन्द॒ता दाश॑द्वृत्र॒हा तुज्या॑नि तेजते ।
इन्द्र॑स्य॒ वज्रा॑दबिभेदभि॒श्नथः॒ प्राक्रा॑मच्छु॒न्ध्यूरज॑हादु॒षा अनः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**अयुद्धसेनः**) विना सेना चढाये ही (**विभ्वा**) व्यापक (**विभिन्दता**) विदारक वज्र से (**वृत्रहा**) मेघ का घातक इन्द्र=वायु (**दाशत्**) प्रजा को जल धन अन्न आदि देता है, (**तुज्यानि**) प्रेर्यमाण शत्रु बलों को (**तेजते**) अल्प बनाता है, (**अभिश्नथः**) सब प्रकार से घातक (**इन्द्रस्य**) इन्द्र के (**वज्रात्**) वज्र से सभी शत्रुजन (**अबिभेत्**) डरते हैं, (**शुन्ध्युः**) सब पदार्थों का शोधक आदित्य (**प्राक्रामत्**) जगत् के प्रकाशनार्थं जाना प्रारम्भ करता है (**उषाः**) उषा (**अनः**) अपने रथ=कलेवर को (**अजहात्**) छोड़ती है।

भावार्थः—विना सेना को चढ़ाए हुए विदारक वज्र से मेघ का घातक वायु प्रजा को जल अन्न और धन आदि प्रदान करता है, प्रेर्यमाण शत्रु बलों को क्षीर्ण करता है, सभी ओर से घातक इन्द्र के वज्र से शत्रुजन डरते हैं सब पदार्थों का शोधक आदित्य जगत् के प्रकाशनार्थ उदित होता है और उषा अपने प्रकाशपुंज को समेटती है ॥५॥

ए॒ता त्या ते॒ श्रुत्या॑नि॒ केव॑ला॒ यदेक॒ एक॒मकृ॑णोरय॒ज्ञम् ।
मा॒सां वि॒धान॑मदधा॒ अधि॒ द्यवि॒ त्वया॒ विभि॑न्नं भरति प्र॒धिं पि॒ता ॥६॥

पदार्थः—(**त्या**) वे (**ते**) इस इन्द्र का (**एता**) ये (**केवला**) केवल (**श्रुत्यानि**) प्रशंसनीय पराक्रम है (**यत्**) कि (**एकः**) एकाकी वह (**एकम्**) मुख्य (**अयज्ञम्**) यज्ञहीन=असुर=मेघ को (**अकृणोः**) काटता है, (**मासाम्**) मासों के (**विधानम्**) निर्माता आदित्य को (**द्यवि अधि**) द्युलोक में (**अदधाः**) धारण करता है, (**पिता**) पालक द्युलोक (**विभिन्नम्**) मेघ से विदीर्ण किये रश्मिजल के (**प्रधिम्**) पार्श्व को (**त्वया**) इस इन्द्र=वायु के द्वारा पूरा करता है।

भावार्थः—वे ये इन्द्र के केवल स्तुत्य पराक्रम हैं जो कि वह अकेला

मुख्य असुर=मेघ को काटता है, मासों के निर्माता आदित्य को द्युलोक में धारण करता है । पालक द्युलोक मेघ से विदीर्ण किए गए रश्मिजाल के पार्श्व को इस वायु के द्वारा पूरा करता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–१३९

ऋषिः—१—६ **विश्वावसुर्देवगन्धर्वः** ॥ **देवता**—१—३ **सविता** । ४—६ **विश्वावसुः** ॥ छन्दः—१, २, ४—६ **त्रिष्टुप्** । ३ **विराट्त्रिष्टुप्** । **स्वरः**—**धैवतः** ॥

सूर्य॑रश्मि॒र्हरि॑केशः पु॒रस्ता॑त्सवि॒ता ज्योति॒रुद॑याँ॒ अज॑स्रम् ।
तस्य॑ पू॒षा प्र॑स॒वे या॑ति वि॒द्वान्त्स॒म्पश्य॒न्विश्वा॒ भुव॑नानि गो॒पाः ॥१॥

पदार्थः—उषा के प्रादुर्भाव के अनन्तर और सूर्य के उदय से पूर्ववर्ती काल अथवा तात्कालिक सूर्य को सविता कहा जाता है ।—(**सूर्यरश्मिः**) सरणशील रश्मियों वाला (**हरिकेशः**) हरणशील दीप्तिवाला (**सविता**) लोकों का प्रेरक आदित्य (**पुरस्तात्**) पूर्व दिशा में (**अजस्रम्**) अनवरत (**ज्योतिः**) तेज को (**उद् अयान्**) उदित करता है, (**तस्य**) उसके (**प्रसवे**) प्रेरण होने पर (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**विद्वान्**) प्राप्त हुआ (**संपश्यन्**) दिखाता हुआ, (**गोपाः**) रक्षक (**पूषा**) वायु (**याति**) सर्वत्र विचरता है ।

भावार्थः—सरणशील रश्मियों वाला हरणशील दीप्तिवाला लोकों का प्रेरक आदित्य पूर्व दिशा में अनवरत ज्योति को उदित करता है । उस की प्रेरणा में समस्त लोकों को प्राप्त हुआ, सबको दिखाता हुआ रक्षक पूषा=वायु सर्वत्र बहता है ॥१॥

नृ॒चक्षा॑ ए॒ष दि॒वो मध्य॑ आस्त आपप्रि॒वान् रोद॑सी अ॒न्तरि॑क्षम् ।
स वि॒श्वाची॑र॒भि च॑ष्टे घृ॒ताची॑रन्त॒रा पूर्व॒मप॑रं च के॒तुम् ॥२॥

पदार्थः—(**नृचक्षाः**) मनुष्यों को समस्त पदार्थों को दिखाने वाला अथवा नयनशील रश्मियों से प्रकाशमान (**एषः**) यह सविता (**दिवः**) द्युलोक के (**मध्ये**) मध्य में (**आस्ते**) स्थित है वह (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी को तथा (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**आपप्रिवान्**) अपने तेज से आपूरित करता हुआ विद्यमान है । (**सः**) वह (**विश्वाचीः**) सर्वव्यापिनी महा दिशाओं (**घृताचीः**) उपदिशाओं को भी (**पूर्वम्**) पूर्व भाग (**केतुम्**) प्रज्ञापनीय (**अपरम्**) पृष्ठभाग (**च**) और (**अन्तरा**) अन्तराल को (**अभि चष्टे**) प्रकाशित करता है ।

भावार्थः—नयनशील रश्मियों से प्रकाशमान यह सविता द्यु और पृथिवी को तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से आपूरित करता हुआ द्युलोक के मध्य में स्थित है । वह समस्त महादिशाओं उपदिशाओं, पूर्व भाग, पृष्ठ भाग और अन्तराल को प्रकाशित करता है ॥२॥

रा॒यो बु॒ध्नः स॒ङ्गम॑नो॒ वसू॑नां॒ विश्वा॑ रू॒पाभि च॑ष्टे॒ शची॑भिः ।
दे॒वइ॑व सवि॒ता स॒त्यध॑र्मेन्द्रो॒ न त॑स्थौ सम॒रे धना॑नाम् ॥३॥

पदार्थः—(**रायः**) धन का (**बुध्नः**) मूलभूत, (**वसूनाम्**) धनों का (**संगमनः**) प्रापक (**शचीभिः**) अपनी दीप्तियों से (**विश्वा**) समस्त (**रूपा**) रूपों को (**अभि चष्टे**) प्रकाशित करता है (**देव इव**) देव के समान (**सविता**) सविता (**सत्यधर्मा**) सत्य नियमों और सत्यकर्मों वाला है, लोगों के लिए (**धनानाम्**) धनों की (**समरे**) प्राप्ति के उद्योग में (**इन्द्रः न**) इन्द्र वायु के समान (**तस्थौ**) स्थित है ।

भावार्थः—धन का मूलभूत, धनों का प्रापक सविता अपनी दीप्तियों से समस्त रूपों को प्रकाशित करता है । देव=अग्नि के समान वह सत्यधर्मा और सत्यकर्मा है । लोगों के लिये धनप्राप्ति में वह इन्द्र=वायु के समान स्थित है ॥३॥

वि॒श्वाव॑सुं सोम गन्ध॒र्वमापो॑ ददृ॒शुषी॒स्तदृ॒तेना॒ व्या॑यन् ।
तद॒न्ववै॒दिन्द्रो॑ रारहा॒ण आ॑सां॒ परि॒ सूर्य॑स्य परि॒धीर॑पश्यत् ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्य पुरुष ! (**गन्धर्वम्**) शब्द करने वाले (**विश्वावसुम्**) मेघ को (**यत्**) जो (**आपः**) जलें (**ददृशुषी**) देखने वाली होती है (**तत्**) तो वह (**ऋतेन**) अग्नि के द्वारा (**वि आयन्**) विविध रूप में आती है (**तत्**) उस गमन को (**आसाम्**) इन जलों का (**रारहाणः**) प्रापक (**इन्द्रः**) इन्द्र (**अन्ववैत्**) प्राप्त करता है (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**परिधीन्**) प्राची आदि दिग्भागों को (**पर्यपश्यत्**) सर्वथा प्रकट करता है ।

भावार्थः—हे सौम्य पुरुष ! शब्द करने वाले मेघ को जो जलें प्राप्त होने वाली होती हैं वह अग्नि वा ताप के द्वारा विविध रूप में जाती है। उस गमन मार्ग को जलों का प्रापक इन्द्र प्राप्त करता है और सूर्य के दिग्भागों को सर्वथा प्रकट करता हैं ॥४॥

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ॥५॥

पदार्थः—(**दिव्यः**) द्युलोक में विद्यमान (**गन्धर्वः**) गर्जनशील, (**रजसः**) जल का (**विमानः**) निर्माता (**विश्वावसुः**) मेघ (**नः**) हमें (**तत्**) वह सब (**अभिगृणातु**) भोग योग्य बनावे, (**यत्**) जो (**घ**) निश्चय (**सत्यम्**) सत्य है (**उत्**) और (**यत्**) जिसे (**न**) नहीं (**विद्म**) जानते हैं यह (**धियः**) कर्मों को (**हिन्वानः**) बढ़ाता हुआ (**नः**) हमारी (**धियः इत्**) बुद्धियों की भी (**अव्याः**) रक्षा करता है।

भावार्थः—द्युलोकस्थ, गर्जनशील, जल निर्माता मेघ हमारे लिए उन पदार्थों को हमारा भोग्य बनाये जो सत्य हैं और जिनका हमें परिज्ञान नहीं है। यह हमारे कर्मों को बढ़ाता हुआ हमारी बुद्धियों की भी रक्षा का साधन बनता है ॥५॥

सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) सूर्य (**नदीनाम्**) नदनशील जलधारा (**चरणे**) संचरण स्थान=अन्तरिक्ष में (**सस्निम्**) मेघ को (**अविन्दत्**) प्राप्त करता है (**अश्मव्रजानाम्**) मेघ में विद्यमान जलों के (**दुरः**) द्वारों को (**अपावृणोत्**) खोल देता है, (**आसाम्**) इस नदनशील जलधाराओं के (**अमृतानि**) जलों को (**गन्धर्वः**) गर्जना रूप वाणी का धारक इन्द्र (**प्रावोचत्**) गर्जकर प्रकट करता है, वह (**अहीनाम्**) मेघों के मध्य (**दक्षम्**) जलदाता मेघ को (**परिजानात्**) सर्वथा प्रकट करता है।

भावार्थः—सूर्य नदनशील जल धाराओं के संचरण स्थान अन्तरिक्ष में मेघ को प्राप्त करता है। मेघों में विद्यमान जलों के द्वारों को खोल देता है। इन जलधाराओं को गर्जना का धारक इन्द्र गर्जकर प्रकट करता है, और मेघों में वर्तमान जलद मेघ को सर्वथा प्रकट करता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उन्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१४०

ऋषिः—१—६ **अग्निः पावकः** ॥ **देवता**—**अग्निः** ॥ **छन्दः**—१, ३, ४ निचृत्पङ्क्तिः । २ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ संस्तारपङ्क्तिः । ६ विराट्-त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—५ पञ्चमः । ६ धैवतः ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

पदार्थः—(**तव**) उस (**विभावसो**) दीप्तिधन (**अग्ने**) अग्नि के (**श्रवः**) प्रशस्त (**वयः**) गतियुक्त (**अर्चयः**) अर्चियें (**महि**) अत्यधिक (**भ्राजन्ते**) चमकती हैं, (**बृहद्भानो**) महातेजस्क (**कवे**) क्रान्तदर्शन यह अग्नि (**शवसा**) बल से युक्त (**उक्थ्यम्**) प्रशसनीय (**वाजम्**) अन्न को (**दाशुषे**) यजमान के लिए (**दधासि**) देता है।

भावार्थः—दीप्तिधन इस अग्नि की प्रशस्त, गतिमय उष्ण लहरें अत्यधिक चमकती हैं। महातेजस्क क्रान्तदर्शन यह यजमान के लिए बल से प्रशंसनीय अन्न को देता है ॥१॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थः—(**पावकवर्चाः**) शोधक दीप्ति, (**शुक्रवर्चाः**) निर्मलतेजस्क, (**अनूनवर्चाः**) संपूर्ण तेज वाला यह अग्नि (**भानुना**) तेज से (**उदियर्षि**) उद्गत होता है, (**पुत्रः**) पुत्रभूत यह (**मातरा**) अरणियों में (**विचरन्**) विचरता हुआ (**उप**) यज्ञ में स्थित यजमान की (**अवसि**) रक्षा करता है (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**पृणक्षि**) हुत द्रव्य से पूरित करता है।

भावार्थः—शोधक दीप्तिवाला, निर्मल दीप्तिवाला और संपूर्ण तेज वाला यह अग्नि तेज से उद्गत होता है। पुत्रभूत यह दो अरणियों में विचरता हुआ यज्ञ में उपस्थित यजमान की रक्षा करता है। द्यु और पृथिवी दोनों को हुत द्रव्य से पूरित करता है ॥२॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥

पदार्थः—(**ऊर्जः**) तेज का (**नपात्**) पुत्रभूत (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न वस्तु में विद्यमान यह अग्नि हमारे द्वारा की गई (**सुशस्तिभिः**) उत्तम प्रशस्तियों से (**मन्दस्व**) हमें हर्ष देता है (**धीतिभिः**) हमारे कर्मों से (**हितः**) तृप्त होता है हम लोग (**भूरिवर्णसः**) नानारूप, (**चित्रोतयः**) विचित्रतृप्ति वाले, (**वाम जाताः**) उत्तम उत्पत्ति वाले (**इषः**) अन्न आदि हवि को (**त्वे**) इस में (**संदधुः**) देते हैं ।

भावार्थः—बल एवं तेज का पुत्र जातवेदस् अग्नि हमारी उत्तम प्रशस्तियों से हमें हर्ष देता है, हमारे हविर्दान आदि कर्मों से तृप्त होता है। हम लोग नानारूप विचित्र तृप्ति वाले उत्तम उत्पत्ति वाले हवि आदि हव्य पदार्थों को इसमें हवन करते हैं ॥३॥

इ॒र॒ज्यन्न॑ग्ने प्रथयस्व ज॒न्तुभि॑र॒स्मे रायो॑ अमर्त्य ।
स द॑र्श॒तस्य॒ वपु॑षो॒ वि रा॑जसि पृ॒णक्षि॑ सान॒सिं क्रतु॑म् ॥४॥

पदार्थः—हे (**अमर्त्य**) अमर (**अग्ने**) यह अग्नि (**जन्तुभिः**) मनुष्यों के साथ (**इरज्यन्**) अपने तेज से शक्तिशाली होता हुआ (**अस्मे**) हमारे लिए (**राया**) धन को (**प्रथयस्व**) विस्तृत करता है, (**सः**) वह (**दर्शतस्य**) दर्शनीय (**वपुषः**) तेजोमय शरीर से (**विराजसि**) प्रकाशमान होता है (**सानसिम्**) संभजनीय (**क्रतुम्**) कर्म को (**पृणक्षि**) हमारे साथ संयुक्त करता है ।

भावार्थः—अमर यह अग्नि मनुष्यों के साथ अपने तेज से शक्तिशाली होता हुआ हमारे लिए धन का विस्तार करता है । वह तेजोमय शरीर से प्रकाशमान होता है और संभजनीय कर्म को हमारे साथ संयुक्त करता है ॥४॥

इ॒ष्क॒र्तार॑मध्व॒रस्य॒ प्रचे॑तसं॒ क्षय॑न्तं॒ राध॑सो म॒हः ।
रा॒तिं वा॒मस्य॑ सु॒भगां॑ म॒हीमिषं॒ दधा॑सि सान॒सिं र॒यिम् ॥५॥

पदार्थः—(**अध्वरस्य**) यज्ञ के (**इष्कर्तारम्**) संस्कर्ता (**प्रचेतसम्**) उत्कृष्ट चिन्तन के विषय (**महः**) महान् (**राधसः**) धन के (**क्षयन्तम्**) स्वामी, (**वामस्य**) वननीय धन के (**रातिम्**) देने वाले अग्नि की हम प्रशंसा करते हैं, वह (**महीम्**) महान् (**इषम्**) अन्न और (**सानसिम्**) सेवनीय (**रयिम्**) धन को यजमानों को (**दधासि**) देता है ।

भावार्थः—यज्ञ के संस्कर्ता, उत्कृष्टचिन्तन के विषय, महान् धन के स्वामी और वननीय धन के दाता अग्नि के गुण कर्म की हम प्रशंसा करते हैं। वह प्रचुर अन्न और सेवनीय धन को यजमान के लिए देता है ॥५॥

ऋ॒तावा॑नं महि॒षं वि॒श्वद॑र्शतम॒ग्निं सु॒म्नाय॑ दधिरे पु॒रो जनाः॑ ।
श्रुत्क॑र्णं स॒प्रथ॑स्तमं त्वा गि॒रा दैव्यं॒ मानु॑षा यु॒गा ॥६॥

पदार्थः—(**ऋतावानम्**) यज्ञ के साधक (**महिषम्**) महान् (**विश्वदर्शतम्**) विश्व को दिखाने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनाः**) मनुष्य लोग (**सुम्नाय**) सुखार्थ (**पुरः**) समक्ष (**दधिरे**) धारण करते हैं (**श्रुत्कर्ण**) कानों को सुनने वाला (**सप्रथस्तमम्**) अत्यन्त विस्तार्यमाण (**दैव्यम्**) दैव्य (**त्वा**) इस अग्नि को (**मानुषा**) मानुष (**युगा**) युगल=यजमान स्त्री और पुरुष (**गिरा**) प्रशंसा वचन से प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—यज्ञ के साधक, महनीय और सबके दर्शन के हेतु अग्नि को मनुष्य लोग यज्ञ की वेदी में अपने समक्ष धारण करते हैं । कानों को शब्द सुनाने का साधन दैव्य इस अग्नि को मानुष युगल=यजमान स्त्री-पुरुष प्रशंसा वचनों से इसकी प्रशंसा करते हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त-१४१

ऋषिः—१—६ अग्निस्तापसः ॥ **देवताः**—विश्वेदेवाः ॥ **छन्दः**—१, २
निचृदनुष्टुप् । ३, ६ विराडनुष्टुप् । ४, ५ अनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

अग्ने॒ अच्छा॑ वदे॒ह नः॑ प्र॒त्यङ् नः॑ सु॒मना॑ भव ।
प्र नो॑ यच्छ विशस्पते धन॒दा अ॑सि न॒स्त्वम् ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे विद्वन् ! (**इह**) इस प्रदेश में (**नः**) हमें (**अच्छ**) उत्तम ढंग से (**वद**) उपदेश करो, (**नः**) हमारे (**प्रत्यङ्**) सम्मुख हुए (**सुमनाः**) सुमनस्क (**भव**) हो, हे (**विशस्पते**) प्रजा के पालक (**नः**) हमें (**प्रयच्छ**) ज्ञान

प्रदान कर (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारे लिए (**धनदा**) ज्ञानधन का दाता (**असि**) है ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! तू इस प्रदेश में हमें उत्तम ढग से करणीय-अकरणीय का उपदेश कर । हमारे सम्मुख हुआ तू हमारे लिए सुमनस्क हो । हे प्रजा के पालक ! हमें ज्ञान प्रदान कर । तू हमारे लिए ज्ञानधन का दाता है ॥१॥

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥२॥

पदार्थ—(**अर्यमा**) न्यायकारी मनुष्य (**नः**) हमें (**प्रयच्छतु**) न्याय देवे, (**भगः**) ऐश्वर्य वाला मनुष्य हमें ऐश्वर्य (**प्र**) दे, (**बृहस्पतिः**) महावेदज्ञ हमें वेदज्ञान (**प्र**) दे, (**देवाः**) दूसरे विद्वान् लोग हमें ज्ञान (**प्र**) दें, (**उत**) और (**देवी**) दिव्य (**सूनृता**) उत्तम वेदवाणी (**नः**) हमें (**रायः**) भौतिक आध्यात्मिक धनों को (**ददातु**) देवे ।

भावार्थः—न्यायकारी मनुष्य हमें न्याय दें, ऐश्वर्य वाला ऐश्वर्य दे, वेदज्ञ वेदका ज्ञान दे. दूसरे विद्वान् हमें बुद्धि दें, और दिव्या वेदवाणी हमें समस्त ज्ञानों और भौतिक तथा आत्मिक संपत्ति दे ।।२।।

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥३॥

पदार्थः—(**राजानम्**) प्रकाशमान (**सोमम्**) योगी, (**अग्निम्**) ज्ञानी, (**आदित्यान्**) आदित्य=वैज्ञानिकों को (**विष्णुम्**) व्यापक बुद्धिवाले, (**सूर्यम्**) उत्तम कर्म के प्रेरक, (**ब्रह्माणम्**) ब्रह्मज्ञाता (**च**) और (**बृहस्पतिम्**) वेदज्ञ को हम (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिये (**गीर्भिः**) प्रशंसा वचनों से (**हवामहे**) पुकारते हैं ।

भावार्थः– हम अपनी रक्षा के लिए योगी, ज्ञानी, वैज्ञानिकों, व्यापक ज्ञान वाले, उत्तमकर्म के प्रेरक, ब्रह्मज्ञानी और वेद को उत्तम प्रशंसा-वचनों के साथ आहूत करते हैं ।।३।।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः सङ्गत्यां सुमना असत् ॥४॥

पदार्थः—हम (**सुहवा**) उत्तम प्रशंसा युक्त (**इन्द्रवायू**) इन्द्र=विद्युत् और वायु तथा (**बृहस्पतिम्**) अग्नि की (**इह**) इस यज्ञ में (**हवामहे**) प्रशंसा करते हैं, (**यथा**) जिससे (**सर्वः**) सब (**इत**) ही (**जनः**) जन (**नः**) हमारे (**संगत्याम्**) धनादि की प्राप्ति के उद्योग में (**सुमनाः**) सुमनस्क (**असत्**) हो ।

भावार्थः—हम उत्तमता से प्रशंसनीय विद्युत् और वायु तथा अग्नि की इस यज्ञ में प्रशंसा करते हैं जिससे समस्त लोग हमारे धन आदि की प्राप्ति के उद्योग में सुमनस्क हों ।।४।।

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (**अर्यमणम्**) अग्नि, (**बृहस्पतिम्**) पर्जन्य, (**इन्द्रम्**) विद्युत् (**वातम्**) वायु, (**विष्णुम्**) यज्ञ, (**सरस्वतीम्**) माध्यमिका वाक् (**च**) और (**वाजिनम्**) अन्नों वाले (**सवितारम्**) सूर्य को हमारे लिए (**दानाय**) दानार्थ (**चोदय**) प्रेरित कर ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप अग्नि, पर्जन्य, विद्युत्, वायु, यज्ञ, माध्यमिका वाक् और अन्न के उत्पादक सूर्य को हमें तत्तद् लाभों को देने के लिए प्रेरित कीजिए ।।५।।

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥६॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**अग्निभिः**) गतिशील शक्तियों और अग्नि आदि पदार्थों से (**नः**) हमारे (**ब्रह्म**) ज्ञान (**च**) और यज्ञ को (**वर्धय**) बढ़ा, (**त्वम्**) तू (**नः**) हमें (**देवतातये**) यजभावना की पूर्ति के लिए (**रायः**) धन के (**दानाय**) प्रदान करने के लिए (**चोदय**) प्रेरित कर ।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू समस्त गतिशील शक्तियों और अग्नि आदि पदार्थों से हमारे ज्ञान और यज्ञ को बढ़ा । तू हमें यज्ञ-भावना की पूर्त्ति के लिए अन्यों को धन देने के लिए प्रेरित कर ।।६।।

यह दशम मण्डल में एकसौ एकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त १४२

ऋषयः – १—८ शार्ङ्गाः=१, २ जरिता । ३, ४ द्रोणः । ५, ६ सारिसृक्वः । ७, ८ स्तम्बमित्रः ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः–१—२ निचृज्जगती । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ७ निचृदनुष्टुप् । ८ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ निषादः ३—६ धैवतः । ७, ८ गान्धारः ॥

अ॒यम॑ग्ने जरि॒ता त्वे अ॑भू॒दपि॒ सह॑सः सूनो न॒ह्य१॒॑न्यदस्त्याप्य॑म् ।
भ॒द्रं हि शर्म॑ त्रि॒वरू॑थ॒मस्ति॑ त आ॒रे हिंसा॑ना॒मप॑ दि॒द्युमा कृ॑धि ॥१॥

पदार्थः—(**अयम**) यह जन (**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**त्वे**) तुझ में (**जरिता**) स्तोता (**अभूद् अपि**) है, हे (**सहसः**) शक्ति के (**सूनो**) उत्पादक ! तुझसे (**अन्यत्**) भिन्न (**आप्यम्**) आप्तव्य (**नहि**) नहीं (**अस्ति**) है, (**ते**) तुम्हारा (**शर्म**) सुख (**भद्रम् हि**) कल्याणकारी और (**त्रिवरूथम्**) तीन भूमिकाओं वाला है, [आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक] (**हिंसानाम्**) हिंसक शक्तियों के (**दिद्युम्**) तेज को (**आरे**) दूर (**अपाकृधि**) हटा ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! यह जन तेरा स्तोता है । हे शक्ति के उत्पादक आप से भिन्न कोई आप्तव्य नहीं है । तुम्हारा हमें दिया जाने वाला सुख आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक भेद से तीन प्रकार का है और कल्याणकारी है । हे प्रभो ! हिंसक शक्तियों के तेज को दूर हटा ॥१॥

प्र॒वत्ते॑ अग्ने॒ जनि॑मा पितूय॒तः सा॒चीव॒ विश्वा॒ भुव॑ना॒ न्यृ॑ञ्जसे ।
प्र सप्त॑यः॒ प्र स॑निषन्त नो॒ धियः॑ पु॒रश्च॑रन्ति पशु॒पाइ॑व॒ त्मना॑ ॥२॥

पदार्थः—(**पितूयतः**) अन्न आदि हवि की इच्छा चाहते हुए (**ते**) उस (**अग्ने**) अग्नि का (**जनिम**) प्रादुर्भाव (**प्रवत्**) प्रकृष्ट होता है, यह (**साचीव**) सचिव के समान (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**न्यृञ्जसे**) वश में करता है (**सप्तयः**) सर्पणशील (**नः**) हमारे (**धियः**) प्रशंसावचन (**प्र सनिषन्त**) इस को प्राप्त होते हैं तथा (**पशुपाः इव**) पशुपालकों के समान (**त्मना**) स्वयमेव (**पुरः**) समक्ष (**प्रचरन्ति**) भली प्रकार प्रवृत्त होते हैं ।

भावार्थः—हवि को प्राप्त करने वाले इस अग्नि का प्रादुर्भाव उत्कृष्ट है । यह सचिव के समान समस्त लोकों को वश में करता है । सर्पणशील हमारे प्रशंसा वचन इसको प्राप्त होते हैं तथा पशु पालकों के समान स्वयमेव सर्वत्र प्रवृत्त होते हैं ॥२॥

उ॒त वा उ॒ परि॑ वृणक्षि॒ बप्स॑द्ब॒होर॑ग्न॒ उल॑पस्य स्वधावः ।
उ॒त खि॒ल्या उ॒र्वरा॑णां भवन्ति॒ मा ते॑ हे॒तिं तवि॑षीं चुक्रुधाम ॥३॥

पदार्थः—(**स्वधावः अग्ने**) दीप्तिमान् यह अग्नि (**बप्सत्**) जलाता हुआ (**उत वै उ**) निश्चय ही (**बहोः**) बहुत (**उलपस्य**) तृण समूह को (**परिवृणक्षि**) नष्ट करता है (**उर्वराणाम्**) उर्वरा भूमियों के प्रदेश (**खिल्याः**) प्राणियों के गमन योग्य (**भवन्ति**) होते हैं (**ते**) इसके (**तविषीम्**) महान् (**हेतिम्**) हनन-हेतुभूत ज्वाला को (**मा**) नहीं (**चुक्रुधाम**) क्रुद्ध करते हैं ।

भावार्थः—स्वयम् दीप्तिमान् यह अग्नि जलाता हुआ बहुत बड़े तृण-समूह को नष्ट करता है । उर्वरा भूमियों के प्रदेश गमन के योग्य होते हैं । इसकी ज्वाला को हम कभी कुपित नहीं करते हैं ॥३॥

यदु॒द्वतो॑ नि॒वतो॒ यासि॒ बप्स॒त्पृथ॑गेषि प्रग॒र्धिनी॑व॒ सेना॑ ।
य॒दा ते॒ वातो॑ अनु॒वाति॑ शो॒चिर्वप्ते॑व॒ श्मश्रु॑ वपसि॒ प्र भूम॑ ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**उद्वतः**) ऊपर को जाने वाले वृक्ष आदि (**निवतः**) नीचे को जाने वाले लता गुल्म आदि को (**बप्सत्**) जलाता हुआ यह अग्नि (**यासि**) प्राप्त होता हैं तो (**प्रागर्धिनी**) परराष्ट्र में गई हुई धन आदि की कामना करने वाली (**सेना**) सेना के समान (**पृथग्**) पृथ भूत हुआ (**एषि**) आता है, (**यदा**) जब (**वातः**) वायु (**ते**) इसके (**शोचिः**) दीप्ति को (**अनुवाति**) अनुकूल रूप में हवा देता है तब यह उसी प्रकार (**भूम**) भूमि का (**प्र वपसि**) मुण्डन करता है (**इव**) जिस प्रकार (**वप्ता**) नाई (**श्मश्रु**) दाढ़ी को मूंडता है ।

भावार्थ—जब ऊपर को जाने वाले वृक्ष आदि और नीचे को फैलने वाले लता गुल्म आदि को यह अग्नि जलाता है तब परराष्ट्र को गई धन आदि को चाहने वाली सेना के समान पृथग्भूत होता हुआ आता है । जब वायु इसकी दीप्ति को अनुकूल हवा देता है तब यह उसी प्रकार भूमि का मुण्डन करता है जिस प्रकार नाई दाढ़ी को मूंडता है ॥४॥

प्रत्य॑स्य॒ श्रेण॑यो ददृश्र॒ एकं॑ नि॒यानं॑ ब॒ह॒वो रथा॑सः ।
बा॒हू यद॑ग्ने अनु॒मर्मृ॑जानो॒ न्य॑ङ्ङुत्ता॒नाम॒न्वेषि॒ भूमि॑म् ॥५॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस जलाते हुए (**अग्नेः**) अग्नि की(**श्रेणयः**) ज्वाला-पंक्तियां (**एकम्**) एक (**नियानम्**) मार्ग पर (**बहवः**) बहुत (**रथासः**) रथों के समान (**प्रति ददृशे**) दिखाई पड़ती हैं, (**अग्ने**) यह अग्नि (**बाहुभ्याम्**) बाहु-स्थानीय ज्वालाओं के समूह से (**अनु मर्मृजानः**) शोधन करता हुआ=जलाता हुआ (**न्यङ्**) प्रह्वीभूत होकर (**यत्**) जब (**उत्तानाम्**) ऊर्ध्वाभिमुख हुई (**भूमिम्**) भूमि को (**अन्वेषि**) प्राप्त होता है।

भावार्थः—जब यह अग्नि अपनी उठी हुई ज्वालाओं से जलाता हुआ ऊपर उठी भूमि को प्राप्त होता है तब इसकी ज्वाला पंक्तियां उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं जिस प्रकार एक मार्ग पर चलते हुए रथ दिखाई पड़ते हैं ॥५॥

उत्ते॒ शुष्मा॑ जिहता॒मुत्ते॑ अ॒र्चिरुत्ते॑ अग्ने॒ शशमा॒नस्य॒ वाजाः॑ ।
उच्छ्व॑ञ्चस्व॒ नि न॑म॒ वर्ध॑मान॒ आ त्वा॒द्य विश्वे॒ वस॑वः सदन्तु ॥

पदार्थ—(**ते अग्ने**) इस अग्नि के (**शुष्माः**) शोषक ज्वालायें (**उत् जिहताम्**) ऊपर को जाती हैं (**ते**) इसकी (**अर्चिः**) अर्चि (**उत्**) ऊपर को जाती हैं (**शशमानस्य**) शीघ्र फैलने वाले (**ते**) इस अग्नि के (**वाजाः**) वेग ऊपर को जाते हैं यह (**वर्धमानः**) बढ़ता हुआ (**उच्छ्वञ्चस्व**) वन में उद्गत होता है तथा (**नि नम**) नीचे को नमता है (**त्वा**) इसे (**अद्य**) आज (**विश्वे**) समस्त (**वसवः**) वसुगण (**आ सदन्तु**) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—इस अग्नि की शोषक ज्वालायें ऊपर को जाती हैं, इसकी अर्चि ऊपर को जाती है, शीघ्र फैलने वाले इस अग्नि के वेग भी ऊपर को उठते हैं । बढ़ता हुआ यह वन में पहुँचता है,वृक्षों को जलाता ऊपर दीखता है, नीचे की वस्तुओं को जलाता हुआ नमता दीखता है । सभी वसुगण इस को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अ॒पामि॒दं न्यय॑नं समु॒द्रस्य॑ नि॒वेश॑नम् ।
अ॒न्यं कृ॑णुष्वे॒तः पन्थां॒ तेन॑ याहि॒ वशाँ॒ अनु॑ ॥७॥

पदार्थः—(**इदम्**) यह वास-स्थान (**अपाम्**) जलों का (**नि अयनम्**) ह्रद है (**समुद्रस्य**) समुद्र का (**निवेशनम्**) गृह है, अतः (**इतः**) इस स्थान से (**अन्यम्**) दूसरा (**पन्थाम्**) मार्ग (**कृणुष्व**) करता है (**तेन**) उस मार्ग से (**वशाननु**) अप्रतिहत जाता है ।

भावार्थः—यह काननस्थ वासस्थान जलों का ह्रद है। समुद्र का गृह है । अतः अग्नि को इससे भिन्न मार्ग बनाना पड़ता है जिससे वह अप्रतिहत जाता है । गृह ऐसा होना चाहिए और जल आदि की व्यवस्था से युक्त होना चाहिए कि आग न लग सके ॥७॥

आय॑ने ते प॒राय॑णे॒ दूर्वा॑ रोहन्तु पु॒ष्पिणीः॑ ।
हृ॒दाश्च॑ पु॒ण्डरी॑काणि समु॒द्रस्य॑ गृ॒हा इ॒मे ॥८॥

पदार्थः—(**ते**) इस अग्नि के (**आयने**) आगमन में और (**परायणे**) परा-गमन में (**पुष्पिणीः**) फूल वाली (**दूर्वाः**) दूब घास (**रोहन्तु**) उगती हैं, (**ह्रदाः**) तालाब होते हैं, (**च**) उन ह्रदों में (**पुण्डरीकाणि**) कमल खिलें (**इमे**) ये (**समुद्रस्य**) समुद्र के (**गृहाः**) आश्रयभूत होते हैं ।

भावार्थः—इस अग्नि के आगमन और परागमन में फूल वाली दूर्वा घास उगती है । तालाब होते हैं और उनमें कमल खिलते हैं और ये समुन्द्र के आश्रयभूत होते हैं । गृह इस प्रकार के होने चाहिए ॥८॥

यह दशम मण्डल में एक सौ बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१४३

ऋषिः—१—६ अत्रिः साङ्ख्यः ॥ देवते—अश्विनौ ॥ छन्दः—१—५ अनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

त्यं चि॒दत्रि॑मृत॒जुर॒मर्थ॒मश्वं॒ न यात॑वे ।
क॒क्षीव॑न्तं॒ यदी॒ पुना॒ रथं॒ न कृ॑णु॒थो नव॑म् ॥१॥

पदार्थः - हे अश्विनौ=अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों (**ऋतजुरम्**) सत्य व्यवहार और यज्ञ आदि में निरन्तर संलग्न, (**त्यम् चित्**) उस (**अत्रिम्**) तापत्रय रहित मनुष्य को (**अश्वम् न**) अश्व की भांति (**अर्थम्**) प्राप्तव्य की (**यातवे**) प्राप्ति के लिए (**कृणुथः**) समर्थ करते हो, (**यदि**) और (**कक्षीवन्तम्**) दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य को (**रथम् न**) रथ की भांति (**पुनः**) फिर (**नवम्**) नूतन (**कृणुथः**) करते हो ।

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों सत्य-व्यवहार और यज्ञ आदि में निरन्तर संलग्न इस तापत्रयरहित पुरुष को अश्व के समान प्राप्तव्य की प्राप्ति में समर्थ करते हो और दृढ़प्रतिज्ञ को रथ की भांति सदा नया करते रहते हो ॥१॥

त्वं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों (**यम्**) जिस (**वाजिनम्**) वेगवान् (**अत्रिम्**) कर्मफलों के भोक्ता जीव को (**अश्वम् न**) अश्व के समान (**अरेणवः**) अहिंसक प्राणों एवं सूक्ष्म शरीर आदि ने (**अत्नत**) बांधा है (**यविष्ठ**) बलशाली (**त्यम् चित्**) उसको (**आ रजः**) इस लोक के निमित्त (**ग्रन्थिम् न**) दृढ गांठ के समान (**विष्यतम्**) विशेषरूप से खोल दे ।

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों उस बलशाली कर्मों के फल के भोक्ता जीव को इस लोक के निमित्त दृढ़ ग्रन्थि के समान खोल दो जिसे अश्व के समान प्राण और शरीर आदि ने बांध रखा है। अर्थात् उसे इस लोक में शरीर रहित हो विना बन्धन भ्रमण करने की मोक्षावस्था को प्राप्त करावें ॥२॥

नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३॥

पदार्थः—(**नरा**) हे नेता (**दंसिष्ठौ**) दर्शनीयतम, (**शुभ्रा**) शुभ्र ज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक ! आप (**अत्रये**) तापत्रय रहित पुरुष के लिए (**धियः**) बुद्धियां (**सिषासतम्**) प्रदान करते हैं, (**नरा**) हे उत्तम कर्मों के नेता! (**अधा**) अनन्तर (**न**) और (**दिवः**) ज्ञान से प्रकाशमय इस की (**स्तोमः**)

स्तुति=प्रशंसा (**वाम् हि**) आप दोनों की (**विशसे**) प्रशंसा के लिए (**पुनः**) पुनः और आज भी समर्थ है ।

भावार्थः —हे उत्तम कर्मों के नेता, दर्शनीय, उत्तम ज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक ! तापत्रय रहित मनुष्य को आप उत्तम ज्ञान प्रदान करते हैं। अनन्तर ज्ञान से प्रकाशमान हुए उस पुरुष के प्रशंसा-वचन पुनः और आज भी आपकी प्रशंसा में समर्थ होते हैं ॥३॥

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥४॥

पदार्थः - (**सुराधसा**) शोभन दान वाले (**अश्विना**) हे अध्यापक और उपदेशक हमारी (**सुमतिः**) उत्तम प्रशस्ति और (**रातिः**) यज्ञ आदि की क्रिया आदि जो कुछ हैं (**तद्**) वह (**वाम्**) आप के (**चिते**) ज्ञान के लिए हैं (**यद्**) जो (**नरा**) उत्तम कर्मों के नेता आप लोग (**सवने**) यज्ञ गृह में (**पृथौ**) विस्तीर्ण (**समने**) यज्ञ में (**ना**) हमें (**आ पर्षथः**) रक्षण और ज्ञान आदि से परिपूर्ण करते हो ।

भावार्थः—हे शोभन ज्ञानदान वाले अध्यापक और उपदेशक ! हमारे द्वारा की जाने वाली उत्तम प्रशस्ति और यज्ञ आदि की क्रिया जो कुछ भी है वह सब आपके ज्ञान के बढ़ाने के लिए है। उत्तम कर्मों के नायक आप लोग हमारे यज्ञ गृह में होने वाले विस्तीर्ण यज्ञों में हमें रक्षण और ज्ञान आदि से परिपूर्ण करते हैं ॥४॥

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

पदार्थः—(**युवम्**) ये दोनों (**अश्विनौ**) सूर्य और अग्नि (**समुद्रे**) अन्तरिक्ष में (**रजसः**) मेघ के (**पारे**) प्रान्तभाग में (**ईंखितम्**) डोलायमान (**भुज्युम्**) जल को (**पतत्रिभिः**) पतनशील वायुओं अथवा मरुतों द्वारा (**अच्छ**) भली प्रकार (**आ यातम्**) प्राप्त होते हैं और (**नासत्या**) सत्यभूत ये दोनों उसे (**सातये**) पृथिवी आदि के लिए देने योग्य (**कृतम्**) करते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों सूर्य और अग्नि अन्तरिक्ष में मेघ के प्रान्त भाग में डोलायमान जल को मरुतों के माध्यम से भली प्रकार प्राप्त होते हैं

और ये सत्यभूत पदार्थद्वय उसे पृथिवी आदि के लिए वृष्टि द्वारा देने योग्य बनाते हैं ॥५॥

आ वां॑ सु॒म्नैः शं॒यूइ॑व॒ मंहि॑ष्ठा॒ विश्व॑वेदसा ।
सम॒स्मे भू॑षतं न॒रोत्सं॒ न पि॒प्युषी॒रिषः॑ ॥६॥

पदार्थः—(नरा) उत्तम कर्मों के नेता, (**विश्व वेदसा**) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी, (**मंहिष्ठा**) महनीय हे अशिना=अध्यापक और उपदेशक (**शंयू इव**) सुखदायक माता पिता के समान (**वाम्**) आप दोनों (**सुम्नैः**) धन और यश से (**अस्मे**) हमें (**पिप्युषीः**) प्रवृद्ध (**इषः**) जलों से (**उत्सम् न**) कूप के समान (**सम्**) भली प्रकार (**भूषतम्**) अलंकृत करते हो ।

भावार्थः—हे उत्तम कर्मों के नेता, समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी, महनीय अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों सुखदायक माता-पिता के समान हमें धनों और यशों से उसी प्रकार अलंकृत करते हैं जिस प्रकार उत्तम प्रवृद्ध इष्ट जलें कूप को परिपूर्ण करती हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एक सौ तैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१४४

ऋषिः—१–६ सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः ॥ देवता—इन्द्रः ॥
छन्दः—१, ३ निचृद्गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री । आर्चीस्वराड्बृहती ।
५ सतो बृहती । ६ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ४
षड्जः ॥ २, ५, मध्यमः । ६ पञ्चमः ॥

अ॒यं हि ते॒ अम॑र्त्य॒ इन्दु॒रत्यो॒ न पत्य॑ते ।
दक्षो॑ वि॒श्वायु॑र्वे॒धसे॑ ॥१॥

पदार्थः—हे प्रभो ! (**अयम् हि**) यह (**अमर्त्यः**) अमरणधर्मा (**दक्षः**) ज्ञान से सम्पन्न, (**विश्वायुः**) समस्त आयु का भोग करने वाला (**इन्दुः**) योगी जीव (**अत्यः न**) अश्व के समान, (**वेधसे ते**) सर्व विधाता तुझ प्रभु की प्राप्ति के लिये (**पत्यते**), यत्न करता है ।

भावार्थः—हे प्रभो ! सर्व विधाता आप की प्राप्ति के लिए यह अमर्त्य, ज्ञान संपन्न, सब आयुओं को भोगने वाला योगी जीव अश्व के समान यत्न करता है ॥१॥

अ॒य॒मस्मासु॒ काव्य॑ ऋ॒भुर्वज्रो॒ दास्व॑ते ।
अ॒यं बि॑भर्त्यू॒र्ध्वकृ॑शनं॒ मद॑मृ॒भुर्न कृत्व्यं॒ मद॑म् ॥२॥

पदार्थः—(**अस्मासु**) हमारे मध्य में (**अयम्**) यह प्रभु (**काव्यः**) प्रशंसनीय (**ऋभुः**) दीप्तिमान् तथा (**दास्वते**) यज्ञ आदि कर्मों के कर्ता और दाता के लिए (**वज्रः**) वज्र के समान रक्षक है (**अयम्**) यह (**ऊर्ध्वकृशनम्**) ऊर्ध्वगामी अग्नि के समान तेजस्वी (**मदम्**) स्तुतिकर्ता को (**बिभर्ति**) धारण करता है, (**न**) जिस प्रकार (**ऋभुः**) ज्ञानी मनुष्य (**कृत्व्यम्**) कर्मशील (**मदम्**) हर्षदाता को धारण करता है ।

भावार्थः—हमारे मध्य में यह प्रभु प्रशंसनीय दीप्तिमान् तथा यज्ञ-कर्म के कर्ता और दाता के लिए वज्र के समान रक्षक है। यह ऊर्ध्वगति अग्नि के समान तेजस्वी स्तुतिकर्ता को उसी प्रकार धारण करता है जिस प्रकार ज्ञानी कर्मशील हर्षदाता को धारण करता है ॥२॥

घृषुः॑ श्ये॒नाय॒ कृत्व॑न आ॒सु स्वासु॒ वंस॑गः ।
अवं॑ दीधेद॒हीशुवः॑ ॥३॥

पदार्थः—(**घृषुः**) प्रकाशमान (**स्वासु**) अपनी (**आसु**) इन प्रजाओं में (**वंसगः**) वननीयरूप में व्यापक परमेश्वर (**श्येनाय**) प्रशस्त आचार वाले (**कृत्वने**) कर्मशील व्यक्ति के लिए (**अहीशुवः**) अति वृद्धि वाले पुत्र पौत्र आदि को (**अवदीधेत्**) देता है ।

भावार्थः—प्रकाशमान तथा अपनी प्रजाओं में व्यापक परमेश्वर प्रशस्त आचार वाले कर्मशील व्यक्ति को अतिवृद्धि वाले पुत्र पौत्र आदि को देता है ॥३॥

यं सु॑प॒र्णः प॑रा॒वतः॑ श्ये॒नस्य॑ पु॒त्र आभ॑रत् ।
श॒तच॑क्रं॒ यो॒३ह्यो॑ व॒र्तनिः ॥४॥

पदार्थः—(**श्येनस्य**) सर्वत्र व्याप्त आकाश का (**पुत्रः**) पुत्र (**सुपर्णः**) उत्तम गति वाला वायु (**शतचक्रम्**) सैकड़ों कार्यों के साधक (**यम्**) जिस सोमतत्त्व को (**परावतः**) दूरस्थ द्युलोक से (**आभरत्**) पृथिवी आदि पर लाता है (**यः**) जो सोम (**अह्यः**) मेघ का (**वर्तनिः**) प्रेरक वा प्रवर्तक है ।

भावार्थः—सर्वत्र व्याप्त आकाश का पुत्र उत्तमगति वायु दूरस्थ द्युलोक से जिस सैकड़ों कार्यों वाले सोम तत्त्व को पृथिवी आदि पर लाता है वह सोम तत्त्व मेघ और पर्जन्य आदि का प्रवर्त्तक है ॥४॥

यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार बन्धुता ॥५॥

पदार्थः—(**ते**) इस इन्द्र=सूर्य के लिए (**चारुम्**) चारु (**अवृकम्**) बाधारहित, (**अरुणम्**) रोचमान (**अन्धसः**) अन्न के (**मानम्**) निर्माता (**यम्**) जिस सोमतत्त्व को (**श्येनः**) वायु (**पदा**) अपनी गति से (**आ अभरत्**) लाता है (**एना**) इस सोम ने (**वयः**) अन्न और (**जीवसे**) जीवन के लिए (**आयुः**) आयु (**प्रावायि**) दी है, (**एना**) इससे ही (**बन्धुता**) जगत् का बन्धन (**जागार**) जागृत है ।

भावार्थः—इस सूर्य के लिए चारु, वाधारहित, रोचमान, अन्न के निर्माता जिस सोम तत्त्व को वायु अपनी गति से लाता है उस इसने ही विश्व में अन्न और जीवन के लिए आयु दी है । इससे ही विश्व का बन्धन सदा जागृत रहता है ॥५॥

एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥६॥

पदार्थः—(**एवा**) इस प्रकार से (**तत्**) उस (**इन्दुना**) सोमतत्त्व तृप्त (**इन्द्रः**) सूर्य अथवा वायु (**देवेषु चित्**) समस्त दिव्य पदार्थों में (**महि**) महत् (**त्यजः**) तेज अथवा एक दूसरे से भिन्न रखने वाली शक्ति को (**धारयाते**) धारण करता है, (**सुक्रतो**) उत्तम कर्मों वाला यह सूर्य अथवा वायु (**क्रत्वा**) कर्म से हमारे लिए (**वयः**) अन्न और (**आयुः**) आयु (**वितारि**) देता है, (**अयम्**) यह सोम (**क्रत्वा**) यज्ञ कर्म से (**अस्मत्**) हमारे द्वारा (**आ सुतः**) संपादित किया जाता है ।

भावार्थः—इस प्रकार इस सोमतत्त्व से पूरित सूर्य अथवा वायु समस्त दिव्य पदार्थों में महान् तेज और पार्थक्य गुण को धारण करता है । उत्तम कर्मों वाला सूर्य हमारे वास्ते अन्न और आयु को देता है । यह सोम यज्ञ-कर्म से हमारे द्वारा निष्पादित किया जाता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एक सौ चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १४५

ऋषिः—१—६ इन्द्राणी ॥ देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम् ॥ छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ४ अनुष्टुप् । ३ आर्चीस्वराडनुष्टुप् । ६ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—५ गान्धारः । ६ पञ्चमः ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

पदार्थः—मैं वैद्य (**बलवत्तमाम्**) अति बलवाली, (**वीरुधम्**) लतामयी (**इमाम्**) इस (**ओषधिम्**) ओषधि को (**खनामि**) खोदकर निकालता हूँ (**यया**) जिसके द्वारा इसका सेवन करने वाली (**सपत्नीम्**) सपत्नीपने को (**बाधते**) हटाती है और (**यया**) जिसके द्वारा (**पतिम्**) पति को (**संविन्दते**) अधिक देर तक आसक्त कर रोक रखती है ।

भावार्थः—मैं वैद्य अत्यधिक बलवाली अवरोधक लतामयी ओषधि को खोदकर निकालता हूँ जिससे उसका सेवन करने वाली स्त्री अपने पति को इतना आसक्त और अवरुद्ध कर रखती है कि वह दूसरी पत्नी करने की इच्छा ही नहीं करता है और जिसके सेवन से वह पति को ज्यादा आसक्त कर रखती है ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥२॥

पदार्थः—(**उत्तानपर्णे**) ऊपर की ओर को फैले हुए पत्तों वाली, (**सुभगे**) उत्तम ऐश्वर्य वाली, (**देवजूते**) देवों=विद्वानों के सेवित अथवा दिव्य वेगवाली, (**सहस्वति**)

बहुत बल दायक यह ओषधि (**मे**) मेरी (**सपत्नीम्**) सौत को (**परा धम**) दूर ले जावे, और (**पतिम्**) पति को (**केवलम्**) केवल (**मे**) मेरा (**कुरु**) करे ।

भावार्थः—उत्तानपर्ण, ऐश्वर्य वाली, दिव्य वेगवाली, अतिबलदात्री यह ओषधि मेरी सौत को दूर हटावे और मेरे पति को केवल मेरा बनावे ॥२॥

उत्त॑रा॒हमु॑त्तर॒ उत्त॒रेदुत्त॑राभ्यः ।
अथा॑ स॒पत्नी॒ या ममाध॑रा॒ साध॑राभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(**उत्तरे**) इस उत्कृष्टतर पाठा ओषधि के सेवन से मैं स्त्री (**उत्तरा**) उत्कृष्टतरा तथा (**उत्तराभ्यः**) उत्कृष्टतरा स्त्रियों से (**इव**) भी उत्कृष्टतर हो जाऊं, (**अथ**) और (**या**) जो (**मम**) मेरी (**सपत्नी**) सौत है (**सा**) वह (**अधरायः**) निकृष्टों से भी (**अधरा**) निकृष्ट हो जावे ।

भावार्थः—इस उत्कृष्टतर पाठा ओषधि के सेवन से मैं स्त्री उत्कृष्ट और उत्कृष्टों से भी उत्कृष्टतर हो जाऊँ । तथा मेरी सौत अपकृष्टों से भी अपकृष्ट हो जावे ॥३॥

न॒ह्य॑स्या॒ नाम॑ गृ॒भ्णामि॒ नो अ॒स्मिन्र॑मते॒ जने॑ ।
परा॑मे॒व प॑रा॒वतं॑ स॒पत्नीं॑ गमयामसि ॥४॥

पदार्थः—(**नहि**) नहीं (**अस्याः**) इसका (**नाम**) नाम (**गृभ्णामि**) लेती हूं, (**अस्मिन्**) इस (**जने**) जन में (**नो**) न कोई स्त्री (**रमते**) प्रसन्न ही होती है (**सपत्नीम्**) सौत को (**पराम्**) दूर से (**एव**) ही (**परावतम्**) दूर (**गमयामसि**) भेजती हूँ ।

भावार्थः—मैं स्त्री सपत्नी का नाम तक उच्चारण नहीं करती हूं। सपत्नी नामक जन में कोई स्त्री कभी प्रसन्नता नहीं प्राप्त करती है । इसको मैं दूर से दूर प्रदेश में भेजती हूं ॥४॥

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मा॒नाथ॒ त्वम॑सि सास॒हिः ।
उ॒भे सह॑स्वती भू॒त्वी स॒पत्नीं॑ मे सहावहै ॥५॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं स्त्री (**सहमाना**) सौत को दबाने वाली हूँ, (**अथ**) और (**त्वम्**) यह पाठा ओषधि (**सासहिः**) उसका अभिभव करने वाली (**असि**) है, अतः (**उभे**) दोनों ही (**सहस्वती अभिभवित्री**) अभिभव कर्त्री (**भूत्वी**) होकर (**मे**) मेरी सौत को (**सहावहै**) दबा देवें ।

भावार्थः—मैं स्त्री सौत को कुचलने वाली हूं । यह पाठा ओषधि भी उसको दबाने वाली है । अतः हम दोनों दबाने वाली होकर उसे कुचल देवें ॥५॥

उप॑ तेऽधां॒ सह॑मनाम॒भि त्वा॑धां॒ सही॑यसा ।
माम॒नु प्र ते॒ मनो॑ व॒त्सं गौरि॑व धावतु प॒था वारि॑व धावतु ॥६॥

पदार्थः—हे पतिदेव ! (**सहमानाम्**) सपत्नी को दबाने वाली ओषधि का (**ते**) तुम्हारे पर (**उपअधाम्**) प्रयोग करती हूँ, (**सहीयसा**) अभिभव करने वाली इस ओषधि के प्रयोग से (**त्वा**) तुझे (**अभि अधाम्**) धारण करती हूँ, (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**वत्सम्**) बछड़े को (**गौः इव**) गाय के समान (**माम्**) मेरे (**अनु**) पीछे (**प्र धावतु**) दौड़े, तथा (**पथा**) नीचे रास्ते से (**वाः इव**) जल के समान (**धावतु**) दौड़े ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! इस सपत्नीबाधक ओषधि का मैं स्त्री तुझ पर प्रयोग करती हूं । अभिभूत करने वाली इस ओषधि के सेवन से तुझे धारण करती हूं । तेरा मन मेरे पीछे उसी प्रकार दौड़ जिस प्रकार गाय बछड़े के पीछे दौड़ती है और पानी निम्न मार्ग से बहता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एक सौ पंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१४६

**ऋषिः—१—६ देवमुनिरैरम्मदः ॥ देवता—अरण्यानी ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४, ६ अनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥**

अर॑ण्या॒न्यर॑ण्यान्य॒सौ या प्रेव॒ नश्य॑सि ।
क॒था ग्राम॒ं न पृ॑च्छसि॒ न त्वा॒ भीरि॑व विन्दती३ँ ॥१॥

पदार्थ—(**अरण्यानि अरण्यानि**) यह महावन (**या**) जो (**असौ**) यह (**प्रइव**) रक्षणार्थ (**नश्यसि**) प्राप्त होता है अथवा नष्ट के समान प्रतीत होता है, (**कथा**) क्यों (**ग्रामम्**) ग्राम को (**न**) नहीं (**पृच्छसि**) पूछता (**त्वा**) इसे (**भीः**) भय (**इव**) सम्प्रति (**न**) नहीं (**विन्दति**) लगता है।

भावार्थः—यह महावन जो रक्षा के लिए प्राप्त है, निर्जन है। यहां ग्राम की बात कोई क्यों पूछे ? । क्या यहां रहने वाले को भय नहीं लगता है ? ॥१॥

वृषारवाय वदंते यदुपावंति चिच्चिकः ।

आघाटिभिंरिव धावयंन्नरण्यानिर्महीयते ॥२॥

पदार्थः—(**यत्**) यदा (**वृषारवाय**) झंकार वाले झींगर (**झिल्ली**) के (**वदते**) बोलने के उत्तार में (**चिच्चिकः**) चीची करता हुआ जन्तु (**आघाटिभिः**) वीणाओं से (**धावयन् इव**) निषाद आदि स्वरों को ठीक करते हुए गायक के समान (**उपावति**) प्रतिध्वनि के साथ प्राप्त होता है। तब (**अरण्यानी**) यह महावन (**महीयते**) महत्व को प्राप्त होता है।

भावार्थ—जब झिल्ली झंकार के प्रत्युत्तर में चीची शब्द करता हुआ जन्तु वाणाओं से स्वर शुद्ध करते हुए गायक के समान झिल्ली को प्राप्त होता है तब इस महावन की शोभा उत्तम दीखती है ॥२॥

उत गावंइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।

उतो अंरण्यानिः सायं शंकटीरिंव सर्जति ॥३॥

पदार्थ—(**उत**) और (**गावः**) गवय आदि मृग (**इव**) संप्रति (**अदन्ति उत**) घास आदि तृणों को खाते वा चरते हैं, (**उत**) तथा लता गुल्म आदि से घिरा स्थान (**वेश्म इव**) घर के समान (**दृश्यते**) दिखाई पड़ता है, (**उतो**) तथा (**अरण्यानिः**) यह महावन (**सायम्**) संध्याकाल में (**शकटीः इव**) गाड़ियों के समान सूखे काष्ठ आदि से भरी लोगों की गाड़ियों को (**सर्जति**) विसर्जित करताहै।

भावार्थः—इस महावन में गवय आदि मृग घास को चरते हैं। तथा लता गुल्म आदि से आच्छादित स्थान गृहके समान दिखाई पड़ता है। सायं काल में यह महावन काष्ठ आदि से भरी गाड़ियों को विसर्जित करता है ॥३॥

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।

वसंन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदितिं मन्यते ॥४॥

पदार्थः—(**अंग**) हे मनुष्यो ! (**एषः**) यह इस महारण्य में वर्तमान मनुष्य (**गाम्**) गाय को (**आह्वयति**) पुकारता है, (**अंग**) हे लोगो ! (**एषः**) यह दूसरा व्यक्ति (**दारु**) काष्ठ को (**अप अवधीत्**) काटता वा तोड़ता है, (**सायम्**) सायंकाल में (**अरण्यान्याम्**) महारण्य में (**वसन्**) बसता हुआ मनुष्य भयंकर शब्द को सुनकर (**अक्रुक्षत्**) कोई चोर आदि बोलता है (**इति**) ऐसा (**मन्यते**) समझता है।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस महारण्य में यह मनुष्य गाय को बुला रहा है, यह दूसरा व्यक्ति काष्ठ को तोड़ रहा है और सायंकाल में इसमें बसता हुआ व्यक्ति भयंकर शब्द को सुनकर डरा हुआ ऐसा मानता है कि कोई चोर आदि बोल रहा है ॥४॥

न वा अंरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।

स्वादोः फलंस्य जग्ध्वायं यथाकामं नि पंद्यते ॥५॥

पदार्थः—(**न**) नहीं (**वै**) ही (**अरण्यानिः**) महावन (**हन्ति**) किसी को कष्ट देता है (**च इत्**) यदि (**अन्यः**) कोई दूसरा व्याघ्र चोर आदि (**न**) नहीं (**अभिगच्छति**) आक्रमण करता है, तो (**स्वादोः**) स्वादु (**फलस्य**) फल को (**जग्ध्वाय**) खाकर बसता हुआ मनुष्य (**यथाकामम्**) यथेच्छ (**निपद्यते**) विचरता है।

भावार्थः—यह महारण्य किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता है। यदि कोई दूसरा व्याघ्र, चोर आदि आक्रमण नहीं करता है तो इस महा कानन में रहने वाला स्वादु फलों को खाकर यथेच्छ विचरता है ॥७॥

आञ्जंनगन्धिं सुरभिं बंहून्नामकृंषीवलाम् ।

प्राहं मृगाणां मातरंमरण्यानिमंशंसिषम् ॥६॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**आञ्जनगन्धिम्**) कस्तूरी आदि की गन्ध से युक्त (**सुरभिम्**) उत्तम सौरभ युक्त, (**बह्वन्नाम्**) बहुत फलादि अन्नों से युक्त (**अकृ-**

षीवलाम्) विना कृषकों वाले (**मृगाणाम्**) मृगों की (**मातरम्**) माता=निर्माता (**अरण्यानिम्**) इस महावन की (**प्र अशंसिषम्**) प्रशंसा करता हूँ ।

भावार्थः—मैं अरण्य के रहस्य को जानने वाला कस्तूरी आदि के मोद से युक्त, उत्तम सौरभ वाले, बहुत फल आदि अन्नों से पूर्ण, विना किसान के कृषि किये सब कुछ देने वाले (अर्थात् अकृष्टपच्य) और मृगों के निर्माता इस महारण्य की प्रशंसा करता हूं ॥६॥

सूचना– यह १४६ वां सूक्त अरण्यानी का है । अरण्यानी पद स्त्रीलिङ्ग में है । परन्तु इसका अर्थ महावन, महारण्य है । 'हिमारण्ययोर्महत्त्वे, इस ४।१।४६।१ सूत्र से स्त्रीलिंग बनाया गया है । अरण्य ही नहीं ।

यह दशम मण्डल में एकसौ छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १४७

ऋषिः—१—५ सुवेदाः शैरीषिः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१ विराड्जगती । २ आर्चीभुरिग्जगती । ३ जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—४ निषादः । ५ धैवतः ॥

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥१॥

पदार्थः– (**ते**) उस इन्द्र=विद्युत् की (**प्रथमाय**) मुख्य (**मन्यवे**) शक्ति के लिए मैं वैज्ञानिक (**श्रत्**) सत्य विश्वास (**दधामि**) धारण करता हूँ (**यत्**) जिसके द्वारा (**नर्यम्**) नेतव्य (**वृत्रम्**) मेघ को (**अहन्**) मारता है (**अपः**) जलों को (**विवेः**) इस लोक में प्राप्त कराता है, (**यत्**) जब (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक (**त्वा अनु**) इस सूर्य को अनुसरण करते वर्तमान होते हैं तब (**पृथिवी चित्**) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष भी (**अद्रिवः**) इस वज्री इन्द्र के (**शुष्मात्**) बल से (**रेजते**) कम्पायमान होता है ।

भावार्थ– इस विद्युत् की मुख्य शक्ति के प्रति मैं वैज्ञानिक विश्वास रखता हूँ जिसके द्वारा वह नेतव्य मेघ को मारता है और जलों को इस लोक में बरसाता है । जब द्यु और पृथिवी लोक इसका अनुसरण करके वर्तमान होते हैं तब विस्तीर्ण अन्तरिक्ष इस वज्री इन्द्र के बल से कम्पायमान होता है ॥१॥

त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥२॥

पदार्थः—(**अनवद्य त्वम्**) यह प्रशस्त इन्द्र=विद्युत् (**मायिनम्**) मायावी (**वृत्रम्**) मेघ को (**मायाभिः**) माया=युक्तियों द्वारा (**श्रवस्यता**) लोक में अन्न देने वाले (**मनसा**) बल से (**अर्दयः**) विदीर्ण करता है (**त्वाम् इत्**) इसको ही (**गविष्टिषु**) छिपी किरणों की प्राप्ति में (**नरः**) मरुत् लोग (**वृणते**) साधन बनाते हैं (**त्वाम्**) इसको (**विश्वासु**) समस्त (**हव्यासु**) हवनीय (**इष्टिषु**) इष्टियों में (**वृणते**) स्वीकार करते हैं ।

भावार्थ– यह प्रशस्त विद्युत् मायावी मेघ को युक्तियों द्वारा लोक को अन्न आदि देने की शक्ति और दृष्टि से विदीर्ण करता है । इसको ही मरुद्गण छिपी किरणों की प्राप्ति में साधन बनाते हैं और समस्त हवनीय इष्टियों में इसे लोग स्वीकार करते हैं ॥२॥

ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥३॥

पदार्थः—(**पुरुहूत मघवन्**) बहुतों से प्रशस्यमान धन का दाता यह इन्द्र=विद्युदात्मक बल (**एषु**) इन (**सूरिषु**) स्तोताओं में (**आ चाकन्धि**) अति दीप्त रहता है, (**ये**) जो (**वृधासः**) समृद्ध हुए (**मघम्**) धन को (**आनशुः**) प्राप्त करते हैं और (**मेधसाता**) यज्ञ में (**वाजिनम्**) बलवान् इस इन्द्र की (**अर्चन्ति**) प्रशस्ति अथवा अर्चना करते हैं वे (**तोके**) पुत्र (**तनये**) पौत्र (**परिष्टिषु**) अन्य इष्ट फलों और (**अह्रये**) प्रशस्त (**धने**) धन की प्राप्ति में समर्थ होते हैं ।

भावार्थः– बहुतों से प्रशस्यमान धनदाता यह विद्युदात्मक बल स्तोताओं की स्तुतियों में दीप्त रहता है । जो समृद्ध होकर धन को प्राप्त करते हैं और यज्ञ में बलवान् इस इन्द्र की यज्ञ के देवता रूप में प्रशंसा करते हैं और हवि आदि देते हैं वे पुत्र, पौत्र, अन्य इष्ट फल और प्रशस्त धन की प्राप्ति के विषय में समर्थ होते हैं ॥३॥

स इन्नु रा॒यः सुभृ॑तस्य चाकन॒न्मदं॒ यो अ॑स्य॒ रंह्यं॒ चिके॑तति ।
त्वावृ॑धो मघवन्दा॒श्व॑ध्वरो म॒क्षू स वाजं॑ भरते॒ धना॒ नृभिः॑ ॥४॥

पदार्थः (**सः**) वह (**इत्**) ही (**नु**) शीघ्र (**सुभृतस्य**) सुष्ठु संपादित (**रायः**) समृद्धि को (**चाकनत्**) प्राप्त करता है (**यः**) जो (**अस्य**) इस इन्द्र =विद्युत् के (**रंह्यम्**) वेगात्मक (**मदम्**) बल को (**चिकेतति**) प्रयोगात्मक रूप से जानता है (**मघवन्**) इस मघवान् (**त्वावृधः**) इन्द्र को बढ़ाने वाला (**दाश्वध्वरः**) यज्ञ आदि में प्रयुक्त करने वाला (**सः**) वह यजमान (**नृभिः**) ऋत्विजों के साथ (**धना**) धनों और (**वाजम्**) अन्न को (**मक्षु**) शीघ्र (**भरते**) संपादित करता है ।

भावार्थः - वह ही शीघ्र सुसंपादित समृद्धि को प्राप्त करता है जो इस इन्द्र=विद्युत् के वेगात्मक बल को प्रयोगात्मक रूप से जानता है। इन्द्र को बढ़ाने वाला, यज्ञ आदि कार्यों में प्रयुक्त करने वाला वह यजमान ऋत्विजों सहित धन और अन्न को शीघ्र संपादित करता है ॥४॥

त्वं॑ शर्धा॑य महि॒ना गृ॑णा॒न उ॒रु कृ॑धि मघवञ्छ॒ग्धि रा॒यः ।
त्वं नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो॒ न मा॒यी पि॒त्वो न द॑स्म दयसे वि॒भक्ता॑ ॥५॥

पदार्थः— (**मघवन्**) प्रभूत संपत्ति वाला, (**दस्म**) दृष्टि का हेतुभूत (**त्वम्**) यह विद्युत् (**महिना**) महती शक्तिवाले पदार्थ से (**गृणानः**) निगीर्यमाण किया हुआ (**उरु**) अधिक (**शर्धाय**) बल को (**कृधि**) संपन्न करता है, (**रायः**) धनों और वस्तुओं को (**शग्धि**) देता है, (**विभक्ता**) विविध प्रकार से बटा हुआ (**त्वम्**) यह (**मित्रः**) उदान वायु, (**वरुणः**) प्राण वायु के (**न**) समान (**मायी**) युक्तियों और ज्ञान से प्रयुक्त हुआ (**नः**) हमें (**न**) संप्रति (**पित्वः**) अन्न आदि भोग्यों को (**दयसे**) देता है ।

भावार्थः—प्रभूत सपत्तियों से युक्त, दृष्टि का हेतुभूत, यह विद्युत्तत्व महती शक्तिवाले पदार्थों से निगीर्यमाण किया हुआ महान् बल को उत्पन्न करता है, धनों और वस्तुओं को देता है, विविध प्रकार से कार्य में बांटा गया यह तत्त्व प्राण और उदान वायु के समान युक्तियों और ज्ञानों से प्रयोग में लाया गया हमें अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थों को प्रदान करता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ संतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१४८

ऋषिः – १ – ५ पृथुर्वैन्यः ॥ **देवता** – इन्द्रः ॥ **छन्दः** – १ विराट्त्रिष्टुप् ॥
२ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ३, ५, पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ आर्चीस्वराट्-
त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सु॒ष्वा॒णास॑ इन्द्र स्तु॒मसि॑ त्वा सस॒वांस॑श्च तुविनृम्ण॒ वाज॑म् ।
आ नो॑ भर सुवि॒तं यस्य॑ चा॒कन्त्मना॒ तना॑ सनुयाम॒ त्वोताः॑ ॥१॥

पदार्थः—हे (**तुविनृम्ण**) बहुधन (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**सुष्वाणासः**) उपासना एवं स्तुति करनेहारे हम (**त्वा**) आप की (**स्तुमसि**) स्तुति करते हैं, (**च**) और (**वाजम्**) अन्न को अथवा पुरोडाश आदि को (**ससवांसः**) अन्यों को अथवा यज्ञ में हविरूप में देते हुए हम आप की स्तुति करते हैं, (**यस्य**) जिस को आप (**चाकन्**) हमें देना चाहते हैं उस (**सुवितम्**) शोभन धन को (**नः**) हमें (**आ भर**) दें, (**त्वोताः**) तुमसे रक्षित हम (**त्मना**) स्वयम् (**तना**) धनों को (**सनुयाम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः— हे बहुधन परमेश्वर ! उपासना करने हारे हम आप की स्तुति करते हैं तथा दूसरों को अन्न देते हुए अथवा यज्ञाग्नि में पुरोडाश आदि हवि को देते हुए हम आप की स्तुति करते हैं। जो धन आप देना चाहते हैं वह हमें दें। तुम से रक्षित हम स्वयं धनों को प्राप्त करें ॥१॥

ऋ॒ष्वस्त्वमि॑न्द्र शूर जा॒तो दासी॒र्विशः॒ सूर्ये॑ण स॒ह्याः ।
गुहा॑ हि॒तं गुह्यं॑ गू॒ळ्हम॒प्सु बि॒भृमसि॑ प्र॒स्रव॑णे॒ न सोम॑म् ॥२॥

पदार्थ—(**शूर**) हे शूर (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**ऋष्वः**) महान्, (**जातः**) जनक=उत्पादक (**त्वम्**) तू (**दासीः**) दुष्काल डालने वाली (**विशः**) प्रजा= मेघ प्रजा को (**सूर्येण**) सूर्य के द्वारा (**सह्याः**) अभिभूत करता है, (**गुहा**) गुहा में (**हितम्**) निहित (**गुह्यम्**) अदृश्य (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**गूढम्**) निगूढ़ मेघ को तू सूर्य के द्वारा अभिभूत करता है, हम भी (**प्रस्रवणे**) वर्षा के होने पर (**न**) संप्रति (**सोमम्**) उत्तम रसों आदि को (**बिभृमसि**) धारण करते हैं ।

भावार्थः—हे बलशालिन् भगवन् ! महान् उत्पादक आप दुष्काल डालने वाली मेघ प्रजा को सूर्य के द्वारा अभिभूत करते हैं। गुहा में निहित अदृश्य, अन्तरिक्ष में गूढ़ मेघ को भी सूर्य के द्वारा अभिभूत करता है। वर्षा होने पर हम उत्तम रसों वाले पदार्थों को धारण करते हैं ॥२॥

अर्यो वा गिरो अभ्यर्च्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥३॥

पदार्थः—(**विप्रः**) मेधावी, (**ऋषीणाम्**) मन्त्रद्रष्टाओं की (**सुमतिम्**) स्तुति को (**चकानः**) चाहने वाला, (**विद्वान्**) सबका ज्ञाता (**वा**) और (**अर्यः**) स्वामी यह परमेश्वर (**गिरः**) स्तोताओं की स्तुतियों को(**अभ्यर्च**) स्वीकार करता है, हम (**ते**) वे (**स्याम**) होवें, (**ये**) जो (**सोमैः**) उत्तम ज्ञानों और उपासनाओं से तुझे (**रणयन्त**) प्रसन्न करते हैं (**उत**) और (**रथोढः**) हे उत्तम सूर्य आदि रमणीय पदार्थों के धारक ! (**भक्षैः**) भक्षणीय पुरोडाश आदि पदार्थों को अग्नि में आहुत करके (**तुभ्यम्**) तुम्हारी (**एना**) ये स्तुतियां की जाती हैं ।

भावार्थः—मेधावी, मन्त्र द्रष्टाओं के द्वारा की गई स्तुति को चाहने वाला, सब का ज्ञाता और सबका स्वामी यह परमेश्वर स्तोताओं की स्तुतियों को स्वीकार करता है । हम वे होवें जो उत्तम ज्ञानों और उपासनाओं के साथ तुझे प्रसन्न करते हैं । हे सूर्य आदि के धारक ! उत्तम पुरोडाश आदि हवियों के साथ आपकी स्तुतियाँ की जाती हैं ॥३॥

इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥४॥

पदार्थः—हे (**शूर**) शौर्यवन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिये (**इमा**) ये (**ब्रह्म**) स्तोत्र (**शंसि**) कहे जाते हैं, (**नृणाम्**) मनुष्यों के मध्य (**नृभ्यः**) स्तुति कर्ताओं को (**शवः**) बल (**दाः**) दो (**येषु**) जिन स्तोताओं में (**चाकन्**) हवि आदि आप चाहते हैं उनके लिए (**तेभिः**) बल-दान आदि कर्मों द्वारा (**सुक्रतुः**) उत्तमकर्मा (**भव**) हो (**उत**) और (**गृणतः**) स्तावकों की (**त्रायस्व**) रक्षा कर (**उत**) और (**स्तीन्**) यजमानों की रक्षा कर ।

भावार्थः—हे शौर्यवन् परमेश्वर ! तेरे लिए स्तोत्र उच्चारित किये जाते हैं । मनुष्यों में स्तावकों को तू बल दे । जिसको तू चाहता है उनके लिए बल-दान आदि के द्वारा अपने सुक्रतुपन को सार्थक करता है । तू स्तावकों और यजमानों की रक्षा करता है ॥४॥

श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥५॥

पदार्थः—(**शूर**) हे शौर्यवन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**पृथ्याः**) विस्तृत ज्ञान वाले मनुष्य की (**हवम्**) पुकार को (**श्रुधि**) सुन (**वेन्यस्य**) मेधावी विद्वान् के (**अर्कैः**) स्तोत्रों से (**स्तवसे**) आप स्तुत किये जाते हो (**यः**) जो (**ते**) तेरे (**घृतवन्तम्**) प्रकाश वाले (**योनिम्**) पद को (**आ अस्वाः**) स्तुति करता है अथवा घृत से युक्त (**योनिम्**) गृह=यज्ञशाला को प्राप्त होकर आपकी स्तुति करता है वह आप को प्राप्त करता है, (**निम्नैः**) निचले मार्गों से (**ऊर्मिः न**) जलसमूह की भांति (**वक्वा**) स्तोता लोग (**द्रवयन्त**) तुम्हारे पास दौड़ते हैं ।

भावार्थः—हे शौर्यवन् परमेश्वर ! विस्तृत ज्ञान वाले व्यक्ति की पुकार को सुनो । मेधावी विद्वान् के स्तोत्रों से भी तू ही स्तुत किया जाता है । जो यज्ञगृह में जाकर तेरी स्तुनि करता है वह तुझे प्राप्त करता है । जिस प्रकार जलसमूह नीचे की तरफ वाले मार्गों से बहता है उसी प्रकार स्तावक तेरे पास स्तुतियों के साथ दौड़ते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १४९

ऋषिः—१—५ अर्चन्हैरण्यस्तूपः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः —१, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । २, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१॥

पदार्थ—(**सविता**) लोकों का उत्पादक परमेश्वर (**यन्त्रैः**) अपनी नियन्त्रण शक्तियों से (**पृथिवीम्**) विस्तृत भूमि को (**अरम्णात्**) सुख से स्थापित करता है, (**सविता**) सबका उत्पादक परमेश्वर (**अस्कम्भने**) निराधार आकाश में (**द्याम्**) द्युलोक को (**अदृंहत्**) दृढ़ता से धारण करता है, (**सविता**) सर्वोत्पादक परमेश्वर (**अतूर्ते**) निरन्तर फैले हुए (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष में (**बद्धम्**) वायु पाश से बंधे हुए (**धुनिम्**) कम्पायमान (**समुद्रम्**) मेघरूप समुद्र से (**अश्वमिव**) अश्व के समान (**अधुक्षत्**) जल को दुहता है ।

भावार्थः—लोकों का उत्पादक परमेश्वर अपनी धारक शक्तियों से विस्तृत भूमि को स्थापित करता है। वह ही निराधार आकाश में द्युलोक को दृढ़ करता है। वह परमेश्वर ही निरन्तर फैले हुए अन्तरिक्ष में वायु-पाश से बंधे मेघरूप समुद्र से अश्व के समान कम्पित कर जल को दुहता है ॥१॥

यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२॥

पदार्थः—(**यत्र**) जिस सर्वोत्पादक प्रभु की निमित्तता और **आश्रय में** (**समुद्रः**) अन्तरिक्षस्थ मेघरूप समुद्र (**स्कभितः**) वायुपाश से ठहरा हुआ (**व्यौनत्**) पृथिवी को जल से क्लिन्न वा सिक्त करता है (**अपांनपात्**) जलों और लोकों का विनाश न होने देने वाला अथवा वैद्युताग्नि से समृद्ध (**सविता**) सबका उत्पादक परमेश्वर (**तस्य**) उसके रहस्य को (**वेद**) जानता है, (**अतः**) इस की ही निमित्तता से (**भूः**) भूमि उत्पन्न होती है, (**अतः**) इसी की निमित्तता **में** (**रजः**) अन्तरिक्ष और लोक-लोकान्तर (**उत्थितम्**) उत्पन्न (**आ**) होते **हैं** (**अतः**) इसी की निमित्तता से (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अप्रथेताम्**) विस्तीर्ण होते हैं।

भावार्थः—जिस सर्वोत्पादक भगवान् की निमित्तता और आश्रय में अन्तरिक्षस्थ मेघरूप समुद्र वायुपाश से ठहरा हुआ जल से भूमि को सिक्त करता है। जलों का और लोकों का नाश न होने देने वाला वैद्युताग्नि एवम् सर्वोत्पादक प्रभु इस समुद्र और वर्षा के रहस्य को प्राप्त है और जानता है। इस परमात्मा की निमित्तता से प्रकृतिरूपी कारण से भूमि, अन्तरिक्ष, लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं और द्यु और पृथिवी विस्तार को प्राप्त होते हैं ॥२॥

पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥३॥

पदार्थः—(**अमर्त्यस्य**) अविनाशी (**भुवनस्य**) जगत् के उत्पादक प्रभु के (**भूना**) महान् सामर्थ्य से (**पश्चात्**) उसके पीछे (**इदम्**) यह (**अन्यत्**) दूसरा (**यजत्रम्**) परस्पर संयोग से उत्पन्न (**अभवत्**) होता है अथवा उस उत्पादक की महिमा से ही उसके अतिरिक्त अन्य देव इन्द्र वरुण आदि यज्ञ में प्रयोज्य होते हैं (**अंगः**) हे विद्वन् ! (**सवितुः**) सर्वोत्पादक प्रभु की निमित्तता से ही (**सुपर्णः**) उत्तम रश्मियों वाला (**गरुत्मान्**) महापिण्ड सूर्य (**पूर्वः**) पहले (**जातः**) उत्पन्न होता है और वह (**अस्य**) इस प्रभु के (**धर्म**) धारण सामर्थ्य के (**अनु**) अनुसार अपने कार्यकलाप में समर्थ होता है।

भावार्थः—अविनाशी जगत् के उत्पादक प्रभु की महिमा से पश्चात् यह दूसरा परस्पर संयोग से उत्पन्न जगत् होता है। हे विद्वन् ! सर्वोत्पादक प्रभु की निमित्तता से रश्मियों वाला महापिण्ड सूर्य पूर्व उत्पन्न होता है और वह इस प्रभु के धारण-सामर्थ्य के अनुसार अपने कार्यकलाप में समर्थ होता है ॥३॥

गावइव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४॥

पदार्थः—(**ग्रामम्**) ग्राम को शीघ्र जाती हुई (**गावः इव**) गौओं के समान (**अश्वान्**) अश्वों को प्राप्त करते हुए (**युयुधिः इव**) योधा के समान (**वत्सम्**) बछड़े के पास जाती हुई (**सुमनाः**) सुमनस्क (**दुहाना**) दुग्धवाली (**वाश्राः इव**) गाय के समान (**जायाम्**) जाया को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर पास जाने वाले (**पतिः इव**) पति के समान (**दिवः**) द्युलोक आदि का (**धर्ता**) धारक (**विश्ववारः**) सबका पूज्य एवम् वरणीय (**सविता**) परमेश्वर (**नः**) हमें (**नि एतु**) प्राप्त हो।

भावार्थः—जिस प्रकार गायें जंगल में चरने के बाद ग्राम को जाती है, योधा अश्वों को प्राप्त करता है, सुमनस्का, दोग्ध्री गौ अपने बछड़े को प्राप्त होती है और पति अपनी पत्नी को प्राप्त करता है उसी प्रकार द्यु आदि लोकों का धारक सर्वपूज्य प्रभु हमें प्राप्त हो ॥४॥

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥५॥

पदार्थः—(**सवितः**) हे सर्वोत्पादक प्रभो ! (**यथा**) जिस प्रकार (**त्वा**) तुझे (**अस्मिन्**) इस (**वाजे**) ज्ञानयज्ञ में (**आंगिरसः**) अग्निविद्याविद् विद्वान् (**जुह्वे**) पुकारता है (**एव**) इसी प्रकार (**अर्चन्**) अर्चना करने वाला (**अहम्**)

मैं (**त्वा**) तेरी (**वन्दमानः**) वन्दना करता हुआ (**सोमस्य**) यज्ञ के (**अंशुम**) भाग के (**प्रति**) प्रति (**जागर**) जागरूक रहता हूं ।

भावार्थः—हे सबके उत्पादक प्रभो ! जिस प्रकार अग्निविद्यावेत्ता विद्वान् तुझे इस ज्ञान यज्ञ में पुकारता है उसी प्रकार अर्चना करने वाला मैं तेरा वन्दना करता हुआ यज्ञ के संपादन आदि कार्य के प्रति सदा जागरूक रहता हूं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उन्चासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५०

ऋषिः—५ मृळीको वासिष्ठः॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २ बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४ उपरिष्टाज्ज्योतिर्नाम जगती वा । ५ उपरिष्टाज्ज्योतिः ॥ स्वरः—१—३ मध्यमः । ४, ५ निषादः ॥

समि॑द्धश्चि॒त्समि॑ध्यसे दे॒वेभ्यो॑ हव्यवाहन ।
आ॒दि॒त्यै रु॒द्रैर्वसु॑भि॒र्न आ ग॑हि मृळी॒काय॑ न॒ आ ग॑हि ॥१॥

पदार्थः—(**हव्यवाहन**) देवों के प्रति हवि को ले जाने वाला अग्नि (**समिद्धः चित्**) संदीप्त होता हुआ भी (**देवेभ्यः**) देवों के लिए यज्ञ में (**सम् इध्यसे**) प्रदीप्त किया जाता है, यह (**आदित्यैः**) आदित्यों, (**रुद्रैः**) रुद्रों, (**वसुभिः**) वसुओं के साथ (**नः**) हमें (**आ गहि**) ज्ञात होता है और (**नः**) हमारे (**सुमृडीकाय**) सुख के लिए (**आ गहि**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—देवों के प्रति हवि को ले जाने वाला अग्नि स्वभावतः प्रदीप्त होता हुआ भी यज्ञ में देवों के निमित्त प्रदीप्त किया जाता है । यह बारह आदित्यों, ग्यारह रुद्रों और आठ वसुओं के साथ हमें ज्ञात होता है और हमारे सुख के लिए प्राप्त होता है ॥१॥

इ॒मं य॒ज्ञमि॒दं वचो॑ जुजुषा॒ण उ॒पाग॑हि ।
मर्ता॑सस्त्वा समिधान हवामहे मृळी॒काय॑ हवामहे ॥२॥

पदार्थः—यह अग्नि (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**इदम्**) इस (**वचः**) स्तुति वचन को (**जुजुषाणः**) सेवन करता हुआ (**उपागहि**) हमारे ज्ञान में आता है, (**समिधान त्वा**) समिध्यमान इसको (**मर्तासः**) मनुष्य लोग (**हवामहे**) अपने ज्ञान में धारण करते हैं तथा (**सुमृडीकाय**) सुख के लिए (**हवामहे**) यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारे इस यज्ञ और इस स्तुतिवचन को सेवन करता हुआ हमारे ज्ञान में आता है । समिध्यमान इस अग्नि को मनुष्य लोग अपने ज्ञान में धारण करते हैं और सुख के लिए यज्ञ आदि कार्यों में प्रयुक्त करते हैं ॥२॥

त्वामु॑ जा॒तवे॑दसं वि॒श्ववा॑रं गृणे धि॒या ।
अ॒ग्ने॑ दे॒वाँ आ व॑ह नः प्रि॒यव्र॑तान्मृळी॒काय॑ प्रि॒यव्र॑तान् ॥३॥

पदार्थः—(**विश्ववारम्**) सबसे वरणीय, (**जातवेदसम्**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (**त्वाम् उ**) इस अग्नि की संपत्तियों की मैं (**धिया**) ज्ञान और प्रयोग से (**गृणे**) प्रशंसा करता हूं, (**अग्ने**) यह अग्नि (**प्रियव्रतान्**) उत्तम कर्मों वाले (**देवान्**) यज्ञदेवों को (**नः**) हमारे लिए (**आ वह**) यज्ञ में लाता है (**मृडीकाय**) सुख के लिए (**प्रियव्रतान्**) उत्तम कर्मों वाले विद्वानों को (**आ वह**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—सबसे वरणीय, प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान इस अग्नि की संपत्तियों की मैं ज्ञान और प्रयोग से प्रशंसा करता हूँ । यह अग्नि उत्तम कर्मों वाले यज्ञ देवों को हमारे यज्ञ में लाता है और हमारे सुख के लिए उत्तम कर्म वाले विद्वानों को प्राप्त कराता है ॥३॥

अ॒ग्निर्दे॒वो दे॒वाना॑मभवत्पु॒रोहि॑तो॒ऽग्निं म॑नु॒ष्या॒३॑ ऋष॑यः॒ समी॑धिरे ।
अ॒ग्निं म॒हो धन॑साताव॒हं हु॑वे मृळी॒कं धन॑सातये ॥४॥

पदार्थः—(**देवः**) द्योतन आदि गुणों से युक्त (**अग्निः**) यह अग्नि (**देवानाम्**) अन्य यज्ञ देवों का (**पुरोहितः**) अग्रस्थानीय (**अभवत्**) होता है (**अग्निम्**) अग्नि को (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग और (**ऋषयः**) अतीन्द्रियार्थद्रष्टा लोग (**समीधिरे**) यज्ञ और ज्ञान में प्रदीप्त एवम् प्रकाशमान करते हैं (**अहम्**) मैं यजमान (**महः**) महान् (**धनसातौ**) धन की प्राप्ति में (**अग्निम्**) अग्नि को (**हुवे**) हवि आदि से युक्त करता हूं, (**मृडीकम्**) सुख के लिए प्रयुक्त करता हूं ।

भावार्थः—द्योतन आदि गुणों से युक्त यह अग्नि सभी यज्ञ देवों का अग्रस्थानीय होता है। इसको मनुष्य लोग और अतीन्द्रिय अर्थों के ज्ञाता लोग प्रकाशमान रखते हैं। मैं यजमान महान् धन की प्राप्ति में अग्नि को हवि आदि से युक्त करता हूं और सुख के लिए प्रयुक्त करता हूं ।।४।।

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ।।५।।

पदार्थः—यह (**अग्निः**) अग्नि (**आहवे**) संग्राम में (**अत्रिम**) शत्रुओं को खाने वाले राजा, (**भरद्वाजम**) अन्नदाता, (**गविष्ठिरम**) जितेन्द्रिय, (**कण्वम**) मेधावी, (**त्रसदस्युम**) दस्युओं को डराने वाले सेनापति, और (**नः**) हमारी (**प्रावत्**) रक्षा करता है, (**वसिष्ठः**) याज्ञिक (**पुरोहितः**) पुरोहित (**अग्निम**) अग्नि की (**हवते**) प्रशंसा करता है (**मृडीकाय**) सुख के लिए इसे (**पुरोहितः**) समक्ष स्थापित करता है।

भावार्थः—यह अग्नि प्रयुक्त किये जाने पर संग्राम में शत्रुभक्षक राजा, अन्नदाता, जितेन्द्रिय, मेधावी, दस्युओं को त्रास देने वाले सेनापति और हमारी रक्षा करता है। याज्ञिक पुरोहित अग्नि की प्रशंसा करता है और सुख के लिए इसे समक्ष स्थापित करता है ।।५।।

यह दशम मण्डल में एकसौ पचासवां सूक्त समाप्त हुआ।

सूक्त—१५१

ऋषिः—१—५ श्रद्धा कामायनी ।। **देवताः**—श्रद्धा ।। **छन्दः**—१, ४, ५ अनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ।। **स्वरः**—गान्धारः ।।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ।।१।।

पदार्थः—(**श्रद्धया**) श्रद्धा अर्थात् श्रत् नाम सत्य का है उसके धारण की क्रिया और बुद्धि का नाम श्रद्धा है और इस श्रद्धा से ही (**अग्निः**) अग्नि यज्ञ

आदि में (**समिध्यते**) प्रज्वलित किया जाता है, (**श्रद्धया**) श्रद्धा के साथ (**हविः**) यज्ञ में हवि (**हूयते**) दी जाती है, (**श्रद्धाम्**) श्रद्धा को (**भगस्य**) सेवनीय प्रत्येक कर्म और पराक्रम अथवा ऐश्वर्य (**मूर्धनि**) प्रधान स्थान में स्थित कर (**वचसा**) वाणी से (**वेदयामसि**) प्रकट करता हूँ।

भावार्थः—श्रद्धा से यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की जाती है, श्रद्धा से ही हवि दी जाती है, श्रद्धा को मैं स्तोता सेवनीय प्रत्येक कर्म और पराक्रम के मुख्य स्थान में स्थित कर वाणी से उसका प्रख्यापन करता हूँ ।।१।।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ।।२।।

पदार्थः—(**श्रद्धे**) हे श्रद्धे ! (**ददतः**) दाता को (**प्रियम**) प्रिय फल मिले, हे (**श्रद्धे**) श्रद्धे (**दिदासतः**) देने की इच्छा करने वाले का (**प्रियम**) प्रिय हो, (**भोजेषु**) भोगार्थियों का (**प्रियम्**) प्रिय हो (**यज्वसु**) यज्ञ करने वालों का प्रिय हो, (**इदम**) इस (**मे**) मेरी (**उदितम्**) उक्ति को (**प्रियम्**) प्रिय (**कृधि**) कर।

भावार्थः—हे श्रद्धे ! देने वाले का प्रिय हो, हे श्रद्धे ! देने की इच्छा करने वाले का प्रिय हो, भोगार्थियों का और यज्ञकर्त्ताओं का प्रिय हो। इस मेरे कथन को प्रिय बना ।।२।।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ।।३।।

पदार्थः—(**यथा**) जिस प्रकार (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उग्रेषु**) उग्र (**असुरेषु**) बलवान् पुरुषों पर (**श्रद्धाम्**) श्रद्धा=विश्वास (**चक्रिरे**) करते हैं (**एवम्**) इसी प्रकार (**भोजेषु**) भोगार्थी (**यज्वसु**) यज्ञकर्त्ताओं में (**अस्माकम्**) हमारे (**उदितम्**) उक्त को विश्वसनीय और प्रिय (**कृधि**) कर।

भावार्थः—हे श्रद्धे ! जिस प्रकार विद्वान् लोग उग्र बलवान् पुरुषों पर विश्वास करते हैं उसी प्रकार भोगार्थी यज्ञकर्त्ताओं में हमारे उक्त को विश्वसनीय और प्रिय कर ।।३।।

श्र॒द्धां दे॒वा यज॑माना वा॒युगो॑पा॒ उपा॑सते ।
श्र॒द्धा हृ॑द॒य्य१॒॑याकू॑त्या श्र॒द्धया॑ विन्दते॒ वसु॑ ॥४॥

पदार्थः—(**देवाः**) विद्वान् लोग (**वायुगोपाः**) वायु के समान बलवान् पुरुषों से रक्षित (**यजमानाः**) यजमान (**श्रद्धाम्**) श्रद्धा की (**उपासते**) उपासना करते हैं, तथा सभी लोग (**हृदय्यया**) हृदय में होने वाले (**आकूत्या**) संकल्प एव भाव से (**श्रद्धाम्**) श्रद्धा का सेवन करते हैं, श्रद्धावाला मनुष्य (**श्रद्धया**) श्रद्धा से (**वसु**) धन को (**विन्दते**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—विद्वान् लोग और वायु के समान बलवान् पुरुषों से रक्षित यजमान लोग श्रद्धा की उपासना करते हैं । तथा सभी लोग हृदय में होने वाले संकल्प से श्रद्धा का सेवन करते हैं । श्रद्धा वाला मनुष्य श्रद्धा से धन को प्राप्त करता है ।

श्र॒द्धां प्रा॒तर्ह॑वामहे श्र॒द्धां म॒ध्यन्दि॑नं॒ परि॑ ।
श्र॒द्धां सूर्य॑स्य नि॒म्रुचि॒ श्रद्धे॒ श्रद्धा॑पये॒ह नः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**श्रद्धाम्**) श्रद्धा का हम (**प्रातः**) प्रातः काल में (**हवामहे**) आह्वान करते हैं । (**श्रद्धाम्**) श्रद्धा का (**मध्यंदिनम्**) मध्याह्न (**परि**) में (**हवामहे**) आह्वान करते हैं, (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**निम्रुचि**) अस्तमन काल में भी श्रद्धा का आहवान करते हैं, (**श्रद्धे**) हे श्रद्धे ! (**नः**) हमें (**इह**) इस लोक में (**श्रद्धापय**) श्रद्धायुक्त कर ।

भावार्थः—हम प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में श्रद्धा का आह्वान करते हैं । हे श्रद्धे ! तू हमें इस लोक में श्रद्धायुक्त कर ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूकत—१५२

ऋषिः—१—५ शासो भारद्वाजः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ४ **निचृ**दनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

शा॒स इ॒त्था म॒हाँ अ॑स्यमित्रखा॒दो अ॑द्भु॒तः ।
न यस्य॑ ह॒न्यते॒ सखा॒ न जीय॑ते॒ कदा॑ च॒न ॥१॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर (**इत्था**) इस प्रकार से तू (**महान्**) महान् (**शासः**) शासक, (**अद्भुतः**) अद्भुत तथा (**अमित्रखादः**) काम क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करने वाला है (**यस्य**) जिसका (**सखा**) मित्र (**न**) नहीं (**हन्यते**) मारा जाता है और (**न**) नहीं (**कदाचन**) कभी भी (**जीयते**) पराजित होता है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! इस प्रकार से तू महान् शासक, अद्भुत और काम, क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करने वाला है । तू ऐसा है कि जिसका मित्र कभी न मारा जाता है और न पराजित होता है ॥१॥

स्व॒स्ति॒दा वि॒शस्पति॑र्वृत्र॒हा वि॑मृ॒धो व॒शी ।
वृषेन्द्रः॑ पु॒र ए॑तु नः सोम॒पा अ॑भयङ्क॒रः ॥२॥

पदार्थः—(**स्वस्तिदाः**) कल्याण का दाता, (**विशस्पतिः**) प्रजा का स्वामी (**वृत्रहा**) विघ्नों का विनाशक, (**विमृधः**) जगत् में होने वाले संग्रामों का कर्त्ता (**वशी**) सबको वश में रखने वाला (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला, (**सोमपाः**) जगत् का पालक, (**अभयंकरः**) अभयदाता (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (**नः**) हमारे (**पुरः**) समक्ष (**एतु**) सदा प्राप्त रहे ।

भावार्थः—कल्याणदाता , प्रजा का स्वामी, विघ्नों का निवारक जगत् के संग्रामों=व्यवहारों का कर्त्ता, सबको वश में रखने वाला, कामनाओं की वर्षा करने वाला, तथा जगत् का पालक अभयदाता परमेश्वर सदा हमारे ध्यान में समक्ष उपस्थित रहे ॥२॥

वि रक्षो॒ वि मृधो॑ जहि॒ वि वृ॒त्रस्य॒ हनू॑ रुज ।
वि म॒न्युमि॑न्द्र वृत्रहन्न॒मित्र॑स्याभि॒दास॑तः ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! (**रक्षः**) राक्षसी भावना को (**वि जहि**) नष्ट कर, (**मृधः**) काम, क्रोध आदि को (**विजहि**) नष्ट कर, (**वृत्रस्य**) विघ्न वा आपदा की (**हनू**) हनू को (**रुज**) तोड़ दे, (**अभि दासतः**) हमारा विनाश करने वाले (**अमित्रस्य**) वैर ईर्ष्या अज्ञान आदि शत्रु के (**मन्युम्**) मन्यु का (**वृत्रहन्**) हे आपदा के हारक ! (**विजहि**) नष्ट कर ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! राक्षसी भावना को आप नष्ट करो, काम, क्रोध आदि का नाश करो, विघ्न की हनू को तोड़ो और वैर अज्ञान आदि शत्रुओं के बल का, हे आपदाहारक ! नाश कर ॥३॥

वि नं इन्द्र मृधों जहि नीचा यंच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! आप (**नः**) हमारी (**मृधः**) विनाशकारी प्रवृत्तियों को (**वि जहि**) दूर भगा, (**पृतन्यतः**) आक्रामणकारी भावनाओं को (**नीचा**) नीचे (**यच्छ**) करदे, (**यः**) जो भाव (**अस्मान्**) हमें (**अभिदासति**) नष्ट करता है (**तम**) उसे (**अधरम्**) निकृष्ट (**तमः**) अन्धकार में (**गमय**) डाल दे ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हमारी विनाशकारी प्रवृत्तियों को दूर भगा और आक्रमणकारी भावनाओं को नीचे गिरा । जो भाव हमें नष्ट करता हैं उसे निकृष्ट अन्धकार में डाल दे अर्थात् वह पुनः ज्ञान में और कर्म में न आने योग्य रहे ॥४॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥५॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**द्विषतः**) द्वेष करने वाले के (**मनः**) मन को (**अप जहि**) पलट दे, (**जिज्यासतः**) हमारी वयोहानि करने वाले के (**वधम्**) हनन भाव को (**अपजहि**) हटा दे, (**मन्योः**) क्रोध को (**वि जहि**) दूर कर, (**वरीयः**) श्रेष्ठ (**शर्म**) सुख को (**यच्छ**) प्रदान कर (**वधम्**) मृत्यु को (**यवय**) हमसे दूर हटा ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! द्वेषकारी के मन को पलट दे कि वह द्वेष न करे, हमारी वयोहानि की इच्छा करने वाली की हनन भावना को हटा दे, क्रोध को दूर कर, श्रेष्ठ सुख हमें दे, और मृत्यु को हम से दूर रख ॥५॥

यह दशम मण्डल में एक सौ बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त —१५३

ऋषिः —१—५ इन्द्रमातरो देवजामयः ॥ देवता —इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री । २—५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः - षड्जः ॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(**उपस्युवः**) कर्मशील (**सुवीर्यम्**) उत्तम शौर्य को (**भेजानासः**) रक्षित रखती हुए प्रजायें (**जातम्**) प्रसिद्ध (**इन्द्रम्**) राजा को (**ईङ्खयन्तीः**) प्राप्त होती हुई (**उपासते**) उसका आश्रय ग्रहण करती हैं ।

भावार्थ—कर्मशील और उत्तम शौर्य को रक्षित रखती हुई प्रजायें प्रसिद्ध राजा को प्राप्त होती हुई उसका आश्रय ग्रहण करती हैं ॥१॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**त्वम्**) तू (**बलाद्**) बल से (**सहसः**) पराभवकारी सामर्थ्य से और (**ओजसः**) पराक्रम से (**अधि**) अधिक (**जातः**) उत्पन्न हुआ (**असि**) है, (**वृषन्**) हे बलवन् ! (**त्वम्**) तू (**वृषा इत्**) सबसे बलवान् और सुखदाता (**असि**) है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू बल, पराभवकारी सामर्थ्य और पराक्रम में सब से अधिक है । हे बलवन् ! तू सब से बलवान् और सुखदाता है ॥२॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः ।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र त्वम्**) यह इन्द्र=वायु वा सूर्य (**वृत्रहा**) मेघ का मारने वाला (**असि**) है (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष लोक को (**वि अतिरः**) आवारक मेघ को नष्ट कर बढ़ाता है, (**ओजसा**) बल से (**द्याम्**) द्युलोक को (**उद् अस्तभ्नाः**) ऊपर ठहराता वा स्थापित करता है ।

भावार्थः—यह वायु वा सूर्य मेघ का मारने वाला है। मेघरूप आवरण को हटाकर अन्तरिक्ष को बढ़ाता है। अपने बल से द्युलोक को ऊपर धारण करता है ॥३॥

त्वमि॑न्द्र स॒जोष॑सम॒र्कं बि॑भर्षि॑ बा॒ह्वोः ।
वज्रं॒ शिशा॑न॒ ओज॑सा ॥४॥

पदार्थः—(**त्वम् इन्द्र**) यह इन्द्र=वायु अथवा सूर्य (**सजोषम्**) साथ रहने वाले (**अर्कम्**) अर्चनीय (**वज्रम्**) वज्र को (**ओजसा**) बल से (**शिशानः**) तीक्ष्ण करता हुआ (**बाह्वोः**) मित्र और वरुण रूपी बाहुओं में (**बिभर्षि**) धारण करता है ।

भावार्थः—यह वायु अथवा सूर्य साथ रहने वाले अर्चनीय वज्र को बल से तीक्ष्ण करता हुआ मित्र और वरुण=प्राण और उदान जो इसके हाथ हैं उनमें धारण करता है ॥४॥

त्वमि॑न्द्राभि॒भूर॑सि॒ विश्वा॑ जा॒तान्योज॑सा ।
स विश्वा॒ भुव॒ आभ॑वः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्द्र त्वम्**) यह इन्द्र=वायु अथवा सूर्य (**विश्वा**) सब (**जातानि**) उत्पन्न पदार्थों का (**ओजसा**) अपने बल से (**अभिभूः**) अविभविता (**असि**) है, (सः) वह यह (विश्वाः) समस्त (भुवः) स्थानों को (**आ अभवः**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—यह वायु सब उत्पन्न पदार्थों का अपने बल से अभिभविता है। वह यह वायु समस्त स्थानों को प्राप्त होता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५४

ऋषिः—१-५ यमी ॥ **देवता**—भाववृत्तम् ॥ **छन्दः**—१, ३, ४ अनुष्टुप् ।
२, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

सोम॒ एके॑भ्यः पवते घृ॒तमेक॒ उपा॑सते ।
येभ्यो॒ मधु॑ प्र॒धाव॑ति॒ ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥१॥

पदार्थः—(**एकेभ्यः**) कई विद्वानों के लिए (**सोमः**) सामगान अथवा साम (**पवते**) ज्ञान देता है (**एके**) दूसरे (**घृतम्**) यजुः का (**उपासते**) आश्रय करते हैं (**येभ्यः**) जिन विद्वानों के लिए (**मधु**) अथर्व (**प्रधावति**) ज्ञान प्रदान करता है। हे जीव ! (**तान्**) उन तक (**इव**) भी (**एव**) ही (**अपि गच्छतात्**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—हे जीव ! तू दूसरे जन्म में उनको प्राप्त हो जिन में कई एक को साम ज्ञान प्रदान करता है, दूसरों को यजुः ज्ञान देता है और जिनको अथर्व ज्ञान देता है ॥१॥

तप॑सा॒ ये अ॑नाधृ॒ष्यास्तप॑सा॒ ये स्व॑र्य॒युः ।
तपो॒ ये च॑क्रि॒रे मह॒ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥२॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**तपसा**) तपश्चरण से युक्त और (**अनाधृष्याः**) अपराजित हैं तथा (**ये**) जो (**तपसा**) तप से (**स्वः**) ज्ञान प्रकाश को (**ययुः**) प्राप्त करते हैं, (**ये**) जो लोग (**महः**) महा (**तपः**) तप (**चक्रिरे**) करते हैं, हे जीव ! जन्मान्तर में तू उनको भी प्राप्त हो ।

भावार्थः—जो तप से युक्त हैं और अपराजित हैं तथा जो तप से ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त करते हैं, हे जीव ! तू जन्मान्तर में उनको भी प्राप्त हो ॥२॥

ये युध्य॑न्ते प्र॒धने॑षु॒ शूरा॑सो॒ ये त॑नू॒त्यजः॑ ।
ये वा॑ स॒हस्र॑दक्षिणा॒स्ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥३॥

पदार्थः—(**शूरासः**) बलवान् (**ये**) जो लोग (**प्रधनेषु**) संग्रामों में (**युध्यन्ते**) युद्ध करते हैं, (**ये**) जो (**तनूत्यजः**) शरीर को छोड़ने वाले होते हैं

(**वा**) और (**ये**) जो (**सहस्रदक्षिणाः**) सहस्रों का दान करने वाले होते हैं, हे जीव ! तू जन्मान्तर में उन्हें भी प्राप्त हो ।

भावार्थः—बलवान् जो लोग संग्रामों में लड़ते हैं, जो ऐसे कार्यों में अपने शरीर को भी छोड़ने वाले होते हैं और जो सहस्रों का दान करने वाले हैं, हे जीव ! जन्मान्तर में तू उन्हें भी प्राप्त हो ॥३॥

ये चि॒त्पूर्व॑ ऋ॒तसा॑प ऋ॒तावा॑न ऋता॒वृधः॑ ।
पि॒तॄन्तप॑स्वतो य॒म ताँश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥४॥

पदार्थः—(**ये चित्**) जो (**पूर्वे**) ज्ञानपूर्ण (**ऋतसापः**) सत्य को मानने वाले, (**ऋतावानः**) यज्ञ करने वाले और (**ऋतावृधः**) सत्य का प्रचार और प्रसार कर उसे बढ़ाने वाले हैं (**तपस्वतः**) तपोनिष्ठ (**तान्**) उन (**पितॄन् चिद् अपि**) जीवित माता-पिता को भी (**यम**) हे जीव ! तू पुनः (**गच्छतात्**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—जो पूर्णज्ञानी सत्य को मानने वाले, यज्ञ करने वाले और सत्य को बढ़ाने वाले तपोनिष्ठ जीवित माता-पिता हैं, हे जीव ! तू पुनः उनको भी प्राप्त हो ॥४॥

स॒हस्र॑णीथाः क॒वयो॒ ये गो॑पा॒यन्ति॒ सूर्य॑म् ।
ऋषी॒न्तप॑स्वतो यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ॥५॥

पदार्थः—(**सहस्रणीथाः**) सहस्रों प्रकार की दृष्टियों वाले, (**कवयः**) क्रान्तदर्शी (**ये**) जो (**सूर्यम्**) परमेश्वर को (**गोपायन्ति**) अपने ज्ञान और कर्म में सुरक्षित रखते हैं, (**यम**) हे जितेन्द्रिय जीव ! (**तपोजान्**) तप में प्रसिद्ध (**तपस्वतः**) तपस्वी (**ऋषीन्**) मन्त्रद्रष्टा लोगों को (**अपि**) भी (**गच्छतात्**) पुनः प्राप्त हो ।

भावार्थः—सहस्रों दृष्टियों वाले क्रान्तदर्शी जो परमेश्वर को सदा अपने ज्ञान और कर्म में सुरक्षित रखते हैं, हे जितेन्द्रिय जीव ! तू तप में प्रसिद्ध तपस्वी उन मन्त्रद्रष्टा लोगों को भी पुनः प्राप्त हो ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५५

ऋषिः—१—५ शिरिम्बिठो भारद्वाजः ॥ **देवता**—१, ४ अलक्ष्मीघ्नम् ।
२, ३ ब्रह्मणस्पतिः । ५ विश्वेदेवाः ॥ **छन्दः**—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् ॥
३ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

अरा॑यि का॒णे विक॑टे गि॒रिं ग॑च्छ सदान्वे ।
शि॒रिम्बि॑ठस्य॒ सत्व॑भि॒स्तेभि॑ष्ट्वा चातयामसि ॥१॥

पदार्थः—(**अरायि**) न देने वाली, (**काणे**) किसी को न देखने वाली (**विकटे**) विकराल यह दुर्भिक्ष वृत्ति (**गिरिम्**) निगीर्णत्व को (**गच्छ**) प्राप्त हो जावे हम (**त्वा**) इसे (**शिरिम्बिठस्य**) मेघ के (**तेभिः**) उन (**सत्वैः**) जलों से (**चातयामसि**) नष्ट करते हैं ।

भावार्थः—न देने वाली, किसी को न देखने वाली, और विकराल यह दुर्भिक्षवृत्ति निगीर्ण हो जावे । हम मेघ के जलों से इसको विनष्ट करते हैं ॥१॥

च॒त्तो इ॒तश्च॒त्तामु॒तः सर्वा॑ भ्रू॒णान्या॒रुषी॑ ।
अ॒रा॒य्यं॑ ब्रह्मणस्पते॒ तीक्ष्ण॑शृङ्गोदृ॒षन्नि॑हि ॥२॥

पदार्थः—(**इतः**) यहां से (**चत्तो**) नाश को प्राप्त (**अमुतः**) उधर से भी (**चत्ता**) नाश को प्राप्त (**सर्वा**) सारे (**भ्रूणानि**) औषधि-अंकुरों को (**आरुषी**) नाश करने वाली है यह दुर्भिक्षवृत्ति (**अराय्यम्**) अदात्री इस दुर्भिक्षवृत्ति को (**ब्रह्मणस्पते**) अन्तरिक्ष का पालक (**तीक्ष्णशृंगम्**) तीक्ष्णतेजस्क सूर्य (**दृषन्**) दूर करता हुआ (**इहि**) प्राप्त होवे ।

भावार्थ—यहां से भी नष्ट की गई और वहां से भी नाश को प्राप्त औषधि, अन्न और घास आदि के गर्भांकुरों को खाने वाली है यह दुर्भिक्षवृत्ति । इस अदात्री को अन्तरिक्ष का पालक तीक्ष्ण तेजस्क सूर्य दूर करके प्राप्त होवे ॥२॥

अ॒दो यद्दा॒रु प्लव॑ते॒ सिन्धोः॑ पा॒रे अ॑पूरु॒षम् ।
तदा र॑भस्व दुर्हणो॒ तेन॑ गच्छ परस्त॒रम् ॥३॥

पदार्थः—(**अदः**) वह दूर (**यत्**) जो (**दारु**) काष्ठमय नौका (**सिन्धोः**) समुद्र वा नदी के (**पारे**) पार करने के लिए (**अपूरुषम्**) विना पुरुष के (**प्लवते**) जल के ऊपर विद्यमान है हे (**दुर्हणो**) दुःख का निवारण चाहने वाले मनुष्य (**तत्**) उसका (**आरभस्व**) आलम्बन कर तथा (**तेन**) उससे (**परस्तरम्**) तरणीय दूर द्वीप को (**गच्छ**) जा ।

भावार्थः—हे दुर्भिक्ष से निवारण चाहने वाले मनुष्य ! तू जो वह काष्ठमयी नौका समुद्र वा नदी से पार करने के लिए विना किसी मनुष्य के जल के ऊपर विद्यमान है उसका आलम्बन कर और उससे तरणीय दूर देश वा द्वीप को चला जा ।।३।।

यद्ध प्राचीरजंगन्तोरों मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयांशवः ॥४॥

पदार्थः—(**मण्डूरधाणिकीः**) मेंढक के शब्द को धारण करने वाली (**उरः**) दुर्भिक्ष की नाशक (**प्राचीः**) पूर्व की अथवा जोर से बहती हुई जलीय हवायें (**यद् ह**) जब (**अजगन्त**) आ जाती हैं तब (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**सर्वे**) सब (**शत्रवः**) शत्रुभूत मेघ (**बुद्बुदयाशवः**) बुलबुले के समान होकर (**हताः**) नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थः—मेंढकों के शब्द को धारण करने वाली दुर्भिक्षवारक पूर्व की अथवा जोर से बहने वाली वाष्पमयी हवायें जब आ जाती हैं तब इन्द्र=सूर्य के शत्रु=मेघ बुलबुले के समान हुए नष्ट हो जाते हैं और वर्षा होती है ।।४।।

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥५॥

पदार्थः—(**इमे**) ये विश्वेदेव लोग=समस्त दैवी शक्तियां (**गाम्**) सूर्य की मेघ में छिपी किरणों को (**पर्यनेषत**) प्राप्त करते हैं (**अग्निम्**) अग्नि को (**पर्यहृषत**) स्थापित करते हैं तथा (**देवेषु**) मरुत् आदि देवों में (**श्रवः**) बल को (**अक्रत**) बढ़ाते हैं (**कः**) कौन (**इमम्**) इन विश्वेदेवों को (**आ दधर्षति**) दबा सकता है ।

भावार्थः—ये विश्वेदेव=देवीशक्तियां मेघों में छिपी सूर्य किरणों को प्राप्त करती हैं तथा मेघ में विद्युद्रूप अग्नि को स्थापित करती हैं। ये मरुत् आदि के बल को बढ़ाती हैं और वर्षा करती हैं इनको कौन दबा सकता है? ।।५।।

यह दशम मण्डल में एकसौ पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५६

ऋषिः—१—५ केतुराग्नेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ५ गायत्री । २, ४ निचृद्गायत्री । स्वरः—षड्जः ॥

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
तेन जेष्म धनंधनम् ॥१॥

पदार्थः—(**नः**) हमारी (**धियः**) बुद्धियें और क्रियायें (**अग्निम्**) अग्नि को (**हिन्वन्तु**) यज्ञ के लिए बढ़ावें और प्रेरित करें, (**इव**) जिस प्रकार (**आजिषु**) संग्रामों में (**आशुम्**) शीघ्रगामी, (**सप्तिम्**) अश्व को बढ़ाते हैं (**तेन**) उस अग्नि के द्वारा (**धनं धनम्**) समस्त धनों को (**जेष्म**) जीतें ।

भावार्थः—हमारी बुद्धियें और कुशल क्रियायें अग्नि को यज्ञार्थ उसी प्रकार बढ़ावें जिस प्रकार योद्धा संग्रामों में शीघ्रगामी घोड़े को बढ़ाते हैं। उस अग्नि से यज्ञ के द्वारा हम विविध धनों को प्राप्त करें ।।१।।

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**सेनया**) इन=स्वामी से सम्पन्न अथवा राजा से युक्त (**यया**) जिस (**तव**) तेरी (**ऊत्या**) रक्षा से हम (**गाः**) भूमि और गौ आदि को (**आ करामहे**) प्राप्त करते हैं (**ताम्**) उस रक्षा को (**मघत्तये**) धन की प्राप्ति के लिए (**नः**) हमें (**हिन्व**) प्राप्त करा ।

भावार्थः हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! स्वामी एवं रक्षक राजा से युक्त जिस तुम्हारी रक्षा से हम भूमि और गौ आदि को प्राप्त करते हैं उस रक्षा को हमें धनप्राप्ति के लिए प्राप्त करा ॥२॥

अग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्ग्धि खं वर्तया पणिम् ॥३॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू (**स्थूरम**) स्थूल=प्रवृद्ध (**पृथुम**) विस्तीर्ण (**गोमन्तम**) गायों से युक्त (**अश्विनम**) अश्वों से युक्त ('**रयिम**) धन को (**आ भर**) हमें प्रदान कर, (**खम**) आकाश को वृष्टिजल से (**अङ्घि**) सिक्त कर (**पणिम**) अदाता को (**वर्तय**) परिवर्तित कर दाता बना ।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें वृद्धिकारक विस्तीर्ण गायों और अश्वों आदि से युक्त धन प्रदान कर । अन्तरिक्ष को वृष्टि जल से सिक्त कर और अदाता को परिवर्तित करके दाता बना ॥३॥

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप (**जनेभ्यः**) लोगों के लिए (**ज्योतिः**) प्रकाश (**दधत**) करते हुए (**दिवि**) द्युलोक में (**नक्षत्रम**) सतत गतिमान् (**अजरम**) जरारहित (**सूर्यम**) आदित्य को (**आरोहयः**) स्थापित करते हो ।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप जगत् के लोगों के लिए प्रकाश करते हुए द्युलोक में निरन्तरगतिमान् सूर्य को स्थापित करते हो ॥४॥

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप (**विशाम**) जगत् की प्रजाओं के (**केतुः**) ज्ञानदाता (**प्रेष्ठः**) प्रियतम (**श्रेष्ठः**) श्रेष्ठ हो, (**उपस्थसत**) हृदय में विराजमान हुआ तू (**वयः**) ज्ञान को (**दधत**) देते हुये (**स्तोत्रे**) स्तोता के लिए (**बोध**) उत्तम मार्ग को बता ।

भावार्थः हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप जगत् की प्रजाओं के ज्ञानदाता, प्रियतम और श्रेष्ठ हो । हृदय में विराजमान हुए आप ज्ञान देते हुए स्तोता को उत्तम मार्ग का बोध कराइये ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५७

ऋषिः—१–५ भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥
छन्दः—द्विपदात्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

पदार्थः—(**इमा**) इन (**भुवना**) समस्त भुवना को (**नु**) क्षिप्र हम (**कम्**) सुखपूर्वक (**सीषधाम**) वश में करें, (**इन्द्रः**) विद्युत् (**च**) और (**विश्वे च**) सारे ही (**देवाः**) देव=दिव्य पदार्थ हमें लाभकारी हों ।

भावार्थः—इस समस्त भुवनों को हम सुखपूर्वक अपने ज्ञान और कर्म से अपने वश में करें । विद्युत् और सारी ही दिव्य शक्तियें हमें लाभकारी हों ॥१॥

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) वायु (**आदित्यैः**) आदित्यों के (**सह**) साथ (**यज्ञम्**) यज्ञ (**नः**) हमारे (**तन्वम**) शरीर को (**च**) भी, (**च**) और (**प्रजाम**) सन्तति को (**च**) भी (**चीक्लृपाति**) सामर्थ्यवान् करता है ।

भावार्थः—वायु बारह मासों रूपी बारह आदित्यों के साथ हमारे यज्ञ, हमारे शरीर और हमारी प्रजा को सामर्थ्यवान् बनाता है ॥२॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) शरीरस्थ विद्युत् (**आदित्यैः**) बारह मासों के साथ तथा (**मरुद्भिः**) मरुतों के साथ (**सगणः**) संघवाला होकर (**अस्माकम**) हमारे (**तनूनाम**) शरीरों का (**अविता**) रक्षक (**भूतु**) होती है ।

भावार्थः—(इन्द्र) शरीरस्थ विद्युत् बारह मासों के सूर्य के साथ तथा मरुतों=प्राण के साथ सगण होकर हमारे शरीरों की रक्षक होती है ॥३॥

हत्वायं देवा असुंरान्यदायंन्देवा देंवत्वमंभिरक्षमाणाः ॥४॥

पदार्थः– (**अभि रक्षमाणाः**) समस्त विश्व की रक्षा करती हुई (**देवाः**) देवनधर्मा जगत् की शक्तियां (**यत्**) जब (**असुरान्**) मेघों को (**हत्वाय**) मार कर (**आयन्**) गतिमान् होती हैं तब ये (**देवाः**) दिव्य शक्तियां (**देवत्वम्**) वास्तविक देवत्व को प्राप्त करती हैं ।

भावार्थः—समस्त विश्व की रक्षा करती हुई देवनधर्मा जगत् की शक्तियां जब मेघों और आवरकों को मारकर गतिमती होती हैं तब ये अपने वास्तविक देवत्व को धारण करती हैं ॥४॥

प्रत्यञ्चंमर्कमंनयञ्छचींभिरादित्स्वधामिंषिरां पर्यंपश्यन् ॥५॥

पदार्थः—स्तोता यजमान (**शचीभिः**) प्रज्ञा और कर्मों से (**प्रत्यञ्चम्**) इन्द्र आदि देवों के प्रति जाने वाले (**अर्कम्**) अर्चन साधन स्तोत्र को (**अनयन्**) यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं (**आत् इत्**) तदनन्तर वे (**इषिराम्**) गमनशील (**स्वधाम्**) वृष्टि के जल को (**पर्यपश्यन्**) देखते हैं ।

भावार्थः—यजमान बुद्धि और कर्मों से इन्द्र आदि यज्ञदेवों के प्रति किये जाने वाले अर्चन के साधन भूत मन्त्रों को यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं तब गतिमयी वृष्टि को प्राप्त करते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५८

ऋषिः—१—५ चक्षुः सौर्यः ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड्-गायत्री । २ स्वराड्गायत्री । ३ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

सूर्यों नो दिवस्पांतु वातों अन्तरिंक्षात् ।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१॥

पदार्थः - (**सूर्यः**) सूर्य (**नः**) हमारी (**दिवः**) द्युलोक से (**पातु**) रक्षा करता है, (**वायुः**) वायु (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से और (**अग्निः**) अग्नि (**नः**) हमें (**पार्थिवेभ्यः**) पार्थिव पदार्थों से रक्षित रखता है ।

भावार्थः - सूर्य द्युलोक में स्थित हुआ वहां से हमारी रक्षा करता है। वायु अन्तरिक्षस्थ है अतः वहां से हमारी रक्षा करता है और अग्नि पृथिवी पर रहता हुआ पार्थिव पदार्थों से हमारी रक्षा करता है ॥१॥

जोषां सवितर्यस्यं ते हरः शतं सवाँ अर्हति ।
पाहि नों दिद्युतः पतंन्त्याः ॥२॥

पदार्थः—(**सवितः**) सविता=सूर्य (**ते यस्य**) उस जिसका (**हरः**) तेज (**शतम्**) सैकड़ों (**सवान्**) यज्ञों की प्राप्ति के प्रति (**अर्हति**) योग्य होता है वह (**जोष**) हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों का सेवन करता है। वह प्रभु (**पतन्त्याः**) गिरती हुई (**विद्युतः**) बिजली से (**पाहि**) हमारी रक्षा करता है।

भावार्थः—यह सूर्य जिसका तेज हमारे बहुत यज्ञों की प्राप्ति के योग्य है हमारे द्वारा यज्ञ में प्रदत्त हवि को ग्रहण करता है। वह महान् परमेश्वर गिरती बिजली से हमारी रक्षा करता है ॥२॥

चक्षुर्नों देवः संविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।
चक्षुर्धाता दंधातु नः ॥३॥

पदार्थः—भगवान् की कृपा से (**देवः**) देवनधर्मा (**सविता**) सूर्य (**नः**) हमें (**चक्षु**) नेत्र को तेज (**दधातु**) देता है, (**उत**) और (**पर्वतः**) मेघ (**नः**) हमें (**चक्षुः**) दर्शन शक्ति देता है, (**धाता**) आदित्यों में एक आदित्य (**नः**) हमें (**चक्षुः**) नेत्र का प्रकाशक तेज देता है ।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से देवनधर्मा सविता=सूर्य हमें नेत्र का तेज देता है और मेघ भी हमें नेत्र की शक्ति देता है और आदित्यों में अन्यतम धाता नामक आदित्य हमें नेत्रज्योति देता है ॥३॥

चक्षुर्नों धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यंः ।
सं चेदं वि चं पश्येम ॥४॥

पदार्थः—यह सूर्य (**नः**) हमारे (**चक्षुषे**) नेत्र के लिए (**चक्षुः**) नेत्र

ज्योति (**धेहि**) देता है (**नः**) हमारे (**तनूभ्यः**) शरीरभूत पुत्र आदि के (**विख्यै**) प्रकाश के लिए (**चक्षुः**) नेत्रज्योति देता है, जिससे हम (**इदम्**) इस सारे जगत् को (**संपश्येम**) भली प्रकार देखते हैं (**च**) और (**विपश्येम च**) विशेष रूप से देखते हैं ।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से सूर्य हमारे नेत्र में नेत्रज्योति देता है और हमारी सन्तानों को भी देखने के लिए दर्शनशक्ति देता है, जिससे हम इस सम्पूर्ण जगत् को देखते हैं और विशेष रूप से देखते हैं ॥४॥

सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।
वि पश्येम नृचक्षसः ॥५॥

पदार्थः—(**सुसंदृशम्**) सबके देखने के साधन भूत (**त्वा**) इस (**सूर्य**) सूर्य को (**वयम्**) हम सदा (**प्रतिपश्येम**) देखें, (**नृचक्षसः**) मनुष्यों के द्वारा द्रष्टव्य पदार्थों को (**विपश्येम**) विशेष रूप से देखें ।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से सबके देखने के साधनभूत इस सूर्य को हम सदा देखें और मनुष्यों द्वारा द्रष्टव्य पदार्थों को विशेषरूप से देखें ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १५९

ऋषिः—१—६ शची पौलोमी ॥ देवता—शची पौलोमी ॥ छन्दः—१—
३, ५ निचृदनुष्टुप्। ४ पादनिचृदनुष्टुप् । ६ अनुष्टुप् ॥
स्वरः – गान्धारः ॥

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥१॥

पदार्थः—(**असौ**) यह (**सूर्यः**) सूर्य (**उदगात्**) उदय को प्राप्त हो रहा है (**अयम्**) यह (**मामकः**) मेरे सम्बन्धी (**भगः**) ऐश्वर्य अथवा सौभाग्य भी

(**उदगात्**) उदय को प्राप्त हो रहा है । (**अहम्**) मैं (**तद् पतिम्**) अपना पति=पालक (**विद्वला**) पा गई हूँ मैं (**विषासहिः**) शत्रुओं का पराजय करने वाली होकर (**अभि असाक्षि**) उनका पराजय करूँ ।

भावार्थः—राजा की पत्नी कहती है कि यह सूर्य उदित हो रहा है । यह मेरा सौभाग्य भी उदय को प्राप्त हो रहा है । मैं अपने पति को पा गई हूं । मैं शत्रुओं का विनाश करने वाली होकर उनके समक्ष उनका पराजय करूँ ॥१॥

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राज्ञी (**केतुः**) सबकी ज्ञात्री हूँ, (**अहम्**) मैं (**मूर्धा**) सब की मस्तकस्थानीय हूँ, (**अहम्**) मैं (**उग्रा**) उग्र और (**विवाचनी**) विशेष रूप से वाचयित्री हूं, (**सेहानायाः**) सपत्नी की अभिभवित्री (**मम**) मुझ पत्नी की (**क्रतुम्**) बुद्धि वा व्यवहार को (**इत्**) ही (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**पतिः**) पति (**उपाचरेत्**) मुझे प्राप्त होवे ।

भावार्थः—मैं राज्ञी सबकी ज्ञात्री हूं । मैं सबकी मूर्धा के समान हूं । मैं उग्र और विशेष वक्त्री हूं । सपत्नी को मर्दन करने वाली मुझ पत्नी की मति और कृति के अनुरूप ही पति व्यवहार करें ॥२॥

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥३॥

पदार्थः—(**मम**) मेरे (**पुत्राः**) पुत्र लोग (**शत्रुहणः**) शत्रु का नाश करने वाले हैं, (**मे**) मेरी (**दुहिता**) पुत्री (**विराट्**) विशेष राजमाना है, (**उत**) और (**अहम्**) मैं (**संजया**) भली प्रकार जीतने वाली (**अस्मि**) हूँ (**पत्यौ**) पति में (**मे**) मेरा (**श्लोकः**) यश (**उत्तमः**) उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—मेरे पुत्र शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, मेरी पुत्री विशेष राजमाना है, मैं स्वयम् विजय करने वालो हूं और पति में मेरा यश बहुत उत्तम है ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४॥

पदार्थ—(**येन**) जिस (**हविषा**) भोजन के द्वारा (**इन्द्रः**) राजा (**कृत्वी**) कर्मों का कुशल कर्त्ता (**अभवत्**) होता है तथा (**उत्तमः**) उत्तम (**द्युम्नी**) यशस्वी होता है, हे (**देवाः**) विद्वानो ! (**इदम्**) यह (**तत्**) वह (**अकि**) मेरे द्वारा भी किया जाता है (**असपत्ना**) मैं शत्रुरहिता (**किल**) निश्चय (**अभूवम्**) होऊँ ।

भावार्थः—जिस भोजन खान-पान आदि के द्वारा राजा कर्मों का कुशल कर्त्ता, उत्तम यशस्वी होता है वह मेरे द्वारा भी किया जाता है । हे विद्वानो ! मैं शत्रुरहिता होऊँ ॥४॥

असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥५॥

पदार्थः–(**असपत्ना**) शत्रुरहिता, (**सपत्नघ्नी**) शत्रुनाशिनी (**जयन्ती**) जीतने वाली (**अभिभूवरी**) अभिभवित्री मैं (**अस्थेयसामिव**) अस्थिर तर शत्रुओं के समान (**अन्यासाम्**) सपत्नियां के (**वर्चः**) तेज और (राधः) धन को (**अवृक्षम्**) काटती हूँ ।

भावार्थः– शत्रुहीना, शत्रुनाशिनी, जयवाली और अभिभवित्री मैं अस्थिरतर शत्रुओं की भांति सौतों के तेज और धन को काटती हूं ॥५॥

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥६॥

पदार्थः—(**अभिभूवरी**) अभिभवित्री (**अहम्**) मैं राज्ञी (**इमाः**) इन (**सपत्नीः**) सौतों को (**समजैषम्**) जीतूं, (**यथा**) जिससे (**अहम्**) मैं (**अस्य**) इस (**वीरस्य**) वीर राज्ञी की (**विराजानि**) विशेष राजमाना होऊं ।

भावार्थः—अभिभवित्री मैं राज्ञी इन सौतों पर विजय प्राप्त करूँ जिससे इस वीर राजा की विशेष राजमाना पत्नी बनूं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसो उन्सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१६०

ऋषिः—१—५ पूरणो वैश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे सेनापते तू (**अस्य**) इस (**तीव्रस्य**) अतिवेग से जाने वाले (**अभिवयसः**) सब प्रकार के अन्न से सम्पन्न राष्ट्र की (**पाहि**) रक्षा कर, (**इह**) यहां पर (**सर्वरथा**) सभी रथों को ले चलने वाले (**हरी**) घोड़ों को (**विमुञ्च**) खोल दे, (**त्वा**) तुझे (**अन्ये**) दूसरे (**यजमानासः**) शत्रुपक्षीय लोग (**मा नि रीरमन्**) न लुभालें (**इमे सुतासः**) तैयार किये रस आदि (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिए हैं ।

भावार्थः—हे सेनापते ! इस अति वेग से चलने वाले सब प्रकार के अन्न आदि से परिपूर्ण राष्ट्र की तू रक्षा कर । यहां पर ही सभी रथों को खींचने में समर्थ घोड़ों को मुक्त कर । तुझे शत्रुपक्षीय मनुष्य जान न लुभालें । ये तैयार किये हुए सोमरस आदि पदार्थ तुम्हारे लिये हैं ॥१॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे सेनापते ! (**सुताः**) ऐश्वर्य (**तुभ्यम्**) तेरे लिए है, (**तुभ्यम् उ सोत्वासः**) उत्पन्न किये जाने वाले पदार्थ भी तेरे लिए हैं, (**त्वाम्**) तुझको (**श्वात्र्या**) शुद्ध (**गिरः**) वाणियें (**आह्वयन्ति**) सब तरफ से पुकारती हैं, (**अद्य**) आज (**इदम्**) इस (**सवनम्**) यज्ञ को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ तू (**विश्वस्य**) सबको (**विद्वान्**) जानता हुआ (**इह**) इस यज्ञ में (**सोमम्**) सोम और ज्ञान आदि की रक्षा कर ।

भावार्थः—हे सेनापते ! ऐश्वर्य तेरे लिए हैं, भविष्य में जो ऐश्वर्य प्राप्त हों वे भी तेरे लिए हैं, इस यज्ञ को करता हुआ, सबको जानता हुआ तू इस यज्ञ में सोम आदि पदार्थ और ज्ञान-विज्ञान की रक्षा कर ॥२॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

पदार्थः—(**देवकामः**) यज्ञ की कामना वाला (**सर्वहृदः**) पूर्ण हृदय वाला (**यः**) जो मनुष्य (**अस्मै**) इस सेनापति के लिए (**उशता**) कामना युक्त (**मनसा**) मन से (**सोमम्**) सोम आदि रस का (**सुनोति**) निष्पादन करता है (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् सेनापति (**तस्य**) उसकी (**गाः**) वाणियों और भूमियों को (**न**) नहीं (**परा ददाति**) टालता वा नष्ट करता है (**अस्यै**) इसके लिए (**प्रशस्तम्**) प्रशस्त (**इत्**) एवम् (**चारु**) उत्तम धन (**कृणोति**) करता है ।

भावार्थः—यज्ञ की कामना वाला, पूर्ण हृदय वाला जो मनुष्य इस सेनापति के लिए कामनायुक्त मन से सोम आदि रसों को तैयार करता है, ऐश्वर्यवान् सेनापति उसकी वाणियों को नहीं टालता है और इसके लिए प्रशस्त एवम् उत्तम धन देता है ॥३॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो मनुष्य (**रेवान् न**) धन वाले के समान (**अस्मै**) इस सेनापति के लिए (**सोमम्**) सोम आदि को (**सुनोति**) तैयार करता है (**एषः**) यह सेनापति (**अस्य**) इसके लिए (**अनु**) अनुदिन (**स्पष्टः**) स्पष्ट (**भवति**) होता है, (**मघवा**) धनवान् सेनापति (**तम्**) उसको (**अरत्नौ**) हाथ में (**निःदधाति**) रखता है और (**अनानुदिष्टः**) और विना कहा हुआ ही (**ब्रह्मद्विषः**) ज्ञान और विद्वान् के द्वेषियों को (**हन्ति**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जो मनुष्य धन वाले के समान इस सेनापति के लिए सोम आदि रसों को तैयार करता है उसको यह अपने हाथ में सुरक्षित रखता है । तथा विना कहा हुआ ही ज्ञान और विद्वानों के द्वेषी को नष्ट करता है ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥

पदार्थः—(**अश्वायन्तः**) अश्वों को चाहते वाले, (**गव्यन्तः**) गायों को चाहने वाले (**वाजयन्तः**) यज्ञ की अग्नि को जलाते हुए हम हे सेनापते ! (**त्वा**) तुझे (**उपगन्तवै उ**) प्राप्त करने के लिए (**हवामहे**) पुकारते हैं, (**इन्द्र**) हे सेनापते ! (**ते**) तेरी (**नवायाम्**) नवीन (**सुमतौ**) सुमति में (**आभूषन्तः**) वर्तमान हम (**शुनम्**) सुखकर (**त्वा**) तुझे (**हुवेम**) पुकारें ।

भावार्थः—हे सेनापते ! अश्वों को चाहने वाले, गौओं को चाहने वाले और यज्ञ की अग्नि को जलाते हुए हम तुझे प्राप्त करने के लिए पुकारते हैं । तेरी नूतन सुमति में वर्तमान हम तुझ सुखकारी को स्मरण करते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त-१६१

ऋषिः—१—५ यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः । देवता—राजयक्ष्मघ्नम् ॥
छन्दः—१, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ५
निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—४ धैवतः । ५ गान्धारः ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

पदार्थः—हे रोगिन् ! (**त्वा**) तुझे मैं वैद्य (**कम्**) सुखपूर्वक (**जीवनाय**) जीने के लिए (**हविषा**) ओषधि अथवा हवन द्वारा (**अज्ञातयक्ष्मात्**) अप्रकट यक्ष्मा रोग से (**उत**) और (**राजयक्ष्मात्**) प्रकट तपेदिक से (**मुञ्चामि**) छुड़ाता हूं, (**यदि**) यदि (**ग्राहिः**) शरीर को जकड़ने वाले रोग ने (**जग्राह**) ग्रहण किया है तो (**एनम्**) इसको (**तस्याः**) उससे भी (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र=विद्युत् और अग्नि गुणों वाली ओषधियें (**मुमुक्तम्**) छुड़ावें ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! तुझे मैं वैद्य सुखपूर्वक जीने के लिए ओषधि और यज्ञ की हवि के द्वारा प्रकट और अकप्रट तपेदिक से छुड़ाता हूं । यदि शरीर को जकड़ने वाली व्याधि ने इसे पकड़ा है तो उससे भी विद्युत् और आग्नेय गुणों वाली ओषधियां इसे मुक्त करें ॥१॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२॥

पदार्थ—(**यदि**) यदि रोगी (**क्षितायुः**) नष्ट जीवन शक्ति वाला हो गया है (**यदि**) यदि (**वा**) अथवा (**परा इतः**) सीमा से परे चला गया है (**यदि**) यदि (**मृत्योः**) मृत्यु के (**अन्तिकं:**) समीप (**नीतः**) पहुँच गया (**एव**) ही है तो भी (**तम्**) उस रोगी को मैं वैद्य (**निर्ऋतेः**) कष्टप्रद रोग के (**उपस्थात्**) पंजे से (**आ हरामि**) छुड़ा लाता हूं (**शतशारदाय**) सौ शरद् ऋतुओं तक जीने के लिए (**एनम्**) इसको (**अस्पार्षम्**) बलयुक्त करता हूं।

भावार्थः—यदि रोगी नष्ट जीवनशक्ति वाला हो गया है, अथवा यदि वह सीमा से परे चला गया है, यदि वह मृत्यु के समीप पहुँच गया है तो भी उस रोगी को मैं भिषक् कष्टप्रद रोग के पंजे से छुड़ा लाता हूं और सौ शरद् ऋतुओं तक जीने के योग्य बना देता हूँ ॥२॥

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

पदार्थः–(**एनम्**) इस रोगी के लिए (**सहस्राक्षेण**) सहस्रों गुणों वाली (**शतशारदेन**) सौ शरद् ऋतु तक जीवन देने में समर्थ (**हविषा**) औषधि (**अहार्षम्**) लाता और प्रयुक्त करता हूँ (**यथा**) जिससे (**इन्द्रः**) प्राण (**शरदः शतम्**) सौ शरद् ऋतुओं तक (**विश्वस्य**) सारे (**दुरितस्य**) दुरितों के (**पारम्**) पार (**नयाति**) पहुँचावे ।

भावार्थः—इस रोगी के लिए सहस्रों गुणों वाली सौ शरद् ऋतुओं तक जीवन देने वाली औषध को लाता और प्रयुक्त करता हूं जिससे प्राण इसे सौ शरद् ऋतुओं तक सारे रोगों से दूर रखें ॥३॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४॥

पदार्थः— हे रोगमुक्त मनुष्य तू (**शतम्**) सौ (**शरदः**) शरद् ऋतुओं तक (**वर्धमानः**) बढ़ता हुआ (**जीव**) जी, तू (**शतम्**) सौ (**हेमन्तान्**) हेमन्त ऋतुओं पर्यन्त, (**शतम् उ**) और सौ(**वसन्तान्**) वसन्त ऋतुओं पर्यन्त जीवित रह, (**इन्द्राग्नी**) विद्युत् और अग्नि (**सविता**) सूर्य, (**बृहस्पतिः**) वायु (**शतम्**) सौ सम्वत्सर तक आयु (**शतायुषा**) सौ वर्ष तक जीवन देने में समर्थ (**हविषा**) शक्ति के द्वारा (**इमम्**) इसको (**पुनः**) फिर (**दुः**) दें ।

भावार्थः—रोगमुक्त यह मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होता हुआ सौ शरद् ऋतुओं पर्यन्त जीवे, सौ हेमन्त और सौ वसन्त ऋतुओं तक जीवे तथा विद्युत्, अग्नि, सूर्य, वायु आदि सौ शरद् तक जीवन जीने में समर्थ शक्ति के द्वारा इसे सौ शरद् ऋतु तक जीवन प्रदान करें ॥४॥

आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥५॥

पदार्थः—हे रोगमुक्त ! मैं भिषग् (**त्वा**) तुझे रोग से (**आहार्षम्**) दूर लाया हूं, (**त्वा**) तुझको पुनः (**अविदम्**) प्राप्त किया हूं, हे (**पुनर्नव**) नये जीवन को धारण करने वाले (**त्वा**) तू (**पुनः**) फिर से (**आ अगाः**) लौटकर आया है, हे (**सर्वांग**) अङ्गों से युक्त ! (**सर्वम्**) सारी (**ते**) तेरी (**चक्षुः**) इन्द्रियों को (**सर्वम्**) सारी (**ते**) तेरी (**आयुः च**) आयु को भी (**अविदम्**) तुझे प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थः—हे रोगमुक्त ! मैं भिषग् तुझे नये सिरे से प्राप्त किया हूं, तुझे रोग से दूर लाया हूं। हे नवीन जीवन प्राप्त करने वाले ! तू पुनः लौटकर आया है। हे सभी अङ्गों से युक्त ! मैंने तुझे सारी इन्द्रियां और सारी आयु प्राप्त कर दी है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त-१६२

ऋषिः—१—६ रक्षोहा ब्राह्मः ॥ देवता—गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम् ॥
छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५, ६ अनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१॥

पदार्थः—(**ब्रह्मणा**) वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और उपाय से (**संविदानः**) युक्तं (**रक्षोहा**) कृमिनाशक (**अग्निः**) आग्नेय गुण वाली अथवा अग्नि नाम की ओषधि अथवा विद्युत् (**इतः**) इस शरीर से (**बाधताम्**) रोग को दूर करे (**यः**) जो (**दुर्णामा**) दुर्णामा नामक (**अमीवा**) अमीवा नामक रोगकृमि हे स्त्री ! (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ और (**योनिम्**) गर्भस्थान में (**आशये**) स्थान प्राप्त किये है।

भावार्थः—वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और प्रयोग की विधि से युक्त कृमि नाशक अग्नि गुणों वाली ओषधि इस शरीर से रोग को दूर करे। जो दुर्णामा नामक और अमीवा नामक रोगजन्तु हे स्त्रि ! तेरे गर्भ और गर्भस्थान में स्थान किये है उसे यह आग्नेय ओषधि दूर करे ॥१॥

यस्ते गर्भममींवा दुर्णामा योनिंमाशयें।
अग्निष्टं ब्रह्मंणा सह निष्क्रव्यादंमनीनशत् ॥२॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ और (**योनिम्**) योनि में (**यः**) जो (**अमीवा**) अमीवा कृमि और (**दुर्णामा**) दुर्णामा कृमि (**आशये**) स्थित है (**अग्निः**) यह आग्नेय ओषधि (**ब्रह्मणा**) वेद प्रतिपादित प्रयोग के (**सह**) साथ (**तम्**) उस (**क्रव्यादम्**) कच्चा मांस खाने वाले जन्तु का (**निः**) निःशेषरूप से (**अनीनशत्**) नाश करे।

भावार्थः—हे स्त्री ! तेरे गर्भ और गर्भस्थान में जो अमीवा नामक और दुर्णामा नामक जन्तु स्थित है यह आग्नेय ओषधि वेदप्रतिपादित प्रयोग के साथ उस कच्चे मांस खाने वाले का निःशेषरूप से नाश करे ॥२॥

यस्ते हन्ति पतयंन्तं निषत्स्नुं यः संरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो (**ते**) तेरे गर्भाशय में रेतस् रूप में (**पतयन्तम्**) जाते हुए का (**हन्ति**) नाश करता है, (**यः**) जो (**निषत्स्नुम्**) स्थित होते हुए गर्भ को नष्ट करता है, (**यः**) जो (**सरीसृपम्**) सर्पणशील गर्भ को नष्ट करता है, (**ते**) तेरे (**जातम्**) गर्भस्थ शिशु को (**यः**) जो (**जिघांसति**) मार देता है, (**तम्**) उसको (**इतः**) इसमें से (**नाशयामसि**) मैं वैद्य नष्ट करता हूँ।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो तेरे गर्भाशय में जाते रेतस् को नष्ट करता है, जो गर्भरूप में स्थित वीर्य को नष्ट करता है, जो चलते हुए गर्भ को नष्ट करता है, जो गर्भाशय में बढ़े हुए शिशु को गर्भ में ही नष्ट कर देता है उसको यहाँ से नष्ट करता हूँ ॥३॥

यस्तं ऊरू विहरंत्यन्तरा दम्पंती शयें।
योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि ॥४॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो (**ते**) तेरे (**ऊरु**) जंघों के बीच में (**विहरति**) घूमता है, तथा (**दम्पती**) पति और पत्नी में किसी एक के (**अन्तरा**) अन्दर देह में (**शये**) रहता है तथा (**यः**) जो (**ते**) तेरी (**योनिम्**) योनि के (**अन्तरा**) अन्दर रह कर (**आरेढि**) गर्भ को चाट जाता है (**तम्**) उसको (**इतः**) यहां से (**नाशयामसि**) दूर करे।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो तेरी जांघों के मध्य में रहता है तथा पति-पत्नी में किसी एक के शरीर में रहता है और जो तेरी योनि के अन्दर रहकर गर्भ को चाट जाता है उसको हम यहां से नष्ट करते हैं ॥४॥

यस्त्वा भ्राता पतिंर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यंते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नांशयामसि ॥५॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो जन्तु (**भ्राता**) भ्राता होकर, (**पतिः**) पति (**भूत्वा**) होकर अथवा (**जारः**) जार (**भूत्वा**) होकर (**त्वा**) तुझे (**निपद्यते**) प्राप्त होता है (**यः**) जो (**ते**) तेरी (**प्रजाम्**) सन्तति को (**जिघांसति**) नष्ट करता है (**तम्**) उसको (**इतः**) यहां से (**नाशयामसि**) हम वैद्यजन नष्ट करते हैं।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो जन्तु भ्राता, पति और जार होकर तुम्हें प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तति को नष्ट करता है उसको हम वैद्यजन यहां से नष्ट करते हैं ॥५॥

यस्त्वा स्वप्नेंन तमंसा मोहयित्वा निपद्यंते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नांशयामसि ॥६॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो जन्तु (**स्वप्नेन तमसा**) स्वप्नावस्था की निद्रा से (**त्वा**) तुझे (**मोहयित्वा**) मूढ करके (**निपद्यते**) प्राप्त होता है तथा

(**ते**) तेरी (**प्रजाम्**) सन्तति को (**यः**) जो (**जिघांसति**) नष्ट करता है (**तम्**) उसको (**इत**) यहां से (**नाशयामसि**) हम वैद्यजन नष्ट करते हैं ।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो स्वप्न की निद्रा से मुग्ध करके तुझे प्राप्त होता है और तुम्हारी सन्तति को नष्ट करता है उसको हम वैद्य जन यहां से नष्ट करते हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसो बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त-१६३

ऋषिः -१—६ विवृहा काश्यपः ॥ देवता —यक्ष्मघ्नम् ॥ छन्दः – १, ६ अनुष्टुप् । २—५ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

पदार्थः—मैं वैद्य (**ते**) तेरी (**अक्षिभ्याम्**) आंखो से (**यक्ष्मम्**) रोग को (**अधि वि वृहामि**) दूर करता हूँ, (**ते नासिकाभ्याम्**) तेरी नासिका से, (**ते कर्णाभ्याम्**) तेरे कानों से और (**छुबुकादधि**) ठोडी से रोग को दूर करता हूं, (**शीर्षण्यम्**) शिर में बैठे (**यक्ष्मम्**) रोग को (**मस्तिष्काद्**) मस्तिष्क और (**ते**) तेरी (**जिह्वायाः**) जीभ से (**वि वृहामि**) हटाता हूं ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! मैं वैद्य तेरी आंखों, नासिका, कानों और ठोड़ी से रोग को दूर करता हूं । जो शीर्षस्थ रोग है उसे भी मस्तिष्क और तेरी जिह्वा से दूर करता हूं ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

पदार्थः—हे रोगिन् ! (**ग्रीवाभ्यः**) गर्दन की नाड़ियों से (**उष्णिहाभ्यः**) ऊपर जाने वाली धमनियों से (**कीकसाभ्यः**) हड्डियों से तथा (**अनूक्याद्**) संधिभाग से रोग को दूर करता हूं, (**दोषण्यम्**) बाहुओं में बैठे (**यक्ष्मम्**) यक्ष्म रोग को (**ते**) तेरे (**अंसाभ्याम्**) कन्धों और (**बाहुभ्याम्**) बाहुओं से (**वि वृहामि**) निकालता हूं ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! तेरी गर्दन की नाड़ियों, ऊर्ध्व धमनियों, हड्डियों और संधि से रोग को दूर करता हूं । तथा हाथों में स्थित यक्ष्म को कन्धों से और बाहुओं से दूर करता हूं ॥२॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥

पदार्थः—हे रोगिन् ! (**ते**) तेरी (**आन्त्रेभ्यः**) आंतों से (**गुदाभ्यः**) गुदाओं से, (**वनिष्ठोः**) स्थूल आंत से (**हृदयाद् अधि**) हृदय से, (**ते**) तेरे (**मतस्नाभ्याम्**) दोनों गुर्दों से (**यक्नः**) यकृत् से (**प्लाशिभ्यः**) तिल्ली आदि से (**यक्ष्मम्**) रोग को (**वि वृहामि**) दूर करता हूं ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! तेरी आंतों, गुदाओं, स्थूल आंत हृदय, दोनों गुर्दों, यकृत् और तिल्ली आदि यन्त्रों से यक्ष्म को दूर करता हूं ॥४॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥४॥

पदार्थः—(**ते**) तेरी (**उरुभ्याम्**) जंघाओं से, (**अष्ठीवद्भ्याम्**) विशेष अस्थि वाले गोडों से, (**पार्ष्णिभ्याम्**) एडियों से, (**प्रपदाभ्यां**) पंजों से, (**श्रोणिभ्याम्**) नितम्ब भागों से (**भासदाद्**) कटिभाग स्थित (**भंससः**) उपस्थ प्रदेश से (**यक्ष्मम्**) रोग को (**वि वृहामि**) दूर करता हूं ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! तेरी जंघाओं, विशेष अस्थि वाले गोड़ों, एड़ियों, पंजों, नितम्बभागों,कटिभागस्थ उगस्थ प्रदेश से रोग को दूर करता हूं ॥४॥

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥

पदार्थः—(**वनंकरणाद्**) मूत्र पैदा करने वाले (**मेहनाद्**) मूत्रेन्द्रिय से, (**लोमभ्यः**) लोमों से (**ते**) तेरे (**नखेभ्यः**) नखों से (**ते**) तेरे (**सर्वस्माद्**) सारे

(**आत्मनः**) शरीर से (**ते**) तेरे (**तम्**) उस (**इदम्**) इस यक्ष्म को (**वि वृहामि**) दूर करता हूं ।

भावार्थः—मूत्र लाने वाले मूत्रेन्द्रिय, लोमों, नखों और समस्त शरीर से इस यक्ष्म रोग को दूर करता हूं ॥५॥

अङ्गा॑दङ्गा॒ल्लोम्नो॑लोम्नो जा॒तं पर्व॑णिपर्वणि ।
यक्ष्मं॒ सर्व॑स्मादा॒त्मन॒स्तमि॒दं वि वृ॑हामि ते ॥६॥

पदार्थः—(**अंगात् अंगात्**) अङ्ग-अङ्ग से, (**लोम्नः लोम्नः**) लोम लोम से, और (**पर्वणि पर्वणि**) पोर पोर में (**जातम्**) पैदा हुए (**तम् इदम्**) उस इस (**यक्ष्मम्**) यक्ष्मा को (**सर्वस्मात् आत्मनः**) समस्त देह से (**वि वृहामि**) दूर करता हूं ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! अङ्ग-अङ्ग से, लोम-लोम से, पोर-पोर में उत्पन्न उस यक्ष्म को समस्त शरीर से दूर करता हूं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तरेसठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त १६४

ऋषिः–१—५ प्रचेताः ॥ देवता–दुःस्वप्नघ्नम् ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् ।
२ अनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ३ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ५ पङ्क्ति ॥
स्वरः—१, २, ४ गान्धारः । ३ धैवतः । ५ पञ्चमः ॥

अपे॑हि मनसस्प॒तेऽप॑ क्राम प॒रश्च॑र ।
प॒रो निर्ऋ॑त्या॒ आ च॑क्ष्व बहु॒धा जीव॑तो॒ मनः॑ ॥१॥

पदार्थः—(**मनसः पते**) मनको गिराने वाला पाप संकल्प (**अप इहि**) दूर हो, (**अपक्राम**) परे हो जावे, (**परः चर**) परे भाग जावे, (**परः**) दूर की (**निर्ऋत्याः**) विपत्ति के विषय में (**आचक्ष्व**) बतावे (**जीवतः**) जीते हुए का (**मनः**) मन (**बहुधा**) बहुत प्रकार का होता है ।

भावार्थः—मनको गिराने वाला पाप संकल्प दूर हो, परे जावे, दूर भाग जावे । दूर की विपत्ति के विषय में बतावे । जीवित का मन बहुत प्रकार का बहु वृत्तियों वाला होता है ॥१॥

भ॒द्रं वै वरं॑ वृणते भ॒द्रं॑ युञ्जन्ति॒ दक्षि॑णम् ।
भ॒द्रं॑ वैवस्व॒ते चक्षु॑र्बहु॒त्रा जीव॑तो॒ मनः॑ ॥२॥

पदार्थः—लोग (**भद्रम्**) शोभन (**वै**) ही (**वरम्**) वरणीय फल को (**वृणते**) चाहते हैं, (**दक्षिणम्**) वृद्धियुक्त (**भद्रम्**) शोभन फल ही (**युञ्जन्ति**) प्राप्त करते हैं, (**वैवस्वते**) विविध प्राणियों के स्वामी परमेश्वर के लिये (**चक्षुः**) दृष्टि (**भद्रम्**) शोभन हो (**जीवतः**) जीवित प्राणी का (**मनः**) मन (**बहुत्रा**) बहुत विषयों में जाने वाला होता है ।

भावार्थः—शोभन एवम् बरणीय फल को ही लोग चाहते हैं, वृद्धियुक्त शोभन फल को प्राप्त करते हैं । विविध प्राणियों के स्वामी परमेश्वर के लिए हमारी दृष्टि शोभन हो । जीवित प्राणी का मन बहुत विषयों में जाने वाला होता है ॥२॥

य॒दा॒शसा॑ नि॒ःशसा॑भि॒शसो॑पारि॒म जाग्र॑तो॒ यत्स्व॒पन्तः॑ ।
अ॒ग्निर्विश्वा॒न्यप॑ दुष्कृ॒तान्यजु॑ष्टान्या॒रे अ॒स्मद्द॑धातु ॥३॥

पदार्थः—(**यत्**) जिस बुराई को हम (**आशसा**) इच्छापूर्वक, (**निःशसा**) निराशा से अर्थात् इच्छा के विपरीत, (**अभिशसा**) चाहते हुए (**उपारिम**) प्राप्त करते हैं, (**यत्**) जिस बुराई को हम (**जाग्रतः**) जागते हुए अथवा (**स्वपन्तः**) सोते हुए प्राप्त करते हैं, (**अग्निः**) स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर अथवा विद्वान् (**अजुष्टानि**) न सेवनीय अथवा न सेवित की गई (**विश्वा**) समस्त (**दुष्कृतानि**) बुराइयों को (**अस्मत्**) हमसे (**आरे**) दूर (**अपदधातु**) रखे ।

भावार्थः—हम इच्छापूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक, अथवा वार-वार चाह करके जो बुराई प्राप्त करते हैं, जो सोते हुए और जागते हुए प्राप्त करते हैं ऐसी समस्त असेवनीय एवम् न की गई हुई भविष्य में होने वाली बुराइयों को परमेश्वर और विद्वान् हमसे दूर रखें ॥३॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥४॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हे (**ब्रह्मणस्पते**) वेद और महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! (**यत्**) जो हम (**अभि द्रोहम्**) द्रोह का आचरण (**चरामसि**) करें तो (**प्रचेताः**) प्रकृष्टचेताः (**आंगिरसः**) तपस्वी पुरुष (**द्विषताम्**) अन्तः और बाह्य शत्रुओं के (**अंहसः**) पाप से (**नः**) हमें (**पातु**) बचावे ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हे वेद और ब्रह्माण्ड के स्वामिन् जो! हम द्रोह का आचरण करें तो प्रकृष्टचेता तपस्वी पुरुष हमें उससे और आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं के पाप से बचावें ॥४॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं
स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥

पदार्थः—(**अद्य अजैष्म**) हमने आज बुराइयों पर विजय प्राप्त कर लिया है, (**वयम्**) हमने (**अद्य**) आज (**असनाम**) प्राप्त करने योग्य को प्राप्त कर लिया, (**वयम्**) हम (**अद्य**) आज (**अनागसः**) निष्पाप (**अभूम**) हो गए हैं (**जाग्रत्स्वप्नः**) जागते और सोते समय का (**पापः**) पाप (**संकल्पः**) संकल्प (**यम्**) जिससे (**द्विष्मः**) द्वेष करते हैं (**तम्**) उसको (**सः**) वह (**ऋच्छतु**) प्राप्त होवे, अर्थात् जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन बुराइयों को प्राप्त होवे, (**यः**) जो (**नः**) हमसे (**द्वेष्टि**) द्वेष करता है (**तम्**) उसको (**सः**) वह (**ऋच्छतु**) प्राप्त होवे ।

भावार्थः—आज हमने बुराइयों पर विजय प्राप्त किया है, हमने प्राप्त करने योग्य को प्राप्त कर लिया है, हम निष्पाप हो गए हैं, जाग्रत और सोने के समय का पाप संकल्प जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हम से द्वेष करते हैं उन बुराइयों और पापों को ही प्राप्त हो ॥५॥

यह दशम मण्डल में एक सौ चौंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १६५

ऋषिः—१—५ कपोतो नैर्ऋतः ॥ देवता—कपोतापहतो प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम् ॥ छन्दः—१ स्वराट्त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

पदार्थः—हे (**देवाः**) विद्वान् लोगो ! (**निर्ऋत्याः**) परभूमि वा परदेश का (**दूतः**) सन्देशहर (**कपोतः**) कबूतर (**इषितः**) भेजा हुआ (**यत्**) जो वस्तु (**इच्छत्**) चाहता हुआ (**इदम्**) इस स्थान पर (**आजगाम**) आता है तो (**अस्मै**) इसका (**अर्चाम**) हम आदर करें (**निष्कृतिम्**) उसके श्रम का परिमार्जन करें, (**नः**) हमारे (**द्विपदे**) दो पांव वालों के लिए (**शम्**) सुख (**अस्तु**) हो, तथा (**चतुष्पदे**) चार पांवों वाले को (**शम्**) सुख (**अस्तु**) अस्तु हो ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! दूरदेश से सन्देश लेकर भेजा हुआ कबूतर जब इस हमारे स्थान पर आता है तब हम उसका आदर करते हैं और उसके श्रम को हटाते हैं । हमारे मनुष्यों और पशुओं का कल्याण हो ॥१॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२॥

पदार्थः—(**इषितः**) दूसरे देश से भेजा हुआ (**कपोतः**) कबूतर (**नः**) हमारे लिए (**शिवः**) कल्याणकारक (**अस्तु**) हो (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**नः**) हमारे (**गृहेषु**) घरों में वह (**अनागाः**) निरपराध हो (**अग्निः हि**) प्रकाशमान राष्ट्रनेता (**नः**) हमारे सम्बन्धी अथवा हम से दी गई (**हविः**) भोग सामग्री को (**जुषताम्**) सेवन वा स्वीकार करें (**पक्षिणी**) पक्षों वाली शस्त्रधारिणी (**हेतिः**) सेना (**नः**) हमें आक्रमण से छोड़ रखें ।

भावार्थः—दूसरे देश से सन्देश लेकर भेजा हुआ कबूतर हम सब प्रजा के लिए कल्याणकारी हो . हे विद्वानो ! हमारे गृहों में वह निरपराध हो अर्थात् उसका अनादर न हो । राष्ट्र का नेता हमारे द्वारा प्रदत्त कर आदि को ग्रहण करे । पक्षों वाली सशस्त्र सेना का हग पर आक्रमण न हो ॥२॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥३॥

पदार्थः हे (**देवाः**) विद्वान् लोगो ! (**पक्षिणी**) पक्षों वाली सशस्त्र (**हेतिः**) सेना (**अस्मान्**) हमें (**न**) नहीं (**दभाति**) मारे, वह कपोत (**आष्ट्र्याम्**) जंगल में (**अग्निधाने**) अग्नि के पात्र में (**पदम्**) पैर को (**कृणुते**) डाले (**च**) और (**नः**) हमारी (**गोभ्यः**) गायों (**च**) और (**पुरुषेभ्यः**) पुरुषों के लिए (**शम्**) कल्याण (**अस्तु**) होवे, (**इह**) हमारे स्थान में (**कपोतः**) यह कबूतर (**नः**) हमें (**मा**) न (**हिंसीत्**) मारे।

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! पक्षों वाली सेना हमें न मारे । कबूतर महा जंगल में निर्जन प्रदेश में पात्र में अपना पैर डाले, हमारे स्थानों में नहीं । हमारी गायों, हमारे मनुष्यों के लिए सुख हो । हमारे स्थान में कबूतर हमें न मारें ॥३॥

यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**उलूकः**) घूक नाम अथवा दोष नाम का पक्षी (**अमोघम्**) अशोभन (**वदति**) बोलता है, (**यत्**) जब (**कपोतः**) कबूतर (**पादम्**) अपने पैर को (**अग्नौ**) अग्नि में विना कारण (**कृणोति**) डालता है तो (**प्रहितः**) प्रेषित (**एषः**) यह कबूतर (**यस्य**) जिसकी (**दूतः**) सूचना देने वाला है (**तस्मै**) उस (**यमाय**) सबको नियन्त्रण में रखने वाले (**मृत्यवे**) मृत्यु के लिए (**एतत्**) यह (**नमः**) नमन (**अस्तु**) होता है।

भावार्थः—जब घूक नाम का पक्षी किसी बीमार को देखकर अशोभन वाणी बोलता है और जब कबूतर विना किसी अन्य कारण के अपने पैर को आग डालता है तो उस समय वह रुग्ण की मृत्यु की सूचना देता है और रुग्ण की मृत्यु सम्भव है ॥४॥

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥५॥

पदार्थ—(**देवाः**) हे विद्वानो ! (**प्रणोदम्**) दूर देश में सन्देश लेकर

भेजने योग्य (**कपोतम्**) कबूतर को (**ऋचा**) वाणी और शिक्षण से (**नुदत**) प्रेरित वा शिक्षित करो, (**इषम्**) अन्न से (**मदन्तः**) उसे प्रसन्न वा तृप्त रखते हुए (**गाम्**) वाणी=सन्देश को (**परि नयध्वम्**) चारों तरफ पहुँचाओ, इस सम्बन्ध में (**विश्वा**) समस्त (**दुरितानि**) विघ्नों को (**संयोपयन्तः**) दूर करते हुए हम सावधान रहें, (**पतिष्ठः**) अत्यन्त उड़ने वाला वह कपोत (**नः**) हमारे (**ऊर्जम्**) अन्न को (**हित्वा**) न खाकर अर्थात् छोड़कर (**प्रपतात्**) उड़ता रहे ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! दूर देश में सन्देश लेकर भेजने योग्य कबूतर को वाणी और शिक्षण से प्रेरित और शिक्षित करो । अन्न से उसे तृप्त रखो और सन्देश को चारों तरफ पहुँचाओ । इस सम्बन्ध में समस्त विघ्नों को निवारण करते हुए सावधान रहो । उड़ने वाला वह कपोत हमारे अन्न को छोड़कर उड़ता रहे ॥५॥

सूचनाः—इस सूक्त में प्रथम, द्वितीय मन्त्र में कबूतर पक्षी के सन्देश भेजने का और उसके स्वभाव का वर्णन है । तीसरे और चौथे मन्त्र में यह बताया गया है कि इस कबूतर और घूक पक्षी अथवा उल्लू को मौत का परिज्ञान होता है । पांचवें मन्त्र में उसे शिक्षित करने, सन्देश भेजने और विघ्नों से सावधान रहने को कहा गया है । अपने पक्षीय जनों के अन्न-सत्कार को जहां स्वीकार किया गया है वहां पांचवें मन्त्र में बताया गया है कि सन्देशहर कबूतर अन्न का परित्याग करके उड़ता रहे । कारण यह है कि कोई विषयुक्त वस्तु प्रदान करके मार दे अथवा वह कबूतर ही अन्न का लोभी बनकर वश में हो जावे ।

यह दशम मण्डल में एक सो पंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१६६

ऋषिः—१—५ ऋषभो वैराजः शाक्वरो वा ॥ देवता—सपत्नघ्नम् ॥
छन्दः—१, २ अनुष्टुप् । ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ महापङ्क्तिः ॥
स्वरः—१—४ गान्धारः । ५ पञ्चमः ॥

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१॥

पदार्थः—हे प्रभो ! तू (**मा**) मुझे (**समानानाम्**) समान लोगों में (**ऋषभम्**) श्रेष्ठ (**सपत्नानाम्**) शत्रुओं का (**विषासहिम्**) नाश करने वाला (**शत्रूणाम्**) दुश्मनों का (**हन्तारम्**) हन्ता (**गवाम्**) गायों का (**गोपतिम्**) स्वामी तथा (**विराजम्**) विशेष दीप्तिमान् (**कृधि**) बना ।

भावार्थः—हे प्रभो ! तू मुझे समानों में श्रेष्ठ, विरोधियों का नाश करने वाला, शत्रुओं का हन्ता, गौओं का स्वामी और विशेष दीप्तिमान् बना ।।१।।

अहमस्मि सपत्नहेन्द्रइवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ।।२।।

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**इन्द्रः इव**) राजा के समान (**अरिष्टः**) अपीडित (**अक्षतः**) अविनष्ट होकर (**सपत्नहा**) शत्रु का नाश करने वाला (**अस्मि**) हूँ, (**इमे**) ये ((**सर्वे**) सभी (**सपत्नाः**) शत्रु (**अभिष्ठिताः**) मेरे सम्मुख खड़े हुए भी (**मे**) मेरे (**पदोः**) पैरों के (**अधः**) नीचे हैं ।

भावार्थः—मैं राजा के समान अपीड़ित और अक्षत होकर शत्रुहन्ता हूँ । ये सारे शत्रु जो सामने खड़े हैं मुझ वीर के पैर के नीचे हैं ।।२।।

अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नीइव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ।।३।।

पदार्थः—(**ज्यया**) डोरी से धनुष् की (**उभे**) दोनों (**आर्त्नी**) किनारों के समान हे शत्रुओ ! (**वः**) तुम्हें (**अपि**) भी (**अत्र एव**) यहीं पर (**नह्यामि**) बाँधता हूँ, (**वाचस्पते**) हे वाणी के पालक विद्वन् ! (**इमान्**) इन्हें (**निषेध**) बांध (**यथा**) जिससे (**मत्**) मुझसे (**अधरम्**) नीचे होकर अर्थात् दबकर (**वदान्**) बोलें ।

भावार्थः—जिस प्रकार डोरी से धनुष् के दोनों किनारों को बांधा जाता है उसी प्रकार मैं यहां पर ही रस्सी से हे शत्रुओ ! तुम्हें बांधता हूं । हे विद्वन् ! इन्हें रोको, मेरे नीचे दबे हुए होकर बोलें ।।३।।

अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ।।४।।

पदार्थः—हे शत्रुओ ! (**अभिभूः**) तुम सबका अभिभव करने वाला (**अहम्**) मैं (**विश्वकर्मेण**) सभी कार्यों में क्षम (**धाम्ना**) धारक तेज के साथ (**आगमम्**) आया हूं, अतः (**वः**) तुम्हारे (**चित्तम्**) मन को (**आ ददे**) ग्रहण करता हूं, (**वः**) तुम्हारे (**व्रतम्**) कर्म=पराक्रम को (**आददे**) हरण करता हूं, (**वः**) तुम्हारे (**समितिम्**) संघ को (**अहम्**) मैं (**आददे**) हरण करता हूं ।

भावार्थः—हे शत्रुओ ! तुम सबका अभिभव करने वाला मैं सब कार्यों में क्षम तेज के साथ तुम्हारे समक्ष आ गया हूं । तुम्हारे मन, तुम्हारे पराक्रम और संघ का मैं हरण करता हूं ।।४।।

योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूकाइवोदकान्मण्डूका उदकादिव ।।५।।

पदार्थ—हे शत्रुओ ! (**वः**) तुमसे सम्बन्ध रखने वाले (**योगक्षेमम्**) योग और क्षेम [अप्राप्त की प्राप्ति का नाम योग है और प्राप्त की रक्षा का नाम क्षेम है] को (**आदाय**) हरण करके (**अहम्**) मैं (**उत्तमः**) उत्तम (**भूयासम्**) बनूँगा (**वः**) तुम्हारे (**मूर्धानम्**) मस्तक पर (**आ अक्रमीम्**) सवार होऊँगा, अनन्तर (**मे**) मेरे (**अधः पदात्**) पैर के नीचे वर्तमान तुम लोग (**उदकात्**) जल से (**मण्डूकाः इव**) मेंढक के समान और (**उदकात्**) जल से (**मण्डूकाः इव**) डूबते हुए के समान (**उद् वदत**) बोलोगे ।

भावार्थः—हे शत्रुओ तुम्हारे सम्वन्धी योगक्षेम का तुम से हरण करके मैं उत्तम होऊँगा और तुम्हारे शिर पर सवार होऊँगा । अनन्तर मेरे पैर के नीचे होकर तुम उसी प्रकार बोलोगे जिस प्रकार जल में पड़े मेंढक बोलते हैं अथवा जल में डूबता हुआ मनुष्य बोलता है ।।५।।

यह दशम मण्डल में एक सौ छयासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१६७

ऋषिः— १—४ विश्वामित्रजमदग्नी ॥ देवता—१, २, ४ इन्द्र. । ३
लिङ्गोक्ताः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड्जगती । २, ४ विराड्जगती ।
३ जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र तुभ्यम**) इस इन्द्र=सूर्य के लिए (**इदम**) यह सोम आदि मधुर रस और मधुर (**सिच्यते**) यज्ञाग्नि में सींचा जाता है । (**त्वम्**)) यह ही (**सुतस्य**) उत्पन्न (**कलशस्य**) लोक का (**राजसि**) प्रकाश करता है, (**त्वम्**) यह (**ना**) हमारे लिए (**पुरुवीराम्**) बहुत सन्ततियुक्त (**रयिम्**) धन को (**कृधि**) करता है, देता है, (**त्वम्**) यह (**तपः**) ताप से (**परितप्य**) तपाकर (**स्वः**) अन्तरिक्ष को (**अजयः**) जीतता है=प्रकाशमान करता है ।

भावार्थः—इस सूर्य के लिए यह सोम आदि मधुर रस और मधु यज्ञाग्नि में सिक्त किया जाता है । यह ही उत्पन्न जगत् को प्रकाशमान करता है । यह हमारे लिए बहुत सन्तानों से युक्त धन को देता है । यह ताप से तपाकर अन्तरिक्ष को प्रकाशमान करता है ॥१॥

स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥२॥

पदार्थः—(**स्वर्जितम्**) स्वर्ग के जेता, (**महि**) महान् (**अन्धसः**) सोम के (**मन्दानम्**) तृप्त करने वाले (**शक्रम्**) शक्तिशाली (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**सुतात्**) तैयार किये गए (**सोमान्**) सोम आदि रसों के (**उप**) प्रति (**परिहवामहे**) हम यज्ञ द्वारा संपर्क में लाते हैं यह सूर्य (**इमम्**) इस (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**इह**) इस प्रदेश में (**आगहि**) प्राप्त होता है और (**बोधिः**) जाना जाता है, (**स्पृधः**) स्पर्धाकारी हिंसक जन्तुओं को (**जयन्तम्**) दबाने वाले (**मघवानम्**) धनों के स्वामी सूर्य को (**ईमहे**) ज्ञान में प्राप्त कर धारण करते हैं ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष को प्रकाशमान कर समस्त प्रकाशक ग्रहों को जीतने वाले, सोमलता और गिलोय आदि को रस देकर तृप्त करने वाले सूर्य को तैयार किये गए सोम आदि रसों के प्रति हम यज्ञ द्वारा सम्पर्क में लाते हैं । वह हमारे यज्ञ को इस पृथिवी पर प्राप्त होता है और लोगों के द्वारा अपने गुणों और कर्मों से जाना जाता है । हिंसक जन्तुओं को दबाने वाले और धनों के स्वामी सूर्य को हम अपने ज्ञान में प्राप्त करते और धारण करते हैं ॥२॥

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥३॥

पदार्थ—(**राज्ञः**) राजमान (**सोमस्य**) सोमतत्त्व=आर्द्रता एवम् स्निग्धता (**वरुणस्य**) वायु के (**धर्मणि**) धर्म=धारक स्वभाव में (**बृहस्पतेः**) अग्नि के (**अनुमत्याः**) अनुकूलता (**शर्मणि**) स्थान=यज्ञगृह में वर्तमान (**अहम**) मैं यजमान (**अद्य**) आज (**मघवन् तव**)धनों के स्वामी इस सूर्य के (**उपस्तुतो**) प्रशंसावचन में प्रवृत्त होता हूँ, (**धातः**) सबका धारक सम्वत्सर (**विधातः**) सबका कर्ता सविता (**कलशान्**) विविध रसों से युक्त पदार्थों का (**अभक्षयम**) भक्षण = भोग कराते हैं ।

भावार्थ—राजमान सोमतत्त्व, एवम् वायु के धर्म में अग्नि द्वारा होने वाले यज्ञ के गृह में वर्तमान मैं सूर्य के प्रशंसा वचन में प्रवृत्त होता हूं । सब का धारक सम्वत्सर और सविता=रसदायक प्रातःकालिक सूर्य मुझे विविध रसों वाले पदार्थों का भोग कराते हैं ॥३॥

प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वामित्र जमदग्नी**) हे सब के मित्र और तपस्वीजन ! (**यदि**) जब भी मैं (**वाम् प्रति**) आप की तरफ (**आगमम्**) आऊँ तो (**सातेन**) सेवनीय ज्ञान से (**सुते**) परिष्कृत आत्मा में (**प्रथमः**) प्रथम (**सूरिः**) विद्वान् (**सन्**) हुआ (**इमम्**) इस (**स्तोमम्**) वेदस्तोम का (**उन्मृजे**) परिशोधन करूँ (**चरौ**) वरणीय मार्ग में (**प्रसूतः**) प्रेरित किया गया (**भक्षम्**) भोग का (**अकरम्**) भोक्ता बनूं ।

भावार्थः—हे सबके मित्र विद्वन् और तपस्वी पुरुष ! यदि जब भी मैं आप के प्रति आऊँ तो सेवनीय ज्ञान से परिष्कृत आत्मा में सबसे उत्तम विद्वान् होकर इस वेद ज्ञान का परिशीलन करूँ । तथा आचरणीय मार्ग में प्रेरित किया गया मैं भोग का भाग करूँ वा भोग का भोक्ता बनूं ॥४॥

यह दशम मण्डल में एक सौ सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१६८

ऋषिः–१–४ अनिलो वातायनः ॥ देवता–वायुः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१॥

पदार्थः—(**रथस्य**) रंहणशील अथवा रमणीय (**वातस्य**) वायु के (**महिमानम्**) महत्व को (**नु**) शीघ्र मैं वायुविद् बताता हूं, (**अस्य**) इसका (**घोषः**) शब्द (**स्तनयन्**) घरघराता हुआ (**रुजन्**) स्थावर जंगम को तोड़ता हुआ (**एति**) जाता है। (**दिविस्पृग्**) आकाश को छूता हुआ (**अरुणानि**) दिगन्तरों को लाल (**कृण्वन्**) करता हुआ (**याति**) बढ़ता और व्याप्त होता है, (**उता**) और (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**रेणुम**) पास वा धूलि को (**अस्यन्**) फेंकता हुआ (**एति**) चलता है।

भावार्थः—रंहणशील इस वायु के महत्व को मैं वायुविद् शीघ्र बताता हूं। इसका शब्द घरघराता हुआ जड़-जंगम को तोड़ता हुआ जाता है। आकाश को छूता हुआ, दिशाओं को लाल करता हुआ व्याप्त होता है। तथा पृथिवी की धूलि को बिखेरता और उड़ाता हुआ चलता है ।।१।।

सम्प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥२॥

पदार्थः—(**विष्ठाः**) विशेषरूप से स्थित वृक्ष आदि (**वातस्य**) वायु के (**अनु**) अनुरूप ही (**सं प्र ईरते**) जाते हैं (**समनम्**) संग्राम के (**न**) समान (**योषाः**) बिजलियां (**एनम्**) इसको (**आगच्छन्ति**) प्राप्त होती हैं (**ताभिः**) उन विद्युतों से (**सयुक्**) संयुक्त हुआ (**अस्य**) इस (**विश्वस्य**) समस्त (**भुवनस्य**) भुवन का (**राजा**) राजा (**देवः**) देवनशील वायु (**सरथम्**) रंहण के साथ (**ईयते**) जाता है।

भावार्थः—विशेष रूप से स्थित वृक्ष आदि पदार्थ वायु की दिशा के अनुकूल ही भूमते हैं। संग्राम में जाने वाले अश्वों के समान योषा=बिजलियां इसको प्राप्त होती हैं। इन बिजलियों से संयुक्त हुआ यह इस समस्त भुवनों का राजा देवनशील वायु रंहण=वेग के साथ बहता है ।।२।।

अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥३॥

पदार्थः—(**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में विद्यमान (**पथिभिः**) मार्गों से (**ईयमानः**) चलता हुआ यह वायु (**कतमत् चन**) किसी भी (**अहः**) दिन (**न**) नहीं (**निविशते**) रुकता है, सदा ही बहता है, (**अपाम्**) उदकों का (**सखा**) सखा (**प्रथमजा**) प्रथमोत्पन्न (**ऋतावा**) सत्यभूत यह वायु (**क्व स्वित् जातः**) कहां से पैदा हुआ और (**कुतः**) कहां से अथवा किस प्रकार (**आ बभूव**) इस जगत् को व्याप्त कर रहा है।

भावार्थः—अन्तरिक्ष में विद्यमान मार्गों से चलता हुआ यह वायु किसी भी दिन बैठता नहीं। सदा ही बहता रहता है। जलों का सखा प्रथमोत्पन्न सत्यभूत यह वायु कहां से पैदा हुआ और कहां से तथा किस प्रकार इस जगत् को व्याप्त कर रहा है ।।३।।

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) समस्त इन्द्र आदि देवों का आत्मा, (**भुवनस्य**) लोक का (**गर्भः**) धारक (**देवः**) देवनशील (**एषः**) यह वायु (**यथावशम्**) यथेच्छ=विना रोक टोक (**चरति**) विचरता है, (**अस्य**) इसके (**घोषाः**) शब्द (**इत्**) ही (**शृण्विरे**) सुनाई पड़ते हैं (**रूपम्**) स्वरूप (**न**) नहीं दिखाई पड़ता है क्योंकि रूपरहित है, (**तस्मै**) उस (**वाताय**) वायु के लिए (**हविषा**) हवि आदि से हम (**विधेम**) यज्ञ करें।

भावार्थः—देवों का आत्मा लोक का धारक देवनशील यह वायु विना रोक-टोक बहता है। इसके शब्द सुनाई देते हैं, पर रूपरहित होने से स्वरूप नहीं देखा जाता है। इस वायु के लिए हम हवि आदि से यज्ञ करें ।।४।।

यह दशम मण्डल में एकसौ अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १६९

ऋषिः—१—४ शबरः काक्षीवतः ॥ देवता —गावः ॥ छन्दः —१ विराट्-त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥

पदार्थः—(**मयोभूः**) सुखद (**वातः**) वायु (**अभि वातु**) चारों तरफ से बहें, (**उस्राः**) गोयें (**ऊर्जस्वती**) रसयुक्त (**ओषधीः**) ओषधियों को (**आ रिशन्ताम्**) सब ओर चरें, तथा (**जीवधन्याः**) जीवों के लिए प्यारे (**पीवस्वती**) प्रवृद्ध जलों को (**पिबन्तु**) पीयें (**रुद्र**) हे परमेश्वर (**अवसाय**) खाने योग्य दुग्ध आदि पदार्थ के लिए (**पद्वते**) पैर वाले गौ आदि पशु के लिए (**मृड**) दया करें।

भावार्थः—सब तरफ से सुखद हवायें बहें। गायें रसों से पूर्ण ओषधियों को चरें और बढ़े हुए जीवों के लिए प्रियकर जलों को पीयें। हे परमेश्वर खाने योग्य दुग्ध आदि पदार्थों को देने के लिए गौ आदि पशुओं के ऊपर दया करें ॥१॥

याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२॥

पदार्थः—(**याः**) जो गायें (**सरूपा**) समान रंग की हैं, जो (**विरूपाः**) विभिन्न वर्णों वाली हैं, जो (**एकरूपाः**) एक वर्ण की हैं, (**यासाम्**) जिनके (**नामानि**) नाम इडा, रन्ता और अदिति आदि को (**इष्टया**) इष्टि=याग आदि के कारण से जानकर (**अग्निः**) पुरोहित और आचार्य (**वेद**) जानता है (**याः**) जिन (**गाः**) गौओं को (**इह**) इस लोक में (**अंगिरसः**) तपस्वीजन (**तपसा**) तपसे (**चक्रुः**) पालन करते हैं (**पर्जन्यः**) यह मेघ (**ताभ्यः**) उनके लिये (**महि**) महत् (**शर्म**) सुख (**देहि**) देवें।

भावार्थः—जो गायें समान रंग की हैं, जो भिन्न-भिन्न रंग की हैं और जो एक ही रंग की हैं और जिन इडा, रन्ता, अदिति आदि नामों को आचार्य वा पुरोहित याग आदि के कारण जानते हैं, जिन गौओं को तपस्वीजन इस लोक में तप के साथ पालन करते हैं उन गौओं के लिए पर्जन्य=मेघ महत् सुख प्रदान करें ॥२॥

या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

पदार्थः—(**याः**) जो गौयें (**देवेषु**) यज्ञ देवों और विद्वानों के हेतु (**तन्वम्**) तनू से उत्पन्न होने वाले दुग्ध को (**ऐरयन्त**) देती हैं (**यासाम्**) जिनके (**विश्वा**) सब (**रूपांणि**) रूपों और प्रकारों को (**सोमः**) यजमान (**वेद**) जानता है, (**इन्द्र**) यह सूर्य (**अस्मभ्यम्**) हमें (**पयसा**) दुग्ध से (**पिन्वमानाः**) बढ़ाने वाली (**प्रजावती:**) बछड़े आदि से युक्त (**ताः**) उन गौओं को (**गोष्ठे**) गोशाला में (**रिरीहि**) प्राप्त करावे।

भावार्थ—जो गौएं यज्ञ देवों और विद्वानों के हेतु दुग्ध देती हैं, जिनके समस्त प्रकारों को यजमान जानता है उन बछड़े आदि से युक्त और हमें दूध से बढ़ाने वाली गौओं को सूर्य हमारे गोष्ठ में प्राप्त करावे ॥३॥

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥४॥

पदार्थः- (**प्रजापतिः**) प्रजा का पालक परमेश्वर (**मह्यम्**) मुझे (**एताः**) इन गौओं को (**रराणः**) प्रदान करता हुआ (**विश्वंदेवैः**) समस्त दिव्यशक्तियों और (**पितृभिः**) पालक किरणों आदि से (**संविदानः**) सम्बन्ध करता हुआ (**शिवाः**) कल्याणकारिणी (**सतीः**) होने वाली गौओं को (**नः**) हमारे (**गोष्ठम्**) गोशाले में (**आ अकः**) प्राप्त कराता है, (**तासाम्**) उनकी (**प्रजया**) सन्तति के साथ (**वयम्**) हम (**सं सदेम**) सुख पूर्वक रहें।

भावार्थः—प्रजा का पालक परमेश्वर मुझे इन गौओं को देता हुआ समस्त दिव्य शक्तियों और पालक ऋतु और किरणों आदि के साथ हमारा सम्बन्ध करता हुआ कल्याणकारिणी गौओं को हमारे गोशाले में प्राप्त कराता है। उन गौओं की सन्तति के साथ हम सुखपूर्वक रहें ॥४॥

यह दशम मण्डल में एक सौ उन्हत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१७०

ऋषिः—१—४ विभ्राट् सूर्यः ॥ **देवता**—सूर्यः ॥ **छन्दः**—१, ३ विराड्-
जगती । २ जगती । ४ आस्तारपङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—१—३ निषादः ।
४ पञ्चमः ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१॥

पदार्थः—(**विभ्राड्**) विभ्राजमान सूर्य (**बृहत्**) प्रौढ (**सुभृतम्**) सुपुष्ट (**सोम्यम्**) सोमयुक्त (**मधु**) मधुर रस और जल को (**पिबतु**) पीता है, (**यज्ञपतौ**) यजमान में (**अविहृतम्**) अकुटिल (**आयुः**) आयु को (**दधत्**) धारण करता हुआ। (**वातजूतः**) वायु से प्रेरित (**यः**) जो सूर्य (**त्मना**) स्वयम् (**प्रजाः**) प्रजा की (**अभिरक्षति**) रक्षा करता है (**पुपोष**) पुष्ट करता है और (**पुरुधा**) बहुधा (**विराजति**) दीप्त होता है।

भावार्थः—विशेष रूप से दीप्त सूर्य बढ़े हुए सुपुष्ट सोमयुक्त मधुर रस और जल को पीता है। यजमान को आयु प्रदान करता है। वायु से प्रेरित यह सूर्य स्वयम् प्रजा की रक्षा करता है, पुष्ट करता है और बहुत प्रकार से दीप्त होता है ॥१॥

विभ्राड बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

पदार्थः—(**विभ्राड्**) प्रकाशमान (**बृहत्**) प्रौढ (**सुभृतम्**) सुपुष्ट (**वाजसातमम्**) अन्न आदि का देने वाली (**धर्मन्**) वायु से धारित (**दिवः**) द्युलोक के (**धरुणे**) धारक सूर्य मण्डल में (**अर्पितम्**) निक्षिप्त (**सत्यम्**) सत्यभूत (**अमित्रहा**) अमिभूत रोगों की नाशक, (**वृत्रहा**) मेघ की नाशक (**दस्युहन्तमम्**) दुष्काल पैदा करने वालों की घातक (**असुरहा**) कृमियों की नाशक (**सपत्नहा**) विघातक रोग-जन्तुओं का नाश करने वाली (**ज्योतिः**) ज्योति=सौर तेज (**जज्ञे**) प्रादुर्भूत होता है।

भावार्थः-प्रकाशमान, प्रौढ, सुपुष्ट, अन्न आदि को देने वाली, वायु से धारित द्युलोक के धारक सूर्य मण्डल में निक्षिप्त सत्यभूत अमित्रभूत रोगों का नाश करने वाली, मेघ की विदारक, दुष्काल पैदा करने वाले

मेघों की विघातक, कृमियों की नाशक और विघातक जन्तुओं का विघात करने वाली सौर ज्योति प्रादुर्भूत होती है ॥२॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

पदार्थः—(**इदम्**) यह सौर तेज (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**ज्योतिषाम्**) अन्य नक्षत्र आदि ज्योतियों की (**उत्तमम्**) उत्तम ज्योति (**विश्वजित्**) सबको जीतने वाली (**धनजित्**) धन को जीतने वाली (**बृहत्**) महती ज्योति (**उच्यते**) कही जाती है, (**विश्वभ्राट्**) विश्व का प्रकाशक (**भ्राजः**) भ्राजमान (**महि**) महान् (**सूर्यः**) सूर्य (**दृशे**) लोगों के दर्शन के लिए (**उरु**) महान् (**सहः**) अन्धकार नाशक (**अच्युतम्**) अक्षीण (**ओजः**) तेजोबल को (**पप्रथे**) विस्तारित करता है।

भावार्थः—यह सौर तेज श्रेष्ठ, अन्य नक्षत्र आदि ज्योतियों की भी ज्योति, उत्तम, विश्वजित् धनजित् बृहत् ज्योति कही जाती है। विश्व-प्रकाशक भ्राजमान महान् सूर्य लोगों के देखने के लिए महान् अन्धकार-नाशक अक्षीण तेजों—बल का विस्तार करता है ॥३॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४॥

पदार्थ—यह सूर्य (**ज्योतिषा**) तेज से (**स्वः**) सब जगत् को (**विभ्राजन्**) प्रकाशमान करता हुआ (**दिवः**) द्युलोक के (**रोचनम्**) प्रकाश करने वाला हुआ (**अगच्छः**) घूमता है, (**येन**) जिस (**विश्वकर्मणा**) समस्त व्यापारियों वाले (**विश्वदेव्यावता**) समस्त देवों के हितकारी यज्ञ से युक्त सौर तेज से (**इमा**) ये (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवन (**आभृता**) धारित और पोषित होते हैं।

भावार्थः—यह सूर्य तेज से सब जगत् को प्रकाशमान करता, द्युलोक का प्रकाशक होकर अपनी धुरी पर घूमता है। जिस सौर तेज से ही समस्त व्यवहार यज्ञ आदि देवनिमित्तिक कार्य चलते हैं और ये समस्त भुवन धारित और पोषित हैं ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१७१

ऋषिः—१—४ इटो भार्गवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्-
गायत्री । २, ४ विराड्गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री ॥
स्वरः—षड्जः ।।

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः ।
अशृणोः सोमिनो हवम् ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**त्वम्**) तू (**सुतवतः**) उपासना वाले अथवा पुत्र आदि वाले (**इटः**) ज्ञानी के (**त्यम्**) उस (**रथम्**) रमण के साधन देह की (**प्रावः**) रक्षा करता है और (**सोमिनः**) याज्ञिक पुरुष के (**हवम्**) रक्षा की पुकार को (**अशृणोः**) सुनता है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू पुत्रयुक्त गृहस्थ ज्ञानी के उस रमण साधनभूत शरीर की रक्षा करता है और यज्ञ वाले मनुष्य की रक्षा करता है और यज्ञ करने वाले मनुष्य की रक्षा की पुकार को सुनता है ।।१।।

त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः ।
अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥२॥

पदार्थः—हे इन्द्र=राजन् ! (**त्वम्**) तू (**मखस्य**) यज्ञके (**दोधतः**) कंपाने वाले दुष्ट पुरुष के (**शिरः**) शिर को (**त्वचः**) त्वचायय शरीर से (**अवभर**) हरण करता है और (**सोमिनः**) याज्ञिक के (**गृहम्**) घर को (**अगच्छः**) आता है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू यज्ञ के विरोधी के शिर को शरीर से पृथक् करता है और यज्ञकारी के गृह पर आता है ।।२।।

त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् ।
मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) राजन् ! (**त्वम्**) तू (**आस्त्रबुध्नाय**) सर्वत्र ज्ञान विखेरने वाले विद्वान् (**मनस्यवे**) मनस्वी के लिए (**त्यम्**) उस (**वेन्यम्**) कामनाओं के स्पर्धी (**मर्त्यम्**) मनुष्य को (**मुहुः श्रथ्नाः**) बार-बार दूर भगा ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू सर्वत्र ज्ञान विखेरने वाले मनस्वी के लिए कामनाओं की स्पर्धा वाले मनुष्य को सदा दूर भगा ।।३।।

त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि ।
देवानां चित्तिरो वशम् ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**देवानाम्**) देवों=विद्वानों से (**चित**) भी (**तिरः**) तिरोहित=छिपे हुए (**वशम्**) कान्त (**त्यम्**) इस (**सूर्यम्**) सूर्य को सायंकाल में (**पश्चा**) पशिमम में (**सन्तम्**) होते हुए दूसरे दिन (**पुरः**) पूर्व में अथवा आगे (**कृधि**) करता है ।

भावार्थः—हे प्रभो तू विद्वानों की जानकारी से भी तिरोहित कान्तिमान् सूर्य को सायंकाल में पश्चिम अथवा पश्चात् होते हुए दूसरे दिन प्रातःकाल में पूर्ववर्त्ती अथवा पुरस्तात् करते हो ।।४।।

यह दशम मण्डल में एकसो इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १७२

ऋषिः—१—४ संवर्तः ॥ देवता—उषा ॥ छन्दः—पिपीलिकामध्या-
गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१॥

पदार्थः—उषा (**वनसा**) वननीय तेज के (**सह**) साथ (**आ याहि**) आती है (**यद्**) जो (**ऊधभिः**) ओस से युक्त हैं वे (**गावः**) किरणें (**वर्तनिम्**) उषा के रथचक्र को (**सचन्त**) सेवित करती हैं ।

भावार्थः—उषा वननीय तेज के साथ आती है । जो ओस के विन्दुओं से युक्त है वे किरणें उषा के रथचक्र=प्रकाश चक्र में युक्त होती हैं ।।१।।

आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२॥

पदार्थः—यह उषा (**वस्व्या**) प्रशस्त (**धिया**) कर्म के साथ (**आयाहि**) आती है, यह उषःकाल (**सुदानुभिः**) उत्तम दाता मनुष्यों के द्वारा (**मंहिष्ठः**) धनों का अत्यन्त दाता हैं और (**जारयन्मखः**) गृहस्थ यज्ञ को पूर्णरीति से सम्पन्न करने वाला है ।

भावार्थः—यह उषा प्रशस्त कर्म के साथ प्राप्त होती है । उषःकाल दानदाताओं द्वारा धनों का अत्यन्त दाता है और गृहस्थ यज्ञ को पूर्णरीति से सम्पन्न करने वाला है ॥२॥

पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३॥

पदार्थः—(**पितुभृतः**) अन्न के धारकों के (**न**) समान (**सुदानवः**) उत्तम दान वाले हम (**तन्तुम्**) विस्तीर्ण उषा की (**प्रति दध्मः**) प्रति उपायन रूप में धारण करते हैं और (**यजामसि**) यज्ञ करते हैं ।

भावार्थः—अन्न के धारकों की भांति उत्तम दान वाले हम विस्तीर्ण उषा को प्रतिभेंट के रूप में धारण करते हैं और यज्ञ करते हैं ॥३॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४॥

पदार्थः—(**उषाः**) यह उषा (**स्वसुः**) भगिनीभूत रात्रि के (**तमः**) अन्धकार को (**सं वर्तयति**) अपने तेज से दूर करती है, अपनी (**सुजातता**) सुजातत्व को (**वर्तनिम्**) तेजःचक्र के प्रति प्राप्त कराती है ।

भावार्थः—यह उषा अपनी भगिनीभूत रात्रि के अन्धकार को दूर करती हैं और अपनी सुजाता को तेजःपुंज को प्राप्त कराती है ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसो बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूकत—१७३

ऋषिः—१—६ ध्रुवः ॥ **देवता**—राज्ञःस्तुतिः **छन्दः**—१, ३—५ अनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

पदार्थः—हे राजन् ! (**त्वा**) तुझे (**आ हार्षम्**) राजा के रूप में इस राष्ट्र में लाता हूँ तू (**अन्तः**) हमारे मध्य में (**एधि**) स्वामी बन (**ध्रुवः**) दृढ़ होकर (**अविचाचलिः**) बिना विचलित हुए (**तिष्ठ**) स्थित हो (**सर्वाः**) सारी (**विशः**) प्रजायें (**त्वा**) तुझे (**वाञ्छन्तु**) चाहें (**त्वद्**) तुम्हारा (**राष्ट्रम्**) राष्ट्र (**मा**) नहीं (**अधि भ्रशत्**) नष्ट हो ।

भावार्थः—हे राजन् ! तुझे मैं पुरोहित इस राष्ट्र के राजा के रूप में लाता हूं । तू हमारे मध्य में स्वामी हो । सारी प्रजा तुम्हें चाहे और राष्ट्र तुम्हारे हाथ से कभी न निकल जावे ॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलिः ।
इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् ! (**इह**) इस राज्य में (**एधि**) स्वामी रूप में वर्तमान हो, (**मा**) मत (**अपच्योष्ठाः**) अपच्युत हो, (**पर्वतः इव**) पहाड़ के समान (**अविचाचलिः**) दृढ़ और स्थिर हो, (**इन्द्रः इव**) सूर्य के समान (**इह**) इस राष्ट्र में (**ध्रुवः**) ध्रुव (**तिष्ठ**) रह (**राष्ट्रम् उ**) राष्ट्र को (**धारय**) धारण कर ।

भावार्थः—हे राजन् ! इस राज्य में स्वामी रूप में तू वर्तमान हो । कभी भी अपच्युत न हो । पर्वत के समान दृढ़ और स्थिर रह । राष्ट्र में सूर्य के समान ध्रुव रह तथा राष्ट्र को धारण कर ॥२॥

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) तेजस्वी राजा ही (**इमम्**) इस (**ध्रुवम्**) स्थिर राज्य को (**ध्रुवेण**) ध्रुव (**हविषा**) साधन से (**अदीधरत्**) धारण करता है, (**तस्मै**) उसके लिए (**सोमः**) शान्तस्वरूप विद्वान् (**अधि ब्रवत्**) उपदेश करता है (**तस्मै उ**) उस ही के लिए वेदज्ञान का स्वामी (**अधि ब्रवत्**) उपदेश करता है ।

भावार्थः—तेजस्वी राजा ही इस ध्रुव राष्ट्र को स्थिर साधन से धारण करता है । उसके लिए शान्तस्वरूप विद्वान् और वेद ज्ञान का स्वामी उपदेश करते हैं ॥३॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४॥

पदार्थः—(**द्यौः**) द्युलोक (**ध्रुवा**) दृढ़ है, (**पृथिवी**) भूमि (**ध्रुवा**) ध्रुव=स्थिर है, (**इमे पर्वताः**) ये पहाड़ भी (**ध्रुवासः**) दृढ़ स्थिर हैं, (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) समस्त (**जगत्**) जगत् (**ध्रुवम्**) स्थिर है (**अयम्**) यह (**विशाम्**) प्रजाओं का (**राजा**) राजा भी (**ध्रुवः**) स्थिर हो ।

भावार्थः—द्युलोक स्थिर है । भूमि भी दृढ़ है । ये पहाड़ भी स्थिर हैं । यह समस्त जगत् भी दृढ है । प्रजाओं का यह राजा भी दृढ़ होवे ॥४॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥

पदार्थः—हे राजन् ! (**राजा**) राजमान (**वरुणः**) वायु (**ध्रुवम्**) स्थिर रूप धारण करे (**देवः**) देवनशील वेद वाणी का स्वामी विद्वान् अथवा मेघ भी राष्ट्र को दृढ़ धारण करे (**इन्द्रः च**) इन्द्र=सूर्य (**अग्निः च**) अग्नि भी (**ते**) तेरे (**राष्ट्रम्**) राष्ट्र को (**ध्रुवम्**) जिस प्रकार वह दृढ़ रहे ऐसा (**ध्रुवम्**) स्थिर (**धारयताम्**) धारण करे ।

भावार्थः—हे राजन् ! राजमान वायु तेरे राष्ट्र को स्थिर बनावे, वेद का विद्वान् अथवा मेघ भी इसे दृढ़ बनावे । सूर्य और अग्नि भी इसे दृढ़ता के साथ स्थिर बनावें ॥५॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

पदार्थः (**ध्रुवेण**) स्थिर (**हविषा**) साधन से (**ध्रुवम्**) स्थिर (**सोमम्**) राजा को हम विचारपूर्वक प्राप्त करते हैं (**इन्द्रः**) परमेश्वर ने (**ते**) तेरी (**विश्वः**) प्रजाओं को (**केवली**) केवल तेरी ही प्रजायें और (**ते**) तेरे लिए (**बलिहृतः**) कर देने वाली (**करत्**) किया है ।

भावार्थः—स्थिर साधन से स्थिर राजा को हम विचारपूर्वक प्राप्त करते हैं : परमेश्वर ने, हे राजन् ! तेरी प्रजाओं को तेरी ही प्रजा और तेरे लिए ही कर देने वाली किया है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १७४

ऋषिः—१—५ अभीवर्तः ॥ देवता—राज्ञः स्तुतिः ॥ छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥१॥

पदार्थः—(**ब्रह्मणस्पते**) हे ज्ञान धन और ब्रह्माण्ड के पालक प्रभो ! (**येन**) जिस लक्ष्य को उद्देश्य में रखकर जाने योग्य (**हविषा**) साधन से (**इन्द्रः**) राजा (**अभि ववृते**) लक्ष्य की ओर जाता है (**तेन**) उससे (**अस्मान्**) हमें (**राष्ट्राय**) उत्तम राष्ट्र प्राप्त करने के लिए (**अभि वर्तय**) आगे वढ़ा ।

भावार्थः—हे ज्ञान और ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभो ! जिस उद्देश्यपूरक साधन से महान् राजा अपने लक्ष्य की ओर जाता है उससे हमें उत्तम राष्ट्र प्राप्त करने के लिए आगे वढ़ा ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥२॥

पदार्थः—हे सेनापते ! (**सपत्नान्**) शत्रुओं को (**अभिवृत्य**) चारों तरफ से घेरकर (**याः**) जो (**नः**) हमारे (**अरातयः**) अदानशील लोग हैं उन्हें भी (**अभितिष्ठ**) दबा दे, (**च**) और (**यः**) जो (**नः**) हमारे लिए (**इरस्यति**) ईर्ष्या करता है (**युतम्**) उस (**पृतन्यन्तम्**) युत्सु को भी (**अभितिष्ठ**) दबा दे ।

भावार्थः—हे सेनापते ! शत्रुओं को चौतरफा घेरकर यह जो हमारे अदानशील लोग हैं इन्हें भी दबाओ । हमारे लिए जो ईर्ष्या की भावना रखता है उस युयुत्सु को भी दबा दे ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् ! (**त्वा**) तुझे (**देवः**) द्योतनशील (**सविता**) सूर्य (**अभि अवीवृतत्**) उत्साह दे, (**सोमः**) सोम=वायु उत्साह दे, (**विश्वा**) समस्त

(**भूतानि**) पृथिवी आदि पदार्थ (**त्वा**) तुझे (**अभि**) उत्साहित करें (**यथा**) जिससे तू (**अभीवतः**) सर्वत्र विद्यमान (**असति**) होवे ।

भावार्थः—हे राजन् ! तुझे द्योतनशील सूर्य और वायु उत्साह दें । समस्त भूत जात तुझे उत्साहित करें जिससे तू सर्वत्र विद्यमान हुआ राष्ट्र के कार्य को देखे ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥४॥

पदार्थः—(**येन**) जिस (**हविषा**) पुरोडाश आदि हवि से (**इन्द्रः**) सूर्य (**कृत्वी**) वृत्रवध में कृतकार्य होता है (**द्युम्नी**) यशस्वी अथवा अन्नवाला और (**उत्तमः**) उत्कृष्ट होता है (**इदम्**) यह (**तत्**) वह सब (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**अक्रि**) मैंने कर दिया है अतः मैं (**असपत्नः**) अशत्रु (**किल**) निश्चय से (**अभवम्**) होऊं ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस पुरोडाश आदि से युक्त हवि के प्रदान से इन्द्र=सूर्य वृत्रवध में कृतकार्य होता है और यशस्वी एवम् उत्कृष्ट होता है यह सब मैंने कर दिया है । अतः मैं अशत्रु होऊँ ॥४॥

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥

पदार्थः—मैं राजा (**सपत्नहा**) शत्रुओं का हन्ता अतः (**असपत्नः**) शत्रुरहित होऊँ, (**अभिराष्ट्रः**) प्राप्तराष्ट्र होकर (**विषासहिः**) शत्रुओं का अभिभविता होऊँ, (**यथा**) जिससे (**अहम्**) मैं (**एषाम्**) इन (**भूतानाम्**) प्राणियों (**च**) और (**जनस्य**) अपने सेवक, तथा अमात्य आदि का (**विराजानि**) स्वामी होऊँ ।

भावार्थः मैं राजा शत्रुओं का हन्ता हूं अतः शत्रुरहित होऊँ । राष्ट्र को प्राप्त करके शत्रुओं को दबाने वाला होऊँ । जिससे मैं इन प्राणियों और अपने सेवक तथा अमात्य आदि का स्वामी बनूं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१७५

ऋषिः—१—४ ऊर्ध्वग्रावार्बुदः ॥ **देवता**—ग्रावाणः ॥ **छन्दः**—१, २, ४ गायत्री । ३ विराड्गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा ।
धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥१॥

पदार्थः—हे (**ग्रावाणः**) विद्वानो ! (**सविता देवः**) ऐश्वर्यवान् स्वामी परमेश्वर (**वः**) आप लोगों को (**प्र सुवतु**) उत्तम प्रेरणा दें, आप लोग (**धूर्षु**) उत्तम कार्य के पदों पर (**युज्यध्वम्**) युक्त होओ और (**सुनुत**) उत्तम कार्य का संपादन करो ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! ऐश्वर्यवान् स्वामी परमेश्वर ! आप लोगों को उत्तम प्रेरणा दे । आप भार के उच्च पदों पर लगो और उनके कार्यों का संपादन करो ॥१॥

ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् ।
उस्राः कर्तन भेषजम् ॥२॥

पदार्थः—हे (**ग्रावाणः**) विद्वानो ! (**दुच्छुनां**) दुःखदायी अज्ञान, अविद्या और अभाव को (**अप सेधत**) दूर करो, (**दुर्मतिम्**) दुर्बुद्धि को (**अपसेधत**) दूर हटाओ, (**उस्राः**) किरणों के समान होकर (**भेषजम्**) रोग के दूर करने का उपाय (**कर्तन**) करो ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! दुःखदायी अज्ञान, अविद्या और अभाव को तथा दुर्बुद्धि को दूर करो । किरणों के समान प्रकाशमान हुए रोग के निवारण का उपाय करो ॥२॥

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः ।
वृष्णो दधतो वृष्ण्यम् ॥३॥

पदार्थः—(**वृष्णे**) सुख की वृष्टि करने वाले नायक में (**वृष्ण्यम्**) बल को (**दधतः**) स्थापित करते हुए (**ग्रावाणः**) विद्वान् लोग (**सजोषसः**) परस्पर प्रेमभाव युक्त हुए (**उपरेषु**) समीपस्थ जनों में (**आ महीयन्ते**) विशेष आदर पाते हैं ।

भावार्थः—सुखवर्षक नायक में बल को धारण करते हुए विद्वान् लोग प्रीतिभाव से रहते हुए सभी जनों में महत्व और आदर को प्राप्त होते हैं ॥३॥

ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा ।
यजमानाय सुन्वते ॥४॥

पदार्थः—(**ग्रावाणः**) हे विद्वानो ! (**वः**) आप लोगों को (**सविता**) सबका उत्पादक (**देवः**) देव परमेश्वर (**धर्मणा नु**) धर्म के द्वारा (**सुवतु**) प्रेरणा देता है, (**यजमानाय**) यज्ञ करने वाले के लिए (**सुन्वते**) उत्तम मार्ग बताता है ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोगों को सबका उत्पादक परमेश्वर वेद धर्म के द्वारा प्रेरणा देता है और यज्ञकर्ता के लिए उत्तम मार्ग बताता है ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त १७६

ऋषिः—१-४ **सूनुरार्भवः** ॥ देवता—१ **ऋभवः** । २—४ **अग्निः** ॥
छन्दः—१, ४ **विराडनुष्टुप्** । ३ **अनुष्टुप्** । २ **निचृद्गायत्री** ॥
स्वरः—१, ३, ४ **गान्धारः** । २ **षड्जः** ॥

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥१॥

पदार्थः—(**ऋभूणाम**) सूर्य किरणों के (**सूनवः**) पुत्रभूत तेज (**बृहत**) महान् (**वृजना**) संसार के व्यवहार को (**प्रनवन्त**) प्राप्त करते (**ये**) जो (**विश्वधायसः**) सभी रसों को पीने वाली सूर्य किरणें (**मातरम**) माता (**धेनुम**) धेनु के (**न**) समान (**क्षामा**) भूमि को (**अश्नन्**) व्याप्त करती है ।

भावार्थः—सूर्य किरणों के पुत्रभूत तेज=ऋभु, विभ्वा और वाज (बृहत्) महान् व्यवहार को प्राप्त होते हैं । जो ऋभु =सूर्य किरणें सभी रसों का पान करती हुई उसी प्रकार भूमि को व्याप्त करती हैं जिस प्रकार माता गाय के दूध को उसका वत्स पीता है ॥१॥

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् ॥२॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! (**देवम्**) द्योतन दान आदि गुणों से युक्त (**जातवेदसम्**) अग्नि को (**देव्या**) दीप्त (**धिया**) घी और कर्म से (**प्र भरत**) पूरित करो, यह अग्नि (**नः**) हमारे (**हव्या**) हवि को (**आनुषक्**) अनुक्रम से (**वहत्**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! द्योतन और दान आदि गुणों से युक्त अग्नि को दीप्त घी और कर्म के साथ हवि से पूरित करो । यह अग्नि हमारे हवि को अनुक्रम से सभी यज्ञदेवों को प्राप्त कराता है ॥२॥

अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥३॥

पदार्थ—(**अयम् उ**) यह ही (**स्यः**) वह अग्नि (**देवयु**) देवों को हवि प्राप्त कराने वाला और (**होता**) हवि का ग्रहण करने वाला है, (**यज्ञाय**) यज्ञ के लिए (**प्रणीयते**) लाया जाता है, (**रथः**) रंहणशील सूर्य के (**न**) समान (**घृणीवान्**) दीप्तिमान् (**योः**) हवि को प्राप्त कराने वाला (**अभीवृतः**) ऋत्विग् और यजमानों से घिरा हुआ अग्नि (**त्मना**) स्वयम् (**चेतति**) देवों को प्राप्त करता है ।

भावार्थः—यह ही अग्नि देवों को हवि प्राप्त कराने वाला और हवि का ग्रहण करने वाला है । यह यज्ञ के लिए सामने लाया जाता है । रंहण=वेग से युक्त सूर्य के समान दीप्तिमान, हवि का प्रापक ऋत्विग् और यजमान से घिरा हुआ यह स्वयम् देवों को प्राप्त कराता है ॥३॥

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥४॥

पदार्थः –(**अयम्**) यह अग्नि (**अमृताद् इव**) देव सम्बन्धी अर्थात् आधिदैविक भय के सामान (**जन्मनः**) मानुष=आधिभौतिक और आध्यात्मिक भय से (**उरुष्यति**) रक्षा करता है, (**सहसः चित्**) बलवान् से भी (**सहीयान्**) बलवान् यह (**देवः**) देवनशील अग्नि भगवान् के द्वारा (**जीवातवे**) जीवन के लिए (**कृतः**) बनाया गया है ।

भावार्थः -- यह अग्नि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक भय से रक्षा करता है। बलवान् से भी बलवत्तर देवनशील यह अग्नि भगवान् के द्वारा जीवन के लिए बनाया गया है ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त-१७७

ऋषिः—१ ३ पतंगः प्राजापत्यः ॥ देवता – मायाभेदः ॥ छन्दः – १
जगती । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ निषादः ।
२, ३ धैवतः ॥

प॒त॒ङ्गम॒क्तमसु॑रस्य मा॒यया॑ हृ॒दा प॑श्यन्ति॒ मन॑सा वि॒प॒श्चितः॑ ।
स॒मु॒द्रे अ॒न्तः क॒वयो॒ वि च॑क्षते॒ मरी॑चीनां प॒दमि॑च्छन्ति वे॒धसः॑ ॥१॥

पदार्थः—(**असुरस्य**) प्राणों में रमण करने वाले अर्थात् प्राणों के भी प्राण परमेश्वर की (**मायया**) बुद्धि की चातुरी से (**अक्तम्**) शरीर के साथ व्यक्त (**पतंगम्**) जीवन को (**विपश्चितः**) ज्ञानीजन (**हृदा मनसा**) हृदयस्थ मन से (**पश्यन्ति**) देखते हैं (**कवयः**) क्रान्तदर्शी लोग (**समुद्रे**) सबके उत्पादक परमेश्वर के (**अन्तः**) अन्दर स्थित मुक्त जीव को (**वि चक्षते**) देखते हैं (**वेधसः**) ज्ञानीजन (**मरीचीनाम्**) समस्त प्रकाशों के (**पदम्**) उत्कृष्ट पद परमेश्वर को (**इच्छन्ति**) चाहते हैं ।

भावार्थः --प्राणों के प्राण परमेश्वर की बुद्धिचातुरी से शरीर के साथ व्यक्त को ज्ञानी जन हृदयस्थमन से देखते हैं क्रान्तदर्शीजन परमेश्वर में विद्यमान मुक्त जीवों को देखते हैं और ज्ञानी जन समस्त प्रकाशों के उत्कृष्ट पद परमेश्वर को चाहते हैं ॥१॥

प॒त॒ङ्गो वाचं॒ मन॑सा बिभर्ति॒ तां ग॑न्ध॒र्वो॑ऽवद॒द् गर्भे॑ अ॒न्तः ।
तां द्योत॑मानां स्व॒र्यं॑ मनी॒षामृ॒तस्य॑ प॒दे क॒वयो॒ नि पा॑न्ति ॥२॥

पदार्थः--(**पतंगः**) जीव (**मनसा**) मन से (**वाचम्**) वाणी को (**बिभर्ति**) धारण करता है, (**ताम्**) उस शब्दमयी वाणी को (**गन्धर्वः**) प्राण (**गर्भे**) शरीर के (**अन्तः**) मध्य वर्तमान होकर (**अवदत्**) प्रेरित करता है । (**द्योतमानाम्**) प्रकाशमान (**मनीषाम्**) मन की स्वामिनी (**स्वर्यम्**) आकाश को प्राप्त होने वाली (**ताम्**) उस शब्द सन्तान रूप वाणी को (**कवयः**) क्रान्त दर्शन किरणें अथवा वायु के कम्पन (**अमृतस्य**) जल के (**पदे**) स्थान में (**निपान्ति**) सुरक्षित करते हैं ।

भावार्थः—जीव मन से वाणी को धारण करता है। उस शब्दमयी वाणी को शरीरस्थ प्राण प्रेरित करता है। प्रकाशमान और मन की स्वामिनी आकाश में फैलने वाली शब्दसन्तान वाली इस वाणी को क्रान्तदर्शी वायु के कम्पन सुरक्षित करते हैं ॥२॥

अप॑श्यं गो॒पामनि॑पद्यमान॒मा च॒ परा॑ च प॒थिभि॒श्चर॑न्तम् ।
स स॒ध्रीचीः॒ स विषू॑ची॒र्वसा॑न॒ आ व॑रीवर्ति॒ भुव॑नेष्व॒न्तः ॥३॥

पदार्थः—(**गोपाम्**) इन्द्रियों के स्वामी इस जीव को (**अनिपद्यमानम्**) न नष्ट होते हुए=अविनश्वर को (**आ च**) इस मार्ग और (**परा च**) उस (**पथिभिः**) मार्गों=अर्थात् नीचे-ऊँचे योनियों में (**चरन्तम्**) विचरते (**अपश्यम्**) देखता हूँ (**सः**) वह (**सध्रीचीः**) उत्तम सीध्री (**विषूचीः**) विपरीत शरीरों को (**वसानः**) धारण करता हुआ विचरता है, (**सः**) वह (**भुवनेषु**) लोकों के (**अन्तः**) मध्य अपने कर्म के अनुसार (**आवरीवर्ति**) वार-वार उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—अविनाशी जीव को विभिन्न ऊंची-नीची योनियों के मार्ग से विचरते हुए मैं ज्ञानी देखता हूं। वह सीध्रीचीः=उत्तम और विपूची=अनुत्तम शरीरों को धारण करता हुआ विचरता है तथा वह अपने कर्मानुसार लोकों के मध्य वार-वार उत्पन्न होता है अर्थात् जन्म धारण करता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १७८

ऋषिः—१-३ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः ॥ देवता—तार्क्ष्यः ॥ छन्दः १ विराट्त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

पदार्थः—(**सुवाजिनम्**) अत्यन्त बली पुष्ट (**देवजूतम्**) योग्य वैज्ञानिकों द्वारा संचालित अथवा प्रयुक्त (**सहवानम्**) बल वाले (**रथानाम्**) उत्तम रमणीय शब्दों के, अथवा वेगवान् शब्दों के (**तरुतारम्**) सूक्ष्म तार के माध्यम से स्वतन्त्र पहुँचाने वाले (**अरिष्टनेमिम्**) कभी भी नष्ट न होने वाले वा ढीला न होने वाले साधन से युक्त (**पृतनाजम्**) सेना में भी प्रयुक्त किये जाने वाले (**आशुम्**) शीघ्रकारी एवम् शीघ्र पहुँचाने वाले (**तार्क्ष्यम्**) विद्युत् को (**इह**) इस तारवर्की के कार्य में (**हुवे**) प्रयुक्त करता हूँ ।

भावार्थः—मैं वैज्ञानिक अत्यन्तवली, योग्य वैज्ञानिकों द्वारा संचालित करने योग्य, बल वाले वेगयुक्त रमणीय शब्दों को (तरुतारम्) सूक्ष्म-तार द्वारा सर्वत्र पहुँचाने वाले कभी भी ढीला न पड़ने वाले साधन युक्त सेना में प्रयोज्य शीघ्रकारी इस बिजली को तारवर्की आदि कार्यों में प्रयुक्त करता हूं ॥१॥

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥२॥

पदार्थः—हम (**इन्द्रस्य इव रातिम्**) उस परमैश्वर्यवान् वायु के तुल्य विद्युत् के दान=कार्य को (**आजोहुवानाः**) पुनः-पुनः प्राप्त करते हुए उस विद्युत् की शक्ति और क्रिया को (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**नावम् इव**) नौका के समान (**आ रुहेम**) धारण करें वा काबू में करें, (**उर्वीः**) विस्तृत पृथिवी के (**न**) समान विस्तृत (**बहुले**) महती (**पृथ्वी**) प्रथित (**वाम्**) ये दोनों (**गभीरे**) द्यु और पृथिवी लोक में (**एतौ**) आने (**परेतौ**) जाने [के तार व्यवहार में] (**मा मा**) न (**रिषाम**) हम विघ्न को न प्राप्त करें ।

भावार्थः—हम ऐश्वर्यवान् वायु के समान विद्युत् के दान=कार्यों को पुनः पुनः-प्राप्त करते हुए उस विद्युत् की शक्ति और क्रिया को कल्याणार्थ नौका के समान धारण करें अथवा काबू में करें। विस्तृत पृथिवी के समान प्रथित महती द्यु और पृथिवी में आने और जाने के तार-व्यवहार में विघ्न को न प्राप्त करें ॥२॥

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥३॥

पदार्थः—(**सद्यः चित्**) शीघ्र ही (**यः**) जो तार्क्ष्य=विद्युत् (**शवसा**) बल युक्त (**ज्योतिषा**) तेज से (**सूर्यः इव**) सूर्य के समान (**अपः**) जलों को (**ततान**) विस्तारित करती है, (**शर्याम्**) सरकण्डे की बनी इषु (**युवतिम्**) लक्ष्य से मिश्रित होने वाली के समान (**अस्य**) इसकी (**रंहिः**) वेगगति (**सहस्रसाः**) सहस्रों (**शतसाः**) सैकड़ों कार्यों की साधक है (**न**) कोई भी नहीं (**वरन्ते स्म**) इसका निवारण कर सकते हैं ।

भावार्थः—शीघ्र ही यह विद्युत् बल पूर्ण ज्योति से सूर्य के समान जलों का वर्षा रूप में विस्तारित करती है। सरकण्डे की बनी धनुषयुक्त लक्ष्य को प्राप्त इषु के समान इसकी वेग शक्ति को कोई रोक नहीं सकता है। यह सैकड़ों-सहस्रों कार्यों की साधक है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१७९

ऋषिः—१ शिविरौशीनरः । २ प्रतर्दनः काशिराजः। ३ वसुमना रौहिदश्वः ॥
देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१ गान्धारः । २, ३ धैवतः ॥

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥१॥

पदार्थः—हे ऋत्विग्जन ! (**उत्तिष्ठत**) उठो (**ऋत्वियम्**) ऋतु के अनुसार होने वाले (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**भागम्**) हविर्भाग का (**अव पश्यत**) निरीक्षण करो, (**यदि**) यदि वह भाग (**श्रातः**) पक गया है तो (**जुहोतन**) अग्नि में

आहुत करो (**यदि**) यदि (**अश्रातः**) अपक्व है तो पकने की सामग्री से **(ममत्तन)** तृप्त करो ।

भावार्थः— हे ऋत्विग् लोगो ! उठो और इन्द्र को ऋतु के अनुसार दिये जाने वाले यज्ञ भाग का निरीक्षण करो ! यदि वह परिपक्व है तो उसे अग्नि में आहुत करो । यदि अपरिपक्व है तो उसे पकने के साधनों और सामग्री से युक्त करो ॥१॥

श्रा॒तं ह॒विरो ष्वि॑न्द्र॒ प्र या॑हि ज॒गाम॒ सूरो॒ अध्व॑नो॒ विमध्यम् ।
परि॑ त्वासते नि॒धिभि॒ः सखा॑यः कुल॒पा न व्रा॒जप॑तिं॒ चर॑न्तम् ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) इन्द्र=सूर्य की (**हविः**) हवि (**ओ आ उ सु**) भली प्रकार (**श्रातम्**) परिपक्व है, (**याहि**) उसे प्राप्त होवे वा वह प्राप्त करे (**सूरः**) सूर्य (**अध्वनः**) गन्तव्य मार्ग का (**विमध्यम्**) कुछ कम मध्य मार्ग (**जगाम**) पार कर चुका है । (**सखायः**) समान ख्याति वाले ऋत्विग् लोग (**निधिभिः**) सोम और सामग्री आदि के साथ (**चरन्तम्**) जाते हुए (**व्राजपतिम्**) गृह के पालक को (**कुलपाः**) वंश के रक्षक पुत्रों के (**न**) समान (**त्वा**) इस (**इन्द्र**) सूर्य को (**परि आसते**) भली प्रकार प्रकट करते हैं ।

भावार्थः – सूर्य के निमित्त दी जाने वाली हवि भली प्रकार परिपक्व है वह इसे प्राप्त करे । सूर्य अपने मार्ग का मध्य के लगभग भाग पार कर चुका है । अर्थात् मध्याह्न होने वाला है । ऋत्विक् लोग सोम और सामग्री आदि के साथ उसी प्रकार इसको प्रकट करते और संपर्क करते हैं जिस प्रकार कुल के रक्षक जाते हुए गृहपति के पास उपस्थित होते हैं ॥२॥

श्रा॒तं म॑न्य॒ ऊध॑नि श्रा॒तम॒ग्नौ सुश्रा॑तं मन्ये॒ तदृ॒तं नवी॑यः ।
माध्य॑न्दिनस्य॒ सव॑नस्य द॒ध्नः पिबे॑न्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषा॒णः ॥३॥

पदार्थः— यह दधि रूप हवि (**ऊधनि**) गौ के स्तन में दूध रूप में **(श्रातम्)** पकी है ऐसा (**मन्ये**) मानता हूँ, दूध पुनः (**अग्नौ**) आग पर (**श्रातम्**) पका है अतः (**सुश्रातम्**) भली प्रकार पका है ऐसा (**मन्ये**) मानता हूं, इस लिए (**तत्**) वह हवि (**ऋतम्**) सत्यभूत और (**नवीयः**) ताजी है (**वज्रिन्**) वज्री, (**पुरुकृत्**) विविध कर्मों का कर्ता (**इन्द्रः**) सूर्य (**जुषाणः**) प्राप्त करता हुआ **(माध्यंदिनस्य)** मध्याह्न (**सवनस्य**) सवन के (**दध्नः**) दधि का (**पिब**) पान करें ।

भावार्थः - यह दधि गाय के स्तन में दूध रूप में पकी है ऐसा मैं पुरोहित मानता हूं । दुग्ध पुनः आग पर पका है अतः यह दधि रूप हवि पूर्ण परिपक्व है ऐसा मानता हूँ । यह हवि सत्यभूत और ताजी है । विविध कर्मों का कर्ता सूर्य इसे प्राप्त करता हुआ माध्यन्दिन सवन की हवि इस दधि का पान करे ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसो उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८०

ऋषिः—१—३ जयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् ।
३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्र स॑साहिषे पुरुहूत॒ शत्रू॒ञ्ज्येष्ठ॑स्ते॒ शुष्म॑ इ॒ह रा॒तिर॑स्तु ।
इन्द्रा भ॑र॒ दक्षि॑णेना॒ वसू॑नि॒ पति॒ः सिन्धू॑नामसि रे॒वती॑नाम् ॥१॥

पदार्थः—(**पुरुहूत**) बहुतों द्वारा प्रशंसित (**इन्द्र**) विद्युत् अथवा सूर्य (**शत्रून्**) मेघरूपी शत्रुओं को (**प्रससहिषे**) अभिभूत करता है । (**ते**) इसकी (**शुष्मः**) शोषक बल (**ज्येष्ठः**) बहुत बढ़ा हुआ है, (**इह**) इस कर्म में (**रातिः**) इसका दान (**अस्तु**) हमारे लिए हो, वह (**दक्षिणेन**) दक्षता पूर्ण ढंग से (**वसूनि**) धनों को (**आ भर**) प्रदान करता है, वह (**रेवतीनाम्**) धनों से युक्त (**सिन्धूनाम्**) नदियों का (**पतिः**) स्वामी है ।

भावार्थः—बहुतों द्वारा प्रशंसित विद्युत् अथवा सूर्य मेघरूपी शत्रुओं को अभिभूत करता है । इसका शोषक बल बहुत बढ़ा-चढ़ा है । इस कर्म में यह इसका दान हमारे लिए हो । वह दक्षतापूर्ण ढंग से धनों को प्रदान करता है । वह धनों से युक्त नदियों का स्वामी है ॥१॥

मृ॒गो न भी॒मः कु॑च॒रो गि॑रि॒ष्ठाः प॑रा॒वत॒ आ ज॑गन्था॒ पर॑स्याः ।
सृ॒कं सं॒शाय॑ प॒विमि॑न्द्र ति॒ग्मं वि शत्रू॑न्ताळ्हि॒ वि मृधो॑ नुदस्व ॥२॥

पदार्थः– (**इन्द्र**) विद्युत् (**भीमः**) भयंकर (**मृगः न**) सिंह के समान (**कुचरः**) भूमि पर विचरने वाला (**गिरिष्ठाः**) मेघ में स्थित (**परस्याः परावतः**) दूर से दूर देश से भी (**आ जगन्थ**) आ जाती है (**सृकम्**) वेग से युक्त (**पविम्**)

वज्र को (तिग्मम्) तीक्ष्ण (संशाय) करके (शत्रून्) मेघों को (ताढि) मारती है (मृधः) कृमिकीट को (विनुदस्व) नष्ट करती है ।

भावार्थः - विद्युत् भयंकर सिंह के समान भूमि पर विचरने वाली और मेघ में भी स्थित है। वह दूर से दूर देश से भी आती है। वेग से युक्त वज्र को तीक्ष्णकर मेघों को मारती और कृमिकीटों को नष्ट करती है ॥२॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) विद्युत् (**क्षत्रम्**) क्षत से बचाने वाले (**वामम्**) वननीय (**ओजः**) ओज को (**अभि अजायथा**) उत्पन्न करती है वह (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों का (**वृषभः**) कामों का वर्षक है, (**अमित्रयन्तम्**) शत्रुवत् व्यवहार करने वाले (**जनम्**) प्राणी को (**अपानुदः**) दूर करती है (**देवेभ्यः**) दिव्य शक्तियों के लिए (**उरुम्**) विस्तृत (**लोकम् उ**) प्रकाश को (**अकृणोः**) करती हे ।

भावार्थः – इन्द्र=विद्युत् शरीरस्थ कमी पूर्ण करने वाले श्रेष्ठ ओज को उत्पन्न करती है और वह मनुष्यों के कामों की वर्षक है। शत्रुवत् व्यवहार करने वाले प्राणी को वह दूर करती है तथा दिव्य शक्तियों के लिए विस्तृत प्रकाश को देती है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८१

ऋषिः–१ प्रथो वासिष्ठः । २ सप्रथो भारद्वाजः । ३ घर्मः सौर्यः ॥ **देवताः**– विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः – धैवतः ॥

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥१॥

पदार्थः—जिसका (**प्रथः**) विस्तार वाला (**च**) तथा (**सप्रथः**) सर्व प्रकार से प्रथित (**नाम**) नाम वा तेज उस अग्नि और (**आनुष्टुभस्य**) प्रजापति सम्बन्धी अनुष्टुप् छन्दोयुक्त (**हविः**) हवन साधनभूत (**हविः**) जो हवि है उसको (**वसिष्ठ**) यज्ञ विज्ञान-विद् पुरोहित प्रकट करता है । वह (**धातुः**) धाता (**द्युतानात्**) द्योतमान (**सवितुः**) सविता (**च**) और (**विष्णोः**) विष्णु इन तीनों प्रकार के आदित्यों से (**रथन्तरम्**) रथन्तर साम को (**आजभार**) ग्रहण करता है ।

भावार्थः जिसका विस्तृत और सुप्रथित तेज है उस अग्नि और प्रजापति सम्बन्धी अनुष्टुप् छन्दोयुक्त हवनीय हवि को यज्ञविद् पुरोहित प्रकट करता है। वह तीन प्रकार के आदित्यों धाता, सविता और विष्णु से रथन्तर साम को ग्रहण करता है ॥१॥

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥२॥

पदार्थः— (**ते**) वे विश्वेदेव लोग (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**यत्**) जो (**धाम**) ज्ञान (**अतिहितम्**) देवगणों में छिपा (**आसी**) होता है (**यत्**) जो (**परमम्**) परम (गुहा) रहस्य है (**तत्**) उसको (**अविन्दत्**) प्राप्त करते हैं, (**धातुः**) धाता (**द्युतानात्**) प्रकाशमान (**सवितुः**) सविता (**च**) और (**विष्णोः**) विष्णु इन तीन आदित्यों से तथा (**अग्नेः**) अग्नि से (**भरद्वाजः**) ज्ञान का पोषक याज्ञिक (**बृहत्**) बृहत् साम को (**आचक्रे**) ग्रहण करता है ।

भावार्थः—ये विश्वेदेव लोग यज्ञ का जो ज्ञान देवों में छिपा रहता है तथा उसका जो परम रहस्य है उसे प्राप्त करते हैं धाता, सविता, विष्णु आदित्यों और अग्नि से ज्ञान का पोषक याज्ञिक बृहत् साम को ग्रहण करता है ॥२॥

तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥३॥

पदार्थः—(**ते**) वे (एते) ये विश्वे देव और समस्त विद्वान्जन (**दीध्यानाः**) प्रदीप्त होकर (**मनसा**) अपनी आन्तरिक शक्ति अथवा मन से (**देवयनाम्**) यज्ञ में देवों के प्राप्त होने के साधनभूत (**स्कन्नम्**) आसेचनीय (**प्रथमम्**) पहले (**यजुः**)

यजुः=यागकर्म को प्राप्त करते हैं। (**धातुः**) धाता (**द्युतानात्**) द्योतमान (**सवितुः**) सविता (**च**) और (**विष्णोः**) विष्णु इन तीनों आदित्यों से (**आसूर्यात्**) सूर्य से (**घर्मम्**) धर्म को (**आभरन्**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—वे ये विश्वेदेव और समस्त विद्वान् लोग प्रदीप्त होकर अपनी आन्तरिक शक्ति से यज्ञ में देवों के प्राप्त होने के साधनभूत आसेचनीय प्रथम यजुः=याग कर्म को प्राप्त करते हैं और धाता, द्योतमान सविता, विष्णु, और सूर्य से घर्म को ग्रहण करते हैं ॥३॥

यह दशम मण्डल में एक सौ इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८२

ऋषिः—१—३ तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

बृ॒हस्पति॑र्नयतु दु॒र्गहा॑ ति॒रः पुन॑र्नेषद॒घशं॑साय॒ मन्म॑ ।
क्षि॒पदशं॑स्ति॒मप॑ दु॒र्मतिं॑ ह॒न्नथा॑ कर॒द्यज॑माना॒य शं योः ॥१॥

पदार्थः—(**दुर्गहा**) कठिनाई से ग्रहण किया जाने वाला (**बृहस्पतिः**) वेदज्ञान और ब्रह्माण्ड का स्वामी (**तिरः नयतु**) तिरस्करणीय कर्मों को दूर करे, (**पुनः**) और (**अघशंसाय**) दुर्भावना वाले जन के लिए (**मन्म**) ज्ञान और दण्ड (**नेषत्**) प्रयोग करें (**अशस्तिम्**) बुराई को (**क्षिपत्**) हमसे दूर करें (**दुर्मतिम्**) दुर्बुद्धि को (**अपहन्**) समाप्त करें (**अथ**) अनन्तर (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**शम्**) दुःख आदि शमन और (**योः**) भय आदि का यावन=दूरीकरण (**करत्**) करे।

भावार्थः—बहुत कठिनाई से ग्रहण करने योग्य वेदज्ञान और ब्रह्माण्डों का स्वामी परमेश्वर तिरस्करणीय कर्मों को हमसे दूर हटावे और दुर्भावना वाले जन के लिए ज्ञान और दण्ड का प्रयोग करे तथा बुराई हमसे परे भगावे। वह दुर्बुद्धि को हटावे और यजमान को रोग आदि से शमन और भय आदि का दूरीकरण करे ॥१॥

नरा॒शंसो॑ नोऽवतु प्रया॒जे शं नो॑ अस्त्वनुया॒जो हवे॑षु ।
क्षि॒पदशं॑स्ति॒मपं॑ दु॒र्मतिं॑ ह॒न्नथा॑ कर॒द्यज॑माना॒य शं योः ॥२॥

पदार्थः—(**नाराशंसः**) नरों=ऋत्विजों के द्वारा शंसनीय अग्नि (**हवेषु**) हवनीय (**प्रयाजे**) प्रयाज में (**नः**) हमारी (**अवतु**) रक्षा करता है, (**अनुयाजः**) अनुयाज (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकारी (**अस्तु**) होता है। वह बुराई को दूर फेंकता है, दुर्बुद्धि को हटाता है और यजमान के रोग आदि का शमन तथा भय आदि का दूरीकरण करता है।

भावार्थः—नराशंस=अग्नि हवनीय प्रयाज में हमारी रक्षा करता है अनुयाज हमारे लिए कल्याणकारी होता है। बुराई को दूर करता है, दुर्बुद्धि को हटाता है तथा यजमान के लिए रोग आदि का शमन और भय आदि का दूरीकरण करता है ॥२॥

त॒पुर्मूर्धा त॑पतु र॒क्षसो॒ ये ब्र॑ह्म॒द्विषः॒ शर॑वे॒ हन्त॒वा उ॑ ।
क्षि॒पदशं॑स्ति॒पं दु॒र्मतिं॑ ह॒न्नथा॑ कर॒द्यज॑माना॒य शं योः ॥३॥

पदार्थः—(**तपुर्मूर्धा**) तापकारीशिरस्क बृहस्पति=वेदज्ञ (**ये**) जो (**ब्रह्मद्विषः**) ज्ञान के द्वेषी (**रक्षसः**) राक्षस लोग हैं उनको तथा (**शरवे**) हिंसक वृत्ति के (**हन्तवै उ**) निवारण के लिए (**तपतु**) तपाता है, (**अथ**) अनन्तर वह बुराई को दूर करता है, दुर्मति को हटाता है और यजमान के लिए (**शम्**) कल्याण तथा (**योः**) भयमुक्ति देता है।

भावार्थः—लोगों के शिर को तपाने वाला वेदज्ञ विद्वान् हिंसक वृत्ति के मारने के लिए ज्ञान के द्वेषी जो राक्षस हैं उन्हें संतप्त कर देता है। अनन्तर बुराई को दूर करता है, दुर्बुद्धि को हटाता है और यजमान के लिए कल्याण और भयमुक्ति को देता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ।

सूक्त १८३

ऋषिः—१—३ प्रजावान्प्राजापत्यः ॥ देवता – अन्वृचं यजमानयजमानपत्नी-
होत्राशिषः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

अप॑श्यं त्वा॒ मन॑सा॒ चेकि॑ता॒नं तप॑सो जा॒तं तप॑सो॒ विभू॑तम् ।
इ॒ह प्र॒जामि॒ह र॒यिं ररा॑ण॒ः प्र जा॑यस्व प्र॒जया॑ पुत्रकाम ॥१॥

पदार्थः—हे यजमान (**त्वा**) तुझे (**चेकितानम्**) कर्म का विचार करता हुआ, (**तपसः**) दीक्षारूप तपसे (**जातम्**) पुनः उत्पन्न (**तपसः**) यज्ञरूपी तप से (**विभूतम्**) व्याप्त (**मनसा**) मन से (**अपश्यम्**) मैं यजमानपत्नी देखती हूं, (**पुत्रकाम**) हे पुत्र की कामना वाले ! तू (**इह**) इस लोक में (**प्रजाम्**) सन्तति, (**इह**) इस लोक में (**रयिम्**) धन को (**रराणः**) प्राप्त करते हुए, (**प्रजया**) प्रजन से (**प्रजायस्व**) पुत्र आदि रूप में उत्पन्न हो ।

भावार्थः—हे यजमान ! मैं यजमानपत्नी दीक्षारूप तप से पुनः उत्पन्न और यज्ञरूप तप से अभिव्याप्त तुझको मन से देखती हूं । हे पुत्र की कामना वाले ! तू इस लोक में सन्तति, इस लोक में धन को धारण करता हुआ पुत्र आदि रूप से उत्पन्न हो ॥१॥

अप॑श्यं त्वा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नां॒ स्वायां॑ त॒नू ऋत्व्ये॒ नाध॑मानाम् ।
उप॒ मामु॒च्चा यु॑व॒तिर्भू॑या॒ः प्र जा॑यस्व प्र॒जया॑ पुत्रकामे ॥२॥

पदार्थः—हे यजमा नपत्नि ! मैं यजमान (**दीध्यानाम्**) दीप्यमान (**स्वायाम्**) अपने (तनू) शरीर में (**ऋत्व्ये**) ऋतुकाल में (**नाधमानाम्**) सौभाग्य-सम्पन्न (**त्वा**) तुझको (मनसा) मन से (**अपश्यम्**) देखता हूं, तू (**बभूयाः**) यौवन से सम्पन्न हुई (**माम्**) मेरे (**उप**) समीप (**उच्चा**) आदर से (**बभूयाः**) प्राप्त हो (**पुत्रकामे**) हे पुत्र की कामना करने वाली तू (**प्रजया**) प्रजा द्वारा (**प्रजायस्व**) उत्तम सन्तान से युक्त हो ।

भावार्थः—हे यजमानपत्नि ! मैं यजमान दीप्यमान, अपने शरीर में ऋतु काल में सौभाग्यसम्पन्न तुझको मन से देखता हूं। यौवन से युक्त तू मेरे समीप आदर से प्राप्त हो। हे पुत्र की कामना करने वाली ! तू प्रजा युक्त से होकर उत्तम सन्तान वाली बन ॥२॥

अ॒हं गर्भ॑मदधा॒मोष॑धीष्व॒हं विश्वे॑षु॒ भुव॑नेष्व॒न्तः ।
अ॒हं प्र॒जा अ॑जनयं पृथि॒व्याम॒हं जनि॑भ्यो अप॒रीषु॑ पु॒त्रान् ॥३॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं यज्ञ का होता याग के द्वारा (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**गर्भम्**) गर्भ को (**अदधाम्**) धारण करता हूं, (**अहम्**) मैं (**विश्वेषु**) समस्त (**भुवनेषु**) भुवनों के (**अन्तः**) मध्य गर्भ धारण करता हूं, (**अहम्**) मैं यज्ञ द्वारा (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**प्रजाः**) प्रजा को (**अजनयम्**) उत्पन्न करता हूं (**अहम्**) मैं (**जनिभ्यो**) जायाओं के लिए (**अपरीषु**) मनुष्यों की अपनी-अपनी स्त्रियों में (**पुत्रान्**) पुत्रों को उनके द्वारा यज्ञ से उत्पन्न करता हूं ।

भावार्थ- मैं यज्ञ का होता याग के द्वारा ओषधियों में गर्भ को धारण कराता हूं । मैं समस्त भुवनों=भूत जातों में यज्ञ के द्वारा उनके नर-मादाओं के द्वारा गर्भ धारण कराता हूं । मैं जायाओं के लिए अपने-अपने पति द्वारा अपनी-अपनी स्त्री में यज्ञ के माध्यम से पुत्रों को उत्पन्न कराता हूं ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८४

ऋषिः १—३ त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः ॥ देवताः—लिङ्गोक्ताः
(गर्भार्थाशीः) ॥ छन्दः–१, २ अनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

विष्णु॒र्योनिं॑ कल्पयतु॒ त्वष्टा॑ रू॒पाणि॑ पिंशतु ।
आ सि॑ञ्चतु प्र॒जाप॑तिर्धा॒ता गर्भं॑ दधातु ते ॥१॥

पदार्थः—(**विष्णुः**) गर्भ का देवता प्राण वायु (**योनिम्**) योनि को (कल्पयति) समर्थ करता है, (**त्वष्टा**) रूपों का देवता सूर्य (**रूपाणि**) रूपों को (पिंशतु) बनाता है (**प्रजापतिः**) गृहस्थ पुरुष अपनी स्त्री में (**आ सिञ्चतु**) वीर्य का सेचन करता है, (**धाता**) सबका विधाता परमेश्वर हे स्त्रि ! (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ को तुझमें धारण कराता है ।

भावार्थः गर्भ का देवता प्राण वायु योनि को समर्थ करता है। रूपों

का देवता सूर्य रूप प्रदान करता है । गृहस्थ पुरुष अपनी स्त्री में वीर्य का सेक करता है और सब का विधाता परमेश्वर हे स्त्रि ! तेरे में तेरे गर्भ को धारण कराता है ॥१॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

पदार्थः—हे (**सिनीवालि**) प्रेम बन्धन में पुरुष को बांधने वाली पत्नि ! (**गर्भम्**) गर्भ को (**धेहि**) धारण कर, (**सरस्वति**) हे उत्तम ज्ञान वाली पत्नि ! (**गर्भम्**) गर्भ को (**धेहि**) धारण कर, (**पुष्करस्रजौ**) हृदय कमल को छूने वाले (**देवौ**) दिव्य गुणों वाले (**अश्विनौ**) प्राण और अपान (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ को (**आधत्ताम्**) धारण करावें ।

भावार्थः—हे पति को प्रेम-बन्धन में बाँधने वाली पत्नी तू गर्भ को धारण कर, हे ज्ञान वाली पत्नी तू गर्भ को धारण कर । हृदयकमल को छूने वाले ये प्राण और अपान देव तेरे गर्भ को धारण करावें । प्राण और अपान ही गर्भ के धारण और अधारण में कारण हैं ॥२॥

हिरण्ययीं अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥

पदार्थः—(**हिरण्ययी अरणी**) प्रकाशवाली अरणियों के तुल्य (**अश्विना**) स्त्री और पुरुष (**निर्मन्थतः**) मथन करते हैं और (**यम्**) जिस के तुल्य गर्भ को धारण करते हैं (**तम्**) उस (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ को हे स्त्रि (**दशमे**) दशवें मास में (**सूतवे**) उत्पन्न होने के लिए (**हवामहे**) भगवान् से प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार दो अरणियों के मन्थन से यजमान-पुरोहित अग्नि को जो उसमें छिपा है निकालते हैं उसी प्रकार जिस गर्भ को पति-पत्नी ने अपने रजवीर्य से धारण किया है उसे हे स्त्रि ! दशवें मास में उत्पन्न होने के लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त-१८५

ऋषिः – १—३ सत्यधृतिर्वारुणिः ॥ देवता—अदितिः (स्वस्त्ययनम्) ॥
छन्दः—१, ३ विराड्गायत्री । २ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः – षड्जः ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
दुराधर्षं वरुणस्य ॥१॥

पदार्थः—(**त्रीणाम्**) तीनों (**मित्रस्य**) मित्र, (**वरुणस्य**) वरुण (**अर्यम्णः**) अर्यमा के (**द्युक्षम्**) दीप्तिमान् (**दुराधर्षम्**) अबाधनीय (**महि**) महत् (**अवः**) रक्षण हमें परमेश्वर की कृपा से (**अस्तु**) प्राप्त रहे ।

भावार्थः—अदिति प्रकृति के पुत्र तीनों मित्र, वरुण और अर्यमा का अबाधनीय, प्रकाशमय महान् रक्षण परमेश्वर की कृपा से हमें सदा प्राप्त रहे ॥१॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु ।
ईशे रिपुरघशंसः ॥२॥

पदार्थः—(**तेषाम्**) इन तीनों आदित्यों के रक्षण को प्राप्त करने वाले को (**अमाचन**) गृहों में, (**अध्वसु**) मार्गों में (**वारणेषु**) वार्य स्थानों में भी (**अघशंसः**) अनर्थकारी (**रिपुः**) शत्रु (**न**) नहीं (**ईशे**) समर्थ होता है ।

भावार्थः—तीनों आदित्यों का रक्षण जिसे प्राप्त है उस पर गृहों में मार्गों में, निवार्य स्थानों में अनर्थकारी शत्रु हानि पहुंचाने में समर्थ नहीं होता है ॥२॥

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३॥

पदार्थः (**अदितेः**) प्रकृति के (**पुत्रासः**) मित्र, वरुण और अर्यमा (**यस्मै**) जिस (**मर्त्याय**) मनुष्य को (**प्रजीवसे**) जीने के लिए (**अजस्रम्**) अविच्छिन्न (**ज्योतिः**) तेज (**प्रयच्छन्ति**) देते हैं उसको कोई शत्रु दबा नहीं सकता है ।

भावार्थः—प्रकृति के पुत्र मित्र,वरुण और अर्यमा जिस मनुष्य को जीने के लिए अविच्छिन्न तेज देते हैं उसको कोई शत्रु दबा नहीं सकता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १८६

**ऋषिः—१—३ उलो वातायनः ॥ देवता—वायुः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री ।
३ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥**

वात॒ आ वा॑तु भेष॒जं श॒म्भु म॑यो॒भु नो॑ हृ॒दे ।
प्र ण॒ आयूँ॑षि तारिषत् ॥१॥

पदार्थ—(**वातः**) वायु (**भेषजम्**) ओषधि को जो (**नः**) हमारे (**हृदे**) हृदय के लिए (**शम्भु**) कल्याणकारक हैं, (**मयोभु**) आनन्ददायी हैं उसको (**आ वात्**) प्राप्त कराता है और (**नः**) हमारे (**आयूंषि**) आयुओं को (**प्रातारिषत्**) बढ़ाता है ।

भावार्थ—वायु हमारे हृदय के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारक आरोग्यकर ओषधि को प्राप्त कराता है और हमारी आयुओं को बढ़ाता है ॥१॥

उ॒त वा॑त पि॒तासि॑ न उ॒त भ्रा॒तोत न॒ः सखा॑ ।
स नो॑ जी॒वात॑वे कृधि ॥२॥

पदार्थः—(**उत**) और (**वातः**) वायु (**नः**) हमारा (**पिता**) पालक (**उत**) और (**भ्राता**) बन्धुवत् भरण-पोषण करने वाला (**उत**) और (**नः**) हमारा (**सखा**) मित्रवत् कल्याणकारी है । वह (**नः**) हमें (**जीवातवे**) जीवनहेतु (**कृधि**) करता है ।

भावार्थः—यह वायु हमारा पितृवत् पालक, बन्धुवत् धारक पोषक और मित्रवत् सुखकर्त्ता है और हमें जीवन वाला करता है ॥२॥

यददो वा॑त ते गृ॒हे॒३ मृत॑स्य नि॒धिर्हि॑तः ।
ततो॑ नो देहि जी॒वसे॑ ॥३॥

पदार्थः—(**ते**) इस (**वातः**) वायु के (**गृहे**) गृह में (**यत्**) जो (**अदः**) यह (**अमृतस्य**) अमरत्व की (**निधिः**) निक्षेप=धरोहर (**हितः**) स्थापित है (**ततः**) उससे (**नः**) हमारे (**जीवसे**) जीवन के लिए (**देहि**) देता है ।

भावार्थः—इस वायु के घर अन्तरिक्ष में जो वह अमरता का निक्षेप भगवान् द्वारा स्थापित है उससे यह वायु हमारे जीवन के लिए जीवनतत्त्व प्रदान करता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १८७

ऋषिः—१—५ वत्स आग्नेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री । २—५ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्राग्नये॒ वाच॑मीरय वृष॒भाय॑ क्षि॒तीना॑म् ।
स नः॑ प॒र्षदति॒ द्विषः॑ ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**क्षितीनाम्**) मनुष्यों के (**वृषभाय**) स्वामी (**अग्नये**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के लिए (**वाचम्**) स्तुति (**प्रेरय**) कर (**सः**) वह (**नः**) हमारे (**द्विषः**) शत्रुभूत काम क्रोध आदि से (**अतिपर्षत**) पार करता है ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! प्रजा के स्वामी प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करो । वही हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें पार करता है ॥१॥

यः पर॑स्याः परा॒व॑तस्ति॒रो धन्वा॑ति॒रोच॑ते ।
स नः॑ प॒र्षदति॒ द्विषः॑ ॥२॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमेश्वर (**परस्याः**) दूरसे (**परावतः**) दूर स्थान से (**तिरः धन्व**) अन्तरिक्ष को भी पार कर (**अति रोचते**) अति प्रकाशित हो रहा है (**सः**) वह (**नः**) हमें (**द्विषः**) बाह्य और आम्यन्तर शत्रुओं से (**अतिपर्षत्**) पार करता है ।

भावार्थः—जो परमेश्वर दूर से भी दूर देश से आकाशवत् सबको पार करके प्रकाशमान हो रहा है वह हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें पार करता है ॥२॥

यो रक्षां॑सि नि॒जूर्व॑ति॒ वृषा॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ।
स नः॑ प॒र्षदति॒ द्विषः॑ ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो प्रभु (**वृषा**) प्रबल (**शुक्रेण**) अति शुद्ध (**शोचिषा**) तेज से (**रक्षांसि**) राक्षसी वृत्तियों को (**निजूर्वति**) नाश करता है (**सः**) वह (**नः**) हमारे (**द्विषः**) काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें (**अतिपर्षत्**) पार करता है ।

भावार्थः—जो परमेश्वर प्रबल अतिशुद्ध तेज और ज्ञान से राक्षसी

वृत्तियों का नाश करता है वही हमें हमारे आन्तरिक शत्रुओं काम क्रोध आदि से पार लगाता है ॥३॥

यो विश्वा॒भि वि॒पश्य॑ति॒ भुव॑ना॒ सं च॒ पश्य॑ति ।
स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो प्रभु (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**अभि विपश्यति**) सर्वथा देखता है (**च**) और (**संपश्यति**) अच्छी प्रकार देखता है (**सः**) वह (**नः**) हमारे (**द्विषः**) काम क्रोध आदि शत्रुओं से (**अतिपर्षत्**) हमें पार लगाता है ।

भावार्थः—जो परमेश्वर समस्त लोकों को सर्वथा देखता है और भली प्रकार देखता है वह हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें पार करता है ॥४॥

यो अ॒स्य पा॒रे रज॑सः शु॒क्रो अ॒ग्निरजा॑यत ।
स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**शुक्रः**) पवित्र (**यः**) जो (**अग्निः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**अस्य**) इस (**रजसः**) अन्तरिक्ष से भी (**पारे**) परे (**अजायत**) पदार्थों को उत्पन्न करता है (**सः**) वह (**नः**) हमें (**द्विषः**) काम क्रोध आदि शत्रुओं से पार करता है ।

भावार्थः—जो परमेश्वर इस अन्तरिक्ष से भी परे पदार्थों को उत्पन्न करता है वह हमें हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से पार करता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८८

ऋषिः—१—३ श्येन आग्नेयः ॥ देवता:—अग्निर्जातवेदाः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्र नू॒नं जा॒तवे॑दस॒मश्वं॑ हिनोत वा॒जिन॑म् ।
इ॒दं नो॑ ब॒र्हिरा॒सदे॑ ॥१॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! (**वाजिनम्**) बलशाली अथवा अन्न वाले (**अश्वम्**) व्यापनशील (**जातवेदसम्**) अग्नि को (**नूनम्**) निश्चय ही (**प्रहिणोत**) बढ़ाओ (**इदम्**) यह (**नः**) हमारे (**बर्हिः**) यज्ञ में (**आ सदे**) स्थापित करता है ।

भावार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! बलशाली और व्यापनशील अग्नि को निश्चय ही बढ़ाओ । यह हमारे यज्ञ में स्थापित होना है ॥१॥

अ॒स्य प्र जा॒तवे॑दसो॒ विप्र॑वीरस्य मी॒ल्हुषः॑ ।
म॒हीमि॑यर्मि सुष्टु॒तिम् ॥२॥

पदार्थः—(**विप्रवीरस्य**) मेधावी लोग जिसके वीर हैं, (**मीढुषः**) सेचक (**अस्य**) इस (**जातवेदसः**) अग्नि की (**महीम्**) महती (**सुष्टुतिम्**) प्रशंसा को (**प्रेर्यमि**) प्रेरित करता हूँ ।

भावार्थः—मैं यजमान वा पुरोहित मेधावी वीरों से प्रयोग में लाये जाने वाले इस अग्नि की महती प्रशंसा करता हूं ॥२॥

या रुचो॑ जा॒तवे॑दसो देव॒त्रा ह॑व्य॒वाह॑नीः ।
ताभि॑र्नो य॒ज्ञमि॑न्वतु ॥३॥

पदार्थः—(**जातवेदसः**) अग्नि की (**याः**) जो काली कराली आदि सात प्रकार (**रुचः**) अर्चियां (**देवत्रा**) देवों = यज्ञ देवों के प्रति (**हव्यवाहनीः**) हव्य को वहन करने वाली हैं (**ताभिः**) उन ज्वालाओं से यह अग्नि (**नः**) हमारी (**यज्ञम्**) प्रदत्त हवि को देवों को (**इन्वतु**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—अग्नि की जो काली, कराली आदि सात प्रकार की देवों के प्रति हवि ले जाने वाली ज्वालाय हैं उन्हीं से यह अग्नि हमारे यज्ञ में अग्नि को दिये गए हव्यों को यज्ञदेवों को पहुंचाता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८६

ऋषिः—१—३ सार्पराज्ञी ॥ देवता—सार्पराज्ञी सूर्यो वा ॥ छन्दः—
१ निचृद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ३ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**गौः**) पृथिवी (**पृश्निः**) आकाश में (**आ अक्रमीत्**) भ्रमण करती है, (**मातरम्**) जल को (**पुरः**) आगे लिये हुए (**असदत्**) विराजती है (**च**) और (**पितरम्**) पिताभूत (**स्वः**) सूर्य के चारों तरफ (**प्रयन्**) परिक्रमा करती है ।

भावार्थः—यह भूगोल आकाश में भ्रमण करता है । वह जल को भी अपने साथ लिए रहता है और पिताभूत सूर्य की परिक्रमा करता है ॥१॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस सूर्य की (**रोचना**) रोचमान दीप्ति (**प्राणादपानती**) प्राण और अपान की क्रिया को शरीरों से करती हुई (**अन्तः**) शरीरों में (**चरति**) गति करती है, (**महिषः**) महान् सूर्य (**दिवम्**) द्युलोक को (**व्यख्यत्**) प्रकाशित करता है ।

भावार्थः—इस सूर्य की रोचमान दीप्ति शरीरों से प्राण और अपान की क्रिया को करती हुई शरीरों में गति करती है । महान् सूर्य (दिवम्) द्युलोक को प्रकाशित करता है ॥२॥

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥

पदार्थः—(**वस्तोः**) दिन और रात्रि के अवयवभूत (**त्रिंशद्**) तीन (**धाम**) मुहूर्त (**अह**) निश्चय ही (**द्युभिः**) सूर्य की दीप्तियों से (**विराजति**) विशेष रूप से प्रकाशमान होते हैं (**वाक्**) वाणी=प्रशंसा उक्ति (**पतंगाय**) सूर्य के लिए (**प्रतिधीयते**) स्तोताओं से धारण की जाती है ।

भावार्थ दिन और रात्रि के अवयवभूत तीस मुहूर्त सूर्य की दीप्ति से प्रकाशमान होते हैं । प्रशंसा की उक्ति सूर्य के लिए स्तोताओं द्वारा धारण की जाती है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसो नवासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त —१९०

ऋषिः—१—३ अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ॥ देवता—भाववृत्तम् ॥
छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृदनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

पदार्थः—(**अभीद्धात्**) सर्वतः प्रकाशमान (**तपसः**) परमेश्वर के द्वारा दिये गए ताप से (**ऋतम्**) सृष्टि नियम (**च**) और (**सत्यम्**) कार्यरूप प्रकृति (**अधि अजायत**) प्रकट होते हैं, (**ततः**) उसी से (**रात्र्यजायत**) रात्रि=प्रलय की रात्रि उत्पन्न होती है (**ततः**) उसी तप से (**अर्णवः**) जलयुक्त (**समुद्रः**) आकाशीय समुद्र (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—परमेश्वर के सर्वतोव्याप्त प्रकाशमान तपः=ताप से ऋत और कार्यरूप प्रकृति प्रकट होते हैं । और उसी से प्रलय की अन्धकारमयी रात्रि उत्पन्न होती है और उसीसे आकाशीय समुद्र उत्पन्न होता है ॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

पदार्थः—(**अर्णवात्**) जलीय (**समुद्रात्**) आकाशस्थ समुद्र से (**सम्वत्सरः**) काल की गति अथवा काल का मानदण्ड सूर्य (**अध्यजायत**) उत्पन्न होता है, सम्वत्सरः=जो भाग प्रकाशमान है वह सम्वत् है जो नहीं प्रकाशमान है वह सर है अतः आदित्य भी सम्वत्सर है (**मिषतः**) निमेष आदि को प्राप्त जंगम तथा जड़ (**विश्वस्य**) जगत् का (**वशी**) स्वामी परमेश्वर (**अहो रात्राणि**) दिन और रात्रि के भेद को (**विदधत्!**) बनाता है ।

भावार्थः—उस आकाशीय समुद्र से काल की गति उत्पन्न होती है, जगत् को वश में रखने वाला प्रभु दिन और रात्रि के भेद को बनाता है ॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

पदार्थः—(**धाता**) जगत् का कर्ता परमेश्वर (**सूर्याचन्द्रमसौ**) सूर्य और चन्द्रमा आदि को (**यथापूर्वम**) पूर्वकल्प के समान और जैसा हो सकते हैं वैसा ही बना लेता है और बनायेगा भी, (**दिवम्**) द्युलोक (**च**) और (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**च**) और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**अथ**) तथा (**स्वः**) प्रकाशमान पदार्थों को बनाता है ।

भावार्थः—जगत् का कर्ता परमेश्वर सूर्य और चन्द्रमा आदि समस्त जगत् को पूर्वकल्प के समान ही बनाता है अतः वैसा ही बना लिया था। द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाश्य अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्णकल्प के समान ही बनाता और बनायेगा भी ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १९१

ऋषिः—१—४ संवननः ॥ देवता—१ अग्निः । २—४ संज्ञानम् ॥
छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१, २, ४ गान्धारः । ३ धैवतः ॥

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

पदार्थः—(**वृषन्**) हे समस्त सुखों के बरसाने वाले (**अग्ने**) **प्रकाशस्वरूप प्रभो !** (**अर्यः**) स्वामी तू (**विश्वानि**) समस्त प्राणियों और तत्त्वों को (**संयुवसे**) मिलाता है, (**इडः**) वाणी के (**पदे**) परम पद ओम् के रूप में (**समिध्यसे**) प्रकाशमान होता है (**स**) वह तू (**नः**) हमें (**वसूनि**) धन (**आभर**) प्रदान कर ।

भावार्थः—हे समस्त सुखों के बरसाने वाले ! प्रकाश स्वरूप प्रभो! सब का स्वामी तू ! समस्त प्राणियों और तत्त्वों को मिलाता है। तू वाणी के परम पद ओम् रूप में प्रकाशमान होता है। वह तू हमें धन प्रदान कर ॥१॥

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**संगच्छध्वम**) मिलकर चलो, (**संवदध्वम्**) परस्पर मिलकर बात करो ! (**वः**) तुम्हारे (**मनांसि**) चित्त (**सं जानताम्**) एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें, (**यथा**) जिस प्रकार (**पूर्वे**) पूर्व (**देवाः**) विद्वान्, ज्ञानी-जन (**भागम्**) सेवनीय प्रभु को (**जानानाः**) जानते हुए (**समुपासते**) उपासना करते आये हैं वैसे ही तुम भी किया करो ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम परस्पर मिलकर चलो, परस्पर मिलकर बात करो। तुम्हारे मन एक समान होकर ज्ञान को प्राप्त करें। जिस प्रकार पूर्ण विद्वान् ज्ञानी जन सेवनीय प्रभु को जानकर उसकी उपासना करते आये हैं वैसे ही तुम भी किया करो ॥२॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

पदार्थः—(**एषाम्**) इन सबका (**मंत्रः**) विचार (**समानः**) समान हो, (**समितिः**) समिति सभा समान हो, (**मनः**) मन (**समानम्**) समान हो (**चित्तम्**) चित्त (**सह**) एक साथ वा समान उद्देश्य वाला हो, हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (**वः**) तुम्हें (**समानम्**) समान (**मन्त्रम्**) विचार वाला (**अभिमन्त्रये**) बनाता हूं (**वः**) तुम्हें (**समानेन**) समान (**हविषा**) खान पान से (**जुहोमि**) युक्त करता हूँ अथवा समान हवि और यज्ञ भावनाओं से यज्ञ करने की प्रेरणा देता हूँ ।

भावार्थः—इन सब मनुष्यों का विचार समान हो। इनकी समिति और सभा समान हो; इनका मन समान हो, और चित्त एक साथ समान उद्देश्य वाला हो। हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर तुम्हें समान विचारों वाला करता हूँ और समान खान-पान और यज्ञ भावना से युक्त करता हूं ॥३॥

स॒मा॒नी व॒ आकू॑तिः समा॒ना हृद॑यानि वः ।
स॒मा॒नम॑स्तु वो॒ मनो॒ यथा॑ वः॒ सु॒सहास॑ति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**वः**) तुम्हारे (**आकूतिः**) संकल्प (**समानी**) समान हो, (**वः**) तुम्हारे (**हृदयानि**) हृदय (**समाना**) परस्पर मिले हुए हों (**वः**) तुम्हारे (**मनः**) मन (**समानम्**) समान हों (**यथा**) जिससे (**वः**) तुम लोग (**सह सु असति**) परस्पर मिल कर रहो ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारे संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे मन समान हों, जिससे तुम लोग परस्पर मिलकर एक होकर रहो ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इक्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्रिकृत
दशम मण्डल का आर्यभाषा-भाष्य समाप्त हुआ ।
इस प्रकार ऋग्वेद भाष्य भी समाप्त हुआ ।